

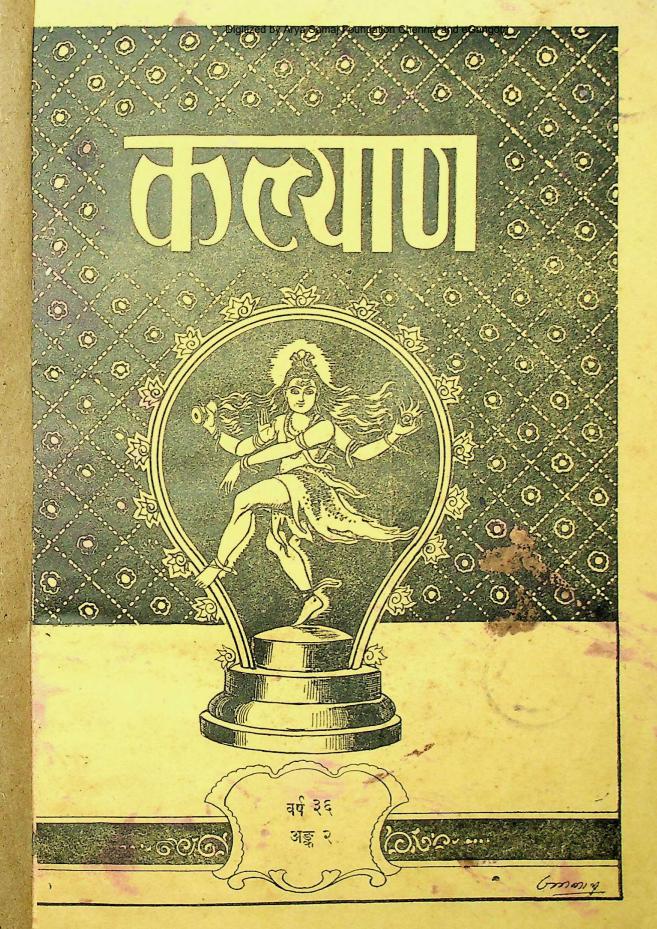


110315

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

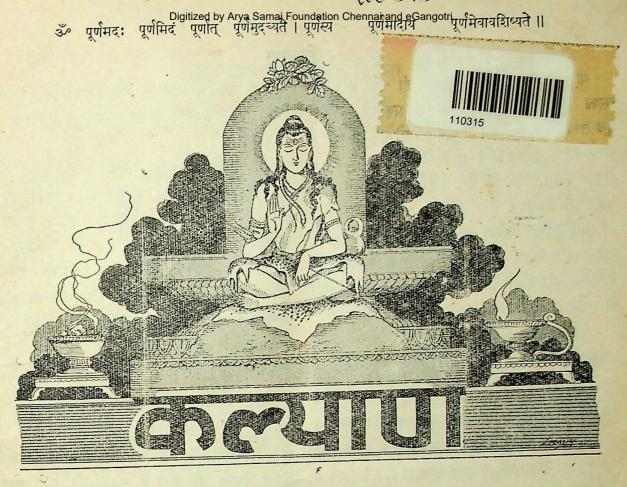
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennal and eGangotri CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



विषय-सूची	कल्याण, सौर फाल्गुन २०१८, फरवरी १९६२
विषय १ पृष्ठ-संख्या १ - शिवनगौरी [कविता]	१७-कामना १८-मुख्य है कर्ताके हृद्यकी भावना(पं० श्री-विश्वनाथजी मिश्र, साहित्यसास्त्री, साहित्यरत्त) १९-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्दपस्त्री), श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दपसाद श्रीवास्तव) २०-महामना माठवीयजीके कुछ संस्रारण (हनुमानप्रसाद पोहार) ७४१ २१-विक्वशान्तिका प्रधान उपाय वाणी-वशीकरण (पं० श्रीभगवानदेवजी हार्मा गुरुकुळीय सिद्धान्तशास्त्री) ७४१ २२-में तो प्रियतमकी वस्तु हूँ (कविता) ७४१ २३-वदरिकाश्रम-श्राद्ध और गया-श्राद्धपर हास्त्रीय विचार (स्व० महामहोपाध्याय सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र पं० श्रीविद्याधरजी गोड अग्निहोत्री) ७४८ २४-अष्ट्रप्रही ७४१ २५-दो वार्ताएँ (श्रीमाताजी, श्रीअरचिन्द-आश्रम) ७५० २६-रामचरितमानसका मङ्गळाचरण (पं० श्रीमुनहरीळाळजी हार्मा साहित्यरत्न) ७५१ २७-परमहंस अनन्त श्रीस्वामीनारायणदासजीका एक संस्मरण (पं० श्रीमदनगोपाळदत्तजी) ७५५ २८-जीवनमें उतारनेकी वार्ते [कविता] ७५० २९-रोग तथा उनका निवारण (डा० श्रीहावनन्दन प्रसादजी) ३०-माळवीय-जयन्ती-हातीके अवसरपर माळवीय-वन्दना [कविता] (पाण्डेय श्री-रामनारायणदत्तजी हास्त्री (राम')) ७६१
१६-शिक्षा-प्राप्तिके बाधक और साधक कारण (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) " ७३३	३२-क्यों तुम्हारी याद करता ? [कविता] (एक साधक)
१—शिवका ताण्डव-नृत्य २—शिव-गौरी	- सूची (रेखाचित्र) मुखपृष्ठ (तिरंगा) ७०५
र्षिक मूल्य जय पात्रक रिव चन्द्र जयित जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ।। रतमें २० ७.५० देशमें २०१०.०० तय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ।। विदेशमें (१५ शिलिंग) जय विराट जय जयत्वते । गौरीपित जय रमापते ।।	

110315



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्। ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनि समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।

वर्ष ३६

981

वपृष्ट

Ĥ

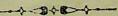
गोरखपुर, सौर फाल्गुन २०१८, फरवरी १९६२

संख्या २ पूर्ण संख्या ४२३

शिव-गौरी

गौरी हुई काली-चाम। कालीसे तजकर शक्ति-शौर्य-बल-धाम॥ कौशिकी त्वकसे प्रगटी देवी तुरत गौरी शिवके पास। पहुँची शिव-मन परमोल्लास ॥ प्रसन्नता परम गौरीका शिवने किया निज कर शुचि श्रङ्गार। लगा रहे अब भालपर विन्दी भव भर्तार॥

(शिवपुराण वायवीयसंहिता पूर्व० अ० २५-२७)



कल्याण

याद रक्लो—एकमात्र भगवान् ही 'रस' है । इसी रसका जगत्में सर्वत्र विस्तार है, पर प्रकृतिके संयोगसे मूळ तत्त्वके रूपमें नित्य एक-रस रहते हुए ही सृजन-पाळन-संहार छीळाके छिये इसके नौ रस हो जाते हैं—श्रृङ्गार, हास्य, करूण, वीर, रौद्र, मयानक, बीमत्स, अद्भुत और शान्त ।

याद रक्लो—इन्हीं नौ रसोंमें सृजन-पालन-संहारके सारे कार्य चलते रहते हैं। जो समष्टिमें है, वही व्यष्टिमें—इस दृष्टिसे प्रत्येक मानवका जीवन भी इन्हीं नौ रसोंसे ओतप्रोत है।

याद रक्खो—इस विश्वमें नित्य निरन्तर रसमय भगवान्की रसमयी छीछा हो रही है। भगवान् ही नटवर नटराजके रूपमें यहाँ छीछानृत्य कर रहे हैं। इस छीछानृत्यके दो प्रधान मेद हैं—छास्य और ताण्डव। नौ रसोंमें पहले चार छास्य नृत्यके रस हैं और दूसरे चार ताण्डवके। जहाँ इन दोनों नृत्योंका समरस प्रहण है वहाँ शान्त-रस है। यह शान्त-रस रसमय भगवान्की ओर ले जानेवाछा है।

याद रक्खो—शान्त-रसके दो मेद हैं—साधन-शान्तरस और साध्य-शान्तरस । इस साधन-शान्त-रससे ही भगवद्भक्तिके रसोंका—रितका प्रारम्भ होता है । ये पाँच रस या रित हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर । दास्यसे लेकर मधुरतक चारों ही रसोंमें शान्त-रसकी भूमिका अत्यावश्यक और अनिवार्य है । शान्त-रसमें साधक इन्द्रियदमन, मनकी शान्ति, विपयवैराग्य, ख-सुख-वासनाजनित विषयासक्ति तथा विषयकामना-से रहित त्याग-भाव एवं भगवान्के अनुकूल सदाचार-सिद्धचार-सद्भाव आदिको न्यूनाधिक रूपसे प्राप्त कर लेता है । इस साधन-शान्तरसकी वेदान्त-साधनके साधन-चतुष्टयकी तीसरी स्थिति—षट्सम्पत्ति (शम, दम,

तितिक्षा, उपरित, श्रद्धा और समाधानरूपा छः सम्पत्ति, वैराग्य तो इनके पहले ही हो जाता है) से तुलना की जा सकती है।

याद रक्खो—जबतक मनुष्य अपनी अलग किसी प्रकारके सुखकी स्थितिकी कल्पना करके उसको चाहता रहता है, तबतक वह भगवान्के 'अनन्य दासल्वभें अपनेको नियुक्त नहीं कर सकता। भक्तराज श्रीहनुमान्जीकी भाँति अपनेको भूल जानेपर ही यथार्थ 'सेवकः'-भावका प्रकाश होता है। जबतक सेवक एकमात्र अपने खामीकी अनन्य सेवा-सुखके अतिरिक्त अन्य कहीं किसी प्राणी-पदार्थमें सुखकी कल्पना करता है, तबतक वह सचा सेवक—'दास्य-रित' वाला दास नहीं वन सकता।

4

याद रक्खो-जब दास्य-रित उत्तरोत्तर प्रगति करती हुई मधुर-रतिमें परिणत हो जाती है या भगवत्क्रपासे विना ही क्रमोन्नतिके—मध्र-रतिका विकास हो जाता है, तब उसमें एक महान् मधुरतम दिव्य उच्छलन आता है, जो परम प्रियतम भगवानुके सुखके लिये जीवनके कण-कणको-अणु-अणुको नचा देता है। इसका परिणाम होता है-महाभाव, जिससे एक दिव्य अनिर्वचनीय-अचिन्त्य मधुरतम शान्त-रसका प्रादुर्भाव होता है, जो प्रेमी-प्रेमास्पदका भेद मिटाकर परस्पर परम और चरम एकत्व, सुखैकत्व तथा खरूपैकलक्पमें प्रकट होता है और नित्य-निरन्तर परस्पर-सुखसम्पादनमें निरत मधुरतम प्रेमानन्दमय ठीठातरङ्गमय होनेपर भी परम विलक्षण अपूर्व शान्त-स्वरूपमें परिणत हो जाता है । यही है-साध्य-शान्तरस । यही प्रियतम भगवान्का दिव्य सेवालाभ है। यही भक्तका परम ज्ञान है । यही साक्षात्कार है । यही ज्ञानोत्तर दिन्यातिदिन्य प्राप्त प्रेम है और यही कालमें भगवत्सेवा-सुख है।

भगवन्नाम-स्मरणकी महिमा [महामना मालवीयजीका उपदेश]

(कई वर्षों पहले, गीतावाटिका, गोरखपुरमें एक वर्षके लिये अखण्ड कीर्तन हुआ था, उसमें महामना पं॰ मदनमोहनजी मालवीय महाराज पधारे थे। उस समय भगवन्नामके सम्बन्धमें आपने यह उपदेश दिया था—सम्पादक)

आप सब छोग भी भगवन्नामके जप और कीर्तनमें ही छगे हुए हैं। किंतु आप यह तो वतलाइये कि नाम-जप क्यों करना चाहिये ? इससे क्या लाभ है ? लोग कहते हैं, भगवान्का नाम छेनेसे पाप कटते हैं; परंतु इसमें यक्ति क्या है ? आपमेंसे कोई भी इसका उत्तर दें। बात यह है कि हम जिस समय किसी वस्तुका नाम लेते हैं तो तत्काल हमें उसकी आकृति और गुण आदि-का भी स्मरण हो जाता है। जब हम 'कसाई' शब्दका उच्चारण करते हैं तो हमारे मानसिक नेत्रोंके सामने एक ऐसे व्यक्तिका चित्र अङ्कित हो जाता है जिसकी ळाळ-ळाळ ऑखें हैं, काला शरीर है, हाथमें छुरा है और बड़ा क्रूर खभाव है । 'वेश्या' कहते ही हमारे हृदय-पटलपर वेश्याकी मूर्ति अङ्कित हो जाती है । इसी प्रकार जब हम भगवानुका नाम लेते हैं तो सहसा हमारे चित्त-में भगवान्के दिव्य रूप और गुणोंकी स्मृति जाप्रत् हो जाती है। भगवनाम-स्मरणसे चित्त अनायास ही भगवदा-कार हो जाता है। भगवदाकार चित्तमें भला पाप-तापके लिये गुंजाइरा ही कहाँ है ? इसीलिये नामस्मरण पापनारा-की अमोघ ओषधि है।

विना जाने भगवान्का नाम लेनेसे भी किस प्रकार पाप नष्ट हो जाते हैं, इसके विषयमें श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें एक बड़ी अद्भुत कथा है । अजामिल नामका एक बड़ा ही दुराचारी और दुष्ट प्रकृतिका ब्राह्मण था । उसके सबसे छोटे पुत्रका नाम 'नारायण' या । जब अजामिलका अन्तकाल उपस्थित हुआ, तब उसे लेनेके लिये यमदूत आये । उनके भयंकर खरूपको देखकर अजामिल डर गया और उसने 'नारायण' कहकर

आजकल नाम-जपपर बहुत जोर दिया जाता है। अपने छोटे पुत्रको पुकारा। उसके मुखसे 'नारायण' सब लोग भी भगवलामके जप और कीर्तनमें ही लगे शब्द निकलते ही वहाँ विष्णु भगवान्के पार्षद उपस्थित हैं। किंतु आप यह तो वतलाइये कि नाम-जप हो गये। उन्होंने तुरंत ही उसे यमदृतोंके पाशसे छुड़ा करना चाहिये ? इससे क्या लाभ है ? लोग कहते लिया। जब यमदृतोंने उसके पापमय जीवनका वर्णन भगवान्का नाम लेनेसे पाप कटते हैं; परंतु इसमें करते हुए यमदण्डका पात्र वतलाया, तब भगवान्के पार्षदों-

अयं हि कृतिनवैद्देशे जन्मकोट ग्रंहसामि । यद् व्याजहार विवशो नाम खस्त्ययनं हरेः॥ एतेनैव ह्ययोनोऽस्य कृतं स्याद्यनिष्कृतम्। यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥ सर्वेषामप्यघवतामिद्मेव सुनिष्कृतम्। नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विपया मितः॥ (श्रीमद्गा०६।२।६,८,१०)

'इसने तो अपने करोड़ों जन्मोंके पापोंका प्रायश्चित्त कर दिया; क्योंकि इस समय इसने विवश होकर भगवान्का मङ्गलमय नाम उच्चारण किया है। इसने जो 'नारायण' यह चार अक्षरोंका नाम उच्चारण किया है, इतनेसे ही इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। समस्त पापियोंके लिये भगवान् विष्णुका नाम लेना ही सबसे अच्छा प्रायश्चित्त है; क्योंकि ऐसा करनेसे भगविद्विषयक बुद्धि होती है।'

विण्णुदूतोंके इस प्रकार समझानेपर यमराजके सेवक यमलोकको चले गये और वहाँ ये सब बातें धर्मराजको सुनाकर उन्होंने उनसे पूळा—'महाराज! इस लोकमें धर्माधर्मका शासन करनेवाले कितने अधिकारी हैं और हमें किसकी आज्ञामें रहना चाहिये ? मला, ये दिव्य पुरुष कौन थे और उस महापापीको हमारे पाशसे छुड़ा-कर क्यों ले गये ?' तब यमराजने कहा—'परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम्' इत्यादि ।

अर्थात् मेरे भी ऊपर एक और स्वामी है जो समस्त स्थावर-जंगमका शासक है और जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है। उन सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीहरिके दूत, जो उन्हींके समान रूप और गुणवाले हैं, लोकमें विचरते रहते हैं और श्रीहरिके भक्तोंको, उनके शत्रु और मृत्यु आदि सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचाते रहते हैं। संसारमें मनुष्यका सबसे बड़ा धर्म यही है कि वह नाम-जपादिके द्वारा भगवान्के चरणोंमें भक्ति करे। देखो, यह भगवना-मोच्चारणका ही माहात्म्य है कि अजामिल-जैसा पापी भी मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया।

महाभारत शान्तिपर्वकी कथा है कि जिस समय शरशय्यापर पड़े हुए पितामह भीष्मसे महाराज युधिष्टिर-ने पूछा—

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः। किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारवन्धनात्॥ (विष्णुसहस्र०३)

'सम्पूर्ण धर्मोंमें आपके विचारसे कौन-सा धर्म सर्वश्रेष्ठ है ? और मनुष्य किसका जप करनेसे जन्म-मरणरूप संसारसे मुक्त हो जाता है ?' तब पितामहने कहा—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्। स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥ तमेव चार्चयन्नित्यं भक्तया पुरुषमञ्ययम्। ध्यायंस्त्वन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्। लोकाध्यक्षं स्तुवित्रत्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥ ब्रह्मण्यं सर्वधर्मन्नं लोकानां कीर्तिवर्धनम्। लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ एव मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः। यद्भक्तवा पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः। परमं यो महद्रह्म परमं यः परायणम् ॥ पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्। दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥ (विष्णुसहस्र० ४-१०)

'जो सम्पूर्ण संसारके स्वामी, देवोंके देव, अनन्त एवं पुरुषोत्तम हैं उन आदि-अन्तसे रहित, सम्पूर्ण लोकोंके महान् ईश्वर और सबके साक्षी भगवान् अच्युतकी नित्यप्रति उठकर हजार नामोंसे स्तुति करनेसे तथा उन अविनाशी पुरुषोत्तमका ही भक्ति-पूर्वक पूजन, ध्यान, स्तवन और वन्दन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण दुःखोंसे पार हो जाता है। वे श्रीविष्यु ब्राह्मणोंके हितकारी, समस्त धर्मोंके ज्ञाता, लोकोंकी कीर्तिको बढ़ा तेवाले, लोकोंके स्वामी, महद्भूत और सम्पूर्ण मूतोंके उत्पत्तिस्थान हैं । मेरे विचारसे मनुष्यके सम्पूर्ग घर्नीमें सबसे बड़ा धर्म यही है कि जो अत्युत्कृष्ट तेज, अति महान् तप, परमोत्कृष्ट ब्रह्म और बड़े-से-बड़े आश्रय हैं तथा जो पवित्रोंमें पवित्र, मङ्गलोंमें मङ्गल, देवोंमें महान् देव और समस्त भूतोंके अविनाशी पिता हैं, उन कमलनयन भगवान्का मनुष्य सर्वदा भक्तिपूर्वक स्तवन करे।'

इस प्रकार मीण्मजीने भगवान्को ही सबसे अधिक पूजनीय देव और भगवन्नाए-एमरणको ही सबसे बड़ा धर्म और तप बतलाया है। भगवन्नामकी महिमा ऐसी ही विचित्र है। इसके उच्चारणमात्रसे प्रह, नक्षत्र एवं दिक्शूलादिके दोप निवृत्त हो जाते हैं। मेंने अपनी मातासे यह वर माँगा था कि मुझे प्रायः नित्य ही बाहर आना-जाना होता है, इसलिये ऐसा आशीर्वाद दो जिससे प्रहदोषजनित विच्न उपस्थित न हों। तो मेरी माताने मुझसे कहा, ''त्र यात्रा आरम्भ करनेसे पूर्व 'नारायग' इस नामका उच्चारण कर लिया कर, फिर कोई विच्न नहीं होगा।'' माताजीके इस आशीर्वाद से मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव है, मैं जिस समय 'नारायण' इस प्रकार उच्चारण करके यात्रा आरम्भ करती हूँ तो सारे विच्न दूर खड़े रहते हैं।

यही बात श्रीमद्भागवतके 'नारायणकवच' नामक

प्रसिद्ध स्तोत्रमें भी वतलायी गयी है। यह स्तोत्र भी भागवतके छठे स्कन्धमें ही है। वहाँ कहा है— यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च। सरीस्पेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा॥ सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात्। प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः॥ (६।८।२७-२८)

'ग्रह, नक्षत्र, मनुष्य, सरीस्तृप, हिंस्न जीव अथवा पापोंसे हमें जो भय प्राप्त हो सकते हैं तथा हमारे श्रेयोमार्गके जो-जो प्रतिबन्ध हैं वे इस भगवन्नामरूप अस्र (कवच) का कीर्तन करनेसे क्षीण हो जायँ।' भगवन्नाम लेनेसे मनुष्यके सारे पाप उसी प्रकार कट जाते हैं जैसे दूध डालनेसे चीनीका मैल कट जाता है। नामका प्रभाव हमारे चित्तको सर्वथा व्याप्त कर लेता है। जिस प्रकार जलमें तेलकी एक बूँद डालनेपर भी वह सारे जलके ऊपर फैलकर उसे ढक लेती है, उसी प्रकार अर्थानुसंधानपूर्वक किया हुआ थोड़ा-सा भी नाम-जप मनुष्यके सारे पापोंको नष्ट कर देता है। अतः भगवन्नाम-जपसे तथा स्मरणसे समस्त पापोंका नाश होकर दिव्य शान्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

सफल जीवन

पाता है जो जीवनमें सर्वत्र सदा प्रभुका संस्पर्श । नहीं फूछता जग-सुखमें, होता न दुःखमें जिसे अमर्ष॥ प्रभु-प्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिमें ही जिसको होता हर्ष। वही सफल जीवन है, जिसने प्राप्त किया ऐसा उत्कर्ष॥ जड-चेतनमें सदा देख पाता जो प्रभुको ही अभिराम । तन-मन-धनसे यथाशक्ति जो सेवा करता है अविराम ॥ प्रभुकी सेवाके निमित्त ही होते जिसके सारे काम। वही सफल जीवन है सुखमय सत्य उसीका जन्म ललाम॥ सर्वकाल जो चिन्तन करता प्रभुका रखकर भाव अनन्य। कर मन-वुद्धि समर्पित प्रभुको, नहीं देखता कुछ भी अन्य॥ जिसके कभी न आती मनमें राजस-तामस वृत्ति-जघन्य। वही सफल जीवन है शोभन परम उसीका जीवन धन्य॥ प्रभुके पावन पद-पंकजमें ही जिसका रहता अनुराग। ममता एकमात्र प्रभुमें ही हुआ अन्य-ममताका त्याग॥ निर्मल परम प्रीति प्रभुमें ही विषय-जगत्से सहज विराग। वही सफल जीवन है जगमें पुण्यश्लोक वही बड़भाग॥



से

मा

₹,

पः

सा

FH

या

इस

मय

रता

मक

परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

(मूल अंग्रेजी लेखक—- व्व जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारती कृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी)

[अनुवादक—पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि]

[वर्ष ३५ पृष्ठ १२८१ से आगे]

शाश्वत सत्ता (Eternal Existence)

हमारे शास्त्रोंके अनुसार आत्माका पहला गुण है, सत् अथवा 'त्रिकालाबाध्यमस्तित्वम्' अर्थात् तीनों कालोंमें भी उसकी सत्ताका बाध नहीं होता। इस गुणपर अनेक दृष्टियोंसे विचार किया जा सकता है, जैसे—

१. मनोवैज्ञानिक दृष्टि (Psychological standpoint)-इम प्रायः मृत्युके बारेमें बात करते हैं और कहते हैं कि अमक आदमी मर गया । परं 'मृत्यु' शब्दसे हमारा वास्तविक तात्पर्य क्या है ? हमने पूर्व पृष्ठोंमें इस बातका प्रतिपादन कर दिया है कि आत्मा वह है, जिसको हम 'मैं' शब्दद्वारा अभिव्यक्त करते हैं। अब हमें यहाँ यह देखना है कि क्या 'मैं' शब्दके साथ 'मरना' शब्दके सम्बन्धकी जरा भी सम्भावना है, अथवा इन दोनोंमें क्या उद्देश्य और विधेयका सम्बन्ध स्थापित हो सकता है ? कभी नहीं !! डॉक्टर नाडियोंकी गतिका अध्ययन करता है और कहता है कि 'यह आदमी मर गया' अथवा मरणासन्न व्यक्ति भी डरता है कि वह शीघ्र ही मर जायगा । पर मरनेका वास्तविक मनोवैशानिक अनुभव उसे कभी नहीं मिलता । यह नितान्त असम्भव है। 'मैं' और 'मरना' इन दोनों शब्दोंका प्रयोग एक साथ हो ही नहीं सकता । जब मनुष्य कहता है कि 'मैं मर रहा हूँ श्रीर वाक्यमें वर्त्तमानकालका प्रयोग करता है, तब वहाँ उसका तात्पर्य भविष्यत्कालसे ही होता है, न कि वर्तमान या भूतकालसे।

इस प्रसङ्गमें नींदका भी, जिसे 'लघु मृत्यु' भी कहा गया है, उल्लेख किया जा सकता है। वास्तवमें मृत्युको कई जगह 'दीर्घनिद्रा' भी कहा गया है। उदाहरणार्थ—रघुवंश सर्ग १२ में निद्रा-प्रिय कुम्भकर्णके श्रीरामद्वारा मार दिये जानेपर कवि कालिदास लिखते हैं—

> अकाले बोधितो आता प्रियस्वप्नो वृथा भवान् । रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्वां प्रवेशितः॥

'अर्थात् हे निद्राप्रिय! तुम अपने भाईद्वारा असमयमें और अनावश्यक रूपसे जगा दिये गये थे, इसलिये श्रीरामके वाणोंने तुमको (कुम्भकर्णको) दीर्घ-निद्रामें भेज दिया।

यहाँ मजेकी बात यह है कि नींदके बारेमें मैं यह कह सकता हूँ कि 'मैं सो रहा था' 'मैं सोने जा रहा हूँ' 'मुझे बहुत नींद आ रही है' इत्यादि, पर मैं यह कभी नहीं कह सकता कि 'मैं सो रहा हूँ' यदि मैं ऐसा कहता हूँ तो स्पष्ट है कि मैं सो नहीं रहा हूँ । इस प्रकार 'सोना' शब्द भी 'मैं' के साथ वर्तमानकालमें प्रयुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'मैं' और 'मरना' ये दोनों शब्द भी वर्तमानकालमें एक साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते। इससे यह अनुमान सहजहीमें निकाला जा सकता है कि 'मरना' आत्माका विधेय कभी भी नहीं वन सकता।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मैं खप्नमें देखता हूँ कि मैं मर गया हूँ और आदमी मेरे लिये रो रहे हैं, पर आश्चर्यकी बात यह है कि उस कल्पनात्मक मृत्युकी अवस्थामें भी मैं लोगोंको रोते हुए सुनता और देखता हूँ। ये सभी उदाहरण इस बातकी सिद्धि करते हैं कि अमरता आत्माका स्वाभाविक गुण है।

२. उद्देश्यात्मक दृष्टि (Teleological stand-point)—यदि जीना और मरना दोनों आत्माके स्वाभाविक गुण होते (अर्थात् यदि मरना भी स्वाभाविक गुण होता) तो हम मृत्युसे बचनेकी कोश्चिश्च क्यों करते ? क्योंकि जो हमारा स्वाभाविक गुण है उससे हम बचनेका प्रयत्न कभी नहीं करते । उदाहरणके लिये मैं दफ्तर जानेके लिये एक विशेष प्रकारकी पोशाक पहनता हूँ, पर मैं उस पोशाकसे ऊत्र जाता हूँ और घरपर आकर उसे झटपट उतार फेंकता हूँ । क्यों ? क्योंकि वह पोशाक मेरे लिये स्वाभाविक नहीं है, अपितु मुझे जबर्दस्ती पहननी पड़ी, लिहाज़ा वह मुझे बहुत जब्दी थका देती है । अतः जो मेरे लिये स्वाभाविक नहीं है, वह मुझे जब्दी ऊबा देनेवाली होती है । पर मैं जीनेसे कभी नहीं ऊबता, चाहे मेरा शरीर कमजोर हो जाय, इन्द्रियाँ काम न

अ

के

गी

कर पार्यें, में बूढ़ा हो जाऊँ; फिर भी जीनेकी चाह मुझमें वनी ही रहती है। यह क्यों ? इसीलिये कि जीवन स्वाभाविक है और मरना अस्वाभाविक।

इसी प्रकार हम स्वास्थ्यको पसंद करते हैं, रोगको नहीं।
यह भी इसीलिये कि स्वस्थता हमारे लिये स्वाभाविक है,
रुग्णता नहीं। हम यहाँ पहले कहे हुए क्यों? राब्दद्वारा भी
इस वातकी सत्यताका निर्णय कर सकते हैं। जब कोई
वीमार होता है, तब हम पूछते हैं कि यह वीमार क्यों है ?
पर जब एक आदमी स्वस्थ रहता है तो कोई उससे यह नहीं
पूछता कि वह स्वस्थ क्यों है ? पूछनेवालेको रोगका कारण
बतानेकी जरूरत है, पर स्वस्थताका नहीं। यह भी इस बातका
द्योतक है कि स्वस्थता हमारा स्वाभाविक गुण है, अस्वस्थता
नहीं। यही बात ठीक जीवन और मृत्युके वारेमें भी है। इस
प्रकार हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि आत्मा नित्य और
राश्वत है।

३. वैज्ञानिक दृष्टि—प्रो॰ रास्कोके रसायन शास्त्र (Chemistry) के प्रथम भागमें विद्यार्थी पढ़ता है कि मोमवत्तीके जलनेमें कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। पर जव विद्यार्थी यह देखता है कि मोमवत्ती जलते-जलते पूरी गायव हो जाती है, तब वह प्रोफेसरके इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता । पर प्रोफेसर इस बातकी व्याख्या करता है कि जब मोमवत्ती जलती है, तव हाइड्रोजन और कार्बन, जो मोमवत्ती-के जलनेमें सहायक होते हैं, ऊपर चले जाते हैं और वहाँ ऑक्सीजनके साथ मिलकर जलीय भाप और कार्वन डाइ ऑक्साइड वन जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें, मोमवत्तीके जलनेमें किसी वस्तुका नाश नहीं होता, केवल स्थान, रूप और नामों-का परिवर्तन होता है। इसी प्रकार जब एक वढ़ई एक कुसीं या बेंच बनाता है तो वह किसी नयी वस्तुका निर्माण नहीं करता, अपितु परमात्म-निर्मित लकड़ीको कहींसे लाता है तथा उसके यथायोग्य टुकड़े करके उन्हें यथायोग्य स्थानपर जोड़ देता है और इस प्रकार उनको अपने इच्छानुसार आकृतिमें ढाल देता है। न उसमें किसी चीजका नाश होता हैं। न कोईं नयी वस्तु उत्पन्न ही होती है। केवल स्थान और आकृतिका परिवर्तन होता है। फलतः नाम भी बदल जाता है। इसी सिद्धान्तको भौतिक-शास्त्र (Physics) में 'तत्त्वका अविनाशित्व' 'तत्त्वका अनुत्पत्तित्व' और 'शक्तिका परिवर्तन' के रूपमें वताया है। इसी सिद्धान्तको भगवान् श्रीकृष्णने गीताके आधे क्लोकमें ही इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

'जो नहीं था, वह कभी पैदा नहीं हो सकता और जो है, उसका कभी नाश नहीं हो सकता।'

अब हम अपने आत्माकी अमरतावाले प्रश्नको रसायन-शास्त्र और भौतिकशास्त्रके उपर्युक्त सिद्धान्तोंकी कसौटीपर कसते हैं। जब कोई मुझसे पूछता है कि जन्म होनेसे पूर्व मैं था या नहीं और मृत्युके बाद मेरी सत्ता रहेगी या नहीं ? तो मैं उससे कहता हूँ कि इस प्रश्नके उत्तर-से पहले में तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि 'इस सम<mark>य</mark> तुम्हारी सत्ता है या नहीं ?' इसके उत्तरमें कोई भी यह नहीं कह सकता कि इस समय उसकी सत्ता नहीं है। अब मेरा भी उत्तर यही होता है कि यदि अब तुम्हारा अस्तित्व है तो इससे पूर्व भी अवश्य ही रहा होगा; क्योंकि जो पहले नहीं होता उसका अस्तित्वमें आना असम्भव है। उसी प्रकार यदि अव तुम हो तो तुम भविष्यमें भी रहोगे; क्योंकि अस्तित्ववान्का विनाश कभी नहीं होता । निस्संदेह रूप, नाम और स्थानका परिवर्तन हो सकता है, परंतु वस्तु-का नाश नहीं हो सकता । इस प्रकारके मननसे जिज्ञासुओंकी शान्ति हो सकती है, अतः उन्हें दर्शनशास्त्र या भौतिक-शास्त्रके पचड़ेमें पड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं।

8. भाषासम्बन्धी प्रमाण (Linguistic evidence)—केवल संस्कृत भाषाके शब्दोंको जाननेवाला भी इस सत्यतापर पहुँच सकता है। हमारे विचारमें केवल संस्कृत ही एक पूर्ण भाषा है। हम इसे ईश्वरीय वाणीकी दृष्टिसे देखते हैं; क्योंकि इसमें एक शब्द भी तो ऐसा नहीं है, जिसे हम यह कह सकें कि यह तो आकस्मिक रूपसे इसमें आ घुसा है। इसके विपरीत इसका एक ही शब्द हमारे मिस्तिष्कमें उस शाश्वत सत्यके विषयमें इतने विचार प्रस्तुत कर देता है जितना कि हम यदि ज़िंदगी भर दर्शनशास्त्रोंमें लगे रहें तो भी नहीं पा सकते। इसलिये हम प्रायः यह कह दिया करते हैं कि यदि ईश्वर संस्कृतको छोड़कर और किसी अन्य भाषाको अपने लिये चुनता तो उसे भी लिजत होना पड़ता। अब हम यह देखते हैं कि संस्कृत भाषा इस आत्माके बारेमें क्या कहती है।

और 'शक्तिका परिवर्तन' हम जन्म और मृत्युके बारेमें बहुत बात करते हैं, पर तको भगवान् श्रीकृष्णने इन दोनों शब्दोंका वास्तविक तात्पर्य क्या है ? अंग्रेजी भाषा-स्पष्ट कर दिया है— के अनुसार तो ये केवल मात्र दो विशेष घटनाएँ हैं, जो CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar बार-बार घटित होती हैं। पर इन घटनाओं के घटित होनेका कारण क्या है, इस विषयमें चुप्पी लग जाती है। विश्वकी किसी भी भाषामें, केवल संस्कृतको छोड़कर, जन्म और मृत्युका दार्शनिक और वैज्ञानिक विवेचन नहीं मिलता।

पर संस्कृतमें 'जन्म' शब्दको ही ले लीजिये। 'जनी प्रादुर्भावे' धातुसे 'जन्म' शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है 'प्रकट होना' अर्थात् जो चीज पहले गुप्त थी, उसीका आँखोंके सामने आकर देखने योग्य हो जाना। संस्कृतमें 'जन्म' शब्दके लिये दूसरा शब्द है 'उत्पत्ति' (अंग्रेजीमें इसे 'ऑरिजिन' (Origin) शब्दसे व्यक्त किया है), यह शब्द 'उद्' (ऊपर) 'पद्' (जाना, चलना) शब्दोंसे मिलकर बना है। इसका भी अर्थ है, 'ऊपर आकर प्रकट होना'। दूसरे शब्दोंमें लिपी हुई वस्तुका ऊपर या वाहर आना। संस्कृतमें इसीके लिये तीसरा शब्द है 'सृष्टि' (इसके लिये इंगलिश शब्द किएशन (Creation) है और यह 'सृज् विसर्गे' धातुसे बना है। इसका भी अर्थ वाहर प्रकट होना ही है। इन तीनों शब्दोंके पीछे जो मनोविज्ञान लिपा हुआ है, वह यह है कि—

हमारी इन्द्रियोंका निर्माण कुछ इस प्रकार हुआ है कि उनकी वृत्ति अंदरसे शुरू होकर बाहरके पदार्थोंमें फँस जाती

है, अंदरको उनका झुकाव कम होता है । जैसे कि कठोपनिषद्में कहा है—

परां च खानि व्यतृणत् स्वयंभूः।

इन्द्रियोंकी इस वृत्तिके कारण हम केवल वाह्य-पदार्थोंको ही देखते हैं। हम अपनी आँखोंको नहीं देख सकते और जब हम दर्पणमें देखते भी हैं, तब वे हमारी वास्तिवक आँखें नहीं होतीं, अपितु प्रतिविम्ब मात्र होती हैं। अतः जब वे स्वयंको ही नहीं देख सकतीं तो इन्द्रियातीत पदार्थको देखना तो नितान्त असम्भव है। इसिल्ये हमारी कठिनाई यही है कि हम लिपी हुई चीजोंको नहीं देख पाते और जब ये गुप्त चीजें प्रकट हो जाती हैं या दृश्य हो जाती हैं तब हम कहते हैं कि अमुक चीजकी उत्पत्ति, जन्म अथवा सृष्टि हो गयी। पर इसका यह तात्पर्य नहीं कि जो पहले नहीं थी वह अब पैदा हो गयी, अपितु यही तात्पर्य है कि जो पहले अप्रकट रूपमें थी, वही अब प्रकट रूपमें सामने आ गयी।

इसी प्रकार 'मृत्यु' शब्द है। मृत्युके लिये संस्कृतमें 'नाश' शब्द है जो 'नश् अदर्शने' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है, देखने योग्य न रहना। ये चारों शब्द यह बताते हैं कि जन्म और मृत्युका अर्थ नये जीवनका पैदा होना या समाप्त होना नहीं है। इस प्रकार संस्कृतका शब्दकोश भी यही बताता है कि आत्मा अमर है। (क्रमशः)

एक कदम तो मैं वढ़ पाऊँ। तो चल पाऊँ॥ तेरे भक्तोंके पद्चिह्नोंपर कुछ बीते। मेरे जीवनका कोई क्षण, विना क्रोधके कभी किसी क्षण तो मेरा मन इच्छाओंको जीते॥ क्षमादान दे बार तो अपराधीको थोड़ी-सी सेवा कर थोड़ा-सा तो पुण्य कमाऊँ॥ थोड़ा भी इस पथ पर चलना मंगलमय होता है। पथदर्शक तू होता है॥ जो चल देता है उसका तेरे इस आइवासनको मैं थोड़ा तो सुन पाऊँ। बार तेरा नाम हृदयमें अपने एक बार बढ़ पाऊँ। इस अनन्त पथमें मैं केवल एक तेरे भक्तोंके पथमें मैं एक कदम चल पाऊँ॥

—मधुसूदन वाजपेयी



ईश्वर और महापुरुषोंका प्रभाव

(लेखक-श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

का प्रभाव अपरिमित है । वस्तुत: ईश्वरके खरूप और प्रभावका वर्णन वाणीद्वारा नहीं किया जा सकता। जिस मनुष्यको ईश्वरका यथार्थ अनुभव हो जाता है वहीं उन्हें जानता है। वाणीसे तो वह भी नहीं कह सकता । इस सम्बन्धमें एक दृष्टान्त है । मान लीजिये, मर्त्यळोकका एक मनुष्य पृथ्वीके अंदर ऐसे नीचेके लोकमें गया । जहाँ सृर्य, चन्द्र और नक्षत्रोंका कभी दर्शन नहीं होता । इस कारण वहाँ घोर अन्धकार-ही-अन्धकार रहता है । वहाँ जानेपर जब बहुत समय बीत गया तो उसने वहाँके लोगोंसे पूछा—'क्या यहाँ दिन नहीं होता ?' उन लोगोंने कहा—'दिन क्या ?' उसने कहा--- 'सूर्यका उदय होनेसे जो महान् प्रकाश होता है, उसे दिन कहते हैं ।' उन्होंने पूछा—'सूर्य क्या है ?' उसने कहा—'आकाशमें प्रकाशका महान् पुञ्जरूप एक गोलाकार पिण्ड-सा उदित होता है वह सूर्य है ।' तब वहाँके निवासियोंने विजलीका हजारों पावरका एक बल्व आकाशमें स्थित किया और उसे जलाकर पूछा---'सूर्य ऐसा ही होता है ?' वह मनुष्य बोला—'यह सूर्यके मुकाबिलेमें कुछ नहीं है.।' वहाँके निवासियोंने कहा—'इससे बढ़कर प्रकाश हो ही नहीं सकता ।' वह बोळा—'आप अपने एक व्यक्तिको मेरे साथ पृथ्वीपर मेर्जे तो मैं उसे प्रत्यक्ष दिखला सकता हूँ ।' इसपर उन्होंने वहाँके एक व्यक्तिको उसके साथ भेज दिया । वह मनुष्य उस लोकके व्यक्तिके साथ मनुष्यलोकमें आया, उस समय अमावस्याकी अर्धरात्रिका घोर अन्धकार व्याप्त था, तब भी यहाँ उस लोककी अपेक्षा प्रकाश था। उसे देखकर

सम्पूर्ण बल, ऐश्वर्य, तेज, शक्ति और सामर्थ्यसे उस व्यक्तिने पूछा—'यही दिन है ?' उस मनुष्यने सम्पन्न, असम्भवको भी सम्भव कर सकनेवाले परमेश्वर- उत्तर दिया—'यह तो घोर रात्रि है ।' तब जो आकाशमें तारे चमक रहे थे, उनके बारेमें उस पातालब्यक्तिने पूछा-- 'यह क्या है ?' उस मनुष्यने कहा-- 'ये तारे हैं ।' जब अरुगोदय तारोंकी चमक क्षीणं हो गयी और व्यापक प्रकाश-सा उसने पूछा-'यह लगा, तब प्रतीत होने दिन है ?' उस मनुष्यने उत्तर दिया—'नहीं, यह तो प्रभात है, अरुणोदय है । जब दो घड़ी बाद सूर्योदय होगा तब दिन माना जायगा ।' उस व्यक्तिने पूछा-'आकारामें जो तारे चमकते थे उनकी रोहानी कम कैसे पड़ गयी ?' मनुष्यने उत्तरमें कहा--- 'सूर्यका आभास यहाँ आनेसे तारोंकी ज्योति क्षीण हो गयी। जब सूर्योदय हो जायगा तब उनके तीव प्रकाशमें ये तारे आकाशमें ज्यों-के-त्यों रहते हुए भी नहीं दीखेंगे। तत्पश्चात् जब सूर्योदय होनेका समय निकट आ गया तब ग्रुक और बृहस्पतिके सिवा सारे तारे छिप गये एवं जब सुर्योदय हो गया तब तो शक्त और बहरूपति भी दीखने बंद हो गये। जो व्यक्ति नीचेके लोकसे आया था वह सूर्यको देख नहीं सका। तब जैसे अभ्रक (अबरक)पर दीपकके काजलकी कालिमा लगाकर सूर्यप्रहणके समय सूर्यको देखा जाता है, उसी प्रकार उसने देखा । सूर्य, दिन और रातको उसने अच्छी तरह समझ लिया फिर वह मनुष्य उस व्यक्तिको लेकर उस लोकको गया। वहाँके निवासी लोगोंने उस व्यक्तिसे पूछा-- 'तुमने सर्यका खरूप प्रत्यक्ष देखा ? दिन और रातको प्रत्यक्ष देखा ? वह व्यक्ति बोला—'हाँ, मैंने प्रत्यक्ष देखा उन्होंने कहा- 'अब तुम हमको अपनी भाषामें ठीक-ठीक समझा दो ।' उसने उत्तर दिया-'यह मेरे

सामर्थ्यके बाहरकी बात है । मैं किसी प्रकार भी नहीं समझा सकता । आपळोगोंको समझना हो तो वहाँ जाकर समझिये; और दूसरा कोई उपाय नहीं है ।'

अब हमें इस दृष्टान्तपर विचार करना चाहिये। जब प्रत्यक्षमें देखनेवाटा व्यक्ति भी, जिस देशमें सूर्य या दिन नहीं है, उस देशमें सूर्य या दिनको वाणीद्वारा नहीं समझा सकता, तब फिर परमात्माके ख्रुरूप और प्रभावको मनुष्य वाणीद्वारा कैसे समझा सकता है ? परमात्माकी प्राप्ति होनेपर ही मनुष्य परमात्माके ख्रुरूप और प्रभावको ठीक-ठीक समझ सकता है। किंतु वह भी फिर दूसरोंको समझा नहीं सकता। फिर भी जो शास्त्र और महात्मा पुरुषोंद्वारा यत्किञ्चित् समझाया जाता है वह उस परमात्माका आभासमात्र है। भगवान्ने गीतामें अपना प्रभाव जगह-जगह व्याख्या करके समझाया है किंतु गीताके अर्थको समझकर भी भगवान्का ख्रुप और प्रभाव ठीक-ठीक समझमें नहीं आता है।

भगवान् गीतामें कहते हैं-

यद्यद्विभृतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(80188)

'जो-जो भी विभ्तियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्ति-युक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेजके अंशकी ही अभिज्यक्ति जान ।'

इससे यह समझना चाहिये कि संसारमें जो भी विभूति, कान्ति, बल और प्रभावसे युक्त पदार्थ हैं, वे सब मिलकार भी भगवान्के प्रभावके एक अंशका ही प्राकट्य है।

अतः भगवान्का प्रभाव अपरिमित, अपार, असीम और अनिर्वचनीयं है। भगवान्के सगुण-साकार खरूपका श्रद्धापूर्वक दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन करनेसे पापी-से-पापी मनुष्यका भी शीघ्र कल्याण हो जाता है। हम भगवान्का स्मरण करें तो भी हमको परम लाभ है और भगवान् हमारा स्मरण करें तो भी हमको परम लाभ है । हम भगवान्को याद करें तो हमारा हृदय परम पवित्र होकर हमारा उद्धार हो सकता है और भगवान् हमको याद करें तो हम उन गुणसागर भगवान्के हृदयमें प्रवेश करनेसे परम पवित्र होकर हमारा उद्धार हो सकता है । इसीलिये अङ्गदने हनुमान्जीसे यह कहा था कि आप समय-समयपर भगवान् श्रीरामको मेरी स्मृति कराते रहें—

कहें हु दंडवत प्रभु से तुम्हिह कहउँ कर जोरि। वार बार रघुनाथकिह सुरित कराएहु सोरि॥ (राम० उत्तर० १९ क)

इसिलिये हमलोगोंको हर समय भगवान्के खरूपका चिन्तन करना चाहिये; क्योंकि भगवान्का यह नियम है कि जो भगवान्को याद करता है उसे भगवान् भी याद करते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता ४। ११का पूर्वार्ध)

'जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।'

इसी प्रकार भगवान हमपर दृष्टिपात करें तो हम परम पित्रत्र हो जाते हैं और हम भगवान्का दर्शन करें तो हम परम पित्रत्र हो जाते हैं और हमारा उद्धार हो सकता है। यों सभी प्रकार हमारा परम लाभ है। फिर भगवान्के वार्तालाप और चरण-स्पर्शसे उद्धार हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है!

किंतु बिना श्रद्धाके ऐसा नहीं होता; जैसे भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर भी दुर्योधनका उद्धार नहीं हुआ। बिना श्रद्धाके तो साक्षात् भगवान्के वचनरूप गीतोपदेशको पद-समझकर भी उद्धार नहीं हो सकता।

अश्रद्धानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप । अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ (गीता ९ । ३) 'परंतप ! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।'

परंतु जो भगवान्में श्रद्धा रखता है, भगवान्के दिव्य जन्म और कर्मके तत्त्व-रहस्यको जान जाता है उसका उद्धार हो जाता है—

जन्म कर्म च मे दिच्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (गीता ४।९)

'अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलैकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।'

भगवान् अर्जुन-जैसे श्रद्धालु पात्रको ही अपने जन्म (अवतार)का रहस्य वतलाते हैं—

अजोऽपि सन्नन्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् । प्रकृतिं स्नामधिष्टाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ (गीता ४ । ६)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्त्ररूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति-को अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

किंतु राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिवाले मूढ़ मनुष्य श्रद्धारहित और अपात्र होनेके कारण भगवान्के तत्त्वको नहीं जानते, इसिलये वे भगवान्का तिरस्कार करते हैं (देखिये गीता ९ । ११-१२)। वे अश्रद्धालु मनुष्य भगवान्के प्रभावसे अनिभन्न रहते हैं, अतः भगवान् उनके सामने प्रकट नहीं होते; अपने ऊपर योगमायाका पर्दा डाले रहते हैं । भगवान्ने स्वयं कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मृढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमन्ययम्॥ 'अपनी योगंभायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसिंख्ये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरिहत अविनाशी परमेश्वरको नहीं जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है।'

अर्जुन भगवान्के श्रद्धालु और प्रेमी भक्त थे, इसिल्यें भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये और उनको उन्होंने परिचय दे दिया कि मैं ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हूँ (गीता ४।६) त् मेरे शरण होकर मेरी ही भक्ति कर, इससे त् मुझको प्राप्त हो जायगा (गीता ९।३४)। अठारहवें अथ्यायके अन्तिम उपदेशमें भी कहते हैं—

सर्वगुद्यतमं भूयः श्रृष्णु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दढिमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ मन्मना भव मञ्ज्ञको मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ (गीता १८। ६४-६५)

'सम्पूर्ण गोपनीयोंसे अति गोपनीय मेरे परम रहस्य-युक्त वचनको तू फिर भी धुन । तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा । अर्जुन ! मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर । ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ; क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है ।'

भगवान्ने अपने खरूपका वर्णन भी जगह-जगह किया है। निर्गुण-निराकार खरूपका १२ वें अच्यायके तीसरे श्लोकमं, सगुण-निराकार खरूपका ८ वें अ० के ९वेंमें तथा ९वें अ० के ४, ५, ६, १८वेंमें और सगुण-साकार विश्व-खरूपका ११वें अ० के ५, ६, ७ वेंमें वर्णन किया है। अर्जुनने भगवान्से सगुण-साकार चतुर्भुज खरूपका दर्शन देनेके छिये प्रार्थना की (गीता ११। ४६), तब भगवान्ने अपना चतुर्भुज खरूप अर्जुनको दिखला दिया—इसका ११वें अ० के ५०वें

(गीता ७ । २५) श्लोकमें वर्णन है । इसिलिये सगुण-निर्गुण साकार-निराकार

FE

वा

मह

है

र्ख

ही

से

उर

आ

अ

भी

HE

प्रा

है

अ

पि

क

वा

के

इस

सब भगवान्के ही खरूप हैं। इसके तत्त्व, रहस्य और प्रभावको जो मनुष्य जानता है उसका निश्चय ही उद्घार हो जाता है।

इसी प्रकार, संसारके कल्याणके लिये भगवान् अपना अधिकार देकर जिस भक्तको भेजते हैं अथवा यहीं जो महापुरुष हैं, उनमेंसे किसीको अपना अधिकार दे देते हैं, उन पुरुषोंके भी श्रद्धापूर्वक दर्शन, चरण-स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन करनेसे मनुष्य परम पित्रत्र हो जाता है जिससे उसका उद्धार हो सकता है; क्योंकि ईश्वर और ईश्वरका अधिकार पाये हुए पुरुषोंद्वारा जो कुछ देखा जाता है, स्पर्श किया जाता है, मनन किया जाता है, वह सब परम पित्रत्र हो जाता है। उन महापुरुषोंका प्रभाव बड़ा ही विलक्षण, दिव्य अलौकिक और अपरिमित है। किंतु ऐसे महात्मा करोड़ों मनुष्योंमें ही कोई एक होते हैं। भगवान्ने गीतामें बतलाया है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतित सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ (७।३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थ-रूपसे जानता है।'

अतः प्रथम तो परमात्माकी प्राप्तिवाले पुरुष ही संसारमें बहुत कम हैं। उनमें भी अधिकार पाये हुए पुरुष तो और भी दुर्लभ हैं। उन महात्मा पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होना बड़ा ही कठिन है; यदि सङ्ग प्राप्त हो जाय तो उनको पहचानना बहुत मुश्किल है; क्योंकि उनको तो कोई आवश्यकता नहीं रहती जो कि वे अपनेको जनावें और साधारण मनुष्योंमें उनको पहचाननेकी योग्यता नहीं होती। यदि कहें कि गीतामें द्वितीय अ०

के ५५वें से ५८वें तक, ६ठे अ० के ७वेंसे ९ वें तक, १२वें अ० के १३वेंसे १९वें तक और १४वें अ० के २२वेंसे २५वें श्लोकतक—आदि-आदि श्लोकोंमें जो लक्षण बतलाये गये हैं उन लक्षणोंके अनुसार हम उनको पहचान सकते हैं तो यह कठिन है; क्योंकि ये सब लक्षण खसंवेद्य हैं, पर-संवेद्य नहीं । यदि कहें कि तब फिर उनको कैसे पहचानें तो इसका उत्तर यह है कि जिसके दर्शन, भाषणसे अपनेमें महापुरुषोंके उपर्युक्त लक्षणोंका प्रादुर्भाव हो, वही हमारे लिये महातमा है ।

यदि महात्मा पुरुषोंकी श्रद्धापूर्वक सेवा, वार्तालाप और नमस्कार किया जाय तो एक महात्मासे कई महात्मा बन सकते हैं, जैसे यदि दीपकोंमें तेल और बत्ती हो तो एक दीपकसे कई दीपक जलाये जा सकते हैं। यहाँ श्रद्धा-विश्वास ही तेल-बत्ती है। महापुरुषोंकी आज्ञाके अनुसार चलना श्रद्धा है और उनके संकेतके अनुकूल चलना विशेष श्रद्धा है। उससे भी अधिक श्रद्धा वह है कि उनके सिद्धान्तको समझकर उनके मनके अनुकूल चलना अर्थात् उनकी इच्छाके अनुकूल कठ-पुतलीकी माँति चेष्टा करना। कोई बात उनसे पूछनेकी इच्छा हो तो उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके जिज्ञासु भावसे सरलता, श्रद्धा, विनय और प्रेमपूर्वक पूछ सकते हैं। भगवान अर्जुनसे कहते हैं—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रक्ष्तेन सेवया । उपदेक्ष्यिन्त ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ (गीता ४ । ३४)

'उस परमात्माके यथार्थ ज्ञानको तू तत्त्वद्शीं ज्ञानियों-के पास जाकर समझ, उनको भळीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरळता-पूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भळीभाँति जानने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।'

भगवान्ने यह जिज्ञासुके लिये कर्तन्य वताया है किंतु महात्मासे इन सबको स्वीकार करनेके लिये नहीं कहा है । जिज्ञासुके द्वारा इस प्रकार करनेपर भी महात्मा स्वीकार नहीं करता; क्योंकि उसके शरीरमें कोई धर्मी है ही नहीं, तब कौन स्वीकार करे । किंतु इस प्रकार सेवादि करनेवाला कोई जिज्ञासु श्रद्धालु पात्र हो तो वह उसका विशेष विरोध भी नहीं करता । उपराम रहना तो उनका स्वभाव ही है; क्योंकि विवेक, वैराग्य, उपरित आदि गुण तो उनमें साधन कालमें ही स्वभावसिद्ध हो गये थे ।

जो उच्चकोटिके महापुरुष होते हैं वे व्यक्ति वनकर अपनेको नहीं पुजवाते; क्योंकि उनका देहमें किश्चिन्मात्र भी ममता और अभिमान नहीं रहता । जो कोई अपनेको महात्मा समझता है, अपने पूजन, आदर, सत्कार, मान,वड़ाई, प्रतिष्ठासे दूसरोंका उद्घार समझता है, वह महात्मा नहीं है; क्योंकि अपनेको श्रेष्ठ और दूसरोंको तुच्छ समझना, अपनेको महात्मा और दूसरोंको अज्ञानी समझना तो बहुत नीचे दर्जेकी बात है । महात्माके न तो देहमें अहंता-ममता ही रहती है और न देहमें कोई धर्मी ही रहता है फिर मान-वड़ाई-प्रतिष्ठा-आदर आदिकी इच्छा रखते हैं वे तो उच्च श्रेणीके साधक भी नहीं हैं, वरं वे तो मान-वड़ाई-प्रतिष्ठादिके दास हैं !

ऊपर यह बताया गया है कि ईश्वर अश्रद्धालु मनुष्यों-के सम्मुख अपने ऊपर योगमायाका पर्दा डाले रहते हैं, इसी प्रकार इस रहस्यकों जाननेवाले, भगवान्के सच्चे

अनुयायी महात्मा पुरुष भी अपने ऊपर मायाका पद डाले हुए साधारण मनुष्यकी भाँति रहते हैं। किंतु जो वास्तवमें जिज्ञासु श्रद्धालु और पात्र है, उसके सामने वे कहीं हाव-भावसे भगवत्प्राप्तिरूप अपनी स्थितिका निर्मिमान भावसे परिचय दे भी दें तो कोई दोष नहीं है । वे वस्तुत: महात्मा होकर भी छोक-संग्रहके उद्देश्यसे जिज्ञासु और साधककी भाँति साधारणतया विचरण करें तो इससे उनकी परमात्म-प्राप्तिरूप स्थिति नष्ट नहीं होती। किंतु साधारण मनुष्य महात्मा वनकर पूजा करावे तो उसके लिये भार है: क्योंकि महात्मा पुरुव, सकामभावसे शास्त्रविहित कर्म करनेवाले अज्ञानी पुरुषके कर्मीका निष्काम और अनासक्त भावसे लोकसंग्रहके लिये अनुकरण करते हैं (देखिये गीता ३।२५)। यदि कहें कि सकामी अज्ञानी पुरुषके शास्त्रविहित कर्मोंका अनुकरण ज्ञानी पुरुष क्यों करते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि सकामी मनुष्य, यह सोचकर कि कहीं कर्मीमें कमी रह जायगी तो हम फलसे विद्यत रह जायँगे, फलकी इच्छाके लोभसे शास्त्रकी आज्ञाका पालन अच्छी प्रकार करते हैं; इसलिये उन कर्मोमें विगुणता या कमी आनेकी गुंजाइरा नहीं रहती । इसीलिये महापुरुष निष्काम, अनासक और अभिमानरहित इए ही लोकसंग्रह यानी संसारके कल्याणके लिये उन सकामी अज्ञानी मनुष्योंके शास्त्रोक्त कर्मीका अनुकरण करते हैं।

ईश्वर और महापुरुपोंके खरूप और प्रभावका यथार्थ ज्ञान उनकी कृपासे ही होता है। अतः उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये श्रद्धाभक्तिपूर्वक निष्काम भावसे गीता ९। ३४; ४। ३४ के अनुसार सब प्रकारसे उनके शरण हो जाना चाहिये।

प्रमुख भारतीय दर्शन

(लेखक--पं० श्रीधर्मराजजी अधिकारी शास्त्री)

भारतीय दर्शनका विकास विक्रम संवत्के लगभग पंद्रह शताब्दितक बड़े जोरोंके साथ हुआ था, जिसको भाष्यकाल कहते हैं।

भारतीय दर्शनके मुख्यतः दो मेद हैं—(१) नास्तिक, (२) आस्तिक । वेदके सिद्धान्तको न माननेवालेको नास्तिक, वेदके सिद्धान्त माननेवालेको आस्तिक कहा जाता है । नास्तिक दर्शनके मुख्य तीन मेद बताये जाते हैं—

(१) चार्वाक, (२) जैन, (३) बौद्ध।

(?)

चार्वाकदर्शन

इस दर्शनके रचयिता आचार्य 'बृहरूपति' हैं। इसका सिद्धान्त भौतिक जीवनको सुखमय बनाना है।

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

ये इस सिद्धान्तके परिचायक शब्द हैं। इस दर्शनमें प्रत्यक्ष प्रमाणमात्र माना जाता है। चार्वाकके मतानुसार पृथिवी, जल, तेज, वायुके सम्मिश्रणसे शरीर बनता है तथा मरण ही मोक्ष है। खभावसे ही जगत् उत्पन्न तथा नष्ट होता है, कोई ईश्वर नहीं है, लोकानुसार चलनेसे इसको 'लोकायतिक' भी कहा जाता है।

(3)

जैनदर्शन

जैन विद्वानोंके मतानुसार आद्यधर्मप्रचारक आचार्य 'ऋषभदेव' हैं। ये छोग चौन्नीस तीर्थंकर मानते हैं। जैनदर्शनमें मोक्षके तीन साधन माने गये हैं—(१) सम्यग्दर्शन, (२) सम्यग्ज्ञान (जीव, अजीव, अस्रव, बन्ध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष—इन सात पदार्थोंका ज्ञान), (३) सम्यक्चिरत्र । चिरत्रसिद्धिके छिये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपिरप्रह—इन पाँचों ब्रतोंका पालन करना नितान्त आवश्यक समझते हैं । पुनः पाँच अस्तिकाय जैनदर्शनमें माने गये हैं । जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय । स्याद्वाद् सप्तमंगीन्याय जैनदर्शनमें प्रसिद्ध है । ये आत्माको मानते हैं । स

त

मह

है

वि

(३) वौद्धदर्शन

भगत्रान् बुद्धद्वारा प्रतिष्ठित धर्म 'बौद्धधर्म' है । इस दर्शनके अनुयायियोंका मूळ ग्रन्थ 'त्रिपिटक' है । इस प्रन्थके प्रधान चार सम्प्रदाय हैं——(१) वैभाषिक, (२) सौत्रान्तिक, (३) योगाचार और (४) माध्यमिक । इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है——

मुख्यो माध्यमिको विवर्तमिखलं शून्यस्य मेने जगद् योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिलः। अर्थोऽस्ति क्षणिकस्त्वसावनुमितो वृद्धचेति सौत्रान्तिकः प्रत्यक्षं क्षणभङ्गरं च सकलं वैभाविको भाषते॥

वैभापिकके मतानुसार—प्रत्यक्षद्वारा अंदर अथवा वाहर जगत्के सम्बन्ध रखनेवाले समस्त पदार्थोंको सत्य माना जाता है। इसका दूसरा नाम 'सर्वास्तिवाद' भी है। सौत्रान्तिकके मतानुसार— बाहरी पदार्थ अनुमानद्वारा सत्य माना गया है। योगाचारके मतानुसार विज्ञान तथा चित्तको ही सत्य माना गया है। इसको 'विज्ञानवाद' भी कहते हैं। माध्यमिकके मतानुसार जगत्में सभी पदार्थ श्रन्यरूप हैं।

आस्तिकदर्शन

आस्तिकदर्शनके मुख्य छ: भेद हैं--(१) न्याय,

),

ता,

का

न:

य,

गेर

में

स

स

Fi,

द्

कः

11

वा

रा

न

7

भी

ч,

मीमांसा और (६) वेदान्त।

न्यायद्र्भन

न्यायमुत्रके रचयिता 'गौतम महर्षि' हैं । यह दर्शन दो धाराओंमें विभक्त है--पदार्थ-मीमांसात्मक, प्रमाण-मीमांसात्मक । पदार्थमीमांसामें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि पदार्थीका विवेचन है जो कि 'प्राचीन न्याय' के नामसे प्रसिद्ध है । प्रमाण-मीमांसामें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द—इन प्रमाणोंका सूक्ष विवेचन है, जिसको कि 'नव्य न्याय' कहा जाता है। न्यायदर्शनका मत है-प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि षोडश पदार्थींके यथार्थ ज्ञानद्वारा मानव-जीवनका लक्ष्य प्राप्त होता है। 'ऋते ज्ञानान मुक्तिः' ज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती । इस दर्शनके मतानुसार परमाणु, आत्मा, ईश्वर इत्यादि नित्य पदार्थद्वारा जगत्की सत्ता है । इन्द्रियद्वारा लक्षित जगत् वस्तुतः सत्य है । परमाण, समवायीकारण, ईश्वर निमित्तकारण तथा अनुमानगम्य है। ईश्वरके इच्छानुसार एक परमाणु दूसरे परमाणुसे मिलकर द्वयणुक तथा द्वयणुकके सम्मिश्रणसे 'त्रसरेणु' एवंरूपेण पञ्च-महाभूतकी समुत्पत्ति होती है। मिथ्याज्ञानसे ही पुनर्जनमादि दु:ख होता है। अतः आत्माका साक्षात्कार अत्यन्त आवश्यक है।

(?) वैशेषिकदर्शन

इस दर्शनके मुलसूत्रके प्रणेता 'कणाद' हैं। वैशेषिकोंका मुख्य तात्पर्य बाह्य जगत्की विस्तृत समीक्षा है । वैशेषिकदर्शनमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव—ये सात पदार्थ माने गये हैं । इस दर्शनके मतानुसार जबतक आत्मासे भिन्न

(२) वैशेषिक, (३) सांख्य, (४) योग, (५) पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तवतक आत्माको यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता । आत्मा तथा आत्मासे भिन्न पदार्थका साधर्म-वैधर्म जाननेपर ही तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन--ये नौ द्रव्य हैं । वैशेषिक दर्शनमें तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति करानेसे तथा मोक्षका कारण होनेसे निष्काम कर्मका सम्पादन भी अतीव आवश्यक माना गया है।

(3) सांख्यदर्शन

सांख्यदर्शनके प्रतिपादक 'कपिल मुनि' हैं । यह दर्शन द्वैतमतका प्रतिपादक है । प्रकृति-पुरुप दो मूल तत्त्व हैं। प्रकृति जब चेतन पुरुषसे मिलती है, तब जगत्की उत्पत्ति होती है। प्रकृति जड और एक है। पुरुष चेतन और अनेक हैं । सांख्य सत्कार्यवादका समर्थक है । सत्त्व, रज, तम-इन तीनों गुणोंकी समान अवस्थाको ही प्रकृति कहा गया है ! किन्हीं तीन गुणोंमें वैषम्य होनेपर ही सृष्टिका उदय होता है । कुळ पचीस तत्त्व पृथक्-पृथक् सांख्यदर्शनमें प्रसिद्ध हैं । पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्च-कर्मेन्द्रिय, पञ्च-तन्मात्राएँ और पञ्च-महाभूत इत्यादि । सांख्यका दार्शनिक दृष्टिकोण यथार्थवादकी ओर है।

योगदर्शन

योगद्र्शनके प्रधानाचार्य 'पतञ्जिल मुनि' हैं । योग-दर्शनमें नाना प्रकारकी सिद्धियोंका विस्तारसे वर्णन है। योगके आठ अङ्ग हैं--यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि । इन आठ अङ्गी-के अभ्याससे चित्तवृत्ति निरुद्ध हो जाती है । वह पहले एकाम होती है । जहाँ चित्त ध्येय वस्तुके आकार-को प्रहण करता है, वहीं समाधिका समुदय होता है।

· सू

इर

ज

अ ₹ह यह

मु क

क

नह

सांख्यदर्शनमें माने गये २५ तत्त्व योगशास्त्रमें भी माने गये हैं । योगदर्शनमें एक अधिक 'ईस्वर' माना गया है । अतएव इसको 'सेश्वर सांख्य' भी कहते हैं। योगमें क्लेश, कर्म, विपाक (कर्मफल), आराय (कर्मफल-अनुरूप संस्कार) इनके सम्पर्कसे रहित पुरुषविशेषको ईश्वर माना है। ईश्वर सदैव मुक्त है। ऐश्वर्य और ज्ञानकी पराकाष्टा ही ईश्वर है।

मीमांसादर्शन

मीमांसादर्शनके प्रमुख आचार्य 'जैमिनि' हैं । इस दर्शनका प्रधान उद्देश्य वैदिक कर्मकाण्डके विधानमें दीख पड्नेवाले विरोधका परिहार करके एकवाक्यता उत्पन्न करना है । मीमांसाका विषय 'धर्मविवेचन' है। 'धर्माख्यं विषयं वस्तु मीमांसायाः प्रयोजनम्'। वेद-द्वारा कथित इष्ट-साधन 'धर्म' है और अनिष्टसाधन अधर्म है । वेद स्वयं नित्यसिद्ध तथा अपौरुषेय है । कर्म ही सर्वप्रधान वस्तु हैं । कर्मके द्वारा अपूर्व और अपूर्वके द्वारा फल प्राप्त होता है, परंतु अपूर्वके द्वारा समुत्पन्न फल (खर्गादि) कालान्तरमें ही प्राप्त हो सकता है। यह उनका कहना है।

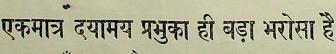
(年)

वेदान्त

इस वेदान्तसिद्धान्तके अनुसार 'ब्रह्म बादरायणप्रणीत

सत्यं जगन्मिथ्या' 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' अर्थात् ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या है; जीव ही ब्रह्म हैं और ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है। 'शंकराचार्य'ने अद्वैतमतकी पूर्ण पुष्टि की है । यह जगत् मायाद्वारा रचित है, अतएव यह सब अनिर्वचनीय है । अथवा यह ऐसा है—इस तरहका निश्चय नहीं हो सकता । मिथ्या कहनेसे वन्थ्या स्त्रीका पुत्र-जैसा नहीं, अपितु परमार्थ-तत्त्वज्ञान होनेपर जगत्को जगत् न देखकर साधकको सर्वत्र ब्रह्मख्रूपकी ही उपलब्ध होती है।

ब्रह्मके दो गुण अर्थात् दो खरूप हैं—एक सगुण, दूसरा निर्गुण । मायाविशिष्ट ब्रह्म सगुण माना जाता है और इसीको ईश्वर भी कहा है। संगुण ब्रह्म जगत्का कर्ता-धर्ता है। निर्गुण मायारहित, सत्यरूप, अखण्ड, व्यापक, सिचदानन्दस्वरूप है, यह अद्देतदर्शनमें माना गया है । वेदान्तमें तीन सत्ता मानी गयी है-पारमार्थिक, प्राति-भासिक, व्यावहारिक। इस दर्शनके अनुयायी लोग ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद्को 'प्रस्थानत्रयी' कहते हैं। इसमें ज्ञानकी प्राप्ति ही मोक्ष है। ब्रह्मका स्वरूप साक्षात्कार अनुभवद्वारा होता है। जिसको जाननेकी इच्छा है, उसके लिये खयं अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है । अतः ब्रह्म-जिज्ञासुओंको तदनुसार अनुष्ठान-साधनादि करना नितान्त आवश्यक है । वेदान्तद्र्शनमें यह स्पष्ट प्रतिपादन वेदान्तसूत्रके निर्माता 'वादरायण' हैं । आचार्य किया गया है । वेदान्तमें शृति (वेद) ही प्रमाण है। तर्क भी वही मान्य है जो वेदानुकूल हो।



पाप है, पर पाप-रत रहता सदा। पापसे मैं पृथक अपनेको, न कर पाता कदा॥ दीन मैं असमर्थ, अब तो शरण प्रभुकी आ पड़ा। प्रभुका ही भरोसा है बड़ा॥ अब द्यामय





CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मधुर

एक दिन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी ही अनन्यभिनमूर्ति प्रेममयी श्रीराधाजीने अपनी एक अन्तरक सखीको
श्यामसुन्दरके प्रति अपने समर्पण, सम्बन्ध, परस्तरके
लीलाभाव तथा नित्य एकत्वका वर्णन करते हुए संकेतरूपमें बड़ा रहस्य वतलाया। श्रीराधामाधवकी सारी
लीलामें यही रहस्य भरा है और वह अनन्त है।
साधनकी अति उच्च स्थितिमें, भगक्समर्पण सम्पन्न हो
जानेपर, भगवान्के द्वारा स्वीकार कर लिये जानेपर कैसा
स्वरूप बन जाता है, जगत्से कैसा क्या सम्पर्क रह
जाता है, इत्यादिका पूर्ण संकेत इसमें है। श्रीराधाजी
बोलीं—

३६

नह

रेक

पूर्ग

एव

-इस

नेसे

त्रान

वंत्र

का

ड,

ाया

त्र,

भी

रा

14

स-

न्त

न

ण

मिले रहते मुझसे दिन रात।

कराते करते मनकी बात॥
न करने देते कुछ भी और।

लगे रहते पीछे सब ठौर॥
स्वप्तमें भी न छोड़ते साथ।

वहाँ भी पकड़े रहते हाथ॥
तुड़ाकर जगके सब सम्बन्ध।

बाँधकर निज ममताके बन्ध॥
दान कर अपना रसमय प्यार।

नवाते निज इच्छा अनुसार॥

वें (भगवान् प्रियतम श्यामसुन्दर) मुझसे दिन-रात (चौबीसों घंटे लगातार) मिले ही रहते हैं । वे खयं अपने मनकी करते और मुझसे भी अपने मनकी ही कराते रहते हैं। (मैं उनके बिना—कभी पृथक् रह ही नहीं गयी, यहाँतक कि पृथक् सोचनेवाला मन ही नहीं रह गया।) वे सुझको और कुळ भी नहीं करने देते। (सदा अपना ही काम करवाते रहते हैं। मैं जो कुळ करती हूँ, सब उन्होंका कार्य करती हूँ;) वे सदा-सर्वदा सब जगह मेरे पीछे ही लगे रहते हैं। (कहीं भी) किसी समय भी मेरा साथ नहीं छोड़ते—खप्तमें भी नहीं छोड़ते। वहाँ भी मेरा

हाथ पकड़े रहते हैं (स्तार भा क्यू न्यू है स्वार देते अन्य किसी विषयका स्वार भी नहीं आता) । जगत्के सारे सम्बन्धोंको तुड़वाकर उन्होंने एकमात्र अपनी ही ममताके पाशमें मुझे बाँध किया है। (अर्थात् भगवान् श्यामसुन्दरके सिवा कोई भी प्राणी-पदार्थ 'मेरा' नहीं रह गया है—मेरी सारी ममता उन्होंमें आकर केन्द्रित हो गयी है।) वे मुझे निरन्तर अपना दिव्य रसपूर्ण प्रेम देकर अपने इच्छानुसार नचाते रहते हैं। (मैं सदा उनके प्रेमसमुद्रमें ही हुबी रहती हूँ। उनके इच्छानुसार नाचनेके अतिरिक्त मेरी संसारमें कुछ भी पाने-करनेकी इच्छा ही नहीं रह गयी है।)

प्राप्तकर मैं अपूर्व आनन्द। अतीन्द्रिय निर्मकतम स्बच्छन्द॥ न कुछ भी भाता मुझको अन्य। अनुग मैं रहती नित्य अनन्य॥

इससे मुझे जो इन्द्रियातीत निर्मळतम खच्छन्द आनन्द (इन्द्रियोंके विषय-सम्बन्धसे मिळनेवाले बड़े-से-बड़े आनन्द से सर्वथा परे दिव्य भग्वदानन्द, जिसमें किसी भी कामना, वासना, निज-सुखेच्छाका मळ बिल्कुळ ही नहीं है, ऐसा पवित्रतम एवं किसी हेतुसे मिळनेवाळा नहीं, खच्छन्दतासे मिळनेवाळा आनन्द) प्राप्त कर लेनेपर अब मुझे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, दूसरा कुछ भाता ही नहीं (दूसरा कुछ रह ही नहीं गया)। इसीळिये मैं भी सदा-सर्वदा अनन्य भावसे सहज ही उनके अनुगत रहती हूँ। (वे जिस प्रकार अपने इच्छानुसार नचाते हैं, ठीक वैसे ही कठपुतळीकी भाँति नाचती हूँ। कहीं किसी अहंकार-अभिमानकी कल्पना ही नहीं रह गयी है।)

स्तयं भी रहते नहीं स्ततन्त्र । बने नित मेरे ही परतन्त्र ॥ दु:स-मुख रहे न पृथक् नितान्त । हो गया मेद-भाव सब ब्रान्त ॥

स

41

स

ज

न्ह

स् स्

ओ

सा

नव

बो औ

औ

वारे

इस

नरेः

उदा

रहत

लोव

मृदू

नी

इसीसे मेरे सुबके हेतु ।

हदाते दिग्य प्रेमका केतु ॥

स्वयं वन मेरे मनकी मूर्ति ।

प्रकट कर भन्नुर नित्य नव स्फूर्ति ॥

विकक्षण देते जित रस-दान ।

स्वयं भी करते ग्रुचि रस-पान ॥

(इस प्रेमकी मधुरतम, दिव्यतम छीलामें सर्वथा सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र रहते हुए ही) भगवान् खयं भी खतन्त्र नहीं रहते। वे सदा-सर्वदा मेरे ही (प्रेम-परवशताके दिव्य भावसे) परतन्त्र बने रहते हैं। हम दोनोंके दुःख-सुख अब बिल्कुल ही अलग नहीं रह गये हैं; ('मैं'—'त्'का, अपने-परायेका) सारा मेद-भाव शान्त हो गया है। इसीसे वे मेरे सुखके लिये—(उसीको अपना परम सुख अनुभव करते हुए) निरन्तर दिव्य (ख-सुख-बाम्लारहित तथा प्रेमास्पद-सुख-खरूप) प्रेमकी विजय-ष्वजा उड़ाते रहते हैं। वे खयं मेरे ही मनकी मूर्ति बन रहे हैं और (मुझे सुखी करनेके लिये) नित्य नयी-नयी स्वर्तियाँ प्रकट करके मुझे विलक्षण—अलौकिक रस- दान देते रहते हैं और खयं भी पवित्र रसका पान करते रहते हैं।

अनोस्री उनकी लीला सर्व ।

दूर कर सारे मिथ्या गर्व ॥

खींचती नित अपनी ही ओर ।

सदा रखती आनन्द विभौर ॥

एक ही बने नित्य दो रूप ।

कर रहे लीला मधुर अनृप ॥

(सखी!) स्यामसुन्दरकी सभी ठीठाएँ बड़ी विलक्षण हैं, उनकी ठीठा-माधुरी सारे (देवता, ऋषि, ज्ञानी, योगी, तपस्वी आदिके समस्त खरूपगत) मिथ्या गर्वको (अभिमानको) दूर करके नित्य निरन्तर अपनी ही ओर खींचती रहती है और सदा ही दिव्य आनन्द-निमम्न बनाये रखती है। (वास्तवमें) हम दोनों नित्य एक ही हैं। पर नित्य ही दो रूप बने हुए मधुर अनुपम ठीठा कर रहे हैं।

साधक, सिद्ध, भक्त, प्रेमी, ज्ञानी सभीके लिये अपने-अपने भावानुसार सीखनेकी चीज है।

+

प्रयास-हीन

कल और परसोंके दिन गुम्हारे पर्वोंके दिन थे।

पर्वोक्त डपहार छेनेके किये मैंने कल और परसों अपनी भावनाओंको अपनी ओरसे आर्द्र करनेका प्रयत्न नहीं किया। अपना बक कमाकर, अपने भावोंकी स्वर-साधना करके मैंने कल-परसों तुम्हारा उपहार छेनेका प्रयत्न नहीं किया। कल-परसों तो मैंने सहन भावसे ही उपहारोंकी प्रतीक्षा की और अपनी रीती अञ्जलियाँ कल-परसों मुझे रीती ही वापस समेटनी पदीं।

करू-परसों तुम्हारे पर्वोंके दिन मुझे अपनी थककर नीरस हो उठनेवाली भावुकताकी वास्तविकताका पता चल गया है और मैंने तुम्हारे ही दिये हुए उपहारोंके प्रहणका निश्चय कर लिया है।

पुग्हारे ऐसे पर्वोंकी अपने 'एक-स्यक्ति-रूप'के लिये विशेषता न माननेकी ओर मैं कल-परसोंसे कुछ और भी प्रवृत्त हो गया हूँ और मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारे उपहारोंके लिये अपने द्वार खोले हुए अपनी इस ओरकी साधनाओंका भी ध्यान रक्ष्यूँ।

(एक तरुण साधककी डायरीसे ९-७-४०)

पुण्यश्लोक मालवीयजी महाराज

(लेखक---डा० माधनजी एम्० ए०, पी-एच० डी०)

सारे देशमें २५ दिसम्बरसे प्रातःस्मरण्य, पूच्यचरण महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी महाराजकी जनमशती-महोत्सव मनाया जा रहा है। पूच्य मालबीयजी महाराजका चरित इतना महान् और इतना पवित्र था कि उनके स्मरणमात्रसे जीवनमें महत्ता और पवित्रताका संचार हो जाता है। धर्म अपने प्रकृत रूपमें कितना उदार, कितना सिंहिष्णुः कितना निर्मल, कितना व्यापकः कितना ऊँचा और कितना आकर्षक हो सकता है, इसका जीवन्त एवं <mark>षाच्वत्यमान उदाहरण पूच्य मालवीयजी महाराजका जीवन</mark> ही है। जैसा शुभ्र उनका वेश वैसा ही शुभ्र उनका चरित्र। इनके सफेद कपड़ोंपर कभी किसीने नन्हा-सा दाग भी नहीं देखा। उनका चरित्र भी वैसा ही निष्कछुप एवं मनोज्ञ था। और कहा जा सकता है कि पूच्य मालवीयजी महाराजने साँईसे जैसी चादर पायी थी, बड़े जतनसे उसे ओढ़ी और उसे ज्यों-की-त्यों मालिकके चरणोंमें घर दी। मालवीयजी धर्मकी साक्षात् मूर्ति ही थे।

पान

भुण

नी,

नो

ओर

मग्न

ही

ोल

ाने-

T. 1

ही

ाया

वृत्त

ोंका

0)

सेवाके क्षेत्र भी उनके कितने विविध थे और सभी क्षेत्रोंमें उनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। १८६१ के २५ दिसम्बरको उनका जन्म हुआ और १९४६ के १२ नवम्बरको निधन । उन्होंने निरन्तर साठ वर्षोंतक विविध क्षेत्रोंमें देशकी सेवा की-वह ऐसी पावन निष्ठाकी सेवा, जो देशके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जाने योग्य है और जो शताब्दियोंतक आगे जानेवाली पीढ़ियोंको प्रेरित और उत्साहित करती रहेगी।

इम वह दिन भूलते नहीं, जब कालाकांकरसे निकलने-वाले 'हिन्दुस्तानसमाचार' का सम्पादन मालवीयजीने केवल इसलिये छोड़ दिया कि उनकी शतौंके प्रतिकूल कालाकांकर-नरेशने उन्हें उस समय बुलायाः जव वे नरोमें थे। मालवीयजी उदार थे। करणा और दयासे उनका हृदय लवालव भरा रहता था, परंतु अपने सिद्धान्तपर वे अतिशय दृढ़ थे। ऐसी लोकोत्तर विभूतियोंके बारेमें ही 'वज्रादिप कडोराणि सदूनि कुसुमाद्पि कहा गया है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके आरम्भसे ही पूच्य मालगीय-

वनिष्ठ सम्बन्ध रहा । उन्होंने चार वार १९०९, १९१८, १९३२ और १९३३में कांग्रेसके सभापतित्वका भार सँभाला । भय-जैसी वस्तु तो वे जानते ही नहीं थे। राष्ट्रकी मुक्तिके लिये अनेक वार उन्होंने कारावासके कष्ट सहे और देशवासियीं-को देशकी बल्विदीपर सर्वस्व होम करनेके लिये प्रेरिव किया। गांधीजीके २१ दिनके उपवासकालमें मालवीयजी महाराजने उनको जो श्रीमद्भागवतकी अमृत कथा सुनायी; उसका प्रभाव गांधीजीके जीवनपर अन्ततक बना रहा।

वह हस्य भूलता नहीं, जव हिन्दूविश्वविद्यालयके शिलान्यासके अवसरपर पधारे हुए राजा-महाराजाओंके बीच गांधीजीका क्रान्तिकारी भाषण हुआ । सभी महाराजाः सरकारी पदाधिकारी, यहाँतक कि डा॰ एनि विसेंट तक सभा छोड़कर चल पड़ीं, परंतु मालवीयजी महाराजकी गांधीजीमें इतनी अटूट आस्या थी कि वे क्षणभरके लिये भी विचिटित नहीं हुए। काशीविश्वविद्यालयकी रजत-जयन्तीके अवसरपर ग्रुभ्न वस्त्रोंमें पुनः मालवीयजी और गांधीजीके एक साथ मंचपर दर्शन हुए। वह दृश्य आँखोंसे विछुड़ता नहीं । कैसी विलक्षण थी वह जोड़ी !

स्वामी श्रद्धानन्दजीकी हत्याके कुछ ही दिन पश्चात् लार्ड इरविन हिन्द्विश्वविद्यालयके गायकवाड पुस्तकालयका शिलान्यास करने पधारे थे और उसके दूसरे दिन गांधीजी पधारे । उसी मण्डपमें, उसी मंचपरसे गांधीजीका भाषण हुआ । जनताका हृद्य स्वामी श्रद्धानन्दकी हत्यासे वहुत दुखी था। गांधीजी हरिजन-उद्घारके लिये कोष-संग्रहके निमित्त आये थे। सभामें मालवीयजीने गलेमें लिपटी अपनी चादर फैलाते हुए कहा, विश्वविद्यालयके अध्यापको, छात्रो, छात्राओ ! जो वु छ भी तुम्हारे पास हो भीखकी इस झोलीमें डाल दो । फिर क्या था, बहिनोंने सोनेकी चूड़ियाँ, अंगूठियाँ, गलेका हार, कानकी बालियाँ, छात्रों और अध्यापकोंने जो वु छ जिस के पास था। सब-का सव चुपचाप सौंप दिया और कुछ ही समयमें हरिजन-उद्धार फण्डमें विश्वविद्यालयसे गांधीजीको कई हजार रुपये और आमूषणादि मिलगये।

मालवीयजीका जीवन भारतकी प्राचीन संस्कृति, आदशौ बी महाराजका राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके साथ अतिशय अतिशय Karshito अधिकात महनाओंसे ओतप्रोत या 🛊

वे जीवनभर इन परम्पराओं और आदशोंसे राष्ट्रको अनुप्राणित करते रहे । शिक्षाके क्षेत्रमें उनकी दृष्टि सर्वथा इन्हीं आद्शीं-से आलोकित थी। काशी-हिन्दूविश्वविद्यालमकी स्थापनाके समय जब उन्होंने अपने संकल्पकी चर्चा की तो देशके अधिकांश व्यक्तियोंने उन्हें एक 'पागल ब्राह्मण' समझा। परंतु जब मालवीयजीका आदर्श विश्वविद्यालयके रूपमें मूर्तिमान् होकर सामने आया तो सवने उसके सामने श्रद्धा और भक्तिसे सिर झुका लिया। हिन्द्विश्वविद्यालय ही भारत-वर्षमें एक ऐसा विश्वविद्यालय है जो 'विश्वविद्यालय' नामको अक्षरशः सार्थक करता है और तक्षशिला, नालन्दा और विक्रमशिला-जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयोंकी याद दिलाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृतिकी आध्यात्मिक-परम्परा और आधुनिक युगकी अद्यतन वैज्ञानिक उपलब्धियोंका जैसा मङ्गलमय सामंजस्य हिन्द्विश्वविद्यालयमें देखनेको मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ क्या असम्भव ही है। हिन्दू-मालवीयजीकी अमर-अजर कीर्ति है। विश्वविद्यालय मालवीयजी महाराजके व्यक्तित्वका चमत्कार ही था कि देशके एक-से-एक मूर्धन्य विद्वान् हिन्दू-विश्वविद्यालयमें नाममात्रका वेतन लेकर सेवा करनेमें अपना परम सौभाग्य एवं गौरव मानते थे। प्रायः सभी विभागोंमें देश-विदेशके चूडान्त मनीषियोंको देखकर किसका हृदय गर्वसे भर नहीं उठता था । मालवीयजीने अपने जीवनकालमें ही राधाकृष्णनको हिन्दूविश्वविद्यालयका उपकुलपति बनाया था । सेंट्रल हिन्दूकालेजके प्रिंसियल-पद्चर आचार्यः श्रीआनन्दरांकर वापूमाई ध्रुव गांधीजीके भेजे हुए थे। ध्रवजी ज्ञानके विश्वकोष ही थे। ऐसे प्रिंसिपल अव कहाँ मिलते हैं ? कहाँ मिलेंगे ?

और कितनी मस्ण, मधुर वाणी पायी थी मालवीयजीने, घाराप्रवाह वे चार-चार घंटे वोलते—क्या अंग्रेजी और क्या हिन्दी—बोलते क्या मधुकी धारा वहाते और हजारों-हजारोंकी संख्यामें श्रोता मन्त्रमुख हो, उनकी अमृतवाणीका रसास्वादन करते। उस समय सभामण्डपमें इतनी द्यान्ति विराजती होती कि यदि सूई भी गिरे तो उसकी आवाज सुनी जाय। वोलनेके पहले उनके मङ्गलाचरणके प्रिय क्षोक थे—

> कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च। नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥

कृष्णाय वासुद्वाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

छात्रोंमें बोलते समय प्रायः उपनिषद्के दो मन्त्रोंपर विशेष वल देते—'स्वाध्यायानमा प्रमदः'—'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः'—स्वाध्यायमें प्रमाद न करना और प्रजातन्त्रका व्यवच्छेदन न करना । विश्वविद्यालयके प्रत्येक छात्रको वे सेवाका मनत्र देते हुए कहते—'वेटा ! कभी ऐसा कोई काम न करना, जिससे माँके आँचलमें कालिख लगे। यह काफी गम्भीर अर्थका वोधक और प्रेरक वाक्य था। जब कभी भी विश्वविद्यालयके पुरातन छात्र मिलते तो वे उनसे तीन प्रश्न करते—(१) संध्या करते हो कि नहीं १ (२) दूध कितना पीते हो ? और (३) कितनी संतान है ? इन तीनों प्रश्नोंके भीतर आध्यात्मक, आधिदैविक और आधिमौतिक कुशल क्षेम निहित था । मालवीयजी महाराजके आग्रहपर ही विश्व-विद्यालयके 'धर्मशिक्षा-विभाग'में लोकमान्य तिलकके सहपाठी प्रोफेसर पाटणकर आये थे। लगभग अस्सी वर्षकी अवस्था, चिरप्रसन्न मुद्रा, सिरपर मराठी रेशमी पगड़ी, पैरोंने मराठी चप्पल और हाथमें छड़ी । जब कभी क्लासमें आते समाधि लग जाती, घंटों पढ़ाते रहते आत्म-विभोर होकर। स्वयं मालवीयजी महाराज भी जन्माष्टमी, रामनवमी, देवोत्थानी एकादशी, गुरुपूर्णिमा तथा अन्य पर्वोपर जब काशी-में होते विश्वविद्याल्यमें अमृतमयी कथा वाँचते । उन कथाओंका अमृतपान जिन्होंने किया है, वे अपना भाष सराहते हैं और अवतक भी उन कथाओंका रस हमारे जीवनमें ओतप्रोत है। कथाके लिये मालवीयजी रेशमी घोती रेशमी चादर और पैरोंमें खड़ाऊँ पहने आते थे और व्यासासनसे उपस्थित छात्र-समुदायको जब 'वेटे और बेटियो।' सम्बोधित करते तो इमलोगोंकी छाती गर्वसे भर जाती। शरीर तो उनका तपाये हुए सोनेके रंगका था। पगड़ी अंगरखा, गलेमें सलीकेसे तहाया हुआ लिपटा और घुटनीकी छूता दुपट्टा, घोती या चौड़ी मोहरीका पैजामा, सफेद मोजे, पैरोंमें केनवसका सफेद जूता—-सबका सब खेत, शुप्री दिन्य । उनके मस्तकका मलय चन्दन कभी मलिन न हुआ। किसीने कभी भी उनके ललाटको चन्दन-विहीन नहीं देखा। माळवीयजीने शायद कभी रंगीन कपड़ा पहना ही नहीं जाड़ेके दिनोंमें उनका अंगरखा, पैजामा काश्मीरी ऊन्क होता जो मलय चन्दनके रंगका होता । मुखाकृति पूर्णी आर्य और चिरप्रसन्न । माल्वीयजीकी मुसकानें कित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

१६

पिर

का

वे

काम

नाफी

भी

प्रश्न

तना

नोंके

श्ल-

विश्व-

पाठी

स्था

नेरोंने

आते।

कर।

वमी

काशी-

उन

भाग

धोती

और

टेयो।' राती ।

पगड़ीः

टनोंको

मोजे

गुम्

हुआ।

देखा।

नहीं

ऊनकी

ने पूर्णत

किता

मोहक थीं । बोळते तो मानो मधु घोळते । हँसते तो प्यारकी फूळझड़ियाँ छोड़ते । उनकी मुसकान और उनका अट्टास दोनों ही संक्रामक थे । भोजन भी माळवीयजीका बहुत सादा था । फुळके और हरी तरकारियाँ, गायका दूध और ताजा मक्खन और शहद उन्हें विशेष प्रिय था । धारोष्ण गोदुम्धपर वे विशेष आग्रह रखते ।

'सनातन-धर्म' अखिल भारतीय सनातन-धर्म महासभाका साप्ताहिक मुखपत्र था और उसके अध्यक्ष पूज्य श्रीमाल्वीयजी महाराज थे । पत्रका सम्पादक होनेके नाते माल्वीयजी महाराजके निकटतम सम्पर्कमें आनेका परम सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । 'सनातन-धर्म' ज्ञानमण्डलप्रेसमें छपता था और विश्वविद्यालयसे प्रकाशित होता था । उसमें प्रायः देशके मूर्धन्य लेखकों और विचारकोंके लेख छपते थे। पूज्य मालवीयजी महाराजके नाम और यशका प्रताप था कि उसमें अपने-अपने लेख प्रकाशित करनेके लिये देशके मूर्धन्य विद्वान् भी उत्मुक रहा करते थे। भाई परमानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द्, गोस्वामी गणेशदत्त, लाला लाजपतराय, श्रीमाधव श्रीहरि अणे मालवीयजीके अन्तरङ्ग सहकर्मा थे। मालवीयजी-को 'आर्य' शब्द वड़ा प्यारा था और संसारकी सर्वश्रेष्ठ नैतिकता, सदाचार, उदारता, प्रेम, सहिष्णुता, परदु:ख-कातरता आदि उनके विशिष्ट उपादान थे। धर्म तो मालवीयजी का प्राण ही था- 'धर्मी रक्षति रक्षितः' 'जो हठ राखे धर्मको तेहि राखे करतार'-इन्हें बड़ा ही प्यारा लगता था । लन्दनमें गोलमेज कांफ्रेंसके समय या देशभरमें अपनी अतिव्यस्त यात्राओंमें भी मालवीयजीने धर्मकी टेक न छोड़ी-यह उनके धर्मप्रेमका ज्वलन्त उदाहरण है। इस सम्बन्धमें वे गुरु गोविन्दसिंहके दो बच्चोंका उदाहरण बराबर देते थे । महाभारतकी कथामें द्रीपदीकी लाजरक्षाके तथा श्रीमद्भागवतके गजेन्द्र-उद्धारके कथा-प्रसङ्ग उन्हें विशेष प्रिय थे। महाभारत उनका परम प्रिय ग्रन्थ था, जिसे वे नियमित रूपसे पढ़ते । श्रीकृष्णके चरित्रकी उदात्तता मालवीयजीके जीवनमें ओतप्रोत थी । वे श्रीकृष्णकी ऐतिहासिकतापर विशेष बल देते और उनके आदर्श चरितके अनुकरणकी प्रेरणा देते थे।

भालवीयजीको धर्मके विषयमें लिखना बहुत भाता था, परंतु लिखनेमें उनके साथ एक कठिनाई थी कि एक ही वाक्यको वार-बार काटते, सुधारते, फिर लिखते, फिर सुधारते। बेसे अपने भावोंको ब्यक्त करनेयोग्य सशक्त उपयुक्त भाषा ही उन्हें नहीं मिल रही हो । जब तार देना होता तो भी कभी-कभी देखा गया कि मजमून काफी लम्या हो जाया करता और काफी काट-कृट होता और कभी-कभी तो तारघरसे आदमी बुलाकर फिर तारका मजमून मुधरवाया जाता। अक्षर वे बहुत पृष्ट मुन्दर लिखते। देशी फाउंटेन पेन और देशी स्याही ही उपयोगमें लाते। हर बातमें, छोटी से छोटी वातमें भी खदेशीका ध्यान रखते। १९०६ से जबसे अपने देशमें खदेशी आन्दोलन चला, मालवीयजीने भरसक कोई विदेशी वस्तुका शायद ही उपयोग किया हो।

विद्वानोंका आदर करना तो कोई उनसे सीखे। व कहा करते थे कि 'विद्वान् रहते नहीं, रक्खे जाते हैं। जैसे बड़े नाजसे बुलवुल पाली जाती है, वैसे ही मनस्वी विद्वान् भी रक्खे जाते हैं।' मालवीयजी पहले व्यक्ति ये, जिन्होंने संस्कृत-के पण्डितोंको भी वही वेतन, मान एवं प्रतिष्ठा दी जो अंग्रेजीके विभिन्न विषयोंके विद्वानोंको मिलती थी । मालवीयजीके उठ जाने बाद वे विद्वान् निराधार हो गये । मालवीयजीके कुलपितल-में हिंद-विश्वविद्यालयमें भारत क्या विश्वके एक-से-एक विद्वान अत्यन्त अन्य पारिश्रमिक लेकर हिंदु-विश्वविद्यालयकी सेवा करनेके लिये जुट गये । विदेशोंसे आनेवालोंमें प्रिंसिपछ किंग, प्रोफेसर कोलन, प्रो॰ निक्सन, प्रो॰ पूल आदिके नाम सदा स्मरण आते रहेंगे। मालवीयजीका त्याग और सेवा-भावनाके प्रतिफलित रूप थे आचार्य श्यामाचरण दे, जिन्हें पहले हमलोग 'डे साहव' और बादमें 'डे बावा' कहने लगे. थे। वे एक साथ विश्वविद्यालयमें गणित विभागके अन्यस, सभी छात्रावासोंके मुख्य वार्डेन और विश्वविद्यालयके रजिष्टार थे और यदि वे वेतन लेते तो कम-से-कम ढाई इजार क्यये मासिक होता, परंतु आजीवन कुल एक रूपया मासिक वेतन लेकर विश्वविद्यालयके सेवक-पदको गौरवान्वित करते रहे।

मालवीयजी सन्चे अर्थमं ब्राह्मण थे । गीतामें ब्राह्मणके स्वभावज जिन धर्मोंकी चर्चा है, मालवीयजीमें वे पूर्णतः परिव्याप्त थे—शम, दम, तपश्चर्या, पवित्रता, क्षमा, आर्जव, सरलता, शान, विशान और आस्तिकता—

शसो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जमेव च। ज्ञानं विज्ञानसास्त्रिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजस् ॥

श्रीमती सरोजनी नायडूने एक जगह लिखा है कि ध्यपने समयके सबसे महान् हिंदू और युगों-युगोंके समस्त महान् हिंदुओंमें अतिमहान् मालवीयजीका जीवन हिंदु-धर्मके महान् सार्वभौमिक आदर्शोंका प्रतिविष्त्र है, जिनमें जाति और वर्गकी असमानता नहीं स्वीकार की जाती। प्रेम और करुणासे वे इतने भरे थे कि लगता कि वे सिरसे पैरतक हृदय-ही-हृदय थे। मालवीयजी महाराजके निधनपर गांधीजीने हरिजनके अप्रलेखमें लिखा या सालवीयजी नहीं रहे, मालवीयजी अमर हो—Malaviyaji is died, Long Live Maiaviyaji. उन्हें वरादर गांधीजी भारत-भूषण' लिखते थे और अपनेको मालवीयजीका पुजारी कहते थे। दोनोंका भ्रातृभाव संसारमें अमर है। शिक्षांके क्षेत्रमें, देशके स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके क्षेत्रमें,

राष्ट्रभाषा हिंदीके विकासक्षेत्रमें एवं राष्ट्रीयताको हट करनेके क्षेत्रमें मालवीयजीने अपने पावन चरित्र एवं देवोपम ब्रह्मप्रशाहारा वह आदर्श उपस्थित किया है और अपने पीछे एक ऐसी स्मृति छोड़ गये हैं जो आनेवाले युगोंतक देश-वासियोंके हृद्यमें चिरकालतक जीवित रहेगी । जवतक सनातन हिंदूधर्म है, हिंदुस्तान है, हिंदू-विश्वविद्यालय है, जवतक चन्द्रमा और सूर्य हैं, गङ्गा और यमुना हैं, तयतक पूज्य मालवीयजीकी अमल-धवल कीर्ति संसारमें अमर है । ऐसे सुकृती महापुरुषोंके यशःशरीरका कभी अन्त नहीं होता—वे संसारको सही मार्गपर चलानेके लिये ही आते हैं।

द्वीपान्तर और भारतमें सांस्कृतिक सम्बन्ध [शैवधर्मका प्रतिपादक बृहस्पतितन्व]

(लेखिका—डॉ॰ सुदर्शना देवी सिंघल, डी॰ लिट्॰)

द्वीपान्तर और भारतमें शताब्दियोंसे सम्पर्क रहा है। पर्म और संस्कृतिका सौख्यमय, आदरपूर्ण, भ्रातृत्व साहित्यमें प्रसुर मात्रामें विस्फृटित हुआहै। उच विचारोंकी अभिव्यक्ति, पर्म, नित्यप्रतिके विविध अनुष्ठान, पूजा सभी कुछ जावामें संस्कृतसे ओतप्रोत हैं। राजेन्द्र मूळवर्मा द्वारा किये जानेवाले राजसूय यक्तके ळिये निर्मित यू उपर पाँचर्वी शताबिदके पूर्वार्धमें लिखा गथा यह शिळालेख द्वीरान्तरमें संस्कृतके स्थानका सौरवमय निदर्शन है—

श्रीमतः श्रीनरेन्द्रस्य कुण्डङ्गस्य महारमनः।
पुत्रोऽश्वदर्मा विख्यातो वंशकर्ता यथांगुमान्॥
तस्य पुत्रा महारमानस्त्रयस्त्रय इवासयः।
तेषां त्रयाणां प्रवरस्तपोबलद्मान्वितः॥
श्रीमृलवर्मा राजेन्द्रो यद्या बहुसुवर्णकम्।
तस्य यज्ञस्य यूपोऽयं द्विजेन्द्रैस्संप्रकल्पितः॥

६८२ शकसंवत् अर्थात् ७६० ई०में लिखित एक अन्य शिळाळेख द्वीपान्तरमें ऋतिया् और वेदविज्ञोंके कुशल हाथोंसे बनी मूर्तिकी प्रतिष्ठापनामें आज भी मानो पूजा और प्राण भर रहा है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ई-त्सिङ् द्वीपान्तरके श्रीविजयके राज्यमें (६७१ई०)६ मासतक संस्कृत व्याकरणका अध्ययन इस्नेके पश्चात् १० वर्षतक विश्वविख्यात नालन्दा विश्व- विद्यालयमें अध्ययन करते रहे। वहाँसे स्वदेश लौटते समय जावामें उन्होंने सात वर्षतक बौद्धदर्शनके मूल प्रन्थोंका चीनीमें अनुवाद किया। यहाँगर भारतीय बौद्धधर्म तथा अपनी यात्राका वर्णन लिखा। इसके अनुसार एक अन्य चीनी यात्री हुई निङ्ने विद्वान् पण्डित गुरु ज्ञानभद्रसे जावामें २ वर्ष-तक शिक्षा पायी। बौद्धधर्ममें हीनयानकी मूलसर्वोस्तिवादिन् ज्ञाखाके अध्ययन-अध्यापनका जावा मुख्य केन्द्र रह जुका है।

भाषाके लिये व्याकरण अत्यावस्यक है । व्याकरण साहित्यके षडङ्गोंमेंसे है । जावामें भी संस्कृत भाषाको सीखनेके लिये अनेक व्याकरण-सम्बन्धी पुस्तकें लिखी गर्यो । स्वरव्यञ्जन' शीर्षकके व्याकरणके अन्तर्गत स्वरोंका एकमान्न द्विमान्न अर्थात् हस्व, दीर्घ और प्लतका वर्गीकरण, मूर्थन्य, तालव्य, दन्त्य, अत्यप्राण, घोष आदिका वर्णन करते हुए स्वरसन्धि, व्यञ्जनसन्धि और विसर्गसन्धियोंको उदाहरणोंद्वारा स्पष्ट किया गया है । किविभाषामें भी इन सन्धियोंका यन्त तत्र प्रयोग दिखायी देता है । 'कारकसंग्रह' नामक ग्रन्थका प्रारम्भ पाठकोंके लिये रुचिकर होगा—'यत् कृतं कर्म तत्योक्तं स कर्ता यः करोति वा ।' एक अन्य व्याकरण-ग्रन्थ 'कृतभाषा' संस्कृतभाषाका अपभंश है । इसमें सुचियाँ दी हुई हैं । पशुओंके नाम, देवोंके विभिन्न नाम (उदाहरणार्थं इन्द्रके ५९ नाम, अनिके ३१ नाम, चन्द्रमाके ४८ नाम),

म

क

1

तत्पश्चात् पण्डितोंके ५९ नाम आदि-आदि । अन्तमं धातुओंके रूप चलाये गये हैं । पतिष्ठति तिष्ठतः तिष्ठन्ति । '। 'चण्डिकरण' नामक हस्तलेल भारतीय कोप-परम्पराका अनुसरण करता है । विभिन्न समानार्थ शब्दोंका यह क्षोकोंमें कोष है । संस्कृत क्षोकोंकी जावीमें व्याख्या अथवा स्पष्टीकरण किया गया है । इसका आरम्भ देव शब्दके पर्यायोंसे होता है । देवताके लिये 'सुधाशिन्' का प्रयोग उल्लेखनीय है । ततः शिव अर्थात् भटार गुरुके विविध नामोंकी गणना कर, भटार ब्रह्माके नाम दिये गये । तत्पश्चात् सामान्य विषय यथा—पशु, पक्षी, शरीराङ्ग, यह आदि शब्दोंके विविध पर्याय हैं ।

'वृत्तसंचय' छन्दोंपर प्रसिद्ध ग्रन्थ है। संस्कृतके प्रसिद्ध छन्दोंमें कविभाषाके अनेक काव्यों के सुमधुर लिख पदोंकी रचना की गयी है। द्वीपान्तरके लोकप्रिय काव्य 'अर्जुनविवाह' में शार्वू लिबक्रीडित, वसन्तितिलका, हैशिखरिणी, सम्धरा आदि छन्दोंका निर्वाध सुचार प्रयोग है। छन्दशास्त्रपर 'वृत्तसंचय'के अतिरिक्त 'वृत्तायन', 'वृषभगतिविलसित', 'मणिगुणनिकर' आदि अनेकों ग्रन्थ हैं, जिनका अभीतक समुचित सम्पादन नहीं हुआ है।

द्वीपान्तरमें नित्यप्रतिके जीवनमें प्रयुक्त स्तव विष्णु, शिव, सूर्य, श्रीदेवी, सरस्वती, वायु, यम, उमा, गङ्गा आदिकी स्तुतियोंसे अनुप्राणित हैं। पञ्चद्दारसस्तुति' १५ वज्रदेवताओंको सम्बोधित बौद्ध तान्त्रिक मन्त्र है। खुद्धवेद' शीर्षकका ग्रन्थ नेपालके अति प्रसिद्ध पञ्चबुद्धस्तव और महाभयस्तवसे मिलता-जुलता है। पमध्यपूजा' प्रतिदिनके पूजा-स्तवका नाम है। ओं क्षमस्त्र "से प्रारम्भ होनेवाली यह पूजा बालि द्वीपके पण्डितोंमें वहुत प्रिय और प्रचलित है—

ओं क्षमस्य मां महादेव सर्वप्राणिहितंकर ।
मां मोचय सर्वपापेभ्यः पालयस्य सदाशिव ॥
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।
त्राहि मां सर्वपापेभ्यः केनविन्तम रक्षतु ॥
क्षन्तव्याः कायिका दोषाः क्षन्तव्या वाचिका मम ।
क्षन्तव्याः मानसा दोषास्तत्यमादं क्षमस्य माम् ॥
हीनाक्षरं हीनपादं हीनमन्त्रं तथैव च ।
हीनभक्तिं हीनविधिं सदाशिव नमोऽस्तु ते ॥
ओं मन्त्रहीनं कियाहीनं मक्तिहीनं महेश्वर ।
यत्प्जितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
मन्त्रीमें बीजोंका प्रयोग वहुत अधिक है । नवशक्तिपूजा

'र' बीजपर आधृत है। कृटमन्त्र, गर्भमन्त्र, अष्टग्रह, सर्तोकार आदिमें शीर्षकोंसे ही उनमें बीजोंके प्रयोगका पाठक अनुमान लगा सकते हैं। केवल पूजास्तव और तान्त्रिक-मन्त्र ही नहीं, गायत्रीन्यासमें गायत्रीमन्त्र पाठकोंके किये इचिकर होगा—

तत्सवितुर् ब्रह्मात्सने इदयाय नमः ! वरेण्यं विष्ण्वात्मने श्चिरसे स्त्राहा । अगों देवस्य रुद्धात्मने श्चिरकाषे वषट् ! धीमहि परमात्मने कवचाय हुं । धियो यो नः ज्ञानात्मने नेत्रत्रयाय वीषट् । प्रचोदयात् सत्यात्मनेऽस्त्राय फट् ।

रामायण, महाभारत, पुराण (यथा ब्रह्माण्डपुराण) द्वीपान्तरके जीवनके अङ्ग हैं। उनके रात्रिभर होनेवाके रामायण, महाभारतपर आधृत छायानाटक वायाक् केवळ मनोरज्जन ही नहीं, शिक्षा और अध्यात्मके खोत भी हैं। रामायण और महाभारतका प्रत्येक पात्र किसी विशेष आदर्ध-का प्रतीक है। जीवनके उभय—अच्छे और दुरे पक्ष और अन्तमें अच्छे पक्षकी विजय, सत्की असत्पर विजय, दर्शकके हृदय और मनको सत्कर्मकी ओर प्रवृत्त करती है।

दर्शनशास्त्र विचारका सर्वोच अङ्ग है । द्वीपान्तरमें
मुख्यतया बौद्ध और शैव घर्म और दर्शन दोनों ही रूपोंमें
प्रमुख रहे हैं । अनेक बौद्ध और शैव प्रन्थोंके जावी
संस्करणोंद्वारा इन घर्मोंका प्रचार और पोषण शताब्दिकों
तक होता रहा है । बौद्ध विचारघाराका प्रमुख प्रन्थ
(सं हांकमहायानिकन्' कहलाता है । शैवचर्मपर ११
अध्यायोंमें बृहद् ग्रन्थ 'भुवनकोष' है । 'भुवन संखोप'में
भुवनके ज्ञानका अर्थात् सृष्टिका संक्षित्र ज्ञान है । 'तस्य
सं हां महाज्ञान' शैवज्ञानके तत्त्वोंकी विशद व्याख्या करनेवाला
ग्रन्थ है । इनमें आरम्भमें संस्कृत स्लोक और तस्यकात्
उसकी व्याख्या कविभाषामें करते द्वुप दर्शनको जनजीवन
तक पहुँचानेका प्रयत्न किया गया है ।

शैवधर्म और दर्शनके अनेकों इस्तलेख उपलब्ध हैं।
अभी इनका सम्पादन रोष है। सम्पादित अन्य 'बृहस्यतितत्त्व' शैवदर्शनका प्रतिनिधि अन्य है। 'बृहस्पतितत्त्व'में
भटार ईश्वर देवगुरु बृहस्पतिको उपदेशके स्पर्मे
विभिन्न तत्त्वों, सृष्टिकम, मोक्षके विभिन्न उपार्थों,
योग, अष्टैश्वर्य आदि विषयोंपर कमबद चर्चा की गयी है।
इसके सात इस्तलेख हैं। एक आचार्य श्रीरयुवीरजीकी

संस्था 'सरस्वती विहार'में है। उपसंहारके अनुसार १८७५ शकवर्षमें कृष्णपक्षकी द्वतीयाको इसका लिखना हुआ । १५ लम्बे ताडपन्नपर बलि लिपिमें लिखा गया ४४ पद्मीका यह प्रन्थ है । प्रत्येक पृष्ठपर चार पंक्तियाँ हैं। दूसरा इस्तलेख १६७० शक्वर्ष, आषाढ्मास, नवमी कृष्ण-पश्चको बलिद्वीपस्थित कविसाम्लदेशमें लिखा गया है। तीसरा ७० पर्बोका सुस्पष्ट, १७६६ शकवर्षका इस्तलेख है । यह हॉलेण्डके लाइडन् विस्वविद्यालयमें सुरक्षित है । चौथा और पौंचवाँ इंडोनेसियाके कीर्त्या विश्वविद्यालयमें है । इनमें उपसंहार नहीं है। इठा इस्तलेख लाइडन् विश्वविद्यालयमें है। इसकी तिथि चन्द्रसंकालमें दी हुई १७५५ शक है। इसका उपसंहार संस्कृत बलोक और उसकी विस्तृत जावी टीकासे किया गया है। इसका अन्त सहसा हो जाता है। सातवाँ इस्तळेख १०१ पृष्ठोंका सुन्दररूपेण लिखित पत्र-इस्तटेख है। यह तीसरे इस्तटेखकी ही प्रति है। परंतु फिर भी अनेक स्थानींपर पाठमेंद हैं।

अन्य दार्शनिक प्रन्थोंके एमान ही प्रारम्भमें संस्कृत क्लोक और तत्मश्चात् कवि टीकामें लम्बा स्पष्टीकरण है। कहीं टीका केवल क्लोकका अर्थमात्र देती है—यथा सातसे केकर १० तकके क्लोक और ५३ से ५९ तक षडङ्गयोगके क्लोक। प्रायः टीका विस्तृत है—केवल अर्थकी दृष्टिसे ही नहीं, विषयकी दृष्टिसे भी। क्लोक ३३ विशेष उल्लेखनीय हैं। क्लोकमें केवल अष्टिसियमें गिनायी गयी हैं। परंतु टीका एक कण्डिकामें उनका वर्णन कर मुख्यतः सृष्टिकी उत्पत्ति और कमका वर्णन करती है। क्लोक ४७में पञ्चपदों—जायत्, क्वम, मुखुप्ति, तुर्य, तुर्यातीतका वर्णन है, किंतु टीकामें इनकी द्राविक विस्तृत विवेचना भी है। ८०वें क्लोकमें शिवद्वारा की गयी बृहस्पतिकी प्रशंसा है—जब कि जावी टीकामें उस प्रशंसाका निर्देश किये बिना ही बृहस्पतिके चेतनाचेतन-क्षम्बन्थी संदेहोंका शिवद्वारा निराकरण है।

ग्रन्थके अधिक प्रयोग होनेसे यद्यपि क्लोकोंकी संस्कृत विकृत हो चुकी है । परंद्र फिर भी संस्कृतके विशाल हार्शिनक साहित्यसे कुछ उद्धरण इकट्ठे कर उन्हें यथा- शक्ति शुद्ध करनेका प्रयत्न किया है । कई बार टीका सहायक होती है और कई बार नहीं । ग्रन्थकी शैलीमें कहीं- कहीं संस्कृत टीकाओंकी शैलीकी सलक दिखायी देती है । बुह्स्सितका प्रकृत करना और शिवका उत्तर देना, यह संस्कृत

परम्परानुगत ही है। प्रायः यह शैवागमोंकी परम्परा है। जहाँ पार्वती प्रश्न करती हैं और भटार शिव ज्ञानमय उपदेश देते हैं। अथवा गण, श्रृषि आदि प्रश्न करते हैं। द्वीपान्तरके एक अन्य शैवतान्त्रिक ग्रन्थ 'गणपतितन्त्व'की भी यही शैली है। प्रश्नकर्ता यहाँ गणपित हैं। ॐ प्रणवज्ञान ही महाज्ञान है। इसीमें उत्पत्ति, स्थिति और प्रलीन है। जन्म और भुवनका रहस्य मूलतः एकाक्षर (अकार) में संनिहित है। ओंकारसे उद्धृत स्वर-व्यञ्जनोंमें मानवके शरीराङ्गोंका रहस्य लिपा है। 'नमः शिवाय'का पश्चाक्षरमन्त्र जप्य मन्त्र है।

हुस्पतितस्वके प्रारम्भमें तीन भिन्न शैवमतोंका उल्लेख है—शैव, पाशुपत और अलेपक । बृहस्पतितस्वमें शैवमतका प्रतिपादन किया गया है । चौथे हस्तलेखमें बृहस्पतितस्वका दूसरा नाम 'शिवतस्व' भी दिया गया है । शैव और पाशुपत सर्वदर्शनसंग्रहमें उद्धृत हैं । पर 'अलेपक' शब्द तक किसी संस्कृतके कोषमें नहीं मिला । अलेपकका अर्थ है—निर्लेष । काश्मीर शैव-दर्शनके प्रसिद्ध ग्रन्थ तन्त्रालोकके १३वें पटलके ३०५वें श्लोकमें भैरवोंके अन्तर्गत 'वैमल' शैव है । समानार्थताके आधारपर सम्भवतः यह कहना अनुपयुक्त न हो कि हमारे 'अपेलक'का तात्पर्य वैमलोंसे हो सकता है ।

प्रन्थके दर्शनका आरम्भ इस प्रकार है-

भिन्न प्रकारके शास्त्र हैं । उनमें भिन्न प्रकारके मोक्ष-मार्गोंका उल्लेख है । इसका क्या कारण है । इसका कारण मनुष्यकी विभिन्न योनियाँ हैं । पुनर्जन्मका कारण वासनाएँ हैं—जो अच्छे-बुरे कर्मोंको करनेके लिये प्रेरित करती हैं । इन कर्मवासनाओंसे रिखत आत्मा विभिन्न योनियोंके चक्करमें फँसी रहती है । पिछले जन्ममें किये गये कर्म वासनाओंके कारण हैं और वासना कर्मका । ये कर्म मनुष्य सतत करता चला जाता है । यदि उसके इस संसारमें किये गये कर्म अच्छे हैं तो वह स्वर्गमें जन्म लेकर सुख भोगता है और यदि उसके कर्म बुरे हैं तो वह नरकके दुःखोंका भागी बनता है । संस्कृतमें यह सामान्य विचार है—

कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमिरतः परा। इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते॥

कर्मफल समाप्त होनेपर वह पशु बन जाता है और सत्कर्मी कर्मफल समाप्त होनेपर राजा अथवा अत्यन्त धनी। उसे उच्चतम ज्ञानका आभास होता है। वह 'वस्तु'को देखता है। उसमें संवेग उत्पन्न होता है। वह ईश्वरभक्ति चाहता है। ===

हाँ

ली

का

रसे

पा

ख

का

का

रत

सी

1

ल-

1

न

थ्-

ण

1

सं

कि

ता

7#

गैर

गी

गैर

11

ता

है।

भगवान्में उसकी भक्ति होनेके कारण और उसपर भगवत्कृपा होनेके कारण वह जन्मावस्था, पुनर्जन्म, सुख-हु: खको देखता है। वह शान्ति चाहता है और उपदेश पानेके लिये विद्वान् ज्ञानीके पास जाता है। परंतु तत्त्व ज्ञान बहुत गुह्य और विशेष है। अतः उसकी विभिन्न प्रकारसे व्याख्याएँ की गयी हैं। यही शास्त्रोंकी विविधताका कारण है।

सभी शास्त्र शिवद्वारा उत्कृष्टरूपेण उपदिष्ट हैं। केवल भ्रान्त ज्ञानके कारण ही मनुष्य उनमें भेद किया करते हैं। बृहस्पतिका भ्रान्त ज्ञान क्या है ? पूछनेपर संस्कृत साहित्यमें, अन्धगजन्याय नामसे कथित 'हाथी और अन्धों'की कथाके इधान्तसे भ्रान्त ज्ञानका स्पष्टीकरण दिवजी करते हैं। जिस प्रकार अन्धे लोग हाथीके वास्तविक आकारका अपने अहर ज्ञानके अनुसार पृथक्-पृथक् वर्णन करते हैं और साथ ही उसे ही सत्य समझनेकी भूल करते हैं, उसी प्रकार व्यामोहमें पड़ा मानव भी वास्तविक तत्त्वको नहीं समझ पाता है। हाथीके पावँ, पूँछ, पेट, कान आदि अंग शास्त्र हैं। यद्यपि इन सबमें विशेष (हाथीका अंगी) लक्षण विद्यमान है, पर ये बहुत हैं । यही भ्रान्त-ज्ञानका कारण है । वास्तविक ज्ञान (विशेषज्ञान) को पानेके लिये विभिन्न मतों और शास्त्रोंका परिशीलन अत्यन्त आवश्यक है। हाथी और अन्धोंकी यह कथा भारतीय दर्शन शास्त्रोंमं, जैन-दर्शन और बौद्ध-दर्शनमें भी मिलती है। पालिकी उदानकी कथासे 'बृहस्पतितत्त्व'की कथा-का पर्याप्त सामञ्जस्य है। यह रोचक दृष्टान्त भोट (तिब्बत) चीन और जापानमें उपलब्ध है।

इस छोटी-सो भूमिकामें ज्ञानके कारणका उल्लेखकर छठे श्लोकसे दौवदर्दानका प्रारम्भ होता है। सर्वतत्त्वोंमें सूक्ष्म दो परम तत्त्व हैं—चेतन और अचेतन।

द्विविधं तत्त्वं परमं चेतनमचेतनं च। व्याप्नोति सर्वतत्त्वेषु सूक्ष्ममुन्नेयं यत्नतः॥ (बृहस्पति० श्लोक ६)

चेतनके तीन प्रकार हैं—शिवतत्त्व, सदाशिवतत्त्व और परमशिवतत्त्व । अचेतनतत्त्व माया-तत्त्व है । इन दोनोंके संयोगसे सर्वतत्त्वोंकी उत्पत्तिका क्रम है । शिवतत्त्व, सदाशिवतत्त्व और परमशिवतत्त्वके सर्वज्ञत्व, विभुत्व, उत्पादक, नाशक, पालक आदि गुणों और विशेषणोंका उल्लेख करते हुए परमेश्वर शिवसे जगत्की ओतप्रोतताका वर्णन है ।

जिस प्रकार एक सूत्रमें मणियाँ पिरोयी हुई हैं, उसी प्रकार विश्वकी विभिन्न वस्तुएँ उसी एक ईश्वरमें प्रोत हैं। वह शिव मन्त्रात्मा हैं। दूरश्रवण, दूरसर्वत्र और दूरदर्शन उसके गुण हैं। अणिमा, लियमा आदि अण्टेश्वर्य हैं। इस सदाशिवतत्त्वके नीचे मायाशिरस्तत्त्व है, जिसका स्थान अष्टिवद्यासन अर्थात्, अनन्त, सूक्ष्म, शिवतम, एक स्ट्र, एक नेत्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिलण्डी है। संस्कृतमें ये अष्टिवद्यासन अधिवद्येश्वर कहलाते हैं। मायाशिरस्तत्त्वके नीचे मायातत्त्व है। यह जड, अचेतन और शून्य है। शिवतत्त्वसे ओतप्रोत होनेपर यह चेतन (अर्थात् सिक्रय) हो जाता है और शिवतत्त्व इसके संयोगसे सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्वमय आदि स्वतःके गुणोंको भूल जाता है।

इस अवस्थामें शिवतत्त्व आत्मा कहलाता है। आत्मा-तत्त्व असंख्य हैं (क्योंकि आत्माएँ अनेक हैं) मायातत्त्वकी उपमा मधुमिक्खियोंके छत्तेसे दीगयी है। आत्मा मधुमिक्खियोंके बच्चे हैं, जो अधोमुख' हैं, इसिल्ये वे उन तत्त्वोंको नहीं देख पाते जो उनसे ऊपर हैं। शिवकी शक्तिसे मायातत्त्व सिक्य हो उठता है और प्रधानतत्त्व उत्पन्न होता है। अचेतन प्रधानतत्त्वके प्रभावसे आत्मातत्त्व भी अचेतन हो जाता है। ईश्वरकी क्रियाशिक्तसे प्रेरित प्रधानतत्त्व त्रिगुणतत्त्वको उत्पन्न करता है। सत्त्व, रजः, तमः—ये त्रिगुण हैं।

बृहस्पतितत्त्वमें त्रिगुणोंका विशिष्ट वर्गीकरण मिलता है ! इनकी सांख्यके समान ही सामान्य और प्रचलित व्याख्या करनेके पश्चात् सात्त्रिक चित्तः, अत्यन्त सात्त्रिक चित्तः, (उसके लक्षण और फल) तत्पश्चात् सात्त्रिक और राजस एवं सात्त्रिकः, राजस और तामस चित्तका वर्गीकरण है । रजःमें राजस चित्तः, अत्यन्त राजस और तममें तामस और अत्यन्त तामस चित्त हैं । सत्त्रका यह ग्रुद्ध और मिश्र वर्गीकरण वेदान्तकारिकावलि १००१-२ से स्पष्ट हो जाता है—

शुद्धसत्त्वं मिश्रसत्त्वमिति सत्त्वं द्विधा मतम् ॥ १ ॥ रजस्तमोभ्यामस्पृथ्मद्रव्यं पूर्वमुच्यते । रजस्तमोविमिश्रं तु मिश्रसत्त्वं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥

अत्यन्त सात्त्विक चित्तसे मोक्ष अवश्यभावी है। श्रीमद्भगवद्गीता (१४।१४) का यह स्रोक पृष्टिके टिये पर्याप्त है। यदा सत्त्वे प्रयुद्धे तु प्रलयं याति देहसृत् । तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥

इन तीन गुणोंसे बुद्धि उत्पन्न होती है । बुद्धिके चार धर्म हैं । धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और चार इनके विपरीत धर्म अर्थात् अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनेश्वर्य हैं । बृहस्पतितत्त्व' में श्लोक २५ से ३२ तक इनकी व्याख्या और चर्चा की गयी है । धर्मकी व्याख्या काश्मीरके शैवग्रन्थ स्वछन्दतन्त्र और सांख्यकारिकापर माठराचार्यकी टीकासे बहुत भिन्न हैं । ज्ञानसे तात्पर्य सांख्यके प्रसिद्ध तीन प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमसे है— प्रत्यक्षमनुमानं च कृतान्ताद्वचनागमः।
प्रमाणं त्रिविधं प्रोक्तं तत्सस्यग्ज्ञानसुत्तमस् ॥
(वृहस्पति ० २६)

वैराग्यकी व्याख्या योगसुत्र (१।१५) के बहुत समीप है— 'दृष्टानुश्राविते भोगे सुखे देहें विरागिता' (बृहस्पति० २७)

योगसूत्रमें 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्' ऐश्वर्यकी व्याख्या 'स्वच्छन्दतन्त्र' के बहुत समीप है। सांख्य सर्वथा भिन्न है। माठराचार्यकी वृत्तिके अनुसार ऐश्वर्यका अर्थ अष्ट सिद्धियाँ हैं जब कि हमारा तात्वर्य भोग, उपभोग और परिभोगसे वैरस्य है। (शेष आगे)

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'मुझे खेद हैं कि मैं आपका मुकद्दमा नहीं हे सकता !' बड़ी शान्तिसे एडवोकेट मिश्रने कहा और सामने मेजपर रक्खी भाइलको रखनेवालेकी ओर खिसका दिया।

'आप एक बार कागज देख हों!' अनुनय की गयी और माथ ही जेवसे नोट निकाले गये—'आपकी फीस मैं. अभी दे दूँगा। मुझे आपपर विश्वास है, इसलिये मैं सीधा आपके पास आया और आप मेरे पुराने वकील हैं।'

'आपकी वात ठीक है। मैं आपको पत्र दे- देता हूँ। आप ठक्करके यहाँ चले जाइये। वे अच्छे वकील हैं और मेरे मित्र हैं। आपसे उचित पारिश्रमिक ही लेंगे। मिश्रजी-ने कलम उठायी—'आप जानते ही हैं कि मैं अपनी आवश्यकता पूरी हो, महीनेमें उतने ही मुकद्दमे लेता हूँ। इस महीनेके पहिले सताहमें ही वह पूरी हो गयी।

अद्भुत व्यक्ति हैं ये मिश्रजी भी । संसारमें सभी प्रकारके मनुष्य हैं । उन्हींमें इनकी भी एक अलग खोपड़ी है । नहीं तो, कोई वकील घर आयी फीस लौटाता है ? किंतु मिश्र हैं कि एक सीमा अपने उपार्जनकी इन्होंने बना ली है । उतना मिल गया तो फिर उस महीने नया मुकद्दमा हाथमें नहीं लेंगे । पुरानोंमें भी चाहेंगे कि कम दौड़-धूप करनी पड़े । वैसे भी झूठे पक्षका समर्थन करने खड़े नहीं होंगे । चलते मुकद्दमेको कई बार बीचमें छोड़ दिया; क्योंकि

पता लगा कि उन्हें जो कुछ बताया गया, वह ठीक नहीं था।

मिश्र प्रतिभाशाली हैं और सन्चाईका पक्ष लेते हैं। फीस अनेक बार नहीं भी लेते, यदि व्यक्ति अधिक संकटमें हुआ और धनहीन हुआ। फलतः न्यायालयमें उनका सम्मान है। न्यायांधीश उनकी बातको महत्त्व देते हैं। लोग उत्सुक रहते हैं कि मिश्रजी उनका मुकदमा देखें।

'आप न्यायाल्य प्रतिदिन आते ही हैं। विना फीसवाले मुकद्दमें भी देखते हैं। फिर रुपये क्या काटते हैं आपको ? जो आपको ही मुकद्दमा देना चाहते हैं, उन्हें आपक्यों निराश करते हैं, जब कि आपके पास समय होता है।' उस दिन शामको ठक्करने ही पूछा था। मिश्रजीके वे मित्र हैं और मिश्रजी प्रायः उनके पास मुकद्दमें भेज दिया करते हैं।

3

क्र

दा

कि

'न्यायालय तो मैं जाता हूँ सीखने !' मिश्रजीकी यह बात आपको स्वीकार करनी होगी। 'वकीलके लिये आवश्यक हैं कि वह अध्ययन करता रहे तथा जिटल मुकद्दमोंकी पैरवी-बहस देखता रहे। पेटके लिये तो परिश्रम करना ही पड़ता है। जो असमर्थ हैं, उनकी थोड़ी सहायता अवकाशके क्षणोंमें कर देना कोई बुराई तो है नहीं। किंतु मैं मानता हूँ कि आवश्यकतासे अधिक धनोपार्जन सचमच काट लेता है।' धन काट लेता है ?' ठक्कर गम्भीर हो गये—'यह

हपये भी किसीको काटते होंगे, सिश्रजीकी यह वात आपकी समझमें आती है क्या ? मैं इसीसे उन्हें अद्भुत ब्लोपड़ी कहता हूँ ।

ब्वे शरीरको कुत्तेकी भाँति या चाक्के समान तो नहीं काटते; किंतु'—मिश्रजी गम्भीर ही वने रहे—'वे स्वास्थ्य, आन्वरण, समय, संयम अथवा नम्रताको अवस्य काट लेते क्रिं और में इनकी क्षति शारीरिक क्षतिसे अधिक मानता हूँ।'

'अय आप पहेली मत समझाइये ।' ठकरने हँसते हुए कहा । लेकिन वात समझने योग्य है, यह उन्हें प्रतीत हो गया था । इसल्यि अपनी कुर्सीपर वे अधिक स्थिर होकर बैठ गये।

•उपयोगसे अधिक घन होगा तो उपभोग अधिक करनेकी सूझेगी।' मिश्रजीने बताया—'विलासिता बढ़ेगी। आलस्य बढ़ेगा। कहीं मन सावधान न रहा तो संयम, सदाचारपर विपत्ति आयेगी। यह न भी हो तो भी प्रमादमें समय जायगा और भोगमें रोग तो रक्खे ही रहते हैं।'

'कुछ संतानके लिये संग्रह करो और शेष लोकोपकारमें लगा दो । दान भी तो धर्म ही है ।' ठक्करने साधारण खरमें दी कहा; क्योंकि मिश्रजीने यह बात सोची ही नहीं होगी, यह आशा कोई कैसे कर सकता है ?

'संतानें अपना प्रारच्घ लेकर आती हैं और उन्हें वह अपना प्रारच्घ भोगना ही पड़ता है । पैतृक सम्पत्ति पाकर कितने युवक सुपथपर रह पाते हैं, यह आप जानते हैं।' सिश्चजीने कहा—'समर्थ होनेतक में संतितका पालन-रक्षण और शिक्षण कर्तव्य मानता हूँ; किंतु उनके लिये धन-संचय मोहके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'

'लोकोपकार—दान ?' ठकरने जिज्ञासा की ।

ध्यधमंसे धर्म नहीं होता और लोम अधर्म है।' मिश्रजी कह रहे थे—'जितना उपलब्ध है, उसीकी सीमामें धर्म करना तो मनुष्यका कर्तव्य है; किंतु अधिक संग्रह करके दान—लोकोपकार केवल अभिमान है। यथेच्छा अथवा अहंकारकी यह प्रेरणा है। अन्यथा लोकोंका जिन्होंने निर्माण किया, उन विश्वम्भरके रहते मनुष्य क्या लोकोपकार

करेगा ? उन सर्वेश्वरको किसीकी दया अथवा सहायताकी क्या अपेक्षा है ??

× × ×

'भाई ठक्कर ! सुना कि तुम्हारे यहाँ चोरी हो गयी रातको !' निश्रजीने न्यायालयके पुस्तकालयमें ठक्करके सभीप वैठते हुए पृष्ठा—'में यदि कुछ सहायता कर सक्ँ, संकोच भत करो सूचित करनेमें।'

'कोई वड़ी हानि नहीं हुई है'—ठकरने हँसकर परिस्थिति-के क्लेशदायक वातावरणको हल्का किया—'किंतु सुनते हैं कि ईमानदारीकी कमाई नष्ट नहीं होती और मैंने कोई वेईमानी की हो, स्मरण नहीं आता।'

'सो तो मैं स्मरण दिला सकता हूँ।' मिश्रजी भी मुस्कराये—'इमारे उपार्जनमें धर्मका भी भाग है और उसे तुम पूरा न सही, बहुत कुछ पचा लेते हो।'

'वात चल ही पड़ी है तो आज अपने व्ययका आदर्श तो बता दो।' ठकरने पूछा—'सम्भव है, वह मेरे भी कुछ कान आ जाये।'

'सवके लिये कोई सामान्य आदर्श बना देना कठिन है। अपनी परिस्थितिके अनुसार सबको अपना बजट बनाना पड़ता है; किंतु आय कर देकर जो बचे उसका दस प्रतिशत धर्मका है, यह मैं मानता हूँ। उसे दान कर देना चाहिये।' मिश्रजीने बताया।

'उससे तीर्थाटनः यज्ञः श्राद्धादि कर दिया जा सकता है ?' ठक्करने स्पष्टीकरण चाहा ।

'तीर्थाटन, यज्ञ, श्राद्ध आदि कर्तव्य हैं अथवा पारलैकिक उपार्जन!' मिश्रजीने कहा—'वे अपने भागसे सम्पन्न होने चाहिये। धर्मके सत्त्वको तो परीपकारमें ही लगाना ठीक है।'

'अपना पूरा वजट तो बताओ !' ठक्कर और मिश्रजी-में इतनी आत्मीयता है कि वे एक दूसरेको 'आप' सम्बोधित करना आवश्यक नहीं मानते।

'४० प्रतिशत भोजन व्यय, ५ प्रतिशत वस्त्रोंके लिये और ५ प्रतिशत स्वच्छताके लिये।' मिश्रजीने अपना बजट सुनाया—'१० प्रतिशत सेवकको, स्वयंकी शिक्षा तथा मनोरंजनपर ५ प्रतिशत, इतना ही पत्नीको निजी प्रसाधनादि-के लिये तथा इतना ही चिकित्साके लिये, बचोंकी शिक्षापर सादे सात प्रतिशत, ढाई प्रतिशत उनको मनोरंजनार्थ । शेष ५ प्रतिशत आकस्मिक विपत्तिमें काम आनेको सुरक्षित करता जाता हूँ । इसीमेंसे जो बच रहेंगे, उसे संतानोंके लिये छोड़ जाना मैं पर्याप्त मानता हूँ ।'

× × ×

धनकी तीन गित है—दान, भोग और नाश । ठकर फिर सायंकाल मिश्रजीके समीप आ बैठे थे। दोपहरमें वे न्यायालयके पुस्तकालयसे उठ गये थे एक मुकद्दमा देखने; किंतु उसी समय शामको मिश्रजीसे मिलनेका कार्यक्रम बन गया था। अब आते ही उन्होंने वही चर्चा उठायी—'नाश किसीको पसंद नहीं; किंतु लोभवश संग्रह सभी करते हैं। यह लोभ ही नाशको निमन्त्रित करता है, इतना मैं जानता हूँ।'

भोग या तो धर्मानुकूल होगा अथवा अधर्म । और अधर्म हुआ तो वह महानाश है। लोकमें धन, स्वास्थ्य, कीर्तिका नाश और परलोककी वात आप जानते ही हैं।' मिश्रजीने कहा—'अतः धनके भोगका अर्थ है—'धर्मसम्मत मोग।' सीमित आवश्यक जीवन-निर्वाह। इसे आप मान लेंगे।'

'मान लेना ही चाहिये मुझे ।' ठक्करने पर्याप्त गम्भीर होकर कहा—'और तब दानके अतिरिक्त उपार्जनकी मेरी अपनी सनकका उपयोग नहीं है।'

्हिंदू के लिये जो दिनचर्या आहिक सूत्रोंने दी है, उसमें दिन-रातमें केवल एक प्रहर उपार्जनके लिये रक्खा गया है। आजके वातावरणमें—वर्तमान सामाजिक स्थितिमें यह शक्य नहीं है; किंतु उपार्जनकी सनकका उपयोग कुछ नहीं है। वह केवल लोभ है। मिश्रजीने वात पूरी की।

ठकर बोले नहीं । दानके सम्बन्धमें उनके मनमें निष्ठा है। अपनी आयका अधिकांश वे सामाजिक कार्योंमें व्यय कर देते हैं । कलियुगमें धर्मका एक ही चरण तो वचा है—दान । उनके मनपर हद संस्कार है—'येन-केन विधि दीन्हें', दान करइ कल्यान ।'

दान यदि अहंकारका पोषण न करे, उसमें यशेन्छा न हो और मैं दाता—दूसरे गृहीता दिर्द्र, में दयाद्ध, दूसरे दयाके पात्र—यह भावना न आवे, तो दान परम धर्म है। मिश्रजी नहीं चाहते ठक्करको हताश करना। 'लेकिन त्यागपूर्वक भोग' ऋषियोंने आदर्श माना है। उपार्जनका उद्देश भोग है और भोग तब पित्रत्र होता है, जब उपार्जन पित्रत्र हो तथा उसका आवश्यक अंश त्याग-दानमें लग चुका हो। भोग भी त्यागके लिये—संयमके लिये हो। त्यागके लिये उपार्जनकी वात तो तब बने, जब कर्तृत्वका अहंकार अभीष्ट न हो। लोक परमात्माका। हमारे किये लोकोपकार होता कहाँ है। हम जो त्याग-दान करते हैं, अपनी ग्राहिक लिये। प्रभुकी कृपा कि हमें वे ऐसा अवसर देते हैं।'

'अहंकार न आवे, यह प्रयत्न करता हूँ !' ठक्करने ज्ञान्त भावसे कहा ।

भी मैं जानता हूँ ।' मिश्रजी बोले—'धनमें गौरव-बुद्धि है, उपार्जनमें महत्ता लगती है और उसके बिना अपनेमें हीनत्वकी भावना आती है, तवतक आपका ही मार्ग ठीक है। जो आवे उसे सेवामें लगा दिया जाय। धर्म पुष्ट होता रहेगा तो चित्तशुद्धि होगी।'

'और चित्त-शुद्धि होगी तो ?' ठक्करको लगा कि बात यहीं समाप्त हुई तो वह अपूर्ण रह जायगी।

परम पुरुषार्थ धर्म नहीं है, मोक्ष है और वह निवृत्ति साध्य है। लगभग सूत्र सुना दिया मिश्रजीने—'इसीलिये त्यागपूर्वक भोग—त्यागके लिये भी प्रवृत्ति इष्ट नहीं है मन्त्र-द्रष्टा ऋषिको।'

सहायताको सीघे भगवान्से आने दो

दूसरोंकी सहायता करनेकी कामनाके चक्करमें मत पड़ो—तुम स्वयं आन्तरिक साम्यावस्थामें रहते हुए वहीं करो अथवा बोलो जो उचित हो और सहायताको सीधे भगवान्से ही उनके पास आने हो। पकमात्र भगवत्कृपाको छोड़कर दूसरा कोई वास्तवमें मदद नहीं कर सकता।

शिक्षा-प्राप्तिके बाधक और साधक कारण

(हेखक-श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा)

मानवके निर्माणमें शिक्षाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जन्मसे ही कोई प्राणी संसार-व्यवहारकी कलामें निपुण नहीं होता, एवं जीवनकी सार्थकता एवं निरर्थकताको ही वह नहीं जानता है, पर क्रमशः दूसरोंके द्वारा उसे ज्ञात या अज्ञातरूपमें शिक्षा या उपदेश मिलता रहता है, जिससे वह अपने जीवनको सुसंस्कृत बना लेता है एवं संसार-व्यवहारमें कुशल वन जाता है। सबसे पहले वह दूसरोंका अनुकरण करता है; क्योंकि वह दूसरोंकी भाषा तो समझ नहीं सकता, इसलिये आसपासके व्यक्ति—उसके माता-पिता आदि जो कुछ भी व्यवहार करते हैं, उसे वह ऑखोंसे देखता है; और उसमें तदनुकूल प्रवृत्तिके संस्कार बढ़ते चले जाते हैं। दूसरोंकी बातोंको मुनते-मुनते वह शब्दोंकी ध्वनिको ग्रहण करने लगता है और कुछ वड़ा होकर अपने भावोंको व्यक्त करने और दूसरोंके भावोंको समझनेकी योग्यता भी प्राप्त कर लेता है। फिर तो उसे विधि और निषेधरूप शिक्षाएँ समय-समयपर मिलती रहती हैं भीर उनके द्वारा वह निश्चय करने लगता है कि कौन-सा काम करनेसे मुझे हानि उठानी पड़ेगी और किन कामोंसे मुझे लाभ होगा । मेरे हितैषी और बड़े-बूढ़े अनुभवी व्यक्ति जिन कामोंको करनेका निषेध करते हैं एवं जिन कामोंको करनेकी आज्ञा देते हैं, उनकी आज्ञा मुझे स्वीकार करनी चाहिये, इसीमें मेरा हित है। पर तबतक उसके सामने दो समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं। जब वह यह देखता है कि मेरे लिये जो विधि-निषेध किया जा रहा है, उसका पालन विधि-निषेध करनेवाले स्वयं भी नहीं करते। तब वह सोचनेको बाध्य होता है कि जब ये जिन बुरे कामोंको पुरे बतलाते हैं और करते भी हैं, और जो काम अच्छे बतलाते हुए भी नहीं करते हैं, तन ये शिक्षाएँ क्या मेरे लिये या दूसरोंके लिये ही हैं, उनके स्वयंके लिये नहीं। वे निषिद्ध कामोंको क्यों करते हैं, और अच्छे कामोंको क्यों नहीं करते ? वे मुझे सत्य बोलनेकी शिक्षा देते हैं, पर स्वयं झ्ठ वोलते हैं। और कई वार तो मुझसे भी झ्ठ बुलवाते हैं। जैसे स्वयं घरमें होते हुए भी कोई व्यक्ति उनको वाहरसे पुकारता है तो मुझे उसे यह जवाब देनेके

न।

शन

ार्ड

छ,

वर्भ

केन

का

र्जन

लग

गके

कार

कार

द्वे

इरने

रव-

बेना

घम

बात

ित्त-

लिये

F7-

इते

हो।

विन्द

लिये वाध्य करते हैं कि जाकर उनसे कह दे कि वे अभी घरमें नहीं हैं।

दूसरी समस्या उनके सामने तब उपस्थित होती हैं। जब कि वह दो व्यक्तियोंको विरोधी बात कहते हुए देखता है। दोनों उसके हितैधी हैं या हितेषी होनेका दिखाबा करते हैं। उनमेंसे एक व्यक्ति कहता है कि यह करना ठीक हैं। दूसरा व्यक्ति यह कहता है कि यह नहीं करना चाहिये। एक उसकी हानियाँ बतलाता है, दूसरा उसके लाभ। अब वह किसकी बात माने और कैसा आचरण करे ? इसका वास्तिवक निर्णय या तो वह बुद्धिके परिपक्व होनेपर या उस कामके करनेपर हानि या लाभ ख्वयं उठाकर अनुभव करनेपर कर सकता है।

बालककी शिक्षा पहले घरसे प्रारम्भ होती है। फिर उसे विशेष शिक्षित करनेके लिये शिक्षालयोंमें भेजा जाता है, जिससे गुरुजनोंके पास वह अपना बौद्धिक विकास करता हुआ इस योग्य वन जाय कि अपने भले-बुरेका निर्णय स्वयं कर सके। वुद्धि, विचार और विवेकमें गतिशील आन्तरिक शक्तियोंका विकास होकर वह जीवन-क्षेत्रमें सफल वन सके, यही शिक्षाका उद्देश्य है। पहले वह पुस्तकों और गुरुजनोंके मुखसे शिक्षा प्राप्त करता है और पुस्तकोंको समझनेके लिये अक्षर-ज्ञानसे उसकी शिक्षा प्रारम्भ होती है। फिर उसकी वुद्धिके अनुसार उसे विविध विषयोंका ज्ञान कराया जाता है। स्वयं सोचने और समझनेकी योग्यता प्राप्त हो जानेपर विद्यालयोंकी शिक्षाकी पूर्णांहुति होती है। उसके बाद वह जीवनमें अनुभवोंके द्वारा आगे बढ़ता है। दूसरोंके अनुभवोंसे लाभ उठाता है और स्वयंके अनुभवोंसे भी शिक्षा ग्रहण करता है। इसीलिये शास्त्रीय या मौखिक ज्ञानसे अनुभव-ज्ञानका महत्त्व अधिक वतलाया गया है।

वैसे तो सनुष्यको सारे जीवनमें ही शिक्षा ग्रहण करते रहना चाहिये; क्योंकि जानका कोई अन्त नहीं है। उसका विकास जितना भी किया जाय, वह स्वयं उसके लिये एवं समाज तथा देशके लिये लाभप्रद है ही, पर जीवन-संवर्षमें मनुष्य सफलतापूर्वक आगे बढ़ता जाय, इतनी शिक्षा प्राप्त करना तो प्रत्येकके लिये परमावस्यक है। बौद्धिक-विकास

लाभालाभका स्वयं निर्णयके उपयुक्त हो जाय तो वह जिस काममें भी प्रगति करेगा, उसमें सफलता प्राप्त होती रहेगी। आगेका मार्ग वह स्वयं खोज निकालेगा और जो विघ्न-वाधाएँ आयेंगी, उनको भी वह दूर कर सकेगा।

शिक्षा-प्राप्तिके लिये वाधक और साधक कारणोंको भी जान लेना प्रत्येक शिक्षार्थींके लिये आवश्यक है। बाधक कारणोंको भलीभाँति जानकर उनसे दूर रहना या उनको हटाना जरूरी है और साधक कारणोंको अपनाना भी आवश्यक है, जिससे शिक्षा-प्राप्ति सुगम हो जाय और वह आवश्यक परिमाणमें प्राप्त होकर आगे भी उसका विकास होता रहे।

भगवान् महावीर भारतके एक महान् धर्मप्रवर्तक तीर्थकर—महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने स्वयं साधनाके द्वारा अपने जीवनको परमोच पदतक पहुँचाया अर्थात् परमात्म-स्वरूप बन गये और दूसरोंके जीवनको भी उस स्थितितक पहुँचानेके लिये सद्-धर्म सद्-उपदेश यानी सत्-शिक्षाका प्रचार किया। उनकी अन्तिम समयकी वाणी 'उत्तराध्ययन सूत्र' में संकलित की गयी है। उसके ११ वें अध्ययनमें शिक्षा-प्राप्तिके पाँच बाधक कारण वत्तलाये गये हैं—

- (१) अभिमान, (२) क्रोध, (३) प्रमाद, (४) रोग, (५) आलस्य—ये पाँच बातें जिस व्यक्तिमें हों, उसे शिक्षा उचित रूपमें प्राप्त नहीं हो सकती। अतः शिक्षार्थीको इनका परित्याग करना चाहिये। अव इनमेंसे एक-एक कारणपर संदेपमें विचार किया जाता है—
- (१) अभिमान—जब व्यक्ति अपनेमें कोई भी विशेषता देखता है—चाहे वह जाति, कुल, बुद्धि, सम्पत्ति, शक्ति किसी भी वातकी हो, तब उसमें अभिमान जाग्रत् होता है कि में अमुक बातमें दूसरोंकी अपेक्षा अधिक योग्य हूँ या आगे बढ़ा हुआ हूँ। दूसरे मेरे सामने तुच्छ हैं, हीन हैं। ऐसा अहंभाव आते ही उसका विकास रुक जाता है। गुरुजनोंके या गुणी पुरुषोंके प्रति विनय या आदरभाव हुए विना हम उनकी प्रसन्तता या कृपाको प्राप्त नहीं कर सकते और जब उनका हृदय हमारे लिये खुलता नहीं, तब कोई भी रहस्त्रकी बात यानी विद्याका मर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवल दैसेके बलपर—उन्हें अपनी आजीविकाके लिये पढ़ाना पड़ता है, अतः अक्षर और विषयका ज्ञान भले ही उनसे प्राप्त हो जाय, पर रहस्य यानी मर्म प्राप्त नहीं होता। इसीलिये कहा गया है कि विनयके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। और विद्या

प्राप्त होनेपर भी यदि उसमें विनय नहीं है तथा अहंकार आ गया है तो सच्चे ज्ञानका विकास नहीं होगा। विनय लघुतासे प्राप्त होती है। व्यक्ति अपने सामने जब अधिक गुणवान् व्यक्तिको देखे तो उसका सिर तत्काल उसके चरणों छुक जाना चाहिये। विनम्रता विद्यार्थीं के लिये ही नहीं, शिक्षकके लिये भी उतनी ही आवश्यक हैं; क्योंकि आखिर सम्पूर्ण ज्ञान तो किसीके पास है ही नहीं। संसारमें एक-से-एक बढ़कर व्यक्ति बैठे हैं। अतः उनके प्रति आदर-भाव होना अत्यन्त आवश्यक है। जहाँ अभिमान बढ़ा कि विकास रका।

- (२) क्रोध—क्रोधमें व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। उसे क्या बोलना चाहिये तथा क्या करना चाहिये, इसका वह भान भूल जाता है। क्रोधी व्यक्तिको दी हुई शिक्षाएँ प्रायः व्यर्थ जाती हैं; क्योंकि क्रोधके समय उसमें शिक्षा ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रह पाती । बहुत बार तो उस समय दी हुई शिक्षाका विपरीत परिणाम भी होता है। उस समक्ष उसके हितकी कही हुई बातोंको भी वह उलटी समझकर उपेक्षा कर देता है । क्रोध शान्त हो जानेपर उसे धीरज और शान्तिसे मीठे वचनोंद्वारा जो भी शिक्षा दी जायगी उसपर वह विचार करेगा, उसका असर अच्छा होगा। क्रोधके समय विचार करनेकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है। कोष तो एक प्रकारकी आग है । उसमें अच्छी और बुरी जो भी चीज पड़े, जलकर स्वाहा हो जाती है। इसीलिये क्रोधी व्यक्ति शिक्षाके लिये अपात्र है। शिक्षार्थीको सदा क्रोधको दबाये रखनेका प्रयत करना चाहिये। जिन प्रसङ्गोंसे क्रोध उत्पन्न हो, वैसे प्रसङ्गोंसे दूर या हटे रहनेका प्रयत्न किया जाय / क्रोधके उपशान्त होनेपर मनमें बहुत पश्चात्ताप होना चाहिये। तव शान्त चित्तसे विचार करना चाहिये कि मुझे क्रोध आया क्यों ? और भविष्यमें वह न आये, इसके लिये मनोबल बढ़ाना चाहिये। क्रोधसे प्रीतिका नाश होता है और विचार एवं विवेक-शक्ति कुण्ठित हो जाती है।
- (३) प्रमाद—असावधानी जीवनको वर्बाद करती है। थोड़ी-सी भी गलतीसे बहुत बुरा परिणाम भोगना पहता है। अजामत् दशा यानी असावधानी ही प्रमाद है। वैसे प्रमाद के पाँच या आठ प्रकार जैन-आगमों में बतलाये हैं, जिनसे मनुष्य अपना भान भूलता है। अपनी शक्ति, साधन और समयक्ता सदुपयोग नहीं कर पाता, अपितु दुरुपयोग करके वर्बाद करता है। पाँच प्रमाद इस प्रकार हैं—(१) मद्य, (२)

रि

14

1

विषय, (३) कषाय, (४) निद्रा, (५) विकथा। इनमें (१) शराब या किसी भी प्रकारका व्यसनः जिससे व्यक्तिमें उन्माद या नशा छा जायः अपने आपको भूल जायः उसे भद्यं कहते हैं । (२) पाँच इन्द्रियोंके तैंतीस विषयोंकी आसक्तिको 'विषय' कहा जाता है। खाने-पीनेमें चटोरापना जिह्ना-इन्द्रियकी आसक्ति है, अतः विद्यार्थियोंके लिये तो सादा भोजन ही लाभदायक है । कुल्सित दृश्योंको देखने हियों आदिके रूपकी आसक्ति भी मनुष्यमें विकार जाग्रत करती है और विद्यार्थियोंके लिये तो विकारभाव एक महान विष है। इसी तरह गंदी वातें कहना, गंदे गाने सनना, अइलील साहित्य पढ्ना, शरीर-वस्त्राभूषणमें फैशनेवल रहना। खूब इत्र-फुलेल लगाना—ये सब पाँच इन्द्रियोंके विषय हैं। इनमें आसक्त रहनेसे शिक्षामें ध्यान नहीं रहता। चित्त इधर-उधर भटकता रहता है। विषय-मुखोंमें मग्न हो जानेसे अधिकांश समय व्यर्थ चला जाता है, पढनेमें ध्यान— चित्त नहीं लगता । (३) कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ-कषायके चार भेद हैं। इनमें क्रोध और अभिमानका कुछ विवरण ऊपर आ चुका है । माया अर्थात् कपट-बाहर कुछ, भीतर कुछ; दिखावा अधिक, भीतर शून्य—इस तरहकी धूर्तता या कपट शिक्षामें वाधक है ही। शिक्षार्थीको सरल होना चाहिये, कुटिल कदापि नहीं । लोभ तो सब अनथौंका मूल है। लोभी व्यक्ति अपना खार्थ साधनेमें तल्लीन रहता है। वह हित-शिक्षाको प्रहण नहीं करता । शिक्षार्थीको तो शिक्षा-का ही लोभ होना चाहिये । उसे वह अधिकाधिक ग्रहण करता नाय। अन्य वस्तुओंका लोभ उसके लिये गौण हो, शिक्षा ही प्रधान है। तभी वह आगे बढ़ सकता है। (४) निद्रा-शिक्षार्थीको अधिक सोना भी बाधक है । दिनमें तो सोना ही नहीं चाहिये । रातमें भी छः या सात घंटे, जितना भी शरीरको स्वस्थ बनानेके लिये आवश्यक हो, गहरी नींद ले लेना पर्याप्त है। प्रातःकाल जल्दी उठनेकी आदत डाली बाय; क्योंकि उस समयकी पढ़ाई और चिन्तन अधिक ल्यभपद है। रातको अधिक देरतक जागना भी ठीक नहीं; स्योंकि रातको देरतक जागनेवाला प्रातःकाल जल्दी नहीं उठ सकता। उठता है तो नींदकी कमी रहनेसे शरीरमें स्फूर्ति नहीं रहती, उत्साह नहीं रहता । (५) विकथा-व्यर्थकी बातें करना विकथा है । आवश्यकतासे अधिक बोल्ना वाक्शक्तिका दुरुपयोग है। गृष्वें भारनाः दूसरोंकी निन्दा करना । राजकथा, देशकथा, भोजनकथा और स्त्री-

कथाको विकथा कहा गया है। शिक्षार्थी इनसे बचे। अधिक बोलनेवाला—वाचाल कभी गहरा चिन्तन नहीं कर सकता। उसका अमूल्य समय व्यर्थ ही चला जाता है।

(४) रोग—शरीर एक विशिष्ट साधन है, उसे सँभालकर रखना आवश्यक है। मनके साथ खास्थ्यका गहरा सम्बन्ध है। रोगी व्यक्तिका चित्त शान्त और व्यवस्थित नहीं रहता, इसिल्ये वह शिक्षा भलीभाँति प्राप्त नहीं कर सकता। रोगी समयपर विद्यालयमें नहीं पहुँच पाता और पहुँच भी जाय तो उसका मन व्यय रहता है। शारीरिक पीड़ासे शिक्षामें बाधा आती है, यह प्रत्यक्ष ही है एवं सभीका अनुभव भी है। इसिल्ये जहाँतक हो रोग उत्पन्न ही न हों, शरीर स्वस्थ रहे, इसका शिक्षार्थी पूरा लक्ष्य रक्खे और शरीरमें रोग हो तो उसके निवारणका तत्काल उपाय करे। व्यायाम आदि करता रहे। मनको भी शान्त एवं स्वस्थ बनाये रक्खे।

(५) आरुस्य—आलस्य और कर्मका वैर प्रसिद्ध ही है। आलसी व्यक्ति पीछे कहँगा, फिर कर लूँगा' सोचता रहता है। और काम करनेका समय निकल जाता है या वह काम कर ही नहीं पाता। शिक्षार्थीको अपना समय विल्कुल नहीं खोना चाहिये और आलस्यको तो पास ही न फटकने देना चाहिये। आजका काम कलपर और अमीका काम पीछेके लिये नहीं छोड़ा जाय। जिस समय जो काम करना हो, पूरे मनोयोगसे किया जाय। आलस्य हमारा महान् शत्रु है। शिक्षार्थीको तो तनिक भी आलस्य नहीं करना चाहिये।

अब शिक्षार्थीके आठ गुणोंको, जिनका 'उत्तराध्ययन सूत्र'के उसी अध्ययनमें विवरण मिलता है, नीचे दिया जा रहा है। शिक्षामें सहायक समझकर इन गुणोंको धारण करना आवश्यक है।

- (१) शान्ति—वह व्यक्ति हास्य-क्रीड़ा न करे । सदा शान्त चित्तसे आदेश प्रहण करे । गम्भीर रहे । अधीर न हो ।
- (२) इन्द्रियदमन—जो मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में लगा रहता है वह शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता । इसलिये शिक्षार्थी-को इन्द्रियोंका दमन करना चाहिये।
- (३) स्वदोष-दृष्टि—वह व्यक्ति सदा अपने दोषोंको दूर करनेमें प्रयत्न करें । दूसरेके दोषोंकी तरफ ध्यान न देकर गुण ही प्रहण करें ।

- (४) सदाचार—अच्छे चाल-चलनवाला होना चाहिये।
- (५) ब्रह्मचर्य-वह व्यक्ति पूर्ण या मर्यादित ब्रह्मचर्य-का पालन करे । अनाचारका सेवन न करे ।
- (६) अनासिक —विषयों में अनासक होना चाहिये; इन्द्रिय-छोछुप नहीं होना चाहिये।
- (७) सत्याग्रह—इमेशा सत्य बातको स्वीकार करनेके लिये तैयार रहना चाहिये। जहाँ भी अपनी भूल हो तो तत्काल स्वीकार कर ले और उसे दूर कर दे।
- (८) सिहण्ता—सहनशील और धैर्यवान् होना चाहिये। क्रोधी नहीं होना चाहिये।

वास्तवमें वाधक कारणोंको दूर करना ही साधनाके समीप पहुँचना है। उपर्युक्त आठ गुण जिन्हें साधक कारण कह सकते हैं, उनमेंसे पाँच तो बाधक कारणोंको निवृत्ति-रूपसे हैं जैसे—क्रोधकी निवृत्तिसे शान्त भाव पैदा होता है। इन्द्रिय-दमन ही विषय-निवृत्ति है। ब्रह्मचर्य स्वास्थ्यके लिये बहुत आवश्यक है। अभिमानी व्यक्ति अपने दोषोंको नहीं देखता और दूसरोंके गुणोंको सम्मान नहीं देता। प्रमादी व्यक्ति अनासक्त नहीं होता। आलस्य भी एक तरहका प्रमाद ही है। फिर भी शिक्षार्थोंके लिये जो आठ गुण ऊपर वतलाये हैं वे बड़े महत्त्वके हैं। अपने दोषोंके प्रति सजग रहना, सदाचारका पालन, ब्रह्मचर्यका पालन एवं सत्यको स्वीकार करनेके लिये हर समय तैयार रहना, सिहण्णुता और शान्ति

धारण करना शिक्षार्थींके लिये बहुत ही आवश्यक है। धैर्य, गाम्भीर्यका भी शान्ति और सहिष्णुतामें समावेश हो जाता है। विद्यार्थीका जीवन नियमित एवं संयमित हो। वह लक्ष्यकी पूर्तिमें निरन्तर प्रगतिशील रहे । इन्द्रियों और मनको इधर-उधर भटकने न दे । जिज्ञासा-वृत्ति प्रवल हो । प्रयत्नमें शिथिलता न आने दे। असफलताओं में भी घवराये नहीं, धीरज रक्खे और अपना प्रयत चालू रक्खे । निरन्तर अभ्यास-से कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं, यह सदा ध्यानमें रक्खे। दुर्व्यसनों तथा कुसंगतिसे सदा बचता रहे। सत्-संगतिका अवसर न चूके । मैत्री भाव बढ़ाता जाय, विवेक न खोये । दूसरोंके गुणोंको छें, परंतु दोषोंको न अपनाये। सभी स्त्रियोंमें माता या बहनका भाव रक्खे, उनका आदर करे और विषय-वासनाओंमें न फँसे । गुणीजनों तथा गुरुजनोंका आदर-उनसे विनयपूर्ण व्यवहार करे । सब समय विद्यार्थी ही बना रहे । स्वाध्याय परम तम है अतः उसे नियमित करता रहे । आलस्य न करे। सब काम नियत समयपर नियमित करता रहे। सेवा परमधर्म है। उसका जव भी मौका मिले, हाथसे न जाने दे। शिक्षाका उद्देश्य है—पंस्कारित जीवन-कलाको जानना, पर केवल जान लेनेसे ही काम नहीं चलेगा, तदनुसार आचरण भी आवश्यक है। ज्ञान दूसरोंसे पाते हैं तो उसका वितरण भी करते हैं, तभी वह वढ़ेगा। व्यावहारिक एवं धार्मिक शिक्षण अवस्य प्राप्त करें और विद्याका गर्व न करें।

कामना

नैव दिव्यसुखभोगमर्थये नापवर्गमिप नाथ कामये। यान्तु कर्णविवरं दिने दिने कृष्णकेळिचरितामृतानि मे॥ अहो अहोभिर्न कळेविंदूयते सुधासुधारामधुरं पदे पदे। दिने दिने चन्दनचन्द्रशीतळं यशो यशोदातनयस्य गीयते॥

हे नाथ ! मैं न तो देवताओंका सुख चाहता हूँ, न मोक्ष ही चाहता हूँ । मेरी तो यही प्रार्थना है कि श्रीकृष्य-ठीळा-चरित-सुधा ही मेरे कानोंके अंदर निरन्तर प्रवेश करती रहे ।

अहो ! जो पुरुष पद-पदपर सुधाकी सुन्दर धारासे भी मधुर एवं चन्दन तथा चन्द्रमासे भी शीतल श्रीयशोदानन्दनके यशका प्रतिदिन गान करता है, वह कलियुगके क्वेशोंसे कभी पीड़ित नहीं होता ।

मुख्य है कर्ताके हृदयकी भावना

(लेखक--पं० श्रीविश्वनाथजी मिश्र, साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्त्र)

इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य जैसा सोचता, समझता और विचार करता है, प्रायः वैसा ही बन जाता है। आजतक संसारमें जितने भी महापुरुष हो गये हैं, उन सवोंने अपने और दूसरोंके विषयमें हमेशा अच्छा ही सोचा है तथा उनके विपरीत अनिष्ठ सोचनेवाले सदा दुखी, जीवनसे उदासीन एवं पतनोन्मुखी बने रहे हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्यके भीतर जिस तरहकी भी भावना होती है, उसीके अनुरूप उसके जीवनके सारे कार्य-कलाप होते रहते हैं। देखने-सुनने, पारस्परिक व्यवहार करने, चलने-फिरने आदि सभी क्रियाओंमें भावनाका संयोग रहता है। धर्म-शास्त्र भी इस बातका समर्थन करते हैं कि मनुष्य मरते समय जिस तरहका भाव अपने हृदयमें रखता है, उसीके अनुसार उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति होती है। गीतामें लिखा है—

र्थ,

ाता की

वर-

नमें

हीं,

स-

वे।

का

रे ।

ोंमें

य-

वना

1 1

रता

थसे

को

नार

का

एवं

1 7

雨

तल

पं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

अर्थात् हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भावको स्मरण करता हुआ शरीर-त्याग करता है, वह उस-उस भावको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहता है।

मनुष्यकी भावनाओंका प्रभाव बाह्य शरीरपर भी लक्षित हुए बिना नहीं रहता। पापी, कुकर्मी और आततायियोंकी बाह्याकृति ही बतला देती है कि यह ऐसा आदमी है। यहाँपर मुझे एक छोटी-सी कथा याद आ रही है। एक रानीको एक दूसरा प्रवल राजा जबर्दस्ती अपनी राजधानीमें ले गया। रानीने अपनी इज्जत बचानेके लिये उससे यह कहा कि मैं छः महीनेतक एकान्तमें रहकर व्रत कहाँगी। राजाने उसके मनोऽनुकृल सारी व्यवस्था करवा दी। वह बराबर यह सोचने लगी—'मैं कुरूपा हूँ। मेरे शरीरमें यड़े-बड़े घाव हो गये हैं। लहू और पीवसे दुर्गन्ध निकल रही है और घावोंपर मिक्तवाँ भिन-भिना रही हैं। छः महीने व्यतीत होते-होते उसका शरीर ठीक वैसा ही कुरूप हो गया। कामातुर राजा जब उसके पास गया और उसने उसकी यह हालत देखी तो वह भयसे काँप गया। उसने तुरंत ही उसे उसके पतिके पास

वापस भेज दिया । पतिके यहाँ जाकर उसने उसे आश्वासन दिया कि सतीत्वकी रक्षाके छिये ही मैंने ऐसा किया है और छः महीनेमें फिर पूर्ववत् आपकी सेवायोग्य हो जाऊँगी । उस दिनसे वह फिर एकान्तमें रहकर सोचने लगी---भौं चंगी हूँ। सारे त्रण दूर हो गये हैं। शरीर सुन्दर हो गया है । रूप-लावण्य छा गया है । सुगन्धकी लपटें निकलने लगी हैं। कहते हैं कि छः महीने समाप्त होते-होते उसमें इच्छित परिवर्तन आ गया और वह अपने पतिके साथ सानन्द जीवन-यापन करने लगी। मेरा प्रयोगातमक अनुभव है। मैं प्रतिदिन प्रातःकाल टहलने जाया करता था। एक दिन एक तरुण, जो अत्यन्त दुर्बल था, मुझे मिला । डाक्टरने शायद उसे हवाखोरो करनेकी सलाह दी थी। उसकी मुखाकृति देखनेसे यह साफ माद्रम पड़ता था कि यह व्यक्ति जीवनसे पूर्णतः निराश है। मैंने उससे बातें कीं। सचमुच संसारका वह बहुत बड़ा दुखी प्राणी था । मैंने उससे कहा-'आपकी बीमारी अवश्य अच्छी हो जायगी, आप इसी प्रकार प्रतिदिन टइलनेका क्रम बनाये रिखये।' मेरी बात सुनकर उसके मुख-मण्डलपर प्रसन्नताकी एक इल्की-सी रेखा दौड़ गयी। दूसरे दिन भी वह मुझे मिला। मैंने हँ सते हुए कहा-'आज तो आप बहुत प्रसन्न दीख पड़ रहे हैं। मालूम होता है आपकी बीमारी दूर होती जा रही है। मेरी बात सुनकर उसने साश्चर्य पूछा- 'क्या आप सच कह रहे हैं ? सचमुच आज मुझे पहलेकी अपेक्षा प्रसन्नताका अधिक बोध हो रहा है !' उस दिनसे जब वह मुझसे मिलता मैं बराबर उससे स्वस्थ होनेकी वात कहता और वह सोलास उसका अनुमोदन भी करता। उसकी भावनाएँ बदल गर्यी और वह कुछ ही दिनोंमें पूर्णतया स्वस्थ हो गया।

हमारी भावनाका प्रभाव दूसरेके ऊपर भी पड़े विना नहीं रहता । जिसके सम्बन्धमें हम सदैव बुरी भावना रखते हैं, वह कभी भी हमारे प्रति अच्छी भावना नहीं रख सकता । हम अपनी बाह्य चेष्टाओंद्वारा भले ही दिखलानेकी कोशिश करें कि अमुकके प्रति हमारे भीतर कोई अनिष्टकर बातें नहीं हैं, पर ऐसा करनेका कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता । वहाँपर उस कृत्रिम आवरणका सारा रहस्य खुल जाता है और वास्तविक भावना सम्मुख आकर नाचने लगती है।

भावनाका जादू दृश्य-पदार्थोंपर भी चलता है । हम जिस भावनासे उद्देलित होकर किसी पदार्थका अवलोकन करते हैं, वह पदार्थ हमें तदनुकूल दिखलायी पड़ता है। इस बातका प्रमाण और कहीं न दूँढ़कर गोस्वामीजीकी प्रसिद्ध रचना रामचरितमानसमें ही द्वॅंदा जाय । श्रीराम-चन्द्रजी जनकपुरकी रंगभूमिमें विराजमान हैं। सभी छोग उन्हें एकटक देख रहे हैं। यद्यपि देखनेका कार्य सभी-के-सभी एक ही माँति कर रहे हैं, पर पृथक्-पृथक् भावनाओं-के कारण श्रीरामका स्वरूप तदनुसार ही दीख पड़ रहा है। दूर-दूरसे आनेवाले महत्त्वाकाङ्की नृपतिगण उन्हें भयंकर मुद्रामें देख रहे हैं, जनक और उनकी रानी मुनयनाको वात्सल्यभावके कारण परम मुकुमार बालक-सरीखे लक्षित होते हैं, सिखयाँ और उनकी हृदयेश्वरी जानकी एक साँवले-सलोने, लोकातीत लावण्यमण्डित दूरहेके रूपमें निहार-कर आनन्दातिरेकमें मुध-बुध खो रही हैं तथा इसी प्रकार अन्यान्य नर-नारी उन्हें नाना रूपोंमें अपने भावनानुसार देख रहे हैं। गोस्वामीजीने अधिक न लिखकर सबके सार-रूपमें यह व्यक्त कर दिया है कि-

ंजिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरित तिन्ह देखी तैसी॥

हमने बहुतसे बोदे और कमजोर छात्रोंको यह विश्वास दिलाकर कि, 'तुम पढ़ने-लिखनेमें बहुत अच्छे हो' तेज और अध्ययनशील बना दिया है। उनके जीवनका विश्लेषण करके देखा है कि लोगोंके द्वारा हीनताकी भावना भरे जाने-की वजहसे ही उनकी स्थिति वैसी दयनीय हो गयी थी। अपढ़ और नासमझोंके मुँहसे कभी-कभी यह बात मुननेको मिल्ती है कि सराहनेसे लड़के बिगड़ जाते हैं किंतु उनकी यह धारणा भ्रान्त है। सभ्य, मुशिक्षित और मनोविज्ञानसे थोड़ा भी सम्बन्ध रखनेवाला व्यक्ति अपनी संतानके सामने भूलकर भी कोई ऐसी बात नहीं करता जिसके कारण उसके मस्तिष्कमें हीनताकी ग्रन्थि पड़ सकती है। इतिहास और साहित्य इस बातके प्रमाण हैं कि कवियोंने भूरि-भूरि प्रशंसाओं-

द्वारा ही अपने आश्रयदाता राजाओंको अन्य बल्छि राजाओं और बादशाहोंके साथ भिड़ाकर उन्हें वाञ्छित विजयश्रीकी उपलब्धि करायी है। यहाँपर हम भूषण, चन्द प्रभृति चारणोंके नाम लेनेका लोभ संवरण नहीं कर सकते। आधुनिक कवियोंकी रचनाओंने हमारे देश के अगणित नवयुवकोंकी धमनियोंमें देशभिक्तकी धारा बहाकर उन्हें खुशी-खुशी आत्मोत्सर्ग कर डालनेको उद्यत कर दिया। कहाँतक गिनाया जाय, इसके अनेकानेक उदाहरण स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित हैं। देहातोंमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'सराहे भीम दूना।' अर्थात् सराहना करते ही भीमकी शक्ति दूनी हो जाती थी। हनुमान्जीके साथ भी शायद यही बात थी। कहनेका मतलब यह है कि सराहनाका प्रभाव प्रत्येक व्यक्तिके ऊपर हितकारी होता है।

लोगोंकी ऐसी धारणा है कि भारतवर्षमें अधिकांश व्यक्ति अल्पायु होते हैं। इसका भी प्रधान कारण कुभावना है। तीस वर्षोंके बाद प्रायः लोग सोचने लग जाते हैं कि अब क्या, अब तो हम बूढ़े हो चले।' सचमुच उसी समयसे उनमें वार्द्धक्यके सारे लक्षण नजर आने लगते हैं। पहलेकी 'सहा तब पदा' वाली बात अब न रह गयी। अब तो बिरले ही व्यक्ति ऐसे मिलते हैं जो अपने जीवनके सौ वसन्तोत्सव मना पाते हैं। आज भी किसी साठ-सत्तर वर्षके युरोपियनको यदि वृद्ध कह दीजिये तो वह आपकी बातपर हँसे बिना न रहेगा। परिणामस्वरूप उनकी आयु भी शताब्दी पार कर जाती है।

वैज्ञानिकोंने भी यह सिद्ध किया है कि जो वस्तु जितनी सुक्ष्म होती है, उसमें उतनी ही शक्ति विद्यमान रहती है। भावना अणुओं और परमाणुओंसे भी सुक्ष्मतम है, एतदर्थ उसकी शक्तिकी कोई इयता नहीं।

भावना एक कल्पवृक्ष है। जिस प्रकार कल्पवृक्षके निकट जाते ही मनोऽभिल्पित फलकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार भावनानुसार फल मिलनेमें संदेह नहीं करना चाहिये। सभी प्रकारकी उन्नतियोंका मूल भावना ही है। अत्प्व अपने स्वर्णिम-जीवनके लिये सद्भावनाएँ अत्यन्त अपेक्षित हैं।

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक--सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रक्ककुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गतवर्ष पृष्ठ १३७४ से आगे]

बदरीनाथ-मार्गपर चलनेके उपरान्त हमने पीपलकोटीसे ९ मील आगे अपने द्वितीय पड़ाव गुलावचद्दीतक इस मार्गकी जो वन-सम्पदा, प्राकृतिक दृश्य आदि देखे, उसका संक्षेपमें उल्लेख हम पी छे कर चुके हैं। अब हम पीपलकोटीसे पाण्डकेश्वरतककी २७ मीलकी यात्रा कर चुके थे और पाण्डुकेश्वरसे ६ मील आगे हनुमानचट्टीके अपने अल्पकालीन पडावकी यात्रापर थे। हनुमानचडीसे बदरीनाथ केवल ५ मील रह जाते हैं, अतः हमने बदरीनाथ आज ही पहुँचनेका संकल्प कर लिया था। पीपलकोटीसे २७ मीलकी इस यात्रामें तथा पाण्डुकेश्वरसे प्रस्थानके साथ ही हमने जो देखा और देख रहे थे; जो अनुभव किया और अनुभव कर रहे थे, उसका यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किये विना आत्मतृति न होगी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है इस मार्गकी शिखरावली यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी और केदारनाथकी शिखरावलीसे सर्वथा भिन्न है। इस मार्गकी सारी शिखरावली वृक्षों, पौधों और लताओंसे प्रायः रहित है। यही नहीं, मीलेंतक सर्वथा नग्न तृणविहीन । परंतु इतनेपर भी इस पार्वत्य प्रदेशमें अत्यन्त उत्तुङ्ग पाँच-पाँच हजारसे आठ-आठ हजार फुट ऊँची शिखरावलीका जैसा सौन्दर्य है, वैसा अन्यत्र देखासुना भी नहीं गया। इन शिखरोंमें अनेक स्थलोंपर विविध रंगके पाषाणोंका मिश्रण हुआ है। इनमें स्वेत, स्थाम, रतनार, केशरी, पीले, स्लेट रंगके, ऊदे, हरे और न जाने कितने रंग मिल गये हैं। यह प्राकृतिक पचीकारी अथवा मीना देखते ही बनता है। अनेक शिलाखण्डोंमें अभ्रककी आभा-सी एक विचित्र प्रकारकी चमक आ गयी है। रंग-विरंगे शिलाखण्डोंमें इस चमकके कारण जान पड़ता है मानो मीनाकारीमें रत जड़ दिये गये हों। ये शिखर वक्त्रमृतुके कारण अगणित जलप्रपातोंसे व्यात थे। कहा जाता है, वर्षाऋतुमें वम्बई और पूनेके बीचका सेहाद्रि शिखरोंका दृश्य वड़ा मुन्दर है। हमने उसे कई बार देखा है और वह मुन्दर है, इसमें संदेह नहीं । परंतु हिमालयके शिखरोंके इन दृश्योंके सम्मुख वह खिलौना जान पड़ता है। वर्षाके कारण अनेक स्थलींपर हरी थास उग आयी थी, फिर मार्गके निकट तथा कुछ शिखरोंकी न केवल मग-श्रमका निवारण होता, अपितु, एक दिव्य CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तलीमें सीढियोंके सहश जो खेत थे, उनमें धान लहलहा रहा था । यह प्राकृतिक और मनुष्यकृत सौन्दर्य स्पर्दा-सी कर रहा था। परंतुः उन उत्तुङ्ग और विशालकाय शिखरोंकी काया पावस-प्रभावसे सर्वथा रहित थी। तरु-ल्ताओं और झाड़ियोंकी तो कहे कौन, सुखा या हरित वास-पात तथा तृण भी हमें इन शिखरोंपर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। शिखरोंके इस रूपके सम्बन्धमें हमारे एक साथीने गोस्वामी तलसीदास-जीके इस कथनकी याद दिलायी-

ऊसर बरसइ तुन नहिं जामा । संत हृदयँ जिमि उपज न कामा ॥

गोविन्ददासने इनके इस समभावका तुलसीदासजीकी इस चौपाईसे मिलान किया-

संभु सरासन डिगइ न कैसें। कामी बचन सतों मन जैसें॥

जैसा ऊपर कहा गया है सारा मार्ग अलकनन्दाके किनारे-किनारे गया था। परंत केदारनाथके मार्गकी मन्दाकिनीके सदृश अलकनन्दाका बहाव मन्द-मन्द और शान्त न होकर भागीरथीके प्रवाहसे मिलता-जुलता था । वैसी ही आन-बान-शान । अवरोधमें वैसा ही तूफान और तूफानमें वैसा ही गान । अलकनन्दा भागीरथीकी अनुजा जान पड़ती थीं।

जोशीमठसे पाण्डुकेश्वरतक तथा अव आगेका मार्ग हमें हरियालीसे परिपूर्ण मिला। अलकनन्दाका तेज प्रवाह। फिर शीतल मन्द पवनके झोंके वातावरणमें स्निग्धता वनाये हुए थे। पीपलकोटीके बाद मार्गमें प्रायः वर्षा भी होती रही थी। बीच-वीचमें जब यह वर्षा रुक जाती तो पवनके मस्त झोंके चलते, फिर मैदानोंकी अपेक्षा पहाड़ोंपर और विशेषकर पावसमें वायुके इन झोंकोंमें एक प्रकारकी जो मस्ती रहती है, उसका अनुभव अपूर्व था । पाण्डुकेश्वरसे ही कुछ शीत बढ गयी थी, फिर इस वर्षाके कारण तो और; किंतु पदयात्राके कारण इस शीतका प्रभाव शरीरपर प्रतिकृल पड़ रहा था, यह श्रमहारी हो गयी थी और मगके चढाव-उतारसे थिकत अङ्गोंपर जब ये सघन बूँदें पड़तीं और ऊपरसे तनको सहलातीं, कपोलोंका चुम्बन-सा लेतीं, मस्त बयार चलती तो

लेष <u>ज्</u>त

गेत न्हें

ोंमें राहे

र्नी वात येक

রাহা

वना कि

उसी

हैं। 1

नके त्तर

रकी भायु

तनी इती

विम

क्षिके उसी

ह्ये ।

तएव 言 बुखानुभूतिसे पूरित हृदय और भाव-भंगिमामें यात्री इस उठता । वर्षाके कारण हमारे कार्यक्रममें कोई गड़बड़ी नहीं आयी, वरं इसके विपरीत वर्षाके कारण और वीच-वीचमें वर्षाके रुक जानेके कारण पल-पल परिवर्तित प्राकृतिक दृश्य अत्यधिक मनोहारीरूपमें हमारे सामने आते, जिससे द्विगुणित उत्साहसे हमारी यात्रा चलती । ऊपर मेघोंकी घटासे निर्झर होती वर्षा और उत्तुङ्ग शैल-शिखरोंसे श्वेत दुग्ध-धाराके सदश झरते प्रपात अमृतदृष्टि-सी करते । फिर उठते-बैठते ये मेवदल और सघन हरियालीके बीच विकलभावसे बहती अलकनन्दा अपनी अपूर्व छटा छिटका रही थी। ऐसे वातावरणमें हमलोग एक अपूर्व सुख और अव्यक्त भावनाओंमें डूबते-उतराते इस दुर्गम मगमें चल नहीं, सहज वह रहे थे। दृष्टिसे दूर श्याम शिखरोंपर शुभ्र हिम शोभायमान था, तो पथके निकट अलकनन्दाके प्रवाहकी सतहसे जमा वर्फ यत्र-तत्र अपनी दिव्य छटा विखेर रहा था । दृश्यसे ऐसा मालूम पड़ता मानो हिमवान् अपनी पुत्री अलकनन्दाको अपने गेहसे विदा करने नीचे आये हों। आगे हमने एक जगह देखा अलकनन्दाके प्रवाहके ऊपर बर्फका एक पुल है, पुलके नीचे बड़े वेगसे फेन-युक्त अपने स्वेत प्रवाहमें अलकनन्दा शानसे वह रही थी। अगणित निदयोपर इमने अगणित ही पुल आजतक देखे ये और पार किये थे किंत आज अलकनन्दापर प्रकृतिनिर्मित जो हिम-पुल हम देख रहे थे, उसकी शोभा ही कुछ और थी। जैसा ऊपर कहा गया है, इस ओरकी पर्वतमालाएँ पूर्विपक्षा सर्वथा भिन्न थीं। दीर्घाकार दूर-दूरतक योजनों फैले हुए, फिर ऊँचाई ऐसी जिसे दृष्टि न बेध सके, ऐसे उत्तङ्ग शिखरोंवाली पर्वत-मालाओंको देखकर हम आश्चर्यचिकत थे। जिस हिमालयके हमने वचानमें पाठ पढे थे जिसका स्तितिगान किया था, आज हम उसके आँचलमें थे और हैरान थे उसके इस अलैकिक रूपसे। इन नम पहाडोंके सम्मुख आज हम कितने नंगे थे, कितने कङ्गाल । हिमालय-की यात्रापर नर-कंकालसे लेकर कितने धनी-मानी, राजे-महाराजे, नरपति, अधिपति और महीपति आये हैं और आते हैं, कितने बड़े-बड़े योगी-यति, विरागी, वीतरागी, साधु-संन्यासी यहाँ रहे, अभी भी रह रहे हैं; इसी गोदमें देवगण और सरवालाएँ केलिकीड़ा करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं और नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर—सभी भोग-विलास-रत हो आमोद-प्रमोद करते हैं, कितने कलकल करते निर्झर झरने, शीतल सरिताओं और अनन्त जल-प्रपातोंसे यह न्यास है।

इसके आँचलमें पक्षीगण कलरव करते, मृग चौकड़ी भरते, सिंह नाद करते, हाथी चिग्घाड़ते और वाराह खच्छन्ड विचरते हैं। यह जग-जननीका पितृगेह है, भगवान् शिवकी साधना-भूमि और महापथके महान् पथिक पाण्डवोंकी महा यात्रा-भूमि । यह खनिज रलोंका आगार है । इसकी कथा अनल है। इसने रंकोंको नृपति होते देखा है और चक्रवर्ती सम्राटोंको रंक होते । अगणित साधनालीन साधकोंको भगवत्साक्षात्कार करते और अगणित ही तपस्यारत तपस्वियोंको पतित होते इसने देखा है। कौन कह सकता है इसकी कहानी ? कौन पाया है इसके वैभवका बङ्ज्पन ! इसकी स्तुतिसे वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और भगवद्गीता आदि प्रन्थ भरे पड़े हैं। आदि कवियोंने और गायकोंने इसके गीत गाये हैं, यह आज भी अपने आदिरूपमें उन्नत भाल किये एक सनातन सत्य रूपसे सृष्टिके सम्मुख खड़ा है। धन्य है वह धरा जिसने इसे पाया, भारत-महिमाका बखान करते हुए किसी कविने ठीक ही कहा है-

'कोट रहा चरणोंमें सागर, सिरपर मुकट हिमालय।'

यह मुकुटमणि हिमाल्य, जिसने भारतको पूर्णता प्रदान की, आज हमारे सामने था; हम उसकी गोदमें उसके इस महान रूपको अपने क्षुद्र चर्मचक्षुओंसे कहाँतक देख सर्केंगे! फिर इस प्रकारकी विशालता और बहुत दूरतक घास-पातः तर और तिनकोंसे रहित इसकी कायामें हमने जो कानित देखी, कभी उदित अरुणिम रवि-रिसम्योंमें, कभी चमचमाती प्रखर किरणोंमें, कभी आँखमिचौनी करती धूमिल संध्यामें और रात्रिके गहन अंधकारमें चमकनेवाली वनस्पतियोंके प्रकाशमें । उससे महाकवि कालिदासका हिमालय-वर्णन हमें याद आ गया । उन्होंने इसकी उपयोगिता और समस्त पृथ्वीको धारण करनेकी क्षमता रखनेका अधिकारी बताकर इसे ठीक ही पर्वतोंका अधिपति बताया है-

> यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य ह्यरं धरित्रीधरणक्षमं च । कल्पितयश्भागं प्रजापतिः स्वयमन्वतिष्ठत् ॥ शैलाधिपत्यं

और यही वजह है कि अनन्त रत्नोंकी खान होते^{के} कारण हिमसे इसकी शोभा इस प्रकार कम नहीं, गुणोंके समूहमें शशिका एक दोष उसकी शीतल किर^{णोंके} त जल-प्रपातसि यह न्यास है। प्रकाशमें छिपा रहता है। कालिदास लिखते हैं— CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रते,

छन्द वकी

ात्रा-

नन्त

टोंको

त्कार

होते

कौन

राण,

प्रन्थ

गाये

एक

है वह

हुए

दान

हॅगे।

पातः

कान्ति

माती

ांच्यामें भ

तेयोंके

हमें

व्वीको

ठीक

होनेके

करणोंके

अनन्तरत्नप्रभवस्य बस्य हिमं न सौभाग्यविकोपि जातम्। एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमजतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

ऐसा हिमालय सूर्य-किरणोंसे दीप्त अपने हिममण्डित स्वेत शिखरोंपर कभी स्वर्णकलशसे धारण किये दृष्टिगोचर होता, कभी अपने रंग-विरंगे खनिज पदार्थोंवाले शिखरोंके कारण मेवोंके दुकड़ोंपर अपने-जैसे ही चित्र-विचित्र रंगोंकी छाया डालकर अगणित आकृतियाँ बनाता । यही नहीं, अपनी आकृतियोंको इन असंख्य आवृत्तियोंके आवरणसे अनेक बार असमयमें ही संध्या-भ्रम उत्पन्न करके विहंगोंको बसेराके लिये, पिथकोंको पड़ावपर पहुँचनेके लिये, अप्सराओंको शृङ्गारके लिये, वियोगियोंको संयोगके लिये, बनवासियोंको केलि-कीडाके लिये और गुफा-गुह्मवासी योगी-विरागियोंको साधनाके लिये प्रेरित करता हुआ शोभायमान होता । महाकिव कालिदासने हिमालयके इस रूपका चित्र निम्नलिखित शब्दोंमें चित्रित किया है—

यश्राप्सरोविश्रममण्डनानां
सम्पाद्यित्री शिखरे विभर्ति।
बलाहकच्छन्द्विभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम्॥

सघन अन्धकारका अनुच्छेद करने जब सूर्य पृथ्वीपर उतरता है तो यही हिमालय भयप्रस्त आश्रय-याचनासे पीइत अन्धकारको अपनी दीर्व, गहरी गुफाओं में, खाइयों और खंदकों में शरण देकर उसकी सूर्यसे इस तरह रक्षा करता है, जैसे शरण आये हुए छोटे व्यक्तियोंकी समता और ममतासे निष्पाप सहृदय महान् व्यक्ति करते हैं। इस सम्बन्धमें भी कालिदासका हिमालयकी गरिमाका बखान स्तुत्य है। वे कहते हैं—

> दिवाकराद्रश्नित यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्। श्रुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने समत्वमुच्चैःशिरसां सतीव॥

हिमालयके इस अवलोकनमें हमने अवतक इसके अनन्त रूप देखे थे, पर बदरीनाथके इस मार्गमें अब हमें इसके इन अनन्त रूपोंसे युक्त एक और भिन्न रूप दिखा, वह था इसका विराट् रूप। हमें अखिल ब्रह्माण्डमें बर्णित उत विराट् रूप-का आज वरवस स्मरण हो आवा; जो उन्होंने मोहग्रत धनंजयको कुरुक्षेत्रके मैदानमें दिखाया था। भयभीत अर्जुन-को भगवान् श्रीकृष्णने विराट रूप-दर्शनके लिये दिव्य-दृष्टि भी दी थी, वह यद्यपि आज हमारे पास नहीं थी, फिर भी हम यहाँ अपनी अन्तर्दृष्टिसे वहत-कुछ देख पा रहे थे। संसारके मोहजालमें फँसा, कर्त्तव्याकर्त्तव्य-भ्रमित मानव भी तो अर्जुनकी भाँति अपनी मुक्तिकी चाहमें जाने कितने समयसे उस अनन्तमुख भगवचरणोंकी खोजमें इन दुर्गम यात्राओंको करता आया है, जिसपर आज हम निकले हैं। पर कहना कठिन है किसको यह सुख, किसे वे भगवचरण प्राप्त हुए । भगवान् श्रीकृष्णके उस विराट रूपने घनंजयके बुद्धि-भ्रमको दूर किया था और कुरुक्षेत्रके मैदानमें अपने कर्तव्यके प्रति सचेष्ट । उसी ब्रह्माण्डधारी भगवान् विष्णुकी पुरी, बदरीनाथके मार्गके विशाल पर्वत, इनके ऊँचे-ऊँचे शैल-शिखर ये तह, द्यरमुट, झाड़ियाँ, पुष्पित पौधे और लताएँ, ये फेनिल झरते शीतल झरने, और अमृत घट-सा उड़ेलते जलप्रपातः ये कलरव करते पक्षीगण और शीतल-मन्द-सुगन्ध-युक्त बहती पवन तथा कलकल करती पावनसलिला अलकनन्दाकी प्रत्येक बूँद आज हमें वही दिव्य और अमर संदेश सना रही थी-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा कलेषु कदाचन।

हम अपनी अन्तर्दृष्टिसे इस भव्य-विशाल और महान् वन-प्रदेशमें भगवान श्रीकृष्णके उस विराट् रूपको आज साक्षात् देख रहे थे। कहाँ यह प्रकृति-पुरुषका विराट् रूप और कहाँ हम निर्वल, दुर्वल, धुद्र और अल्पज्ञ, असहाय मानव। पर हमारे निर्वल तनोंके प्राण सबल हो उठे थे। दुर्वल विचारों, दुर्वल भावनाओं और दुर्वल कायाधारी व्यक्ति किसी महान् अवलोकनसे कैसा सामर्थ्यवान् हो जाता है, इसका हमें पग-पगपर पल-पलपर आज यहाँ अनुभव हो रहा था। बदरीनाथके मार्गमें बदरीविशालके इस विराट् रूपका दर्शनकर हमें अपनी क्षुद्रताका तो अनुभव हुआ ही, किंतु इसके साथ ही हमारी सामर्थ्य भी जगी। मनुष्य-जीवनकी मुक्तिके लिये, उसकी सार्थकताके लिये जो संदेश यहाँ मिला, उसकी अनुभूति अपूर्व थी। काम-कोध-लोभ-मोहमें व्याप्त पुरुष-प्रयत्नेश्च असाध्यं नास्ति' की श्वमतावाला मानव-संसारके मोह-जालमें फँसा कैसे-कैसे क्षुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

और खार्थ-प्रेरित आचरण कर अपने सुर-दुर्लभ अस्तित्वको ही सदाके लिये समाप्त कर देता है। मानवकी इस धुद्र बत्तिका परिचय और उसके जीवन-उत्कर्षके तत्त्वोंका शान तथा उसकी प्रेरणा ऐसे ही स्थलोंपर मिलती है। यहीं उसे वास्तविक मुक्तिका भान होता है, उसकी पहचान होती है उस मुक्तिका, जिसका कुरुक्षेत्रमें अर्जुनको हुआ था। एक जीवित मुक्तिका, मृत्युके बादकी मुक्तिका नहीं । जीवन अपने-आपमें स्वयं एक बड़ी उपलब्धि है और इसी उपलब्ध-में ही मुक्ति है। इसके बाद मृत्यु तो निवृत्ति है, न कि मुक्ति । यदि मानव-जीवनके इन तत्त्वोंको पहचान सके तो वह ऐसी मुक्तिका मुखोपभोग कर सकता है। यह पहचान हमें होती है भगवान् श्रीकृष्णके भगवद्गीतामें उद्घोधित अनासक्ति-योगसे । मानव-जीवन दो केन्द्र-विन्दुओंकी धुरीपर चलता है—एक मानवकी अज्ञानता तथा उसे अपनी नश्वरताका भानः दूसरा उसका अस्तित्व और इस अस्तित्वकी अमरता-का ध्यान । वस इन्हीं दो बातोंपर उसके जीवन-चक्र चलते हैं। समान गतिसे समान दृष्टिसे जो अपने जीवनके इन चाकोंको चला पाता है, वह इस छोटी यात्रामें महान् कार्य कर जाता है। अपने जीवनके साथ जुड़े इस अभिशापको वरदानमें और जीवनकी महान् असफलताको पूर्ण सफलता-में परिणत कर देता है । ऐसा ही मानव अपना जीवन अल्पज्ञताके, नश्वरताके विन्दुसे प्रारम्भ कर अपने अस्तित्वकी ओर निरन्तर अग्रसर रहकर जीवनकी महान् उपलब्धि अमरताको प्राप्त करता है। यही मानवकी मुक्ति है, यही है उसकी भगवत्प्राप्ति। पर कितनी कठिन है इस पथकी, जीवनके इस सत्यकी, जीवन और मृत्युके तथ्यकी पहिचान । कितने कर पाते हैं इसे । किसीने सच ही कहा है अपने-आपको पहचानना शायद सबसे कठिन बात है।

भय, निराशा, आलस्य और प्रमादको भगानेवाले दिव्य-दृष्टि देनेवाले स्वत्वकी पहचान करा मानवको मानव बनाने-वाले इस विराट् रूपको दृदयमें उतारते विराट् भगवान् बदरीविशालकी पुरीकी ओर अब हम अधिक तेजीसे बढ़ रहे थे।

पाण्डुकेश्वरसे छः मीलकी यात्रा कर अपराह्ममें हम हनुमानचटी पहुँचे, यहाँ हमारे एकादशी-व्रतका पारण होना था। स्नानादिसे यद्यपि पाण्डुकेश्वरमें ही निवृत्त होकर चले थे किंतु चट्टीके समीप बहते शीतल स्वच्छ गहरे झरनेमें हम सबने फिर स्नान किये और व्रतपारण किया।

अनदेखे और ॲंघियारे मार्गमें जुगन्का टिमटिमाता प्रकाश भी आदमीके लिये एक वड़ा आसरा सिद्ध होता है।

इसी तरह अपनी अभीष्ट और अनदेखी वस्तुके प्रति भी उसका सहज आकर्षण होता है। ये दोनों वातें हमारे लिये इस यात्रामें लागू थीं। ऋषिकेशसे चलते ही सारा दृश्य, हमारे लिये सर्वथा नया था; ऋषिकेशके ऊपर हम अभी गये नहीं ये अतः हम सबोंके मनमें एक विचित्र और बड़ा आकर्षण यहाँके हर दृश्य और वस्तुके प्रति रहता। पर इसके साथ ही नये स्थानोंके प्रति जो एक अव्यक्त आशंकाओंकी भावना यात्रियोंके मनमें रहती है, वह भी हमारे मनमें विद्यमान थी। और जब यात्राकालमें, हमारा मन प्राकृतिक दृश्यों और आध्यात्मिक भावनाओंके आनन्द्से अभिभूत रहता तो यदा-कदाचित कतिपय दर्घटनाओंकी आशङ्काओंसे आसन्न भी हो जाता । हर समय वड़ा जागरूक रहना पड़ता । रात्रिमें जब अपने मुकामपर पड़ते तो यात्रा-की थकानके मारे यद्यपि ऐसी निद्रा आ घेरती कि दीन-दुनियाकी कुछ खबर ही न रहती, पर इस बेखवरीमें, बेहोशी न हो जाय, इसका ध्यान प्रायः सदा सभीको बना रहता। अतः इस ध्यानके कारण हम नींद भर सोते तो, पर जागते से। श्रम और विश्रामके संयम-संतुलनके अधिकारी इम नहीं ये, इसका श्रेय हमारी खुदकी अपेक्षा प्रधानतया यहाँके जलवायु और वातावरणको ही था। गङ्गोत्तरीमें श्रीव्यासदेवजीसे कुछ चर्चा हुई थी। बातचीतके दौरानमें उन्होंने बताया था कि सम्चे उत्तराखण्डमें पवित्रताकी दृष्टिसे केवल मात्र गङ्गोत्तरी एक ऐसा स्थान है, जहाँ किसी अविचार और अनाचारकी गंध नहीं मिलती; पर बदरीनाथ पुरीमें जहाँ एक ओर उसका विकास हुआ है, विजली आयी है, आधुनिक ढंगके नये और अच्छे मकान बने हैं, बाजार बढ़ा है, तार-टेलीफोनकी व्यवस्था हुई है और यातायातकी साधन-सुविधा वढ़ी है, वहाँ दूसरी ओर बुरी वातें भी आ गयी हैं। इन बुरी बातों में मदिरा-सेवन और व्यभिचारतक होने लगा है। हमारे अन्य तीर्थस्थानोंमें प्रयागः वाराणसीः मथुराः वृन्दावन आदिको ही लीजियेः इन स्थानोंके यात्रियोंको मालूम है कि जहाँ ये दो बातें पहुँच जाती हैं वहाँ सव कुछ होने लगता है, जो न होने लायक है वह भी। पर उत्तराखण्डके इन धामोंकी और उत्तर-प्रदेशके इन तीथीं की स्थितिमें काफी अन्तर भी है। प्रयाग, वाराणसी, मथुरा, वृन्दावन आदिमें, जहाँ एक ओर अनाचारके अड्डे हैं, गुण्डे हैं, वहाँ यात्रियोंकी हिफाजत और सुरक्षाके भी पूरे-पूरे साधन रहते हैं । जाने-आने और निवास आदिके, फिर पुलिस आदिकी नागरिक जीवन होनेके कारण पर्याप्त व्यवस्था रहती है। किंतु यहाँ तो मार्गमें ही यात्री छुट-पिट जाय और उसका पता तक न लगे। ऐसे स्थानोंपर, जहाँ एक बार ये बातें होनी प्रति

मारे

तारा

हम

और

11

यक्त

भी

गरा

दसे

ांकी

लक

त्रा-

ोन-

में,

बना

पर

नहीं

वायु

<u>कुछ</u>

कि

र्क

नहीं

आ

नान

धोर वन

ोंमें

इन

ाती

री।

ोथों

रा

रण्डे

धन

लेस हती

तका तेनी ग्रुह्न हुईं, उनको बढ़ावा ही मिलेगा और आगे चलकर यात्रियोंके मनमें अरक्षाकी भावना पैदा हो जायगी। पीपल-कोटीसे जब हम इस मार्गपर खाना हुए तो केदारनाथके मार्गकी भाँति हमें चिट्टियोंके मकानोंपर, पाषाण-शिलाओंपर कुछ सूचनाएँ और संकेत-वाक्य अङ्कित दृष्टिगोचर हुए । कुछ सूचनाओंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानकी दूरी तथा केदारनाथ मार्गके सदृश ही स्वास्थ्य-सम्बन्धी सूचनाएँ थीं । किंतु इनमेंसे अधिकांश सर्वथा नयी थीं । जैसा कि ऊपर लिखा है । अभीष्र पथ और अनदेखी वस्तुके प्रति आदमीका आकर्षण अधिक होता है। अपने इसी आकर्षणके कारण इस ओरकी सारी बातें, सारे समाचार और सारे दृश्य एकबारगी जान लेनेकी जिज्ञासा हमारे मनमें सदा वनी रहती थी। वडे चावसे इन सचनाओंको हम पढते । इनमेंसे दो थीं- 'अपने सामान व साथियोंकी सावधानीसे रखवाली कीजिये । 'खानेकी वस्तओं में मिलावट हो तो उसकी शिकायत स्वास्थ्य-विभागके अधिकारियोंको कीजिये। ' कुछ और थीं, पर इन दो हिदायतों में ही सारी बातें आ जाती हैं। 'समझदारको इशारा काफ़ी है' की उक्तिके अनुसार अपने सामान और साथियोंकी रखवाली-वाली तथा खाद्य-पदार्थोंमें मिलावटवाली ये दोनों वातें आदमीको चौंका देनेके लिये पर्याप्त हैं। उन्हीं दो चेतावनियोंको पढ इमें व्यासदेवजीका वदरीनाथ-सम्बन्धी कथन याद आया। इमारे मनमें सहसा यह बात पैदा हो गयी कि यहाँका चरित्र वैसा पवित्र नहीं, जैसा अवतक हम उत्तराखण्डके तीन धामोंमें देखते आये थे। दुविधाभरे मनसे इम हर समय चौकन्ने रह इस ओर बढ़ रहे थे। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीके यात्राकालमें मार्ग-विषयक, निवासविषयक और खाद्य पदार्थोंके अभावकी स्थितिमें कितनी असुविधाएँ उठायी थीं, ये कुछ कम हुईं केदारनाथकी यात्रामें । बदरीनाथकी यात्रामें अब हमें उक्त सभी असुविधाओंका सामना न करना पड़

रहा था, मार्ग चौड़ा था, उतार-चढ़ाववाला था, पर समतल, निवासके लिये भी मुन्दर इवादार मकान मिल रहे थे, खाद्य-सामग्री भी प्रचुर मात्रामें उपलब्ध थी। यातायातके साधन भी बढे थे। अब तो जोशीमठतक मोटर-मार्ग बन गया है, यानी केवल २८ मील ही पदयात्रा शेष रह गयी है। किंतु इन सव मुख-मुविधाओंके मिलते उक्त हिदायतोंसे हमारे मनमें एक जो दुविधा उत्पन्न हो गयी, वह भयावह थी। हमारे हितकी दृष्टिसे ही नहीं, वदरीनाथ धामकी पवित्रताकी दृष्टिसे भी। ऐसे स्थलोंपर इन संसारी वातों, इन वुराइयों और बुरी प्रवृत्तियोंका आभास भी यात्रियोंके तीर्थ-मुखको क्षीण कर देता है। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीमं अगणित अमुविधाओंको उठाते, इन सव बातोंसे अनिभन्न होनेके कारण इम जिस आन्तरिक मुखका अनुभव करते उस मुखमें यहाँ भी आकण्ठ डूवे रहनेपर भी यहाँ इन थोड़ी-सी सुविधाको देख और इन सुविधाओं की जनक अगणित आपदाओं भरी आशंकाओंका मनमें उदय होते ही वह मुख न्यून होने लगता। स्विधायेमी मानव ही तो द्विधाओंका सुजन करता है। इसीलिये कभी-कभी इमारा यह मत हो बैठता है कि भारतीय अध्यात्मके अधिष्ठान उत्तराखण्डके इन चारों प्रतिष्ठानोंकी पवित्रता-प्रतिष्ठा और आकर्षणको अक्षुण्ण रखनेके लिये सरकारको कुछ कड़े कदम उठाने चाहिये और इन्हें आज जो नगरोंका स्वरूप दिया जा रहा है, यहाँ जो नागरिक जीवन बढ़ रहा है, उसे रोकना चाहिये। ये तो केवल इमारे अध्यात्मकी आराधनाके अधिष्ठानमात्र रहें, किंतु वर्तमान समयमें इर क्षेत्रमें प्रगतिका जो चक्र चल रहा है उसे देखते हुए इमारी इस वातमें अब कोई तुक नजर नहीं आता और इन पवित्र देवस्थानोंके भविष्य-रूपका पूर्वाभास हमें आज दिखायी देने लगा है जो निस्संदेह निकट-भविष्यमें ही हमारे अन्य तीर्थोंके अनुरूप हो जायगा । * (क्रमशः)

* तीर्थ तभीतक पिनत्र रह सकते हैं, जनतक उनमें श्रद्धा-भिक्तिसम्पन्न सदाचारी तीर्थयात्री ही जायें और वहाँ सदा निनास करनेवालोंको वाहरी सुख-सुविधा न मिलकर तपस्वीका-सा जीवन विताना पड़े। जहाँ यातायातकी सुविधा बहुत हो जाय, सैर-सपाटेके लिये या धनोपार्जनके लिये लोग जाने लगें—वहाँ तीर्थबुद्धि कायम नहीं रह सकती। तीर्थबुद्धि गयी कि फिर कोई कुछ भी कर सकता है। कुछ समय पहले ऋषिकेश वड़ा पुण्यस्थल था। वहाँ झाड़ियोंमें तपस्वी-महात्मा रहते थे। जनसे बड़े-बड़े मकान बने, सुख-सुविधा बढ़ी, वेचारे सच्चे महात्माओंको वहाँसे खिसकना पड़ा। अन तो वहाँ करोड़ों रुपयोंके कारखाने बननेकी बात है। वे वन जायँगे, तब तो रही-सही पुण्यमयता भी नष्ट हो ही जायगी। यही हाल आपके लिखनेके अनुसार श्रीवदरीनाथका हो रहा है। ज्यों-ज्यों मनचले लोग सैर-सपाटेके लिये तथा एकान्त शीतप्रदेशको विलासभूमि मानकर विलासकी माननासे वहाँ अधिक जायँगे, बसेंगे, त्यों-त्यों उनकी माँग पूरी करनेके लिये, धनोपार्जनकी कामनावाले भी वहाँ बढ़ जायँगे, फिर सब जगह जैसे अनर्थ होते हैं, वैसे ही वहाँ भी होंगे। पर इस समय प्रगति तथा विकासके नामपर जो कुछ हो रहा है, कारखानेको ही तीथस्थल माननेकी प्रवृत्ति वढ़ रही है और अथोंपार्जन तथा भोगको ही उन्नतिका स्वरूप माना जा रहा है, उसे देखते तो कामोपभोग-परायणताकी वृद्धि और उसके फलस्वरूप नैतिक पतन ही होता दीखता है। भगवान् मङ्गल करें।—सम्पादक

महामना मालवीयजीके कुछ संस्मरण

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय सन् १९०६ के लगभगसे है। उस समय में कलकत्तेमें रहता था। वे जब-जब पधारते, तब-तब में उनके दर्शन करता । उस समय वे कभी खर्गीय पण्डित सन्दरलालजीके मकान हरीसन रोडमें ठहरते । कभी बड़तल्लामें श्रीशीतलप्रसादजी खडगप्रसादजीकी गद्दीमें। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनको परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढती ही गयी । उनके साथ एक कुटुम्बका-सा सम्बन्ध हो गया । वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मैं उन्हें परम आदरणीय पितासे भी बढ़कर मानता । इस नाते मैं उन्हें पण्डितजी न कहकर सदा बाबूजी ही कहता । घरकी सारी बातें वे मुझसे कहते-करते । कुछ समय तो मैं उनके बहुत ही निकट सम्पर्कमें रहा. इसिटिये मुझको उन्हें बहुत समीपर्स देखने-समझनेका अवसर मिळा । उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी और उनका कार्यक्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था । वे परम धार्मिक होनेके साथ ही बहुत सुल्झे हुए राजनैतिक थे। शिक्षा-विस्तार—प्राचीन सनातन धर्मकी रक्षा करते हुए जनतामें सत् शिक्षाका प्रसार तो उनके जीवनका प्रधान कार्य था। वे सुधारक होनेपर भी प्राचीन वर्णाश्रम-पद्भतिके संरक्षक थे; उदार होते हुए ही भोजनकी शुद्धिमें बड़े कहर थे; अर्वाचीन संस्कृतिसे लाभ उठाने-वाले होकर भी प्राचीन संस्कृतिके प्रतीक थे। आततायी-वयका स्पष्ट उपदेश करनेवाले कठोरहृदय होते हुए भी वे एक शुद्रतम जीवकी हिंसासे डरते थे। नरम दलके माने जानेपर भी गरमीके अवसरपर सबसे अधिक गरम थे; सबको प्रसन्न रखनेकी मधुर कलाके आकर होनेपर भी स्पष्टवादी थे; वाइसरायों, गवर्नरों तथा नरेशमण्डलसे समादत तथा उनके प्रति प्रेम रखते हुए एवं उनसे मिळते रहनेवाले होनेपर उस समयके सरकारविरोधी

गाँधीजीसे खुला स्नेह करते और उनका समादर करते थे। यहाँतक क्रान्तिकारी युवक भी उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे; स्त्री-शिक्षाके प्रसारक होनेपर भी वे स्त्रियोंकी प्राचीन मर्यादामें श्रद्धा रखनेवाले थे और वर्तमान युगके साहित्यका अध्ययन करनेवाले होकर भी प्राचीन महाभारत-भागवतादिका नित्य श्रद्धाभक्तिपूर्वक पारायण करते थे। हिन्दूविश्वविद्यालय अपने ढंगकी एक ही शिक्षा-संस्था है जो अपना जोड़ नहीं रखती और उनके धर्मप्रेमकी विजयध्वजा सदा फहराती रहेगी। विश्वविद्यालयमें विश्वनाथका मन्दिर उनके साहस, धर्मप्रेम तथा आस्तिकताका ज्वलन्त प्रमाण है। यहाँ उनके पवित्र जीवनके दो-चार संस्मरण संक्षेपमें लिखकर मैं अपनेको पवित्र करता हूँ।

का

ज

ना

हो

मन

अ

उ

न

उ

मि

मा

उत

अं

है

घ

न

पूर

त

वि

में

हो

हि

(१) वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले—''मैया! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी। पर है महान् 'वरदान-रूप'।'' इस प्रकार प्रायः आध घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—'बाबूजी! जल्दी दीजिये, कोई आ जायँगे।'

तब वे बोले—'लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है।
एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी
विनयके साथ मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि मुझे
आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ—
सफलता प्राप्त कहूँ।

नरते

वदि

ते वे

और

भी

र्विक

गकी

खती

राती

निक

है।

न्नेपमें

मेरे

रूसरे

केले

आज

मैंने

था।

दी,

गी।

आध

मेरी

जी!

है।

बड़ी

मुझे

'भाताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रक्खा और कहा—'बच्चा! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ तो जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करों। तुम सदा सफल होओंगे।' मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—परम दुर्लभ वस्तु मेरी माताकी दी हुई तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।'' यों कहकर महामना गद्गद हो गये।

मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया। अब तो ऐसा हो गया है कि घरभरमें सभी इसे सीख गये हैं, जब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी 'नारायण-नारायण' उच्चारण करने लगते हैं। इस प्रकार रोज ही—किसी दिन तो कई बार 'नारायण' की और साथ ही पूज्य भालवीयजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है।

(२) इसी यात्रामें वे आजमगढ़से मोटरमें आये थे। मैं राप्ती नदीके उस पार उन्हें लाने गया था। उनकी मोटरको नावसे पार उत्तरना था। मैं उस पार जाकर ठहर गया और श्रीमालवीयजीके आनेपर उत्तके चरण छूकर मैंने प्रणाम किया। उनके चेहरेपर उदासी छायी थी। सदा हँसमुख रहनेवाले महामनाके मुखपर गम्भीरता तथा उदासी देखकर मैंने कारण पूछा, तब आपने बताया कि 'मुझे इस बातसे बड़ा विषाद हो रहा है कि थोड़ी ही दूरपर इस मोटरसे दबकर एक गिलहरी मर गयी। मैं जबतक प्रायश्वित्त न कर छूँगा, मुझे शान्ति नहीं होगी।' मैं क्या कहता। उन्होंने गोरखपुर पहुँचनेके बाद शिवके षडक्षर 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रका जप करके

प्रायश्चित्त किया और गिल्हरीकी सद्गतिके लिये भगवान् महेश्वरसे प्रार्थना की । जीवद्या और ब्राह्मणके सदय हृदयका कैसा उदाहरण है।

(३) महामनाके एक पुत्र वड़े अर्थसंकटमें थे। उनको महामनाने तारमें छिखा—'तुम आर्त होकर विश्वाससे गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो, इससे तुम्हारा संकट दूर हो जायगा।' फिर एक पत्रमें उनको छिखा—'भगवान्पर विश्वास रक्खो, धैर्य मत छोड़ो और गजेन्द्रस्तुतिका आर्तभावसे विश्वासपूर्वक पाठ करो। * मैं एक वार नाकतक ऋणमें इव गया था, गजेन्द्रस्तुतिके पाठसे मैं ऋणमुक्त हो गया था, तुम भी इसका आश्रय छो।' अपने कष्टमें पड़े पुत्रको विना पूर्ण विश्वासके कौन पिता ऐसा छिख सकता है ?

(४) बम्बईमें महामना मालवीयजी पयारे थे। श्रीरामेश्वरदासजी विडलां सैंडहर्स्ट रोडके भवनमें ठहरे थे। रात्रिका समय था। बम्बईके एक प्रसिद्ध विद्वान् ख० पं० रमापितजी मिश्रसे उनकी बातचीत हो रही थी। श्रीमिश्रजीने कहा—'मालवीयजी! आप मुझे सौ गाली देकर देख लीजिये, मुझे क्रोध नहीं आयेगा।' इसपर हँसकर मालवीयजी बोले—'महाराज! आपके क्रोधकी परीक्षा तो सौ गालियोंके पश्चात् होगी, परंतु मेरा मुँह तो पहली ही गालीमें गंदा हो जायगा।' मालवीयजीके इस उत्तरको सुनकर मिश्रजी महाराज चिकत दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए नतमस्तक हो गये।

महामनाका अन्तिम लेख नोवाखालीमें होनेवाले हिंदुओंपर भयानक अत्याचारसे पीड़ित हृदयका आर्तनाद तथा सबके लिये महान् उपदेशप्रद एवं पथप्रदर्शक था। वह लेख 'कल्याण' के लिये ही लिखा गया था। मेरे सम्मान्य मित्र—महामनाके भक्त डा० श्रीभुवनेश्वर-

श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धका तीसरा अध्याय यह स्तुति है। गीताप्रेससे अलग भी प्रकाशित हो चुका है।

संख

है

वा

न

वा

श्

क

ज

सं

पढ़ना चाहिये।

महामनाकी शतीजयन्ती मनायी जा रही है। यह मार्गका अनुसरण करनेपर ही मनायी जा सकती है।

नाथजी मिश्र उसको लिखवाकर लाये थे। उसे उनके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाये हुए देशभरमें फैले हुए हजारों विद्वान् तथा महामनाके उपकारोंके ऋणसे द्वी हुई भारतकी जनता उनके मार्गका अनुसरण का बहुत अच्छी बात है। उनकी असली जयन्ती तो उनके अपनी सची श्रद्धाका परिचय दे—यह सबसे मेरी विनीत -हनुमानप्रसाद पोहार प्रार्थना है।

विश्वशान्तिका प्रधान उपाय वाणी-वशीकरण

(लेखक—पं० श्रीभगवानदेवजी शंर्मा गुरुकुलीय सिद्धान्तशास्त्री)

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। (यजुः २६।२)

वेदके इस मन्त्रमें कहा है कि--- 'कल्याणकारी वाणी बोलनी चाहिये। वहुतसे लोग एक विशेष समुदायके साथ ही मधुरताका व्यवहार करते हैं। जब कि वेद भगवान् संकेत करते हैं कि सबके साथ मीठी कल्याण-कारी वाणी बोलनी चाहिये। सृष्टिरचनासे लेकर आजतक जितने भी महापुरुष ऋषि-मुनि हुए हैं, उन्होंने पुकार-पुकारकर यही कहा है कि—ऐ संसारके छोगो ! यदि तुमळोग सुख और शान्ति चाहते हो तो वाणीमें संयम और मिठास लाओ ! वेदमें एक स्थानपर कहा है—

मधुमती स्थ मधुमती वाचमदेयम्। (अथर्व० १६।२।२)

है प्रजाओ ! तुम मधुयुक्त होओ, मैं मधुर वाणी बोदूँ । अर्थात् जो चाहता है कि लोग उसके साथ मीठा व्यवहार करें, उसे दूसरोंके साथ मीठा व्यवहार करना चाहिये । परमात्माने उपदेश किया है सृष्टिके सारे पदार्थ मधुरताका व्यवहार कर रहे हैं, तू भी मधुरताका व्यवहार कर ।

देखिये, कितने मधुमान्=मधुर मन्त्र हैं-

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोपधीः॥ (ऋ०१।९०।६)

अर्थात्—सृष्टि नियमकी अनुकूलतासे चलनेवालेके छिये वायु मिठास लाती है, निद्याँ मिठास बहती हैं, ओपियाँ हमारे लिये मीठी हैं।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ (ऋ०१।९०।७) अर्थात्—रातें मीठी हैं, प्रभात मीठे हैं, पृथिवीकी धृति या पृथ्वीलोक भी मीठा है, पिता हो भी हमारे लिये मधुर हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमान् अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्त नः । (ऋ०१।९०।८) अर्थात्—वनस्पति हमारे लिये मधुमान्=मीठी हैं, सूर्य भी हमारे लिये मधुमान् हो । हमारी गौएँ माध्वी= मिठासवाली हों।

यह सब मिठास ऋतानुसारके लिये हैं । ऋत कहते हैं-सरल सीघे, सृष्टि नियमानुकूलको ।

प्रकृत मन्त्रमें वाणीको मधुमतीके साथ 'सुमेधाः' भी कहा है। मीठा बोलो, किंतु बुद्धिके साथ बोलो, बुद्धि-रहित मधुर भाषा किस कामकी। मधुर वचनको बुद्धि-युक्त कहनेका प्रयोजन है-यदि वक्तामें बुद्धि हो ती वह अप्रिय सत्यको भी प्रिय बना लेगा।

स्मृतिकार मनुने भी कहा है-सत्यं ब्र्यात्प्रियं ब्र्यान्मा ब्र्यात्सत्यमप्रियम्।

अर्थात्—सच बोलो, मीठा बोलो, किंतु अप्रिय सत्य न बोलो । अप्रिय सत्य कहनेके लिये भी स्मृतिकार रोकते हैं। कारण, वह वाणी नहीं, जो अन्योंको अप्रिय लगे। वाणीसे ही मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति हो सकती है। वाणीसे ही वह नरकका अधिकारी होता है। जिसने वाणीकी उपासना नहीं की, वह चाहे कितना भी प्रयत करे, परंतु वह साधारण मनुष्य ही रहता है और दुखी 38

क्रि

पृणसे

ा कार

वेनीत

ोद्दार

0)

हो।

()

ध्वी=

ऋत

, भी

बुद्धि-

बुद्धि-हो तो

सत्य

नेकार

अप्रिय

है।

जेसने

प्रयत

दुर्खी

जीवन व्यतीत करता है । कारण यह है कि वह न कहने योग्य बातें कह जाता है । इसीलिये तो कविने कहा है— ऐसी वाणी बोलिये, मनका आपा खोय। औरोंको शीतल करे, आपहि शीतल होय॥

मधुमती वाणी और सत्य मानवको देवता वना देता है। संयम-रहित वाणी अनर्थकारिणी होती है। ऐसी वाणीके कारण अनेक वंश, जातियाँ और देशोंका सर्वनाश होता रहता है और होता रहेगा। तलवारका घाव तो भर जाता है, परंतु वाणीका घाव नहीं भरता। वाणीके घावने ही महाभारतका युद्ध कराया। वह भी वाणी ही थी जो मन्थराने कैंकेयीके कानमें फूँकी थी। शूर्पणखाकी वाणीके कारण ही राम-रावण युद्ध हुआ। कड़वी और असत्य वाणीने हमें वहुत-सी हानि पहुँचायी है। अब भी संसारमें होनेवाले ८० प्रतिशत पारिवारिक, जाति और राजनीतिके झगड़े, मुकदमें आदि केवल हमारी संयमरहित वाणीके कारण हैं। कितने शोक और दु: खकी

वात है कि हमें यह भी माछूम नहीं कि कब कहाँ कैसे वोलना चाहिये।

आजकलके विद्यार्थी वी०ए० और एम्०ए० तो हो जाते हैं; लेकिन उन्हें वाणीका प्रयोग करना ही नहीं आता । जब ऐसे डिग्री-प्राप्त पढ़े-लिखे लोगोंके मुखसे खराब और बेमोंकेके शब्द सुननेमें आते हैं तब बड़ा दु:ख होता है । ऐसे संयमरहित वाणी बोलनेवालोंको नीचेके दोहेपर खास विचार करना चाहिये । निम्न दोहेमें कविने कितनी अच्छी लोकप्रिय वात लिखी है—

मीठी वानी बोलिये, सुख उपजत चँहु ओर। वसीकरन यह मंत्र है तज दे बचन कठोर॥ संसारके सभ्य लोगो! यदि आप संसारमेंसे अशान्ति-को दूर करके सुख और शान्ति लाना चाहते हैं तो वाणीके संयमपर ध्यान दें। यही एक प्रधान उपाय है, जिससे विश्वमें शान्ति हो सकती है।

में तो प्रियतमकी वस्तु हूँ

आओ सव मिल, कर दो हमला, सवसे मैं कह रहा पुकार। खुलकर खूब चला लो मुझपर सब अपने-अपने हथियार॥ किंतु न लग पायेगी मुझको इन हथियारोंकी कुछ चोट। छूते ही मुझसे, सब होकर नष्ट, जायँगे भू पर छोट॥ क्योंकि, नहीं अब कहीं रह गया, जगसे मेरा कुछ सम्बन्ध। प्रकृति-राज्यके गिरे टूट सव, चिरकालीन अविद्या-बन्ध॥ रहे दारीर, जाय या अव ही, आवे धन या जाय तमाम। मिले मान या कीर्ति, भले अपमान अकीर्ति मिले वेकाम॥ नहीं स्पर्श कर सकते मुझको चिन्ता-भय-विषाद-मद-मान। निज-खरूपसे बसे एक बस, वाहर-भीतर हैं भगवान॥ घुलेमिले प्रभुसे मुझको, अव नहीं सकेगा कोई मार। कर दें भले रुद्र प्रलयंकर सकल विश्वका अब संहार॥ जवतक था प्रकृतिस्थ, लगे थे लगातार सब पीछे चोर। प्रभु-पदस्थ होते ही वे सब भगे, प्राण ले चारों ओर ॥ नाम-रूपके परिवर्तनसे मेरा कुछ न लाभ-नुकसान। में तो हूँ वस, प्रियतम प्रभुकी निज-खरूपगत वस्तु महान्॥ प्रियतमका आनन्द दिव्य है मेरा सहज नित्य आनन्द। परम शान्ति प्रियतम की है बस, मेरी सहज शान्ति खच्छन्द ॥



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बदरिकाश्रम-श्राद्ध और गया-श्राद्धपर शास्त्रीय विचार

(लेखक स्वर्गीय महामहोपाध्याय सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पण्डित श्रीविद्याधरजी गौड, अमिहोत्री)

पुरा। यत्रैतत्पपात ब्रह्मणः विार:कपालं तत्रैव बद्रीक्षेत्रे पिण्डं दातुं प्रभुः पुमान्॥ मोहाद् गयायां दद्याद्यः स पितृन् पातयेत् स्वकान्। लभते च ततः शापं नारदैतन्मयोदितम्॥ (सनत्कुमारसंहिता)

'प्राचीनकालमें जहाँ यह ब्रह्माजीके सिरकी खोपड़ी गिरी थी, वहीं बदरी-क्षेत्रमें मनुष्यको पिण्डदान करना चाहिये । जो पुरुष वदरी-क्षेत्रमें पिण्डदानकर अज्ञानवश गयामें पिण्डदान करता है वह अपने पितरोंकी अधोगति कराता है और उसे पितरोंसे शाप प्राप्त होता है। हे नारद ! यह मैंने तुमसे कहा ।'

यद्यपि 'सनत्कुमार-संहिता'के इस वचनसे जो बद्दिकाश्रममें श्राद्ध कर चुका, उसका गयामें श्राद्ध करना निषिद्ध-सा प्रतीत होता है तथापि वास्तवमें यह वचन निषेधक नहीं है, क्योंकि-

गयाभिगमनं कर्त् यः शको नाभिगच्छति। शोचित पितरस्तस्य वृथा तस्य परिश्रमः॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्राह्मणस्त विशेषतः। प्रदद्याद् विधिवत्पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः॥

'जो पुरुष गया जानेकी शक्ति रहते पितरोंके श्राद्भके लिये गया क्षेत्रकी यात्रा नहीं करता, उसके पितर शोक व्यक्त करते हैं और उस पुरुषका जीवन-पर्यन्तका धर्मार्थ सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है । इसलिये द्विजातिमात्रको प्रयत्नपूर्वक गया-क्षेत्रमें जाकर एकाप्र मनसे विधिवत् पिण्ड-प्रदान करना चाहिये । ब्राह्मणका तो विशेषरूपसे यह कर्तव्य है।

उपर्युक्त वचनोंसे गयाश्राद्ध पितरोंके ऋणसे मुक्ति

प्रदान करनेके कारण 'नित्य' कहा गया है तथा उसके अकरणमें 'प्रत्यवाय' (पाप) सुना जाता है । इसिल्ये जीवन और सामर्थ्य रहते गया-श्राद्ध मानवका अत्यन आवश्यक कर्तव्य प्रतीत होता है एवं निबन्धकारीं भी किसीने बटरिकाश्रममें श्राद्ध करनेके अनन्तर गया। श्राद्ध न करनेका उल्लेख नहीं किया है। इसलिये उत्त दोनों इलोकोंमें 'मोहात्' (मोहवश) और 'शापम् (पितरोंसे शाप प्राप्त होता है) इत्यादि वाक्योंका तात्पर्य बदरिकाश्रममें श्राद्ध करनेके अनन्तर गया-श्राद्धके निषेधमें नहीं है, अपित्-

'न हि निन्दा निन्दां निन्दितुं प्रवर्तते किंतु विधेयं स्तोत्म'

(निन्दाका निन्दनीयकी निन्दामें तात्पर्य नहीं है, किंतु विघेय (प्रस्तुत) की प्रशंसामें तात्पर्य है) इस न्यायसे वे बदरिकाश्रम-श्राद्रकी प्रशंसाके बीयक हैं। अथवा जैसे-

'अपरावो वा अन्ये गोऽरुवेभ्यः परावो गोऽरुवाः'

इससे गौ और अश्वके विधानके लिये अन्य पशुओं अपशुत्वका बोधन किया जाता है वेसे ही यहाँ भी समझना चाहिये । 'बकरी' आदिमें प्रात्व प्रत्यक्ष सिर्ध है, उसका अपलाप कथमपि नहीं किया जा सकता। अतएव गों और अश्वकी प्रशंसाके छिये ही उन^{से} अतिरिक्त वकरी आदिकी निन्दा है। उस निन्दाका जैसे गौ और अश्वकी स्तुतिमें ही पर्यवसान है, वैसे ही प्रकृतमें भी बदरिकाश्रम-श्राद्धकी स्तुतिके लिये ग^{र्या}

श्राद्धकी निन्दा की गयी है, गया-श्राद्धकी निवृत्ति CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उक्त वाक्योंका तात्पर्य नहीं है। यही व्यवस्था वार्षिक महालयादि श्राद्ध आदिके विषयमें भी समझनी चाहिये। क्योंकि—

'पिज्यमानिधनात्कार्य विधियद्दर्भपाणिना ।' (मनु० ३ । २७९)

'मनुष्यको पितृकर्म जीवनपर्यन्त कुश हाथमें लेकर विधिवत् करना चाहिये।'

'मृताहं समितक्रम्य चण्डालः कोटिजन्मसु।'

'यदि कोई पिता-माताकी मरणतिथिमें श्राद्ध न करे तो वह करोड़ों जन्मोंतक चाण्डाल होता है।'

उपर्युक्त वचनोंके अनुसार जीवित पुरुषको जीवन-पर्यन्त अवश्य श्राद्ध करना चाहिये, ऐसा बोधित होता है और श्राद्ध न करनेपर प्रत्यवाय (पाप) सुना जाता है। अतः सिद्ध हुआ कि वदरिकाश्रममें श्राद्ध करनेपर भी गया-श्राद्ध और वार्षिक महाल्यादि श्राद्ध अवश्य करने चाहिये।

अष्ट्रग्रही

अष्टप्रही योगके सम्बन्धमें पत्रोंकी भरमार है। व्यर्थ ही लोग अति भयभीत हो रहे हैं। इसके विषयमें 'कल्याण' में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। भगवान्का प्रत्येक विधान ही मङ्गलमय होता है। अतः इससे भी पिरणाममें मङ्गल ही होगा। भारतके लिये तो सबसे बड़ा मङ्गल यही हो गया है कि देशभरमें इस निमित्तको लेकर सर्वत्र भगवान्की पूजा, आराधना, यज्ञ, पाठ और कीर्तन हो रहे हैं। अष्टप्रहीयोगका भय न होता तो इस प्रकार तन-मन-धनसे ईश्वर तथा देवताकी आराधनामें लोग नहीं लगते। फिर, इन मङ्गलमय कार्योका फल भी मङ्गलदायी होगा ही। अष्टप्रहीका ही परिणाम माना जाय तो गोवापर भारतकी विजय—पूर्त्तगालोंके लिये अग्रुभ तथा भारतके लिये ग्रुभ घटना हुई। सैकड़ों वर्षोंका उनका राज्य गया, मान-प्रतिष्ठा गयी। इधर भारतका एक भूखण्ड खतन्त्र हो गया और भारतको मान-प्रतिष्ठा मिली। इसी प्रकार अष्टप्रहीका फल अग्रुभ ही होगा, ग्रुभ होगा ही नहीं; ऐसी बात नहीं समझनी चाहिये। किसीके लिये परम ग्रुभ भी हो सकता है। प्रारच्यानुसार ही फल मिला करता है।

हम ज्यौतिष-शास्त्रका ज्ञान नहीं रखते इससे हमें भविष्यका पता तो नहीं है; तथापि ऐसा अनुमान है कि जितनी भयपूर्ण भविष्यवाणियाँ हुई हैं, उतना अग्रुम नहीं होना चाहिये। विश्वशान्तिके छिये होनेवाछे अनुष्ठानोंका फल भी होगा ही। पर ये आराधन-अनुष्ठान तथा सदाचारका सेवन तो सदा ही चाछ् रखना चाहिये। फिर अभी तो अष्टप्रहीका परिणाम भी अगले दो-तीन वर्षोंतक प्रकट होता रहेगा, ऐसा कहा जाता है। और अगले वर्ष क्षय-मास आदि भी अनिष्टकारक ही बताये गये हैं। अतः हमारी जनसाधारणसे प्रार्थना है कि मगवदाराधनमें सब लगे ही रहें। पर बड़े-बड़े यज्ञ तो बहुत व्ययसाध्य हैं तथा उनमें विधि-निषेध भी है। सब लोगोंके लिये तो सीधा परम ग्रुभदायक कार्य है — अखण्ड नाम-कीर्तन, श्रीरामचरितमानसका एकाह या नवाह-पारायण, भगवन्नाम-जप, 'हरि:शरणम्' या 'नम:शिवाय' मन्त्रका जप तथा दीनोंको सेवा। ये सब कार्य सबको करते रहना चाहिये। तथा भगवान्की मङ्गलमयी कृपापर विश्वास रखना चाहिये।

उसके सिछिये

अत्यन्त कारोंमें

गयामें ने उक्त

शापम्

रयोंका श्राद्धके

वेधेयं

नहीं रिहे)

बोधक

वाः' शुओंमें

ाँ भी सिद्ध

कता । उनसे

ता जैसे

गयाः

वृत्तिमें

दो वार्ताएँ

(हेखिका —श्रीमाताजी, श्रीअरविन्द-आश्रम)

नियमितं परिवर्तन

भूतकालीन अनुभवोंसे कभी आबद्ध नहीं होना चाहिये, जो ज्ञान या अनुमित प्राप्त हो चुकी है, वह यदि विशेषरूपसे बहमूल्य या अपूर्व प्रतीत हो, तो भी, उसे फिर पाने और उससे चिपके रहनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये। यही है वह आदर्श-वाक्य (Motto), जिसे तुम्हें सदा अपने मनके सामने रखनां चाहिये। जो चीज तुम एक बार कह चुके, कर चुके या अनुभव कर चुके हो, उसे ही जव दृहरानेका प्रयास करते रहो तब बहुत शीघ्र और निश्चित रूपमें तुम देखते हो कि वह चीज अधिकाधिक निर्जीव, यान्त्रिक, नित्य-नैमित्तिक और इस कारण पूर्णतः निरुपयोगी-सी वनती जा रही है। उसकी आत्मा तो विलीन हो गयी है और केवल ऊपरी ढाचा बना हुआ है। जिस शब्दको तुम मुँहसे निकालते हो, उसे मुँहसे निकालते समय तुम्हें उसे अपने जीवन्में भी क्रियाशील बनाना चाहिये, जो अनुभव तुम पुनः वापस लाना या अभिन्यक्त करना चाहते हो उसे तुम्हें अपने जीवनकी एक वस्तु वना लेना चाहिये। बस, इसी तरीकेसे सत्य सजीव बनता, अपनी शक्ति और च्योतिको अधिकृत करता तथा अपना पूरा मूल्य प्राप्त करता है।

परंतु यदि वास्तविक रूपमें देखा जाय तो कोई दो आगे-पीछे आनेवाले मुहूर्च, चाहे वे तुम्हारी चेतनाके अंदर हों या जागितक व्यापारके अंदर, ठीक एक समान नहीं होते। यदि तुम गम्भीरतापूर्वक और सचाईके साथ प्रयत्न करो तो भी तुम प्राचीनकालकी किसी चीजको, जैसी वह उस समय थी अथवा जैसी कि वह तुम्हारे सामने उपस्थित हुई थी, वैसी ही फिरसे कभी भी नहीं पकड़ सकते, ठीक-ठीक उसी ढंगसे नहीं पकड़ सकते; क्योंकि अब न तो तुम ही ठीक वैसे व्यक्ति हो और न संसार ही वैसा है। संसार एक सतत प्रवाह है, ऐसा बहुत बार घोषित किया जा चुका है; पर यह एक सतत पुनरार्वतन या पुनः घटन, केवल एक आवर्तनशील क्रमव्यवस्था नहीं है। फिर दूसरी ओर, सतत नव-नव रूप धारण करना ही परिवर्तनका विशेष लक्षण है।

प्रत्येक महर्त्त ही कोई-न-कोई नयी चीज रंगमंचपर उतरती है। कोई ऐसी चीज उतरती है जो पहले तरङ्गायित नहीं हुई थी। प्रकृतिसे पग-पगपर कोई-न-कोई चीज बाहर निकल रही है, जो छिपी हुई थी या उसकी गुप्त गहराईमें अन्तर्निहित थी। कोई चीज ऊपरसे उसकी सामान्य कियाके अंदर फेंक दी जाती है, ऐसी चीज फेंक दी जाती है जो अदृष्यूर्व और अप्रत्याशित थी। कालकी अग्रगतिका अर्थ ही है क्रमविकास, अर्थात् वर्तमान अवयवोंमें एक नये अवयवका जुट जाना, किसी ऐसी चीजको अभिव्यक्त करना जो अनभिव्यक्त थी- 'मृतं कञ्चन बोधयन्ती' जैसा कि वैदिक ऋषि कहते हैं। यद्यपि बाह्यदृष्टिको प्रत्येक चीज जैसी-की-तैसी प्रतीत होती है, फिर भी यथार्थमें बात वैसी नहीं होती; सर्वदा ही वर्तमान परिस्थितियोंके वीच कोई नया उपादान ऊपरसे गिरता रहता है, निरन्तर कोई नवीन स्फुलिङ्ग या प्रभाव शक्तियोंकी वर्तमान क्रीडामें प्रवेश करता रहता है। इस प्रकार, सच पूछा जाय तो, समस्त परिवर्तनीय वस्तुओंका एकत्र द्वाव ही वह वस्तु है जो पृथ्वीपर और मनुष्यजातिके अंदर उन महान् परिवर्तनोंको उत्पन्न करती है जिन्हें 'क्रमविकास' शब्दके द्वारा संक्षिप्त रूपमें व्यक्त किया जाता है और जो सृष्टिविज्ञान और मनोविज्ञान दोनोंसे सम्बन्धित होते हैं।

तुम्हें परिवर्तनके इस तथ्यको स्वीकार करना होगा और फिर आगे बढ़ना होगा—विश्वातमाके साथ एक होना होगा—कभी चुप खड़ा नहीं होना होगा और न पीछे वापस छौटना होगा, 'बल्कि आगेकी ओर ताकना होगा और आगेही-आगे बढ़ते जाना होगा। इक जानेका अर्थ है मर जाना और पत्थर बन जाना। अब, यदि वस्तुएँ निरन्तर बदलती रहती हैं तो इसका अर्थ है कि वस्तुएँ बदल सकती हैं और अवस्य बदलनी ही चाहिये। बस, मनुष्यको देखना यह चाहिये कि किस दिशामें परिवर्तन घटित हो रहा है। आखिरकार परिवर्तन अच्छेके लिये हो सकता है या बुरेके लिये और यदि तुम्हें समुचित चेतना प्राप्त हो तो, तुममें वह शिक्त कि समुचित प्रकारका परिवर्तन उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सके। क्या तुमने कभी पर्वतपर आरोहण किया है!

रती

कोई

रेसी

ठकी

शोंमें

यक्त

नैसा

त्रीज

वैसी

नया

वीन

रता

नीय

और

ते है

केया

नोंसे

ोगा

ोना

पस

ागे-

ाना

<u>ल्ती</u>

और

यह

है।

रेके

वह

ग्हॉं-

मर्थ

है ?

पर्वतपर कई रास्ते, पथ, पगडंडियाँ होती हैं जो शिखरतक ले जाती हैं। कोई-कोई रास्ते तो थोड़े-बहुत सीधे होते हैं, कोई-कोई टेढ़े-मेढ़े, फिर दूसरे बहुत चकरदार या बहुत लंबा चकर काटकर ले जानेवाले। परंतु तम यदि ऊपरकी ओर ताकते रहो, शिखरकी ओर ले जानेवाली दिशाको जानो तो इससे कुछ आता-जाता नहीं, तब तुम ऊपर अवश्य पहँच जाओगे। अन्यथा, यदि तुम्हारा मुँह नीचेकी ओर मुडा हो या तम नीचेकी ओर ताको तो तुम शिखरसे दूर नीचेकी ओर ही चले जाओगे। उसी तरह जोपरिवर्तन घटित होंगे, वे उसी दिशाकी ओर जायँगे, जिस दिशामें तुम्हारी दृष्टि होगी। और वस, एक ही दिशा है जिधर तुम्हें अपनी दृष्टि फेरनी चाहिये; वह है शिखरकी ओर, उच्चतम लक्ष्यकी ओर ले जानेवाली दिशा । इसका अभिप्राय है सचेतन होना, अधिकाधिक सचेतन होते जाना-अपने विषयमें सचेतन होना, विश्वके विषयमें सचेतन होना और फिर उन भगवानके विषयमें सचेतन होना जो तुम्हारे अंदर विराजमान हैं तथा संसारभरमें परिव्यात हैं और उसके बाद अपने भौतिक जीवनमें तथा जगत्के भौतिक जीवनमें भगवान्को अभिव्यक्त करना।

साकार और निराकार

जव तुम्हारी चेतना धीरे-धीरे वस्तुओं के मूलकी ओर उठती है, तव तुम अन्तमें वस्तुओंके अन्तमें पहुँच जाते हों; जिन नाम-रूपोंसे यह विश्व गठित हुआ है, उन सबके परे चले जाते हो और यहाँतक कि अन्तिम शिखरपर जो सूक्ष्म नाम-रूप हैं, उनसे भी परे चले जाते हो। तुम एक ऐसी चीजके पास पहुँच जाते हो जो निराकार, नैर्व्यक्तिक, अचिन्त्यः अद्वितीयः अनन्त और शाश्वत होती है। वह अधिक-से-अधिक विशाल शक्ति या चेतनाकी एक स्थिति होती है। जब तुम उसके संस्पर्शमें आते हो तब तुम अपना व्यक्तिगत रूप, अपना पृथक् व्यक्तित्व सो देते हो और श्रेष्ठतम स्थिति और वस्तुओंका मूल मानते हो। परंतु वास्तवमें देखा जाय तो यह वस्तुओंका अन्त नहीं है और न परात्पर स्थिति ही है। तुम उससे भी परे जा सकते हो। उस समय तुम्हारी चेतना निराकार और नैर्व्यक्तिक स्थितिमें प्रवेश करती और उसमें अपनी पृथक् सत्ताको विलीन कर देती है और उसके बाद फिर उससे बाहर निकल आती है; वह एक ऐसी सद्वस्तुके सम्मुखीन होती है जो आकारहीन नहीं होती,

विस्त साकार होती है; वह अ-व्यक्तिक नहीं होती, विस्त एक दिव्य व्यक्ति होती है, जिसके साथ तुम एक व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर सकते हो और वह अ-व्यक्तिकके साथ स्थापित सम्बन्ध या सम्बन्धहीनताके जैसा नहीं होगा। परंतु आकार-हीनके परेका यह आकार निम्नतर चेतनाके आकारोंके जैसा नहीं होता; वह तो आकारोंका आकार होता है, और वह किसी मनुष्यके जैसा या किसी दिव्य पुरुष या देवताके जैसा भी कोई पुरुष नहीं होता, विस्त एक सारभूत व्यक्तित्व होता है, पुरुषोंका पुरुष होता है। इसमें अहंबद्ध व्यक्तित्व (देवताक भी अहं-बुद्ध होते हैं) की सीमा या पृथक्ता नहीं होती। इसमें एक प्रकारकी तरल बद्धता या सीमारेखा तो होती है जो एक सुनिश्चित व्यक्तिकी बद्धता या सीमारेखाकी तरह पहचानी जाती है, पर उसमें निम्नतर आकारोंकी हदता या कठोरता नहीं होती।

और फिर भी इस परात्पर व्यक्तितक पहुँचनेके लिये, उसके संस्पर्शमें आनेके लिये आकारहीन नैव्यक्तिक अनन्तताके अनुभवको पाना और उसमेंसे गुजरना आवश्यक है; क्योंकि उस अनुभवसे निम्नतर साँचे, संकीर्ण अहंजन्य उन्नाएँ, जो सच्चे व्यक्तिके केवल विकृत आकार या धूमिल प्रतिमूर्त्तियाँ हैं, भंग हो जाती हैं।

लगभग उसी धारामें प्राणको भी स्वयं ल्पान्तरित होनेके लिये अग्रसर होना पड़ता है । उसे भी अपने अज्ञानपूर्ण और उम्र आवेगोंसे, अपनी अन्धकारपूर्ण रचनाओंसे अवस्य मुक्त हो जाना चाहिये; उसे पूर्णतः स्वच्छ और गुद्ध वन जाना चाहिये। इसके लिये उसे अचञ्चल और नीरव होना-पूर्णरूपसे स्थिर और निष्क्रिय बन जाना सीखना चाहिये; और उस अचञ्चल निष्क्रियताके अंदर उसे भागवत-उपस्थितिका अनुभव करना, उसके विषयमें सचेतन होना तथा उसमें एकदम सराबोर हो जाना सीखना चाहिये। एक बार जब वह ऐसा कर लेता है तब उसे बाहर निकल आने और सिक्रय जीवनमें भाग लेनेके लिये पुकारा जाता है। परंतु सामान्यरूपमें, जब मनुष्य कर्मविरत हो जाता है और अन्तर्भुखी अचञ्चल जीवन यापन कर चुकता है, तब बाहरी जीवनमें फिर वापस आनेपर उसकी प्रवृत्ति पुनः पुराने अभ्यस्त तौर-तरीकों और प्रतिक्रियाओंकी ओर मुड्नेकी होती है; मनुष्य चेतनाकी उसी पुरानी खाईमें फिरसे जा गिरता

संह

318

कर

औ

रा

प्रश

ग्र

बि

अ

श

स

वि

श

वि

र

प्रा

है। उस समय प्राण-मनुष्यको भागवत-उपिश्वितिके अनुभव और उपलब्धिको इस प्रकार सिक्रिय और सशक्त बनाना चाहिये जिससे कि वह एक सजीव सत्य बन जायः प्राणको केवल अन्तर्मुखी स्थितिमें ही नहीं वरं सभी क्रियाओं के बीच भी उसके विषयमें सचेतन बने रहना चाहिये। प्राणकी सारी शक्ति एक पूर्ण और पूर्णताप्राप्त जीवनमें नियोजित हो जानी चाहिये, पर उसे पुराने साँचों में ही नहीं दौड़ाना चाहिये। और अभ्यासगत पद्धतियोंको ही नहीं अपनाना चाहिये। भगवान्का, भगवान्की चेतनाके चिरस्थायी सत्य और सौन्दर्यका सतत बोध बने रहनेपर प्राण एक नवीन जीवनको अधिकृत कर लेगा और एक नये प्रकारके जीवनकी सृष्टि कर लेगा।

रामचरितमानसका मङ्गलाचरण

(लेखक-पं० श्रीसुनहरीलालजी शर्मा, साहित्यरत)

रामचिरतमानस कविकुलितलक प्रातःस्मरणीय
गोखामीजीकी वह दिव्यवाणी है जो मरणधर्मा मानवोंको
श्रीरामचिरित्रकी पवित्र खादु-सुधा पिलाकर अमरत्व प्रदान
करनेके लिये धरा-धाममें अवतीर्ण हुई है। युग-युगान्तरोंसे
असंख्य नर-नारी मानस-कथाकी पावन मन्दािकनीमें स्नान
करके पाप-तापसे रहित हो अनन्त-शान्ति-सुधाका लाभ करते
आ रहे हैं। मानसमें शस्त्र धारण करनेमें सर्वश्रेष्ठ मर्यादापुरुषोत्तम, ऋषिजन-प्रिय, भगवान् श्रीरामकी लिलत लीलाका
वर्णन है। आजसे करीव लाखों वर्ष पूर्व धर्म, न्याय और
नीतिके लिये संग्राम करनेवाले एक अलौकिक महापुरुषका
भारतवर्षमें अवतरण हुआ। कालका पुरुषार्थ प्रत्येक वस्तुसे
रस खींच लेनेमें समर्थ है। प्रत्येक वस्तुको काल नीरस बना
देता है; क्योंकि वह इसमें पटु है। कालः पिबति तदसम्।

आजकी किसी महत्त्वपूर्ण घटनाको कोई पुनः याद नहीं करता। किंतु यह एक ऐसे अनुपम अलौकिक परम पुरुषका चरित्र है, जिसे लाखों वर्ष व्यतीत होनेपर भी काल नीरस नहीं बना सका। कालके पुरुषार्थको जहाँ पराभव मिला, काल जिसके रसका पान नहीं कर सकता, लाखों वर्षोतक जिसके व्यक्तित्वकी छाप बनी रहे, ऐसा कोई व्यक्ति संसारके इतिहासमें देखनेको नहीं मिलता। परंतु ऐसे उदात्त परम पुरुषका मानसमें चरित्रचित्रण है। आज उसके मङ्गलाचरणके विषयमें यत्किंचित् विचार किया जाता है।

अवश्य ही अति ग्रुभ मुहूर्तमें गोखामीजीने मानसकी रचना प्रारम्भ की थी। जान पड़ता है कि हंसवाहिनी वीणापाणि माँ सरस्वतीको पूर्णावकाश था। माँ निश्चिन्त थी। प्रफुल्लित थी। कविता-कलापकी तरंगें उसके हृदयमें लहलहा रही थीं। अपने परम भक्तका काव्य-रचनाकी ओर झुकाव देख लीलामय भक्तवत्सल भगवान्की आज्ञा हुई। फिर क्या था, गोस्वामीजीके उर-अजिरमें माँ सरस्वती स्वतन्त्र-स्वच्छन्द गाने लगीं। फिर क्या था—क्रम चला। सचमुच मुमेरकी मृष्टि गयी। असंख्य रत्नोंकी खानि उनकी रचनाके भीतर भर गयीं, जिन्हें मर्मी सज्जन मुमतिरूपी कुदालीद्वारा खोज रहे हैं और फिर भी जिनका अन्त नहीं है।

श्रीरामचिरतमानसका निर्माण अत्यन्त अलैकिक रीतिसे हुआ है। दिव्य राक्तियोंकी विशिष्ट आयोजनासे उसका महान् प्रणयन हुआ है। दिव्य रचनामें सर्वप्रज्ञात्मिका समष्टि-वाक्-शिक्ति अवतारणा होती है, उसकी धारा अवाध और अभङ्ग होती है। अन्तःकरणकी इन्द्रियाँ अथवा मानिसक शिक्तयाँ स्वतः अन्तरात्मा अन्तर्यामीकी प्रेरणासे रचनाकार्यमें प्रवृत्त होती हैं। जो जिस कोटिकी आत्मा होती है उसके चिरत्र भी वैसे ही होते हैं, यथा—

होनेवाला कोई होता है एक जो कार । ग़ैब से होते हैं शामां आशकार ॥

कविका अन्तःकरण विश्वका अन्तःकरण होता है । उसकी वाणी विश्वकी वाणी होती है । इसमें समस्त विश्व समोया हुआ होता है । अस्तु ।

गोस्वामीजीके मङ्गलाचरणपर विचार करनेसे उनका आशय बहुत कुछ ज्ञात हो सकता है। प्रारम्भिक मङ्गलाचरण संस्कृत भाषामें है, जिसके अवलोकनसे पता चलता है कि देव वाणीके विद्वान् श्रीगोस्वामीजी स्मार्त वैष्णव थे। स्मार्त शब्दकी अर्थ है जो स्मृतियों के विधानके अनुकूल अपना जीवन-यापन करता हो। स्मार्तों की रीतिके अनुसार ही उन्होंने पहले गणेश और सरस्वतीकी वन्दना की है। फिर शंकर-पार्वती इत्यादिकी। रामचरितमानसका प्रथम श्लोक है—

> वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्द्रमामपि । मङ्गलानां च कर्तारी वन्दे वाणीविनायकौ ॥

वाणी और विनायककी एक साथ वन्दना करनेका प्रयोजन यह है कि दोनों सङ्गल आदिके कर्ता हैं। वाणीसे गुणोंकी उत्पत्ति करके गणेशजीको उनका रक्षक साथ-ही-साथ कर दिया है। वाणी और भक्ति नारीवर्ग तथा विनायक और ज्ञान पुरुषवर्ग हैं। वाणीको प्रथम रखकर वताया है कि इस प्रन्थमें भक्तिकी प्रधानता होगी । वाणीका अर्थ इसकी अधिष्ठात्री शक्ति और विनायकका अर्थ बुद्धिका अधिष्ठातृ देवता है। बुद्धि और वाकशक्ति अथवा विचार और उचारके बिना साहित्य सम्भव नहीं होता । यदि इन दोनोंका सामञ्जस्य न रहा तो साहित्यका स्थान अनुर्गल प्रलाप ले लेगा। यद्यपि आध्यात्मिक संसारमें वाणी ब्रह्मा-परिवारकी पुत्री और विनायक शिव-परिवारके देव माने गये हैं, परंतु काव्य जगत्में इन दोनों शक्तियोंका ध्यान सम्मिलित रूपमें किया जाता है। सरस्वतीका वास कवियोंके अन्तः करणमें होता है तथा विनायक सुमतिके प्रेरक हैं। श्रीरामजीकी प्रेरणासे वैसे ही शब्द उनके मुखारविन्दसे निकलते हैं।

अन्तः करणकी कोई स्थिति ऐसी होती है जिसमें वाक्-राक्तिका विकास होता है। जब वह राक्ति रसाकार होती है, तब उसे काव्य कहते हैं और जब वह राक्ति ज्ञानाकार होती है तब दर्शन और नीतिका रूप छे छेती है। जिनके हृदयमें पूर्व संस्कार से रसका संचार होता है, उनकी वाणीका विकास रसाकार होता है, उसे हम काव्य कहते हैं। दिव्य विचार और तदनुकूछ दिव्य उच्चारसे संयुक्त हों तो काव्यके क्षेत्रमें उनकी शक्ति पाँच रूपोंमें प्रकट होती है जिसका उल्लेख सूत्ररूप इस क्षोक (वर्णानाम् विनायको) में किया गया है। वे ये हैं (१) पहला अङ्ग है वर्ण (२) दूसरा है अर्थसङ्घ (३) तीसरा है रस (४) चौथा है छन्द अथवा संगीतात्मकता और (५) पाँचवा है मङ्गल यानी साहित्यका हितत्व।

पूर्वाचार्योंने काव्यमें शब्दों और अर्थोंकी महत्ताका प्रतिपादन किया है। गोस्वामीजीके कथनानुसार— कबिहिं अस्य आखर बहु साँचा ।

हमारे गोस्वामीजीने काव्यमें अर्थका नहीं किंतु अर्थसङ्घका महत्त्व वताया है । शास्त्रका उद्देश्य है—शानवर्धन, अतः उसके द्वारा एक ही अर्थ द्योतित होना चाहिये। काव्यका उद्देश्य है—भाववर्धन तथा आनन्दवर्धन। अतः उसके द्वारा ऐसे अनेक अर्थोकी उपलब्धि होनी चाहिये, जिनके द्वारा अनेक प्रकारसे आनन्दका वर्धन हो सके। काव्यके शब्दोंकी खूबी इसीमें है कि उनसे बुध और अबुध—विद्वान् और सर्वसाधारण सभीको अपनी रुचिके अनुकूल आनन्द प्राप्त हो। इसीलिये गोस्वामीजीने लिखा है—

बुध बिश्राम सकल जनरंजिनि । रामकथा किल कलुष बिमंजिनि ॥

अर्थात् काव्य वही मनोहर है जो सकल जनका रक्षन तो करे ही; परंतु विद्वानोंको भी इतने उपादेय सामग्री दे कि उनकी भाव-पिपासा और ज्ञान-पिपासा सब वहीं तन्मय होकर रह जाय।

गोस्वामीजीके मानसमें काव्य तथा शास्त्रका एक ऐसा ही अपूर्व सम्मिश्रण हुआ है।

काव्यके तीसरे अङ्ग रसके विषयमें केवल इतना ही कहना है कि गोस्वामीजीने अपनेको नौ रसोंमें ही नहीं बाँचा है। परंतु उन्होंने 'सानी सरल रस' तथा 'मगन घ्यान रस दंड जुग' इत्यादि नये-नये रसोंकी उद्भूति की है। जिस सरोवरसे असली रस निकलता है, उसे कहते हैं—रामचरित-सर। काव्यके नवों रसोंको इसी सरोवरतक पहुँचानेके लिये मानसमें उनका उल्लेख हुआ है। इन रसोंका आनन्द इतना विश्वव्यापी और आनन्ददायी हो जाता है कि—

सहज वयर विसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान। गोस्वामीजीके काव्यमें वही शक्ति थी। काव्यके पञ्चाङ्गका

गोस्वामीजीकं काव्यमं वही शाक्त थी। काव्यकं पञ्चाङ्गका चौथा तत्त्व है—'छन्द।'

छन्दका सार है संगीतात्मकता अथवा नाद-सौन्दर्य। भावानुकूल ही शब्दध्विन और उस ध्विनकी गित-यित भी ठीक हो तो आनन्दका उद्रेक विशेष रूपसे हो उठता है। संगीत-तत्त्व इस छन्द-तत्त्वके अंदर समाविष्ट होता है। इसिल्यि गोस्वामीजीने गेयताको बड़ी प्रधानता दी है। उन्होंने राम-कथाको गानेकी (पढ़नेकी नहीं) बात कही है।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तिज गावा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

9-

और (नको सृष्टि

38

गहिये

हेये।

रही देख । थाः गाने सृष्टि

भीतर

खोज

ौिकक उसका त्मका अबाध

नसिक कार्यमें उसके

उसकी तमोया

उनका जचरण ह देव

गब्दका

वा

संव

अं

ए

वा

प्रा

प्रा

यह

सर

दि

क्ये

कर

संत

₹,

श्र

अव

अहि

वाले

ऐसे

ये र

हम

सस

वीए

लेने

पार

तात

निक

और

है उ

'छन्द्सां' के बाद 'अपि' शब्द काब्यके लिये छन्दोंकी ब्यक्जनाके साथ उसकी गेयात्मकताकी भी आवश्यकता ब्यक्जित कर रहा है।

काव्यके पद्याङ्गका पाँचवाँ तत्त्व है—'मङ्गल'। इस राब्द-के साथ 'च' और 'कत्तारों' दोनों राब्दोंका प्रयोग किया है। पहले 'च' का अभिप्राय समझ लेना चाहिये। 'मङ्गल'के साथ 'च' का प्रयोग करके यह व्यक्षित किया गया है कि 'मङ्गल' (साहित्यका हितत्व) तो दोनों प्रकारके (गद्य और पद्य) काब्यों, सभी शास्त्रोंके साथ जुड़ा होना चाहिये। यथा—

भंगल करिन किलमल हरिन " इत्यादि ।

सजन लोग काव्यमें इस मङ्गल-तत्त्वकी खोज किया करते हैं। गोस्वामीजी तो डंकेकी चोट कहते हैं— कीरित मिनिति मृति मल सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥ यही बह बस्त्र है जो काव्यरूपी नायिकाको शालीनता देता है।

अब रहा 'कर्त्तारी' राब्द । 'कर्त्तारी' का अर्थ है— रचनेवाले । असली बात यह है कि गोस्वामीजी कविकर्मको बड़ा दुष्कर मानते थे । सच्चे साधककी भाँति इसे भी वे एक ईश्वरीय प्रेरणा समझते थे । तभी तो उन्होंने कहा है— जापर कृपा करहिं जनु जानी । किव उर अजिर नचाविहं बानी ॥

किव-प्रतिमारूपी कठपुतलीका संचालक तो वही हृदयस्य देश्वर है जिसके दर्शनके लिये श्रद्धा और विश्वासकी ऑखें चाहिये। इसीसे मङ्गलाचरणका दूसरा श्लोक लिखा जाकर उसे इस श्लोकका पार्श्ववर्ती बनाया गया है।

गोस्वामीजी लोकोत्तर कवि थे। इतना होते हुए भी वे लिखते हैं—

किव न होउँ निहं बचन प्रबीनू॥ तथा—

किंव न होउँ निहं चतुर कहावउँ॥

गोस्वामीजी अपनी कृतिको अपनी न मानकर अपने प्रेरणादायक प्रभुके प्रतिनिधिकी मानते हैं। वही वस्तु भगवदर्पण होनेसे सुन्दर वन जाती है और कविकी उसपर छाप लग जाती है। यथा—

संमु प्रसाद सुमति हिय हुकसी। रामचरितमानस कवि तुकसी॥

ईशावास्योपनिषद्में लिखा है-

क्विर्मनीषी परिभृः स्त्रयम्भृषीथातथ्यतोऽथीन्, ब्बद् धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

जिन दिन्यरस और भावके प्रतिक्षण भाव्यमान प्रेमा-लिङ्गनसे जिनके जीवन और आनन्दके मधुर मिलनसे सौन्दर्य और माधुर्यकी अनन्त लोल लहरियाँ छलकती हैं और उछलती चतुर्दश भुवनोंको आप्लावित करती हुई असंख्य हृदय-कमलोंको खिलाती रहती हैं। प्रकृतिकी नाना छटाओंमें जो पुरुषोत्तम, सुन्दर और कीडाशील राम रमण कर रहा है। अपनी अनेक भाव-भङ्गियोंसे जो प्रकृति उस नित्य नव्य नायकको रिझा रही है-- सृष्टिके अन्तरमें रस और भाव तत्त्वके जो खेल हो रहे हैं, उनकी लीलामयी जो व्याप्ति है उसे जो अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखता है, उसीको 'कवि' कहते हैं। जो उसके तत्त्व-महत्त्वको जानता है उसे 'मनीपी' कहते हैं। जो उसमें प्रवेश कर उसका एक अङ्ग बन जाता है उसे 'परिभू' कहते हैं और जब अङ्गीके साथ मिलकर उसकी सम्पूर्ण लीलाओं में अपनी व्याप्तिका अनुभव करने लगता है तब वह 'स्वयम्भू' पदको प्राप्त होता है। इन्हीं ·स्वयम्भू 'के तृतीय अवतरण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी थे। लिखा है-

वाहमीकिस्तुलसीदासो भविष्यति कलौ युगे। शिवेनात्र कृते ग्रन्थे पार्वतीं प्रतिबोधितुम् ॥ रामभक्तिप्रवाहार्थं भाषाकाव्यं करिष्यति। रामायणं मानसाख्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥

इमारा परम सौभाग्य है कि यह महान ग्रन्थ इमारे पास है। आजके इस जडवादी युगमें मानससे हम क्या सीख सकते हैं, इस प्रकारके विवेचन कम सुनने और अध्ययन करनेको मिलते हैं। इसीसे यह लेख लिखा है। मङ्गलाचरणके द्वितीय क्लोक (भवानीशंकरो ... इत्यादि) भाषार्थ फिर कभी प्रस्तुत किया जा सकता है।

जय जय सियाराम ॥

-

परमहंस अनन्त श्रीस्वामी नारायणदासजीका एक संस्मरण

(लेखक--पं० श्रीमदनगोपालदत्तजी)

अब्यक्तादीनि भ्तानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥ (गीता २ । २८)

मनुष्यकी स्थितिके विषयमें गीताका यह उपदेश-वाक्य संसारकी व्यथासे पीड़ित प्राणियोंके लिये शान्तिका अनुपम संदेश है । मानव सनातन आत्माका अङ्ग है, क्षणभरके लिये व्यक्त हुआ तथा देहान्तर-प्राप्तिके बाद फिर सनातनका अंश हो गया । शरीरघारीके रूपमें प्राणीका संसारमें आना एक विलक्षण घटना है । उसकी मध्यकी व्यक्त स्थिति वास्तविक स्थिति नहीं कही जा सकती । संसारके नश्चर प्राणियोंकी सारी प्रक्रिया ही इसी मिथ्या मध्यावस्थापर आश्रित है । धर्मग्रन्थों तथा महात्माओंने वार-वार इस तथ्यका प्रतिपादन किया है, किंतु मायामें पड़े हुए संसारी जीवोंको यहाँकी यह सत्ता ही सत्य भासती है । उसके परेवाली सत्ता सत्य नहीं दीखती ।

परमहंस श्रीस्वामी नारायणदासजीके सहसा आकस्मिक दिवंगत हो जानेसे हम शतशः भक्तजनोंको वड़ी ही पीड़ा हुई; क्योंकि जिन प्राणियोंके मानसपर संतप्रवरने अधिकार कर लिया था, वे यह जानते हुए कि यह निस्सार है तथा संत-महिमा इसका उच्छेदकर निर्वाघ तथा निर्वन्ध ही रहती है, अपनी श्रद्धाके पुष्प विश्वेरनेके लिये विवश्च हैं। पार्थिव शरीरकी नश्वरताके विधयमें संतप्रवरके अनेकशः निर्वचन अवण करके भी, जैसे वे इस पीड़ाको छिपानेमें विफल हैं। श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ संसारकी यात्रामें अन्वेकी भाँति टटोलनेवाले प्राणियोंके लिये प्रकाश-स्तम्भका कार्य करती हैं; किंतु ऐसे प्रकाशके उपयोगके लिये भी निर्मल चक्षु होने चाहिये। ये संतगण ही हमें वह निर्मल चक्षु प्रदान करते हैं, जिससे हम श्रुति-स्मृति-धर्मग्रन्थ-प्रतिपादित मार्गका अनुसरण करनेमें समर्थ होते हैं।

मेरा निजका अनुभव है कि सत्यद्रष्टा मनीषियोंकी वाणीसे निःस्त धर्मवचनोंका एक बार भाष्य श्रवण कर हेनेसे जो तत्त्वबोधकी दृष्टि प्राप्त होती है, वह अनेकों पारायणोंसे नहीं होती। गीता तथा उपनिषद्-जैसे प्रन्थका तात्पर्य भी जैसे हम समझकर नहीं समझते। संतोंकी वाणीसे निकली हुई व्याख्या जैसे उनका नव संस्कार कर देती है और वे उपलब्धियाँ हमारे अन्तर्मनमें बैठ जाती हैं।

धर्म तथा अधर्मका वाचिक ज्ञान असाध्य नहीं, असाध्य है उसकी व्यावहारिक प्रक्रिया। इस जानकर भी अधर्मसे विरक्त तथा सन्मार्गमें रत नहीं हो पाते । मेरे जीवनमें सन् १९५६ ऐसा मोड़ है जिसकी स्पष्ट स्मृति मेरे मानसपर अङ्कित हो गयी है । यह वही पुनीत समय है जब परमहंसने अपने ग्रुभागमनसे उत्तर प्रदेशके गाजीपुर जनपद—इस गाजीपुर नगरीको पवित्र किया था । सचमुच ही भहार्थान्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः' तीर्थकी माँति ही सजनोंके सानिध्यमें कोई तत्त्व निहित है जो वलात् हमारे मनको खींच लेता है । मेरा मन भी श्रीस्वामीजीकी ओर खिंचा । मुझे ऐसा लगा जैसे स्वयं तपस्या ही शरीर धारण करके चली आयी हो । च्यों-च्यों मुझे श्रीस्वामीजीके निकट आनेका अवसर आया, मैंने देखा कि इन मुद्धी-भर हिंद्युयोंमें कोई अनन्त ज्योति प्रच्वलित है । जिसका वास्तविक परिचय प्राप्त करना उन प्राणियोंके लिये नितान्त कठिन है जो क्षणभरके लिये एकाग्र साधनमें असफल हैं ।

मेरे आवाससे कुछ ही दूरीपर श्रीस्वामीजी उस तपो मूमिमें भी गये, जहाँ कुछ काल पूर्व संतप्रवर श्रीपवहारीजीकी कुटिया तथा उनका साधनास्थल था। श्रीपरमहंसजीने एक कुटी, जिसकी छत जीर्ण होकर नष्ट हो गयी थी, जीर्णोद्धार-की इच्छा व्यक्त की तथा जवतक वह कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, तबतकके लिये मेरे वड़े अनुरोधसे मेरे आवास, आयना-कोठी, जो गङ्गातटके समीप ही स्थित है, उसमें लगभग एक सप्ताह रहे। श्रीस्वामीजीके सत्संगकी कीमत मैं अब लगाता हूँ। आज जब उनका पार्थिव शरीर ओझल हो गया है तथा मेरे चर्मचकुओं कभी भी दिखायी नहीं पढ़ सकता, मैं कुछ अनुमान कर पाता हूँ कि उन्हें खोकर उन सहस्तों नर-नारियोंने कौन-सा महान् प्रकाश खो दिया है !

संतप्रवर परमहंस श्रीनारायणदासजीके प्रथम दर्शनमें ही मैंने समझ लिया था कि ये कोई अद्वितीय पुरुष हैं। ये सब्चे अर्थों में स्थितप्रश हैं। संसारके चाकचिक्यमें इनका अमर शान तथा बोध तिरोहित नहीं हो सकता। गीतामें भगवानने इसी स्थितिके लिये तो सम्भवतः कहा है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्ध नैनां प्राप्य विसुद्धति । स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

(२1७२)

श्रीस्वामीजीने संयमका रहस्य वताते हुए कहा था कि संयमका प्रथम सोपान जिह्वा ही है। क्रमशः जिह्वाके संयमसे समस्त इन्द्रियोंके संयमकी प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तथा संयमसाधनोंमें केवल इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंके विषयोंके परित्यागसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उसी ॥

क्विकी

ब्बद्

प्रेमा-तौन्दर्थ और

असंख्य प्रओंमें र रहा

नित्य भाव-

ते है। कहते

कहत कहते ता है।

नेलकर करने

। इन्हीं ती थे।

1

। इमारे

म्या और

रा है।

गदि)

संयम सघ नहीं सकता; क्योंकि गीतामें भगवान् कहा है। विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ (२।५९)

मुझे श्रीस्वामीजीकी कृपासे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि विषयोंसे मनका निग्रह-मार्ग तबतक नहीं सध सकता, जबतक कि स्वयं मनको भगवदर्पण नहीं किया जाता । इसीलिये तो वे निरन्तर जपमें लीन रहते थे और उनके जीवनकी सिद्धि ही इसी 'ॐ नारायण' मन्त्रके जपसे प्राप्त हुई थी, जिसका आनन्द-गद्गद होकर वे कथन करते थे।

श्रीस्वामीजी महाराजका जन्म, चैत्र सुदी पूर्णिमा संवत् १९३७ (२० अप्रैल सन १८८०) को कायस्य माथुरक्लके धनाट्य और संभ्रान्त वंशमें उत्तरप्रदेशके मुरादाबाद जनपदमें हुआ था । ईश-कृपासे उन्हें नर्मदा-किनारे गुजरातके चान्दोद नामक स्थानमें 'नारायण प्रभु' के दर्शन भी हुए । यह वृत्त उन्होंके द्वारा लिखी 'एक संतका अनुभव' नामक पुस्तकसे प्राप्त होता है। यह पुस्तक श्रीहनुमानप्रसादजी पोदार, कस्याण-सम्पादकके अनुरोध करनेपर श्रीस्वामीजीने चैत्र कृष्ण १०, संवत् १९८६ को स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें लिखी थी । पुनः नर्मदासे लौटकर संत बदरिकाश्रममें आये । समय-समयपरं उन्होंने भक्तोंके अन्रोधसे भ्रमण भी अधिक किया और उस यात्रामें मेरे जैसे कितने अकिञ्चन तथा अज्ञाना-न्वकारमें इवे प्राणियोंके लिये जीवन-मार्ग आलोकित किया। उनकी आत्मा अन्तसमयमें बदिरकाश्रममें ही निवास करती रही और २३ जुन सन १९६१ ग्रुक्कवारको साहे ६ बजे खंध्या, भीमसेनी एकादशी लगनेपर उन्होंने अपना पार्थिव श्रारीर भी वहीं छोड़ा । समाचि छेते समय भीस्वामीजीकी आयु ८१ वर्ष थी--

ज्येष्ठ शुक्त एकादशीः संबत युगळ हजार। अष्टादश उत्तर भयेः नारायण भव पार॥

श्रीस्वामी नारायणदासजीकी स्मृतिको चिरस्थायी रखनेके लिये बदरिकाश्रमके संतो तथा सजनोंने कुछ सुझाव पेदा किये हैं। ये सुझाव संतकी दृष्टिले कोई महत्त्व नहीं रखते; क्योंकि उनका तो सारा जीवन लोक-संग्रहकी भावनासे ओत-प्रोत था।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। (गीता ३ । २०)

किंतुं संसारके प्राणियोंको निर्गुणकी अपेक्षा संगुण तथा सुश्मकी अपेक्षा स्थूल ही वस्तु इन्द्रियंगोचर होती है। संतोंकी इस स्मृतिसे भी अज्ञानमें डूबे 'हुए' हमारे-जैसे प्राणियोंको प्रकाश या चेतना प्राप्त हो सकती है। श्रीखामीजी की स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिये—

- (१) बद्रिकाश्रममें मन्दिरके सामने श्रीस्वामीजीकी समाधि तथा उनकी संगमरमरकी मूर्तिकी स्थापना ।
- (२) वर्षमें संतप्रवरके शिष्यों तथा भक्तोंका सम्मेळन हो। एक वार आंकिन कानपुर तथा उनके दिव्यधामनामन पर्वपर भीमसेनी एकादशीको बदरिकाश्रममें हो।
- (३) समाधि मन्दिर या कानपुरमें ही एक संग्रहाल्य स्थापित किया जाय जिनमें वे सारी वस्तुएँ संगृहीत हों जो महात्माके जीवनसे किसी-न-किसी प्रकार सम्बद्ध हैं।
- (४) श्रीस्वामीजीके नामपर एक अखिल भारतीय स्तर-पर दूरटकी स्थापना हो । इसकी स्थानीय समितियाँ भी को तथा एकत्र धनराशिको अपने-अपने क्षेत्रोंमें भजन, कीर्तन, प्रार्थना, प्रवचन आदि धर्मप्रचारके पुनीत कार्योंमें व्यक्ष किया जाय ।

श्रीखामीजीकी स्मृतिको चिरस्थायी वनानेके जो भी मुझाव वदिरकाश्रमके सज्जनों तथा भक्तजनोंने दिये हैं वे श्रद्धाके विषय हैं; किंतु परमहंसजीका उससे भी विशाल संग्रहालय उन असंख्य प्राणियोंका हृदय है जिनमें श्रीखामीजी-के वचन तथा उपदेश संग्रहीत हैं। श्रीखामीजीकी सची भक्तिका स्फुरण तो तभी माना जायगा, जब हम भक्तजन उन शिक्षाओंको अल्पशः भी जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करेंगे। जिनकी परीक्षामें उनका पार्थिव शरीर इविष्य हो गया।

उनके निर्वाणकी बुचनासे अन्तस्तलको एक घड़ा अवस्थ क्या, किंद्र शिव ही प्रकृतिस्थ होनेपर ऐसा क्या, जैसे श्रीस्वामी जी महाराज व्यष्टिभूत अज्ञान तथा तदुपहित चैतन्यसे जीवन मुक्त होकर ग्रुह्म चैतन्य हो गये हैं। अब वे शरीरकी सीमा छोड़कर अपने कोटि-कोटि भक्तजनोंकी चेतनाके अविभाव्य अङ्ग बन गये हैं। आज उनकी दूरी इससे अधिक नहीं हुं। है, किंतु कम हो गयी है। मायासे चिरे इस संसारमें पद्मपत्र की भाँति रहनेवाले श्रीगुरुदेव महाराज स्वामीजी अपने भक्तोंके लिये संबल तथा प्राणिमात्रके लिये प्रकाश थे। उनका जीवन उन संतोंका जीवन था जो संसारकी धाराके प्रतिकृत्व ही अपना अस्तित्व प्रमाणित करते हैं तथा संसारकें धुर्म प्राणियोंकी चिन्ता तथा व्यग्रताकी निस्सारता सिद्ध करते हैं।

> या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(गीता २ । ६९)

जीवनमें उतारनेकी वातें

गमीजी.

समाधि

म्मिलन

म-गमन

ग्रहाल्य

हों जो

य स्तर-

भी वर्ने

कीर्तन

में व्यव

जो भी

हैं वे

विशाल

ामीजी-

ो सची

मक्तजन

करेंगे।

अंवश्य रिवामी

जीवन

सीमा

विभान्ध

नहीं हुई

द्मपत्र

अपने

उनक

प्रतिकूल

市频

रते हैं।

11

189

दुःखी-दीन-आर्त-रोगीमें छिपे सदा देखो भगवान । सादर सेवा करो यथोचित: तन-मन-धनसे सह-सम्मान ॥ १ ॥ दुखी जनोंपर हँसो नहीं, मत करो उपेक्षा रख अभिमान। कभी दिखाओ मत वैभव-पद-जाति-राक्तिकी झूठी शान ॥ २॥ प्यार करो, सुख दो सबहीको यथायोग्य, आत्मा-सम मान। दुखमें दुखी वनो दुखियोंके, करो न कभी तनिक अपमान ॥ ३॥ जो कुछ तुम्हें मिला, वह सब है प्रभुका, तन-धन-प्राणि-पदार्थ। सविनय प्रभु-सेवामें कर अर्पण साधो निज असली स्वार्थ ॥ ४ ॥ अपने प्रति अन्योंसे तुम जो खुयं चाहते हो व्यवहार। सबके प्रति तुम करो नित्य तन-मनसे सदा वही आचार ॥ ५ ॥ जिसको तुम प्रतिकृत सानते अपने प्रति, ऐसा वर्ताव। करो कभी मत अन्य किसीसे भी वह वर्त्तन, रख सङ्खाव ॥ ६॥ सेवा करो पिता-माता-गुरुजनकी नित रख मनमें चाव। प्राप्त करो आशिष अमोघ तुम रक्खो मनमें श्रद्धा-भाव॥ ७॥ बोलो कभी न वचन झूठ, कद्व, व्यर्थ, अहितकर हो वेभान। करो सत्य, ग्रचि, सार्थक, हितकर, मधुर वचनका सुखकर दान ॥ ८॥ सभी इन्द्रियोंके विषयोंमें, नित्य वस रहे राग-द्वेष। उन्हें जान तुम शत्रु-छुटेरे, कभी न वशमें होओ लेश ॥ ९ ॥ ममता रख अनन्य प्रभु-पद्में, विषयोंमें नित रहो समान। करो न अकर्तव्य तन-मनसे इन्द्रिय-भोगोंमें सुख जान ॥ १०॥ ईश्वरको भजना-पाना ही मानवका कर्तव्य महान्। प्रतिपल जो रहता इस साधनमें संलग्न, वही मतिमान ॥११॥

दोहा

अल्प भी निर्मल अर्जित सत्य-धर्मसे कालमें, उपजाता न अनर्थ ॥ १ ॥ सब सुख देता अर्थ अन्याययुत पाप । बढ़ाता धर्मरहित वन जाता फल अञ्चभका कारण, वह अभिशाप॥२॥ प्राणि-मात्रकी सभी, त्याग । हिंसा तन-मनसे लिये जीओ, वन बङ्भाग ॥३॥ सुख-हितके किंचित् पाप-विचार । आने न दो, भी व्यापार ॥ ४ ॥ छिपा गुप्त अन्तर्यामीसे न कुछ प्रभुके सन्मुख तुम रहो निर्मल नित्य विशुद्ध । लोग, सभी माने तुम्हें भ्रमवश भलें अगुद्ध ॥ ५ ॥ 🔑 प्रभु-सन्मुख जो शुद्ध है, वही सत्य शुचि-प्राण। कभी न हो कत्याण ॥ ६॥ मात्रसं, कहाने गुद



क्षमा करो सवपर सदा, मत वाहो प्रतिशोध। प्रभुकी क्षमा देख, करो मन बोध ॥ ७॥ रहो संयमी तुम, करो उचित भोग, रख त्याग। कर्म करो प्रभु-प्रीति-हित रख प्रभु-पद अनुराग ॥ ८॥ भय न करो कुछ कहीं भी, देखो प्रभुको संग। प्रभु-प्रतिकूलाचरणसे डरो सदा सव अंग ॥ ९॥ मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यकी रेक । रखो अत्याश्रय सब त्यागकर भजो सदा प्रभु एक ॥ १०॥ सारण करो मनसे सदा, कभी न भूलो भूल। मधुप-सद्दा सुखमूल ॥११॥ प्रभु-पद-पंकरुह

रोग तथा उनका निवारण

(लेखक--डॉ० श्रीशिवनन्दनप्रसादजी)

इधर जबसे मुझे होश हुआ है, मैं तरह-तरहकी बीमारियोंके नाम सुनता आ रहा हूँ और उनके रोगी भी प्रायः दिन-प्रति-दिन बढ्ते जा रहे हैं। शारीरिक विशेषश वरावर इस अनुसंधानमें लगे हैं, और नयी-नयी ओषधियोंका आविष्कार तेजीसे कर रहे हैं पर वही पुरानी कहावत यहाँ चरितार्थ होती है कि 'मर्ज बहता गया, ज्यों-ज्यों दवा की,' अभी विशेषज्ञ अपने पहले अनुसंधानपर पूरी खुशी मना भी नहीं सके कि दूसरे रोगकी भयंकरता उनके सामने प्रकट हो गयी और फिर वे अनुसंघानमें लग जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विशेषज्ञ रोग-निवारणार्थ तरह-तरहकी ओषधियोंका आविष्कार एवं रोग-उत्पत्तिके कारण हूँ द रहे हैं, पर मनुष्य-को नीरोग बनानेमें वे प्रायः असफल हो ही रहे हैं। वे बराबर इस बातका ढिंढोरा पीटते हैं कि संसारमें तरह-तरहके विषाक्त कीटाणुओंकी उत्पत्ति ही इसके प्रधान कारण हैं और वे उन कीटाणुओंको मारनेमें ही संलग्न हैं, पर वे असली कीटाणुओंको दूँढ़ने एवं उनपर अधिकार पानेकी वात सोचते ही नहीं और परिणाम यह हो रहा है कि हम दिनोंदिन विभिन्न नये रोगोंके शिकार होते जा रहे हैं। अतः यदि हम नीरोग होना चाहते हैं और आनेवाली संततिको भी प्रतिभा-शाली एवं सुखी बनाना चाहते हैं तो हमें आन्तरिक कीटाणुओंका विनाश करनेकी अटल प्रतिश करनी होगी, अब आप कहेंगे कि 'आन्तरिक कीटाणु क्या है और उन्हें केसे मारा जा सकता है ??

आजके बैशानिक इस वातपर विश्वास रखते हैं कि

रोगोत्पत्ति बाह्य कीटाणुओं, असंयम, दूषित खान-पान एवं मिश्रित खाद्य-पदार्थों के द्वारा होती है, पर यह उनका निरा भ्रम है। रोगोंकी उत्पत्तिके सहायक ये भले ही हो सकते हैं, पर मूल कारण ये नहीं हैं। रोग-उत्पत्तिके मूल कारण हैं—अन्तः करणके कलुषित विचार एवं असत्य आचार-व्यवहार। यदि हम अपनी भावनाओंको पवित्र बनाये रक्खे तो रोग हमसे कोसों दूर रह सकता है। पर इतना कह देनेसे आजके लोग यह माननेके लिये कदापि तैयार नहीं हैं कि ये विचार सत्य ही हैं। आजका युग भौतिक विज्ञानके पीछे दीवाना है और हर चीजको वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखता है तथा जनतक उसमें वैज्ञानिक तौरपर सत्यता नहीं पाता, वह हमारे विचारोंसे सहमत नहीं हो सकता।

यह तो सभी जानते हैं कि हमारे पूर्वज काफी दूरदर्शी एवं विद्वान् थे और वे अपनी स्थिति पूर्णतः समझते थे। हमारे पूर्वज रारीरकी बनावट एवं उसके स्नायु-संचालनसे पूर्ण परिचित थे। आजका विज्ञान कितना भी आगे बढ़ जाय, पर वे शारीरिक शान, आजके वैज्ञानिकोंको प्राप्त नहीं हो सकते, चूँकि ये भौतिकवादी हैं। आजके प्रमुख शरीरिक शानवेत्ता यह बतानेसे पूर्ण असमर्थ हैं कि कौन-सी स्नायुमें विकार आनेसे कौन-कौन-सा रोग उत्पन्न हो सकता है। पर आज भी कुछ इने-गिने आयुर्वेदाचार्य तथा हकीम हैं, जो नाड़ी देखकर ही शरीर-विकारके कारण एवं उपचार बता सकते हैं, किंतु हजार डिग्री-प्राप्त आधुनिक डाक्टर पूर्ण शरीरिकी जाँच करनेके पश्चात् भी पूर्णरूपसे रोग और उसकी

उत्पत्तिके कारण नहीं बता सकते हैं। अतः कहनेका तालर्य यह है कि हमारे पूर्वज शारीरिक विकारोंकी उत्पत्तिके कारण एवं उसके उपचारका पूरा अनुभव रखते थे।

इमलोगोंके यहाँ कहावत प्रचलित है—

सत्य वरावर तप नहीं, क्षुठ वरावर पाप। जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥

यह पुरानी कहावत सभी जानते हैं, पर इसकी उपयोगितापर गौर नहीं करते । सत्य हमारे शरीर एवं परिवारके रक्षार्थ एक अभीध यन्त्र है। यदि हम इसे मन, बचन एवं कमेंसे पालन करें तो हम दैहिक, भौतिक एवं देविक प्रक्रोपोंसे वच सकते हैं एवं दूसरोंको भी बचा सकते हैं। सत्य वह कवच है, जिसे धारण करनेसे दुनियाकी सारी आपदाओं एवं विपत्तियोंसे मुक्ति मिल सकती है या यों कहें कि वे आपके पास आनेतकसे डरेंगी।

यदि हम सत्यके विपरीत आचरण करते हैं, अर्थात् असत्यका पालन करते हैं तो सारी विपत्तियोंका आवाहन करते हैं। असत्यका पालन करनेसे क्रोध, लोभ, द्रेष, घृणा, हिंसा आदि विकार उत्पन्न करनेवाले भाव मनमें उत्पन्न होंगे, जिससे हम दु:ख भोगेंगे।

यह तो आप आये दिन देखते हैं कि बड़े लोग यानी धनी-मानी व्यक्ति सुखसे रहते हैं, पर उनका शरीर सुखी नहीं रहता । उन्हें तरह-तरहके रोग घेरे रहते हैं । शायद ही कोई ऐसा धनी व्यक्ति है, जिसके घरमें कोई-न-कोई बड़ी बीमारी न हो और डाक्टरोंके यहाँ अत्यधिक धन अपन्यय नहीं होता हो । गरीबोंके घर भी बीमारियाँ आती हैं, पर कम, और आती भी हैं तो थोड़े समयके पश्चात् ही चली भी जाती हैं। यों तो बीमारी हमारे स्वभाव तथा कर्मके अनुसार ही उत्पन्न होती है। अमीरोंके घर बेईमानी तथा इसी तरहकी अनेक स्वार्थपरताके उदाहरण मिलते हैं, पर गरीबोंके यहाँ उतनी बेईमानी न होकर अधिकांदातः सचाई और ईमानदारी अधिक होती है। गरीब अपने गाढ़े पसीनेकी कमाई खाता है और अमीर अपनी विलासिताका जीवन व्यतीत करता है। अब आप कहेंगे कि इससे रोग और उसकी उत्पत्तिका क्या सम्बन्ध है ? सम्बन्ध है, विशेषतः महातमा बुद्ध आदि हमारे पूर्वजोंने जो नियम अपने समाजके बनाये हैं उनसे सिद्ध होता है कि झुठ, ईर्ष्या, द्रेष, क्रोध तथा असत्य आदि जितने भी मानस-विकार हैं---

इनके सेवनसे ही शरीर, मन एवं बुद्धिमें विकार उत्पन्न होते हैं और उससे वीमारियोंकी उत्पत्ति होती है। यदि आप कहेंगे कि नहीं, इससे कोई वीमारी होनेका कोई कारण नहीं तो मैं थोड़ेमें इसका प्रमाण दे रहा हूँ।

में होमियो पैथका एक ज्ञाता हूँ और उसकी उत्पत्ति एवं उपचारके साधन भी न्यारे हैं। आप देखेंगे कि उसकी दवाओंका प्रयोग स्वस्थ दारीरपर होता है और स्वस्थ दारीरमें उस दवाके खानेके बाद जो-जो छक्षण पैदा होते हैं, यदि उसी छक्षणके अनुसार कोई रोगी आये तो उसकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ-दारीरपर दी गयी थी। यदि कोई रोगी अधिक झूठ बोछता है, क्रोध करता है, जिद्दी है, कामी है, अस्वाभाविक जीवन-निर्वाह करता है और व्यसनी है तो उसीके अनुसार ही दवा दी जायगी और उससे रोगीको स्वास्थ्य-छाभ होगा।

अब इससे सिद्ध होता है कि उपर्श्वक्त दुर्ब्यसनोंके कारण उत्पन्न रोगकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरमें दी गयी थी तथा लक्षण दिखायी दिये थे।

यदि आप यह सोचें कि इस प्रकारके दुर्व्यसनोंसे उत्पन्न दुःख केवलहमें ही भोगना पड़ेगा,तो ऐसी वात भी नहीं है। भाषके वाद आनेवाली संतितको भी दुःख भोगना पड़ेगा। सो कैसे !

गर्भमें संतान होनेके समय यदि उसकी माँ जिद्दी एवं कोधी हुई तो बच्चेको अवश्य पेटकी बीमारी होगी और इसी तरह अन्य व्यसनोंके द्वारा अलग-अलग रोग होते हैं। इन सबका उदाहरण देनेसे एक लंबी कहानी बन जायगी। कभी-कभी आप देखते होंगे कि यदि कोई माँ कोधावस्थामें बच्चेको अपना दूध पिला देती है तो बच्चा तत्काल बीमार हो जाता है। इससे स्पष्ट दीखता है कि इमारे स्वभाव एवं विचार ही रोगोत्पत्तिके प्रधान कारण हैं। यदि हम वास्तवमें सुखी एवं नीरोग रहना चाहते हैं तो अपने विचारों, भावों एवं मनःप्रवृत्तियोंमें विशुद्धि, सत्यता एवं कोमलता लाना सीखें। इसीके द्वारा हम सुखी एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

बहुत लोगोंका यह विश्वास है कि मुखका साधन केवल धन ही है और इसीलिये सब तरहसे धन-उपार्जन करनेमें ही मनुष्य अपना भला समझते हैं। फलखरूप उन्हें मुख तो मिलता नहीं, अपितु तरह-तरहके झमेले बढ़ जाते हैं और जीवन अशान्तिमय हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रित है। मूल

रण-हम होसों । यह

य ही इस समें

रोंसे

दशी थे। जनसे बढ़ नहीं

रीर-ायुमें पर जो

वता ारीर-सकी यदि मनुष्य किसी असाध्य रोगका शिकार हो गया है या नये-पुराने रोगोंसे पीड़ित है तो वह दवा आदिका प्रवन्ध तो करे ही, साथ ही साथ सत्य-सदाचारके पालन एवं असत्य-असदाचारके पित्याग करनेका व्रत ले । आहार-व्यवहार एवं रहन-सहनमें सात्त्विकता लावे । यदि यह भी होना कठिन है तो केवल सत्य-पालन और शुद्ध मनसे ईश्वरका निरन्तर भजन और मनन ही करे । रोग कितना भी असाध्य हो, यदि वह सत्यरूपसे ऐसा करेगा तो उसके मनमें शान्ति आयेगी और धीरे-धीरे उसे रोगसे भी मुक्ति मिलेगी । कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अटल विश्वास और भक्तिपूर्वक की हुई थोड़ी-सी प्रार्थनासे ही कठिन रोगसे मुक्ति हुई है और करायी गयी है । यदि माँ-बाप या कोई सम्बन्धी किसी रोगके निवारणार्थ प्रार्थना करता है और यदि वह सत्यरूपसे की जाती है, तो वह प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है तथा वह व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है ।

दूसरोंके लिये प्रार्थना करनेकी रिवाज हर धर्मावलिम्बयोंमें हैं। हमलोगोंके यहाँ महामृत्यु अप, चण्डीपाठ और ग्रह-दोष-निवारणार्थ जाप-पाठ कराये जाते हैं, जिससे लाखोंकी संख्यामें लोग लाभ उठाते हैं। लोगोंका विश्वास मन्त्रपरसे उठता जा रहा है, इसका विशेष कारण है कि जिनके द्वारा यह जाप-पाठ कराया जाता है, वे ही वास्तवमें अश्रद्धाल, दम्भी और असत्यवादी होते जा रहे हैं। अतः मन्त्रका प्रभाव ही नहीं हो पाता, यदि मनुष्य स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिये प्रार्थना करे तो उससे चिरस्थायी लाभ अवश्य होगा।

बहुधा लोग यह कहते हैं कि 'ईश्वर अन्यायी है या अमुक व्यक्तिकी प्रार्थना नहीं मुनता, अमुकके परिवारको असमयमें ही उठा लिया यद्यपि उसने लाखों मिन्नतें की थीं।' पर वास्तवमें उसने मिन्नतें की थीं या नहीं, उसकी प्रार्थना सत्य, सात्त्विक एवं मर्मस्पर्शी थी या नहीं, यह कोई नहीं बताता! मैं यह दावेके साथ कहता हूँ कि यदि कोई सत्य आचरण करनेवाला गुद्ध हृदयसे किसीके लिये प्रार्थना करे तो प्रार्थना अवस्य मुनी जाती है। प्रार्थनाका असर प्रार्थना करनेवालेपर ही निर्भर करता है। उसे स्वयं ज्ञात हो जाता है कि उसकी प्रार्थना मुनी गयी या नहीं—'वावर और हुमायूँकी बीमारी और स्वास्थ्य-लाभकी वात' तो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

एक बार मेरी छः वर्षकी बच्ची टायफायडसे पीड़ित हुई

और दो-चार दिनोंमें ही उसके मुँहसे तथा पाखानेके साथ खून आना गुरू हो गया । टायफायडका यह बहुत बहा चिन्ताजनक लक्षण है। मैं निरन्तर उसके लिये पार्थना करता रहा था; पर हृदयमें भय बना रहता था । एक दिन खन नहीं आया था, किंतु फिर भी मेरे मनमें काफी भय बना हुआ था। प्रार्थना करने बैठा तो मन बहुत अज्ञान्त था। मैंने मनमें धैर्य धरकर ईश्वरकी एकाम्रचित्तसे प्रार्थना की और प्रार्थनासे उठा तो मनमें शान्ति एवं साहसका अनुभव हुआ । कुछ देर बाद बच्चीने काफी मात्रामें खुनका वमन किया। घरके लोग काफी घवरा गये और पुनः डाक्टरको बुलानेको कहा; यद्यपि कि एक घंटे पूर्व ही डाक्टर महोदय उसे देखकर गये थे। मैंने उन्हें बुलाया नहीं और शान तथा साहसभरे चित्तसे घरके लोगोंको भी सान्त्वना दी कि ईश्वर सब भला करेंगे। ईश्वरकी क्रपा, उस रातके बाद बच्चीको खून आना बंद हो गया और दो-चार दिनोंमें ही वह स्वस्थ हो गयी।

इससे विश्वास होता है कि प्रार्थनाका अवस्य प्रभाव पड़ता है, बरातें कि उसमें विश्वास तथा एकाग्रता हो। संदेह, अविश्वास और परीक्षाके लिये की गयी प्रार्थना तो प्रार्थना ही नहीं होती। मेरा तो व्यक्तिगत यही विचार है कि हर व्यक्तिको ईश्वर-प्रार्थनासे किसी भी समय शान्ति प्राप्त हो सकती है।

हमारे पूर्वज हजारों वर्षोतक स्वस्थ-जीवन व्यतीत करते थे, जब कि हम सौ वर्ष भी नहीं जी पाते । ऐसा क्यों ! इसीलिये कि हमारे और उनके रहन-सहन एवं आचार-विचारमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया है । हम सान्विकतारे काफी नीचे उतरकर तामसिक भूमिमें आ गये हैं । यदि आज भी हम पूर्ववत् आचरण करने लगें तो हम पुनः उतन जीनेका दावा कर सकते हैं ।

अन्तमें हमारी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वे हमें सत्यता एवं सात्त्विकताका जीवन प्रदान करें। साथ ही सभी पाउक वन्धुओंसे भी मेरा निवेदन है कि हम सब सत्यता एवं ग्रुद्धताका पालन करें तथा ईश्वर-भजनको अपने दैनिक जीवनमें स्थान दें, जिससे केवल हम ही नहीं, हमारी आनेवाली संतति भी नीरोग और सुखी जीवन व्यतिर्ध करनेवाली हो।

38 साथ बड़ा करता खून बना था। ा की नुभव वमन टरको होदय शान्त री कि बाद प्रभाव हो। ा तो है कि ास हो करते क्यों ! गचार कतासे । यदि उतना ॥ एव पाउक

ा एवं

दैनिक

हमारी

न्यतीत

मालवीय-जयन्ती-शतीके अवसरपर मालवीय-वन्दना

प्रादुर्बभूव पुलिने दुहित् रवेर्य आनन्दकाननतटे प्रततान कीर्तिम् । गीतां जगौ सद्धि भागवर्ती च गाथां तं श्रीधरं मदनमोहनमानतोऽस्मि ॥ १ ॥ यस्पामलाविचलकीर्तिरिवाद्य विश्वविद्यालयो लसति सन्ततमेव काश्याम् । नेता स्वदेशसुखदः स महामना मे वन्द्योऽनिशं मदनमोहनमालवीयः ॥ २ ॥

मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है

मालवीय वे, जो महर्षि थे, मेधावी थे, ज्ञानी थे, मालवीय वे, जो खदेशके गौरव थे, अभिमानी थे। मालवीय वे, जो न कहीं भी रखते अपना सानी थे, खतन्त्रताकी समरभूमिके धीर वीर सेनानी थे॥

कीर्ति-कथा उन मान्य मदनमोहनकी गायी जाती है। मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है॥१॥

जो युगके प्रवाहमें वह कर मुँह न धर्मसे मोड़ सके, जो न सनातन वर्णाश्रमको कभी कहीं भी छोड़ सके। रहे सुधारक, पर न शास्त्रकी मर्यादाको तोड़ सके, जो प्राचीन और नूतनको एक सूत्रमें जोड़ सके॥

जन-जनमें उन महामनाकी याद जगायी जाती है, मालवीयकी पुण्य जयन्ती राती मनायी जाती है॥२॥ सच्चे खदेशके संरक्षक मालवीय थे, संगी थे, जंग छेड़नेको जोशीले आजादीकी जंगी उनकी वाणीमें जादू था, भाव भरे रणरंगी अंग्रेजोंकी घरको हिली हुकुमत फिरे फिरंगी थे॥

> उनकी महिमाकी न महीमें समता पायी जाती है, मालवीयकी पुण्य जयन्ती राती मनायी जाती है॥३॥

मालवीयसे हम सदैव परिहत साधन करना सीखें, अपना सब कुछ छुटा अकिञ्चनता सिरपर धरना सीखें। अन्यायोंसे लड़ें, सिंह-सा कभी नहीं डरना सीखें, जियें देशके लिये, देशके लिये सदा मरना सीखें॥

मानवको उन महापुरुषकी नीति बतायी जाती है, मालवीयकी पुण्ये जयन्ती राती मनायी जाती है॥४॥

हुआ देशकी संस्कृतिका संस्कृतका जिनसे अभ्युत्थान, भूळ सके जो नहीं कभी भी हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान। भारतको ही नहीं, जिन्होंने दिया विश्वको विद्या दान, काशी-वीच विश्वविद्यालय जिनका कीर्तिस्तम्भ महान्॥

श्रद्धाञ्जलि उनके चरणोंमें यहाँ चढ़ायी जाती है, मालवीयकी पुण्य जयन्ती शती मनायी जाती है॥५॥ —पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री धाम

पढ़ो, समझो और करो

(?)

पतीने पतिका ऋण जुकाया

श्रीरामप्रतापजी मेरे पतिके सहपाठी थे और मित्र थे। कभी-कभी हमारे घरपर आया करते थे। मेरे खामीका भी उनके प्रति काफी स्नेह था। वे एक पाठशालामें शिक्षकका काम करते थे। गरीब थे। कुछ ही दिनों पहले उनका देहान्त हो गया। मैं उनकी विधवा पत्नी गुलाबवाईके पास जानेवाली थी, पर कार्यवश नहीं जा सकी। एक दिन रात्रिको गुलाववाई खयं ही मेरे पास आयीं। उन्हें देखकर मैं सकुचा गयी। सोचा, गुलाववाईने समझा होगा 'यह धनी घरकी खी मेरे पास क्यों आने लगी।' मैंने उठकर आदरसे उनको बैठाया और श्रीरामप्रतापजीकी मृत्युपर दु:ख तथा सहानुभूति प्रकट करते हुए क्षमा माँगी। मैंने कहा—'मैं आ ही रही थी, पर अमुक कामसे नहीं आ सकी। क्षमा करना—पर आप आज कैसे आयी हैं—वताइये।'

गुलाववाईने आँसू पोंळकर कहा—'बहिनजी, आप-की तो मेरे प्रति सदा ही प्रीति है। आप काम-काजमें नहीं आ सकीं, इससे क्या प्रीति कम थोड़े ही हो गयी? वह तो मेरे भाग्यमें जो बदा था सो हो गया। आपका किशोर इंजिनियरिंगमें है। आपलोगोंके आशीर्वादसे वह साल-दो-सालमें कमाने लगेगा। फिर कोई चिन्ताकी बात नहीं रहेगी।' इतना कहकर उन्होंने बारह सौके नोट मेरे सामने रखकर कहा—'बिहनजी! आज तो मैं एक कामसे आयी हूँ। आप जानती हैं—आपके खामी श्रीगोपाल्वावूकी उनपर बड़ी प्रीति थी। गोपाल-बाबूका हार्टफेल होकर देहान्त हो गया, तभीसे वे बीमार थे। इसीसे यह काम अवतक हो नहीं पाया। जिस दिन उनका शरीर छूटनेको था, उस दिन उन्होंने मुग़से कहा—'भाई गोपाल्जीके मुझको बारह सौ रुपये

देने हैं, उनका देहान्त हो गया है । उनकी पत्नीको इन रुपयोंका पता नहीं है ! रुपये मैंने सनय-समयपा किशोरकी पढाईके कामसे लिये थे। पर मैं उन्हें अभी वापस दे नहीं सका । ये रुपये अवश्य चुकाने हैं। तुम्हारे पास कुछ गहना है, उससे अपना काम चलाना। किशोर कमाने लगेगा, तबतक तुम्हारा काम गहनेसे चल जायगा । मेरे प्रोविडेंट फण्डके शायद चौदह मौ रूपये आवेंगे। मैंने लिख दिया है, वे तुनको मिल जायँगे। मिलते ही उसी दिन तुम भाई गोपालजीकी पत्नी-को रुपये दे आना । वे न लेना चाहें तो उन्हें मेरी रापथ दिलाकर कहना कि उनकी आत्माकी शान्तिके लिये ही आप ले लें। तदनुसार मैं ये रूपये लेकर आयी हूँ । रुपये आज ही मिले हैं । आप दया करके रुपये लेकर हमें ऋणमुक्त करें। में तो दंग रह गयी उनकी बात सुनकर । हाथमें तंगी होनेपर भी ऋण चुकानेमें इतनी त्वरा ! मैंने बहुत समझाया । रुपये लेनेसे इनकार किया, मुझे पता भी नहीं था। पर वे मानीं नहीं। इस प्रकार आर्त होकर रोने लगीं कि मुझे उनकी बात स्रीकार करनी पड़ी । धन्य !

इस घटनाको लगभग बारह साल हो गये हैं। उनका लड़का अब अच्छी कमाई कर रहा है। उसकी शादी भी हो गयी है। मजेमें है। पर मेरे हृदयपर उनकी जो छाप पड़ी, वह सदा अभिट रहेगी।

—रामप्यारी देवी

(?)

छात्रका कर्तव्यपालन

मैं 'राजा प्यारीमोहन कालेज, उत्तरपाड़ा'की एक छात्रा हूँ। आज मैं एक ऐसे छात्रके विषयमें लिख रही हूँ जिसकी सत्यवादितापर कालेजके प्रधानाचार्यकी पर्याप्त हुष एवं गौरव है।

घटना इस प्रकार है । ता० ३०-९-६१, शनिवार-को मेरी रिस्टवाच, जो ३५०) की थी, न जाने कहाँ कालेज-प्राङ्गणमें गिर गयी । घड़ी एकदम नयी थी । भय एवं शोकके साथ मैंने अपने बड़े भाईसे सारी बात बतायी। वे तथा उनके मित्र सभी घड़ी खोजने लगे। प्रिंसिपलके द्वारा सूचना-बोर्डपर सूचना दे दी गयी; पर घड़ी न मिली । प्राय: एक घंटेके बाद एक छात्र अपने हाथोंमें घड़ी लिये मेरे भाईके पास आये । घड़ी देखकर सबके सामने मेरे भाईने उसे लेना चाहा; पर उन्होंने प्रिंसिपलके सामने देनेको कहा और वे भाईके साथ आफिसमें गये । घड़ी पाकर प्रिंसिपल बहुत प्रसन्न हुए । प्रिंसिपल महोदयने उनको उनकी सत्यवादितापर कालेज कैंटिनमें खिलाना चाहा; पर उन्होंने अखीकार कर दिया, इन शब्दोंके साथ कि 'धन्यवाद, खिलानेकी कोई आवश्यकता नहीं । यह तो मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है। मुझे आशीर्वाद दें कि में सदा इसी तरह सत्य एवं ईमानदारीपर चलता रहूँ।'

प्रिंसिपल काफी प्रसन्न हुए । प्रायः ५०० विद्यार्थियोंके बीच उनसे हाथ मिलाते हुए आफिससे वाहर आये और पीठ ठोंकते हुए बोले—'हमें आज ऐसे ही विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है।' इनका नाम है—श्रीराम-मूर्त्तिसंह बी-एस० सी० —नीलिमा, बी॰ ए॰

(3)

ईश्वरीय लीलाका चमत्कार

प्रसंग बहुत पुराना नहीं है, इसी साल और इसी नवम्बर महीनेकी बात है। मेरे मित्र श्रीकिशोरीलाल फौजदार, जो 'जिला-राजनैतिक-पीड़ित-समिति' आगराके उपमन्त्री हैं। पिछले चार माहसे फोड़ोंसे पीड़ित थे। उनके दाहिने पूरे पैरमें छोटी-छोटी फुंसियाँ हो गयी थीं, जिनसे पानी झरता था। फुंसियाँ आगे बढ़कर कमरतक आ गयी थीं। डाक्टरोंकी दवा की तथा इंजेक्शन भी लगवाये, किंतु कोई लाभ न हुआ, मर्ज बढ़ता गया,

ज्यों-ज्यों दवा की । बादमें गाँवके कुछ अताइयोंसे भी उपचार कराया, लेकिन कोई लाम न हुआ और रोग बढ़ता ही गया। आखिरको इस रोगसे तंग आकर उन्होंने सफेद कनेरके पत्तोंको कडुए तेलमें जलाकर फुंसियोंपर मालिश कर दी, जिससे उन्हें बड़ी तकलीफ़ और वड़ी बेचैनी हुई। रातको वे बहुत ही दुखी हुए और भगवान्से प्रार्थना करने छगे कि 'हे भगवन्! ऐसा मेरा क्या अपराध है जिसके छिये मुझे इतना कष्ट दिया जा रहा है। आप तो कृपानियान हैं और हैं भक्त-वत्सल, मुझे क्षमा करो और मेरा इस रोगसे छुटकारा कराओ ।' थोड़ी देर बाद उनको नींदकी झपकी लगी तो क्या देखते हैं कि एक दादीवाले साधु-महात्मा सामने खड़े हैं और कह रहे हैं कि 'वत्स! कलसे लाभ होगा और दो दिनोंमें ठीक हो जाओगे। जब आँख खुळी तो वहाँ न साधु थे, न और कोई। श्रीफौजदार सोचने छगे कि ऐसे रोगसे इतनी जल्दी कैसे लाभ होगा। भगवान्की लीला अपार है, जैसे ही प्रातः श्रीकिशोरीलाल उठे तो उन्हें आशातीत लाम प्रतीत हुआ और साधु-महात्माद्वारा कहे अनुसार दो दिनमें तो रोग विल्कुल ही चला गया । अब श्रीफौजदार विल्कुल ही ठीक हो गये हैं। यह भगवान्में अटल विश्वासका ही अद्भत चमत्कार है।

—उत्तमचंद जैन (बी-एस्० सी, एल्-एल्० बी०) वकील (४)

सहदयता

वात उस समयकी है जब खर्गीय श्रीसुजानसिंहजी साहेब जोधपुर स्टेटकी फौजके कर्नळ थे एवं तीन गाँवोंके जागीरदार भी थे। उनके अधिकारमें हमारा गाँव मैसाणा (सोजन परगनेमें है) भी था। अतएव आप साळमें एक-दो बार हमारे गाँवमें आकर अपने बंगले (रावले) में ठहरा करते थे। हमारे दादाजी साहब श्रीछगनीरामजीकी उनसे अच्छी पटती भी थी।

को इन तमयपर हैं अभी हैं।

गना। गहनेसे एह सौ मिल

पत्नी-र्हें मेरी हितके

आयी रुपये उनकी

कानेमें नकार

नहीं । वात

हैं। उसकी

देवी

दयपर

एक रही

ार्यको

दे

6

दै

स

कु

म्

रख

घरव

अतएव एक दिन मेरे दादाजी मुझे उठाकर वहाँ ले गये; क्योंकि मेरे पैरमें इतने अधिक फोड़े हो रहे थे कि मुझसे चला नहीं जाता था। हमारे रावराजाजी (जागीरदार) साहेब डाक्टरीका भी अच्छा ज्ञान रखते थे। उनके पास दवाइयाँ भी काफी रहती थीं। अपने बंगलेपर आये लोगोंको कुछ दवाइयाँ आप मुफ्त वितरण किया करते थे। मैं और दादाजी वहाँ पहुँचे, आप बैठे अखबार देख रहे थे । हमें आया देख दादाजीसे कुशल पूछते हुए उठकर खड़े हो गये और हमें आसन दिया । हमारे बोलनेके पूर्व ही आपने मेरे पैरका दर्द देखकर उसके बारेमें पूछते हुए एक आदमीसे दवाईकी पेटी एवं कुछ गरम पानी लानेको कहा। पानी आनेके बाद एक प्रेटमें मेरा पाँव रखकर आप खयं धोने लग गये । दादाजीने, मैंने एवं और लोगोंन बहुत आग्रह किया कि 'हम धो देंगे आप छोड़ दें' मगर आपने व्यंगपूर्वक मेरी तरफ देखकर कहा कि 'क्या तुम्हें मेरी सेवा स्वीकार नहीं है ?' आपके मुँह्से सहसा यह वचन सुनकर सब चुप हो गये। परंतु मेरी आँखें वरवस भर आयीं। एक इतने वड़े जागीरदारका एक गरीवके साथ इतना अच्छा व्यवहार, जिसका कोई मूल्य ही दुनियामें नहीं, मेरी आँखोंमें पानी आना स्वाभाविक था।

अपने हाथोंसे घाव धोकर मवाद तथा गंदा खून निकालकर दवाई लगाकर पट्टी बाँध दी और अधिकारके साथ यह कहा कि 'तुम्हें रोज आकर मेरी सेवा स्त्रीकार करनी होगी।' मैं क्या कहता। कहनेके लिये मेरे पास क्या था ! उनके स्नेहमरे अधिकारपूर्ण आदेशके सामने सिर हिलानेके सिवा और क्या जवाव हो सकता था।

—मीठालाल जोशी, पोन्नेरि

(4)

तक्षकदेव (अद्भुत, किंतु सत्य दर्शन) आज दैवी-राक्तियोंके प्रति हमारी आस्था छप्तप्राय है। आजके सभ्य एवं प्रगतिशील कहें जानेवाले लोग तो दैवी शक्तियोंको केवल कपोलकल्पित सिद्ध करनेमें ही संलग्न हैं। पाश्चात्त्य सभ्यताके इस कुप्रभावने हमें क्या-से-क्या बना दिया और अभी क्या कर दिखायेगा, कहना असम्भव है। कोई विश्वास करे या न करे किंतु यहाँ मैं एक ऐसी दैवी शक्तिका परिचय देना चाहता हूँ, जिसमें केवल आस्था ही की जा सकती है।

उत्तर प्रदेशके गाजीपुर जिलेमें विश्वम्भरपुर नामका एक छोटा-सा ग्राम है। यह ग्राम उत्तरपूर्वीय रेलवे स्टेशन करीमुद्दीनपुर तथा ताजपुर डेहमाके मध्य स्थित है। इस ग्राममें एक दैवीशकि—जिन्हें यहाँके छोग 'तछबीर बाबा' नामसे पुकारते हैं—प्रत्यक्ष कार्य करती है। शुद्धरूपमें ये तक्षकदेव हैं। महाभारत एवं प्राचीन पुस्तकोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सज्जन तक्षकदेवके नामसे अवश्य ही परिचित होंगे। खाण्डव वनके जलाते समय तक्षककी सहायताके लिये इन्द्र भगवान्ने सिक्रय भाग लिया था। राजा परीक्षित्को तक्षकने ही काटा था। जनमेजयका सर्पयज्ञ भी इनसे ही सम्बन्धित था।

इस युगमें तक्षकदेवकी महिमा स्थानीय छोगोंके छिये वरदान सिद्ध हुई है । तक्षकदेवकी शक्तिका आभास सर्पके काटनेपर तत्काल दृष्टिगोचर होता है । इन पंक्तियोंके लेखकने विषेले सर्पद्वारा काटे गये मूर्च्छित व्यक्तियोंको तक्षकदेवकी कृपासे पूर्ण खस्थ होते इए सैकड़ों बार प्रत्यक्ष देखा है और परोपकारकी भावनारे ही इस रहस्यका उद्घाटन भी यहाँ किया जाता है जिससे अधिक-से-अधिक लोग लाभान्वित हो सकें।

विषेले सर्पके काटनेपर अचेत स्थितिमें चारपाईपर लोग यहाँ लाये जाते हैं और व्यक्तिविशेषके दरवाजेपर लाकर लिटा दिये जाते हैं। लगभग पाँच-दस मिनटकें बाद ही दरवाजेवाले व्यक्तिके घरका कोई भी पुरुष कूएँसे पानी लाकर मुँहपर छींटे देता है। पानीके छींटे पड़ते ही विषका प्रभाव जाता रहता है। अब वह व्यक्ति पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सचेत होकर पैदल खतः ही अपने स्थानको जाता है।
यह तक्षकदेवकी महिमा है। इतना ही नहीं, विशेषता
तो यह है कि चाहे कहीं भी किसीको सर्प काटे, तक्षकदेवका स्मरण करनेपर ही चंगा हो जानेकी सम्भावना
है किंतु पीछे इस स्थानतक आकर प्रणाम करना अनिवार्य
है। समीपके लोग तो बेहोशीकी दशामें ही लाये जाते हैं
किंतु सुदूरके लोग स्मरणमात्रसे खस्थ होकर इस स्थानतक
आकर प्रणाम कर जाते हैं। न आनेपर वर्षोतक विषका
प्रभाव देखा गया है किंतु आ जानेपर पुनः विषका प्रभाव
नहीं रह जाता है। इस गाँवमें तक्षकदेवका यह चित्र
बहुत वर्षोंसे प्रत्यक्ष है। इस घोर अनास्थाके युगमें ऐसी
दैवीशिक्तिके कार्यको देखकर आश्चर्यचिकत हो जाना
पड़ता है। यद्यपि मृत्युका कोई उपचार नहीं है तथापि
सर्प-दंशरोगकी यह संजीवनी अवश्य ही दुर्लभ है।

इस विश्वम्भरपुर ग्राममें छ:-सात घर दोनवार-वंशीय भूमिहार ब्राह्मण-परिवार है। इस परिवारभरके तक्षकदेव कुळ-देवकी भाँति समझे जाते हैं। तक्षकदेवकी न तो कोई मूर्ति है और न तो उनके छिये कोई मन्दिर आदि ही है। केवळ बाबू बगेसर रायके दरवाजेपर जाकर प्रणाममात्र (साष्टाङ्ग) किया जाता है। किसी प्रकार-की न कोई कभी पूजा करता है और न तो कभी कुछ भी शुल्क या दान ही छिया जाता है। केवळ यहाँ नत-मस्तक हो जाना ही आवश्यक है। ज्ञातब्य है कि ग्रामकी सीमामें प्रवेश करते ही रोगीका विष जाग्रत् हो जाता है।

ऐसी दैवीशक्तियोंका हम कोटिशः अभिनन्दन करते हैं और सभी सज्जनोंसे निवेदन करते हैं कि आस्था रखना ही श्रेयस्कर होगा।

—श्रीसुधाकर तिवारी एम्०ए०, बी०एड्०, साहित्यरतः बसंतकालेजः राजधाट वाराणसी

> (६) बाँसुरी नयी पर स्वर फटी

विजयादशमीका दिवस था । नगरके मध्यस्थित घंटा-षरके पाससे मैं गुजर रहा था । छोगोंकी भीड़ देखकर एवं किसी व्यक्तिका करुणासे परिपूर्ण आर्त खर सुनकर मैं ठिठक गया। देखा तो दाँतोंतले अंगुली दवाकर रह जाना पड़ा।

घटना यह थी कि एक रिक्शेवाला जिसके पैरोंमें भारत माँके चरणोंका रज-पुंज था, घुटनेतक मैळी-फटी घोती थी और जिसके बदनपर एक मात्र गंजी, जिसे आप केवल गंजी कह सकते हैं, शायद उसी गंजीसे वह अपना रिक्शा भी धूलसे साफ कर लेता रहा होगा-ऐसी थी गंजीकी दशा, सड़कपर छंवा लेटा हुआ आर्त स्वरमें कराह रहा था। वह किसीसे अपनी सहायताके लिये या बचानेके लिये याचना नहीं कर रहा था;वरं अत्याचारका, अनाचारका विरोध केवल आर्त स्वर एवं बेंतोंके मार-द्वारा कर रहा था, वह किसी प्रकारके अपने बलप्रयोगसे विरोध नहीं कर रहा था । उसीके पास 'यमदूत'-सा भारतमाताका ही एक दूसरा पुत्र—रिक्शे गालेका ही एक भाई, (भारतमाँके तो दोनों ही पुत्र थे न-) एक पुलिस दारोगाका गर्जन-खर गुंजित हो रहा था—'साले, तूने कैसे कहा कि हमें नहीं ले चलेगा ? बोल, चलेगा कि नहीं ! देख रहा है न यह बेंत ?

भार लो वाबू, मार लो, चाहे जितना बेंत मार लो । यदि बाल-बन्नेवाले होंगे तो समझ लो । हम आपको इस अपने रिक्शेपर नहीं ले चल सकते । जानते हो बाबू ! यह रिक्शा मेरे अपने लड़केके समान है । लड़केकी पीठपर उसके लायक ही बैठ सकता है ।'

'क्या कहा ! नहीं ले जायगा । तो ले मार खा, हरामजादे !' और सड़ासड़ दो बेंत माँके एक पुत्रने दूसरे पुत्रपर—अपने भाईपर ही चला दी । 'अभी होश आया कि नहीं रे ।'

'और मारों ! चाहों तो और मारों । प्राण निकल जायगा लेकिन अपने रिक्शेपर आपको नहीं बैठाऊँगा ।'

'फिर नहीं कहा बैठानेके छिये। छे, चाहता है तो फिर एक बेंत छे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ोग तो ोमें ही क्या-ायेगा,

38

किंतु ता हूँ, ता मका

टिशन । इस छबीर है।

ए । ाचीन नामसे

समय भाग था।

िखे । अध्याभास । इन

च्छित हुए वनासे

ता है

गईपर जिपर नटके

कूएँसे पड़ते न पूर्ण 'ओफ ! और मार हो और मार हो । हम जानते हैं कि पुलिसवाले क्या हैं।' फिर कहता है—'नहीं ले जायेंगे, नहीं ले जायेंगे।'

आँखोंसे देखा नहीं गया। भीड़में एक-से-एक भद्र कहानेवालेसे लेकर निम्न वर्गके लोग भी थे, किसीमें इतना साहस न था कि राष्ट्रके, समाजके प्रहरी एवं सहायक तथा सचेतक कहानेवाले खाकी वर्दीधारी शरीरमें वास करनेवाले उस धुरारीसे कुछ कहे, विरोध करे इस अना-चारका कि यह कैसा अत्याचार हो रहा है ? इतनेमें फिर एक बेंत जमाते हुए दारोगाका स्वर फूट पड़ा— 'अबे बदतमीज! देशको स्वतन्त्रता क्या मिली कि तेरे ऐसे नीचकी भी जवान बड़ी लंबी हो गयी है। मेरा वश चलता तो तुम सब सालोंको भूनकर रख देता।'

'भून दो साहब, भून दो न। लेकिन इस रिक्शेपर पुलिसके आदमीको नहीं बैठाऊँगा।'

तभी भीड़से एक खर आया—'अरे रिक्शेवाले, क्या कह रहा है तू ? इतनी मार खानेपर तो गदहा भी चल्रने लगता है । इतनी मार खा चुका तब भी दारोगा साहबको नहीं ले जाता ।'

ऐसी बात कहनेवाले उस 'भलेमानुष'की ओर गरीबी-के पुंज, पर अत्याचारका अपने सामर्थ्यसे विरोध करने-बाले रिक्शेवालेकी आग्नेय दृष्टि घूम पड़ी—'आप ही ले जाइये न, क्यों हमसे कहते हैं। हम जब जिंदा रहेंगे बेंत खा लेंगे, पर इस वर्दीवालेको कभी नहीं ले जायेंगे।'

और उसके इस बड़े बोलका पुरस्कार बेंतके मारके रूपमें उसी क्षण फिर मिला। इसी समय, भीड़मेंसे निकलकर एक लंबा-तगड़ा जवान दारोगाके पास आया—

'कहिये, आपको कहाँ जाना है ! दूसरोंकी पीठपर चलनेवाले वाबू ! आइये, मेरी पीठपर बैठ जाइये, जहाँ कहें वहाँतक पहुँचा दूँ।'

दारोगाका मुँह तो देखने ही लायक था, फिर भी

खिसियानी विल्ली खंभा नोचने लगी—'जाइये, अपना काम कीजिये, आपसे हमसे क्या मतलव है ? पीठपर हे जानेवाले और ही कोई होते हैं।'

और 'देखिये' से 'देखो' पर उत्तर आया वह आगन्तुक युवक। एवं दारोगा महोदयको उसने कुछ दिखाया। दारोगाकी सिद्दी-विद्दी गुम। भीड़ने देखा कि दारोगा अ युवकको देखकर—'सैलुट' कर रहा था। सभी हका-बक्का। यह क्या-से-क्या हो गया?

रिक्शेवालेको उठाते हुए उस सज्जनने कहा कि 'भाई रिक्शेवाले ! अगर दो सवारी एस पि के बँगलेक ले चलो तो दो रुपये दूँगा ।' और दो रुपये पर्स निकालकर दे दिये ।

रिक्शेवाला इस देवताके कर्तन्यको देखकर आनन्दा तिरेकसे बोला—'साहव ! हमारी पीठपर पड़ी सारी मारका दर्द भूल गया । आप देवता हैं, चलिये ।'

और रिक्शेवालेके पुत्रसमान रिक्शेकी पीठपर नहीं नहीं छातीपर दारोगा और वे व्यक्ति चल पड़े । कोई बोला— 'जरूर कोई वड़ा अफसर रहा होगा । देखा न, कितना न्यायी था । अपनी पीठपर दारोगाको ले जातेके लिये कह रहा था । पुलिसके ही प्रत्यक्षदो रूप— देवता और असुर !

देशको स्वतन्त्रता मिली है। बाँसुरीका कलेवर बदल जा रहा है, पर उसमेंसे निकलनेवाले स्वर अभी मधुरी सामयिक एवं कांगीप्रिय नहीं हैं।

गृ

गर

औ

क्री

(9)

सद्भचनहारसे अपराधी भी बदल सकते हैं

हम जिनको 'दादाजी' के रूपमें पहचानते हैं ऐसे एक सञ्जनके साथ मुझे पंढरपुर जाना पड़ा उनके हमेशाके ठहरनेके स्थानपर हम ठहरें थे दूसरे दिन हम नदीपर स्नान करने गये और भी कपड़ेसे विठोबाके दर्शनकर अपने निवास-स्थानप , अपना ठिपर हे

ाग ३१

यागन्तुक खाया। ोगा उस

। सभी

महा वि गलेतक । पर्स

भानन्दा-ो सारी

र नहीं-। कोई देखा न,

जानेके E9-

र बदल मध्रा —गोविद

ीं हैं गनते हैं।

पड़ा रे थे। र भी

-स्थानप

वापस लौट आये । कपड़े बदलते समय दादाजीको पता चला कि उनकी कीमती घड़ी और 'पार्कर' पेन कहीं गुम हो गयी । दादाजीने वहाँके नित्रास-स्थानके व्यवस्थापकको इस घटनाकी जानकारी देनेके अलावा और कुछ नहीं किया। जैसे कुछ भी न हुआ हो, रेसे खस्थ-चित्तसे दादाजीने अपना काम पूरा किया और हम बंबई लौटनेके लिये स्टेशनपर आये।

हम सब स्टेशनपर वेटिंग रूममें बैठे थे, कि प्लेटफार्मपर घूमनेवाले एक गृहस्थकी ओर दादाजीका घ्यान गया। उनकी जेबमें अपने पार्कर पेन-जैसी पेन देखकर दादाजी लिखनेके बहाने अपनी डायरी खोलकर संदेह मिटानेके लिये उस गृहस्थके पास पहुँचे और लिखनेके लिये उन्होंने विनयपूर्वक पेनकी माँग की । दादाजीका संदेह सही निकला । उस पेन-पर उनका नाम लिखा हुआ था। उन्होंने सम्यतापूर्वक उस गृहस्थको बताया कि पेन उनकी है, और पूछा कि 'यह पेन आपके पास कैसे पहुँची ?' उस गृहस्थने कहा—'पेन आपकी है तो आप ले लीजिये।'

दादाजीने पेन अपनी होनेका सबूत दिया। उस गृहस्थने बताया कि यह पेन उन्होंने सुबह एक लड़केसे पंदह रुपयेमें खरीदी थी। दादाजीने तुरंत उनको पंद्रह रुपये गिनकर दे दिये। पेन वापस निली, अब तो शायद घड़ी भी मिल जायगी; ऐसा सोचकर और उन गृहस्थको भी हमारी गाड़ीमें ही जाना था तो उनको भी अपने साथ वहाँके निवास-स्थानपर आनेके लिये विनती की। वहाँ पहुँचकर व्यवस्थापकको सब बातें बतायी गयीं । उन्होंने सब नौकरोंको बुलाया। हमारे साथ आये हुए गृहस्थने उन सवमेंसे एक छड़केको पहचानकर कहा कि 'इसीने सुबह पेन बेची थी।'

लड़केसे पृछताछ करनेपर उसने कबूल किया और घड़ी किसको बेची थी, यह भी बताया। थोड़ी फिठिनाईसे घड़ी भी मिल गयी। खरीददारद्वारा लड़केको

दी हुई रकम दादाजीने उसको चुकताकर घड़ी वापस ठी। अठारह वर्षके इस छोकरेसे चोरी करनेका कारण पूछा तो करुणाभरी आवाजमें रोते-रोते उसने वताया कि 'उसकी बूढ़ी माँ बहुत बीमार है और डाक्टर तथा दूधवालेकी रकम समयपर न चुका सकनेपर उसकी माँका इलाज रुक जायगा, इस डरसे उसने घड़ी और पेनकी चोरी की !

लड़केकी बातकी सचाई जाननेके लिये हम उसके घर गये। रास्तेमें लड़केने दादाजीसे प्रार्थना की कि इस घटनाके बारेमें उसकी माताजीसे कृपया कुछ न कहें; क्योंकि इसे सुनकर उसके मनको धक्का पहुँचेगा और इसके कारण शायद उसकी मृत्यु भी हो जाय! हम उसके घर पहुँचे तो देखा कि सचमुच ही उसकी जीर्णकाय बूढ़ी माँ बहुत वीमार थी।

दादाजीने सव तरहसे पूछताछ करके उस छड़केको पचीस रुपये देकर उसकी माँका इलाज चाळू रखनेके लिये कहा। उन्होंने पंदरपुरमें रहनेवाले अपने एक मित्रसे उस लड़केका परिचय करा दिया ताकि यदि कोई तात्कालिक सहायताकी आवश्यकता हो तो मिलती रहे । अन्तमें दादाजीने अपना बंबईका पता उसको देकर कहा-'तुम्हारी माताजी ठीक होनेपर ंबई आकर मुझसे मिलना ।'

कुछ दिनोंमें उस लड़केकी मौंकी मृत्यु होनेपर वह बंबई आकर दादाजीसे मिळा। दादाजीने उसे अपने पास नौकरी दी । इतना ही नहीं, आगे चलकर उसकी शादी भी करा दी। आजकल वह दादाजीके पास खास विश्वासपात्र—आत्मीयके रूपमें काम करते हुए पत्नी और बच्चोंके साथ आनन्दपूर्वक जीवन विता रहा है। (अखण्ड आनन्द) — स्वामी कृष्णानन्द

(4)

अंगुलबेडा Whitlow की चमत्कारी दवा अंगुलवेडा (अंगुल हाड़ा) जिसे अंग्रेजीमें Whitlow पुकारते हैं। जो प्रायः नख खूब छोटा कटाने, प्रवेश करनेसे हो जाता है। इससे अंगुलीके आगे बड़ी जलन, दर्द और सूजन हो जाती है।

जलन और कप्टके कारण रोगीकी व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। यह बड़ी ही कठिनतासे दूर होता है।

इस रोगपर नर्मदा प्रान्तके सघन वनमें रहनेवाले

प्रामीण भाषामें गर्धवी (गधइया) या विषकटीके नामसे एक अनुभवी गोंडसे प्राप्त एक प्रयोग है। वह यह है कि आक्रके दूधको अंगुलवेडापर लगाकर सर्पकी केंचुली चोट लगने या जल जाने किंवा विषेली वस्तुके रक्तमें चिपका देनेसे जलन और कड़क उसी समय शान हो जाती है। दिनमें दो बार, दो दिन लगाने आशातीत लाभ होता है।

> प्राप्त योगको कई रोगियौंपर आजमाया गया। कृपासे जिन्हें डाक्टरोंने ऑपरेशनकी भगवानकी राय दी थी, वे भी शीघ्र खस्थ हो गये।

-श्यामाचरण पाण्डेय, वैद्यशाची

क्यों तुम्हारी याद करता ?

अर्चनामें अपने पुच्प रख यदि यही होता भरोसा, क्यों तुम्हारी याद दीर्घ पथपर अनवरत रहुँगा। पा सकूँगा, साध पूरी कर सकूँगा॥ यदि यही विश्वास होता, 'खयं आवो' यह न कहता॥ १॥ एक पथपर एक गतिसे मैं कभी भी चल न कठिन पथ, सर्वदा ही लड्खड़ाया॥ जव जरा आया सबल यदि ये चरण होते, 'दो सहारा' यह न कहता॥२॥ भय-प्रलोभन तनिक आते, सहजहींमें फिसल चपल, अस्थिर, संयमन में कर न पाता॥ संयमित यदि प्रकृति होती, 'लाज रख लो' यह न कहता॥ ३॥ हृदयमें अनुराग-दीपक यत्नसे जब जब ही वासनाकी वात-वर्षाने बुझाया ॥ दीप यदि निष्कम्प जलता, 'आ बचाओ' यह न कहता॥४॥ जगतसे तनिक भी उपराम रहकर सरोवरके कमल-सा तनिक भी निर्छिप्त सत्य कहता हूँ कभी भी, 'शरणमें छो' यह न कहता ॥ ५॥ सारे, सत्यसे अति खप्न मेरे आज भी हैं। दुर स्वप्त मेरे, भी वे खप्त ही हैं॥ आज खप्न यदि साकार होते, 'अब दया कर' यह न कहता॥६॥ हूँ विवश अपने कियेपर, क्या करूँ ? चंचल हृदय हूँ । करूँ खयंको अभिशाप मैं हूँ॥ जब, तेरा ही भरोसा, इसिलये मैं याद

- एक साधक

पर आ सज

लौट सर

नद

वारि वर्ष आ

होक ही व

तबत किस

लिये

<u> श्रत्ये</u> समय वहाँसे

जवाद विना

कार्या संख्य लिख

अपने

पता-द

थीहरिः

कल्याणके नियम

उद्देश्य-भक्ति, ज्ञान, वैराग्य धर्म और सदाचारसमन्वित रेखाँद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

है कि

तंचु**जी**

शान्त

गानेसे

गया।

शनकी

धशास्त्र

नियम

- (१) भगवद्भक्तिः भक्तचिर्तः ज्ञानः वैराग्यादि ईश्वर-परकः कल्याणमार्गमें सहायकः अध्यात्मविषयकः व्यक्तिगत आक्षेपरिहत छेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके छेख भेजनेका कोई सजन कष्ट न करें। छेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित छेख बिना माँगे छौटाये नहीं जाते। छेखोंमें प्रकाशित मतके छिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।
- (२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ७ रुपये ५० नये पैसे और भारत-वर्षसे वाहरके लिये १० रुपये (१५ शिलिंग) नियत है। विना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।
- (३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।
- (४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी द्रमें प्रकाशित नहीं किये जाते।
- (५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन वार जाँच करके प्रत्येक प्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पड़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाव शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति विना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।
- (६) पता वदलनेकी सूचना कम-से-क्रम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय श्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये। महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जाने-

की अवस्थामें दूसरी प्रति विना मूल्य न मेजी जा सकेगी।

(७) जनवरीसे वननेवाले ग्राहकोंको रंग-विरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चाल् वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा । विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा । फिर दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे ।

(८) ४५ नये दैसे एक संख्याका मृत्य मिलनेपर नम्ना भेजा जाता है। ग्रांहक चननेपर वह अक्क में लें ती अर्थ नये पैसे बाद दिये जा सकते हैं।

आवश्यक सूचनाएँ

- (९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण' की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।
- (१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता सपष्ट छिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-सं**ख्या अवश्य छिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।
- (११) पत्रके उत्तरके लिये जवावी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक वातके लिये दुवारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।
- (१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआईरद्वारा भेजना चाहिये। वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।
- (१३) प्रेस-विभाग तथा कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १.०० से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।
- (१४) चाळ् वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।
- (१५) मनीआर्डरके क्र्पनपर रूपयोंकी तादाद, रूपये भेजनेका मतलव, ब्राहक-नम्बर (नये ब्राहक हों तो 'नया' लिखें) पूरा पता आदि सब वातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।
- (१६) प्रवन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक ''कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि सम्पादक ''कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) के नामसे भेजने चाहिये।
- (१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालेंसे चंदा कम नहीं लिया जाता। व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

छष गया !

प्रकाशित हो गया।

विक्रम-संवत् २०१६ (सन् १६६२-६३) का गीता-पञ्चाङ्ग

सम्पादक—न्यौतिषाचार्यं न्यौतिषतीर्थं पं० श्रीसीतारामजी झा, वाराणसी

आकार २२×३० आठपेजी, ग्लेज सफेद २६ पोंडका कागज, पृष्ठ-संख्या ७२, आर्टपेपरका सुन्दर मुख्युः मृत्य .५० (पचास नये पैसे) डाकन्यय रजिस्ट्रीखर्चसहित .७०, कुल १.२०

इस बार ज्योतिर्विद् पं० श्रीविद्याधरजी शुक्कद्वारा तैयार की हुई दृष्टफलार्थ—कालीराश्युदयसिद्ध दैनिक लग्नसारिकी ८ पृष्ठ और अधिक दिये गये हैं। अन्य सब उपयोगी वार्ते सदाकी तरह हैं ही।

वि॰ २०१८ के गीता-पञ्चाङ्गकी ४०,००० प्रतियाँ छापी गयी थीं; परंतु सब ग्राहकोंकी पूर्ति न हो सकी । जगह-जगहें लोग माँगते ही रहे, पर उन्हें अन्ततः निराश ही होना पड़ा । इस बार भी ४०,००० प्रतियाँ ही छापी जा सकी हैं जिनकें अधिकांश विक चुकी हैं । थोड़ी प्रतियाँ शेष हैं । अतः जिन्हें लेना हो, शीवता करनेकी कृपा करेंगे ।

विक्रेताओं के छिये १,००० प्रतियाँ एक साथ छेनेपर सूल्य ४५०.०० (चार सो पचास रुपये)हैं। कमीरान, विरोष कमीरान तथा सवारी गाड़ीका फ्री रेलभाड़ा आदि नियमानुसार मिलता ही है।

मानस-पीयूषके प्राप्य खण्ड

खण्ड १—बालकाण्ड (प्रारम्भसे दोहा ४३ तक) पृष्ठ ६८८			0.40
खण्ड २—न्नालकाण्ड (४३ दोहेसे दोहा १८८ के ६ चोपाईतक) पृष्ठ ८६८			9.41
खण्ड ४—अयोध्याकाण्ड सम्पूर्ण, पृष्ठ ११९६			22.00
खण्ड ५—अरण्यकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड पूरा, पृष्ठ ६४२			9.00
खण्ड ६—सुन्दरकाण्ड और लंकाकाण्ड पूरा, पृष्ठ १०५२	··· Lawre		22.00
खण्ड ७—उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण, पृष्ठ ७८४		•••	6.41
खण्ड ३—(बालकाण्ड दोहा १८८ की चौपाई ७ से सम्पूर्ण) छप रहा है, जिसके १-१॥ व	मालमें तैयार हो	जानेकी अ	याद्या है

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें भेजिये

- (१) प्राचीन प्रन्थोंकी सुरक्षाकी दृष्टिसे प्राचीन प्रन्थोंका गीताप्रेसमें संग्रह किया जा रहा है। जिनके पास संस्कृत हिन्दी प्राचीन हस्तिलिखत प्रन्थ या चित्र हों और जो देना चाहें, व इ.पया भेज दें। रेल या डाकरवर्च गीताप्रेक ओरसे दिया जायगा।
- (२) किन्हीं सज्जनके पास विक्रम संवत् १७०० से पूर्वकी या १७०० के कुछ ही वर्षों वादकी लिखी है श्री कुलिसीदासजीरचित श्रीरामचरितमानसकी पूरी (सातों काण्ड) या अधूरी (कुछ काण्ड) प्रति हो तो वे कृपया हमें पूर्व करें । डाकखर्च यहाँसे दिया जायगा और हम वड़े कृतज्ञ होंगे। व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरख्य

आवश्यक अर्थना

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पत्रव्यवहार बहुत ही कम कर पाते हैं तथा सार्वजनिक सभाओं, उत्सवो-समार्गे भी सम्मिलित होनेमें और लोगोंसे मिलने-जुलनेमें भी उन्हें बड़ी अमुविधा है। अतएव सबसे प्रार्थना है कि बहुत आवश्यक होते ही उनको व्यक्तिगत पत्र लिखें, पत्रका उत्तर देरसे पहुँचे या न पहुँचे तो क्षमा करें; सार्वजनिक सभाओं, उत्सव-समार्गे युलानेका कृपया आग्रह न करें और यहाँ मिलनेके लिये, पहलेसे स्वीकृति प्राप्त किये विना पधारनेका कष्ट भी कृपापूर्वक करें। कोई सजन आ जाय और उनसे मिलना न हो तो व्यर्थ कष्ट होगा, इसीसे यह प्रार्थना की गयी है।

पोद्दारजीके नाम आये हुए ऐसे सैकड़ों पत्र—जिनका उत्तर उन्हें स्वयं ही लिखना या लिखवाना थाः उत्तरके ही पड़े रह गये हैं। इसके लिये वे पत्र-लेखक महोदयोंसे करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

व्यवस्थापक गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar 5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गया !!

१७५

मुखपृष्

सारिणीः इ-जगहो

ा) हैं।

जिनमें

9.40 9.40 9.00 9.00

११.०० ८.५। नाद्या है

iस्कृत र ोताप्रेस

खी गे में प्रव रिख्य

समारोहें क होने समारोहें समारोहें

r;—^f

रखपुर

विषय-सूची	कल्याण, सौर चैत्र २०१८, मार्च १९६२			
Transport of the second of the	विषयं पप्रसंख्या			
	विषय पृष्ठ-संख्या १७-प्रियतम ! किसी भी रूपमें आओ ! [कविता] ८०२			
१-श्रीगौरोशंकर [कविता] ७६९ २-कल्याण ('शिव') ७७०	िकविता] ८०२			
३-दीन-प्रार्थना [संकलित] ७७१	१८-'हारेको हरिनाम' [कहानी] (श्री'चक्र') ८०३			
४-परमात्मा, जीवात्मा और विश्व (व्र॰	१९-उपदेशके दोहे [कविता] ८०५			
जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारती-	२०-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददास-			
कृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी—	जी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्द-			
. अनु॰ पं॰ श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्क-	प्रसाद श्रीवास्तव) ८०६			
शिरोमणि) ७७२	प्रसाद श्रीवास्तव) · · · ८०६ २१—अभिलाषा [कविता] · · · ८१०			
५-भगवत्-तत्त्व (डा० श्रीवासुदेवशरणजी	२२-वैज्ञानिक विडम्बना (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ८११			
अग्रवाल एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ७७६	२३-देवाराधन, भगवदाराधन और भगवन्नाम-			
६—सबमें प्रमुको देखो [कविता] '' ७७८	का चमत्कार ८१७			
७-वेदोंमें रारणागति-महिमा (स्वामीजी श्री-	२४-रोगी देश अमेरिका ('होमियोपैथिक			
ओंकारानन्दजी सरस्वती) ७७९	संदेशसे') ८२२			
८-सत्प्रेम-एक दृष्टिकोण (श्रीदीवप्रसादजी	२५-सबसे विकट मानस रोग हैं और वे ही			
शर्मा) ७८२	शारीरिक रोगोंके कारण हैं ८२३			
९-तुम्हीं अपने मुख-सदनमें रहते हो [कविता] ७८३	२६-श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर			
१० - वर्तमानमें गीताकी उपादेयता (वैद्य	जय नन्दिकशोर ! [कविता] (पाण्डेय			
श्रीज्ञाननिधिजी अग्रवाल, आयुर्वेदाचार्य) ७८४ ११-मैं भगवान्के आनन्दसागरमें डूवा रहता हूँ ७८६	पं॰ श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') ८२४			
१२—गोस्वामी तुलसीदासजीका 'शकुनविचार'	न्द्रतार्म हूबा रहता हू ७८६ २७ मंगलभवन अमंगलहारी (प्रो॰ डा॰			
(श्रीबलरामजी शास्त्री, एम० ए०.	राजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, एम्० ए०,			
च्यातिषाचियं, साहित्यरत)	पी-एच्॰ डी॰, बी॰ एस्-सी॰,			
१२-द्वापान्तर आर भारतम सास्कृतिक सम्बन्ध	साहित्यरत्न) ८२५			
(डा॰ सुदर्शना देवी सिंघल, डी॰ लिट्०) ७९३ १४-मधुर ७९८	२८-आत्मनिरीक्षण (श्रीबालकृष्णजी वलदुवा			
१४-क्ट्राणाकी परिभाग (तं के	बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ वी॰) · · · ८२६			
१५ 'कल्याण'की परिभाषा (पं० श्रीजानकी- नाथजी दार्मा) १९००	२९-व्यवहार (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ८२७			
	३०-साधककी उत्तरोत्तर उन्नत स्थिति किवता ८२७			
	३१-पढ़ो, समझो और करो " ८२८			
~at				
चित्र-सूची				
१-श्रीरामकी बाल्लीला तथा वनगमनलीला (रेखा चित्र) मुख-पृष्ठ				
र-श्रीगौरी-शंकर	(तिरंगा) ७६९			
-rexe-				
मूल्य े लग पातक गति चान नामि				

वार्षिक भारतमें ६० ७.५० विदेश में रु० १०.०० (१५ शिलिंग) जय पावक रिव चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय।। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय।। जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ।।

साधारण भारतमें विदेशमें वेंस) (90

.84

.41

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

> उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्। ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भृतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर चैत्र २०१८, मार्च १९६२

संख्या ३ पूर्ण संख्या ४२४

श्रीगौरी-शंकर

हिमगिरि छाय रहे श्रीसंकर॥ गौरी सहित, गौर-तनु उज्ज्वल, आभूषन भूषित भुजंगवर। पंचबद्न, सुभ नयन पंचद्स, जटामुकुट सिर, ससि-सुरधुनि-धर॥ परसु त्रिसूल ग्यान-बर-मुद्रा सोभित, चारु चार भुज सुंद्र । भालुचर्म कटि, कंठ कलित अहि अच्छमाल-अहि, मुंडमाल उर ॥ अलंकार मुकुता-मनि मंडित, गौरी महिमामयी बरद कर। धवल बरन, बाहन सुबिराजित धरम खयं सुचि बरद-रूप धर ॥

CC-0. In Public Domain: Gurckur Rangri Collection, Haridwar

4 वंस)

हरे॥

कल्याण

याद रक्खो-भगवान एक हैं। परंतु उनतक पहुँचनेके मार्ग अनेक हैं। साध्य-लक्ष्य एक है, परंतु उसे प्राप्त करनेके साधन अनन्त हैं। साध्य एक होनेपर भी साधनोंमें अनेकता अनिवार्य है। जैसे काशी एक है पर काशी पहुँ चनेके पथ विभिन्न हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—सभी दिशाओं के मनुष्य काशीको लक्ष्य बनाकर चलेंगे तो काशी पहुँच जायँगे, परंतु वे चलेंगे अपनी-अपनी दिशासे तथा अपने-अपने मार्गसे ही । मार्गीके अनुभव भी उनके पृथक-पृथक् होंगे। कोई यह चाहे कि पूर्वसे आनेवाला पश्चिमसे आनेवालेके पथसे ही आये तथा उत्तरसे आनेवाला दक्षिणके पथसे ही आये तो जैसे यह चाहना भ्रममूलक है, वैसे ही भगवान्तक—अपने परम लक्ष्यतक पहुँचनेका साधन एक ही हो--यह मानना भी भ्रम है। रुचि, समझ, अन्तः करणके खरूप, त्रिगुणोंकी न्यूनाधिकता, पूर्व-संस्कार, वातावरण आदिके अनुसार ही विभिन्न साधन होंगे । अतएव किसी भी भगवत्प्राप्तिके साधनकी न निन्दा करो, न किसीको देखकर छुभाओं । लक्ष्यपर नित्य दृष्टि रखकर अपने पथसे चलते रहो । भगवान् ही जीवनके परम साध्य हैं, इसको क्षणभरके लिये भी न भूलकर नित्य-निरन्तर अपने साधनमें छो रहो । दूसरे क्या करते हैं, क्या कहते हैं, इसकी ओर न देखकर निरन्तर अपने मार्गपर सावधानीसे आगे बढ़ते रही।

याद रक्खो—यदि तुम्हारे जीवनमें दैवी सम्पत्ति बढ़ रही है, मन विषयोंसे हट रहा है, भगवान्के प्रति आकर्षण अधिक हो रहा है, मनमें शान्ति तथा आनन्द-की वृद्धि हो रही है और ये धीमी या तेज जिस चालसे बढ़ रहे हैं तो समझ लो कि तुम उसी मात्रामें उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहे हो; और यदि तुम्हारे जीवनमें आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है, मन विषयोंकी ओर खिंच रहा है, भगवान्के स्मरणसे हट रहा है, मनमें अशान्ति तथा चिन्ताकी वृद्धि हो रही है और ये मन्द या तीव्र जिस गतिसे बढ़ रहे हैं तो उसी गतिसे तुम पीछे हट रहे हो, तुम्हारा पतन हो रहा है। अतएव सावधानीके साथ अपने जीवनकी भीतरी स्थितिको देखते रहो। तुम्हारा असलमें वही खरूप है, जैसी तुम्हारी भीतरी स्थिति है।

याद रक्खो—सबसे आवश्यक और सबसे प्रयम करने योग्य कार्य है—लक्ष्यका निश्चय । 'भगवान् ही जीवनके परम लक्ष्य हैं'—यह निश्चय करना । और फिर इसी लक्ष्यको सामने रखकर जीवनमें प्रत्येक भीतरी-बाहरी क्रिया करना । जीवनका निश्चित लक्ष्य भगवान् होंगे तो तुम्हारा मुख भगवान्की ओर होगा और तुम धीमी या तेज चालसे भगवान्की ओर ही बढ़ते रहोंगे; क्योंकि जीवमात्र सब चल ही रहे हैं, कालचक्रमें पड़े हुए नित्य-निरन्तर चलते रहना ही संसारमें जीवका कार्य है । फिर वह चाहे भगवान्के सामने मुख करके उनकी ओर चलें या विषयोंको सामने रखकर उनकी ओर !

याद रक्खों—हिमालयकी तपोभूमिकी ओर जाने-वालेको जैसे आगे-से-आगे शीतलता (ठंडक), एकान्त भूमि, त्यागी साधु महात्मा तथा शान्ति-सुख आदि मिलेंगे, और इसके विपरीत गरम देशमें भोगमय बड़े-बड़े नगरोंकी ओर जानेवालेको उत्तरोत्तर गरमी, भीड़भाड़, भोगी-विषयी लोग—चोर-ठग-डाकू, अशान्ति, चिन्ता आदिकी प्राप्ति होगी, ठीक वैसे ही भगवान्की ओर जानेवालेको आगे-से-आगे दैवी सम्पत्ति, सत्संगति, विषय-वैराम्य, शान्ति, आत्मानन्द, पवित्र आचार-विचार आदि मिलते रहेंगे और भोगोंकी ओर जानेवालेको आसुरी सम्पदा, कुसंगति, विषयासिक्त, अशान्ति, भोगोंमें आनन्दका भ्रम, अपवित्र पाप-कर्मादि, दिन-रातकी जलन आदि प्राप्त होंगे। अतएव अपने आपको इन लक्षणोंके अनुसार देख-जाँचकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तथा

जिस

हो,

अपने

पलमें

प्रथम

र् ही

और

तरी-

वान्

तुम गिः;

पड़े

नाय

की

[]

ने-

न्त

गे,

की

ायी

ाप्ति

गे-

त,

ौर

À,

त्र

T

निर्णय कर लो कि तुम किस और जा रहे हो और यदि दु:खमय अनित्य भोगोंकी ओर जा रहे हो तो तुम्हारे लिये दु:ख तथा पतन निश्चित है, फिर मले ही तुम बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, साधु, भक्त, महात्मा, नेता, अधिकारी, ऐश्वर्यवान् सुखी क्यों न समझे-कहे जाते हो या मानते हो। अतः तुरंत विषयोंकी ओर पीठ करके भगवान्के सामने मुख कर लो।

याद रक्खो—तुम मनुष्यके रूपमें इस संसारमें इसलिये नहीं भेजे गये हो कि दिन-रात भोगलिप्सामें लगे रहकर पापजीवन विताओ और पापकर्मीका संचय वढ़ाकर रोते-कलपते मर जाओ। तुम्हें तो मानवरूप दिया गया है भगवान्की प्राप्तिके साधनमें लगकर पुण्य-जीवन विताते हुए भगवान्को प्राप्त करनेके लिये, मृत्युको मारकर दिव्य नित्य भागवत-जीवनकी प्राप्तिके लिये। इस वातको याद रक्खो और अपनी योग्यता तथा रुचिके अनुसार निर्दोष परमार्थ-साधनको अपनाकर इधर-उधर न ताकते हुए चलते रहो और जीवनके नित्य परम साध्य भगवान्को प्राप्त करके सफलजीवन वन जाओ।

'হিাব'

दीन-प्रार्थना

नामानि प्रणयेन ते सुकृतिनां तन्वन्ति तुण्डोत्सवं धामानि प्रथयन्ति हन्त जलद्द्यामानि नेत्राञ्जनम् । सामानि श्रुतिशक्तुलीं सुरिलकाजातान्यलंकुर्वते कामानिर्वृतचेतसामिह विभो ! नाशापि नः शोभते ॥ संसाराम्भिस सम्भृतभ्रमभरे गम्भीरतापत्रयद्याहेणाभिगृहीतसुद्रगतिना क्रोशन्तमन्तर्भयात् । द्रीप्रेणाद्य सुद्रशनेन विवुधक्कान्तिच्छिदाकारिणा चिन्तासंतिरुद्धसुद्धर हरे मच्चित्तदन्तीश्वरम् ॥ विवृतिविविधवाधे भ्रान्तिवेगाविगाधे वलवित भवपूरे मज्जतो मे विदृरे । अशरणगणवन्धो ! हा कृपाकौसुदीन्दो ! सकृद्कृतविलम्बं देहि हस्तावलम्बम् ॥ (श्रीह्मगोस्वामी)

हे विमो ! आपके परम मङ्गळमय सब नाम प्रेमके कारण पुण्य कर्म करनेवाले पुरुषोंके मुखका महोत्सव बढ़ाते हैं । आपके श्रीविग्रहकी नव-नील-नीरद-स्थाम कान्ति उनके नेत्रोंका अञ्चन विस्तार करती है । आपकी मनो-हारिणी मुरलीसे उत्पन्न मधुर सामगीत उनके कानोंको अलंकृत करते हैं । विषयकामनाओंसे क्किष्ट चित्तवाले मेरे लिये तो यह आशा भी अच्छी नहीं है, अतः उन भक्तोंकी स्थिति तो मुझे प्राप्त ही कैसे हो सकती है (आप अपनी अहैतुकी कृपासे ही मेरा उद्धार कर दीजिये)।

हरे ! अनेक भँवरोंसे भरे संसार-सागरके जलमें उम्र गतिवाले तापत्रयरूपी म्राहने मेरे चित्तरूपी गजराजको म्रास लिया है । मेरा वह चित्त भयभीत होकर उच्चखरसे रोता-कराहता हुआ आपको पुकार रहा है । हे प्रभो ! आप देव-दु:खोंका उच्छेद करनेवाले अपने देदीप्यमान सुदर्शनचक्रद्वारा चिन्तासमूहोंसे अवरुद्ध मेरे चित्तका उद्घार कर दीजिये ।

विविध बाधाओंसे भरे, भ्रान्तिके वेगसे अगाध बल्वान् ऐसे संसार-सागरमें ड्रबता हुआ मैं बहुत दूर आ गया हूँ । अतः हे अशरणगणोंके बन्धु ! हे कृपारूप ज्योत्स्नाका विस्तार करनेवाले चन्द्रमा ! आप तुरंत ही एक बार अपने हाथका सहारा देकर मुझे उबार लीजिये ।

परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

(मूल अंग्रेजी लेखक – व ০ जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी)

[अनुवादक--पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि]

[गताङ्कसे आगे]

ज्ञान

अगला गुण, जिसपर हमारे शास्त्र विचार करते हैं, प्रकृति और आत्माका सम्बन्ध है, जिसे चित् अथवा ज्ञान कहा गया है। अपने दैनिक जीवनमें होनेवाले अज्ञानता-मूलक दोषोंके बार-वार अथवा लगातार होनेके कारण हम यह कठिनतासे ही मानेंगे कि ज्ञान जीवात्माका स्वाभाविक गुण है, पर थोड़ा-सा मनन इस बातको प्रमाणित कर देगा कि शास्त्रोंका यह कथन नितान्त सत्य है। किंतु इस दिशामें हमें धीरे-धीरे ही बढना चाहिये, एकदम जल्दी नहीं । सबसे पहले इमें यह देखना चाहिये कि क्या आत्माको ज्ञानसे प्रथक किया जा सकता है ? इस प्रश्नपर विचार करनेपर इमें पता चलेगा कि किसी-न-किसी रूप और परिमाणमें ज्ञान जीवात्माके साथ हरदम रहता ही है। यहाँ उस ज्ञानके सदीष, निर्दोष और पूर्णता,अपूर्णताका प्रश्न नहीं है, उसका तो विचार हम बादमें करेंगे। यहाँ तो हम केवल इसी बातपर विचार करना चाहते हैं कि किसी-न-किसी प्रकारका ज्ञान जीवात्मामें अवस्य रहता है। यह प्रसंग हमें एक लघु-कथाका स्मरण दिलाता है, जिसमें एक स्त्री अपने पतिसे कहती है कि 'इस पृथ्वीपर एक भी ऐसी चीज नहीं है, जिसपर हम दोनों कभी सहमत हुए हों। 'पति उत्तर देता है कि 'नहीं, तुम्हारा कहना गलत है। एक बातपर हम-तुम दोनों सहमत हैं और वह बात यह है कि इस पृथ्वीपर एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिस-पर हम दोनों सहमत हो सकें ।' इसी प्रकार जब कोई यह कहता है कि वह कुछ नहीं जानता, तब भी वह इस बातका शान तो अवस्य रखता ही है क्रि वह कुछ नहीं जानता। यह तर्क इस बातको सिद्ध करता है कि ज्ञाक दूसरा गुण है, जिसे जीवात्मासे पृथक् नहीं किया जा सकता।

यह ज्ञान केवल जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें ही नहीं अपितु सुषुप्तिमें भी रहता है; क्योंकि सुषुप्तिमें भी चैतन्यता रहती है; केवल अन्तर यही है कि सुषुप्तिमें चैतन्यता ऊपरकी सतहपर नहीं आती । पर हम इस बातको मानें कैसे १ इस बातकी

सिद्धिके लिये एक छोटा-सा अनुभव ही पर्याप्त है, कलाना करो कि तुम गाढ़ निद्रामें हो और एक मच्छर तुम्हारे पैर-में काटता है, यद्यपि तुम तब भी गाढ़ निद्रामें हो, पर तुम्हारे चैतन्यताका प्रवाह निष्क्रिय नहीं रहेगा । शरीर-विज्ञान-शास्त्र (Physiology) में दो प्रकारकी नाडियोंका वर्णन है—एक ज्ञानवाही (Sensitive Nerves) और दूसरी कर्मवाही (Active Nerves), जिनमें प्रथमकी क्रिया बाहरसे प्राप्त हुए ज्ञानको मस्तिष्कतक पहुँचाना है तथा दूसरी नाड़ियोंका काम मस्तिष्ककी आज्ञाओंको इन्द्रियों-तक पहुँचाना है । वे नाडियाँ हरदम अपने कामोंपर तैनात रहती हैं, पर तुम्हें इस बातका ज्ञान नहीं होता । अस्तु, मच्छरके काटनेपर भी तुम्हारी नींदमें किसी प्रकारका विघ नहीं पड़ता, पर पैरमें मच्छरके काटनेकी संवेदना (Sensation) नाडियोंद्वारा ज्ञानवाही पहुँच जाती है और तब भी तुम्हें नींदसे उठाये बिना ही तुम्हारा मिलाष्क उस काटे हुए स्थानको रगडकर दर्द मिय देनेके लिये तुम्हारे हाथको आज्ञा देता है और तुम्हारा हाथ मस्तिष्ककी आशाका पालन करता है । जब जागनेपर उस स्थानपर खून निकला हुआ देखते हो, तब सहज ही यह अनुमान कर लेते हो कि मच्छर या किसी कीड़ेने काट लिया होगा और तुमने उस स्थानको नाखुनोंसे खुजा दिया होगा। शरीर-शास्त्रज्ञ (Physiologists) इस क्रियाकी प्रतिक्रिया' (Reflex Action) कहती 'संवेदनात्मक है। लैर, वे इस क्रियाको कुछ भी नाम दें, पर इस तथ्यते इन्कार नहीं किया जा सकता कि गाढी नींदमें भी बाहरकी सूचनाएँ मस्तिष्कको मिलती रहती हैं और मस्तिष्क उन सूचनाओंके अनुसार क्रियाएँ भी करता और करवाता है। यह अनुभव इस बातका निदर्शक है कि सुष्प्रिमें भी ज्ञान किसी-न-किसी रूपमें रहता अवश्य है। दूसरे शब्दोंमें, शन एक दूसरा लक्षण है जो जीवात्माके साथ अविभाज्य, अपृथक् और स्वाभाविक गुणके रूपमें निरन्तर रहता है।

श क

वि

अं

ि

द

से

में

सं

हो

वा

व

स

₹

स

ब

प्राप्

रंग

सः

मोह

कल्पना

रि पैर-

तुम्हारे

न-शास्त्र

वर्णन

र दूसरी

क्रिया ना है

हन्द्रियों-

तैनात

अस्त,

विघन

तंवेदना

ष्कतक

ना ही

६ मिटा

हाथ

र उस

ही यह

काट

दिया

क्रयाको

कहते

तथ्यसे

गहरकी

क उन

त है।

ज्ञान

भृष्यक्

अव हम कुछ और गहराईमें उतरकर इस वातपर विचार करना चाहते हैं कि जीवात्माका यह लक्षण 'ज्ञान' खण्ड है या अखण्ड, परिच्छिन्न है या अपरिच्छिन्न । हम कहते हैं कि हमने अमुक गलती कर डाली, पर वेदान्त-शास्त्र हमें यह बताता है कि आत्मा सदा चित्स्वरूप है। और कुछ विश्लेषण करनेपर हमें खयं भी यह पता चल जायगा कि हमारे अंदरका ज्ञान सीमित नहीं है । अपितु असीमित और पूर्ण है। उदाहरणस्वरूप यदि तुम अपने कमरेके सब खिड़की और किवाड़ोंको बंद करके केवल एक छोटी-सी दरार मात्र रक्खो, जिसमेंसे सूर्यकी थोड़ी-सी किरणें मुक्किल-से अंदर आ सकें; उसको देखकर यदि तम कहो कि दरार-मेंसे जितना सूर्यका प्रकाश आ रहा है केवल उतना ही प्रकाश संसारभरमें भी है तो क्या यह तुम्हारा कथन युक्तिसंगत होगा १ जब कि तथ्य यह है कि सूर्यका प्रकाश अपार है, पर वह प्रकाश उस सीमित दरारमेंसे आनेके कारण सूर्यके वास्तविक प्रकाशको उस दरारसे नहीं नापा या देखा जा सकता। इसी प्रकार एक कमरा प्रकाशसे भरपूर हो, पर बाहरके मनुष्यको उसकी केवल एक ही किरण दिखायी दे रही हो, तो उसे अंदरके महान प्रकाशकी कल्पना नहीं हो सकती । इसी बातको भगवान् आद्यशंकराचार्यने इस प्रकार कहा है-

नानाछिद्रघटोद्रस्थितमहादीपप्रभाभास्वरम्।

(अनेक छिद्रोंसे युक्त घड़ेमें रक्ले हुए महान् दीपक-के समान यह प्रकाशमान है।)

अथवा साधारण विजलीके बल्बोंका ही उदाहरण ठेलीजिये।
यद्यपि विद्युत्-गृह (Power-house) में बिजली बहुत
बड़ी तादादमें पैदा की जाती है, पर उसमेंसे प्रकाशको
प्राप्त करना हमारे बल्बोंकी शक्तिपर निर्मर है, इसके अलावा
रंगीन बल्बोंके द्वारा रंगरहित प्रकाशका रंग भी बदला जा
सकता है। इसी तरह वेदान्त कहता है कि सभी प्रकारका
ज्ञान हमारे अंदर है, पर अज्ञानद्वारा वह ढका रहता है,
हमारा कार्य केवल उस अज्ञानके पर्देको हटाना ही है। गीतामें
भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुद्धन्ति जन्तवः।

(ज्ञान अज्ञानसे ढका हुआ होता है और उससे प्राणी मोहको प्राप्त होते हैं।)

इस उपदेशकी सचाईकी परख हम अग्नि, विद्युत्, मृत्तिं और शिक्षापर अपने अनुभवोंको केन्द्रित करके कर सकते हैं। इम अग्निको पैदा कैसे करते हैं ? वस्तुतः इम अग्निकी नयी उत्पत्ति नहीं करते, वह तो अप्रकटरूपमें पहलेसे ही अंदर विद्यमान है। हम तो केवल दो लकड़ियाँ (अरणियों), या दो पत्थरों अथवा तीलीको दियासलाई-पर विसते हैं और अप्रकट अग्निको प्रकट कर देते हैं। यही बात विद्युत्के विषयमें भी है। इम विजलीको उत्पन्न नहीं हम केवल अप्रकटित करते विजलीको करनेवाले साधनोंका उपयोग करते हैं और विजली स्वयं प्रकट हो जाती है । इसी प्रकार जब एक मूर्त्तिकार संगमरमरकी एक मूर्ति वनाता है, तब वह वास्तवमें करता क्या है ? वह उस पत्थरमें किसीकी मूर्तिको वाहरसे लाकर नहीं रख देता। संसारकी सभी कल्पनीय आकृतियाँ उस पत्थरमें पहलेसे ही मौजूद हैं और मूर्तिकार छेनी और हथौड़ेकी सहायतासे अपने इच्छानुसार किसी एक मूर्तिको गढ़ लेता है। इस प्रकार उसकी इच्छित मूर्ति कहीं बाहरसे उस संगमरमरमें नहीं आयी, अपितु उसमें पहलेसे ही विद्यमान थी पर अप्रकट रूपमें।

यही प्रकार शिक्षाका भी है। शिक्षा शब्दका अर्थ ही 'बाहर प्रकट करना' है। एक अध्यापक शिक्षाके द्वारा शिष्य-की छिपी हुई योग्यताको प्रकाशमें छाता है।

यदि दुर्जनतोष न्यायसे यह मान भी लिया जाय कि जीवात्मामें ज्ञान बाहरसे ही आता है, तो भी यह बात सिद्ध या प्रमाणित कैसे की जा सकती है ? गरम पानीके दृष्टान्तमें जैसे कहा था कि पानीकी सारी उष्णता थोड़ी देर बाद समाप्त हो जाती है; क्योंकि उष्णता पानीका लक्षण न होकर एक उपलक्षण मात्र है । इसी प्रकार ज्ञान भी यदि जीवात्माका लक्षण न होकर उपलक्षणमात्र हो तो वह हमारे लिये किसी उपयोगका नहीं हो सकता । हमारे लिये तो वही ज्ञान उपयोगी हो सकता है जो हमारे अंदर प्रकट या अप्रकटरूपमें पहलेसे ही मौजूद हो, अन्यथा तो वह ज्ञान पानीकी उष्णताकी तरह थोड़ी देरके बाद ही समाप्त हो जायगा । अतः यह तर्क इस बातका साधक है कि ज्ञान जीवात्मामें पूर्वसे ही विद्यमान रहता है । एक योग्य और सच्चा अध्यापक वह है, जो यथायोग्य साधनोंका सहारा लेकर शिष्यकी छिपी हुई प्रतिमानको भरपूर तौरपर विकसित या प्रकटित करता है । अन्य दूसरे

संख्य

वाहर

जी-उ

आ

हैं।

करते

यह

अप

तो 'अध्यापक'के वेशमें 'घोखेबाज' हैं, इसी कारण भगवान श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं-

प्रकाशयति तेषामादित्यवज्ज्ञानं

जब सूर्यको दककर हमारी दृष्टिसे ओझल कर देनेवाले बादल हवाद्वारा हटा दिये जाते हैं, तव यहाँ हवा एक नये सूर्यको उत्पन्न नहीं करती, अपितु बादलोंको हटाकर उसी पुराने सूर्यको प्रकट करती है। दूसरे शब्दोंमें शिक्षा और संस्कृति किसी नये ज्ञानका निर्माण नहीं करती, अपितु अंदर छिपे हुए ज्ञानको ही बाहर लाकर हमारे देखनेयोग्य बना देती है। इन सबके कहनेका तात्पर्य यह है कि आत्मा अखण्ड ज्ञानयुक्त है।

फ्रेंच लडकीका उदाहरण

इस प्रसंगमें एक आश्चर्यजनक घटना याद आती है जो कुछ वर्ष पूर्व एक समाचार-पत्रमें छपी थी। एक फ्रेंच-लडकी, जो केवल अपनी मात्रभाषा फ्रेंच ही जानती थी, बहुत खतरनाक रूपसे बीमार पड़ गयी और एक सप्ताहतक वेहोश रही। पर वह किसी प्रकार बच गयी और जब इसकी बेहोशी दर हुई, तब लोगोंको यह देखकर वड़ा आश्चर्य हुआ कि वह अपनी मातृभाषा फ्रेंच बिल्कुल भूल चुकी है और एक दर्जन अन्यभाषाओंको, जिनको उसने पहले कभी सुना भी नहीं था, अच्छी तरह पढने, बोलने और लिखने लग गयी है। इस समाचारको सुनकर अनेक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक उसके पास दौड़े गये और जब उन्होंने इस विषयमें खोज की तो पाया कि इस समाचारमें कुछ भी घोखा नहीं है, सब सत्य है। अन्तमें उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि मस्तिष्कमें सभी बातोंका सम्पूर्ण ज्ञान रहता है पर उसके प्रकाशनके दरवाजे बंद रहते हैं, जिन्हें खोळनेके लिये विशेष चावियोंकी आवस्यकता होती है । सहायता, वातावरण और प्रशिक्षण (Training) के ज़रिये हम कुछ ही दरवाजोंको खोल पाते हैं और अज्ञानतावश और उपयुक्त चाबियोंका प्रयोग न करनेके कारण दूसरे दरवाजोंको खोलनेमें असमर्थ रहते हैं। इस फ्रेंच लड़कीके विषयमें भी कुछ ऐसा ही हुआ कि फ्रेंच भाषाका दरवाजा स्वतः बंद हो गया और अन्य अज्ञात भाषाओंके दरवाजे खुल गये। यहाँ हमें वेदान्तके इस सिद्धान्तके छिवे प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है कि आत्मा अनन्त और पूर्ण ज्ञानका भण्डार है।

उद्देश्यात्मक प्रणालीसे भी हम देखते हैं कि जिस प्रका जीनेके लिये हमारा प्रयत्न करना यह सिद्ध करता है कि असल हमारा स्वभाव है, उसी प्रकार सभी चीजोंको जाननेकी हमार लालसा इस बातका प्रमाण है कि आत्माका स्वाभाविक गु ज्ञान है, अज्ञान नहीं ।

शाश्रत आनन्द (Eternal Bliss)

आत्माके दो लक्षण अमरता और अनन्त ज्ञानपर विचा जो स करनेके बाद अब हम तीसरे गुणपर विचार करते हैं। उपनिषदोंके अनुसार सत् और चित्के बाद आनन्द आत्माव गुण है । दुःखोंका अनुभव करनेवाला व्यक्ति इस बात्रे आत्म कठिनतासे ही खीकार करेगा कि आनन्द आत्माका गुण है। पर थोड़ा-सा विचार इस बातको भी प्रमाणित कर देगा है यहाँ भी वेदान्तका कथन नितान्त सत्य है। वस्तुतः यह मायां ही अपार शक्ति है, जो हमारी बुद्धिपर छा जाती है औ शाश्वत हम सत्यको जान या पहिचान नहीं पाते । यदि कोई मनुष हो सं रो रहा हो तो लोग उसके पास जाकर उसके रोनेका कार पूछते हैं। अतः इससे यह ज्ञात होता है कि दुःख हमारे पह कू लिये स्वामाविक नहीं है अपितु बाह्य कारणसे उसकी उसिर हुई है, अर्थात् दु:ख आत्माका लक्षण न होकर उपलक्षा, मात्र है। एक मनुष्य अपनी स्त्री या किसी घनिष्ठ सम्बन्धी रै। उ मर जानेपर यह अनुभव करने लगता है कि अब संवार उसका अपना कोई नहीं रहा या उसके लिये संसार समाह हो गया । पर थोड़े दिनों वाद उसका शोक या दुःख धीर धीरे कम होकर अन्तमें विल्कुल समाप्त हो जाता है औं अन्तमें वह मनुष्य भी अपनी मृत स्त्री या सम्बन्धीको विस्कृ भूल जाता है। यह दुःख या शोक भी उसी गरम पानी लिये तरह है जो गरम होनेके लिये तो बाह्य उपकरणोंकी आवश्यक रखता है, पर ठण्डा होनेके लिये नहीं। यदि ऐसा ही ^{है है} क्या दुःख भी जलकी उप्णताकी तरह आत्माका उपल्या क्षण नहीं है। अतः यह भी इसी बातको बताता है कि दुःख हमा लिये स्वाभाविक नहीं है। सुख ही स्वाभाविक है, जो दुःखं द्वारा थोड़े समयके लिये दवा दिये जानेपर भी दुःखके समा हो जानेपर फिर उभर आता है।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार हम जीवित रहने और बी प्राप्त करनेका प्रयत्न निरन्तर करते हैं, उसी प्रकार सुर्वि में प्राप्तिके लिये भी हम सदा प्रयत्नशील रहते हैं; अतः मान पड़ेगा कि सुख ही हमारा स्वभाव है। जिस प्रकार पार्नी ग ३६

त प्रका अमरत

गुण है।

तो दुःखं

वाहर पड़ी हुई एक मछली पानीमें जानेके लिये तड़पती और जी-जानसे कोशिश करती है उसी प्रकार हम मुखसे वाहर आ जानेपर मुखमें दुवारा जानेके लिये जी-जानसे प्रयत्न करते हैं। इसी दिशामें एक कदम और आगे बढ़कर जब विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि हम उस मुखकी कामना नहीं करते जो समय और स्थानसे सीमित या परिमित हो, अपितु उस मुखको चाहते हैं, जो निस्सीम, अनन्त और शाश्वत हो। इसल्ये अनन्त, शाश्वत और दुःखसे अमिश्रित आनन्द ही आत्माक स्वाभाविक गुण है।

स्वतन्त्रता

देगा हि अव कल्पना करो कि हमने अमरता, अनन्त ज्ञान और मायाव है औ शाश्वत आनन्द प्राप्त कर भी लिया तो भी क्या हमारी संतुष्टि है मनुष्हों सकेगी ? नहीं; क्योंकि हम भले ही ये सब प्राप्त कर लें पर हमारी यह प्राप्ति दूसरोंकी दयापर आधारित है, तो हमारा व हमारे^{पह} दूसरोंपर आश्रित रहना हमारे लिये दुःखदायी ही होगा। उत्पत्ति दोष हमारा ही होता है पर हम अपने वन्धनोंको न उपलक्षा सकनेकी अपनी असमर्थताके लिये समयको दोषी ठहराते तम्बन्धीर । अतः यदि सम्भव हो सके तो हम किसी भी पदार्थ । संतारा व्यक्तिपर आश्रित न रहकर पूर्णतया स्वतन्त्र रहना चाहेंगे। र समार्थि स्वतन्त्रताकी इच्छा केवल विचारशील कहे जानेवाले ख धीर नहीं होती अपितु सभी जीवधारियोंकी होती । इसी स्वतन्त्रताकी इच्छाको वेदान्तमें 'मुमुक्षा'के नामसे हा गया है। अतएव मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह विव्हुह अता या मुक्तिके लिये सदा प्रयत्नशील रहे। स्वतन्त्रता-पानीक लिये मनुष्यकी यह उत्कट भूख इस वातकी निदर्शक है वश्यक दुःखोंसे मुक्ति पाना ही हमारा स्वभाव है। यह दुःखोंसे ही है कि पानेकी इच्छा या 'मुमुक्षा' आत्माका उपलक्ष क्षण है। :ख हमा

ईशन (अधिकार)

विके समी यह मुमुक्षाकी चौथी सीढ़ी भी अन्तिम नहीं है। यदि अपने मनोभावों, अभिलाषाओं और कार्योंका विश्लेषण और है तो पता चलेगा कि सत्, चित्, आनन्द और मोक्षकी तिः मार्ग में पर्याप्त नहीं है, उसके आगे भी एक और वस्तु है पानेकी हम कोशिश करते हैं। यह बड़ी विलक्षण वस्तु

है जिसकी प्रत्येक कामना करता है। पर यह हमारी विल्क्षण अभिलाषा है क्या ? वह है ईरान करनेकी इच्छा । हम यद्यपि एक ओर स्वतन्त्र रहना चाहते हैं और चाहते हैं कि हम किसीके अधिकारमें न रहें, पर दूसरी ओर हमारी यह भी कामना रहती है कि दूसरोंपर हम अपना अधिकार चलायें और वे सब हमारे कहनेके पीछे चलें। यहाँ देखने योग्य वात यह है कि एक बच्चा भी, जिसका संसारके विषयमें ज्ञान और अनुभव नहींके वरावर है, चाहता है कि माता-पिता उसकी (बच्चेकी) इच्छाके अनुसार चलें। इस नियमके अपवाद कोई भी नहीं हैं। सभी चाहते हैं कि स्वयं स्वतन्त्र रहकर दूसरोंपर शासन करें। इस प्रकार अधिकार या ईरान भी आत्माका पाँचवाँ लक्षण है।

गुणोंकी पूर्णता

अपने चारों ओरके तथ्यों एवं अपने आन्तरिक मनोभावीं-कें व्याख्यात्मक विश्लेषणके वाद हम इस निष्कर्षपर पहुँचे कि सत्, चित्, आनन्द, मोक्ष और ईशन हमारे लिये स्वाभाविक हैं। जलकी शीतताकी तरह ये हमारे आन्तरिक और जन्मजात गुण हैं। ये सब गुण थोड़ी देरके लिये दबाये जा सकते हैं, पर सदाके लिये इन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता । पर हमारा यह अन्तर्द्वेष्ट्यात्मक (Introspectional Analysis) हमें ले कहाँ आया ? इमने अपना विवेचन प्रारम्भ कहाँ किया था और पहुँच गये कहाँ ? हमने अपना विवेचन परमात्मा या अतिमानव (Superman) से शुरू नहीं किया था अपितु अपनेसे ही किया था। वस्तुतः हमने अवतक ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें मनन जरा-सा भी नहीं किया, हम तो अबतक वैयक्तिक आत्मा (Individual Soul) के बारेमें ही कहते रहे। पर हम इसके द्वारा एक आशातीत निष्कर्षपर पहुँच गये। हम चाहे ईश्वरकी सत्ताको मानें न मानें, विचार करें न करें, पर इस बातको अवश्य मानना पड़ेगा कि सत्, चित्, आनन्द, मुक्ति और ईरान, जिन्हें शास्त्रोंने ईश्वरके गुण बताये हैं, हमारी आत्माके भी गुण हैं और हम जाने-अनजाने इन उपर्युक्त गुणोंको जो परमात्मासे सम्बन्धित हैं, अपने अंदर साक्षात् करनेके लिये सर्वात्मना प्रयत्नशील हैं।

(क्रमशः)

भगवत्-तत्व

(लेखक-डा॰ श्रीवासुदेवशरणजी अम्रवाल, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

विश्वमें जो अद्वैत ज्ञानमय शक्ति है उसे ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहा गया है—

वद्ग्ति तत्तत्त्वविद्स्तत्त्वं यज्ज्ञानमन्ययम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दाते॥

भगवत्तत्त्व सर्वातिशायी, सर्वव्यापक नित्य रसरूप है। विष्णुपुराणके अनुसार 'भग' शब्दकी निम्नलिखित परिभाषा पायी जाती है।

पेश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

ऐखर्य, वीर्य या कर्मशक्ति, यश, श्री-लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य-इन छ: गुणोंकी संज्ञा भग है । ये छहों अपने परिपूर्णरूपमें जिस महाशक्तिसम्पन्न परम पुरुषमें निवास करते हैं, वही भगवान् है। इस प्रकारके भगवत्-तत्त्वकी मनुष्यको पदे पदे आवश्यकता है । भगवान् हमें क्यों चाहिये ? क्या हम उसके बिना भी रह सकते हैं ? ये मार्मिक प्रश्न हैं । जीवनके लिये भगवान्की आवस्यकता कहाँ है, इसे एक बार हम समझ लें तो व्यक्ति और भगवान्के पारस्परिक सम्बन्धका एक स्पष्ट रूप हमें ज्ञात हो जाता है। ऊपर कहे हुए भगवान्के जो छ: गुण हैं, वे ही हममेंसे हरेकके जीवनको खच्छ करनेके लिये, उसके मल और अंधकारको दूर करनेके लिये और उसे शक्ति एवं आनन्द देनेके लिये आवश्यक हैं। यदि यह हम जान छें कि भगवानुके इन छ: गुणोंकी सहायताके बिना हमारा काम नहीं चल सकता तो हम हृद्यसे चाहेंगे कि भगवान् हमारे जीवनमें प्रवेश करें और उनके गुणोंका प्रकाश हमें प्राप्त हो। जीवन देवतत्त्व और भूततत्त्वके सम्मिळनका रूप है। देवतत्त्व भगवानुका रूप है और पश्चभूत आसुरी। देव और

टक्करकी भाँति देवों और असुरोंमें भी संप्राम होता रहता असुरोंके साथ भगवान्का संघर्ष अवश्यम्भावी है असुरोंके परास्त हुए विना भगवान्के मङ्गलमय सहस्स्त्र प्रतिष्ठा नहीं हो पाती । जिसने अपने जीवनमें असुरों युद्ध और संघर्षके द्वारा नहीं हटा पाया, वह भगवा उपासनाका अधिकारी नहीं हो सकता । असुरकी पूजा देवतत्त्व या भगवान्की पूजा एक साथ असम्भव है । के को प्राप्त करनेके लिये अंधकारको हटाना ही होगा । प्रायः अंधकारको रखते हुए ज्योतिके पास पहुँचना व हैं । जीवनमें एक सौदा या समझौता करते हुए व चलाऊ नीति पसंद करते हैं । पर उससे असुर छोड़ते नहीं और भगवान् प्राप्त होते नहीं ।

जीवनमें छः प्रकारके असुर या अंधकार हैं। ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अहंकार हैं। शान्त चित्तको ये अपने आक्रमणसे अशान्त देते हैं। रसको बिगाड़कर कुरसमें बदल देते आनन्दको छीनकर दुःखका अनुभव कराते हैं असुरोंका यह आक्रमण हमारे मनपर प्रायः होत रहता है। इनके आनेका न कोई देश है न काल तो हर समय और सब जगह प्रकट हो जाते हैं। ई कैसे जीता जाय, यही मनुष्यकी पुरानी समस्या है आज भी उसके साथ है।

सहायताके बिना हमारा काम नहीं चल सकता तो हम भगवान्के जो छः गुण ऊपर कहे गये हैं वे हि हदयसे चाहेंगे कि भगवान् हमारे जीवनमें प्रवेश करें छः असुरोंको जीतनेमें सफल हो सकते हैं। में और उनके गुणोंका प्रकाश हमें प्राप्त हो। जीवन यह सम्भव नहीं। ईश्वरकी कृपासे जब चित्तमें वैरि देवतत्त्व और भूततत्त्वके सम्मिलनका रूप है। देवतत्त्व उदय होता है तभी कामवासना पूरी तरह हिंदी भगवान्का रूप है और पश्चभूत आसुरी। देव और वैराग्य वह असंगभाव है, जिसमें चित्त विषयोंके रि असुर ये मिलकर नहीं। एहरों। एहरों। प्रकार और असे किसी विषयोंके रि

विष

सुरं

वान

जा ३

च

ए व

सुर

र् व

न्त

ते।

होत

ल

Tè

TE.

रागका मिटना या वैराग्य ही काम-नाराके लिये औषध है। बीतराग कौन।हो सकता है ? जो भगवान्के वैराग्य-गुणकी आराधना करे । स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने महारासके समय अन्तर्धान होकर वैराग्यका विलक्षण परिचय दिया। जिस समय राग अपनी पराकाष्टापर हो, उस समय भी जिसके चित्तमें पूर्ण वैराग्यका समुद्र उमड़ता रहे, वहीं सचा योगी और कामको वशमें रखनेवाला है। काम सृष्टिकी महती शक्ति है । ब्रह्माकी आज्ञासे उसे विश्वमें स्थान मिला है। गीतामें 'प्रजनश्वासम कन्दर्पः', कहकर भगवान्ने कामको अपना स्वरूप माना है। यह है भी यथार्थ । वेदोंमें कामको सृष्टिका मूल कहा है। प्रजापतिके मनमें सर्वप्रथम जिस कामनाका उदय होता है वही काम है । यह विश्व प्रजापतिका कामप्रयज्ञ है। ज्यों-ज्यों इस विश्वकी रचना होती है, त्यों-त्यों प्रजापतिके कामकी पूर्ति करनेवाला यह यज्ञ नये-नये रूपोंमें हमारे सामने आता है । इस प्रकार जो कामरूप महान् राक्ति है वह एक ओर जीवनके छिये आवश्यक है और प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है । दूसरी ओर, वही जीवनका सबसे बड़ा बन्धन है। उसे वशमें करने या मर्यादामें रखनेके छिये वैराग्य ही एकमात्र सच्चा साधन है। कितना भी प्रयत किया जाय, कामका बन्धन वैराग्यके बिना टूटता ही नहीं । परमेश्वरकी सत्ता सर्वत्र अखण्ड होते हुए भी कितनी रागरहित है, इसका स्मरण और अनुभव रखनेसे चित्त वैराग्य-गुणकी ओर उन्मुक्त बनता है । भगवान् श्रीकृष्णने शरद्की प्रफुछित रात्रियोंमें जो महारासकी लील की थी, वह किसके जीवनमें नहीं है। किंतु उसे वैराग्य-सम्पन्न बनाना यह ईश्वरकी शक्तिसे ही सम्भव है।

कोधरूपी महापापी असुर हम सबका परम बैरी है। यह कोध अपने ऊपर तो प्रायः कभी नहीं आता। दूसरोंपर ही कोध उत्पन्न होता है। इसके उत्पन्न होनेका कारण यह है कि हम जितनी कर्मशक्ति या कौशलकी अपेक्षा दूसरोंसे रखते हैं, वह पूरी नहीं हो पाती । तव उसकी प्रतिक्रिया हमारे भीतर क्रोधके रूपमें उत्पन्न होती है । इसके निराकरणका यही सबसे अच्छा उपाय है कि हम भगवान्की अनन्त शिक्तका ध्यान करें । सारे विश्वमें भगवान्के कर्मोंका कितना अपरिमित विस्तार है ! हम सब उन कर्मोंसे लाभ उठा रहे हैं । उसकी तुलनामें मनुष्यका कर्म अत्यन्त सीमित है । हरेक व्यक्ति अपनी सीमा और मर्यादामें कर्म करता है । किंतु भगवान्का जो अनन्त वीर्य या पराक्रम है, उसकी तुलनामें मनुष्यके निजी कर्म या पौरुषकी कोई गिनती नहीं । यह समझकर हमें दूसरोंके कर्मके प्रति सहिण्यु बनना चाहिये । यदि इस खभावको एक बार ग्रहण कर लिया जाय तो क्रोधका कारण मिट जाता है ।

मनुष्यका तीसरा वैरी छोम है। सबके मनमें यह अपना उपद्रव उत्पन्न करता है। जिसके कारण संसारमें हमारा व्यवहार कुछ दूसरे प्रकारका हो जाता है। जहाँ त्याग, उदारता और धनका उत्सर्ग चाहिये, वहाँ हम धन या छक्षीको केवछ अपने ही छिये रोक-कर रखना चाहते हैं। छोमकी वृत्ति कितनी कठिन है। इसका अनुभव हरेकको अपने मनकी छान-बीन करनेसे प्राप्त हो सकता है। जब काम भी योवन वीतनेपर मिट जाता है, तब भी छोमकी वृत्ति क्षीण नहीं होती। छोमको वशमें करनेका एकमात्र उपाय भगवान्की शक्ति छक्षी या श्रीका ध्यान करना है। मनुष्य थोड़े-से सोने-चाँदीके टुकड़ोंके छिये छाछायित रहता है, किंतु ईश्वरकी उस छक्षीकी तुछनामें वह क्या है, जिसकी सत्तासे यह समस्त पृथिवी वसुन्थरा कहछाती है।

मनुष्यका चौथा वैरी मोह है । मोह हमारे आध्यात्मिक व्यक्तित्वकी सबसे कठिन समस्या है । मोह बुद्धिपर छाया हुआ अँघेरेका परदा है । गोसाईजीने रामचिरतमानसमें रावणको मोहका रूप कहा है । गुरुके वाक्यको मोहरूपी अन्धकारके हटानेका साधन कहा गया है— 'भहामोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर ।'

—हृदयमें जब मोह भर जाता है, तब सत्यका दर्शन नहीं होता । मोहके कारण ही मनुष्य विश्रयोंको अपने लिये हितकारी मानने लगता है । मोहको हटानेका एकमात्र उपाय ज्ञान या विवेक है । संस्कृतमें इस विश्रयको लेकर 'मोहराज-पराजय' आदि कई नाटक लिखे गये । उनमें मोह और विवेकको संघर्षका वर्णन है और अन्तमें विवेककी विजय दिखायी गयी है । ज्ञान सूर्य है । उसके उदय होनेपर ही मोहका अन्यकार हटता है ।

मनुष्यका पाँचवाँ वैरी मद है । मद एक नशा है, जो मिल्लिष्कमें छा जाता है और फिर मनुष्य अपने समान किसीको नहीं समझता। सर्वत्र मेरा ही गुण-गान हो, मेरी ही कीर्ति हो, मुझे ही छोग सबसे अधिक मानें, इस प्रकारकी जो वृत्ति है वही मद है । मदको हटानेवाला भगवान्का गुण यश है । ईश्वरका यश सृष्टिके आदिसे सृष्टिके अन्ततक सारे विश्वमें ब्याप्त है । उसकी तुल्नामें मनुष्यका यश नगण्य है । इस अनुभवसे ब्यक्ति अपने मदके नशेसे छुटकारा पा सकता है । जब कभी अपने भीतर मदका संचार हो, भगवान्के यशका ध्यान करना चाहिये । ईश्वरके यशकी महिमा अनादि-अनन्त है और वह सर्वत्र विद्यमान है । मनुष्यका यश तो सीमित और कहीं-कहीं घटने-बढ़ नेवाला है; किंतु भगवान्का यश असीम, नित्य और एकरस है ।

मनुष्यका अन्तिम वैरी अहंकार है। मैं ही सब कुछ हूँ। मेरे समान अन्य कुछ नहीं। यह वृत्ति अहंकार या अभिमान कहलाती है। इसीका एक खरूप मत्सर है। जब मनुष्य दूसरेको अपने साथ स्पर्धा करते हुए देखता है तो उसकी अहंकार वृत्तिको चोट लगती है और वह स्पर्धा करनेवालेसे मात्सर्य या ईर्ष्या करने लगता है। अहंकार एक ऐसा शत्रु है जो किसी मर्यादामें नहीं रहना चाहता । अहंकारके वशमें होकर मनुष्य संसारपर हा जाना चाहता है। मनकी इस कठिन स्थितिसे बचनेहे लिये भगवान्के उस गुणका ध्यान करना चाहिये जो उसका ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य ही ईश्वरता है। जितने व्यक्तियोंके अहं हैं, उन सबका आदि और अन्तिम आधार ईस्वर है। वह ईश्वर ही सब भूतोंके हृदयमें रहकर उनके अलग-अलग अहंका निर्माण करता है। यदि ईश्वरके ऐश्वर्य या प्रभुत्वका सचा अनुभव हम कर सकें ते अपना अहंकार तुरंत गल जायगा । भगवान्के सर्वव्यापी प्रभुत्वमें अपनी क्षुद्र शक्तिको लीन कर लेनेके समान और सुख-शान्ति नहीं है । इसी प्रकार हमें सची भि प्राप्त हो सकती है। ईश्वरका जो खरूप है, उसके जो गुण हैं, उन्हींके एक अंशकी प्राप्ति भक्ति है। भक्तिका अर्थ है---भागधेय प्राप्त करना या हिस्सा बँटाना । जीव ईश्वरके क्षेत्रमें अपना भागधेय प्राप्त कर सके, यही परम सौभाग्य है। जीवका जो चित्त टुकड़े-टुकड़े होका विषयोंमें भटकता है, वह एकत्र सिमिटकर या एकाप्र होकर अपने केन्द्रमें आ सके तो वही भक्तिका लक्षण है। क्योंकि हरेकके केन्द्र या हृदयमें भगवान्की सत्ता है। इस प्रकार जीवनके समुद्धारके छिपे भगवान्की अनिवार्य आवश्यकता है। भगवत्-तत्त्व हमारी समस्त न्याधियोंकी परमौत्रध है।

सबमें प्रभुको देखो



सबका नित आदर करो सबको दो ग्रुचि प्यार। सबके लिये सदा रखो खुला हृदयका द्वार॥ सबसे सत्य वचन कहो करो ग्रुद्ध व्यवहार। सबकी ग्रुभ सेवा करो बनकर परम उदार॥ सबमें निज प्रभुको लखो, सबको दो सम्मान। सबके हितमें रत रहो त्याग सभी अभिमान॥



=== देखता और बह ता है। र्टी रहना रपर छा बचनेके हिये जो

क्तियोंके र ईश्वर उनके ईश्वरके सकें तो

भक्तिका । जीव ाही परम होका

उक्षण हैं।

वं व्यापी के समान वी भक्ति

सके जो

[एकाप्र

नता है। अनिवार्य

ग्राधियोंकी

वेदोंमें शरणागति-महिमा

(लेखक—स्वामीजी श्रीओंकारानन्दजी सरस्वती)

साधनाके मार्गमें शरणागतिका सबसे ऊँचा स्थान है। किसी भी मार्गका साधक क्यों न हो, उसे बिना प्रभक्ते निकट आत्मनिवेदन किये प्रभुप्रसाद प्राप्त ही नहीं हो सकता। साधकको आत्मसमर्पणसे दूर रखनेवाली वस्तु 'अहंकार' है । यही अहंकार साधकका परम रात्र है । यह अहंकार प्रभुका भोजन है । प्रेमदर्शन्में यह बात स्पष्टरूपसे बतलायी गयी है---

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेपित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च । अर्थात् ईश्वरको अभिमान अप्रिय है और दैन्य-नम्र-भाव ही प्रिय है । गोस्त्रामी जीने भी यही भाव-जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे, द्वउ सो श्रीभगवाना।

—द्वारा प्रकट किया है। असावधान साधकमें ् ज्ञान, कर्म, साधना और सिद्धियाँ भी कभी-कभी अहंकार उत्पन्न कर देते हैं। यह चोर अहंकार साधकके हृदय-मन्दिरमें इस प्रकार चुपचाप प्रवेश कर जाता है कि उसे भान भी नहीं होता। यह कपटी चोर मित्रका रूप धारण कर जबतक आत्माका सब धन चुरा नहीं लेता, तबतक दम भी नहीं छोड़ता। यह तो आत्माका सर्वनाश करके भी इटना नहीं चाहता । साधनाके **भारम, मध्य और अन्तमें, कहीं, किसी प्रकार भी यह** दुष्ट अहंकार अपना पैर न जमाने पाये, इसीमें साधक-की सावधानी और विजय है। छोटा-सा अहंकार भी आत्माको प्रमात्मासे पृथक् ही रक्खेगा । प्रभुकी शरण जाना, कायरता नहीं अपितु बुद्धिमानी और वीरता है। महान् ही नम्र हुआ करते हैं। महिकी महानता उसकी नम्रतामें ही है। ईश्वरप्रणिधान साधकका परम हितैषी बनकार उसे अहंकार-जैसे भयंकार शत्रुसे बचा लेता है। प्रभु-शरण ही अन्तिम लक्ष्यतक पहुँचानेका एकमात्र सचा

'अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्'' इन शब्दोंद्वारा चेतावनी दी है और अहंकारको त्याज्य वतलाया है।

प्रमात्मप्रदत्त ज्ञानके भण्डार वेदोंमें शरणागति-का क्या स्थान है ? इस विषयपर विचार किया जायगा। चारों वेदोंमें जहाँ ज्ञान, कर्म और उपासनाका वर्णन है वहीं प्रभुकी शरण जानेका भी आदेश है। विना प्रभुकी शरणके मरण है। वेदप्रतिपादित शरणागति ऋग्वेद (मं० १०। १४२। १) के निम्नाङ्कित मन्त्रमें देखिये—

ओ३म् । अयमग्ने जरिता त्वे अभृद्िि सहसः सूनो नहान्यद्स्त्याप्यम् । भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप विद्यमा कृधि॥

हे (अप्रे) प्रकाशक (अयं) यह (जिरता) भक्त-साधक (त्वे-अपि) तेरे ही सहारे (अभूत) रहता है। (सहसः + सूनो) सबसे बली (अन्यत्) दूसरा कोई (आप्यम्+न+अस्ति) प्राप्तव्य नहीं है। (हिंसानाम्) हिंसकोंका (विद्युम) वज्र इमसे (आरे+अप+आ+कृषि) बहुत दूर कर दे। (हि) निश्चय (ते) तेरी शरण ही (भद्रम्) कल्याणकारी और (त्रिवरूयम्) तीनोंमें श्रेष्ठ है।

भावार्थ-हे प्रकाशखरूप प्रभु ! इस स्तोताको हिंसक काम-क्रोधादिके वज्रसे बचा, ये वज्र कहीं चोट न कर दें। भक्त तेरी शरण आ गया है। तू ही सबसे बळी है। तेरी शरण सचमुच तीनोंमें भद्र अथवा कल्याणकारी है।

मनुष्य इस संसारमें जहाँ कहीं भी नाते जोड़ता है, वे अन्तमें सब टूट ही जाते हैं। जहाँ संयोग है, वहीं वियोग भी है । कोई सम्बन्ध स्थायी दिखायी नहीं देता। मनुष्यकी भाग्य-नैयाको कोई योग्य नाविक भवसागरसे पार लगैया दृष्टिगोचर नहीं होता । दुखी मानव एक सचे मित्र और सहायककी खोजमें है । वह एक स्थायी साधन है। इसीलिये तो नारदजीने भक्त साधनोंको आश्रय चाहता है। वह आश्रयार्थी बनकर सभी

तू

शक्तिशालियोंका द्वार खटखटा आया परंतु किसीने , शरण न दी। कहीं थोड़ी देरके लिये शरण मिली भी, वह अवाध नहीं रही । उस क्षणिक आश्रयमें कुछ ही समय पश्चात दोष दिखायी दिया। परंतु जिज्ञासुको एक निर्दोष आश्रयकी आवश्यकता है। उसने भाई, बहन, पिता, माता, मित्र, सभीका आश्रय प्रहण करके अनुभव किया कि इनमेंसे कोई स्थायी और सुखदायी नहीं है । ये सारे सम्बन्ध झूठे सिद्ध हुए । तब उसके मुखसे सहसा यही वेदवाणी निकली, 'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता' (यजु० ३२।१०)—अरे पागल! वही प्रभु ही तेरा सचा बन्धु, माता, पिता और विधाता है। अब आश्रय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे अन्तमें मिल ही गया। यही प्रभुका चरण ही सर्वाश्रय और सर्वाधार है। इतनी कठिनाइयोंके पश्चात् प्राप्त हुए इस आश्रयको भक्त किसी दशामें छोड़ना नहीं चाहता । वह अपने प्रभुको पुकार-पुकारकर कहने लगा---

अयं अग्ने जरिता त्वे अभूत्।
यह दास अब हर प्रकारसे तेरे ही सहारे रहता है।
इसका अब इस संसारमें कोई दूसरा सहारा ही नहीं
रहा। भट्टा अथवा बुरा, यह तेरा दास जैसा भी हो,
परंतु है तो तेरा ही। तेरे द्वारका एक भिखारी ही।
प्रभु! इसे अपना ले। इसे शरण दे। इस शरणागत
भक्तकी दशा महात्मा तुल्सीदासके शब्दोंमें—

'एक भरोसो एक बल, एक आस विसवास।'
— जैसी हो गयी है। अब भक्त प्रभुका है और
प्रभु भक्तका।

उपर्युक्त ऋग्वेदके मन्त्रमें भी शरणागतिके रहस्यको खोळनेवाळी कुंजी—

भद्रं हि राम्मं त्रिवस्थमस्ति ते।
मन्त्रके इतने शब्दोंमें ही निहित है। यहाँ यह
बतलाया गया है कि तीनों शरणोंमें प्रभुकी शरण ही
सचमुच सर्वश्रेष्ठ है। प्रश्न है—वे कौन-कौन-से तीन

सचमुच सर्वश्रेष्ठ है। प्रश्न है—वे कौन-कौन-से तीन फीका ही है। रस तो प्रेममें ही है। परंतु यह विचित्र प्रकारके शरण हैं, जिनका आश्रय आत्मा ले सकता है? रस प्रमु उन्हींको देनेकी कृपा करता है जो उसके हैं। उत्तर—(१) प्रकृति, (२०) जीवातमाक्षाक्षा (३००) परमात्माती स्वापने हैं। हो सामान जिसने

ये ही तीन प्रकारकी सत्ताएँ हैं, जहाँ जीव सहारा खोजा करता है। जिज्ञासु साधकने प्रकृतिसे सम्बन्ध जोड्का यह निश्चय कर लिया कि यह खयं जड है। यह चेतन की क्या सहायता कर सकती है ? यह तो मायासका है। यह तो मरु-मरीचिकाके समान दूरसे प्यासेको बुलाकर प्यासा ही छोड़ देती है। यह धोखेबाज है। साधक बहुत परिश्रम और गुरुज्ञानद्वारा इसके चंगुल्से निकल भागा है। तब उसने इसका नाम, 'माया-ठगनी। रक्खा है। जीव खामी है, प्रकृति 'ख' है। जीव चेतन है, प्रकृति अचेतन है । उस जडप्रकृतिमें क्रिया, चेष्ट और गतिका आघात यह चेतन जीव ही करता है । अतः दासीके शरण स्वामी क्यों जाय ? तब क्या जीवाता. दूसरे जीवात्माकी शरण जाय ! नहीं । यह भी नहीं ! इससे क्या लाभ ? शरण अपनेसे महान्के जाया जाता है। जीवात्मा तो खयं अल्पज्ञ और ससीम है। रोग, भोग-में पड़ा हुआ जीवात्मा दूसरेको क्या परम सुख देगा ! अविद्या और अन्वकारमें पड़ा हुआ जीवात्मा दूसरे जीवात्मा-को कहाँतक विद्या और प्रकाश दे सकेगा, यह विचार करना चाहिये। जीवात्माको तो उस असीम, ज्ञानके भण्डार, प्रकाशखरूप प्रभुकी खोज है। जबतक उसे वह महासत्ता नहीं मिल जाती, तबतक उसे चैन नहीं। इस न्यप्रता तथा श्रद्धापूर्ण खोजने अन्तमें जीवात्माकी परमात्माके द्वारतक पहुँचा दिया । तत्र उसे पता चल कि यह सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही सबसे बछी और प्रकृति तथा जीवका अधिष्ठाता है। तभी वह अति प्रसन होकर आवेशमें बोल उठा, 'प्रभु ! तेरी ही शरण तीनी में श्रेष्ठ है। अब भक्तकी एकमात्र भक्ति प्रभुचरणोंसे ही हो गयी । उसीकी शरणमें उसे सुख-शान्तिका अनुभव हुआ । भक्ति, बिना प्रेम नहीं । प्रेम बिना सब उर्छ फीका ही है। रस तो प्रेममें ही है। परंतु यह विचित्र रस प्रमु उन्हींको देनेकी कृपा करता है जो उसके हैं।

भाग ३६

रा खोजा

जोड़का

ह चेतन

याखरूप

प्यासेको

बाज़ है।

चंगुलसे

ग-ठगनीः

व चेतन

, चेष्टा

। अतः

जीवात्मा,

नहीं ।

रा जाता

ा, भोग-

देगा !

जीवात्मा-

विचार

ज्ञानके

क उसे

नहीं।

वातमाको

ा चला

र प्रकृति

प्रसन

ग तीनों-

गोंसे ही

अनुभव

ब कुछ

विचित्र

तके ही

न जिसन

अपनेको प्रभुके चरणोंमें डाल दिया है, उसीको प्रभु माताके समान प्यार भी करता है। इस प्रकारकी भक्ति बिना शरणागतिके कहाँ मिल सकती है। भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है। इस सत्यको भक्तराज नारदजीने भी—

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी।

—इन शब्दोंद्वारा स्वीकार किया है। सूत्रकारका कथन है कि तीनों सत्योंमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ भक्तिका साधन शरणागति है।

अव साधकको पता तो चल गया कि परम भक्ति शरणागतिद्वारा प्राप्त हो जाती है। परंतु उसे साधनाके पथमें नाना प्रकारके विन्न और वाधाएँ मिल रही हैं। इस भौतिक जगत्में रहकर साधकको उस अभौतिक सत्ताको प्राप्त करना है। छोकमें विषमता-ही-विषमता दीख पड़ रही है । विषम अवस्थामें प्रमु-प्रेम मिल ही नहीं सकता । ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मत्सर, क्रोधके कारण एक दूसरेका रात्रु हो रहा है। धोखा, ब्यभिचार, अञ्चचिता, असंतोष, विलास, असत्य, प्रलाप और नास्तिकता आदि नाना प्रकारकी पाप-भावनाओंका साम्राज्य है, और इन्हीं परिस्थितियोंमें साधकको साधना करनी है। वह पापके प्रचण्ड पावकके लपलपाती हुई लपटोंसे जला-भुना-सा जा रहा है। उसे एक शीतल छायाकी आवश्यकता है। झुलसते हुए संसारमें वह 'शीतल छाया' कहाँ मिलनेको ? मानसिक चिन्ता और उद्देगकी इस दशामें उसे वेद-वाणी सुननेको मिली— 'यस्यच्छायामृतंंंंंचरे जीव ! तू, जिसकी छाया अमृत-के समान है, उसीकी छायामें जा। बस, इतना संकेत मिलते ही वह श्रद्धालु भक्त ऋग्वेद (२।२७।६) के राब्दोंमें ही बोल उठा, 'यच्छता नो दुष्परिहन्तु राम्मं' प्रभो ! हमें अपनी अबाध शरण दे । तेरी शरणके बिना मरण है। अपनी अमृतख्रूप छत्रछाया हमारे ऊपर फैला दे। अपने ही अमरपथका पथिक बना दे। प्रभो! त्ने खयं ही अपनी वेद-वाणीद्वारा बतलाया है, 'सुगो हि वेपन्था साधुरस्ति' अर्थात् भक्तिद्वारा तेरा

पथ सुगम और उत्तम रूपसे प्राप्य है। जीवन-मरणके काल-चक्रके ऊपर चढ़ा हुआ जीव अनन्त दुः खोंको भोग रहा है। उसे सच्चे सुखका पता ही नहीं है। उसीकी खोजमें वह महात्माओं और संतोंके पास दौड़ रहा है। गुरुजनोंके मुखसे उसने ऋग्वेद (१।१५४। ५)का यह वचन सुना, 'विष्णोः पदं परमे मध्य उत्सः' अर्थात् विष्णुके परमपदमें ही, मधु—अमृतका कृप है। वस, अब साधकको विष्णुके चरणोंतक पहुँचनेकी आवश्यकता है। उन चरणोंका चरणामृत ही उसे सदाके लिये दुः खोंसे छुटकारा दिला सकता है। विष्णुधाम ही सुखधाम है। प्रभुका चरण ही सर्वश्रेष्ठ शरणालय है। गोसाईजीके शब्दोंमें वह साधक उस 'व्यापक, अविगत, गोतीत, पुनीत, मायारहित, सिचदानन्द प्रभुकी शरणकी याचना करता हुआ वार-वार प्रभुके द्वारपर नतमस्तक होते हुए कह रहा है—

भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन मंदिर सुख युंजा। सुनि सिंद्ध सकरू सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥

अब उसे पाप-तापहारी, शरणागितरूप साधनका ज्ञान पूर्णरूपसे हो गया है। उसने प्रभुको ही हर प्रकार पूर्ण पाकर उसीकी शरण लेनेका निश्चय किया है। उसकी श्रद्धा और भक्ति अटल है। वह जान चुका है कि शरणागित ही परम पुरुपार्थ है। उस कृपाल प्रभुका यह स्वभाव है कि वह अपने शरणापन्नका कभी त्याग नहीं करता। शरणागत भक्तको हृदयसे लगा लेता है। उसे अजर कर देता है। अमर कर देता है। शान्त कर देता है। अन्तमें उसी अबाध शरणकी याचना प्रभुसे ऋग्वेद (१।१८।७)के शब्दोंमें—

यसादते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥'

कृपासिन्धुकी कृपा बिना कब यज्ञ मनोरथ होते सिद्ध । दे प्रेरणा शरण-आगतको, भक्तियोगमें हे परिवृद्ध ॥

—करता हुआ, उसीकी प्रेरणा और कृपाकी आशा-में टकटकी लगाये बैठा है ।

CC-0. In Public Domain: COPO OF Rangri Collection, Haridwar

सत्प्रेम—एक दृष्टिकोण

(लेखक-श्रीशिवप्रसादजी शर्मा)

सत्पुरुष ही सत्प्रेम कर सकता है। वह तो केवल कामुक अथवा स्नेण ही होगा, जो प्रेमको वासनामय समझता है। प्रेमका सम्बन्ध सीधे आत्मासे है, प्रकृतिसे नहीं। प्रकृतिका सम्पर्क ही वासनाका उद्देक कराता है। बात-पर-बात आयी तो बृहदारण्यक-उपनिषद्की बात स्मरण हो आयी—'हे प्रिये! स्त्री पतिके लिये पति-को प्यार नहीं करती है। वह पतिके अन्तरस्थ आत्मासे प्रेम करती है। और हे प्रिये! पत्तीके लिये पत्तीको कोई नहीं प्यार करता है। यह पतिके अन्तर-स्थित आत्मासे ही पुरुष प्रेमाचार करता है।' साधारणतः कोई भी प्राणी (स्त्री या पुरुष) अपने प्रियके प्रति अपने सद्भाव अथवा सत्येमका वास्तविक परिचय प्राप्त नहीं कर पाता है, किंतु यह नग्न सत्य है कि उसका प्रेम-पुष्प प्रियकी आत्माके सांनिध्यमें ही प्रकृतित एवं प्रस्फृटित होता है।

जलाशयमें नमककी सूक्ष्म डली विलीन होकर अस्तित्वहीन हो जाती है। यदि मानव-मन हरि-प्रेम-सागरमें गोते लगाकर अपने अस्तित्वको खो दे तो आश्चर्याभास नहीं होना चाहिये। प्रेम-ज्योति प्रखर शक्तिदायिनी है, जिससे मानस-तम तो विनष्ट हो ही जाता है, साथ ही आत्मा इससे प्रकाशित होकर चिदानन्दको प्राप्त करती है। प्रेमके सोपानसे ही ईश्वर-का सामीप्य प्राप्त होता है। आत्माका परमात्मासे सम्मिलन होते ही चिदानन्दानुभूति होती है। इस अवस्थामें, जब कि भौतिक लिप्सा शून्य हो जाती है, यदि कोई उद्बुद्ध रहता है, तो वह है प्राणिमात्रका विवेक। विवेक सदैव प्रहरी बनकर ज्ञानेन्द्रियको सचेष्ट करानेके लिये प्रयक्तशील रहता है; किंतु विवेकहीन मानव सदा इन्द्रिय-लोभ-हेतु अपने ज्ञान-कोषका द्वार लोलपताके लक्ते-पंजेमें आकर बंद कर लेता है और

नैसर्गिक आत्मसुख या संतुष्टिसे विश्वत रह जाता है। न केवल बञ्चक है अविवेक, वरं अभिमान, दम्भ-द्र्णी भी सत्प्रेम-सत्पथगामी मानवके समक्ष सवाध विरोध प्रका करते हैं। नि

क

भ

मीराँने प्रेम-पीयूषके पानेकी इच्छासे ही गिरिष्दे गुणगान करनेमें अपना मान समझा। ठीठामय भगका श्रीकृष्णके किंचित् दर्शनके ठिये गोपियाँ अपने व्याकृ हृदयपर बन्धन ठगानेमें अक्षम सिद्ध हुई । राधाके हृदयब वैकल्य श्रीकृष्णकी क्षणानुपस्थितिमें स्वाभाविक था औ फिर प्रेमकी महत्ताका प्रमाण चैतन्य महाप्रभु भी तो रे सकते हैं । श्रवणकुमारका प्रेम माता-पिताके स्थि जितना अक्षय, प्रगल्भ सिद्ध होता है, उतना ही शान्त धीर भगवान श्रीरामका राजा दशरथके हेतु । भात-प्रेमका स्वच्छ रूप जहाँ ठक्ष्मण दिखा सकते हैं, वहाँ भरत उनसे एक उग आगे खड़े मिळते हैं । जगज्जननी सीताक पति-प्रेम अक्षुण्ण एवं प्राह्य है, तो सती सावित्रीकी आस्मिक आस्था भी पतिके प्रति अतुल्य है ।

ऐहिक अथवा भौतिक दृष्टिकोणसे प्रेमका मृल्याङ्का करनेका तात्पर्य केवल खार्थ अथवा मनोरखन हो सकता है, अतएव हमें बे-बातकी बातमें उलक्षकर इच्छा-पूर्ति साधन दूँदनेक बजाय प्रेमका बीजारोपण करना होगा। प्रेमसे प्रेमका अन्त कभी नहीं होता। जहाँ प्रेमका संवार है, वहाँ घृणाका उदय हो ही नहीं सकता। मानस क्षेत्रमें प्रेम अङ्करित हो, उत्तम है; किंतु पौघेकी अभिवृद्धि के लिये जल-रसकी जितनी आवश्यकता है, उतनी ही प्रकाशकी। कदाचित् आप सोचें कि प्रेमाङ्करकों के सिश्चित किया जा सकता है ! सिहचार-रससे सिंक प्रेम-वृक्ष श्रद्धाका प्रकाश पा अपना मूल दृढ़ प्रेम-वृक्ष श्रद्धाका प्रकाश पा अपना मूल दृढ़ प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ता है।

भ-दपि

ोध प्रकृ

गिरिधरवे

भगवान

वयाकुल

हदयव

था औ

भी तो है

के लि

ो शान्तः

गतृ-प्रेम-

हाँ भरत

सीताका

वित्रीकी

मूल्याङ्कर सकता

श-पूर्तिके

होगा।

ता संचा

मानस

भभिवृद्धि

उतनी ही

को की

से सिर्ण

दृढ़ ए (ईश्वा निहित) खजनहेतु हो अथवा विश्वजन-हेतु, सबका ध्येय फलद ही होगा। आम्र-नृक्ष आम्र-फल ही देगा, कनैल-फल नहीं।

प्रेम निरङ्करा एवं सर्वसरल-प्राह्य है। इसमें आदर-अनादरकी कोई बात ही नहीं छिड़ सकती। भक्त भगवान्से प्रेम करता है और जब भक्तिकी चरम सीमा (Climax) पर वह पहुँचता है, तब संसार (अधिकतर) हसे पागल कह बैठता है। वैसे खामी विवेकानन्दके शब्दोंमें—'यह संसार ही पागलखाना है। कोई धनके पीछे पागल है तो कोई झ्ठी मान-प्रतिष्ठाके पीछे; कोई क्षीके पीछे पागल है तो कोई विद्याके पीछे।' यदि एक भक्त प्रेम-याचनाके पीछे पागल घोषित हो जाता है, तो किसी घृण्य अथवा उपहासास्पद वातावरणका उदय नहीं होना चाहिये।

रही बात आस्था और विश्वासकी । तो इसके लिये प्रेमीजन कभी चिन्तित नहीं होते। आकाशमें थूकनेवालेपर छींटा पड़ ही जाता है । यदि कोई नास्तिकताका सुप्रचार करे ही तो उसका भगवान् भला करें । जो 'सत्य' है, वह 'शिव' भी और जो 'शिव' होगा, वह सुन्दर भी—निस्संदेह, नि:शंक । परम पिता परमेश्वरकी अनुकम्पासे, किसका बंजर हृदय है, जो रस-प्रवित

नहीं होता और श्रेद्धा-आस्थाका पौथा उगानेके अयोग्य रहता है ? आत्मबल एवं आत्मसंकल्पके द्वारा आस्थाका आविर्माव हो सकता है । आस्थारहित प्रेम अवरेण्य है और प्रेमकी संज्ञासे हीन है । पाश्चात्त्य कथन— Love is God (लव इज गॉड-प्रेम ईश्वर है)—का यहाँ उल्लेख करना असंगतिपूर्ण न होगा ।

सौन्दर्यमें आकर्षण-शक्ति होती है, इसीलिये वाटिका-की नवल सुकोमल अर्द्ध-प्रस्फटित पुष्प-कलिका बरबस नयनोंको आकृष्ट कर लेती है। ऐसा क्यों होता है ! सिर्फ इसिलिये कि परमेश्वर खयं सुन्दर है—जो आकर्षक है। और 'सुन्दरे कि न सुन्दरम् !' (दृष्टि-आक्षेप स्नी-पुरुषके बाह्य सौन्दर्यपर भी होता है, वहाँ भी ईश्वरकी ही महिमा है, किंतु मूर्ख-मन प्रकृति-सम्बद्ध वासनातक ही सीमित रहता है।)

सद्भावनाओंसे सत्प्रेमकी ओर अभिमुख आत्मा परमात्माके संनिकट है। जो प्रेमका सच्चा आराधक है, वह ईश्वरका महान् भक्त है और जिसमें ईश्वरभक्तिका पारावार है, उसका मानस प्रेममय होगा ही। घृणाका जन्म तो अधम प्रकृतिकी क्षुद्रात्माके मनमें ही हो सकता है। सत्पुरुष सदैव सत्प्रेमोपासनामें निर्वाध छिप्त होकर भगवान्के कोमल कमल-पादकी सेवा करता है।

तुम्हीं अपने सुख-सदनमें रहते हो

तुमने जो कहलाया मुझसे वही कहा मैंने अविकल ।
तुमने जो करवाया मुझसे वही किया मैंने निइछल ॥
तुमने जो सिखलाया मुझको सीखा मैंने वही सकल ।
तुमने जो दिखलाया मुझको देखा मैंने वही अकल ॥
यह जो कुछ भी कहा, किया, सीखा, देखा मैंने प्रियतम ।
सो सब तुमने ही अपनेमें अपनी की लीला उत्तम ॥
मन-मंति कैसे होते मुझमें, जब मैं ही हूँ नहीं स्वयम् ।
बना तुम्हारा ही सुख-सदन तुम्हीं इसमें रहते हरदम ॥



いるからかんでんでんかん

वर्तमानमें गीताकी उपादेयता

(लेखक—वैद्य श्रीज्ञाननिधिजी अम्रवालः आयुर्वेदाचार्यः)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥

जगनियन्ता लीलामय भगवान् अपने विविध विचित्र विमोहित करनेवाले चरित्रोंको प्रदर्शित करनेके लिये जव लीलाभूमिमें प्रकट होते हैं, तब उनके खरूपका सम्यक ज्ञान उनके कार्य और क्रियाशक्तिको देखकर अनुमानसे विज्ञजन ही कर सकते हैं। भगवान्के चौबीस अवतारों-मेंसे मुख्यतया रामावतार एवं कृष्णावतारका ही चित्र-विचित्र विशिष्ट वर्णन उपलब्ध होता है । रामावतारमें भगवान् रामने मर्यादा-पुरुषोत्तमकी भूमिकाका अन्ततक सर्वांशेन निर्वाह किया है। पर भगवान् श्रीकृष्णने तो बाल्य, पौगण्ड, कैशोर, युवावस्था आदि सव अवस्थाओंका चरित्रचित्रण विशेष वैशिष्टयको लेकर किया है। यहाँतक कि जगह-जगह 'मैं भगवान् हूँ' इस प्रकारका स्पष्ट उद्घोष भी अज्ञजनोंकी मोहनिद्राको भंग करनेके लिये किया है । बाल्यावस्थामें जो नटवरनागर अत्यन्त नटखट थे, वे ही योगेश्वर श्रीकृष्ण परम गम्भीर वनकर गम्भीर परिस्थितिमें, महाभारतके रणाङ्गणमें, मरने-मारनेके लिये तैयार, रणकी साज-सज्जासे संयुक्त, अंठारह अक्षौहिणी सेनाके सम्मुख, अठारह दिनतक चलनेत्राले महाभारतके विनाशकारी युद्धके समय अठारह अध्यायवाली प्रम गम्भीर, परम गहन, भाव-अर्थबहुल, योगमयी गीताका उपदेश करते हैं।

प्रायः पाँच हजार वर्ष पूर्व खयं भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्त, सखा अर्जुनको कुरुक्षेत्रके युद्धक्षेत्रमें कर्तव्य, ज्ञान, भक्तिका जो दिव्य उपदेश दिया था वही श्रीमद्भगवद्गीताके रूपमें संकठित है। कर्म, ज्ञान और भक्ति-योगका जितना अनुपम दिग्दर्शन गीतामें है उतना अन्य किसी प्रन्थमें उपलब्ध नहीं होता। वस्तुतः गीता वैदिक- दर्शन एवं संस्कृतिकी बहुम्स्य सम्पत्ति है। गीत अद्यावधि करीब १३०० टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी। थी, विश्वके कोने-कोनेकी प्रमुख भाषाओंमें इसका अनुवादा मं, चुका है पर तो भी महर्षि व्यासद्वारा प्रथित इस रहस्य प्रम्थकी भावप्रन्थियोंका उद्प्रन्थन सम्यक्तया नहीं। पार्या है; क्योंकि गीताके श्लोक दीखनेमें तो बहुत सा एवं भाषामें हैं, परंतु उनका आशय इतना गूढ़ और गर्म हो कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी अन्व नहीं आता। नित्य नूतन-नूतन भाव जाप्रत् होते हें है। गीतामें एक भी शब्द निरर्थक नहीं है। प्रके शार्व सम्बन्ध है।

महाभारतका युद्ध केवल दो पक्षोंका ही युद्ध नहीं। अपितु अधर्म, अन्याय और अनीतिके विरुद्ध धर्म, व और नीतिका युद्ध था। उस समय धर्म संकटमें थ सर्व नीति और न्यायकी मर्यादा नष्ट हो गयी थी। यदि अई ही ने अधर्म और अन्यायके विरुद्ध युद्धके लिये प्रस्तुत व होता तो विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती। अर्जुन है है, बन्धु-बान्धवों और परिजनोंके मोहसे त्रस्त होकर, कर्त हुआ पथसे विचलित हो रहा था, तब भगवान् श्रीकृष्णने ई नेता धर्म और कर्तव्य-पथपर लानेके लिये गीताका मार्मि अपने उपदेश दियाथा। इतना ही नहीं, भक्तके कल्याणके विव अभीर

गीता ज्ञानका अथाह समुद्र है। रत्नाकर सर्ष् जिस प्रकार असंख्य अपरिमेय रत्न परिपूर्ण हैं उसी प्रविधार गीता भी ज्ञानरतोंका अगाध सागर है। जिस प्रविसाधन महोद्धिमें गहरा गोता लगानेसे रत्नोंकी प्राप्ति होती कौरा उसी प्रकार गीताके ज्ञानसागरमें डुबकी लगां जिज्ञासुओंको नित्यन्तन निरन्तर विलक्षण भावरत्नां की उपलब्धि हो सकती है। गीताकी ज्ञानगङ्गामें अवगां करनेसे जन्म-जन्मान्तरोंकी संचित अज्ञताजनित अघराशिका समुलोन्मूलन हो जाता है।

गीता-प्रन्थकी उपादेयता महाभारतकी रणभूमिमें जितनी । गीता चिकी। भी, उससे कहीं अधिक आज विश्वकी विषम परिस्थितियों-अनुगर। में, चारों ओर विश्वयुद्धके लिये तैयार खड़ी विनाशकारी त रहस्स विभीषिकाओंको लेकर है। आजका जनमानस आर्थिक, । नहीं पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, स्नायविक बहुत सा एवं चारित्रिक दुर्बछताओंसे जर्जरित हो रहा है। सब छोग और गर्भ शान्तिकी खोजमें इतस्ततः दौड़ रहे हैं, परंतु शान्ति भी अ अन्यत्र तो है नहीं । वह तो अपने स्वयंमें ही विद्यमान होते हैं है। भाव ही तो है। दूसरोंको सुख पहुँचाना ही तो । प्रके शान्तिका पथ है।

> भुअते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता ३।१३)

द्ध नहीं। धर्म, र कितनी अच्छी बात है। यह याद रहे तो खयं तो कटमें ॥ <mark>सुखी रहे ही, दूसरे</mark> भी सुखी हो जायँ। संघर्षका नाम यदि औं ही न रहे।

प्रस्तुत ग गीता केवल धर्ममय उपदेश देनेका प्रन्थ ही नहीं अर्जुन है, कर्मक्षेत्रमें कर्मकी भावना जाम्रत् करनेके लिये दिया र, कर्त हुआ दिव्य उपदेश है। यही कारण है कि राष्ट्रके सर्वमान्य कृष्णने ^इनेता कर्मयोगी लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्वीजीने का मा^{हि}अपने पथप्रदर्शकके लिये गीताको ही अपनाया। इसीसे याणके ^{हिने} अपने उद्देश्यमें सफल हुए। भारत आजाद हो गया और किसीसे वैर भी नहीं रहा।

तर सम आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग करके सिद्धि उसी ^{प्रबंऔर} असिद्धिमें समान भाव रखकर कर्म करना ही जस प्र^{क्}साधनकी सफलता है और इसे ही 'योगः कर्मसु प्ति होती कौशलम्' कहा है। और भी कहा है—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्तवा करोति यः L लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ (गीता ५। १०)

भृतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति । तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ (गीता १३।३०)

विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने । दर्शनस्पर्शनद्राणभोजनश्रवणादिषु न तथा वध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् । प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः॥ (श्रीमद्भागवत ११ । ११ । ११-१२)

इस प्रकार स्थान-स्थानपर कहा है । जो पुरुष सव कर्मींको परमात्मामें अर्पण करके और आसक्तिको त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जलमें कमलके पत्तेकी भाँति पापसे छिप्त नहीं होता। अर्थात् जब मनुष्यकी कर्तव्य-कर्ममें आसक्ति नहीं होगी और फलकी इच्छा नहीं होगी तो पाप वनेगा ही कैसे ? उसकी सव क्रियाएँ स्रतः सम्पन्न होती हैं, उसे उन क्रियाओंका अभिमान नहीं होता।

ज्ञानयोगमें मन, इन्द्रिय, शरीरके द्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर, एक सचिदानन्द्घन प्रमात्माके सिवा अन्य किसीके अस्तित्वका भास न होना इस प्रकारका भाव रहता है ।

सींघे शब्दोंमें यह भी कहा जाता है कि-धारणापूर्वकोऽकर्तृत्वानुभवो ज्ञानयोगः। धारणापूर्वक आत्माके अकर्तृत्वका अनुभव ही ज्ञान-

इस प्रकार ज्ञानयोग और कर्मयोगमें अहंकार एवं आसक्तिको छोड़नेपर जोर दिया गया है। अहंकार और आसक्तिको छोड़नेसे सब प्रकारके विवादोंका समाधान खतः सम्पन्न हो जाता है । आज जो युद्धकी विभीषिकाएँ विश्वके चारों ओर मँडरा रही हैं, वे अहंकार और आसक्तिको लेकर ही हैं। कुछ लोग साम्यवादको श्रेष्ठ मानते हैं और हिंसाके जरिये बलपूर्वक उसका प्रसार करना चाहते हैं । कुछ लोग पूँजीवादका

3-

लगा

मावरतरा

में अवगी

योग है।

उर

यः

37

रा

अ

Į

समाजवादकी आड़ लेकर प्रचार चाहते हैं। इस प्रकार अहंकार और आसक्तिको लेकर आज लोक-मानसका संतुलन अस्त-व्यस्त है।

गीताका साम्यवाद अपने ढंगका अन्ठा है। वर्तमानके संघर्ष तो वैयक्तिक सत्ताके लिये हैं। वैयक्तिक स्वार्थोंके सामने सामाजिक हितोंका ध्यान नहीं रहता। मैं और मेरापन हटाकर, व्यष्टिको छोड़कर समष्टिको ध्यानमें रखकर अहंकार और आसक्तिका त्याग करके कर्तव्य-कर्म किया जाय तो विशुद्ध रूपसे समाजकी सेवा हो सकती है। इसीका नाम समाजवाद है। वर्तमानका समाजवाद और साम्यवाद अर्थप्रधान है, इसमें हिंसाका आश्रय भी ले लिया जाता है। पर गीताके साम्यवाद में तो यह है—

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमईति। आत्मीपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं सयोगी परमो मतः॥

आवश्यकतासे अधिक जो अपना मानता है उसे दण्ड देने योग्य कहा गया है। अपनी तरह दूसरोंके सुख-दु:खोंको भी जो समझता है वह साम्यवादी है।

'समत्वं योग उच्यते।' इसमें हिंसा, प्रतिस्पर्धा के ईर्ष्याको कहीं भी स्थान नहीं।

इस प्रकार गीता-तत्त्वसे प्राप्त विवेक और वैराव जो काम हो सकता है वह अन्य किसी उपायसे सा नहीं । इसीलिये पाश्चात्त्य अर्वाचीन विचारकोंका भी » भारतीय आध्यात्मिकताकी ओर आकर्षण होने लग है । आध्यात्मिकतासे ही अपने अंदर छिपे का क्रोध, लोभ—इन तीन रात्रुओंपर विजय पायी जा सक है। अहंकारको छोड़नेसे प्राप्त विवेकके द्वारा है आसक्तिको छोड़नेसे प्राप्त वैराग्यके द्वारा इन तं शत्रुओंको जीता जा सकता है। मृत्युके अन्तिम क्षण भी इन काम, क्रोध, लोभको पराजित कर दिया व तो सर्वांगीण शास्वती शान्ति प्राप्त हो सकती है परम शान्तिकी प्राप्ति ही गीताका लक्ष्य है और ब मानव-जीवनकी चरम अनुभूति है । इसके हि आवश्यकता है गीताके पठन-पाठनके साथ-साथ सं आधारपर अपना जीवन बनानेकी । यही गीताका ज्ञानर परमात्मा सहज प्रस है। इसीसे सर्वभूतहृदयस्थ हो सकते हैं।

में भगवान्के आनन्दसागरमें इवा रहता हूँ

मेरे मन-बुद्धि अगवान्के समर्पित होकर उन्होंके मन-बुद्धिके रूपमें परिणत हो गये हैं। अतएव ही द्वारा अगवान् ही सोचते हैं, अगवान् ही निश्चय करते हैं तथा अगवान् ही अपनेको अभिन्यक करते हैं ये अगवान्की अपनी ही ज्ञानधाराके प्रकाशके यन्त्र वन गये हैं। मैं भी अगवान्के समर्पित होकर भगवा की ही खेलनेकी वस्तु वन गया हूँ, मेरे द्वारा वे ही जब जो चाहते हैं, करवाते हैं; जब जो देना-लेना वाह होती हैं सो देते-लेते हैं। मुझे न हर्ष होता है, न उद्देग; न राग होता है, न वैराग्य; न कामना होती हैं निष्कामना। मैं सदा अगवान्के अलौकिक अनन्त आनन्दसागरमें हूबा रहता हूँ। मेरा 'मैं' अब अगवान्द्र अपना क्षुद्र सीमित रूप सदाके लिये खो चुका है।

गोस्वामी तुलसीदासजीका 'शकुनविचार'

(लेखक-श्रीवलरामजी शास्त्री एम्०ए०, ज्यौतिषाचार्य, साहित्यरत्न)

शकुनशास्त्र च्यौतिष फलितका एक विशेष अङ्ग है।
गणित च्यौतिषके अठारह आचार्य माने गये हैं, जिसका
उल्लेख च्यौतिषके अन्यान्य सिद्धान्तादि प्रन्थोंमें मिलता है।
उन आचार्योंमें भगवान् सूर्य और पितामहसे लेकर यवनाचार्य
आदि हैं। शकुनशास्त्रके दस आचार्य हैं। शकुनका विवेचन
यत्र-तत्र वाल्मीिक-रामायण, महाभारत और अन्यान्य पुराणोंमें
अत्यन्त विस्तारके साथ मिलता है। शकुनशास्त्रके आदिम
आचार्य तो भगवान् शंकर ही माने गये हैं। आचार्य वसन्तराजने लिखा है—

अत्रिगर्गगुरुगुक्रविश्वव्यासकौत्सश्चगुगौतममुख्याः । ज्ञानिनो मुनिवरा हितभावात् संविदं निजगदुः शकुनानाम् ॥ वेदाः पुराणानि तथेतिहासाः स्मार्तानि शास्त्राणि तथापराणि । सत्याधिकं शाकुननामधेयं ज्ञानं समस्तानि समाश्रितानि ॥ स्वयं त्रिनेत्रो भगवान् गणानासुपादिशच्छाकुनमुत्तमं यत् । केन प्रकारेण तद्प्रमाणं फळाविसंवादि वदन्ति जिह्माः ॥ (वसन्तराजशाकुन प्र० स०)

शकुनशास्त्रके अध्ययनसे पता चलता है कि आचार्योंने प्रारम्भमें मानव-जातिके ग्रुभ और अग्रुभ फल-विचारके लिये 'राकुन' (पक्षियों)के द्वारा फल-विचार प्रारम्भ किया। शकुन पक्षीका पर्यायवाची नाम है। पक्षियोंके उठने, बैठने, पंख फैलाने, चारा भक्षण करने आदि गति-विधियोंके आधारपर ग्रुभ-अग्रुभ-विचारकी प्रणाली प्रचलित हुई। पक्षियोंमें काकः खंजन, चाप (नीलकण्ठ), चील आदि विशेषरूपसे शकुन-रानके लिये उपयुक्त प्रमाणित हुए । शकुन-विज्ञानकी उस प्रणालीमें विकास होने लगे और रानै:-रानै: पक्षियोंके पश्चात् पद्मुओंके व्यवहारोंसे और वादमें मानव-जातिके अङ्गस्फरण आदिसे राकुन-विचार होने लगा। शकुन-विचारकी प्रणाली केवल भारतमें ही नहीं, अपितु समस्त एशिया और यूरोपमें पचिलत हुई । जिस प्रकार भारतकी सभ्यता अन्यान्य देशोंमें विकसित हुई, उसी प्रकार भारतकी अन्यान्य प्रणालियाँ भी फैलती गर्यो । 'शकुन-विचार-प्रणाली'का भी ऐसा ही इतिहास है। भारतके आचार्योंने 'न्यौतिष-विज्ञान' (फलित) के आधारसे अनुसंधानपूर्वक राकुन-शास्त्रपर विचार किया है । भगवान् शंकरकी कृपासे शकुनशास्त्रका ज्ञान अन्यान्य

आचार्योंको प्राप्त हुआ । शकुन-शास्त्रका एक मङ्गलमय इतिहास है; पर यहाँपर उस इतिहासपर कुछ लिखना आवश्यक नहीं है; यहाँ तो केवल महाकवि गोस्वामी तुलसीदास-जीद्वारा 'मानस'में प्रयुक्त शकुनके कुछ उद्धरणोंपर ही पाठकों-का ध्यान आकृष्ट करना अभिष्रेत है । मैं भानस-मर्मज्ञ तो नहीं हूँ, किंतु च्यौतिषका विद्यार्थी रहा हूँ, अतः पाठकोंका ध्यान इधर आकृष्ट करना उचित समझता । मानसके रचयिताने 'मानस-निर्माणमें 'नानापुराण-निगमागमसम्मतं यद्गामायणे निगदितं कचिद्न्यतोऽपिः लिखा उसी आधारपर महाकविने शकुन आदि अनेकों विषयोंका उल्लेख 'मानस'में कर डाला है । संस्कृत महाकवियों-में सर्वप्रथम आदिकवि महर्षि वाल्मीकिजीने अपने आदि-काव्य वाल्मीकिरामायणमें तथा महर्षि व्यासजीने अपने महाभारत एवं अन्यान्य पुराणोंमें शकुन-वर्णन करके शकुन-विचार-धाराको प्रोत्साहित किया है । हिंदीके महाकवि जायसीने भी 'पद्मावत' महाकाव्यमें शकुनका वर्णन विस्तारके साथ किया है । स्वनामधन्य महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजीसे भी यह मनोरञ्जक और भारतीय परम्पराका प्रतीक शकन-विचार-प्रकरण अछूता न रहा । 'शुभ शकुन' और 'अशुभ शकुन' दो प्रकारके उत्तम और निकृष्ट फलदायक शकनोंका विभाजन साधारणतया माना जाता है; परंतु भारतीय आचार्योंने शकनको तीन खण्डोंमें रक्खा है। अर्थात् शकन तीन प्रकारके होते हैं--(१) क्षेत्रिक, (२) आगन्तुक, (३) जाङ्घिक। 'क्षेत्रिक' शकुन वह है जो पूर्वयोजनाके अनुसार देखा जाय । ऐसे शकुन राजाओं और महाराजाओं-की यात्राओंमें पूर्वयोजनाके अनुसार उपस्थित किये जाते थे। (२) 'आगन्तुक' शकुन वह है जो यात्राके समय अपने आप उपस्थित हो जाय। (३) तीसरे प्रकारके शकुनको 'जाङ्घिक' शकुन कहते हैं । जाङ्घिक शकुन वह है जो यात्राके समय अपने-आप वामभागमें या दक्षिणमें उपिखत हो जाता है। गोस्वामीजीने तीनों प्रकारके ग्रुभ शकुनोंको एक साथ भगवान् श्रीरामकी 'वारात-यात्रा'के समय उपस्थित किया है। ऐसा क्यों न होता । भगवान् श्रीरामके ग्रुभ-विवाह-सम्बन्धी वारातकी शोभायात्रामें यदि ग्रुभ शकुन न उपस्थित होते तो श्कुनोंका नाम ही निरर्थक हो जाता । इस प्रसंगमें गोस्वामी-

ाएव इति करते हैं भगवार केना चार्ट

होती है।

भगवर्ष

भाग ३।

पर्धा औ

वैराष

रसे साः

ता भी अ

लग ग

उपे का

जा सक

द्वारा अ

इन ती

म क्षण

दिया इ

त्ती है

और व

सके हि

नाथ उस

मा ज्ञानय

हज प्रस

जीने एक दोहेके आठ चौपाइयोंके अन्तर्गत तीनों प्रकारके राकुनोंका निर्देश कर दिया है।

बनइ न बरनत बनी बराता । होहिं सगुन सुंदर सुमदाता ॥ चारा चाषु बाम दिसि लेई । मनहुँ सकल मंगल कहि देई ॥ दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरसु सब काहूँ पावा ॥ सानुकूल बह त्रिविध बयारी । सघट सबाल आव बर नारी ॥ लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा । सुरमी सनमुख सिसुहि पिआवा॥ मृगमाला फिरि दाहिन आई । मंगल गन जनु दीन्ह देखाई ॥ छेमकरी कह छेम बिसेषी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी ॥ सनमुख आयउ दिध अरु मीना । कर पुस्तक दुइ विष्र प्रवीना ॥

मंगरुमय कल्यानमय अभिमत फरु दातार। जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक वार॥

महाकवि गोस्वामीजीने समस्त शुभ शकुनोंको एक साथ भगवान् श्रीरामकी बारातके सम्मुख उपस्थित कर दिया। अब आप देखें कि भारतीय आचार्योंके कथनानुसार गोस्वामी-जीके सभी शकुन तीनों प्रकारके शकुनोंमें विधिवत् कैसे उपस्थित हो जाते हैं—

१-क्षेत्रिक शकुन

(सघट सबाल आव बर नारी ।'
 (सुरमी सनमुख सिसुिह पिआवा ॥'
 (सनमुख आयउ दिंघ अरु मीना ।
 कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥'

श्रीरामकी बारातयात्रा थी। ग्रुभ शकुन उपस्थित करनेके लिये मुन्दिर्यों अपने अपने बचोंको गोदमें लेकर और जलभरा घड़ा लेकर बारातके सम्मुख खड़ी हो गयीं। (आज भी हिंदुओंकी बारातयात्रामें यह प्रथा प्रचित्त है। जलभरा घड़ा लेकर मुन्दर वस्त्र धारण करके औरतें बारातकी अगवानी करती हैं या द्वारचार—द्वारपूजाके समय द्वारपर उपस्थित रहती हैं।) गौका सम्मुख बछड़ा पिलाना तथा दिध और मछलीका दर्शन भी अत्यन्त ग्रुभद माना गया है। दो ब्राह्मणोंके हाथमें पुस्तकें हों और उनका दर्शन यात्राके समय हो जाय तो यात्रा अवश्य ग्रुभ फलदायक हो जाती है। कुछ लोग पूर्वयोजनाके अनुसार उपस्थित किये जानेवाले शकुनोंको महत्त्व नहीं देते; परंतु ऐसा देखा गया है कि मन प्रसन्न होनेपर यात्रा करनेसे फलकी सिद्धि निश्चय होती है। शकुन-विचार तो आधुनिक विचारधाराके अनुसार भी मनोविज्ञानसे

सम्बन्ध रखता है। मनको प्रसन्न करनेके लिये यात्राके सम्बन्ध रखता है। मनको प्रसन्न करनेके लिये यात्राके सम्बन्ध शिक्षा कराये जाते थे। भगवान् श्रीरामके बारात-वापसीमें परिछनके समय ग्रुभ शकुनसूचक पद्यार्थ सजाकर रक्खे गये थे, उनसे मधुर-मधुर सुगन्ध निकल्प रही थी। (देखिये, मानस दो० ३४५-४ बालकाण्ड) सगुन सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी।

शकुनसूचक वस्तुओंकी गन्धसे सुगन्धित वायुमण्डले कारण अपने आप अनेकों ग्रुभ शकुन उपस्थित होने लगे—

होहिं सगुन बरषिं सुमन सुर दुंदुभी बजाइ । बिबुधबधू नाचिहं मुदित मंजुरु मंगरु गाइ॥ (मानस, बाल० ३४७)

'क्षेत्रिक राकुन'के समर्थनमें महाकवि जायसीने भी पद्मावतमें लिखा है—

भरे कलस तरुनी जल लाई । दहिक ले ग्वालिनि गोहराई। मालिनि आव मीर लिए माथे।' (पद्मावत)

लोककवि भड़ुरीने तो गोस्वामीजीके शकुनका अनुकरण ही कर लिया है—

नारि सुहागिन जल घर कावें। दिध मछली जो सनमुख आवें॥ सनमुख धेनु पिआवें बाछा। यही सकुन है सबसे आछा॥

२-आगन्तुक शकुन

गोस्वामीजीने 'आगन्तुक राकुन' (जो अपने-आ अकस्मात् यात्राके समय उपस्थित हो जाता है) का उल्लेख सुन्दर ढंगसे श्रीरामकी वारातके सामने सबको अवलेकि कराया।

चारा चाषु बाम दिसि हेई।
मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥
नकुल दरसु सब काहूँ पावा।
होवा फिरि फिरि दरसु देखावा॥

ये शकुन श्रीरामकी बारात-यात्रामें अपने-आप उपस्थित होकर शुभ और मङ्गलमय लक्षण उपस्थित करते हैं। महाकवि जायसीने भी 'आगन्तुक शकुन' का उल्लेख महाकाव्य पद्मावतमें किया है।

खंजन बैठ नाग के माथे। कोआ दरस आइ दिखराई॥

(पद्मावत

सं

संख्या ३]

के सम्ब श्रीरामके

गाग ३६

क पदार्थ निकट ड)

व रानी॥ प्रमण्डलके लगे—

। इ ॥ २ ३४७) सीने भी

गोहराई। पद्मावत) अनुकरण

गपने-आ उल्लेब गवलोकिक

उप्रिक्त रते हैं। उल्लेख

पद्मावत

लोककवि भडुरीने भी आगन्तुक शकुनपर अपना उल्लेख उपस्थित किया है—

चलत समय नेउरा मिल जाय। लोआ फिरि फिरि दरस दिखावै॥ महुर रिषि यह सगुन वतावै॥

३—जाङ्घिक शकुन

जाङ्किक शकुन यात्रामें दाहिने या वामभागमें या ग्रामके अन्तमें या नगरके अन्तमें अकस्मात् उपस्थित हो जाता है। गोस्वामीजीने लिखा है—

मृगमाला दाहिन दिसि आई। मंगलगन जनु दीन्हि देखाई॥ छेमकरी कह छेम विसेषी। स्यामा वाम सुतरु पर देखी॥

महाकवि जायसीने भी जाङ्घिक शकुनका उल्लेख किया —

दहिनें मिरिग आइ वन धाए । प्रतीहार बोला खर बाँए ॥ बिरिख सँवरिया दिहने बोला । बाएँ दिसा चाषु चिर डोला ॥ वाएँ अकासी घौरी आई । · · · · · (आकासी=चील) बाएँ कुररी दिहने कूचा । · · · · · · (कुररी=टिटिहरी) (कूचा=क्रोंच)

कृषक पण्डित भड्डरीने भी लिखा है—या अनुकरण किया

वाम भाग चारा चषु खाय।। बाएँसें दहिने मृग आवै।।

गोखामीजीने श्रीरामचन्द्रकी वारात-यात्रामें शकुनोंका उल्लेख करके उनके वास्तविक रूपको भी व्यक्त कर दिया है। ब्रह्मा ही सबको ग्रुम और अग्रुम कर्मोंका फल विभिन्न रूपमें देते रहते हैं। वे ग्रुम और अग्रुम कर्मफल ही शकुनके रूपमें उपस्थित होते हैं। इस तथ्यको शकुन-शास्त्रके आचार्योने भी माना है।

पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म देविमिति सम्प्रचक्षते। उद्यमेन तदुर्पाजतं तदा देवमुद्यमवशं न तत्कथम्॥ तान्निरूप्य शकुनेन पूरुषः पूर्वजन्मपरिपाकमायतौ। संचरेत्सु चिरमात्मनो हितं चिन्तयन् पुरुषकारतत्परः॥

(वसन्तराजशाकुन १ । २२-२३) ग्रुभ शकुन ब्रह्माके संकेतपर चलनेवाले हैं, यहाँ ब्रह्माके पिताका ही मङ्गलमय कार्य सम्पन्न होने जा रहा था; अतः शुभ शकुन मारे आनन्दके नाचने लगे, अर्थात् अपने-आप प्रत्यक्ष होकर बारात-यात्रामें उपस्थित हो गये।

> सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे त्रिरंचि हम साँचे॥

भगवान् श्रीराम लोक-कल्याणके लिये नरचरित कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीके अभिषेककी तैयारी हो रही थी, उधर देवताओंके मनमें कुछ और ही भावना जायत् हो रही थी। क्या होनेवाला था, इसे तो प्रभु खयं जानते थे, परंतु लोकदिखावेके लिये शुभ-सूचक शकुन प्रकट होने लगे। गोस्वामीजीने लिखा है—

्सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवत्र बघावा॥ राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥ पुरुकि सप्रेम परस्पर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥ भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति मेंट प्रिय केरी॥ भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥

राम-सीताके अङ्ग-स्फुरणसे ग्रुभ-शकुन प्रकट हो रहें थे। लोगोंने समझा होगा कि राज्यामिषेकके ग्रुम लक्षण हैं; परंतु श्रीरामने उसे भरत भाईके आगमनकी ग्रुभ सूचना माना था। अङ्गस्फुरणसे ग्रुभ-अग्रुभ शकुनोंका संकेत मिलता है। भारतीय आचायोंने इसे विस्तारके साथ लिखा है। गोस्वामीजीको अङ्गस्फुरण-शकुनका निर्देश संक्षितमें करना ही उचित था। माता जानकी और भगवान रामके ग्रुभ-सूचक अङ्ग फरक रहे थे। वहाँ यह भी स्मरण रहे कि स्त्रियोंके वाम अङ्ग और पुरुषोंके दक्षिण अङ्ग-स्फुरणसे ग्रुभ और अञ्चभ फलका संकेत मिलता है। जगत्-जननी सीताके प्रथम दर्शनसे जगत्पिता श्रीरामके ग्रुभ अङ्ग फरकने लगे के

सो सब कारन जान विवाता। फरकहिं सुमद अंग सुनु भ्राता॥

उधर माता जानकी भी जब गोरीकी उपासना कर चुकीं तब—

जानि गौरि अनुकूरु सिय हिय हरषु न जात कहि। मजुरु मंगरु मूरु बाम अंग फरकन रुगे॥

एक दिन कैकेयीने भी अपने दाहिने अङ्गके स्फुरणकी सुचना दी । हाँ, सीताके वाम अङ्गोंने फरककर ग्रुभ संदेश दिया और कैकेयीके दाहिने नेत्रने फरककर विधवा होनेका संकेत उपस्थित किया—

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दिहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥

भगवान् श्रीरामने वनके लिये प्रस्थान कर दिया । अयोध्या-में शोक-समुद्र उमड़ आया । अयोध्याके मानव ही नहीं, पशु और पक्षी शोकसागरमें गोता लगाने लगे, उधर लङ्कामें अशुभ शकुन प्रकट होने लगे—

कुसगुन रुंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद विवस सुररोकू ॥ (अयोध्या० ८०। २)

अयोध्यामें शोक-सागरका उमड़ना तो खाभाविक था; परंतु लङ्कावासियोंके घरमें अग्रुभ लक्षण क्यों ? यही तो शकुनकी महिमा है। शकुन कुछ दिन पूर्व ही विपत्तिके आगमनकी सूचना उपस्थित कर देते हैं। श्रीभरतलालजी कुखप्रोंसे अयोध्याके लिये चिन्तित हो उठे थे; परंतु अयोध्यापुरीमें प्रवेश करनेके पूर्व ही उन्हें अपशकुनोंसे अयोध्याकी विपत्तिकी सुचना मिल गयी—

एक निमेष वरष सम जाई। पहि बिधि भरत नगर निअराई॥ असगुन होहिं नगर पैठारा। रटिंह कुमाँति कुखेत करारा॥ खर सिआर बोलिंहें प्रतिकूला। सुनि सुनि होहिं भरत मन सूला॥

भरतजीको अग्रुभशकुनोंके संकेतसे मनमें भयानक बेदना-का अनुभव होने लगा । गोस्वामीजीने शकुनका जो वर्णन मानस-में उपस्थित किया है, उससे यह प्रतीत होता है कि उन दिनों कोल, किरात आदि भी 'शकुन-विचार' जानते थे। भरतजी जब श्रीरामचन्द्रजीको अयोध्या वापस लानेके लिये मनाने चले, तब उनके साथ सेनाको देखकर श्रीरामचन्द्रके प्रेमीनिषादराज-को संदेह हो गया। निषादराजने भरतलालजीसे युद्ध करनेका हद निश्चय कर लिया, परंतु उसी अवसरपर सहसा—

एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए।। बृढ् एक कह सगुन बिचारी। भरतिह मिलिअ न होइहि रारी।। रामिह भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रह नाहीं।।

लीजिये ! एक सगुनियेने भविष्यके सत्यको लींकके आधारपर बतला दिया और युद्ध टल गया । श्रीरामके दोनों प्रिय आपसमें युद्ध न कर सके । प्रेमसे मिल गये । लींकसे ग्रुम-अग्रुभ विचार आज भी बहुत मान्यताको प्राप्त कर चुका है । च्यौतिषके एक आचार्यने लिखा है कि छः प्रकारकी लींक ग्रुभद होती हैं—

आसने शयने चैव दाने चैव तु भोजने। वामाङ्गे पृष्ठतश्चैव षट् छिद्धाश्च ग्रुभावहाः॥

बूढ़े निषादने बायेंकी छींकसे फल विचारा था। फल विल्कुल सत्य घटित हुआ था। भरतजी आगे वढ़े, साथमें निषाद आदि भी थे। भरत च्यों-च्यों श्रीरामकी पर्णकुटीके संनिकट पहुँचने लगे, त्यों-त्यों उनके मनमें उथल-पुथल मचने लगी। भरतकी दशा देखकर निषादको भी कष्ट होने लगा; किंतु उस समय ऐसे शकुन दिखलायी पड़े जिससे सबको 'कार्यसिद्धि'का लक्षण प्रतीत हो गया।

कंगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु । मिटिहि सोचु होइहि हर्षु पुनि परिनाम बिषादु ॥'

उस समय जो शकुन दीखे उन मङ्गलदायक शकुनोंको देखकर और मुनकर (पशुओं और पक्षियोंकी शकुनसुक बोलियोंको मुनकर) निपादको भविष्यका आभास हो गया। उन शकुनोंका फल शोकको सद्यः मिटानेवाला था। हर्षको बढ़ानेवाला था। परंतु अन्ततोगत्वा भरतके लिये बहुत हितकर नहीं था। अतः गोस्वामीजीने 'पुनि परिनाम विषादु' लिखा।

(२)

सीताहरणके पूर्व शूर्पणखाके आवाहनपर खरं-दूषण आदिने श्रीरामचन्द्रके बलको चुनौती दे दी। राक्षसोंकी एक दुकड़ीने श्रीरामचन्द्रको मानव समझकर चढ़ाई कर दी, परंतु उसका परिणाम क्या होनेवाला था, उसे अपशकुनोंने पहले ही व्यक्त कर दिया।

असगुन अमित होहिं भयकारी । गनिहं न मृत्यु विवस सब झारी॥ महाकवि वाल्मीकिजीने इस प्रसंगमें अशुभ शकुनोंकी एक

महाकाव वाल्माकिजान इस प्रसम्म अञ्चन राजुन लंबी सूची उपस्थित कर दी है।

र्यामं रुधिरपर्यन्तं बभूव परिवेषणम् । अलातचक्रप्रतिमं परिगृह्य दिवाकरम् ॥ —इत्यारि

जिस समय खर चला तो गधेके रंगवाले महामेघ उमहं आये और रक्तकी वर्षा करने लगे। सूर्यमण्डलके चारों और श्यामवर्ण और उसके किनारे लाल रंगका मण्डल बन गया। इंड-के-झंड सियार आकर मुँहसे आगकी लपटें निकाल लगे। भयानक खरमें सियार चीत्कार करने लगे। कड़ परं तथा गिद्ध भयदायी वोली बोलने लगे। असमयमें सूर्यमहं लग गया (या प्रतीत होने लगा)। सूर्यकी प्रभा लुप्तरं जान पड़ने लगी....। लङ्का जलानेके बाद श्रीहनुमां

।
॥
। फल
साथमें
जिस्त्रटीके
मचने

सबको

ग ३६

।
॥
भ
ाकुनोंको
जनसुन्क
हो गया।
हर्षको
हितकर

. ग आदिने टुकड़ीने टुकड़ीने उसका ही व्यक्त

म झारी ॥ ोंकी एक

1

(॥ —इत्यारि वारों और

न गया। निकालने कङ्कः पर्व सूर्यप्रहा

मा छप्त-र्र श्रीहरुमा^र जब श्रीरामजीके पास वापस आ गये और श्रीरामचन्द्र-जीकी सेनाने लङ्काके लिये प्रस्थान कर दिया तो उस समय भी शकुन दीखें । उस समय दो प्रकारके शकुन दीखें ! ग्रुभ शकुन तो श्रीरामके आगे प्रकट हुए और अग्रुभ शकुन लङ्का-में दीख पड़े । माता जानकीको भी ग्रुभ शकुनोंका लक्षण दीख पड़ा था ।

हरिष राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भए सुदर सुभ नाना ॥ जासु सक्क मंगलमय कीती । तासु पयान सगुन यह नीती ॥ प्रभु पयान जाना बैदेहीं । फरिक बाम अँग जनु किह देहीं ॥ (सुन्दर दो० ३४ । २-३-४)

जोइ जोइ सगुन जानिकहि होई । असगुन भयउ रावनिह सोई ॥ इसी प्रसंगमें आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीने भी लिखा है— लङ्कापर चढ़ाई करते समय श्रीरामचन्द्रजीने ग्रुभ मुहूर्त और ग्रुभ शकुनका ज्ञान करके चढ़ाईका आदेश दिया। शकुनोंको देख श्रीरामचन्द्रजीने कहा—

निमित्तानि च पश्यामि यानि प्रादुर्भवन्ति च। निहत्य रावणं सीतामानयिष्यामि जानकीम्॥ (युद्धकाण्ड ४ । ७)

ग्रुभ शकुनोंको देखकर लक्ष्मणजीने भी श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—(हे भगवन्!) आकाश और पृथ्वीपर अनेक प्रकारके ग्रुभसूचक शकुन और आपकी सर्वार्थसिद्धिके लक्षण दीख रहे हैं—

ग्रुभानि तव पश्यामि सर्वाण्येवार्थसिद्धये। अनुवाति शिवो वायुः सेनां मृदुहितः सुखः॥ (युद्धकाण्ड ४।४७)

लङ्कापर चढ़ाईके पूर्व श्रीरामचन्द्रजी अपने सलाहकारोंके साथ सायंकाल मुबेल पर्वतपर बैठकर लड़ाईकी योजना बना रहे थे, एकाएक उनकी दृष्टि लङ्काके शिलरपर पड़ी। लङ्काके शिलरपर एक महल था। उस महलपर रावणका अखाड़ा था जहाँसे वह पहलवानोंके मल्लयुद्ध आदिका अभ्यास और प्रदर्शन देखता था। उस समय भी मन्दोदरीके साथ रावण मल्लयुद्धका अवलोकन कर रहा था। प्रसंगानुसार श्रीरामचन्द्रजीने रावणके मुक्तटको एक बाणसे पृथ्वीपर गिरा दिया। श्रीरामचन्द्रजीका बाण अपना काम करके तरकसमें आकर यथास्थान हो गया। रावणके गिरते मुक्तटको देखकर वहाँके लोगोंने 'अपशकुन' समझा था—

सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥

रावणने उस दृश्यकी उपेक्षा कर दी। रावणको श्रीरामकी बाण-संचालन-कलाका ज्ञान तो हो ही गया था, उसने अपने भावोंको छिपाते हुए कहा---

सिरउ गिरे संतत सुम जाही । मुकुट परे कस असगुन ताही ॥

रावणने कहा कि सिरका गिरना भी जिसके लिये ग्रुभ-सूचक ही है, उसके लिये मुकुटका पतन अग्रुभकर क्यों हो सकता है १ श्रीराम-रावणका भयानक युद्ध चल रहा था। रावणके सभी प्रमुख योद्धा मारे जा चुके थे। मेघनाद भी लक्ष्मणजीके हाथों मारा गया। रावणकी स्त्रियोंने युद्ध बंद कर देने और सीताको वापस कर देनेकी सलाह दी तथा प्रार्थना की; परंतु रावणने अभिमानवश कुछ भी नहीं मुना। प्रातः-काल समरम्मिमें जानेके पूर्व उसे बहुतसे अपशकुन दिखलायी पड़े।

असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न मुज बल गर्व विसाला।।
अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रविहं आयुध हाथ ते।
मट गिरत रथ ते बाजि गज चिकरत भाजिहं साथ ते।।
गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलिहं अति घन।
जनु कालदूत उल्कृ बोलिहं बचन परम मयावने।।
ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन विश्राम।
मृत द्रोह रत मोह बस रामिबमुख रित काम।।

श्रीरामभक्त महात्मा तुलसीदासजीने इस शकुनप्रसंगको भी भक्ति और ज्ञानमय बना दिया। आदिकविने इस प्रसंगको विस्तारके साथ लिखा है—

समुत्पेतु रथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः। रावणस्य विनाशाय राघवस्य जयाय च॥ ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि। वाता मण्डलिनस्तीक्ष्णा ह्यपसन्यं प्रवक्रमुः॥ महद् गृध्रकुलं चास्य भ्रममाणं नभःस्थले। येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति॥ (लङ्का०१०८ स०२०-२२)

गृष्ट्रौरनुगताइचास्य वमन्त्यो ज्वलनं मुखैः। प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः॥ (लङ्का०१०८ स०२७)

युद्धभूमिमें प्रस्थान करते ही रावणको भयानक अग्रुभ शक्तन दीखने लगे। वे शक्तन रावणके विनाश और श्रीराम-चन्द्रजीकी विजयके सूचक थे। रावणके रथपर रुधिरकी वर्षा होने लगी। उसकी बायीं ओरसे घूमता हुआ वेगवान वायु चलने लगा। जिस ओर रावणका रथ जाता था उसी ओर पंक्ति- बद्ध होकर गिद्ध उड़ते थे। रावणके आगे सियारोंका दल दौड़ रहा था और पीछे गिद्धसमूह उड़ रहा था। रावणकी ओर मुख करके सियारिनें चीत्कार करने लगीं।

युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये रावण जव यह कर रहा था और बंदरोंने उस तामसी यह्नको विध्वंस कर दिया, तव रावण अकुलाकर क्रोधित होकर युद्धके लिये चल पड़ा । उस समय उसके सिरपर गीध पक्षी उड़-उड़कर बैठ जाते थे । शकुन-विचार-परम्परामें यह अत्यन्त अशुभ माना गया है— चलत होहिं अति असुभ भयंकर । बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर ॥ (लङ्का दो० ८५ । १)

× × ×

आदिकाव्यमें वाल्मीकिजीने विस्तारके साथ शकुनोंका वर्णन किया है, किंतु गोस्वामीजीने संक्षेपमें शकुनोंका संकेत उपिथत किया है। रावणका युद्ध अन्तिम सीमापर समाप्त होनेवाला था, परंतु उसके सिरों और भुजाओंकी वृद्धिका समाचार सुन सीताको चिन्ता होने लगी थी। त्रिजटाने सीताको रावणकी मृत्युका मुख्य कारण समझाते हुए उन्हें ढाढ़स वैंघाया। सीताको कुछ ग्रुभ शकुन दीख पड़े।

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू।। सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा।। (लङ्का० दो० ९९। ३)

आदिकाव्यमें वाल्मीकिजीने लिखा है—अशोकवाटिकामें हनुमान्जीके पहुँचनेपर सीताको अनेकों ग्रुभशकुन दीखपड़े— तस्याः ग्रुमं वासमरालपक्ष्मराज्यावृतं कृष्णविशालग्रुकुम् । प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पश्चमिवाभिताम्रम् ॥ (सुन्दर० २९ । २)

रावणकी मृत्यु अत्यन्त संनिकट पहुँच गयी । भगवान्ते अपने धनुपपर एकतीस वाण चढ़ा लिये थे । उस समय भी रावणकी लङ्कामें भयानक अपशकुन दृष्टिगोचर हुए ।

प्रतिमा रुदहिं पिनपात नम अति बात बह डोलित मही। वरषिः वलाहक रुधिर कच रज असुम अति सक को कही॥ उतपात अमित विलोकि नम सुर निकल बोलिहं जय जए। सुर समय जानि कृपाल रघुपित चाप सर जोरत मए॥

इस शकुनमें गोखामीजीने मूर्तियोंके रोनेकी चर्चा की है। मूर्तियों के रोने-हँसनेकी बात अन्य आचार्योंने भी लिखी है। हिरण्यकशिपुके वधके समयकी घटनाका उल्लेख अग्नि-पुराणमें मिलता है।

प्रतिमाः सर्वदेवानां हसन्ति च हदन्ति च।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति भूमायन्ति ज्वलन्ति च॥
महाभारतके भीष्मपर्वमें भी ऐसे शकुनका उल्लेख है—
देवताप्रतिमाइचैव प्रकम्पन्ते हसन्ति च।
वमन्ति हिंदरं चास्यैः स्विद्यन्ते प्रपतन्ति वा॥
(२ अ० २६ इलो०)

रावणवध हो गया। संसारका कल्याण हो गया। सत्पक्ष-की विजय हुई। सीता माता और अन्य लोगोंके साथ श्रीराम अयोध्या चले। मार्गमें ग्रुभ शकुन होने लगे—

सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा । मन प्रसन्न निर्मल सब आसा॥

उधर अयोध्यामें भरतजीके लिये आशाकी एक किरण वाकी थी। भरतजी एक दिन और प्रतीक्षा करनेके बाद जीवनका अन्त कर देते; परंतु शुभ शकुनोंने उन्हें पूर्ण भरोसा दिया—शुभ शकुनोंके दर्शनसे भरतजीको विश्वास हो गया—

सगुन होहिं सुंदर सकक मन प्रसन्न सब केर।
प्रमु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर॥
कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रमु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ॥
भरत नयन भुज दिन्छन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति कांगे करन बिचार॥

भगवान् श्रीराम अयोध्यामें पधारे । चौदह वर्षके बाद अयोध्याका भाग्य पलटा । सर्वत्र आनन्दका सागर उमड़ आया ।

रामराज्यकी तैयारी होने लगी, ऐसे अवसरपर ग्रु^भ शकुनोंका दर्शन मङ्गल-विधानकी **सु**चना ही होते हैं।

होहिं सगुन सुम बिबिध बिधि बाजिहं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान॥
(उत्तरका० दो० ९ (ख)

इस प्रकार महाकवि तुल्सीदासजीने 'मानस' महाकाव्य-में शकुन-विचार-परम्पराका उल्लेख करके भारतीय परम्पराका दिग्दर्शन कराते हुए 'मानस'की पूर्णतामें 'नानापुराण-निगमागम''' कथनकी सत्यताको प्रमाणित किया है।

सर्व

मतं

मह

इन

अग्नि-

ग ३६

આન

॥ इ.है-

॥ इलो०) तत्पक्ष-

श्रीराम आसा ॥

किरण के वाद हें पूर्ण वे**र**वास

केर। केर॥ होइ।

ोइ॥ यार। तर॥

ड बाद उमड़

गुभ

ान । न ॥ (ख)

काव्य-पराका

पुराण-

द्वीपान्तर और भारतमें सांस्कृतिक सम्बन्ध

[शैत्रधर्मका प्रतिपादक बृहस्पतितत्त्व]

(लेखक--डॉ० सुदर्शना देवी सिंघल, डी० लिट्०)

[गताङ्कसे आगे]

बुद्धिके इन गुणों (धर्मों) के फलोंके लिये संस्कृतमें समान खल मृगेन्द्रतत्त्व १।१०।२९ पर नारायणकण्ठकी टीकामें उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त पञ्चविपर्यय, नवतुष्टियाँ और अष्टसिद्धियाँ भी बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं। पञ्चविपर्यय स्वन्छन्दतन्त्रमें बृहस्पतिके ही समान हैं—

तमो मोहो महासोहस्तामिस्रोऽन्यो विपर्ययः। अन्यतामित्रमित्याहुरेवं पञ्च विपर्ययाः॥

सांख्यमें इन्हें 'पञ्चपवेंषा अविद्या' कहा गया है। इसके पश्चात् अष्टतुष्टियोंका वर्णन है। सांख्यके अनुसार तुष्टियाँ नौ हैं। परंतु बृहस्पतिके अनुसार ये आठ हैं—अर्जन, रक्षण, क्षय, संग, हिंसा, भाग्य, काल और अत्मा। सांख्यमें सगतुष्टिके स्थानपर तृप्ति-तुष्टि तथा आत्माके स्थानमें प्रकृति और उपादान तुष्टियाँ हैं। अष्टिसिद्धियाँ सर्वथा वही हैं जो सांख्यमें हैं। केवल सिद्धियोंका वर्गीकरण—बाह्य सिद्धियों और आध्यात्मिक सिद्धियोंमें सांख्यके लिये नवीन है। वाचस्पति, माठराचार्य आदिकी सांख्यपर प्रथित टीकाओंमें यह नहीं मिलता। सम्भवतः इस वर्गीकरणका कारण तुष्टियोंका वर्गीकरण है। अर्थात् तुष्टियोंके बाह्य और आध्यात्मिकके वर्गीकरणके समान ही अष्टिसिद्धियोंका भी वर्गीकरण करना द्वीपान्तरवासियोंने अधिक उपयुक्त और उचित समझा।

वृद्धितत्त्वकी विविध वृत्तियोंका सविस्तर उल्लेख करनेके पश्चात् पुनः सृष्टिकमकी ओर जाते हैं । बुद्धितत्त्वसे अहंकारकी उत्पत्ति हुई । यह तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजस, तामस । वैकृत, तेजस और भूतादि इन्हींके दूसरे नाम हैं । वैकृत अहंकारसे दशेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । भूतादि अहंकारसे पञ्चतन्मात्राएँ । तैजस अर्थात् राजस अहंकार इन दोनोंको सिक्रय बनानेमें सहायता करता है । इस प्रसङ्गमें बृहस्पतितत्त्व सर्वथा सांख्यमतका प्रतिपादन करता है । भारतीय विभिन्न मर्तोमें भी यहाँ सबकी सहमति है । पञ्चतन्मात्राओंसे पञ्च-महाभूत निकलते हैं । इनकी व्याख्या करते-करते बृहस्पति इनसे मनुष्यके शरीरकी रचनापर आ जाता है । षट्कोषके

मध्यमें पद्मनाड़ीके स्थानपर शुक्ल और श्वनित (शोणित) मिलनेसे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। 'पट्कोषं वपुः' का बृहस्पतिके अनुकृल स्थल शिवगीता (लिंगमहापुराणमें उद्धृत) और मुद्रलोपनिपद्में मिलता है। सामान्यरूपसे उपनिपदोंमें 'पञ्चकोष' आते हैं जो इन पट्कोषोंसे सर्वथा भिन्न हैं। एक इच विद्वान् डॉ॰ खोरिप्ने अपनी पुस्तक Balinese Theology में पञ्चकोपको ही पट्कोष मान लिया है। इस मूलका कारण यह हो सकता है कि पट्कोपकी अपेक्षा पञ्चकोष अधिक प्रचलित हैं। किंतु षट्कोष सर्वथा शारीरिक भौतिक अर्थमें लिये जाते हैं, जब कि पञ्चकोषोंकी व्याख्या आध्यात्मिक शरीरसे सम्बद्ध है। यथा—अन्नरसमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष । पट्कोष इस प्रकार हैं—

पितृभ्यामिशताद्ञात् षट्कोषं जायते वपुः। स्नायवोऽस्थीनि मजा च जायते पितृतस्तथा॥ त्वङ्मांसं शोणितमिति मातृतश्च भवन्ति पट्। (शिवगीता)

दरोन्द्रियोंकी व्याख्या करते समय भटार शिव इन्द्रियों
और इन्द्रियोंके आधारभूत स्थानोंके भेदको स्पष्ट करते हैं।
कान आधार (=गोलक) हैं, कर्णेन्द्रिय उससे भिन्न है। कान
होनेपर भी कारणवरा व्यक्ति नहीं सुन सकता। आधार तो
है अर्थात् कर्ण हैं पर कर्णेन्द्रिय नहीं। आधार और आध्येयके
इस भेदको इतने स्पष्टरूपमें कहनेकी भारतीय साहित्यमें
सम्भवतः कभी आवश्यकता नहीं समझी गयी। केवल 'शब्दतन्मात्रेशक्तमिन्द्रियं श्रोत्रमुच्यते'(वेदान्तकारिकाविल) कहकर
भेद करना न करना पाठकपर छोड़ दिया गया। आधारके
लिये जावीमें गोलक शब्द नवीन है। इसे हम संस्कृत शब्द
गोलक', जिसका सामान्य अर्थ आँखकी पुतली है, का अर्थविस्तार मान सकते हैं। वेदान्तकारिकाविलके प्रकृतिनिरूपण
अध्यायमें गोलक शब्दका प्रयोग इस प्रकार है। चक्कःश्रवसा
तु नेत्रगोलोकवृत्तिः। जिस प्रकार संस्कृतका पिण्ड-शब्द, जिसका

मूल अर्थ गोल था शरीरका अर्थवाची हो गया, उसी प्रकारसे गोल शब्दको शरीरके अर्थका द्योतक मानकर उसे हस्वार्थक लगाकर गोलकका अर्थ शरीरके अङ्ग माना जा सकता है। गोलकका यह रोचक अर्थ-विस्तार हमारे प्रसंगके सर्वथा अनुकूल है। इन इन्द्रियोंसे संयुक्त मानव मोगकी इच्छा करता है। उसकी आत्मा (पुरुष) इस संसारचक्रमें फँसी रहती है, शरीर शक्टोपस हो जाता है। आत्मा वृषभवत् है। ऊपर ईश्वर चालक हैं। यस, यह जगत् चक्रवत् घूमता रहता है। बृहस्पति-तत्त्वके ३४वें श्लोककी इस उपमामें प्रनथकी दृष्टान्तों और उपमाओंद्वारा गुह्य आध्यात्मिक स्थलोंको सरल मुत्रोध रूपसे पाठक और श्रोताको बुद्धिगम्य करा देनेकी प्रवृत्तिकी झलक दिखायी देती है। बृहस्पतिका प्रत्येक कठिन और दार्शनिक स्थल इस प्रकारके दृष्टान्तोंसे परिपूर्ण है। यह बृहस्पतिकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। गणपतितत्त्वमें भाटर शिव गणपतिको केवल तथ्यका निरूपण करते जाते हैं। दृष्टान्तों अथवा उपमाओं-द्वारा समझानेका प्रयास नहीं है । बृहस्पति सम्भवतः प्रचलित और लोकप्रिय दर्शन-ग्रन्थ रहा है। इसीके आधारपर द्वीपान्तर-की आधुनिक भाषा बहासा इण्डोनेसियामें लिखा गया 'अजि सांख्य' इसकी लोकप्रियतांका प्रमाण माना जा सकता है। उपमासे विभूषित दार्शनिक तथ्यकी अभिव्यक्ति श्रोकके पदोंमें इस प्रकार प्रस्फरित हुई है--

> शक्टोपमं प्रधानं तु पुरुषो वृषभोपमः। ईशसारथिसंयुक्तं जंगद् अमितचक्रवत्॥

इतना ही नहीं; अन्तःकरण और इन्द्रियोंका भी इस मानवमोक्षके प्रतिरोधमें बहुत बड़ा हाथ है—

> प्रधानं प्रासादेत्युक्तं यन्ता मन्त्री प्रकीर्तितः । भूद्रमिन्द्रियसाहुत्रैं विषया भोगवत्सुखस् ॥

सहज प्रश्न उठता है कि शरीरमें आत्माको जकड़नेवाली श्रृङ्खलाएँ कौन सी हैं, जिनसे बन्धनमुक्त होकर मोक्षकी प्राप्ति हो सके १ पुनश्च इन शृङ्खलाओंसे मुक्त होनेके मार्ग कौनसे हैं १ बृहस्पतिकी इस गहन समस्याको भटार शनै:-शनै: क्रमशः मुलझाते जाते हैं । दस मुख्य नाडियाँ शरीर और आत्माको (परस्पर) बाँध देती हैं—ये इडा, पिंगला, मुपुम्ना, ग़ान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूपा, यशा, अलम्बुपा, कुहू और शंखिनी—प्राणवहा नाड़ियाँ हैं । ये प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कुकर, देवदत्त, धनंजय नामक दस प्राणोंको वहन करती हैं । इनके हढ़ बन्धनमें विश्वान्त हुई आत्मा

दुसरे लोकमें जाना चाहती है। वहाँ जानेमें पाँच पद है। पाँचवाँ पद मोक्ष है, जहाँ उसे पहले ४ पदोंको पार का पहँचना है। पदके स्थानमें संस्कृत साहित्यमें सामान्यतम प्रयोग अवस्था है । किंतु काश्मीरके शैवग्रन्थ तन्त्रालोक (१०। २२८-२२९) में इन्हें बृहस्पतिके समान ही 'पञ्चपद' कहा गया है । ये पञ्चपद इस प्रकार हैं-जामपद, स्वप्नपद, स्वतपद, तुर्यपद और तुर्यातीतपद। जामपद जामलद है। तर्यान्तपदका अभिप्राय त्र्यातीतावस्थासे है। जिसे स्रोक्षा निर्वाण कहा गया है। जाग्रपद, स्वप्न और सुप्रमपद 'आत्मसंसार' है। इन्हों में मन्ष्य घूमता रहता है। तुर्यपद आत्मसिद्धि है। और तुर्यान्तपद जीवनमुक्ति है। भटार इन पञ्चपदींकी दार्शनिक व्याख्या करते हैं। बृहस्पतिके मनमें अनेक प्रश्न उठते हैं। यथा मोक्षका कारण अचेतन हैं; क्योंकि चेतन (मोक्ष) अचेतनसे निकलता है । तनका अर्थ है—स्खदुःखमय संगार की अनुभूति करना । अतः चेतनको विशेष कहना कहाँतक उचित है। अचेतन वास्तवमें विशेष कहलाना चाहिये; क्यांकि वह संसारका, सुख-दु:खका अनुभव नहीं करता । इस तर्कयुक्त प्रश्नका भटारने जो उत्तर दिया उसका सारांश इस प्रकार है-चेतन अचेतनको हुँढता है। अचेतन उस मिट्टीके समान है जिससे घर वनता है । घरको बनानेवाला भटार चेतन है। अचेतन वह है जिसे वह रूप देता है। पात्रादिका वनना उसकी अर्थात् चेतनकी इच्छापर निर्भर है । इसी कुम्हारके समान भगवान् हैं जो अचेतनको अपने इच्छान्कल रूप देते हैं। अचेतनका स्वभाव चेतनहीन है। इसिंछये उसे परमार्थ अथव विशेष कहना उपयुक्त नहीं । पर अभी बृहस्पतिका प्रश्न रीष है-अचेतन तो आकाररहित है फिर उसको रूप कैसे दिया जा सकता है अतः असत् जो अचेतन है वही विशेष होना चाहिये। भटार इसका समाधान इस प्रकार करते हैं — यदि असत् विशेष है तो इस सत् संसारकी उत्पत्ति उससे कसे कही जा सकती है। ऐतरेय ब्राह्मणका प्रसिद्ध वाक्य है—'कथं असतः सज्जायेत।' तथा च सत्, असत् और पुनः सत् वन सकता है। विशेष इसी प्रकारका गुह्य है। परमार्थका स्वरूप इस प्रकार है-

> सदावेन परित्यक्तमसद्भावविवर्जितम् । सदसदावरहितं निष्ककान्तमस्रक्षभणम् ॥

विशेषकी इस सदसत्-सत्ताका दृष्टान्त इस प्रकर् हैं जिस प्रकार दूधमें मक्लन, दारुमें अग्नि, मेवोंमें जला आकाशमें वायुं अदृश्य है, उसी प्रकार मन, रज और तम मनुष्यमें । वे सत् होते हुए भी असत् हैं; क्योंकि वे इस बाह्य जगत्में अदृश्य हैं—

यद् घृतं पयसि हरिश्च यद्दारुष्ठ क्षितिः जलं नभःस्थितं सर्वगोऽनिलः। रजस्तमोऽदश्यं मनो नरे सज सत्तथा वाह्ये जगति तशोपलभ्यते॥

चेतन, अचेतन, मायातत्व और पुरुषके खभावों और उनके परस्पर सम्बन्धोंका विवेचन करनेके पश्चात् शरीर और आत्माके बन्धनस्वरूप प्राणींसे मुक्ति पानेके इच्छुक तथा मोक्ष-जिज्ञासुके लिये तीन भागोंका निरूपण किया गया है-ज्ञानाभ्युद्रेकः इन्द्रियोंसे अयोगका मार्ग तथा तृष्णदोषक्षय । श्रानीका ज्ञान तीन प्रकारसे वढ़ता है--गुरुतः, शास्त्रतः, स्वतः । योगीश्वर प्रयोगसंधिके परम रहस्यको पडङ्गयोगद्वारा जान लेता है। इन मोक्षमागोंसे पूर्व बृहस्पतिके मनमें शंका है कि जीवन सुख-दु:ख-भोग करता है, संसार है, बन्धन है। मृत्यु मोक्ष है; क्योंकि मरकर मनुष्यको किसी प्रकारके शारीरिक अथवा मानसिक दुःखका अनुभव नहीं होता। बृहस्पतिके इस संदेहका मूल जो कुछ दिखायी देता है, उसीको सत्य समझ लेनेके कारण है। मनुष्य स्वभावसे अल्पज्ञ और अल्पायुष है। उसकी दृष्टि बहुत दूरतक नहीं जाती । प्रतिदिन उदित होनेवाला सूर्य उसे वही एक दिखायी पड़ता है; पर वास्तवमें ऐसा नहीं है (सूर्य द्वादश हैं)। मृत्युके समय शरीर पञ्चमहाभूतोंके स्थूल शरीरसे अवस्य मुक्त हो जाता है; परंतु वह पञ्चतन्मात्राओंके सूक्ष्म शरीरमें परिवर्तित हो जाता है। परिणामतः उसका पुनर्जन्म होता है और वह अपने ग्रुभाग्रुभ कर्मोंका फल भोगता है। यदि उसने पूर्वजन्ममें बुरे कर्म किये हैं तो वह नरकलोकमें जाता है और पूर्वजन्ममें किये सत्कर्म उसे स्वर्गमें ले जाते हैं। यदि वह इस मनुष्य-जन्ममें योग करेगा तो मृत्युके पश्चात् जब वह पुनर्जन्म लेगा तो 'योगीश्वरत्व'को पा सकेगा। योगीश्वरत्व-का अर्थ है—भिक्षुओंमें विशिष्ट स्थान । वह तीन प्रकारका योगी हो सकता है-कर्मयोगी; ज्ञानयोगी और योगी। कर्म-योगीका अर्थ है — जप, पूजा-पाठ, व्रत आदि कर्म करना। शानयोगीका अर्थ है-गुरुतः शास्त्रतः स्वतःके उपायोद्वारा भगवद्शान बढ़ानेमें रत रहना । योगीका अर्थ है—षडङ्गयोग-द्वारा आत्मसिद्धि (जीवनमुक्ति) पाना । इसके पश्चात् षडङ्गयोगका विस्तृत वर्णन है-

मत्याहारस्या ध्यानं प्राणायासश्च धारणस् । तर्कश्चैव समाधिश्च पडङ्गो योग उच्यते ॥

संस्कृत-साहित्यमें पत्रक्षित्रके योगदर्शनके समयसे अष्टाङ्गयोगका प्रचलन रहा है। यम और नियम योगका भाग रहे हैं।
तेजोविन्दूपनिषद्में पञ्चद्शाङ्गयोग मिलता है। इसमें यम
और नियम दो योगनाम है। अष्टाङ्गयोगसे यम और नियम
निकाल देनेपर पडङ्गयोग रह जाता है। संस्कृतमें ध्यानविन्दूपनिषद्, योगच्च्डामण्युपनिषद् और गोरखपन्थियोंका
गोरखनाथविरचित योगमार्तण्ड इस बातकी पृष्टि करते हैं।
इनमें तर्कयोगके स्थानपर आसनयोगका निरूपण है। केवल
अमृतनादोपनिषद् ही एक ऐसा उपनिषद् मिला, जिसके
योगके षडङ्ग बृहस्पतिके समान ही हैं। काश्मीर शैवप्रन्थांमें
तर्कको योगाङ्ग माना है। तन्त्रालोक १-१३, मृगेन्द्रतन्त्र
योगपाद १-१८ में इसे उत्कृष्ट योगाङ्ग कहा है। काश्मीर
शैवप्रन्थ मालिनीविजय भी 'तर्को योगाङ्गमुक्तमस्' द्वारा तर्कके
योगत्वकी पृष्टि करता है। इनके अतिरिक्त स्वायम्भुवपुराणमें
इसकी महिमाका वर्णन इस प्रकार है—

अनेन लक्षयेद्योगी योगसिद्धिप्रवर्नकम्। निरोधकं च यद्वस्तु बहुधा संव्यवस्थितम्॥

द्वीपान्तरमें पडङ्गयोग ही प्रचलित है । बौद्धप्रन्थ 'सं हंय कमहायानिकन्'में भी पडङ्गयोग है । वहाँ भी क्ष्रोक बैसे ही हैं जैसे बृहस्पतिके हैं । 'गणगिततस्व'में भी इधर-उधर किंचित् परिवर्तनोंके साथ ये ही क्ष्रांक हैं । टीकाओंमें थोड़ा-बहुत भेद है पर वह नगण्य है । किवभाषाके अगस्त्यपर्वमें भी पाँच योगोंका इस प्रकार उल्लेख है—इनुपाय त य रिंध्यान, धारण, तर्क, प्रत्याहार, समाधि, योग '''। निस्संदेह यहाँ षडङ्गयोगसे अभिप्राय है । प्राणायामको जोड़ देनेसे यह षडङ्गयोग वन जायगा । बृहस्पतितत्त्वमें यम और नियम (द्श्रशील' के अन्तर्गत हैं । यम और नियमके लिये (द्श्रशील' शब्दका प्रयोग तो कहीं नहीं मिला । केवल कादमीर शैवप्रन्थ स्वच्छन्दतन्त्रमें दश्रशीलके लिये दश्रिवाध धर्मका प्रयोग हुआ है ।

तिब्यत अर्थात् भोट देशमें भी पडङ्गयोग मिलता है। तञ्जूरके र्ग्युद् अर्थात् तन्त्रभागमें इसपर अनेक प्रन्थ और टीकाएँ हैं। उनमेंसे उदाहरणार्थ कुछके शीर्षक यहाँ दिये जाते हैं। श्रीकालचकोपदेशयोग षडङ्गतन्त्र पञ्जिकानाम, षडङ्गयोगोपदेश, षडङ्गयोगालोककम, षडङ्गयोगनामटीका आदि-आदि। केवल त्रिपिटकमें ही नहीं, उससे बाहर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हैं।

36

न्यतम १०। कहा

प्तपद्,

ठोकमें तंसार'

इ है।

हैं। मोक्ष)

सं भार इाँतक

क्यों कि क्यों कि

113(11)

मान है। न है।

उसकी समान

ते हैं। अथवा

भ दोष

ने दिया पाहिये।

विशेष ती है।

येत ।' विशेष

_

(है -

जल। र तम

स्थ

से

नार

उप

निष

गिन

न्रि

टीव

सप्त

उप

सप्त इन्हें

स्थर बृहर

पड़त

प रंतु तत्त्व

गया

उद्देव

विचा

'योर्ग है ।

सविर

शैवमें

सक्षेप

भी इ

समर्झ

भोट है

इतिहा

वडङ्गयोगपर अनेकों प्रन्थ हें—यथा पडङ्गयोग वज्रगाथा और उसपर टीका, कालचक्रोत्पन्नका पडङ्गयोग आदि जिनके संस्कृत शब्दोंमें शीर्षक है। कहा जा सकता है कि काश्मीरमें प्रचलित पडङ्गयोग एक ओर हिमालय पारकर मोट (तिब्बत) पहुँचा और दूसरी ओर समुद्रकी यात्रा कर द्वीपान्तर। केवल पडङ्गयोग ही नहीं, वरं कई अन्य स्थल भी काश्मीरशैवके अधिक समीप हैं, यथा बृहस्पतितत्त्वका स्लोक ७ से १० तकका सहशस्थल काश्मीरिवरचित नेत्रतन्त्रके दूसरे पटलके २० से २९ स्लोकतक है। विचारकी परम्परा ही नहीं, वरं बृहस्पतिका ७ वें स्लोकका पूर्वार्ध नेत्रतन्त्र २-२० का उत्तरार्ध है—'अश्मेयमनिवर्देश्यमनौपम्यमनासयस्।' दस नाड़ियोंकी गणना करते समय एक नाड़ीका नाम प्यशा' है। सामान्यरूपसे यशस्विनी प्रचलित हैं। स्वच्छन्दतन्त्र ७।१५—१६ में प्यशा' पाठान्तर है। स्लोक २९ से ३२ तक धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्लर्यके फल इस प्रकार हैं—

स्वर्गं धर्मेग गमनं ज्ञानेन मोक्षपदं समासाचा वैराग्यात्प्रकृतो लीनः ऐथर्येणाप्रतिहतः।

मृगेन्द्रतन्त्र १ । १०-२९ पर श्रीनारायणक॰ठकी टीकामें भी इसीको इन शब्दोंमें रक्खा गया है—

धर्मात्स्वर्गः, ज्ञानान्मुक्तिः, वैराग्यात्प्रकृतिलयः । ऐश्वर्योदविघातः ।

इसी प्रकार ईश्वरके रूप श्रीकण्ठसे ज्ञानकी प्राप्ति क्रमशः मनुष्योंको हुई कि विचारधारा भी स्वच्छन्दतन्त्रमें कुछ अधिक विस्तारसे की गयी है। कादमीरके प्रसिद्ध दार्शनिक टीकाकार अभिनवगुप्त भी इसकी पृष्टि इस प्रकार करते हैं कि मानवको आध्यात्मिक ज्ञानकी प्राप्ति श्रीकण्ठसे हुई जो एक बार कैलास पर्वतपर घूमते-घूमते शैवागमोंके लोपसे अज्ञानान्धकारमें डूवे मानवकी आध्यात्मिक शून्यताकी दशा देखकर द्रवित हो उठे थे। समाधियोगका वर्णन करते समय 'चतुर्कल्पना' शब्द आता है। इन चतुर्कल्पनाओंका मृगेन्द्रतन्त्र १।२–१३ पर टीका करते हुए श्रीनारायणकण्ठने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—प्रमेय, प्रमिति, प्रमाण और प्रमातृ। इस प्रकारसे अनेक स्थलोंपर काश्मीर शंवग्रन्थोंकी सहायता मिलती है।

योग, यम और नियमोंकी व्याख्या करनेके पश्चात् जाम्रपद और तुर्थपदके मिलनेसे सप्ताङ्ग, सप्ताम्न और सप्तामृत उत्पन्न होते हैं । सप्ताङ्गः सप्ताम्न और सप्तामृत क्रमदाः इस प्रकार हैं—

धरणी च भवेत्तीयं तेजस्तथा च मारुतः। आकाशो बुद्धिका मनः सप्ताङ्गं तु श्रणूच्यते ॥ ६२॥ घाता च रसयिता च द्रष्टा स्प्रष्टा तु श्रोता च। मन्ता बोद्धा तथा श्रणु, इति सप्ताग्निः प्रोच्यते ॥ ६३॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपश्च रसो गन्धश्च कथ्यते। संकल्पो बोद्धव्यं तथा सप्तास्त्रतं निगद्यते ॥ ६४॥

ये तीनों परस्पर सम्बद्ध हैं—

सप्ताङ्ग	सतान्नि	सप्तामृत
धरणी	घाता	गृन्ध
तोय	रसयिता	रसं
तेज	द्रष्टा	रूप
मारुत	स्प्रष्टा	स्पर्श
आकाश	श्रोता	शब्द
बुद्धि	बोद्धा	बोद्धव्य
मन	मन्ता	संकल्प

यहाँ सप्तामृत सात वस्तुएँ हैं। सप्ताङ्ग उनके आधार हैं और सप्तामि उनका अनुभव करनेवाले। काश्मीर-मालामें प्रकाशित लौगाक्षिगृह्यसूत्र ४६ (भाग २ पृ०१५०) पर देवपालके भाष्यमें वश्वानर अभिकी सप्तजिह्वाएँ गिनायी गयी हैं—हमारे प्रत्थमें सप्ताग्नियोंका उल्लेख है अर्थात् भोक्ता हैं जब कि लौगाक्षिमें भोक्ताके साधनों (करण) का वर्णन है—

चक्षुर्नासा च जिह्ना च त्वक् श्रोत्रं चैव पञ्चमम्। सनो बुद्धिश्व सप्तैता जिह्ना वैश्वानरार्चिषः॥

इसके पश्चात् सप्त समिधाओंका वर्णन है। ये सप्त समिधाएँ सप्तजिह्वाओंके लिये हैं।

प्रेयं पेयं च इङ्यं च स्पृङ्यं श्रोतन्यमेव च। मन्तन्यमथ बोद्धन्यं ताः सप्त समिधो मताः॥

इन सप्तसिधाओं की बृहस्पतिके सप्ताङ्गों से तुलना की बीपान्त जा सकती है। जिस प्रकार सप्ताङ्ग और सप्ताग्निका उपभुक्त वस्तु और उपभोक्ताका सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध सप्तसिधाओं ही सी। और सप्तजिह्वाओं का है। सप्तसिधाएँ इन्धन हैं जिसकी सप्तजिह्वाएँ उपभोक्ता हैं अर्थात् सप्तजिह्वाएँ उपभोक्ता हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सप्तामृत

1 53 1

1 ६३ ॥

1881

हैं और

काशित

यपालके

–हमारे

व कि

सप्त-

ना की

पभुक्त

जसका का है

प्रश्नोपनिषद् ४। ८ और ४। ९ में भी इसी प्रकारका खल है । परंतु वहाँ संख्याका प्रतिवन्य नहीं है । सामान्यरूप-में स्थितिका निरूपण है। उनका विशेष वर्गीकरण अथवा नामकरण नहीं किया गया है। संस्कृतमें सप्ताङ्ग शब्द अनेक उपनिषदोंमें मिलता है—यथा रुसिंहोत्तरोपनिषद्, रामोत्तरोप-निषद्, बरदोत्तोतरोपनिषद् आदि । परंतु यहाँ सप्ताङ्ग नहीं गिनाये गये हैं। अड्यारमें प्रकाशित वैष्णवीपनिषद्-संग्रहके नृसिंहतापिन्युपनिपद् (पृ० १०६) के प्रणवपादनिरूपणकी टीकामें सप्ताङ्ग पञ्चज्ञानकर्मेन्द्रियः, प्राण और अन्तःकरण हैं। सप्तामि और सप्तामृत शब्द संस्कृतके कोषोंमें नहीं हैं। उपनिषदोंके कोषमें भी नहीं मिले । कविभाषाके कोषमें सप्ताग्नि सप्तभुवन नामक कवि प्रन्थसे उद्धृत है परंतु वहाँ भी इन्हें गिनाया नहीं गया । केवल काश्मीरके लौगाक्षिगृह्यसूत्रका स्थल ही अभीतक उपलब्ध समीपतम स्थल है। इस प्रकार बृहस्पतितत्त्वमें काइमीर शैवग्रन्थोंकी यत्र-तत्र झलक दिखायी पड़ती है। सांख्य और योग काश्मीरशैवमें भी सम्मिलित हैं। परंतु काश्मीर शैवकी विशेषता उसके 'त्रिक'में है। बृहस्पति-तत्त्व सामान्यरूपसे मुख्य-मुख्य तत्त्वोंकी व्याख्या करता चला गया है। किसी विशेष शैवसिद्धान्तका निरूपण करना उसका उद्देश्य नहीं था । यत्र-तत्र दर्शनसम्बन्धी दांकाओंपर विचार करते-करते ज्ञानद्वारा शिवपदकी प्राप्ति अथवा योगद्वारा 'योगीश्वरत्व' एवं जीवन्मुक्ति पाना उसका ध्येय एवं लक्ष्य है। योगद्वारा प्राप्त होनेवाले अष्टिश्वयोंका आठ श्लोकोंमें सविस्तर वर्णन है। इनका इतना विस्तृत वर्णन काश्मीर शैवमें अप्राप्य है। स्वच्छन्दतन्त्रपर टीका करते हुए क्षेमराजने सक्षेपसे इन अष्टेश्वयोंका अर्थ किया है। पुराणों तथा सांख्यमें भी इनका इतना लम्बा निरूपण करनेकी आवश्यकता नहीं समझी गयी।

जब चीनी यात्री इत्सिंग जावामें अध्ययन कर सकते हैं, भोट देशके विद्वांनोंका पढ़नेके लिये द्वीपान्तरमें जाना भोटके इतिहासोंमें वर्णित है तो आश्चर्य नहीं यदि काश्मीर शैवका द्यीपान्तरके शैवपर कुछ प्रभाव पड़ा हो।

योगसे उत्पन्न होनेवाले 'उपसर्ग' पतञ्जलिके योगसूत्रोंतक धाओं ही सीमित नहीं हैं। चीनमें भी योगोत्पन्न उपसगोंपर एक पूरी

पुस्तक है। किङ् शिङ्द्वारा लिखित इस पुस्तकका नाम है— 'छे छन् निङ् पी याओ' बृहस्पतितस्त्र इन उपसर्गोंका तीन विभागोंमें वर्गीकरण करता है। सत्त्वके कारण, रजके कारण और तमके कारण उत्पन्न उपसर्ग । योगसूत्रमं केवल उपसर्ग गिना दिये गये हैं--ज्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमाद-आलस्य-अविरतिभ्रान्ति-दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविश्ले-पास्तेऽन्तरायाः ।

छिङ्गपुराणके नवम अध्यायमें दस उपसर्गोंका सविस्तर वर्णन है-

आलस्यं प्रथमं पश्चाद् व्याधिपीडा प्रजायते। प्रमादः संशयस्थाने चित्तस्येहा नव स्थितिः॥ अश्रद्धादर्शनं भ्रान्तिर्दुःखं च त्रिविधं ततः। दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योगता॥ दशधाभिप्रजायन्ते मुनेयोगान्तरायकाः। प्रवर्तन्ते सर्वे तेऽसिद्धिसूचकाः॥

ये उपसर्ग बृहस्पतितत्त्वके उपसर्गोंसे पर्यात भिन्न हैं। इन उपसर्गोंसे छुटकारा पानेके उपाय वताकर ग्रन्थ समात हो जाता है। ज्ञान अथवा योगद्वारा अष्टैश्वर्य और मोक्ष, जीवनमुक्ति अथवा आत्मसिद्धिके रहस्यको पाना ही उसका लक्ष्य है। चेतन और अचेतनके सम्मिश्रणसे आत्मा अचेतन, जड, मायामय शरीरमें फँसी रहती है। कमोंका बन्धन उसे पुनर्जनमके चक्करमें घुमाता रहता है। योगद्वारा अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके ईश्वरका ध्यान लगाकर भगवत्क्रपा और भगवद्गक्तिद्वारा मानव सत्यतत्त्वको पहचानकर जीवनमें ही मुक्ति पा लेता है। उसे शरीरके ज्ञानका अनुभव नहीं होता और मृत्युके पश्चात् भी उसे शरीरका (अर्थात् पुनर्जन्म) का अनुभव नहीं करना पड़ता । मोक्षप्राप्तिमें ज्ञानका और उसके पश्चात् योगसाधनाके महत्त्वका बृहस्पति अन्तमें प्रतिपादन करता है।

बृहस्पतितत्त्व द्वीपान्तरके शैवधर्मके तत्त्वोंका निरूपण करने-के साथ-साथ सामान्य दार्शनिक प्रश्नोंका समाधान रोचकविधिसे दृष्टान्त और उपमाओंद्वारा करता चला जाता है। विचारकी दृष्टिसे भी ससम्बद्ध और संगठित है। यह कविभाषाकी विचार-को सहजरूपमें प्रकट करनेकी क्षमताका सुन्दर निदर्शन है।

मध्र

बड़ी विलक्षण बात है। श्रीराधारानीको अपनेमें कोई रूप, गुण, शील, सौन्दर्य तो दीखता ही नहीं, सदा दोष ही दिखायी देते हैं। पर प्रियतम स्यामसुन्दरका प्रेम उनके प्रति इतना अधिक है और वह अनवरत उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है कि इन्हें अपनी ओर देखकर बड़ा संकोच होता है। वे स्यामसुन्दरके प्रेमका तिरस्कार भी नहीं कर सकतीं और अपनेमें दोष देखनेसे भी विरत नहीं होतीं। अतः एक दिन वे प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके चरणीं-में बैठकर कातर-प्रार्थना करती हैं-

> में थी पहले मिलना, दीना, हीना अब भी में हूँ वैसी। बाहर-भीतर मेरी कुरूपता छायी जैसी की तैसी॥ मुझमें सुशीलता, सुन्दरता, सद्गुणता, शुचिता कब कैसी। तम जान रहे हो अन्तरकी, अन्तर्यामी ! मैं हूँ जैसी ॥

प्रियतम श्यामसुन्दर ! मैं पहले जिस प्रकारकी मिलना (सौन्दर्य-माधुर्यसे हीन), दीना (गुण-शीलसे हीन) और हीना (प्रेम-धनसे हीन) थी, वैसी ही अब भी हूँ। (मुझमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।) मेरी बाहर-भीतरकी कुरूपता मुझपर ज्यों-की-त्यों छायी हुई है। मुझमें कब कैसी मुशीलता थी ? मैं कब मुन्दर थी ! का मुझमें कैसे सद्गुण थे ? मुझमें कत्र कैसी पवित्रता थी ? हे अन्तर्यामी!मैं जैसी जो कुछ हूँ, तुम मेरे अन्तरकी सब जान ही रहे हो ।

> में यही चाहती रहती हूँ तुमसे न मिलूँ बस, भूल कभी। दुख देनेवाली है मेरी बाह्याभ्यन्तरकी क्रिया सभी॥ तुम सुन्दर सहज सुहृद् हो संतत सद्य हृद्य सब काल अभी। सद्गुण पूरित इग देख रहे सर्वत्र दिग्य गुणराशि तभी ॥

प्रियतम ! मैं तो सदा यही चाहती रहती हूँ कि तुमसे कभी भूलकर भी न मिखँ; क्योंकि मेरी माह भीतरकी सभी क्रिया र दुःख देनेवाली ही हुआ करती तुम तन-मनसे सुन्दर हो, सहज सुहद् हो, निरन्तर दयाः हृदय हो, सब कालमें और अभी भी। इसीलिये तुस सद्गुणपूर्ण नेत्र मुझमें सर्वत्र गुणराशि ही देखते रहते।

> तुम सहज प्रेसमय हो स्वभाव-वश करते हो वस, प्रेम सदा। मेरी त्रुटियोंको-दोषोंको तुस देख पाते न कदा॥ अतः है नहीं दीखता तुझ्हें कभी जो है मुझपर अधभार छदा। देते देते थकते न कभी हो दोष दीखते हैं न

तुम सहज ही प्रेमखरूप हो, इसलिये वस, खभार ही सदा प्रेम करते हो (किसी गुणरूपकी अपे नहीं) । अतएव तुम मेरी त्रुटियोंको-मेरे दोषोंको क देख ही नहीं पाते हो । मुझपर जो (प्रेमहीनताक पाप लदा है, वह तुम्हें कभी दीखता ही नहीं। (अपना प्यार) देते-देते कभी थकते ही नहीं-अ ही नहीं और देते समय तुम्हें दोष दीखते नहीं।

तुम नहीं सानते हो, मैं हूँ निरुपाय, करूँ क्या मैं अबला ? तुम जो चाही सो करो, तुम्हारी अमित शक्ति-मति है प्रबन्धा ॥ पर मेरी है विनीत विनती यह एक इसे कर दो सफला। में रहूँ सदा गुण-मान-श्रून्य कोई निजकी जागे न कका॥ (इतना दोषपूर्ण तथा प्रेमशून्य होनेपर भी) (प्रेम दिये त्रिना) मानते ही नहीं । तत्र मैं अव^{ली} करूँ, मैं निरुपाय हूँ । (मेरे पास कोई साधन

जिसके द्वारा मैं तुम्हें रोक सकूँ।) अतः तुम जी

सो करो, तुम्हारी अपरिमित बुद्धि है, अपरिमित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कें

संख

एक है वि

अभि का व

पूछी एवं इ

(Sy 'कल्या

नि:श्रेय

प्रश्लोत्तर

संक्षिप्त

क

तथा मूर

गोतामृतं

रती है

र दयापू

तुम्ह

रहतेहैं

खभाग अपेक्ष

को क

नताका

तें । व

हीं।

ਮੀ)

वर्ग

गन

है और वे बहुत ही बलबती हैं। परंतु तुनसे मेरी यह एक विनीत विनती है, इसे तुम पूरी कर दो । वह यह है कि मैं सदा गुणोंसे शून्य रहूँ और कभी मेरे अंदर (मेरा न हो) सभी तुम नटवरकी ही छीछा हो। अभिमान न उपजे तथा युद्धमें मेरी अपनी किसी भी 'करा। का कभी कोई उदय ही न हो।

तम करो कराओं जो चाहो, मैं बनी रहूँ पुतली करकी। जीना, मरना, हँसना, रोना, सब ही हो लीला नटवरकी॥ जागे न कदापि 'अहं' सुझमें सुधि हो न भयंकर-सुन्दरकी। में रहूँ नाचती इच्छासे अपने जीवन-धन प्रियवरकी ॥

मैं तुम्हारे हाथकी पुतली बनी रहूँ और तुम जो चाहो सो करते-कराते रहो । मेरा जीना-मरना, हँसना-रोना मेरे अंदर कभी 'अहं' का उदय न हो और मुझे कभी भयंकर-सुन्दरका स्मरण ही न रहे। मैं तो (बस सदा) तुम अपने जीवनधन प्रियतनके इच्छानुसार नाचती ही रहूँ।

परम प्रेमस्यरूपा महाभावरूपिणी साक्षात् हादिनी शक्ति श्रीराधाजीके ये प्रेमोद्गार इस वातको वतलाते हैं कि प्रेममें कैसा दिच्य तथा सम्पूर्ण समर्पण, कितना विलक्षण दैन्य, कितना त्याग और कितनी विनीत भावना होनी चाहिये।

most con

'कल्याण'की परिभाषा

(ठेखक-पं० श्रीजानकीनाथजी दामी)

एक सजनने किसी कारणवश कल्याणकी परिभाषा पूछी है। अमरसिंहने स्वः, श्रेय, शिव, कल्याण, मङ्गल, भद्र एवं ग्रुम शब्दोंको एकार्थवाची—समानार्थक—पर्यायवाची (Synonym) माना है । गीता (२।७) में अर्जुनने इसी 'कल्याण'के उपदेश करनेकी प्रार्थना की और भगवान्ने उस निःश्रेयस्कर ज्ञानका उपदेश किया-

स्यानिश्चितं बहि तन्मे यच्छ्रेय: शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। (219)

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्। (312)

गीता सर्वोपनिषद् एवं शास्त्रोंकी सार् है, अतः ये पश्चोत्तर उपनिषद्, इतिहास, पुराणादिके भी हैं। यहाँ उनपर संक्षित विचार किया जा रहा है।

कठोपनिषद् (१।२।२) में विवेकीके भ्रेय' (कल्याण) तथा मृढ पुरुषके 'प्रेय' प्रहण करनेकी वात आयी है-

१. (सर्वशास्त्रमयी गीता । ' (सर्वोपनिषदो गावा " दुग्धं जी व गोतामृतं महत्।' मेत रै

धीरोऽभिप्रेयसो बृणीते श्रेयो हि मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते। वैशेषिक दर्शन (१।४) में तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस कहा है । वैशेषिक दर्शन (१।२)के भाष्यमें प्रशस्तपाद लिखते हैं--

तस्वज्ञानं निःश्रेयसहेतुः, तच्चेश्वर चोदनाभिन्यकाद्धमदिव। इसकी व्याख्यामें उदयनाचार्य कहते हैं-

ईश्वरचोदना वेदः तत्प्रतिपादिताद्धर्मात् निःश्रेयसम् इति भाष्यार्थम् ।

इसकी व्याख्यां करते हुए दुंढीराज शास्त्री लिखते हैं— श्रुतिस्मृतिपुराणोपदिष्टयोगविधिना नैरन्तर्यसेवितान्द्रमीदेवतस्वज्ञानपुत्पद्यते तस्यान्मुक्तिर्भवति ।

अथोत् वेद-पुराण-धर्मशास्त्रोक्त धर्मके अनुष्ठानसे तत्त्व-ज्ञान और उससे मोक्ष होता है। गीताके-

ज्ञानं तत्परः श्रद्धावाँलभते ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (8139)

सं

हों

1

—आदिका भी यही भाव है । न्यायदर्शनाचार्य गौतमका भी यही कथन है—

तस्वज्ञानाजिःश्रेयसाधिगमः।

(818)

अग्निपुराणके ३८२ वें अध्यायमें सबका सारांश इस प्रकार निरूपित है—

भोगेष्वसक्तिः तथैवात्मावलोकनम् । सततं श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलोद्गीतभेव हि॥ निर्मसत्वससङ्गता। सर्वत्र समद्शित्वं श्रेयः परं मनुष्याणां गीतं पञ्चशिखेन हि॥ आध्यात्मकादिदु:खानामाचन्तादिप्रतिकिया श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतसेव आगर्भजन्मबाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनस् गङ्गाविष्णुप्रणीतकम् ॥ श्रेयः परं मनुष्याणां अभिजयोभेंदकरः प्रत्ययो यः परात्मनः । तच्छान्तिपरसं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहतम् ॥ सर्वविधित्सानामात्मनः हानिः सुखहैतुकी। परं मनुष्याणां देवतोद्गीतमीरितम् ॥ कामत्यागात् तु विज्ञानं सुखं ब्रह्म परं पदम्। कामिनां न हि विज्ञानं सनकोद्गीतसेव तत्॥ (अग्निपुराण ३८२। ३--१०)

इसमें कपिल, पञ्चशिख, देवल, जनक, ब्रह्मा, विष्णु, सनत्यु,मार, गंगा आदिके मतसे भोगोंमें अनासक्ति, कामनात्याग एवं आत्मावलोकन, समदर्शिता, निर्ममत्व, अभेदज्ञान, वराग्यादि-को ही परम श्रेय कहा गया है। यही बात भागवतके भी—

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम्। सुखं तरित दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम्॥

(8128104)

श्रेयसामिह सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः।

किं वा श्रेयोभिरन्येश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः॥

(४।३१।१५)

---आदि स्टोकोंमें भी कही गयी है। महाभारत आदिमें

भी इस 'श्रेय'के निरूपक कई अध्याय हैं। शान्तिपर्वके २८७ वें अध्यायमें युधिष्ठिरने भीष्मिपतामहसे यही प्रश्न ही किया है कि शास्त्रके तत्त्वको न जाननेवाले व्यक्तिके लिये 'श्रेय' पदार्थ का वर्णन कीजिये। इसपर भीष्मके उत्तरके सारभूत श्लोक ये हैं—

बृद्धानां प्युपासनम्। गुरुपुजा च सततं कृटस्यं श्रेय उच्यते॥ श्रवणं चैव शास्त्राणां निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता। श्रेय एतदसंशयम्॥ सद्भिश्च समुदाचारः सर्वभूतेषु व्यवहारेषु मार्दवं चार्जवम्। वाक चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतद्संशयम्॥ सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्। यद्भतहितमत्यन्तमेतत्सत्यं बबीस्यहम् ॥ अहंकारस्य च त्यागः प्रमादस्य च निग्रहः। संतोष इचैकचर्या च कृटस्यं श्रेय उच्यते॥ धर्मेण वेदाध्ययनं वेदान्तानां तथैव ज्ञानार्थीनां च जिज्ञासा श्रेय एतदसंशयस्॥ नक्तंचर्या दिवास्यसमालस्यं मैथुनं मदम्। अतियोगसयोगं च श्रेयसोऽथी परित्यजेत्॥

(महा० ञा० प० २८७। २, १७—२४)

तदनुसार गुरुजनोंकी पूजा, दृद्ध पुरुपोंकी परिचर्या, शास्त्रों का श्रवण, पापकमोंसे पराङ्मुखता, सत्संग, सदाचारका पाठन, सबसे मधुर एवं सच्चा व्यवहार, मधुर भाषण, परिहतस्त्री सत्यका कथन, अहंकारका त्याग, प्रमादका संयम एवं वेद-वेदान्तका स्वाच्याय तथा ज्ञानप्राप्तिका प्रयत्न—ये ही श्रेष हैं। इन्हींका नाम 'कत्याण' है। कत्याणकामीको रातमें दूमना, दिनमें सोना, आलस्य, चुगली, अहंकार, अत्यधिक श्रम या एकदम निष्क्रियताका सर्वथा परित्याग करना चाहिये। इसके अगले अध्यायमें भोक्ष' एवं उसके साधनोंको 'श्रेय' कहा है। २९० वें अध्यायमें पराज्ञारने जनकके प्रति धर्महीको परम श्रेयस्कर वतल्या है—

धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परस्य च। तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः॥ (शा० २९०।६)

'यत्ते रूपं कल्याणतमम्' (ईशावास्य १६, बृहदारण्य' ५।१५।५) आदि मन्त्रोंके अनुसार तथा 'शिव' वार्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दीप

बैठा समझ छोग

बैठा मैं क्य

सब तत्त्व

पास

मैं दं

अच्छ

किया

भाड़

छेड़

देखने

220

निया है

नदार्थ-

श्लोक

होनेसे 'कल्याण' भगवज्ञामवाचक भी है। भागवतमें भी कहा है-परसक्खाण नमः परमसङ्गलः। नमः (2012013年)

शंकर, रामानुज, निम्बार्क, रामानन्द आदि भगवान्को िनिखिल कल्याण गुणगणसय' कहते हैं-

·स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम् ।' 'क्ट्याण्ये प्रणतां बृद्धये सिद्धये कूर्मो नमा नमः।' (देवीभा० ५। ११)

'कल्याणी' देवीका नाम आया है।

यावता वित्रकृटस्य नरः श्काण्यवेक्षते । कल्याणानि संमाधत्ते न पापे कुरुते मनः॥ (बाल्मीकि अयोध्या० २ । ५४ । ३०)

'कल्याण'का अर्थ लोगोंने 'पुण्य' 'ग्रुम' 'मङ्गल' किया है। स्वामी दयानन्दजीने 'यजुर्वेद' (२६।२) में 'कल्याणी वाक्'का अर्थ वेद किया है।

इस तरह संक्षेपमें 'कल्याण'की व्याख्या हुई । पाठक इसे विस्तारसे समझकर अपना 'कल्याण'करनेका प्रयत करेंगे, ऐसी ग्रुभाशा है।

मेरी अकृतज्ञता

(लेखक---श्रीशिशिखरजी नागर, एम्० ए०)

मुझे न जाने क्या हो गया था। सारा शहर जब जेवमें डालकर घरसे वाहर निकल पड़ा। पटाखे चलाना दीपोंके प्रकाशसे जगमगा रहा था । मैं अँघेरी कोठरीमें मैं अविवेकका चिह्न मानता था। इसलिये पाटनकर बैठा था। जनकोलाहलसे मैं दूर भागता था। लोग बाजार न जाकर नई सड़ककी ओर चल पड़ा। समझते थे कि मैं बड़ा एकान्तसेवी साधक हूँ । जब दीवाळीके दिन भी इस सड़कपर अंधकार मिळ जायगा। लोग ख़ुशीसे उछल-मचलकर पटाखे चला रहे थे, मैं जब मैं छाया टॉकीजको ओर बढ़ा, मैंने एक भिखारीको बैठा ऑसू बंहा रहा था। न जाने दूसरोंको खुश देखकर धर्मशालाके पास चवृतरेपर बैठे देखा। मैं भी उसके मैं क्यों उदास हो जाता था। मुझे ऐसा लगता—मानो वे सब विचारहीन मूर्व थे और मैं संसारभरका महान् तत्त्ववेत्ता ।

मेरी समझमें इसका एक कारण था। एम्० ए० पास करनेपर भी मुझे मेरे योग्य नौकरी नहीं मिली। मैं दो सौ रुपये वेतन पाकर तथा बढ़िया सूट पहनकर भी मनसे किसी दीन चियड़ोंमें लिपटे भिखमंगेसे अधिक अच्छा अपनेको नहीं समझता था । मेरा भी कोई जीवन है ! भगवान्में मेरा विश्वास था । उसने मेरे लिये क्या किया। अन्यायी कहींका ! एम्० ए० पास कराके भी भाड़ झुकवा रहा है । ऐसे विचारोंने मेरे मनमें संग्राम छेड़ दिया था।

दीवालीकी बात है। पास-पड़ोसवाले सब दीवाली देखने चले गये। कमरा मुझे काटने लगा। अठनी

पास जा खड़ा हुआ । सिर्फ यह देखनेके लिये कि वह आज क्या महसूस कर रहा है।

पाससे देखा वह मुसकरा रहा था । लोगोंकी उछल-कूद तथा शरारतें देखकर वह तन्मय हो रहा था। पटाखोंकी लड़ियाँ जब किसी बंद कनस्तर या घड़ेमें चलती थी, वह तालियाँ बजाने लगता था।

मैंने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए पूछा---

'बावा! कहाँ के रहनेवाले हो ?' 'माईसोर' 'इधर कितने दिनसे हो ?' 'डेढ महीना हुआ इघर' 'अकेले हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

28)

लन तरूपी

ास्त्रों-

एवं श्रेय

मनाः म या इसके

हि। स्कर

ण्य० चर्क

प्रं

अ

श्

उसे

लै

पश्चि

खर

धार

प्रदे

कार

प्रदे

चेत

कैस

वह

भी ध

दूसरे

दोपह

ज्वार

हम

बताया

'बीबी उधर अंबी' वह हिंदी बोलनेकी कोशिश कर रहा था।

'कहाँ ?'

'हैदराबाद ।'

'दीवाली देखी तुमने ?'

'मस्त धड़ाका--बहुत मजा।'

भीटी रोज मिलती है ?' मैंने उसके मर्मको छूनेका प्रयत्न किया।

'कभी भूखा नई'

'दिनभर माँगना पड़ता है ?'

'नई' दो रोटी बस'

'आज खाई ?'

'नर्ड'

वह इसिलिये भूखा रहा क्योंकि आज दीवाली है। बड़ी अजीव बात है। सामने हलवाईकी दूकानपर भीड़ लगी थी। मैंने पूछा—

'मिठाई खाओगे ?'

'जरूर' उसने निःसंकोचभावसे उत्तर दिया। अठनी निकालकर मैंने उसके हाथपर रख दी। फिर सोचा कि यह बेचारा भिखारी पैसे देकर भी भीड़में दुतकारा जायगा, मिठाई लाकर मैंने उसके हाथमें दे दी। वह उसपर टूट पड़ा। प्रश्न करते हुए मुझे संकोच तो हो रहा था; लेकिन मैंने पूछ ही लिया—'तुम ईश्वरको मानते हो ११ गुलावजामुन खाते हुए भरे गलेसे वोला—

'हाँ, --क्यों ?'

'यह तुम्हें रोटीतक नहीं देता और तुम उसे मैंने तर्क उपस्थित किया । वाछ् शाहीका आधा टुकड़ा उसके हाथमें था । यह जोरसे हँसा ।

'कैसा शक करता अवी ?' मुझे उसकी हँसी बुरी लगी।

'रोटी क्या बोलना, मिठाई देता अबी तो' आर्ध बाल्रशाहीको मुँहमें रखते हुए बोला । मैं निरुत्तरना हो गया ।

'मिटाई तो मैंने खिलायी है' तर्क करते हुए मैंने कहा।

'तुम कूँ कुन भेजा जी इधर ?'

'अपने आप ही आया हूँ'

'आम तो माँगा नई'

'मैं तुम्हें न खिलाता तो'

'कुन किसको खिलाता जी' अपना टाटका ^{बंहर} उठाकर चल दिया वह ।

कितना अकृतज्ञ था वह । कितना अकृतज्ञ था वै ईश्वरके प्रति । मेरी और उसकी अकृतज्ञतामें क्या अन्तर था । विश्वास यदि दीया है तो कृतज्ञा उसका प्रकाश ।

प्रियतम ! किसी भी रूपमें आओ !

आओ चाहे वनकर झपटते झपक झंझावात । करते चाहे प्रलयंकर वन आओ पवि-पात॥ मन्द्-सुगन्ध-मलय-मारुत आओ चाहे शचि वन सुखखान। सौम्य सुधा बरसाते चाहे आओ वन सुधांशु भयंकर-सुन्द्र तुम्हारे विविध विश्व-आधार। रूप लूँ तुरंत पहचान, न भूलूँ, किसी वेषमें तुम्हें निहार॥ नवीन रूप धर नटवर ! छीछा तुम करते स्वच्छन्द। प्रणत-पद्-रज में नत-सिर पल-पल



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'हारेको हरिनाम'

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

नदी घड़ियालोंसे भरी थी, आकाश मच्छरोंसे, तटीय प्रदेश लम्बी घासोंसे, जिनमें विषेले सर्पोंकी गणना नहीं और वनमें हाथी, शेर, तेंदुए, चीते। बृक्षोंपर भी निरापद शरण लेना सम्भव नहीं था। वहाँ भी सर्प और तेंदुए सम्छन्द छलाँग ले सकते थे।

38

मानते

....,

ुवड़ा

हँसी

आधी

तर-सा

हुए

वंडल

या में

क्या

त्त्रता

उसने सोचा भी नहीं था कि वर्माके इस प्रदेशमें उसे रात्रि व्यतीत करनी पड़ेगी। सूर्यास्तके पूर्व ही वे लौट जायँगे, ऐसा उनका विचार था। लेकिन सूर्य पश्चिममें पहुँच चुके और अब भी पता नहीं है कि वह खयं कहाँ है। अपने शिविरसे कितनी दूर है।

किसी भी मानचित्रमें इधरकी नदीके मोड़ों एवं उसकी धाराओंका स्पष्ट अङ्कन नहीं है । इस दलदलसे पूर्ण प्रदेशमें आनेका साहस कोई नहीं करता । जब प्रातः-काल वह चला था, सबने रोका था उसे । एक अज्ञात प्रदेशमें केवल अनुमानके भरोसे जाना अच्छा नहीं, यह चेतावनी उसे अनेक बार मिली थी; किंतु वह शिकारी कैसा जो इस प्रकार दर जाय ।

केवल एक मल्लाह प्रस्तुत हुआ था साथ चलनेको । वह मल्लाह इस ओर एक बार आ चुका था । आया वह भी था दुर्घटनावश ही; किंतु मार्ग उसने देख लिया था। दूसरे लोगोंमें सब हतोत्साह करनेवाले ही थे।

'नदीकी कई धाराएँ हैं। मुख्य धारासे चलें तो दोपहरतक समुद्रके समीप पहुँच जायँगे और जब समुद्रमें ज्वार आयेगा, नौका अपने आप ऊपर बह निकलेगी। हम दोनों संध्यातक यहीं आ जायँगे !' उस मञ्जाहने बताया था।

'शिकारके लिये मगर, शेर और दूसरे जानवर

सरलतासे मिलेंगे !' यह बात पक्की थी—'नदीकी इस धाराका मानचित्र ठीक बनाया जा सकेगा !' यही बड़ा प्रलोभन था; क्योंकि वह वन-प्रदेशका अधिकारी भी तो है। देशको ठीक मानचित्र देना उसके कर्तन्यमें आता है।

इस ओर उसका पड़ाव आया था सात दिन पूर्व । वनका सर्वेक्षण चल रहा है । साथमें डाक्टर है, कई दूसरे कर्मचारी हैं और हेलीकोप्टर यान है । दलदलीय प्रदेशमें सर्वेक्षणका काम आकाशसे ही करना पड़ता है; किंतु इधर वन बहुत सघन है । पानीमें भी सर्वत्र ऊँची घास खड़ी है । आकाशसे नदीकी धाराका पता ही नहीं लगता । इन सब कारणोंसे और शिकारके प्रलोभनसे वह इतना हठ नहीं करता । मुख्य प्रलोभन था नदीके मार्ग-का अङ्कन करनेवाला वह माना जायगा और जब एक मल्लाह मार्गदर्शक है, साहस क्यों न किया जाय।

एकके स्थानपर दो छोटी नौकाएँ पसन्द की उसने । दोनों नौकाओंमें पीनेका पानी, दोपहरका मोजन, दूरवीन तथा अन्य आवश्यक सामान । लेकिन प्रस्थान करनेके दो-ढाई घंटे बाद ही दोनोंने समझ लिया कि उनके सब अनुमान ठीक नहीं हैं । नदीमें बहुत मोड़ थे—अनुमानसे बारह मोड़ । धूपमें तेजी आयी तो शरीरका चमड़ा जैसे भस्म होने लगा । दोनों नौकाएँ एकमें बाँध दी गयीं और उन्होंने बारी-बारीसे खेना प्रारम्भ किया ।

मच्छरोंका आक्रमण चल रहा था। उनसे बचना कठिन था। विड्याल मिले—अच्छे बड़े भी मिले; किंतु मिल्लाहने सलाह दी कि 'अभी कारत्स उपयोगमें न लाये जायें। पता नहीं कब कैसी परिस्थिति आ पड़े।' अब उसे भी अपने मार्गज्ञानपर भरोसा नहीं रह गया था।

H

हो

खड

दूस

था,

भार

झप

पीठ

जो

को

वल

सम्

सम

सम

पड़ीं

अद्भु

वह

विद्

जब

कूदा

उसे जो कुछ मार्गके विषयमें स्मरण था, वह बहुत धुँघला एवं अपूर्ण था। नदी आगे चलकर दो धाराओंमें विभक्त हो गयी थी और उसे यह पता नहीं था कि उनमें मुख्य धारा कौन-सी है। वह किस धारासे परिचित है।

'तुम एक धारासे जाओ और मैं दूसरीसे।' अन्तमें उन्होंने निर्णय किया—'नदीकी दोनों धाराएँ अवस्य आगे मिल गयी होंगी। प्रत्येक दशामें हम तीसरे प्रहर लौट पड़ेंगे और यहाँ आकर दूसरे साथीकी प्रतीक्षा करेंगे!'

दोनों नौकाएँ पृथक्-पृथक् चल पड़ीं । अब न मच्छरोंको भगानेका अबकाश था और न हाथोंको नौका खेनेसे विश्राम मिलना था । नदीसे घासके सड़नेकी गन्ध आ रही थी । ऊँची घासको चीरते ही नौकाको मार्ग बनाना था । साथका भोजन समाप्त हो गया और पानी भी । दोपहर ढलनेके लगभग है । प्रत्येक मोड़पर लगता है कि अब आगे दूसरी धारा आ मिलेगी; किंतु मोड़ बीतते ही दूसरा मोड़ दीखने लगता है ।

संयोगसे तटपर सूखी भूमि दृष्टि पड़ी । कुछ फलके वृक्ष भी थे । पके मधुर फलोंने आकृष्ट किया । नौका तटसे बाँध दी एक धासके झुरमुटमें और कूद पड़े । राइफल भूमिमें पटक दी वृक्षपर चढ़ते समय । बड़े खादिष्ट फल—भरपेट जमकर खाया । शाखापर बैठकर शरीरको विश्राम दिया; किंतु जब उत्तरनेकी इच्छा की—'हे भगवान्!'

नीचे राइफलकी नालपर सूर्यकी किरणें चमक रही थीं और एक कछावर शेर उसपर पंजे रखकर गुर्रा रहा था। वह राइफलके सर्वेक्षणमें लगा था। वृक्षपर भी कोई है, इस ओर उसका ध्यान नहीं था।

'अब क्या हो ?' बृक्षपर शिकारीका रक्त जमा जा रहा था। उसकी पतऋनकी दोनों जेबोंमें रिवाल्वर हैं; किंतु रिवाल्वरकी गोली वनराजको क्रुद्ध करनेके अतिरिक्त और कर भी क्या सकती है। विपत्ति अकेली नहीं आती । तटकी ओर दृष्टि गर्या तो नौका नदारद । नदीका पानी अब पूरे वेगसे नीवे बह रहा था । समुद्रमें सम्भवतः भाटा आ चुका था। नदी उत्तर रही थी । पानीमें प्रवाह आनेके कारण नौका नीचे बह गयी थी । घास उसे रोकानेमें समर्थ नहीं हुई। अपनी असहायताका अनुभव करके उसके मुखसे चीव निकल गयी ।

कभी-कभी अनचाही बात भी सहायक हो जाती है। शेर गुर्राया चीख सुनकर । उसने सिर उठाकर उप देखा और उठ खड़ा हुआ । पता नहीं क्या सोचा उसने किंतु धीर पदोंसे वनमें चला गया । शिकारीकी जानमें जान आयी । वह उतरा वृक्षसे । नदीके किनारे-किनो नौका हूँ दने चलनेके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं प उसके पास । एक आशा थी—'कदाचित् कहीं घासे या मोड़पर वह अटक-उलझ जाय ।'

कितनी दूर गया वह, स्वयं उसे पता नहीं। कि छिपनेको आ गया। नौकाका पता न मिलना था, वि मिला। अब अन्धकार होनेसे पहिले उसे कोई कि स्थान रात्रि व्यतीत करनेको हूँ ह लेना चाहिये। समुहं ज्वार आयेगा तब नौका स्वतः ऊपर लौट आयेगी—र्यं आशा थी।

उसने ठकड़ियाँ इकही कीं। अन्धकार होनेसे कि अग्नि जला ली। अब अग्निके सहारे रात्रि-ज्यतीत कि सकता है वह। लेकिन सूर्यास्तके साथ बादल ला ग्ये अन्धकार ऐसा कि अपना हाथ भी दिखायी न दे। अग्नि बार-बार लकड़ियाँ डालता रहा। यही एक आश्रव प्राणरक्षाका। उसे लगा कि लकड़ियाँ थोड़ी हैं। आर रात भी अग्नि जल नहीं सकेगी। अग्निके प्रकाशमें कि उधर दृष्टि दौड़ायी तो नदीके समीप एक बड़ा कि कुन्दा दीख पड़ा। वह गया और घसीटते हुए कुन्दे ले ही आता—पर कुन्दा उसके समीप पहुँचते ही पार्ति सरक गया। 'घड़ियाल!' काँप गया उसका शरीर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ष्टें गर्य

नीवे

ा था।

नौ वा

हुई। ते चीख

ती है।

ऊपा

उसने

जान-में

-किनारे

नहीं य

घासमे

। दिन

था, र

समुद्रो

नेसे प्र

त वी

ा गये । अक्रि

श्रय ध

आर्ध

并郯

का

कुन्देव

पानी

11

अभिन स्वतः बुझनेवाली थी, वर्षा ऊपरसे प्रारम्भ हो गयी। राइफलका सहारा लिये वह वृक्षके तनेके समीप खड़ा हो गया। अब अन्धकारमें राइफल भी व्यर्थ थी। दूसरी ओर नदीका पानी बढ़ रहा था। वह जहाँ खड़ा था, वह भूमि धीरे-धीरे जलके भीतर होने लगी।

वृक्षपर कोई कृदा—कोई भारी वनपशु और नदीमें भारी व्यनि हुई। तेंदुआ और घड़ियाल—मृत्युने अब अपहा मार दिया था उसके ऊपर। एक कड़ा झटका पीठपर लगा और राइफल हाथसे छूटकर पानीमें छपाक करती गिरी।

'हे भगवान्!' प्राण जाते समय प्राणीके कण्ठसे जो आर्तनाद फूटता है—विना अनुभवके कोई उस स्वरको समझ नहीं सकता। कोई आशा, कोई युक्ति, कोई बळ जब नहीं रह जाता और मृत्युका कराळ खुळा जबड़ा सम्मुख दिखायी पड़ता है—अहोभाग्य उसका जो उस समय भी उस परम सहायकको पुकार सके! उस सर्व-समर्थको पुकारकर तो कोई कभी निराश नहीं हुआ है!

सहसा आकाशकी घटामेंसे चन्द्रमाकी किरणें निकल पड़ीं। उसने उस ज्योत्स्नाधीत जलमें जो कुछ देखा—अद्भुत, रोमाञ्चकारी और चिकित कर देनेवाला दश्य था वह। उसके ठीक पीछे तेंदुआ कूदा था और अब उससे घड़ियालका युद्ध चल रहा था। सम्भवतः घड़ियालने जब स्वयं उसका पैर पकड़ना चाहा, तेंदुआ बृक्षपरसे कूदा। घड़ियालके मुखमें तेंदुएका पैर आ गया था।

विड्याल उसे खींच रहा था और एक पैर किसी जलमें डूबी वृक्षकी जड़में अड़ाये तेंदुआ दूसरे पैरके पंजे घड़ियाल-पर फटकारे जा रहा था । घड़ियाल पूँछ फटकार रहा था, जिससे तेंदुआ उसे मुखपर न मार सके और इस युद्धमें उछलते छीटे समीप खड़े मनुष्यको भिगा रहे थे ।

उसने झुककर पानीमेंसे अपनी राइफल उठायी। कण्ठसे फिर निकला—'दयामय प्रमु! और सिर उठाता है तो देखता है कि कोई काली लम्बी वस्तु नीचेसे ऊपर नदीमें ज्वारके वेगमें वहती चली आ रही है। दो क्षणमें स्पष्ट हो गया कि वह उसकी नौका है।

x x x

'मैं सायंकाल यहाँ पहुँचा था !' मल्लाह ठीक वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था, जहाँसे वे पृथक् हुए थे। 'नदीकी मुख्य धारा वह है, जिससे आप गये थे। किंतु यह शाखा छोटी है। ज्वारने जब मुझे यहाँ पहुँचाया— अँघेरा घिर आया था। किसी प्रकार मैं रस्सी बृक्षमें उलझाकर यहाँ रात्रिमें टिका रहा।'

भी सर्वया असहाय हो चुका था ! अरुणोदयके समय वे मञ्जाह से मिले थे और नावमें साथ चलते हुए बता रहे थे— 'नदीके मार्गकी शोध और मेरी रक्षा उसने की जो सदासे असहायकी रक्षा करता आया है। जब मेरा वल थक गया, शल गिर गया, वह दयाधाम मेरी रक्षा करने आ पहुँचा था !

उपदेशके दोह

तन जात है, सकै तो राख बहोरि। कविरा यह करोरि॥ जिनके गये, लाख हाथों वे सभी वजावै गाल। खड़े, आसपास जोधा कराल॥ मंझ महल सों है चलाः काल पंसा Sho बाबरे, जानै मेरा पिंड प्रान सीं वंधि रह्यी, सो अपनो





उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक-सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रह्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

गताङ्कसे आगे]

बीपलकोटीके बाद बदरीनाथ-मार्गकी अपनी तीन दिनोंकी बदयात्रामें हमने केवल दो जगह रात्रि-मुकाम किया। पहला पीपलकोटीसे १९ मीलपर जोशीमठमें तथा दूसरा ८ मीलपर पांडुकेश्वरमें । इन दोनों स्थानोंपर वदरीनाथ-मन्दिर कमेटीके अतिथि आल्योंमें हमारे ठहरनेकी व्यवस्था की गयी थी और उनके सुन्यवस्थित और सुविधापूर्ण होनेके कारण दो रात्रि हम मुखकी नींद सोये थे। अल्पकालके लिये मार्गमें गुलावचट्टी और आज इनुमानचट्टीमें भी ठहरनेपर इन चट्टियों की वही दुर्दशा थी, जो यमनोत्तरी और गङ्गोत्तरी मार्गकी चट्टियोंकी। किंतु अब तो इम अपने पड़ावके संनिकट ये और कुछ ही घंटोंमें अपने मनोरथके धाम बदरीनाथकी पावनपुरीमें प्रवेश करनेवाले थे। भोजनोपरान्त लगभग आधा-पौन घंटा विश्राम किया और हनुमानचट्टीसे बद्रीविशालकी जय बोलकर आगे बढे। अब इम समुद्र-सतहसे आठ हजार फुट ऊँचाईपर चल रहे थे। अतः शीत पर्याप्त बढ़ गयी थी, फिर बूँदा-बाँदी शुरू हुई । च्यों-च्यों हम आगे बढ़ते गये, वर्षा भी बढ़ी और वर्षाके साथ तथा ऊँचाईके कारण शीत भी । परंत इस हिमवत शीतका हमारे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ रहा था। इसका कारण था-अपरसे हम गरम वस्त्रों और अपने छाते-बरसातीसे मुसजित ये तो भीतर भक्तिभाव भरे उत्साहसे । अतः हमें मौसमकी यह कुछ प्रतिकृलता भी बड़ी भली मालुम पहती। बदरीनाथ पुरी समुद्र-सतहसे १०,२४४ फुटकी ऊँचाईपर स्थित है। हमें अपनी इस पाँच मीलकी मंजिलमें २,२४४ फुट ऊपर चढ़ना था। जो यद्यपि ४००० फुटपर स्थित पीपलकोटीसे जब हम एक ही दिनमें १९ मीलकी यात्राकर ६१५० फुटपर स्थित जोशीमठ पहुँचे थे, उससे कुछ ही अधिक थी तथापि समयके लिहाजसे पीपलकोटीके बाद इस मार्गकी यह चढाई अत्यधिक थी । पीपलकोटीसे जोशीमठकी २१५० फुटकी चढ़ाई हमने लगभग ग्यारह घंटेमें १९ मीलका मार्ग चलकर और अपने पास शेष बचे कुछ ही समयमें तय करनी थी अतः कुछ हिम्मत तो वढ़ानी ही थी । हमारे साथ दो महिलाएँ काफी बुद्ध थीं और जोशीमठकी १९ मीलकी मंजिलमें वे काफी जर्जर भी हो चुकी थीं । अतः इन्हें हमने दो बोड़ोंपर

सवार कर आगे बढ़ाया । किरायेपर रुपया-सवा रुप् मीलपर केदारनाथकी तरह इस ओर भी अच्छे घोड़े मिल को हैं। हम सब लोग भी जिसके पास जो वाहन था ,कोई कंडीपर— कोई डंडीपर सवार हुए और कोई अपने चिर साथी पाँजी अपनी लाढीके सहारे लादे बढ़े जा रहे थे। मार्गमें जाते-जाते काफी यात्री हमें मिल रहे थे-इन यात्रियोंमें प्रायः देशहे विभिन्न प्रदेशोंसे आये हए। दिल्ली, उत्तरप्रदेश, विहार राजस्थान, वंगाल, वंबई, मध्यप्रदेश, पंजाब, दक्षिणके महात आन्ध्र और मैसूर—प्रायः सभी प्रदेशोंके यात्री हमें मिले। मार् अमके कारण अनेक बार ये यात्री क्षणभर विश्रामके लि रकते और एक दूसरेसे 'बदरीविशालकी जय' बोल परिक लेते । हमलोग उत्कण्ठासे लौटते यात्रियोंसे बदरीनाथकी ही पूछते । बड़े कुपाभावसे ये हमें कहते—तीन मील होंगे, धीर धीरे चलिये । चढाईपर अनेक वार अधिकांश यात्रियोंके दुसरोंको भीरे-धीरे चलिये, यह उपदेश देते देखा गया है। कैसा ममत्व देखा मानवका मानवके प्रति हमने यहाँ। य इस पुण्यक्षेत्रका ही प्रभाव था। अव हमें वदरीनाथके चारी ओरकी हिमानी शिखरावली भी दिखने लगी थी।

संख्य

मनसे

चल पारव

पुरीमें

युगोंर

से हि

दैला

बृहत्

विपुर

और

यह ि

रावल

परंतुः

मीलर

योजन

श्रेणि

पूर्व

ये हि

नारा

अथव

दूर-दृ

अन्त

जान

परम

वरस

नर 3

मध्या

तलह

चेतन

पाँच मीलके मार्गि ह्नुमानचट्टीसे बदरीनाथपुरीके लगभग साढ़े तीन मीलकी चढ़ाई है। पुरीसे लगभग सब मील पूर्व देवदर्शनी नामक स्थान है। यहाँसे पुरीके दर्शन होते हैं । लगातार चढ़ाई चढ़नेके उपरान्त देवदर्शिन पहुँचकर पुरीके दर्शन, पुरीमें स्थित बदरीविशालके मन्दिर्ह शिखरके दर्शनकर थके-माँदे यात्रीको जो सान्त्वना मिली है, उसका वर्णन करना कठिन है । देवदर्शिनी एक ऐस स्थान है जहाँ चढ़ाई समाप्त हो जाती है और चढ़ाई समा होते ही अनजाना यात्री विश्रामके लिये यहाँ एक क्षण रुकी चाहता है। किंतु, ज्यों ही उसकी दृष्टि पुरीपर पड़ती है, उस^ह पग बरवस आगे वढ़ पड़ते हैं। हृदय प्रफुलित हो उठता है भगवद्दर्शनोंकी लालसामें । फिर, हम लोगोंको तो बताया ^{गर्व} था देवदर्शनीसे पावनपुरीके दर्शन होते हैं। हम आस्तिकमा ये ही और आकुल मनसे देवदर्शनीकी प्रतीक्षामें थे। यहाँ पहुँवी ही हमने भव्य पुरी और भगवान् बदरीनाभके मन्दिरकी हर्ष मेल जाते

गेपर—

पाँचोंको

ाते-जाते

देशके

, विहार

मद्रास,

ते । मार्गः

मके लि

परिचय

की दूरी

गे, धीरे

गात्रियोंको

गया है।

हाँ। य

कि चारो

मार्गम

ाग सर्व

ह दर्शन

वद्शिनी

मन्दिरहे

मिलती

(क ऐस

है, उसके

उठता ध ताया गर्य कर प्रणाम किया और भगवचरणोंका ध्यान कर उल्लासभरे मनसे भगवान् 'बद्रीविशालकी जय' वोल तत्क्षण पुरीकी ओर चल पड़े। २ जुलाईके ५ बजे पुण्यसिलला अलकनन्दाको पुलसे पारकर पुनः-पुनः भगवान् बदरीविशालका जयघोष करते उस प्रीमें प्रवेश किया, जिसकी रटना हमारा मन इस जीवनमें युगोंसे लगाये था, पूर्वजनमकी राम जानें।

बदरीनाथ पुरी हिमालयकी अगणित शिखरोंवाली शिखरावली-से विरी हुई है। उत्तुङ्ग शिखरोंपर हिम छिटका हुआ-सा कैला है। पुरीके निकट नीलकण्ठ पर्वतको छोड़, जिसपर हिम वहत् राशिमें जमा है, शेष शिखरावलीपर केदारनाथके सहश विपुल परिमाणमें हिम दृष्टिगोचर नहीं होता। परंतु, इस छिटके और फैले हुए हिमकी भी अनुपम शोभा थी। जिन शिखरोंपर यह हिमराशि फैली हुई है, उन ऊँचे शृङ्गोंको छोड़ शेष शिख-रावली उसी प्रकार दिगम्बर है, जैसी केदारनाथकी शिखरावली। परंतुः केदारनाथकी पर्वतश्रेणियाँ तो केदारनाथसे एक-डेढ मीलसे ही दिगम्बर हुई हैं। बदरीनाथकी शिखरावली तो योजनोंसे तरुरहित नंग घडंग है। फिर बदरीनाथकी इन गिरि-श्रेणियोंमें छोटे-बड़े शिखरोंकी जितनी पंक्तियाँ हैं, उतनी इसके पूर्व हमने इस यात्रामें कहीं नहीं देखी थीं। पुरीके चारों ओरके ये शिखर केदारनाथके गिरिश्टङ्गोंके सदृश अपना सर्वस्व बदरी-नारायणके चरणोंमें समर्पणकर दिगम्बर हो एक शैल-समाज अथवा शिखर-सम्मेलनके रूपमें आराधना-लीन दृष्टिगोचर होते। दूर-दूरतक इनकी चोटियोंपर पड़े हिमकी छवि छटा निहारते वनती । स्वर्णिम संध्या थी । पद-चुम्वनके अभिलाषी मेघ अन्तरिक्षसे उतरकर इन शृङ्गोंका स्पर्श करते, फिर ऊपर उठते, जान पड़ता ये इनका पूजन कर रहे हैं और इस प्रभु-पूजासे परम प्रसन्न हो आकाशसे देवगण इनपर हिमरूपी स्वेत पुष्प बरसा रहे हैं। ऐसी पर्वतश्रेणियोंके बीचमें विशेषकर दो प्रहरी नर और नारायण पर्वतोंके संरक्षणमें बसी यह पुरी, जिसके मध्यमें भगवान् बदरीनाथका मन्दिर और निकट ही पहाड़ोंकी तल्हरीमें शानसे बहती अलकनन्दा युग-युगोंसे मानवकी धार्मिक चेतनाका उसकी आध्यात्मिक आस्तिकताका स्रोत लिये उमड़ रही है।

स्नानादिसे तो हम आज पाण्डुकेश्वर और फिर हनुमान-स्तिकभा^र चेडीमें निवृत्त हो आये थे । अतः शारीरिक दृष्टिसे तो पवित्र पहुँच^{िये ही}ः साथ ही आत्मिक दृष्टिसे भी सर्वथा निष्पाप थे। को हर्ष पुलकितहृद्य अलकनन्दाका पुल पारकर हम लोगोंने पारन

पुरीमें प्रवेश किया और पलक मारते ही हम मन्दिरमें पहुँच गये । हमारी चित्तदृष्टिमें अव हमें समयका कोई भान नहीं था। एकाम्र और मुकभावसे भगवान् वदरीविशालकी मूर्तिके सम्मुख खड़े अपना पूर्वपरिचय पा रहे थे। हमें ऐसा लगा कुछ हमारे भीतरसे जा रहा है, कुछ भीतर आ रहा है। 'ईस्वर अंस जीव अविनासी' की अनुभूतिसे आज हम आत्म-विभोर ये । भगवान् वद्रीविद्यालको एकटक निद्यारते, नेत्रोन्मीलन करते, कभी बंद कर लेते और फिर टकटकी लगा लेते । समाधिके सदृश तन्मय अवस्थामें हमने अनन्त रूपोंमें अनन्त भावोंसे भगवत्साक्षात्कार किया । प्रभु-प्राप्तिकी लालसासे भरा अथाह समुद्र, जो सांसारी-मायाजालकी, काम, क्रोध, लोभ-मोहकी मिट्टीके घेरेमें भव-भावनाओंमें जाने कबसे उफन रहा था, उछल रहा था, अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे बाहर बह निकला। मोहकी मिट्टीका बाँघ आज उसे नहीं बाँघ पा रहा था । अपने भक्तिभावकी सरिता, जो भीतर उमद रही थी, अलकनन्दाकी तरह विकल भावसे वह निकली। वह वियोग, जो कालकी कलुषिमाके कारण उद्देग वन गया था, इस संयोगके होते ही क्षणमात्रमें नेत्रद्वारसे चौधारे आँमुओंमें पानी बनकर बहने लगा। भक्तिके प्रवाहमें इस भगवत्साक्षात्कारमें हमने साधकोंके सुखकी, संन्यासियोंके संयमकी, योगियोंकी समाधि-की, विरागियोंके बङ्प्यनकी और तपस्वियोंके त्यागकी सारी सम्पदा सहज ही समेट ली।

भगवद्र्शनके बाद हम अपने मुकामपर पहुँचे और कुछ जलपान किया । सामान आदिको व्यवस्थित कर अपना वदरीनाथका कार्यक्रम निश्चित किया । अभीतक हमारी सम्पूर्ण यात्रा पूर्ण रीतिसे धार्मिक विधि-विधानसे चली थी और हमारी इच्छा थी कि बदरीनाथजीमें भी हम यहाँके सभी धार्मिक संस्कार विधिवत् करें । शास्त्रीय विधानके अनुसार बदरीनाथजी-में तीर्थयात्रीको तीन रात्रि मुकाम करना चाहिये। इस नियमके अनुसार हमारा भी यहाँ तीन रात्रि मुकाम था और इस हिसावसे हमें ५ जुलाईको प्रस्थान करना था। अपने इस तीन रात्रिके मुकाममें हमारे पास जो दो दिनका समय था, उसमें हमें यहाँके सभी धार्मिक कृत्य विधिवत् करने ये और वदरीनाथ पुरी और उसके चतुर्दिक् छाये सौन्दर्यकी घटा-छटा भी देखनी थी । यहाँके प्रमुख देवस्थानों और तीर्थस्यलोंका निरीक्षण करना था। इसने अपने पंडा, जिनकी मंख्या सात थी। की सहायतासे सर्वप्रथम भगवान बदरीविद्यालके

संइ

मुझ

बङ्ग

थे

पिर

गय

भा

ai

या

राष्ट्र

इस

श्रा

पुरी

भग

अल

छोट

भी

छोर्ट

अल

विच

दूरत

शोभ

धार

नये

थे,

खन्द

तारह

धर्मञ

उसी

कला देवा

परंतु

इस

कलइ

यह र

बाईवे

पूजनका कार्यक्रम निश्चित किया और यहाँके नियमानुसार यात्री भगवत्यूजाके जिन संस्कारोंको करना चाहता है, उनके लिये अपनी भेंट खरूप उसे एक दिन पूर्व बदरीनाथ मन्दिर कमेटीके कार्यालयमें रुपया जमाकर पूजाकी व्यवस्था करा लेनी पड़ती है। यह हमने सर्वप्रथम की। श्रीवद्रीविशालके पूजा-संस्कारोंकी एक छपी सूची यहाँ मिलती है, जिसमें पूजन-नियमका समूचा ब्योरा रहता है। इस छपी सूचीमेंसे हम-लोगोंने रुचि और श्रद्धानुकूल भगवत्-भेंट निश्चित की और अपनी यह भेंट मन्दिरके कार्यालयमें जमा करने पहुँचे। यात्रियोंकी खासी भीड़ थी, सभी अपने मनोरथोंकी मेंट लिये प्रस्तुत थे। कार्यालयके व्यवस्थापक बड़े विज्ञ और शिष्ट पुरुष थे। उन्होंने गोविन्ददासका सारा कार्यक्रम वनाया और भीइ-भाइसे मुक्त ४ जुलाईका समय पूजनके लिये दिया। व्यवस्थापकने गोविन्ददाससे कहा--आप बड़े भाग्यवान् पुरुष हैं, ४ तारीख़को केवल आपका ही कार्यक्रम है, ऐसा अवसर इस यात्राकालमें कचित् ही आता है। आप शान्ति-पूर्वक भगवत्यूजनकर भगवद्भक्तिका आनन्द ऌ्ट सकेंगे । हमारे कलके कार्यक्रममें एक प्रधान कार्य था ब्रह्मकपालपर गोविन्द-दासद्वारा पितरोंका श्राद्ध ।

दूसरे दिन तीन तारीखके प्रातःकाल अलकनन्दाके तटपर नारदशिलाके तप्तकुण्डोंमें हमने विधिपूर्वक संकल्पकर स्नान किये और दान इत्यादि भी। इन कुण्डोंके इतिहास-माहात्म्यकी चर्चा इम आगे करेंगे। फिर मध्याह्नमें गोविन्ददास सपत्नीक ब्रह्मकपालपर पितरोंका श्राद्ध करने गये। ब्रह्मकपालके श्राद्धका सनातनधर्ममें सर्वांपरि स्थान है। यहाँका श्राद्ध यथार्थमें हरिद्वारसे आरम्भ होता है। हरिद्वारमें पहला श्राद्ध होता है, उसके पश्चात् देवप्रयागमें दूसरा श्राद्ध और अन्तमें ब्रह्म-कपालमें तीसरा और अन्तिम श्राद्ध । ब्रह्मकपालमें पिण्डदान देनेके पश्चात् फिर पिण्डदान नहीं होता, यह पिण्डदान भगवान् वदरीनाथके प्रसादी भातका होता है। गोविन्ददासने इस यात्रामें अन्य धार्मिक कृत्योंके साथ ही श्राद्धका कार्यक्रम भी प्रमुख रूपसे रक्खा था। उन्होंने पहला श्राद्ध विधिपूर्वक हरिद्वारमें किया, दूसरा देवप्रयागमें और तीसरा तथा अन्तिम ब्रह्मकपालमें । इस श्राद्धसे उन्हें जो सन्तोष्र हुआ, ब्रह्म-कपालके श्राद्धके समय तथा उसके उपरान्त भी हमें उनकी इस अवसरकी भावपूर्ण मुद्रासे ज्ञात हुआ । उन्होंने कहा भी कि वे अपनेको अनेक दृष्टियोंसे बड़ा सौभाग्यशाली मानते हैं, देशकी स्वाधीनताके युद्धके आरम्भसे अन्ततक उनका भी

छोटा-सा भाग रहा, साहित्य-रचना और हिंदीकी राजभाष पद्पर प्रतिष्ठित करनेके प्रयतमें भी वे एक छोटा-सा साक वन सके और ब्रह्मकपालमें उनके कुटुम्चका कोई भी व्यक्ति जो पितृऋणसे उऋण नहीं हो सका, उस ऋणसे भी उक्का होनेका उन्हें सौभाग्य प्राप्त हो सका । इस श्राद्धमें एक औ विशेष बात हुई। जब श्राद्ध करानेवाले पण्डितने उनसे पण कि गुरुओंके रूपमें आप किसे पिण्डदान देना चाहते हैं है उन्होंने बल्लभसम्प्रदायमें उन्हें दीक्षित करनेवाले गुले अतिरिक्त महात्मा गाँधीका नाम भी बताया जो उन्हे जीवनको प्रेरणा देनेवाले उनके प्रधान गुरु थे। श्रीमां कस्त्रवासहित महात्मा गाँधीको भी उन्होंने पिण्डक किया। यह पितर-श्राद्ध गोविन्ददासके अतिरिक्त हमारे ए दो साथियोंने भी किया था, उन्हें छोड़ रोष अपने मुकासर थे, केवल गोविन्दप्रसाद एक दर्शकके रूपमें गोविन्दरालं साथ थे। इस आद्धके महत्त्व, माहात्म्य, विधि-विधान औ दृश्यका वर्णन करते हुए जो उन्होंने वहाँ देखा-सुना व कुछ कामकी वातें सुनायीं । उन्होंने कहा-

क्या था भारतकी सभ्यताका, संस्कृतिका, उसकी गहरी धार्मिक आस्तिकताका ए सजीव चित्र । अपने पितरोंकी मुक्तिकी चाहमें यहाँ ए दो नहीं सैकड़ों ही व्यक्ति एकत्र थे । सभी समुदायों, ब और अवस्थाओं के विभिन्न भाषा-भाषी, विभिन्न प्रदेशीय इनमें कोई तो नितान्त समृद्ध दिखायी देता तो कोई सर्व दीन-दिरद्र । कोई वस्त्र-परिधानोंसे सर्वथा सुसजित था कोई फटे चिथड़ोंसे तन ढाके था। कोई युवक था, है समवयस्क तो कोई वृद्ध जर्जर । पाठशालाके सदश कर्ता ये सभी अपने दोनों हाथोंकी अञ्जलिमें कुशा थामे मूक्रभा बैठे थे। सामने पण्डित जोर-जोरसे मन्त्रोच्चारण करता कर्ता एक छोरसे दूसरे छोरतक जाता और फिर छौटता है, वै बीचमें इन यात्रियोंसे मन्त्रोंके कुछ वाक्योंको और पितृष्टि चाहसे भरे कुछ शब्दोंको बोलनेके लिये कहता है। सब^{-केर} सहपाठ-सा करते पण्डितोंके उन कथनोंका। ऐसी वि श्रद्धा—अटूट आस्था और उदार हृदयसे होता यह ^{श्रार} सव-के-सब दक्षिणा देते श्राद्ध करानेवाले पण्डितको भक्तिभावसे पद-स्पर्श करते । श्राद्धकी इस सारी प्रक्रिय धनी-निर्धनोंके, छोटे-वड़ोंके, विभिन्न जातियोंके, भिन्नी प्रदेशोंके और विभिन्न भाषा-भाषियोंके मानवोंके इस समूहमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ाग ३६

जभाषा

साधाः

व्यक्ति

ो उन्हा

एक औ

नसे पूरा

ते हैं तं

हे गुहरे

नो उनवे

श्रीमतं

पिण्डदान

गरे एक

मुकामपा

ोन्ददास[े]

धान ओ

-सुना ध

उसः

का ए

यहाँ एव

दायों, वं

प्रदेशीय

ई सर्वे

त था

था, ब

रा कताए

मूकमार्

ता कतार

पितृसुरि

सब-केर

सी विं

हि आई

तको 3

महमें अ

पुन्ने कहीं कोई पृथक् छोटा या बड़ा अमीर या गरीब, मदासी या बङ्गाली, गुजराती या केरलवासी नहीं दिखा। यहाँ सब-के-सव वे भारतवासी—एक माताकी, भारतमाताकी संतान, एक पिता भारत राष्ट्रके पुत्र और इसी दृष्टिसे में तो गढ्गद हो गया । जब-कबके साइद (गोविन्ददास) ने गाँघीजीका आब किया। बापू यथार्थमें किसी सम्प्रदायविशेषके, किसी वर्ग-विशेषके किसी जाति-विशेष अथवा किसी प्रान्तविशेष या भाषाविशेषके ब्यक्ति नहीं थे-इन सबसे परे वे भारत राष्ट्रके वरद पुत्र थे, मानवताके पुजारी थे, विश्ववन्छ थे और इस नाते वे इर भारतवासीके प्रत्येक नर-नारीकी श्रेष्ठ श्रद्धाके श्राद्धके अधिकारी हैं।

आज इमने मध्याह्नके बाद भोजनीपरान्तका अपना समय पुरीके पर्यटन, यहाँके पुष्यस्थलोंके निरीक्षण तथा मन्दिरमें भगवद्दर्शनों में बिताया ।

एक गढ़के सदद्य अरण्यलण्डोंसे आवृत पुण्यसिल्ला अलकनन्दाके दाहिने तटपर अवस्थित बदरीनाथ पुरी न छोटी, न बड़ी एक सुन्दर उपनगरी-सी दिखती है। बिजली भी लग गयी है। जिससे इसकी शोभा दूर-दूरतक फैली छोटी-छोटी किंतु समृद्ध-सी दूकानों, तंग सकरी गलियों और अलकनन्दाके तटपर स्नान-पूजन करते तथा पुरीमें यत्र-तत्र विचरण करते भगवद्भक्तोंके समूहोंसे द्विगुणित हो गयी है। दूरतक फैले छोटे-वड़े पक्के मकानोंसे सुसज्जित अनुपम शोभायुक्त यह पुरी अपने स्थामतनपर स्वेत हिमके शिखर धारण किये शोभायमान थी । रात्रिमें बिजलीके प्रकाशसे इसके नये बने कुछ इवेत मकान अपनी छवि-छटा छिटका रहे थे, जो हमें दूरसे हिमखण्डों से दृष्टिगोचर होते। वस्ती सर्वथा स्वच्छ तो नहीं है, परंतु बहुत गंदी भी नहीं। डाकघर, तारघर, चिकित्सालय, डाकवँगला और कुछ अच्छी सुन्दर धर्मशालाएँ हैं। जहाँ बदरीविशाल विराजमान हैं उस खलपर उसी स्थापत्यकलाका शिखर हैं जिस प्रकारकी स्थापत्य-कलाके शिखर केदारनाथ और इस ओरके अन्य प्राचीन देवालयोंके हैं जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। परंतु, बद्रीनाथके इस मन्दिरका शिखर केदारनाथके तथा इस ओरके अन्य मन्दिरोंसे भी छोटा है। शिखरपर स्वर्णका कलश है। कलशके नीचेका शिखर स्वर्ण-वेष्टित है। शिखरपर यह स्वर्णपत्र होल्कर राज्यकी प्रसिद्ध धर्मप्रिय महारानी अहिल्या-बाईके द्वारा ल्यावाया गया है। इस शिखरके आगे एक गुम्बब और है, जिसे कुछ वर्ष पूर्व ही भीवंशीकाल अवीरचंद

डागाके परिवारवार्टीने बनवाया था। उस समय स्थापत्य-कलाकी विभिन्नताओं तथा उनके वर्गीकरणपर उस प्रकारका वैज्ञानिक विवेचन नहीं हुआ था जैसा अब हुआ है। इस लिये दुर्भाग्यसे यह गुंबन मिरनदोंकी गुंबनोंकी आकृतिके सहरा हो गयी है और इसके पीछे मन्दिरके पुराने शिखरसे कोई मेल नहीं होता। इस गुंबजके आने मन्दिरमें प्रवेश करनेका सिंह-द्वार है। प्रवेश करनेके स्यलपर इसका जो पटाव है और इस पटावके दोनों ओर जो टोलियाँ हैं तथा इस द्वारपर जो छोटा-सा कलशोंवाला शिलर है उसकी स्थापत्य-कला दूषित नहीं । मन्दिरके सभी भाग पत्थरके हैं । मन्दिरके चारों ओर कुछ छोटी-छोटी इमारतें भी हैं, इन इमारतोंमें जिस स्थानमें मन्दिरकी गद्दी और भण्डार है वह इमारत हैदराबादके प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीशिवलाल मोतीलालके कुटुम्बियोंकी बनवायी हुईं है। बदरीनाथका मन्दिर तीन भागोंमें विभक्त है । भीतर छोटा-सा गर्भगृह है, जिसके अन्तिम छोरपर भगवान् बदरीविशालकी तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। यहीं बायीं ओर रावल और उनके सहायक बैठते हैं। गर्भग्रहके बाहर एक सभामण्डप है जिससे लगा हुआ एक और मण्डप है । यात्री-प्रवेशद्वार इसी तीसरे मण्डपमें है, मध्य मण्डपमें यात्री खड़े होकर भगवदर्शन करते हैं। किंतु स्थान इतना कम और भीड़ इतनी अधिक रहती है कि लोगोंको दर्शनोंमें काफी कठिनाई होती है।

स्थापत्यकला और विशालताकी दृष्टिसे वदरीनाथके मन्दिर-में कोई विशेषता नहीं है। विशेषता है, उत्तराखण्डके इस प्रसिद्ध धाममें और श्रीवदरीविशालकी इस प्रतिमामें । वदरीनाथ-की यह प्रतिमा लगभग डेंद्र फुट ऊँची है। मूर्ति स्थाम वर्णके पाषाणकी है। मूर्तिके पीछे प्रस्तरकी ही पीठक है, मृतिं और पीटक दोनों एक ही पाषाणखण्डकी हैं। प्रतिमा-दर्शनसे ही ज्ञात हो जाता है कि यह प्रतिमा मानवद्वारा निर्मित न होकर अन्य कुछ प्रतिमाओंके सददा अनगढ़ है।

प्रातःकाल मन्दिरमें जब अभिषेकके दर्शन होते हैं, तब प्रतिमाके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब स्पष्टरूपसे आरती द्वारा दिखाये जाते हैं और उस समयके दर्शनोंके सम्बन्धमें कहा जाता है— ·जाकी रही भावना जेसी। प्रमु मूरित देखी तिन तेसी॥°

—हम अपने अनुभवके आधारपर भी कह सकते हैं कि यह कथन सर्वथा सत्य है। बदरीविशाल इस मूर्तिके माध्यम-से पद्मासन लगाये हुए तपस्यामें निमम हैं। उनकी दो भुजाएँ एक इद्धपर दूसरा इस्त रक्खे हुए उनकी दोनों

रहस्योः

की है,

मानव

साथ ह

हैं, जि

शिर:शु

अमेरिव

音一

चमत्क

क्रिया उ

विडम्ब

कम पा

सइज

रासाय

रखने,

रसायन

समाचा

मासिक

तथा ५

कई अंव

भी हुए

बढ़ता

तथा रे

लिये ही

भोजन :

नीतिक :

प्रलयका

आसमा

रही है।

गाँव-गाँव

१९६१

म

जानुओंपर स्थित हैं। अतः कुछ बौद्धोंका कथन है कि यह मूर्ति बौद्धमूर्ति है, कुछ जैनी इसे पारसनाथ या ऋषभदेवकी बताते हैं। किंतु उपर्युक्त कथनके अनुसार सत्य यह है कि जिसकी जैसी भावना होती है, उसे प्रभु उसकी भावनाके अनुसार दृष्टिगोचर होते हैं । जो उनका विष्णुरूपसे दर्शन करना चाहते हैं उन्हें इन दो भुजाओं के अतिरिक्त पीठक-में ऊपरकी ओर दो मुजाएँ और दिखती हैं, साथ ही वश्चः खल-पर भृगुलता और श्रीवत्सके चिह्न । इस प्रकार वे चतुर्भुज विष्णु हो जाते हैं । जो उनके शिवरूपमें दर्शन करना चाई उन्हें मुखारविन्दके नीचे वद्धःस्थलसे कटिभागतकका भाग शिवलिङ्गके रूपमें दर्शन देता है। यही भाग गणेशभक्तींको गणेशकी सुण्डके सहश दिखता है। यदि बौद्ध बुद्धरूपमें और जैन अपने तीर्थंकरके रूपमें दर्शन करना चाहें तो उन्हें वे उसी रूपमें दर्शन देंगे । एक ही मूर्तिके इस प्रकारके विभिन्न अवलोकन इस मृर्तिकी सबसे बड़ी विशेषता है। हमारे मतमें बदरीनाथकी मूर्ति भारतीय देवत्वके नानामुख-स्वरूपोंका एक विलक्षण संगम तीर्थ है । जहाँ सभीको अपनी भावनाके भगवान, वैष्णवको विष्णुके, शैवको शिवके, जैनको तीर्थेकरके और बौद्धको बुद्धके दर्शन हो जाते हैं। तीर्थकी इस विशेषता-के कारण वैष्णव, शैव, बौद्ध और जैनियोंका यदि सम्मिलन हो जाय तो इससे अधिक हर्षकी और क्या बात हो सकती है। परंतु चित्रके इस प्रकाशयुक्त उजले पक्षका एक दूसरा पहलू भी है, वह है दुराग्रहपूर्ण यह विवाद कि यह मूर्ति विष्णु-की मूर्ति न होकर बुद्धकी या जैन तीर्थेकरकी मूर्ति है। हमारे धर्मकी उदारता, सहिष्णुता, सारगर्भिता और समन्वय-वृत्ति तो सर्वविदित ही है। वह देश-काल, जाति और समाजविशेषसे सदा ही निरपेक्ष रहा है। हमारा अध्यात्म हमारा दर्शन सबमें अपना और अपनेमें सबका दर्शन करता है। भारतीय दर्शनका निचोड़ श्रीमद्भगवद्गीता कहती है-

यो मां पश्यति सर्वेत्र सर्वे व मिय पश्यति। तस्याहं न प्रणक्यामि स व में न प्रणक्यति॥

अपनी इसी भावनाके कारण इमारी संस्कृतिका मूलमा सहिन्याता बना और इमने अपने इसी हिष्टकोणके कारण क सबमें अपनेको और अपनेमें सबको देखा। और इसीक्र इमारी विष्णु, शिव, बुद्ध, जैन तीर्थेकर सभीपर समान अव है। और हमारी ही क्या वैदिक वर्मावल स्वयोंने तो गौतम अवतार ही माना है तथा संकल्पमें यह काल बौद्धावतारका क मानकर 'बौद्धावतारी' कहा जाता है । यही क्यों, हमारे क तो अल्लोपनिषत् तक बना । मुसल्मानोंके पीरोंके मक्त्री वने, इमने मन्दिरोंके सहश उनकी पूजा की । आज भी है करते हैं। इमने विचारों और भावनाओंकी इस एका बाह्य भिन्नताको भुलाकर सदा ही उस द्वेतकी इस हती संधिपर अद्वैतका परदा डालकर उसे पाटा और अनाचार जगह सदाचार, अधैर्यकी जगह संयम तथा प्रतिशोधकी जा सहिष्णुताकी प्रतिष्ठा की । हमारा आचार-विचार वेदान्तके ह कुछ सूत्रोंमें "'अहं ब्रह्मासि", 'तत्त्वमित', 'सर्व खल्विदं म और 'वसुधैव कुटुम्बकम्'में स्पष्टरूपसे परिलक्षित है। स्री सभी धर्मोंको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हुआ हमारा धर्म 'सर्वेदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति' के मतपर चळता है इस दृष्टिसे भगवान् बद्रीविशालकी दर्शनकी, जिससे हम हमारे वैदिक धर्मकी, भारतीय अध्यात्मकी अलकनन्दा निकली, एक तेजोमय प्रतीक व हुई है । काश ! हम भारतकी भावनाएँ, धर्मकी धार्ण और समयकी मान्यताएँ इस मूर्तिके माध्यमसे यहाँ देख पर् यदि हमें वह दृष्टि मिल जाय तो यमुना, गङ्गा और सरस्वी पुण्य प्रयागकी भाँति भारतका मानस यहाँ लहराने लगे 🕯 'वसुचैव कुटुम्वकम्' की सरितामें सरावोर हो गतिः में युक्त अपनी भावनाओंके और भगतिसे सहज लूट ले।

अभिलापा



रहै राग-रति, रंचक माया-ममता-मोह । हो निमग्न सुधानिधि-पदानन्द-संदोह ॥ मन मिलिन्द पान-रत पद्-पङ्कज-मकरन्द् । रह नित्य निरङ्करा निशिदिवस निरवधि निति निर्द्धन्द ॥ न मन ही मन बन्यौ, बनै तुम्हारी यन्त्र । यम्त्री फूँकी लहा निज मनमाने



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वैज्ञानिक विडम्बना

(लेखक--श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

विगत पचीस वर्षों अन्तर्गत विज्ञानने मानव-शरीरके रहस्यों, रोग-निदान, ओषधि-निर्माण एवं प्रयोगों में जो उन्नति की है, उससे दुनियाकी वीमारियों को तुरंत दूर करने और मानवकी आयु बढ़ाने के दावे किये गये हैं; परंतु उनके साथ ही मानवमें नये-नये रहस्यमय रोग उत्पन्न होने लगे हैं, जिनके निदान और चिकित्सामें वैज्ञानिकों को भ्रम और शिरःशूल होने लगा है । इन विषयों के समाचार यूरोप-अमेरिका के डॉक्टरी अखबारों में अक्सर प्रकाशित हुआ करते हैं । मानवी रोगों के निदान, चिकित्सा के प्रयोग, नयी चमत्कारिक ओपधियों के निर्माण और कालान्तरसे उनकी प्रतिक्रिया औद्योगिक और सरकारी नीतिमें क्या रहस्य और कैसी विडम्बना है, यह जनसाधारणको नहीं मालूम होता ।

लमन

ण सः

सीहि

तिमइ

का कार

मक्व

री हो

र्कता

चारः

ते जव

कि इ

दं ब्रह

सृष्टि

धर्म'

ज्ता है.

क ब

शरण

र पाय

स्वता

गे औ

का मु

मशः

मानवके दुःख-दर्द दूर करने, उसे यान्त्रिक उपायों से कम परिश्रम लेने और अधिक आराम देने, खेतीको अधिक सहज और उत्पादक बनाने, अन्न-साग-फलों की फसलों को रासायनिक प्रयोगों से सुरक्षित करने, अधिक कालतक कायम रखने, अन्य पशुओं से अधिक खाद्य मांस और मानबोपकारी रसायन औषध प्राप्त करने आदिविषयक पाश्चात्त्य वैज्ञानिक समाचारों के सार तत्त्व मेरी लेखनी से 'कल्प ब्रक्ष' आध्यात्मिक मासिक पन्न, उज्जैनके जुलाई १९५७ से अप्रैल १९५९ तक तथा 'क कल्याण' मासिक (गोरखपुर, उ० प्र०) में विगत कई अंकों में प्रकाशित हो चुके हैं तथा अन्य पत्रों द्वारा उद्धृत भी हुए हैं। उन विषयों को न दुंहराकर में आगे बढ़ता हूँ।

संसारकी तीव्रगतिसे बढ़ती आबादीका पेट भरनेके लिये तथा रोगोंसे मरनेवालोंको मौतसे बचाकर जिंदा रखनेके लिये ही ये सब उपाय होते हैं और इनकी विषमतासे पुनः भोजन और स्थानकी कमीसे उत्पन्न आर्थिक समस्या राज-नीतिक उलझनें उत्पन्न करती हैं तो उन्हें सुलझानेके लिये पलयकारी अस्त्र भी बन चुके हैं, अतएव पृथ्वी छोड़ आसमान ढूँढ़कर अन्य प्रहोंमें जा बसनेकी भी योजना हो रही है। रूस, अमेरिकाद्वारा उपग्रह छोड़े जानेके समाचार गाँव-गाँवके गँवारोंतक पहुँच चुके हैं।

जहाँ अन्न-साग-दूध-फल कम प्राप्य हैं अथवा इनके प्रति अरुचि या इनका कम प्रयोग होता है, अथवा इनसे मानव-पेटकी पूर्ति नहीं होती, उन देशोंमें मांस-मछलीका उत्पादन वढ़ानेके वैज्ञानिक प्रयोग उद्योग होते हैं । मांसके लिये पाले गये पशुओंके शरीरमें अन्य मादा-पशुके यौन-हारमोन के प्रयोग करनेसे वे अधिक मोटे तगड़े होते हैं। एक जानवरके ६० रुपये अधिक मिलते हैं, इससे मांसकी खेती बढ़ती है। ऐसे मांसका आहार करनेसे पेट तो भरता है; परंतु कालान्तरसे शरीरपर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह उस समय नहीं मालूम होता और न प्रचारकों, प्रयोगी वैज्ञानिकोंको इसकी कल्पना होती है । विगत ९ सितम्बर १९५८ को रायो डि जेनीरो (दक्षिण अमेरिका) से मेजा गया 'रायटर' नके संवाददाताका समाचार कनाडाके किचनर वाटरद् रिकार्डमें छपा था, जिसमें वताया गया था कि ब्राजील देशके लोगोंको ऐसा मांस खानेसे घुणा हो गयी है; क्योंकि इससे उनका पौरुष घटता अनुभव होता है । इस समाचारसे वहाँके मांस-विक्रयमें ८० प्रतिशत कमी हो गयी । सरकारी अधिकारियोंद्वारा जाँचकी रिपोर्डमें ऐसे गोमांस (beef) से न पुंसकता ही नहीं, वरं मनुष्योंमें छैंगिक परिवर्तन होना भी बताया गया। "The contaminated beef was said to cause not only impotence but even to produce a change of sex in men." ये प्रयोग मुर्गियोंपर §भी किये गये, उनकी गतिमें भी ऐसा ही असर हुआ । एक सप्ताह पश्चात् कुछ ऐसा ही

^{*} नवम्बर १९५८, मार्च-अप्रैक १९५९-१९६०-

^{*} Female sex hormone † Reuter

[†] Kitchener Waterloo Record

[§] It is now several years since a group of mink farmers in the States (U. S.) discovered their animals becoming sterile. The cause was eventually found to be presence of a hormone in chicken offal which was being fed to the mink. The hormone was a residue from pellets introduced into the chickens' flesh some weeks earlier with the intention of de-sexing the birds and so ensuring a quiet and un-argumentative temperament. A chicken which neither fights nor runs about vigorously converts more of its feed into saleable flesh.

मुनां

बातों

चमर

और

हो ः

रीक

अमे

भरव

ब्रिटि

सबवं

हानि

जाता

मशह

क्षय

इंग्लैंड

श्री

और

अखब

दुनिय

पोलि

के रू

दी ज

शरीर

उसे व

प्रणाल

विस्तृत

लिये :

उम्र प्र

दवाक

तेल×

लिये

प्रभाव

मति ह

समाचार लन्दनके 'डेली एक्सप्रेस'में १६ सितम्बरके अंकमें छपा था कि 'ग्रहिणियोंने ऐसे औषध-प्रयुक्त मांस खरीदना बंद कर दिया है ।' इस घृणित विषयकी चर्चा हम इस सास्विक भारतीय श्रेष्ठ पत्रमें आगे नहीं करना चाहते। यद्यपि इन दूरकी विदेशी चर्चाओंको आप भारतसे सम्बन्धित न जानकर भले ही महत्त्व न दें; परंतु वस्तुतः वैज्ञानिक क्षेत्रमें इस युगमें सभी देश परस्परके अनुयायी हैं, एक हैं, पृथक् नहीं तथा भारत तो ऐसी वातोंकी नकल करनेमें शीघ कदम बढ़ाता है। खेतोंकी ट्रैक्टरोंद्वारा गहरी जुताई, भूमिमें रासायनिक खादका मिश्रण, फसलोंकी कीटाणुओं, चूहों, चिड़ियों आदिसे रक्षाके लिये रासायनिक छिड़काव आदि अनेक उगाय भारतमें पश्चिमसे ही तो आये हैं; अतः ये सव हमारे जानने, सीखने और इनसे अपनी रक्षाका उपाय करने योग्य है । विष तो विष ही है, चाहे जितनी अधिक या सुक्ष्म मात्रामें हो। वह जब दूसरे जन्तुओंका नाश करता है तो मानवपर उसका अभी सूक्ष्म, और क्रमशः संचित होते हुए कालान्तरसे इन प्रयोगों-का अधिक प्रभाव प्रकट अवस्य होगा । मनुष्य जो कुछ खाता है उसीसे उसका शरीर बनता या विगड़ता है।

वैज्ञानिक दृष्टिसे पीनेका पानी निर्गन्ध और स्वादरहित होना चाहिये । गाँव-गाँवके कुओंके पानीमें भूतत्त्वोंकी भिन्नताके कारण कुछ हल्का या भारीपन होता है, निद्योंका पानी बहकर प्रायः समान होता है, परंतु आधुनिक शहरी जल-प्रदायोंद्वारा मिलनेवाले पानियोंमें स्वाद गन्धकी भिन्नता पायी जाती है। पानीमें शहद, शकर, गुड़ घोल देनेपर वह पानी न होकर शरवत कहा जाता है और घुलनशील तत्त्वोंकी न्यूनाधिकतासे उसमें स्वाद गुण होता है। अनेक शहरोंके पानियोंके विषयमें रासायनिक तत्त्वोंके घोलके कारण फीके या अधिक मीठे शरवत-जैसी वात यहाँ बन जाती है। बम्बईके पानीमें गन्ध स्वादकी विशेषता है और वहाँके लगभग पंद्रह सी व्यक्तियों का इलाज करके मैंने वहाँके पानीके साथ जिहा और पेटसे उनके स्वास्थ्यका इतिहास जाना । सब कहते हैं-यहाँका पानी खराब है। वैज्ञानिक विधिसे रासायनिक तत्त्वोंसे ग्रुद्ध (?) पानीमें यह स्वाद और गन्धकी कैसी विडम्बना है! पानी नहीं, यह विषयोल है। वैज्ञानिक प्रयोगोंसे उत्पन्न अन साग-फलोंके स्वाद-गुण-गन्य आदिमें स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न साग, फल, अन्नकी अपेक्षा बहुत अन्तर पाया गया है, ऐसा

अब चिकित्साके विषयको लीजिये । बीमारियोंकी रोक थामके लिये अनेक प्रकारके इंजेक्शन ईजाद और प्रयुक्त हो रहे हैं । नित्य नयी चमत्कारी दवाकी गोलियों औ इंजेक्शनोंके जादुई प्रभावका प्रचार हो रहा है । मधुमेह हृद्यरोग, दमा, कैंसर, लकवा आदि जो रोग पहले बृढोंक्रे होते थे, अब बचोंको होने लगे हैं। बालपक्षाधात आजक प्रमुख है। इससे बचनेके लिये वचोंको 'रक्षक इन्जेकान लगानेके लिये प्रचार किया जाता है। अमेरिकाके वहले अखवारोंमें इसके लिये बालपक्षाचात रक्षक राष्ट्रीय संसा द्वारा विज्ञापन प्रचारित किये गये थे। 'पोलियो'से रक्षित करने लिये जिन वचोंको यह इंजेक्शन लगाया जाता है, वे तो रक्षि वताये जाते हैं; परंतु उनसे दूसरोंको पोलियो होनेका भ रहता है। ऐसा एक समाचार लन्दनके 'न्यूज क्रानिकल' १४ नवम्बर ५८ के अंकमें छपा था और उसी दिने प्रकाशित ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में छपा था कि जिनके पोलियोंसे रक्षा मिल चुकी है, दूसरोंपर यह रोग उनसे फैलने भय रहता है-

People vaccinated against Polio may infect others, although they are safe themselves.

पोलियो-रक्षक टीकेका निर्माण अमेरिकाके डॉक्टर जोना साल्कने वन्दरके शरीरसे किया है। इस टीकेके निर्माण उनका उद्योग इतना बढ़ा है कि भारतसे लन्दन होकर १९५१ में २२ हजार बन्दर अमेरिका मेजे गये, १९५४ में इसी तिगुने ६६ हजार, १९५५ में ९३ हजार और १९५६ में एक लाख बीस हजार बन्दर भारतसे अमेरिका गये। जो बन्दर यहाँ दो रुपयेमें पकड़े जाते हैं, अमेरिका पहुँचकर उनकी कीमत तीन सौ रुपयेसे अधिक हो जाती है। फिर उस बन्दर्भ प्रन्थि-रस, रक्त, मांस, मवाद आदिसे बने इंजेक्शनका मूल भारत आकर कितना होगा ? टीका बनानेवाले 'बिंग'

समाचार लन्दन 'डेली एक्सप्रेस'के २१ नवम्बर १९५८ अंक्र्रे छप चुका है कि फसलमें स्वाद नहीं पाया गया और छिड़का होनेके वाद हजारों मक्खी, तितली और पश्ची मरनेके अतिरित्त १८ पशु उस खेतमें चरने धुसे, वे मर गये तो खानेवारे मनुष्य कबतक जियेंगे ?

^{*} Tasteless and odourless.

[†] National Foundation for Infantile Paralysis

[†] British Medical Journal.

38

अंको

इकाव

तिरित

नेवाहे

रोक.

ह हो

और

धुमेह,

[ढ़ोंबो

जक्ल

रान'

गहुतसे

स्था

हरनेके

रक्षित

भ्य

नेकल'

दिनके

जनको

लनेबा

may

तोना ह

र्माण

९५३

इससे

६ में

बन्दा

उनकी

न्दर्व

मूल्य

बढ़िय

lysi!

मुनाफेके युगं की कल्पनामें मस्त हो रहे हैं — ऐसा उन्हींकी बातोंसे मालूम हुआ । पंद्रह हजार बन्दरोंकी हत्या करके इस चमत्कारी ईजादसे डॉ॰ जोनास साल्क दुनियामें विख्यात और धनाढ्य वन गये तथा मानवोपकारी अवतार वनकर पूच्य हो रहे हैं। १९५७ में इंग्लैंडमें जिन ३२ वचोंको यह रक्षक दीका लगा था, आधेको पक्षाचात हो गया। १९५६ में अमेरिकामें ८९० वचोंको यह टीका लगाया गया था, महीने-भरके अंदर आधेसे अधिकोंको पक्षाचात हो गया। १५९७में ब्रिटिश मेडिकल रिसर्च कौंसिलने 'भेड़िया धसान' शरीतिसे सबको यह टीका लगानेके विरुद्ध सुझाव दिया था कि हानिकारक होनेके साथ इसमें डाक्टरोंका समय और धन व्यर्थ जाता है। इस टीकेमें स्ट्रेप्टोमाइसिन-जैसी एण्टिंबायोटिक मशहूर द्वाइयोंका भी मिश्रण किया जाता है जिससे मस्तिष्क क्षय होनेकी सम्भावना बतायी जाती है । १९५० में इंग्लैंडमें 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा ं के संस्थापक, स्वास्थ्यमन्त्री एन्यूरिन बीवनने इसकी जाँच करायी और अधिकारी डॉक्टर तथा विश्वमान्य अखवार 'लांसेट ६' ने समाचार प्रकाशित किये थे कि दुनियाभरमें, जहाँ डिप्थीरियाके टीके लगाये गये थे, लोगोंको पोलियो महीने भरके अंदर होना पाया गया।

कोई भी वस्तु हमारे शरीरमें खाद्य, पेय अथवा औषध-के रूपमें मुख, नासिका अथवा रक्त-चर्म मार्गसे डाली या दी जाय, उसका प्रभाव तीन प्रकारसे शरीरपर होता है। शरीर उसे पचाकर आत्मसात् कर लेगा या प्रतिकूल होनेपर उसे वमन या विरेचनद्वारा निकाल देगा अथवा शरीरकी पणालीमें किसी एक स्थानपर जमा कर देया सारे शरीरमें विस्तृत करके संचित कर दे। पाचन-प्रणालीकी सफाईके लिये जो जुलाव लिया जाता है वह शरीरके अनुकूल न होकरः उम्र प्रतिक्रिया-खरूप शरीर उसे निकाल देता है, लोग इसे दवाका लाभ मानते हैं। ऐसी ही एक वस्तु है पाराफीन तेल× । यह जैसा-का-तैसा निकल जाता है, लोग इसे शरीरके लिये हानिकारक नहीं मानते । परंतु इसका तात्कालिक मभाव कुछ न होनेसे, दीई कालान्तरसे होनेवाली हानिके प्रति हमें सजग रहना चाहिये। 'ब्रिटिश मेडिकल जर्नल'के २७ दिसम्बर ५८ के अङ्कर्मे एक लेखमें, फेफड़ेमें यह तेल पहुँच जानेसे, निदान होनेपर 'निमोनिया' होना बताया गया है। कोई भी ऐसे अन्तरङ्ग शोधक पदार्थ अनायास किंचित् मात्रामें किन्हीं अङ्गोंमें पहुँचकर हानि पहुँचा सकते हैं।

रोग क्यों और कैसे बढ़ते हैं ? चिकित्सा-विज्ञानी कीटाणुओंसे रोग होना और बढ़ना सिद्ध करते हैं और विपाक्त दवाएँ गोली, घोल अथवा इंजेक्शन प्रयुक्त कर रोग नष्ट करना मानते हैं और इसीका व्यवसाय करते हैं । परंतु कतिपय प्रौढ अनुभवी चिकित्सा-विज्ञानियोंने ईमानदारीसे अपने शोध प्रकाशित किये हैं। हृदयरोगीको डॉक्टर लोग अक्सर लेटे रहनेकी सलाह दिया करते हैं, अतएव इसे 'जीवनभर लेटे रहनेकी बीमारी' भी कहा जाता है। अपनी पुस्तक 'मानवीय रक्त-प्रवाहकी गंदगी*' में डॉ॰ एल्फ्रेड पुलफर्ड, एम० डी०ने अपने अनुभवसे लिखा है कि भात पचास वर्षों में शालाके विद्यार्थी वचों में २५ प्रतिशत हृद्यरोग और बालपक्षावात, तथा ४० प्रतिशत मानसिक विकार इंजेक्शनोंद्वारा रक्त-प्रवाहको दूषित करनेसे हुए हैं।' रोगी मर जाता है तो लोग समझते हैं कि रोगने वाहरसे आक्रमण किया था। डॉक्टरने विषाक्त ओषधिद्वारा उससे लडकर उसका इलाज किया। लेकिन इस विधाक्त युद्धसे शरीरके रक्तपर कैसा घातक प्रभाव पड़ा, इसकी कल्पना या प्रश्न कोई नहीं करता । ऐसे रोग विषम और जीर्ण वन जाते हैं, 'डॉक्टरों-द्वारा बनाया गया' यह रोग† कहा जाता है। आजकल लोग पेटेण्ट दवाइयोंके प्रचारित गुण जानकर, अपनी बीमारीकी दशामें अमुक पेटेण्ट दबाको अनुकूल समझकर खाने-पीने और इंजेक्शन केने लगे हैं, यह आत्म-चिकित्साकी पेटेण्ट पद्धति चलकर आत्मघाती सिद्ध हुई है। कब्ज होनेपर जुलाव ले लेनेकी अथवा एनिमा लेनेकी प्रथा चली आ रही है। किंतु ये दोनों प्रथाएँ आदत बनकर घातक होती हैं। पीयर्स साइक्लोपीडिया 🕇 — विविध विषयक कोशमें — मेडिकल विभाग-के संग्राहक डॉक्टरने कञ्जको कोई रोग नहीं माना, चाहे कई सप्ताहतक किसीको शौच न हो, वे कहते हैं कोई चिन्ता न करनी चाहिये।

जुलाव लेनेपर लगातार दस्त होनेसे

^{*} Mass Vaccination.

[†] Tuberculous Meningitis.

¹ National Health Service.

^{§ &#}x27;Lancet'.

[×] Liquid Paraffin.

^{*} Pollution of Human Blood Stream-Alfred Pulford M. D.

⁺ IATROGENIC disease.

[†] Pears Encyclopaedia.

रोग

HI

चर

विच

बढ

आ

इस

पहुँ

बिष

ल्या

कित

औ

'बड़े

रोर्ग

परहे

हृद

सर्

बार

पीने

पीते

होक

खार

ब्रेड

80

डॉक

तमा

मृत्य

फिर

मनग

सुग

यने

करने

लेनेपर ऑतोंकी गति करनेके लिये शामक दवा बिल्कुल मृतप्राय हो गयी, जिससे ऑतोंमें एक स्थानपर शुष्कता हो गयी और भूख-प्यास बंद हो गयी और कई महीनेतक कुछ भी खानेसे दस्त न होता था, केवल पेशाव होती थी, स्वयं चिकित्साद्वारा वनाये गये, 'ऑतोंमें कैंसर'की कल्पना न करके अनुमान निदानसे सर्जनने उसकी अन्त्रपुच्छ * काट दी, जिससे उसका दर्द सौ गुना बढ़ गया तथा बुखार आनेपर वैद्यजीने खयं कुनैनका इंजेक्शन लगा लिया और दूसरे दिन अस्पताल जाकर परलोक चले गये, ऐसे अनुमानित निदानसे उपचार घातक हुए हैं। डॉक्टरोंद्वारा ऐसे अनुमानित निदान और उपचारसे तंग आकर निराश होकर लोग आत्महत्या भी कर डालते हैं। जनवरी १९५९के ब्रिटिश मेडिकल जर्नलमें डॉ॰ विलियम ईवान्सने डॉक्टरोंके इस 'घोखाधड़ीके निदान' † विषयमें लिखा है कि उनके पास अन्य डॉक्टरोंद्वारा ऐसे अनुमानित गलत निदान और इलाजके एक इजार व्यक्तियोंके इतिहास मौजूद हैं जिनकी छातीमें जरा दर्द उठनेपर डाक्टरोंने उन्हें 'कोरोनरी थ्रोम्बोसिस' कह दिया था। ऐसे एक ४७ वर्षीय मोटरचालकका निदान कर उसे लेटे रहनेकी आज्ञा दी । कुछ दिनों पश्चात् एक दूसरे डॉक्टरने यान्त्रिक जाँच करके उसे 'एन्जाइना पेक्टोरिस' वताया । जिसमें थोड़ा-सा भी परिश्रम करनेपर रक्त-संचारकी कमीसे हृदयपर दबाव-दर्द जोरसे उठता है। डेढ़ महीने बाद डॉक्टरने उसे कामपर जानेकी आज्ञा दी। मोटर-कम्पनी-मालिकने इस 'लॅंगड़े हृद्य' 🖇 वालेको कामपर लेनेसे इन्कार कर दिया, किसी दूसरी संस्थाने भी उसे नौकरी नहीं दी । लोग डरते थे, उसका 'हेल्थ कार्ड' देखकर, कि इसकी बीमारीसे कहीं अचानक इसकी मृत्यु हो जाय इमें कितना नुकसान हो सकता है । अन्तमें निराश होकर, उसे द्युककर चलते हुए नदी किनारे किसीने देखा । उसने आत्महत्या कर छी। निकालकर उसके दृदयकी मरणोत्तर चीरफाइद्वारा जाँच की गयी तो हृदय सम्पूर्ण ठीक पाया गया, इदयमें कोई वैसी बीमारी न थी, जैसा कि दो डॉक्टरोंन निदान और इलाज किया था।

अपने दुःखदर्दसे मुक्ति पानेके लिये, दवा नामकी प्रचारित दुर्गन्धित घृणित दुनियाकी किसी भी गंदी चीजको अमृतकें नामपर लोग कैसे नाक दबाकर खा-पी जाते है अथवा रक्तमें घोल लेते हैं—अन्य जन्तुओंका रक्त, रस, मनाः वे नहीं पहचानते, इसीपरसे ओलिवर वेण्डल होम्सने कहा ग कि 'दवाके नामपर पृथ्वी या पातालमें, कोई भी वस्तु गंदी नहीं है। मल-मूत्र और आर्तव तथा शुकर आदिसे भी वे दवाएँ बनती हैं। उनके नाम होते हैं -- टाक्साइड, वेक्सीन (टीका), एण्टि टाक्सिन, और सैकड़ों नामवाले इंजेक्शन। इनके नाम हमारी समझमें नहीं आते । हम अन्य रोगी मानवें और पशुओंको विना पहिचाने, वैज्ञानिक रसायनके सूक्ष्मरूपों अपनी जीवन-रक्षाके निमित्त, अपने जाने-अनजाने किये पापी को धोनेके लिये--खा-पी जाते हैं। जिन्हें इम मुखद्वारा य मुईद्वारा अपने रक्तमें खाते-घोलते हैं—यदि वे मानव व जन्तु हमारे सामने उस दशामें, हमारे भोजनके रूपमें आर् तो हम सम्भवतः पागल हो जायँगे, परंतु वैज्ञानिक रूपानत देख, विना पहिचाने उन्हें खा-पीकर इम पागल नहीं होते और अहिंसक, धार्मिक, हिंदू-मुसल्मान-जैन-पारसी-ईसाई आदि निष्ठ-पूर्वक बने, पूजापाठ ध्यान-धारणा करते प्रतिष्ठित बने रहते हैं। इस युगके जीवनमें यह कैसी धार्मिक विडम्बना है!

दवाइयोंके चमत्कारका विज्ञापन अखबारों और रेडियो-द्वारा रोज धड़ाधड़ होता है। ब्रिटिश मेडिकल जर्नलको इन निज्ञापनोंसे वार्षिक साढ़े छः लाख रुपयेकी आमदनी है और उसी अखबारमें जिन दवाओंके विज्ञापन छपते हैं, उन्हीं दवाओंके निरुद्ध, होनेवाली हानियोंसे डॉक्टरों और जनताको सजग करनेके लिये ईमानदार सम्पादक और वैज्ञानिक लेखक कभी-कभी अपने अनुभवरूप लेख लिख दिया करते हैं। परंतु ये बातें जनता तक नहीं पहुँचतीं और निदान-उपचारमें सहस्रों डॉक्टर उन लेखोंको पढ़े बिना; दवा-उद्योगपितयोंके विज्ञापनोंसे प्रभावित होकर उन दवाइयोंका प्रयोग अपने अगणित रोगियोंपर करते हैं। ज्यों-ज्यों दवा दी जाती है, मर्ज बढता जाता है।

रोग वस्तुतः इन दवाइयोंसे दूर होता है या शरीकी प्राकृतिक रोगिनरोधक शक्तिसे १ इस विषयमें इंग्लैंडकें विश्वमान्य डॉक्टरी अखबार 'लांसेट' के ३ जनवरी १९५९ के अङ्कमें एक मेडिकल प्रोफेसरका लेख छपा है—'डॉक्टरोंने समाजका कौन-सा भला किया है १ लोग समझते हैं कि डॉक्टर हमें स्वस्य रख सकते हैं, रोग दूर कर सकते हैं, मौत टार्व सकते हैं, डॉक्टर भी हमारे समान ऐसा विश्वास रखते हैं। परंतु वास्तवमें लोग नहीं जानसे कि उनकी स्वाभाविक शारीरिंक

^{*} Appendix.

[†] Diagnostic unreliability.

I Electro cardiogram.

[§] Cripple-hearted.

38

1 3

मवाद

हा था

गंदी

री वे

स्सीन

शन।

निवी

रूपमं

पार्षो

रा या

व या

आय

गन्तर

और

नेष्ठा-

ते हैं।

डेयो-

र इन

उसी

ओंके

रनेके

अपने

निता

् उन

गवित

करते

ीरकी

हैंडके

९ के

टरॉने

TOP

राल

青|

ARTA

रोगनिरोधक शक्तिसे वे चंगे होते हैं, वे डॉक्टरोंका उपकार मानते हैं। बस, डॉक्टरोंपर विश्वास करके दुनियामें परम्परा चल रही है।'

अब दवाओंके मूल्य तथा डॉक्टरी व्यवहार-नीतिकी वातपर विचार कीजिये कि वहुत इलाज करनेपर भी रोग क्यों बढ़ रहे है। कई वर्ष हुए ब्रिटेनकी मेडिकल रिसर्च कौंसिलने दवाओंके बढतेमूल्यकी जाँच की तो पता लगा कि एक आनेकी दवापरतीन आनेकीशीशी, लेबल, पैकिंग आदि तथा बारह आने विज्ञापन— इस अनुपातसे खर्च होता है, और देशसे विदेशी बाजारोंमें पहँचनेतक रेल-जहाज आदिका भाड़ा, वीचकी दलाली, द्कान, बिजली, नौकर आदिका सब खर्च, इन सबके अलावा उसपर ल्याकर जनताको दवाएँ बेची जाती हैं। अब सोचिये आपने कितने रुपये खर्च करके दरअसल कितने पैसेकी दवा खायी ? और डॉक्टर यदि किसी बड़े घरमें, धनाढ्य, अधिकारी अथवा 'बड़े' लोगोंका घरपर इलाज करने जाय तो बड़ेके लिहाजसे रोगीकी आदतको-भोजन-व्यसनको कायम रखा जाता है। परहेजकी बात नहीं की जाती। ब्रिटेनके वादशाह छठवें जार्जके हृदयमें कोरोनरी थ्रोम्बोसिस और फेफड़ोंमें कैंसर हुआ था, सर क्लीमेंट प्राइस टामसने बादशाहका इलाज किया था, दो बार आपरेशन हुआ था, परंतु किसीने # बादशाहको सिगरेट पीनेसे नहीं मना किया। बादशाह ऊँचे दर्जेकी 'सुगन्धित' सिगरेट पीते थे। सिगरेट प्रायः उनके मुँहसे लगी रहती थी। इतना होकर भी ब्रिटेनके विख्यात डॉक्टरोंका कथन है कि कैंसरका खास कारण तमाखू नहीं है, यद्यपि इस विषयमें डॉ॰ डॉल और बेड फर्डहिलने सन् १९५१ में शोध करनेके लिये ब्रिटेनके ४० हजार डॉक्टरोंको प्रश्नपत्र मेजा था जिसमें तमास्त्रूसेवी डॉक्टरोंकी मृत्युके कारणकी जॉंच की थी, माल्म हुआ कि तमास् पीनेवाले ७८९ मरनेवाले डॉक्टरोंमेंसे ३६ की कैंसरसे मृत्यु हुई थी जब कि सात्त्विक लोगोंकी मृत्यु-संख्या सूत्य थी। फिर भी अन्वेषक कहते हैं —चिन्ता मत करो, शोध होनेतक मनमानी पीते रहो।

खाद्य और पेय पदार्थोंको रंगीन आकर्षक स्वादिष्ठ और सुगन्त्रित बनानेके तथा टिकाऊ बनानेके लिये 'कोल्तार' से बने हुए अनेक प्रकारके रंगीन सुगन्धित विघोंका मिश्रण करनेकी प्रथा यूरोप-अमेरिकामें गत सौ वर्षोंसे चली आ रही है। औद्योगिक व्यवसायियोंकी इस स्वार्थनीतिसे जनताको

king." You do not say the kind of thing to a

बचानेके लिये एक व्यक्ति कितना हाथ-पाँव-सिर पटके ! और उसका नतीजा देखिये । चाहे वह सरकारी अधिकारी कितना भी ईमानदार हो, स्वार्थी व्यवसायियोंके मकड्जालमें वह घर-दवोचा जायगा । सत्यकी इत्या स्वार्थद्वारा यहाँ दिन-दहाड़े हो जाती है और कान्न पुस्तकोंमें मौन रहते हैं। अमेरिकाके खाद्य और औषघ प्रशासन *के प्रथम अध्यक्ष डॉ॰ हारवे विली थे । उन्होंने ईमानदारीसे अपना कर्तव्य निभानेके लिये इन विषाक्त व्यवसायियोंके विरुद्ध कलम और कदम उठाया। लगभग ५० वर्ष पहलेकी बात है। उनकी ऐसी नीतिके फल-स्वरूप उन्हें उस पदसे उतार दिया गया, लगातार और भी नीचेके पद दिये गये। उन्होंने अपनी एक पुस्तक † लिखकर सव विज्ञान और विकासके नामपर होनेवाली बुराइयोंका भंडाकोड़ किया, परंतु उन्हें बीस सालतक उस पुस्तकका कोई प्रकाशक नहीं मिला। पुस्तक छपी तो कुछ समय बाद सरकारद्वारा उसकी बिक्री रोक दी गयी, सब पुस्तक-विक्रेताओं-की दूकानोंसे वह पुस्तक निकालकर जला दी गयी और वह मुधारक लेखक इन अनुभवोंसे घका खाकर वीमार पड़ा और दुनिया छोड़ चला।

हृदयरोगी अथवा अनुमानित भ्रान्त हृदयरोगियोंको सहारा समाधान देनेके लिये एडिनवर्ग-स्कॉटलैंडके प्रसिद्ध प्राकृतिक उपचारक जेम्स थाम्सनने भी एक पुस्तक ‡ लिखी है जिसके अवतक दस संस्करण छप चुके हैं और जिसे पढ़कर अनुकूल आहार-आचरण करनेपर भ्रान्त अनुमानित हृद्य रोगियोंको लाभ हुआ है और बहुतोंने लिखित साक्षी और डॉक्टरी सब प्रकारकी जॉचद्वारा स्वयंको, पूर्व निदानोंके प्रति सर्वथा स्वस्थ सिद्ध किया है, इतना होनेपर भी उक्त पुस्तकको प्रचलित डॉक्टरी सिद्धान्तोंके अनुकूल न पाकर, उसमें दवा आदिकी सिफारिश न पाकर, अमेरिकन हृदयरोगविशेषश अधिकारी डॉ॰ क्लेटन ईर्थारजने विल्कुल रद कर दिया है, अमेरिकामें उक्त पुस्तकका आयात निषिद्ध कर दिया है; क्योंकि जब केवल पुस्तक पढ़कर लोग आत्मचिकित्सा करने लग जायँगे तब अज्ञानी आत्मापराधी हृदयरोगी दुनियाको घवरा देनेवाले इन डॉक्टरोंका कौन विश्वास करेगा ! अमेरिकामें इस पुस्तकका नाम, लेखकके नामसहित, तेरह शब्दोंके विशापनपर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है। अमेरिका सब प्रकारसे

^{*} U. S. Food and Drug Administration.

A History of a Crime against the Pure

[†] The Heart.

37

स्थान-स् इजार म

अल्जीरि

न्यूनाधि

कोई स

चाणियाँ

इससे

जिनमें इ

है और

ले-लेकर

उपर् भाधुनिकर

मिस्रमें वि

स्वतन्त्र देश माना जाता है, इंग्लैंडमें वाणी एवं विचार-प्रकाशनका सबको अधिकार है । व्यक्तिगत चिकित्सा एवं जीवन-प्रणाली-यापनके विषयमें प्रेसिडेंट आइसनहावरका मत है कि 'बीमारीकी दशामें मनुष्य अपनी इष्ट चिकित्सा-पद्धतिमें स्वतन्त्र है।'

अमेरिकन स्वतन्त्रता-घोषणामें इस्ताक्षर करनेवाछे डॉ॰ बंजामिन रश तथा भूतपूर्व एटनीं जनरल इर्बर्ट ब्राउनेल, विख्यात मेडिकल प्रोफेसर डॉ॰ रिचार्ड केबाट 'विज्ञडम ऑफ भूमन बॉडी'के लेखक, तथा वैज्ञानिक डॉ॰ एलेक्सिस केरल— 'मैन द अज्ञोन' (Man the Unknown) के लेखकके भी इस पक्षमें मत हैं कि प्रचलित चिकित्सा-पद्धतिको त्यागकर हमें स्वेच्छासे प्रकृतिके शरणागत होना चाहिये। किंतु इन बातोंको और स्वतन्त्रता-घोषणाको मानता कौन है !

अमेरिकन उचाधिकारीकी ऐसी हिटलरशाहीसे अमेरिका-की स्वतन्त्रता-घोषणापर दड़ा लाञ्छन लगता है।

इम भारतीय लोग तो गाँवोंमें अभी स्वाभाविक शुद्ध अञ्च साग-फल-दूच अपने परिश्रमसे उपार्जित कर सकते हैं, परंतु आपको मालूम होना चाहिये कि पश्चिमी वैज्ञानिक लोग अपने देशवासियोंको वैज्ञानिक प्रयोगोंसे कैसा भोजन-पानी देते हैं-हमारे पास उत्तरी इंग्लैंडसे एक अंग्रेज वहिनका व्यक्तिगत पत्र आया है, जिसमें उनने लिखा है—आपने भारतीय मिठाई, मेवोंकी बढ़िया पारसल भेजी, वह मिली, किंतु हम इन्हें कैसे बनावें-खावें, नहीं मालूम । भला हम भी यदि आपको यहाँकी कोई वस्तु भेजें तो वह आपके लिये रही चीज होगी। यद्यपि उत्तम भोजनके नामपर वह इस देशमें और अमेरिकामें चलती है, उन सवपर हर दशामें रासायनिक प्रयोग—मिश्रण होता है। पहले तो जमीनमें रासायनिक खाद डालते हैं, उगती है तो तरल रसायन उनपर कीटाणुसे रक्षाके लिये छिड्का जाता है—खचालित हवाईजहाजों और हेलिकॉप्टरोंसे; फसल कटनेपर पुनः उनपर जहरीले छिड़काव तथा यन्त्रोंमें छिलका निकालने, छीलने, पीसने, भूननेकी क्रिया होती है। आटामें भी ऐसी चीजें मिलायी जाती हैं, रोटी तो वेस्वाद नीरस होती है, मानो ब्लाटिंग पेपर खा रहे हों, मिठाइयोंमें रंग और सुगंघ मिला उन्हें आकर्षित, मीठी और स्वादिष्ठ बनाया जाता है—इन स्वे पोषण कुछ भी मूल्य नहीं रखता। हमारी आधुनिक वैशानि सभ्यता, खेती, भोजन, व्यसन, दवा, डॉक्टरी व्यवहार, कान कायदे—यह सब कैसी विडम्बना है! आगे हमारा और हमारे पीढ़ियोंका क्या हाल होगा! किंचित् कल्पना कींजिये।

अमेरिकामें दक्षिणी मेडिकल संघके प्रेसिडेंट डॉक्टर मार शल टेलरने लिखा है— 'गर्मावस्थामें माताओं को गर्भपात अयव श्रीष्ठ प्रसव करानेके लिये जो 'कुनैन' दिया जाता है उसे जन्मी हुई संतानका रक्त इतना विषाक्त हो जाता है कि व बहरी, अपंग, विकृतमस्तिष्क और अनेक प्रकारसे क्षीणहे जाती है। इम ऐसे सभ्य संसारका निर्माण कर रहे हैं जिसे कुछ वर्षों में बहरे, लंगड़े, अंघे, अपंग, विकृतांग और पाह लोग होंगे।'

आगमें आजकल एक्स-रे परीक्षाद्वारा रोगियोंके अन्तरंग रोक निदान करनेकी प्रथा विश्वसनीय बन गयी है और किसी रोगी। हो-हला निदान कठिन जान पड़नेपर एक्स-रेद्वारा निदान करते भोड़ियाधसान⁷ सलाह डॉक्टरोंद्वारा दी जाती है। इस्रे की पूज कतिपय अनावश्यक अवस्थाओंमें एक्स-रेसे निदान करते की व्यर्थ कालान्तरसे क्या हानि होती है—इस विषयमें इंग्लैंडसे प्रकाि ४ जनवरी ५९ के 'संडे पिक्टोरियल'में एक माता-पिताका क भविष्यव छपा है जिनकी लड़की 'जीर्णं पाण्डु'से मर रही थी, बतार भेयभीत गया था कि उसके जन्मके पहले, गर्भावस्थामें उसकी माँ साधन हि एक्स-रे परीक्षा की गयी थी, उसी कारण लड़कीको यह गैं जन्मके बाद प्रकट हुआ । गर्भावस्थामें एक्स-रे परीक्षा हार्वि करानेवार कारक—घातक सिद्ध हुई है। इस विषयमें कोलम्बिया विश् विद्यालयके रेडियो डॉक्टर रावर्ट्स, डॉ॰ रफ तथा डी हुआ | ईरिका ग्रुपने सालभर पहले 'अमेरिकन एसोसिएशन फॉर⁽होना ही एडवान्समेण्ड ऑफ साइन्स'के समक्ष अपनी रिपोर्टमें ^ब दिया है कि गर्भवती महिलाओंकी एक्स-रेद्वारा परीक्षा न किरायां, इ होग तो ह जानी चाहिये। चाहे कितने दिनका भी गर्भ हो।

^{*} Leukemia.

देवाराधन, भगवदाराधन और भगवन्नामका चमत्कार

(विश्वसंकट एक बार टल गया)

कान्स अष्ट्रग्रहयोग आया और चला गया। यूरोपमें हल्के भूकमा, इमारी स्थान-स्थानपर वरफीले त्फान, वरफके पहाइ टूटनेसे दो-चार हुजार मनुष्योंकी मृत्यु, कहीं कहीं मोटर रेल-विमान-दुर्घटनाएँ; रर मा अल्जीरिया, नेपाल, पाकिस्तान तथा अन्य कुछ देशोंमें— अया न्यूनाधिक अशान्ति, बहुत-से देशोंमें शीतलहरी आदिके अतिरिक्त कोई खास विनाशकारी दुर्घटना नहीं हुई । सबकी भविष्य-कि व वाणियाँ झूठी हो गयीं। कहीं कोई संहारकार्य नहीं हुआ। इससे कुछ छोगोंके मनोंमें कई तरहके विचार आ रहे हैं, क्षीण है जिनमें कुछ ये हैं— जिसरे

मेलक

न सब वैज्ञानिव

(१) आकाशके ग्रह-नक्षत्रोंका कोई फल मानना मूर्खता र^{पाक} है और उनके कुफलसे वचनेके लिये 'हरे राम' आदि नाम हे-हेकर चिल्लाना तथा धी-अन्न आदि उपयोगी चीर्जोको रोाह आगमें फूँककर नष्ट कर देना इससे भी वड़ी मूर्खता है।

(२) करोड़ों रुपये इन कार्योंमें व्यय हो गये। देशभरमें रोगीव करते हो-हला मच गया। तमाम लोगोंने अपने धन तथा समयको मूर्षतापूर्णं बहमके कारण मिथ्या धारणावदा कल्पित देवताओं-की पूजा-आराधनामें लगाया। इस प्रकार धन और समय-करते^{गा} की व्यर्थ बरवादी हुई।

(३) ब्राह्मणोंने स्वार्थवरा अपने लाभके लिये झूठी का ^क भविष्यवाणियाँ लिख-लिखकर आतङ्क फैलाया, लोगोंको बता भयभीत किया और यज्ञ-पाठ आदिके नामपर अपना स्वार्थ-मां साधन किया।

यह एक श्रेणीके विरोधी विचारवाले महानुभावोंके उद्गारी-यह गेंग का सार है। दूसरी श्रेणीके विश्वास रखकर देवाराधन करने-हिंदि करानेवालों मेंसे भी कुछ थोड़ेसे सजन कहते हैं—

(१) इतनी भविष्यवाणियाँ हुईं, कहीं कुछ भी नहीं या ^{ड्रॉ}हुआ । इससे लोगोंमें अविश्वास वढ़ गया । कहीं तो कुछ क्रॉर^{(होना} ही चाहिये था, जिससे विश्वास बढ़ता ।

मिं क (२) हमने जो इतना पैसा तथा समय खर्च किया-त व है स्पर लोग हँसते हैं और बहुत-से नेता तथा सुधारक होग तो हमें मूर्ख बतलाते हैं।

उपर्युक्त शंका करनेवालोंकी पहली श्रेणीमें तो माधुनिकताके प्रवाहमें बहनेवाले वे सज्जन हैं, जिनका न तो मिस्रमें विश्वास है, न शास्त्रीय यशादि अनुष्ठानोंमें, न धर्ममें

न भगवन्नाममें और न प्राचीन भारतीय संस्कृति-सदाचारकी श्रेष्ठतामें ही। ये तो इन सभी कार्योंको मूर्खता या ढोंग वतलाते हैं।

दूसरी श्रेणीके सजन विश्वासी तो हैं, पर वे अपने विश्वासका दूसरोंमें समर्थन चाहते हैं, उपहास होनेपर जिनका उत्साह कुछ शिथिल हो जाता है और इसल्प्रिये खिन्न हो जाते हैं। अतः इन शंकाओंके सम्बन्धमें कुछ विचार करना प्रयोजनीय है। इसिलये नहीं कि जिनका विश्वास नहीं है, वे मान लें। उन्हें न तो मनबानेकी आवश्यकंता है और न वे अभी मानेंगे ही। यह विचार तो इसलिये किया जाता है कि जिससे सत्यपर आवरण न आ सके और विश्वासी लोगोंके विश्वासमें शिथिलता न आने पाये।

शंकाओंके उत्तर---

(१) ज्यौतिषशास्त्र सत्य है, ग्रह-नक्षत्रोंका फल होता है। यहोंकी गतिक़ो ठीक-ठीक जानने तथा उनका फल निर्देश करनेमें भूल हो सकती है, पर फल तो अवश्य होता है। यह चिरकालसे अनुभूत सिद्धान्त है, अतः यह मूर्जता नहीं है और ग्रहोंके कुफलसे बचनेके लिये की जानेवाली देवाराधनाका तथा भगवदाराधनाका फल अवस्य होता है। देवाराधना यदि ठीक-ठीक एवं प्रचुर मात्रामें हो तो उसके द्वारा व्यक्ति और समष्टिके नवीन ग्रुभ प्रारब्धका निर्माण होता है और फलदानोन्मुख प्रारब्धको रोककर बीचमें उसका फल प्रकट हो जाता है। इस सात्त्विक कार्यमें लगना मूर्खता नहीं, वरं बड़ी बुद्धिमत्ता है। देवाराधना एवं यज्ञादिके सम्बन्धमें गीतामें भगवान्ने कहा है-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। प्रसिविष्यध्वमेष वोऽस्त्वष्टकामधुक् ॥ देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ भावयन्तः इष्टान् भोगानिह वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैर्दत्तानप्रदायभयो यो भुङ्के स्तेन एव सः॥ (3180-13)

'सृष्टिके आदिमें प्रजापतिने यज्ञसहित प्रजाकी रचना करके कहां कि इस यज्ञके द्वारा तुमलोग वृद्धि प्राप्त करो और यह

यह तुम्हारी इच्छित कामनाओं को पूर्ण करनेवाला हो । तुम-लोग (मानव) इस यज्ञके द्वारा देवताओं की उन्नति (पृष्टि) करो और वे देवता तुम्हारी उन्नति करें । इस प्रकार परस्पर एक दूसरेकी उन्नति करते हुए तुम परम कल्याणको प्राप्त करोगे । यज्ञके द्वारा संतुष्ट देवता तुम्हारे विना माँगे ही तुम्हें इच्छित भोग प्रदान करेंगे । उन देवताओं के द्वारा दिये हुए भोगों को जन्हें समर्पण किये बिना ही भोगता है, वह निश्चय ही चोर है (और परिणाममें उसे दण्ड भोगना होगा । भोग छिन जायँगे और दुर्गित होगी)।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥(४।१२)

प्जो लोग इस मनुष्यलोकमें कर्मफलकी आकाङ्क्षा करके

देवपूजन करते हैं, उनके कर्मोंसे उत्पन्न सिद्धि उन्हें बहुत
शीत्र प्राप्त होती है।

अतएव देवाराधन व्यर्थ तो है ही नहीं, परम कर्तव्य है और मुख-समृद्धि-सम्पत्तिकी प्राप्ति तथा दु:ख-अशान्ति-विपत्तिके नाशका अमोध साधन है। बिक्क न करनेवालोंको हस चोरीका दण्ड परिणाममें भोगना पड़ेगा, देर भले ही हो। अतः वैदिक यशादि करने-करानेवाले सभी सज्जनोंने विश्वप्राणियों-के कल्याणार्थ बड़ा ही मङ्गलमय कार्य किया है। अग्निमें आहुति दी जानेवाली वस्तुओंका नष्ट होना मानने-कहनेवाले वैसे ही यशके रहस्यसे अनिभन्न अविश्वासी लोग हैं, जैसे खेतीके रहस्यको न जाननेवाले कोई बच्चे धरतीमें बीज बोनेको अन्नका नष्ट करना समझें। त्रिकालज्ञ श्रृषि-महर्षियोंने अपने अनुभवोंसे यशदिकी उपादेयता तथा नवीन प्रारन्धके निर्माणद्वारा शीष्र सुफल्दान करनेकी शक्तिमत्ता बतलायी है और वह सर्वथा सत्य है। देवताओंकी तुष्टिसे ही मानवकी पुष्टि होती है।

इसी प्रकार भगवन्नाम परम मङ्गलमय तथा सम्पूर्ण बड़े-से-बड़े उपद्रवोंको—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक व्याधियोंको मिटाकर सब प्रकारसे परम कल्याण करनेवाला है। भगवन्नाम-कौमुदीकार भगवन्नामकी वन्दना करते हुए कहते हैं—

> अहः संहरदिखलं सकृदुद्यादेव सकललोकस्य। तरिणरिव तिमिरजलिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥

'जैसे भगवान् सूर्य उदय होनेमात्रसे ही समस्त अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही श्रीहरिका नाम एक बार उच्चारण करनेमात्रसे ही जीवमात्रके सम्पूर्ण पापोंका

नाश कर देता है, अतः समस्त जगत्का मङ्गल का श्रीहरिनामकी जय हो।

भगवन्नामकी अनन्त महिमा है। वह केवल लोकनार तथा भोग-मोक्षका ही परम साधन नहीं है, दुर्लभ भगवे की प्राप्तिमें भी परम सहायक होता है। सभी ऋषिन्ति संत-महात्माओंने नामकी महिमा गायी है। वेदोंसे के आधुनिक संतोंकी तमाम वाणियाँ भगवन्नामकी महिमाते : हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु, गोस्वामी तुलसीदासजी आदि केवल नामपर ही भरोसा करनेकी बात कही है। महा श्रीचैतन्यदेव कहते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं अवसहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकेरवचिन्द्रकावितरणं विद्यावधूजीवनम्। आनन्दास्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं सर्वात्मस्वपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंक्रीतंनम्। नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-स्त्रवार्षिता नियमितः स्वरणे न कालः। प्रतादशी तव कृपा भगवन् समापि दुनैं वसीदशिमहाजनि नानुरागः॥

'भगवान् श्रीकृष्णका नाम-संकीर्तन चित्तस्यी हो परिमार्जित करनेवाला है, (दुःखमय) संसारस्यी हि दावानलको बुझा देनेवाला है, कल्याणस्यी कुमुदिनीके कि लिये चिन्द्रकाका विस्तार करनेवाला है, पराविद्यास्यी जीवनस्य है, आनन्द-समुद्रका बढ़ानेवाला है, पर पूर्ण अमृतका आस्वादन करानेवाला है और सब कि बाहर-भीतर स्नान करानेवाला है—समस्त मलें सारे पाप-तापोंको धोकर सम्पूर्ण आत्माको आनन्दित कर देनेवाला है। इन सात लक्षणोंवाला श्रीकृष्णनाम-सं ही सर्वत्र विजयको प्राप्त होता है।

'हे भगवन्! जीवोंकी विभिन्न रुचियोंको देखें आपने अपने राम, कृष्ण, मुकुन्द, गोविन्द, गोपाल, वि आदि नाम प्रकट किये हैं और प्रत्येक नाममें अपनी शक्ति भी निहित कर दी है। साथ ही नामसरणें किसी देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रक्षी, कहीं भी, किसी समय भी, कोई भी नाम-स्मरण कर है। प्रभो! आपकी जीवोंपर इतनी अहेतुकी अनुकर्णा भी मेरा ऐसा दुर्भाग्यहैकि आपके नाममें अनुराग नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

करने

भागः

शेक पर्हे भागवे एपि-मृति

देंसि है हेमासे : आदिने

। महा

ां वनम्≀ नं

तैनम्॥ । छः।

ागः॥ त्यीदर्ग

त्या क रूपी म के विका

ारूपी व , पद् सब प्र

मलों मलों न्द्रों ह

न्द्रत । गाम-सं^ह

देखक 100, दा^र 1पनी ⁶

मरण^{के} संख्या,

कर कमा

कमा ।

श्रीभगवन्नाम-कौमुदीकार श्रीलक्ष्मीधर नामनिष्ठाके लिये प्रार्थना करते हैं—

श्रीरामेति जनार्दनेति जगतां नाथेति नारायणेत्यानन्देति दयापरेति कमलाकान्तेति कृष्णेति च।
श्रीमहाममहामृताव्धिलहरीकल्लोलमम्नं सुहुसुँह्यन्तं गलदश्रुनेत्रमवशं मां नाथ नित्यं कुरु॥
श्रीकान्त कृष्ण करुणासय कञ्जनाभ
केवल्य-वल्लभ सुकुन्द सुरान्तकेति।
नामावलीं विमलमौक्तिकहारलक्ष्मीलावण्यवञ्चनकरीं करवाणि कण्ठे॥

्हे श्रीराम, हे जनार्दन, हे जगन्नाथ, हे नारायण, हे आनन्दस्वरूप, हे दयापरायण, हे कमलाकान्त, हे श्रीकृष्ण, हे नाथ! ऐसे आपके जो सम्बोधन नामरूपी महान् सुधा-समुद्र हैं, उनकी प्रेमरूपी लहिरयोंमें मुझे निमग्न कर दीजिये। विषयी लोगोंका जैसा मोह संसारके प्राणीपदार्थोंमें होता है, आपके नाममें मेरा वैसा ही मोह उत्पन्न कर दीजिये। नामकीर्तन करते समय मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी अजस्र धारा बहती रहे और मैं कीर्तनानन्दमें विवश वना रहूँ। प्रभो! आप नित्य-निरन्तर मेरी यही स्थिति कर दीजिये।

'श्रीकान्त, कृष्ण, करुणामय, कमलनाम, कैवल्यवल्लभ, मुकुन्द, मुरारे—आपकी यह निर्मल मुक्ताहारकी शोभा-सुष्रमाको तिरस्कृत कर देनेवाली विमल नामावली हम सदा-सर्वदा अपने कण्ठमें धारण किये रहें—ऐसी कृपा कीजिये।'

श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—
नयनं गलदश्रधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥
'श्रीकृष्ण ! आपका नाम लेते ही मेरी ऑखोंसे अश्रुओंकी
अजस्र धारा वहने लगे, वदन गद्गद हो जाय, वाणी रुक जाय
और शरीर रोमाञ्चित हो जाय—ऐसा कव होगा ?' गोस्वामी
जलसीदासजी कहते हैं—

 नाम कामतर कारु करारा । सुमिरत समन सक्छ जग जारा ॥ राम नाम करि अभिमत दाता । हित परहोक होक पितु माता ॥

नामु राम को कळपतर किल कल्यान निवासु । जो सुमिरत भयो भाँग ते तुरुसी तुरुसीदासु ॥

महात्मा गाँधीजीकी दैनिक प्रार्थनामें नाम-संकीर्तनका मुख्य स्थान था। (यद्यपि उनके अनुयायी कहलानेवाले आज गाँधीजीकी राम-धुनको छोड़ चुके हैं।) अतः नाम-संकीर्तनको 'चिल्लाना' वतलाना सर्वथा अञ्चताका ही सूचक है।

इसी प्रकार वेदके सर्वश्रेष्ठ मन्त्र 'गायत्री'के पुरश्चरणः स्द्राभिषेकः श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायणः श्रीवादमीकिरामायणके नवाह-पारायणः श्रीरामचरितमानसके पारायण—ये महान् अनुष्ठान सय प्रकारके अकल्याणः उपद्रवः अद्यान्तः त्रिविष तापः अज्ञान आदिके निश्चित नाद्यक तथा समस्त कल्याणः चान्तिः सुखः ज्ञानः प्रेमके अमीच साधन हैं।

वड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि भगवान्की अहैतुकी कृपासे भारतवासियों के हृदयमें ऐसे सद्विचारोंका उदय हुआ और (इस भय तथा विपत्तिसे बचने के लिये ही सही) भारतके प्रत्येक प्रान्तमें गाँव-गाँव और घर-घरमें देवाराधनः भगवदाराधनः नामकीर्तन आदि होने लगे । इस अशुभसे इस प्रकार परम शुभकी उत्पत्ति हुई। करोड़ों-करोड़ों कण्ठोंसे लगातार परम मङ्गलमय भगवन्नामकी ध्वनि हुई, हजारों-लालों स्थानींपर यश, रद्राभिषेकः, गायत्रीपुरश्चरणः, भगवान् के विविध स्पेकि अर्चनः, श्रीमद्रागवतः, वालमीकि रामायणः, मानस आदिके पारायण हुए । इसमें धन और समयकी वरवादी नहीं हुई। वरं यथार्थ रूपमें सद्वयय तथा सदुपयोग हुआ और यही होना चाहिये। मानव-जीवनका प्रधान कर्तव्य ही है भगवदाराधना। यह मूर्खतापूर्ण बहम या मिथ्या धारणा नहीं है, बल्कि शास्त्रसम्मत ऋणि-मुनि-सेवित सत्य सिद्धान्त है। इसमें सद्य सर्वत्र मङ्गलःही-मङ्गल है—

भायँ कुनायँ अनस आरुसहू। नाम जपत मंगरु दिसि दसहू॥ कल्याण-वार्य किसी भी निमित्तसे हो, उसका परिणाम परम कल्याणमय ही होगा। सची वात यही है कि भारतकी इस देवाराधना तथा भगवदाराधनाने विश्वको घोर विपक्ति बचा लिया। ज्यौतिषियोंकी भविष्यवाणियाँ प्रायः सत्य थीं, पर विश्वकल्याण, विश्वशान्तिके संकल्पसे होनेवाले इन महान्

आराधन-अनुष्ठानोंने नवीन प्रारब्धका निर्माण करके समस्त विश्वका कल्याण किया। एक महान् संकट एक वार तो टक

संग

हीं

मान

सत्य

उस

अदि

यवि

अर्

इन

वे व

सम

'कु

अपे

स्थि

आप् बड़े

जार

भी

उन्ह

जर

आ

अष्ट

हैम्ब

एक

गये

हिम

नरह

आर

केंद्र ।

अभ

यज्ञ

ही ह

चूट

कार

ही गयाः यद्यपि उसके भविष्य परिणामका पूर्ण रूपसे टल जाना तो इन आराधना—अनुष्ठानोंके विश्वकल्याण तथा विश्वशान्तिके संकल्पसे दीर्घकालतक सर्वत्र चाल् रहनेपर ही निर्भर करता है।

इस प्रकारके सत्कायों भे श्रद्धा, रुचि, प्रवृत्ति आदि सब भगवत्कृपासे ही होती है । कितना महान् मङ्गलमय कार्य हुआ । घर-घरमें पवित्र मङ्गलमयी भगवन्नाम-ध्विन, मुहल्ले-मुहल्लेमें पवित्र देवाराधना-भगवदाराधना और यह सव केवल अपने लिये ही नहीं, समस्त विश्वके कल्याणके उदार संकल्पसे । इसीसे यह विश्वकल्याण हुआ है ।

धन, समय, शील, सदाचार, अहिंसा और प्रेमकी महान् बरवादी तो आजकल जनतन्त्रके नामपर होनेवाले इस चुनाव-कार्यमें हो रही है। जहाँ अच्छे-से-अच्छे विद्वान, सुशील तथा सदाचारी पुरुष अत्यन्त निम्न-स्तरपर उत्तर आते हैं। अपने मुँहसे अपनी मिथ्या प्रशंसा और प्रतिपक्षीकी आक्षेपमयी गंदी मिथ्या निन्दासे इस चनावरूपी तामस यज्ञका आरम्भ होता है। गाली-गलौज, हिंसा-प्रतिहिंसा, द्वेष-दम्भ, मारपीट, खून-खराबी आदि इसके प्रधान साधन वन जाते हैं। वर्तमानमें पिस्तौलका भय दिखाकर तथा भविष्यमें कई प्रकारके लामोंका प्रलोभन देकर वोट माँगे जाते हैं। वोटोंके लिये दाराब तथा रुपये वाँटे जाते हैं। वैमनस्य वढानेवाले गंदे कार्य किये जाते हैं। जीवनभरके लिये वैरभावना उत्पन्न होती है । निन्दा-द्वेषपूर्ण कार्यों में समयका दुरुपयोग होता है और सब मिलाकर करोड़ों-अरबों रुपये खर्च हो जाते हैं । हो-हला तो इतना होता है कि प्रजाका काम ही रुक जाता है। पर यह दुदेंव .ही है कि इसको जागृति और उन्नतिका स्वरूप माना जाता है और यज्ञोंकी, भगवन्नामकी, सदनुष्ठानोंकी अनुर्गल निन्दा करनेवाले विद्वान्, बुद्धिमान्, देश तथा समाजका कल्याण करने तथा चाहनेवाले ईमानदार लोग वड़े ही उत्साह तथा चावसे इस मिथ्याश्रयी तामसी कार्यमें प्रवृत्त हो रहे हैं !

सिनेमा जगत्—जो जनताके धन, सदाचार, धर्म तथा शीलका प्रत्यक्ष नाशक है—उन्नति तथा उच्चस्तरका प्रतीक , बताया जाता है और उसमें समय तथा धनका बुरी तरहसे . दुरुपयोग हो रहा है। ऐसे ही उन्नति, विकास तथा कल्याणके नामपर होनेवाले समय-सम्पत्तिके नाशक अनेकों कार्य बड़े उत्साहसे चलाये जा रहे हैं। यही बुद्धिका विपर्यय है। तमसाच्छन्न बुद्धि इसी प्रकार विवरीत निर्णय किया करती है भगवान्ने गीतामें कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(अर्जुन ! तमोगुणसे छायी हुई जो बुद्धि अधमेको भूमानती है तथा अन्य सव अथॉमं भी (पुण्यको पाप, पाक्षे पुण्य; भलेको बुरा, बुरेको भला; न्यायको अन्याय, अन्याको न्याय; समय-सम्पत्तिके सदुपयोगको दुरुपयोग, दुरुपयोको सदुपयोग—आदि इस प्रकार) विपरीत ही निर्णय करती है वही तामसी बुद्धि है और तमोऽभिभूत मनुष्योंका परिणाम अधःपात निश्चित है—

'अधो गच्छन्ति तामसाः।'

'ब्राह्मणोंने स्वार्थवश भविष्यवाणी की'-इसका उत्त यह है कि अष्टप्रहीका फळ चतलानेवाले केवल ब्राह्म ही नहीं थे, अन्य वर्णोंके लोग भी थे। भारतमें प्रलग्नी वात किसीने नहीं कही वरं भारतकी अपेक्षा भे भयानक भविष्यवाणी तो इंगलैंडके विद्वानोंने की धी जिन्होंने ७५ प्रतिरात जनताके विनाराकी वात कही थी औ स्वयं पहाड़ोंपर जाकर प्रार्थना की थी। भारतके प्रायः सभी विद्वानोंने अनिष्टमय भविष्य वतलानेके साथ ही देवाराधना आदिके द्रारा नामकीर्तन भगवदाराधनाः टलनेकी भी बात कही थी। जैसे उनकी अनिष्ट होनेकी वात सत्य थी, वैसे ही आराधनासे अनिष्टनाशकी बात भी सल थी। तथा भारतीय जनसमृह्ने सर्वत्र विपुल आराधनाई और उसीके फलस्वरूप घोर अनिष्ट एक बार टल गया। य व्यर्थता नहीं, वरं आराधनाका चमत्कार है।

सच कहा जाय तो यह भी कहा जा सकता है कि इन आराधन-अनुष्ठानोंको मूर्यंता वतलानेवाले लोगोंका होनेवाल अनिष्ट भी उनके मूक हितेषी सज्जनोंकी आराधनासे ही वैने ही टला है, जैसे किसी ऋणग्रस्तका ऋण उसका की हितेषी मित्र उसको बिना ही जनाये अपने पाससे चुका दे और वह ऋणदाताके द्वारा की जानेवाली नालिश तथा जहीं जेल आदिसे बच जाय।

जो महानुभाव यह कहते हैं कि 'कहीं कुछ तो होगी चाहिये था, जिससे अविश्वास न होकर विश्वास बहता!' उनका यह मानना-कहना सुन्दर है। वे बहुत अच्छी नी्यती रती है।

T

1

क्रिया

, पाक्

नन्यायर

रपयोगनी

हरती है,

रिणामम

ा उत्त

ब्राह्मण

प्रलयशे

क्षा भी

की औ

थी और

: संभी

राधनाः

अनिएक

की यात

ो सल

वना की

1 班

कि इन

ोनेवाल

ही वैसे

ा भी

का दे

ा जिती-

होना

हता।

नीयतस

ही ऐसा कहते हैं, पर उन्हें समझना चाहिये कि किसीके मानने-न-माननेसे सत्यमें अन्तर नहीं पड़ता । सत्य सदा सत्य ही है। कोई आराधनाके फलको चाहे न माने, पर जब फल हुआ है तो वह सत्य ही है। अविश्वासी लोग तो—इतने आराधन-अनुष्ठानोंके होनेपर यदि कहीं विनाश हो जाता तो यह कहते कि आराधन-अनुष्ठानोंसे क्या होता है ? यह सब तो निरा ढोंग है। इनसे कुछ हो सकता तो क्या यह विपत्ति नहीं टलती। वं लोग तो जैसे अव 'कुछ विशेष न होनेपर' इसको धन तथा समयकी मूर्खतापूर्ण बरवादी कहते हैं, वैसे ही 'कुछ हो जाने' पर भी कहते ही । अतएव उनके समर्थनकी अपेक्षा न रखकर अपने विश्वासके अनुसार सत्यपर अटलहपसे स्थित रहना चाहिये। अपने विश्वासपर अकेले रहनेमें भी अपुत्ति नहीं है। जिन महानुभावोंने श्रद्धा विश्वासपूर्वक वड़े-बड़े यज्ञादि अनुष्ठान किये-कराये, वे यह तो चाहते ही नहीं थे कि इन यज्ञोंका फल न हो और भविष्यवाणियाँ सत्य हो जायं। अथवा विश्वकल्याण तथा विश्वशान्तिका संकल्प करनेपर भी केवल हम बच जायँ और विश्वके शेष अंशमें संहार हो। अतः कहीं कुछ नहीं हुआ, इससे दुखी या लजित न होकर उन्हें अपने प्रयत्नको गौरवके साथ सफल मानना चाहिये और जरा भी शंका न करके यह निश्चित समझना चाहिये कि इस आराधनासे ही एक बार संकट टल गया है। पर अभी अष्टप्रहीका फल आगे भी हो सकता है और हो भी रहा है। हैम्बर्ग आदिमें भीषण वादसे जननाश, अपार धननाश हुआ। एक जगह बरफका पहाड़ टूटनेसे एक हजार मनुष्य मर गये। कई जगह भयानक बरफीले त्रुप्तान आये, भीषण हिमपात हुआ, टर्कीमें विद्रोह हुआ और अल्जीरियामें कलह-नरहत्याएँ हुईं। अतएव विश्वासपूर्वक जनताको भगवान्की आराधनामें लगे ही रहना चाहिये। इसमें कल्याण-ही-कल्याण है। और हर्षका विषय है कि लोगोंमें इस ग्रुभ प्रवृत्तिका अभ्यास-सा हो जानेके कारण नाम-संकीर्तनादि, पारायण तथा यज्ञादि अभी चल ही रहे हैं। इनका परिणाम कल्याणमय ही होगा। ग्रुभ बीजका ग्रुभ फल भी फलेगा ही।

वास्तवमें भगवान्की आराधना और विशुद्ध धर्मका सेवन दूट जाने तथा केवल भौतिक उन्नतिकी साधनामें लग जानेके कारण ही आज विश्वपर महान् संकट छाया है। विज्ञानके नामपर

विनाशकी योजना इसीका परिणाम है। भगवान्का-अध्यात्मका आश्रय न छेकर जहाँ केवल भौतिक भागोंका आश्रय हाता है, वहाँ द्वेष, कलह, हिंमा, अशान्ति, उपद्रव, महामारी, दैवीपकीप आदि अवश्यम्भावी हैं; क्योंकि मनुष्य कामोपभोग-परायण स्वेच्छाचारी होकर दुष्कर्मों में —यापों में संलग्न हो जाते हैं और पापका फल ताप निश्चित है। जहाँ चन्द्रगुप्तके युगमें चायल तीन पैसे मन था, साईस्ता खाँके जमानेमें दो आने मन था; अभी बीस-बाईस वर्ष पहले ढाई रुपये मन था और अब पैतीत चालीस रुपये मन है। जनतामें वीमारी भी उत्तरोत्तर बढ़ रही है। सभी वातोंमें प्रशंता-प्राप्त अमेरिकामें कितना रोग फैल रहा है, इसका अनुमान इसी अङ्कमें प्रकाशित, 'रोगी देश अमेरिका' शीर्षक लेख पढ़नेसे लग जायगा । धन बढ़ा, विज्ञान बढ़ा, व्यापार बढ़ा, कारखाने बढ़े, अधिकार बढ़े और विनाशी शस्त्रास्त्र बढ़े-पर त्याग घटा, शान्ति घटी, सुख घटा, प्रेम घटा, कर्तव्य घटा । परिणाम सामने है।

अष्टग्रही हो या और कुछ—मनुष्य अपने ही किये हुए कमोंका फल भोगता है। महाविनाशके प्रसंगमें भी मनुष्य बच्च जाता है!

फिर, अष्टग्रही हो या न हो भगवान्का भजन, दैवी-सम्पत्तिका सेवन तो सदा ही मनुष्यका परम कर्तव्य है।

अतएव सदाचार, सेवा, दीनसेवा, सद्व्यवहार, दया, प्रेम, अहिंसा, दान, भगवन्नाम-जग-कीर्तन, यज्ञ, देवाराधन तथा भगवदाराधनमें सदा ही रुचि रखनी चाहिये और इनका सेवन करते ही रहना चाहिये। इसीमें परम कल्याण है।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रतीद्तां ध्यायन्तु भूतानि शित्रं मित्रो धिया । मनश्र भद्गं भजताद्धोक्षजे आवेद्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥

्विश्वका कल्याण हो, दुष्टलोग निष्दुरताका त्याग करके प्रसन्न हों, समस्त प्राणी कल्याणका चिन्तन करें, उनके मन कल्याणमय भावोंको धारण करें तथा उनकी और हमारी सबकी बुद्धि अहैतुकरूपसे अधोक्षज श्रीमगवान्में प्रवेश कर जाय।

रोगी देश अमेरिका

अमेरिकामें आज आधीसे अधिक जन-संख्या, जिसमें यन्चे भी गिन लिये गये हैं। किसी-न-किसी जीर्ण रोगसे प्रस्त वतायी जाती है। दिनोंदिन बढ़नेवाली और विनाशकारिणी व्याधियोंकी यह आँधी जन-धनकी कितनी क्षति कर रही है उसकी गिनती मिस्तिष्कको चकरा देनेवाली है। × × × न्यूयार्कके जेरिआद्रिओज क्षिनिक मेट्रोपालिटन अस्पतालके प्रधान डा॰ डब्ल्यू कोडा मार्टिनके अनुसार आज जीर्ण रोगियों- की रजिस्टरपर चढ़ी हुई संख्या ८८,९५,५३४ है।

कैंसर

सालभरमें कैंसरसे ही २,५०,०००से अधिक लोग मर जाते हैं और ऐसा अनुमान किया जाता है कि अमेरिकामें प्रत्येक तीन व्यक्तिके पीछे एकको उसके जीवनकालमें कैंसर अवश्य धर दबाता है। कालके गालमें ले जानेवाले सर्वाधिक व्याप्त कारणोंमें कैंसरका दूसरा स्थान है। सन् १९५४में प्रेसिडेंट आइजनहोवरने अमेरिकाकी राष्ट्रसभामें कहा था कि बदि इस समय कैंसरसे होनेवाली मृत्यु-संख्याको घटाया नहीं गया तो जीवित अमेरिकावासियोंमेंसे २,५०,००,००,० कैंसरकी मोटमें ही अपनी इहलीला समाप्त करेंगे।

हृदयके रोग

हृदयके रोगोंसे सालमें ८,१७,००० से अधिक लोग मरते हैं और राष्ट्रकी मृत्युसंख्याके आधे भागका उत्तरदायित्व इन्होंगर है। बढ़ती हुई मृत्युसंख्या वास्तवमें हृदय-धमनियोंकी रोगवृद्धिकी ओर निर्देश कर रही है और यह भी बता रही है कि पहलेकी अपेक्षा युवक लोग अब इसके शिकार अधिक हो रहे हैं। अमेरिकावासियोंमें हृदयरोगोंका प्रकोप महायुगके ब्हैक फ्लेगके समान बताया गया है।

डा॰ पाल ह्वाइट (Paul White), जिन्होंने प्रेसिडेंट आइजनहोवरकी उनको हृदयका दौरा होनेपर चिकित्सा की थी तथा डा॰ जालिफने (Jollife के १९५५ में अमेरिकाकी राष्ट्रसभामें कहा था कि जहाँतक हृदयरोगोंसे सम्बन्ध है, अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रकी गणना संसारके सर्वाधिक अस्वस्थ देशोंमें है। डा॰ ह्वाइटने हृदयरोगोंको अमेरिकाका आधुनिक बहुव्यापक रोग बताया है।

अन्य च्याधियाँ

संख्य

भस्ति

2,4

खरा

2,0

सन्

विवा

अनुर

हैं अ

रोग

अपर

वृत्ति

खाः

इसर

सर

रोर

पा

मा

नि

अमेरिकाके दस व्यक्तियों मेंसे एक अपने जीवनका कुछ भाग किसी मानसिक चिकित्सालयमें विताता है और समूचे राष्ट्रके अस्पतालोंके ७०,००,००० रोगी राय्याओं (Beds)में से आधेसे अधिक मानसिक रोगियोंके काममें आती हैं। वास्तवमें २,५०,००० और भी रोगी-राय्याओंकी आवश्यका पड़ती है, जिनपर बचे हुए मानसिक रोगियोंको स्थान मिल्ताहै।

७०,००,००० से अधिक अमेरिकानिवासी संधिप्रदाह एवं अन्य प्रकारके वातरोगोंसे ग्रस्त रहते हैं।

जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोगोंके विषयमें यह अनुमान कि गया था कि सन् १९४४में प्रत्येक वर्ष २३१ व्यक्तियोंके एकको उपदंश और ३ या ४ को प्रमेह होता है। ऐस अनुमान उस समय नये रोगियोंके विषयमें किया गया था। उस समय उस देशमें १० लाख उपदंशके रोगी थे अर्था प्रत्येक १२ व्यक्तियों में से एकको कभी-न-कभी उपदंश हुआया। इधर दस-पंद्रह वर्षोंके वाद अनुमानकी यह संख्या इतं अधिक वढ़ गयी है कि विश्वास करना कठिन है।

अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रमें प्रमुख रोगोंकी शिकार-संख इस प्रकार है—

प्रतिकूल संवेदना (Allergy) सम्बन्धी उपद्रवेंसि म २,००,००,००० व्यक्तिः, नाड़ी-संस्थानके (Nervol ग्रस्त १,५०,००,००० व्यहि system) रोगोंसे मस्तिष्क-प्रदाह एवं मस्तिष्क Psycho-neurosis) (Psychosis and ग्रस्त १,६०,००,००० व्यक्तिः धमनी रोग तथा हृद्य-धं^ह रोगों Arterios clerosis and degenerativ heart diseases) से ग्रस्त १,००,००,००० वर्ष पंगु मस्तिष्क (Mentally retarded) वाले क्याँ संख्या ३० से ५,००,००,०० (प्रत्येक १५ मिनस्पर्ण पंगु मस्तिष्कवाला वचा पैदा होता है); उदर और अँति घावसे (Stomach and duodenum) ८५,००,००० व्यक्तिः केंसरसे ७,००,००० व्यक्तिः मांस्पेशि वीमारी (Muscular dystrophy) से अ १,००,००० व्यक्तिः क्षयग्रस्त (टी. बी.) ४,००,००० व्य (प्रत्येक वर्ष १,००,००० नये रोगी दर्ज होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मा कुछ

सम्बे

ds

ाती हैं।

वस्यकता

मेलताहै।

दाह एवं

न किय

त्तियों में

है। ऐस

ाया था।

थे अर्था

बुआया।

या इतन

ार-संख्य

वासे प्रा

er vou . व्यदि |डी-प्रा

is) [†] इय-धं^{हा}

erativ

, वर्ष

उ क्यों

टपर ^ए अंतड़ियें

) #

मांसपेशि

से अ

Multiple seleronis से प्रस्त २,५०,००० तथा मिस्तिष्कके पश्चायात (Cerebral Palsy) से प्रस्त १,५०,००० व्यक्ति ।

सारं अमेरिकावासियों में से ६० प्रतिशतकी आँखें इतनी खराब होती हैं कि उन्हें चरमा धारण करना पड़ता है। १,००,००,००० व्यक्ति विविध कोटिकी विधरतासे पीड़ित हैं। सन् १९५५ में ३,३४,००० अन्धे थे। अमेरिकामें १० प्रतिशत विवाह संतानोत्पत्तिमें असमर्थ होते हैं; इसका अर्थ हुआ अनुमानतः १,५०,००,००० व्यक्ति संतानहीन रहते हैं।

इसके अतिरिक्त ३,२०,००,००० अमेरिकावासी बहुत स्थूल हैं और ४०,००,००० बहुत अधिक पीनेवाले हैं। ये दोनों बातें रोग और मृत्युको जल्दी बुलानेमें बड़ा लम्बा हाथ रखती हैं। अपराध्यृत्तिवाले बालकोंकी संख्या २०,००,००० है। इस यृत्तिको अब अधिकाधिक लोग एक प्रकारका रोग ही मानने लगे हैं।

सन् १९५७ में श्वाससंस्थानसम्बन्धी (Respiratory aliments) रोगोंसे कुल मिलाकर १,९०,००,००० दिन खाटपर पड़े हुए अश्चमताकी अवस्थामें बीते। एक समय ६०,००,००० व्यक्ति नित्य अश्चम हो जाते थे।

दाँतोंकी बीमारी इतनी व्यापक है कि ९५ प्रतिशत व्यक्ति इसके शिकार हैं।

प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ २० लाख ऑपरेशन होते हैं

और प्रतिवर्ष जन-संख्याके लगभग ७१ प्रतिशत लोगोंका कोई-न-कोई ऑपरेशन होता है।

सन् १९५५ में एक करोड़ ५० छाख पाउण्ड एस्पिरिन-गोलियाँ खायी गर्यो । यह संख्या सन् १९५४ में खायी गयी गोलियोंसे २० प्रतिशत अधिक है। प्रतिवर्ष १०,००,००,००० डालर अधिक निद्रा लानेवाली ओषधियोंपर व्यय होते हैं। अमेरिकावासी प्रतिवर्ष निद्रा लानेवाली तीन अरत गोलियाँ खा जाते हैं।

उपर्युक्त आँकड़े हमें यह सारण दिलाते हैं कि स्वास्थ्य-की उत्पत्ति अस्पतालोंमें नहीं होती है। अस्पताल वह स्थान है जहाँपर स्वास्थ्य भग्न हो जानेपर मनुष्य जाता है और अब तो डाक्टर स्वास्थ्य नहीं वरं रोगके प्रतीक वन गये हैं।

नये-नये औषध-विज्ञानकी उन्नति तया चिकित्सा-सम्बन्धी सब प्रकारकी सुविधाओंके सुल्म होते हुए भी अमेरिका आज एक रोगी देश है। क्या इससे यह नहीं प्रकट होता है कि कहींपर कोई वस्तु अपेक्षित है। और वह वस्तु है जीवन धारण करनेकी सही पद्धति (नैसर्गिक प्रणाली), जिससे आजका जगत् दूर हट गया है। (भारतवर्ष भी आज यूरोप तथा अमेरिकाकी नकल करके अस्पतालों तथा औषध-निर्माणके कारलानोंको बढ़ा रहा है। यह उन्नति रोगवृद्धिमें कारण होगी या स्वास्थ्य-वृद्धिमें, यह विचारणीय है।)

('होनियोपैथिक संदेश' में प्रकाशित डॉ॰ वेदप्रकाशजी खन्नाके लेखका कुछ अंश)

सबसे विकट मानस रोग हैं और वे ही शारीरिक रोगोंके कारण हैं

सबसे विकट रोग हैं—मानसरोग। शरीरके रोग मनुष्यके मरनेके साथ मर जाते हैं, परंतु मनके रोग मरनेके वाद भी संस्कारक्रपसे साथ जाते हैं। इसीसे देखा जाता है—कोई वच्चा जन्मसे ही शान्तप्रकृति होता है, कोई वड़ा कोधी। काम, कोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, मत्सर, अभिमान, वैर, हिंसा आदि मानस-रोग हैं। शारीरिक रोगोंकी उत्पत्तिके भी ये ही प्रधान कारण हैं। कुपध्य, अनाचार, असंयम, यथेच्छाचार, असदाचार, खानपानकी खराबी, अनियमित जीवन, इन्द्रियनिग्रहका अभाव आदि रोगोंके जितने हेतु हैं, उन सबमें उपर्युक्त मानसरोग ही प्रधान कारण होते हैं। बाहरी द्वाओंसे रोग नहीं मिटते, वरं बढ़ते हैं। बड़े-चड़े औषधनिमीणके कारखाने और औषधविस्तारके विश्वापन रोग बढ़ाते हैं, घटाते नहीं।

श्रीराघे ! वृषभानुनिन्दनी ! मुरलीधर जय नन्दिक शोर !

(गोपीकी सेवा-भावना)

(गताङ्क वर्ष ३५, अंक १२, पृष्ठ १३८६ से आगे)

साध यही, कव प्रात कुञ्जसे निर्गत तुम्हें समीद-निहार, बलिहारी जाऊँ सँवार कर अस्त-व्यस्त सारे श्रृङ्गार। स्वागत हित युग जीवन-धनको पहनाकर शुचि सुन्दर हार, हग-अभिराम इयाम-इयामाकी बोल उठूँ जय, जय-जयकार।

गाऊँ प्रमुदित नाच-नाचकर वनमें मचा-मचाकर शोर। श्रीराघे ! वृषभातुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दिकशोर !॥

प्राणेश्वरि ! निज चरण-किङ्करीके डाल गलेमें मन्थर गतिसे स्नान-सदनकी ओर चलोगी सहित उछाह? विठा स्वर्ण सिहासनपर कब सादर तुम्हें निहार-निहार,

स्नान और पूजनके सत्वर संचित कर सारे संभार। श्रवण-सुखद पद तुम्हें सुनाऊँगी अतिशय आनन्दविभोर, श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दिकशोर !॥

पद्-समीप रख स्वर्णपीठिकाके ऊपर कंचनका थाल, धोऊँगी कब चरण तुम्हारे कालिन्दीजलसे तत्काल। निज अलकावलिसे अञ्चलसे पाँछ पुनः वे चरणसरोज,

स्वर्णपात्रमें रख उनका श्रृङ्गार करूँगी मैं हर रोज। नृत्य करेगा कव गा-गाकर प्रति क्षण मतवाला मन मोर, श्रीराघे ! वृषभाजुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दिकशोर !॥

मंजु महावरसें रच-रचकर विविध लता-वेलोंके चित्र, लाऊँगी कव उन चरणोंमें नित नृतन सौन्दर्य विचित्र। पहना कर मणिमय नृपुर मंजीर आदि फिर विविध प्रकार,

प्रेमसहित पूजूँगी आपत कर अनेक अनुपम उपचार। उर-वीणांके तारोंपर बस यही गूँजता हो सब ओर, श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दिकशोर !॥

उद्घतिंत, सुस्नात, विभूषित तनमें धृत नृतन परिधान, कर-किसलय, कोमल कपोलमें रम्य रुचिर रचना अम्लान। चारु चिन्द्रका कुसुम-मालयुत केशपाश कमनीय सँवार, रूपराशिः, लावण्यजलिध तुम परमानन्द्-पयोधि अपार। कब सिखयोंके संग चलोगी प्रिय-दर्शन हित वनकी ओर,

श्रीराधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर जय नन्दिकशोर !॥ -पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

अ.

मंग

ओ

अ

आ

देश

सां

सां

एक

संस्प

जब

साक्ष

शक्ति

वाला

लपमे

नारीव

मंगलभवन अमंगलहारी

(लेखक—प्रो॰ डा॰ राजेश्वरप्रसादजी चतुर्वेदी, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, बी॰ एस्-सी॰, साहित्यरत)

गोखामी तुल्सीदासिवरचित रामचरितमानसके अन्तर्गत 'मंगल-भवन अमंगलहारी' वाक्य दो बार आते हैं। यग्रा—

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी॥ तथा——

मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥
प्रश्न खाभाविक है कि दशरथ-अजिर-विहारी राम
और उमा एवं पुरारिद्वारा आराधित राम मिन्न हैं अथवा
अभिन्न । दशरथका अजिर देश-कालकी सीमाओंमें
आवद्व है सथा त्रिपुरारि एवं उनकी शक्ति उमाका लोक
देश-कालकी सीमाओंके परे है। देश-कालकी सीमाएँ
सापेक्ष हैं। इसी कारण निर्मुण और सगुण भी
सापेक्ष हैं—

ग्यान कहें अग्यान बिनु तम बिनु कहें प्रकास। निर्मुष कहें सगुन गुन, सो गुरु तुलसीदास॥ क्योंकि—

एक दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्मविवेकू॥

अत्र स्पष्ट है कि सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मरूप रामका संस्पर्श इन्द्रियोंत्राले मन-मानसको तभी प्राप्त होता है, जब दशरथ-कौसल्याके सदश साधक नि:स्वार्थभावसे उसके साक्षात्कारके लिये अनवरत साधनामें लीन होता है—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत बिनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

त्रिपुरारिकी प्रकृतिरूपा शक्ति उमा है, दशरथकी शक्ति कौसल्या है। ब्रह्म विश्वासरूपी बीज प्रदान करने-वाळ पिता या पुरुष है। उस बीजको फलदायक वृक्ष-रूपमें विकसित करनेका कार्य शक्ति-खरूपा माता या नारीके द्वारा सम्पन्न होता है। आत्माका गुण संश्लेषण है । यही संश्लेषणपरक चेतना आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध-मृत्र है । परज्ञहा-रूपिणी एकरसता देशकालमें बद्ध इस दश्यमान जगत्में रामके रूपमें अवतरित होती है। राम सर्वव्यापी चेतनाके प्रतिरूप हैं तथा विशुद्ध प्रेम सर्वव्यापी चेतनाका व्यवहार-पक्ष है । इसी कारण तुलसीके राम 'विधि-हरि-संभु नचावन हारे' ब्रह्म भी हैं और पृथ्वीका भार उतारनेवाले मानव भी हैं । दोनों ही स्थितियाँ उनके लिये आनन्दप्रद और कल्याणकारिणी हैं—

जो जगरीस तो अति भली, जो महीस बड़ भाग। तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग ॥

जगदीश्वर रामका राज्य आदर्श कल्याणकारी राज्य (Welfare State) है—

देहिक देविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा

नहिं दरिद्र कोउ दुखीन दीना। नहिं कोउ अनुध न लच्छन हीना

और महीश्वर राम—(महेश्वर शिवद्वारा आराधित राम) की अनुभूति समस्त अज्ञान एवं तज्जन्य दुःखका नाश करनेवाळी है—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा

तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया ॥

जीत्र संश्लेषणका परित्याग करके विश्लेषणकी सीमाओं में बद्ध होकर अपने खाभाविक एवं जन्मसिद्ध आनन्दसे विश्वत रहता है। देश-काल्में आबद्ध विश्लेषणका परित्याग कर देनेसे वह आनन्दस्वरूप-परमात्मखरूपको प्राप्त करता है। रामद्वारा निर्धारित मार्ग सर्वभूतहित-कामनामें रत रहनेवाला प्रेमका मार्ग है—'जीतन्ह कहँ न कतहुँ रिपु ताके'—वाली मनोदशाकी उपलब्धि

वास्त

छोड

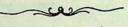
ही व

सहज

जीव

करानेत्राला मार्ग है । उस मार्गपर चलकर जीवको विशुद्र आत्मचेतनाका संस्पर्श प्राप्त होता है । यहा जीवका रामके सम्मुख होना है और यही उसके कोटि जन्मके अधका नाश होना है । यही कारण है कि तुलसीके राँम मानव भी हैं और परब्रह्म भी हैं । उनका साक्षात्कार एवं संस्पर्श सदैव सुखकारी और आनन्ददायक है। मानव राम 'सुन्दर, सुजान, कृपानिधान एवं अनायपर प्रीति करने-वाले' हैं तथा परब्रह्म राम 'अकामहित एवं निर्वाणप्रद' हैं । भरद्वाज मुनिके कथनानुसार उनका सर्वाधिक नित्य प्रिय निवासस्थान सर्वथा कामनारहित सहज प्रेमपरिपूर्ण अन्तःकरण है——

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसडु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥
भाई भरतने ऐसा ही अन्त:करण प्राप्त किया था—
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहीं निरवान।
जनम जनम रित राम पर यह बरदानु न आन॥
रामचरित्रकी चर्चा इसी आनन्दिविधायक मार्गकी
दीपिशिखा है।



आत्मनिरीक्षण

(लेखक--श्रीबालकृष्णजी बलदुवा वी. ए., एल्-एल्. बी.)

तुम्हारे इंगितपर आत्मिनिरीक्षण किया, तो लगा— अपने जीवनमें दैन्यकी दुर्गन्य मैंने नहीं उड़ायी, नहीं उड़ने दी।

हाँ, मनकी उद्घिग्नता, कातरता, त्रिह्नलता अवस्य उँडेलता रहा तुम्हारे सामने, वल पानेके लिये, दढ़ता पानेके लिये।

अपने भीतर-बाहर, वातावरणमें—चतुर्दिक्में जैसा कुछ होना चाहिये, जिस तरह होना चाहिये, जिस गतिसे होना चाहिये, न होनेपर असंतोषकी अनुभूति निश्चय ही जीवनका देन्य नहीं है, विद्रोह भले ही हो।

पर विद्रोह भी है, तो स्वार्थके छिये नहीं, व्यष्टिके छिये नहीं; समष्टिके छिये, समष्टिकी प्रगतिके छिये, प्रगति-में गतिके छिये— जडताके सहारे नहीं, पाश्चिकताके सहारे नहीं; आदर्शके सहारे, आस्थाके सहारे, आस्थामें दड़ताके सहारे।

परमात्मा—परम आत्मा—सर्वोत्कृष्ट आत्मा—आत्मा-का सर्वोत्कृष्ट या अंश-आत्माओंका समष्टिगत सर्वोत्कृष्ट ही तो है। यही मुझे ज्ञानने दिया, विवेकते दिया; आस्थाने दिया, अनुभूतिने दिया। उसका सांनिच्य कर्मयोग्नी पराकाष्टा और कर्मका योग (भोग नहीं) 'अपने लिंगे द्वारा सम्भव नहीं है। सम्भव है केवल 'सबके लिये' द्वार ही। आध्यात्मिक साम्य भौतिक साम्यका ही सर्वोत्कृष्ट का तो है। इसकी उल्टवासी भी इतनी ही सत्य है। भौति साम्य आध्यात्मिक साम्यका ही सर्वोत्कृष्ट कृत्य तो है। एकके विना दूसरेका सर्वोदय, सर्वोत्कृष्ट कृत्य तो है।

विचार-गगनसे कर्म-भूमिपर इस आदर्शको, हैं आराध्यको उतार ठानेकी, उतरा देखनेकी अतिहर्श कहीं भी जीवनके दैन्यकी दुर्गन्व है क्या ?

और भी —

इस आतुरताके न रहनेपर गतिमें द्रुत गति आ

-+-

व्यवहार

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

व्यवहार-व्यवहारकी रट लगाये रहते हैं हम । काश ! हमें व्यवहार ही करना आता । हम आदर्श बास्तविक व्यवहारोन्मुख ही हुए होते ।

मोहान्य होकर जो उन्टपटाँग व्यवहार किया जाता है, वह तमोगुणी व्यवहार है। किसी दीनका नहीं छोड़ता यह व्यवहार। वस, ले ही डूबता है।

स्वार्थ-भावनामें भरकर जो तिकड़भी व्यवहार किया जाता है, वह रजोगुणी व्यवहार है। व्यर्थ विक्षित-सा ही बनाये रखता है वह व्यवहार। हाथ उससे भी कुछ नहीं छगता।

परिहतभावनासे प्रेरित होकर जो कुशल अर्थात् सवा हुआ व्यवहार किया जाता है, वह सत्वगुणी व्यवहार है। यही वह व्यवहार है जो रजोगुण, तमोगुणकी ठोकरें खाते तथा बावाएँ झेलते हुए भी आदर्श व्यवहार्वास्तविक व्यवहारकी ओर अग्रसर होता है।

आदर्श व्यवहार—वास्तविक व्यवहार वह व्यवहार है जो प्रेमसे प्रेरित हो । ख-परकी प्रतीतिके विना जो सहज एवं यथार्थ व्यवहार होता है, वह प्रेम-प्रेरित व्यवहार है । इस व्यवहार और परमार्थमें कोई अन्तर नहीं है । जीवनके चरम लक्ष्य 'परमपद' की प्राप्ति अनजाने ही होकर रहती है इसके सचे-साचे ।

व्यवहार-व्यवहारकी रट लगाये रहते हैं हम । काश ! हमें व्यवहार ही करना आता । हम आदर्श— व्यक्तिक व्यवहारोन्मुख ही हुए होते !

साधककी उत्तरोत्तर उन्नत स्थिति

काह को नहिं दास में, कोउ न मेरो दास। नित्य दास में राम की, एक टेक विखास॥ रहारे न कबहूँ कतहुँ कछु मेरो अपनो काम। प्रभु-सेवामें ही सने तन-मन-बुद्धि तमाम॥ सेवाऊ जो कछु वने वा में नहिं कछु मोर। प्रभु मनमानी करन कों, रहें हलावत डोर॥ प्रस्ता, मित, बल, पुरुषता, करन-करावनहार। सब कछु तिनमें, तिनहिं को, तिनहीं सों व्यवहार॥ रहारे न रंचक में-पनो भयो एक ही भाव। हया-सोक-भय-मान-मद् सबको भयो अभाव॥ रही न सत्ता भिन्न कछु एक मात्र भगवान। लीलामय लीला करें नित अति मधुर महान॥



पूर्ण

र्गकी

भारमा-

र्वितृष्ट

स्थाने

पोगर्वा

网

हार

逻例

मोर्ति

ते है

नहीं।

पदो, समझो और करो

(?)

ईमानदारी

चालीस वर्ष पहलेकी बात है। श्रीरंगलाळजीकी आसामके एक शहरमें दूकान थी । कपड़ा-गह्या-सोना-चाँदी-किराना सभी चीजें वे वेचते थे। सचाई और ईमानदारी उनके खभावमें थी । असठी माठ देना, पूरा तौळना उनकी प्रतिज्ञा थी । इससे प्राहकोंके हृद्यमें उनपर पूरा विश्वास था और इससे उनका कारीबार छोटा होनेवर भीवड़ी शान्तिसे तथा सुचारुरूपसे चलता था, कोई झंझट नहीं था और गृहस्थका खर्च आसानीसे निकल जाता था। वे बहुत पैसेत्राले नहीं थे, पर सहदय थे। उनकी पत्नी भी वैसी ही थीं। एक छोटा लड़का था। उनकी सचाईपर विश्वासके कारण आसपासके सभी लोग तथा उच्च अंग्रेज अधिकारीतक उनको मानते थे।

एक बार वहाँकी सरकारने पुलिस तथा जेल आदिके राशनके छिये टेंडर माँगे। एक दूसरे बड़े व्यापारी थे, वे ही यह सब काम किया करते थे और अधिकारियोंसे मिलकर ऊँचे भावके टेंडर मंजूर करा लेते तथा राशनकी चीजोंमें भी मिलावट करते थे। इसमें उन्होंने बहुत धन कमाया था । एक बार वे पकड़े गये। ऊप्रके अंग्रेज अधिकारियोंको पता लगनेपर उन्होंने इनके टेंडर ही लेने अस्वीकार कर दिये। रंगलालजीकी ईमानदारी तया सचाईकी बात चारों ओर फैली थी, इससे उच्च अधिकारियोंने उनसे टेंडर माँगे। उनके लिये यह नया काम था। नीचेके अधिकारी व्यापारीको साथ ले जाकर उनसे मिले और उनको बताया-- आप ऊँचे भावके टेंडर दीजिये और मालमें भी मिळाबट कीजिये। हमलोगोंका हिस्सा रख दीजिये। इससे चौगुनी आमदनी होगीं। आप एक ही वर्षमें मालामाल हो जायँगे ।' रंगलालजीको यह बात नहीं गये थे। सर्वत्र निस्तब्बता थी। रेलवे कार्टरमें हिंगी

जॅची, उन्होंने कहा-- 'न तो मैं ऊँचे भावके देंहा दुँगा, न मालमें मिलावट ही करूँगा । उन अविकासि और उस व्यापारीने रंगठाठजीको 'घर आयी लक्ष्मींका तिरस्कार करनेकी वेयकुफी न करनेके छिपे बस समझाया । पर बेईमानी-चोरीकी बात उनकी समझमें ही नहीं आयी । इसपर उन लोगोंने कहा--'अच्छी बात है—आष कुछ भी न कीजिये। आप सिर्फ अपना ना दे दीजियेगा । सारा सष्टाईका काम ये व्यापारी क लेंगे और इस नामके एवजमें आप तीन वर्षतक पर्चीर हजार रुपये सालाना लेते रहिये। वह भी छ:उ महीनेका अग्रिम । ' उस समय पचीस हजार रुपये वहुत वड़ी चीज थी, पर रंगळाळजी इस लोभमें नहीं ए और प्रस्तावको अस्त्रीकार कर दिया । उनकी इस वर्ष मूर्वतापर वे छोग वहुत दुखी हुए । रंगठा ठजीने उकि भावके टेंडर दिये । उन छोगोंने बहुत प्रयास किया कि इनके टेंडर स्वीकृत न हों, पर रंगठाठजोने जाका संकेतमें बड़े अधिकारीको सब बातें बता दीं। अत उनका टेंडर मंजूर हो गया । इस सच्चे व्यापारमें उन्हें प्रतिगं केवल आठ हजार रुपये वचते थे। साहेवने उनर्व ईमानदारी तथा सचाईपर प्रसन्न होकर ठेकेका तीर वर्षका समय पूरा होनेपर उन्हें दस हजार रुपये इनामं गार्ड-र और दिल्वाये तथा आगेके छिये भी उन्हींको का दिया । यों सत्यकी रक्षा तथा विजय हुई । —रामकुमार अपवि उत्तर हि

2)

कर्तव्यनिष्ठा

रेलवेके एक अधिकारीकी कर्तव्यनिष्ठाकी लगा कि चौदह वर्ष पूर्व बनी हुई बात है। जुनागढ़के नवार्क व्यवहारके कारण गैर-मुस्टिम लोग गाँव छोड़का व

इस खट हाय

भी करव उनमे

काम

हमारे

शान्ति

तथा व किसी को य कर अ सबेरे

सिपाहि जायगी रास्तेमें

13

साथ च

धारी टो

सा

टेंडा

गरियों

मी'का

बहुत

में ही

वात

नाम

री का

पचीर

5:-Ð

वहुत

ों पढ़े

उचित

जाका

इस अधिकारीके दरवाजेको आधी रातके समय किसीने खटखटाया । इन्होंने दरवाजा खोळा । पाँच बुर्काधारी हायोंमें रिवाल्वर लिये खड़े थे। उनमेंसे एकने कहा— 'घ्वराना नहीं, हमें आपसे कुछ काम है।'

अधिकारी आश्चर्यमें डूव गये, साथ ही कुछ घबराये भी। परंतु प्रसंगको समझकर ऊपरसे स्वस्थता धारण करके वे उन लोगोंको अंदर ले गये। स्वयं मुँहमें सिगरेट लेकर उन लोगोंके सामने सिगरेटका डिब्बा रख दिया। उनमेंसे एक ने कहा-'साहेब! हमें सिगरेट देकर आप हमारे मुख देखना चाहते हैं न ? इसके बाद कुछ क्षण शान्ति रही। यह मीन साहेबको व्याकुल कर रहा था। मौन भंग करके अधिकारीने कहा-'कहिये क्या काम है ?

टोलोका सरदार बोला—'काम वड़ी ही जोखिमका है तथा सावधानीके साथ करनेका है । आपके सिवा दूसरे किसीको इस कामकी जिम्मेवारी सौंप नहीं सकते। आप-को यह काम करना ही पड़ेगा। एकाघ क्षण चुप रह-या कि कर और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसने फिर कहा-'खूव अतः सबेरे ही यहाँसे दारूगोला लानेके लिये मिलिटरीके साठ प्रतिमं सिपाहियोंको लेकर एक गाड़ी (रेलवे ट्राली) वेरावल जायगी। आपको केवल इस गाड़ीको शापुरकी ओर जाते रास्तेमें उलटा देना है जिससे साठों सिपाही, ड्राइवर और इनामं गार्ड-सबके चियड़े-चियड़े उड़ जायँ।

'अच्छी बात है, आपमेंसे एक आदमी समयपर मेरे साय चिळियेगा, आपका काम हो जायगा। अधिकारीने अप्रवा उत्तर दिया और उनकी स्वीकृतिसे प्रसन्न होकर बुर्का-धारी टोळी छौट गयी ।

साहेबने छुटकारेकी साँस छी और वे विचार करने ला कि अब क्या करना चाहिये। रेलवेके एक अधिकारी-नवार में नाते उनका कर्तव्य था मुसाफिरोंकी तथा रेळवेकी कर्त विम्पत्तिकी रक्षा करना । और कुछ नहीं तो, कम-से-कम हमेव

मानवताके नाते भावीमें फँसनेवाले उन मनुष्योंकी तथा उनके परिवारवाछोंकी तग्रहीपर विचार करके भी ऐसा निन्द्नीय काम कभी नहीं करना चाहिये। पर उनके जरा भी आनाकानी करनेपरपरिणामका व्यान आते ही साहेच तुरंत काँप उठे। परंतु अन्तमें उनकी कर्तव्यनिष्ठाने साथ दिया और उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया कि जानको जोखिममें डालकर भी वे इस अनुचित कार्यको नहीं करेंगे।

निश्चित समयपर उस टोलीमेंसे एकने आकर किताड़ खटखटाये । जरा भी न घबराकर अधिकारी उसे अंदर ले गये।

उस बुर्काचारीने आते ही उतावळी करनी ग्रुरू की-'चिलिये, साधनोंको लेकर जल्दी पहुँच जायँ और काम कर डालें।

'देखों भाई, यह काम करना तो मेरे लिये बायें हाय-का खेळ है । परंतु मुझसे ऐसी घोखेबाजीका काम होगा नहीं, जिसका नमक खाता हूँ, उसका अहित मैं कैसे कर सकता हूँ ??

यह सुनते ही गरम होकर उस बुर्काधारीने अधिकारी-को रिवाल्वर दिखाते हुए कहा-'यह तुम्हारा साथ नहीं देगी। बेकाम बातोंको छोड़कर चुपचाप तैयार हो जाओ।'

'यदि मेरे एकके मरनेसे वासठ मनुष्योंके प्राण बचते हों तो मुझे जीवनका मोह नहीं रखना चाहिये। छो, चलाओ गोली ।' अधिकारी छाती सामने करके कहा ।

पता नहीं, क्यों, उसने रिवाल्वर वापस खींच लिया और जाते-जाते यह कहता गया कि 'साहेत्र ! यह बात कहीं बाहर न जाय, आपको मेरा इतना ही कहना है।

और इस प्रकार एक भयंकर दुर्घटना होते-होते रह (अखण्ड आनन्द) गयी। -दत्तात्रेय मोरेखर फाटक

(3)

भगवान् शिवका आदेश

मेरी ८ वर्षकी कन्या वीणाको २९ दिसम्बरको भगवान् शंकरने प्रातःकाल खप्तमं कहा कि हम कैमोर पर्वतपर हैं, वहाँसे उठाकर लाओं । वह ५ बजे सुबह मेरे पास अश्रुचारा बहाती हुई आयी । पूछनेपर कहा कि 'मुझे भगवान् दिखते हैं। उनके काले-काले नाग लिपटे हैं। वे अपने दोनों हाथोंमें बहुत वड़ी प्रतिमा लेकर खड़े हैं। कह रहे हैं हम कैमोर पहाड़पर एक पेड़के नीचे जलहरीसमेत विराजित हैं।' दो-तीन दिन तो मैंने उसे टाङ्ना चाहा, पर वह तो बार-बार रट लगाती ही रही। अन्तमें मैंने उससे कहा कि 'हम उन्हें कहाँ पहाड़पर हूँ हैंगे, रास्ता कहाँ मिलेगा।' मेरे इस प्रकार कहनेका उद्देश्य यही था कि वह वार-वार कहना छोड़ देगी। पर वह ३१ तारीखकी सुबह उठते ही कहने लगी कि 'मुझे तो आज भगवान्ने रास्ता भी बतला दिया है, माँ! चलो ।' यह लड़की तीसरी कक्षामें पढ़ती है। उसने रास्तेका नक्शा खींचकर बतजाया और कहा, 'कल सोमगर है, कल जरूर जाना है। कैमोरमें बसका मार्ग है। मैं उसे लेकर गयी। रास्तेमें वससे ही उसने वह चोटी अँगुलीसे बतायी--- 'माँ ! यही पहाड़ है जो मुझे भगवान्ने बताया है। दूसरे दिन प्रातःकाल ही हम सत्र उसके साथ चले, वह आगे-आगे हम पीछे-पीछे । चार-पाँच घंटेतक ढूँढ़नेपर एक पेड़के नीचे हमें जलहरीसमेत भगवान् शिवकी प्राचीन प्रतिमा मिली। उसे हम विधिसहित उठाकर लाये तथा संक्रान्तिके दिन अखण्ड रामायणका पाठ तया सोमवारको रुद्रामिषेक किया। अब सैकड़ों स्त्री-पुरुष दर्शनार्थी आते हैं। कीर्तन-भजन चलता है। इस पहाड़पर भगवान्ने जंगलमें मङ्गल कर दिया। यह घटना अभीकी है और मेरे ही घरमें घटित हुई है। (8)

दानव और देवता

कुछ समय पूर्वकी यह त्रिट्कुछ सत्य घटना है इसमें पात्रोंके नाम मैंने नहीं छिखे हैं।

धन्य हो तुम । तुम वास्तविक रूपमें मानव हो तुमने मानवताका मान बढ़ाया । मानवताके माधेपर हे समय-समयपर कलंकको धब्बोंको तुम-सरीखे मानवोंने धोया है, पोंछा है, आज जब कि भाई भाईके का पीनेमें नहीं सकुचाता है, तब तुमने हमें मानवताका है सुन्दर पाठ पढ़ाया है, तुम चने-मूँगफलीका ठेल ह खींचते हो, तुम खींचते हो दया, धर्म है मानवताकी गाड़ी ।

वात दरअसल यों हुई-अभी एक सप्ताह क्षी छोटे माईने एक बड़े भाईसे कुछ रुपयोंकी ह माँगी। छोटा भाई कुछ व्यसनोंका शिकार है, ऐसा जह भी बड़े भाईने, जो केवल एक चने-मूँगफलीका चलाता है, कई बार उसे पहले सहायता की थी। नहीं, वह उसे इन व्यसनोंसे यपासाच्य दूर ए उपदेशामृत भी पिछाया करता था; किंतु व्या कुप्रभावके कारण छोटा भाई तो चिकना घड़ा वना था। वह सुन तो छिया करता था; किंतु उन वर्ष आचरणमें नहीं उतारता था और यही कारण वह जब-तव बड़े भाईके सम्मुख कुछ-न-कुछ स माँग रखता रहता था और बड़ा भाई भी ऐसा वेर्न प्रकारेण उन माँगोंको भरसक पूरा करता रहता ॥। दिन उस बड़े भाईका हाय तंग था, अतः उसी समय उस माँगको पूरा कर नेमें अपनी असमर्थता प्रकः १२-१ बजे दिनमें बड़ा भाई तो भीजन निवृत्त हो अपने दैनन्दिन कार्यक्रमोंमें व्यस है और इधर छोटे भाईने ऐसा घोर कर्म कर डाला कि मानवता बिलबिला उठी । पहलेके सारे ^{अईर}

—सौ० कौरालकुमारी भटनागर

ताकमें रख वह अपने बड़े भाईके चार वर्षीय छड़केकी गर्दन मरोड़ उसे दूरके एक कुएँमें फेंक आया। शामको अपने कलेजेके टुकड़ेको पानीमें मरा देखकर भी बड़े भाईने पुलिसमें रिपोर्ट लिखानेसे एकदम इनकार कर दिया। 'औलाद तो तकदीरमें होगी तो किर हो जायगी। बेटेके समान भाईको जो मुझसे दस साल छोटा है और मैंने अपने हाथोंसे पाला-पोसा है, जेल भिजवाकर क्या मैं अपना परलोक विगाड़ छूँ।' अंदरके लावेको भींचते हुए बड़े भाईने कहा। लाश सामने पड़ी है और वह छोटे भाईसे कह रहा है—'चीखू, यह तूने क्या किया पगले! सोच, इस बच्चेने तेरा क्या विगाड़ा था? अगर सजा ही देनी थी तो मुझे देता और हाँ, दीवानजी! यह हम भाइयोंकी आपसी बातें हैं। आप तो लिखिये मुझे किसीपर शक नहीं, बच्चा अपने आप ही गिर पड़ा होगा।'

धू-धू करके चिता जल उठी और तब बुक्का फाड़कर दोनों भाई रो पड़े । तत्पश्चात् बड़ा भाई बोला—'रो मत चीखू ! बच्चेकी मौत भी यदि तुझ गुमराहको सही रास्तेपर ले आये तो मैं समझूँगा सौदा घाटेमें नहीं रहा ।'

बड़े भाई ! तुम वास्तवमें बड़े हो, तुम्हें शत-शत प्रणाम । दानव और देवताके दो प्रत्यक्ष रूप ।

—गोपाल कृष्ण जिंदल

(4)

धन पराव बिष तें विष भारी

कुछ वर्गे पूर्व राजस्थानके चित्तौड़ जिलेके एक कस्बेमें मेरे पिताजीकी सर्विस थी। जिस कार्याज्यमें वे काम करते थे, उसीमें ब्राह्मणजातिके एक अर्जीनवीस थे। वे स्टाम्प—टिकट आदि बेचते थे और आवेदनपत्र आदि लिखते थे। वे शिवजीके बड़े मक्त थे। गाँवके बाहर शिवजीके मन्दिरमें नित्य रामचिरतमानसका पाठ करना उनका नियम था। एक दिन हम मन्दिरमें लोभके बुरे परिणामोंपर वार्ता कर रहे थे। 'दूसरोंके धनको विषके समान समझना चाहिये; किंतु आजके युगमें क्या ऐसा हो सकता है ?' इस प्रकार इसपर तर्क-वितर्क हो रहे थे। तो उन अर्जीनवीसने, जो अपनी आपवीती सुनायी, वह नैतिकताका आदर्श है।

घटना उस समयकी है जब १९२०-२१ में बंबईमें गोवधके प्रश्नको लेकर भयंकर हिंदू-मुसलिम-दंगे हुए थे। बहुसंख्यक मुस्लिम बस्तीमें हिंदुओंकी दूकानें छूटी गयी थीं और हिंदू-बहुसंख्यक बस्तीमें मुस्लिम दूकानदारों-की । उन दिनों उपर्युक्त अर्जीनवीस महोदय भी बंबईमें एक सेठके यहाँ मुनीमीका कार्य करते थे। दंगोंके समय एक दिन ये जब बाजारमें कोई वस्तु खरीदने गये तो वहाँ दंगा शुरू हो गया था। दूकानोंका सामान वाहर पड़ा था । सड़क जनशून्य हो रही थी । अर्जीनवीस जब भयभीत होकर वापिस घर छौटने छगे तो उनको एक नालीके किनारे एक कागजका बंडल पड़ा दिखा। वे उसको लेकर जल्दीसे घर आ गये। घर आकर उसको खोला, देखा तो उसमें बीस हजारके नोट थे। पहले तो वे बहुत हर्षित हुए कि आज घरकी सारी दरिइता समाप्त हो जायगी और स्वदेश जाकर इन रुपयोंद्वारा आनन्दसे व्यापार आदि करेंगे; किंतु दूसरे ही क्षण उनकी आत्मा-ने उनको विकास और अन्तर्मनसे आवाज हुई-'हे मूर्व ! जिन रुपयोंके बलपर तू इतने मीठे मीठे भविष्यके स्वप्न देख रहा है, क्या इनको तूने अपने गाढ़े पसीनेसे कमाया है ? उस व्यक्तिपर इस समय क्या बीत रही होगी जिसके ये रुपये होंगे। आखिर उनको आत्माळानि पैदा हुई। उन्होंने विचार किया कि जिसके ये रुपये होंगे, ये उसी-को लौटा देने हैं। भाग्यसे उस बंडलपर रूपयेके मालिक-का नाम था और दूकानका पूरा पता भी छिखा था। दंगा शान्त हो जानेपर वे उस दूकानदारके पास गये और उसको रुपये सौंपकर सारी घटना सुना दी। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उना है

ा ३।

नव हो प्रेपर हं नवोंने ह

तं रक्तां गाका कै

ठेल र धर्म इं

ह पूर्व। की ह सा जह

जिका ^{है} थी।

र रख

विनार्ग इन वार्ग

रण था इ हर्ग प्रमें

रा था। उसने

प्रकर तन ³

ास है।

अहर

दूकानदारको तो स्वप्नमें भी आशा नहीं थी कि उसके रुपये उसे मिल जायँगे। उसने इनको कहा कि आप है। विश्वास चाहिये। मनुष्य नहीं, देवता हैं। उसने इनको कुछ रुपये देने चाहे किंतु इन्होंने नहीं लिये और कहा-'मेरा इन रुपयों-पर कोई अधिकार नहीं था, यह धन तो पराया था, जो मेरे छिये विषके समान है। मैंने रुपये छौटाकर अपने कर्तन्यका पालनमात्र किया है। इसमें विशेषता क्या है ? पारितोषिक लेनेपर तो मेरे कर्तव्यपालनकी विक्री होती है और ईख़रकी दृष्टिमें मैं अपराधी होता हूँ। 'यह कहकर वे वापस अपने घर आ गये। इस घटनाको सुनकर हमें बड़ा आश्वर्य हुआ । बहुतोंने उनकी तारीफ की और कुछ लोगोंने उनको अकस्मात मिले हुए इतने रुपये वापस देनेके कारण मूर्ख भी वतलाया। यह निश्चय है कि उनका यह कार्य मूर्बतापूर्ग नहीं था, बल्कि नैतिकता एवं नि:स्वार्थताका उत्तम आद्री था।

—श्याममनोहर व्यास वी • एस-सी ०

(&)

रामायणकी चौपाई

ः मेरे दोनों पैरोंमें बहुत बड़े-बड़े दाद तीन-चार सालसे थे। मैं बहुत बेचैन था। अनेक ओषघियोंका प्रयोग किया। पर निष्फल रहा। मैंने तुलसीकृत रामचरितमानसकी एक चौपाईका जप प्रारम्भ किया । बुद्धि श्रद्धापूर्ग तथा निश्चयात्मिका थी । पूर्ण सफलता मिली । चौपाई यह है-

> दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥

्एक सालके जपसे दोनों पैरोंके दाद अच्छे हो गये। चार महीनेसे निम्नलिखित एक श्लोकका जप भी साथ चलता रहा—

श्रीरामं च हनूमन्तं सुग्रीवं च विभीषणम् । ः अङ्गदं जाम्यवन्तं च स्मृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ इससे निश्चय ही कर्मजन्य पापफलोंका क्षय होत

-श्रीहरीदास सबीर, नाम

(0)

ताँगेवालेकी ईमानदारी

कुछ ही दिनों पहलेकी बात है । हमारे यहाँ कलकत्तेसे कुछ घरके लोग आये थे। गोरखपुर स्टेशन से वे लोग ताँगेपर घर आये । सामान समेत सब लोग उत्तर गये और सामानको यथास्थान रखवाकर सब अपने पूरी पृष्ट अपने काममें तथा मिलने-जुलनेमें लग गये । करीब पीत घंटे बाद एक ताँगेवालेने आकर पुकारा—'चरमेवाले वाबूजीकी एक पेटी मेरे ताँगेमें रह गयी है, वे पहचान कर ले लें।' उन लोगोंसे पूछा गया। सभीने कहा-'सारा सामान ताँगोंसे उतरवा लिया गया था। हमा। कोई सामान नहीं छूटा है।' फिर, जब पेटी देखी त तो वे सज्जन कहने छगे—'मुझे तो इस पेटीकी याद ही अनेक नहीं थी। ' यद्यपि उसमें उनका जरूरी सामान था। परम उ ताँगेवालेने पूछनेपर अपना नाम 'डोंढे' वतलाया और ब्ह कि 'मैं स्टेशन छौट गया था। वहाँ जब दूसरे मुसाफिरोंब सामान रखने लगा, तत्र नीचे पेटी दिखायी दी, अत उन मुसाफिरोंको छोड़कर मैं दौड़ा आया हूँ। आ खोलकर देख लें । सब सामान ठीक हैं न ?' खोला देखनेकी तो कोई बात ही नहीं थी; जो पेटी देने आया वह सामान थोड़े ही चुराता। पर ताँ गेवालेके आग्रहसे छै खोलकर देख ली गयी । ताँगेवालेकी ईमानदारी त मुसाफिर छोड़कर पेटी छौटानेकी तत्परता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह गरीब है, पर आजकलके अधिकांश अमीरोंकी अपेक्षा उसकी सत्यनिष्ठा तथा ईमानदारी की चढ़ी है।

सूर्यकान्त अप्रवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

नयी म मास ल

दिये उ

है। डि

आठ ।

सं ० शिवपुराणाङ्कः समिति ही गया, दूसरा संस्करण छप रहा है

१,३१,००० प्रतियोंका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया तथा सब पुराने ब्राहकोंको बी० पी० तक नहीं जा सकी। न्यी माँग जोरोंसे आ रही है, इसलिये २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण छापा जा रहा है; परंतु उसके तैयार होनेमें लगभग दो मास लग सकते हैं। जिन लोगोंके रुपये मनीआर्डरसे आ रहे हैं, उनका नाम ग्राहकोंमें लिखकर फरवरीसे मासिक अङ्क भेज दिये जाते हैं । विशेषाङ्क तैयार होनेपर जा सकेगा। व्यवस्थापक-कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

गीता-पञ्चाङ्ग वि॰ सं॰ २०१९ का कुछ बच गया है, अतः विक्रेताओंको १२५ छेनेपर ही १००० की रेट दी जा रही-है। जिन्हें छेना हो, शीघ्र मँगवानेकी कृपा करें।

आठ नयी पुस्तंकें !

होता

नाभा

यहाँ

टेशन-

ं लेग

त्र पौन

श्मेवाले

हिचान

हा--

हमारा

वी तव

र क्ल

फेरोंका

, अतः

1.314

वोलका

-आया से खे

ती ता

र बड़ी

धिकांश

ो की

मुप्रवा^ल

प्रकाशित हो गयीं !!

(१) मानस-पीयूपके खण्ड ३का चतुर्थ संस्करण

सम्पादक-श्रीअंजनीनन्द्नशरणजी

आकार डवल-क्राउन आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ९५६,मूल्य १०.५० डाकखर्च १.९० कुल १२.४०।

। इस खण्डका पुनर्मुद्रण हो जानेसे गीताप्रेसमें यह बृहत् ग्रन्थ अब पूरा छप गया है। सात जिल्दोंके इस विशाल ग्रन्थकी पूरी पृष्ठ-संख्या ६१८६ है। पूरे प्रनथका मूल्य ६५.०० है। कमीशन पंद्रह प्रतिशत तथा ६० १००) का माल एक साय अपने मँगवानेपर ग्राहकके स्टेशनतकका पूरा पारसल गाड़ीका रेलभाड़ा हमारा। आर्डर देते समय अपने रेलदे स्टेशनका नाम स्पष्ट लिखना चाहिये।

(२) मनुष्यका परम कर्तव्य लेखक-श्रीजयद्यालजी गोयन्दका

आकार डवल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४१२, सुन्दर बहुरंगे चार चित्र, मूल्य १.०० डाकखर्च-.९४ कुल १.९४।

प्रस्तुत पुस्तकमें श्रीगोयन्दकाजीके कल्याण वर्ष ३३ और ३४ में प्रकाशित मनुष्यमात्रके लिये कल्याणकारी लेखींकाः संग्रह है। इसमें गीतोक्त निष्काम कर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, संयम, सत्य, श्रद्धा, समता, भगवत्य्रेम, भगवान्की द्या आदि ाद ही अनेक आध्यात्मिक तत्त्वोंका विशद विवेचन है। यह संग्रह कर्मयोगी, भक्तियोगी और ज्ञानयोगी सभी प्रकारके साथकोंके लिये था। परम उपयोगी है।

(३) आदर्श चरितावली (भाग १)—[ऋषि-म्रुनि-शिक्षा]

(लेखक—ठा० श्रीसुदर्शनसिंहजी)

आकार डवल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ६०, मू० २५ न० पै०। डाकखर्च ६५ कुल ९०। इसमें चुने हुए ऋषि-मुनि-संत-भक्तोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षासहित हैं।

(४) आदर्श चरितावली (भाग २)—[आचार्योंके उपदेश] पृष्ठ-संख्या ६०, मू० .२५ न० पै०। डाकखर्च .६५ कुछ .९०।

इसमें चुने हुए विभिन्न आचार्य, मतप्रवर्तक तथा युगनायकोंके सोल्ह चरित्र उनकी शिक्षासहित दिये गये हैं।

(५) आदर्श चरितावली (भाग ३)—[संत-शिक्षा]

पृष्ठ-संख्या ६०, मृ० .२५ न० पै०। डाकलर्च .६५ कुल .९०। इसमें चुने हुए संत-महात्मा-योगी साधकोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षासहित दिये गये हैं।

(६) श्रीनारायण-कवच (श्रीमद्भागवत स्वत्य ६ अय्याय ८ से)

पृष्ठ-संख्या १६, सुन्दर मुख-पृष्ठ, मू० .६ (छः नये पैसे)।

(७) अमोघ शिवकवच (श्रीस्कन्दपुराणसे)—पृष्ठ-संख्या १६, मूल्य ६ (छः नये पैसे)।

(८) श्रीशिवचालीसा (श्रीशिवाष्ट्रक और आरतीसहित)—पृष्ठ-संख्या २४, मूल्य ६ (छः नये पैसे)। पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

व्यवस्थापक गीताप्रेस, पो॰ गीताप्रेस (गोरखपुर)

गीताभवन-ऋषिकेश-सत्सङ्गकी सूचना

श्रद्धेय श्रीजयद्यालजी गोयन्द्रकाका विचार चैत्र वदी १३ (२ अप्रैल १९६२) के ला गीताभवन (स्वर्गाश्रम) पहुँचनेका है। सदाकी भाँति आषाढ़तक उनका वहाँ ठहरनेका विचार है।

गीताभवन 'सत्सङ्ग'में जानेवालोंको ऐश-आरामकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही क

चाहिये तथा सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग छेना चाहिये।

तौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाना चाहिये। ऋषिकेशमें नौकर-रसोइया मिलना की है। स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके साथ अथवा अन्य किसी सम्बन्धीके साथ ही जायँ। अकेली न क पवं अकेली जानेकी हालतमें यदि स्थान न मिल सके तो दुःख नहीं करना चाहिये। गहने आदि जोखिक चीजों साथ नहीं रखनी चाहिये। बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ, जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेका क कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण सत्सङ्गमें विभ्न होता है। खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासा किया जाता है, किंतु दूधका प्रबन्ध होना कठिन है।

छप गया !

बहुत दिनोंसे अप्राप्य प्रन्थका नया संस्करण

छप गया

पातञ्जलयोगप्रदीप

ग्रन्थकार-श्रीखामी ओमानन्दजी तीर्थ

आकार सुपर रायल आठपेजी, पृष्ट-संख्या ६५२, मू० ६.०० डाकस्तर्च २.२५ कुल ८.२५।

इस प्रन्थके दो संस्करण अन्य स्थानोंसे प्रकाशित हुए थे। उनका मूल्य भी १२) बहुत अधिक था तथा वे अप्राप्त हो गये थे। अतः प्रन्थकार महोदयके आग्रह और प्रन्थकी उपादेयताके कारण तीसरा संस्करण गीताप्रेससे प्रकाशित किया और उसका मूल्य भी पहलेसे आधा अर्थात् केवल छः रुपये रक्ला गया। पुस्तककी माँग इतनी अधिक रही कि पाँच ह प्रतियोंका संस्करण बहुत ही शीन्न समाप्त हो गया। तभीसे चौथे संस्करणके लिये पाठकोंका बहुत आग्रह था पर कई तह किताइयोंके कारण अवतक न छप सका।

इस बार सूर्यभेदी व्यायाम (सूर्य-नमस्कार) का सविस्तर विवरण और जोड़ा गया है। उसकी प्रक्रियाको प्रक्रियाको प्रक्रियाको ए करनेवाले ९ इकरंगे चित्र आर्टपेपरपर छापकर लगाये गये हैं। कुछ अन्य आसनोंके भी ६ चित्र बढ़े हैं। प्रन्थकी पृष्ठ संह भी २४ पृष्ठोंकी वृद्धि हो गयी है। फिर भी मूल्य वहीं छः रुपये है।

व्यवस्थापक-गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखु

'कल्याण' नामक हिंदी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण फार्म चार—नियम-संख्या—आठ

१-प्रकारानका स्थान--गीताप्रेस, गोरखपुर

२-प्रकाशनकी आवृत्ति —मासिक

३-मुद्रकका नाम-मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४-प्रकाराकका नाम—मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध-भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५-सम्पादकका नाम—(१) हनुमानप्रसाद पि (२) श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०० वि दोनोंका राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय दोनोंका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

द्वा व्यक्तियोंके नाम-पतें जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और राली, कलकत्ता (सन् १८६ को इसकी पूँजीके के विधान २१ के अनुमा भागीदार हैं।

मैं मोतीलाल जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी वार्ते मेरी जानकारी विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

दि० १ मार्च १९६२

101

लग

ी जा

कि न ज खिम प्रिक

गया

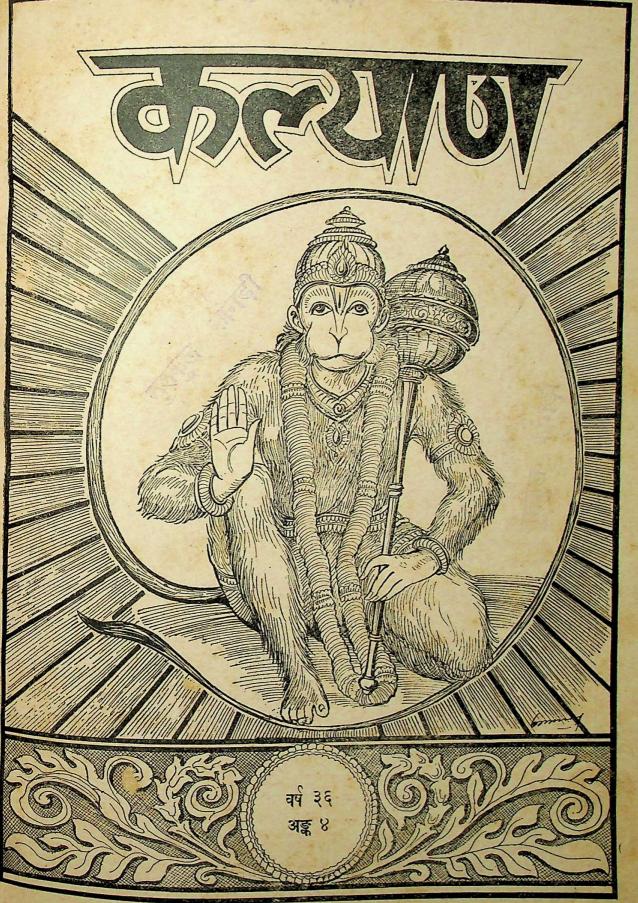
प्राप्यः कियाः गॅच ह

प्रती इ-संग

ख्यु

वो ।

लयं। तहां १८६ः। तहां स्था



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ संस्करण—१,४८,००० (एक लाख अइतालीस हजार)

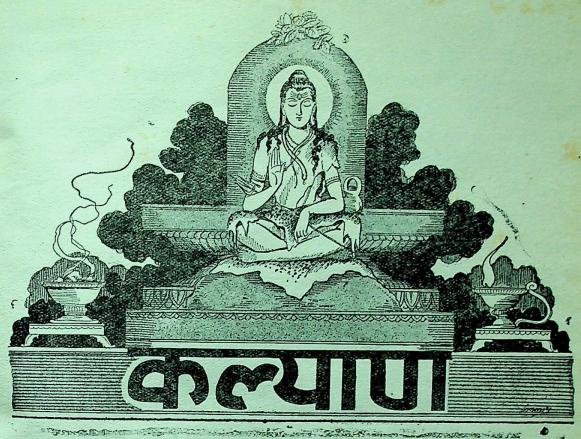
	कल्याण, सौर वैशाख २०१९, अप्रैल १९६२
ावषय-सूचा	
विषय-सूची पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ट-संख्या
१-देवर्षि नारदपर श्रीराधाकी कृपा [कविता] ८३३	१४-मैं तुम्हारा पारखी भी हूँ [एक तरुण
२-कल्याण ('दीव') · · · ८३४	साधककी डायरीसे] ८६५
३-कैवल्य-सम्पादनके पाँच साधन (पूज्यपाद	१५-परम आत्मसाधना (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ८६६
व्रह्म० श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुराम-	१ ६-'सुहृदं सर्वभूतानाम्' [कहानी]
जी दामीं) ८३५	(श्री'चक') ८६९
४-श्रीराधाकी विरह-व्यथा [कविता] ८३७	१७-अपना निर्माण कीजिये (स्वामीजी
५-पति-पत्नीके परस्पर कर्तव्य (श्रद्धेय	श्रीकृष्णानन्दजी) ८७२
श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ८३८	१८—गीत (श्रीमोहनजी वार्ष्णेय) ८७३
६-योगीश्वर गोरक्षनाथका दार्शनिक सिद्धान्त	१९-इमारा वेदराजा और उसकी सेना
(आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय	(आचार्य श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ) ८७४
तर्म ० त०) ८ ८ ८	२०—गो० श्रीहरिरायजी 'रसिक' (श्रीक०
७-भगवान्में श्रद्धा-विश्वास हद कीजिये	गोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न) *** ८७६
(श्रीजयकान्तजी 'झा') ८५१	२१-आर्य-संस्कृतिका गौरव [गद्यगीत]
८—रामकी कृपाछता [कविता] ८५३ ९—मधुर ८५४	(श्रीशिवकुमारजी सूद बी॰ ए॰, बी॰ टी॰)८८१
९-मधुर	२२-रामायण और राम-कथाकी सार्वभौमिकता
१०-मैं अपनौ मन हरि सौं जोरयौ [कविता] ८५६	(श्रीनर्वदाप्रसादजी वर्मा) ८८४
११-अतीत और भारत (श्रीआचार्य सर्वे) ८५७	
१२-यज्ञ (श्रीजगन्नाथजी पाठक) ८५८	२३-भक्तगाथा (स्वामीजी श्रीजयरामदेवजी) ८८९
१३-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददास-	२४-पढ़ो, समझो और करो
जी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्द-	२५-स्त्रीके लिये स्वामी (श्रीसीताराम ओंकार-
प्रसाद श्रीवास्तव) ••• ८६०	नाथजी) ८९६
चित्र-सूची	
१—वरदाता मारुति	··· (रेलाचित्र) ··· मुख-पृष्ठ
२-देवर्षि नारदपर श्रीराधाकी कृपा	(तिरंगा) ••• ८३३
- nexes	

वार्षिक मूल्यो भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु० १०.०० (१५ शिलिंग) जय पावक रिव चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय।। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय।। जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते।। साधारण विदेशमें (१० वंस कल्याण



ें देवपि नारदपर राधाकी कृपा CC-0. In Public Domain. Guruku Kangri Collection, Haridwar

क् पूर्णमदः पूर्णमदं पूर्णात् पूर्णमुद्दन्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाविशिष्यते ॥



उमासहायं परमेश्वरं प्रश्वं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रश्चान्तम् । ध्यात्वा ग्रुनिर्गच्छिति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर वैशाख २०१९, अप्रैल १९६२

संख्या ४ पूर्ण संख्या ४२५

देवर्षि नारदपर श्रीराधाकी कृपा

राधाने दे दर्शन सुर-ऋषिको क्रपया कर दिया निहाल। करने लगे स्तवन गद्गद हो प्रेमपूर्ण-हग मुनि तत्काल॥ महायोगमयि मायाधीश्वरि तेजपुञ्ज जननी जय जय। माधुर्यामृतवर्षिणि कृष्णाकर्षिणि कृष्णातमा जय जय॥ परमेश्वरि रासेश्वरि नित्य निकुञ्जेश्वरि हाहिनि जय जय। नित्याचिन्त्य अनन्त अनिर्वचनीय रूप-गुण-निधि जय जय॥



कल्याण

याद रक्खो—भगवान्ने तुम्हें जो कुछ भी दिया है, वह लाभ उठानेके लिये है। अतः प्रत्येक वस्तु तथा परिस्थितिका सदुपयोग करके उससे लाभ उठाओ। सबसे अधिक मृत्यवान् वस्तु है—समय। मृत्यु आनेपर एक क्षणका समय भी माँगे नहीं मिलता। अतएव जीवनके एक-एक क्षणका सदुपयोग करो। एक-एक श्वासका समय कत्याणमय कार्यमें लगाओ। समयका सर्वोत्तम सदुपयोग है—आलस्य-प्रमादको छोड़कर भगवान्का मङ्गलमय स्मरण करते हुए प्रत्येक कर्तव्य-कर्मको भगवान्की पूजा-सेवाके भावसे करना। अनर्थकारी और व्यर्थ साहित्य, सिनेमा, ताश आदि खेल, व्यर्थ निद्रा, व्यर्थ वार्तालाप आदिमें समय खोना उसका दुरुपयोग है। पापकमोंमें समय लगाना तो दुरुपयोग ही नहीं है, समयके साथ शत्रुता करके अपने विनाशको बुलाना है।

याद रक्खो—तुम्हें मन मिला है—भगविच्चन्तन करने तथा सिन्वन्तनके द्वारा अपना तथा पराया मङ्गल सोचनेके लिये। ऐसा करना ही मनका सदुपयोग है और जीवनकी सफलताका साधन है। परंतु तुम इसे यदि विषाद, भय, चिन्ता, वैर, हिंसा, व्यर्थ-चिन्तन, काम-चिन्तन, विषयचिन्तनमें लगाते हो, पित्रत्र भावोंके बदले अद्युद्ध विचारोंमें संलग्न रखते हो, नियन्त्रणमें न रखकर व्यर्थ-अनर्थके विचारोंमें भटकने देते हो तो तुम इसका दुरुपयोग कर रहे हो।

याद रक्लो—तुम्हें वाणी मिली है—भगवन्नाम-गुण- भक्षण-पान या वैर-हिंस् गानके लिये, खाच्यायके लिये, हितपूर्ण-मधुर-सत्य- दुरुपयोग करते हो—आ भाषणके लिये—ऐसे शब्दोंके उच्चारणके लिये, जिनसे नरक-भोगकी योजना अपना तथा दूसरोंका कल्याण हो तथा जो शब्द वायु- जाओ। पापके कार्यों मण्डलमें फैलकर चिरकालतक वातावरणमें शुद्ध प्रेरणा प्राप्त वस्तुका उपयोग देते रहें। ऐसा करना ही वाणीका सदुपयोग है। इसके निर्वाहमें भी अत्यन्त विपरीत यदि तुम वाणीके द्वारा असत्य, अहितकारी, उपयोग करो। बिद्धया करीत यदि तुम वाणीके द्वारा असत्य, अहितकारी, उपयोग करो। बिद्धया

उद्देग उत्पन्न करनेवाले कटु तथा अप्रिय शब्दोंका उच्चारण करते हो, परिनन्दा, परचर्चा, परहानिचर्चा, आत्मप्रशंसा, सन्निन्दा या व्यर्थकी बातोंमें, दुनियाको आलोचना-प्रत्यालोचनामें, मिथ्या गप-शपमें लगाते हो तो वाणीका दुरुपयोग करते हो। उन

खान

अभ

अथ

सहि

वैरा

सम

किर

और

अन्त

कार

प्रप

चैत

नह

प्रत्य

अधि

याद रक्खो-तुम्हें धन-सम्पत्ति मिली है, वस्त मिली हैं—भगवान्की सेवाके लिये। जहाँ अभाव है, वां भगवान् उन अभावप्रस्तों के रूपमें तुमसे धन-सम्पत्ति ता उन वस्तुओंको माँगते हैं । तुम उन वस्तुओंको अपर्व न मानकर, अपने लिये कम-से-कम लेकर शेष सब या योग्य अभावग्रस्तोंको आदरपूर्वक प्रदान करनेके रूप भगवत्-सेवामें लगा देते हो, तब तो उनका सदुपयो करते हो और तुम्हारी धन-सम्पत्ति तथा प्राप्त वस्तुओंबी सार्थकता होती है। इससे आत्मप्रसादके साथ तुर्हे भगवत्कृपा प्राप्त होती है। परंतु इसके विपरीत यदि तु उस धन-सम्पत्तिपर अपना खामित्व—अपना अधिका मानकर उसे अपने ही भोगमें लगाते हो, या संग्र करके ही उसके रक्षणकी चिन्ता करते हुए मर जो हो तो तुम अपनी बड़ी हानि करते हो; क्यों भगवान्की वस्तुको अपनी मानकर तुम चोरी करि हो और इस चोरीका दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा तुम यदि धन-सम्पत्तिको स्वाद-शौकीनी, विलासिता^{-फौर्क} आदिमें, शराब-व्यभिचार, अनाचार-अत्याचार, अम^{हर} भक्षण-पान या वैर-हिंसामें लगाते हो तो उसका 🎙 दुरुपयोग करते हो—आप ही अपने लिये अनन्त यन्त्रणाई नरक-भोगकी योजना बनाते हो। अतः सावधा^{न ह} जाओ । पापके कार्योंमें तो धन-सम्पत्ति या किसी प्राप्त वस्तुका उपयोग करो ही मत। अपने ^{जीवन} सादगीसे उनका निर्वाहमें भी अत्यन्त वेशकीमती कपड़े न पहनी कम दामके सादे कपड़े पहनो और पैसोंको बचाकर उनसे अभावप्रस्तोंके लिये वस्त्रोंकी व्यवस्था करो। खानपानमें सादगीसे बरतो और रोप पैसोंको अन्नके अभावसे दुखी पीड़ित भगवत्स्वरूपोंकी सेवामें—अनदान-के रूपमें लगाओ। यही सदुपयोग है।

याद रक्खो-इसी प्रकार तुम्हें जो कान-नाक-

त ऑख-जीभ-त्वक् इन्द्रियाँ मिली हैं—इनको भी भगवान्के । साथ जोड़कर तथा इनके द्वारा सेवा करके इनका सदुपयोग करो । दु:ख, निन्दा, अपमान, संकट आनेपर उनका भी सदुपयोग यों विचारकर करो कि ये सब हमारे ही किये दुष्कर्मोंके फल हैं। अतएव अब किसी प्रकार भी कोई दुष्कर्म न करके सदा सत्कर्म ही करना है। 'शिव'

कैवल्य-सम्पादनके पाँच साधन

(लेखक--पूज्यपाद ब्रह्म० श्रोत्रिय ब्रह्मिनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी शर्मा)

कैवल्य (माया और मायाके कार्यसे पृथक्ता) सम्पादन करनेके मुख्य तीन साधन हैं— ब्रह्मानुभव अर्थात् ब्रह्मखरूपका यथार्थ अपरोक्षज्ञान, माहात्म्यज्ञान-सिहत परमात्माकी अनन्यभक्ति और चित्तनिरोध । वैगाय और खधर्मपालन भी उनके साधनरूप हैं। कैवल्य-सम्पादन करनेके इच्छुक मनुष्यको अधिकारानुसार किसी एक साधनका अच्छी तरह अनुष्ठान करना चाहिये। खधर्मपालनके बिना चित्तग्रुद्धि नहीं होती और चित्तग्रुद्धिके बिना वैराग्य उत्पन्न नहीं होता।

ब्रह्मानुभव

'स्थूलशरीर, दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण—इन सब स्थूल-सूक्ष्म-समृह्से एवं उनके कारण अज्ञानसे मैं भिन्न और विलक्षण हूँ, मुझमें इन प्राप्ञोंका अंश भी नहीं है तथा निरितशय व्यापक चैतन्यसे, जिसको ब्रह्म कहा जाता है, मेरा कोई मेद नहीं।—ऐसे वेदान्तके संस्कारवाली निर्मल बुद्धिमें प्रत्याभिन्न ब्रह्मका संशय-विपर्ययरहित सुदृढ़ साक्षात्कार होना 'ब्रह्मानुभव' कहलाता है। विवेकादि साधनसम्पन्न अधिकारीको पहले तत्त्ववेत्ता पुरुषके द्वारा वेदान्त श्रवण करना, तत्पश्चात् मनन और निर्दिष्यासन करना चाहिये। यह इस 'ब्रह्मानुभव'में हेतुरूप है।

अद्दैतज्ञान-सम्पादन करनेकी जो-जो प्रक्रियाएँ हैं— उनमेंसे जो प्रकिया अपनेको अति अनुकूछ प्रतीत हो, मुमुक्षुको उसीमें दढ़ निश्चयपूर्वक संछप्न रहना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्मानुभवद्वारा मनुष्य कृतार्थ हो सकता है।

'मैं प्रत्यग्भिन ब्रह्म हूँ'—ऐसा दढ़ निश्चय अपने खरूपमें होना चाहिये । कर्ता-भोक्ता आदिके सम्बन्धसे अत्यन्त रहित आत्मा सत्ता-स्फूर्ति प्रदान करनेके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करता । इसिंछ्ये उसमें कर्तृत्वका मिथ्या आरोपण करना उचित नहीं । ब्रह्मखरूपमें निष्ठा रखनेसे चित्तको सुख-दु:खादिसे रहित परमानन्दका अनुभव होता है और चित्तवृत्ति निर्भय रहती है । ऐसा ज्ञानी मुक्त ही है और उसकी स्थिति ब्रह्मखरूपमें ही होती है । इस प्रकार ब्रह्मानुभव मोक्षमें हेतुरूप है ।

माहात्म्य-ज्ञानसहित परमात्माकी अनन्यभक्ति

प्रमात्मस्वरूप अपने इष्टदेवमें उनके यथार्थ माह्यात्म्य-ज्ञानसहित, सुद्ध श्रद्धायुक्त, अव्यभिचारिणी भक्ति रखना अर्थात् अपने इष्टदेवसे पृथक् तथा अधिक अन्य कोई नहीं है—ऐसी सर्वोत्कृष्ट अनन्यभावना करके इष्टदेवमें अचल परम प्रीति रखना—यही माह्यात्म्यज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चारण शंसा, चिना-

ाणीका

वस्तुएँ :, वहाँ ते तथ

अपर्न । यथा

रूपों रूपयोग तुओंबी

तुम् दि तुम

ाधिका। संग्रह र जाते

क्योंकि काले

उड़ेगा। [-फैश अमक्ष

का श

त्रान है

जीव ।

ब्रिटनक

संख्य

जाग्र भी

ब्रह्मा

या स

की

साध

है।

के।

क्योंवि

नहीं

इष्टदेव

काल

आवर

आत्मङ्

स्वधम

सहित परमात्माकी अनन्य भक्ति है । यथार्थ माहात्म्य न जाननेके कारण सची श्रद्धा और भक्तिका उदय नहीं होता । अतएव अपने हृदयमें उत्तम प्रकारकी अगाध श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये साधकको महापुरुषोंका सङ्ग एवं सत्-शास्त्रोंका अध्ययन अवस्य करना चाहिये । ऐसा करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर इष्टदेवके यथार्थ माहात्म्यका ज्ञान होता है । जिस प्रकार काष्ठको प्रदीत अग्निमें अपण करनेपर वह अग्निरूप हो जाता है, उसी प्रकार अपना कर्तव्य समझकर साधक यदि अपने मनको श्रद्धा-भक्तिके साथ ब्रह्ममें अपण कर दे तो वह जीव मिटकर ब्रह्मरूप हो जाता है ।

नवधाभक्ति अनन्यभक्तिके सम्पादन करनेमें साधनरूप है। वास्तविक भक्ति सम्पादन करनेके छिये दम्भ और दुराचारसे अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

इष्टदेवमें श्रीमहेश्वर, श्रीविष्णु, श्रीगणपति, श्रीसूर्य और श्रीभगवती—इन पाँच देवोंमेंसे किसी एक स्मार्तदेवका तथा श्रीसद्गुरुका समावेश होता है। इनमेंसे किसी एककी कारणब्रह्मरूप समझकर भक्ति करनी चाहिये। अन्य सभी देव अपने इष्टदेवके महिमारूप किंवा अंशरूप अथवा कार्यब्रह्मरूप हैं यह समझकर उनके प्रति पूज्यभाव रखना चाहिये। किसी देवकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार अनन्यभक्तिसे देहाभिमानादिकी आत्यन्तिक निवृत्ति होनेके कारण यह मोक्षमें हेतुरूप है।

चित्तनिरोध

चित्तवृत्तिको आत्मखरूपमें स्थित रखना चित्त-निरोध है । चित्तनिरोधके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आदिका अभ्यास करना आवश्यक है । चित्तके अन्य परिणामोंको वशमें रखकर और चित्तका

आत्माकार परिणाम होनेपर आत्मा ही ब्रह्म है, ऐसा ज्ञान होता है और तब मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

वैराग्य

इहलोक तथा परलोकके भोगों तथा धुख-दु:ख-मोह
आदि प्रकृति-कार्योंके प्रति सर्वथा तृष्णारहित होना—
वैराग्य है । श्रीपातञ्जलयोगदर्शनमें वैराग्यके दो प्रकार
बतलाये हैं — एक 'परवैराग्य' और दूसरा 'अपरवैराग्य'।
ऐहिक विषयोंमें तृष्णारहित उपेक्षाबुद्धिको अपरवैराग्य
कहा जाता है । ब्रह्मखरूपका यथार्थ अपरोक्षज्ञान होनेपर
जो प्रकृतिके सुख-दु:ख-मोहरूप खभावमें सर्वथा तृष्णारहित
होना है — वह पर-वैराग्य है । अपरवैराग्यसे परवैराग्य
श्रेष्ठ है और उसके उत्पन्न होनेपर खखरूपमें स्थित
और मोक्षकी प्राप्ति होती है । यह वैराग्य ज्ञानका
परिपाकरूप है । अतः वह साधनरूप नहीं, फलरूप है ।
अभ्यासहीन और विचारहीन वैराग्य दीर्घकालतक नहीं
टिकता और वह फलदाता भी नहीं होता, कहीं-कहीं
अनर्थकारी भी हो जाता है ।

खधर्मपालन

मोक्षकी इच्छासे वर्णाश्रमधर्मका श्रद्धा-मित्तपूर्वक निष्कामभावसे पाठन करना—स्वधर्मपाठन है। स्वधर्म-पाठनमें ही चोरी, परदारसङ्ग तथा परद्रोहके त्यागका समावेश भी हो जाता है। इन सबके अनुष्ठानसे चित-शुद्धि होती है और चित्त शुद्ध होनेपर ज्ञान, भक्ति, योग, किंवा वैराग्यकी प्राप्तिका अधिकार प्राप्त होता है।

पूर्वके अत्यन्त पुण्यके प्रभावसे ही मुमुक्षुमें ब्रह्मानुभव, अनन्यभक्ति, चित्तनिरोध, वैराग्य और स्वधर्मपालन—ये पाँचों साथ रहते हैं।

जो साधक ब्रह्मानुभव प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, उसको ज्ञानके प्रधान साधन श्रवणादिका अनुष्ठान करनेके साथ ही इष्टदेव किंवा सद्गुरुके प्रति भक्ति, वितको संयम-नियममें रखनेका प्रयत्न, वैराग्यभावको स्तर्त

38

-

ऐसा

-मोह

1-

नकार

य'।

रेराय

निपर

रहित

वैराग्य

स्थिति

ानका है। जाम्रत् रखनेकी प्रचेष्टा और खधर्मपालन आदिका अनुष्ठान भी अवस्य करना चाहिये । इसके विना साधकको ब्रह्मानुभवकी प्राप्ति प्रायः नहीं हो सकती; क्योंकि इष्टदेव या सद्गुरुकी भक्तिके बिना चित्तके प्रतिबन्धक संस्कारों-की निवृत्ति नहीं होती।

अनन्य भक्तिका सम्पादन करनेकी इच्छा रखनेवाले माधकके लिये 'अपना स्वरूप देहादिसे भिन्न और विलक्षण हैं न्यूनाधिकरूपमें इस वातके समझनेकी आवश्यकता है। साथ ही स्वधर्मपालनमें भी आदर रखना चाहिये; म्योंकि स्वधर्मपालनमें अनादर रखनेसे चित्तशुद्धि नहीं होती।

चित्तनिरोधका सम्पादन करनेके लिये आत्मज्ञान, इष्टदेव किंवा सद्गुरुकी भक्ति, स्वधर्मपालन तथा अनादि-कालसे विषयोंमें भ्रमित चित्तको विषयोंमेंसे निवृत्त करना आवश्यक है।

वैराग्य-सम्पादन करनेके लिये भी न्यूनाधिकरूपमें आत्मज्ञान, इष्टदेव या सद्गुरुकी भक्ति, मनोनिग्रह तथा खधर्मपालन आवर्यक है ।

स्वधर्मपालनके परिपाकके लिये साधकको व्यावहारिक स्वार्थका त्याग करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। इष्टदेव या सद्गुरुकी भक्तिके विना न तो स्वधर्मपालनका स्वरूप ही समझमें आता है और न उसका यथाविधि निर्वाह करनेके लिये जिस सावधानताकी अपेक्षा है, वही प्राप्त होती है । चित्तका संयम न होनेपर स्वधर्मपालनमें प्रमाद आदि उत्पन्न होते हैं और इससे स्वधर्मका वास्तविक पालन नहीं हो सकता । विषयोंमें वैराग्य न होनेपर उत्तम विषयोंकी प्राप्तिमें स्वधर्मपालन शिथिल हो जाता है और विषयोंमें दोषदर्शनके अभावसे मनमें विशेष विषया-मक्तिकी उत्पत्ति हो जाती है।

इस तरह ये पाँचों प्रकार अपने-अपने परिपाकके छिये परस्पर अपेक्षित हैं।

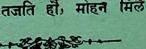
इन पाँच प्रकारोंमेंसे किसी एकका सम्पादन करनेके लिये अपने इष्ट प्रकारका अनुष्ठान प्रधानरूपसे तथा अन्य चारों प्रकारोंका अनुष्ठान गौणभावसे करना उचित है। हरि: ॐ

अनुवादक-श्रीसरेश एम्. भट्टी

のあるがあるがある。

श्रीराधाकी विरह-व्यथा

(ऊथौ) इन बतियनि कैसे मन दीजै। बिनु देखे वा स्यामसुँद्रके, पल प्ल ही तन छीजै॥ जो कर आनि हमारें दीनों, सो अपने कर छीजै। वाँचि सुनावहु लिख्यों कहा है, हम बाँचत यह भीजै॥ बड़ौ मतौ है जोग तिहारे, सो हमरें कह कीजै। अच्छर चारिक आनि सुनावहु, तिनहिं आस करि जीजै॥ उर की सूल तबै भल निकसै, नैन बान जौ कीजै। सूरदास प्रभु प्रान तजित हों, मोहन मिले तो जीजै॥



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नहीं -कहीं

पूर्वक वधर्म-गिका चेत-

नुभव,

योग,

[意 रनेके

त्तको सतत

पति-पत्नीके परस्पर कर्तव्य

(लेखक--श्रद्धेय श्रीनयदयालजी गोयन्दका)

धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदिमें स्त्रियोंके लिये सबसे बढ़कर कर्तव्य बतलाया गया है--पातिब्रत्यधर्म। पातिब्रत्यधर्मके प्रभावसे स्त्री किसीको वर या शाप दे सकती है और अपने पतिको भी प्रमधाममें ले जा सकती है। शुभा नामकी स्त्री पातित्रत्यधर्मके प्रभावसे अपने पतिके सहित परमधामको गयी, इसकी क्या पद्मपराणके सृष्टिखण्डमें है । कुकल वैश्यकी पत्नी सकला बड़ी उच्चकोटिकी पतित्रता थी । इन्द्र और कामदेव भी उसके भयसे भाग गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश-ने उसके घरपर आकर उसको दर्शन दिये। वह अपने पतिके साथ परमगतिको प्राप्त हुई । यह कथा पद्म-पुराणके भूमिखण्डमें है । अत्रि ऋषिकी धर्मपत्नी पतिव्रता अनुसुयाका प्रसङ्ग श्रीतलसीकृत रामायणके अरण्यकाण्डमें प्रसिद्ध है ही । उन्होंने सीताको पातित्रत्यधर्मका बड़ा उत्तम उपदेश दिया है, उसे वहाँ देखना चाहिये । उन्होंने बताया कि स्त्रीके लिये एक ही धर्म, एक ही व्रत और एक ही नियम है—मन, वाणी और शरीरसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना अर्थात् मनसे पतिका चिन्तन करना, वाणीसे उनके प्रति सत्य, प्रिय, हितकर वचन कहना तथा शरीरसे पतिके चरणोंमें नमस्कार, पतिकी सेवा और आज्ञाका पालन करना । इस प्रकार पातित्रत्यधर्मका पालन छल छोड़कर करनेसे स्त्रीको सहज ही परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है।

एकइ धर्म एक व्रत नेमा।कायँ वचन मन पतिपद प्रेमा॥ बिनु श्रम नारि परमगति लहुई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहुई॥

तथा जो उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता होती है, वह पतिके अतिरिक्तः दूसरे पुरुषका कभी चिन्तन नहीं करती। उसके हृदयमें उसका पति ही नित्य निवास करता है। पतिके सिवा अन्य कोई पुरुष है, ऐसा उसे कभी खप्नमें

भी भान नहीं होता । किंतु जो मध्यम श्रेणीकी पतिवता होती है, वह दूसरे पुरुषोंकी ओर पवित्रभावसे ही देखती है । वह बड़ोंको जन्मदाता पिताके समान, समान अवस्थावाळोंको सहोदर भाईके समान तथा बाळकोंको औरस पुत्रके समान समझती है-

उत्तम के अस बस मन साहीं। सपनेहूँ आन पुरुष जग नाहीं॥ मध्यम पर पति देखइ कैसें। आता पिता पुत्र निज जैसें।

पतिकी धर्मके अनुकूल आज्ञाका पालन करना पतिका परम कर्तव्य है; पर यदि पतिके सङ्ग, सेवा और उ सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे स्वार्थत्यागपूर्वक उसकी आज़ारे विपरीत भी कहीं आग्रह किया जाय तो दोष नहीं है। जैसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताको वनके बहुत-से 🔊 दिखाकर घरपर ही रहनेका आदेश देते हैं, किंतु सीत उस आदेशको न मानकर उनकी सेवाके लिये वन जाने का ही आग्रह करती है और कहती है- 'कृपानिधान स्वामिन् ! आपने वनके बहुत-से भय, वित्राद, परितार दायक क्लेश दिखलाये; किंतु वे सब मिलकर आर्ष अल्पमात्र वियोगके क्लेशके समान भी नहीं हैं। आर्फ वियोगमें मुझे संसारके विषयभोग रोगके समान, आभूण भाररूप और संसार यमयातनाके समान प्रतीत होता है आपके वियोगसम्बन्धी कठोर वचन सुनकर भी मे हृदय जो नहीं फटता इससे जान पड़ता है आपके कि वियोगके भयंकर दुःखको ये मेरे प्राण सहते रहेंगे-प्र देह त्यागकर निकलेंगे नहीं। आप यदि यह ^{समा} कि सीता मेरे वियोगमें जीती नहीं रहेगी तो आप ^{मु} ऐसी आज्ञा ही नहीं देते।

भोग रोगसम भूषन भारू। जमजातना सरिस संसाह बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप वर्ती ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मे

उ I

ख

क

क

मह

वित

पि

श्रीसीताजीने समस्त श्रियोंको शिक्षा देनेके छिये खयं आचरण करके पातित्रत्यधर्मका दिग्दर्शन कराया। उन्होंने भोग-सुख, राजमहल, आभूषण, रेशमी वश्च, मेवा-मिष्टान्न आदि सम्पूर्ण भोगसामिप्रयोंको तुच्छ समझकर उनका परित्याग कर दिया तथा पतिके सुखके लिये ही पितके साथ वृक्षोंके नीचे पर्णशालामें निवास करना, सर्दी-गर्मी-वर्षा आदि सहन करना और कन्द-मूल-फल खाकर जीवन-निर्वाह करना आदि कठोर त्रतोंका पालन करते हुए श्लियोंके परमधर्म पातित्रत्यका नियमपूर्वक अनुष्ठान करके सबके लिये सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया।

पातित्रत्यधर्मपरायणा सावित्रीकी कथा महाभारतके वनपर्वमें आती है। जब श्रीनारदजीने उसके खोजे हुए वर सत्यवान्की आयु एक वर्ष ही शेष वतायी, तब उसके पिता राजा अश्वपतिने उससे दूसरा वर खोज लेनेको कहा, इसपर उत्तरमें सावित्री बोळी—पिताजी!

सक्रदंशो निपतित सकृत् कन्या प्रदीयते । सक्रदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ (महा० वन० २९४ । २६)

"भाई-भाईके हिस्सेका बँटवारा एक बार ही होता है, कत्यादान एक बार ही किया जाता है और 'मैंने दिया' इस तरह संकल्प भी एक बार ही होता है। ये तीन बातें एक-एक बार ही हुआ करती हैं।"

दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा । सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥ (महा० वन० २९४ । २७)

'अब तो जिसे मैंने वरण कर लिया, वह दीर्घायु हो या अल्पायु तथा गुणवान् हो या गुणहीन—वहीं मेरा पित होगा, किसी अन्य पुरुषको मैं नहीं वर सकती।'

इस प्रकार कहकर सावित्रीने वैभवसम्पन्न राजा-महाराजाओंकी उपेक्षा करके तथा राजमहलके भोग-विलासोंको तुच्छ समझकर वनवासी सत्यवान्को ही पतिरूपमें वरण किया और पतिकी तथा अपने सास- ससुरकी सेवा करनेमें ही अपना जीवन लगाया। पातिव्रत्य-धर्मपालनके प्रभावसे उसने यमराजपर भी विजय प्राप्त कर ली। सास-ससुर आदिके लिये अनेक वरदान प्राप्त करके पतिको भी यमराजके भंदेसे छुड़ा लिया।

पतित्रता मदालसाने अपने पुत्रोंको उत्तम शिक्षा देकर उन्हें जीवन्मुक्त बना दिया और खयं उत्तम गति प्राप्त की (मार्कण्डेयपुराण)।

पतित्रता दमयन्तीने उसकी ओर बुरी दृष्टिसे देखने-वाले दुराचारी व्याधको अपने पातित्रत्यवर्मके प्रभावसे भस्म कर दिया। (महा० वन०)

इसी प्रकार और भी अनेक पतित्रताओंके उदाहरण इतिहास-पुराणादि शास्त्रोंमें पाये जाते हैं।

स्रीको उचित है कि पित चाहे बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, अंधा, बिहरा, कोधी, धनहीन, दीन या मलीन हो, तो भी उसका कभी अपमान न करे। जो नारी पितका अपमान करती है, उसे यमलोकमें जाकर नाना प्रकारके क्लेशों-को सहना पड़ता है। पितके मनके विपरीत तो कभी किंचिन्मात्र भी आचरण न करे; क्योंकि विपरीत आचरण करनेवाली नारी मरनेपर दूसरे जन्ममें युवावस्थामें ही विधवा हो जाती है और जो नारी पितको धोखा देकर दूसरे पुरुषोंके साथ भोग-विलास करती है, उसे तो रौरवादि नरकोंमें कल्योंतक निवास करना पड़ता है। इसलिये कल्याण चाहनेवाली स्रियोंको पितके अनुकूल ही चलना चाहिये। पितके प्रतिकृत आचरण तो कभी किसी हालतमें भी नहीं करना चाहिये।

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बिधर क्रोधी अति दीना ॥ ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥ पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥ पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

श्रीमनुजीने तो यहाँतक कहा है-

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः। उपचर्यः स्त्रिया साध्या सततं देववत्पतिः॥ (मनु॰५।१५४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मित्रता वसे ही

समान ठकोंको

नाहीं। जिसें। पत्नीका

गैर उसे आज्ञाने

हीं है। -से क्रेंग

तु सीता न जाने

रानिधान परिताप

् आप^{ते} । आप^{ते}

आभूष तेता है।

ता है।

市市一州

समा

संसा^{ह।} घते।

वनः

7 11

अं

विदे

पति

'शील्हीन, स्वेच्छाचारी अथवा गुणोंसे रहित होनेपर भी पति साध्वी स्त्रीके लिये सदा देवताकी तरह पूजनीय है।' पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा। पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किंचिद्प्रियम्॥ (मनु०५। १५६)

'परम कल्याणमय पतिलोककी इच्छा रखनेवाली स्त्री पाणिप्रहण करनेवाले पतिके जीवित रहते अथवा मरनेपर भी कभी कोई ऐसा आचरण न करे, जो उसे अप्रिय हो।'

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् । श्वमालयोनि प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ (मनु०५।१६४)

'पतिके विपरीत आचरण—व्यभिचार करनेसे स्त्री इस लोकमें निन्दाका पात्र बनती है, दूसरे जन्ममें उसे सियार-की योनिमें जाना पड़ता है तथा पापजनित रोगोंसे वह पीड़ित रहती है।'

इसी कारण श्रियोंके लिये खतन्त्र रहनेका निषेध किया जाता है। आजकल विदेशोंमें जो श्रियोंको खतन्त्रता दे रखी है, उसके फलखरूप पति-पित्वयोंमें परस्पर झगड़ा और मुकदमेवाजी ही होते रहते हैं। अतएव हमें उनका अनुसरण न करके भारतीय ऋषि-मुनियोंके सिद्धान्तका ही पालन करना चाहिये। भारतीय ऋषि-मुनियोंके सिद्धान्तका और त्रिकालज्ञ थे। उनके अनुभवोंसे हमलोगोंको लाभ उठाना चाहिये। वे श्रियोंको सदा पुरुषोंके अधीन होकर ही रहनेकी आज्ञा देते हैं; क्योंकि उनका खतन्त्र विचरण करना बहुत खतरेका काम है। श्रीमनुजीने बतलाया है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता। न स्वातन्त्रयेण कर्तव्यं किंचित् कार्यं गृहेष्वपि॥ (मनु०५।१४७)

'स्री बालिका हो या युवती हो अथवा बूढ़ी हो, उसे अपने घरमें भी कोई कार्य खतन्त्रतासे कभी नहीं करना चाहिये।'

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने । पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत् स्त्री खतन्त्रताम् ॥ (मनु० ५ । १४८)

'बाल्यावस्थामें बह पिताके अधीन रहे, युवती

अवस्थामें पतिके वशमें रहे और यदि पतिकी मुख जाय तो पुत्रोंके अधीन रहे। तात्पर्य यह है कि भी ह खच्छन्दताका आश्रय न ले।

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद् विरहमात्मनः। एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले॥ (मनु०५।१४

'वह पिता, पित या पुत्रोंसे अपनेको अलग एके कभी इच्छा न करें; क्योंकि उनसे अलग रहनेसे पिछ और पितकुल दोनोंके ही कलङ्कित होनेकी सम्ब है।' कहा भी है——

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षर् (मनु०९।)

'मद्यपान, दुष्टोंका सङ्ग, पतिसे अलग रहना, क्षें घूमना, अधिक सोना तथा दूसरेके घरमें निवास कर्ल ये छ: कार्य स्त्रियोंके लिये महान् दोष हैं (इनसे क्षे का पतन हो जाता है)।'

आजकल जो शास्त्रविधिसे विवाह न करके रिं मात्रसे ही विवाह हो जानेकी प्रथाका समर्थन किं रहा है, वह बहुत ही बुरा है। इससे विवाहकी पिं तो नष्ट होती ही है, प्रेमका बन्धन भी नहीं रह जिससे बात-बातमें तलाककी नौबत आती है। पिं देशोंमें आज यही हो रहा है। अतः हमारे भार्त शास्त्रीय पद्धितसे विवाह करनेकी जो प्रथा प्रचित् वह बहुत ही उत्तम है। उसका पित-पत्नीके बड़ा अच्छा असर पड़ता है, उसमें पित-पत्नीकिं सम्बन्ध आजीवन बना रहता है।

विवाह होनेके पश्चात् स्त्रीका सबसे बढ़कां कर्तव्य यह हो जाता है कि वह पतिको ही ही मानकर पतिकी आज्ञाके अनुसार पतिकी प्रसन्तिके ही सारे आचरण करें। क्योंकि—

भर्ता देवो गुरुभैर्ता धर्मतीर्थव्रतानि व तस्मात्सर्वे परित्यज्य पतिमेकं समर्वे^{थेव} (स्कृत्दः काशीः पूरु

भाग ३।

की मृख

के स्त्री इ

त्मनः।

कुले ॥

4 1 889

लग रखे

नेसे पितृ

ते सम्भाः

उटनम्।

षर

0911

हना, अ

स करन-

इनसे हि

को कि

न किय

इकी परि

ते रह

1 9

रे भारत

प्रचि

के जी

-प्रतीका

बढ्काः

ही

नुनत्वि

ते व

'स्नीके लिये पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पित ही धर्म, तीर्थ एवं त्रत है। इसिलिये स्त्री सबको छोड़कर केवल पतिकी सेवा पूजा करे।

श्रीवाल्मीकीय रामायणका प्रसङ्ग है। लोकापवादके कारण श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे जब सीताको वनमें होडका लक्ष्मण लौटने लगे, तब सीताने उनसे कहा—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्वन्धुः पतिर्गुरुः॥ प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः। (वा॰ रा॰ उत्तर॰ ४८। १७-१८)

'स्रीके लिये पति ही देवता, पति ही बन्धु और पति ही गुरु है; इसिलिये उसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी विशेषरूपसे पतिका प्रिय करना चाहिये।

श्रीमनुजीने भी बताया है-

वैवाहिको विधिःस्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥

(मनु०२।६७)

'क्षियोंके लिये वैवाहिक विधिका पालन ही वेदोक्त उपनयन-संस्कार माना गया है तथा ससुरालमें रहकर पितकी सेत्रा करना ही गुरुकुलका निवास है और भोजन बनाना आदि गृहकार्य ही दोनों समयका अग्निहोत्र है।' इसलिये—

यस्मै द्यात् पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः। तं ग्रुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥ (मनु० ५। १५१)

'पिता अथवा पिताकी अनुमित लेकर बड़े भाई भी कत्याको जिसके साथ ब्याह दें, उसी पतिकी वह जीवन-भर सेवा-शुश्रूषा करे तथा उसकीं मृत्यु होनेपर भी वह उसका उछङ्घन न करे।

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यक्को न व्रतं नाप्युपोषणम्। पितं गुध्र्षते येन तेन खर्गे महीयते॥

'िक्षयोंके लिये पतिसे अलग कोई यज्ञ, वत और (मनु० ५। १५५) उपवास करनेका विधान नहीं है । जिस पातिव्रत्य-धर्मका

आश्रय लेकर वह पितकी सेवा-शुश्रुपा करती है, उसीसे वह खर्गछोकमें महिमाको प्राप्त होती है।

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता। सा भर्त्रहोकमाप्नोति सङ्गिः साध्वीति चोच्यते॥ (मनु०५। १६५)

'जो नारी मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर कभी पतिके विपरीत आचरण नहीं करती, वह पतिवामको प्राप्त होती है और सत्पुरुपोंके द्वारा 'साव्वी' कही जाती है।

अनेत नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता। इहाययां कीर्तिमामोति पतिलोकं परत्र च॥ (सनु० ५। १६६)

'मन, वाणी और शरीरको संयममें रखनेवाली नारी इस वर्तावसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें पतिधामको प्राप्त करती है।

जैसे एकनिष्ठ भगवद्भक्तके लिये भगवान्का दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन—सभी रसमय, अमृतमय, प्रेममय और आनन्दमय होता है, उसी प्रकार पतिमें एकानिष्ठा रखनेवाली स्त्रीके लिये पतिका दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन—सभी रसमय, अमृतमय, प्रेममय और आनन्दमय समझना चाहिये। कभी अपनी और पतिकी-दोनोंकी ही इच्छाएँ न्याययुक्त हों, तो भी अपनी इच्छाका त्याग करके बड़े उत्साहसे पतिकी इच्छाके अनुकूल ही आचरण करे। पतिके साथ सदा आदर, सत्कार, प्रेम और त्यागसे पूर्ण व्यवहार होना चाहिये। पतिके अधिकारकी कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। पति यदि कोई कार्य अपने मनके विपरीत भी करे, तो भी उसमें कभी दोषबुद्धि न करे। यदि पति कोई धर्मविरुद्ध आचरण करनेको कहे तो पतिके हितके लिये वह कार्य न करके अनुनय, विनय और स्तुति-प्रार्थनाके द्वारा उसको भी अधर्मसे बचाये । किंतु पतिके विचारों-का खण्डन न करके जो कुछ कहना हो, जब वे प्रसन हों, तब नम्रतापूर्वक मधुर शब्दोंमें कहे । पतिके सामने सदा इँसमुख और विनययुक्त ही रहे। पतिके सिवा

र्चयेव

(0 8 l)

संब

लोव

स्रीवे

उत्तम

होता

साथ

रखोगी

धर्मके

पालन

दान,

धार्मिक

कभी

का क

कार्यमे

की इच्ह

है, उस

3

किसी भी मनुष्यको अपना गुरु न बनाये । पतिकी सेवाके कार्योंको यथासाध्य स्वयं करे। पतिके लिये ही शृङ्गार करे, शौकीनीसे या दूसरोंको दिखानेके लिये नहीं । पतिके मनमें दुःख हो, ऐसा कार्य कभी भूलकर भी न करे। पतिके माता-पिता या अन्य पूजनीय लोगोंका भी आदर-सत्कार, सेवा-पूजा पतिके समान ही पतिकी प्रसन्तताके लिये कर्तव्य समझकर करे । अपने बालक-बालिकाओं के सम्मुख अपने उत्तम आचरणोंका आदर्श रखती हुई उनको अच्छी शिक्षा दे । कुटुम्बके दूसरे बालक-बालिकाओंका भी ठाठन-पाठन बड़े प्रेमसे अपने बाठकोंके समान ही करे, बल्कि उनके साथ खानपानादि पदार्थोंके द्वारा अपने बालकोंसे भी अधिक प्रेमका व्यवहार करे। जैसे खाने-पीने, पहननेकी कोई वस्तु हो, वह अपने बालकोंकी अपेक्षा उनको पहले, बढ़िया और अधिक दे। ऐसा करनेपर वे बालक और उनके माता-पिता आदि उस नारीके अनुकूछ हो सकते हैं और खार्थरहित होकर करनेपर तो इस छोकमें कीर्ति और परछोकमें परम गति हो सकती है। अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर तथा अपने अधिकारकी वस्तुओं के द्वारा निष्कामभावसे दूसरोंका हित और सेवा ही करती रहे। किंतु दूसरोंसे सेवा कराने और आदर-सत्कार, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी कभी इच्छा न रखे। दूसरोंके पदार्थोंके लेनेकी भी कभी इच्छा न करे। यदि लेना पड़े तो उनके संतोषके लिये थोडा लेना चाहिये, चाहे वे ससुराल या नैहरके व्यक्ति ही क्यों न हों । निःस्वार्थभावसे ऐसा लेना भी उनकी सेवा ही है; किंतु अभिमानपूर्वक, मान-बड़ाई और खार्थसिद्धिकी इच्छासे मन, वाणी, शरीर और पदार्थीके द्वारा दूसरोंकी सेवा-सत्कार करना भी वास्तविक सेवा-सत्कार नहीं है। घरके हरेक कार्य पतिकी इच्छाके अनुकूल बड़ी कुरालतापूर्वक करे और अपने घरकी परिस्थितिको देखकर ही खर्च करे, अनावश्यक खर्च कभी न करे।

प्रहृष्या भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया। सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥ (मनु० ५।१५०

'स्रीको सदा ही प्रसन्न रहना और घरके कार्यो दक्ष होना चाहिये । वह घरकी प्रत्येक सामग्रीको सक रखनेवाली और खुले हाथों खर्च न करनेवाली बने।

स्त्रीका यह परम कर्तव्य है कि वह जो भी कुछ को पतिकी आज्ञाके अनुसार पतिके हितके उद्देश्यो नि:स्वार्थभावसे करे, अपने छिये नहीं।

अब पतिके कर्तव्य बतलाये जाते हैं। पति अपनी पक्षी अपने अङ्गके समान समझे; क्योंकि वह उसकी अर्थाह है। वह बीमार हो जाय या किसी प्रकारकी आपी पड़ जाय तो जैसे अपने शरीरकी रक्षा की जाती वैसे ही उसकी रक्षा और सेवा करे। स्त्रीके माता-पि को अपने माता-पिताके समान और उसके भाई बा भौजाईको अपने भाई बहन-भौजाईके समान सम्ब उनका आदर करना चाहिये। स्त्री चाहे मूर्व हो, हो, बहरी हो, वृद्धा हो, तो भी उसकी निन्दा, अपन अनादर-तिरस्कार न करे। कभी उसे क्रोध भी जाय, तो भी प्रेमसे समझा दे । उसको या उसके म पिताको गाली तो कभी दे ही नहीं। जो अपनी पत्नीको गाली देता है या मारता-पीटता है, नरकगामी होता है। अतः जिस प्रकार पत्नीका 🕫 और परलोकमें हित हो, वैसा ही प्रयत सदा निर्म भावसे करते रहना चाहिये; क्योंकि-

श्रीमनुजीने भी कहा है-

प्रजनार्थे महाभागाः पूजाही गृहदीत्र^{यः |} स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन (मनु०९।१

'परम सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ संतानोत्पादनके हैं। वे सर्वथा सम्मानके योग्य और घरकी शोमी घरोंमें जो स्त्रियाँ हैं, वे सभी लक्ष्मीके समान हैं। उसकी और लक्ष्मीमें कुछ भी भेद नहीं है ।'

परिपालनम्। उत्पादनमपत्यस्य जातस्य प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिवन्धनम्॥ (मन्०९।२७)

भंतान उत्पन्न करना, उत्पन्न हुई संतानका भलीभाँति पालन-पोषण करना और प्रतिदिन भोजन आदि बनाकर लेक्यात्राका निर्वाह करना—यह सब प्रत्यक्षरूपसे ब्रीके अधीन है।"

अपत्यं धर्मकार्याणि द्यश्रूषा रतिरुत्तमा। दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥ (मनु०९।२८)

'संतानकी प्राप्ति, धर्मकार्यका अनुष्ठान, सेवाकार्य, उत्तम (धर्मयुक्त) रति, पितरोंकी खर्ग-प्राप्ति और अपनी भी उन्नति स्त्रीके अधीन हैं।

इसिंछिये स्त्रीको अपने मित्रके समान समझकर उसके साथ सदा सद्व्यवहार करना चाहिये। जब विवाह होता है, उस समय पत्नीके प्रार्थना करनेपर पुरुष उसके साथ यह प्रतिज्ञा करता है-

मदीयचित्तानुगतं छ वित्तं सदा मदाज्ञापरिपालनं च। पतिवता धर्मपरायणा त्वं कुर्यास्तदा सर्वमिदं प्रयत्नम्॥

'यदि तुम सदा मेरे मनके अनुकूल अपना मन रखोगी, सदा मेरी आज्ञाका पालन करती हुई पतित्रत-धर्मके परायण रहोगी तो मैं तुम्हारी कही बातोंका पालन करूँगा।

इस प्रतिज्ञाके अनुसार पुरुषको उचित है कि यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, देवकार्य या पितृकार्य आदि कोई भी त्रयः। धार्मिक कार्य किया जाय, वह पत्नीको साथ लेकर करे। श्चन कभी विदेशमें जाय तो पत्नीको साथमें ले जाय, परस्री-१। का कभी सेवन न करे। व्यापार आदि जीविकोपार्जनके त्तकं कार्यमें उसकी सळाइ लेता रहे। जहाँ मतसेद हो, वहाँ पती-हों भी इच्छा न्याययुक्त हो तो अपनी इच्छाका परित्याग करके हैं उसकी इच्छाके अनुसार कार्य करे। उसका जो अधिकार है, उसमें कभी बाधा न पहुँचाकर उसकी रक्षा करे।

उसके साथ आदर-सत्कारपूर्वक व्यवहार करे । तिरस्कार तो कभी करे ही नहीं। पत्नी रोगप्रस्त या कुरूप हो अथवा उसके द्वारा कोई अपराध हो जाय या वह अपने मनके विपरीत व्यवहार करे तो भी उसका परित्याग न करे, न मार-पीट करे, न डॉंट-डपट करे, न डराये-धमकाये ही; बल्कि उसके अपराधको क्षमा करके उसे प्रेमसे इस प्रकार समझाये कि वह भविष्यमें वैसी भूछ न करे।

तथा अपनी शक्तिके अनुसार उसका वस्त्र और आभूषणादिके द्वारा उचित सत्कार करे । श्रीमनुजीने कहा है---

यत्र नार्यस्त पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्त न पुज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ (मन्०३।५६)

'जहाँ स्त्रियोंका आदर-सत्कार किया जाता है, वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ इनका अनादर-तिरस्कार होता है, वहाँ सब कार्य निष्फल होते हैं।

तसादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः। भृतिकामैनरैनित्यं • सत्कारेषृत्सवेषु (मनु०३।५९)

'इसलिये उन्नति चाहनेवाले मनुष्योंको चाहिये कि आदरके अवसरोंपर तथा उत्सवोंमें वस्न, अलंकार और भोजन आदिसे ख्रियोंका सदा आदर-सत्कार करें।

यदि पत्नीकी इच्छा धर्मविरुद्ध न हो तो उसकी इच्छाके अनुसार दांन, धर्म, सेवा, तीर्थ, व्रत आदिमें खर्च करनेके छिये अपनी शक्तिके अनुसार उसे धनादि पदार्थ दे और उसके खाने-पीने, पहननेकी न्याययुक्त आवश्यकताको पूरी करते हुए अपने प्रेमपूर्ण व्यवहारसे सदा उसे प्रसन रखे एवं उसके ही हितके लिये नि:सार्थभावसे उसकी सदा-सर्वदा रक्षा करे।

स्क्रोभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः ख्रियो रक्ष्या विशेषतः। कुछयोः शोकमावदेयुररक्षिताः॥ (सदु०९ १५)

'कुसङ्ग अथवा आसक्ति सूक्ष्म-से-सूक्ष्म क्यों न हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

या। या॥ 1 240

ाग ३।

ं कार्योः को खह

ने। नुछ को

इयसे हं

नी पत्ती

अर्धाहि आर्पा

जाती 🎚

ाता-पि भाई-वह

समझ

हो, अ

, अपम

भी सके मा

जो ५

ता इहिं

उससे भी स्त्रियोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि रक्षित न होनेपर वे पति और पिता दोनोंके ही कुलको शोकमें डाल देती हैं।'

रक्षाका उपाय भी मनुजीने बतला दिया है— अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्। शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे॥ (मनु०९।११)

'स्रीको धनके संग्रहमें और उसको खर्च करनेके कार्यमें लगाये, घरको खच्छ रखने, दान-पूजन आदि धर्मकार्य करने, रसोई बनाने तथा घरके सामानकी देख-भाल करनेके कार्यमें भी उसे नियुक्त करें।'

पतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्॥ (मनु०९।१०) 'इन उपायोंको काममें लानेसे उसकी रक्षा की व सकती है।'

इस प्रकार पित-पित दोनों एक दूसरेके कर्तिया पालनकी ओर न देखकर खयं अपने कर्तिया निष्कामभावसे पालन करते हुए एक दूसरेसे सदा संख् रहें तो उससे उन दोनोंका ही कल्याण हो जाता है। श्रीमनुजी कहते हैं—

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च। यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ (मनु०३।६०

'जिस कुलमें स्त्रीसे पति नित्य प्रसन्न रहता है। उसी प्रकार पतिसे स्त्री प्रसन्त रहती है, वहाँ निश्चा अचल कल्याण होता है।'

योगीश्वर गोरक्षनाथका दार्शनिक सिद्धान्त

(केखक-आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्धोपाध्याय एम्० ए०)

मध्ययुगसे पूर्वकालीन भारतमें योगीश्वर गोरश्चनाथ अति प्राचीन योगधर्मके एक अनन्यसाधारण प्रभावशाली प्रचारक थे। वे भारतके सब प्रदेशोंमें सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंमें योगकी भावधारा प्रवाहित कर गये हैं। उनके द्वारा प्रवर्तित योगिसम्प्रदाय नाथयोगी, सिद्धयोगी, अवधृतयोगी, दर्शनीयोगी, कनफटायोगी इत्यादि नामोंसे भारतमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। सम्पूर्ण भारतवर्षमें ऐसा कोई प्रदेश नहीं है, जहाँ गोरक्षनाथके नामपर मठ, मन्दिर, अखाड़ा आदि आज भी विद्यमान न हो । इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि उन्होंने योगका आदर्श लेकर समग्र देशमें धर्मके एक विराट आन्दोलनका सजन किया था । उन्होंने महायोगीश्वरेश्वर शिवको केवल ब्रह्मस्वरूपमें अथवा स्रष्टि-स्थिति-प्रलयविधाता परमेश्वरके रूपमें ही नहीं, बल्कि उसके साथ-ही-साथ समस्त ज्ञानी, योगी और भक्तोंके आदि गढ एवं जीवनके चिरंतन आदर्शके रूपमें सर्वसाधारणके समक्ष समपस्थित किया था। उन्होंने अपने द्वारा प्रचारित योगधर्मके आदिप्रवर्तकके रूपमें शिवका ही उल्लेख किया है। इस बातकी प्रसिद्धि है कि उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथको साक्षात् आदिनाथ शिवजीसे ही महाज्ञान और महायोगकी

दीक्षा और उपदेश प्राप्त हुआ था। योगियों का ऐसा विश्वासहै। स्वयं गोरक्षनाथकी साक्षात् शिवके अवताररूपमें ही हैं और भक्त-समाजमें सर्वत्र पूजा होती थी और हो रही है। यह कि वे अपने पार्थिव देहमें ही कालके प्रभावका अकि करके अमर होकर आज भी विद्यमान हैं और लोकर्क अगोचर जीव-कल्याण कर रहे हैं। वे किस शताब्दीमें प्रदेशमें पहले-पहल आविर्भूत हुए थे, इसका निर्णय कर ऐतिहासिकगण आज भी असमर्थ हैं।

ह नहीं है कि उन्होंने योगका आदर्श क विराट आन्दोलनका सुजन किया जो कुछ समझते हैं, उस अर्थमें महायोगी गोरक्षनाय हार्शी विराधितको केवल ब्रह्मस्वरूपमें अथवा या 'दर्शनाचार्य' की संग्रा पानेके योग्य ये या नहीं परमेश्वरके रूपमें ही नहीं, बल्कि परमेश्वरके रूपमें सर्वसाघारणके युक्तितक्ष्वहुल प्रन्थोंकी रचना करके अपने उस विशेष मान्दार्थ का प्रतिपादन करते हैं और उसके सम्पर्कमें सम्माविष्य प्रकारकी आपित्त्योंके निरसन करनेकी चेष्टा करते हैं। युक्तितक्षेके प्रखर अस्त्रश्वरहोंके प्रयोगद्वारा उसके प्रविप्य सभी सत्त्वादोंके विरुद्ध युद्ध करते हैं, उन्हीं मनीविष्य सभी सत्त्वादोंके विरुद्ध युद्ध करते हैं, उन्हीं सनीविष्य स्थाप स्था

प्रका शुव महा

HE

दाः

कपि

सम्। बहु किर देखें

देश सम् रहत

आव करते

> प्रच ये र संदे

भि होन साध

ठीव पद्ध कि किंतु

और भाष हिंद

स्म

प्रक रचि प्रान्

> भार सम्

विद

की व

ाग ३६

कतंत्र्य. र्भतन्यव त संत

ाता है।

च।

रम्॥ 1 80 ता है है

निश्चय

श्वासहै ही दे रहीहै

ग अति लोकर्च ब्दीमें हि र्णय कर

र्घ गर दार्शन नहीं,

लाहि करवे ष मत्व

मावित ह ते हैं।

मनीषि

के प्रति

'दार्शनिक पण्डित' या 'दर्शनाचार्य' की संज्ञा प्राप्त होती है। कपिल, बादरायण, शंकर, रामानुज आदि आचार्यगण इसी प्रकारके महान् दार्शनिक थे । किंतु इस अर्थमें नारदः ग्रकदेव, गोरक्षनाथ, कवीर, नानक, श्रीरामकृष्ण आदि महापुरुषोंको असाधारण प्रभावसम्पन धर्मापदेष्टा और सम्प्रदायप्रवर्तक होनेपर भी-- 'दार्शनिक' आख्या देना कदाचित बहतींके मतमें समीचीन न होगा । इन सब महापुरुषोंमें किसी प्रकारके दार्शनिक तर्कयुद्धमें उतरनेकी प्रवृत्ति ही नहीं देखी जाती, तथापि इन्होंने साधनोपदेशके साथ-साथ तत्त्वोप-देश भी दिये हैं । साध्यनिर्णयके बिना साधनका निरूपण सम्भव नहीं । साध्यका निर्णय तत्त्वज्ञानके ऊपर ही निर्भर रहता है। ये सब महापुरुष अपनी आन्तर अनुभृतिके दिव्य आलोकमें तत्त्वका उपदेश देते हैं एवं साधनका पथनिर्देश करते हैं, तर्कयुद्धमें प्रवृत्त नहीं होते ।

योगीश्वर गोरक्षनाथके नामसे अनेक संस्कृतके प्रन्थ प्रचलित हैं। उनमेंसे कितने तो अभी मुद्रित ही नहीं हुए हैं। ये सभी प्रनथ उस महायोगीकी निज रचना हैं या नहीं, इसमें संदेहके कारण हैं । बहुत-से प्रन्थोंका तो उनके उपदेशोंको ही भित्ति बनाकर उनके परवर्ती भक्तों और योगियोंद्वारा रचित होना असम्भव नहीं है । किंतु इन सभी प्रन्थोंमें प्रायः योग-साधनाका ही उपदेश है, तत्त्वोपदेश तो उसका अङ्गीभूत है। ठीक-ठीक दार्शनिक प्रन्थ बहुत ही कम हैं। 'सिद्धसिद्धान्त-पद्धतिः' नामका एक ग्रन्थ है । इस ग्रन्थकी यही विशेषता है कि यह मुख्यतः दार्शनिक अर्थात् तत्त्वनिरूपक प्रन्थ है। किंतु इस ग्रन्थमें भी युक्तितर्ककी अवतारणा एवं स्वमत-स्थापन और परमत-खण्डनकी दार्श्वनिक प्रणाली नहीं है। हिंदी भाषामें भी गोरश्वनाथके नामसे अनेक ग्रन्थ हैं, एवं वे ही हिंदीका प्राथमिक साहित्य हैं। ऐसे जिन-जिन प्रन्थोंका पता ल्या है, वे सभी एक साथ 'गोरश्ववाणी' नामसे मुद्रित और मकाश्चित हुए हैं। यद्यपि बंगलाभाषामें गोरश्चनाथके द्वारा रचित किसी भी प्रन्थका पता नहीं लगा है, तथापि बंगालका भाचीनतम साहित्य वह नाथसाहित्य है-जो गोरश्चनाय, उनके पुरु मस्स्येन्द्रनाय एवं उनके अनुवर्तियोंके चरित्र और उपदेशों-के आघारपर ही रचा गया है। भारतकी अन्य प्रादेशिक भाषाओंके प्राचीन साहित्यपर भी गोरश्चनाय और उनके पम्प्रदायका प्रभाव दिखायी देता है। इस प्रकार विभिन्न भाषाओं में गोरश्चनाथ-सम्प्रदायका एक विश्वाल साहित्य विद्यमान होनेपर भी हम 'दार्शनिक ग्रन्थ' के नामसे जो कुछ

समझते हैं, उस प्रकारके ग्रन्थोंका प्रायः अभाव ही देखा

इससे यही समझमें आता है कि बुद्धके समान योगीश्वर गोरक्षनाथ दार्शनिक युक्तियोंका जाल फैलाना पसंद नहीं करते थे । बौद्ध-सम्प्रदायमें दार्शनिक कृटतकौंका जाल अवश्य ही बहुत विस्तारको प्राप्त हुआ, एवं इसी कारण उनका सम्प्रदाय अनेक उपसम्प्रदायोंमें विभक्त भी हो गया । किंतु गोरक्षनाथके सम्प्रदायमें परवर्ती कालमें भी इस तर्कजालका वैसा प्रसार नहीं हुआ । परवर्ती कालमें भी उनके सम्प्रदायमें अनेकों महान तत्त्वज्ञानी और योगैश्वर्य-सम्पन्न सिद्धयोगियोंका आविर्भाव होनेपर भी उनमें महान दार्शनिक पण्डित या आचार्यका आविर्भाव प्रायः नहीं देखा जाता ।

गोरक्षनाथके समयमें भी सम्भवतः द्वैतभाव और अद्भैतभावका विवाद तीव्ररूपमें ही था। इसीसे वे तथा उनके अनुवर्ती अवधृत योगियोंने कहा है-

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति समं तस्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविलक्षणम्॥ यदि सर्वंगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः। द्वेताद्वेतविकल्पना ॥ सायामहामोही (अवधृतगीता)

कोई अद्भैतवादके चाहनेवाले होते हैं, तो कोई द्भैतवादके। (इस प्रकार विभिन्न पक्षोंमें विभक्त होकर दार्शनिक विचारक प्रायः वादविवादमें ही लगे रहते हैं एवं परिणाममें तत्त्वतः समद्दिं न प्राप्त करके प्रायः विभिन्न मतवादोंके कारण वैषम्यदर्शी ही रह जाते हैं।) वे किसी भी समतत्त्वको नहीं जान पाते, समतत्त्वमें प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर पातें। जीव-जगत्का जो मूलभूत परमतन्त्व है, वह दैतादैतविलक्षण समतन्त्व है । उस चरम तथा परम समतत्त्वका निरूपण न तो द्वैतका निषेघ करके अद्भैतके प्रतिपादनसे होता है और न तत्त्वका—अद्भैतका निषेध करके द्वैतका प्रतिपादन करनेसे ही। जब यह उपलब्धि हो जाती है कि एक स्वप्रकाश परमदेव नित्यपूर्ण, नित्यस्थिर और सर्व-मेदरहित है एवं वही सर्वगत तथा अनन्त विचित्र रूपोंमें लीलायमान है, तब हैताहैतकी सारी कस्पनाएँ नितान्त निरर्थक हो जाती हैं। इस प्रकारकी करूपना ही माया है, यही महामोइका निद्र्शन है।

इस द्वैताद्वैतविरुश्रण समतःवके सम्बन्धमें गोरश्वनाथ कहते हैं---

संस्य

शैवध

उनके

नगरों

प्रतिहि

शिख-

उपसि

चरम

क्लेश

साथ

कल्पत

में भ

शिव

परमा

किरात

उपास

की अ

अपने

साक्षा

ऐक्यर

सर्वात

जैसे उ

सबसे

नारिय

योगिय

लाये

है।इ

सचेत

उनकी

समाहि

स्वप्रव

गुद्ध :

'शार

इस प्र

भावाभावविनिर्मुक्तं नाशोत्पित्तिविवर्जितम् । सर्वसंकल्पनातीतं परब्रह्म तदुच्यते ॥ हेतुदृष्टान्तिनर्मुक्तं मनोबुद्ध्याद्यगोचरम् । स्योमविज्ञानमानन्दं तस्वं तस्वविदो विदुः ॥ (विवेकमार्तण्ड)

उस परम और चरम तत्त्वको ही परब्रह्म कहा जाता है। उस परब्रह्मकी उपलब्धि जिन महायोगियोंको होती है, वे इस बातका अनुभव करते हैं कि वह परमतत्त्व भाव और अभाव-के द्रन्द्रसे मुक्त है (अस्ति-नास्तिके वहिर्भृत है), नाश और उत्पत्ति—(एवं सर्वविध विकार) से रहित है, एवं सब प्रकार-की कल्पना-विकल्प और वितर्कसे अतीत है। वह 'ऐसा है' अथवा 'ऐसा नहीं है' इस बातका प्रतिपादन करना किसी प्रकारके हेतु या दृष्टान्तकी सहायतासे सम्भव नहीं; (उसके विषयमें कोई व्याप्तिज्ञान होना सम्भव नहीं, उसके निर्धारणके लिये कोई समीचीन अन्वयी या व्यतिरेकी दृशन्त भी हमारी अभिश्वताकी सीमामें नहीं मिलता; क्योंकि उसकी सजातीय या विजातीय कोई भी वस्तु न तो है और न रह ही सकती है।) वह मन-बुद्धि आदिके अगोचर है। (क्योंकि मन-बुद्धि आदि-का विहार और विलास द्वन्द्वके राज्यमें ही होता है। जिस द्वन्द्वोंका, सब भेदोंका, सारी 'हाँ' और 'ना' का सम्यक पर्यवसान हो जाता है, जिस तस्वमें कोई विषय-विषयीका भेद नहीं रह उस तत्त्वकी कल्पना या विचार मन और बुद्धि किस प्रकार कर सकेंगे !) किंतु समाधिमें उस तत्त्वकी उपलब्धि होती है-निर्मेल निश्चल निरवन्छिन आकाशवत् स्वयं सत्रूपमें, अर्थात् विषय-विषयिभेदवर्जित ज्ञात-ज्ञेय-ज्ञान-मेदवर्जित स्वप्रकाश चैतन्यरूपमें एवं आनन्द अर्थात स्वयंपूर्णताके आस्वादनरूपमें । चरम समाधिमें जिस चरम तत्त्वका अनुभव होता है, वह मनके प्रत्यक्ष या कल्पनाका विषय भी नहीं होता, बुद्धिके नैयायिक युक्ति विचार-अनुमानादिका विषय भी नहीं होता, किसी प्रकारकी भाषामें व्यक्त करनेका भी विषय नहीं होता; तथापि है वही परम सत्य । तत्त्ववेत्तागण उसीको तत्त्व कहते हैं । चरम समाधिमें चरम सत्यकी चरम अनुभूतिमें मन और बुद्धि उस सत्यके स्वरूपमें ही विलीन होकर सत्यानुभूति प्राप्त करते हैं, सत्यको विषय बनाकर अनुभूति नहीं प्राप्त करते । सुतरां भेदराज्य-विहारी विषयविळासी मन-वुद्धि इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि उस अनुभूतिका स्वरूप कैसा है ? तथापि

उस 'निरुत्थान' अवस्थासे 'न्युत्थान' अवस्थामें लैटकर मा बुद्धिकी यह सुदृढ़ धारणा बनी रहती है कि समाधिकी उन्न विलीन अवस्था या एकीभूत अवस्थामें जिस समतत्त्वमें, जिन्न अनिर्वचनीय व्योमविज्ञान-आनन्दस्वरूपमें स्थिति प्राप्त हुं। थी, वही वस्तुतः परम सत्य, परम तत्त्व है।

इस भावाभावविनिर्मुक्त द्वैतादैतविल्खण मनोबुद्धभ् गोचर परम-तत्त्वको योगिगुरु गोरक्षनाथने निर्विकल्प समाधिने विषय-विषयिभेदरिहत अपरोक्ष शानमें अनुभव करके अनामा संज्ञा दी है। वे कहते हैं—

यथा नास्ति स्वयं कर्ता कारणं न कुलाकुलम्। अन्यक्तं च परं ब्रह्मा अनासा विद्यते तदा॥ (सिडसिद्धान्तपद्धी

जब स्वयं (अहंबोध) नहीं रहता, कर्ता (कर्नृत्ववोध) नहीं रहता, कारण (कार्यकारणभाव) नहीं रहता, कुल औ अकुलका भेद नहीं रहता और जब परम ब्रह्म सर्वतोभावेन अव्यक्त होता है (किसी प्रकारकी उपिक्ष भीतर उसकी अभिव्यक्ति नहीं होती), तब 'अनामा' विद्यमा रहता है। (अर्थात् तब जो रहता है, उसका कोई नाम नहीं होता; क्योंकि बिना उपिष्ठिके कोई नाम होता नहीं, ना उपीधिका ही नामान्तर है।) यह अनामा ही 'स्वयमनादिसिद्धा एकमेव अनादिनिधनम्' (सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति) सर्वतत्वातीत तत्त्व है। सर्वोच्च स्तरकी समाधिमें इस स्वप्रकार नित्यसत्य तत्त्वातीत तत्त्वकी ही अनुभूति होती है।

उपदेशकालमें उपदेशप्रदानके प्रयोजनसे योगिगुरुने इं अवाङ्मनसगोचर अपरोक्षानुभविसद्ध तत्त्वातीत तत्त्वका क्रिं परब्रह्म, शिव, परिशव, आत्मा, परमात्मा, संविद्, परासंविध पद, परमपद, निरज्जन, शृत्य, परमशृत्य, शृत्याश्व विलक्षण, परमाकाश, चिदाकाश, सचिदानन्द इत्यादि विभिन्न नामोंसे उपदेश किया है। प्रत्येक सार्थक नाम ही उन्तिपाधिक तत्त्वको किसी-न-किसी प्रकारके सोपाधिकरूप मन-जुद्धिके सम्मुख उपस्थित करता है। तथापि नामके कि उसकी धारणा भी सम्भव नहीं होती, उपदेश ही असम्भ होता है। नामका अवलम्बन करके ही नामातीतका विविध करना होगा, उपाधिक द्वारा ही निरुपाधिकको धारणामें लाज करना होगा, उपाधिक द्वारा ही निरुपाधिकको धारणामें लाज पड़ेगा एवं चरम अनुभूति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे साम्बर्ग निमप्र होना पड़ेगा।

उपासनाकी दृष्टिसे गोरक्षनाथ शैवरूपमें प्रसिद्ध हैं।

38

मन.

38

जिस

13

द्वा

गधिं

नामा

द्धति

वोध।

और

गधिके

द्यमान

न नहीं

सद्भ

इति ।

प्रकार

ने इस

ब्रह्म

संविद्

12/4

वेभिष

38

करूपर्स

· 郁

सम्भं

चेन्तर्ग

लान

सनी

青一

ग्रीवधर्मके एक अनन्यसाधारण प्रचारक थे । स्वयं उन्होंने तथा उनके अनुयायियोंने भारतवर्षके सभी स्थानोंमें, गाँवोंमें, नगरोंमें, श्मशानोंमें, वनोंमें, पर्वतिशिखरोंपर असंख्य शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित किये हैं—यह प्रसिद्ध हैं | शिवको उन्होंने हिमालयके शिखरसे नीचे लाकर घर-घरमें लोगोंके हृदयदेवताके रूपमें व्यस्थित किया। शिवका एक ओर तो उन्होंने नामरूपातीत चरमतत्त्वके रूपमें उपदेश किया और दूसरी ओर नित्यसिद्ध क्लेशकर्मविपाकादिरहित महायोगीश्वरके रूपमें प्रचार किया। साथ ही उनको अशेषकरुणानिधान सर्वलोकगुरु वाञ्छा-कल्पतर वर्णाश्रमभेद्निरपेक्ष सर्वजीवप्रेमी आद्यतोष रूप-में भी सब नर-नारियोंके हृदयोंमें प्रतिष्ठित किया । योगी ज्ञानी त्यागी तपस्वियोंके शिव जिस प्रकार परमाराध्य हैं, उसी प्रकार असर-राक्षस-चण्डाल-व्याध-किरात आदि सब जातिके सब श्रेणियोंके नर-नारियोंके परम उपास हैं। उनकी पूजामें अधिकारभेद नहीं, परोहित-की आवश्यकता नहीं, पूजोपकरणका बाहल्य नहीं; सभी लोग अपने हृदयके भक्ति-अर्घ्यसे बिना मन्त्रके, बिना आडम्बरके साक्षात्रूपसे उनकी अर्चना कर सकते हैं। वे सगुण-निर्गुणकी ऐस्यभूमि हैं, सोपाधिक और निरुपाधिककी ऐक्यभूमि हैं, सर्वातीत और सर्वमय एवं सबके अपने निज जन हैं। वे जैसे अवधूत योगियों के परम आदर्श है, वैसे ही समाजके सबसे नीचेके स्तरके वेदाचारवहिर्भूत अवज्ञात उपेक्षित नर-नारियोंमें भी उनकी अबाध गति है। योगिगुरु गोरक्षनाथ योगियोंके ईश्वरको मनुष्य-समाजके निम्नतम स्तरतक उतार लये। यह उनके सर्वभूतानुकम्पी योगिहृदयका एक निदर्शन है। इतनेपर भी अपने इउपदेशोंमें वे तत्त्वके विषयमें सर्वदा सचेत रहते थे। गुद्ध शैव किसको कहते हैं, इस विषयमें उनकी उक्ति है—

गुद्धं शान्तं निराकारं परानन्दं सदोदितम्। तं शिवं यो विजानाति गुद्धशैवो भवेतु सः॥ (विवेकमार्तण्ड)

'जो ग्रुद्धः (मलविक्षेपावरणरहित) शान्त (सदातम-समाहित) निराकार (रूपोपाधिवर्जित) परमानन्द्धन नित्य-स्वप्रकाश शिवको जान लेता है और आराधना करता है, वही श्रद शैव होता है ।

गोरक्षानुवर्ती स्वात्माराम योगीन्द्र 'हठयोगप्रदीपिका'में 'श्राम्भवी मुद्रा'के प्रसङ्गमें शिवतत्त्व या श्रम्भुतत्त्वका लक्षण इस प्रकार वतलाते हैं— श्रून्याश्रून्यविलक्षणं स्फुरति तत् तस्वं परं शास्भवम्।

—श्रीगुरुकी कृपासे शाम्भवी मुद्रामें सिद्धि प्राप्त होनेपर 'श्रूत्याश्रून्यविलक्षण' परम शम्भुतत्त्व या शिवतत्त्व अन्तरमें स्फुरित होता है।

इसके ठीक अगले श्लोकमें ही वे कहते हैं— भवेच्चित्तालयानन्दः शून्ये वित्सुखरूपिणि। चित्सुखरूप 'शून्य'में चित्तलयका परमानन्द अनुभूत होता है।

गोरक्षनाथने सत्यके स्वरूपका इस प्रकार निर्देश किया है।
सत्यमेकमजं नित्यमनन्तं चाक्षरं ध्रुवम्।
ज्ञात्वा यस्तु वदेद् धीरः सत्यवादी स उच्यते॥
(विवेकमार्तण्ड)

'सत्य एक, अज (उत्पत्तिरहित), नित्य (विनाशरहित), अनन्त (सीमारहित), अक्षय (विकाररहित) और ध्रुव (संशयातीत वास्तवतन्व) है। इस सत्यका शान प्राप्त करके जो धीर व्यक्ति केवल इस विशुद्ध सत्यकी ही बात कहता है, बही वस्तुतः सत्यवादी है।'

गोरक्षनाथ नानाप्रकारसे इस परम सत्यकी बात ही शान्ति-पिपासुओं के लिये कहते हैं और उस सत्यकी ओर ही सबके चित्तका आकर्षण करते हैं । जीवनको परम सत्यमय बना लेना ही परमपुरुषार्थ है एवं इसी उद्देश्यसे उन्होंने सबके लिये योगका उपदेश किया है । योगका उन्होंने साधन और साध्य, उपाय और उपेय दोनों रूपोंमें निर्देश किया है । उन्होंने योग-का लक्षण बताया है—

संयोगं योग इत्याहुः क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः। (विवेकमार्तण्ड)

'क्षेत्रज्ञ (अर्थात् व्यष्टि आत्मा) एवं परमात्मा (अर्थात् विश्वात्माका) संयोग (अर्थात् अमेदानुमव) योग नामसे आख्यात है।' योगियोंका साक्षात्कार होनेपर वे 'आदेश, आदेश' कहकर एक दूसरेका अभिवादन करते हैं। इस रीतिका सम्भवतः गोरक्षनाथने ही प्रवर्तन किया है। आदेशके तात्पर्य-की उन्होंने इस प्रकार व्याख्या की है—

आत्मेति परमात्मेति जीवात्मेति विचारणे। त्रयाणामेक्यसम्भृतिरादेशः परिकीर्तितः॥ आदेश इति सद्वाणीं सर्वद्वन्द्वश्वयावहाम्। योगिनं प्रतिवदेत स वेस्यात्मानमीश्वरम्॥ (सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः)

मह

भ

ही

की

वस्

नहीं

में

য়বি

औ

ना

हो

श

'आत्मा, परमात्मा और जीवात्मा—उपाधिविचारसे एक आत्मा या ब्रह्म या शिवकी ही त्रिविध संशाएँ हैं। इन तीनोंकी जो सम्यक् ऐक्यानुभूति है, वही आदेश शब्दका तात्पर्य है। 'आदेश'-सद्धाणी सब प्रकारके द्वन्द्व या द्वैतभावके क्षयका निर्देश करती है। इस तात्पर्यको हृदयमें रखते हुए प्रत्येक योगीको दूसरे प्रत्येक योगीके प्रति इस वाणीका प्रयोग करना चाहिये। इससे प्रत्येकके अंदर आत्मा या ईश्वरकी अनुभूति उद्दीपित होती है।"

एक ही सिचदानन्दमय ब्रह्म या शिव या ईश्वर ही समिष्ट-ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी आत्मारूपमें परमात्मा, व्यष्टि पिण्डके अभिमानी आत्मारूपमें जीवातमा एवं व्यष्टि और समिष्टि सबके अवभासकरूपमें आत्मानामसे कहे जाते हैं। गोरक्षनाथने विश्वप्रपञ्चको शिव या ब्रह्मका 'महासाकार-पिण्ड' या 'समिष्टिपिण्ड' बतलाया है, एवं जीवदेहको 'क्षुद्र-साकार पिण्ड' या 'व्यष्टिपिण्ड' कहा है। सब देहोंमें एक शिव या ब्रह्म ही देही है, वही सब देहोंमें विराजमान है।

अलुप्तशक्तिमान् नित्यं सर्वाकारतया स्फुरन्। पुनः स्वेनेब रूपेण एक एवावशिष्यते॥ (सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः)

'अष्ठप्तराक्तिमान् शिव या ब्रह्म देश-कालमें नित्य ही विचित्र देह परिग्रह करके विचित्र आकारोंमें स्फुरित होते हैं और देशकालातीत स्वस्वरूपमें वे ही नित्य एक अविक्रिय चैतन्यानन्द सत्तामें विराजित रहते हैं।' वे नित्य ही एकस्वरूप हैं, नित्य ही देशकालातीत हैं, नित्य ही देशकालमें विलसित हैं, नित्य ही निष्क्रिय निर्विकार हैं, नित्य ही देशकालमें विलसित हैं, नित्य ही निष्क्रिय निर्विकार हैं, नित्य ही अनन्तिक्रय अनन्तविकाराधार हैं और नित्य ही आत्मसमाहित तथा नित्य ही संसारविलासी हैं।

एकाकारोऽनन्तराक्तिमान् निजानन्दतया अवस्थितोऽपि नानाकारत्वेन विकसन् स्वप्रतिष्ठां स्वयमेव भजित इति व्यवहारः। (सिङ्कसिद्धान्तपद्धतिः)

विभिन्न जीवदेहों में वे ही विचित्र उपाधियाँ ग्रहण करके विचित्र भावों में अपने अनन्तत्वका असंख्यस्तरविभक्त अगणित सान्तरूपों आस्वादन करते हैं। विश्वप्रपञ्चमें उनके ही चिदानन्दका विलास है, प्रत्येक जीवदेहमें भी उन्हों के चिदानन्द-का विलास है।

उपनिषद् और वेदान्तके अद्वय-ब्रह्मवादके साथ योगीश्वर गोरक्षनाथके द्वैताद्वैतविलक्षण शिववादका कोई विशेष वैलक्षणय नहीं देखा जाता । उपनिषद्के ब्रह्मतत्त्व अथवा शिवतल्को ही उन्होंने सम्पूर्णरूपसे ग्रहण-स्वीकार किया है। यह परमतन संमाधिस्थ प्रज्ञाके ऊपर ही प्रतिष्ठित है। किंतु अद्वय ब्रह्मतत्व के चरम और परम सत्यत्व स्वीकार करनेके लिये जीवजातु मिथ्यात्वका प्रतिपादन करना उन्होंने आवश्यक नहीं सम्ना सप्राचीन सिद्धयोगिसम्प्रदायने ब्रह्मज्ञानः ब्रह्मध्यानः ब्रह्मानः रस-पानमें निमझ रहकर भी विश्वप्रपञ्चको कभी मिथ्या सं बतलाया। पतञ्जलिका 'योगदर्शन' दार्शनिक विचारसे सांख्या के ऊपर प्रतिष्ठित है, यद्यपि साधनमार्गके उपदेशमें उन्ही प्राचीन सिद्धयोगियोंके मार्गकी ही अतिसुन्दररूपसे व्याख्या है। गोरक्षनाथने कपिल या पतञ्जलिके तत्त्वविचारको खीका नहीं किया है, यद्यपि वे उनके ही साधनमार्गके अनुयायी है। तत्त्वविचारमें वे उपनिषदोंके ऋषियोंके साथ एकमत येष वही प्राचीनतम आगमशास्त्रका मत है। वे विज सिचदानन्दस्वरूप ब्रह्म या शिवको विश्वजगतुका अभि निमित्तोपादान कारण स्वीकार करते थे एवं उनकी ही यह कारणत्व केवल प्रातीतिक या आध्यासिक नहीं था, बील तात्त्विक या वास्तविक था । ब्रह्म मिथ्या जगत्का मिथ्या कार नहीं है, बल्कि देशकालप्रसारित सुनियत परिणामग्री अनादि-अनन्त सत्य जगत्-प्रवाहका सत्य कारण है। इस ब्रह्मके अद्भयत्वकी हानि नहीं होती। इस जगत्का उन्हीं 'चित्-विवर्त' न कहकर 'चित्-विलास'के रूपमें वर्णन कि है। इस विषयमें प्राचीन तन्त्रशास्त्रके साथ वे एकमत हैं।

ब्रह्म या शिव नित्यदेशकालातीत, निर्गुण, निष्क्रिय, निर्विक्ष सचिदानन्दस्वलपमें विराजमान रहते हुए ही अपनी स्वर्ण भूता परमाशक्तिके द्वारा अपनेको अनादि अनन्तकाल अन्ति वैचित्र्यसमाकुल जीवजगत्के रूपमें लीलायमान करते हैं। दोनों ही रूप सत्य हैं। समाधिमें उनके देशकालां देता है एवं समाधिक दौतविहीन चैतन्यस्वरूपका साक्षात्कार होता है एवं समाधिक प्रज्ञालोकित विशुद्ध जाग्रद्बुद्धिके सम्मुख उनके विचित्र द्वर्ण मय परिणामशील विलासरूपका परिचय प्राप्त होता है। स्वरूपतः एक रहकर भी शक्तिके प्रकाशमें बहुत हो जाते हैं। स्वरूपतः निर्विकार रहकर भी अपनी शक्तिप्रसूत बहुति विकारोंके आधार और आश्रय रहते हैं। यह विश्वजगत् उनी

ब्रह्म या शिवकी आत्मभूता इस महाशक्तिको गोरक्षनाय मिथ्या या अनिर्वेचनीया माया नाम न देकर सचिदानन्त्रम -

तत्वर्श

सित्त

अतत्व.

जगत्वे

मझा।

भाननः

ा नही

ल्यमतः

उन्हीं

ल्या व

स्वीका

यी थे।

थे ए

विश

अभिन्न

दक्षि

, बलि

कारप

ामशीः

इसरे

उन्होंने

न किय

青月

निविषा

खर्ग

अनन

ते हैं।

ालातीं

माधिक

त्र द्वार

割

नाते हैं।

बहुविं

र उन

भनार्थ

न्द्म.

महाशक्ति, महामाया, योगमाया आदि रूपोंमें उसका प्रेम एवं श्रद्धा-भक्तिके साथ वर्णन किया है। ब्रह्मकी स्वरूपश्र्ता महाशक्ति ही विश्वप्रपञ्चरूपमें प्रकट है, यह विश्वप्रपञ्च ब्रह्ममयी महाशक्ति-की ही देशकाल्यापी अनन्त विश्वित्रयोक्त्वल प्रकट मूर्ति है। वस्तुतः ब्रह्म या शिवके साथ उनकी शक्तिका कोई पार्थक्य नहीं है। शिव ही शक्ति है, शक्ति ही शिव है। विश्वातीत स्वरूप-में वे शिव या ब्रह्म हैं, विश्वमें लीलायमान रूपमें वे ही शक्ति है। गोरखनाथ कहते हैं—

शिवस्त्राज्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः। अन्तरं शैव जानीयाचनद्रचन्द्रिकयोरिव॥ (सिबसिबान्तप्रस्तिः)

शिवके भीतर शक्ति है, शक्तिके भीतर शिव हैं; शिव और शक्तिमें कोई मेदबुद्धि नहीं रखनी चाहिये। जिस प्रकार चन्द्र और चन्द्रकामें कोई मेद नहीं, उसी प्रकार शिव और शक्तिमें कोई मेद नहीं। वे और भी कहते हैं—

'सैव शक्तियंदा सहजेन स्वस्मिन् उन्मीलिन्यां निरूथान-दशायां वर्तते, तदा श्रिवः स पृत्र भवति ।'

—जो शक्ति विश्वप्रपञ्चका उद्भव, घारण और विलय करने-वाली है, जो 'निजाशक्ति', 'आघार-शक्ति', 'पराशक्ति' इत्यादि नामोंसे कथित है, वही शक्ति जब सहजभावसे अपने भीतर अपनेको विलीन करके निरुत्थानदशामें स्व-स्वरूपमें विराजमान होती है, तब वही 'शिव' नामको प्राप्त होती है।

गोरक्षनाथके दर्शनमें परमतत्त्वकी आत्मभूता परमाशक्तिकी नित्य ही द्विविधरूपमें अभिव्यक्ति है। इन दोनों रूपोंका उन्होंने 'प्रकाश' और 'विमर्श' नामसे कथन किया है। प्रकाशश्विक्ति परमतत्त्व नित्य ही विशुद्ध चिदानन्दस्वरूपमें प्रकाशमान रहता है और विमर्शशक्तिकी अभिव्यक्तिमें वही परमतत्त्व अपने अद्भय चिदानन्दस्वरूपको आवृत करके अपनेको आप ही विचित्र नामोंमें, विचित्र रूपोंमें विचित्र उपाधियोंसे अलंकृत करके, देश और कालमें लीलायित होकर, विचित्र भावोंमें आस्वादन करता है। विमर्श शिक शिव या ब्रह्मको आवरण और विक्षेपके माध्यमसे प्रकाशित करती है। विभ्रत्रपञ्च उनकी विमर्शशक्तिका ही विलास है। विभ्रत्रपञ्च अपनी ही उपलब्ध और सम्भोग करते हैं। फिर, प्रकाशशक्तिकी सहायतासे वे अपनेको नित्य ही विश्वातीत-

स्वरूपमें आस्वादन करते हैं। शक्ति ये दोनों ही रूप ब्रह्म या शिवके आत्मभूत, स्वरूपभूत तथा उनके पारमार्थिक स्वरूपसे अभिन्न हैं। गोरधनाथ ब्रह्मके विश्वातीत स्वरूप और विश्वमय स्वरूप दोनोंको ही मानते हैं। अपने स्वरूपके उभयविष आस्वादनको केकर ही ब्रह्म या शिव अद्भय परम तस्व हैं। उन्होंने व्यावहारिक विश्वात्मक स्वरूपको युक्ति-तर्कके द्वारा मिय्या प्रतिपादन करके पारमार्थिक विश्वातीत स्वरूपको ही एकमात्र सत्य नहीं बतलाया है।

न तो बीवात्माके बीवत्वको उन्होंने मिय्या बतलाया और न जीवात्माको ही स्वरूपतः 'बहु' या 'असंस्य' ही कहा है। बीवात्मा अणुपरिमाण है, विभ-परिमाण है, अथवा मध्यम-परिमाण है-इस बातको छेकर भी वे विवादमें नहीं पढे हैं। बीवात्मा ब्रह्मका अंश है या ब्रह्मसे स्वरूपतः प्रथक होकर भी ब्रह्मके अधीन और आश्रित है, इन सब तर्कोंको भी उन्होंने आवश्यक नहीं समझा है। चैतन्यस्वरूपमें परिमाणका प्रश्न ही नहीं उठता, अंश-अंशी-मेद एवं आश्रय-आश्रित-मेद भी औपाधिक हैं। गोरक्षनाथके उपदेशके अनुसार-शिव या ब्रह्म ही अपने शक्तिपरिमाणका अवलम्बन करके असंख्य देहिपण्डोंमें असंख्य जीवातमा-रूपमें असंख्य स्तरींके आवरण-विक्षेप-प्रकाशके द्वारा अपनेको और अपने विश्वरूपको अपने-आप ही विचित्र भावोंमें आस्वादन करते हैं। अविद्याके अन्धकारमें आप ही अपनेको खोजनेमें व्यस्त होना। नाना प्रकारकी दुःख-ज्वाला-यन्त्रणामें छटपटाना, भाँति-भाँतिकी वासना-कामनाओंके द्वारा जर्जरित होना-यह सब अपनी ही विमर्शराक्तिके द्वारा किया जानेवाला उनका अपना ही लीला-विलास है। इन सबमें आंशिकरूपसे उनका अपनेमें अपनेद्वारा ही अपना आस्वादन है। सम्पूर्ण जीवात्माओंमें साक्षिरूपसे भी वे नित्य विराजमान हैं । वे ही जीवात्मारूपमें अपनेको आप ही देहाभिमानी और वद बोघ करते हैं। वे ही मुक्तिकी इच्छासे स्वयं अपने पारमार्थिक स्वरूपका अन्वेषण करते हैं। फिर, प्रत्येक जीवात्माकी मुक्ति-साघनाके द्वारा वे ही अपने पारमार्थिक स्वरूपमें पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त करके मुक्तिका आस्वादन करते हैं।

जो ज्ञानमयी इच्छास्वरूपिणी स्वतन्त्र महाशक्ति विश्वकी अभिन्यक्तिके अन्तरालमें अद्भय परमपुरुष ब्रह्म या शिवके विश्वद्ध सिद्धदानन्द-स्वरूपमें लीन होकर अभिन्नभावसे स्थित रहती है, वही शिवानी महाशक्ति ही परा-अपरा स्रूमा उण्डलिनी शक्तिरूपमें क्रमशः आत्मविकास करके शिवके

3-

संस्था

उतरन

आस्ति

इस व

बढ़ता करेगा

तवतक

विषयों

₹ 1 त

एवं ३

बल ए

अनुचि

रइते

चूकते

करती

इमें स

अशुभ

है, जब

हदयसे

सदा-स

रहना

अधिक

संस्कार

या अङ्

उत्पन्न

कियात

इसी व

वाहिये

महासाकारिपण्ड या ब्रह्माण्ड-देहकी रचना करती है; क्यार फिर, वह महाशक्ति ही विभिन्न करों विचित्र व्यक्षिपण्ड या जीवदेहरूपमें अपनेकी लीलायित करके शिवकी असंस्य छोटे-बड़े देहचारी जीवरूपमें विचित्र द्वन्द्वमय संसारके विचित्र रसोंका आस्वादन कराती है। शिवारमभूता अचिन्त्य महाशक्तिके अनन्त लीलाविलास हैं। आत्मविकास और आत्म-संकोच—उसका चिरंतन स्वभाव है। सब प्रकारके विकास-संकोचमय लीलाविलासके हारा ही शिव उसकी आत्मा, उसके स्वामी और उसके लीलास्वादक रहते हैं। समष्टिजगत्में और व्यक्षि-जगत्में शिवसे अभिन्न और शिवकी सेवामें संलग्न महाक्रिक अनन्त लीलाविलासमें असंस्य स्तरों में, असंस्य मावोंके संकोच-विकासमें, नित्य स्वरूपानन्द-समाहित शिवके ही विचित्र उपाधि, विचित्र नाम-रूप, विचित्र भाव और रसोंका आस्वादन होता है।

निजा परापरा सूक्ष्मा कुण्डलिन्यासु पञ्चना । शक्तिचक्रक्रमेणोत्थो जातः पिण्डः परः श्विवः॥ (सिक्सिक्रान्तपक्रतिः)

जो शिवमयी महाशक्ति अनन्तवैचित्र्यसमन्वित विश्वप्रपञ्च-की रचयत्री, निखिल ब्रह्माण्ड-जननी है, वह महाशक्ति ही अपनेको खण्ड-खण्डरूपोंमें सीमित करके, कुण्डलीकतरूपमें प्रकट करके। प्रत्येक जीवदेहमें कुलकुण्डलिनी शक्तिरूपमें विराजित है। यह कुलकुण्डलिनी शक्ति ही जीवके विचित्र देहेन्द्रियमनः प्राणबुद्धिकी संगठनकारिणी है। वही सब जीवोंकी आध्यात्मिक प्रेरणाका आधार और मूल निर्झर है, उसकी अलक्षित प्रेरणासे ही सब जीव क्रमशः आत्मोत्कर्षके लिये उत्सुक और प्रयवशील होते हैं, उसीकी अनुप्राणनासे जीवके अन्तरमें सीमाके भीतर भी असीमके साथ मिलित होनेकी आकांक्षा जाग्रत् होती है, जीवत्वके भीतर भी शिवत्वके आखादनके लिये आध्यात्मिक लालसा उत्पन्न होती है। मानवदेहमें कुलकुण्डलिनी शक्तिकी यह अन्तःप्रेरणा विशेष-रूपसे प्रकट होती है । तथापि अधिकांश मनुष्योंके खभावमें यह आध्यात्मिक अनुप्रेरणा प्रायः प्रमुप्त अवस्थामें रहती है, उनकी अन्तश्चेतनामें इस प्रेरणाकी क्रियाके होते रहनेपर भी स्फटचेतनामें इसका अनुभव नहीं होता । ऐसे ही मनुष्योंको 'बद्धजीव' की संज्ञा दी जाती है । उनके प्राणेन्द्रियमनोबुद्धि-युक्त देहके मूल (मूलाधार)में कुलकुण्डलिनी शक्ति निदिता-वस्थामें ब्रह्मद्वार (सुपुम्णामार्ग) को आच्छादन करके विद्यमान रहती हैं; वह मानो एक निद्रित सर्पकी भाँति-

कुण्डलाकारमें खित होकर वसद्धारपर नुक रक्षकर श्रम करती हो, ऐसा ही योगीजन वर्णन करते हैं। तथापि उपीये अन्तः प्रेरणाचे उसीका परिचय करानेके लिये मन-बुढिमें उत्सुका उत्पन्न होती है। गुरुनिर्दिष्ट योगसाधनका अवलम्बन करते विचारशील बुखि, प्राण, मन एवं इन्द्रियसमूहको सुनियन्ति और संशोधित करके निदित कुलकुण्डलिनीको (अर्थात् अविकर्षित आध्यास्मिक चेतनाको) जागत् करनेमें सचेध होती है। कुलकुण्डलिनीके जामत् होनेपर बद्धादार खुळ बाता है। कुलकुण्डलिन सहलारिस्थत धिव-सुन्दरके साथ पूर्णिमलनके लि कर्थात सहलारिस्थत धिव-सुन्दरके साथ पूर्णिमलनके लि कर्थात सर्वातस्थत धिव-सुन्दरके साथ पूर्णिमलनके लि कर्थात सर्वातस्थत धिव-सुन्दरके साथ पूर्णिमलनके लि कर्यात सर्वातस्थत धिव-सुन्दरके साथ पूर्णिमलनके लि कर्यात सर्वातस्थत धिव-सुन्दरके साथ पूर्णिमलनके लि कर्यात सर्वातस्थत धिव कम्पदाः अपने शिवत्वकी उपलिक के मार्गमें उत्तरोत्तर अग्रसर होता जाता है और अन्तरि तत्त्वालोकित समाधिमें सिखदानन्दपन शिवस्वरूपमें प्रतिक्षि हो जाता है। जाता है। जाता है। जाता है। जाता है।

गोरक्षनाथ आदि महायोगियोंने इस व्यष्टिदेहके अंदर्गे ही चराचर विश्वप्रपञ्चकी उपलब्धि की थी। गोरक्षनाथ कहते हैं— पिण्डमध्ये चराचरं यो जानाति स योगी पिण्डसंवितिर्भवति।

---इस देहमें ही स्थावरजंगमात्मक विश्वप्रपञ्चकों जो उपलब्ध कर लेता है, वही योगी देहका सम्यक्तान प्राप्त करता है, उसीको अपने देहका सम्यक् परिचय प्राप्त होता है। व्यष्टिपिण्ड और ब्रह्माण्डका सामरस्य-साधन, व्यष्टि और समिष्टिपण्डके साथ परमानन्द या शिवस्वरूपका सामरस्य-साधन, जीवत्व और ब्रह्मत्वका सामरस्य-साधन, लीलाविलासिनी शक्तिके साथ देशकालातीत ब्रह्म या शिवका सामरस्य साधन—इस प्रकार सर्वाङ्गीण सामरस्य-साधन हो जानेपर ही सम-तत्वका सम्यक् ज्ञान होता है एवं योगमें सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार सामरस्य साधित होनेपर यह स्थूल देह भी जड पार्थिव देह नहीं रह जाता, यह चिन्मय हो जाता है, इसी देहमें पूर्णमुक्ति और अमरत्व प्राप्त हो जाता है।

जिन सब स्तरोंका मेद करके कुण्डलिनी द्यक्ति निद्रित या अविद्याच्छलरूपसे उद्बुद्ध होकर सम्यक् पूर्णतम प्रबुद्ध अवस्थामें पहुँचती है एवं शिवके साथ पूर्णरूपसे एकीभूत हो जाती है, एवं जीवचेतना शिवचेतनामें पूर्णतम प्रतिष्ठी प्राप्त कर लेती है, गोरक्षनाथ तथा अन्य सिद्धयोगियोंने उन सब स्तरोंका चक्ररूपमें या पद्मरूपमें वर्णन किया है। इन सब चक्रोंका मेद कर लेनेपर विश्वप्रपद्मके भी सभी चक्रोंके पर

विषित्र

उसीकी

सुकता

करके

त और

ता है। हिस्ती

(6)

स्मिक

लिब-

अन्तरे

तिष्रित

नंदरमें

₹-

वति।

ो जो

है।

मष्टि-

घनः

सिनी

7-

त्त्वका

इस

ार्थिव

देहमें

नंद्रित

ाबुद

भूत

तिष्ठा

उन

सब

उतरना हो जाता है। अविद्याच्छन्न अवस्थामें इस देह और प्रपञ्चको बीचमें रखकर मानो जीव और शिवको पृथक करके दो प्रान्तोंमें रक्खा गया है। देह और विश्वप्रपञ्चके चिन्मयत्व प्राप्त कर लेनेपर, फिर जीव और शिवमें कोई व्यवधान नहीं रह जाता; तब सम्पूर्ण शक्तिविलासमें भीतर और बाहर जीव

इस एक अद्वितीय शिव या ब्रह्मकी ही उपलब्धि करता है। युक्तिके द्वारा द्वेतका निरसन करके अद्वेतकी प्रतिष्ठा नहीं होती, विक समस्त द्वेतोंमें एक अद्वेतका ही जान्वल्यमान साक्षात्कार किया जाता है। यही योगका लक्ष्य है।

(अनुवादक--श्रीरघुनाथप्रसादजी शुक्र)

भगवान्में श्रद्धा-विश्वास दृढ़ कीजिये

(केखक-शीजबकान्तजी 'झा')

आज हमें इस बातकी सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम आस्तिक बनकर प्रभुके प्रति श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न करें और इस बातका प्रयत्न करें कि इमारा यह विश्वास नित्य निरन्तर बढता रहे; क्योंकि यही विश्वास हमें कल्याण-मार्गपर अग्रसर करेगा। जबतक इमारा मन विषय-वासनाओंसे ओत-प्रोत है, तवतक हम केवल कहनेभरको आस्तिक हैं; वास्तवमें तो हम विषयोंके दास वने हुए नाना प्रकारकी कामनाओंसे व्याकुल हैं। तनिक-सी बातमें हममें क्रोध उत्पन्न हो उठता है, संतोष एवं शान्तिके दर्शनतक नहीं होते और झूठी अकड़में धन, बल एवं प्रभुत्वका अभिमान करते हुए मोह-निशामें उचित-अनुचितका ध्यान किये बिना इम ईर्ध्या-होषकी आगमें जलते रहते हैं और दूसरोंपर दोषारोपण करनेमें तनिक भी नहीं चुकते। ऐसी आस्तिकता हमें केवल पतनकी ओर ही अग्रसर करती है और इससे इमारा कभी भी कल्याण नहीं हो सकता। हमें सच्चा आस्तिक वनना पड़ेगा और तभी हम सदाके लिये अशुभसे बच सकेंगे।

हम सदा अपना कल्याण चाहते हैं और यह तभी सम्भव है, जब हम सदा ग्रुभ कर्म करते हुए प्राणीमात्रका कल्याण हदयसे चाहें। हमारी प्रत्येक क्रिया ग्रुभ हो और हमारा मन सदा-सर्वदा ग्रुभसे ही ओतप्रोत हो। हमें इस बातसे सावधान रहना होगा कि हमारे जितने भी ग्रुभ संस्कार हैं, वे अधिकाधिक क्रियामें परिणत होते रहें और अपने अग्रुभ संस्कारोंको हम कभी व्यक्त न होने दें। हमारे छोटे-से-छोटे ग्रुभ या अग्रुभ संस्कार अगणित ग्रुभ या अग्रुभ कर्मोंके बीज उत्पन्न कर देते हैं और यदि इन ग्रुभ-अग्रुभ संस्कारोंको हम क्रियात्मक रूप न दें तो वे धीरे-धीरे श्वीण होने लगते हैं। इसी बातको ध्यानमें रखते हुए हमें अपनी दिनचर्या बनानी वाहिये और अपनी ग्रुभ-अग्रुभ क्रियाओंका विचार करते हुए सदैव जीवनकी गति-विधिका निरीक्षण करते रहना चाहिये।

सच्चा आस्तिक वननेके लिये हमें सर्वप्रथम प्रभुमें अपना विश्वास हद करना होगा और यह तभी होगा, जब हममें जो भी थोड़ा बहुत प्रभुका विश्वास है, उसका हम कियारमक प्रयोग करें । हमें निम्नलिखित बातोंपर पूर्ण विश्वास होना ही चाहिये—

(१) प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं

असम्भव-से-असम्भव कार्य भी क्षणमात्रमें प्रभुकी कृपासे सम्भव हो सकता है। उनकी शक्ति असीम है। 'नात्येति कश्चन'—किसीकी सामर्थ्य उनके शासनके विरुद्ध जानेकी नहीं है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।

—वे ईश्वरोंके भी परम महान् ईश्वर हैं; स्यूल एवं सूक्ष्म जगत्के जितने शासक हैं, उन सबके शासक वे हैं; उनमें अद्भुत सामर्थ्य है। सर्वथा विरोधी गुण उनमें एक साथ एक समयमें वर्तमान रहते हैं। 'तदेजित तन्नैजित तहूरे तह्नितके'—एक साथ वे एक समयमें चलते भी हैं और नहीं भी चलते, वे दूर भी है और समीपमें भी हैं।

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।

—वे बैठे हुए ही दूर चले जाते हैं, सोते हुए ही सर्वत्र पहुँच जाते हैं। 'अनेजदेकं मनसो जवीयः'—वे चलनरहित होते हुए मनसे भी अधिक वेगवाले हैं। 'तद्भावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्'—वे बैठे रहकर भी दौड़नेवालोंसे आगे निकल जाते हैं। ऐसे ही वे असंख्य विचित्र शक्तियोंसे पूर्ण हैं। वे 'कर्तु-मकर्तुमन्यथा कर्तु' समर्थ हैं।

प्रभुके सर्वसमर्थता-सम्बन्धी विश्वासको हमें क्रियात्मक रूप देना होगा। प्रत्येक कार्य करनेसे पहले हमें प्रभुसे प्रार्थना करके शक्तिकी याचना करनी होगी; क्योंकि शक्तिके केन्द्र तो प्रभु ही हैं—उनकी शक्तिसे ही इमारे सभी कार्य सम्पादित होते हैं। पर हमारा अहं इस सत्यको हमारे सम्मुख व्यक्त नहीं होने देता और फल-खरूप प्रभुकी शक्तिको पूर्णरूपेण संचारित होनेका मार्ग नहीं मिलता । यदि इम प्रत्येक कार्य करनेसे पहले प्रभुसे शक्तिकी याचना कर लें तो निश्चय ही इमारे कठिन-से-कठिन कार्य भी सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जायँ। यदि इस बातका पूर्ण अभ्यास हो जाय तो प्रतिक्षण इमें प्रभुकी सर्वसमर्थताका आभास होने लगेगा और इम देखेंगे कि कोई भी ग्रभ कार्य यदि प्रभुकी प्रार्थना करके आरम्भ किया जाय तो उसमें आश्चर्यजनक प्रगति तथा सफलता होती है। साथ ही इस जितनी बार प्रार्थना करेंगे, उतनी बार प्रभुमें इमारी श्रद्धा पुष्ट होती जायगी और अन्तमें इमारे जीवनका यह स्वभाव हो जायगा-प्रत्येक कार्यके लिये प्रभुकी शक्तिपर निर्भर रहना । हम एक स्वरहे स्वीकार करेंगे कि प्रभुकी कृपासे क्या नहीं हो सकता और हमारी यह श्रद्धा सदैव जागरूक रहने लगेगी।

(२) हमारे प्रभ्र सर्वत्र हैं

'ईशावास्प्रमिदं सर्वं यत्कि च जगत्यां जगत्' के अनुसार क्षुद्र से क्षुद्र एवं महान् से-महान् सभी प्राणियों एवं पदार्थों में वे नित्य समभावसे स्थित हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वे न हों । इमारे सम्पर्कमें आनेवाली समस्त वस्तुओंमें वे स्थित 🕇 । आकाश, वायु, जल, अग्नि, पेड़-पौधे, मनुष्य, पश्च-पक्षी, तितली, भौरे अथवा जड दीखनेवाले सभी पदार्थोंमें यथा-टेबुल, कुसीं, खाट, किवाड़, घड़ी, कलम-दाबात आदि सभी वस्तुओंमें वे पूर्ण हो रहे हैं जगत्के अणु-अणुमें वे व्याप्त हैं स्थमभूतोंमें वे समाये हुए हैं महत्तत्वमें, सत्त्व-रज-तम तीनों गुणोंमें वे व्याप्त हैं। और तो और, यह नश्वर शरीर जिससे इम अत्यधिक प्रेम करते हैं और जिसे इम क्षणमात्रके लिये भी नहीं भूलते, उसमें भी वे नखसे शिखतक परिपूर्ण हो रहे हैं।

'प्रभु सर्वत्र हैं' इस विश्वासको हुद करनेके लिये हमें दिनमें दस, बीस, पचीस-जितनी बार और जितनी देरके लिये सम्भव हो, उतनी बार उतनी देरके लिये हम मनमें यह

बातका ध्यान रखना होगा कि जिस किसी भी व्यक्तिरे ह जो कुछ भी व्यवहार करें, उसमें ठीक-ठीक उतना ही समा अपनत्व, आत्मीयता एवं प्रेम भरा हो, जितना स्वयं प्रभे साथ व्यवहार करनेपर होता । इस भावनाके समय हम कि वस्तुको देखें, सुनें अथवा स्पर्श करें, उसमें प्रमुकी सक इतनी जीबन्त धारणा हो कि उसका यथायोग्य व्यक्त करते समय हमें उसी आनन्दकी अनुभूति हो, जितनी प्रारं सम्पर्कमें आनेपर होती । उदाहरणार्थ-यदि कोई याज (भिखारी) आपके सम्मुख आ गया, उस समय हमें की ठीक यह अनुभव हृदयसे होना चाहिये कि जब हमारे प्र सर्वत्र हैं तो इस भिखारीमें भी वे अवस्यमेव हैं। अ भिखारी-बेशमें प्रभु ही पधारे हैं। उस भिखारीके ही इमारे हृदयमें ठीक वैसे ही प्रेम, आत्मीयता, अप आदि प्रकट हों, जैसे स्वयं प्रभुको देखकर होते। ज समय भले ही लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे छोटे पदका हाँ होनेके कारण हम आसनसे न उठें किंत्र हमारा अनल भिखारी-वेशधारी प्रभुके चरणोंमें समर्पित हो जाना चाहिं उसे भोजन कराते समय उस भोजनके अणु-अणुनें हैं प्रभुकी सत्ताका भान होना चाहिये और भिखारीके दर्शन इमारे रोम-रोम पुलकायमान हो जायँ। ऐसी भाव प्रतिदिन बार-बार करनेपर हमारी आस्या प्रसुकी क व्यापकतामें दृढ़ हो जायगी और साथ ही उनमें अ अदा उत्पन्न होगी।

(३) प्रभु सर्वज्ञ हैं---

'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्'—अखिल ब्रह्माण्डके गुप्तसेग् एवं सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कोनेतकमें अनादिकालसे अबतक क क्या हो चुका है, वर्तमानमें क्या हो रहा है एवं अर्व कालतक क्या होता रहेगा—यह सब कुछ वे निरन्तर ^{जाती} देखते रहते हैं और उन्हें इन सबका अनुभव होता ए है। उत्तम से उत्तम अथवा निम्न से निम्न कोई भी हैं कार्य अथवा स्थान नहीं, जो उनकी दृष्टिसे परे हो।

प्रमुकी सर्वज्ञताके विश्वासको भी हमें क्रियात्मकर् देना होगा। जब हम अग्रुभ प्रवृत्तियोंसे घर जाते हैं औ अपने मनपर नियन्त्रण न होनेके कारण हम निर्ठजतापूर्व अग्रुभ कर्म करने लगते हैं, उस समय इस विश्वरि परम आवश्यकता है। ऐसे समय हमें प्रभुकी व्यापन भावना करें कि प्रमु सर्वत्र हैं। इस भावनाके समय इमें इस वाणी तिनक भी मुनायी नहीं देती और यथासम्भव विविध

g# हम

सव

यह

रहे

भी

उन पाप

प्रस

प्राप्त

मि श

तिसे ह

सम्मार

रं प्रमुद्दे

हम जिल

सत्ताः

व्यवहा

री प्रभुवे

में ठीइ

मारे प्र

1 373

के प्री

अपन

1 3

का खं

अन्तरा

वाहिये

णुमें हो

5 दर्शन<u>े</u>

भावन

की सर

म-से-गुं

再 科

अन्ति जाने जार

नी ऐस

त्मक्र

意新

तापूर्व

विश्वासकी व्यार मेर्ग विश्वक हम दुष्कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। हमारे दुष्कर्मोंका कहीं मंडाफोड़ न हो जाय, ऐसी शङ्का होनेपर कई बार दुष्कर्मोंसे हमारा बचाव भी हो जाता है। अतः यदि प्रभुकी सर्वज्ञतापर विश्वास करके हम अपनी अग्रुभ प्रवृत्तियोंका दमन करने लगें तो प्रभुमें श्रद्धा बढ़ने लगे और साथ-ही-साथ हमारे दुष्कर्मोंका अन्त भी हो जाय। इसके लिये हमें यह अभ्यास करना होगा कि जब कभी भी हम कोई कर्म करें, उस समय दृढ़तासे यह स्मरण करें—'प्रभु हसे जान रहे हैं, देख रहे हैं।' ऐसा स्मरण आते ही हमें उतनी ही लजा होगी, जितनी हमारे दुष्कर्म किसी अन्य व्यक्तिद्वारा जान लिये जानेपर होती है। बार-बार ऐसा करनेपर (प्रारम्भमें चाहे वह हठपूर्वक ही हो) हमारी श्रद्धा प्रभुकी सर्वज्ञतामें दृढ़ हो जायगी और हमारी अग्रुभ प्रवृत्तियोंका भी सदाके लिये अन्त हो जायगा।

(४) प्रभु हमारे सुहृद् हैं-

'सुहृदं सर्वभूतानाम्' के अनुसार प्रभुसे बढ़कर हमारा कल्याण चाहनेवाला दूसरा कोई नहीं। उनकी अहैतुकी कृपा सभी जीवोंपर सदा समानभावसे बरसती रहती है। पितत-से-पितत प्राणी भी एक बार यदि हृदयसे स्वीकार कर ले कि भगवान् हमारे सुहृद् हैं तो उसे सची शान्ति प्राप्त हो जाती है। भगवान्की यह प्रतिश्चा है कि 'दुराचारी-से-दुराचारी व्यक्ति भी च्यों ही उनके सम्मुख होता है अर्थात् उनकी शरणमें जाता है, उसी क्षण उसके अनन्तकोटि जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।' केवल विश्वास करने भरकी देर हैं। भगवान् तो हमें अपनानेके लिये सदैव सब प्रकारसे प्रस्तुत हैं।

भगवान्के साथ सौहार्द बढ़ानेके लिये हमें अपने जीवनको उनसे जोड़ देना होगा। इसके लिये हमें कुतर्क छोड़कर प्रभुके स्नेहमय दानको, प्रतिक्षण पद-पदपर हमारी सुल-सुविधाके लिये उनके द्वारा की हुई व्यवस्थाको स्मरण रखते हुए गद्गद होना पड़ेगा। हृदयसे यह स्वीकार करना पडेगा कि प्रभुके अनन्त, असीम उपकारोंकी गणना नहीं हो सकती; ऐसी अहैतुकी कृपा करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अपनी अधमता एवं प्रभुकी कृपाकी याद करके हमारी आँखें भर आयेंगी और इस उनसे प्रार्थना करेंगे कि है नाथ ! इमारे-जैसे नीचको नरकाग्निमें ढकेलकर भस्म कर दो, इमारे-जैसे पातकीके अपराधोंकी ओर बिना देखे हुए तुमने विवेक देकर हमें आदरका पात्र बनाया। हम तो इतने नीच हैं कि अन्तर्यामी प्रभुसे भी कपट करनेमें न चूके और तुम हो कि नाथ! तुमने हमें न छोड़ा। प्रभु ! इमारा मन तो विषयोंका दास है, किंतु ऐसे वश्चकपर भी तुम्हारी अनवरत कृपा वनी रही। नाथ! तुम्हारा स्वभाव ही है-अपनी ओर देखना, दूसरोंकी ओर नहीं। अनन्त उपकारोंसे हमें ओतप्रोत कर देनेपर भी तुम्हारे स्नेहमय दानका कभी विराम नहीं हुआ।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्वासोंको हम केवल सैद्धान्तिक रूपमें ही सीमित न रखें बिल्क उन्हें क्रियात्मक-जीवनका अंद्य बना लें । प्रभुकी सर्वद्यक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता, सर्वव्रता और सौहार्दकी ओर सिक्रय दृष्टि डालते ही हमारी श्रद्धाके बीज प्रस्फुटित हो उठेंगे और हम अपने सम्पर्कमें आनेवाले सभी व्यक्तियोंको भगविद्धिश्वासके बीज दान कर सकेंगे । हम आप्तकाम हो जायँगे और हमारे अहंका सर्वथा विनाद्य होकर निरन्तर भगवद्भावोंका विस्तार होता रहेगा ।

रामकी कृपालुता

बालि-सो बीरु विदारि सुकंडु थप्यो, हरषे सुर, बाजने बाजे। पलमें दल्यो दासरथीं दसकंधरु, लंक बिभीषनु राज बिराजे॥ राम-सुभाउ सुनें 'तुलसी' हुलसे अलसी हम-से गलगाजे। कायर कूर कपूतनकी हद, तेऊ गरीबनेवाज नेवाजे॥





मधुर

बहुत दिन बीत गये। राधाको श्रीश्यामसुन्दरके दर्शन नहीं हुए। सँदेसा भिजवानेपर भी उन्होंने कुछ संतोषप्रद उत्तर नहीं दिया। उपेक्षा-सी ही दिखलायी। श्रीराधाकी मुखाकृति उदास रहने लगी। उनके नेत्रोंसे सदा अश्रुधारा बहती रहती, वे नित्य व्याकुल रहतीं। सिखयोंने समझा 'श्यामसुन्दरका उपेक्षापूर्ण निष्ठुर व्यवहार ही राधाके इस विषादका कारण है। अतः वे एक दिन एकान्तमें श्रीराधाको समझाने लगीं। एक अतिप्रिय सखीने राधासे कहा—

उस कैतवके लिये कर रही क्यों तुम सस्त्री ! विलाप ? माया-ममता रहित, गुढतम जिसके कार्य-कलाप॥ निराकाङ्क, निर्भय, निज-निर्भर, निरवधि भाव-निमग्न । परम स्वतन्त्र सदा जो सस्मित मुरली-संलग्न ॥ मुख नहीं किसीके मरने जीने-जिसको परवाह । अपने मनकी ही करनेमें जिसको परमोत्साह ॥ काला, कुटिल-अकुटि, कपटी अति, कुलिस-हृद्य, निर्मोह। मोहितकर, हर मन-धन सरवर, विषम देता विछोह ॥ पुष्प-पुष्पपर मधुकर में डराता हेतु । नव-रस भूल, भरोसा करना उसका रक्खेगा श्रुति-सेतु ॥ राग-रति-रहित परम रमण, उसका करके विश्वास। हमी गयी सरका तुम, रसवति. रोती अब भय-त्रास ॥

प्रेमरहित वह निष्दुर निरुपम,
नहीं भरोसे जोग।
भूलो ! उसे छोड़ सब आशा,
क्यों करती दुख भोग ?॥

HE

नहीं

भुल

सुनव

कहन

बातें

प्रकार

प्राणन

के सा

प्रेम-सु

मेरे प्र

नो स

वह प्र

तया सं

प्यारी सखी राधा ! उस छलियाके लिये तुम क्यों विलाप कर रही हो ! जिसके न माया है न ममता है जिसके सभी कार्य अस्यन्त गुप्त (रहस्य-भरे) होते हैं। (पता नहीं, वह कव क्या क्यों करता है), जिसे न कोई आकाङ्का दीखती है न वह किसीसे डरता है अपने-आपपर ही निर्भर रहता है (किसीसे आशा नहीं करता), जो सीमारहित अपने भावोंमें ही डूबा रहत है। जो सदा परम स्वतन्त्र है। जिसको न किसीके जीनेकी परवा है न मरनेकी । जो अपने मुप मुसकराते मुखपर सदा मुरली लगाये रहता है औ जो अपनी मनमानी करनेमें ही परम उत्साहसे भा रहता है। जो काला है, जिसकी टेढ़ी भौंहें (मनबं हर लेती) हैं, जो अत्यन्त कपटी और वज्रहृदय है। जिसमें मोह है ही नहीं; पर जो दूसरोंको मोहित करके तुरंत ही उनके मनरूपी धनका हरण कर लेता है और फिर अपना भयंकर वियोग प्रदान करता है (मन हरण करनेके बाद फिर मिलता ही नहीं)। नया-नया (स भ्रमरकी भाँति पुष्प-पुष्पपर चखनेके लिये मँडराता रहता है, उसपर यह भरोस करना कि यह वेद-मर्यादाकी रक्षा करेगा (अर्थात् प्रेम करनेवालेसे बदलेमें प्रेम करेगा) सर्वथा भूल है। जिसमें न कहीं आसक्ति है न प्रीति, ऐसे उस वछमनी विश्वास करके तुम सरलहृदया रसमयी (बुरी तरह) ठगी गयी हो, इसीसे अब भय-त्रासके मारे रो रही हो। सखी ! वह बड़ा ही निष्ठुर है, प्रेमरहित है, उसकी कहीं उपमा ही नहीं--ऐसा वह विश्वास-भरोसेके योगि

1

न क्यों

ता है

ते हैं।

जिसमें

ता है,

नही

रहता

तसीवे

मधुर

और

भरा

मनको

है।

गोहित

ता है

ग है

1) |

TH

भरोसा

म्रेम

面

भका

(医)

हो।

सकी

योग

नहीं है, तुम उसकी सारी आशाओंको छोड़कर उसे भूल जाओ । क्यों व्यर्थ हु:ख-भोग करती हो ? सखीके इन ममता-प्रीतिपूर्ण परंतु निष्ठुर वचनोंको धुनकर राधाको बड़ी मर्मवेदना हुई और वे रो-रोकर कड़ने लगीं----

सिख ! सुखदान करो कह मोइन समहरकी मच थात । निन्दा कर दुस सत प्रियतमकी करो हृदयपर बात ॥ गुण-निधिः मेरे प्राणसाथ वे रस-निधि, परम उदार । प्रेम-रस भमितके सुधा पावन पारावार ॥ अति प्रीति विलक्षण चिर दिन नित्य नवीन। रस-रहस्यमिय अन्तर्निहिता अनुपम अवधि विहीन॥ प्रिय प्रियतमके प्राणाभ्यन्तर रस-धार। सुधामिव अन्तःसिल्ला-सी वह रही उस परम पावनी अन्त-मंधुरा धारा बीच। रहती नित्य निमग्न न छ पाता मुझको तट-कीच॥

प्रिय सखी ! तुम मेरे मनहरणकारी मोहनकी मीठी बातं सुनाकर मुझे सुखदान करो, मेरे प्रियतमकी इस प्रकार निन्दा करके मेरे हृदयपर चोट मत करो। मेरे वे प्राणनाथ सहुणोंके समुद्र हैं, रस (प्रेम तथा आनन्द) के सागर हैं, वे परम उदार हैं। परम श्रेष्ठ अपरिमित प्रेम-सुधा-रसके सबको पवित्र करनेवाले महासागर हैं। मेरे प्रति उनकी सदा से ही अत्यन्त विलक्षण प्रीति है, नो सदासे ही नित्य नया रूप धारण करती रहती है; वह प्रीति गूढ़तम रसमयी है, अन्तर्निवासिनी है, उपमा तथा सीमासे रहित हैं । उन मेरे प्रिय प्रियतमके प्राणींके

अंदर अन्तःसिंक्ला फल्युकी माँति मधुर सुवानयी रसकी धारा अपाररूपमें बद्द रही है। सखी ! मैं उस परम पवित्रकारिणी अन्तर्मधुरा रस-धारामें सदा ही डूवी रहती हूँ । मुझे नदीके बाहरके किनारेका की चड़ छू ही नहीं पाता । अर्थात् बाहर दीखनेवाळा प्रेम तो नकळी (देहेन्द्रिय-सुखर्में ही सीमित) की चड़के समान होता है, जो मनरूपी कपड़ेकों मिलन ही करता है।

अन्तर्रेष्टिरहित त्म, **उनका** देख न पायी कर बैठी संदेह, परम शुचि रसका समझ अभाव॥ लिया समझ तमने वे करते मुझको दुःख-प्रदान । दोष-छिद्र इससे ळा-ळाकर करने बसान ॥ सिख ! मैं कैसे तम्हें बताऊँ, ही सदोष । सदा प्रियमें बस, यह एक दोष है---निर्दोष ॥ **जितान्त** लिये नित्य वे मेरे विविध संताप--कटु कुवाच्य, कुत्सा; तथापि वे होते आप ॥ श्चब्ध देते मुझे नित्य सुख अतुलित, मीन। रहते बाहर उपेक्षा-सी दिखलाते, कौन ?॥ जाने मनकी रोती मैं न दुःससे किंचित्, भय-त्रास। मुझे नहीं प्रियतम नयन-संक्लिका सास ॥ मर्भ समझते तुम ही प्रीतिवश अवगुण-गान । प्रियके करती किंतु हृदयमें आकर चुभते समान ॥ विष-बाण अति एक तरफ दुस्सह प्रिय निन्दा, ओर त्यार । तव

एक

असत्य

कोई इ

विगत

संकेत

वौराणि

वैसी र

उन्नतिव

भारतने

खदेश-

सौन्दर्य

पवित्रत

था यह

ज्ञान ए

यह प्र

पृथक्

हृदय

करता

प्रकाश

अन्धक

साचि

रहीं।

सम्पूर्ण

पहाँके

प्रकार

4

6

भ

सत्ती ! क्षमा करना, न समझना
इसे कहीं दुस्कार ॥
पर जिनको तुम बता रही हो
तिन्दा दोष्ण्य काम ।
प्रापि-सुनि-वाम्डित वे सहुण हैं
क्षाच्य विद्युद्ध कडाम ॥

सखी ! तुमको अन्तई छि प्राप्त नहीं है (तुम केवक बाहरकी चीज ही देख पाती हो), इसीसे तुम टनके (उन मेरे प्राणनाथके भीतरके असकी) भावोंको नहीं देख पायी; इसीसे तुम यह संदेह कर बैठी कि उनमें परम पवित्र रस (प्रेम) का अभाव है । इसीसे तुमने समक्ष लिया कि वे मुझको (राधाको) दु:ख दिया करते हैं और इसीसे तुम उनके दोषोंको-छिद्रोंको (ढूँढ-ढूँढ़कर) ला-लाकर मेरे सामने उनकी व्याख्या करने लगीं। सखी! मैं तुम्हें कैसे बतलाऊँ कि (वास्तवमें) सदा-सर्वदा दोषोंसे भरी तो मैं ही हूँ । मेरे प्रियतममें तो बस, यही एक दोष है कि वे नितान्त निर्दोष हैं। (किसीमें सर्वथा दोष न होना भी एक दोष ही है-यही दोष स्यामसुन्दरमें है।) वे मेरे लिये सदा ही भाँति-भाँतिके संताप सहन करते रहते हैं---कितने कठोर वचन, कितनी कुत्सित वाणी और कितनी निन्दा उन्हें सुननी पड़ती है; इतनेपर भी वे खयं कभी क्षुच्य नहीं होते । वे नित्य निरन्तर मुझको अतुलनीय मुख देते रहते हैं, परंतु बाहरसे मौन रहते हैं। सदा उपेक्षा-सी दिख्काते हैं; परंतु मनकी जानता है। (वे कभी यह प्रकट नहीं करते ह मुझसे इतना प्रेम करते हैं और मुझे सुख देते-देते क ही नहीं; वरं यह दिख्लाते हैं कि मानो प्रेम है। नहीं। और यही प्रेमका खरूप भी है। प्रेम दिख्या नहीं जाता, वह तो सहज खाभाविक होता है और प मूल्यवान् धनकी भाँति इदय-कोषमें ही घुरक्षित रहता है। सखी ! मैं न तो किंचित् भी दुः खसे रोती हूँ न मुझे ब कोई भय-त्रास ही है; मेरे इन नेबोंसे बहनेवाठी जलका खास रहस्यको एक मेरे प्रियतम ही समझते हैं। सर्व यह सत्य है कि तुन्हारी मुझमें प्रीति है, हो (मुझे सुखी बनानेके लिये ही) तुम उन मेरे प्रियत अवगुणोंका गान करती हो; परंतु तुम्हारे ये बचन हृदयमें आकर उसमें विष-बाणोंके समान चुभ जाते सखी ! एक तरफ तो प्रियतमकी निन्दा मेरे लिये आ है; दूसरी ओर मेरे प्रति तुम्हारा जो सच्चा प्रेम है, उस संकोच है । तुम मुझे क्षमा करना । (मैं जो इतनी ब गयी, इससे) यह कभी मत समझना कि मैं तुम्हें दुल रही हूँ (तुम्हारे प्रेमका तिरस्कार कर रही हूँ ।) 🧖 (यह समझ छो कि) तुम उनके जिन कामोंको निर्व योग्य तथा दोषमय बतला रही हो, (वे दोष नहीं किंतु) ऋषि-मुनियोंके द्वारा वाञ्छित विशुद्ध परम हुर प्रशंसाके योग्य सद्गण हैं।

में अपनो मन हरि सों जोरची

में अपनी मन हरि सीं जोरयी। हरि सीं जोरिसबिन सीं तोरयी ॥ नाच कछयी तब घूँघट छोरयी। लोक-लाज सब फटिक पछोरयी ॥ आगें पार्छे नीकें हेरयी। माँझ बाट मदुकी सिर फोरयी ॥ किह किह कासों करित निहोरयी। कहा भयी कोऊ मुख मोरयी ॥ स्रदास-प्रभु सीं चित जोरयी। लोक-बेद तिनुका सीं तोरयी ॥ **Q**还本还还还还还不

血本体态态态态态态。

अतीत और भारत

(लेखक—श्रीआचार्य सर्वे)

भीती ताहि बिसार दे आगेकी सुधि लेख!'
—यह एक लोकोक्ति है! लोक-मानससे उठी है।
असत्य नहीं है। इसका आश्रय आत्मिनिरीक्षणके विपरीत
कोई बात कहनेसे नहीं है। निराशावादिताको छोड़कर,
बिगत दुर्घटनाओंको भूलकर प्रगतिशील बने रहनेका
संकेत कदाचित् उक्त कहावतमें निहित है।

पुक

वटाः

(पा

ने करं

विश

सर्व

张

यतः

वन है

तेह

आः

उसः

दुल

निन्दा

नहीं।

। सन्

भारतका अतीत महान् रहा है । वैदिक-कालसे पौराणिक-कालतकका भारतवर्ष अद्वितीय था । आजतक वैसी समुन्नत स्थिति किसी भी देशकी नहीं रही । उन्नतिकी—अभ्युदय और निःश्रेयस—दोनों ही दिशाओं में भारतने उच्चताकी सीमाएँ छू ली थीं । मातृ-पितृभक्ति, खदेश-भक्ति एवं ईश्वर-भक्तिके साथ ही सम्पन्नता, सौन्दर्य, शक्ति और खास्थ्यके स्नोत यहाँ बहते थे । पित्रता, दान, त्याग और आध्यात्मिक ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण था यह देश । सम्पूर्ण विश्वमें इसीकी संस्कृति, शक्ति, ज्ञान एवं ख्यातिका साम्राज्य था । बृहद्-आर्यावर्त्तका—यह प्रदेश 'भरत-खण्ड' कहलाने लगा, तभीसे इसकी पृषक् सत्ताका सृत्रपात हुआ । फिर भी इसका हृत्य तथा मिस्तिष्क सहस्नाब्दियोंतक विश्वपर छाया करता रहा।

विश्वको भारतीय ज्ञान, भक्ति एवं कर्मकी मशालोंने प्रकाश दिखाया। यहाँके पवित्र आश्रम विश्वके गहन अन्यकार-समुद्रमें प्रकाशस्तम्भका कार्य करते रहे।

जिन आश्रमोंसे प्रेममय शालीन प्रकाशकी धाराएँ साविकी श्रद्धाकी कृषि हेतु समस्त जगत्-क्षेत्रको सींचती रहीं। कुमार कार्तिकेय-जैसे भू-विजेता एवं गणेश-जैसे सम्पूर्ण देवोंद्धारा सर्वाध्यक्षरूपमें सुपूजित प्रज्ञावान् सुपुत्र पहाँके वायुमण्डलको अपने अ० ७ पराक्रम एवं चरित्रके प्रकाशसे आपूरित करते रहे।

तीनों कालोंको, दिशा एवं कालके भेदसे ऊपर उठकर एवं सकल ब्रह्माण्डको अर्जा एवं अणु (शिव-शक्ति) के भेदसे उपरत हो संतुलित तथा समन्वित वैष्णवीशक्तिके अधिष्ठाता होकर जाननेवाले जन-साधारण यहाँ थे—ऋषियों, मुनियों, देवों और योगिराजोंका तो कहना ही क्या?

शक्ति तथा पुण्यको भली प्रकार हृदयंगम कर दृढ़तासे धारण करनेवाले धर्मवीर, दयावीर, युद्धवीर, दानवीर और विज्ञानवीर स्नी-पुरुषोंका यहाँ अभाव न था । सुवर्ण, रत्न, मणि, धन-धान्य आदिकी तो गणना ही क्या ?

देवेन्द्र स्वतः भूतल और स्वर्गका शासनतन्त्र सँभाले हुए थे। आम, कटहल, कदम्ब, अनार, इमली, बड़, पीपल आदि फल-पत्र-पुष्पाच्छादित वृक्षों तथा केतकी, गुलाब, चमेली, मोतिया, जुही, चमेली, मालती आदि सुमन-विटपोंका अभाव न था।

निर्दियों, निर्झरों एवं स्रोतोंका बाहुल्य था। पशु-पक्षियोंको मनुष्यसे कम संरक्षण एवं विकास प्राप्त नहीं था। दूध-दहीकी निर्दियाँ बहती थीं। यह सब इसीलिये होता था, क्योंकि वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि सभी ऋतुएँ अपने-अपने समयपर भरपूर कृपा-वरदान ले प्रस्तुत होती थीं: क्योंकि—

ब्रह्मचर्यका ऐसा प्रताप था कि प्रजा नीरोग एवं इच्छाजीवी थी ।

श्रद्धाकी ऐसी महिमा थी कि जब चाहे प्रभु प्रकट हो अभीष्टोंसे झोळी भरते थे ।

अहिंसाकी इतनी गरिमा थी कि सिंह एवं मृग एक स्थानपर निवास करते थे।

दानका इतना सौम्य प्रसार था कि अतिथिके

संख्या

कुरम

उनका

होती

एक

समाजव

करता

जीवोंक

सृष्टिर्क

अस

यज्ञसे

लिये ।

हेतु ह

चले उ

श्रीकृष

नि

ओर र

कि स

पानी

होता

तरह

शून्य

स

आश्रमस्थ वृक्षके नीचे पहुँचते ही फलदार वृक्ष अपने फल छोड़ देते थे ।

प्रेमका ऐसा साम्राज्य था कि विश्वके सभी प्राणी एक-दूसरेके जीवन, प्रफुल्लता तथा आयुष्यके प्रवर्त्तक हो गये थे। गो-सेवाकी ऐसी व्यवस्था थी कि कोई भी देशवासी अभाव, विषमता एवं रोगसे प्रस्त नहीं था।

आज तो विज्ञानने अनेक साधन सुलभ कर दिये हैं। लोगोंका बहुत-सा श्रम तथा समय बचा दिया है। तो फिर आज उपर्युक्त सब चीजें कहाँ चली गयीं? कहाँ गयीं वे पतित्रता नारियाँ, जो अपने विवेकपूर्ण कि प्रेममय व्यवहारसे आजीवन गृहस्थीको खस्य, प्रमुख के सम्पन्न बनाये रखती थीं और पतिको यमराजके चंग्र खुड़ाकर वापस खींच ठाती थीं १ इसी प्रकार आपतियोंका भारत, ऋषि-मुनियोंकी जन्म-भूमि भारत कहाँ चळा गया १

इसका कारण कहीं उपर्युक्त गुणोंका ह करनेवाले 'विज्ञानासुर' के हृद्यमें तो नहीं छिपाहै —आइये विचारें!

+--

यज्ञ

(लेखक--श्रीजगन्नाथजी पाठक)

'अयिक्यो हतवर्चा भवति'

अर्थात् 'यज्ञहीनका तेज नष्ट हो जाता है।' इस समय भारतके कोने-कोनेमें यज्ञ-कार्य चल रहा है। यह एक अच्छी बात है। किंतु देशकी अधिकांश जनता यह नहीं जानती कि यज्ञसे क्या लाभ है तथा यह है क्या विभय। यही लक्ष्य कर इसके सम्बन्धमें विवरण प्रस्तुत करता हूँ।

साधारण अर्थमें यज्ञसे मतलब हवन-पूजनसे है, जो हो रहा है । यह सब यज्ञका एक प्रकार है; सम्पूर्ण अर्थका इस एक ही कार्यमें अन्तर्भाव नहीं हो जाता । किसी प्रकारका भी मानसिक या भौतिक कार्य, जिससे आधिदैविक सम्बन्ध स्थापित होता हो, यज्ञ है ।

मानसिक यज्ञ

मनके सुन्दर भावोंका कथन वाणीका यज्ञ कहा जा सकता है। यह कीर्तनसे भी सम्भव है; क्योंकि उससे भगवदीय गुणोंका विकास होकर जीवन यज्ञमय हो जायगा। वाणी स्वर-प्रधान है—स्वरकी सहायतासे बोला जाता है। यह स्वर ही जगत्का कारण है; क्योंकि— स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गान्धर्वमुत्तमम्। स्वरे च सर्वत्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम्। (शि॰ स्व॰ ॥

अर्थात् वेद, शास्त्र, गानविद्या और तीनों लोक-सब खरमें स्थित हैं और खर ही आत्माका रूप है।

विचार किया जाय तो स्वर ज्ञान तथा वार्ण माध्यम है और ज्ञान भी यज्ञमय है। गीतामें भा श्रीकृष्णने कहा है—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्य संवादमावयो। ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मिति। (१८।७)

अतः विशुद्ध ज्ञानकी संज्ञा 'यज्ञ'के अंदर है प्राणायाम (प्राणस्य आयामः) का महत्त्व आर्थि कहा गया है । इसके तीन स्तर हैं —पूरक, कुम्भकं रेचक । इससे उच्चारण स्पष्ट हो जाता है । विश्व तन्त्र-शास्त्रमें इस प्रकार कहा है —

र्प मुख

B 7

चंगुळ

376

रत इ

भा है

मम।

कम्।

ोक-

है।

वार्ण

भा

वयोः

मति।

1 100

ंदर है

गिर्दे

मार्क !

爾

पूरकः कुरुते वृद्धि धातुसाम्यं तथैव व । कुम्भकः स्तम्भनं कुर्याज्जीवरक्षाविवर्द्धनम् ॥३७७॥ पाटमे शरीर-बृद्धि एवं धातुसाम्य होता है, कुम्भकसे

'पूरकसे शरीर-वृद्धि एवं धातुसाम्य होता है, कुम्भकसे हनका स्तम्भन होता है और [रेचकसे] जीवरक्षा होती है।' यह इसिलिये कहा गया कि कीर्तन एक तरहसे वाग्यज्ञका रूप है । इससे भी समाजकी भलाई होगी । अब भौतिक यज्ञपर विचार करता हूँ—

स्वप्रथम इस सृष्टिकी उत्पत्ति ही यज्ञसे है । ब्रह्माने जीवोंको यज्ञके साथ उत्पन्न किया है । किंवहुना, सारी सृष्टिकी स्थिति यज्ञमय है । उपनिषद्की श्रुतिने कहा है—
असद्धा इदमञ्ज आसीत् ततो वै सद्जायत ।

अब यह देखें—कैसे शरीर तथा सृष्टिका सम्बन्ध

यज्ञसे है—

मानवशरीरका विकास भोजनसे होता है । इसके लिये पेटमें नित्य यज्ञ-क्रिया छगी हुई है । इसकी पूर्तिके हेत हाथ, मुँह, दाँत आदि अपना-अपना कार्य करते चले जाते हैं । अर्थात् यज्ञकी पूर्ति कर्ममें है, तभी तो श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

हमारे शरीरकी भाँति प्रकृतिका नियम भी यज्ञकी और संकेत करता है।

कहा है, सूर्य पृथ्वीका प्राण है । क्यों ? इसीलिये कि सूर्यकी गरमीसे हमारे प्राण बचे हैं । गरमीसे ही पानी बादल होकर पुन: बरसता है । इससे अन्न पैदा होता है और हमलोग इसी भोजनसे जीवित हैं । इसी तरह पृथ्वीमें आकर्षण-शक्ति कम होती तो यह वायु रान्यमें विस्तृत हो गयी होती; फिर तो जीवनकी इस रूपमें कल्पना ही असम्भव रही होती । आशय यह कि यब-क्रियाकी गत्यवस्थामें ही जीवन बचा हुआ है ।

भौतिक यज्ञ

सम्पूर्ण समाजके कल्याणकी दृष्टिसे भौतिक यज्ञ महत्त्वपूर्ण है। इसके अंदर तीन कर्मोंका समावेश है—

देवपूजा, सभा, ब्राह्म दान।

देवपूजासंगतिकरणदानेषु (निस्क)

अर्थात् भौतिक पदार्थीसे किये हुए कार्योंको यज्ञरूप बनानेके लिये आवश्यक हैं—देवपूजा, संगतिकरण और दान । इसे वेदमें यजन कहा है । अर्थात्

ज्यम्बकं यजामहे।

दैविक यज्ञके अन्तमें हिव देनेका विधान है और इस सम्बन्धमें यजुर्वेदमें यह प्रश्न बार-बार आया है—

कर्मे देवाय हविषा विधेम।

इसका समाधान कर्म-फलके अनुरूप रखते हुए कहा गया है कि संभी देवोंके प्रति अर्पित होम ब्रह्मरूप है। अर्थात् विभिन्न फलोंकी पूर्तिके लिये परमात्माके विभिन्न रूप ध्येय हैं।

इस समय समाजमें 'देवयज्ञ' हो रहा है। इस कार्य-रूप यज्ञका फल आधिदैविक होगा, जिसका वाहन है हवन। इसीसे तादात्म्य रूपमें पूजन-कार्य यज्ञ हो जाता है। इसी कारण अष्टप्रहीका भयंकर दुष्परिणाम भगवत्-कृपावश बहुत कम हो गया।

हरे दयालो भव मे रारण्य धर्मस्य वृद्धि जगतः कुरुष्व। खलस्य नारां सुविपर्ययं च सत्तां प्रवृद्धि सद्गुष्रहस्त्वम्॥

उत्तराखण्डकी यात्रा

केखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रक्कुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

गताष्ट्रसे आगे

मृतिके इतिहासके सम्बन्धमें हमें बताया गया कि यह वही प्राचीन मूर्ति है जिसे पौराणिक कालमें नारद पूजते थे। बौद्धकालमें इस मूर्तिको वौद्धोंने नारदकुण्डमें डाल दिया। सातवीं या आठवीं राताब्दोमें आदिगुरु रांकराचार्थ जव यहाँ आये, तब इस मूर्तिको नारद्कुण्डसे निकालकर तप्तकुण्डके पास गरुड़कोटी नामक गुफामें स्थापित किया । बादमें गढ़वालके किसी राजाने वर्तमान मन्दिर बनवाकर इसकी यहाँ प्रतिष्ठा करायी । मन्दिर १८ वीं सदीके उत्तरार्द्धका निर्मित बताते हैं। कुछके मतानुसार यह विक्रमीय पंद्रहवीं राताब्दीमें निर्मित हुआ है।

बदरीविशालकी यह मूर्ति सिंहासनके मध्यमें स्थित है। मर्तिकी बायीं ओर नर और नारायणकी दो स्याम पाषाणकी मूर्तियाँ हैं। दाहिनी ओर कुवेरकी धातु-प्रतिमा है। बदरीनाथ-की मूर्तिके सम्मुख बायीं ओर विष्णुकी धातुकी उत्सव-मूर्ति है, जो दीपावलीको मन्दिरके पट बंद होनेपर जोशीमठ लायी जाती है। कहते हैं - विष्णुकी यह मूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको दी थी । इस मूर्तिके समीप नारदकी मूर्ति है । इसकी दाहिनी ओर गरुइकी प्रतिमा है । परिक्रमामें लक्ष्मीजीका मन्दिर अलग है, जहाँ लक्ष्मीजीकी भी श्याम-पाषाणकी मर्ति है। गणेराजी, हनुमान्जी एवं घण्टाकर्णकी भी मूर्तियाँ हैं।

तीसरे दिन अर्थात् ४ जुलाईके प्रातःकालसे रात्रि-पर्यन्तका हमारा सारा कार्यक्रम श्रीवदरीनाथके पूजनका था। बड़े तड़के ही नित्यकर्मींसे निवटकर तप्तकुण्डमें स्नानकर इस ठीक सात बजे मन्दिरमें पहुँच गये और अपूर्व आशा तथा उमइते उत्साहसे भगवान् वदरीविशालकी सेवा, उपासना और आराधनामें संलग्न हो गये।

श्रीवदरीनाथकी पूजाकी एक विशेष विधि है। यह पूजा शास्त्रमें वर्णित प्रचलित मन्त्रोपचार अथवा षोडशोपचार पूजा-से सर्वथा भिन्न है तथा शास्त्रोंके विरुद्ध न होते हुए भी बदरीनाथकी अपनी निजकी प्रणालीके अनुसार सम्पन्न होती है। इसका शनै:-शनै: विकास हुआ जान पड़ता है और अब इसकी एक निश्चित विधि बन गयी है। प्रातःकाल सात बजेसे इस पुजाका आरम्भ होता है जो लगभग एक बजे दिन तक

चलती है। फिर संध्याको चार बजे यह प्रारम्भ होती है की रात्रिको नौ बजे तक चलती है। पूजामें अनेक भोग लाते। और अनेक आरतियाँ होती हैं।

सात बजे प्रातःकाल पट खुलते हैं। इस समयके दर्शक 'सौड़ि दर्शन' कहा जाता है, जिसमें भगवान रात्रिके श्यक पश्चात जगाये जाते हैं। सौड़ि-दर्शनके बाद 'निर्वाण दर्शन खुलता है। निर्वाण दर्शनका अर्थ (निरावरण) वस्नरि दर्शन है। इस दर्शनमें अभिषेक होता है। इस प्रकार अभिषेक शायद अन्य किसी देवालयमें नहीं होता। अभिषेकमें भगवान्का पहले जलसे स्नान होता है। इसे पश्चात पञ्चामृतसे और फिर केशरसे । केशर-सानके व फुलेल अर्पित होकर पुनः जलसे स्नान कराया जाता है। ह स्नानके पश्चात् इत्र समर्पित होता है और उसके बाद सं श्रीअङ्गमें केशर लगायी जाती है। फिर वस्त्रधारण कराये जी हैं । तदुपरान्त आभूषण पहनाये जाते हैं। आभूषणोंमें खाँ हार और सिरपर रत्न-जटित मुकुट रहता है । मुकुट गृ सुन्दर और कलापूर्ण है, जिसकी कीमत लगभग एक लाल भी अधिक है । मुकुट-निर्माणका कार्य मद्रासके प्रसि सूरजमल फर्मके मार्फत सन् १९५२ में प्रारम्भ हुआ तैयार होकर १६ जुलाई १९५५ को बदरीनाथ पहुँची सूरजमल फर्म उत्तराखण्डमें अपनी दानशीलताके लिये प्री है। इस मुकुटके निर्माण-व्ययमें लगभग १५ हजार हर् इस फर्मने अपनी ओरसे भेंट किये । मुकुटमें जड़े बहुई हीरे-जवाहिरात तथा सोनेकी प्राप्ति भी विशिष्ट व्यक्तियोद्या दिये ग्ये दानसे हुई है। मुकुटके ऊपर मूर्तिपर खर्णका है रहता है। आभूषणींके इस शृङ्गारके बाद पुष्पों तथा इस हेर्न उत्पन्न होनेवाली एक विशेष प्रकारकी तुलसीकी, जिसे धाङ्गा-तुलसी' कहा जाता है, मालाएँ अर्पित की क्र हैं। पुष्प और तुलसी-मालाका शृङ्गारमें बाहुत्य रहती इमारा मत है, इस तपोभूमिमें जब बदरीविशालकी प्रति भी तपमें तल्लीन है, तब रत्नजटित आभूषणों आदिसे भू न होक्रद केवल पुष्प-मालाओं और इन तुलसीकी माला CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

होनेपर भात,

संख्या

भावना

तथा अ त्रिपुण्ड्र

इन्हीं र

से मुस

व्यक्ति

वह इन

मुक्त है

इसीलिं

तिलाञ्ज

तभी उ

अमोल

का दूर

हृदय भ

भगवान

दर्शनोंग

कदाचि

गुक्र

और ह

पाठोंमें

अभिषे

आरति

कपूरकी

लगता

सात प

और

होकर

फिर त

1 बुले : अन्तरे हो अन

दर्शन मर्चः

र्शनश

दर्शन

स्रकी

1 | 3

। इसरे

के बा

है।इन

ाद सो

ये जो

खणी

ट वहा

लाव

प्रसि

आ ई

हुँचा

ने प्रसिब

र हा

बहुमूल

त्यंद्रा

का हैं

स क्षेत्र

तसे प

हता है

प्रतिन

मूड

HICOGAR

ATT

भावना मूर्तिको अस्यधिक आकर्षक बनानेके लिये ही है तथा अपनी इसी घारणाके कारण ही उन्होंने दिगम्बर भस्म-विपुण्ड और वाघम्वरधारी भगवान् शंकर तकको केदारनाथर्से ह्नी रतजटित आभूषणीं, स्वर्णहारीं एवं रेशमी वस्त्र-परिधानीं-वे सुसजित और अलंकृत कर दिया है। इमारे मतसे कोई भी व्यक्ति भगवत्साक्षात्कार तबतक नहीं कर सकता, जबतक वह इन भौतिक व्याधियोंसे—रत्नजटिल स्वर्ण आभूषणोंसे— मुक्त होकर ऊपर नहीं उठता । हमारे संतों और भक्तोंने इसीलिये भोग-विलासके साधन इस भौतिक सम्पत्तिको तिलाञ्जलि दे अपरिग्रह अपनाया और जव वे अपरिग्रही बने तभी उन्हें भगवान्के असली रूपकी पहचान हुई तथा उस अमोल मुखकी उपलब्धि भी हुई, जिसके लिये हम यहाँ आये हैं। सदाचार, संयम और निःस्पृहता ही 'सत्यं शिवं सुन्दरभ्' का दूसरा रूप है। जो इसे जीवनमें धारण करता है वह भक्त-हृद्य भगवन्मय हो जाता है। ऐसी दृष्टि रखनेवाला भक्त भगवानके इस भौतिक शृङ्गारका रसिक नहीं होगा।

श्रीवदरीनाथकी मूर्तिका यह अभिषेक और शृङ्गार खुले दर्शनोंमें दर्शनार्थियोंके दर्शन करते-करते होता है, जैसा कराचित् अन्यत्र कहीं नहीं है। अभिषेकके समय तीन विप्रोंद्वारा ग्रिक्र यजुर्वेदके एक अध्यायका स्वरसहित पाठ होता है और वेद-पाठके अनन्तर विष्णुसहस्रनामका पाठ । इन पाठोंमें ब्राह्मणोंका उच्चारण अत्यन्त ग्रुद्ध रहता है। अभिषेक और शृङ्गारके पश्चात् स्वर्ण और रजतकी दो आरितयाँ होती हैं और इन दो आरितयों के कपूरकी आरती । फिर पट बंद होता है और मधुपर्कका भोग लाता है। मधुपर्कके भोगमें पञ्चमेवा, नारियल और शक्कर मात पदार्थ रहते हैं। इस भोगके बाद फिर पट खुलते हैं और एक आरती होती है। आरतीके उपरान्त पट बंद होकर खीरका बाल-भोग लगता है। वालभोगके बाद फिर पट खुलते हैं और फिर आरती होकर पट होनेपर बद्रीश राजभोग आरोगते हैं । इस भोगमें केशरी भात, सादा भात और दाल—ये तीन प्रकारके पदार्थ रहते हैं। राजभोगके उपरान्त फिर पट खुलते हैं और तवतक खुळे रहते हैं जवतक समस्त यात्री दर्शन नहीं पा जाते। अन्तमें लगभग एक बजे राजभोगकी आरती होकर पट बंद हो अनोसर हो जाता है। सायंकाल ४ बजे दर्शन खुलते हैं। रर्शन खुळते ही आरती होती है और फिर 'अर्चना'। इस अर्चनामें भगवान्के चरणारिवन्दोंमें दुलसी समर्पित की जाती

है। यह दुलसीदल-समर्पण यात्रियोंकी ओरसे होता है जो मन्दिरके रावल करते हैं। तुलसीदल-समर्पणमें तीन मन्त्रोंका प्रयोग होता है—'अष्टोत्तरी, सहस्रनाम-पाठ और विष्णु-सहस्रनाम । उपर्युक्त तीन प्रकारके मन्त्रोंमें कौन यात्री कौन मन्त्रसे तुलसीदल समर्पित करना चाहता है-यह यात्रीपर निर्भर रहता है। तुलसीदल-समर्पण हजारोंकी संख्यामें होता है। लगभग आठ बजे इस अर्चनाके पश्चात् आरती होती है और पट बंद होकर सायंकालका भोग आता है। सायंकाल केवल एक भोग आता है, जिसमें भातका ही प्राधान्य रहता है। भोगके बाद पट खुलकर फिर आरती होती है और खुले दर्शनोंमें ही शृङ्कार उतारकर रजाईसे मर्तियांके मुखारविन्द खुले रखकर शेष श्रीअङ्ग ढाँक दिये जाते हैं। इसके पश्चात् स्वस्तिवाचन होकर पुष्पाञ्जलि अर्पित होती है और फिर पट बंद हो जाते हैं। प्रातःकालसे लेकर रात्रितकके पूजनोंमें जो वेद-पाठ, स्तोत्र-पाठ, अर्चना, खस्तिवाचन,पृष्पाञ्जलि आदिमें मन्त्रोचार होता है, वह अत्यन्त गुद्ध रहता है तथा श्रुतिमधुर स्वरसिंहत उच कण्ठसे होता है। यात्रियोंकी ओरसे प्रातःकालकी पूजामें अभिषेक, वालभोग, अटका और राजभोग हो सकता है तथा सायंकालकी पूजामें अर्चनाके समय तुलसीदल-समर्पण। रात्रिको शयनके समय गीतगोविन्द और गोपीगीतका गान भी कराया जा सकता है। सभी यात्री अपनी रुचि और श्रद्धानकल ये सब कृत्य कराते हैं।

यह समस्त पूजा, जो पुजारी कराता है, उसे 'रावल' कहा जाता है। केदारनाथ और वदरीनाथके ये पुजारी (रावल) दक्षिणसे आते हैं। ये रावल केदारनाथमें कर्नाटकसे शैव-सम्प्रदायके तथा वदरीनाथमें केरलके नम्बूदरी ब्राह्मण-कुलसे ही आते हैं। उत्तरके इन देवाल्योंमें पूजाके लिये दक्षिणसे लोगोंको लिये जानेका जो पूजा-नियम है वह शंकराचार्यके कालमें बना और तभीसे इस नियमका विना किसी अपवादके आज-तक अनुगमन होता आ रहा है। यहाँ भी हमें जगद्गुरु शंकराचार्यकी भावनाका साचिक परिचय मिल जाता है। कदाचित् उन्होंने उत्तर और दक्षिणके सम्मिलनके लिये ही यह प्रणाली प्रचलित की थी, जिसके लाभदायक परिणाम प्रत्यक्ष हमें यहाँ देखनेको मिलते हैं। रावलका चुनाव त्रावन-कोरके राजा करते थे। अभी भी वे ही करते हैं और इस चुनावके पश्चात् रावलकी नियुक्ति टेहरीके राजाद्वारा एक आयोजन करके की जाती है। अभी भी यही परम्परा चाल् है। इस समयके रावल श्रीकेशवन नम्बुद्रीनामक

एक तरुण युवक हैं। श्रीकेशवन नम्बूदरीका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। गौरवर्ण, सिरपर छंदे केश, अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढुळे हुए से। इनका म्वरूप प्रेमवर्णीजीसे बहुत कुळ मिलता है। जिनकी चर्चा गङ्गोत्तरी अध्यायमें हमने की है। ये संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओंके विद्वान् हैं। पूजाके समय रावलजी ऊपरके अङ्गपर पिण्डलियोंतक एक लंबी बगलबंदी पहनते हैं और नीचेके अङ्गर्मे घोती । बगलबंदीपर कमरमें एक चौड़ा रेशमी कमरपट्टा रहता है। दोनों हाथोंमें सोनेके कड़े । रावलजीकी यह पोशाक नियमसे निर्धारित है । बदरीनाथजीके पूजनके अन्य नियमोंमें एक नियम यह भी है कि गृहस्थ व्यक्ति मन्दिरके रावल नहीं हो सकते। वे या तो ब्रह्मचारी हों अथवा संन्यासी। सुना कि पहले इस प्रकारका नियम नहीं था, यह नियम बादमें आया।

इम अत्यन्त सौभाग्यशाली थे कि भगवान् बदरीविशालका आद्योपान्त पूजन आज हमारी ओरसे ही रहा । ऐसा अवसर बहुत कम यात्रियोंको प्राप्त होता है। यद्यपि सारे दिन यात्रियों, दर्शनार्थियोंकी बड़ी भीड़-भाड़ रही, पर हमारे बैठनेकी व्यवस्था ऐसे स्थानपर की गयी थी कि हम निकटसे यह समस्त पूजा और भगवत्-दर्शन कर सके । प्रातःकाल हमारा अभिषेक था । फिर वालभोग, अटका और राजभोग । सायंकाल अष्टोत्तरी, सहस्रनाम-पाठ विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रद्वारा तुलसी-अर्चना अन्तमें गोपीगीतका गान । उस दिनकी समस्त आरतियाँ भी हमारी ओरसे हुई । इस सारे कार्यक्रममें प्रातःकाल सात बजेसे नौ बजेतक हम सब लोग मन्दिरमें ही उपस्थित रहे। प्रातःकालसे रात्रिपर्यन्त सस्वर वेद-ध्वनि, स्तोत्रपाठ और इस पूजासे हमें जो आनन्द मिला वह वर्णनातीत है। अनेक बार तो इस वायुमण्डलमें इस भाव विसुग्ध हो अपनेको विस्मृततक कर देते थे। यहाँ एक उल्लेखनीय घटना घटी। भगवान् बदरीनारायणको रावल तुलसीदल समर्पण कर रहे थे और इस तुलसीदल-समर्पणके साथ-साथ विष्णुसङ्खनामका पाठ भी चल रहा था। विष्णुसहस्रनामका यह पाठ रावलके अंतिरिक्त इमारे निकट ही दाहिने-वार्ये दो ऊँचे स्थानोंपर बैठे चार अन्य पण्डित अत्यन्त उच्च खरमें कर रहे थे। ये पण्डित भी मन्द्रिरके कर्मचारी थे, जो भगवत्सेवाके लिये ही नियुक्त हैं। श्रुति-मधुर कण्ठोंसे पाठ चल रहा था, धूप दीप-नैवंद्य, इत्र कुलेल, कपूर केशर और चन्दनकी सरभिसे वातावरण युरभित था, सभी लोग भगवद्गक्तिमें मस्त है। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

गोविन्ददास भी भक्तिके इस प्रवाहमें वह गये और उन कण्ठसे विष्णुसहस्रनामका पाठ करने लगे। गोविन्दराक्ष जब वे पाँच वर्षके थे विष्णुसहस्रनाम कण्ठम्थ कराया ग्या १ और जिसका वे नित्यप्रति प्रातःकाल खानके अनन्तर 🕦 किया करते हैं। गोविन्ददास बल्लभ-सम्प्रदायके अनुयायी वल्छभसम्प्रदायमें भगवत्पूजा न होकर भगवत्सेवा होती और इस सेवामें वेदस्तोत्र आदिके पाठ न होकर अष्टलाते महाकवि, जिनमें सूरदास प्रमुख हैं, के पदोंका कीर्तन हैं। है। यह सेवा भी अपने ढंगकी अलैकिक ही है। इस कछ वर्णन गोविन्ददासने अपने उस लेखमें किया है। उन्होंने कुछ वर्ष पूर्व श्रीनाथद्वारेसे लौटकर लिखा था है जो दिल्लीके मासिक पत्र 'आजकल'में प्रकाशित हुआ । हमें वल्लभसम्प्रदायकी इस भगवत्सेवाकां तो अनुभव परंत, वेदध्विन और स्तोत्र-पाठोंके बीच इस प्रकार भगवत्पूजाका नहीं । यह हमारा एक नवीन अपूर्व अकृ था। इस पूजाकी समाप्तिपर भगवान् बदरीनाथकी खी रतकुमारीने एक गीत रचकर भगवचरणोंमें अर्पित क्यि-

गीत

उत्तरखण्डः, हिमालय अश्वल बदरीवन त्रिलोक मूर्ति-पुत्र नर-नारायणके पर्वत शिखर उभय तप-धार नर तप-रतः नारायण निश्चल बैठेः हमी अखण्ड समा मन्दिर नारायण पर्वतपर, दर्शन कर मिटती भव व्यक्ति इयामकः स्निग्धः तपस्या-तत्परः अविकारी निर्गुण निष्ण भक्त भावना अभिन्यक्त तनः विविध रूप दर्शन सुख्या सुशोभित मा वंकिमा अलकावली जटाजुरसे छूटी श्रीमुखकी अरविन्द-माघुरी, मोहित मानो मधुकर ब रिव राशि ज्योति छिपाये निजमें, अर्थावृत होचनद्वयं की युगनासापुट सुनिश्चल भृकुटी रंचक सिसत अधरपुटांपर, उद्ग्रासित अविचल आन्य करुणा कोमल शान्ति-सुधा-रस झरता आनँद ते निर्दूर्व जन-मन पावे करुणा प्रमुकीः त्रिविध ताप हर हे वह मूर्वि सत्त्व क्षणोंमें तत्त्व-ज्ञान-मयः सुख कख भागे भवकी भार्ति दुर्गम दुरारोह पथपर चका जनने पाया तव पद-प्रत जय प्रमु बदरीनाथ दयामय ! मनकी पीड़ा हरो नितान

इसी दिन अर्थात् दिनाङ्क ४ जुलाईके ही तीसरे वर्ष बदरीनाथके अन्य तीर्थस्यलोंके दर्शन और आवमन हत्यादिके लिये गये । कुछ स्थानोंके तो इमने स्वय दर्शन

कुछव करंगे नारद थे।

यहाँ व 1 8 नारव अलक

नाथ-र

पर भी ब्रह्मकु शिलां और ' प्रसिद्ध

'प्रहाद नामसे सवा म

में मि है। वृ दीवार ओर ए

प्रहाद पर्वत, उत्तरा करोड

गङ्गा : नाथसे स्वर्ण f

है। य समुद्र-अधिव साँस

है। 3 देते ह खेद है

(वामें

300

दामक

ाया ए

र पर

यी है।

होती |

प्रकार

न होत

| इसक्

त हैं

था है

आ य

अनुम

ो स्तृति

मिरान

प-धाम

समाधि

ट्याधि

निष्काम

मुखधान

ा भार

र वह

य नीत

यमश्रीत

आनिय

निर्देश

ह शानि

ते आति

पद-प्राल

नितान

चमन-

दर्शन

कुछकी जो कथा मुनी, उसका भी संक्षेपसे हम यहाँ उल्लेख करंगे। इन खानोंमें अलकनन्दाके सिवा सबसे प्रधान तीर्थ नारदिशिलापर 'तप्तकुण्ड' है, जिसमें हम कल स्नान कर चुके थे। इस स्थानको यहाँ 'विह्न तीर्थ' भी कहते हैं। तसकुण्ड ल्यामग १५ हाथ लंबा और १२ हाथ चौड़ा है, यह बदरी-नाथ-मन्दिरके ठीक सामने हैं, कोई ६५ सीढियाँ उतरकर यहाँ पहुँचना होता है । कुण्ड हर समय गरम जलसे भरा रहता है। तप्तकुण्डके समीप ही पूर्वोत्तर कोनेपर अलकनन्दामें भारदकुण्ड' है, यहींपर नारदिशला है जिसके नीचे अलकनन्दाका पानी एक मंकीर्ण गुफासे गिरता है। इस स्थान-पर भी यात्री स्नान-मार्जन करते हैं। समीप ही गरम जलके ब्रह्मकुण्ड, गौरीकुण्ड एवं सूर्यकुण्ड हैं। वदरिकाश्रममें 'नारद-शिला', 'वाराहशिला', 'मार्कण्डेयशिला' 'नृसिंहशिला' और 'गरुडशिला'—ये पाँच शिलाएँ 'पञ्चशिला-तीर्थ' नामसे प्रसिद्ध हैं । इनके अतिरिक्त 'ऋषिगङ्गा', 'कर्मधारा', 'प्रहादघारा', 'तप्त-कुण्ड' और 'नारदकुण्ड' पञ्चतीर्थ' नामसे भी प्रख्यात हैं। श्रृषिगङ्गा वदरीनाथ-मन्दिरसे लगभग सवा मीलपर है और कुछ ही दूर बहकर निकट ही अलकनन्दा-में मिलती है । इसका जल स्वच्छ है, यात्री स्नानादि करते हैं। कूर्मधारा--बदरीनाथ-मन्दिरसे कुछ दूर दक्षिणकी ओर एक दीवारमें कूर्मका मुख बना है उससे निकळती है। कूर्मधाराके उत्तरकी ओर एक चब्तरेके नीचे एक नलके द्वारा जो पानी गिरता है उसे प्रह्लाद-धारा कहते हैं। यों तो समृचे उत्तराखण्डमें अनन्त पर्वत, सरिताएँ, सरोवर और तीर्थ हैं। वर्णन आया है कि उत्तरालण्डमें सवा लक्ष पर्वतः चौरासी लक्ष तीर्थ तथा एक करोड़ गङ्गा हैं। इमें बताया गया कि बदरीनाथ-क्षेत्रमें कञ्चन-गङ्गा नामक एक सरिता है, जो सुमेरु पर्वतसे निकलकर बदरी-नाथसे दो मीलपर अलकनन्दामें मिलती है। कहते हैं इसमें सर्ण मिलता है, लोग अब भी छानते हैं।

बदरीनाथ-मन्दिरसे लगभग ५ मील दूर 'वसुधारा' तीर्थ है। यहाँ लगभग ४०० फुट ऊँचा एक जलप्रवात है। यह स्थान समुद्र-सतहसे लगभग १२,००० फुटकी ऊँचाईपर है। यहाँ अधिक ऊँचाईके कारण वायु श्लीण हो जाती है और यात्रियोंकी साँस फूलने लगती है। जिससे थकावट च्यादा मालूम पड़ती दे। अतः यहाँ आनेवाले अधिकांश यात्री बड़े तड़के ही चल देते हैं और दोपहर होते-होते वापिस लौट भी आते हैं। हमें ख़द है कि हम यहाँ नहीं जा सके। इस जल-प्रपातकी बूँदें नहीं पड़तीं उड़कर यात्रियोंपर पड़ती हैं। जिनपर ये बूँदें नहीं पड़तीं

उन्हें लोग पापी मान बैठते हैं। हवा और पानीके इस प्रतापके कारण जाने कितने अपनेको पापी मान बैठे हों।

वसुधारा जानेके लिये वदरीनाथ-मन्दिरके ठीक उत्तरकी ओर दो मील चलकर अलकनन्दाका पुल पारकर अलकनन्दाके बायें तटपर वसा हुआ माणा (मणिभद्रपुर) गाँव हमें मिलता है। यह स्थान १०,५६० फुटकी ऊँचाईपर है। रास्ता अच्छा है। यहाँ व्यामगुफा और गणेशगुफा हैं। निकट ही सरस्वती नदी वहती है। सरस्वती नदी माणाके पास अलकनन्दासे मिलती है, इस संगम-स्थलको किशव प्रयाग करते हैं। माणाके लोग तिब्बत जाकर व्यापार करते हैं। यहाँ इनकी मण्डी थोलिंग तथा रासुरा है। यह इस ओर भारतका अन्तिम गाँव है। २६ मील आगे बटियाके रास्ते माणाधुरा १६,४०२ फुटकी ऊँचाईपर है। यहीं भारत-तिब्बत राज्यकी सीमा है। आगे चलकर थोलिंग मठ, कैलास तथा मानसरोवर मिलता है।

इस ओर माता-मूर्तिनामसे एक स्थान काफी प्रसिद्ध है। कहते हैं यहाँ भगवान् वदरीनाथ जीकी माताका — मूर्ति, देवीका मन्दिर है। यहाँ जन्माष्टमीसे १५ दिन बाद वामन-द्वादशीको एक बड़ा मेला लगता है और बड़ी सजध जसे उद्धवजीकी मूर्तिको एक जुल्समें निकाला जाता है। यह मेला माता मूर्तिके मेलेके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ जानेके लिये वदरीनाथ से माणाके मार्गमें डेढ़ मील जाकर एक रास्ता बायें हाथको मुझता है, वहाँसे आधा मील आगे चलकर यह मन्दिर है। अलकनन्दाके दूसरे तटपर माणा गाँव है।

सतोपन्थ नामसे यहाँ एक और अत्यन्त रमणीय प्राकृतिक स्थल इस ओर प्रसिद्ध है। यह स्थान १४,४०० फुटकी कुँचाईपर है। यहाँ बर्फानी जलका अत्यन्त स्वच्छ एक त्रिकोणाकार निर्मल सरोवर है जिसे सोन (तालाव) सरोवर कहते हैं। यह हर कोणमें लगभग २ फलांग लम्बा और १,३०० फुट चौड़ा है। यात्रा-मार्ग जूनके अन्तमें खुलता है और अगस्तके अन्तमें बंद हो जाता है। सतोपन्थ जानेके लिये बदरीनाथसे दो मील मातामूर्ति, मातामूर्तिसे सादे तीन मील चमतोली, चमताली से दो मीलपर लक्ष्मीवन, लक्ष्मीवनसे ढाई मीलपर सोधारा और सौधारासे तीन मीलपर चक्रतीर्थ आता है। यहाँसे ढाई मील आगे सतोपथ, जिसे सत्यपथ भी कहते हैं, आरम्भ होता है। सतोपथसे कुछ मील आगे सोनकुण्ड तथा सवा दो मीलपर विष्णुकुण्ड है। बदरीनाथपुरीसे सतोपन्थ जानेमें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मार्गमें लक्ष्मीवनके समीप ही अलकापुरी है। यहाँ सतीपंथ एवं भागीरथी खड़क ग्लेशियर मिलते हैं। अलकनन्दाका उद्गमस्थान भी यहीं है। सतोपंथ सरोवरके पश्चिममें चौलंभा नामका हिमालय है। उससे पश्चिममें वीस मील लम्बी गंगोत्तरी हिमानी है। यह गंगोत्तरी हिमानी गंगोत्तरीसे अठारह मील आगे गोमुखनामक स्थानपर समाप्त होती है। यही भागीरथीका उद्गमस्थान है। पुराणोंमें भगवान् विष्णु पद प्रसूत जिस विष्णुपदी गङ्गाका वर्णन आया है और हमने भी अपने गंगोत्तरी-अध्यायमें भागवतमें आयी गङ्गावतरणकी कथाका जो संक्षेप उल्लेख किया है, उसके अनुसार अलकनन्दा ही आदि-गङ्गा हैं। अलकनन्दा आदि गङ्गा है या भागीरथी-इस बातपर विचार करनेके अनन्तर हमारा जो द्रष्टिकोण बनता है, वह इस प्रकार है—हमने यमुनोत्तरीकी यमुनाको, गंगोत्तरीकी गङ्गाको, केदारनाथसे निकली मंदाकिनी और अलकापुरीसे निकली अलकनन्दाको भरपूर देखा था। मार्गमें इन सरिताओंमें मिलनेवाले अगणित झरने, जल-प्रपात और नदी-नाले सभी हमारी दृष्टिमें आये थे। संग्रमोंपर मिलनेवाली नदियोंके पानीके प्रवाह, उसके वेग और परिमाणपर भी हमारा ध्यान रहा। और अपने इस अवलोकनके आधारपर तथा अलकनन्दाके विष्णुपदी गङ्गा होनेके पौराणिक कथनपर जव हम विचारकर अपना मत कायम करते हैं तो यही निष्कर्ष निकलता है कि गंगोत्तरीसे निकली भागीरथी गङ्गा और अलकापुरीसे निकली अलकनन्दा गङ्गा दो रूपोंमें दो शाखाओं और दो धाराओंमें विभक्त होकर जन-कल्याणके लिये साथ-साथ चलती हैं, मार्गमें सेवावृत्तिमें समवेत हुए अगणित झरनों, जलप्रपातों और छोटी-बड़ी सरिताओं की सेवा स्वीकार करती ये दोनों बहनें पावन देवप्रयागमें अपनी भावमस्तीमें एक दूसरेमें स्वतः समा जाती हैं। यहाँ इनके इस सहमिलनमें हमें यह नहीं दिखायी देता कि अब आगे बहनेवाला प्रवाह अलकनन्दाका है अथवा गंगोत्तरीकी गङ्गाका। दैतसे अदैत हुई इन दो सरिताओं के इस अपूर्व और उत्कट चाहभरे मिलापमें तथा आगे चलनेवाले वेग-बहावमें हमें ऐसे कोई चिह्न नहीं मिलते जिनसे हम इनके पृथक्लको देख सकें। यहाँ इनके उद्गमके बादका शैशव, अपनी मंजिलका यौवन इस संयोगके साथ ही समाप्त हो जाता है और ऊपर छा जाती है वह विचार-प्रोटता, जो समान भाव, सद्-इच्छा और समान गतिसे युक्त प्रवाहमें बहुकर गंगासागरतक हमें देखनेकी

मिलती है। हाँ, हमें यहाँ केवल एक बात अवस्य देखा मिलती है, वह है भागीरथी गङ्गाका नेतृत्व। गंगीक निकली भागीरथीको हम जिस रूपमें देखते आ रहे। उसका रूप-रंग आदिसे अन्ततक हमें एक-सा देखनेको मिल रहा। अगणित झरने, जल-प्रपात और सरिताएँ हा मिलीं, पर भागीरथी सदा अविचल भाव और अप्रमान रूपमें ही हमें दिखायी दीं। वह विशाल हृदय लिये क अच्छे-बुरे नदी-नालों और साफस्वच्छ उदरस्य करती अपने पूर्व भावमें बहती जाती हैं और उने इस रूपके कारण इन अगणित झरनों, जलप्रपातों के छोटे-बड़े, नदी-नालोंका यह मिलन हमें ऐसा क्रि देता, जैसे लहराते सागरसे उमगती सरिताएँ मिल खी मिलनकी चाहभरे ये निर्झर झरने पाषाणोंमें बहते। ये जल-प्रपात कितनी ऊँचाईसे गिरते हैं और सीर कितनी दूरसे चलती हैं। पर कितने अपनी इस चाहरो कर पाते ! बहुतसे अपनी मंजिलके पूर्व मार्गमें ही सुव ह हैं। एक साध लिये समाप्त हो जाते हैं सदाके लिये। अ इष्ट-मिलनकी लक्ष्यप्राप्तिकी चाह इन निर्झरों, प्रपातों है सरिताओंकी भाँति ही हम मानवोंमें भी होती है। ए हमारी इस चाहके साधन और इनकी इस चाहके क सर्वथा भिन्न होते हैं। कहना चाहिये, हमारे खिनी इनके प्राकृतिक निसर्गने मानवको जो बुद्धि दी है क दम्भमें, बुद्धिकी विमूढतामें, अनेक बार वह प्राकृतिक प्रशृह तकको चुनौती दे देता है और हमने देखा है जर्न मानवने ऐसा किया है, उसे विनाशकारी परिणाम भोगते हैं। इतना ही नहीं, आज भी हम देखते हैं, हैं प्रबुद्ध व्यक्ति बुद्धिकी इस विषमतासे घिरे रहते हैं। दैनिक जीवनके हर क्षेत्रमें हमें बुद्धिकी इस विषम् थी। ह भरमार दिखायी देती है। गंगोत्तरीमें हमने श्रीप्रेमवर्णी नये प्रा जब ज्ञानचर्चा की तो उन्होंने बताया, प्रमु-प्राप्तिके की अनन्त हैं। उनके मतके हम कायल हैं और हम निरूपणमें हमारी कुछ मान्यताएँ और हैं। एक प्रार्थ तो उस भगवत्साक्षात्कारसे होती है जो पौराणिक क्या अनुसार अनेक महापुरुषों, तपस्वियों, ज्ञानियों, संते भक्तोंको हुई और उन्होंने वरदानरूपसे अपने अभी प्राप्त किया । प्रभुप्राप्तिके ये प्रयत्न उस कालमें दो उहेर प्रेरित होते थे-प्रथम मोक्षप्राप्ति, दूसरा जनकर्व भावना । उस कालमें प्रथम उद्देश्यकी प्रधानती भी

संख्य

तपस्व

उस व आज कालग हो ग

हुआ होकर मुख सुख

व्यक्तिः उस व विराग रूपोंमें

कोई कोई रूपसे :

खने

गोर्चाः

रहे

मिल

EH.

प्रभक्ति

ये स

रेताओं

र उने

ातों के

रही हैं

बहते ।

सरित

गहको !

मुख इ वे। आ

गतों के

है। पर

इके सार स्विनिह

है उ

प्रभुक्त

है जहां

भोगने

, बहें

青日

ाप्तेके ध

र इस

नकत्याः

ा थी।

STATE OF THE STATE तपस्वी, ज्ञानी, संत और भक्तोंके जीवनका प्रधान लक्ष्य उस कालमें जीवन्मुक्त होना, मोक्ष प्राप्त करना ही होता था। आज भी तपस्या आदि प्रभुपाप्तिके प्रयत्न होते हैं, किंत कालगतिके अनुसार न केवल इन प्रयत्नोंकी दिशा परिवर्तित हो गयी है अपित भगवत्साक्षात्कारके रूपमें भी परिवर्त्तन हुआ है। आजके इस विकसित युगमें व्यक्तिका सुख गौण होकर समाजका, देशका और देशके भी आगे विश्वका सल सर्वोपरि हो गया है। स्वभावतः इसीमें व्यक्तिका मुल भी समाया हुआ है। इस सुखकी प्राप्तिके लिये आज व्यक्तिगत और सामृहिक प्रयत्न हो रहे हैं। ईश्वरकी भक्तिका उस कालमें जो मार्ग तपस्या, आराधना, पूजा, योग, दिलां विराग और संन्यासके माध्यमपर चलता था, आज वह विभिन्न ल्पोंमें हमें दिखायी देता है । कोई ज्ञान-विज्ञानसे, कोई कलासे, कोई साहित्यसे, कोई समाजसेवी सुधारक, कोई धर्मोपदेशी धार्मिक और कोई जनसेवी जननायकके ल्पसे प्रसुपूजामें तल्लीन है। इसमें उसे स्वयंकी मुक्तिकी

चाह तो है ही; साथ ही जन-कल्याणकी भावनाकी प्रधानता है। उस कालमें भी और आज भी हमारे मनमें तपस्यास्त तपस्वीकोः साधना-रत संन्यासीको और भक्तिरसळीन भक्त-जव भगवत्-साक्षात्कार होता है तो उसकी मुक्ति (मोक्ष) तो सहज ही उसे मिलती है, उसके इस प्रयत्नसे जनसाधारण भी प्रत्यक्ष या परोक्षमें अवस्य प्रभावित और लाभान्वित होता है। जिस अनन्त लीलापुरुषोत्तम परमात्मा, जिस अनन्त रूपधारी अखिलेश्वरके रूपकी कल्पना हमारे ज्ञानियों, ध्यानियों, संतों और भक्तोंने की है, उसके अनुसार वह सर्वज्ञ है, सर्वत्र है, सर्वान्तर्यामी है। वह सर्वविभृति-सम्पन्न सर्वमङ्गलकारी है, सृष्टिके अणु-अणुमें व्यात है। सगुण भी है, निर्गुण भी। ऐसे प्रसुकी खोज, ऐसे परमात्मा-की खोजके लिये इस भौतिकवादी युगमें महापुरुषोंने युगानुरूप कुछ विशिष्ट मार्ग अपनाये, जिनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। (क्रमशः)

में तुम्हारा पारखी भी हूँ

मैं तुम्हारी मधुर मुस्कानका प्रेमी ही नहीं, तुम्हारे कोमल और स-ओज खरोंका पारखी भी हूँ, प्रिय ! तुम्हारी आँखों और होठोंकी मुस्कानको मैं अभीतक बहुत दूरसे बहुत थोड़ी ही पी पाया था। तुम्हारे कोमल और स-ओज, दोनों खरोंको मैंने अभीतक बहुत कम धुना-परखा था।

पर पिछले दिनों तुम्हारे पुजारियोंकी उस बड़ी महफिलमें तुम्हारे उन कोमल और स-ओज खरोंको मैंने कुछ ओर खुले रूपमें सुना-परखा है।

तुम्हारी आँखों और होठोंकी उस मुस्कानको उस महफिलकी राहमें मैंने एक-आध बार और कुछ निकटसे पाया-पिया है।

तुम्हारे कोमल और स-ओज खरोंने उस महफिलमें मधुर और शासनशील खर-लहरियोंकी रचना कर दी थी। तुम्हारी मुस्कानकी चेष्टाओंने वहाँ अपनी मोहनी डाल दी थी और कितने ही तुम्हारे पुराने पुजारी और ामवर्णी नये प्रेमी उनके बंदी वन गये थे।

लेकिन तुम्हारे कोमल और स-ओज खरोंसे मेरा परख-पात्र अभीतक कठिनतासे अध-भरा हो पाया है और मेरी आँखें तुम्हारी उस मुस्कानसे अध-पियीसे भी कम तृप्त हो पायी हैं।

मैं तुम्हारी मुस्कानका प्रेमी और तुम्हारे कोमल और स-ओज खरोंका पारखी हूँ; क्योंकि मैं तुम्हारा अनन्य प्रतीक्षाशील पुजारी हूँ । संतों हैं अभी उद्देश

और यह भी मैं जानता हूँ कि तुम्हारी उस मुस्कानका प्रेम और उन खरोंकी परख एकमात्र तुम्हारी ही देन हैं।

- एक तरुण साधककी डायरीसे

ता • १७-१२-३९

परम आत्मसाधना

[Sublime Self-Expression]

(हेखक—श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

खोज

आत्मा-परमात्माकी खोज सभ्यताके आरम्भसे मानव करता आया है। दुनियाके सब धर्मग्रन्थ और अधिकतर साहित्य इसी चर्चा, दृष्टान्तों और साधनोंसे भरे पड़े हैं। कोई कहते हैं—मरनेके बाद सत्कर्मी, सत्संकल्पी धर्मात्मा लोग स्वर्गमें जाते हैं, वहाँ उनको परमात्मा मिलता है, कुविचारी-कुकर्मी नरकमें यातनाएँ भोगते हैं। कोई इसी जीवनमें आत्म-परमात्म-योग तथा साक्षात्कारकी अनेक सहज या कठिन साधना करते हैं, कठोर कष्टदायक तपस्या करते हैं। कोई मुक्ति अथवा ब्रह्मज्ञानकी वेदान्त-भावना करते हैं। कोई जप-अनुष्ठान, तीर्थयात्रा करते हैं। कोई जप-अनुष्ठान, तीर्थयात्रा करते हैं। कोई कप-अनुष्ठान, तीर्थयात्रा करते हैं। क्रिंक क्रिंक हो है—

सर्वं खिल्वदं ब्रह्म । सोऽहम् । अयमात्मा ब्रह्म । तस्वमसि ।

अर्थात् सारा विश्व सचसुच ब्रह्मरूप है। मैं ही वह हूँ। अपना आप ही ब्रह्म है। तू ही वह है।

उपनिषद् कहते हैं—'तद्दूरे च तदन्तिके।' वह दूर है और पास्नुभी है। 'अणोरणीयान् महतोमहीयान्।' वह सूक्ष्ममें अति सूक्ष्म है, महान्में अति महान् है। गीताकार कहते हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति।

—सबके अन्तासालमें ईश्वर विराजता है। 'दूरस्थं चान्तिके चतत्।' वह दूर भी है, समीप भी है। उसके साक्षात्कार-के लिये साधना क्या है !

साक्षात्कार-ऑखके सामने स्थूल दर्शन नहीं, वरं उसकी सत्ताको अपने जीवन-व्यवहारमें सिद्ध करना।

तमात्मस्थं येऽनुपञ्चन्ति धीरा-स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥ (वेद)

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिद्पि चिन्तयेत्। (गीता)

एकसे एक बढ़कर सरल व्याख्याएँ और साधन निर्दिष्ट हैं।

ग्रन्थों में ईश्वर नहीं, ईश्वरका वर्णन और साधन के गर्चे हैं। अनुभव तो आत्मस्य होकर व्यवहारमें होगा। एकने कहा है—

भ्रह्म या ईश्वरको किसीने चर्मचक्षुओंसे देखा हैं क्योंकि वह इन्द्रियगम्य नहीं; इन्द्रियातीत है, आतमार्थ केवल जो लोग बताते हैं, वे कानसे सुन लेते हैं। खं जानते हैं और प्रत्यक्ष सिद्ध है कि माता-पिताका क ईश्वरके बरावर है, क्योंकि इन साक्षात् पालक-पोष्कके हम किसीको नहीं जानते।

फिर भी इनकी उपेक्षा कर, नियम-व्रत, जपता। योग साधन, तर्क-वितर्क, वाद-विवाद, सत्संग-शास्त्रार्थाः यात्रा, मन्दिर-मूर्ति-दर्शन-पूजन सबका क्या प्रयोजन ! अपनी-अपनी भावना है, धारणा है ।

परमात्माका मनोविज्ञान

कहा जाता है, कहीं भी जाओ, ईश्वर तुम्हारे ता तुम कुछ भी करो, वह देखता है तथा तुम्हारे इरादे, हैं और कर्मानुसार फैसला एवं फल देता है। जहाँ एकान्त हैं हो, तुम्हारे सिवा अन्य न हो, तुम चोरी, हत्या अध्वा अनैतिक अनुचित कर्म करो, वह साक्षी है; परंतु बहु हैं सुननेमें नहीं आता, वह अहस्य है। यह कथन प्रायः हैं नहीं आता।

जहाँ कहीं भी मनुष्य जाय वहाँ उसका आत्मतल की तो उसके भीतर 'अनन्य' साक्षीरूप रहता ही है औं मनुष्य अपने संकल्प-विकल्प तथा कर्मको तो जानता मिले ही वहाँ दूसरा-तीसरा व्यक्ति छिपा या प्रत्यक्ष ते भले ही वहाँ दूसरा-तीसरा व्यक्ति छिपा या प्रत्यक्ष ते जाने। आत्मद्रष्टा होकर विवेक जागनेपर मनुष्यको अपने संकल्प और कर्मको जानकर पश्चात्ताप होता है। पश्ची परिस्थितिपर पड़ता है। आजके मानसिक रोग इसीक परिस्थितिपर पड़ता है। आजके मानसिक रोग इसीक व्यापक हो रहे हैं और कई शारीरिक रोग भी, जिन्ही हलाज नहीं मिलता। मनुष्य सदैव अपने इरादों और ollection Haridus

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जानत सकता रूपमें

संख्य

अन्य उसकी पछता मिटाने

> करके असाध्य अन्य

नहीं हैं आप है

पुलिस रिश्वत फँसाक पहुँचा

पुलिस

'तुम्हा

उतनी वह नि मानो है। १३

स्वीका दिलव यह १ जायग

आत्म उसकी

उसी दूसरों यह दू

हागा उसे

अन्य

जानता है, उसे उनका स्मरण रहता है, उन्हें सुलाया नहीं जा सकता, वे उसकी स्मृतिकोषमें, स्मृतिपटलपर, अलिखित लेख-स्वतों अङ्कित-मुद्रित रहते हैं। इसीलिये कितने ही लोग एकान्तमें अन्य साक्षी न रहते हुए कोई कर्म करके, वादमें अपने मनमें उसकी प्रतिक्रियासे चुपचाप अनमने, भ्रान्त, पागल-से वने पछताया करते हैं और उसे मुलाने, अपना कर्म—पाप घोने-मिटानेके लिये जप-तप-कीर्तन-दान-परोपकारी साधन इत्यादि करके संतोष करते हैं। किसीके दारीरमें वह दूषित भावना असाध्य रोगके रूपमें—सिर-दर्द, स्वप्न आना, दाद, छाजन या अन्य रूपमें प्रकट होती है। उस रोगके स्थूल कारणका निदान नहीं हो पाता, वह बात मनमें गहरी दव जाती है।

कभी-कभी इसकी प्रतिक्रियासे अकस्मात् अनायास अपने-आप ही दण्ड मिल जाता है। किसीने मुझे बताया था कि एक पुलिस अधिकारीने एक हत्याके मामलेमें, असली अपराधीसे रिश्वत खाकर, जान-बूझकर एक भोले निरपराधको मुकदमेमें फँसाकर, दाँव-पेंचसे झूठी गवाही दिलवाकर उसे 'फाँसी' तक पहुँचा दिया । फाँसीके दिन निरपराधने अधिकारी पुलिसकी ओर अँगुली उठाकर सबके सामने कहा कि 'ग्रम्हारे कारण मुझे व्यर्थ फाँसी हो रही है।'

उसको फाँसी लग गयी, वह मर गया, परंतु उसकी उतनी वातसे अधिकारीका आत्मतत्त्व सचेत हो उठा और उसे वह निरपराध व्यक्ति दिन-रात लगातार दृष्टिगोचर होने लगा। मानो कह रहा था, 'तुम्हारे कारण मुझे व्यर्थ फाँसी हो रही है।' वास्तवमें वह बात मुनकर उसका अन्तस्तल इस वातको स्वीकार कर रहा था कि 'उसने एक निरपराधको फाँसी दिल्वायी।' इसे दूसरोंकी दृष्टिमें और मनोविश्लेषककी दृष्टिमें यह मानसिक रोग, झूठी कल्पना (delusion) कहा जायगा, परंतु वह एक सप्ताह पागल रहकर चल वसा। यह था आत्मस्य ईश्वरका न्याय। यदि उसने वैसा न किया होता तो उसकी वातोंसे वैसा प्रभाव न होता।

जिस प्रकार परमात्मा या ईश्वरको पूछते खोजते हो, उसी प्रकार अपने 'आप' को हूँ हो। अपना नाम लेकर दूसरोंसे पूछते फिरो, आइनेमें अपनी शक्क देखकर कहो—यह दूसरे व्यक्तिका प्रतिविम्ब है, तो इसमें कितनी बुद्धिमानी उसे बाहर क्या खोजना है।

किंतु आत्मस्य ईश्वर या आत्मतत्त्वसे लाभ कैंसे उठावें १ गयी थी। ऑपरेशन टल गया
अन्य वनस्पति पशु प्राणियोंमें जो प्रमुप्त है, वह मनुष्यमें चेतन शरणागितके आत्मभावसे वह र
१ कोवकी तरहका एक रोग या अपुराह्म Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है और नित्य नियमित अभ्याससे उस आत्मतत्त्वको संकल्प-भावनासे जाग्रत् कर लाभ उठाया जा सकता है। संकल्पके अनुरूप ही मनुष्यके शब्द और कर्म होते हैं।

भावना-चमत्कार

आत्मनिष्ठ सात्त्विक भावनाके सतत अभ्याससे संकल्प सिद्ध होता है। सिद्धिका रहस्य और कुछ नहीं, केवल विचारको एकाम कर उम्र करनेमें है, जिस प्रकार 'लेन्स' से प्रकाशकी किर णें केन्द्रित होकर गरमी, आग पैदा करती हैं। लगातार सोते-जागते, सुवह उठते समय, रातको सोते समय, भोजन आरम्भ करते समय, किसीसे भेंट-मुलाकात या कोई काम आरम्भ करते समय शुभ रचनात्मक संकल्प किये जायें। अमेरिकामें इसके साधन करनेवाले बहुत लोग हैं और वे बहुत लाभ उठाते हैं। वहाँ कई संस्थाएँ हैं जिनसे साहित्य प्रचारित होता है, नियमित प्रार्थना-संकल्पके लिये मण्डली निःस्वार्थभावसे पत्र, तार, टेलीफोनद्वारा दूरसे पीड़ित दुखी लोगोंकी सूचना मिलनेपर, उनके लिये प्रार्थना-भावना करती, लहरें भेजती हैं। संकल्पका प्रभाव पहले अपने शरीरपर होता है, परीक्षा कर लीजिये। एक महिलाका अनुभव है—

'मैंने अपना मकान बदला तो मुझे तीन बडी-बडी सन्दुकें परिश्रमसे उठानी-धरनी पड़ीं । उससे दाहिनी पसलीमें पीठकी ओर दर्द हुआ । मैंने परवा न की । रातको सोकर दूसरे दिन उठी तो दर्द अधिक मालूम हुआ । फिर भी चिन्ता न की । अगली मुबह दर्द अधिक बढ़ गया, तब चिन्ता कर डॉक्टरके पास गयी । तीन महयोगी डॉक्टरोंने यान्त्रिक जॉनकर बताया कि विकार एकत्रित हो जम गया है, गाँठ आठ इंचकी गोलाईमें है। चीरफाड़ करनी पड़ेगी। अगले दिन ऑपरेशन निश्चित हुआ । मैं डरी हुई घर लैटी कि ऑपरेशन-के बाद वर लौटूँगी या मर जाऊँगी, मेरे बाल-बच्चोंका क्या होगा ? अस्तु, रातकी प्रार्थनामें अपना शरीर, बाल-क्चोंकी समस्याको आत्मस्य ईश्वरको बालकवत् श्रद्धासे 'सर्वभावेन' छोड निश्चिन्त सोयी, 'संसार मेरा नहीं है। जन्मके पहले मेरा नहीं था, मरनेके बाद भी मेरा नहीं रहेगा, फिर जीतेजी अपना कैसे कहूँ। सव परमात्माका है। ' ऐसी भावना रख सो गयी, खूव नींद आयी। मुबह अस्पताल गयी तो ऑपरेशनके पहले डॉक्टरोंने पुनः जाँच की । उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, जो गाँठ उन्होंने आठ इंच गोल फैली हुई बतायी थी, वह अब केवल चार इंच रह गयी थी । ऑपरेशन टल गया । अगले सप्ताहतक इसी सहज शरणागतिके आत्मभावसे वह गाँठ छप्त हो गयी । चाहे प्रकृति

खा ह

। सवहं जिल्ला अकके

त्मगम्

प-तपः स्त्रार्थः है जन !

रे साथ रादे, हं

ज्ञान्त हर्ने अथवां उबह^{हे} जायः हर्ने

मतत्व हैं है औ

यस न र् अपने र । पश्चर

रारोरप स्तीक प्र

और न

कहो, परमात्मा कहो या आत्मसंकल्प । डॉक्टरकी छुरी मुझ-पर न चल पायी ।

ब्रह्माण्डका अर्थशास्त्र

एक ६४ वर्षका व्यक्ति अपनी पत्नीके साथ मोटरमें कहीं जा रहा था । रास्तेमें एक्सिडेंटसे उसकी मृत्यु हो गयी। मृत रारीरकी राल्यिकियासे जाँच हुई। पत्नीने बताया कि पति पूर्ण स्वस्थ था, परंतु राल्यिकियासे उसके यकृतमें कठोरता तथा एक गुर्दा वेकार पाया गया। उसे पूर्वमें फेफड़ेका क्षय हो चुका था और हृदयकी शिराओं में कठोरता पायी गयी।

उस व्यक्तिको अपनी अन्तरंग व्याधियोंका पता न था, आत्मभावनासे वह स्वस्थ सोत्साह काम करता था। उसके चार अङ्गोंमें घातक रोग होते हुए भी आत्म-अज्ञानसे अपरिचित, स्वस्थ, बलिष्ठ भावनाके बलपर ही वह चैतन्य बलवान् था। और भी अधिक जीता किंतु आकस्मिक दुर्घटनासे मर गया।

एक व्यक्तिकी भावनाका दूसरोंपर भी प्रभाव होता है।
एक बच्चेको बातच्वर हुआ, उसके प्रभावसे उसका हृदय
पीड़ित हुआ, बादमें हालत खराव हो गयी। हृदयमें सूजन
होकर वह बड़ा हो गया। डॉक्टरोंने बीचमें परीक्षा तथा इलाज
करते हुए निराश होकर कह दिया, थोड़े दिन बचेगा। बच भी
गया तो कठोर संयमसे रहना पड़ेगा, परिश्रम न कर सकेगा।

उस बच्चेकी बड़ी चावी उसे बहुत प्रेम करती थी, भावनाराक्तिको पहचानती थी। उन्होंने प्रार्थनासहित हाथ फेरकर उसका उपचार आरम्भ किया। नौ मासमें धीरे-धीरे सधरकर बचा चंगा हो गया। डॉक्टरी जॉंचसे उसके रोगके सब लक्षण गायब पाये गये । १८ वर्षकी अवस्थामें जिन लोगोंको डॉक्टरोंने दो महीने जीना रोष बताया था, वे संयम और आत्मविचारसे आत्मशुद्ध होकर ८० वर्ष जिंदा रहे। जिन लोगोंको वर्षोंसे लकवा था, वे अकस्मात् आत्मप्रेरणासे चलने-फिरने लगे। एक व्यक्ति बरफपर खेलते फिसल पडा। कमरकी हड्डी फिसल जानेसे एक पाँव वड़ा, दूसरा छोटा, चार इंचका फर्क हो गया था। हड्डीमें सुजन हो गयी थी। दस वर्षकी आयुसे पचीस वर्षतक, पैंतीसकी आयुतक बिस्तरपर इलाज कराते अयंगवत् पड़ा रहा और डॉक्टरोंने असाध्य कहकर ·हड्डीकी सूजन फूटकर, हड्डी-रस बह निकलेगा, मर जायगा² कह दिया था, वह व्यक्ति आत्मभावनासे चौरासी वर्षमें पूर्ण स्वस्य हुआ और ९२ वर्षकी अवस्थामें उसने देखते सनते-बोलते होशमें देहत्याग किया।

विचार चामत्कारिक जादूका-सा असर करता है, मारता और जिल्लाता है, रोगी बनाता और खस्त्र करता है। किसी दुःखी भ्रान्त निराश व्यक्तिको सत्प्रेरणा देनेसे वह उसे विकं के 'खिच'के दबानेके समान उसे चैतन्य और कर्मठ क देती है। जीवनके चढ़ाव-उतारमें संकल्पका उपयोग क जीवनको बरबाद किया अथवा सुधारा जा सकता है। संक क्या है ?— ब्रह्माण्डका अर्थशास्त्र! स्वर्ग-राज्यका सोनेका सिक्क

इन शब्दोंको यथार्थमें समझना जरा कठिन है कि विचार करके उसे कार्यान्वित होते देखकर समझमें आ जाज कि इस अर्थशास्त्रसे इन सिक्कोंसे जीवनके सब व्यवहार कर हैं, लोग वैभवशाली बनते हैं, खोटे सिक्कोंसे लोग दिवार हो जाते हैं। सांसारिक अर्थशास्त्रमें सरकार सिक्का बना प्रचलित करती है, किंतु आत्मराज्यमें मनुष्य स्वयं असंकल्पोंका सिक्का बनाकर प्रचलित करते हैं। उसीके मूल अनुरूप उनके जीवनका खरा या खोटा सौदा होता है।

करोड़ों वर्ष बीत गये, करोड़ों आगे बीतेंगे। म कीटाणुवत् पैदा होते और कुछ कालमें इस अभिनयशा गायव हो जाते हैं, परंतु किसने कैसा सिक्का चलाया, उस इतिहास उनके बाद शेष रहता है। खोटे सिक्केवालोंका इस महत्त्व नहीं होता। उसे कोई स्वीकार नहीं करता, उससे हैं सौदा नहीं होता। आपका सिक्का कैसा है !

आत्मविस्फोट

कॉप उठेंगे घरती अम्बरः पिचल जायगी पर्वत-माला। खौल उठेंगे सात समुन्दरः धधक उठे जो इसकी ज्वाला॥

इन पंक्तियों में कितनी भयंकर कल्पना है। अणु क भी भयंकर ! इनमें आत्मसंकल्पकी महत्ता निहित है। अ बम पहले नहीं था, संकल्पसे ही वह उत्पन्न हुआ । कर्षे व्यक्ति पैदा हुए और मर गये, उनकी हिंडु योंका पता के परंतु उनके अलौकिक संकल्प और कार्य हिंकि इतिहासमें व्यापक हैं, उनका संकल्प आज बर्बों के की जवानपर मौजूद है । यद्यपि उनका शरीर भिर्म भस्म हो चुका है, पर संकल्परूपमें वे जीवित हैं।

मान लीजिये, युद्धकाल है, आप मोटरसे यात्रा करी हैं। रास्तेमें कई मन्दगामी भारी वाहनोंको, तीव्र गितिरें पारकर आगे बढ़ते गये, सामने एक 'ट्रक' मिलता है, की पीछे पास आनेपर ज्यों ही रास्ता आगे पानेके लिये कि 'हार्न' पर हाथ लगाते हैं, आपकी दृष्टि उस ट्रकके पीछे एक लाल-सफेंद रङ्गकी पटरीपर पड़ती है जिसमें लिखा है

पता या उ कुछ होगोंरे

विस्को

意, 叹

संख्य

विस्फो तत्काल विस्फो

> उपयोग एक र

आदेश पहिले जा चु रात्रिके

दे रह चमक नहीं

उसने देख : लगा

जाओ आदेश है । विक्र

उ है

ोग इ

संक

सिक्

1 1

जावर

र चल

दिवाहि

बनाइ

ं अं

यशाल

, उना

का कु ससे की

ाता नी

दुनियाँ ची

मार्व

可取

तिसे अ

है, उर्ह

लेये अ

वा है

्खबरदार ! खतरा है। इस ट्रकमें विस्फोटक पदार्थ भरा है। काफी दूर रहो।

बस, आपकी जल्दबाजी तुरंत ठंडो पड़ जाती है। वस, आपकी जल्दबाजी तुरंत ठंडो पड़ जाती है। वता नहीं आगे रास्ता कैसा हो, खड्डा या पहाड़ हो, चढ़ाव बा उतार हो। जरा भी धक्केसे विस्फोट हो सकता है, सब कुछ आग-धुआँ होकर राखका ढेर हो सकता है और हम-लेगोंमें कोई कहानी कहनेको भी साक्षी नहीं बच सकता। मन्द विस्कोटका प्रभाव दीर्घकालतक रहता है, जलता-सुलगता रहता है, एकदम विस्फोट होनेसे सब कुछ तुरंत नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

मस्तिष्क और हृदयमें भी भावनाओं और आवेगोंका विस्कोट हुआ करता है। अचानक क्रोधः आवेशका प्रभाव तत्काल विनाशक होता है। मनमें भय-चिन्ता-निराशाके विस्कोट मन्द-मन्द शरीरको जलाते हैं।

अपनी संकल्प-शक्तिको समझकर उसका विवेकपूर्वक उपयोग करनेवाले जीवनमें सफल होते हैं। अभ्यासके लिये एक संकल्प लें। भी सब प्राणीमात्रसे प्रेम करता हूँ, मुझे किसीसे द्वेष नहीं है। मैं सब परिस्थितियों में शान्त, अडिंग, निर्भय रहता हूँ। जहाँ मैं हूँ, वहाँ परमात्मा है, जहाँ परमात्मा है, वहाँ मैं हूँ। मेरा जीवन ग्रुभ संकल्पमय है। मेरा भोजन-पानी दिव्य रसायन है और मेरा शरीर स्वस्थ रहता है। मेरा जीवन सत्कर्म, सत्संकल्प करनेके लिये बहुमूल्य अवसर है। मैं जीऊँगा, संसारसे प्रेम करूँगा और कर्म करूँगा। जीवन जीने और सत्कर्म करनेके लिये है।

अंग्रेजीमें यों बोलिये:—'I place myself and all my affairs lovingly in the hands of my indwelling spirit with a childlike trust, knowing that which is my own and far my highest good, shall come to me. Indwelling Spirit inspires me, guides and provides me with all I need at the right time and places."

'सुहृदं सर्वभूतानाम'

[कहानी]

(लेखक-श्री 'चक्र')

'सात्रधान !' हवाई जहाजके लाउडस्पीकरसे आदेशका खर आया । यह अन्तिम सूचना थी । वह पहिलेसे ही द्वारके सम्मुख खड़ा था और द्वार खोला जा चुका था । उसकी पीठपर हवाई छतरी बँधी थी । रात्रिके प्रगाढ़ अन्धकारमें नीचे कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था । केवल आकाशमें दो-चार तारे कभी-कभी चमक जाते थे । मेघ हल्के थे । वर्षाकी कोई सम्भावना नहीं थी । बादलोंके होनेसे जो अन्धकार बढ़ा था, उसने आश्वासन ही दिया कि शत्रु छतरीसे कूदनेवालेको देख नहीं सकेगा । हवाई जहाज बहुत ऊपर चक्कर लगा रहा था । सहसा वह नीचे चीलकी भाँति उतरा ।

'एक हजार दो सौ फीट, एक सौ सत्रह, कूद जाओ !' आदेश सभी अंग्रेजीमें दिये जाते थे । यह आदेश भी अंग्रेजीमें ही था । मैंने अनुवादमात्र किया है। एक काली छाया हवाई जहाजसे तत्काल नीचे गिरी और द्वार बंद हो गया । हवाई जहाज फिर ऊपर उठ गया । वह मुझ और पूरी गतिसे जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें छौट गया । शत्रुके प्रदेशसे यथाशीष्र उसे निकल जाना चाहिये । जिसे नीचे गिराया गया, उसकी खोज-खबर लेना न उसका कर्तव्य था और न ऐसा करना उस समय सम्भव ही था ।

'एक, दो, तीन—दस, ग्यारह—सत्तर, इकहत्तर'
गिरनेवाला पत्थरके समान ऊपरसे गिर रहा था; किंतु
वह अभ्यस्त था। बिना किसी धबराहटके वह गिनता
जा रहा था। उसे पता था कि उसे जब गिराया गया,
उसका हवाई जहाज पृथ्वीसे एक हजार दो सौ फीट
ऊपर था। 'एक सौ पंद्रह, एक सौ सोल्रह, एक सौ
सत्रह!' संख्या जो उसे बतायी गयी थी, पूरी गिनी
उसने और तब उसके हाथोंने पीठपर बँधी छतरीकी रस्सी
खींच दी। पैराराइट एक झटकेसे खुल गया। अब

वह वायुमें तैरता हुआ धीरे-धीरे नीचे आ रहा था। सहसा वायुका वेग प्रबल हो गया । पैराशूट एक दिशामें उड़ चला; किंतु वह बहुत दूर नहीं जा सका । उसके सहारे उतरनेवालेके पैरोंको किसी वृक्षकी ऊपरी टहिनयोंका स्पर्श हुआ । अगले क्षणोंमें एक शाखामें पैर उलझानेमें वह सफल हो गया । बहुत कड़ा झटका लगा । मुख, हाथ, पीठ शाखाओंपर रगड़ लगी । अच्छी चोट तथा कुछ खरोंचें भी आयीं । शरीरकी नस-नस कड़कड़ा उठीं, लेकिन अन्तमें पैराशूट उलट गया। वह

वह कहाँ है, कुछ पता नहीं उसे । चारों ओर घोर वन है । वन्यपशुओंकी विग्घाड़ें रह-रहकर गूँज रही हैं। जो मान-चित्र उसे दिया गया था, अब वह बड़ी कठिनाईसे काम देगा; क्योंकि हवा उसे अपने लक्ष्यसे कितना हटा लायी है, किस स्थानपर वह आ गया है, यह जाननेका कोई उपाय उसके पास नहीं।

डालपर स्थिर बैठ गया और उसने रस्सियाँ खोलकर

पैराशूटको पीठपरसे उतार लिया।

रात्रिके इस अन्धकारमें भूमिपर उतरना आपत्तिको आमन्त्रण देना था । प्रकाश वह थोड़ा भी कर नहीं सकता । इससे रात्रु कहीं समीप हुआ तो वह पता पा जायगा । जबतक झुटपुटा नहीं हुआ, वह चुपचाप उसी डालपर बैठा रहा । मच्छरोंने उसका मुख लाल बना दिया । शीतल वायुके झकोरे यद्यपि शरीरको अकड़ाये दे रहे थे, उसे अच्छे लगे; क्योंकि कुछ क्षणको उनके कारण मच्छरोंसे उसे छुटकारा मिल जाता था। वायुकी दुर्गिनिध वतलाती थी कि समीप ही कहीं दलदल है।

झुटपुटेके प्रारम्भमें ही वह नीचे उतरा । सबसे पहले उसने कमरसे बड़ा चाकू निकालकर भूमिमें गड़ा बनाया । गीली मिट्टी होनेसे थोड़े ही परिश्रममें गड़ा इतना बन गया कि उसमें पैराशूट रखकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी उसने । मिट्टीके ऊपर सूखे पत्ते इधर-उधरसे 'हम यदि उसे रोकते हैं', बात टोकियोत^क CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Handwar

लाकर बिखेर दिये । अब वह निश्चिन्त हुआ कि 📆 या ताजे गहुंको देखकर रात्रुको कोई संदेह हो भय नहीं रहा।

X X

'हम उसे गोली नहीं मार सकते। वह भार्त है। उसे नेताजीको दे देना होगा। ' जापानी अकि परस्पर विवाद करनेमें लगे थे। एक अंग्रेजोंके जासक मार देना चाहिये, इस विषयमें दो मत नहीं उनमें: किंत नेताजीने बहुत कठोर रुख बना लिया भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारको लेव बात लगभग झगड़ेकी सीमातक पहुँच चुकी ध नेताजी अड़े थे--- 'प्रत्येक भारतीय बंदी उन्हें दे जाय । उसके साथ क्या हो, यह निर्णय वे करेंगे।

'यह हमारे सैनिक अधिकारोंमें हस्तक्षेप है अधिकारियोंको ऐसा प्रतीत होता भार प्रत्यक्ष विरोध क वे मनमें चिढ़ते थे; किंतु उनके लिये सम्भव नहीं था। उन्हें टोकियोसे आ मिला था—'सुभाषचन्द्रवसुका प्रतिनिधिकी भाँति किया जाना चाहिये।

कल रात्रिमें कोई अंग्रेजी सेनाका विमान व जासूस उतार गया । यह पता नहीं है कि ज अकेला ही आया है या उसके कुछ और साधी विमानका पीछा नहीं किया जा सका; खोज करनेवाले सैनिक एक भारतीयको पकड़का आये । वह पैराशूट मिल गया भूमिमें गड़ा 🕏 जिससे वह उतरा था । अब बिना कठोर व्य^{वहा} जासूस कुछ बतायेगा नहीं । कुछ सैनिक अर्थि उसे गोली मार देनेके पक्षमें हैं; किंतु नेताजीका ^ह आ गया है। उन्होंने कहलाया है—'उससे पूर्णि काम मुझपर छोड़ दो !

सकती दी औ गया मेज वि

संख्या

पत्ते टू ध्यान वन-नि

उन्होंने भूमिमें एक प्र

सम्भव कोई व

आ गर

सत्ता संयम शराबि मुझमें

चिन्त पड़ा १

चर्चा नहीं,

दिया नहीं एक

सुँघा मेरी :

लेकिन

संख्या ४

वेस

भारती

अधिव

नास्स

नहीं

लेया :

लेवा

दे

रॅगे।

प है

था है

न का

आह

सम्राह

न व

न जार

नाथीं है

तु व

डका

T 5:

ज्यवहाँ।

अधिक

FI H

斩 写

सकती है। प्रधान सैनिक अधिकारीने गम्भीर चेतावनी दी और तव दूसरा उपाय ही इसे छोड़कर नहीं रह गया कि उस भारतीयको चुपचाप नेताजीके समीप भेज दिया जाय।

× × ×

श्विस बृक्षपर मैं उतरा था, उसकी टहनियाँ और पत्ते टूटे थे। उनको भी हटा देना चाहिये, इधर मेरा ध्यान नहीं गया था। वह तरुण बता रहा था— 'जापानी बन-निरीक्षकोंका ध्यान उन रातके टूटे पत्तोंपर गया। उन्होंने उस बृक्षके आसपास खोज की और पैराश्रूटको भूमिमेंसे खोद निकाला। इसके बाद उनके सैनिकोंका एक पूरा समृह बनमें फैल गया। मेरे लिये लिपना सम्भव नहीं रह गया और पिस्तौलका उपयोग करनेसे कोई लाभ नहीं था। विवश होकर मैं उनके सामने आ गया।

'जीवनमें शिक्षाकालसे तबतक मैंने कभी ईश्वरकी सत्ता खीकार नहीं की थी । वैसे मैं पहिले संयम पसंद करता था; किंतु जासूसीमें अनेक बार शरावियों-जुआरियोंके बीचमें रहना पड़ा । धीरे-धीरे मुझमें सब दुर्व्यसन आ गये। नास्तिक था ही, परलोककी चिन्ता पागलपन लगती थी।' युवक कहते-कहते रो पड़ा था। उसने अपने अनेक अपकर्मोंकी रोते-रोते चर्चा की। यहाँ उनकी चर्चा अनावश्यक ही नहीं, अनुचित भी है।

'मुझे एक गन्दे कमरेमें हथकड़ी डालकर बंद कर दिया गया था। मच्छरोंको भगानेके लिये हाथ भी खुले नहीं थे। परंतु विपत्ति इतनी ही कहाँ थी। चूहोंका एक झुंड आया। उसने मुझे पहिले दूरसे देखा, सूँबा और फिर वे निकट आ गये। जब उनमेंसे एकने मेरी गर्दनपर मुँह लगाया; मैं चीख पड़ा—'हे भगवान्!' लेकिन मुझे अपनेपर ही कोध आया। 'मेरे-जैसे पामर

नास्तिककी पुकार भगवान् सुनेगा भी—यदि वह हो !' वह अब हिचकियाँ लेने लगा था।

'किंतु भगवान् है। उसने मेरे-जैसे पापीकी पुकार भी सुनी। घंटेभर भी वह देर करता तो जापानी सैनिक मारते या छोड़ते, चूहे मुझे नोंच-नोंचकर खा लेते। उन्होंने गर्दन, पैर और कंघेपर केवल तीन घाव किये कि मेरी कोठरीका द्वार खुल गया। मुझे वह जापानी सैनिक भगवान्का दूत ही लगा। वह मुझे गोली भी मार देता तो मैं उसे ऐसा ही मानता; किंतु वह मुझे मोटरमें बैठाकर नेताजीके समीप ले गया। उसने अपने अश्रु पोंछ लिये और दो क्षणको चुप हो गया।

'मुझे आज पता लगा कि भगवान् है और वह मुझ-जैसेकी पुकार भी सुनता है । उसने मुझे बचाया है। अब यह जीवन उसका, उसीके स्मरणमें अब जीना या मरना है।' वह बता रहा था कि उसने नेताजीसे ये बातें कही थीं—'अब रास्त्र उठाकर किसी ओरसे किसीकी भी हत्या करनेकी इच्छा मेरी नहीं है। भगवान् है, तो पूरी पृथ्वी उसकी है। सब मनुष्य उसके अपने हैं। अतः मैं युद्धमें अब किसी ओरसे नहीं लडूँगा।'

'आपपर प्रभुकी कृपा है। आप सच्चे अर्थोमें भगवद्भक्त हैं। भले यह भक्ति आपको इसी क्षण मिली हो।' नेताजीका खर भी भर आया था—'हम आपपर कोई प्रतिबन्ध लगानेकी धृष्टता नहीं कर सकते। आप चाहे जहाँ जानेको खतन्त्र हैं। हम केवल प्रार्थना करेंगे कि आप मेरा आतिथ्य खीकार कर लें आजके दिन।'

'मुझसे कुछ पूछा नहीं गया । मैंने खयं जो कुछ बता दिया, वही नोट कर लिया गया । मेरी हथकड़ियाँ तो नेताजीने पहुँचते ही खुलवा दी थीं । उन्होंने जिस श्रद्धासे मुझे भोजन कराया, उसका स्मरण करता हूँ

सुख उ

मुक्त है

है।

निर्माण

उपाय

वह वन

जो मह

है।इ

महान्

अभ्यास

करता जिसका

खतः आत्मीय

चाहिये

अवस्या

असत्यव

कर ले

रहता है

3

तो मुझे अपने-आपसे घृणा होने लगती है । उन लोकपूज्यकी श्रद्धा मिली मुझे केवल इसिलिये कि मैंने भगवान्को खीकार किया था । मैंने किया ही क्या था, मेरा मृत्युमुखसे उद्धार तो ख्वयं उस भगवान्ने किया था जो कदाचित् मेरे-जैसोंके पाप देखना जानता ही नहीं ! भगवान् ! भगवान् !' और वह फूटकर रो पड़ा । उन्मत्तके समान उठा और एक ओर दौड़ता चला गया । पता नहीं कहाँ गया वह ।

'पागल है!' एक सज्जनने कहा। फटे वस्त्र, बढ़ें केरा, चिड़ियाका घोंसला बनी दाढ़ी। उसका वेश देखकर दूसरा अनुमान लगाया भी कैसे जा सकता है। 'वह मौजमें आता है तब कहता है—मित्र मार्के मेरे प्यारे मित्र ! आप सबके मित्र !' ज महोदयने बताया जिनसे अभी वह बातें कर रहा मार्भ वह रंगूनसे युद्धकालमें ही वनके पार्गसे पैदल में आया। वह कहता है कि वनके भयानक जन्त उनसे भयानक नरभक्षी मानव भी उसके लिये मित्र थे। भगवान् सबका मित्र और उस भगवान् में भित्र जो बना लिया। अब वह अपनी धुनमें पाल भित्र जो बना लिया। अब वह अपनी धुनमें पाल सहदरूषियों पानेवाले ये महाभाग धन्य हैं !' पास ह

अपना निर्माण कीजिये

एक साधुने कहा।

(लेखक— स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी)

प्रत्येक मानवका परम कर्तव्य है—आत्मिनर्माण । आत्मिनर्माणसे ही समाजका निर्माण भी हो सकता है । आत्मिनर्माणका तात्पर्य है—अपनेको सुन्दर बनाना । बाह्य सौन्दर्यसे कोई सुन्दर नहीं होता है । आजकल देशकी बहुत-सी सम्पत्ति बाह्य शृङ्कार-सामग्रीमें व्यय होती है । कीम, पाउडर, साबुन, स्नो, तेल-फुलेल भाँति-भाँतिकी खर्चीली पोशाकें आदि पदार्थीके प्रयोगसे ही लोग अपनी सुन्दरताकी वृद्धि करना चाहते हैं । पर यह कोरी भूल है । फैशन-विलासिता और शौकसे फिजुल्खर्ची, विक्षोभ और शोक ही बढ़ता है—सौन्दर्य नहीं । जो अपना निर्माण करना चाहते हैं अथवा अपने-आपको वास्तवमें सुन्दर बनाना चाहते हैं, उनमें पाँच लक्षण अवश्य होने चाहिये । वे पाँच लक्षण हैं—(१) इन्द्रियोपर विजय, (२) लोक-सेवा, (३) भगवत्समरण, (४) सत्यकी खोज और (५) आत्मिनरीक्षण।

जो अपनी इन्द्रियोंपर त्रिजय नहीं पा सकता है,

वह इन्द्रियविषय-छोछुपताके वशमें होकर कि अनित्य दु:खमय और परिवर्तनशील सुख-सौन्दर्यकी है दौड़ते-दौड़ते वस्तु, व्यक्ति तथा परिस्थितिका ह होकर अनेक प्रकारकी निर्वलताओंका शिकार जाता है। फलत: वह कभी अपना हित नहीं ह

जो जितेन्द्रिय बनना चाहते हैं वे छोक-सेंग कें सेंग करनेसे सुखासिक्तिका नाश हो जाता है इसके नाशसे खार्थभाव भी पूर्णरूपेण गल जाता जिससे मनुष्य जितेन्द्रिय बन जाता है। जिले खार्थभाव रहता है, तबतक मनुष्यके हृदयमें वार्ती जितेन्द्रिय बननेकी छालसातक भी नहीं जाप्रत् हों सेंगका तात्पर्य होता है—दुखी व्यक्तिको देख करुणाका भाव उत्पन्न हो जाना और सुखी व्यक्ति देखकर मन प्रसन्ततासे खिल जाना। दुखी व्यक्ति देखकर जो करुणाई हो जायगा, वह अवस्य ही कें

2

भाक

उन :

य छ

न्तु :

मित्र

न्ने ;

गिल

से अ

स ह

र्यकी

कार

नहीं

वा क

हैं

जाता

जुन

वास्ती

व्यक्ति

मुक्त हो जायगा । यही मानवताके विकासका मूलमन्त्र है। सेवाके द्वारा ही आत्मनिर्माण तथा समाजका निर्माण—दोनों सुगम हैं।

अपना निर्माण करनेके लिये भगवत्स्मरण सर्वोत्तम उपाय है। मनुष्य जैसा चिन्तन करता है, वैसा ही वह वन जाता है। ''महानिति भावयन् महान् भवति''— जो महान्का चिन्तन करता है वह महान् हो जाता है। इसमें जरा भी संदेह नहीं । भगवान्से बढ़कर महान् है ही कौन ? अतः भगविचन्तनका नित्य-निरन्तर अभ्याम करते रहना चाहिये । जो भगवचिन्तन नहीं करता है--वह भोगोंका चिन्तन तो करेगा ही. जिसका फल होगा सत्यानारा । भगवानुका स्मरण-चिन्तन खतः होता रहे--इसके छिये भगवानके साथ आसीयता (अपनापन) और उनकी आवश्यकता होनी चाहिये।

जो सत्यकी खोज करता है उसको सत्यकी प्राप्ति ^{अवश्यमेव} होती है। पर इसके छिये जाने हुए असत्यका त्याग तो करना ही पड़ेगा। असत्का सङ्ग कर हेनेसे ही मनुष्यको मृत्युका भय तथा संदेह बना रहता है । जो मनुष्य आत्मनिर्माणकी ओर अग्रसर

मुख उनको बाँट देगा । फलतः वह मुखकी दासतासे होना चाहता है, उसको चाहिये कि शीघ्रातिशीघ्र असत्के सङ्गका त्याग कर दे अर्थात् जो कर्म, जो सम्बन्ध तथा जो विश्वास-विवेक-विरोधी हो उससे सम्बन्ध तोड़ ले। ऐसा करनेपर वह सत्यको प्राप्तकर अमर और सर्वथा संदेहरहित हो जायगा । यही मानव-जीवनका फल है।

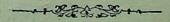
> साधकको समय-समयपर आत्मनिरीक्षण भी करते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे अपने बनाये हए दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है और प्राप्त बळ, योग्यता तथा परिस्थितिका सदुपयोग भी होने लगता है। अपने अंदर जो-जो दोष हों, उनका तरंत ही त्याग कर देना चाहिये । पर दूसरे व्यक्तिके दोषोंका दर्शन भूलकर भी नहीं करना चाहिये । जो परदोष-दर्शनमें लगे रहते हैं, उनको अपना दोष नहीं सूझता । परदोष-दर्शन तथा परचर्चासे निरन्तर बचते रहना चाहिये। सत्संग, खाध्याय तथा श्रवण-मननका जो फल है, वही आत्मनिरीक्षणसे प्राप्त होता है। साधकको चाहिये कि दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा व्यवहार वह दूसरोंसे अपने प्रति चाहता है । अतः आत्मिनरीक्षण आत्मनिर्माणके लिये प्रमावस्यक है।

भगवान् सबको सद्बुद्धि प्रदान करें।

गीत

उमरिया नीकी बीत रही। याद किसीकी हिये सँजोकर, हारी जीत रही॥ प्रेम गली अति साँकरी, हिये भाव स्थूल। पार भये पिय पाइहैं, कालिन्दीके कूल॥ पिया मिलनमें ना सहयोगी, फीकी प्रीत रही ॥ उमरिया० ॥ बाकी रह गईं, बिरह बरसते नैन। हिये हूक है मूक-सी, अटपट निकसें बैन ॥ मोहन मनकी मनमें रह गई, रीती रीत रही ॥ उमरिया० ॥

-मोहन वार्ष्णेय



हमारा वेदराजा और उसकी सेना

(लेखक-आचार्य श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ)

(?)

हमारे वेद राजाकी कितनी सेना है जानते हैं ? सब नहीं जानते होंगे, इसिलये जरा सेनाका वृत्तान्त बतला दूँ। संक्षेपसे, अतिसंक्षेपसे।

ज्ञानाकारसे सब वेद एक उसके चार मेद

(१) ऋक् (२) यजुः (३) साम (४)

अथर्व ।

किंतु विषयभेदसे तीन वेद

(१) ज्ञान (२) कर्म (३) उपासना ।

प्रत्येक वेदकी शाखाएँ

ऋक् यजुः साम अथर्व २१ शाखाएँ १०१ १००० ९

प्रत्येक वेदका एक-एक उपवेद

गान विद्या सा-री-ग-म-अन्य सैकड़ों ग्रन्थ प-ध-नी-स यहींसे चले।

प्रत्येक वेदके ब्राह्मण

ऋक् यजुः साम अथर्व | | | | | ऐतरेयादि शतपथादि पंचविंश ब्राह्मणादि गोपथादि फिर इनकी व्याख्यारूप अनुब्राह्मण

(अब कम मिलते हैं, नहीं

बरावर)

जान

एवं उ

होता

के अ करते

और

बनारे

सेना

वर्णन

मुझ-

सुँघा

नहीं

फिर प्रत्येक वेदके उपनिषद्

ऋक् यजुः साम अत्र | ईशादि तवल्कारादि मुण्डकोणी ऐतरेयादि अनेक उपनिषदें आहि

मुख्य उपनिषद्

(१) ईश (२) केन (३) कठ (४) ह (५) मण्डूक (६) माण्डूक्य (७) तैति (८) ऐतरेय (९) छान्दोग्य (१०) बृहदारण

इन्हींसे भगवान् श्रीकृष्णने

गीतामृत दूहा।

वेदोंकी शाखा क्या हैं ?

कई विद्वानोंका मत है कि ये शाखारूप वेदव्याख्यानरूपी ग्रन्थ हैं, वे शाखाएँ ११२७ हों और ४ वेदोंको मिलाकर सब ११३१ होती कितना बड़ा वेद-विषय है, इसकी जरा करणा कीजिये—फिर सारी शाखाएँ भी तो कहीं मिलतीं। इनी-गिनी मिलती हैं। ब्राह्मण अवृह्य भी पूरे नहीं मिलते हैं। मूल उपनिषदें १० और विद्वानोंने अनेक उपनिषदें बना डार्ली अव उपनिषदोंकी संख्या लगभग दो सौसे ऊपर पहुँच है—पर जितना भी अब वेद-विषय मिलता है क्या थोड़ा है इतना महान् विषय है कि इस विषयको शब्दब्रह्म कहा गया है। संसारमें ब ब्रह्म हैं। एक शब्दब्रह्म वेद है, दूसरा ब्रह्म है—पर

कहा है-

शब्दब्रह्मणि निष्णातः ब्रह्माधिगच्छति । परं

जो शब्दब्रह्मको भलीभाँति जानता है, वही परब्रह्मको जान सकता है।

इसीलिये कहा है-

द्वे विद्ये वेदितव्ये परा च अपरा च। दो विद्याएँ ज्ञातन्य हैं, परा और अपरा । अपरा हुई चारों वेद और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त एवं ज्योतिष । इनको जानना चाहिये ।

परा वह है--

तदक्षरमधिगम्यते'

जिससे उस अविनाशी सदा एकरस ब्रह्मका ज्ञान होता है। अर्थात् परले पारकी विद्या-वेदान्त।

इसीलिये

वेदान्तदर्शनका प्रथम सूत्र है-

ब्रह्मजिज्ञासा' 'अथातो

अब इसके अनन्तर—किसके अनन्तर ? वेदाध्ययन-के अनन्तर । क्या ? ब्रह्मजिज्ञासा ब्रह्म जान्नेकी जिज्ञासा करते हैं-

इसीलिये

वेदादि हुए अपरा—इधरके किनारेकी विद्या । और वेदान्त परा—परले किनारेकी विद्या ।

हमारे दर्शनशास्त्रोंका मूल

वेदोंमें ही मिलता है, जिससे ऋषियोंने षड्दर्शन बनाये । सैकड़ों शास्त्र-उपशास्त्र रचे । वेदराजाकी समस्त सेनाका वर्णन संक्षेपमें भी करना कठिन है, विस्तृत वर्णन तो अनन्त है कौन करे ? किसकी शक्ति है ? मुन्न-जैसा असमर्थ, अल्पज्ञ, जिसने केवल सूँ हो है, वह क्या वर्णन कर सकता है ?

इन्हीं वेदोंके उपबृंहण

इतने हैं कि उनके विषयमें भी बहुत अधिक छिखा नहीं जा सकता ।

लिखा हैं-

'उपबृंहण' वेदोंका एक प्रकारसे व्याख्यानरूप लौकिकोंके समझानेके लिये बढ़ाव है, जिससे साधारण पुरुष भी वेदके निखिल तत्त्व समझ सके—

> इतिहासपुराणाभ्यां समुपबृहयेत

इतिहास और पुराणोंसे वेद-तत्त्वोंका उपबृंहण करे-विस्ताररूप व्याख्या करे । उदाहरणादि देकर मनोरञ्जक व्याख्या करे।

जैसे

१८ पुराण—फिर उनके १८ उपपुराण । जिनमें ४ लक्ष श्लोक आते हैं।

फिर इनकी व्याख्या

इतिहास (संक्षिप्त)

महाभारत-रामायण आदि (इसमें सवा लक्ष श्लोक हैं।)

फिर

इनके काव्य नाटकादि अनन्तरूप हैं। क्या यह थोड़ी सेना है हमारे वेदराजाकी ?

इस तरह यह शब्दशास्त्र अनन्त है । सबको यथार्थ जानना हो तो अनेक जन्म चाहिये। फिर भी कोई जान पायेगा कि नहीं, कौन कह सकता है ?

पश्चतन्त्रके विष्णुं शर्मा

यथार्थ कहते हैं---

अनन्तपारं किल राब्दशास्त्रं स्वल्पं तथाऽऽयुर्बहवश्च विघ्नाः। ततो त्राद्यमपास्य फल्य क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

(पञ्चतन्त्र कथामुख ९)

टC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

福 取)

8)5 तैतिं

ारण्य

रूप 9 हों

ोती त्रपना

कहीं -313 और

पहुँच ता के

इस में हो

पारका कुछ पता नहीं । इधर आयु भी खल्प है— अत्यल्प है-अधिक-से-अधिक सौ वर्ष-फिर उसमें भी कितने विन्न हैं --- कुछ ठिकाना है आधि-ज्याधिका।

इसलिये

सारको जानकर जन्म कृतार्थ करना चाहिये। कसे ?

जैसे मिले हुए दुग्धजलमेंसे हंस दुग्ध निकाल लेता है।

[एक बात और बस]

वह यह कि शाखाओंके विषयमें एक मत

वेदज्ञोंका ऐसा है कि शाखाका अर्थ है गुरु-शिष्य-पाए जैसे मूलवृक्ष होता है और उसकी शाखाएँ होती पचासों।

अर्थात् ऋग्वेदकी गुरुशिष्य-परम्परा मुख्य २१ यजुर्वेदकी १०१ हैं । सामवेदकी १००१ अथर्वकी ९ हैं। अर्थात् इतनी गुरुशिष्य-परम्पाकं पता तवतक लगा, जबतक परम्परावाले अपनी पार लिखते गये । आगे परम्परा लिखना छूट गया । मत है-। फेलो-आफ एशियाटिकसोसाइटी बंक खर्गीय आचार्य श्रीसत्यव्रत सामश्रमीजी महाराजका।

गो० श्रीहरिरायजी 'रसिक'

[एक भाव-विश्लेषण]

(लेखक--श्री क॰ गोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत)

भक्ति और काव्य-दोनों एक रस-रूप होकर 'रसिक' जनोंके अन्तस्तलको, उनकी रग-रगको—उनकी समग्र बहिः और अन्तश्चेतन-वृत्तिको संदीपित, सम्मोहित करते हैं। दोनों आत्मधर्मी, रसधर्मी हैं । दोनों परस्पर एक दूसरेको अनुप्राणित करते हैं। अन्तःकी बीजरूप रागात्मिका वृत्ति किसी प्रेष्ठमें रम जानेपर भक्तिका रूप पाती है और कला एवं कल्पनाका उपजीवन-आधार लेकर वही काव्यवाणीके रूपमें भावावेगके साथ भाव-जगत्में प्रस्फुटित होती है। फिर वही कण्ठ-माधुरीका परिधान पाकर संगीतके नामसे अभिहित होती है । भगवल्लीला-रसके गायक, गीति-काव्यके कलित कलेवरमें भगवचरित्रके विधायक रसिक महानुभावोंके व्यक्तित्वमें भक्ति और काव्यकी आत्मा इसी रूपमें सम्पुटित होती है । दोनोंके ही मूलमें रस-प्राणता है। उनकी लीला-रसिकता भक्तिको और भक्ति-काव्यको प्राण-स्फूर्ति देती है। इस प्रकार दोनों एकरूप हो जाते हैं। भक्तका कवि और कविका भक्त बन जाना सहज सम्भाव्य हो जाता है। श्रीमैथिलीशरण गुप्तके शब्दोंमें-

> राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है। कोई किव बन जारा-0सहक्रणांसार सांकार किया (Mangri Collection, Haridwar

गो० श्रीहरिरायजी-सरीखे रसके धनी, पुष्टि-पथके आ इसी कोटिके 'रसिक' महानुभाव है, जो हरि-लीलक सहज रूपमें जगत्के समक्ष आविर्भूत कर रहे हैं। यह ज प्रयास-साध्य काव्य नहीं, अपितु उनके हृदयमें सहज अवस्थित लीला-रसका सहज स्फुरण है। नदन श्यामसुन्दरकी अगाध रूप-माधुरीसे जिनका हृद्य रँग है, उनके अमोघ रूपाकर्षणकी रच्जुमें जिनका मन बँधा है, वे भला अरसिक, काव्य-विञ्चत रहेंगे ! जिस ह हरिका लीला-रस ही काव्य है, उसी प्रकार उनका जीवन तदाकार काव्यमय है। वे तो उसी क्षणसे काव्यम जिस क्षणसे उनकी ऑंखें अपने प्रेष्ठ स्थामसुन्द्रकी मह रसभरी चितवनके जादूसे सम्मोहित हो गयीं। उनके ह्याई अङ्ग-अङ्गके सौन्दर्यः मोहिनी मुरलीके माधुर्यसे खिंचकर् गोपीभाव-विभावित हृदय उनके पीछे-पीछे जा लगा। दें उनके ही शब्दोंमें किसी व्रजाङ्गनाका हृद्य-

कगाई संग तब तैं जब तैं मो मनु चितयौ इति तैं मोरमुकुट सिर घरें बनमाल गरें हरें हरें चलत दे हैं। चितै चितै तिरछे नैननि करि अधर सुधा पूरत मधुर के रसिक प्रीतम आधीन करी यों ज्यों मीन तलफत

निसिदिन परत न स्योहँ की

साथ ग किसका उनकी

संख्या

तादातम् है ? पि है।उ

उसकी ज

जे

छिनु स रसिक

ढर जा डालते

मनको अपने रस-मि

फिर ह पल-पल लिये :

पगी म उसकी देख न

गुरुजन जब मे मनकी

आवित रसिक

बिरह

पथपर आकार आकु

उठते-क्षण-क्षा

的一

रिमा

900

पराओं

के आबा

लाकान

यह उन

हज ल

नन्दन

र्गाः

वधार

ाव्यम्य

ती मद्

रूपाक

बकर उन

日南

मोरमुकुटकी लटक, वनमालाकी विशुरन, रस-चेष्टाओंके साथ मन्द-मन्द गतियुक्त चितवन तथा वंक-अवलोकनिसे किसका मन मुग्ध-छुब्ध न हो जायगा ? वरवस उसके नेत्र उनकी छावण्यराशि और कान वेणु-निर्गत स्वर-माधुरीसे तादातम्य पा गये । इस चितवनके जादूसे कौन वच सकता है १ फिर जव-तव नेत्रोंका मिलन ही उसके जीवनका आधार है। उसकी व्याकुलताका अनुमान कीजिये। नेत्र-मिलन और उसकी अवस्थाकी एक झलक-

जहाँ-तहाँ ढिर परत ढरारे प्रीतम तेरे नैन । ने निरखत तिनके मन बस करि सौंपति है ले मैन ॥ छिन सनमुख चिते होत टेढ़े एक कबहु अवस्था कबहु है न। रिसक प्रीतम तातें बिनु देखें मो मन नाहिन चैन ॥

'दरारे' ही जो ठहरे! न जाने कब, किसपर, किस ओर हर जायँ । नटखट, चक्रल, चितचोर मोहन जिसपर चितवन डालते हैं, वह सदाके लिये उनके वश हो जाता है; फिर मनको अधीन करके वे अपने पास भी तो नहीं रखते। अपने चिर-सहचर मदनदेवको लेकर सौंप देते हैं। 'काम'-रस-मिलनकी उत्कण्ठा मनमें अनुपल जागरूक हो जाती है। फिर वेचैनीका क्या ठिकाना, उनके रूप-दर्शनके बिना चित्त पल्पल चञ्चल हो उठता है। उस रूप-मधुरिमाके आस्वादके लिये उसकी पगली आँखें आकुलित हो उठीं। रति-रससे पगी मीठी चाह एक तीखी टीस पैदा करने लगी। किंतु उसकी दृष्टिकी मर्यादा कुण्ठित हो रही है, चाहते हुए भी देख नहीं पा रही है-

गुरुजन काज भरी अरी, हों देखनि न पाऊँ। जब मोहन चाहत मो तन तब नीची नारि करि जाऊँ॥ जेस प्र मनकी किह न सकति काहू सों मनिहं माँहि अकुलाऊँ। बिरह बाफ काढ़िन औरिन सों झुठे ही बतराऊँ॥ आवित है मन मेरी ऐसी सिगरी लाज गवाँऊँ। रिसक प्रीतम सों प्रीति जोरी सो सिख कहाँ हों दुराऊँ॥

गुरुजनोंकी लाज कितंनी बड़ी वाधा है ? प्रियतमके दृष्टि-पथपर वह आ गयी है, दोनों ओर परस्पर दृष्टि-विनिमयकी आकाङ्का बलवती हो गयी। चितवनोंकी सहज चञ्चलता आकुलित हो उठी। पर, यह क्या पलकें भारी हो रही हैं। उठते उठते रह गर्यों । कौन इन्हें रोक रहा है ? इधर प्रियतम अणक्षण प्रेयसीके नयनोंके सम्मिलनकी उत्कट प्रतीक्षामें हैं। इधर वह भी चाहकर भी चौनज़रें कर नहीं पा रही है। गुरुजनोंके प्रति लोक-मर्यादा, उनकी लाजका संकोच उसकी चितवनोंके मृद्तम तारोंपर पड़ रहा है। आँखोंसे उतरकर धीरे-धीरे यह लाजका भार सर्वाङ्गपर पड़ रहा है। वह गड़ी जा रही है, संकोचके मारे सिर नीचा करके रह गयी। कितनी विवशता है ? मनकी किसीसे कह नहीं सकती, भीतर-ही-भीतर अकुछाकर, तिल्मिलकर रह जाती है। अपने मनके मीत, उमड़ते हुए भावावेगको अधिक-से-अधिक गोपन करनेका वह प्रयास करती है। किंत भीतर घटते-सिटिते धएँको किसी प्रकार बाहर तो निकालना ही पड़ेगा। दम घुटकर न रह जाय। अपनेको निर्विकार, निर्लेप-सी वताती हुई वह इसका भी उपाय हूँ ह लेती है। औरोंसे झूठमूठ ही वतराकर वह इस गुवारको भी हलका कर लेती है। 'विरह-वाष्प' जो ठहरा! कितनी मनोवैज्ञानिक चात्री है ? किंत यह तो अवसर टालनेकी-सी बातें हैं, समस्याका कोई स्थायी हल तो नहीं।

तब वह क्या करे ? सारी लोक-लाजके बन्धनोंसे विद्रोह कर दे ? मनमें तो बहुत कुछ ऐसी ही आ रही है। 'रसिक प्रीतम'की प्रीतिका गोपन भी तो एक विडम्बना है। कहाँतक छिपाये ! कितनी ही चातुरीसे रहे, वह अव इस नैसर्गिक प्रवाहको रोक भी तो नहीं सकती ? फिर उसके रोकनेसे भी क्या १ वह रसराज श्यामसुन्दर जो अनुक्षण पीछे लगा हुआ है।

रूपाकर्षण और अनुरागकी इस भरी-पूरी दशामें, मधुर-मिलनकी पल-पल प्रवर्द्धमान लालसा उसके अन्तरमें रह-रहकर जाग रही है। लोक-मर्यादासे भीत होकर वह जितना संयमका प्रयास करती है, उतनी ही अधीरता उसमें बढ़ती जा रही है। लोक-वेदकी विधियोंमें उसकी आस्था उठती जा रही है। लोक-परम्पराओंके प्रति विद्रोहकी चिनगारियाँ भड़क उठनेके लिये उतावली हो रही हैं। निष्ठा—संस्कारमें सटी हुई निष्ठा क्रम-क्रमसे डगमगा रही है । दर्शनकी उत्कण्ठा कितनी प्रबल है-

जो जैये तो होकहाज हिये देखनि न पैए री प्रीतमकों जो रहिये तौ छिन्हु रहथो न जाइ हियौ भरि-भरि आवै। यह दुख सहिये री। कैसे करि।

मनमें आवित ऐसी सुत-पित-गृह तिज भिजिये री। प्रीतमकों निचये रीः उघरि

प्रसिक ' प्रीतम जीवन तब रहे जब मिले एकरस है हरि।। कैसा धर्म-संकट उपस्थित है ? दोनों ओर जीवनकी

विडम्बना । लोकापवाद भी नहीं सहा जाता और प्रियतमसे 'नैन-सैन' किये विना भी रहा नहीं जाता। जाती है तो गुरुजनोंके बीच पर-प्रीतिकी लाञ्छनासे जीवनभर तिल-तिलकर घुलेगी। घर रहती है तो एक क्षण भी रहा नहीं जाता। हृद्य पीड़ाके आवेगसे उमड़ा आ रहा है। इस आन्तर-उन्मथनसे जीना भी दूभर हो जायगा । इस प्रश्नका मुखद हल 'सुत, पति, गृह तिज भिजए री, प्रीतमको निचए री उघरि'के रूपमें निकालनेको आज उसका मन हो रहा है। अब वह ऐसे बिन्दुपर पहुँच चुकी है, जहाँ कोई भी आवरण, कैसा भी विवेक और मर्यादाका संतुलन, कैसा भी विचार-सामञ्जस्य उसके लिये अशक्य हो गया है। नेहकी निर्मल धाराके गम्भीर तलमें क्रमशः एकके ऊपर एक ऐसी कोमल-स्निग्ध भावनाओंकी तहें जमती जाती हैं, जो प्रगाढ़से प्रगाढ़तर होती हुई, अटल-अचञ्चल चट्टानोंका-सा रूप धारण कर लेती हैं, जो डिगाये न डिगेंगी, हटाये नहीं हटेंगी । यही उसकी सुदृढ़ आसक्ति है, अपने मनमोहनके प्रति । वह बढ़ती जा रही है, बढ़ती जा रही है। अब तो 'रसिक प्रीतम'से एकरस होनेमें ही उसकी परमावधि, परम कोटि है। उसकी आसक्ति क्रमशः तादात्म्यकी ओर गतिशील है, देखिये तन-मनकी लगनको ।

लगन मन लागी हो लागी। कहा करेंगे गुरुजन मेरे हों प्रीतम रस पागी ॥ जब तें देखी नैंननि भिर करि चित्त ठौर और सब बिसर्यौ स्याम किसोर रूप-रस पागी। कछु न सुहाइ जाइ मन न कहूँ ऐसी बनि आई अनमाँगी। अब धरियत चित आसपास रहिये कब रिसक प्रीतम सरस पागी ॥

'लागी हो लागी' शब्दोंमें मानो वह गम्भीर उद्घोष कर रही है। प्रियतमके रसमें पगकर वह अव गुरुजनोंकी भी चिन्ता नहीं करेगी । उसका चित्त तो अब एक ही बिन्दुपर-रूप-रसमें केन्द्रीभूत हो गया है। एकात्मभाव ही तो प्रेमकी पूर्णतम परिणति है। पूर्ण विलय, अविचल प्रपत्ति ही स्नेहके, प्रीतिके और भक्तिके पोषक प्राण-तत्त्व हैं। इसीलिये 'जब तैं देखी नैनिन भरि करि चित्त ठौर और सब विसरचौं की स्थितिमें वह आ पहुँची है। एक ही 'रसनिधि' में आकर सिमिट गयी है समाहित हो गयी है। यदि प्रसंगवश किन्हीं क्षणोंमें अन्यत्र चित्त जाता भी है तो सहसा उचटकर लौट आता है। ऐसी अनमाँगी मनकी स्थिति वन पड़ी है। सोते-जागते, अहर्निशि उसकी रूपासक्ति अनुक्षण तरंगित हो रही है । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उसकी गति-मतिमें तीव्रता वढ़ती ही जा रही है। प्यास, मिलनकी आस उसके तन-मनको जैसी कस्त है, वही जानती है। स्यामसुन्दर प्यारेके मादक लाकी झलक उसके सपनोंमें भी उतरकर उसे मद-विभोर का है-देखिये।

दीनों दरस सुपनेमें आई। छिन् एक सुख उपज्यों मेरे मन गयो कहाँ हिर बिरह को हा हा पाई परित हों तेरे क्यों हू किर लावे न क अब न परत मोपे रहयो छिनु छिनु भेटें जिय अति अल यह दुख कहा कहीं सिख तो बिनु मेरे तू ही एक ह कहा बिलँब मुकरत जैबे को तासों सहते सखी सौहं है वह मरित गाड़ि रही हिएमें निकसत नाहिन और उ उठिए है सुनि बिनती मेरी जसुमतिसुत 'रिसकन'के

स्वप्न-दर्शन और उसकी तीखी संवेदनाका वि सुन्दर निरूपण है। रूप-रसकी छकी, मादक मोहिती गोपाङ्गना अपने हृद्यको अपनी अन्तरङ्ग सहेलीके सम्बन कर रखे दे रही है। कितनी विलक्षण रसानुभूति है कि क्षणका वह सुखद संयोग चिरकालका विरह-संताप देव कैसे रहा जायगा उससे, उस रस-माधुरीको पाये कि वह सुनहले सपनोंके झीने-झीने आवरणमें पा चुकी है अ ले चुकी है। जी अकुला रहा है, उन्मथित, व्यक्षि लालसाएँ उनके मनको आलोडित-विडोलित कर रही हैं। ह प्यारी सखी उसकी मनुहारको मान ले और ची 'जसुमति-सुतके समीप उसकी पुण्य-विनयको लेकर—ग्रं चाह रही है। उसे पूरी निष्ठा है अपने प्यारेमें कि वे ह संदेश पाकर, उसकी वियोग-पातीको पढ़कर, तत्स्र^{ण ई} उसके प्यासे नयनोंको, उसके तपते-झुलसते प्राणींकी करेंगे। उसकी नस-नसमें व्यापी प्रणय-व्याधिका क्या म उपचार है ? इसलिये तो वह हा हा खाकर, वैयाँ प 'सोंहैं खा कर' उसे प्रियतमकी ओर प्रेरित कर ही हृदयमें गड़ी हुई स्याम-सलोनेकी मूर्ति कैसे भी आँखें सजीव नाच उठे, इस समग्र संयोजनका यही ^{अभी} कहती है-

अरी माई देखनि की मोहि चाह पिय के बदन की मेरो सलोनो नाँ

उफरतः फरकत आँख बाँई अधरा बाँह बाँई फरकत

िर

संख्या

हो रहे भेंटका भावी है

ऑखें होंगी । सारा सु है, स्नेह

लिया ज में सदा

मादक, नयनोंके वह अन्

6 गति हे है।उ विखरः

देखि क उह मुस्

जिनको जिनन बिन ह

(रसिक केसे उ

नहीं व निषेध रूपका मन व

की ग ऐसे गं स्वगत

वे तो

10

स्कः

पकी ।

वनाः

सोहं ह

और उ

1'के

का हि

र देव

विना

है, अ

यथित ।

है। ह

चली

—4

के वे उ

त्क्षण अ

नोंको र

क्या ग्र

ゴ 明

कर ही

मॉबॉर्क

इन की

बॉह

छिनहु न विसरत है आली, मेरे बसत सदाई हिय माँह। ्रसिक प्रीतम जब देखिहों नैनिन, व हैं री छत्रछाँह ॥ सुख

उस 'सलोने' नाँहसे मिलनेके आज कितने मङ्गल राकुन हो रहे हैं ? वाम अङ्गोंका स्फुरण अवश्य ही उसके आगमन-भेंटका सूचक है । तत्तदङ्गोंके रस-विषयोंकी उपलब्धि अवश्यं-भावी है। विदित होता है, वे प्यासी अकुलाई, अलसाई । अहुं आँखें चिर-वाञ्छित रूप-माधुरीके रससे आज आप्यायित होंगी। अधरोंके रस-दानसे युग-युगकी तृषा वुझेगी, हृदयका सारा सुधा-स्रोत इन अधरोंके तटोंपर ही जो उमड आनेवाला है, स्तेहका अतल रस-निधि आज इन्हींमें बाँध लिया, साध लिया जायगा । फिर अङ्ग-अङ्गका आइलेष, सुदृढ भुजबन्धनों-में सदा-सदाके लिये समग्र अङ्ग-सङ्गके साथ आकुञ्चन कितना मादक, मधुर है। कल्पना नहीं होती, तवतक जबतक कि नयनोंके आगे 'वह' अवतरित नहीं हो जाता । यों हृदयमें तो समक्ष वह अनुक्षण बसा ही है। है कि

किंत, एक बारके नेत्र-मिलनके अनन्तर तन-मनकी क्या गित होगी, इसे भी कोई भुक्त-भोगी ही अनुमान कर सकती है। उस रससे वञ्चित हृदयमें कितनी आर्ति, कितनी पीड़ा विखर रही है, किसी रस-मदनाके शब्दोंमें ही अनुभव की जिये-देखि क्यों मन राखि सकै री।

उह मुसुकानि उह चािक मनोहर अवलोकत दोउ नैन थक री।। जिनको अनुभव कबहूँ नाहीं ते घर बैठी न्याउ बकै री। जिनन सुनी मुरली उहि काननि ते पंछी मृग पशु विथके री॥ विन देसे अब रह्यों जात नहिं सुंदर बदन कुटिक अलके री। 'रासिक' प्रीतम यह भई अवस्था जे हिर रूप निरखि अटके री ॥

'उनके संदर्भमें मुसकिन, चलिन, अवलोकिनका स्वारस्य कैसे अभिव्यक्त किया जा सकता है। नेत्रोंकी परवदाता कहते नहीं वनती। 'स्वसंवेद्य' वस्तु भी क्या वाणीका विषय है। विधि-निषेध, नीति-मर्यादाकी बातें उसके लिये कोरी वकवास है। हमका जादू जिनपर चल चुका है, वेणु-माधुरीके रसमें जिनका मन व्य गया है, विंध गया है, खग-मृग आदि वनचरोंके मन-की गतिकी तरह जो उसमें विथकित, विजडित हो गये हैं, ऐसे गोपाङ्गनाओं के हृंदय भला कैसे धीर, गम्भीर, संयत, सगत रह सकते हैं। 'सुन्दर बदन' की 'कुटिल' अलकोंमें वे तो अटक-अटक कर रह जाते हैं। रसिक प्रीतमके मधुर- मिलनसे विञ्चत उन हृदयोंकी वियोग-वेलाके क्षण कितने असह्य हैं, इसे एक पदमें देखिये-

काल यह बिख़्रन सहयौ न जाइ।

जानि न परयो रहत ढिंग मोकों अब मन अधिक दुखाइ॥ धीरज रहै नहिं चैन नैननिकां फिरि फिरि चित पछिताइ। मिलिबो कठिन मोहिँ सूझत है तन तो डास्त विस्ह जराइ॥ भुतें क्यों वे बात रावरी चलत कही मुसकाइ। (रसिक प्रीतम) कीजें करुना जो भेंटों अंग लगाइ ॥

वियोगका आवेग वढ रहा है। विरहकी ज्वाला उसके अङ्ग-अङ्गको जलाये दे रही है। प्रियतमके नित्य, निरविध मिलनके क्षणोंमें वियोग कितना तीखा होता है, उसमें कितनी दाहकता है, इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती थी। आज वह इस पीडाको परख सकी। रह-रहकर पछता रही है, यह सब क्या हो गया। क्यों और कैसे हो गया ? रूप-दर्शनके लिये आँखोंकी प्यास, प्रीति-रीतिके लिये हृदयकी आकलता। सभी प्रकारसे वह अधीर है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्यारेके वियोगमें जल-जलकर राख हुआ जा रहा है। सह लेती वह, इस सारे आवेगको, यदि उसकी कोई मर्यादा, उसके पानेकी अवधि होती। पर जब 'मिलियौ कठिन मोहिं सुझत है,' यह चिन्तन करने लगती है तो वह निराश अन्धकारमें खोई-सी रह जाती है। उसे वह दर्दीली, गम्भीर घड़ी याद आ जाती है, जब कन्हैयाने जाते समय मुस्कानभरी वाणीमें वेगि ही छौट आनेका आश्वासन दिया था । 'रसिक प्रीतम'की करुणापर विश्वास करनेका यही उसके पास एक क्षीण-सा आधार है। 'भेंटों अंग लगाइ' की कामनाका इसीलिये वह आज साहस कर रही है। सर्वाङ्ग आइलेष ही उसके देह-व्यापी विरहकी तपनके शमनका उपचार है। विरहकी तीव्रता, उसके उपायका एक और संकेत वह स्पष्ट-स्पष्ट रख रही है, जिसमें उसके इस विरह-ज्वरका निरूपण, विश्लेषण है-

बिरह ब्याप्यों मेरे सब अंग। सीतक बृथा उपाय करत क्यों काट्यो मैन-मुजंग ॥ जो पाऊँ तो कहाँ उतारै वह तो सखा अनंग। सदा जिआवति ही सो तों अब रही सुधा हिर संग ॥ मुरली मंत्र सुनायो काननि बेंदुक स्थामा मंग। अपनी जानि जाहि हे सजनी जाकी होइ अरधंग।। हों तो परगुन की चिक कैसे सब विच भई अपग। रहे प्रान तो हरिमुख देखों, 'रसिक' नहीं तो रंग।।

उतर रह

करिल । और म

सहचरियँ

प्रति निः र

वस

मह

एक

ऋि

अर्जु

बुल

अप

प्रणा

अर्जु

"

वयो

कहो शिरं

पाल

त्रिव

कह

"वर

अठा

काल

वनेग

यदि

'काट्यो मैन-भुजंग', अब कहिये, इस सर्प-दंशनकी विष-ज्वालाको नस-नसमें लहर-छहर रहे जहरको कौन उतार सकता है, सिवा उस 'नैन-मीत, साँवरेके ? कारे'की डसनका निरसन 'कारा' ही कर सकता है। श्यामसुन्दरको संयोगवश इन क्षणोंमें पा ले, तो वह इस विषको उतारनेको कहे, अनंग-सखा कृष्ण अपने ही मित्रकी दी हुई पीरका निश्चय ही निवारण कर देंगे । वह अमर संजीवनी तो हरिके साथ गयी, जो अनुपल कोटि-कोटि जीवनदानका सुख प्रदान किया करती थी।

आज तो स्थामसुन्दर उससे इतनी दूर चले गये हैं कि वह संजीवनी, कभी उसे अधिगत हो सकेगी, कौन जाने ... वहीं संजीवनी जो उन्होंने अङ्ग-अङ्गसे समेटकर, अनङ्ग-अङ्गके निचोड़रूपमें अपनी दंशीमें --वंशीके एक-एक स्वरमें सँजो रखी है। जिसका एक-एक स्वर विरहिणियोंके कानोंमें संजीवन-मन्त्र बनकर आता है और इसी संजीवन मन्त्रका प्रतिरूप, प्रतीक-भावनासे मानो वृषभानुनन्दिनीके 'बेंदुक' में वंदी है। श्यामा-श्याम दोनों ही उसकी रस-मोहिनीसे परस्पर मुख हैं। 'अद्धीङ्गिनी जो ठहरी, उन्हें अपना समग्र रस-तत्त्व उन्होंने सौंप रखा है। एक वह अभागिनी, विञ्चता है, जो स्वगुण, अपने आराध्य प्रियतमसे विलग होकर अपनी जीवन-गतिमें लड़खड़ा रही है-अपङ्ग और अपरूप होकर निष्प्राण-सी-निश्चेतन-सी विलख रही है।

वियोगकी जितनी अवधि बढ़ रही है तादात्म्य उतना ही प्रगाद होता जा रहा है। उसकी तन्मयताकी पराकाष्ठाका थोडा आभास लीजिये-

सालति पियकी बदन निहारि। सूकि गई ठाड़ी ज्यों अनल लपट सुकुमारि॥ पलक न परे सीस नहिं डोले चरन चलैन विचारि। कहि न सकी। मनकी बतियाँ कछु रही विरह मन मारि॥ भई दसा ज्यों चित्रपूतरी सकी न बसन सँमारि। ·रसिक' प्रीतम बिछुरत तिय जियकी दीनी प्रीति उघारि II

कितनी एकरस-एकरूपता है, किसीमें खोयी-सी-अपने आपमें, अपने भीतर समाये हुए, रग-रगमें विलसित 'प्रिय' में भूली-सी ।

कितने विलक्षण सात्त्विक भाव हैं। विरह्की ज्वालामें वह सुकुमारी खड़ी-की-खड़ी सूखी जा रही है, जली जा रही है वियोगकी लपटोंमें। उसके सौकुमार्यके साथ उसके नवयौवनकी

सहज मुलभ कोमलताकी कल्पना कीजिये, जो किसी मुक्क गुलाव-पुष्पकी स्त्रिग्वता और झीनी-झीनी, भीनी-भीनी के वूँवट-पट महकके मोहक आवरणोंमें सिमिटा हुआ हो। वह तो 🎼 रख दि तापसे ही कुम्हला सकता है। फिर आगकी लपटोंमें पड़काः ही ऐसी भला क्यों न जलेगी ? कराल ज्वाल-मालाएँ वियोगकी कोई व्य शिखाएँ, वनमें लगे किसी दावानलकी ही तो तरह हरी-भरी वन-राजिको देखते-देखते भस्मसात् कर देती है।

इसी तीखे गहरे वियोगकी प्रतिक्रिया है कि उसमें क धीरे जडता प्रवेश करती जा रही है, उसके अङ्गअह उसकी प्रत्येक अङ्ग-संचालनकी प्रक्रियामें। पलक न सीस नहिं डोले, चरन चले न विचारिं में उसकी हत गहरी अनुभूति और उसका क्रमिक प्रभाव स्पष्ट है। बी ·चित्रपूतरी' का रूप है, जो अपनी छायासे, किसी क्व कलाकारकी रेखाङ्कित तूलिका छिवसे अपनी ब अपनी विवदाता, प्रत्यङ्गमें पली पीडाका आभास म सकती है, परंतु जिसकी अभिव्यक्तिमें उसकी वाणी कुन है। किंतु वह अब अपने साहजिक, प्रकृतरूपमें आ गी जिससे उसके भाव-गोपनकी क्षमता भी उसमें नहीं हर् है। भले ही वह आज 'किह न सकी मनकी बितयाँ ह् और 'रही विरह मन मारि' की स्थितिमें हो, किंतु की प्रीतम विद्युरत तिय-जियकी दीनी प्रीति उघारि के अवस्यम परिणामको नहीं रोक सकी । चरम वियोगमें आत्माण कृत्रिम प्रयास नहीं टिक सकता । फिर तो 'चित्रपूत्री' अ उसका अपनेपर कोई संयम नहीं, कोई अनुशासन वि

यह सारा दोष वह अपने नेत्रोंके माये मढ़ रही है। ह और नेत्रोंमें जो आन्तर संघर्ष छिड़ता है, इस मानकी नगरीमें अन्ततः नेत्र ही उसमें विजयी होते हैं। प्य दुनियाँ भें यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। 'गुप्त प्रीति'र्न के द्वारा बाहर आ जाती है—

राखित ही पिय प्रीति गुपुत इनि नैनिन ही हो दई उमी देखिन लगी बदन छिब इकटक सबिहनमें घूँघट पटी विसी छुटि गयी सकुचि कुटिल कच देखत सहचरि सिगरी रहीं विवारी 'रसिक' प्रीतम तुम ही मनमोहन फेरि फेरि फिरि होँ रही पित्रही

स्पष्ट अभियोग है, खुला आरोप है। 'इनि नैनिती उघारि।' क्या उसने चाहा था कि वह उन प्रियतम सुन्दरकी 'बदन-छिबि' को इकटक देखती रहे ! की नहीं, उसके नेत्रोंने उसे विवश किया। गुरुजनोंकी बाँबी

संख्या 8]

सी कु

ास भा गी कुणि

ना गयी हीं रहत

तेयाँ व

न्तु भी

वश्यम

त्मगोपन

री' ठह

सन न

ते है। हैं

नवकी

称'所

ई उधी

विसारि

रे बिचारि

पचिहार

नि है।

यतम 🐔

१ कर्दा

ते बाँधी

कूरिया । प्रियतमके रूपका आकर्षण, सौन्दर्य, माधुरी रख दिया । प्रियतमके रूपका आकर्षण, सौन्दर्य, माधुरी रख दिया । प्रियतमके रूपका आकर्षण, सौन्दर्य, माधुरी रख दिया । प्रियतमके रूपका आकर्षण, सौन्दर्य, माधुरी स्वा है। अभिन्नताकी परमकोटिमें प्रिय-प्रियतमके बीच कोई व्यवधान रह भी तो नहीं सकता । एक रूप दूसरेमें उतर रहा है, समा रहा है, ऑखोंके द्वारा हृदयमें मनमोहनकी कुटिल अलकावित्योंने उसके संकोचकी परिसीमाको, शील और मर्यादाके कटोर कगारोंको दा दिया, लिन्न-भिन्न कर दिया । लोग देखते हैं, आखिर इसे हो क्या गया है ? किन्न स्व सहचरियाँ उसके इस दुस्साहसको, शिष्टाचारकी मानी हुई सम्पराओं और सन्नारियोंके आचरणके तथाकथित प्रतिमानोंके प्रतिनिःसंकोच विद्रोहको देखकर चिकत रह जाती हैं ।

वसः यही तादात्म्यकी परमावधि है। रूपाकर्षणः अनुरागः,

आसक्ति आदि और विरह्मी विभिन्न क्रम-कोटियोंको पार करता हुआ उसका प्रेम परिपक्त्रता—पूर्ण परिपाकको पहुँच रहा है, तादात्म्य उसका अन्तिम सोपान है। यहाँ गोपाङ्गनाके हृद्यको छेकर उसमें प्रणयकी पूर्ण सिद्धि बतायी है भक्त, कवि आचार्योंने। साधन ही साध्य-फल जहाँ हो जाता है, वही वास्तविक भक्ति है, पुष्टि है।

श्रीहरिरायजीने इसी पृष्टि-भक्तिका आदर्श भावुकांके समक्ष रक्खा है। वे जहाँ भक्ति-भावनाके विधायक हैं, वहाँ स्वयं एक साधक गोपी-हृदय हैं, जो भक्ति-काव्यके अनुगायन, अनुचिन्तनसे साधनाकी उच्च कोटियोंमें पहुँचकर साध्यके साथ एकात्मभाव पाते हैं। अपनी 'रसिक-प्रीतम'से एकरसता पाकर उनका गोपी-भाव पूर्णतः प्रतिकटित होता है।

आर्य-संस्कृतिका गौरव

(रचयिता—श्रीशिवकुमारजी सूद बी० ए०, बी० टी०)

महाभारतके युद्धके पूर्व, एक दिन, ऋषिवर्य वेद्व्यासने, अर्जुनको बुलाया, अपनी पर्णकुटीमें । प्रणतानन हो अर्जुनने पूछा-"त्रिकालज्ञ महर्षे ! क्यों बुलाया इस सेवकको, कहो, क्या आज्ञा ? शिरोधार्यकर, पालन करूँ उसका।" त्रिकालद्रष्टा महर्षि कह उठे— "वंत्स ! भावी 'महाभारत'में, अठारह अक्षौहिणी सेना, कालका कराल ग्रास बनेगी। यदि उसकी विजयश्रीका

श्रेय प्राप्त करना है, तम्हीं छोगोंको. तो मेरे एक आदेशका पालन करना है। शक्ति-संचयके लिये. तपोमय जीवन-यापनके लिये, संसारकी कोलाहलमयी, दुराकर्षणोंसे भरी, नगरीको छोडकर, जीवनकी कृत्रिमताओंसे अलिप्त रहकर, कामकी विनाशकारिणी वासनासे विमक्त होकर, प्रकृतिके प्रांगणमें, किसी सुरम्य वनस्थलीमें, अकेले तुम्हें रहना होगा।" ''जो आज्ञा,'' महर्षे ! ऋषिवर्यका आशीर्वाद ले,

चटु

अर्

पर्ण

आ

कृति

बंद

सम

सम

कुछ

कुछ

पूछ

"ह

मिल

नार्र

साव खोत

देख

नतः

मन

बोहे

इस आन

कोई

किस

आर

नेया

पूर्ण

"3

स्वा

यौव

मात

तपो

वय

"FI

यथानिर्दिष्ट मार्गपर चल पड़े अर्जुन ।

2

सुरम्य तपोवन, फलित-पुष्पित, पाद्पांसे शोभित, मन्द-मन्द प्रवाहिणी, पयस्विनीका मधुर कल-कल कलरव, प्रकृतिकी इस अपूर्व रामणीयकतामें, नदी-तरसे कुछ दूर पर्णकुटी थी अर्जुनकी । आहार-विहारमें, स्वप्नावबोधमें, कर्मों में युक्तताका पालन करते हुए, अर्जुन अपना तपोमय जीवन समोद करने लगे यापन ।

3

कुछ वर्ष इसी भाँति
गये बीत।
एक दिन
अरुणोद्यकी
अनुपम बेलामें,
अर्जुन कुटियासे
बाहर आये।
प्राकृतिक छटाका
आनन्द लेते हुए
नदीकी ओर चले।
इन्द्रभेषित,
अर्जुनके
परीक्षणार्थ,

देवलोककी

रूपलावण्यकी जो साकार प्रतिमा थी, उधर ही आ गयी। देखते ही अर्जुनको मनत्र-मुग्ध हुई। सुगठित शरीर था उसका, मुखपर अमित तेज था, अप्रतिम कमनीय रूप था, अपलक नेत्रोंसे उसके सर्वातिशायिनी सौन्दर्यकी माध्वीकताका रसपान करने लगी, लता-विटपकी ओट हो यथापूर्व अर्जुन, अपनी कुटियामें, स्नानादि प्रातःकृत्य कर चले आये। ईश्वरके भजनमें, योगके अनुष्टानमें, मग्न हो गये।

.

विरभ्र आकाश था, पूर्णिमाका मञ्जुल मादक मयंक सुरमित समीरका सर्वतः सोन्माद संचार था। निशीथकी उस वेलामें, सर्वत्र नीरवताका साम्राज्य था। प्रेमकी पुजारिन बन, अर्चनाके ले सुमन, सर्वाभरणालंकृता वह, अलस-पलकसे, सघन अलकसे,

सुन्दरी उर्वशी,CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hआंक्ख कमरु-

दळ नयन युगलसे, चटुल चरणोंसे अर्जुनकी वर्णंकरीतक आ पहुँची । कृटियाका बंद द्वार था। धीरेसे खटखटाया उसे. ममाधिस्थ अर्जनकी समाधि हुई भन्न, कुछ सशङ्कित हुए पर कुछ सँभल गये मगर। पुछा, ''कौन ?" "द्वार खोलो", मिला उत्तर। निशीथकी निस्तब्धतामें, नारीका शब्द सुन सावधान हुए अर्जुन । खोला द्वार, देखते ही नतमस्तक हो गये. मन-ही-मन प्रणाम किया। बोले, "कहो देवि ! इस असमयमें क्यों आना हुआ ? कोई विपत्ति आन पड़ी, अथवा, किसी निशाचरसे पीड़ित हुई, आदेश दो मुझे, क्या अभिलाषा तुम्हारी पूर्ण कहूँ मैं।" "अपने इस स्वर्गीय सौन्दर्यको, यौवनकी मादकताको तपोमय कठोर जीवन बिता क्यों कर रहे नष्ट हो।" "स्पष्ट बतलाओ, देवि !

चाहती क्या हो ?" "हृदयमें चिर संचिता, एक है अभिलापा। पूर्ण कर देते. जीवनभर मधुरस्मृति त्रमहारी. बनी रहती। त्रम्हारे जैसे ही गुण रूप बलमें पुत्ररतकी. 'माँ' बननेकी थी मेरी अभिलाषा ।" "तो मातेश्वरि, यदि पुत्रेच्छा बलवती है इतनी, तो क्यों न पुत्र रूपमें स्वीकार कर लेती मुझे। मुझे भी गर्व होगा, मेरी भी पूजनीया माता, सौन्दर्यकी प्रतिमा होगी साकार।"

इतना कहना था, देवोंने गद्गद हो, अर्जुनपर सुमनोंकी की वर्षा। उर्वशीने आशिष दी. जबतक तुम जैसे, आदर्श वीर, धर्मवीर और कर्मवीर, इस धरा-धामपर विद्यमान हैं. तबतक कर सकता कौन इसका प्रणाशं है। देवोंसे प्रेषित मैं, आयी थी परीक्षणार्थं, हुए सफल तुम इस परीक्षामें, जाओ वीर, अर्जुन मेरा, नहीं,

तुम्हारी माताका, आशीर्वाद है-इस भारत युद्धमें विजयश्रीका श्रेय तुम्हींको, तुम्हारे जैसे ही, आदर्श वीरोंको ।" शतशः नमन हो माँ भारतीके इन वीर सपूतींको । पुरातन आर्य-संस्कृतिके, जितने भी आदर्श मिलें, ग्रहणीय तस्व मिलें, अनुकरणीय उपदेश मिलें, ग्रहण कर उन्हें, जीवनमें हम लें उतार। अधुनातन भारतका तब निश्चय ही, होगा उद्धार। इस आदर्श आर्य-संस्कृतिको, नमन हो, बार-बार।

रामायण और राम-कथाकी सार्वभौमिकता

(लेखक-शीनवंदाप्रसादजी वर्मा)

प्रायः रामायणके वारेमें सभी लोग कुछ-न-कुछ जानते हैं और यह सर्वविदित है कि रामायण उसी ग्रन्थको कहते हैं जिसमें राम-कथाका वर्णन हो — जिसमें श्रीरामका यशोगान किया गया हो । इस न्यायसे सभी संस्कृतियोंमें राम-कथा पायी जाती है। सभी धर्म और सम्प्रदाय मानवताके ऊपर ही अवलिम्बित हैं तथा कोई भी धर्म या सम्प्रदाय विना मानवके चल ही नहीं सकता। इस न्यायसे संसारके सभी धर्मों में वीजरूपसे मानवता ही निहित है तथा पूर्ण मानवतामें ही पूर्णता निहित है। मानवकी चाह संसारको भी है और ईश्वरको भी। अन्तर केवल इतना ही है कि संसार अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिये मानवकी चाह करता है और ईश्वर मानवके कल्याणके लिये करता है। यथा-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (गीता १८।६६)

अव प्रश्न यह होता है कि क्या मानव किसी आकृति या जातिविशोषका नाम है ? तो कहना होगा कि मानव किसी आकृति या जातिविशेषका नाम नहीं है। साधनयुक्त जीवन ही मानव-जीवन है। 'साधनहीन जीवन पशुजीवन है— दिव्य चिन्मय और पूर्ण जीवन है। दिव्यता चिन्मयता प्रत्येक मानवकी चाह है। यह सबको मान्य है। प्रत्येक साधककी माँग वस्तुतः एक होते हुए भी भिन्नता प्रतीत होती है और यह भिन्नता तभीतक प्रती जवतक कि साधक विवेकपूर्वक अपनी वास्तविक अवस्क नहीं जान लेगा; क्योंकि साधक अपनी अविके कामनाओंसे अपनी वास्तविक आवश्यकताको ढके रही यद्यपि वास्तविक आवश्यकताका कभी नाश नहीं होती विवेकका अनादर साधकको अवास्तविक कामनाओं^{में ई} कर वास्तविक आवश्यकतासे विमुख कर देता है।

प्राकृतिक नियमानुसार मानवमात्र साधक है ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसमें करने, जानने और ^अ रुचि न हो । प्रत्येक मानव कुछ-न-कुछ करना ^{बा} और उसका किसी-न-किसीमें विश्वास भी है। जो ई करना चाहता है, वह किसी-न-किसी विधानको अवश्यह करता है। विधानके अनुसार की हुई प्रवृत्ति ही कर्तव

साध्य वही है जिससे देश-कालकी दूरी न हैं जो सर्वत्र और सर्वदा सत्य हो; वहीं साध्य है। हैं। साधकका साध्य वह नहीं हो सकता जिसकी प्राप्ति 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरित' साधनके परेका फलरूप जीवन हो और उसको भी साध्य नहीं कह सकते जो उत्तरि CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उस

1 \$

साध 意,

है, तव होक

साध आन

यह

साध प्रक ₹,

हो एक कि सम

मत नई नि

मत

अर् व्या आ तथ

मुन वेड्

नहं क्र अह

वन

विनाशयुक्त या असत् हो । साध्य वर्तमान जीवनकी वस्तु है, उसके लिये भविष्यकी आशा प्रमाद है। साध्यको पाकर फिर कुछ और पाना शेष नहीं रहता; क्योंकि साध्यकी प्राप्ति समस्त अभावोंका अभाव कर साधकको वास्तविक जीवनसे अभिन कर देती है।यद्यपि साधन तत्त्व एक है परंतु उसमें अभिन्न होनेके लिये व्यक्तिगत साधन अनेक हैं; किंतु इसका अभिप्राय नहीं है कि उन अनेक साधनोंमें एक दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है, सभी साधन किसी-न-किसी रूपमें साध्य-तत्त्वकी ओर गतिशील होते है, परंतु परिस्थिति-भेदसे जो साधनमें भिन्नता प्रतीत होती है, वह भिन्नता जब साधकका जीवन 'साधन' हो जाता है त्व अपने-आप मिट जाती है और फिर अनेक साधन एक होकर साध्य-तत्त्वसे साधकको अभिन्न कर देते हैं। इस दृष्टिसे साधन अनेक भी हैं और वस्तुतः एक भी। प्रत्येक साधककी आन्तरिक प्रेरणा एक है और उसके बाहरी स्वरूप अनेक हैं। यह रहस्य जानना जरूरी है।

प्रत्येक दर्शन साधनकी भूमि है। दार्शनिक भेदसे भी साधनमें भेद है, किंतु साध्यतत्त्वमें कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्रमें विलीन होकर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार समस्त मेद साध्य-तत्त्वसे अभिन्न होकर एक हो जाते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि जब सबका साध्य एक है, तव विभिन्न मत-सम्प्रदाय क्यों है ? तो कहना होगा कि प्रत्येक सम्प्रदाय, मत और वादकी उत्पत्ति व्यक्तिगत तथा समाजकी भूलोंको मिटानेके लिये होती है। किसी भी अच्छे मत तथा बादका जन्म अपने और दूसरोंके अहितके लिये नहीं है, अपितु व्यक्तियोंका कल्याण तथा सुन्दर समाजका निर्माण ही सभी मतों तथा वादोंका मुख्य उद्देश्य है। प्रत्येक मत तथा वाद साधन-दृष्टिसे [रुचि, अधिकार, परिस्थितिके अनुसार] आदरणीय तथा माननीय हैं, किंतु उनकी ममता व्यक्तियोंको पागल वना देती है। जिस प्रकार औष्रधका सेवन आरोग्वके लिये हैं, ममताके लिये नहीं, उसी प्रकार मत तथा सम्प्रदाय आदिकी अपेक्षा परिस्थितिके अनुरूप अपनेको मुन्दर बनानेमं है, परस्पर संघर्षके लिये नहीं। यह बात वड़ी विचित्र सी माल्म होती है कि लोग अपने अपने मत तथा वादकी प्रशंसा तो करते हैं, किंतु उससे अपनेको सुन्दर नहीं बनाते हैं और इस प्रमादसे न तो वे अपना कल्याण कर पाते हैं और न सुन्दर समाजका निर्माण ही। अतः मतः वाद् तथा सम्प्रदायकी आवश्यकता अपनेको सुन्दर बनानेके लिये हैं। मताग्रहको लेकर प्रचारके लिये नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनेको सुन्द्र बनानेके छिये किसी-न-किसी मत और वादको अवस्य अपनायेगा । आंशिक एकता भी किसी-न-किसी रूपमें सभीके साथ रहेगी । जिस प्रकार सभीकी भूख और तृप्ति एक है, किंतु भोजनमें भेद है उसी प्रकार प्रत्येक मत तथा वादकी साधन-प्रणालीमें एकता और भेद दोनों हैं । परंतु जवतक मानव अपने मतः सम्प्रदाय एवं वादके अनुसार अपनेको सुन्दर वनाकर उसकी सीमासे अतीत न हो जायगा, उससे परे फलस्वरूप जीवन न प्राप्त कर लेगा, तवतक उसके जीवनमें यथार्थ रूपसे पूर्णताका प्रादुर्भाव न होगा । इस दृष्टिसे सम्प्रदाय, मत और वादकी आवश्यकता एकमात्र अपनेको सुन्दर बनानेके छिये हैं, यह निर्विवाद सिद्ध है। व्यक्तिगत रुचि तथा योग्यता और सामर्थ्यका भेद होनेपर भी वास्तविक उद्देश्य मानवमात्रका एक है-पूर्ण, नित्य सत्य स्वरूपानन्दकी प्राप्ति । इसके लिये मानवमें परिपूर्णतम सर्वलोकोपकारी आदर्श चरित्रकी आवश्यकता है। चरित्र-निर्माण मानव-जीवनमें एक महान् वल है। उसकी आवश्यकता मानवमात्रको है। उसके विना मानव मानव नहीं हो सकता । वीतराग होनेमं ही चरित्रनिर्माणकी पराकाष्ठा है और वीतराग होनेमें ही पूर्ण मानवताका विकास सम्भव है। चरित्रनिर्माणमें ही अपना कल्याण तथा समाजका हित है। इस दृष्टिसे चरित्र-निर्माण जीवनका आवश्यक अङ्ग है।

चरित्र-निर्माण वास्तवमें अन्तः प्रेरणा है; क्योंकि किसीको भी चरित्रहीनकी आवश्यकता नहीं है । इस दृष्टिसे समाजको एकमात्र चरित्रवान् व्यक्तिकी ही आवश्यकता है। अपनी सम्पूर्ण निर्वलताओंको मिटानेके लिये सचरित्रता ही समर्थ है। किंतु मानवका चरित्र कैसा क्या होना चाहिये, तथा वैसा चरित्र किस प्रकार प्राप्त हो, इसे यथार्थरूपसे जाननेके लिये ही रामचरित्रकी आवश्यकता है; क्योंकि श्रीरामका मानव-चरित्र सबके लिये अनुकरणीय है। वैसे तो दो महान् अवतार मानवावतार हुए हैं। एक राम-अवतार, दूसरा कृष्ण-अनतार, किंतु श्रीकृष्णका अवतार सहज ही समझमें नहीं आताः क्योंकि उनकी सारी लीला ईश्वर-लीला ही रही। श्रीरामकी लीला ईश्वर-लीला होते हुए भी पूर्ण मर्यादित मानवचरित्रमें हुई । इसीसे वह मानव-मात्रके लिये अनुकरणीय हुई और समझनेमें भी वड़ी आसान मालूम पड़ती है। श्रीरामका जीवन मानवमात्रके जीवनसे घुला-मिला होनेके कारण सबको अधिक प्रिय है और आसानीसे समझमें आ जाता है।

रामचरित्र दर्पणके समान है, उसमें मानव अपने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मयता प्र य है। भीस प्रतीव

आवश्य अविवेश के रहा होताः ओंमें ह

और मा ना वा

जो स अवस्य ह कर्तव्य

制等 ाप्ति स

रा उत्परि

संख्य

ही र

प्रश्न

नहीं

या

कौश

19

धोर्व

साध

दोनं

अपूर

ग्रन्थ

सम्प्र

उस

राम

धा

वन

केव

रा

भन्य चारुचित्रको देखता है। ऐसा न होता तो एक ही रामके सम्बन्धमें अनेक मत न होते। एक ही रामका खरूप प्रेमियोंको प्रेमास्पद, तत्त्ववेत्ताओंको आत्मस्वरूप, असुरभावापन्न देहाभिमानियोंके लिये मृत्युके रूपमें प्रतीत होता है। यदि कोई कहे कि श्रीरामका रूप क्या है तो उसे कोई क्या कहे ? जैसा देखनेवाला, वैसा ही रूप। अतः राममें सौन्दर्यका दर्शन करनेके लिये अपनेमें सौन्दर्यकी अभिव्यक्तिकी परम आवश्यकता है।

जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रमु मूरित तिन्ह देखी तैसी॥ देखिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु घरें सरीरा॥ इरे कुटिल नृप प्रमुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरित भारी॥ रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रमु प्रगट कालसम देखा॥ पुरवासिन्ह देखे दोड भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

दो • – नारि बिरोकहिं हरिष हियँ निज निज हिच अनुरूप । जनु सोहत सिंगार धरि मूरित परम अनुप ॥

बिदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा । बहु मुख कर पग कोचन सीसा ॥ जनक जाति अवकोकिहें कैसें । सजन सगे प्रिय कागिहें जैसें ॥ सिहत विदेह विकोकिहें रानी । सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥ जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा । सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥ हिर भगतन्ह देखे दोउ भ्राता । इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥

अतः राम तो एक ही हैं, परंतु अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें दिखायी देते हैं।

कर्मवन्धनसे छूटनेके बाद ग्रुद्ध मुक्त जीवात्माओंको भगवत्-अनुभवरूप अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। उस आनन्दसे प्रेरित होकर वे यथोचित भगवत्-परिचर्यामें लगते हैं। उससे उनको एक अचिन्त्य विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है। बड़ी तृप्ति होती है। भगवत्-परिचर्या भी कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे भिन्न-भिन्न होती है।

तिंद्वणोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तिंद्वप्रासो विपन्यवो जागृवांसः सिमन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम्, एतत्साम गायन्नास्ते, येन येन धाता गच्छति तेन सह गच्छति, रसं द्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

—इत्यादि श्रुतियों में भगवान्के सदा दर्शन करनेवाले, स्तवन करनेवाले, सामगान करनेवाले, परमात्माके पीछे-पीछे फिरने-वाले, परमात्माका अनुभव करनेवाले मुक्त जीवोंका उल्लेख है तथा ऐसे ही नित्यमुक्त महापुरुपाने अपनी-अपनी उपासना-

पद्धतिके अनुसार भगवान् श्रीरामका यशोगान किया है। भाव-भेद होनेसे राम-कथामें रूपान्तर है, किंतु कथा कला एक ही रामकी है। यह बात सर्वमान्य है कि केवल गर्ल जुताईसे ही सुन्दर खेती उत्पन्न नहीं हो सकती, जवतक है उसमें तराई न हो। अर्थात् गहराईके साथ तराईकी में परम आवश्यकता है। तभी उत्तम फलकी उत्पत्ति के सम्भव है। यही हाल कर्मका है। कर्म देखनेमें कितना भी सुन क्यों न हो, परंतु यदि भावनामें तरावट नहीं है तो कर्म वेका जैसा है। भाव भेद रस भेद अपारा' के अनुसार सके अपने-अपने रामका गुण वर्णन किया। जिस प्रकार ए अनादि और अनन्त हैं, उसी प्रकार उनकी कथा भी अर्का और अनन्त है। भक्तोंने अपने-अपने भावोंके अनुस्व यशोगान किया है और उनके यशोगानका अधिक सबको है।

प्रायः काव्यके अर्थ तीन प्रकारके होते हैं—आधिमौति आधिदैविक और आध्यात्मिक। आधिमौतिक दृष्टिसे राम मार्के आधिदैविक दृष्टिसे राम ईश्वर हैं और आध्यात्मिक दृष्टिं राम सबके एकमात्र आत्मा हैं। दर्शनका आरम्भ इकि ज्ञानसे होता है। इन्द्रिय-ज्ञानके आधारपर ही सृष्टिकी सीई है, किंतु इन्द्रिय-ज्ञानके आधारपर जो सृष्टि सत् प्रतीत होते हैं, वही बुद्धि-ज्ञानसे सतत परिवर्तनशील प्रतीत होती है सहिमें सद्भाव भौतिक-दर्शनका पोषक है और सीई अनित्यता अध्यात्म-दर्शनको जन्म देती है। अध्यात्म-दर्शन आधारपर ही संदेहकी वेदनासे साधनका आरम्भ होता है आधारपर ही संदेहकी वेदनासे साधनका आरम्भ होता है और निःसंदेहतामें साधनकी पूर्णता सिद्ध होती है। आधि दृष्टिसे प्रत्येक वर्तमान कर्तव्य-कर्म अपने प्रियतमकी दृष्टिं पूजा है और कुछ नहीं। यह नियम है कि जिसकी पूर्जा जाता है। पुजारी पूजाके अन्तमें स्वतः उसीका प्रेमी काता है।

यदि इस वातपर विचार किया जाय कि रामायण के धर्म और सम्प्रदायों में क्यों है, क्या उसके विना काम के चल सकता था ? तो मैं कहूँगा कि बहुत अंशमें यह के ऐसी ही है, क्योंकि जीवनके सिद्धान्त बतानेवाले तो अं शास्त्र हैं, किंतु केवल सिद्धान्त जान लेनेसे ही काम के चलता । वह तो केवल हवाई महलके समान है । सिद्धान्त बतलाये गये हैं, वे अन्यान्य पुर्ण उपनिषदों, धर्मप्रनथों आदिमें तो पहलेसे ही हैं, किंतु उस आचरणमें कैसे लाया जाय, इस महान प्रश्नको हल कर्ण

संख्या 8]

म श

1 5 1

वस्त

उ गहां

तक है

की ध

ते होन

भी सुन्।

र्भ वेद्या

र सकते

कार गा

ो अनाः

अनुस

अधिक

वेभौतिः

म मान

क हि

इन्द्रिक

ते स्वीकृति

तीत हों

होती है

र स्रिक

म-दर्शन

होता है

आर्कि

नि दि

पूजा र

प्रेमी ब

यण स

काम 🦚

यह ब

तो औ

काम नी

सिद्धाः

त्य पुरा

र्शेषु अन

ल करिं

ही रामायणकी अपूर्व कुश्लता है । गीताने भी इस महान् प्रश्नको हल किया है, परंतु वह सर्वसाधारणके लिये सुलभ नहीं है। जीवनके सिद्धान्तको व्यवहारमें लानेकी जो युक्ति या कला है, उसीको धोग' कहते हैं--'धोगः कर्मस् बीगलम्"(गीता)। सिद्धान्तका (शास्त्र और योगका) अर्थ 'कला' है। संताने कहा है तथा इसकी पुष्टि ज्ञानदेवने भी की है। यथा धोगियाँ साधली जीवन कला यानी योगियोंने जीवनकला साध ली है। रामायण शास्त्र और कला दोनों है और इन्हीं दोनोंके योगसे जीवनका सौन्दर्य खिलता है । अपनी इस अपूर्व और महान् कुरालताके कारण ही रामायण सार्वभौम ग्रन्थ बना है। इसी कारण सभी देशों, प्रान्तों, भाषाओं तथा सम्प्रदायों में किसी-न-किसी रूपमें राम-कथा विद्यमान है; क्योंकि उसके विना काम नहीं चल सकता । यही रामायण और राम-कथाकी व्यापकता है।

रामायणका साधारण अर्थ है—राम+अयन अर्थात् (रामका घर) अपने रामके घरको आप जैसा वनाना चाहें) वना सकते हैं । केवल भावमें ही भेद होगा, राममें नहीं।

जैन रामायणों में वैदिक रामायणोंकी अस्वाभाविक वातोंकी जो आलोचना की गयी है, उसका कारण यह है कि जैन रामायणों-में रामको केवल मानवरूप दिया गया है और रामायणको केवल इतिहास माना है। उनमें रावणके दस सिर कैसे थे आदि दीखनेवाली असंगतियोंपर भी आलोचनाकी है। जैन रामायणोंके राम मुमुक्षु जितेन्द्रिय हैं और वैराग्य लेनेपर उनका मोक्ष वताया है। जैन सम्प्रदायमें मोक्षको ही सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। इसी कारण उसमें अवतारवादका प्रश्न ही नहीं उठता । धर्मसे वैराग्य और वैराग्यसे ज्ञानकी उत्पत्ति होकर मोक्षका प्राप्त होना मान्य है। इसपर गोस्वामीजीने भी अपना मत प्रकट किया है। यथा--

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छ-प्रद बेद बखाना ॥

रामायण केवल वर्तमान धारणानुकूल इतिहास नहीं है। केवल इतिहास होता तो लेखकोंको अपने भावानुसार लिखनेकी ब्ट न होती। अगर महात्मा गान्धीका चरित्र लिखना हो तो हम यह नहीं कह सकते कि किसीने अपनी भावनाके अनुसार लिया है; क्योंकि वह केवल ऐतिहासिक चरित्र है, इसलिये वह जैसा बाहरसे बना होता है, वैसा ही लिखना पड़ता है। ठेकिन रामके एक बाणसे चौदह हजार राक्षसोंका संहार हुआ, पत्थरकी शिला नारी बन गयी । ऐसी ही अन्यान्य सारी घटनाएँ एक दिव्य सृष्टिकी घटनाएँ हैं । व भौतिक सृष्टिकी कल्पना नहीं हैं। रावणके दस सिर थे और वानर क्रम्भकर्णकी नाकके एक छिद्रमें जाकर दसरेसे बाहर निकलते थे, तो कभी मुँहमें जाकर नाकसे बाहर निकलते थे। इसपर पहले मुझे भी संदेह होता था, इसलिये इस जानकारी-के लिये मैंने संतों और आचार्योंसे समझा और उन्होंने वतलाया कि ये सब अप्राकृतिक घटनाएँ हैं और वैसे देव और असुरोंका युद्ध हमारे हृदयमें सदा चल रहा है। रावण रजोगण है, कम्भकर्ण तमोगण है और विभीषण सत्वगुण है। महाकवि तुलसीदासजीने भी इस रूपकको अपने ढंगसे चित्रित किया है। यथा-

दशमौिल मोह अहंकार भ्रात तद् बिश्रामहारी। पाकारिजित काम महोदर दृष्ट अतिकायः मत्सर पापिष्ठ बिब्धांतकारी ॥ क्रोध

मोह रावण है, अहंकाररूपी उसका भाई कुम्भकर्ण है और शान्ति नष्ट करनेवाला कामरूपी मेघनाद है। यहाँ लोभ-रूपी अतिकाय, मत्सररूपी दुष्ट महोदर और क्रोधरूपी महा-पापी देवान्तक है।

यह जो मोहरूपी रावण हमारे हुदयमें है, इसे भी समझना है। जत्रतक इस रावणका नाश न हो जायगा, तत्रतक न तो हृदय शुद्ध हो सकेगा और न हम आत्मदर्शन ही कर सकेंगे। अतः एक रावण तो ऐतिहासिक है और एक हमारे जीवनमें है । इस प्रकार नित्य राम-रावण-युद्ध हो रहा है। मोहरूपी रावणके दस सिर ही होते हैं और इसी मोहमें फँसकर ही मानव अपने जीवनके वास्तविक लक्ष्यको भूल जाता है। इसीसे गोखामीजीने इसको केवल घटनाओंको बतलानेवाला इतिहास नहीं, विलेक भववन्धनको काट देनेवाला 'परम पुनीत' इतिहास कहा है। यथा-

कहेउ परम पुनीत इतिहासा । सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा ॥

इतिहास तो बहुत-से लिखे गये हैं, परंतु ऐसा परम पुनीत इतिहास किसीने नहीं लिखा है, जैसा कि गोस्वामीजी-ने लिखा है।

अनेक विद्वानोंका मत है कि श्रीवाल्मीकिजीने भगवान् श्रीरामको महामानव या मानव ही माना है, परंतु ऐसी बात श्रीवाल्मीकीय रामायण भलीमाँति पढ़नेपर सिद्ध होती । अवस्य ही हमें प्रसन्नता इस बातकी जरूर होती है कि

आखिर रामको कुछ-न-कुछ माना तो है । ईश्वर न सही, महामानव ही सही । ये उन महानुभावोंसे तो अच्छे ही हैं कि जिनकी समझमें कुछ भी नहीं आया तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि यह सारी कपोल-कल्पना है। भाई! बदि हम कहें कि आप अपनी कल्पनासे ही क्या रामायण लिख सकते हैं तो विना इन रामायणोंको देखे आप कुछ भी नहीं लिख सकेंगे; क्योंकि राम तो कल्पनातीत हैं।

अब देखना यह है कि श्रीवाल्मीकिरामायणमें राम कौन हैं। केवल एक-दो उदाहरण ही यहाँ लिखे जाते हैं-यदापि रामके साक्षात ईश्वर होनेके प्रमाण प्रत्येक काण्डमें हैं, परंतु 'थोरे महँ जानिहहिं सयाने 'का आधार ही काफी होता है।

१-बालकाण्ड (सर्ग १८) में-प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्। कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ १० ॥ इसीका भाव तुलसीकृत रामायणमें है-भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी। हरिषत महतारी मुनि-मन-हारी अद्भुत रूप निहारी ॥ इसमें श्रीरामका दिव्य रूपमें प्रकट होना वताया गया है। २-किप्किन्धाकाण्ड (सर्ग २४) में ताराने श्रीरामसे विनय की-

त्वसप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च। अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः॥३१॥

अर्थात् तुम अप्रमेय (देशकालकी सीमासे रहित) और दुरासद् (बड़ी कठिनतासे जाननेमें आने तथा प्राप्त होने-वाले) हो, जितेन्द्रिय हो हुपीकेश या इन्द्रियातीत हो और उत्तम धर्मोंबाले हो। तुम्हारी कीर्ति सदा अक्षीण है—कभी नष्ट नहीं होती और तुम विचक्षण—विशेष ज्ञानवान् हो। पृथ्वीके समान क्षमावान् हो तथा सुन्दर अरुण नेत्रोंवाले हो।

इसमें अप्रमेय तथा दुरासद्से रामको निराकार और जितेन्द्रिय इत्यादि कहकर रामको साकार कहा है।

३-सुन्दरकाण्ड (सर्ग १३) में--नमोऽस्तु रामाय संलक्ष्मणाय देव्ये च तस्यै जनकारमजायै। ननोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्राकंमरुद्रगणेभ्यः ५९

इसमें श्रीरामको शिव आदि देवताओंसे पहले नमस्कार किया गया है।

४-सन्दरकाण्ड (सर्ग ५१) में-सर्वाह्रोकान् सुसंहत्य सभूतान् सवराचरान्। पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥३१। अर्थात् महायशवाले राम चराचर भूतोंसिहत सव लेहें का सम्यक संहार करके फिरसे उसे सुजनमें समर्थ है।

इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी रामको ईश्वर ही माना है। अ केवल लीलामें राम मानव है। अब पाठक ही निर्णय कर हैं।

अध्यात्मरामायणके राम ब्रह्म हैं। गोस्वामी तुल्सीयाः कहेउ व जीका तो कहना ही क्या है। उनके राम तो परात्पर ब्रह्म-'विधि हरि संभु नचावन हारे' हैं। अब केवल एक बात ह सती संव जाती है कि वाल्मीकिरामायणमें अन्तमें सीता-परित्याकं भगवान कथा है और तुलसीकृत रामायणमें नहीं, यह भेद स्रो इसमें पहिली बात तो यह है कि लेखक सभी बातें लिखे है यह आवश्यक नहीं । तुलसीदासजीने यह अप्रिय प्रसंगत लिया। दूसरी वात यह है कि आदिकवि महर्षि वाल्मीक्षि उपासना सीता-तत्त्वकी उपासना है। उपासककी वह उपास ही क्या, जिसने अपने उपास्यको प्राप्त न कर पाया। विचाले की बात है कि क्या सीताको वनवास देनेके लिये वाल्मीह आश्रम ही था और कोई जगह न थी ? जरूर होगी परंतु सीतातत्त्वको महर्षि वाल्मीकि जानते थे और उर्ह अपने काव्यमें सीता-चरित्र ही लिखा है। यथा—

कान्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्। चरितव्रतः॥ १। १। १। हो रहे पौलस्त्यवधमित्येवं चकार रही महाकवि गोस्वामीजीकी वात तो उनके रामकी ^{ग्री} स्वयं जगन्माता सतीजीने की और यह विचारकर कि कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु तह यह बात भी ठीक है कि जब राम ब्रह्म हैं तो ब आपका

संयोग-वियोग नहीं होता । क्योंकि वे तो-सिचदानंद प्रथाम वैध जाः अनामा । अज एक अमीह अरूप —हैं । फिर, वे वनमें नरकी नाई विरह विकल हैं कारे प बहुत विं करके वि सीताको क्यों हूँ इरहे हैं ? इसपर सतीजीने

* इस सम्बन्धमें गीताप्रेससे प्रकाशित महाभारत मासिक कि वर्ष ५ अंक १२ में ''वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीराम प्राप्ता CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

किया उ संतोष 9

संख्या

लक्ष्मणः सतीको केवल ए

भ होते अ अधमोंव

एक प्र **हा**लहीमें

नर्मदात बाल्यका

आपका किया

किया और शिवजीने भी बहुत समझाया, परंतु सतीके हृद्यमें संतोष न आया। तब उन्होंने रामकी परीक्षा ली। यथा---

पुनि पुनि हृद्यँ विचार करि धरि सीता कर रूप। आगे होइ चिक पंथ तेहिं जेहिं आवत नर भूप॥

इस प्रकार जब सती गयीं तो उमाके वेषको देखकर किकी लक्ष्मणजी तो चिकत हो गये। परंतु राम अन्तर्यामी सर्वज्ञने नव हैं। सतीको तुरंत पहिचानकर सतीको प्रणाम किया और उनसे केवल एक ही बात पूछी-

ल्सीता कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतु । विपिन अकेित फिरहु केहि हेतू ॥

भगवान श्रीरामके इस गृढ तथा मृदु वचनको सुनकर वात है सती संकोचमें पड गयीं और सतीजीको जो संदेह था, वह रित्याकं भगवान्ने दूर कर दिया---

सर्ती दील कौतुक मग जाता । आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥

फिरि चितवा पार्छे प्रमु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर बेषा॥ × × × × × सोइ रघुवर सोइ लिछमनु सीता । देखि सती अति मई समीता ॥

इसिल्ये प्रारम्भमें ही जब सीता-रामसे नित्य संयोग, उनकी अभिन्नता, व्यापकता और सर्वज्ञता प्रभावित हो चुकी, तव अन्तमं सीताके परित्यागका कोई प्रश्न ही नहीं रह

गिरा अस्थ जरू बीचि सम कहिअत मिन्न न मिन्न॥ दोनों ही महाकवियोंके भावोंमें तो देखिये, कितना माधुर्य है। और फिर आप विचार कीजिये। रामका राज्य तो सारे भूमण्डलपर था-

भूमि सप्त सागर मेखका। एक भूप रघुपति कोसका॥ इसीलिये रामकथा भारतके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी पायी जाती है और आज भी सबकी 'रामराच्य'की ही माँग है।

भक्तगाथा श्रीदिगम्बर मौनीजी महाराज

(लेखक-स्वामीजी श्रीजयरामदेवजी)

भारतवर्षमें अनादिकालसे ऐसे प्रतापी महापुरुष होते आये हैं कि जिनके तपोबलसे एवं भक्तिबलसे अनन्त अधमोंका सहजहीमें कल्याण होता रहा है। ऐसे ही महापुरुषोंमें एक प्रसिद्ध महात्मा श्रीदिगम्बर मौनीजी महाराज अभी हाल्हीमें हुए हैं कि जिनके बनाये गीत प्रेमी-भक्तोंके कण्ठहार । ४। १ हो रहे हैं। उन गीतोंमें अमर आनन्दानुभव मिश्रित है।

निर्की पी क्रिया क्रिया विक्सिक १८१३ में हुसंगाबाद जिलेमें नर्मदातटपर एक ब्राह्मणके गृहमें हुआ था। आपका मन बाल्यकालहीमें ज्ञान-वैराय्यके रंगमें रँग गया। घरके घंधों में आपका मन नहीं लगा । पिताने एक सुन्दरी विश्रकन्यासे तो 🌃 आपका सम्बन्ध करनेका निश्चय किया, परंतु आपने विचार किया कि विवाह हो जानेपर निश्चय ही सायाके बन्धनमें प्रभाम वैभ जाना पड़ेगा । मेरे हृदयमें आजीवन ब्रह्मचर्यसे रहकर कर है कि से कि से किस हुए हो चुका है । अब यदि मैं विवाह किल हैं करके फिर भागूँगा तो पत्नीको त्यागकर तपस्याके लिये वनमें ज्ञाना अपराध होगा।अतः पहले ही भाग जाना उत्तम है। ऐसा निश्चवकर आप अर्धरात्रिहीमें भाग निकले। साधु-वेष बनाकर

निकट बर्फीले पहाड़पर रहते हुए आप तप करने लगे। तपस्याके प्रतापसे आपको सिद्धियाँ प्राप्त हुई । साक्षात् श्रीबदरीनारायण भगवान्ने कृपा की। वे अन्य रूपोंमें दर्शन दे-देकर भोजनादि पहुँचाते रहे। तप एवं कृपासे आपको ऐसी शक्ति प्राप्त हुई कि भयंकर शीतऋतुमें भी आप वर्फपर हिमालयमें पड़े रहते थे। इस प्रकार बहुत वर्षोतक उत्तराखण्डमें रहे । बीच-बीचमें अनेक देवताओंके दर्शन आपको हुए ।

एक बार भगवान् शंकरजीने आपको आज्ञा दी कि 'अयोध्या जाओ और श्रीराममन्त्र ग्रहण करो। तब भगवान्का साक्षात्कार प्राप्त होगा ।' इस आज्ञाको श्रीअयोध्या आये और श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें दीक्षित होकर श्रीसरयूतटपर एकान्तमें श्रीराममन्त्रका अनुष्ठान करने लगे।

श्रीराममन्त्रका अनुष्ठान करते कई वर्ष जब बीत गये, तब एक दिन आपको प्रभुके विरहमें विशेष व्याकुलताका उदय हुआ । उसी विरह-दशामें आएको दिव्य लीलाओं के दर्शन हुए । उसी दशामें आपको सखी भावना जाग्रत् हुई ।

(1 11391

लेवा

ब्रह्म-

प्रसंग न

ल्मीक्रि उपासन

विचारि वाल्मीहि

होगी

गीत बनने लगे। एक दिन्य गीतमें प्रियतमसे मिलनेकी प्रार्थना है-अवधी भाषामें वह गीत इस प्रकार है-

पिया प्यारे दरस दिखलाय जाउ हो। लाड़िले? मनहरन अवध जाउ हो॥ छिनमरि नयन मिलाय बिरह बिकल निसि दिन न परत कला जाउ आय रघुनंदन अब दरसन बिन ध्मीन' चाहत मरन हो॥ छिब बरषाय जाउ अमृत

इस पदको अनुरागरंजित हृदयसे जब आपने गाया तो उसी समय उनके सामने सहसा पूर्ण ब्रह्म श्रीकौशल्यानन्दन भगवान् प्रकट हो गये। प्रभुके दिव्य दर्शन कर आपने दण्डवत् प्रणामके पश्चात् प्रार्थना की कि-

प्रियतमके दरसन किये रही न अब कछु चाह। चाह यहै करियो सदा, प्रीति रीति निर्वाह ॥

प्रमुने बारंबार वरदान मॉॅंगनेके लिये कहा, आपने अन्य कुछ न माँगकर यही माँगा कि-'सखीरूपमें में सर्वदा आपके चरण-कमलोंकी सेवा करूँ। ' एवमस्तु कहकर-शृङ्गाररसमयी उपासनाका वरदान देकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

उस समयसे आप प्रेमोन्मत्त दशामें रहने लगे । आप मानसी भावनामें दो-दो दिन मूर्च्छित पड़े रहते थे। उस दशामें आपको लँगोटी-अँचला पहननेतककी सुधि नहीं रहती थी। तबसे आपने वस्त्र पहनना ही छोड़ दिया। दिगम्बर हो गये । सनकादिकोंके समान जीवन्यक्त हो नंगधडंग विचरण करने लगे । साक्षात्कार होनेके पश्चात् ही आपने मीन घारण कर लिया । हाँ, कभी कुछ लिख देते थे । अथवा कभी कोई प्रेम-तरंग आयी तो एकान्तमें भगवानके प्रेमसय गीत अवस्य गां उठते थे । वैसे कुछ नहीं बोलते थे । साक्षात्कार होनेके बाद आपको पुनः मिलनके लिये विकलता होने लगी । उस दशामें वे यह गीत गाया करते थे---

> सखी री ! मन के गये अवधिकशोर ॥ अवलोकनि CC-0. In Public Domath Grukul Kangri Collection Hazidwar है — योगवलसे आपको दिन्य हिं मुसकानि मृदु

मनहुँ मदन सर भारतः कमल हगनकी कोर॥ वँधि गयोः अनूप रूप मन प्रेम की परम होर । मन सुधि बिबस भई तन बिसरी; वहि चितय रही ओर ॥ अनुराग पुरुकि तनः चित प्रमुदित शिश ज्यों ओर चकोर। मधुर छिब होत निरखतः पियत हग स्धा कानिक्का मरजाद लाज निकसि गई तुन निसिदिन 'मौन' मुदित मन बिचरतः खोर ॥ नगर

एक बार आप श्रीजनकपुर दर्शनार्थ गये। वहाँग करता था राघवेन्द्रसरकारने आपको दूर्हारूपसे दर्शन दिया। उसर समझकर आपको यह गीत स्फुरित हुआ---

जनक नगर चिं देखों मेरी आली। दुलहा अति प्यारो प्यारी री। संवत् १० सखीं बनरा अति मणि झलकें। भूषन सिंगार अलकें। रुसत अरि श्रवण कुंडल बिसाल मीर तिलक सुभाल

मदन सोभितः सुरंग स्थाम तन मोहित। त्रिभुवन मन कर-कंकन मनहुँ मोहनी जन्त्र मनसिज पढ़ि डारो री।

प्राकें। कुरिल पंकज हग भुक्टि भलकें। मनह मनोज घरे सर हृद्य मुसकनि मनहरण मृदु चितवनि सर मारो है।

छिब छलकें। मदन मयक क्लकें। नर नारि बिलोकि भोन' मुदित मन रसिक रमन अवधेश दुकारों है।

हो गयी थ है। भक्त

श्रीम अयोध्याः कहीं, कर

करते थे श्रीम

सदा दीख हमने बच ही देखां बहुत आ

कि साथ था। आप

एक घटना हु बताया क

श्रीर आये । व आनन्द

प्रेमोन्मत्त राजकुमा उस सम

सँवारो

बना-बना गया कि पुष्पवृष्टि

उपस्थित गानेपर

मा

अ

15

11 5

1 1

ोर ॥

ोर ।

शेर ॥

ते ती

B H

हो गयी थी । इस सम्बन्धमें अनेकों घटनाएँ आपकी प्रसिद्ध है। भक्तोंने अनुभव किया और प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्राप्त हुए। श्रीमौनीजी प्रायः चार तीर्थोंमें विशेष रहा करते थे। अयोध्या, जनकपुर, चित्रकूट तथा कभी-कभी वृन्दावन । कभी कहीं, कभी कहीं। इसी प्रकार चारों स्थानों में आया-जाया करते थे।

श्रीमौनीजीकी आयु अधिक थी, किंतु आप एक-से ही सदा दीखते थे। वृद्ध से-वृद्ध पुरुष यही कहते मिलते थे कि इमने बचपनसे लेकर अपनी सारी आयुभर इनको सदा ऐसा ही देला है। इसलिये आपमें सब श्रद्धा करते थे। सौ वर्षसे बहुत अधिक आयु होनेपर भी आप इतनी तेजीसे चलते थे कि साथ चलनेवाले नौजवानोंको आपके साथ दौड़ना पड़ता था। आपकी खाभाविक चाल देखकर सबको महान् आश्चर्य हुआ हाँग करता था। आपमें सब सिद्धियाँ थीं। परंतु भक्तिरसमें बाधक उसर समझकर आप किसी सिद्धिका उपयोग नहीं करते थे।

एक बार आप अयोध्या आये। वहाँपर एक विचित्र ^{षटना} हुई थी । इस चरित्रको अयोध्याके पुराने महात्मा बताया करते हैं कि जिन्होंने आँखोंसे देखा है। यह विक्रमी री। संवत् १९३५ की बात है।

श्रीमोनीजी अयोध्याके प्रसिद्ध मन्दिर श्रीकनकभवनमें आये। वहाँपर प्रभु श्रीसीतारामजीका दर्शन कर आपको इतना आनन्द उमड़ा कि आपका मन हाथसे वेहाथ हो गया। मेमोन्मत्त दशामें आपने प्रभुकी दिव्य झाँकी देखी। श्रीदशरथ-राजकुमारने अपनी तिरछी चितवनका बाण चलाया। आप उस समय ऐसे विह्नल हुए कि मौन त्यागकर उच्चस्वरसे पद है। वना-बनाकर गाने लगे। उपद गान करते-करते ऐसा समा बँध गया कि आप नाचने भी छगे। उस समय सहसा आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उस दिव्य फूलोंकी वर्षाको देखकर उपस्थित दर्शकगण आश्चर्यचिकत हो गये । जिस पदके ती गानेपर पुष्पवर्षी हुई थी, वह पद यह है--

मारे मारे कमल हग बान हमारे हिय रामा लगे। अवनारे प्यारे अनियारे, भृकुटी विकट कमानः चितय चित प्यारे ठगे ॥ मारे

क्सुमित कंज मंजु मुख मुदुलितः मन मोहन मुसकानः सुधारस प्यार पगे ॥ मारे॰ विवस मई रस रूपदिवानी। टूट गई कुलकान। कर्म अपछारे भगे ॥ मारे॰ भौन' मुदित अब अवध छैलपर, वारौँ तन मन प्रानः रसिक मम सजन सगे ॥ मारे॰

श्रीमोनीजी महाराजका जीवनचरित्र अपार है। यहाँपर कुछ थोड़ा-सा संकेत मात्र संक्षितरूपमें लिखा गया है। आपके बनाये कई प्रन्थ पाये जाते हैं। वे सभी प्रन्थ अप्रकाशित हैं। आपने अपने भक्तोंको आदेश दिया था कि हमारे प्रन्थ न छपाये जायँ। इसीलिये ये प्रकाशमें नहीं आये। आपके प्रन्थोंमें 'मिथिलाविहार' तथा 'अवधविहार' एवं 'ग्रेमरससार' आदि प्रसिद्ध हैं । उन प्रन्थोंमेंसे कुछ आपके बनाये पद यहाँ-पर उद्धत किये जाते हैं। इन गीतोंमें मुझे दिव्य अनुभव रस प्रतीत होता है। आपकी चर्यामें तथा पदोंमें त्याग एवं अनुरागका विलक्षण सम्मिश्रण हुआ है।

आपका परमपद वि० सं० १९७६ में हुआ, पर आप अपने ललित गीतोंद्वारा सदा अनुरागी जनोंमें विद्यमान हैं। आपके ये. अवधीभाषाके गीत अयोध्याके मन्दिरोंमें बड़े चावसे गाये जाते हैं।

(8)

बिन देंखे नयनवाँ नहिं मानें ॥ जब सों रुखी माघुरी मूरतिः रूप रसिक हग दीवाने। मुख सरोज मकरंद पान करः भए मुदुकर मानो मस्ताने ॥ जिमि सिस ओर चकोर बिलोकत, रूप सुधारस चसकाने। अहो सुजान प्राण प्रिय तुम बिनुः कौन भीन मनकी जाने ॥

(?)

पिया प्यारे प्रिया रस माते अली ॥ मधु मकरंद पान क्सुमित रतः कली। पिय मघुकर सिय कमल चकोर चंद मुखः चारु कोचन रसके अमळी ॥ सुघा

T

बड़ा

ऑंबें-

भले उ

उसका

त्याग,

थे। प

उधर ३

मजाक,

थी।

उच्छूह्न

भय बन

मुसुकानि बिलोकनि: मंद मंद यसी । प्रीति परम परस्पर भौन' मुदित मन बसी जुगल छिवि, अरु जनक कली ॥ दसरथसुत

(3)

राम चरन अस नेह, न काग्यो ॥ मीन जैसे जलमें लीन मन, मधुप अनुराग्यो । पराग कमल त्यों न पियत हरिनाम अमिय रसः ज्यों चकीर चंदहि पाग्यो ॥ मन मुदित क्यों न करत सतसंग मनः भक्तिसहित संकर बर माग्यो । अति दुर्शम नर जन्म पाय जगः अजहुँ न हैं सचेत तू जाग्यो ॥ सतसंगति जिन कीन्हीं सादरः कृतक मान तिन त्याग्यो । मुदित प्रभु पद सरोज भुजुः नो न भने सो नानु अभाग्यो॥

(8)

क्यों न लगी मन लगन राम सों॥ कह्यो न सुन्यो पुलिक हिय हरि जस पग्यो रसन मन राम नाम निशि वासर मरत हम हम करत थिर न भयो चित कबहुँ काम सों॥ सिरोमनिः सुजान सक्ल प्रकार बहु धन सुधाम सों। कहा कीन्ह न तस सनेह संतन सों, जस राच्यो मन पुत्र बाम सो॥ रथ गज बाजि राज पदः कहा भयो सतकोटि श्राम सों। जो न धमीन' परहित परमारथ, भयो फल मनुज चाम सो ॥ काह

(4)

जन्म लेनेकाः भजो मन सम बेर् बेद सतसंमतः जगत्में सार है एहं। ब्ध सतसंग परहित करः यही सदग्रंथ कहते है बिना सतसंग नर जगमें पसूसम सोक सहते हैं। कहरें, मृगा बन बन भटकते हैं। निरख भ्रम नीरकी कि ज्यों ज्यों प्यास हो ज्यादा, दुखी हो सर पटको है। मुसीनतके सिवा जगमें नः सुख सपनेमें पाते बिषय इंद्रियके बस होकर, नहीं बैराग काते है। भ्रमरः गजः मीनः मृगः सलभाः बिषय इक इकमें मते उसके नतीजा क्यों न पार्येंगे बिषय पाँचो जो करते हैं नियम जग आने जानेका, रहे कोई न रहते हैं बने जो कुछ करो करनी यही रहती है कहनें। किया होगा सो अब पाया, करे सो फिर भी पावेग बिना करनी वृथा कथनी नहीं कुछ हाथ आवेग। बदी तेरे, न कुछ भी साथ जावेग नेकी दया दीनों पे पर हित करः समयपर काम आवेग। लड़की दिया ईश्वरने जो कुछ हो। उसीमें से ही कुछ देन रामविनो गया दिन फिर न आनेका, जो करना हो सो कर लेगा पैसेवाले नतीजा है, भलाई कर भला होंग काँटोंका, सिवा काँटोंके क्या होगा आवारा वृक्ष नाते हैं, सुता सुत बंधु औ दा वेभवका नेह काम आखिर में, गरज का मीत जग सार् प्रतिदिन किसी का तू न कोई तेरा अरे मन सोच दिल अर्थ और च फँसा भ्रम जाक माया का वृथा सब रैनके सार्वी धरमें रह पलक लगते ढलक जाता ए तन ज्यों ओसका पानी अनुकूल अरे अरमान क्यों करता दिना दसकी है जिंदगानी करके जो निकला स्वाँस अंदर से, वो फिर आनेकी आशा हा बृथा भें मेरा कह-कहकर, भटकता सुखका प्यासा है। हमें तेना न कुछ देना, मेरी मानो या मत मानी सिरीखी जब न्याय होवेगा, जो होवेगी सो तुम जानी आदि जमाना देख दुनियाँ में किसीसे कुछ नहीं कही उसके समझ कर दिल ही दिलमें सब, जगत् में भीन हो रहन उसे पहि

पदो, समझो और करो

(?)

नकली और असली प्रेम

UE ते है

ते हैं।

कते हैं।

ने हैं।

ति ह

ारते हैं

青青

हने ब्रे

हनेको।

पावेगा

आवेगा।

जावेग

आवेगा।

र लेगा

दगानी।

रामविनोद एम् ० कॉम ० पास करके कानून पढ़ रहा था। बड़ा सुन्दर सुडौल गौर शरीर, मनोहर मुख, विशाल आँबें—सभी चित्तको खींचनेवाले थे। दो वर्ष पहले, एक मले उच घरानेकी सुन्दर सुशील कन्या चम्पाके साथ उसका विवाह हो चुका था । वह मैट्रिकतक पढ़ी थी । उसके खभावमें शील, आर्यनारीके योग्य लजा, सेवा, लाग, नम्रता, सादगी—सभी एक-से-एक बढ़कर गुण थे। पर खाभाविक ही वह चटक-मटक, फैशन, इधर-उधर भटकना, पर-पुरुषोंसे मिलना-जुलना, गंदे हँसी-मजाक, रोज सिनेमामें जाना आदि पसंद नहीं करती थी। रामविनोद पढ़नेमें तेज होनेपर भी आजकलकी उच्छुह्वलताका शिकार था । उसीके कॉलेजकी एक ल्ड्की मनोरमासे उसका प्रेम हो गया। मनोरमामें रामविनोदकी मनचाही चीजें थीं। रामविनोदके पिता पैसेवाले थे, मनोरमाके पिता गरीव थे और शराबी तथा आवारा थे । मनोरमाने रामविनोदके सौन्दर्य तथा वैभवका लाभ उठानेके लिये उससे रोज-रोज मिलना, प्रतिदिन सिनेमामें जाना, इधर-उधर सैर-सपाटेमें घूमना और चम्पाके प्रति दुर्भाव भरना शुरू किया । चम्पा ष्रमें रहती, घरका काम करती, यथासाच्य रामविनोदके अतुक्छ रहकर सेवा करती, हर तरहसे त्याग स्वीकार शा ^{का करके} रहती, पर रामविनोद वात-वातपर उसे डॉंटता, सा^{ब्बा अपमान} करता, कहता—'मुझे मुँह मत दिखा, तेरी-न मिलान नालायक, असम्यके साथ मेरा क्या मिलान अदि। वह बेचारी चुपचाप सब सुनती, पर कभी उसके मनमें पतिके प्रति घृणा नहीं हुई । अवस्य ही उसे पतिके आचरणपर दुःख होता, इसलिये कि दुराचार-

सुख नहीं चाहती; किंतु पतिके भावी दुःखके चित्रोंको मन-ही-मन देखकर दुखी रहती।

इधर रामविनोदने मनोरमाकी रायके अनुसार यह निश्चय कर लिया कि वह मनोरमाके साथ दो-तीन महीने बाद विवाह कर लेगा। चम्पाके आचरणमें मिथ्या दोष दिखलाकर उसे तलाक कर देगा। सारी योजना वन गयी और पैसेके छोभी किसी एक वकीलकी सलाहसे सब प्रकारके मसाले भी तैयार कर लिये गये। अब तो मनोरमा और रामविनोदका खुळा दुराचार चळने ळगा। मनोरमाके पिताको शराब आदिके पैसे मिलते, अतः वे भी बहुत ख़ुरा थे। रामविनोदके पिता सीघे खमावके पुराने ढंगके आदमी थे। वे कुछ बोलते नहीं थे।

एक दिन रामविनोद अपनी नयी कारमें मनोरमासे मिलने एक निश्चित स्थानकी ओर जा रहा था। खयं ही कार चला रहा था। शराव पी रक्खी थी। नशेमें दुर्घटना हो गयी। कार एक पेड़से बुरी तरह टकरा गयी। रामविनोदकी एक टाँग टूट गयी । नाक तथा आँखोंमें और मुखपर बड़ी चोट आयी । चेहरा विकृत हो गया । पुलिसने अस्पताल पहुँचाया । घरवाळोंको खबर मिळी । बेचारे बूढ़े पिता आये, माता आयी और आयी रोती हुई चम्पा । अस्पतालमें इलाज हुआ। प्राण तो बच गये; पर एक टाँगको घुटनेके नीचेसे काटना पड़ा, एक आँख जाती रही, नाक धँस गयी तथा चेहरा भयानक हो गया। रामविनोदने कई बार मनोरमाको याद किया । बार-बार खबर भेजी, पर वह नहीं आयी । 'परीक्षाका समय समीप है, इसलिये आना कठिन है'—एक चिटपर लिखकर मेज दिया। चम्पाने पढ़कर सुना दिया। रामविनोद लंबी साँस खींचकर रह गया । इधर चम्पाने जो सेवा की, वह अकथनीय थी। वह खाना-पीना-सोना भय बनकार इनका भविष्य न बिगङ् ्राञ्च । के म्बह्यां अधनाकां अधुक्कार के कि होता है जा प्राप्त कराना ,

र्फेकना, मवाद साफ करना आदि सब काम अपने हाथोंसे करती । उसकी सेवापरायणता, परिश्रमशीलता, कार्य-पटुता और बुद्धिमत्ताको देखकर अस्पतालकी प्रशिक्षण विद्यालयों (ट्रेनिंग स्कूलों) में शिक्षा पायी हुई नर्सें भी दंग रह गयीं ।

डेद-दो महीनेमें रामिवनोद कुछ ठीक हो गया। एक दिन मनोरमा आयी। रामिवनोदके विकृत चेहरेकी ओर दृष्टि पड़ते ही उसने मुँह मोड़कर एक लिफाफा रामिवनोदके हाथमें दिया और 'मुझे अभी बहुत जरूरी काम है, ठहरना सम्भव नहीं, पत्र पढ़ लेना' कहकर बिजलीकी तरह कौंधकर तुरंत चली गयी। रामिवनोदने लिफाफेमेंसे पत्र निकालकर पढ़ा, उसमें लिखा था—

प्रामिवनोद ! मुझे खेद है कि मोटर-दुर्घटनासे तुम्हें चोट आ गयी। पर मैं क्या कर सकती थी। परिक्षाकी तैयारी करनी थी। उधर इन दिनों प्रभातकुमार-का प्रेम मेरे प्रति अत्यन्त बढ़ रहा था। वह कितना अच्छा है, तुम् जानते ही हो। उसके साथ मिलने-जुलनेमें उसको तथा मुझको बड़ा सुख मिलता है, अतएव बहुत-सा समय इसमें लग जाता है। इसीसे मैं आ नहीं सकी। फिर, वह अविवाहित है, तुम्हें तो चम्पाको तलाक करना पड़ता; उसमें यह झगड़ा भी नहीं है। दूसरे, तुम बुरा न मानना—मैं तो सदा ही स्पष्ट कहा करती हूँ। तुम्हारे योग्य भी मैं नहीं हूँ। तुम्हारी इस स्थितिसे जितना अधिक चम्पाका मेल खायगा, उतना मेरा मेल खा भी नहीं सकता। मुझे भूल जाना। बस, क्षमा। —मनोरमा

इस रूखे, कर्करा, प्रीतिशून्य, स्वार्थपूर्ण, असम्यताभरे हिसाब भी मेजा जाता है पत्रको पढ़ते ही रामिवनोदपर मानो वज्रपात-सा हुआ; परंतु कर्मचारी अपने-अपने कार्य इसीके साथ उसकी चम्पाके प्रति अत्यन्त सङ्गावना रहा था तो कोई विलोंकी जाग उठी। देवी और दानवीके मूर्तिमान् चित्र सामने आ भी सभी व्यस्त थे। को गये। उसने आँखोंसे आँम् बहाते हुए कहा—'चम्पा! था तो कोई साहबसे तुम देवी हो। तुमने मेरी जो सेवा की है और तुम जो हस्ताक्षर करवा रहा था। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कर रही हो, इसका कोई बदला नहीं है। मेरे फ्रें तुम्हारे जो उपकार हैं, उन्हें मैं कभी भूल नहीं सकता मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ। मैंने मोहवश तुम्हारे फ्रें जो दुर्व्यवहार किया है, इसके लिये क्षमा करना

चन्पाने बीचमें ही रोककर कहा—'यह आप के कह रहे हैं ! सेवा और बदला कैसा ! आपका के तो मेरा ही कष्ट है । अपने-आप अपना काम करना है थोड़े ही है । वह तो खामाविक ही होता है। कि उपकार तथा ऋणी होनेकी बात कैसी ! क्या के कामसे कोई उपकार मानता या ऋणी होता है ! के सदा ही आपकी अभिन्न अङ्ग हूँ । फिर, मुझे तो क्या यह सिखाया गया है कि आप हर हालतमें परमेश्वर हैं। आप मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार करते। यह देखना ही मेरे लिये पाप है । हाँ, यह कि अवस्य रहती है कि आप दुखी न हों।' यह कर हुई चम्पा गद्गद होकर रामविनोदके चरणोंपर गिर्ष रामविनोदने उठाकर उसे हदयसे लगा लिया। ऐसा अपहली ही बार किया।

दोनोंके नेत्र सजल, हृद्य सुधा-रसपूरित है सर्वाङ्ग पुलकित थे। धन्य आर्यनारी ! —मदनमोहन

(3)

आदर्श अफसर

घटना सन् १९६० की है। पहली तारी इसिलिये मन्दसीर ट्रेजरीमें वेतन लेनेवालोंकी भीड़ इसिलिये मन्दसीर ट्रेजरीमें वेतन लेनेवालोंकी भीड़ इसी दिन एकाउंटेंट जनरल ग्वालियरको महीते हिसाब भी मेजा जाता है। अतः प्रत्येक विभाग कि कर्मचारी अपने-अपने कार्यमें व्यस्त थे। कोई प्रकार रहा था तो कोई बिलोंकी जाँच कर रहा था। विशेष भी सभी व्यस्त थे। कोई एकाउंटके बंडल बीध भी समित्र समाहबसे राजस्टरमें तथा बिलों भी

हेने स्टाम वैकेट

संख

को । बहुत हो

अतः

चपर कार्य बाँध

> कहव पैकेट विभा

पैकेट किय हाथों

कहा साहः और

कार्य ठीक

नहीं

कार्य अफ जाय

ગાય

साव

रे प्रति

तकता

रे प्री

आप क्

ना कृ

रना के

है।

मा आरे

2 章:

तो शुह

तमें

करते है

ह कि

ह क्

गिर पई

ऐसा अ

रित व

रोहन ह

तारीख

भीड़ (

महीनेभी

गाने ह

पत्रक

1 1

, बाँग

लें आ

उसी दिन पोस्टमैन भी पोस्टल स्टाम्प तथा स्टेशनरी हेने आया था । मैंने पोस्टल इंडेंटकी जाँच करके स्टाम्प देने चाहे तव देखा कि आल्मारीके वाहर कार्डीके वैकेट पड़े हुए थे, इससे आल्मारी खुल नहीं रही थी। अतः पैकेटोंको हटानेके लिये मैंने दो-तीन बार चपरासियों-को पुकारा, परंतु 'आते हैं, आते हैं' कहकर उन्होंने बहुत समय निकाल दिया । पोस्टमैन बहुत देरसे खोटी हो रहा था । मैंने जाकर साहबसे कहा । साहबने चप्रासियोंको बुलाकर पूछा तो उन्होंने इसका कारण कार्यमें व्यस्त होना बताया और कहा कि 'दो पारसल बाँधकर हम पैकेट हटा देते हैं।' साहबने काम करनेको कहकर उनको भेज दिया। फिर वे यह कहकर कि—'देखें पैकेट कहाँ पड़े हैं' उठकर मेरे साथ हो लिये। केश-विभागमें आकर उन्होंने आल्मारीके सामने रक्खे हुए पैकेटोंको अपने हाथोंसे उठा-उठाकर अलग्रंखना शुरू किया। मैं शर्मके मारे झुक गया। मैंने जल्दीसे उनके हाथोंसे पैकेट ले लिये और नीची निगाह किये हुए कहा-- 'आप रहने दीजिये, मैं उठा छूँगा।' तब छोकरे साहवने कहा—'आज एकाउंट भी जाना जरूरी है और पोस्टमैनको स्टाम्प देने भी । चपरासी इधर-उधर कार्यव्यस्त हैं, अतः उनकी प्रतीक्षामें दूसरेको खोटी करना ठीक नहीं। भैं नीची दृष्टि किये पैकेटोंको उठाता रहा।

उस दिन मुझे ऐसी शिक्षा मिळी कि अब कोई कार्य नहीं होता है तो उसे मैं स्वयं कर लेता हूँ । जो स्वयं कार्य करके दूसरेको प्रेरणा प्रदान करता है, वहीं सचा अफसर है। यदि सभी अफसर इस प्रकारके कर्तव्यशील बन गयं तो कार्य बहुत अच्छा होने लगे, इसमें कोई संदेह नहीं। -वि॰ डी॰ नागर

(3)

करुणा और कर्तव्यपालन

गत २८ जनवरी १९६२ की बात है, प्रातःकाल

मेळ ट्रेन कुंकावाव जंकरानपर आकर रुकी। मैं एक भीडवाले डिब्बेमें चढ गया ।

समयपर गाड़ी चछी । उसी समय एक टिकट-चेकर साहव हमारे डिब्बेमें चढ़ आये । उन्होंने चेकिंग शुरू की । मेरे सामने एक ग्रामीण वृद्धा स्त्री बैठी थी। उसके साथ एक पाँच सालका छोटा लड्का भी था। चेकर साहबने टिकट माँगे तो उस स्त्रीने एक टिकट दिया और लड़केके टिकटके वारेमें पृछे जानेपर जवाव मिला कि लड़केकी बहुत छोटी उम्रके कारण उसका टिकट लेना अनावरयक समझा गया । लडकेकी उम्र प्रलनेपर वृद्धाने सच-सच पाँच सालकी उम्र बता दी। चेकर साहबने उस वृद्धाको समझाया कि 'तीन सालके बाद बच्चेका आया टिकट लेना पडता है और अब उसकी भूलके कारण उस बच्चेके आघे टिकटका डबल चार्ज चुकाना पडेगा ।

डबल चार्ज और वह भी अहमदाबादसे वडाल तकका! चार्जकी रकम सुनकर वृद्धा धवरा गयी, अपनी अज्ञान-जनित भूलके पश्चात्तापको और अपनी विद्युद्ध सरलताको शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ होकर वह आँसू बहाने लगी।

डिब्बेके अन्यान्य यात्रियोंने चेकर साहबको सलाह दी कि वे माफ कर दें । परंतु इस वातको मानना उन्हें ठीक नहीं लगा; क्योंकि ऐसा करनेपर प्रकारान्तरसे जान-बूझकर मुफ्तमें मुसाफिरी करनेवालोंकी संख्या घटानेके बजाय उसे बढ़ानेकी एक राष्ट्रीय कुसेवा होती।

इस तरह 'करुणा और कर्तव्यपालन'की दुविधामें चेकर साहब डूबे थे कि उनकी बुद्धिने बीचका मार्ग निकाल दिया । उन्होंने वृद्धापर डबल चार्ज किया और उसकी रसीद भी दे दी, परंतु पैसे उस वृद्धासे आचे टिकटके ही लिये। आघे पैसे चेकर साहबने खयं अपने पाससे चुका दिये।

चेकर साहबका यह कर्तव्यपालन देखकर सब दंग साढ़ सात बजे थे। अहमदाबाद से वेरावल जानेवाली सोमनाथ रह गये। उस समय उस वृद्धा देवीकी कृतज्ञतापूर्ण CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ननीय

सिक-पः

दृष्टि चेकर साहबपर आशीष्का सूक्त अभिषेक कर रही थी। कर्तव्यको ठुकराकर अथवा सत्ताका दुरुपयोग करके द्या दिखलानेका दम्भ भरनेवाले लोग बहुत होते हैं। मगर खयं हानि उठाकर कर्तव्यश्रष्ट न होकर भी मानवतायुक्त व्यवहार करनेवाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। यही सार या यात्रियोद्धारा की जानेवाली चेकर साहबकी प्रशंसाका। —जयंतीलाल प्र० पाठक, बी॰ एस्-सी॰ (ऑनर्स)

(8)

आदर्श उपकार

मैं सुन्दरवती महिला कालेजकी छात्रा हूँ । आज मैं एक ऐसे छात्रके विषयमें लिख रही हूँ जिसके कर्तन्य-पालनपर छात्र-समाजको गौरव होना चाहिये। घटना इस प्रकार है । ता० ९ । २ । ६२ को मैं अपने कालेजसे सरखतीकी पूजा करके लौट रही थी । भागलपुरस्थित नवयुग-विद्यालयके पास एक छात्रने मझसे छेड़खानी शुरू कर दी । उस गुंडे छात्रने मुझे जबरदस्ती एक रिक्सेपर बैठाकर ले जाना चाहा । मैं चिल्लाने लगी । उस समय वहाँ कोई नहीं था। भगवान्की कृपासे एक छात्र साइकिलपर उस ओरसे निकला। उसने मुझे चिल्लाते देखकर उस गुंडेको ळळकारा । उस गुंडेने चाकूसे इस छात्रपर प्रहार करना चाहा, परंतु इस छात्रने जो उस गुंडेसे अधिक बळवान था, उसे खूब पीटा और खुद भी चोट खायी । अन्तमें हारकर वह गुंडा रिक्सेपर भाग गया । छात्रने पीछा करना चाहा परंतु मैंने रोक दिया । फिर भी, इसने उसका पीछा साइकिलसे किया । इसके बादका हार नहीं जान सकी । उस कर्तव्यपरायण छात्रका समझे उसकी गिरी हुई डायरीसे मिला । उनका शुगक सहि—'रणजीतकुमार चौधरी' । वे टी०एन० बी० कर्लासिक 'वे भागलपुरके Pre-'University के EX-Student है है है

(५) सर्पका भागवतपारायण-श्रवण

गत २१ दिसम्बर १९६१ ई० की बात है विकाधि इलाहाबादसे ४२ मील दूर केसरिया प्रामके अंदर है श्रीमद्भागवत-पाठ करा रहे थे। वहाँसे एक फर्लाः एक खेतसे एक सर्प निकला और जहाँ भागवत हो। थी, उधरकों बहुत तेजीसे बढ़ा । कुछ लोग उसे माते वी० प लिये चले परंतु भागवत कहनेवाले पण्डितजीने लेगा रोक दिया और वे उस सर्पको मारनेमें आरक्ठे हुए रहे । थोड़ी देर बाद पण्डितजीने उस सर्पसे नहा है 'यदि आपको भागवत-पाठ सुनना है तो आप हतियार सभामें बैठ जायँ, दूर क्यों हैं। सर्प इतना सुनते तुरंत उस सभामें आकर एक ओर बैठ गया और हुवं वर्ष सात दिनोंतक भागवत सुनता रहा। २८ दिए सन् १९६१ ई० को जब भागवतसप्ताह समाह से वर्ष गया और राजा परीक्षित्की कथाके बाद जब श्री भगवान्की जय बोली गयी, तब वह सर्प अपना पर वे वर्ष त्यागकर खर्मको चल वसा । लोग सर्पको दिनमें ち व वर्ष के लिये दूध दे देते .थे और वह रातमें चौकी^{के ई} -- फतेहचन्द सा आराम करता था ।

स्रीके लिये स्वामी

स्त्रियोंको यज्ञ-दान-तप-व्रत कुछ भी नहीं करना पड़ता। केवल 'मेरे पित नारायण' हैं—इस बुर्कि (An पितसेवा करनेपर सब कुछ कर लिया हो जाता है। प्रातः-सायं स्नामीका पूजन, प्रणाम और उनका पार्वि Sans पान जो स्त्री करती हैं, वे इस लोक और परलोकमें विजयी होती हैं। भगवान्का नाम जपते-जपते जो स्त्री सेवामें लगी रहती हैं, उन नारियोंके समीप श्रीभगवान् दौड़े आते हैं।

प्रेतिनी, पिशाचिनी, राक्षसी, दानवी, डािकनी और कोई नहीं हैं—असती नारी ही हैं। उनके हिं कुछ भी अकार्य नहीं हैं। उनके हृद्यमें दिन-रात ज्वालाका इमशान जलता रहता है। वे निरन्तर वुषाल कुछ भी रहती हैं। जनके हृद्यमें दिन-रात ज्वालाका इमशान जलता रहता है। वे निरन्तर वुषाल कुछ होती रहती हैं।

—श्रीसीताराम अकार्य

'कल्याण' और 'Kalyana-Kalpatar u' को उड़ीसा-राज्यकी शिक्षा-संस्थाओंके पुस्तकालयोंके लिये मान्यता-प्रदान

समय-समयपर भारतके अनेक राज्योंके शिक्षा-विभागोंने हिंदी मासिक 'कल्याण' तथा अंग्रेजी मा न र्थिक क्षांसिक 'कल्याण-कल्पतरु' को अपने-अपने राज्यके पुस्तकालयों तथा शिक्षा-संस्थाओंके लिये खीकृति दी को सिक 'कर्ष्याण नार्टिंग के डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन महोद्यने भी कटकसे अपने परिपन्न ent of 2 B- 7/F- 61-2780 दि० २५ जनवरी १९६२ के द्वारा सूचित किया है कि उड़ीसा सरकारके नितीय शिक्षा-मन्त्रीने गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा प्रकाशित 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' नामक सिक-पत्रोंकी राज्यकी शिक्षा-संस्थाओंके पुस्तकालयोंके लिये स्वीकृति प्रदान की है।

शिक्षा-विभागके सम्बन्धित अधिकारियोंसे हमारा अनुरोध है कि वे इन दोनों मासिक-पत्रोंको बात है विकाधिक संख्यामें मँगवाकर विद्यार्थियों एवं जनताको लाभान्वित करनेकी कृपा करेंगे।

व्यवस्थापक--- 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु', गोरखपुर

'कल्याण' के सं० शिवपुराणाङ्कका दूसरा संस्करण छप रहा है

त हो ह प्रथम बार १,३१,००० प्रतियाँ छपी थीं; परंतु नयी माँग इतनी अच्छी रही कि हजारों पुराने ब्राहकों-मित्र वी० पी० नहीं जा सकी। इसिळिये २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण शीव्रतापूर्वक छापा जा रहा है। ों हों _{ति होगोंका} वार्षिक मूल्य रू० ७.५० मनीआईरसे आ रहा है, उनका नाम नये ग्राहकोंमें हिखकर फरवरीसे आक्षके हुए मासिक अङ्क भेज दिये जाते हैं। सं०िहावपुराणाङ्क तैयार होनेपर रजिस्ट्रीसे भेज दिया जा सकेगा। जो वी० पी० से मँगवाना चाहते हों वे उसके लिये आर्डर भेजनेकी कृपा करेंगे। सं० शिवपुराणाङ्क-

आप हतेयार हो जानेपर आगेके मासिक अङ्कोंसहित उनकी सेवामें वी० पी० भेजी जा सकेगी।

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

और वें वर्षका हिंदू-संस्कृति-अङ्क-पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६.५० दिसम (छः रूपये पचास नये पैसे), साथमें अङ्क २-३ विना मूल्य।

समाह वें वर्षका संतवाणी-अङ्क-पृष्ठ-संख्या ८००, तिरंगे चित्र २२ तथा इकरंगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे)।

पना 🍕 वें वर्षका मानवता-अङ्क-जनवरी १९५९ का विशेषाङ्क केवल प्राप्य है, मूल्य ७.५०।

तमें ^{(ह}ै वें वर्षका संक्षिप्त देवीभागवताङ्क—जनवरी १९६० का विशेषाङ्क केवल प्राप्य है, मूल्य ७.५० है।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

The Kalyana-Kalpataru

Annual subscription Rs. 4.50 (Rupees four and fifty nP.) OLD SPECIAL NUMBERS STILL AVAILABLE

The Gita-Tattva Numbers—II and III Unbound...... (An exhaustive commentary on the Bhagavadgita along with the original Price Rs. 5.00 nP.

Sanskrit text from chapter 7 to 18 @ Rs. 2.50 nP. each)

The Bhagavata Numbers—I, II, III, IV, V, VI. (with Mahatmya) (An English translation with the original Sanskrit text of the Bhāgavata from Skandhas I to XII @ Rs. 2.50 nP. each)

Rs. 15.62 nP.

stage free in all cases. ओका

दर हो

र्म्लाग र

सुनते।

व श्रीहर

输

न्द सा

एक नयी धोजना !

आदर्श चरितावली

(लेखक-ठा० श्रीसुदर्शनसिंहजी)

कुछ नयी पुल

देशके सुप्रसिद्ध ऋषि, मुनि, आचार्य, संत, महात्मा, धर्म-प्रचारक एवं प्रमुख महा जीवनियोंके अध्ययनसे चरित्र-निर्माणमें कितनी भारी सहायता मिलती है, इसी दृष्टिकोणको सामने 'आदर्श चरितावली' प्रकाशित की जा रही है। इसके छः भाग प्रकाशित करनेका विचार है। जिनमें प्रकाशित हो चुके हैं। चौथा प्रायः तैयार है। पाँचवाँ और छुटा भी यथाशील प्रकाशित करनेका कि

प्रत्येक भागमें सोलह-सोलह चरित्र और उनके चरितनायकोंकी शिक्षा एवं रेखाचित्र हैं। आहे हो रंगमें छपे हुए मुख-पृष्ठ हैं। मूल्य प्रत्येक भागका केवल पचीस नये पैसे रक्खा गया है। डाकल्की आदर्श चरितावली (भाग १)—[ऋषि-मृनि-शिक्षा]

इस भागमें जिन चुने हुए ऋषि-मुनि-संत-भक्तोंके सोलह चिरत्र उनकी शिक्षाओं सहित दिये के उनके नाम हैं—(१) सनकादि कुमार, (२) देवार्ष नारद, (२) महर्षि दधीचि, (४) महर्षि विश्वामित्र, (६) महर्षि मुद्गल, (७) महर्षि वाल्मीिक, (८) भगवान वेदव्यास, (२) श्रीक (१०) महर्षि याज्ञवल्क्य, (११) श्रीयामुनाचार्य, (१२) भक्तश्रेष्ठ नरसी मेहता, (१३) श्रीक (१४) गोस्वामी तुल्लीदास, (१५) मीराँवाई और (१६) श्रीमद्राज्ञचन्द्र।

आदर्श चरितावली (भाग २)—[आचार्योंके उपदेश]

इस भागमें जिन चुने हुए विभिन्न आचार्य, मतप्रवर्तक तथा युगनायकोंके सोलह चित्र शिक्षाओंसहित दिये गये हैं, उनके नाम हैं—(१) भगवान ऋषभदेव, (२) श्रीमहावीर सामि भगवान बुद्ध, (४) श्रीशङ्कराचार्य, (५) श्रीरामानुजाचार्य, (६) श्रीनिम्बार्काचार्य, (७) श्रीमध्याचार्य श्रीवल्लभाचार्य, (९) श्रीरामानन्दाचार्य, (१०) श्रीचैतन्य महाप्रभु, (११) संत कवीर, (१२) गुरु महात्मा श्रीचन्द्र, (१४) संत दादृद्याल, (१५) संत सुन्दरदास और (१६) महात्मा रामचरण पास आदर्श चिरतावली (भाग ३)—[संत-शिक्षा]

इस भागमें जिन चुने हुए संत-महात्मा-योगी-साधकोंके सोलह चरित्र उनकी शिक्षा विये गये हैं, उनके नाम हैं—(१) श्रीज्ञानेश्वर, (२) श्रीनामदेव, (३) श्रीएकनाथ, (१) रामदास खामी, (५) श्रीतुकाराम, (६) श्रीरामकृष्ण परमहंस, (७) खामी विवेकानन्द, (८) रामतीर्थ, (९) खामी विद्युद्धानन्द सरस्वती, (१०) महात्मा तैलंगखामी, (११) स्वामी भाका (१२) गोस्वामी विजयकृष्ण, (१३) प्रभु जगद्वन्धु, (१४) रमण महर्षि, (१५) योगिराज कीर (१६) स्वामी योगानन्द। तीनों भागोंका एक साथ मृत्य ७५ डाकखर्च ७५ कुल १.५०।

एक लोटा पानी (लेखक—श्रीपारसनाथजी सरस्वती)
आकार डबल काउन सोलहपेजी, पृष्ठ-सं० १८४, मृत्य ७५ (पचहत्तर नये पैसे) डाकर्ष
लेखककी समय-समयपर 'कल्याण' में प्रकाशित जीवनको ऊँचा उठानेवाली चौबीस रोचक कर
का सुन्दर संग्रह है। कहानियोंके शीर्षक हैं—(१) एक लोटा पानी, (२) विल्यान, (३) रा
मारो, शत्रुको नहीं, (४) मूर्तिमान परोपकार, (५) शुअचिन्तनका प्रभाव, (६) कहानीका अस्प
७४॥, (८) महाकाल, (९) भक्त रानी मैनावती, (१०) योगी गोरखनाथजी, (११) गुरु ही ग्री
और महेश्वर हैं, (१२) गुरु गुड़ ही रहे, चेला चीनी हो गया, (१३) भगत रिवदास, (१४) मीजी
(१५) तवसे वैठा देख रहा हूँ फिर आनेकी राह, (१६) हिंदू राज्य कैसे गया, (१७) प्रभुकी अहेती
(१८) सित्र चतुरानन देख डेराहीं, (१९) बालक बीरबलकी बुद्धिमानी, (२०) अहिंसाकी
(२१) गोभक्त रामसिंह, (२२) मानवता और जातीयता, (२३) देवी सी० आर्ह० औ

(२४) एक खामिभक्त बालक । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwall प्रोत पो० गीताप्रेस (गोर्ष Digitized by Arya Samal Foundation Chennal and eGangori.

五年

हीं हो ही

येग

रेष्ठ श्रीष्

रित्रः गामीः चार्यः नातः रामर

भाओ

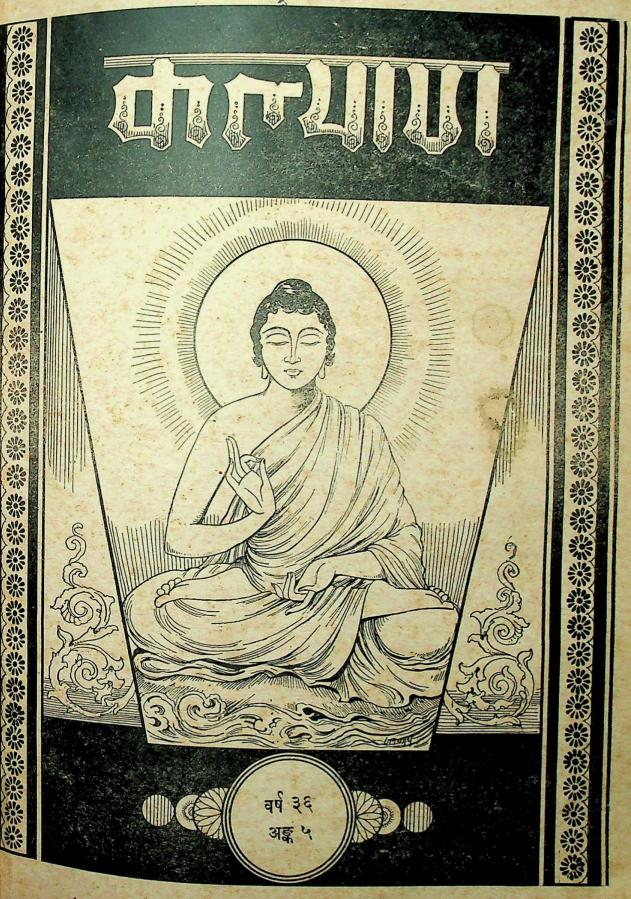
४) ८) स्का

त्व^व

) ग्राः सर

वहां जी

की की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हो संरकरण—१,४८,००० (एक लाख अङ्तालीस हजार)

विषय-सूची	कल्याण, सौर ज्येष्ठ २०१९, मई १९६३
वप्र-संख्या	विषय पृष्ठ-संख्या
१-राजसिंहासनपर श्रीसीताराम [कविता] ८९७	१४-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददास-
२-कल्याण ('शिव')	जी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रींगोविन्द-
२-कल्याण (पश्चम)	प्रसाद श्रीवास्तव) ९२५
३-परमात्मा, जीवात्मा और विश्व (ब्र० जगदुरु	१५-मानस्कारका प्रयाग-वर्णन (मानसत्त्वान्वेषी
अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थ-	पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्त
जी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी; अनु०—	भूषण, साहित्यरत्न) ९३० १६-पाप-ताप [कविता] ९३२
पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि) ८९९	१६-पाप-ताप [कविता]
४-सर्वेदुःखदोपनाशक तप (श्रद्धेय श्री-	१७-तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा (डा॰
जयदयालजी गोयन्दका) ९०३	श्रीहरिहरनाथजी हुक् एम्०ए०, डी० लट्०)१३३
५-मानव-अक्षय अविनश्वर (श्रीवालकृष्णजी	१८-(जागे हानि न लाभ केछु' [कहानी](श्री चक्र') १३४
बलदुवा) ९०६	१९—गुरु-दक्षिणा [कहानी] (श्रीशंकरदयालजी
६-तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (पं०	पाण्डेय, एम्० ए०) ९३७ २०-पाप और पुण्य [कविता] ९३१
श्रीदेवदत्तजी मिश्र) ९०७ ७-मधुर ९०९	२०-पाप आर पुण्य [कावता] २१-सुरक्षा-रहस्य (श्रीहरिकृष्णदासजीगुप्त 'हरिं') ९४०
७-मधुर ९०९	२२-मानसमें एक भाव-निर्वाह (श्रीछविदत्तजी
८-सतीधर्म (महात्मा श्रीसीतारामदास	बाजपेयी)
ओंकारनाथ) ९१०	२३ - सुनहरा भारत [कविता] (वेदाचार्य श्रीवेणी-
९-सर्वेश्वर-सम्बन्ध (पं० श्रीसुरजचन्दजी	रामजी दार्मा गौड)
सत्यप्रेमी (डॉंगीजी)) " ९१३	- १ - १ (श्रीहाहीखरजी
१०-सार्थकता [कविता] ९१४	नागर, एम० ए०)
११-भोगवाद और आत्मवाद (हनुमानप्रसाद	A ० चे ० (क्विन्यहार्गे-
पोद्दारके कलकत्तेके एक भाषणका सारांश) ९१५	नारायणजी 'अलो किक')
१२-गीताका पुरुष (पं० श्रीमुंशीरामजी शर्मा	े २६—विषका अमतम पारवतन (३° उँ
'सोम' एम्० ए०, पी-एच्० डी०,	ਕਿਤਾ (ਹੋਣਗ ੇ
डी॰ लिट्॰) ९२०	
१३-सची सुख-शान्तिके लिये (श्रीसुकुन्दजी	जी गुप्त)
मालवीय) ९२२	२८-पढ़ो, समझो और करो
चित्र-सूची	
१-भगवान् बुद्ध	••• (रखाचत्र)
२-सिंहासनासीन श्रीसीताराम	(तिरंगा)
A The second of	
र्षक मूल्ये जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥ अगतमं	
र्षक मुल्ये जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनद भूमा जय जय ।।	

भारतमें ६० ७.५० विदेशमें ६० १०.०० (१५ शिछिंग) ाय पावक रवि चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय।। जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते।। भारतमें विदेशमें

सम्पादक — हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम् ॰ ए॰, शास्त्री

🕉 पूर्णमदः पूर्णामदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भृतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६ }

३७

380

188

388

984

९४६

986

948

943

র-মূ ८९७

वारण

देशमें

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ २०१९, मई १९६२

संख्या ५ पूर्ण संख्या ४२६

राजसिंहासनपर श्रीसीताराम

नील कमल, नव-नील-नीरधर, नील मनोहर मरकत स्याम। राज-राज-मिन-मुकुट कोटि-कंदर्प-दर्प-हर सोभाधाम॥ राजत रत्न-रचित सिंहासन भ्राजत सिर मिन-मुकुट ललाम। अंग-अंग सुचि सुषमा-सागर मुनि-मन-हर लोचन अभिराम॥ वरद हस्त-मुद्रा महिमामय भक्त-कल्पतर पूरन काम। जनकनंदिनी सहित सुसोभित सुखदायक रघुनायक राम॥

कल्याण

याद रक्खो-महात्मा या महापुरुषके लिये यह आवश्यक नहीं है कि उनकी लोकमें प्रसिद्धि हो और लोगोंमें वे महात्मा या महापुरुष कहे-माने जाते हों। वरं कहे-माने जानेवाले लोकप्रसिद्ध महात्माओंमें वास्तविक महात्मा बहुत थोड़े होते हैं। महात्मा या महापुरुष वे हैं--जिनको सर्वत्र सब कुछ एकमात्र वासुदेव भगवान् ही दृष्टिगोचर होते हों।

याद रक्खो— सच्चे महात्मा या महापुरुषकी पहचान बाहरी लक्षणोंसे नहीं होती। वे सांसारिक मोहप्रस्त बुद्धिके तराजूपर वैसे ही नहीं तौले जा सकते, जैसे बड़े-बड़े लकड़े अथवा भारी-भारी पत्थरोंके तौलनेके काँटेपर हीरे नहीं तौले जा सकते । तथापि यह सर्वथा सत्य है कि महातमा या महापुरुषके बुद्धि-मन-इन्द्रिय प्रमात्माके साथ संयुक्त होकर सर्वथा पवित्र हो चुकते हैं। अतएव न तो महात्मा या महापुरुषमें भोगासिक होती है, न भोग-कामना रहती है और न भोगजगत्में कहीं उनकी ममता ही रहती है। उनकी बुद्धिमन-इन्द्रियोंसे सहज ही केवल पावन-पावनं भगवःसेवा ही सम्पन्न होती रहती है।

याद रक्खो-महात्मा या महापुरुत्रकी दृष्टिमें यह जगत् इस रूपमें रहता ही नहीं, अतएव वे जगत्के द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत केवल भगवत्खरूपमें ही नित्य स्थित रहते हैं। किसी भी सांसारिक हानि-लाभ, दु:ख-सुखमें वे कभी विचलित नहीं होते। न उन्हें कभी उद्देग होता है न हर्ष; न चिन्ता होती है न आकाङ्का; वे सदा सम रहते हैं और सदा ही सहज निर्टिप्त रहते हैं। तथापि सहज ही उनका हृदय बड़ा कोमल होता है। जहाँ वे अपने प्रति दीखनेवाले महान्-से-महान् दु:खमें वन्नादपि कठोर रहते हैं, वहाँ दूसरेके दुःखमें कुसुमादपि कोमल होते हैं। तनिकसे पर-दु:खसे द्रवित हो जाते हैं और आसक्त पुरुषकी भाँति उसका दुःख दूर करनेमें सचेष्ट हो जाते हैं।

याद रक्खो-महात्मा या महापुरुषके लिये माना-प्मानका कोई मूल्य नहीं है, न तो वे मान चाहते हैं, न अपमानसे डरते हैं। तथापि वे सहज ही खयं मानरहित रहकर दूसरोंको सम्मान देते हैं। जागतिक हिताहितसे सर्वथा परे

होनेपर भी वे सहज खमावसे पर-हितमें ही लो हते उनसे किसीका अहित वैसे ही नहीं होता, जैसे अफ़ कोई मरता नहीं और उनसे सबका हित वैसे ही है जैसे सूर्यसे सबको प्रकाश तथा गरमी मिल्ती

याद रक्खो-महात्मा या महापुरुष वाणीसे ह अपने जीवनसे जगत्को उपदेश देते हैं; उनकी एक चेष्टा सहज ही सांसारिक दुःखोंके विनाशका सा बताती है, कुमार्गसे हटाकर सन्मार्गपर लगाती है महान् कल्याणकी प्राप्ति करानेमें सहायक होती है उनका मूक व्याख्यान जितना प्रभावशाली होताहै, उत संसारासक्त मानवोंके लाख-लाख कलापूर्ण व्याख्यात ह होते । वस्तुतः उनके जीवनमें उतरे हुए उपदेशींसे के वाणीके उपदेशोंकी तुलना ही नहीं हो सकती।

याद रक्खो—महात्मा या महापुरुषका मिला ह ही दुर्लभ है। मिलनेपर पहचानना बहुत ही की तथापि उनका मिलना कभी व्यर्थ नहीं जाता। जैसे क अनजाने अग्निका स्पर्श जला देता है और जाने आई अमृतका स्पर्श अमर कर देता है, वैसे ही जाने अन्न होनेवाला महात्मा या महापुरुषका मिलन भी पापताई भस्म करनेवाला और अमृतत्वरूप मुक्तिको प्रदान क दिलानेव वाला होता है। महात्मा या महापुरुषकी पहचान है परमात्मा नहीं होती, पर इतना समझ लेना चाहिये कि कि सङ्गसे तुम्हारी भोगासक्ति घटकर भगवान्में अनुराग है, आसुरी सम्पदाका नाश होकर देवी सम्पितिरी हिंदि के होती है, भोगोंसे हटकर मन-बुद्धि भगवान्में रुचिपूर्वक हैं ? यह हैं, वे तुम्हारे लिये निश्चय ही महात्मा या महापुर्व हमारे ज्ञ

याद रक्खो-महात्मा न तो अपने महासाम और पद दिंढोरा पीटा करते हैं, न विज्ञापन करते हैं। हैं एकता स्वाभाविक ही उनका अस्तित्व जगत्के जीवोंका कर्मा करनेवाला होता है। वे चाहे प्रकट रहें या अप्रका विचार है उन्हें जानें या न जानें, वे जहाँ होते हैं, वहाँ वैसे ही सम्पत्ति और भगवद्भावका विस्तार होता है, जैसे ध्री पुष्पोंके वगीचेसे खाभाविक सुगन्धि फैलती हिती है और बा

इस करनेके सम्बन्धों हमने य वस्तुतः व

> हैं, उतन हैं। इन अपने स्व शीम लौ

> > आधारप

का कारप

हैं। जित

परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

(मूल अंग्रेजी लेखक--ब्र॰जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्थनमठ, पुरी)

[अनुवादक--पं०श्री श्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि]

गताङ्क ३, पृष्ठ ७७५ से आगे]

परमात्मा और जीवात्मा

तें

एक-ग

हैं

ति है

यान त

से के

-अन्जार

से धुण

. इस प्रकार जीवात्माके गुणोंका (जो ईश्वरके भी हैं) चित्रण करनेके वाद हम अव उन दोनों (परमात्मा और जीवात्मा) के समन्धोंका विचार करते हैं। पिछले पृष्ठोंमें की गयी विवेचनासे इमने यह तो जान लिया कि हम दिव्य स्वभावके हैं या नर वस्तुतः नारायण हैं। अतः दुःख अथवा पीड़ाओंमें हमारे गिरने-बा बारण ही यह है कि हम नारायणत्वसे भटककर दर हो जाते हैं। जितना-जितना हम नारायणत्वसे दूर होते चले जाते हैं, उतना-ही-उतना हम कष्टों और दु:खोंमें गिरते चले जाते ^{क्राह}ै है। इन दुःखोंसे छूटनेका एकमात्र उपाय यही है कि हम किं अपने खरूपमूत लक्षण अर्थात् नारायणत्वकी ओर शीघाति-जैसे अ शीप लौटें; क्योंकि नारायणसे ही हम प्रकट हुए हैं, उसीके ने अव अवारपर हम रह रहे हैं और अन्तमें उसीमें विलीन हो जायँगे।

एकता और अनेकता

गप्तार उपर्युक्त सभी विवरण नर और नारायणकी समानता त्ति के दिलानेवाले हैं और बाइबिलके इस सिद्धान्तकी कि, परमात्माने अपने अनुरूप ही मनुष्यको बनाया, सत्यताको चान स क्रि प्रमाणित करते हैं । पर इससे हमारी और परमात्माकी एकता कैसे सिद्ध हो सकती है ? क्योंकि ऊपर वर्णित पाँच राग वर्ष गुणोंके आधारपर हम यह कह सकते हैं कि मनोवैशानिक हिंहिसे दोनोंकी एकता है। पर इसमें वैज्ञानिक प्रमाण क्या पूर्वक है है थह है अगला प्रभः जिसपर हमें विचार करना है। पुरुष है हमारे शास्त्रोंका कथन है कि विश्वकी सभी विभिन्न आकृतियों हासार्प और पदार्थोंके पीछे एकता है। दूसरे शब्दोंमें अनेकतामें हैं। हैं ^{एकता} निहित है। न केवल वैज्ञानिक दृष्टिसे ही, अपित क्ष मिलत्रास्त्रिकी हिष्टिसे भी परमात्मा, जीवात्मा और विश्वकी एकता प्रमाणित हो सकती है। इसपर भी अनेक पहछुओंसे प्रकृष्ट विचार हो सकता है।

सृष्टिकी कथा

सृष्टि क्या है ? इस विषयपर प्रकट किये गये उपनिषद् पाष्ट्र क्या है ? इस विषयपर प्रकट किए नहीं है । बाइबिलके मन्तव्योंमें जरा-सा भी भेद नहीं है ।

वाइविलके प्रथम पुस्तक प्रथम अध्यायमें जो प्रथम वाक्य है वह इस प्रकार है-

'प्रारम्भमें ईश्वरने स्वर्ग (आकाश) और पृथ्वीको बनाया' । वहींपर वाइविलने आगे बताया कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सत्यसंकल्प है, क्योंकि बाइबिलके कथना-नुसार, सृष्टिके आदिमें ईश्वरने कहा कि 'प्रकाश हो' और वहाँ प्रकाश उत्पन्न हो गया। पर बाइविलमें कर्त्ता तथा कार्य अर्थात ईश्वर और प्रकाश या सृष्टिके सम्बन्धके विषयमें कुछ नहीं बताया है । यहाँ उपनिषदें बाइविलसे आगे बढ़ जाती हैं और ईश्वर या ब्रह्मके सत्य-संकल्पका, जिससे ब्रह्मने विश्वकी उत्पत्ति की, स्पष्टीकरण करके परमात्मा और विश्वके पारस्परिक सम्बन्धको भी बताती हैं । वह संकल्प था 'बहु स्वां प्रजायेय' अर्थात् 'मैं वहत हो जाऊँ' 'मैं वहत रूपोंमें प्रकट होऊँ?, ब्रह्मने यह नहीं कहा कि मैं बहतोंको उत्पन्न करूँ। यदि यह किसीको स्वीकार है कि ब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् और सत्य-संकल्पवान् है तो उसे यह भी मानना पड़ेगा कि उसके चारों ओरके पदार्थ उसी आत्माके प्रकाशन मात्र हैं, जो शरीर, इन्द्रिय, मन आदि उपाधियोंके कारण भिन्न-भिन्न दिखायी पड़ते हैं।

उपनिषदका एक वचन है 'सदेव सोम्येदमय आसीत्' (सृष्टिके पूर्व केवल एक सत्परमात्मा ही विद्यमान था)। यद्यपि इसमें आया हुआ 'एव' शब्द ही उपनिषद्के मन्तव्यको स्पष्ट करनेके लिये पर्याप्त है, फिर भी सब सम्भावित संशय और भ्रमोंके निराकरणके लिये उपनिषद् आगे फिर कहती है 'नान्यत् किंचन मिषत्' (उससे भिन्न कुछ भी नहीं था) और तब सृष्टि गुरू हुई और वह ब्रह्म बहुत रूपोंमें प्रकट हुआ । यह शास्त्रोंका कथन है। इसका अर्थ यह है कि सभी पदार्थ, जो ब्रह्मसे प्रकट हुए, ब्रह्म ही हैं। यह एक मार्ग है जिसके द्वारा इन तीनोंकी एकताकी मान्यतापर पहुँचा जा सकता है।

परमात्माके इस सृष्टि-संकल्पके अलावा उपनिषद्का एक

और भी वचन है 'सच त्यचाभवत्' वह [ब्रह्म] स्वयं ही हश्य और अहश्य विश्व बन गया। इन उपर्युक्त प्रमाणोंके कारण पाठकको यह माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है कि वेदान्तमें केवल अद्देतवादका ही प्रतिपादन है।

इसके अतिरिक्त 'सृष्टि' शब्दका तात्पर्यार्थ यही सिद्ध करता है। सृष्टिका अर्थ है निसर्ग अर्थात् अंदर छिपे हुएको बाहर निकालना । उपनिषद्में यही बात एक उपमाके द्वारा भी समझायी गयी है-

यथोर्णनाभिः सुजते गृह्णते च ।

जिस प्रकार मकड़ी अपने अंदरसे जाला निकालती है और बादमें अपने अंदर ही समेट लेती है, उसी प्रकार ब्रह्म भी इस विश्वको अपने अंदरसे निकालता है और अन्तमें अपने अंदर ही समेट लेता है।

बाइबिलका कथन

हम फिर बाइविलके उसी कथनपर पहुँचते हैं जिसमें कहा गया है कि 'ईश्वरने प्रारम्भमें आकाश और पृथ्वीको बनाया।' बाइबिलके इस वचनद्वारा भी पाठक उसी निर्णयपर पहुँचता है, जिसपर उपनिषदोंद्वारा । 'परमात्माने आकाश और भूमिको बनाया' यह कथन भी इस बातको बताता है कि इन दोनोंके पूर्व केवल उसी परमात्माका अस्तित्व था। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि यदि उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था तो उसने सृष्टिको कब और किससे बनाया ! उदाहरणके लिये जब एक घड़ा बनाया जाता है तब केवल कुम्हारकी ही नहीं। अपितु मिट्टीकी भी जरूरत होती है, जिससे घड़ा बनाया जाता है। इसी प्रकार आंभूषण बनानेके लिये सुनारके साथ-साथ सोनेकी भी आवश्यकता रहती है और वास्तवमें देखा जाय तो कुम्हार और सुनारकी अपेक्षा मिट्टी और सोनेकी आवश्यकता कहीं अधिक होती है । इसी प्रकार सृष्टि बनानेके पूर्व परमात्माके पास कुछ और भी चीज होनी चाहिये जिससे कि परमात्मा इस सृष्टिका निर्माण कर सके । घड़ा और आभूषण बनानेके पूर्व मिट्टी और सोना था, उनसे कुम्हार और सुनारने आभूषण गढ़ लिया। पर यदि सृष्टिके पूर्व ब्रह्मके सिवा और कुछ था ही नहीं, तो उसने यह सृष्टि बनायी किससे ? कल्पना करो कि आभूषण बनानेसे पहले केवल सोनेकी ही सत्ता हो, अन्य कोई भी घातु न हो तो सुनार उससे जो कुछ वनायेगा, वह शुद्ध सोना ही तो होगा । उसे वह चाहे किसी भी आकृतिमें

ढाल दे, पर वह रहेगा शुद्ध सोना ही। इसी प्रकार हो लोगोंके स पूर्व उस ब्रह्मके अलावा कुछ भी नहीं था, फिर उस क्र जगत्को बनायाः तो उसने जो कुछ भी बनाया वह निक्ष रूपसे ब्रह्म ही होगा । दूसरे शब्दोंमें सृष्टिके सब प्राणिते पदार्थोंका उपादान वह ब्रह्म ही है। आकृतियाँ भिन्न अवश्य हैं, पर मूलतत्त्व, जिनसे सव पदार्थोंका निर्माण हु है, ब्रह्म ही है। वेदान्तका वचन है—

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

घड़ा, सुराही आदि केवल नाम हैं, जो उसके अथवा प्राकट्यकी विभिन्नताके दर्शक हैं, पर मूलमें एके जो तत्त्व मिट्टी है, वह घड़े, सुराही आदि सबमें समाने इसी प्रकार मनुष्य, घोड़ा, गाय आदि नाम प्रका (Manifestation) के विभिन्नताके दर्शक हैं, पर रहनेवाला ब्रह्म एक है । महर्षि वेदव्यासने इसी सिद्धान एक सूत्रमें निबद्ध कर दिया है-

तदन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः। (ब्रह्मस्त्र २ । १। १

(विश्व और ब्रह्मकी एकता वेदोंके 'आरम्मण' अन्य मन्त्रोंमें वतायी गयी है।) वाइविलका कथन भी है कि हम पूर्व देख चुके हैं, इसी बातका समर्थन करा इसी स्थितिका वर्णन श्रीभगवान् शंकराचार्यने अपने लें इस प्रकार किया है-

सुवर्णत्वं हि सुवर्णाजायमानस्य ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मव्वं हि विनिश्चितम्।

'जिस प्रकार सोनेसे बनी हुई चीज सोना ही हों। उसी प्रकारसे ब्रह्मसे उत्पन्न हुए पदार्थ ब्रह्म ही होते हैं। प्रकार हमारा स्वभाव देवी है। पर देवी-स्वभावके होई भी हम तबतक शान्ति और मुख प्राप्त नहीं कर सकी तक हम अपने अंदर देवत्वका साक्षात्कार नहीं कर है यद्यपि अज्ञानताके अन्धकारमें भी दैवी प्रकाश स्व रहता है, फिर भी हम उसका लाभ नहीं उठा पाते। ब्रह्मके समान हो जाना ही हमारा उद्देश्य नहीं है, अणि साथ होना हमारा वास्तविक उद्देश्य है। हूसरे उद्देश्यको अस्पष्ट और धुँघले शब्दोंमें रखते हैं, जैसे

परमात्माका राज्य तुम्हारे अंदर हो, तुम देवता हो, इत्यादि (बाइबिल)

यह वेदान्तका ही गौरव है कि वह इस उद्देश्य इसतक पहुँचनेके मार्गको स्पष्ट या सर्वथा असंदिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आकर्षक प्रण

प्रण ब्रह्म उसव

छोड़ा ग साथ एक प्रमात्माव

सर्भ उसके सृ भी अन्ति उत्कृष्ट कहा है) धर्म आ

> इस समर धर्मोंपर : कर देना अपेक्षा उ

प्रेम कर कैसे बन ईश्वरके वि यह कथ वौद्धिक

कर्तृत्वव करता है हैं; क्यों अगाध

मानते, मन्त्रसं बहुधा

वहुत स महर्षि

मानता

यों है

11

मान है

प्रकार

सेदान

तम्।

तम् ॥

ते होती

智川

हे होते हैं

सकते।

करले

सदा है

पाते।

अपितु ब

धर्म

से-

होगोंके सामने रखता है। उपनिषद्का निम्न वचन कितना

अकर्षक है-प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यसुच्यते । वेधव्यं शरवत्तनमयो भवेत ॥ अप्रमत्तेन

प्रणव या ओंकार धनुष है, जीवात्मा वाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य है, जिस प्रकार एक निपुण लक्ष्यवेधकद्वारा म हुव होड़ा गया वाण सीधा लक्ष्यपर जा लगता है और लक्ष्यके साथ एक हो जाता है, उसी प्रकार जीवात्माको भी सीधे जाकर प्रमात्माके साथ एक हो जाना चाहिये । उके ह

अद्वैतवाद और नास्तिकवाद

सभी आस्तिक शास्त्र परमात्माकी सत्ताके उसके सृष्टि-कर्तृत्वको भी मानते हैं। इसलिये आस्तिकवादकी भी अन्तिम मंजिल अद्वैतवाद ही है (टेनीसनने इस वादको उत्कृष्ट दर्जेका अद्वेतवाद [Higher Pantheism] ब्हा है)। पर एक प्राचीन धर्म जैन और दूसरा अर्वाचीन धर्म आर्यसमाज परमात्माके विश्वकर्तृत्ववादका खण्डन कर इस समस्याका हल निकालना चाहते हैं। हम यहाँ इन दोनों भी हैं धर्मोपर भी संक्षित विचार करेंगे। यहाँपर हम यह भी स्पष्ट करा कर देना चाहते हैं कि तर्क तथा नैतिक दृष्टिसे आर्यसमाजकी ने की अपेक्षा जैन धर्मकी स्थिति अच्छी है।

जैनी अध्यात्एशास्त्रियोंका कथन है कि सर्वज्ञ और सबसे प्रेम करनेवाला परमात्मा इस दुःख तथा पापसे भरे संसारको कैसे बना सकता है ? अतः इस आधारपर जैन मतावलम्बी ^{ईश्वरके विश्वकर्तृत्वके सिद्धान्तका खण्डन करते हैं। पर उनका} यह कथन पाप और दुःखकी समस्यासे अतिशय प्रभावित उनकी बौद्धिक दुर्बलताका ही चोतक है। यद्यपि इस ईश्वरके सृष्टि-कर्तृलवादको न मानना उनकी बौद्धिक न्यूनताको ही प्रकट करता है; पर फिर भी यह उनका खण्डन सहन करने योग्य हैं स्योंकि वे वेदोंको नहीं मानते। पर आर्यसमाजी वेदोंमें अगाध श्रद्धा रखते हुए भी ईश्वरकी सृष्टि-कर्तृत्वशक्तिको नहीं मानते, कितने आश्चर्यका विषय है। क्योंकि उपनिषदोंके अलावा मन्त्रसंहिता भी इस वातको कहती है कि (अजायमानो ^{बहुधा} विजायते) वह परमात्मा अजन्मा होते हुए भी वहुत रूपोंमें जन्म लेता हैं और आर्यसमाजके संस्थापक महर्षि दयानन्दजीको भी यह अर्थ मान्य है।

आर्यसमाज सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक ईश्वरको मानता है, पर ईश्वरकी विश्व-कर्तृत्वशक्तिको वह नहीं मानता । उसका सिद्धान्त कि प्रकृति परमात्माके साथ हरदम रहती है अर्थात् प्रकृति और परमात्मा ये दोनों नित्य और पृथक-तत्त्व हैं । परमात्मा प्रकृतिको उत्पन्न नहीं करता अपित प्रकृतिके अंदरके तत्त्वोंको ही रूप-नाम आदि देकर व्यवस्थित कर देता है। इसके उत्तरमें केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि परमात्मा और प्रकृति दोनों भिन्न और नित्य हैं तो प्रकृतिके अपने गुण होनेके कारण परमात्माकी क्रिया-शक्ति सीमित हो जायगी। परिणामस्वरूप वह सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकेगा और यदि वह सर्वशक्तिमान नहीं है तो उसकी और एक कुम्हारकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं, अपितु एक दूसरी दृष्टिसे उसकी स्थिति कुम्हारकी स्थितिसे भी निम्नस्तरकी हो जायगी; क्योंकि परमात्माने जंगल वनाये और हमने उन जंगलोंको सुव्यवस्थित रूप देकर शहर बसा दिये। इस प्रकार उसी लड़कीकी तरह, जिसने एक स्कूल-निरीक्षकके यह पूछनेपर कि 'तुम्हें (लड़कीको) किसने बनाया ११ उत्तर दिया था 'मुझे लड़कीके रूपमें परमात्माने वनाया, पर उसके आगे मैं स्वयं वनी हूँ हम भी यह दावा कर सकते हैं कि सर्वप्रथम परमात्माने वदस्रत और अव्यवस्थित पदार्थोंका निर्माण किया। बादमें हमने उन पदार्थोंको सुन्दर रूप दे दिया अर्थात् हमने शहर, महल, गाड़ियाँ तथा अनेक आश्चर्यकारक पदार्थ बनाये और इसलिये दोनोंमें (परमात्मा और हम) से हम ही ऊँचे स्तरके निर्माता हुए।आर्यसमाजियों-के लिये, जो प्रकृति और परमात्माको पृथक्-पृथक् मानते हैं, हमारा यही उत्तर है। आर्यसमाजी वस्तुतः नास्तिक तो नहीं हैं, क्योंकि नास्तिकोंके अनुसार परमात्माकी सत्ता नहीं होती, केवल प्रकृतिकी ही सत्ता होती है। परंतु आस्तिकके मतमें, जैसे कि हम पहले देख चुके हैं, परमात्माके अलावा अन्य किसी प्रकृति आदि तत्त्वकी सत्ता नहीं होती। वस्तुतत्त्व तो यह है कि कोई दार्शनिक शास्त्र ऐसा न होगा जो ईश्वरको तो मानता हो पर उसकी कर्तृत्वशक्तिको न मानता हो । इसका कारण ही यह है कि दोनों (ईश्वर और कर्तृत्वशक्ति) का अविनाभाव-सम्बन्ध है। अतः हमें यह मजबूरन स्वीकार करना पड़ता है कि परमात्माने सारा विश्व अपने अंदरसे प्रकट किया; क्योंकि सृष्टिके पूर्व केवल वही विद्यमान था, और कोई चीज नहीं थी कि जिससे वह संसारको बनाता ।

यहाँपर कुछ विद्वान् यह कह सकते हैं, जैसे कि दैतवादी प्रायः कहते भी हैं--- 'प्रमात्मा सर्वशक्तिमान् है वह शून्यसे

'तप

भी जगतका निर्माण कर सकता है। यह सत्य है। पर हमारा प्रश्न यहाँ परमात्माके ज्ञान और पदार्थींको बनानेके उसके सामर्थिक सम्बन्धमें नहीं है, हमारा प्रश्न तो उस तत्त्वके सम्बन्धमें है, जिससे इस जगत्का निर्माण हुआ । यद्यपि कुम्हारके पास ज्ञान, निपुणता, कौशल्य सब कुछ होता है पर ये घडेके उपादान नहीं हैं। इसी तरह हमारा प्रश्न परमात्माके सामर्थ्यके सम्बन्धमें नहीं है, अपित जगत्के उपादान-तत्त्वके सम्बन्धमें है और इस विषयमें हमारा कथन यह है कि उस समय उस ब्रह्मको जो कुछ प्राप्य था, वह स्वयं ब्रह्म ही था। गीताका श्लोक 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' (हविका अर्पण, हवि, अग्नि, आहुति देनेवाला, समाधि और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाला फल सब ब्रह्म ही है) सब संशयोंका निवारण कर देता है।

यदि कोई हठपूर्वक इसी वातपर अड़ा रहे कि परमात्माने अपनेसे संसार न बनाकर शून्यसे संसार बनाया, तो भी हमारी वेदान्तिक स्थितिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; क्योंकि जिस प्रकार मिट्टीका घड़ा मिट्टीके सिवा और कुछ नहीं होता, उसी प्रकार शून्यसे बना हुआ विश्व शून्य स्वभाववाला ही होगा। अतः यह तर्क भी दूसरे मार्गसे मायावादके सिद्धान्तको ही पुष्ट कर रहा है और इस प्रकार अद्वेतवादका समर्थक है; क्योंकि इस तर्कका भी तात्पर्य यही है कि 'सवसे पूर्व ब्रह्म ही विद्यमान था अन्य कुछ नहीं।'

और जब कोई यह मान लेता है कि उस समय केवल ब्रह्म ही विद्यमान था, उसे गीताके 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः के सिद्धान्तको भी मानना ही पड़ेगा। जो नहीं था, वह कभी सत्तामें आनहीं सकता और जो था उसका अस्तित्व कभी मिट नहीं सकता। अतः यदि पहले ब्रह्म था तो निश्चित रूपसे वह अव भी है और आगे भी होगा। इसीको दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि ब्रह्म और संसार एक है, निषेधवाचक शब्दोंमें कुछ इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'इस समय केवल ब्रह्म है और कुछ नहीं'।

पश्चभूत

इस् स्थितिको और भी स्पष्ट करनेके लिये हम पञ्चभूतोंपर विचार करते हैं। भूत पाँच हैं-आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इनमें पृथ्वी जलका ही एक रूप है, इस

लिये वह वस्तुतः जल ही है। जल भी अमिक्र क होनेसे अमि ही है और अमि भी उसी प्रकार वायुक्त होनेके कारण दोनों एक ही है। वायु भी आकारका है क्योंकि वायु आकारासे प्रकट हुआ है और अन्तें ब्रह्मका प्रकाशन होनेसे वस्तुतः ब्रह्म ही है। हा सभी महाभूत ब्रह्म हैं।

और शरी इन पञ्चभूतोंके पाँच गुण हैं--शब्द-स्पर्श-स्पन् हैं।जैसे आकाराका केवल एक ही गुण है—राब्द । वायुके के जाते हैं शब्द और स्पर्शः अग्निके तीन हैं--शब्द-स्पर्श-रूपः जले हें---शब्द-स्पर्श-रूप-रस और पृथ्वीके पाँच हैं--शद्सही जाता है, रस-गन्ध । पृथ्वीमें गन्ध सर्वथा नया गुण है, वह जलें और मनव था। पर गीता कहती है 'नासतो विद्यते भावो।' भौतिक तपका व भी यही कहता है 'पूर्व न होनेवाली वस्तु कभी और सब कुछ नहीं आ सकती' । इसलिये हमें या तो यह मानाः राजा जन कि गन्ध मिथ्या है, अथवा वह जलमें भी विद्यमार प्रथम पक्षमें पृथ्वीको भी, जिसका विशेष गुण गया मिथ्या मानना पड़ेगा और दूसरे पक्षमें पृथ्वी और ह एक मानना पड़ेगा। इसी प्रकार जलके गुणको बे नया दीखता है, मिथ्या मानना पड़ेगा, नहीं तो अं कंतपसे प्र भी मानना पड़ेगा। यदि अग्निमें रस गुण है तो पृथ्वी, कर पितामहसे अग्नि एक ही हुए। रूपको भी इसी प्रकार याती ह मानना पड़ेगा नहीं तो रूपकी सत्ता वायुमें भी मानकर 🧗 जल, अग्नि और वायुको एक मानना पड़ेगा। वैष स्पर्श भी मिथ्या होगा, नहीं तो उसकी सत्ता आकारामें सवको आकारा ही मानना पड़ेगा । अन्तमें आकार्क दाब्दको भी सर्वथा नया होनेसे मिथ्या मानना पड़ेगा जो दुर्वर्ष तो आकाराको परमात्मा मानना पड़ेगा। इस प्रकार हो जाता महाभूतोंको या तो मिथ्या मानना पड़ेगा, अन्यथा हिं पडेगा।

सारे तर्क या कथनको इस रूपमें वताया जा सकती पृथ्वी=जल; जल=अग्नि; अग्नि=वायु; वायु=आकाव सिकता है आकाश=ब्रह्म।

तद्भिन्नाभिन्नस्य तद्भिन्नत्वनियमः (जो पद्रार्थ आयाहि समान पदार्थोंके सदश होते हैं वे वस्तुतः एक होते सिक व इस नियमके अनुसार परमात्मा=विश्व (ब्रह्म या पर्मास्म तथा विश्व) एक हैं। (क्रमशः)

इसि

'परं

सांख

'आधिभौ अग्नि, वि

सर्वदुःखदोषनाशक तप

(लेखक--श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

में ३ 'तप' का अर्थ है तपाना । तपके द्वारा मन, इन्द्रिय और शरीरको तपाया जाता है, इसीलिये उसे तप कहते सिंग हैं। जैसे सोनेको अग्निमें तपानेसे उसके सारे विकार जल के के जाते हैं और उसका निखरा हुआ शुद्ध रूप सामने आ जाता है, उसी प्रकार तपके द्वारा मनुष्यके शरीर, इन्द्रिय को और मनके सारे विकार नष्ट होकर वे शुद्ध हो जाते हैं। भौतिः तपका बड़ा भारी प्रभाव और महत्त्व है । तपसे मनुष्य र्थं _{सब} कुछ प्राप्त कर सकता है । मुनिवर श्रीपराशरजीने ^{ानना ह}राजा जनकसे बताया है—

सि है

हिंह

चौया

नाम नाप्राप्यं तपसः किंचित् त्रैलोक्येऽपि परंतप। (महा० शान्ति० २९५ । २३)

और क , 🕯 (परंतप ! त्रिलोकीमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो उसे इं तपसे प्राप्त न हो सके। अीवेद्व्यासजीने भी भीष्म-ती, बहा वितामहसे कहा है— ा तो लि

दुरन्वयं दुष्प्रधर्षं दुरापं दुरतिक्रमम्। सर्वं वै तपसाभ्येति तपो हि बलवत्तरम्॥ (अनुशासन० १२२ । ८) नाशमें हैं

काशके 'जिससे सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त कठिन है, होगा जो दुर्गर्भ, दुर्लभ और दुर्लघ्य है, वह सब तपसे सुलभ प्रमा है। जाता है; क्योंकि तपका बठ सबसे बड़ा है।

इसिलिये केवल तपसे ही मनुष्य सारे दुःखों और दोषोंसे सम्बन्धरहित होकर प्रमात्माको प्राप्त हो कारा सकता है।

सांख्यशास्त्रमं आधिभौतिक, आधिदैविक द्यं आधारिमक—इन तीन प्रकारके दुः खोंके अत्यन्त अभावको मित कहा है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य-पितर, या परिवास आदि प्राणियोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले दुःखको आधिभौतिका दु:ख कहते हैं। नदी, वर्षा, जल,

आदि देवताओंके द्वारा प्राप्त होनेवाले दु:खको 'आधि-दैविक' दुःख कहते हैं। आत्यात्मिक दुःखके दो भेद हैं-- १. शारीरिक (व्याधि), २. मानसिक (आधि)। अङ्गभंग होना, ज्वर, क्षय, अतिसार आदि या नेत्र, कर्ण आदिकी कोई बीमारी होना शारीरिक दु:ख (व्याघि)। है तथा मृगी, हिस्टीरिया, उन्भाद, चित्तभ्रम आदि रोग होना मानसिक दु:ख (आधि) है। इनके सिवा शरीर, वाणी और मनके दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन, मल, विक्षेप, आवरण आदि दोषोंको भी 'आधि'के अन्तर्गत ही समझना चाहिये । इन सारे दःखों और दोषोंसे भलीभाँति सर्वथा सम्बन्धरहित होना ही वास्तविक मुक्ति है।

श्रीमनुजीने शरीरके मुख्य तीन दोष वतलाये हैं— हिंसा अदत्तानाम्पादानं चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥ (मनु०१२।७)

'बिना दिये हुए अनादि पदार्थोंको लेना, शास्त्रविरुद्ध हिंसा और परस्रीसेवन-ये तीन शारीरिक दोष माने गये हैं।

किसीके दिये विना ही चोरी, जोरी, डकैती, ठगी, धोखेत्राजी या विश्वासघातसे दूसरेकी धन-सम्पत्ति, जगह-जमीन, मकान आदि पदार्थोंको अपने अधिकारमें करना 'अदत्तोपादान' है।

वैसे तो कर्मके आरम्भमात्रमें ही हिंसा होती है। जैसे यज्ञादि शास्त्रविहित उत्तम आचरणोंके अनुष्टानमें तथा न्याययुक्त धनोपार्जनमें भी हिंसा होती है, किंतु वह हिंसा हिंसा नहीं है। बल्कि किसी भी प्राणीको अपने खार्थकी सिद्धिके लिये या रागद्वेषके कारण कभी किंचिन्मात्र भी दुःख देना 'शास्त्रविरुद्र हिंसा' है ।

अप्रि, बिजली, वायु, सूर्य, चन्द्र, प्रह_{रटि}स्त्र Public हिन्द्र Guruku Kangn Collection, Haridwar

लाप, हँसी-मजाक और सम्भोग आदि किसी प्रकारकी क्रिया करना परदारोपसेवा है।

ये तीनों शरीरसम्बन्धी दोष हैं। वाणीके चार दोष बतलाये गये हैं-

पैशुन्यं चापि सर्वशः। पारुष्यमनृतं चैव स्याचतुर्विधम्॥ वाङ्मयं असम्बद्धप्रलापश्च (मनु० १२।६)

'कठोर वचन कहना, झूठ बोलना, चुगली करना और व्यर्थ बातें करना-ये चार वाणीके दोष हैं।

किसीको दिल दुखानेवाली चुभती बात कहना, आक्षेप करना, ताना मारना, कठोर वचन कहना 'पारुष्य' है। बिना देखी-सुनी मनगढंत अप्रामाणिक मिध्या बात कहना 'अनृत' है। द्वेष, वैर, क्रोधसे या अन्य किसी दुर्भावसे अथवा मनोरञ्जनके लिये भी किसीके गुणोंमें दोष लगाना, किसीके अवगुणोंको उसके सम्मुख या उसकी अनुपस्थितिमें कहना, बदनाम करना, अपकीर्ति करना, चुगठी करना 'पैशुन्य' है। प्रमाद या अज्ञानसे फालत् बकवाद करना तथा अप्रामाणिक व्यर्थ चर्चा करना 'असम्बद्धप्रलाप' है । ये चारों वाणीसम्बन्धी दोष हैं।

मनके तीन दोष यों बतलाये हैं---

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेराश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥ (मनु० १२ । ५)

'दूसरेके द्रव्यको हड़पनेकी युक्ति सोचना, मनसे दूसरेका अनिष्ट चिन्तन करना और मैं शरीर हूँ—इस प्रकारका झूठा देहाभिमान करना—ये तीनों कार्य मनके दोष हैं।

दूसरेकी जगह-जमीन, मकान, धन-सम्पत्ति आदिको किसी भी उपायसे अपने अधिकारमें करते रहनेकी युक्ति सोचते रहना 'परद्रव्याभिष्यान' है । राग-द्रेष, काम- प्रकारका मैथून न करना और सदा वीर्यवाणि CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haritman

क्रोध, लोभ-मोह और मूर्खतासे किसी भी प्राणीका चिन्तन करना 'अनिष्टचिन्तन' है। किसी भी सा पदार्थमें ममता तथा अनात्मदेहमें मिथ्या आहे (अहंता) और ममता करना 'वितथाभिनिका ये तीनों मनसम्बन्धी दोष हैं।

ऊपर शरीरके तीन, वाणीके चार और मार्के दोष बतलाये गये हैं। इन सभी दोषोंके निवारणहे गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने शारीरिक, वाचिक और कां त्रिविध तप बतलाये हैं। इन तीनों तपोंमें 🖟 पाँच-पाँच भेद हैं।

रा चिमार्जवा देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शारीरं ब्रह्मचर्यमहिंसा तप उच्यो च (गीता १७।।

'देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनींबा ह पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शीर्ष् तप कहा जाता है।

बारह आदित्य, आठ वसु, एकादश रुद्र, प्र और इन्द्र आदि देवताओंका, ब्राह्मणोंका त्या आश्रम, आयु, अवस्था, पद, गुण, आचरणमें बड़े माता-पिता-आचार्य आदि गुरुजनोंका औ महात्मा पुरुषोंका आदर-सत्कार, सेवा-पूजा, ^{वर} करना 'देवद्विजगुरुप्राज्ञ-पूजन' है । शरीर—रिव्व वस्त्रोंकी जल, मिट्टी आदिसे सफाई रखना, सालिक पदार्थोंका सेवन करना तथा अभिमान और खार्थी हो विनय-प्रेमपूर्वक सबके हितके उद्देश्यसे शाही पवित्र आचरण करना 'शौच' है। रूठना, ^{अर्थ} ऐंठना, टेढ़ापन आदि दोषोंसे रहित मनके ^{भीती} शुद्ध भाव हो वैसा ही विनययुक्त सरह व्यवहा बालक-ब्राह्म 'आर्जव' है। किसी भी सुन्दर परायी स्त्री आदिके साथ अश्लीलभावसे दर्शन वार्तालाप, हँसी-मजाक, एकान्तवास, सम्भोग आहि

रहना किसी है। ये अनुह खाध्य

संख्या

ययार्थ प्रमेश्वर

कहा ज 6

आदि अपमान बोलना सुनी व

न उस कपटसे विनय-

समान डाह, भरे, इ

'हित युक्त श्र कर अ

और है। रे

मनः भाव

सभाव

मनके :

रणके ।

र मानं

र्जवम

उच्यते

१७।१

ोंका ह

शरीरसन

, XI

त्या

णमें अ

顽

क्षि

खार्थसे

T, 34

भीती

वहार

-ब्रिक

दर्शन।

आहि

fall

रहना 'ब्रह्मचर्य' है। कहीं भी, किसी भी प्राणीको, किसी भी निमित्तसे किंचिन्मात्र भी कष्ट न पहुँचाना है। ये पाँचों शारीरिक तप हैं।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। साध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ (गीता १७ । १५)

'जो उद्देग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं य्यार्थ भाषण है तथा जो वेदशास्त्रोंके पठनका एवं प्रमेश्वरके नामजपका अभ्यास है, वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।

जिससे दूसरेके चित्तमें उद्देग, क्रोध, भय, दु:ख आदि विकार हों, ऐसी कटुता, रूखा-तीखापन, ताना, अपमान, निन्दा, चुगली आदि दोषोंसे युक्त वाणी न बोलना 'अनुद्रेगकर वाक्य' हैं। जो बात जैसी देखी, सुनी और समझी हो उससे न अधिक और न कम कहना, न उसके भावको वदलकर कहना, बल्कि हिंसा और कपटसे रहित यथार्थ वचन कहना 'सत्य वाक्य' है। विनय-प्रेमयुक्त, सरल, शान्त और कानोंके लिये अमृतके समान मधुर शब्द कहना 'प्रिय वाक्य' है । हिंसा, द्वेष, डाह, वैरसे सर्वथा रहित और प्रेम, करुणा तथा मङ्गलसे भरे, इहलोक और परलोकमें कल्याणकारक वचन कहना 'हित वाक्य' है । यथाधिकार भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-सदाचार-युक्त श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणोंका अर्थ और भाव समझ-कर अध्ययन तथा परमेश्वरके गुण-प्रभाव, स्तुति-प्रार्थना और नामका जप करते रहना 'खाध्यायका अभ्यास' है। ये पाँचों वाणीसम्बन्धी तप हैं।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ (गीता १७। १६)

भनकी प्रसन्तता, शान्तभाव, भगवचिन्तन करनेका स्त्रभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणके भावोंकी भछी- भाँति पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है।

भक्ति-ज्ञान-वैराग्य और सदाचार आदिसे चित्तकी सात्त्रिक प्रसन्नता 'मन:प्रसाद' है। मनके देवता चन्द्रमा हैं, अतः चन्द्रमाके समान शीतल, सौम्य और शान्तिमय जो मनका भाव है, जिसमें रूक्षता, क्रुरता, निर्दयताका सर्वथा अभाव है, वह 'सौम्यत्व' है। भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, स्वरूप और छीछा आदिका मनन करनारूप जो मुनिका भाव है, वह 'मौन' है, अथवा जैसे चुप रहना वाणीका <mark>मौन</mark> है, उसी प्रकार संकल्प, कामना और स्फरणासे रहित होना मनका 'मौन' है। प्राणायाम, नामजप, सत-शास्त्रोंके अभ्यास तथा सांसारिक पदार्थोंसे वैराग्यके द्वारा मनकी चञ्चलताका नाश होकर उसका स्थिर और मलीमाँति वरामें हो जाना 'आत्मविनिम्रह' है । अन्तः करणका राग-द्वेष, काम-क्रोध-लोभ-मोह, मद-मत्सर, ईर्ष्या-वैर, घृणा-तिरस्कार, असूया-असहिष्युता, प्रमाद, व्यर्थ विचार, इष्टविरोध, अनिष्टचिन्तन, विषादभय, चिन्ता-शोक-व्याकुलता-उद्विग्नता आदि दुर्भावोंसे सर्वथा रहित होकर क्षमा, दया, प्रेम, विनय आदि सद्भावोंसे युक्त और भलीभाँति पवित्र हो जाना 'भावसंशुद्धि' है । ये पाँची मानसिक तप हैं।

उपर्युक्त त्रिविध साचिक तप ही सब प्रकार के दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसनरूप शारीरिक, वाचिक, मानसिक त्रिविध दोषोंसे तथा आधिमौतिक, आधिदैविक, आध्या-त्मिक त्रिविध दु:खोंसे सदाके लिये सर्वथा सम्बन्धरहित करके परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप मुक्तिकी प्राप्ति करानेवाला है। साचिक तपका खरूप भगवान्ने यों बतलाया है---

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः। अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ (गीता १७ । १७)

यह

यजमान

संकल्पा

शासमें

करता है

सोचा व

तस्

अ

प्रमाथी

वायुको

अतः स

जवतक

चञ्चलत

नहीं रह

समत्वय

भग हुए कह

£13.

वि

कारनेपर होता है

योगसूत्र

अ विषय-र्

जाता है होता

रष्ट्

HF

पुरुषोंके न चाहनेत्राले योगी द्वारा प्रम श्रद्धासे किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकारके तपको सात्त्रिक कहते हैं।'

जो मनुष्य इहलोक या परलोकके किसी प्रकारके भी सुख-मोग अथवा दु:खर्का निवृत्तिरूप फलकी कभी किसी प्रकारकी किचिन्मात्र भी कामना नहीं करता; इन्द्रिय-अनासक्त, निगृहीत तथा जिसके मन, बुद्धि शुद्ध हो जानेके कारण कभी किसी भी भोगके सम्बन्धसे विचिलत नहीं हो सकते; जिसमें आसिक्तका सर्वधा अभाव हो गया है; जिसकी तपके महत्त्व, प्रभाव और खरूपके प्रति प्रत्यक्षसे भी बढ़कर सम्मानपूर्वक पूर्ण विश्वास-परम श्रद्धा है, जिसके परिणामखरूप बड़े-से-बड़े विच्नों या कष्टोंकी कुछ भी परवाह न करके जो अत्यन्त आदर और उत्साहपूर्वक तपका अनुष्ठान करता रहता है, वह सम्पूर्ण दु:खोंसे सम्बन्धरहित हो सिचदानन्दधन प्रमात्माको प्राप्त हो जाता है। इसिटिये कत्याणका मी पुरुषको उपर्युक्त त्रिविच साचिक तपका ही निष्कामभाव-से परम श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि मुक्तिके

लिये कर्मकी उतनी प्रधानता नहीं है जितनी मार्क कर्म चाहे ऊँचा न हो, कर्ताका भाव यदि ऊँचाहे उसका फल ऊँचा ही होगा । और यदि कर्म ऊँच ऊँचा हो किंतु भाव नीचा हो तो उसका फल नीच होगा। पूर्ण निष्कामभावसे केत्रल कर्त्तव्य समज्जा क मुक्तिकी कामनासे किये हुए शिल्प, व्यापार एवं हे चाकरी आदि लौकिक दृष्टिसे छोटे माने जानेवाले का महान् फल प्रदान करते हैं और लौकिक फलकी काल से किये हुए यज्ञ, दान, तप, पूजा आदि ऊँचेसे कर्म भी तुच्छ फल ही देते हैं; क्योंकि जिस उद्धे जो कर्म किया जाता है, उसका बैसा ही फल प्र होता है। जो कर्म स्त्री, पुत्र, धन, मकान, मान, ब प्रतिष्ठा अथवा स्वर्गसुख आदिके लिये किया जात उसके फलरूपमें ये ही नाशवान् पदार्थ मिलते हैं। प्रकार जो कर्म भगवत्प्राप्ति या मुक्तिके लिये किया ज है उसका फल भी नित्य अविनाशी प्रमात्माकी ही प्राप्ति होता है । अतएव हमें अपना म ऊँचे-से-ऊँचा विशुद्ध रखते हुए ही उपर्युक्त तन अनुष्टान करना, चाहिये।

मानव-अक्षय अविनश्वर

सर्वेशने प्रकृतिद्वारा अनेक संयोगोंमें, अग्नि-जल-वायु-पृथ्वी-आकाशके पञ्च-तत्त्वोंके अनेक संयोगोंसे, अगणित जीवनकी सृष्टि की—सर्जना की और इसी प्रकार प्रकृतिद्वारा ही अनेक दुर्घटनाओंसे सर्दी-गरमी-हवा-पानी-आसमानके वि दुर्घटनोंसे, (विवटनोंसे नहीं) अगणित बार ही चेतनका—सृष्टिका संहार किया।

अङ्कर-सा जीव फला-फूला-बढ़ा—दीर्घकालमें लाखों-करोड़ों सालोंमें, फिर दाव दिया गया स्ट्रीमरोलरसे स्पार कि झपकते निमिषमात्रमें।

इससे समझ सको, तो समझो ! बचोंके खेलमें घरोंदे-सी चेतन-सृष्टि वनी-विगड़ी, गुड़ा-गुड़िया-सी सजी की फिर मिट्टीके मेलेमें पटक दी गयी, पीट दी गयी, चाहे-अनचाहे, समय-असमय।

फिर भी, अन्ततः, विजय होती है चेतनकी ही । अभीतक तो सर्वेश संहार-शय्यापर जड़ताके साथ अधिक है निष्क्रिय नहीं रह पाये। मनवहलावके लिये ही सही, उन्हें चेतनकी सृष्टि करनी ही पड़ी।

यों, मानव अक्षय रहा, अविनश्वर रहा। उसने विनाशकी गोदीमें सो-सोकर ही नवजीवन पाया, —पुनर्तिमीण प्र —ৰাতসূত্য ৰ্জ

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्त

(केसक--पं० भीदेवदत्तजी मिश्र)

यह गुड़्यजुर्वेदके मन्त्रका एक भाग है । इससे यजमान प्रार्थना करता है कि मेरा मन कल्याणमय संकर्णात्मक हो । मनका खरूप कापिलमुनिने सांस्य-शासमें संकल्पात्मक बताया है । मन पहले संकल्प करता है, पश्चात् बुद्धि उसका निश्चय करती है ।

मन अत्यन्त चञ्चल है। अतः यह बरावर नयी वस्तुओंको सोचा करता है। गीतामें भी अर्जुनने भगवान्से कहा है—

वम

सेई

ल प्र

वड़ा

पा ज

बञ्चलं हि सनः कृष्ण प्रमाथि यलवद्दहम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

अर्थात् यह मन अत्यन्त चन्नळ है । साथ-ही-साथ प्रमाथी और वळवान् भी है । अतः इसको वरामें करना बायुको वरामें करनेके समान अत्यन्त कठिन है । अतः समत्वयोगका साधन कैसे हो सकता है ! मन जबतक किसी वस्तुपर स्थिर नहीं होता, तबतक इसकी चश्चळता दूर नहीं होती । अतः मन समतापर स्थिर नहीं रहता । इसको स्थिर होनेका कोई उपाय हो तो समत्वयोगका साधन हो सकता है ।

भगवान्ने मनको स्थिर करनेके छिये उपाय बतळाते इए कहा—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

किसी एक वस्तुमें मनको स्थिर करनेका अभ्यास करनेपर सांसारिक विषयोंमें वैराग्य होनेसे मन स्थिर होता है। इसी बातको महर्षि पतक्किने भी अपने पोगसूत्रमें लिखा है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अभ्यास और वैराग्यके कारण जब मन सांसारिक विषय-मुखसे वितृष्ण हो जाता है, तब खयं बरामें हो जाता है, इसिलिये इसका नाम बर्शाकारसंक्रक वैराग्य होता है। पतञ्जलिने लिखा भी है—

रष्टानुअविकविषयवित्रणस्य वक्तीकारसंज्ञा वैराग्यस् । इष्ट अर्थात् रस्यनान स्री-पुत्र-धन आदिमें जो धुन्न-प्रतीति होती है और अनुश्रविक देदोक्त स्वर्गादिमें मुख-प्राप्तिका प्रक्षोभन होता है, इन दोनों तरहके विषय-मुखसे वैराग्य होनेपर मन वशमें होता है। अतः इसको वशीकारसंज्ञक वैराग्य कहते हैं। मनके संकल्पसे उत्पन्न होनेवाले जो कामादि विक्षेप होते हैं, उनको जीतनेके लिये श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धके १५ वें अध्यायमें व्यासजीने कहा है—

असंकल्पाज्ययेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् । अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ आन्वीक्षिक्षया शोकमोहौ दम्मं महदुपासया । योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीह्या ॥ कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना । रजस्तमध्य सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ॥ आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया । एतत् सर्वे गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥

तात्पर्य यह है कि कामनाओंका अन्त नहीं है, अतः मन यदि कामना करना छोड़ दे तो कामपर अनायास विजय प्राप्त हो जाती है। कामना न होनेसे कोधका कारण ही मिट जाता है, अतः क्रोध स्वयं पराजित हो जाता है।

धनमें अनर्थका वास रहता है, इससे प्रायः अधर्म ही होता है, इसिलये धनकी चाहसे जान-बूबकर आगमें कूदना है। इस तरहकी भावना करनेसे धनसे वैराग्य हो जाता है और लोभकी स्थिति नष्ट हो जाती है। सारियक विचारसे भय दूर हो जाता है। तत्वायमर्शन-का अर्थ है कि यह शरीर पान्नभौतिक है, यह नश्यर है, इसका विनाश किसी दिन अवश्य होगा; आत्मा अजेय, अच्छेय, अदाह्य और अक्लेय है। इसका विनाश कोई कर नहीं सकता। अतः मृत्यु ही एकमात्र भयका कारण है, उसका डर हट जाता है कि मैं महाँगा। दर्शनशास्त्रोंके अध्ययनसे शोक और मोह दूर हो जाते हैं। दम्भ दूसरेको घोखा देना है, उसकी निवृत्ति महारमाओंकी उपासनासे होती है; क्योंकि महारमाओंके सर्व स्थावसे इमलोग भी दम्म छोड़ देते हैं।

समाधिका एक विष्न है दूसरेसे बातचीत करना । यदि मौनव्रतका पालन किया जाय तो योगसाधनामें जितने विष्न आते हैं, वे हट जाते हैं।

अपने शरीरकी ममता छोड़ देनेसे अहिंसाका पालन होता है; क्योंकि अपने शरीरकी दुर्बलताको मिटानेके लिये तथा इसको सुख पहुँचानेके लिये ही हम दूसरेको कष्ट देते हैं और उसको प्राणिवयुक्त कर देते हैं।

भौतिक दु:ख़की निवृत्ति कृपा करनेसे होती है, योगसूत्रमें भी लिखा है, 'अहिंसाप्रतिष्ठायां सर्व-वैरत्यागः' सब जीवोंपर जब खयं दयाका व्यवहार करेंगे तो दूसरे जीव भी हमारे साथ दयाका व्यवहार करने लगेंगे। भाग्यका दुःख समाधिसे दूर किया जाता है। सत्त्वगुणसे रजोगुण और तमोगुण नाश होता है; क्योंकि सत्त्वगुण प्रकाशमय है, रजोगुणका खरूप रागमय है एवं तमोगुणका खरूप अन्धकारमय है। प्रकाशसे अन्धकारका नाश होता ही है। अतः सत्त्वगुणसे रजोगुण और तमोगुणको जीतनेके लिये कहा गया है।

सत्त्वगुणको उपशमसे अर्थात् निवृत्तिसे पराजित किया जाता है । इन सर्बोंको मनुष्य तबतक नहीं जीत सकता, जवतक गुरुमें भक्ति न हो; क्योंकि गुरुभक्तिके विना योगसिद्धि नहीं होती । और आत्मज अर्थात् अपनेमें खयं उत्पन्न होनेवाले कामपर विजय योगराक्तिसे प्राप्त होती है । इसी तरह तमोगुणकी वृत्ति निदा है, उसपर विजय सत्त्वगुणके उद्देकसे होती है।

पातञ्जल योगसूत्रमें मनको स्थिर करनेके उपायोंमें 'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' इस सूत्रसे ईश्वरका ध्यान और उनके नामका जप भी बतलाया है। जपकी विधि बतलाते हुए उन्होंने कहा है-

'तज्जपस्तवर्यभावनम्' प्रणव अर्थात् ओम् ईश्वरका नाम है, इसको जपना और इसके अर्थका चिन्तन करना । अष्टाङ्कयोगका निर्माण भी इसी मनको स्थिर करनेके लिये हैं; क्योंकि-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

ऐसा शास्त्रीमें लिखा हुआ है। मन जिन्ही रहता है, उसी-उसी के विषयोंको सोचता आत्माको शरीर धारण करना पड़ता है। गीताके अध्यायमें लिखा भी है---

यं यं वापि स्वरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

अतः पतञ्जलि ऋषिने-

यमनियमासनप्राणायासप्रत्याहारधारणायार वाणीसे भी समाधयोऽप्रावङ्गानि ।

अष्टाङ्मयोगका उपदेश दिया है।

मनका शिवसंकल्प यही है । जब मन ईश्वा घ्यानमें लीन हो जाता है, तब वह स्थिर हो जाता क्योंकि मनको उससे अधिक सुखका अनुमान ह होता । इसी बातको गीतामें भगवान्ने कहा है-

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।

मन उस वस्तुको प्राप्त कर लेता है जिसकी बेंही गयी। वह करोड़ों जन्मोंसे संसारमें भ्रमण कर रहा वह संसारके विषयोंमें सुखप्राप्तिकी आशासे विष् पकड़ता था; परंतु उसको वह आत्यन्तिक सुख अर्क नहीं मिला था । इसलिये वह जब ब्रह्मसा<mark>सार</mark> आनन्दको प्राप्त कर लेता है, तब उसको उससे बङ् कोई आनन्द माळ्म नहीं पड़ता । हमलोग मि बहुत बड़ा दु:ख समझते हैं, जैसे पुत्र-मरण ऐसे दुःख भी उसको उस स्थानसे विचिळित ^{नहीं} सकते; क्योंकि उसकी दृष्टिमें सांसारिक सम्बन्धका शि ही रह नहीं जाता। इसिलिये वह विचलित नहीं हों हा गया

श्रुति भी कहती है 'न स पुनरावर्तते' फिर अ जिल्हा इस दु:खालय और विनाशी संसारमें आगमन नहीं हैं किंद मुख

अतः इम अपने इष्टदेवसे 'तन्मे मनः शिवसं सिस्स्प और सभीको है मस्तु' की प्रार्थना करते हैं प्रार्थना करनी चाहिये।

एक त्यामसुन्द

(८) इ। मटकी सि एकमात्र इ

सन्दर' की

इयामसुन्द र जा पहुँची भरा था, गं

मनमें पहुँ जो छिपे-हि कर रहे थे

६। २२ गोपीके

चली चितत

मधुर

प्रगटे

यों दि कर गोपी

छाछायित ख्छ द्

मधुर

(?)

एक प्रेममयी गोपी जिसका चित्त प्रियतम श्वामधुन्दरके पास ही जाकर वस गया था, दहीसे भरी मारकी सिरपर रखकार घरसे निकली । उसका चित्त एकमात्र श्यामधुन्दरके चिन्तनमें ही लगा था और उसकी बाणीसे भी निरन्तर 'प्यारे श्यामधुन्दर, जीवनधन श्यामधुन्दर की मधुर व्यनि अनवरत हो रही थी । इस प्रकार श्यामधुन्दरमें ही स्थित गोपी भटकती हुई एकान्त वनमें जा पहुँची । गोपीका मन श्याम-विरहकी मधुर व्याकुलतासे जा पहुँची । गोपीका मन श्याम-विरहकी मधुर व्याकुलतासे न हैं मार्था, गोपी-मनकी इस व्याकुलताने तुरंत श्यामधुन्दर के न हैं मार्था, गोपी-मनकी इस व्याकुलताने तुरंत श्यामधुन्दर, जो लिपे-लिपे गोपी-प्रेमके पावन दिव्य सुधारसका पान कर रहे थे, तुरंत प्रकट हो गये और उनकी दृष्टि-मधुकरी ते। गोपीके मुख-कमल-मकरन्दका पान करनेमें संलगन बेरें गोपी ।

चली स्याम-गत-चित्ता ग्वालिनि धर सिर द्धि पूरन मटकी। चिंतत स्याम, पुकारत स्याम हि, पहुँची बन इकंत, भटकी ॥ मधुर बिकलता गोपी-मन स्याम-चित्त में अगटे तुरत, गोपी-मुख-मधुर

विपर्याः

अवतः

बद्

SHE

ा आहे

पद्म इष्टि-अमरी अटकी ॥
गाँ प्रियतम स्थामसुन्दरको सहसा अपने सामने देखका गोपीके मनमें अपरिमित आश्चर्य और अपार आनन्द
होते का गया। आश्चर्यसे उसकी तर्जनी अंगुलि चिबुकपर
होते और वह निर्निमेष नेत्रोंसे प्रियतमके आनन्दवर्षक सुखारविन्दको देखती ही रह गयी। स्थामसुन्दर
होते सिस्तस्प होनेपर भी गोपी-हृदयके प्रेमरसके लिये सदा
का वर्षक दिखें भर गया था, उसे खच्छन्द छूटनेके लिये

उन्होंने हाथ बढ़ाया । मटकीके हाथका स्पर्श होते ही मटकीका ग्रेमरसपूर्ण द्धि छळका, इधर रसका समुद्र मन भी छळक उठा और वह सब बन्धनोंको तोड़कर बह चळा।

निरखि स्थाम सन्मुख सहसा

मन छयी अमित अचरज आनंद।
देखि रही अपलक, अचरजअंगुरि धरचित्रुक, बदन सुख कंद॥
रसमय स्थाम छैन हिय-रस द्धि
भरयौ, लगे लूटन स्वच्छंद।
छलक्यौ द्धि उत, इत मन-रस-निधि
छलक्यौ, बद्यौ तोरि सब बंद॥
(२)

एक इयाममयी गोपी नित्य निरन्तर सर्वत्र केवल इयामसुन्दरको ही देखती। उसकी दृष्टिमें एकमात्र इयामसुन्दर ही रह गये थे। वह इयाम-दर्शन-सुखमें पगली हुई ग्वालिनी तन-धन-भवन सबको मूलकर दर्शनानन्दमें फूली इधर-उधर डोलती रहती, उसे सर्वत्र ही प्रियतम श्यामसुन्दरकी परम सुन्दर मोहिनी मूर्ति दिखायी देती। वह कभी सरोवरके तटपर जाती, कभी यमुना आदि निद्योंके; कभी एकान्त अरण्यमें पहुँच जाती तो कभी निकुञ्जमें, यों वह गोपी अकेली सदा घूमती रहती, उसकी आँखें जहाँ जातीं, वहीं नित्य-निरन्तर उसे प्रियतम श्यामसुन्दरका ही लिलत मुखकमल सुशोभित दिखायी पड़ता।

एक दिन वह भडकती हुई एकान्त वनमें पहुँच गयी । उसकी दृष्टि सुन्दर सुनील आकाशकी ओर गयी और वहीं उसे स्थामसुन्दर दिखायी दिये । वह खड़ी रह गयी मुग्ध होकर और निर्निमेष नेत्रोंसे मनमोहन स्थाम-सुन्दरकी मनोहर शोमा निरखने लगी । उसके लिये समस्त देशकाल श्रीकृष्णमय हो गये । तमाम तत्त्रोंपर कृष्णघन-तत्त्व छा गया । उस ग्वालिनीको धन्य है, जिसके नेत्रकमलोंमें इस प्रकार धनस्थाम स्थामसुन्दर खयं मधुकर बनकर सदाके लिये बस गये ! ग्दाकिनी भूकी तन धन धाम । किरत बावरी इत-अत निरकतं सोहण छवि अविशास ॥ सर-खरितातर, कानग-डोहत सदा एकाकिनि धाम । बहुँ स्म बाय तहाँ नित दीखत सोहन प्रियतम-बदन दिना भटकत इकंत दन, इति गई नम दिसि सुिठ ठाम। नैत सुरध सइ ठाड़ी निरस्तत छिब मन मोहन स्थाय ॥

संधे कृष्णञ्चन त्रव तमास्। साके खाकिनी, पंकजबन मधुप बहे घनस्याम् ॥

यही मध्र गोपीभाव है, जहाँ न तो दृष्टिं क्र श्रीश्यामधुन्दरके अतिरिक्त अन्य कुछ रहता है, न ल न क्रियामें और न अनुभवमें ही । इस दिव्य गोकी विषयविमोहित विलास-विभ्रम-रत चित्तमें कला सम्भव नहीं ।

सतीधर्म

(लेखक—महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ)

(१) जिस-जिस आचरणसे नारियोंका सती-धर्म खिण्डत होता है-

१-परपुरुषके साथ गप्प या बातचीत करना ।

२-पुरुषके मुखकी ओर देखकर बात करना।

३-पुरुषका स्पर्श करना (जिस किसी बहानेसे)।

४-पुरुषके हाथमें हाथसे जल, खानेकी चीज, इल, कमल या अन्य कोई भी वस्तु देना ।

पुरुषोंके दलमें ५-पर्पुरुषका अन्छा लगना, रहना, पुरुषोंके साथ वातचीत करना ।

६—विडकीसे पुरुषक्षी ओर देखना, बाजारॉसे और दुकानोंसे चीजें खरीदना ।

७-पुरुषके साथ इशारे करना या पुरुषके इशारेका अनुमोदन करना अर्थात् पुरुषके इशारेका प्रतिवाद न करना । उसके सामनेसे पुनः निकलना ।

८-किसी भी बहानेसे पुरुषके पास जाकर उससे बातचीत करना, पुरुषकी बात अच्छी लगना, कान लगाकर पुरुषकी बात सुनना ।

९-पति, पिता और पुत्रके खतिरिक्त खन्य किसीके १-सती नारी छायाकी भौति सतत बामीके।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भी साथ बाहर जाना-आना । दूसरे पुरुषकी वा दूर रही, देवर, भाई तथा मामा आदिके साथ भीज

१०-पतिके साथ रहनेपर भी पुरुषमण्डलीके गुरुजनोंव तीर्थादिमें भ्रमण करना।

११-पुरुषोंकी बातोंके बीचमें बोलना।

१२-पुरुषको प्यार-आदरसे रहनेके लिये करना।

१३-पुरुषके साथ पत्रव्यवहार करना।

१४-पुरुषके साथ फोनपर हात करना।

१५-बिना ही प्रयोजन पुरुषके सामने जाना।

पास-पास चूमना।

१६-पुरुषके मुखसे अपने रूप-गुणकी

सुनना। १७-जिस नारीको बहुत-से पुरुष स्पृहाभी देखते हैं, उसका सतीधर्म खण्डित होता है पर्देकी प्रथा है)।

(२) सतीके आचरण-

स्वामीव 3

संस्या

पान व हवा क

3. कभी भी 8.

> 4. ξ-

प्रयोजन **उत्तरमा**त्र

पुरुषका

19-

28 आहार दे

80

93 गुरुपुत्र ।

भी हों, धारण क प्रकार अ

१३ सदश दे

ओर न देखनेके

करके

MI

11

निर्विक

ल्पना

स्वामीको छोड़कर किसी विशेष प्रयोजनसे भी कहीं न जायँ।

२—स्वामीकी त्रिकाल पूजा करके उनका चरणामृत पान करें । स्वामीके भोजनके समय उनके पास बैठकर हवा करें ।

३—खामीकी बातका नतमस्तक रहकर पालन करें। कभी भी प्रतिवाद न करें।

४-पर-पुरुषसे सदा दूर रहें।

५-मुख ढका रक्खें, पुरुषकी ओर न देखें।

६-पुरुषके साथ किसी प्रकारकी वातचीत न करें। प्रयोजन होनेपर नीची दृष्टि रखते हुए पुरुषकी बातका उत्तरमात्र दें। पुरुषके साथ घनिष्ठता न करें या प्रश्रय न दें।

७-पुरुषको प्यार-आदर-आप्यायन न करें।

८—स्वामीके बन्धु-बान्धवोंके प्रति आग्रहशील न हों।

अत्र पुरुषका आदर पुरुषके द्वारा ही करायें।

९-सब प्रयत्नोंसे खामीकी सेवा करें। खामी तथा गुरुजनोंकी सेवा तन-मन-वचनसे करें।

१०-सास-समुरकी सेवा प्राणपणसे करें।

११-पुत्र-कन्याओंको सत्-शिक्षा तथा सात्त्विक ये ^{अहार} दें। नित्य उनसे उपासना करायें।

१२—अन्य पुरुष तो दूरकी बात—भगवान् हों, गुरु हों, गुरुपुत्र हों, परमहंस हों, साधु हों, गुरुभाता या कोई भी हों, पुरुष पुरुष ही है। इस बातको अच्छी तरहं भारण करके ही उनकी सेवा करें। पुरुषको किसी भी प्रकार अकेलेमें बातचीतका अवसर न दें।

१३-सती नारी पुरुषमात्रको पिता अथवा पुत्रके सहरा देखें।

भीर न उठे, सदा ही नीची रहे । परपुरुषका मुख है (देखनेके समान और अपराध नहीं है।

१५-सती नारी इस लोकमें पति-नारायणकी सेवा करके रोग-शोक-दुःख-ज्वालासे सदाके लिये मुक्त होकर वैकुण्ठमें निवास करेंगी । परलोकमें वैकुण्ठका द्वार उनके लिये सदा खुला रहेगा ।

(३) स्त्रीका सर्वनाश करनेवाले अभागे पतिके लक्षण—

१—वन्धु-वान्धव अथवा अन्य पुरुषके पास पत्नीको ले जाकर उनके साथ हँसी-मजाक करवाना, सबके साथ या अकेलेमें स्त्रीके साथ भोजन करना ।

२--घरमें आये हुए वन्धु-वान्धवोंकी सेवाका भार स्त्रीको देकर स्वयं दूसरी जगह रहना।

३—परपुरुषके साथ निर्वाध मिलने-जुलनेके लिये स्त्रीको बाध्य करना ।

४—स्रीके द्वारा पुष्पमालादिसे अपने मित्रको सजाना । स्रीके हाथों मित्रके हाथमें चाय, पान, नाइता आदि दिल्<mark>याना ।</mark>

५—मित्रके साथ स्त्रीको खेठ, नाटक, सिनेना आदि देखने भेजना । निर्वाध भ्रमणका अधिकार देना ।

६-मित्रके साथ पत्रव्यवहार करनेका खीको आदेश देना।

७-परपुरुषके साथ फोनपर स्त्रीको बातचीत करने-का अधिकार देना ।

८—स्रीको लजा छोड़कर परपुरुषके साथ बातचीत करनेके लिये आग्रह करना।

९—पुरुषमण्डलीके साथ स्त्रीको लेकर देश-देशमें भ्रमण करना ।

१०-स्रीको सर्वतोभावसे स्वेच्छाचारका अधिकार देना।

११-विशिष्ट सभासमितियोमें स्त्रीको गान या स्तवादि करनेका अधिकार देना ।

१२—स्रीजित अर्थात् स्रीके आज्ञाकारी नौकरकी भाँति रहना ।

१३ - स्त्रीकी वातका प्रतिवाद करनेकी सामर्थ्य न होना।

१४—सदा ही स्त्रीका मन रखना, स्त्रीके चरित्रपर अन्यविश्वास करना।

१५-परपुरुषके प्रति स्त्रीका आकर्षण देखकर भी उदासीन रहना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(४) कल्याणकामिनी सधवाके कर्तव्य—

१—ब्राह्ममुहूर्तमें बिछौनेसे उठ बैठे और गुरुदेवका मस्तकमें, इष्टदेवताका हृदयमें ध्यान करके मानसोपचार पूजा करे तथा यथाशक्ति जप करके बिछौनेका त्याग करे । पितदेवता नींदमें सोये हों तो भी उन्हें दण्डवत्- प्रणाम करके शौच, गृहमार्जन आदि संसारके अन्यान्य आवश्यक कार्योंको करके स्नान करे । पितको नित्य तीन बार प्रणाम करे । पित स्वयं नारायण हैं—यह याद रम्खे ।

२—पति यदि कामके लिये जानेवाले हों, तो रसोई बनाये। जीभ खाली न रहे। पतिके चरणोंमें पुष्पाञ्चलि चढ़ाकर उनका चरणामृत लेकर उन्हें भोजन कराये। भोजनके समय सम्भव हो तो आवश्यकतानुसार हवा करे। पतिके भोजन कर लेनेपर पान आदि दे। किसी भी दूसरे साधन-भजनके बिना ही केवलमात्र पति-की सेवा करके ही नारी परमगतिको प्राप्त करती है।

३—पतिके काममें चले जानेके बाद पूजन, जप, घ्यान, पाठ करे। नित्य यथासाध्य गीता, रामायण या संतोंके वचन आदि सद्प्रन्थोंका यथासाध्य पाठ करे। तीन बार प्रार्थना करे।

8—घरमें ससुर, सास तथा अन्यान्य गुरुजन हों तो उनको त्रिकाल प्रणाम करे । देवताकी भाँति उनकी सेवा-गुश्रूषा करे, उनकी आज्ञाका सादर पालन करे। उनके साथ कलह न करे।

५—पुत्र-कन्यादिकी अतिथिकी भाँति सेवा-सँभाठ करे । उनके द्वारा नित्य दोनों समय जप कराये ।

६—पुत्र-कत्या आदिके खान-पानकी ओर ध्यान रक्खे, उन्हें मनमाना खान-पान-न करने दे। मांस, अंडे, पियाज आदि उत्तेजक चीजें न खाने दे। शक्तिके अनुसार दूध-घी आदिके द्वारा ही उनकी पुष्टि करे।

७—पुत्र-क्तन्या आदिपर हाथ न उठाये, उन्हें गाली-गलौज न करे, भूल करनेपर मीठी वाणीसे समझा दे।

शासनके नामपर उन्हें झूठ वोलना न सिखाये। 'आज तुझे काट डालूँगी' आदि कहकर शासन जाता है। काटना तो कभी हो ही नहीं सकता। बच्चे झूठ वोलना सीखते हैं 'एक पैरसे खड़ा कार्र उनसे बोलना बंद कर देना'—इस प्रकार शासनक

८—घरद्वार, बिछौने, कपड़े आदिको स्वाह रक्खे । आछस्यके वशमें न हो, अपना काम ह करनेमें कभी संकोच न करे । सदा उत्साहित है भोजनादिके बाद सम्भव हो तो अकेले या पहाँहि साथ श्रीमद्भागवत, रामायण आदिका पाठ करे। समय न खोये । परचर्चा आदि न करे।

९-पतिके ब्रह्मचर्य-पालनमें सहायता है। अनुमति दें तो एकादशीके दिन अन्न न खाय।

१०—पुरुषसे दूर रहे, पुरुषोंके दलमें न र पिता, भ्राता या उपयुक्त पुत्रके साथ भी निर्जन क न रहे। दूसरे पुरुषोंकी तो दूरकी बात है।

११—साधु, परमहंस, गुरु, भगवान्—कोर्^भ न हो, पुरुष पुरुष ही है। उनके सम्बन्धमें सावधार्ग पुरुषका स्पर्श न करें।

१२—पुरुषकी दृष्टिसे अपनेको सदा बचाये। की दृष्टि अपनी ओर खिंचे—इस प्रकारके क चटकीले कपड़े पहनकर, साज-श्रृंगार करके क न जाय। साधारण सादा वेशभूषा रक्खे।

१३—गौकी सेवा करे । यथासाध्य अर्व करे । भिखारीको जो दे, भगवान्को दे ही हैं समझकर दे । सभीको प्रणाम करनेका अध्यास बो

१४-संसार भगवान्का है । हम दास^{द्वित} इस भावसे संसारमें रहे ।

१५—मीठी वाणी बोले । रूखे तथा करोही द्वारा किसीको पीड़ा न पहुँचाये । १६—पतिके परदेश रहनेपर उनके

(फोटो) की पूजा करे।

टोळी एक पु चौतरेपर बाहर अ

> एक बोव सफाई ब बल्कि

हुई बोल

'तुम स् वताया है, तुम

ए एन मकानमें प्रसाद

माई वोल लाये हो

अभी-अभ अपने ही

इसलिये उसी प्रव

पहचान सर्वेश्वर प्रकार

प्रतिभारि जो हमा आइये,

नार्य,

व्यक्ति

सर्वेश्वर-सम्बन्ध

(लेखक—पं० श्रीस्रजचन्दजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी))

एक दिन हमलोग चार, छ:, दस, बारह और सोलहकी रोही वनाकर दौरेपर निकले । योगायोग ऐसा कि एक पुराने गाँवमें एक साथ सब मिल गये। एक बौतरेपर बैठकर भोजन प्रारम्भ करते ही गृहस्वामिनी बाहर आयी और गालियोंके द्वारा हमारा स्वागत करती हुई बोली, 'आये कहींके मुर्दे — उठो यहाँसे।' हममेंसे एक बोला 'माई, क्यों चिढ़ती हो, हम खानेके बाद साफ-समाई करके जायँगे—-तुम्हारा चौतरा जैसा-का-तैसा— बिक और भी खब्छ हो जायगा ।' माईने कहा, 'तुम सब कहाँके हो ?' हमने अपने स्थानका नाम बताया । माई बोली, 'वहाँ तो हमारी एक वहन रहती है, तुम उसे जानते हो ?' हंमने कहा, 'हम उसीके मकानमें रहते हैं---पढ़नेके समय सदा वह हमें प्रसाद देती है । हम सब उसे मौसी कहते हैं। माई बोळी, 'अरे, बेटो ! यह सब सामान जो तुम साथ लये हो, आगे खाना और मैं तुम्हें गरम-गरम बनाकर अभी-अभी खिळाती हूँ।' हम सबको ऐसा लगा, मानो अपने ही घर बैठे हैं । एक क्षणमें यह परिवर्तन इसिलिये हुआ कि उसने अपना सम्बन्ध पहचान लिया। उसी प्रकार सर्वेश्वर प्रभुके साथ हम जब अपना सम्बन्ध ^{पहचान} लेंगे तो भक्ति सहज हो जायगी। हम सब सर्वेश्वर प्रमुके प्रम भक्त होते हुए भी विभक्त-से प्रतिभासित हैं। इसका कारण यही है कि उनके साथ जो हमारा शाश्वत सम्बन्ध है, उसकी पहचान नहीं है । आइये, आज हम सर्वेश्वर प्रमुके सम्बन्धकी पहचान कार हैं जिससे विस्मृति नष्ट हो और प्रम आनन्दकी उपलब्धि हो जाय ।

> खावँद री चिंद काँखमें— घर बन लीधा छाण।

वेंडी वलखे वालमा— 'ऊधा' अलख पलाण ॥

स्वामीकी काँखमें चढ़ी हुई पगुळी पत्नी बाळमके लिये विलखे, ऐसी ही हालत हमारी है। हम सब सर्वेश्वरकी गोदमें बैठे हुए ही उसे हूँढ़ रहे हैं। यहीं तो माया हैं । आइये, हम सब उस गोदको पहचान लें । यह पृथ्वी माता उस सर्वेश्वर प्रमुकी काँखमें है और हम बच्चे उसी पृथ्वी माताकी गोदमें ही तो बैठे हैं ? इस तरह जिसमें हम सब स्थित हैं, जिसके हम सब सनातन अमृतके पुत्र हैं, जिससे हम सब सम्भृत हैं, जिसके छिये हम सब जी रहे हैं, जिसके जरिये हम सब संचालित हैं, जिसको हम सब प्राप्त कर रहे हैं, जो हम सबके रूपमें खयं विलास कर रहा है-वही सर्वेश्वर है और उसे सम्बोधन करेंगे तो सभी विभक्तियाँ छूट जायँगी और नवमी परा-प्रकृति जो अक्षर परुषके साथ अभिन्न रूपसे सदा संक्लिष्ट है सर्वथा सर्वत्र समान है, अनुभवमें आते ही सम्पूर्ण आनन्दकी शाश्वत अनुभूति छहराने छग जायगी । लहरानेवाली तरंगें दिखती ऊपर हैं पर समुद्रके अनन्तर्वे अंशमें ही हैं । उसी प्रकार महिमावान् पुरुष दिखते ऊपर हैं पर सर्वेश्वर प्रमुके अनन्तवें अंशमें ही हैं । 'एकांशेन स्थितो जगत्' जिसमें हम सब—'कुछ' हैं यानी सब मिलकर भी 'एकांश' ही हैं, कुछ ही हैं वह सर्वेश्वर है। परमेश्वर परमेष्ठी 'तत्त्व' जलरूप है। सर्वेश्वर समष्टि 'भाव' समुद्ररूप है और हम सब व्यष्टि 'रूप' से लहर हैं। तत्त्व, भाव और रूपका विचार करके हम व्यप्टि, समष्टि और परमेष्ठीकी पहचान कर हैं। व्यष्टिका मन्त्र है---'ख्वयं' अव्यय । समष्टिका मन्त्र है---(ॐ) अन्यय और परमेष्ठीका मन्त्र है 'अहं'अन्यय । इसमें

13

श्रा है

न को

दा ह

रे।ः

न एक

मोई भी

ाये।

म को

इसीर

ध्य

सङ्

को

स्मृ

उत्पन कामन

और

उत्पन्न

पूरी मृ

है।र

नाशस्

विषये

होकर

होगा,

हो, न

देश

विश्व

जहाँ

भगवा

परिणा

りいからからからからなるのかのからから

कोई विभक्ति नहीं । 'अ' से लगाकर 'ह' तक सभी अक्षर आ गये । 'अहम्' से सारा संसार और 'अ' और 'ह' पर 'र्म् ' चढ़ गये कि 'अहं' परमेष्ठी हो गया । ईश्वर, सर्वेश्वर, परमेश्वर इन शब्दोंको ठीक-ठीक पहचान कर आत्मा, सर्वात्मा और परमात्माके साथ सम्बन्ध उपलब्ध कर लेना ही जीवनका स्वार्थ, परार्थ, परमार्थ और सर्वार्थ है । इसे यथार्थ समझकर ही सम्बन्धकी स्मृति होती है । गीताके अन्तमें अर्जुनने झटपट कहा, 'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा' मोह नष्ट हो गया मोह' ऐसा कहा, जल्दी-जल्दीमें मोह शब्द स्मरण नहीं हुआ और नष्ट होना ही याद आया । यही स्मृतिका आनन्द है । छूट गया छूट गया, यही मुक्त पुरुषके उद्गर हैं ।

माता हमारी पृथ्वी है । पिता हमारा जल है । दादा हमारा अग्नि है । मालिक हमारा वायु है । आकाश हमारा गुरु है । मामा हमारा चन्द्रमा है । मित्र हमारा सूर्य है। क्या हमारे तारे हैं । पृथ्वीका अधिष्ठाता प्रस्थितम किल्का अधिष्ठाता नारायण है । अग्निका अकि गणपित है । वायुका अधिष्ठाता शंकर है । आका अधिष्ठाता ब्रह्म है । वृद्धि अधिष्ठाता ब्रह्म है । वृद्धि अधिष्ठाता ब्रह्म है । अहंकारके अधिष्ठाता तारागण है हम स्वयं आत्मा हैं । उसके अधिष्ठाता प्रमामा और सबके अधिष्ठाता सर्वात्मा सर्वेश्वर हैं जिनको निम्निकार करनेसे ही हमारा कल्याण है । हम्मस्कार करनेसे हो हमारा कल्याण है । हम्मस्कार करनेसे हो हमारा कल्याण है । हम्मस्कार करनेसे हमारा कल्याण हमारा हमारा कल्याण है । हम्मस्कार करनेसे हमारा कल्याण हमारा हमारा कल्याण हमारा हमारा कल्याण हमारा हमारा कल्याण हमारा हमा

यस्मिन् सर्वे यतः सर्वे यः। यश्च सर्वतश्च यः। यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वोत्मने नमः॥

सार्थकता

मिले तुम्हें जो तन, मन, धन, वल, विद्या, वुद्धि और अधिकार। करो उन्हें सार्थक, कर पर-हितमें उनका उत्सर्ग उदार॥ विनय-विनम्र रहो पर, मत आने दो तनिक त्याग-अभिमान। समझो, हुई धन्य प्रभु-सेवामें लग प्रभुकी वस्तु महान्॥

-

तनकी सार्थकता संयम-विनयपूर्ण सेवा करनेमें है—
मनकी सार्थकता व्यर्थ-अनर्थ चिन्तन न करके भगविच्चन्तन करनेमें है—
धनकी सार्थकता अभावग्रस्त निर्धनोंको अभावरिहत धनी बनानेमें है—
बलकी सार्थकता निर्वलोंकी सहज सहायता करनेमें है—
विद्याकी सार्थकता विद्याहीनोंमें विद्या-विस्तार करनेमें है—
बुद्धिकी सार्थकता बुद्धिहीनोंमें बुद्धि बढ़ानेमें है—
अधिकारकी सार्थकता दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करनेमें है।

भोगवाद और आत्मवाद

(हनुमानप्रसाद पोद्दारके कलकत्तेके एक भाषणका सारांश)

भारतीय संस्कृतिका छक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार या भगवरप्राप्ति, और आजके जगत्का लक्ष्य है भोगप्राप्ति। इसीसे भारतीय सिद्धान्त है आत्मवाद या ईश्वरवाद और अजके जगत्का सिद्धान्त है भोगवाद । भगवान्ने गीतामें सर्वथा पतन या सर्वनाराका कारण वतलाया है भोगचिन्तन या विषयचिन्तनको । भगवान् कहते हैं-

ध्यायतो विषयानपुंसः सङ्गस्तेषुपजायते। सङ्गात् संजायते कामः कामात् कोधोऽभिजायते ॥ क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविश्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो वुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ (गीता २।६२-६३)

भोगोंके—विषयोंके चिन्तनसे उन विषयोंमें आसक्ति उपन होती है, आसक्तिसे (उनको प्राप्त करनेकी) कामना पैदा होती है। कामना (सफल होनेपर लोभ और) की विफलतामें, कामपर चोट लगनेपर क्रोध उपन होता है। क्रोध (या लोभ) से सम्मोह होता है— भी मूढ़ता छा जाती है। मूढ़तासे स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृतिभंश होनेपर बुद्धि मारी जाती है और बुद्धिके नाशसे सर्वनाश होता है।'

ये सर्वनाशके आठ स्त**र** हैं। इनमें सबसे पहला है विषयोंका—मोगोंका चिन्तन । इसीसे अन्तमं बुद्धिनाश होकार सर्वनाश होता है। भोग जिसके जीवनका छक्ष्य होगा, भोगवाद ही जिसका सिद्धान्त होगा--वह व्यक्ति हो, चाहे व्यक्तियोंका समुदाय समाज हो, समाजोंसे भरा देश हो, देशोंका समूह राष्ट्र हो या राष्ट्रोंका समुदाय विश्व हो , जहाँ भोगवाद है, वहाँ भोगचिन्तन है और जहाँ भोगचिन्तन है, वहीं परिणाममें सर्वनाश है। भगवान्ने भोगजनित सुखको पहले मधुर लगनेवाला परंतु

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तद्रश्रेऽमृतोपमम् परिणामे विपमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥ (गीता १८।३८)

'विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर जो पहले अमृतके समान (मधुर) लगता है परंतु जो परिणाममें विषके तुल्य (कार्य करता) है, वह सुख राजस कहलाता है।

एक जगह भोग-सुखको भगवान्ने दुःखोंकी उत्पत्ति-का स्थान—दुःखरूप फलका खेत बतलाया है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते वुधः॥ (गीता ५। २२)

'इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न जो सब भोग हैं वे नि: संदेह दु: खके उत्पत्ति-स्थान हैं तथा आदि-अन्त-वाले अनित्य हैं, भैया अर्जुन ! बुद्धिमान् पुरुष उनमें प्रीति नहीं करता ।'

अवश्य ही भारतीय संस्कृतिमें भोगका बहिष्कार नहीं है--अर्थ और कामका तिरस्कार नहीं है, परंतु वे जीवनके लक्ष्य नहीं हैं । भोग रहें पर रहें धर्मके नियन्त्रणमें, और उनका लक्ष्य हो मोक्ष या भगव-त्प्राप्ति । पुरुषार्थचत्रष्टयमें इसीलिये अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारोंको स्थान है। धर्मनियन्त्रित अर्थ-काम भगवत्सेवामें नियुक्त होकर मोक्षकी प्राप्तिके साधन बनते हैं और वे ही 'अर्थ-काम' जीवनके लक्ष्य बनकर मनुष्यको घोर अशान्ति तथा चिन्तामय जीवन बितानेको बाध्य करके अन्तमें नरकोंकी यन्त्रणामें पहुँचा देते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है--- 'अर्घ' और 'काम'में फँसे छोग कुत्ते और बंदरों-परिणाममें विषके सदश बतलाया है किन्दे क्राह्तो।हैं किन्नवात. Gui क्रक्समिकाहें, त्यह तासी मङ्गलमयी

यः।

[भागः

है। क्यु

शोत्तम है

ता अधिष्ठः

। आकार

1 वृद्धि

रागण है

प्रमात्मा

नको निल

1 5

नि है

। वे ह

नमः॥

है, जत्र सर्वव्यापी--प्राणीमात्रके रूपमें अभिव्यक्त भगवान् विण्युकी सेविका होकर रहती है। नहीं तो, उसे अपनी भोग्या बनाकर तो मनुष्य महापाप करता है, जिससे उसका निश्चित पतन होता है।

हमारे इस 'धर्म'से किसी वादका लक्ष्य नहीं है या केवल अध्यात्मविचार ही धर्म नहीं है। धर्म उस निष्ठा, विचार और क्रियापद्भतिका नाम है जो सबको धारण करता है। जिससे मनुष्यका सान्त्रिक उत्थान हो, जो प्राणीमात्रका हित तथा सुखका साधन हो तथा अन्तमें नि:श्रेयस या मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला हो, वही धर्म है। यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः। (वैशेषिक० १।२) श्रीवाल्मीकीय रामायणमें भगवान् श्रीरामजी लक्ष्मणजीसे

कहते हैं---

धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके धर्मफलोदयेषु । समीक्षिता ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा॥ सर्वे स्युरसंनिविष्टा धर्मो यतः स्यात् तदुपक्रमेत । द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता ॥

(अयोध्याकाण्ड २१ । ५७-५८)

'धर्मके फलखरूप सुख-सौभाग्यादिकी प्राप्तिमें जो धर्म, अर्थ और काम देखे जाते हैं, ने तीनों एक धर्ममें वर्तमान हैं। धर्मके अनुष्ठानसे ही तीनोंकी सिद्धि होती है, इसमें संदेह नहीं है। वैसे ही जैसे, पतिके अधीन रहनेवाली भार्या अतिथि पूजनादिधर्ममें, मनोऽनुकूल होनेसे काममें और सुपुत्रवती होकर अर्थमें सहायिका होती है। जिस कर्ममें धर्म, अर्थ, काम-तीनों संनिविष्ट न हों, परंत जिससे धर्मकी सिद्धि होती हो, वही कर्म करना चाहिये। जो केवल अर्थपरायण होता है, वह लोकमें सबके द्वेषका पात्र बन जाता है और धर्मविरुद्ध कामभोगमें आसक्त होना भी प्रशंसा नहीं, निन्दाकी बात है।

भोगवादी इस धर्मकी परवा नहीं करता us सका Collection, Haridwar

निश्चित सिद्धान्त ही होता है कामोपमोग कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥ (गीता १६।। है।

विषयभोगोंमें लगे मनुष्य वस, यही सब कुछ है निश्चितरूपसे मानते हैं।

यह आसुरी सम्पदावाले असुर-मानवका सिद्धान्त है।

भोगवाद ही आसुरी सम्पदा है या आसुरी ह ही भोगवाद है।

भोगवादी या असुर-मानव धर्मको नहीं मानता, भगवान्का भजन तो करता ही नहीं । भगवान्ने व लिये वहा है--

> न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमा। माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रितः। (गीता ७।।

'आसुरीभावका समाश्रयण किये हुए मायाके अपहृत ज्ञानवाले दूषित कर्म करनेत्राले नराधम म्हर्म यह (भगवान्को) भजते ही नहीं । भगवान्को नहीं ह भोगमें ही लगे रहते हैं, इसीसे वे नराधम तथा 🧗

ऐसे भोगवादी असुर-मानवको जीवनमें मिलते चिन्ता, अशान्ति, कामनाजनित पाप तथा मृत्युके नरकोंकी प्राप्ति तथा बन्धन । यथा---

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपा^{श्रिता।} (गीता १६।

मृत्युके अन्तिम क्षणतक अपरिमित चिन्ताओं रहते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः। (गीता १६।

मोहजालसे समावृत अनेक प्रकारसे भूमि (अशान्त) रहते हैं ।

काम एव क्रोध एव रजोगुणसमुद्रव महारानो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् (गीता ३।

(म

उत्प

संख

काम

दिन-

खभा चिन्त

भोग

भी कांग्रे

हो, वाला

विचा एका-

निन्द रहित

मनुम

कियर

श्चेताः॥ ता १६ |

विका हि आसुरी ह

ों मानता. ावान्ने ३

ाधमाः। श्चिताः ॥ र् मायावे

तथा मुड मिलते हैं

मृत्युके ाश्चिताः।

ता १६। चन्ताओंसे

वृताः। ता १६।

मुद्भवः रिणम् तिता ३।

श्रीमगवान्ने कहा—रजोगुण (विषयासक्ति) से उत्पन्न यह काम ही (चोट खाकर) क्रोध वन जाता है। यह काम कभी तृप्त न होनेवाला महापापी है। छिहैं (मनुष्यके द्वारा होनेवाले पापोंमें) यह काम ही वैरीका काम करता है—इसीसे पाप होते हैं, ऐसा समझो।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽद्युचौ ॥ (गीता १६। १६)

विषयभोगोंमें अत्यन्त आसक्त लोग अपवित्र नरकोंमें पडते हैं।

दैवीसम्पद्धिमोक्षाय निवन्धायासुरी मता॥ (गीता १६।५)

दैवी सम्पदासे मोक्ष मिलता है और आसुरीसे बन्धन। यही मत है।

भोगवादी असुर-मानवका 'कामकोधपरायण' होना गीता ७।। अनिवार्य है ।

भोगवादका विष हमारी भारतीय संस्कृतिमें नहीं था, ाम मुहर् गृह पाश्चात्त्य जगत्से यहाँ आया है और अब तो समस्त ते नहीं विश्वमें इतने भयानक रूपमें इसका प्रसार हो रहा है कि दिन-रात सर्वत्र सभी क्षेत्रोंमें भोगचिन्तन ही मनुष्यका समाव-सा वन गया है और यह निश्चित है कि भोग-चिन्तनका परिणाम बुद्धिनाशके द्वारा सर्वनाश होता है। भोगवादका ही यह विषमय परिणाम है कि आज भारतमें भी पाश्चात्त्य जगत्की भाँति प्रायः सभी वाद, चाहे वह कांग्रेस हो, कम्यूनिज्म हो, कम्यूनिङम हो, कैपिटेलिङम हो, सोशळिज्म हो या कोई भी 'साम्प्रदायिक' कहा जाने-वाल वाद हो, सभी भोगदृष्टिसे ही अपने कर्तव्यका विचार करते हैं। इसीसे सर्वत्र दलबंदी, कलह, द्रन्द्र, एक-दूसरेको गिरानेकी चेष्टा, एक ही धर्म-मतमें परस्पर निन्दा तया पतनकी चेष्टा आदि हो रही हैं। यह धर्म-रहित राजनीतिका अवस्यम्भावीं परिणाम है । हमारे यहाँ मनुमहाराजने राजाको शिकार, द्युत, दिवानिद्रा, परदोष-

कामजनित दस दोषोंसे तथा चुगली, अनुचित साहस द्रोह, ईर्ष्या, दूसरेके गुणोंमें दोषारोपण, द्रव्यहरण, गाळी, कठोरता—इन क्रोधजनित आठ दोषोंसे वचनेके लिये कहा है । पर आज यही सब दोष जीवनके आवश्यक अङ्ग या स्वभाव-से वन गये हैं । अभी चुनावके तामस यज्ञमें इनका विविध प्रकारसे अकाण्ड ताण्डव प्रत्यश्च देखा गया । हमारे प्रतिदिनके राजनीतिक जीवनमें भी ये दोष अङ्गस्ररूप ही वन गये हैं । ऐसा होना भोगवादी असर-मानवके लिये अनिवार्य है; क्योंकि वह तो इन्हींको गुण मानता है।

यह चीज केवल धर्महीन राजनीतिक क्षेत्रमें ही नहीं है, भोगवादीके द्वारा केवल भोगप्राप्तिके लिये स्वीकृत कोई भी जीवननिर्वाहकी या लौकिक उत्थान-अभ्यदय अथवा प्रगतिकी पद्धति भोगचिन्तन तथा अन्तमें बुद्धि-नाराके द्वारा सर्वनारा करानेवाली होती है। इसी कारण आज हमारे सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक, नैतिक—सभी क्षेत्रोंमें वडी तेजीके साथ दैवीसम्पत्तिका हास तथा आसरी-का विकास हो रहा है। जो अन्तमें महान् विनाश या घोर पतनका कारण होगा।

भोगवादी असुर-मानव क्या सोचता करता है तथा उसका परिणाम क्या होता है इसपर भगवान् कहते हैं—

इदमद्य मया लब्धिममं प्राप्स्ये मनोरथम्। मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ इदमस्तीदमपि हतः शत्रुई निष्ये चापरानिप । असौ मया ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं वलवान्सुखी॥ आढ्योऽभिजनवानसि कोऽन्योऽस्ति सहशो मया। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥ अहंकारं बलं दर्प कामं क्रोधं च संश्रिताः। प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥ मामात्मपरदेहेषु क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। द्विषतः क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिष्र ॥ आसुरीं योनिमापन्ना मृढा जन्मनि जन्मनि। क्यन, स्त्रीसहवास, मद्यपान, नाच, गात् व्यर्थ जाताहर्न Gurukul Kangri Collection, Handwar मामप्राप्येव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

'मैंने आज यह कमाया है, मेरे इस मनोरथको भी में अवस्य प्राप्त करूँगा । मेरे पास यह इतना धन तो है, फिर और भी मिलेगा। (मेरे काममें बाधा देनेवाला) वह शत्रु तो मेरेद्वारा समाप्त कर दिया गया है, जो दूसरे और हैं उनको भी मैं मार डालूँगा । मैं शासक ईश्वर हूँ, मैं ऐश्वर्यका भोगी हूँ, मैं सफल-जीवन हूँ, में बलवान् और सुखी हूँ । मैं बड़ा धनवान् हूँ, मैं अभिजनवान्-जनताका नेता हूँ, मेरे समान दूसरा है कौन ? मैं (बडे-बडे) यज्ञ—सेवाके कार्य कलँगा, मैं बड़े-बड़े दान दुँगा और मेरे मोदका पार नहीं रहेगा । इस प्रकार अज्ञानसे मोहित वे असुर-मानव मनोरथ किया करते तथा डींग हाँका करते हैं।

'इस प्रकार जो अहंकार, बल, घमंड, काम और क्रोधके आश्रित, गुणियोंमें भी दोषारोपण करनेवाले दूसरोंके शरीरोंमें स्थित मुझसे (भगवान्से) बड़ा द्वेष करते हैं, उन द्वेष करनेवाले, अशुभकर्ता, निर्दय, नराधमोंको मैं (भगवान्) संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ । भैया अर्जुन ! वे मूढ़ पुरुष मुझको (भगवान्को) न पाकर जन्म-जन्ममें (बार-बार) आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं; तदनन्तर और भी अधम गति (नरकादि) में जाते हैं।

आजके युगके भोगवादी मानवका यह प्रत्यक्ष चित्र है। सारा विश्व ही आज इन आसुरी भावोंका समाश्रयण किये हुए अपने विनाशका पथ प्रशस्त कर रहा है। सभी भोग-चिन्तनपरायण हैं; कोई मान-यशकी कामना करता है तो कोई अधिकार-सत्ताकीं, तो कोई धन-वैभवकी—इसीसे सभी ओर छीना-अपटी हो रही है।

भारतीय संस्कृतिका जो 'कर्तव्य' तथा 'त्याग'का उज्ज्वल आदर्श था, उसकी जगह आज 'अधिकार' तथा 'भोग'ने ले ली है । सभी लोग 'अधिकार' और 'अर्थ' या 'भोग'के पीछे उन्मत्त हैं। 'कर्त्तव्य' तथा 'त्याग' होनेपर उचित अधिकार तथा अर्थ-भोग अपने आप आते। यथा राम और भरतका इतिहास इसका साक्षी है। के विक्र तथा त्यागके कारण दोनोंके अधिकार कायम रहे यह ही उचित अर्थके भागी हए।

हमारा आदर्श ही था कर्तव्यमय त्याग । अमुरू प्राप्ति त्यागसे ही होती है। उपनिषद्की वाणी है न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमान्युः चले ह

कर्मसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, एक का गिरान ही कोई अमृतत्वको प्राप्त होते हैं—इसीसे के गौरव उपदेश है---

ईशा वास्यमिदं सर्वे यत्किञ्च जगत्यां जात सफल तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृथः कस्यखिद्धत्म हीनता (शुक्रयजुर्वेद ४० । १ ईशा० र खीका

अखिल विश्वमें जो कुछ भी जड-चेतन जगत् है हो ग सत्र ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ एक खान-त्यागपूर्वक भोगते रहो । इसमें आसक्त मत हैं गौरववे किसीके भी धनकी इच्छा न करो।

आज यह बात उपहासकी-सी वस्तु वन गी आज तो प्रत्येक वस्तुका मूल्याङ्कन होता है— या भोगदृष्टिसे ही । आत्माका प्रकाश करि 'शिक्षा' भी आज भोगदृष्टिसे ही होती है। प्र^{त्येक व} इसी दृष्टिसे विचार किया जाता है कि इस^{में इ} लाम है या नहीं ? पञ्चवर्षीय योजनाएँ, शिक्षा कल^{नी} नये-नये कारखाने, दवा-उद्योग, कसाईखाने, ^{हिंसार} सब इसी दृष्टिसे खोले तथा चलाये जाते हैं। हैं कहीं कोई आवश्यकता ही नहीं। यह सब भोग विषका ही विषैला प्रभाव है।

भोगवादके विषसे आक्रान्त होनेके कारण ही पिया पुर भारतके बड़े-बड़े अध्यात्मवादी विद्वान् भी, पाश्चात्य भी और इर्स विद्वान् बुरा न बता दें, इसके लिये अपनी हैं CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है।

घटना अंदर

हीनत

उसका

अधिकां इसीका

अपने १ रामायण

19 आते यथार्थ रूपमें प्रकाश करनेमें हिचकते हैं और उन्हें है। के विकृत करके उनके मतानुकूल वतानेका प्रयत्न करते हैं। । रहे पह मस्तिष्कका दासत्व बड़ा ही शोचनीय तथा घातक है। इसीसे हमारे प्राचीन इतिहास तथा ऐतिहासिक धरनाओंके काल बदलनेकी और सबको तीन हजार वर्षके अंदर लानेकी चेष्टा की जा रही है और दु:खका विषय है कि हमारे विद्वान् इन वातोंको स्वीकार करते त्वमाना चले जा रहे हैं। किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रको यदि एक को निरामा हो तो उसका प्रधान साधन है — उसके आत्म-हसींसे के _{गौरव} तथा आत्म-विश्वासको मिटा देना—उसके अपनेमें हीनताका बोध करा देना । यह काम पाश्चात्त्य विद्वानोंने ii जगा सफलतापूर्वक सम्पन्न किया और इसीसे भारत अपनेमें व**द्**धन्। _{हीनताका} बोध करके सहज ही मस्तिष्कका दासत्व ^{ईशा॰ भ} सीकार कर परमुखापेक्षी तथा परानुकरणपरायण जगत् हैं हो गया । विदेशी भाषा, विदेशी वेशभूषा, विदेशी प्ताथ ^{रखो} खान-पान, विदेशी रहन-सहन तथा विदेशी ज्ञानका मत हैं गौरवके साथ ग्रहण करना—हमारी इस आत्महीनताके बोधका ही सहज परिणाम है। पाश्चात्त्य विद्वानोंने भ्रमसेयां किसी कुटिल अभिसंधिसे इन तीन महाभ्रमोंका प्रतिपादन और प्रचार-प्रसार किया—

(१) आर्यजाति बाहरसे आयी है । भारतवर्ष उसका मूळ निवास-स्थान नहीं है।

(२) चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं है। इसमें अ (३) जगत्में उत्तरोत्तर विकास—उन्नति हो रही है। -काला-बिर मित्तिष्ककी गुलामीके कारण भारतीय विद्वानोंने हिंसा-अ ^{अविकांशमें} इन तीनों बातोंको स्वीकार कर लिया। सीका फल है कि आज हम भारतीयोंकी अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने पूर्वज तथा अपने गौरवमय महाभारत-गमायणादि प्राचीन इतिहास, अपने धर्मप्रन्थ वेद-स्मृति रण ही त्या पुराण आदिपर अश्रद्धा और अनास्था बढ़ रही है वात्य भी भी गवाद के विष-विस्तार में बड़ी सुविधा हो

ब भोग

तिहासोंक

गयी है । इसीसे आज हम तमसाच्छन्न होकर सभी कुछ विपरीत देखने, विपरीत सोचने और विपरीत करनेमें गौरव मान रहे हैं । भगवान्ने गीतामें कहा है-

अधर्म धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च वुद्धिः सापार्थं तामसी॥

(36132)

'अर्जुन ! तमोगुणसे आवृत जो बुद्धि अधर्मको धर्म, (अवनतिको उन्नति, विनाशको विकास, पतनको उत्थान, पापको पुण्य इस प्रकार—) सभी अयेमिं विपरीत मानती है, वहीं तामसी बुद्धि है।

आजका संसार भोगवादके विषसे जर्जरित होनेके कारण तमसाच्छन होकर इसी तामसी बुद्धिके द्वारा अपने कर्तव्यका निश्चय करता और तदनुसार चल रहा है। भारतवर्ष भी आत्मविस्मृत होकर इसी तामसी बुद्धिका आश्रय ले रहा है!

भारतने यदि अपने पूर्वज ऋषि-महर्षि तथा अपनी प्राचीन संस्कृति एवं धर्मप्रन्थोंपर विश्वास करके अपनी प्राचीन सर्वाङ्ग-सम्पन्न सर्वाङ्गसुन्दर आत्मवादी आदर्श संस्कृतिको न अपनाया तो इसका परिणाम उसके लिये तथा समस्त जगत्के लिये भी बहुत बुरा होगा; क्योंकि यही देश तथा यहींकी संस्कृति अनादिकालसे अध्यातमप्रधान आत्मवादी रही है। आज भी वर्तमान जगत्की स्थितिसे असंतुष्ट यूरोप तथा अमेरिकाके बहुत से सज्जन सच्चे शान्ति-सखकी प्राप्तिके लिये आत्मवादी भारतवर्षकी ओर ताक रहे हैं और बहुत-से तो यहाँ आ-आकर अध्यात्मकी शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं। पर जब भारत ही भोगवादी हो जायगा, तब तो जगत्की सारी आशा ही छुप्त हो जायगी। भारत आज इसी भोगवादके मोहजालमें फँसा है। भारतके मनीषियोंको गम्भीरतापूर्वक इसपर विचार करके किसी प्रकाशमय पथका पता लगाकर उसपर आरूढ़ होना चाहिये।

हरि: ॐ तत्सव् ॥

गीताका पुरुष

(लेखक-पं० श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम' एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्)

गीता अध्याय पंद्रहके अन्तमं तीन पुरुषोंका वर्णन है—क्षर, अक्षर और उत्तम पुरुष या पुरुषोत्तम । उत्तम पुरुषको ही परमात्मा भी कहा गया है । क्षर पुरुष भूत हैं, अक्षर पुरुष कूटस्थ है । उत्तम पुरुष तीनों लोकोंमें व्याप्त होकर उनका भरण-पोषण कर रहा है । यह अव्यय है तथा ईश्वर अर्थात् सबका खामी है । उत्तम पुरुष क्षरसे अतीत है, विनाश-भावसे परे है, परंतु अक्षर अर्थात् कूटस्थ पुरुषसे उत्तम है, श्रेष्ठ है । लोक और वेद दोनोंमें इसीलिये वह पुरुषोत्तम नामसे प्रख्यात है ।

यहाँ पुरुषोत्तम तो परमात्मा हैं, शरीरधारी प्राणी शरीरके नाशके कारण क्षर हैं, पर कूटस्थ अक्षर पुरुष क्या है ? कूटस्थका अर्थ है जो कूटपर स्थित हो । कूटका अर्थ शिखर है । ब्रह्माण्डमें यह शिखर क्या है ? हिरण्यगर्भ निखिल रचनाके मूलमें है । अतः इस मूलको ही हम कूट कहेंगे । इसीमें स्थित पुरुष कूटस्थ है । कूटस्थ उदासीन=उत्+आसीन=उपर बैठे हुएको भी कहते हैं । यह अर्थ पूर्वार्थके निकट ही नहीं, समान अर्थ भी है । कूटस्थ पुरुषको ही सांख्यकारिकाकारने प्रकृतिसे भिन्न पुरुष कहा है ।

सांख्य प्रकृति और पुरुषकी मीमांसातक ही सीमित है । सांख्यकी प्रकृति गीताका क्षर पुरुष है और पुरुष उसका कृटस्थ अक्षर पुरुष है, गीताकी ही भाँति सांख्यका यह पुरुष उदासीन है, कृटस्थ है । जो कुछ हो रहा है, वह प्रकृतिका खेल है । पुरुष इस खेलमें नहीं पड़ता । जब वह प्रकृतिके इस खेलसे पृथक् अपने खरूपका भान करता है, तभी मुक्त हो जाता है, प्रकृतिसे पृथक् अपने खरूपमें अवस्थित हो जाता है । सांख्यके प्रकृति और पुरुषसे ऊपर गीताने इन दोनोंके खामी परमात्माका भी उल्लेख किया हैं । गीता अध्याय सातके आरम्भमें प्रकृति और प्रसातमाकी अपरा तथा परा दो प्रकृतियाँ माना है अपरा प्रकृति आठ प्रकारकी—है भूमि अग्न, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार प्रकृति जीवरूपा है, जो जगत्का आधार है। के प्रकृतियाँ सब भूतोंकी योनियाँ, उत्पत्तिस्थान है समस्त जगत्का उत्पन्न और नष्ट करनेवाल मैं है

ऊपर जिस पुरुषोत्तमका नाम आया है बहुष अक्षर, प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) में व्याप्त है इनका धारण करनेवाला तथा खामी है। तो वह एकदम पृथक् है, प्रकृतिमें जैसे क्षा कि आती हैं वैसे उसमें आ ही नहीं सकतीं, पर अस या जीत्रात्मासे वह उत्तम है। यहाँ प्रकृतिसे अतीत, एकान्त-परे, सजातीय माना गया है; क्योंकि वह प्रकृतिवी जीवात्मासे अतीत नहीं, उत्तम है । जीवात्मा पुरा परमात्मा पुरुषोत्तम है । उत्तर और उत्तम शब्द सर्ग ही घटते हैं। उत्तम क्योंकि अनेकोंमें एक हैं होना भी इससे अतः जीवात्माओंका अनेक हो जाता है। परमात्मा तो एक है ही। अ^{व्याप} आरम्भमें प्रकृति और जीव दोनोंको ही प्^{मार्क} अपरा तथा परा प्रकृतियाँ कहा गया है, ^{उस्न} अय्याय १५ के तीन पुरुषोंसे नहीं बैठता । एकी बोल रहा है तो दूसरेमें वेदान्त । प्रकृति औ परमात्माकी प्रकृतियाँ अर्थात् उससे अभिन कहना का अद्वेत नहीं तो क्या है ? सातवें अध्यायके ही के आगेके श्लोकोंपर भी अद्वैतका ही प्रभाव है। परमात्माको जलोंमें रस, शशि और सूर्यमें प्रमा प्रणव, पुरुषोंमें पौरुष, पृथ्वीमें गन्ध, अग्निमें तेज

औ

अ

स्व

यह

31

अध

सर्ग

कह

मृत

ति और पु

माना ग्र

भूमि,

अहंका(।

र है। ये

स्थान है,

ला मैं हूँ

है वह भ

में व्याप्त है

है।

क्षर वि

पर अक्षा

प्रमा

प्रकृतिकी

मा पुरा

ब्द सर्गा

एक हो

इससे

प्रमात्मा

, उसक

। एकर्ने

ति और

कहना द

यिके इस

भाव है।

प्रमाः

में तेंग

जीवन आदि माना गया है, वही सव भूतोंका बीज है। बृक्ष जैसे बीजका ही बृंहित रूप है, वैसे ही जड-चेतन विस्व परमात्माका । श्रीकृष्णके मैं (अहम्) ह्रपक्ती प्रवानता दोनों अध्यायोंमें है । इसी 'मैं'से अर्थात परमात्मासे मायाके साच्चिक, राजस एवं तामस-भाव उत्पन्न होते हैं। परमात्मा इन भावोंमें व्यापक है, पर ये उसमें व्यापक नहीं हैं । परमात्मा अन्यय है और इनसे परे है । यहाँ बेरान्त और सांख्य दोनोंको मिला दिया गया है। वेरान्ती अद्दैतकी भाँति ये भाव परमात्मासे ही निकलते हैं, पर सांख्यकी भाँति एक दूसरेसे परे भी हैं।

आठवें अध्यायके प्रारम्भमें कुछ प्रश्न उठाये गये हैं और उनका उत्तर भी दिया गया है । ऐसे प्रश्न उपनिषदों में भी आते हैं। प्रइन हैं--- ब्रह्म क्या है ? अध्यातम कर्म क्या है ? अधिभूत क्या है ? अधिदेव क्या है और अधियज्ञ कौन है ? अधियज्ञ पुँछिङ्ग है, रोष सब नपुंसक लिङ्ग हैं । उत्तर इस प्रकार हैं— ब्रह्म परम अक्षर है । अध्यातम स्वभाव है। कर्म विसर्ग है जिसमें भूतभावका उद्भव होता है । अविभूत क्षर-भाव है । अधिदेव पुरुष है और अधियज्ञ इस शरीरमें मैं हूँ।

गीतामें 'मैं'का जिस रूपमें प्रयोग हुआ है; उसके अनुसार अधियज्ञ पुरुषोत्तम या परमात्मा है । अध्यात्म-खभाव, अपनेपनका भाव है । इसे टिप्पणीकारोंने जीवात्मा कहा है । अधिभूत क्षर, विनश्चर भाव है । यह शरीर है। अधिदैव पुरुष है। इसे किसीने हिरण्य-गर्भ और किसीने विराट् पुरुष लिखा है। ब्रह्म परम अक्षर है। परम अक्षर क्या है ! पंद्रहवें अध्यायका अक्षर तो कूदस्थ पुरुष है, तो क्या परम अक्षर पुरुषोत्तम है ! यदि यह पुरुषोत्तम है, तो अधियज्ञ क्या है ? सर्ग रचना है । विसर्ग विविध प्रकारकी रचना है, जो सर्गके उपरान्त आती है । गीताके अनुसार विसर्ग भूतभावकी उत्पत्ति करनेवाला है और इसीको कर्म कहते हैं। कर्मकी यह परिभाषा भी स्पष्ट नहीं है। भृत-भावोज्जवकरका अर्थ एक विद्वान्ने चराचरकी उत्पत्ति

और वृद्धि करनेवाला आचरण किया है। प्राणी संतान-की उत्पत्ति और वृद्धि करते हैं, कृषक गेहूँको बोता और बढ़ाता है—यह सब कर्म है । परमात्माने प्राणी उत्पन्न किये और उनकी वृद्धि भी की-यह भी कर्म है, पर यह सर्गमें आता है, विसर्गमें नहीं । फिर इनके अतिरिक्त भी तो कर्म है। श्रुतिका अध्ययन-अध्यापन, ग्रन्थ-लेखन, युद्ध, व्यापार सव कर्ममें परिगणित होते हैं । इनमें भ्तभावोद्भवकरका अर्थ कैसे घटित होगा ? क्या इनसे प्राणिभावकी उत्पत्ति होती है ? प्राणी इन कर्मोंमं अपने अस्तित्वको सार्थक तो करता है, उत्पन्न नहीं करता। उत्पन्न तो वह पूर्वसे ही है । युद्ध अस्तित्वको स्थिर रखनेके लिये है, उत्पन्न करनेके लिये नहीं।

हमारी समझमें उठाये हुए प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार होने चाहिये। ब्रह्म परम अक्षर अर्थात् परमात्मा है । अध्यातम स्वभाव अर्थात अहंकारसे संयुक्त जीवात्मा है। सर्गके पश्चात जो विसर्ग आता है उसमें प्राणियोंकी क्रियामें अभिन्यक्ति होती है । यही कर्म हैं । अधिभूत शरीर और लोक हैं। अधिदैव दैवी शक्तियोंका अधिष्ठाता विराट पुरुष है। और अधियज्ञ--जितने यज्ञ अर्थात् पूजा, संगतिकरण और दानके शुभकर्म हैं उनमें विराज-मान प्रभुकी प्रेरक शक्ति है।

गीताके १३वें अध्यायमें भी प्रकृति और पुरुषका वर्णन सांख्यके ही अनुसार है। कार्य और कारणका भाव प्रकृतिमें है, सुख और दु:खका भोग पुरुषमें है। लकड़ीसे मेज वन गयी। यहाँ लकड़ी कारण और मेज कार्य है । यह कारण-कार्य-भाव चेतन पुरुषमें नहीं हो सकता । उससे कोई वस्तु नहीं बनती । वह निमित्त कारण होता है; किसी वस्तुका उपादान कारण नहीं। चेतन पुरुष सुख-दु:खके भोगमें कारण बनता है । मेज न सुखको समझती है, न दु:खको । उसे कहीं-से-कहीं उठाकर एख दो, तोड़ दो, उसे चेतनाके अभावमें इनमेंसे किसी क्रियाकी अनुभूति नहीं होती । पर जब कोई मेरी मेज छीनता है या तोड़ता है, तो मुझे दु:ख होता

[भाग ग

है। इसी अध्यायमें प्रकृति और उसके कार्योंको क्षेत्र तथा उसके ज्ञाता पुरुषको क्षेत्रज्ञ कहा गया है। क्षेत्रज्ञ भी दो प्रकारके हैं। एक-एक शरीर क्षेत्र है। अपने-अपने शरीरके ज्ञाता क्षेत्रज्ञ जीवात्मा हैं, पर सभी क्षेत्रों— शरीरोंको एक साथ जाननेवाला क्षेत्रज्ञ परमात्मा है। पुरुष अर्थात् जीवात्मा प्रकृतिमें स्थित होकर ही प्रकृतिके गुणोंका भोग करता है। सत् एवं असत् योनियोंमें प्राकृतिक गुणोंका संसर्ग ही इसके सुख-दु:ख-भोगका कारण है। परमेश्वर प्रकृति और जीवात्मा दोनोंमें सम-भावसे व्यात है। उसमें न प्रकृतिका कार्य-कारण-भाव है, न जीवात्माके सुख-दु:ख-भोगका भाव। वह इन दोनोंसे पृथक है। वह अनादि है, निर्गुण है, अव्यय है और सब शरीरोंमें रहता हुआ भी अलित है, निर्विकार है। नवम अध्यायके क्लोक १० के अनुसार परमात्माके अधीक प्रकृति चर एवं अचर जगत्को उत्पन्न करती है।

गीताके दूसरे अध्यायमें देही अर्थात् जीवालके अजनमा, अमृत, नित्य, शाश्यत और पुराण कहा कि है। शरीर नष्ट होता है, परंतु शरीरी आत्मा नहीं जैसे पुराने कपड़े बदलकर हम नये कपड़े पहिन के हैं, वैसे ही जीवात्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा श्री धारण कर लेता है। यह अच्छेच, अदाहा, अक्के और अशोष्य है। छिदना, जलना, भीगना और सूज प्राकृतिक पदार्थोमें होता है, आत्मामें नहीं। अवह अध्यायके अन्तमें ईश्वरको समस्त प्राणियोंके ह्रद्री स्थित माना गया है। जीवात्माकी व्याप्ति एक हृद्रय श्रीरातक है तो परमेश्वर सर्वव्यापक है।

सची सुख-शान्तिके लिये

(लेखक-शीमुकुन्दजी मालवीय)

योऽन्तः प्रविद्य मम वाचिममां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः खधासा। अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

श्रीमद्भागवत महापुराणके दशम स्कन्धके ७३ वें अध्यायमें यह कथा-प्रसंग है कि जरासंधने दस हजार राजाओं को कारागारमें बंद कर रक्खा था। कैदखाने की यातनाका तो उन्हीं छोगों को अच्छी तरह पता है जो उसका अनुभव कर चुके हैं। पर कुछ सहृदय महानुभाव भी उनका अनुमान करके उन यातनाओं से पीड़ित व्यक्तियों का यथासम्भव भटा करने का प्रयत्न करते हैं।

अपने यहाँके इतिहास-पुराणोंमें भक्तवर नारदजीकी परोपकारी वृत्तिका वर्णन अनेक स्थानोंमें मिछता है। वही नारदजी इन दस हजार राजाओंकी दीन दशासे द्रवित होकर कारागारमें गये और उनको निम्निछिखित मन्त्रका उन्होंने उषदेश किया। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण- चन्द्रजीने जरासंधको मारकर उन राजाओंको कारणा मुक्त किया । वह उपदेश-मन्त्र है—

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

इस महान् मन्त्रके सम्बन्धमें अनेक अनुभवी किं तथा महात्माओंका निश्चित मत है कि इसके उचार बड़े-से-बड़ा कष्ट तो अवश्य ही कट जाता है, सार्थ श्रद्धा-भिक्तसे नियमपूर्वक इसका जप करनेसे प्रायः मंत्र सभी प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। पूर्च किं (खर्गीय महामना पं ० मदनमोहन माठ्यीयजी महार्या का निश्चित मत था कि यह मन्त्र भुक्ति और मुक्ति देनेवाला है। मैंने सुना है कि पूजनीय तिलक महार्य भी गृहस्थ लोगोंको संकटसे उवारनेके लिये इस मर्क उपदेश किया करते थे।

किसी जन्म-जन्मान्तरके पुण्यबलसे तथा प्रास्तरणीया मातुश्रीकी असीम द्यासे मुझे ४४ वर्षी

भागभ

जीवातम् वहा ह त्मा नहीं

पहिन है सरा क्री ह्य, अक्ले

और मूख । अठाह कि हृद्यी

त हृद्य व

कारागाः

तमने। नमः॥ भवी बिह्न उचाण

है, सार्थ प्रायः मन

पूज्य पिता ते महाराज

र मुनि न महार्यः

इस मन

तथा प्रा

४ वर्षते।

महामन्त्रके द्वारा आनन्द मिल रहा है और मेरे व्यक्तिगत मम्पर्कमें आनेत्राले अनेकों (हजारों) नर-नारियों तथा बालकोंको जो लाभ इस मन्त्रके द्वारा मिलता है, उसीके कारण मैं चाहता हूँ कि 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंकी सेवामें भी इसके सम्बन्धमें कुछ वातें लिख दूँ।

जव भीष्मपितामहजी शरशय्यापर अन्त समय पडे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी स्तुति कर रहे थे, उस ममय उन्होंने कहा था-

पकोऽपि ऋष्णस्य ऋतः प्रणामो दशास्त्रमेधावभृथेन तुल्यः। द्शाइवमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

इसी श्लोकपर विशेष ध्यान जानेपर मनमें यह विचार उठा कि भीष्मिपतामहजी तो उन सत्यप्रतिज्ञ लोगोंमेंसे थे, जिनकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये भगवान श्रीकृष्ण-चन्द्रजीने अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ दिया । तो भीष्मपितामह-जीने कहा है कि एक बार भी कृष्णको प्रणाम करनेसे दस 'अश्वमेध-यज्ञ' का फल मिलता है और दस अश्वमेध करनेवाला चाहे फिरसे जन्म ले ले पर एक बार श्रीकृष्ण-को प्रणाम करनेवाला फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। मेरे हृदयमें यह भावना हुई कि जब एक बार कृष्णको प्रणाम करनेका इतना अधिक फल है तत्र प्रातःकाल नींद खुलनेके साथ-साथ जबतक नींद न आये—हर समय हर परिस्थितिमें उठते-बैठते, चलते-फिरते भगवान्को सर्व-व्यापी मानकर और अपने हृदयमें भी वे भगवान् स्थित हैं ऐसा निश्चितरूपसे मानकर इस महामन्त्रका बराबर उच्चारण करनेसे वास्तवमें बड़ा ही कल्याण होता है।

इस मन्त्रसे सम्बन्ध रखते हुए श्रीमद्भागवतके तथा अन्य कुछ रेलोकोंको लिखना भी अनुचित न होगा। इस मन्त्रमें भगवान्को पाँच नामोंसे प्रणाम किया गया—'कृष्णाय (कृष्णको) 'वासुदेवाय (वासुदेवको)' 'इरये (इरिको)'

'प्रमारमने (प्रमारमाको)' 'गोविन्दाय (गोविन्दको)' तीसरी पंक्ति—प्रणतक्लेशनाशाय—(प्रणाम करनेवाले-को, अथवा शरणमें आये हुएके दुःखको दूर करनेवाले भगवानुको) प्रणाम करते हैं।

'कृष्ण' शब्दके सम्बन्धमें भीष्मपितामहजीने जो कहा है उसके सम्बन्धमें तो कितने ही महत्त्वपूर्ण स्लोक तथा वाक्य हैं, फिर भी दो-एक लिखे बिना संतोष नहीं होता-- 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' यही वाक्य कितना प्रभावशाली है। फिर कहते हैं—

ताबद् भवति मे दुःखं चिन्तासंसारसागरे। याबरकमलपत्राक्षं न स्मरामि जनादनम्॥ 'वासुदेव' शब्दके लिये कहा है---

वासनाद् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम्। सर्वभतनिवासोऽसि वासदेव नमोऽस्त ते ॥

"हरयें" (हरिको) 'हरि' शब्दके महत्त्वको तो किन शब्दोंमें वर्णन किया जाय, समझमें नहीं आता । कहते हैं-

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। वद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

यह भी कहा है-प्राणकान्तारपाथेयं संसारोच्छेदभेषजम् । दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ श्रीमद्भागवतमें वेद्व्यासजीने छिखा है-

पतितः स्विलितो भग्नः संदृष्टः तप्त आहतः। हरिरित्यवरोनाह पुमान्नाहीत यातनाम्॥ श्रीमद्भागवतके अन्तमें वेद्व्यांसजीने 'हरि' रान्दसे ही भगवान्को सम्बोधन करके प्रणाम किया है। ख़ोक है-

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्। प्रणामी दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ (१२।१३।२३)

मह

सीयराम

सकल र

काम-क्रोध भातृप्रेमः

प्रेमभावव

एक सह

बापूके उन

है। विनो

सवमें दे

आजके उ

कितनी ब

सुधारकर्क

भक्त अध

तभी मान

पुरुपार्थसे

हरे। आ

भगवत्-सा

मार्ग हम

अनन्त भ

गलसे ही

पकते हैं

बद्-उद्देश्य मावमं स

विश्वात्कार

नान पड़ा

मरने, जल

विताएँ । रे

भी भग

तना खल

कि अपने

ग्रसर नहीं यमी अ

मपनेको ।

प्रेमी पाठकोंसे सानरोध प्रार्थना है कि इस महामन्त्र-का जितना भी प्रचार कर सकें, अवस्य करें। समय-समयपर इसी मन्त्रका २४ घंटे अखण्ड संकीर्तन भी हुआ है।

श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें एक क्लोकमें लिखा है-खयं भगवान् ब्रह्माजीसे कहते हैं, जिस घरमें श्रीमद्भागवत-का एक इलोक, आधा या चौथाई इलोक भी लिखा रहेगा वहाँ (भगवान्ने कहा है) हम वास करते हैं।

इस क्लोकको सुन्दर अक्षरोंमें लिखकर, छपवाकर, शीशोंमें लगवाकर घरोंमें रखनेसे अथवा बडे-बडे साइनबोर्ड-के रूपमें लिखवाकर मुख्य-मुख्य स्थानोंमें लगानेसे निश्चय कल्याण होगा । क्योंकि श्रीमद्भागवतमें लिखा है-

यत्कीर्तनं यदीक्षणं यत्सारणं यद्वन्दनं यच्छवणं यदर्हणम्। लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तसौ सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥ (214184)

उपर्युक्त रलोकके आधारपर कृष्णाय वासुदेवायके क्लोकको देखनेसे भगवान्का स्मरण अवश्य ही होगा और उससे 'तीनों लोकोंका पाप जल्दीसे नाश हो जायगा'। संसारमें पापका नाश हो जाय तो सर्वत्र शान्ति तथा आनन्द हो सकेगा, अतः सोचिये, इसका प्रचार करनेमें कितना पुण्य है।

श्रीमद्भागवतके इस क्लोकका भी ध्यान आता है— यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद यत्प्रह्मणाद् यत्सारणाद्पि कचित्। श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते पुनस्ते भगवन्तु दर्शनात्॥ (२।३३।६)

विचार करनेकी बात है, जिस भगवान्के सम्बन्धमें वेदव्यासजीने यह वाक्य लिखा है कि.....किसी बहाने-

से, किसी निमित्तसे (स्मरणाद्ि किचित्) साए है जानेपर भी कुत्तेका मांस खानेवाला चाण्डाल भी जदीहे पवित्र होकर यज्ञका अधिकारी हो जाता है तो हे मङ्गलकारी परमात्मा परमेश्वर भगवान्का प्रेमसे नाम लेके कितना अनन्त आनन्द मिलेगा, साथ ही परम शानि भी मिलेगी । श्रीमद्भागवत (३।९।१५) में ब्रह्माजीने कहा है---

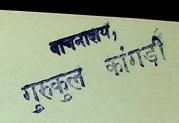
यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गुणन्ति। ते नैकजनमश्मलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥

प्रेमी पाठको ! शान्तिपूर्वक विचार कीजिये कि जि भगवान्के अवतार, गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले प्राणत्याग करते समय विवश होकर भी (श्रद्धासे नहीं, भक्तिसे नहीं) उच्चारण करनेसे अनेन जन्मोंके संचित पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं (वे नहीं लगती) उन अजन्मा भगवान् हरिकी शरणमें रहनेके लिये यदि हमलोग अधिक-से-अधिक श्रद्धा, भक्ति औ प्रेमसे बरावर कृष्णाय वासुदेवायके श्लोकको स्वयं नही और दूसरोंको भी इसको कहनेके लिये प्रोत्साहन दें ती अपने-अप कितना आनन्द होगा।

अपने यहाँ कहते हैं-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

तो इससे बढ़कर और कौन-सा परोपकार हो सकत है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर सभी परिस्थितियों^{में} सर्वात्मा भगवान् श्रीहरिका ही स्मरण-कीर्तन एवं श्रवण करें और करावें। वेद्व्यासजीके वचनोंके अनुसार पही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।



उत्तराखण्डकी यात्रा

(हेखक--सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रज्ञकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

गताइसे आगे]

महातमा गाँधीने गोस्वामी तुलसीदासजीके इस कथनको क्षीयराममय सब जग जानी जीवनमें उतारा और जब उन्हें सकल सृष्टि सियाराममय दीख पड़ी तत्र उनका राग-द्वेष, कामक्रोध, लोभ और मोह अपने-आप समाप्त होकर एक भावप्रेमकी भावना उनमें समा गयी । और भ्रातृप्रेम क्रिभावकी सतहपर जब उन्होंने देखना प्रारम्भ किया तब एक सहज समभावके कारण वे विश्ववन्द्य वापू बन गये। बापुके उत्तराधिकारी विनोवाका भी प्रभुप्राप्तिका यही मार्ग है। विनोवा भी आज विश्वरूप परमात्माको अपनेमें और स्वमं देखकर निःस्पृह भावसे मुक्तिकी ओर उन्मुख हैं। ति जा आजके युगकी वास्तविक मुक्ति (मोक्ष) यही है। वापूने त्नेवाले कितनी बड़ी मुक्ति पायी, यह सभी जानते हैं। साधककी, ष्ठ्रभारककी, ज्ञानीकी, वैज्ञानिककी, त्यागी-तपस्वीकी, भावुक् भक्त अथवा साधु-संन्यासीकी भी वास्तविक मुक्ति (मोक्ष) अनेक तभी मानी जायगी, जब वह अपने जीवनरूपी प्रयत्नसे— (दे पुराग्यें जगत्को कुछ दे उसकी मुक्तिका मार्ग प्रशस्त करे। अखिलेश्वरकी आराधनाका, अपने प्रमुकी पूजाका और मगवत्-साक्षात्कारका इससे सुगम, सीधा और सद्गतिदायक और <mark>मार्ग हमारे मतमें और नहीं हो सकता । अनन्त रूपोंमें</mark>, कहें अनल भावोंसे भरे हमारे पूर्वपुरुष इसी प्रभुरूपका सनातन भल्से ही साक्षात्कार करते आ रहे हैं। जिसे आजकल भगने अपने इष्ट, अभीष्ट और आराध्यके नामसे भी पुकार कते हैं । सदाचारपूर्ण सर्वसेवा-भावसे पूरित कोई भी द् उद्देश भगवत्साक्षात्कारके समतुल्य है। इसी सर्वसेवा-भवमें समवेत हुई भागीरथी और अलकनन्दा भगवत्-ाक्षात्कार या प्रभुपाप्तिकी मंजिलपर अग्रसर हैं। ऐसा हमें गन् पड़ा। उनकी इस आकाङ्कामें सहभागी हैं ये अनन्त ति, जल-प्रपात और मानव-जीवनकी आशाभरी ये उमड़ती किताएँ। ये भी प्रभुपद-अभिलाषी हैं। इन्हें भी मुक्ति चाहिये। भी भगवत्साक्षात्कारकी प्यासी हैं। किंतु इनका जीवन, वना खल्य, इनकी गति इतनी मंथर और शक्ति इतनी क्षीण कि अपने अभीष्ट, इष्ट संकल्पकी पूर्तिमं ये अधिक दूरीतक मिसर नहीं रह सकतीं। जब उन्हें अपनी इस असहाय अवस्थाकाः पनेको अक्षमताका आभास हो जाता है तो उमङ्कर ये पानेको दुसरेमें विलीन कर देते हैं। ये अल्प्ह झरने

=

ण हो

नल्दीहे

的

लेती

शान्ति

साजीने

कता

जलप्रपातों में, फिर नालों और निद्यों में मिलकर बड़ी-बड़ी सरिताओंमें समा जाते हैं। इनका एक समझौता होता है-संकल्प और समर्पणका । अपनी इष्ट्रप्राप्तिके संकल्पको लिये ये कलकल करते विकल झरने अपना सब कुछ सरिताओंको समर्पण कर देते हैं, अस्तित्वविहीन हो जाते हैं और सरिताएँ इनकी आकाङ्क्षाके संकल्पसे समवेत हो इनके नेतृत्वकी डोरी डे आवेगमें आगे बढ़ती हैं। नेतृत्व और समर्पणकी कैसी उदात्त, उत्कट और निःस्पृह भावना है इन मुक सेवियोंमें। सच है, स्वयं प्रसिद्धि और घुड़दौड़में यदि ये सभी साथ पड़ जायँ तो कितने पहुँचें मंजिलतक, यह कहना कठिन है। कितनोंको हो अपने अभीष्ट-इष्टकी सिद्धि, यह निर्णय करना कठिन है। फिर, कितने समय और कालतक यह प्रयत्न इन्हें करना पड़े और यह भी सम्भव है कि अनन्त बिट्दानोंके बाद भी वे असफल हों; हाथ कुछ न लगे । इसीलिये अपनी सेवाकी भावनाको मूर्त रूप देने, अपनी आकाङ्काको साकार देखने और प्रभु-प्राप्तिकी दिशामें इन्होंने सहमिलन और समर्पणको अनिवार्य माना । कितना स्तुत्य, प्रेरणादायक और कितना अनुकरणीय है इनके आत्मत्यागका यह सहज पथः पर हम मानवोंमें कितने इस पथपर चल पाते हैं। देशकी स्वाधीनताके कालमें और उसके बाद आज भी अपने लक्ष्यतक पहुँचनेके लिये इममेंसे कितने अग्रसर ये और आज हैं इस आत्म-त्यागके पथपर । स्वयंका समर्पण कर दूसरोंका नेतृत्व स्वीकार करनेके लिये जिस निःस्पृह विशाल हृदयकी आवश्यकता होती है, उसका शतांश भी आज हमें बड़े-बड़े सधारक, समाजसेवी और जननेताओंमें देखनेको नहीं मिलता। देशके स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके संक्रामक कालमें अनेक बार इस स्वत्व और नेतृत्वकी कैसी दौड़-भाग होती और इस दौड़-भागके कारण ही हम अपने लक्ष्यसे कितने दूर हो जाते, यह आज भी अनुभव कर लब्जा और आत्मग्लानिसे मन भर जाता है। इसी स्वत्व और नेतृत्व-प्रधान भावनाके कारण देशको कैसे-कैसे कडुवे घूँट पीने पड़े, यहाँतक कि देशका विभाजन-तक हुआ ! कर्तव्योंके बहाने अधिकारोंकी आड़में आज भी कितने महत्-जन, प्रतिभाशाली व्यक्ति और निःस्पृही मानव इस स्वत्व और नेतृत्व-प्रधान भावनाके शिकार बन इलाइल कण्ठसे उतार नीलकण्ठ बने शिव-समाधि लगाये बैठे 🕻।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर

न जाने कब उनकी समाधि खुलेगी, जाने कब देशका जन-मन जागेगा। सचमुच ही छोटी कही जानेवाली वस्तुएँ और व्यक्ति अपने आत्मबलिदानी महत्-गुणोंके कारण दूसरोंका मोल बढ़ा, इन्हें शक्ति प्रदानकर उन्हें बड़ा बना देते हैं। यही वात हमारे जीवनके हर क्षेत्रमें दिखायी देती है। समकक्ष श्रेणीके व्यक्ति तो स्पर्द्धाका कारण बनतें हैं, किंत जब ये छोटे-छोटे व्यक्ति सहयोगकर किसी विशिष्ट व्यक्तिका साथ देते हैं, तब अपने योगद्वारा उनकी शक्ति और सामर्थ्यको बढा देते हैं और तब ये समकक्ष श्रेणीके लोग भी बराबर निरुपाय अवस्थामें उस विशिष्ट पुरुषका समर्थन करने लगते हैं, उसका नेतृत्व स्वीकार कर लेते हैं। पर कितने बड़े लोग सहज वृत्ति और स्वेच्छासे यह कर पाते हैं, कहना कठिन है। ये झरने आज हमें बता रहे थे, समझा रहे थे स्वत्व और समर्पणका बडण्पन। ये कर रहे थे संकल्प और नेतृत्वकी व्याख्या । स्वाधीनताके पुण्य प्रभातकी प्रतीक्षामें एकमत हो छोटे-बड़ेका भेद भुला जब भारतने खत्वका समर्पण कर गाँधीजीको अपनी आकाङ्का और संकल्पका नेतृत्व सौंपा तब यह स्वप्निल स्वाधीनता आ गयी जो अन्य बिलदानी पथोंसे आसान न थी। इसी तरह इन निर्झरों, जलप्रपातों, नदी-नाले और सरिताओंने यहाँतक कि अळकनन्दाने खत्वको भुला जब भागीरथीका नेतृत्व स्वीकार किया तो उसकी मंजिल आसान हो गयी, संकल्प पूरा हो गया । इनके मधुर मृदु स्वरमें, कलकल रवमें, वेगवान प्रवाहमें, कितन। तेज, कितनी प्रखरता थी; कितना ओज, गाम्भीर्य और नाद था इनकी आवाजमें। इन सरिताओंके सम्बन्धमें यहाँ एक विचार उठता है। वास्तवमें सरिताओंका प्रवाह्युक्त स्वच्छ शीतल जल ही उनका जीवन है, वही उनका शील है, कौमार्य है, सतीत्व है। जिनका प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है, उन्हें पतिता कहना उपयुक्त होगा और जिनका पानी ही सूख गया, मानो उनका कौमार्य नष्ट हो गया; शील भंग हो गया। सतीत्व छिन गया और वे विधवा हो गर्यी; ऐसा मानना चाहिये। गो॰ तुलसीदासने नारी-वर्णनमें सरिताका जो उल्लेख किया है, उससे यह बात प्रमाणित होती है। वे कहते हैं—

जिय बिन् देह नदी बिन् बारी।

ऐसेइ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

फिर इन सरिताओंका वेगवान् प्रवाह उन्हें बङ्भागिन, सदा सुहागिन बना देता है, वहीं इनके परिचयका कारण बनता है और इस दृष्टिसे भागीरथी और अलकनन्दा बड़ी बद्धभागिन और सदा सुहागिन हैं।

इस वर्णनके अन्तमें हम उस व्यासगुफाके सक्त कहे बिना इस प्रकरणको अपूर्ण ही मानेंगे को विल्लमा ऐसे स्थानपर स्थित है जहाँसे वदरीनाथके दोनें के होगोंक नारायण पर्वतोंके दर्शन होते हैं और उस पुपतः महापथ ही सरस्वती नामक एक छोटी-सी सरिता वहती है। हमाना है कि वेदव्यासजीने इसीं गुफामें महाभारत और है, जहाँ रचना की थी। महाभारतके मङ्गलाचरणका प्रथमके सकना इस वातको सिद्ध करता है-

ऊपर ज नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्। इस श्लोकमें भगवान् नारायण और नर हा गारह म सरस्वतीकी वन्दनाके साथ ही इस स्थलके नारायण के (पर्वत एवं सरस्वती नदीका भी भौगोलिक वर्णन अ तीचे खत और इनकी भी वन्दना हो गयी है। प्राकृतिक हैं (यह स्थल रमणीयताकी खान है ही, इसीके साथ में बीली गड़ और ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टिसे भी इसकी (१ वडा है। हमारे मतसे आधुनिक कालके साहित्विकी (अधिक प्रेरणादायी दूसरा स्थान नहीं हो सकता। भी कहा

पूर्वकालसे ही भारतमें पदयात्राओंका बड़ा महत्ते वद पूर्वज सुधारक, संत और संन्यासी, परित्राजक का और माह पर्यटनकर भारतके एक छोरसे दूसरे छोरतक जाका जाताने और देशका काम करते थे। महाप्रमु वल्लभावाकी समयमें भारतकी तीन बार पद-यात्रा की थी। आ ब्रह्माजीके यात्राओंमें वे बदरीनाथ भी आये थे। बदरीनायां सङ्ग विवा स्थलोंके सददा वल्लभाचार्यजीकी हैठक है, जो हा लोकांजा अत्यन्त शोचनीय अवस्थामें है। वल्लभसम्प्रदा^{पते} समित्रो हि वैष्णवोंके लिये इससे अधिक लज्जाकी बात औ^{र अ}मि, द सकती है। महाप्रभु वल्लभाचार्यके बदरीनाथ अन्यह ही उनकी 'पृथ्वी-परिक्रमाओं' के वर्णनमें जो विवर्ण अं उनित, उसमें यह उल्लेख भी है कि वे वेदव्यास जीते मिले पर्मकी हि गुफा गये थे और वहाँ उनकी वेदव्यासजीसे भेंट हैं मेत्रीने प इमारे यहाँ जिन पाँच अमर पुरुषोंका वर्णन है वे हैं और पुष्टि विभीषण, व्यास, कृपाचार्य और अश्वत्थामा। वेद्व उपतिने पाँचोंमेंसे एक हैं। कोई अमर है या नहीं, या हीने पश्र अमर व्यक्तियोंकी केवल कल्पना है, इस सम्बन्धीं निर्नाराय कहनेमें अपनेको अनिधकारी मानते हैं। परंत हैं हम इतना कहे बिना तो नहीं रह सकते कि हुन मुनि धर्माचार्य आदि मिथ्याभाषी तो कदापि नहीं।

दीरयेत्।

रायण के

इसका

बद्रीनाथयात्रामें उनके वेद्व्याससे सम्बं बल्लभाचार्यजीकी विल्लमाचायणाया है तो यह बात रहस्यमय है। कुछ नि के होगोंका मत है कि पाण्डवोंका स्वर्गारोहण केदारनाथके गुमहे महापथसे न होकर सतोपथसे हुआ था और वदरीनाथसे भिहास सहार प्रदेश मीलपर वह स्वर्गारोहण पर्वत भी मौजूद । और है, जहाँ पाण्डव गले थे। इस सम्बन्धमें आज कुछ भी कह भारक सकता कठिन है । यथार्थमें केदारनाथ और बदरीनाथ एक दुसरेसे बहुत दूर नहीं । महापथ तथा सतोपथ भी अपर जाकर कदाचित् एक दूसरेसे मिल गये हैं। रोत्तमम्।

वद्रीनाथ-क्षेत्रमें पञ्च-वद्री हैं, लो इस प्रकार हैं-

- (१) आदि-वदरी-कर्णप्रयागसे दक्षिणकी ओर नर त्य ग्यारह मीलपर ।
- (२) बृद्ध-वदरी-कुमार चट्टीसे ६ मीलपर हेलङ्गके र्णन आ भीचे खतोल्टी चडीके नीचे।
- कृतिक हैं (३) भविष्य-बदरी—तपोवनमें जोशीमठसे ६ मील साथ में बौली गङ्गाके मार्गमें नीती घाटकी ओर।
 - (४) योग-बदरी--पाण्डकेश्वरमें।
- हेलिकों भी कहा जाता है।

महत्त्वहै वदरीनाथक्षेत्रमें नर-नारायण पर्वतोंका विशेष महत्त्व क का और महात्म्य है। भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन भूमिका भार जाका उतारने नारायण और नररूपसे अवतीर्ण भाजाकी श्रीमद्भागवतमें चौथे स्कन्धके प्रथम अध्यायमें नर-नारायण-भावाक अवतारके सम्बन्धमें सविस्तर उल्लेख हुआ है। कथा है। अर्ज ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुकी प्रसृति नामक कन्याके र्रीनार्यं सङ्ग विवाह किया, जिससे निर्मल कान्तियुक्त चन्द्रवदनी, सुन्दर बो हैं होचनेवाली सोलह पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। इनमेंसे तेरह तो प्रदाक धर्मको विवाह दी गर्यो, अविशिष्ट तीन कन्याओं मेंसे एक अर्थि अपन, दूसरी पितृगण और तीसरी संसारनाशक शिवजीको नाथ अध्याह दी। श्रद्धाः, मैत्री, दयाः, शान्तिः, तृष्टिः, पृष्टिः, क्रियाः, वरण अंडबति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ही और मूर्ति—ये तेरह मिलें पर्मं है। अद्धाने शुभ नामक पुत्र उत्पन्न किया। भेंट हैं मेत्रीने प्रसाद, दयाने अभय, शान्तिने सुख, तुष्टिने सुद वे हैं और पुष्टिने गर्व नामक पुत्र उत्पन्न किया। क्रियाने योग, विक् उन्नतिने दर्पं, बुद्धिने अर्थं, मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम, य मिश्रय नामक पुत्र उत्पन्न किया । गुणवती मूर्तिके गर्भसे क्यां है तरनारायण ऋषि उत्पन्न हुए । इनके उत्पन्न होते ही तु हुई सिक्को अपार हुई हुआ । चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द हों। होता हुआ थाः शीतल-मन्द्-सुंगन्ध पवन बहने लगी थी।

जल-पूरित नदी-नाले, उमग-उमग सरिताओंसे मिलने लगे, पक्षीगण गाने ल्यो, प्रेम-प्रमत्त मयूर नाचने लगे और उछल-कूदकर हर्पविभोर मृग चौकड़ी भरने लगे। कुण्ठित किट्याँ खिलने लगीं और विविध माँतिके पुष्प अपना सौरभ विखेरने लगे । गिरि-गुफाएँ तिमिर-रहित हो गयीं । चारों ओर वसन्त छा गया । पर्वत पुष्पाञ्जलियाँ लिये अपने सौभाग्यपर मुस्करा रहे थे, देवगण दुन्दुभि वजा रहे थे। भ्रापि-सुनिजन प्रसन्न हो स्तुति करने लगे। नाग, गृन्धर्व, किन्नर गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। विमानींमें बैठे सुर-समृह सुरलोकसे पृष्पवृष्टि करने लगे। ऋषिरूपसे अवतीर्ण भगवान् नर-नारायणके मुद्-मङ्गलमय शिशुरूपके दर्शनार्थ समाधि खोल शिव शिवलोकसे, ब्रह्मा ब्रह्मलोकसे, इन्द्र इन्द्रलोकसे, सूर्य सूर्यलोकसे, चन्द्र चन्द्रलोकसे धर्मके धर आये। आज कवेर करबद्ध खडे थे, वरुण, अग्नि और पवनदेव टहल कर रहे थे।

इस प्रकार ऋषि-मुनि, देवता, नाग, यक्ष, किन्नर और गन्धर्व जब भगवान् नर-नारायणकी पूजा, स्तृति और आराधना कर चुके तब सर्व-गर्वहारी। अचिन्त्यमहिमासय लीलापुरुषोत्तम भगवान् नर-नारायण गन्धमादन पर्वतपर चले गये । भूमिका भार उतारने द्वापरमें वही यद्कुल और करकलमें कृष्ण और अर्जुनरूपसे अवतीर्ण हए।

श्रीमद्भागवतकी इस कथाके आधारपर स्पष्टरूपसे नर-नारायण पर्वतोंका पौराणिक महत्त्व व्यक्त है। फिर उत्तराखण्डकी पाण्डवोंकी यात्रा तथा अन्तमें यहींसे स्वर्गारोहण -इस बातको और भी स्पष्ट कर देता है। भगवान श्रीकृष्णकी बदरीनाथ-यात्राका भी पुराणोंमें हमें उल्लेख मिलता है। ये कुछ तथ्य हैं जिनके आधारपर नर-नारायण पर्वतोंका पौराणिक महत्त्व निर्विवादरूपसे हमें स्वीकार करना पडेगा।

हमें बताया गया कि नारायण पर्वतपर ही बदरीनाथका मन्दिर है। यहीं शिलापर नारायणकी चरणपादुकाएँ हैं। इसे उर्वशीक्षेत्र कहते हैं, एक उर्वशी-कुण्ड भी है। नर पर्वतपर दो तालाव और शिलापर शेषजीका शेष-नेत्र नामक तीर्थ है। दोनों पर्वतोंके वीचसे भक्तिकी अलख जगाती वेगवती अलकनन्दा प्रवाहित है।

बदरीनाथ-माहातम्यके सम्बन्धमें महाभारतके वनपर्वमें युधिष्ठिर और धौम्य ऋषि, जो पाण्डर्नोंके पुरोहित ये, उनका संवाद हुआ जिसमें—

भारत

बदरी

भीय

होना

हो ग

भारती

चदरी

हो च

दीवान

और

कुटुम्ब

पश्चात्

मारवा

साथ

संवाद

प्रवेश ।

ओर

उपयुत्त

हुए,

'बदराख्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम्'

-कहा गया है। इसी प्रकार शान्तिपर्वमें व्यास और वैशम्पायनका संवाद आया है । यही नहीं, स्कन्दपुराणके नेदारखण्ड और केदारखण्डके अन्तर्गत बदरीखण्ड तथा हरिवंशः, भागवतः, ब्रह्मवैवर्तपुराण और नारदपुराणादिमें बदरीनाथकी धार्मिक संस्कृति और तीर्थ-माहात्म्य भरे पड़े हैं। विस्तारभयसे हम यहाँ अधिक न लिख केदारखण्डके स्कन्दपुराणका निम्न स्रोकार्घ यहाँ उद्भुत कर इस प्रकरणको समाप्त करेंगे-

'बद्रीवासिनो लोका विष्णुतुल्या न संशयः।'

आधुनिक समयमें बदरीनाथ और केदारनाथ दोनोंका प्रबन्ध सन् १९३९ में उत्तरप्रदेशकी विधानसभाने, जो एक कान्न बनाया है, उसके अनुसार होता है। इस कान्नकी व्यवस्थाके अनुसार प्रवन्य एक कमेटी करती है। इमने केदारनाथ और बदरीनाथ दोनोंमें इस प्रबन्धको देखनेका प्रयत्न किया । हमारे मतानुसार प्रबन्ध बहुत अच्छा है। परंतु, हमने कमेटीके कुछ पदाधिकारियों और सदस्योंकी कुछ शिकायतें भी सुनीं। इनमें कुछ घूसखोरी आदिकी गम्भीर शिकायतें थीं । हम नहीं जानते कि इन शिकायतोंमें कहाँतक सचाई है; क्योंकि हम इस यात्रापर वार्मिक दृष्टिसे गये थे, कमेटीके प्रवन्धकी जाँच करने नहीं। किंतु हमने मुना कि इन शिकायतोंकी जाँचके लिये उत्तर-प्रदेशकी सरकारने दो जाँच-कमेटियाँ नियुक्त की थीं और इन कमेटियोंकी रिपोर्ट उत्तरप्रदेशकी सरकारके पास पहुँच चुकी है। यदि इस जाँचके आधारपर इन शिकायतोंमेंसे किसी शिकायतकी सचाई सबूत होती हो तो जिनके विरुद्ध भी ये शिकायतें हैं, उनके प्रति सरकारको कड़े-से-कड़े कदम उठाना चाहिये। जत्र कभी गोविन्ददासके सामने किसी सार्वजनिक कार्यकत्तांके विरुद्ध इस प्रकारके आरोप आते हैं, तब उन्हें सन् १९३१ में काँग्रेसके कराँची-अधिवेशनका पण्डित जवाहरलालजी नेहरूका एक भाषण याद आ जाता है। यह भाषण पण्डितजीने कराँचीके इस अधिवेदानमें मौलिक अधिकारोंके एक प्रस्तावपर दिया था। यह प्रस्ताव काँग्रेसकी कार्यकारिणी-समितिने इस अधिवेदानमें उपस्थित किया था। प्रस्तावपर पण्डित बालकृष्णजी शर्मा नवीनने एक सुधार उपस्थित किया था, जिसमें यह कहा गया था कि इस देशमें फॉसीकी सजा बंद कर दी जाय । जवाहरलालजीने इस सझावपर बोलते हुए कहा कि 'किसीका खून करनेवालेको

मृत्युदण्ड न दिया जाय इसके तो मैं विरुद्ध नहीं यदि कोई व्यक्ति सार्वजनिक धनका गवन के नजदीक से नजदीकके दरस्तपर फॉसी दे दी जानी क फिर यह तो सार्वजनिक धनके साथ ही देव-द्रव्यक्ता है । श्रीवदरीनाथ-मन्दिर-क्रमेटीकी प्रवन्धके बाद काफी सुधरी है, आर्थिक आयन्त्रक जानकारी हमें प्रवन्ध-समितिके कार्यालयसे प्राप्त हुई; विवरण हम पुस्तकके अन्तमें परिशिष्टमें दे रहे हैं।

अपने बद्रीनाथ मुकामके तीसरे दिन अपरहरें निवासियोंने एक सार्वजनिक सभा की। बदरीनाथकी क आवादी और यात्रियोंमेंसे अधिकांदा इस समामें ह थे। सभापतिका स्थान बदरीनाथके एक वयोग्र पण्डाने ग्रहण किया था । पहले गोविन्ददासके की भाषण हुआ । तदनन्तर एक स्वामीजीका और आक्र एक विद्वान् श्रीगोपालाचार्यका । अन्तमें गोविद्राः गोविन्ददासने अपने भाषणमें भारतीय संस्कृतिमें धर्मक्री बड़ा स्थान है और इस दृष्टिसे उत्तराखण्ड एवं गरी तथा हजारों वर्ष पुरानी होनेपर भी धर्मप्रधान म संस्कृतिका आज भी भारत और संसारमें क्या क्ष इसका विस्तारसे विवेचन किया।

वदरीनाथमें यों तो अनेक संस्थाएँ हैं; पर्त पह नि भारतकी ओरसे जो एक धर्मशाला वनायी गयी है इस कु एक सार्वजनिक आलय वनाया जा रहा है उसकाहम ही का हो महत्त्व मानते हैं । इस कार्यके लिये श्रीगोर्क उपस्थित गत चार वर्षोंसे वर्षमें छः महीने वद्रीनाथमें नि^{त्रात है} लिये के हैं । इस संस्थाको हम सबसे अधिक महत्त्वका है हमने य मानते हैं कि भारतको अखण्ड रखनेके छिये हमारे हैं। इ मुनियों, तत्त्ववेत्ताओं, धर्माचायों और जननेताओं आ कि की निरन्तर प्रयत किये हैं और इसके लिये जो ला तथा बलिदान दिये हैं, उस दिशामें आधु^{तिक} धे। और उत्तराखण्डमें दक्षिणकी इस संस्थाका यह एक बहुत् स्तुत्य कार्य है । श्रीरामानुजाचार्यके विशिष्टार्वे संघद्वारा यह कार्य किया जा रहा है । इस संघके दो प्रधान कार्यालय हैं। मद्रासमें १०७ वरदा मुतियण उपरान्त गीता-मन्दिरमें और आन्ध्र-देशके विजयवाड़ाके रागा इसके अध्यक्ष हैं नडियडु पालेम । जो आन्ध्र हैं। जिलेके वासुदास आश्रममें रहते हैं। बदरीनाथकी हतई यह संघ लगभग डेढ़ लाख रुपया व्यय कर् भीमाया

अबतककी हमारी यात्रामें जैसा कि हमने पूरी हैं। हमें सबसे अधिक यात्री बदरीनाथमें मिले औ नहीं

को है।

गानी च

स्थिका ह

गय-व्यक्

青

भारतवर्षका कोई भी विभाग ऐसा नहीं था, जहाँके यात्रियोंसे बद्रीनाथमें हमारी भेंट न हुई हो । दक्षिणके यात्रियोंकी भी यहाँ पर्याप्त संख्या थी । इसका कारण यदरीनाथका धाम होता तो है ही, साथ ही बदरीनाथ पहुँचनेकी अब जो सुविधाएँ हो गयी हैं, वे भी हैं। उत्तरसे दक्षिण और पूर्वसे पश्चिमतक भारतीय संस्कृति इस प्रकार एक है, इसका प्रमाण जितना वदरीनाथमें मिलता है उतना शायद अन्यत्र कहीं नहीं ।

म हुई। बदरीनाथमें हमारे सात पंडे हैं। इसका उल्लेख पीछे हो चुका है। विक्रमीय संवत् १९४३ में गोविन्ददासके ताऊ नपराह्रमें : रीवानबहादुर वल्लभदासजीकी माता यशोदावाई केदारनाथ 11थकी औ सभामें उ और बदरीनाथकी यात्रापर आयी थीं । न उसके पूर्व इस योग्रह ह कुटुमका कोई व्यक्ति इस यात्राको आया और न उसके सिक की पश्चात् अयतक । उस समय राजा गोकुलदासजीके कुट्टम्बका (आगुर् गोविद्या गरवाड़ियोंमें सर्वोच स्थान था। अतः श्रीमती यशोदाबाईके माथ लगभग साढे चार सौ व्यक्ति थे। उनकी इस यात्राका धर्मका है वं क्री मंगद फ़ैलते ही पंडा-वर्गमें अनेक उनके उत्तराखण्डमें धान ह भवेश करनेके पूर्व ही उनके जवलपुरसे चलते ही उनकी क्या 💀 ओर बढ़े और इस प्रकार मार्गमें मिले, पंडोंमें उन्हें जो-जो उपरुक्त जान पड़े, उन्हें वे अपना पंडा बनाती गयीं। नतीजा ; पर्त यह निकंला कि जहाँ हर व्यक्तिका एक पंडा होता है, वहाँ गर्भ है इस कुटुम्बके सात पंडे वन गये। हमारे ऋपिकेश पहुँचनेपर _{हा हम ह} जिल्ह हमें यह बात ज्ञात हुई, तब हमारे सामने एक समस्या श्रीतोगः उपस्थित हो गयी कि गोविन्ददास इनमेंसे अपने कुटुम्बके तिवाह विये कौनसे पंडाको मानें। बहुत सोचने-विचारनेके उपरान्त लका है इसने यही तय किया कि गोविन्ददास इन सभी पंडोंको मान हमार् हैं। इससे कम-से-कम समस्याका इतना हल तो हो ही गया ओं आहें कि कोई विवादकी स्थिति या कटुता उत्पन्न नहीं हो पायी ।

इन सात पंडोंमें दो व्यक्ति बड़े बुद्धिमान् और परिश्रमी धुनिक है धार्व प्रतिस्थानारायण नम्बरदार और सीताराम। गङ्गोत्तरीसे जब प्रमुद्धित स्मिलोग ऋषिकेश, केदारनाथ और वदरीनाथकी यात्राके संबंध किये खाना हुए, उस समय इन पंडोंकी ओरसे मायारामजी त्यप्पर्व नामक एक सज्जन हमारे साथ हो गये। केदारनाथकी यात्राके रामार्ग उपरान्त रुद्रमयागसे जब हम बद्रीनाथके मार्गपर अग्रसर हुए, उस समयसे हमारी यात्राका सारा प्रबन्ध, मार्गमें ति इति निवास आदिकी व्यवस्था, हमारे बदरीनाथके पंडोंकी ओरसे कर्मी भीमायारामजीने किया और इस प्रबन्धमें उन्होंने अत्यधिक परिश्रम

भी किया। वदरीनाथमें हमारे ठहरनेका प्रवन्य अहमदाबाद-निवासी सेठ हरगोविन्ददास लक्ष्मीदास गुजरातीकी धर्मशालामें इन्हीं पंडोंने किया था। यह धर्मशाला श्रीवदरीनाथ मन्दिरके ठीक सामने मन्दिरके संनिकट है। उत्तराखण्डकी इस यात्रामें हमें इस स्थानसे अच्छा स्थान ठहरनेको नहीं मिला था। धर्मशाला नयी वनी है, सभी आधुनिक सुविधाओंसे युक्त । धर्मशाला**में** तीन खण्ड हैं। सामने वदरीनाथका मन्दिर है, पीछे पावन अलकनन्दाका प्रवाह । इस उपयुक्त स्थानपर धर्मशाला वनानेके लिये सेठ हरगोविन्द्दास लक्ष्मीदास धन्यवादके पात्र है।

४ जुलाईको श्रीवदरीनाथजीके आद्योपान्त पूजनोपरान्त संध्या-समय हमारी ओरसे ब्राह्मण-भोजन हुआ । यों तो इन ब्राह्मण-भोजोंका प्रारम्भ हमारी उत्तराखण्डकी यात्राके प्रवेशद्वार हरिद्वारसे ही हो गया था, जिसका शनै:-शनै: विकास हुआ । गङ्गोत्तरी और केदारनाथमें हमने वहाँके अन्य धार्मिक कृत्योंके साथ ही यह ब्राह्मण-भोज कराया और आज यहाँ एक बृहद् भोजके रूपमें यह ब्राह्मणभोजन हुआ । आजका यह भोज अपनी यात्राके पूर्वापेक्षा सभी विप्रभोजोंसे वड़ा या जो बद्रीनाथवामकी दृष्टिसे और हमारे यात्रा-संकल्पके चौथ चरणकी पूर्तिकी दृष्टिसे भी सर्वथा उचित भी था।

ब्राह्मण-भोजनोपरान्त उन्हें विदाई दी और अन्तमें अपने सातों पंडोंको भेंट और विदा-दक्षिणा आदि । जैसा कि हमने इस ओरके पंडावर्गके सम्बन्धमें पुस्तकके पूर्व अध्यायोंमें कुछ उल्लेख किया है, इन्हें बड़ा शिष्ट और संतोषी पाया । देशके अन्य धार्मिक तीर्थस्थानोंमें पंडावर्गकी जो शिकायतें हमें मिलती हैं, उनका शतमांश भी यहाँके इन पंडोंमें आप नहीं पायेंगे । ये लोग वड़े विनयसम्पन्न, मिष्टभाषी, परिश्रमी और निर्छोभी होते हैं। निर्छोभीका मतलव अपरिग्रही नहीं वरं संतोषी। स्वेच्छासे यात्री इन्हें जो दे दे, छे छेते हैं। वक-झक, विवाद, खींचातानी या अन्य प्रकारके इथकंडे ये लोग नहीं अपनाते। फिर भी ये लोग बहुत सम्पन्न भी नहीं हैं, बहुत तो नितान्त निर्धन, कुछकी हालत अच्छी है। किंतु, हमारे प्रयागः वाराणसी तथा अन्य धामोंके पंडावर्गकी तुलनामें यहाँका यह पंडावर्ग निश्चित रूपसे निर्धन ही है। अतः इस दृष्टिसे इनकी यह उच्च वृत्ति निर्विवाद रूपसे अभिनन्द्नीय है। हम उत्तराखण्डके पंडावर्गको उनसे मिले सौजन्यके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं और उनसे मिले अमृत्य सहयोगके लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

ह और

मानसकारका प्रयाग-वर्णन

(लेखक-मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत)

जाको चण्ड अखण्ड यश व्यापि रह्यो ब्रह्मण्ड । सब जग की रक्षा करत सो वैष्णवी त्रिदण्ड ॥ जानत हों तोहि मुक्ति मनोहरि जन्म अनेक ते योगि न पावें । यद्यपि हो सुमहार्घ तथापि न साँवर बारुक तोहि रुड़ावें ॥ जो जन दे तुरुसी जरु पुष्पहिं रयाम 'कुमार' कबों फुसि रुववें ॥ तोहिं सदा बकसें तिनको वरु राक्षस मारिके देत रहावें ॥

श्रृग्वेद मण्डल दस सूक्त पचहत्तरके बादका यह मन्त्र श्रृक्परिशिष्टमें दिया है—

सितासिते सरिते यत्र संगये
तत्राप्छुतासो दिवसुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं वि सृजन्ति धीरास्ते जना सो अस्तृतत्वं भजन्ते ॥
(ऋसरिशिष्ट २२ । १)

१—जिस गङ्गा-यमुना-संगम-क्षेत्रका इतना महत्त्व वेदने बताया है, उस क्षेत्रका नाम 'प्रयाग है; जिसे पुराणोंमें 'तीर्थराज' कहा गया है। परंतु राजाका साङ्ग रूपक देकर शायद किसीने यह नहीं समझाया कि प्रयागतीर्थकी राजकीय साज-सज्जा कैसी है ! इसे विश्वकविसम्राट् गोस्वामी श्रीतुल्सी-दासजीने बताया है—

तीरथराज दीख प्रमु जाई।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी।।

चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू।।

छेतु अगम गढु गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा।।

सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रनधीरा।।
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्र अखयबटु मुनि मनु मोहा।।
चमर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद मगा।।

सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम ।

बंदी बेद पुरान गन कहिं बिमरु गुन ग्राम ॥ अस तीरथपित देखि सुहावा । सुख सागर रघुवर सुखु पावा ॥

इस रूपकमें एक विचित्रता यह है कि जिन्हें-जिन्हें प्रयागराजका अङ्ग कहा, उनका भी लक्षण या महत्त्व बड़ी खूबीसे वह दिया। जैसे श्रद्धा प्रिय होनी चाहिये। भगवान्

माधव (प्रयागमें तेरह माधव हैं) हितकारी मित्र है । प्रोक्त का वातावरण पुण्यमय होना चाहिये । देशको मुन्तर (पवित्र) रखना चाहिये । अपने राज्यक्षेत्रकी सीका सुदृह सुरक्षित और राजधानीको सुपृष्ट और सुन्दर सका रखना चाहिये । सिंहासन और छत्र अत्यन्त सुन्दर हो वैराग्यशील मुनि भी देखें तो देखते ही रह जायँ । जो स सुकृती और पवित्राचरणका होता है, उसीकी सारी मनात्रमा तीर्थ-निवाससे पूर्ण होती हैं एवं जो सुकृती और श्रुविका आचरणसे रहता हो उसे ही साधु मानना चाहिये। वहर किसी भी देश, जाति या आश्रमका हो । अपना व्यवहारहन-सहन आदि सदा सर्वदा स्वच्छ, पवित्र एवं परोपक्षर रखना चाहिये, जिससे उसकी यशोगाथा कार्व्योमें गायी का अमर कर दी जाय । जहाँके निवासी उपर्युक्त गुणोंसे का रहते हैं, वह क्षेत्र परम तीर्थ है । उस सुन्दर स्थलको देख पवित्र दर्शकको परम सुख होता है ।

म्ज

अह

क्षि

प्रचा

वेदा

सम्ब

सम्ब

तेख

चरि

घर्मप

सम

भेष्ठ

मोस

चन्व

टर सिय

चिश

वर्ण

वर्या

अव

परंतु

केता

इस

विशे

यही नहीं, एक बार तो राजाका साङ्ग रूपक बताबा कलुपकदनकर्ता सभी तीथोंको राजसैनिकके रूपमें ह और जब स्वयं प्रयाग ही पाप-प्रणाशकरूपमें अपना प्री परिचय प्रमाणित करते हैं, तब उन्हें सुरराज या ना आदिकी तरह रूपकद्वारा न कहकर केवल मृगराज की को कहि सकई प्रयाग प्रमाऊ । कलुष पुंज कुंजर मृगा

अर्थात् प्रयाग कई तरहके राजा है। परंतु मृणि साथ राजाका कोई रूपक न होनेका कारंण ऐसा प्रतीर्वि है कि सिंहको तो मनुष्योंने 'मृगराज' कह डाला है। भी वन्य पशु राजा मानकर सिंहके पास सेवक या प्री बनकर नहीं जाता।

२-साधु-समाजको जङ्गम प्रयाग कहकर स्थल प्र तुल्ना की गयी है—

मुद मंगलमय संत समाजृ। जो जग जंगम तीर्था।
राम भगति जहँ सुरसिर धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार वृद्ध
बिधि निषेधमय कितमल हरनी। करम कथा रिवर्नदिन बा
हिर हर कथा बिराजित बेनी। सुनत सकल मुद
बहु बिस्तास अचल निज धरमा। तीरथ राज समाज सुन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

加加

न्द्र-क

सजार

清育万

:कामन

<u>रिचियी</u>

वह च

यवहार-

रोपकार

ायी जा

ोंसे सक

को देख

बताय।

रूपमें न

ना प्रिं

या ना

ज की

मृगा

मृगण

प्रतीव (

त है।

या परि

तीरधान

IT SE

मंगल हैं

सबिह सुरुम सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।।
क्षत्र अस्त्रीकिक तीरथ राज। देइ सद्य फ्ल प्रगट प्रमाज॥
सुनि समुह्रिह जन मुदित मन मज्जिह अति अनुराग।
सहि चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥
मजन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥

यहाँका रूपक भी साभिप्राय अनेक वैशिष्टच विशेषणोंसे अलंक है। जैसे स्थावर प्रयागमें सरस्वती नदी किकरमनाकी वस्तु हैं। परंतु साधुसमाजमें ब्रह्मविचारका प्रचार रहता ही है। अर्थात् जिस साधु-समाजमें ब्रह्मविचार—वेदानका चर्चा न होती हो वह साधु-वेपमें असाधु-सम्मुज के वैसे प्रयागमें यमुनाका प्रवाह मन्द है वैसे साधु-सम्मुज के कर्मकाण्ड नाम विशेष रहता है। परंतु वेणीकी तरह मिक गङ्गामें मिलकर हरिहरकथा—भगवद्-भागवत्चित्र निरन्तर प्रवाहित रहता है। विश्वासपूर्वक अपने सम्मुज बहुत बड़ी विशेषता है और तभी वह स्थूल प्रयागसे भेष्ठ हैं केवल बस्त्र और वेषमात्रसे ही नहीं। इसीसे गोस्त्रमीजीने वस्त्र और वेषका महत्त्व नहीं गाया है। अपितु—

बचन बेष ते जो बने सो बिगरे परिनाम।

तुरुसी मन ते जो बने बनी बनाई राम।।

(दोहावली)

रे-जनकजीका मन-प्रयाग—अपने समयके ब्रह्मज्ञानियोंमें जनकजी कनिष्ठिकाधिष्ठित थे। उनके प्रयागवर्णनमें है—

व्य उमगेउ अंबुधि अनुरागू। मयउ मूप मन मनहुँ प्रयागू॥ सिय सनेह बट बाढ़त जोहा। तापर रामप्रेम सिसु सोहा॥ चिरकीवी मुनि ग्यान विकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥

वहाँ केवल जल और अक्षयवटका वर्णन है। इस वर्णनमें बताया गया है कि मार्कण्डेय मुनिने मायाका कौतुक अर्थात् मलयाव्धिका उमड़ना प्रयागमें तो देखा ही था, मुख्य बात है जान (ज्ञानी) मायामें निमम्न हो जा सकता है, परंहु जो भगवत्पेम (भगवच्छरणागित) का अवलम्बन वेस है वह मायासे निर्भय रहता है।

श्रीगोखामीजीने पाँच प्रयागका वर्णन किया है, उनमें इस जनक-मनःप्रयागमें ही चिरंजीवी मुनिका किंचित् प्रसंग विशेषका नहीं। वैसे तो पाँचों वर्णनोंमें एक-न-एक विरुक्षणता है।

४-श्रीरामपद-प्रयाग (साङ्ग रूपक)

रामचरन अनुराग कामप्रद तीरथराज बिराजें।
संकर हृदय मिक-मृत्रकपर प्रेम अछ्यवट प्राजें॥ १॥
स्यामवरन पदपीठ अरुनतक कसित विसद नख्येनों।
जनु रविसुता सारदा सुरसरि मिकि चर्कि किता त्रिवेनी ॥ २॥
अंकुस कुिकस कमक ध्वज सुंदर मँवर तरंग बिकासा।
मजहिं सुर सज्जन मुनिजन मन मुदित मनोरथ बासा ॥ ६॥
विनु बिराग जप जोग जाग ब्रत विनु तीरथ तनु त्यागें।
सव फक सुकम सद्य तुकसी प्रमु-पद-प्रयाग अनुरागें॥ ४॥
(गीतावदी ७।१५)

इस प्रयागकी विशेषता है सरस्वतीमें मैंकर और तरंग वह भी स्थायी। चरणतलको सरस्वती कहा और चरणतल्में ही अङ्कुशादि अङ्क हैं। पद्धृष्ठ (यमुना) नख (गङ्का) है कमल-ध्वजादि चिह्नरूपी भँवर नहीं, इसका कारण गङ्काके भक्ति और यमुनाको कर्मकथा कहा है। इनमें कर्म और भक्तिमें भँवर नहीं है। सरस्वतीको ब्रह्मविचार—शुष्क ब्रह्म ज्ञान कहा है, जिसमें बहुतसे भयंकर भँवर हैं—

भ्यान अगम प्रत्यूह अनेका॥⁵ भ्यान पंत्र कृपानके घारा॥⁵

यहाँ भी सरस्वतीका दर्शन होता है, कवियोंकी सरस्वतीव। अदृश्य नहीं है। बहुत-सी वस्तुएँ और बातें जो बास्तविक जगत्में नहीं हैं और नहीं होतीं, उन्हें किवयोंने कल्पना कर मान लिया है और उनका वर्णन प्रायः सभी श्रेष्ठ किवगण किसी-न-किसी रूपमें अपने प्रवन्धकाव्यमें देते आये हैं, ऐसी परिपाटी ही पड़ गयी है। उसे किव-समय या किवसम्प्रदाय कहा जाता है। जिनमें कईका वर्णन प्रायः सभी आकार प्रव्योंमें है। जैसे—

मालिन्यं च्योन्नि पापे यशसि धवलता वर्ण्यंते हासकीत्योंः रक्ती च क्रोधरागी सिरदुद्धिगतं पङ्कतेन्द्रीवरादि । तोयाधारेऽखिलेऽपि प्रसरति च मरालादिकः पश्चिसहो ज्योत्स्ना पेया चक्रोरेर्जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः । पादाधातादशोकं विकसित बकुलं योषितामास्यमधीः यूनामङ्गेषु हाराः स्फुटति च हृद्यं विप्रयोगस्य तापैः । मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथ विशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतो-भिन्नं स्यादस्य बाणीर्युवजनहृद्यं खीकटाक्षेण तद्दत् । अह्याम्भोजं निशायां विकसित कुषुदं चन्द्रिका शुक्कपक्षे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ल

मह

ना

प्रण

भीर

रख

प्रभु

अ

दी

जीव

स्यों

संग

मग

छिप उत्प

> सम भी

निव

भी होने

स्क्

वह

मेमध्वानेषु नृत्यं भवति च शिखिनां नाप्यशोके फर्लं स्यात् ।

न स्याज्ञाती वसन्ते न च कुसुमफले गन्धसारद्वमाणा
मित्याशुन्नेयमन्यत् कविसमयगतं सत्कवीनां प्रबन्धे ॥

(साहित्यदर्पण, परिच्छेद ७, कारिका ३९)

हंसाद्यल्पजलाशये॥ तत्रादौ नभोनद्यामस्भोजाद्यं नदीष्विप ॥ १ ॥ अले सूचिभेद्यता। मुष्टिप्राह्यत्वं तथा शुक्कत्वं कीर्तिपुण्यादी काप्ण्यं चाकीत्र्यघादिषु ॥ २ ॥ क्रोधरागयोः । रक्तस्वं **उक्ततो**च्यात्वे प्रतापे सर्ववारिषु ॥ ३ ॥ प्रवालं चकोराणां **ज्योत्स्नापानं** सत्स्त्रीगण्डुषात्पाद्याततः । केशराशोकयोः मासान्तरेऽपुष्पाणि रोमोलिस्चिवलिः स्त्रियाम् ॥ ४ ॥ मालतीपुष्पं फलपुष्पे न चन्द्ने। कामिदन्तेषु कुन्दानां कुड्मलेषु च रक्तता॥ ५॥ इयासतापातस्तनयोर्यच वा हिये। नारीणां इमन्तिशिशि त्यक्वा सर्वदा कमलस्थितिः॥ ६॥ सामान्यग्रहणे शीक्ल्यं पुष्पास्भर्छत्रवाससाम् । वक्रभसानोः ॥ ७ ॥ हारस्य ध्वजचामरहंसानां शैलवृक्षादिमेघवारिधिवीरुधाम् । चासुराणां च धूपपङ्कशिरोरुहाम् ॥ ८ ॥ भिल्लका धातुमाणिक्यजपारत्नवितस्वताम् । स्रोहित्यं पद्मपञ्चवबन्धृकदाडिमीकरजादिषु 11 9 11 शालिमण्डकवल्कलेषु परागके। शिक्षिप्रीहिर्भधावेव पिकध्वनिः ॥ १० ॥ वर्षाद्वेव (अलंकारशेखर, मरीचि १५)

रात्रौ हि पङ्कजे भ्रमरं प्रयागे रक्तवाहिनी। सिंहिन्येकप्रस्तिश्च काकेभ्योऽप्येकनेत्रता ॥ चातके स्वातिपानं च नागिन्यां पुत्रभक्षणम् ॥ इत्यादि ।

महाकवि कविराजा कविनायक श्रीलोलिम्बराजने अपे महाकाव्य श्रीहरिविलासके तीसरे सर्गमें लिखा है—

अनुभवति वियोगं नात्र कोकः कदाचित् कलयति सह सख्यं चम्पकैरच्छारिकः। न विरमति विकासो नीरजानां रजन्यां जनयति बत चित्रं चन्दनः पुष्पयोगात्॥ (हरि० वि० ३।)

५---श्रीभरतजी-प्रयाग---

भरत दरसु देखत खुकेउ मग कोगन कर मणु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ विधिवस सुक्रम प्रयागु॥
श्रीभरतजीको प्रयाग कहकर भी प्रयागके किसी अर्क तुल्लना नहीं की गयी है। इसका कारण ऐसा जान पक्षा कि सभी प्रयागोंसे श्रीभरतजीका महत्त्व बढ़कर है और खा तीर्थराज प्रयागको भी अत्यन्त भाग्यशाली बनानेवालेश्रीमार्व हैं। जैसा कि भरद्वाजजीने शपथ खाकर कहा है—

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रही। सव साधन कर सुफल सुहावा । लखन रामसिय दरसन पवा। तेहि फलकर फल दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुमाग हमारा।

इस तरह प्रत्येक प्रयागके वर्णनमें श्रीगोस्वामीजीने विषे विशेषताओंका वर्णन किया है जो अन्य कवियेकि दुर्लभ है।

भयानक

पाप-ताप

(क) पर-सुखमें दुख, पर-दुखमें सुख अनुभव करना गुरुतर पाप। निज सुख हेतु दुःख पहुँचाना परको अति उपजाता ताप॥ (ख) आँखोंके आँसू हर छेते बाहरके दुःखद संताप।

कर

देते घोर

血体本本本本法。●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विनप्ट

ऑसू

の本本本本本本一

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा

(लेखक — डॉक्टर श्रीहरिहरनायजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट्०)

करणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने जव 'ललित नर-लीला' करनेका विचार किया तव मुअवसर देखकर उन्होंने महारानी श्रीसीताजीसे सप्रेम कहा—

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा।

महारानीजीने प्रभुकी वात सुनकर तर्क नहीं किया।

पिय हिय की सिय जाननिहारी।

श्रीजानकीजी वह सब जानती थीं जो प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जानते थे और जो लीला वे करना चाहते थे। प्रभुका प्रण था—

निसिचर हीन करों महि

अपने

RIF

1 [

ी अङ्ग

पड़ता

र स्थाव

ब्रीभरतई

रहही।

पावा।

हमारा।

前前

浦島

अतएव प्रभुका कार्य पूर्ण करनेके लिये रामवछभा भीतीताजी, जो करुणानिधानसे अभिन्न हैं और जो प्रभुका हल देलकर सब कार्य करती हैं, वे क्लेशहारिणी महारानीजी, प्रभुके इच्छानुसार—

प्रमु पद धरि हियँ अनल समानी।

इस प्रसंगमें यहाँ यह प्रश्न उठता है कि पाँचों तत्त्वों में अग्निमें ही क्यों महारानीजीको रहनेको करुणानिधानने आज्ञा ही। क्या पतिके वनवासके समयमें अविनकुमारी श्रीसीता-जीका मायकेमें—अर्थात् पृथ्वीतत्त्वमें रहना अग्निमें रहनेसे अधिक उपयुक्त न होता ?

मानसपीयूषमें पावकमें निवास करनेके भाव ये दिये हैं— (१) श्रीरामचन्द्रजी अग्निको अपना पिता मानते थे; स्योंकि—

पंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा । पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ॥ मगति सिहत मुनि आहुति दीन्हें । प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें ॥

(२) और किसी तत्त्वमें रखनेसे सीताजीका तेज न छिपता।(३) कुपित ऋषियोंके रुधिरसे भरे यटसे सीताजीकी उत्पन्न होनेवाली कथाके अनुसार, क्योंकि ऋषिकोप अग्निसमान है। इसलिये अग्निसीताजीके पिता हैं।(४) तपस्वी भीरामचन्द्रजीकी अर्धाङ्गिनीको तप-स्थान अर्थात् अग्निमें निवास करनेको कहा।(५) एक वर्षके बाद श्रीरघुनन्दनकी भीजानकीजीसे पुनः भेंट रावणपराजयके उपरान्त लङ्कामें सिताजी थी, इसलिये पहलेसे ही सीताजीको उन्होंने अग्निमें स्वता। छठा भाव जो एक मानस-प्रेमी देवीने मुझे बतलाया वह यह है कि एक वर्षपर्यन्त श्रीरामचन्द्रजीको विरहकी अग्निमें

रहना था, इसिलये समताकी दृष्टिसे श्रीजानकीजीका अग्निमें रहना ही ठीक था।

उपर्युक्त भाव एक-से-एक सुन्दर हैं, परंतु श्रीमहारानीजीके पावकमें वास करनेका ठीक कारण जाननेके लिये श्रीराम-चिरतमानसका ही आश्रय ठेना चाहिये। शालकाण्डके नाम-वन्दनाप्रकरणमें कविवर तुलसीदासजीने रामनामकी यह व्याख्या की है —

बंदौं नाम राम रघुवर को । हेतु कृसानु मानु हिमकर को ॥

अर्थात् रघुत्ररके नाम 'राम' की मैं वन्दना करता हूँ जो अ.म., सूर्य और चन्द्रमाका हेतु है। 'राम' में तीन अखर हैं—'र', 'अ' और 'म'। इनमें 'र' अ.म.नीज है, 'अ' भातु-वीज है और 'म' चन्द्र-वीज है। अमि और भानुमें एकता है, क्यों कि अमि और भानु एक ही तत्व हैं, एक दूसरेके ह्या हैं, इसलिये 'र' और 'अ' साथ-साथ एक होकर 'रा' के ह्या उच्चिरत होते हैं। 'राम' में 'रा' प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका। योतक है और चन्द्र-वीज 'म' महारानी श्रीकिशोरीजीका, प्रभु श्रीरघुनन्दन और महारानी श्रीजानकीजी एक हैं, अभिक हैं इसलिये 'रा' और 'म' सदा साथ-साथ रहते हैं और तमी 'राम' नाम अद्वितीय महामन्त्र बन जाता है।

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कार्सी मुकुति हेतु उपदेसू।

'राम' को लिखकर देखें। 'रा' का मुँह 'म' की ओर

रहता है और 'म' का मुँह 'रा' की ओर।

जनकपुरमें पुष्पवाटिकाके मधुर मिलनके उपरान्त रात्रिके समयमें करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजीने—

प्राची दिसि सिस उगउ सुहावा।

सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा ॥

चन्द्रमाको देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको वैसा ही सुख हुआ, जैसा श्रीमहारानी सीताजीको देखकर होता; क्योंकि 'राम' में 'रा' का स्वाभाविक आकर्षण 'म' की ओर है। 'रा' में 'रा' और 'म' अलग नहीं रह सकते; इसलिये 'राम'-स्वरूप श्रीरामचन्द्रजीने 'म'-स्वरूप चन्द्रमाको देखकर

सिय मुख सिंस देखि सुखु पावा क्योंकि चन्द्र-बीज 'म' श्रीमहारानी सीताजीका द्योतक है। जब मुबेल पर्वतपर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी 'रुचिर मृग्लाल' पर आसीन थे तब—

पूरब दिसा बिलोकि प्रमु देखा उदित मयंक ।

Ħ

था उस

जा

भाष

अधि

कीट

आश्व

पुरन्द

तो न आपव

'मुझे

गया

आपव

नेशमें

चिकित

वृणित

उस स्

जो तृ

सिंहास

पूर्ण-चन्द्रमाको देखकर 'राम' के 'रा' को 'म'-रूपिणी भीसीता महारानीकी याद आ गयी और अपनी दशा देखकर उन्होंने कहा—

जारत बिरहवंत नर नारी ।

बैसे 'रा'-रूप प्रभु श्रीरामचन्द्रजी 'म'-रूप महारानी श्रीजानकीजीके बिना अपूर्ण हैं, विरहयन्त हैं; क्योंकि 'रा' और 'म' का योग अनादि है, सनातन है, इसी प्रकार 'म' को भी 'रा' के बिना चैन नहीं पड़ता। लङ्काकाण्डमें अशोक- बाटिकामें 'म'-रूप महारानीजी केयल 'रा'-रूप अर्थात् अग्रिरूप 'सूर्य' वंशी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको ही चाहती थीं। क्जी देह कर बोगे उपाई। दुसह विरहु अव नहिं सहि जाई।। अनि कार रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।

द्वीर फिरदेखिआ प्रगट गगन अंगारा। अविन न आवत एको तारा॥
वावकमय सिंस स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥
व्यवकमय समि स्रवत न आगी। सातहुँ मोहि जानि हतभागी॥
व्यवकमय समि स्रवत न आगी। सात्य नाम करु हरु मम सोका॥

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निहाल।

'म'-रूप श्रीसीतामहारानी अग्निरूप 'रा' के लिये का

कह सीता बिधि मा प्रतिकृता।

मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥

'म' की सूल तो 'रा'-रूप पावक ही मिटा सकते है।

'म' का एकमात्र साथी 'रा' ही है।

इसिल्ये प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी—'रा' की फर्जी श्रीमहारानी सीताजी जो 'म' रूप हैं वे पावकको छोद्दल और कहाँ रह सकती थीं ? करुणानिधान प्रभु यह एल जानते थे अतएव उन्होंने प्रेमपूर्वक श्रीमहारानी सीक्षकी एकान्तमें कहा—

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला ।

मैं कछु करिब लिलत नर लीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा—

'जागे हानि न लाभ कछु' [कहानी]

(लेखक--श्री 'चक्र')

राजकुमार श्रेंतकें आमन्द्रका पार नहीं है । आज उनका अभीष्ट पूर्ण हुआ । आज उनकी तपस्या सार्थक हुई । उन्हें लगता है कि आज उनका जीवन सफल हो गया । उन्होंने भगवान् पुरारिसे वरदान प्राप्त किया है कि पृथ्वीपर वे सहस्र वर्ष एकच्छत्र सम्राट् रहेंगे और सौ अश्वमेश निर्वित्र सम्पन्न कर सकेंगे । भविष्यमें ज्ञासन उनका खत्व बनेगा ।

पिता परम शिवभक्त हैं। स्वेतने जय गुरुगृहकी शिक्षा सम्पन्न करके कुछ काल तपोवनमें रहनेकी अभिलाया व्यक्त की, तब पिताने अनुमति और आशीर्वाद दिया। आज वह आशीर्वाद फलित हुआ है।

पूर्णकाम कुमार स्वेत अपने उटजसे ताम्रपर्णीमें स्नान करने जा रहे हैं। आनन्दके अतिरेकमें पद प्यमें व्यक्ति पद रहे हैं। 'स्नान, मध्याह-संध्या और फिर

गुरुदेवके आश्रम पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणिति वहाँसे कोई सहाव्यायी स्वयं समाचार देते राज्यती दौड़ जायगा। रथ आ जायगा लेनेके लिये। सम्भव है स्वयं महाराज विप्रवृन्दके साथ लेने पवारें। केली कल्पना, पता नहीं क्या-क्या सोच रही है।

'भविष्यके देवेन्द्र !' सहसा एक शींगुरका लि इवेतके कानोंमें पड़ा । स्वरमें उन्हें वेदना लगी, की लगा । प्राणियोंकी भाषाका ज्ञान गुरुदेवसे मिल की था । इवेतके पैर रुक गये । उनकी सफलताका संबंध क्या देवताओंने जगतीमें फैलाया है ? चिकत-से वे की घूमे ।

भूतकाठके इन्द्रका सम्मान तुम भले न कर्ते गा अ भितु एक प्राणीको इस प्रकार आहत करना तो हैं शोभा नहीं देता !' झींगुरका एक पैर आहत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

7F 19

-

GAI

थे हिं।

ह्ये थे।

क्रमी

छोहस

हे रहस

विस्त्रकी

प्रमति

गजवन

म्मव

उन्तेन

N A

3 3

事

था। असावधानीके कारण स्वेतका पेर पड़ गया था उसके ऊपर। वह धूलिमें किसी प्रकार एक ओर घिसटता जा रहा था।

आप मुझे क्षमा करें !' स्वेतने उस कीटकी भाषामें ही उत्तर दिया । 'आपका परिचय पानेका अधिकारी यदि मैं होऊँ।

इस शिष्टताकी आवश्यकता एक कीड़ेके साथ अवहार करनेमें नहीं है !' झींगुरने घिसटना बंद कर क्ष्या और बोला—'इन्द्रत्व एक स्त्रप्त था और यह बीटदेह भी एक स्वप्त ही है । वैसे मैं अब भी इन्द्र हूँ । आप इस दशामें इन्द्र हैं !' राजकुमार स्वेतको

अश्वर्य हुआ । उन्हें संदेह भी हुआ कि कहीं शतकत पुत्दर यह रूप धारण करके उनकी कोई परीक्षा लेने तो नहीं आ गये हैं । स्वत: स्वर निकल गया—'मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

भै आपका वन्दनीय नहीं हूँ । उस कीटने कहा— भुन्ने बोई खेद नहीं कि आपके पदसे मैं आहत हो गया । प्राणिमात्रके प्रम वन्दनीय भगवान् राशाङ्करोखरने आपको आज ही दर्शन दिये हैं, अतः आपका चरणस्पर्श मेरा सौभाग्य ही है।

'महाभाग!' स्वेत समझ नहीं पा रहे थे कि यह कीट-चेरामें किससे उनकी वातचीत हो रही है।

'आप कोई शंका न करें !' झींगुरने राजकुमारकी चिन्त मंगिमा लिक्षित कर ली—'इस समय मैं एक रिणित कीट मात्र हूँ; किंतु इस देहमें दो क्षण पूर्व मैं इस सुन्दर, सुरमित, सुकोमल, सुरंग पुष्पपर बैठा था वे की जो तृणशाखापर मार्गमें झूम रहा है । किस इन्द्रके सिंहासनसे वह हीन गौरव है ? उसपर बैठा में झिल्ली करें राग आनन्दसे अलाप रहा था । मेरी सात प्रेयसियाँ मेरे तो कुर्व मही थीं। आप आये तो वे कूदकर हो में चेणोंमें अहस्य हो गयीं । मेरा एक पैर आहत हो गया ।

जैसे असुरोंके आक्रमणसे आहत-प्राजित पुरन्दर मेरुकी गृहामें आश्रय लेते हैं, मैं भी उस भू-विवर (दरार) में तवतकके लिये जा रहा हूँ, जवतक मेरा यह पैर ठीक न हो जाय और मैं कृदकर अपने पुष्पासनपर पहुँचने योग्य न हो जाऊँ । इन्द्रके समान ही भोगविश्वत इस समय हो गया में ।

'तो यह वाग्मी सामान्य कीट ही है!' इवेतने मनमें ही सोचा । उनके चित्तको इससे आश्वासन मिला । 'आप पहिले कभी देवराज रहे हैं ?'

'रहा हूँ।' झींगुरने उत्तर दिया—'किंतु देवराजका पद कुछ इतना गौरवमय नहीं है, जितना आप समझ रहे हैं । उसके भोगोंमें और इस देहके भोगोंमें अन्तर ही क्या है ? एक मन्वन्तर देवाविप रहा और एक ऋषिका तनिक अपराध हो गया, उनको उचित सम्मान देनेमें किञ्चित प्रमाद बन गया तो अब कीट बन चुका हूँ।

'आपकी प्रज्ञा एवं स्मृति विलक्षण है!' इवेतके मनमें इस कीटके प्रति पुन: गौरवबुद्धि जाप्रत् हुई। वह इस समय भले कीट हो, देवराज रह चुका है। उससे अनेक अनुभव प्राप्त कर सकता है स्वेत ।

ध्यही एक तथ्य है और वह भगवान गङ्गाधरकी अनुकम्पाका परिणाम है।' झींगुरने बतलाया—'अन्यथा इन्द्रत्व एक स्त्रम था । उससे शापके द्वारा कीटदेहमें आगमन भी एक स्वप्न है । यह राजकुमार स्वेतके पदसे आहत होकर उनसे मिळना भी खप्न और राजकुमार भी स्वप्त देखते हैं चक्रवर्ती पदका, इन्द्रत्वका तथा एक कीटसे वार्तालाप करनेका । खप्तका जैसा लाम, वैसी हानि । इसमें हर्ष-विषादको स्थान कहाँ है ।

'खप्तके-जैसा लाभ और खप्तके समान हानि !' व्वेतकी समझमें वातका कोई भी अंश नहीं आया। 'आप कहना यह चाहते हैं कि मैंने जो अध्ययन किया.

Ä

र्भ

लि

ले

(4

तथ

आ

उन

कि

न र

अप

धरवे

मुझे

मुग्ध

दक्षि

भाग्र

संतो

थे।

सेवा

तप किया और भगवान् शिवने प्रत्यक्ष मुझे दर्शन दिये, वह सब खप्त है और उस वरदानसे जो चक्रवर्ती पद तथा कालान्तरमें इन्द्रत्व प्राप्त होगा, वह सब भी खप्त ही होगा ! मैं अश्वमेध यज्ञ भी सौ बार काल्पनिक ही करूँगा !

'इसमें सदाशिवकी अनुकम्पामात्र सत्य है !' कीट कह रहा था—'कोई अद्भुत वात में नहीं कह रहा हूँ । मैंने भी इसी प्रकार अध्ययन किया था, तपस्या की थी और मैं चक्रवर्ती सम्राट हुआ था । सम्राट न होता तो सौ अभ्रमेघ कर कैसे पाता और इन्द्र तो सर्वदा शतकातु होता है । इस सबमें आशुतोषकी अहैतुकी कृपा जो मुझे प्राप्त हुई, वही सत्य है । उसीका यह परिणाम है कि मुझे पिछले खप्तोंकी स्मृति है और यह मेरा कीटदेह खप्त है, इसे मैं समझ सका हूँ ।'

'किंतु यह तथ्य अभी मेरी बुद्धि ग्रहण नहीं कर पारही है!' इवेतमें जिज्ञासा जाग्रत् होने लगी थी।

'खाभाविक है !' कीट बोला—'खप्त देखते समय कदाचित् ही यह बुद्धि आती है कि जो दश्य सम्मुख है, वह खप्त है। जाप्रत् हुए बिना खप्तके हानि-लाभ उस खप्तकालमें तो वास्तविक बने ही रहते हैं।'

'यह जागरण कैसे हो ?' विनम्र खर हो चुका या श्वेतका । वह जानता था कि ज्ञान श्रद्धालु एवं विनयावनतको ही प्राप्त होता है ।

'आप देख ही रहे हैं कि मेरा यह देह तामस देह है और इस समय आहत पैरकी व्यथा भी मुझे चन्नळ कर रही है ।' झींगुरने समझाया—'आपमें जिज्ञासा है, अधिकार है और तत्त्वज्ञ पुरुषोंका भारतमें कभी अभाव नहीं रहा है । अतः आप अब मुझे अनुमति दें !'

श्रींगुरने श्वेतकी अनुमितकी अपेक्षा नहीं की। वह एक पैर घसीटता समीपके दरारमें धीरेसे प्रवेश कर गया। दो क्षण श्वेत वहीं सिर झुकाये खड़े रहे। अब सिरताकी ओर उठते उनके पद शिथिल थे और सावधान थे। दृष्टिपूत स्थलपर ही पादक्षेप करना

चाहिये, इस आदेशका प्रथम अतिक्रमण ही है खिन्न बनाये दे रहा था।

x x x

'मुझे चक्रवर्ती सम्राट्का पद नहीं चिह्ने इन्द्रत्वकी मेरी अभिलाषा भी मर गयी !! क्षेत्र वैराग्य सच्चा था । हम आप बड़ी सरलतासे कह के यही बात—प्रायः साधकों के मुखसे यह सुनता हूँ: कि मिक्षुक पैसे-पैसेको जन-जनके सम्मुख हाथ कि गिड़गिड़ाता है, वह भी कहता है—'मुझे को नहीं बनना है ।' यह न वैराग्य है, न त्याग । कि सामर्थ्य जिसका खप्त भी नहीं देख पाती, उसका मनमें जागता नहीं । यदि वह प्राप्य लगने के रुपयेका लोभी स्वर्णकी खदान छोड़ पायेगा! इवेतको तो चक्रवर्ती पद तथा इन्द्रत्वका बराग हो चुका था । उनका वैराग्य उपलब्धका लगा रहा था ।

भीं मूर्ख नहीं वन्ँगा !' श्वेतका संकल्प छ ॥ 'जागरण क्या ? विना जाप्रत् हुए सत्यका छ अवगत नहीं हो सकता । मुझे जागृति चाहि

'वत्स! तुम खिन्न प्रतीत होते हो !! स्नान-संध्याके उपरान्त सीधे गुरुदेवके आश्रम पहुँचे अपने पदोंमें प्रणत शिष्यको ऋषिने आशीर्वार उठाया। किंतु तपस्याके लिये गया यह राजकुमा क्यों लौटा ? पूछा ऋषिने—'कोई विष्न बाधा दें। तम्हें ?'

'आपका अनुप्रह जिनकी सुरक्षाको सर्व विन्नके अधिनायक उसकी छायासे भी आतंकित हैं।' राजकुपारने अपनी वरदान-प्राप्तितकका सि शिथिल खरमें ही सुना दिया।

'किंतु, तुममें योग्य उल्लास क्यों ^{नहीं है} ऋषि आसनपर सावधान बैठ गये ।

'आपका अन्तेत्रासी अज्ञानान्धकारमें भटकी यह उसीका अनधिकार !' राजकुमारके नेत्र भरकी भाग है।

司

चिहिं

!!

ह की

हूँ; किता

थ फै

करोड़ा

[]

उसका है

ाने लो-

येगा !

गरदान ग

त्याग

दृहं ग-

यका ख चाहिं

ते श

म पहुँचे।

ीर्वाद

जनुमार

धा दे ह

सतर्व

तंकित

र्मा सा

नहीं है

अन्यया आपकी अहैतुकी कृपाके प्रसाद कहाँ परिसीम होते हैं।'

वत्स ! कृमि-संवादकी बात सुनकर महर्षिका खर भी गद्गद हो गया । अन्ततः उनका छात्र त्रिवर्गकी लिपासे ऊपर उठ गया । वह वैराग्यकी परम सम्पत्ति लेकर उनके समीप ज्ञानकी ज्योति प्राप्त करने आया है । भगवान् शंकरका आशीर्वाद अमोघ है । चक्रवर्ती साम्राज्य तथा इन्द्रत्व अब तुम्हारे खत्व हैं । उनकी प्राप्तिका आग्रह जैसा अज्ञान-मूलक था, मोह था, वैसा ही आग्रह उनके त्यागका भी है । खप्नके सम्बन्धमें क्या आग्रह कि वह अमुक प्रकारका ही रहे, अमुक प्रकारका न रहे।

'भगवन् ! जागरण चाहिये मुझे ।' राजकुमार श्वेतने महर्षिके पदोंमें मस्तक रक्खा । 'वह तुम्हारा खरूप है।' महर्षि कह रहे थे— 'तुम खप्त देख रहे हो, यही भ्रम है। तुम नित्य जाप्रश्र हो। नित्य चिन्मय हो। तुममें खप्तकी सत्ता कहा है।'

श्वेतने दो क्षणमें सब समझ लिया । शाल अवश्य कहते हैं कि क्षणार्थमें ज्ञानोपलब्धि होती है; किंतु होती है अधिकारीको । देवेन्द्र और विरोचन भी प्रजापितके पास गये थे और उन्हें दीर्घकालक वत्धारण करना पड़ा था । श्वेतको गुरुगृहमें अधिक नहीं रहना पड़ा । किंतु उन्हें जब वे राजधानी पहुँचे—कोई हर्ष नहीं था उस स्वागत-सत्कारका जो उनका किया गया । जागरणका स्वरूप यदि वाणीमें आता होता—लेकिन वह अनिर्वचनीय है । कहा इतना ही जा सकता है कि जाम्रत्के लिये न कुछ लाभ रह जाता, न हानि।

गुरु-दक्षिणा

[कहानी]

(लेखक-श्रीशंकरदयालजी पाण्डेय, एम्० ए०)

'बत्स ! अब तुम्हारी शिक्षा पूर्ण हो चुकी, तुम अब अपने गृह जाओ ।' आचार्य दिव्याङ्गने चरणोंपर नत चन्द्र-धरके मस्तकपर स्नेहसे हाथ फेरते हुए कहा ।

चन्द्रधरके नेत्र भर आये । उसने कहा—'गुरुदेव ! मुझे गुरुदक्षिणाका आदेश देकर कृतार्थ कीजिये।'

अचार्य दिव्याङ्ग चन्द्रधरकी गुरुभक्ति और प्रतिभापर मुख थे। उन्होंने भावविभोर होकर कहा—'वत्स! मैं दक्षिणा पा चुका। तुम प्रसन्नचित्त अपने गृह जाओ।' चन्द्रधर यह कब स्वीकार कर सकता था। उसने भापह किया—'नहीं गुरुदेव! बिना दक्षिणा दिये मुझे संतोष न होगा। मेरे ऊपर दया कीजिये।'

आचार्य दिव्याङ्ग चन्द्रधरकी दृढतापर गृद्गद हो रहे थे। उन्होंने कहा—'वत्स! में तुम्हारी भक्ति और सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हें इसके विषयमें तनिक भी संकुचित न होना चाहिये। चन्द्रधरने विनयसे हाय जोड़ लिये—'नहीं गुरुदेव! मुझे अपने अनुप्रहसे विश्वत न कीजिये। मुझे कोई आज्ञा दीजिये।'

चन्द्रधरके वार-वारके आग्रहसे आचार्य दिव्याङ्गका मुखमण्डल गम्भीर हो उठा । ललाटपर विचारकी रेखाएँ उभर आयीं । उनके मानसमें दक्षिणाके लिये विचार उठने लगे । कोई साधारण विद्यार्थी होता तो उससे कुळ भी कहा जा सकता था; किंतु वे चन्द्रधरकी विद्या-बुद्धिक अनुसार ही उससे दक्षिणा माँगना चाहते थे । वे कुछ देरके लिये अपनेमें ही खो गये । चन्द्रधर बड़ी उत्सुकता-पूर्वक गुरुदेवके मुखमण्डलपर आते-जाते भावोंको पढ़ रहा था । अन्तमें उन्होंने कहा—'अच्छा, चन्द्रधर । मैं तुझसे दिख्णा लूँगा ।' चन्द्रधरने दिव्याङ्गके चरणोंपर मस्तक रखकर कहा—'कृपा हो गुरुदेव !' आचार्य दिव्याङ्गके

मटकती से

AL

चन्द्र

HE

编

दिया

करते

धरने व

गम्भीर वाणीमें कहा-- 'तू मेरी दक्षिणाखरूप अध्यापन कार्य कर ।'

दक्षिणा सुनकर चन्द्रधर हतप्रभ हो गया। उसे लगा जैसे गुरुदेवने उसे उत्तरदायित्वके बोझसे दवा दिया हो; क्योंकि उस समय अध्यापनकार्य आजकी भाँति सरल न था । अध्यापक वननेसे पूर्व अपनेपर विजय पाना होता था । कञ्चनकी भाँति तपना पड़ता था । गुरुको विद्या और चरित्र दोनों ही क्षेत्रोंमें अपना आदर्श स्थापित करना पड़तां था। विद्यासे भी अधिक चरित्रको प्रधानता दी जाती थी । शिक्षा चित्र-निर्माणके लिये होती थी, केवल बुद्धिविकासके लिये नहीं । गुरु अपने विद्यार्थीका माता भी यां और पिता भी । विद्यार्थी गुरु-आश्रममें रहता हुआ सभी विद्याओंकी शिक्षा पाता था तथा स्वावलम्बी बनता या । शिक्षा समाप्त होनेपर आजकी माँति गुरु और शिष्यका सम्बन्ध समाप्त नहीं हो जाता था । गुरुको अपने विद्यार्थीके जीवनभरके प्रत्येक कार्यके छिये उत्तरदायी होना पड़ता था । वह उसकी प्रत्येक भूलको अपनी भूल समझता था और उसके लिये प्रायिश्वत करता था। चन्द्रधर कुछ शीघ उत्तर न दे सका । आचार्य दिव्याङ्ग अधरोंमें ही मुख्तरा उठे । बोले— 'क्यों वत्स ! क्या दक्षिणा गुरुतर लग रही है! चन्द्रधर अपनी कुण्ठितावस्थापर लिजत हो गया । उसने इसे छिपानेके हेत् शीघ्रतासे कहा-'नहीं गुरुदेव, मैं आपको दक्षिणा दूँगा।' आचार्य दिव्याङ्ग-ने आशीर्वाद देते हुए पुन: स्नेहके साथ चन्द्रधरके मस्तकपर हाय फेरा | चन्द्रधर चरण-स्पर्शकर चल पड़ा |

विजन वनमें नर्मदाके तटपर चन्द्रधरने अपना आश्रम बनाया । आश्रमके एक ओर केला और तुल्सीके वृक्ष लगे थे, दूसरी और यज्ञवुण्ड बना था। आश्रमसे पृथक योड़ी दूरपर विद्यार्थियों और गौओंके रहनेका प्रवन्य था। प्रतिदिन यज्ञके धुएँसे वनका वातावरण मादक हो उठता । नर्मदाके स्निग्ध जलके कण्ठपर पीपलका एक

विशाल बृक्ष था। उसके चारों ओर मिट्टी पाटकार 🐐 वना छी गयी थी। चन्द्रवर नित्य उसीपर बैरका अ शिष्योंको पढ़ाते थे। इस प्रकार कई वर्ष राने अ व्यतीत हो गये। चन्द्रधरकी स्याति चतुर्दिक् क्रि लगी।

एक दिन चन्द्रधर प्रभातके समय अपने शिष्के 'एकोऽइं बहु स्याम्' का पाठ बड़ी तन्मयतासे पहा है थे। शिष्य भी एकाग्रमन थे। इतनेमें एक विद्यार्थी है गोचारणहेतु गया था, दौड़ता हुआ आया और बेल-'गुरुदेव ! गुरुदेव !! आज श्वेतकेतुने दो पिकाँकाः करके उनका धन अपहृत कर लिया ।' विद्यार्थी मार्क पात इ कण्ठसे बोल रहा था। चन्द्रधरको सूचना ऐसी लोई उनके मुखपर किसीने थपड़ मारा हो । वे तिलिषक हर क रह गये; क्योंकि इवेतकेतु आजसे चार वर्ष पूर्व चन्द्रक ही शिष्य था । उसके-जैसा प्रतिभासम्पन तथा गुरुष विद्यार्थी उन्हें नहीं मिला था। चन्द्रधरकी उसपर सहव रे अप ममता थी । वे उससे कुछ आशा करते थे; किंतु 🥫 व दो वर्षोंसे उसने दस्युवृत्ति अपना ली थी। उसके अव चारकी नित्य नयी सूचनाएँ मिलतीं। उसका आहं जैतको दिनोंदिन फैलता जाता था। चन्द्रवर उसके दो उसके अपना दोष समझते और मन-ही-मन अपनेको आस उठा है अध्यापक मानते । इतने प्रतिभावान्को भी मनुष बना सकनेके कारण उन्हें मानसिक खेद था । अर्ब इस घटनाको सुनकर उनका मन अत्यन्त क्षुच्य हो है रेस ! यद्यपि वे अपने शिष्योंको पढ़ाते रहे; किंतु उनका विश्व अन्यत्र था । वे बार-बार सोच रहे थे कि क्या गही है देवकी दक्षिणा है ??

भादोंकी काळी रात थी। आकाश मेघान्छन् । क्षण-क्षण विजलीकी चमक रात्रिकी भयानकताकी वढ़ा रही थी । चन्द्रधर अपनी कुटीसे निकले और पथपर चल पड़े जिस पथमें स्वेतकेत डाका डाला

माग ३।

-

秋 新

कत अप्ते

नै:श्री

有論

शियोंवे

पढ़ा है

द्यार्थी, हे

वोल-

चन्द्रभा बिना भयके उस पथपर बढ़े चले जा रहे थे। सहसा दूर पार्श्वसे किसीने कड़कते हुए स्वरमें पूछा---

एक पथिक।' चन्द्रधरने बिना विचलित हुए उत्तर हिया ।

'ठहर जाओ !' पुनः कर्कश खर सुनायी पड़ा। चन्द्रधर हक गये।

'अपना सत्र सामान रख दो ।' दस्युने कहा । चन्द्रधरने नम्र किंतु निर्भीक होकर कहा-4ेरे कोंका ह नि मगर्भ पास कुछ भी नहीं है द्स्यु ।

दस्यु क्रोधित हो उठा । वह आवेशमें यह कहते लगी हैं। लिका हुए कशाघात करने लगा कि—'सभी प्रथम यही बहाना चनुका भरते हैं। बिना दण्ड दिये कोई नहीं सुनता। चन्द्र-गुरुष गते दस्युके करााघातमें तिनक भी बाधा नहीं पहुँचायी। ए सहवा ने अपने स्थानसे हिले भी नहीं। शरीरसे रक्त छळछळाकर कित् हैं वल फिर भी वे शान्त और प्रसन्न थे। दस्यु उन्हें क्के क निस्तर मार रहा था । इसी वीच विजली चमकी । ता आहं वितकेतुने देखा, मारा जानेवाळा कोई अन्य व्यक्ति नहीं, के दो असके गुरुदेव चन्द्रवर हैं। उनका शरीर रक्तरंजित हो अस उठा है। वह कशा हाथमें छिये अवसन रह गया। चन्द्रभरके मुखपर गम्भीर ज्ञान्ति थी । -मन्ष

चन्द्रधरने मुसकराते हुए कहा—'स्क क्यों गये । आर्व रख | भ्या थक गये !! स्वेतकेतु उनके चरणोंपर गिर उनका भा और रो-रोकर कहने लगा—'गुरुदेव! मुझे दण्ड दीजिये । मुझसे घोर अपराध हुआ है; मुझे कठोर दण्ड दीजिये।

चन्द्रवरने श्वेतकेतुको प्रेमसे उठाते हुए कहा---'उठो श्वेतकेतु ! जो कुछ हुआ है वह ठीक है । मैंने तुम्हारे जीवनके अमूल्य समयको अपना विद्यार्थी बनाकर नष्ट किया है । मैं तुम्हारी प्रतिभाको दिशा न दे सका । इस हेतु मैं तुम्हारा अपराधी हूँ । मुझे और दण्ड मिलना चाहिये था। १ इवेतकेतु पश्चात्तापके कारण निरन्तर रो रहा था । वह कुछ कह सकतेमें असमर्थ या । चन्द्रधरने उसे अपने हृदयसे लगा लिया और उसकी दशापर वे भी रोने लगे। एक ओर वर्षा हो रही थी, दूसरी ओर गुरु और शिष्य परस्पर लिपटे रो रहे थे । चन्द्रधर कह रहे थे—'इनेतकेतु ! मैं अपने प्रत्येक शिष्यसे इससे भी अधिक कशाकी चोट सहनेको प्रस्तुत हूँ यदि वे मानव बन सकों।' इसी समय एक वृद्ध आया। उसकी जटा और दाढ़ी पानीसे भीगी हुई थी। वह उन दोनों गुरु और शिष्यको पृथक करने लगा। वृद्धको देखते ही चन्द्र-धर प्रसन्नतासे चिल्ला उठे—'गुरुदेव आप !' जैसे उन्हें विश्वास ही न हुआ हो । वे उनके चरणोंपर गिर पड़े । आचार्य दिव्याङ्गने चन्द्रधरको उठाते हुए कहा- 'हाँ, चन्द्रधर ! उठो मैं ही हूँ । संसारमें तुम्हारे-जैसे ही अध्यापककी आवस्यकता है। मुझे आज अपूर्व गुरु-दक्षिणा मिली।'

कहन। नहीं होगा--श्वेतकेतु अब दस्य नहीं रहा था।

पाप और पुण्य

जिनका हो परिणाम पराये-अपने हितका किंचित् नाश। समझो पाप-कर्म उनको ही, कभी फटकने मत दो पास ॥ जिनका हो परिणाम पराया-अपना हित निश्चित अनयास । ः उन्हें पुण्य-कर्म समझो, अपनाओ सदा सहित उल्लास ॥



X च्छित्र ध कताको हे और ालता प

सुरक्षा-रहस्य

(लेखक--श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

भावसे बोले-

रक था सम्राट्। दुनियाभरकी भोग्य-सामग्रीसे युक्त प्रासादमें उसका निवास था। प्रासाद समस्त सुरक्षा- साधनोंसे भरपूर एक सुदृढ़ दुर्गमें बना हुआ था। दुर्गकी प्राचीरें अभेद्य थीं; फिर भी योग्यतम सैनिक टुकड़ियाँ उसके चारों ओर पहरेपर तैनात रहकर दूर-दूरतककी खोज- खबर रखतीं। ऐसी व्यवस्था थी कि क्या मजाल जो परिन्दा भी पर मार जाय। लेकिन सम्राट् बेचारेको इतनेपर भी रातों नींद नहीं आती थी। किसी-न-किसीका खटका लगा ही रहता और उसे करवटें बदलते सुबह हो जाती थी। कमी किसी बातकी नहीं थी न; अत: राष्ट्र भी कम न थे।

एक थे संत । जंगल वियावानमें डेरा डाले चौड़ेमें पड़े रहते । सामानके नामपर एक कौपीन भर बाँघे थे । दिन-रात सर्दी-गरमी, धूप-छाँह, आँधी-पानी एवं कौमल-कृर वन्य-पशु-पश्ची उनके साथ खेल-खिलारी किया करते । वे भगवनामका जप करते हुए उनकी खेल-खिलारीका रस लिया करते । खाने-पीने, सोने-जागनेकी भी उन्हें चिन्ता न थी । जो मिल जाता, खा-पी लेते और जब आँख लगती पैर पसारकर सो रहते, बेफिक्रीकी नींद—ऐसी बेफिक्री नींद कि खयं बेफिक्री भी उनपर हजारों जानसे न्यौछावर होकर रह जाती । डर-भय किस चिड़ियाका नाम है, वे जानते भी न थे ।

एक दिन आखेटके लिये निकले हुए सम्राटकी जंगलमें संतसे भेंट हो गयी । संतकी रहन-सहनसे विस्मित होकर बातों-ही-बातोंमें सम्राट् पूछ बैठे उनसे—

'स्नामिन् ! जंगल-वियाबानमें इस तरह रहते आपको डर-भय नहीं व्यापता ?'

'डर-भय ! क्यों ! मैं तो सुरक्षित हूँ !—— सम्पूर्णतया !'

'कैसे ?' विस्मय बढ़ा सम्राट्का । 'सुरक्षाका रहस्य—मुस्कराकर बोले संत—का शात्रुतामें निहित है । और मेरा कोई शत्रु नहीं। 'क्या मतलब ? आप अजात-शत्रु हैं। क्या जहा चेतन, इस सम्चे विश्वमें आपका कोई शत्रु हो विस्मय-सागर डुविकयाँ खिला रहा था सम्राटको। उसकी विस्मय-वीरताका भरपूर रस लेते हुए

श्रीराम

वापसं

नित

खु

7

व्याव्

9

लो

गानकी

चलते

ऐसा ई

तो

和

सामावि

'इसमें आश्चर्यकी क्या वात है सम्राट्! कि छीन-झपट की होती है, जो दान्न-किन्नली ह कुछ बने होते हैं—कुछपर अपना खत्व दाले शत्रु उन्हीं के हुआ करते हैं। यहाँ खत्वके नामा भी अपना वास्ता नहीं और प्रभुकी तुलनामें खयंत्री हुछ ही गरदानता हूँ मैं। फिर कोई मेरा शह है कैसे हो।'

सम्राट्की आँखें खुल गयीं । सुरक्षा-रहस्य हैं। जीवन-रहस्य भी तैर गयाखुल गया अपनी एक पर्तमें उसपर—उसकी खुली आँखें और कें लोहा गरम पाकर संतने एक चोट और भी

स्वयंमें अपने प्रभुमें डूबते हुए ।

'एक और बात । सौ बात वात !! सौ बात शिया हमें किसकी वर्ष किसकी वर्ष किसकी बर्ग किसका डर-भय ?'

चोट अन्यतम थी । अवसरपर थी । स्म्राट् मुकुट उतारकर मन्त्रीको थमाता हुआ, अपने हिं वस्न फाड़ फेंकता संतके चरणोंमें छोट गया। हिं उठाकर अपनी छातीसे छगा छिया और कि आत्मीयतामें विभोर होकर वे बोळे— भें तू एक हुए आज । हुए क्या, थे ही

-see

मानसमें एक भाव-निर्वाह

(लेखक-शिछविदत्तजी वाजपेयी)

गपस चलने लगे, उस समय रथके घोड़ोंकी वियोग-जितत दशाका कविने इस प्रकार वर्णन किया है— स्थ हाँकेउ हय राम तन देखि देखि हिहिनाहिँ॥ तथा---

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन सूर्ग सनहुँ आनि स्थ जोरे॥ अद्भिक परहिं पुनि हेरहिं पीछे। रामवियोगि विकल दुख तीछे॥ नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जल मोचिहिं लोचन बारि। व्याकुल भए निषाद सब रघुवर वाजि निहारि॥ ऐसे हृदयदावक दश्यको देखकर मानसकारने एक सामाविक प्रश्न उठाया है-

जासु वियोग विकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहिं कैसे ?॥

लेकामिराम परम सुकुमार श्रीराम-लक्ष्मण और जनकीको वनके कण्टकाकीर्ण मार्गपर पदत्राणरहित ^{चलते देखकर} विन्यवासी नर-नारियोंने भी ठीक रेता ही प्रश्न स्पष्टरूपुसे उठाया था---

.....ऐसी मनोहरि मूरतिके विद्धेरे। कैसे प्रीतम लोग जिये हैं॥ भाषिनमं सिखः राखिवे जोरा इन्हें किमि के बनवासु दिये हैं॥ तो आइये मानसमें गोता लगाकर ढूँढ़ें कि कुशल मिने इस प्रश्नका निर्वाह किस प्रकार किया है ? प्रश्नमें स्पष्ट संकेत मिलता है कि जिसके वियोगमें

वनवासके तृतीय दिवस श्रीसुमन्तजी भगवान् है, उसके वियोगमें उसकी प्रजा (परिजन), माता श्रीरामको गङ्गाके तटपर छोड़कर जब अवधके छिये तथा पिता किस प्रकार जीवित रह सकते हैं ? उनका प्राण रखना सम्भव नहीं होगा और हुआ भी यही-

प्रजा

जब प्रभु वन-यात्राको चले तो सम्पूर्ण अवधकी प्रजा ि जो प्रभुका अनुगमन न कर सकी विश्वीहीन—प्राण-विहीन-सी हो गयी---

लागति अवध भयावनि भारी। मानहँ कालराति घोर उंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी ॥ घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदृता॥ इतना ही नहीं-

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुर पसु चातक मोर। पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर ॥ राम बियोग बिकल सब ठाउँ।

जहँ तहँ मनहँ चित्र लिखि काई॥ किंतु जो समर्थ थे वे प्रभुक्ते साथ हो लिये-

सवहिं विचार कीन्ह मन माँहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥

× बालक वृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ। तमसा तीर निवास किय प्रथम दिवस रघुनाथ ॥

पृष्ठ मोनिमें पड़े पशुओं की ऐसी शोचनीय दशा हो रही संकोचमें पड़ गये और इनसे पीछा छुड़ानेके छिये वे

ال أ

या नह शत्रु नही ाट्को ।:

हुए म

ह ! कि तचली क

त्र दरसले नामपा ल स्वयंको में

रात्र है

हस्य ही अपनी

कि ज र की"

नि दा सम्राट

भपने ए 日南

र किर

HE

एका

सुझा-

और :

भव

सोक

राम-प्रेम

पड़ते ह

\$

q

T

संय

ह्योंको

किसी ह

भ(तजी

रातमें ही सबको सोते छोड़कर चलते बने । जाते समय वे रथके पहियोंके निशान भी मिटाते गये। प्रात:काल जागनेपर भयंकर कोलाहल हुआ, किंतु रथका कोई चिह्न न मिलनेसे लोग किंकर्तव्यविम्ह् हो गये और रोते-कलपते अयोध्या लौट आये। शोक-सागर उमड़ता ही चला जा रहा था और किसी क्षण ही अवधका सम्पूर्ण समाज हूवनेवाला था।

पिता दशरथ

मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। जुलसी एके मीनको है साँचिलो सनेह॥

वैसे जल इन सभी जीवोंका प्राण है, किंतु मीनरूपी
महाराज दशरथ तो क्षणमात्र भी जलरूपी (भगनान्) राम से
नहीं विछुड़ सकते । अतः सुमन्तके द्वारा रामके वापस
न लौटनेका संदेशा पाते ही महाराजके धैर्यका बाँध
टूट गया । उन्होंने मानो विचारा—

तुम्हें देखें तो फिर औरोंको किन आँखोंसे हम देखें। ये आँखें फूट जायें गरचे इन आँखोंसे हम देखें।

× × × × vृहि तन राखि करबु मैं काहा।

जेहि न प्रेमपनु मोर निवाहा॥ राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम। तनु परिहरि रघुवर बिरहूँ राउ गयउ सुरधाम॥

महाराजने मनुरूपसे प्रभुसे वर माँगा था-

मिन बिनु फिन जिमि जलु बिनु मीना। मम जीवन तिमि नुम्हिह अधीना॥

अतः विधान भी चैसा ही बन गया । श्रीभरतजी भी ऐसे समयमें महाराजके पास नहीं थे; क्योंकि यह निश्चित है कि यदि भरतजी होते तो महाराजका निधन न हो पाता । जैसा कि आगे विवेचन किया गया है ।

महाराज दंशरथने प्रेम निभाया, कविने यशोगान किया--- बंद उँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामप्र। बिछुरत दीनदयाल प्रिय तन तृन इव परिहरेत ॥ इस प्रकार पिताके विषयमें शंका साकार हुई।

माता

महाराज दशरथके देहाक्सानके अनन्तर माताके सामने अपना निश्चित पथ है—महाराजकी सहगानि होना । अतः वे निश्चिन्त है । किंतु यह सब हो है सकता था—भरतजीके उपस्थित न रहते हुए । श्रीमातं ख्वयं भगवान् रामके प्रतिविम्ब हैं—

भरत रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी।

चित्रकूटमें भरत-मिलापके प्रसंगपर भयभीत वेताहें को आश्वासन देते हुए सुरगुरुने भी यही कहा है—

मन थिर करहु देव डरू नाहीं। भरतिह जानि राम परिछाहीं। तथा---

भरतिह कहिं सराहि खराही। राम प्रेमु सूरित तनु आही।

अतः भरतद्वारा अनुरोध किये जानेपर भा रामके पुनः दर्शन प्राप्त करनेका छोभ माताएँ हैं न कर सर्कीं—

गहि पग भरत मातु सब राखीं।
रहीं रानि दरसन अभिलाषीं।
महाराज दशरथकी अन्त्येष्टि-क्रिया हो की
पश्चात् गुरु वशिष्ठने एक बहुत बड़ा दरबार कि
श्रीभरतजीपर चारों ओरसे राज्य ग्रहण करनेके कि
डाला गया—किंतु यह सब उनकी प्रेम्मी
अतिरिक्त और कुल न था। श्रीभरतजीने को
अवध्वासियोंके हृदयकी मार्मिक पीड़ाका
किया तथा उनका अनुरोध भी सुना और अन्ती

1

H

2 1

नाताओं

हगामिं

त्रीभातां

11 15

देवताः

6-

हीं ॥

ही ॥

节

ार्थी ॥

不同

लिये व

H-PA

श्रीक

मुन्त्र

एक ही उपाय इस अपार दु:खसागरसे त्राण पानेका मूझा—और उन्होंने स्पष्ट कहा— एकइ ऑक इहइ मन माँहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥ श्रीभरतजीके इन शब्दोंने पत्रवारका काम किया और चारों ओरसे इसका समर्थन होने लगा। भविस चलिय बन राम जहँ भरत मंत्र भल कीन्ह। सोकसिंध बृहत सबिह तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥

×
 प्रत प्रान प्रिय में सबही के ॥
 भरत प्रान प्रिय में सबही के ॥
 श्रीभरतजी महाराज मूर्तिमान् राम-प्रेम-समुद्र हैं ।
 राम-प्रेमरूपी सुधाके कुछ सीकर मृतप्राय अवधवासियोंपर
 पड़ते ही वे सब-के-सब जी उठे—कृतकृत्य हो गये ।

यह बिं बात भरत के नाहीं।
सुमिरत जिन्हिह राम मन माँहीं॥
हिसी प्रेम-सुधाका संकेत करते हुए महिषे भरद्वाजजीने
भरतजीको हसका उद्गम-स्रोत इन शब्दोंमें बतलाया है—
परन राम सुप्रेम पियृषा।

गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥ × × × ×

गम भगत अब अधिय अपन

तम भगत अब अभिय अवाहूँ। कोन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहूँ॥ तमिविम्वके श्रीभरतजी प्रतिविम्व हैं। अत: एक-दूसरेसे किसी बातमें कम नहीं—

क्षाप आईनये हस्ती में हैं खुद अपना रकीव। वरना यां कौन था जो तेरे मुकाबिल होता॥ संयोगकी बात देखिये, बिम्ब-प्रतिबिम्ब दोनोंने ही मरे हैं औंको जिला दिया। राम-रावण-युद्धके पश्चात्— सुश बृष्टि भइ दोउ दल अपर। जिये भालु किए नहिं रजनीचर॥ सुर अंसिक सब किप अरु रीछा। जिये सकल रघुपति की ईछा॥

इधर प्रतिबिम्बने भी मरे हुए खजनोंको पुनर्जीवनदान दिया तथा प्रभु-सम्मुख छे जाकर कृतकृत्य किया; किंत रचना कुछ और ही थी—

मेटि जाइ नहिं राम रजाई।

प्रभुतक पहुँचकर भी सबको निराश हो अवध पुनः वापस छोट आना पड़ा । इस बार प्रजाकी रक्षाका भार भगवान् रामने श्रीभरतजीके ही कंघोंपर डाळ दिया है । अतः वे सजग हैं और उन्होंने अपने चारों ओर साधनाका सुन्दर परकोटा खींच रक्खा है । इस साधनाके वातावरण-में प्राण नहीं जाया करते । जगजननी श्रीजानकीजीने भी ऐसी ही व्यवस्था की थी, जिसका श्रीहनुमान्जीने इस प्रकार दिग्दर्शन कराया है—

नाम पाहरू दिवस निसिध्यान तुम्हार कपाट। छोचन निज पद जंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट॥ अवध अब अवध नहीं है, तपोभूमि हैं, जहाँ कालकी गति नहीं है—तपस्तीमें देहाध्यास कहाँ—

राम दरस हित लोग सब करत नेम उपवास। तजि तजि भूषन भोगसुख जिअत अवधिकी आस॥

तथ्य प्रकट हुआ—प्रजा तथा माताएँ प्राण्विहीन होनेपर भी श्रीभरतजीके द्वारा पुनर्जीवित की गर्शी। पिता दशरथके प्राण भरतजीकी अनुपस्थितिमें ही प्रयाण कर चुके थे और वे मरकर भी अमर हो गये—

जिअंत राम बिधु बदन निहारा।

राम बिरहँ करि मरनु सँवारा॥
जिअन मरन फलु दसरथ पावा।
अंड अनेक अमल जसु छावा॥
सियावर रामचन्द्रकी जय।

सुनहरा भारत

कैसा, 1/10 चम-चम चमक रहा रुपहला भारत । ! भाल तव विभु इसीलिये वस, जग कहता भारत ॥ १ ॥ देश तुमको सुनहरा अरुणिमा छाई, हँसी ऊषा माँग लाई । भर सिन्दूर क्या पाई, नव जागृति कण-कणने भारत ॥ २ ॥ सुनहरा शोभित देश

सवेग, चहकीं, हुआ चिडिया स्वर्ण बखेरा । किरणोंने रवि चितरा, रँगता कोई अलख देश भारत ॥ ३॥ सुनहरा चमका

मलयाचलने किसलय चूमा, स्वर्ण-चक्र प्राचीमें घूमा । अलि-दल कलि-यौवनपर झुमा, जागा देश सुनहरा भारत ॥ ४ ॥

चने गेहूँ भी पके पीले, हँसते जो चमकीले। मटरा गर्वीले, उठे नभ बातूल देश लगता सुनहरा भारत ॥ ५ ॥

> खग खोजें जब शान्त बसेरा, पश्चिमको रँग चला चितेरा। वना सुमेरु हिमाचल मेरा, भाया देश सुनहरा भारत॥ ६॥

विश्व-मुकुट यह ईश्वर-वादी, दिनमें स्वर्ण रातमें चाँदी । राम-कृष्णकी भूमि अनादी, पावन देश सुनहरा भारत ॥ ७ ॥

--वेदाचार्य श्रीवेणीराम शर्मा, गौड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

निकलन तड़फड़ पास न गलेके प्रज़की रहा है प्रकट

नाक

दर्भा

जीवन

होता

छिपाये

किसी

खपिच्च

किसीव

मल ही

आपका कह दे

रोग है कर रहे है। शरीरमें

हो उट्ट पचास

डाक्टर ऐक्सी हो गर

हो गर क्या हि

उनका

इन्जेक

जीवनकी व्याख्या

(लेखक—श्रीशशिखरजी नागर, एम्॰ ए॰)

हाय मरा ! राम रे राम ! र्र्र्र्। माँ मेरी । नाक दवाओंकी गन्धसे घुटने लगी । हाय-हायकी दुर्दमरी चीखें कानसे सीघे दिलमें उतर जाती हैं। बीवन कितना क्षुद्र दिखायी देता है। वहाँ दृष्टिगत होता है कि यमका सहोदर रोग मृत्युदंश अपनेमें हिपाये हुए है। किसीकी चमड़ी झुळस गयी है तो किसीका सिर, किसीकी टाँग फट गयी है, बड़ी-बड़ी बाचियोंसे कसी, किसी छोहेके कड़ेसे छटकी है तो क्रिसीकी नाक ही नहीं है। किसीका पेट फूला है, मल ही नहीं निकलता । किसीके पेटसे हवा नहीं किछती, गला सूख रहा है। वेचैनीसे वह व्यक्ति तङ्गड़ा रहा है। डाक्टरने चरमेमेंसे देखकर कहा गैस पास नहीं हो रहा है। अक्कका चमत्कार दवाओंके रूपमें गलेके मार्गसे उँड़ेला जा रहा है । डाक्टर किसी स्थित-प्रकृती तरह अविचल भावसे बैठा सव मरीजोंको देख रहा है। किसी गम्भीर रोगीके हितैषीने आकर चिन्ता प्रकट करते हुए पूछा—'भाई हमारे ठीक हो जायँगे ? आपक्का क्या विचार है ।' डाक्टर व्यस्तभावसे विना विचारे बह देता है—'मोस्ट ऑर्डिनेरी ! मामूली बात है ।'

डाक्टर यह वता सकता है कि किसको क्या रोग है। दवाइयोंकी तीक्ष्ण गन्ध वातावरणमें घुटन पैदा कर रही है; परंतु वह अडिग-सा, असङ्ग-सा निश्चल बैठा है। यकायक वह एकदम बेचेन हो उठा। उसके शिरमें तरा आ गयी। चेहरेपर दु:खकी रेखाएँ स्पष्ट हो उठीं। वह सब भूल गया कि उसके ऊपर लगभग प्वास रोगियोंकी देख-रेखका भार है। उसे किसी डाक्टरने कहा—'तुम्हारा लड़का इमर्जेन्सीमें आया है। स्मीडेन्ट हो गया है।' सारी स्थितप्रज्ञता समाप्त हो गयी। मनकी पूर्व समता नष्ट हो गयी। हाय-हाय! उनका हाल है जो दिलको ताकत देनेवाले बड़े-बड़े

आप संगीतज़ हैं। ये खरोंको मूर्तिमान् कर सकते हैं। रागिनियोंको जगाते हैं। अपने संगीतके बलपर ब्रह्माण्ड हिला देनेका दावा करते हैं। बुझे दीपकोंको जला सकते हैं; परंतु अपने बुझते जीवन-दीपको नहीं सहार सकते। मृत्युकी आँधी जीवनके दीपकको बुझा देती है!

ये पहल्वान हैं। देखो इनका सुडौल लौहमय शरीर। किसी व्यक्तिपर इनका हाथ पड़ जाय तो कालके गालसे उसे कोई नहीं बचा सकता। ये हजारोंकी हिंडुयाँ तोड़ चुके हैं। कितने ही उनके लंगोटके चपेटसे प्राण छोड़ बैठे। इनको ऐसा लगता था कि मृत्यु इनका कुल नहीं विगाड़ सकती। परंतु आज ये मूत्र रुक जानेके कारण लचार-से अस्पतालके एक पलंगपर दुर्बल व्यक्तियोंके बौद्धिक चमत्कारकी द्यापर पड़े हैं। अब नहीं वचेंगे। संसारका विजेता पहल्वान गठिया और हृदयरोगके पञ्जोंमें बेबस पड़ा सिसक रहा है!

ये कलाकार हैं । ये सौन्दर्य-म्नष्टा, ब्रह्माके समकक्षी सर्जनहार, कुरूपको रूप देनेबाले, कल्पनाके पंखोंपर आकाशके कोने-कोनेमें झाँक लेते हैं । मृतोंमें भी अपनी शिक्तका वाणी तथा लेखनीसे प्राण डालनेबाले ये कलाकार, सिर्जिकल वार्डमें अपनी टूटी टाँगको खपिच्चयोंके सहारे ऊँचे लोहेकी छड़ोंपर टँगे देखकर, संसारकी सबसे कुरूप कल्पना कर रहे हैं । सोच रहे हैं — पैसे नहीं, अधिक बच्चे — बड़ा परिवार — मर गये तो उनकी रचनाओंको कोई अन्य अपने नामसे न छाप दें । हाय-हाय ! मरा-मराका कोटि जाप चल रहा है । डाक्टरने पानी पीनेको मना कर दिया है । पानी होनेपर भी प्यासे मर रहे हैं । क्यों ?

वड़ें भारी दार्शनिकको हार्ट-डिजीज (हृदयरोग) है। दौरा आ गया। जीवन-मरणकी मूल समस्याओंपर घोर चिन्तन करते-करते हृदयरोग हो गया। बहुत सोचा। हुआ क्या ? कुछ पुस्तकों लिखीं, नाम हुआ, मालाएँ

HE.

अरु

करे

खा

समङ्

दूसर्

अभद्र

आध

तो य

न्यवह

चूँकि और

अव

ही स

लोक

की

समाध

स्तर

और

अधि

ही स

लोक

कि

श्रेय

तथ्य

पहनायी गयीं, मान्यता प्राप्त हुई, अभिनन्दन मिला और फिर, यहाँ अस्पतालमें आ गये !

संसारके रोगका निवारण करनेकी चिन्ताने इन्हें रोगी बना दिया। दिलपर हाथ रखकर हाँकते हुए बोले—'प्राण तो निकले ही, एक और दौरा पड़ा कि में मरा। आत्मा तो अमर है—जीव क्षुद्र है। शरीरका नाश……र्र्र्र्—भयंकर पीड़ा। मरना तो है ही एक दिन; परंतु सब चीजोंका एक समय होता है। मेरी तो आयु पैंतीसकी ही है!

आप बड़े नामी नेता हैं। जब बोलते हैं लाखों मृत्युके विचारको यदि हम एकाङ्गी कहेंगे त जनता मन्त्रमुग्धकी तरह इनके एक-एक शब्दकों निश्चित है कि इसके विना जीवनकी प्रत्येव सुनती है। बार-बार तालियोंकी गड़गड़ाहटसे आकाश अपूर्ण ही रहेगी। जीवन तो केवल मध्यक् काम्पित हो जाता है। ये कहते हैं—'संसारमें कोई ऐसी। है। जीवनसे पूर्व और पर होता ही क्या है!

शक्ति नहीं जो मेरा विरोध करके बच सके, जो के योजनामें जरा भी वाधा दे सके। इतनेमें ही हाक गति रुक गयी। व्याख्यानमञ्चपर ही धड़ामसे गिर पहें। हिलनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी!

संसारका समस्त ज्ञान, वेभव, पुस्तकों, कला, किला मृत्युके सामने फीका नजर आता है। जवतक मुख्यें समस्याको हल नहीं किया जाय या यों कही कि जीवनकी गुत्थी न सुलझ जाय, तवतक इन सब चीकें वस्तुतः क्या प्रयोजन है ? वह भी क्या जीवन है हे पग-पगपर मृत्युकी हुंकारसे सिकुड़कर सीमित हो जल मृत्युके विचारको यदि हम एकाङ्गी कहेंगे तो यहः निश्चित है कि इसके विना जीवनकी प्रत्येक व्याल अपूर्ण ही रहेगी। जीवन तो केवल मध्यकी अल है। जीवनसे पूर्व और पर होता ही क्या है ?

शत्रु कौन, मित्र कौन ?

+

(लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी 'अलैकिक')

इस संसारमें शायद ही ऐसा कोई मनुष्य है जिसके एक भी मित्र न हो, या एक भी शत्रु नहीं हो ? मनुष्य कितना ही समृद्ध, विवेकी, विनीत और साधु क्यों न हो, उसे न चाहनेवाले भी होते हैं और दूसरी तरफ वह कितना ही हीन, मूर्ख, उद्दण्ड तथा दुष्ट क्यों न हो, उसे चाहनेवाले भी होते हैं।

रात्रु और मित्र सभीके होते हैं—तो क्या शास्त्र और छोकानिर्दिष्ट सन्मार्गका पृथक्से कोई माहात्म्य है ? अथवा शास्त्र एवं छोकामर्यादाकी अवहेछना कर उच्छुह्वछ वृत्ति धारण करनेका कोई दुष्परिणाम सम्भव है ? जनसाधारणके बीच ऐसे तर्क या जिज्ञासाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक है । ऐसी स्थितिमें हम जिज्ञासु पाठकोंका ध्यान संख्या या तादादकी ओर छे जाना चाहेंगे । मान छीजिये 'क' के दस मित्र और दस शत्रु हैं, 'ख' के ५ मित्र और १५ शत्रु हैं तथा 'ग' के

१८ मित्र और २ रात्रु हैं। सोचिये, तीनोंमें उत् पुरुष कौन है और आप किसको मित्र बनाना पर करेंगे। हमें विश्वास है कि आप उसीको मित्र बन उचित समझेंगे जिसकी छोकप्रियता अधिक हो, जिस मित्र अधिक और रात्रु कम हों।

अब प्रश्न यह कि रात्रु और मित्रोंकी सह घटने-बढ़नेका दायित्व किसके ऊपर है ! बहुधा के लोग इसकी जवाबदारी—प्राय: मित्र घटने और वढ़नेकी स्थितिमें—अपनेपर कम तथा दूर्सों अधिक रखते हैं। वे यह बहुत कम या लेशमात्र नहीं सोचते कि रात्रु या मित्र बनाने-बढ़ाने एवं घटाने समस्त उत्तरदायित्व खयं अपने ही ऊपर रहता है वह दूसरी बात है जब किसीके संकुचित और खार्य व्यापारसे कोई भाराक्रान्त हो तथा उस अवस्थिती तोसरा कोई उसकी निन्दा-मर्सना करके उसके प्र

ग ३६

1

जो से

हिंद्यन

ए पहें।

, विज्ञान

मृत्युनं

हो ह

चीजोंग

न है है

ो जाय।

यह ई

ब्याख

में उत

ना परं

य बनार

जिस्

हुधा व

और र

दूसोंग

मात्र ।

घटानी

ता है

स्वार्थः

अवस्

अरुचि, घृणा एवं उपेक्षा वृत्ति उत्पन्न करनेका यत करे । जो भी हो, दोष व्यवहारमें कटुता और हार्थपरताको ही दिया जायगा ।

इस विषयको ज्ञानप्रशस्ति एवं मनोवैज्ञानिक ढंगसे समझनेके लिये, इस समस्याको हल करनेके लिये एक दूसरीअर्थपूर्ण जिज्ञासाको प्रकाशमें लानेका प्रयास करें— वह यह कि समाजमें जो सबसे अधिक अप्रिय,

बह यह कि समाजम जा सबस आधक आप्रय, अभद्र, मूर्ख और दुष्ट व्यक्ति हैं, उनके जो मित्र हैं—
अमद्र, मूर्ख और दुष्ट व्यक्ति हैं, उनके जो मित्र हैं—
अमद्र, मूर्ख और दुष्ट व्यक्ति हैं, उनके जो मित्र हैं
अमद्र, मूर्ख और दुष्ट व्यक्ति कम हो—वे किस अधारपर उसके मित्र बने हुए तथा टिके हुए हैं ? तो यही मानना पड़ेगा कि उनके साथ उस व्यक्तिका व्यवहार शिष्ट, स्निम्ध, स्नेह-प्रेम और सद्भावनासे पूर्ण है। चूँकि इसके विपरीत अशिष्ट तथा कटु व्यवहारवालेको, और तो और, उसके कुटुम्बवालेतक नहीं चाहते। अब प्रश्न यह है कि उसका थोड़े व्यक्तियोंके साथ ही सद्भावनापूर्ण व्यवहार है, सबके साथ क्यों नहीं ? लेकप्रिय मद्रपुरुषके शत्रुओंके बारेमें भी इसी जिज्ञासाकी पुनरावृत्ति हो सकती है। दोनों जिज्ञासाओंका समाधान, निराकरण, हल और सुलज्ञाव एक ही-जैसे सारपर हो सकता है। और वह यों है—

मनुष्यमें दो तरहकी प्रवृत्तियाँ रहती हैं। दैवी और आसुरी । जिसमें देवी प्रवृत्तियोंकी जितनी अधिकता होगी—लोकप्रियता और मित्रादिगण उतनी ही संस्थामें बढ़ेंगे । इसी प्रकार आसुरी प्रवृत्तियोंसे लोकिनिन्दा और रात्रुओंका विस्तार होगा । सारांश यह कि मानवके जितने भी रात्रु-मित्र हों, उनके गठनका श्रेय उसीको दिया गया है । भगवान् श्रीकृष्ण इसी तयको अर्जुनके समक्ष उपस्थित करते हैं—

वन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः। अनात्मनस्तु रात्रुत्वे वर्तेतात्मैव रात्रुवत्॥

जीवात्मा स्वयं ही अपना मित्र और शत्रु है। जिसने मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीत लिया है वह

उसका (तथा सबका) बन्धु (प्रिय मित्र) है। इसके विपरीत जिसने मन और इन्द्रियोंको अमर्यादित छूट दे रक्खी है, वह उसका (तथा सबका) शत्रु है।

हमारे बाहर जितने भी रात्रु-मित्र हैं, उन सबके निर्माता हम स्वयं हैं। उन सबकी जड़ें हमारे शरीर, मन और अन्त:करणके भीतर ही रहती हैं। रचनात्मक कल्याण-कारी सद्भावनाएँ ही आपकी मित्र हैं, रचनात्मकरान्य अकल्याण-पथगामिनी असद्-भावनाएँ ही आपकी रात्र हैं । प्रथम प्रकारकी भावनाएँ जहाँ सुख, संतोष, यश, आरोग्य और कल्याणका विस्तार करती हैं, वहाँ दूसरे प्रकारकी भावनाएँ दु:ख, दारिद्रच, अपयश, अनारोग्य और अकल्याणका विस्तार करती हैं। हमारे शास्त्रोंने बन्ध और मोक्षतकका श्रेय भावनाओंको दिया है। नीचे हम संक्षेपमें उनकी एक तालिका प्रस्तुत करते हैं। हमें विश्वास है कि आप अपनेमें सदैव मित्र-भावनाओंकी वृद्धि तथा अमित्र-भावनाओं में करते रहेंगे।

मित्र-भावनाएँ—(१) सत्य-संयम, (२) सदाचार-सत्संग, (३) सादगी-संतोष (४) स्नेह-प्रेम, (५) आशा-विश्वास, (६) प्रसन्नता-संतोष, (७) साहस-आत्मविश्वास, (८) उदारता-क्षमा, (९) मित व्ययिता-अपरिग्रह, (१०) कर्ममें श्रद्धा-अप्रमाद, (११) भगवचिन्तन, आत्मचिन्तन तथा सत्साहित्य-अनुशीलन, (१२) निर्भयता-निर्वेरता, (१३) ईमानदारी-कर्तव्यपरायणता।

शत्रु-भावनाएँ—(१) झ्ठ-असंयम, (२) छठ-धोखा, (३) रागद्वेष-स्पर्धा, (४) निन्दा-चुगछी, (५) क्रोध-डाह, (६) अनुदारता-संकीर्ण मनोवृत्ति, (७) अक्ष्मा-कठोरता, (८) निराशा-अविश्वास, भय, (९) परिग्रह-व्यर्थकी वस्तुओंका संग्रह, (१०) फिजूल-खर्ची, दिखावा-फैशन, (११) कर्ज, (१२) कुसंग, विषयचिन्तन, कुत्सित अथवा अनुपयोगी साहित्य-का पठन-पाठन (१३) प्रमाद, आलस्य, अकर्मण्यता

विषका अमृतमें परिवर्तन

एक मङ्गल मुहूर्तमें सुरिभ कत्या मिटकर नववधू वन गयी। भावी सुखी जीवनके मनोर्थ करती सुरिभने ससुरालमें पैर रक्खा। सासने मुलकते मुखसे गृहलक्ष्मीका सत्कार किया। देवर तथा ननदने 'भाभी'के मीठे सम्बोधन-से अपना रनेह दिखलाया। कामका भार कुछ हल्का हो जायगा यों सोचकर जेठानियोंने भी सुरिभपर प्रेमकी वर्षा की। घरका वातावरण देखकर सुरिभको लगा कि लोग जान-बूझकर ही इस घरकी निन्दा करते हैं। शायद ईर्ष्यासे प्रेरित होकर उन लोगोंने मेरा यह सम्बन्ध तुड़वानेका प्रयत्न किया होगा।

परंतु राख ठंढी है, इस विश्वाससे राखपर चलता हुआ मनुष्य जब राखमें छिपे अंगारेसे जलता है, तब जैसे वह चौंक उठता है, वैसे ही सुर्भि भी एक दिन चौंक पड़ी । गृहलक्ष्मीको लानेके चावकी आड़में छिपा हुआ घरके लोगोंका मूल झगड़ाल् स्वभाव अब धीरे-धीरे प्रकट होने लगा। सास और ननद तो सुरभिके प्रत्येक कार्यमें ही दोष दूँइनेका प्रयत्न करतीं और उनको सुरमिमें एककी जगह अनेकों दोष दिखायी भी दे जाते । अवतक खयं खायी हुई गालियोंके खादसे सुरभि विश्वत रहे, यह कैसे हो ? ऐसी श्री-सुलम ईब्पीसे प्रेरित होकर दोनों जेठानियाँ भी सुरभिके दोष ढूँढ़नेमें सास-ननदकी सहायता करतीं; इतना ही नहीं, घरके अधिकांश कामका बोझ सुरभिपर डालकर वे दिनका अधिक समय किताबें पढ़ने, आराम करने और गपशपमें वितातीं । सुरभि कामचौर न होनेके कारण सारा काम हँसते-मुँह उत्साहके साथ करती; किंतु बिना दोष बरसती गाळियों की झड़ी जब उससे नहीं सही जाती, तब उसकी आँखोंसे भी सावन वरस जाता !

एक दिन सुबह सुरिभने अंगीठीपर दूध गरम करने रक्खा था। दूधमें उफान आनेकी तैयारी थी। इसी बीचमें हालमेंसे सासजीने पुकारा, 'अरी सुरिभ ! मैंने तुझसे कब पानी लानेकों कहा था, तृने सुना नहीं था! यह तो ठीक है कि मेरे हाथ-पैर सलामत हैं, नहीं तो तेरी-जैसी बहू क्या सेवा करती! सुरिभने कहा—'माँजी ! मैंने जरा दूध करने रक्खा है, उफान आनेवाला है; मैंने सोचा, कु उतारकर ही पानी ले जाऊँ। और माँजी! सेवा तो सम आनेपर ऐसी करके दिखाऊँगी कि आप देखा करेंगी। HE

पढ़न

वाप

थी।

थी।

झगड

उत्क

किय

क्ल

इतने

।हिम

कोई

प्रभा

प्रयत

सुर्ग

HH

शुभ

सुर्श

िं

हँस

अन्त

ख

क्र

ही

क्

য়

वस, सुरिभने न जाने कितना वड़ा अपराध कर डाला हो, यों सासजीकी वाग्धारा आरम्भ हो गयी। धाह वाह, सेवा करनेवाली बहूरानी ! बाले बोलना तो खूब सिखाया है। एक प्याले पानीके क्षि में कबसे पुकार रही हूँ और वातें इतनी बड़ी-बड़ी का रही है। भें बड़ी पढ़ी-लिखी हूँ बता रही है। साले जवाब देते शरम नहीं आती? में नहीं बोलती हुले पटापट बोले ही जा रही है। अब देखती हूँ—द् की बोलती है ? चल, पहले पानी दे जा।

सासजी जर्दी चुप हो जायँ, इसलिये सुरिम दुर्भाष वश दूध अंगीठीपर छोड़कर ही पानी देने चली गयी। सासजीके हाथमें पानीका प्याला देकर सुरिम लैट ही रही थी कि तुरंत सासजीकी आग बरसाती वाणी सुनार्थ दी—'इस खाली प्यालेको क्या तेरा वाप ले जायगा?'

इसी बीच अंगीठीपर रक्खे दूधके उफननेकी आवा आयी। सुरिम दौड़ती हुई रसोईघरमें पहुँची और उसने दूध उतारा; परंतु लगभग लटाक दूध तो अग्निदेख 'खाहा' कर ही गये थे। सुरिमके पीछे-पीछे ही पहँची सासजीने यह देखा और सुरिमकी आ बनी। सासजी वाग्वाणोंको सुरिम सिर झुकाये सहती रही। ननद औं जेठानियोंने भी सुरिमके आगे-पीछेके दोषोंका वर्णन कर्ष सासको उभाड़ा। यद्यपि सुरिम प्रायः मौन ही ही तथापि सास-ननद और जेठानियोंकी अमंद आवाजने वातावरणमें किसी युद्धक्षेत्रकी गरिम पैदा कर दी थी। इसी बीच डाकियेकी आवाज आयी—'यह विट्ठी के जाइये।' डाकियेकी इस आवाजने युद्धक्षेत्रकी गरिम को जरा कम कर दिया; क्योंकि ननद चिट्ठी के बाहर चली गयी और किसकी चिट्ठी है, इस उत्सुक्ती से प्रेरित जेठानियाँ भी ननदके पीछे-पीछे चल दी।

可下

चा, दुव

तो सम

रेंगी।

राध का

गर्या।

वापन के लि

ड़ी का

। सामने

नी इससे

-तू केंसे

दुर्भीय

गयी।

लैर ही

सुनार्थ

11 ?1

आवाउ

र उसने

ग्रिदेवता

पहुँची

सिजीवे

द औ

ा करके

रहती

विजिने

वी ।

रही ले

TTA

उकता.

स्रामिके पिताका पत्र था। सुरमिकी ननद्ने पत्रको पहकर सुरमिकी ओर फेंकते हुए कहा—'बेटीके पत्रकी वप चातककी तरह बाट देखते हैं और बेटीकी तबीयत-का समाचार पूछते हैं । पिता-पुत्रीका प्रेम है ।'

सरभिके लिये यह सब एक दिनकी चीज नहीं थी। उसके भाग्यमें तो तीसों दिन यह होली लिखी थी। किस उत्साहसे सुरिमने घरमें पैर रक्खा था। क्षाड़ाल् कुटुम्बको स्नेइपूर्ण बना देनेकी कैसी-कैसी उत्कट अभिलाषाएँ उसके मनमें नाच रही थीं उसने इसके लिये हृद्यसे भारी प्रयत भी क्या किया, परंतु उसके इन प्रयत्नोंका संस्काररहित तथा कल्हप्रिय ससुरालपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । इतनेपर भी सुरभिका अन्तर मानो कह रहा था— 'हिम्मत मत हार । प्रभुके द्वारा सृष्ट इस विश्वमें कोई भी बुरा नहीं है। केवल अच्छे-बुरे संयोगोंके प्रभावसे ही मनुष्य सज्जन और दुर्जन दिखायी देने लगता है । प्रयत्न चाद्ध्रस्ख, एक दिन तुझे अवश्य सफलता मिलेगी।'

अन्तरकी इस आवाजका अनुसरण करके ष्ट्रिंभने मनमन्दिरमें घुसे हुए तमाम विरोधी विचारोंको तथा सपुरालकी ओर आयी हुई घृणाको निकालकर फिरसे अपना ग्रुभ प्रयत्न ग्रुरू किया—कल्रहस्वभाव झगड़ाखोर घरको सुशील, संस्कारी और स्नेहमय घरमें परिवर्तन करनेके लिये!

सास, ननद और जेठानियोंके मनपर विजय पानेके ^{लिये} सुरमि विशेष नम्न, मितभाषिणी और सदा हँसमुखी वन गयी । उसने बड़े प्रयत्नके साथ अपने अन्तरके हु: खको हृदयके किसी अँधियारे कोनेमें ख दिया और मुखपर प्रफुल्ल हास्यकी अरुणिमा प्रकट कर ही। घरका अधिकांश काम तो सुरभिको करना ही था, परंतु अब उसने सारे घरका काम अपने हाथोंमें हैनेका निश्चय किया । वह पाँच बजे उठकर बासी काम निपटाती, फिर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर रसोई रुक कर देती । सास और ननदको जरा भी काममें मुझे ता एस। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हाथ नहीं लगाने देती। इतना ही नहीं, वह उनकी तमाम सुविधाओंकी व्यवस्था करती। जेठानियोंके हाथोंसे भी हँसते-मुँह काम छीन लेती। उसने बोलना बहुत ही कम कर दिया था, इसलिये सामने जवाब न मिलनेके कारण सास-ननदको भी छडनेमें मजा नहीं आता। यद्यपि उनका झगड़ाद्ध स्वभाव वार-वार क्रोधकी चिनगारी उत्पन्न करता: परंत सरभिका मौन तथा शीतल प्रतीकार उस चिनगारीको झगड़ेके दावानलमें परिवर्तित नहीं होने देता।

एक दिन पिताजीको पत्रका उत्तर छिखनेका विचार करके सुर्मि अपने कमरेमें आयी ! दुपहरका समय था। रतोईका सारा काम निपट जानेके कारण इस समय कोई काम न था । उसने पेटीमेंसे पोस्टकार्ड और पेंसिल निकालकर पिताको पत्र लिखना शुरू किया। परम पूज्य पिताजी और माताजी !

आपकी पुत्री सुरभिके प्रणाम । आपका स्नेहसिक्त पत्र पढ़कर वड़ा आनन्द हुआ । आपने टिखा कि 'यहाँसे जानेके बाद तूने एक भी पत्र नहीं लिखा' पर मैं क्या करूँ, मेरा आलस्य ही इसमें कारण है। मेरी सासजीने मुझे दो बार डाँटा भी कि तू अपने पिताजीको पत्र लिखनेमें आलस्य क्यों करती है !

और मुझे यह जनानेमें हर्प होता है पिताजी ! कि मैं यहाँ खूब-खूब मजेमें हूँ । मानो मैं आपके और माँके साथ ही रह रही हूँ, मुझे ऐसा ही लगता है। ननद और देवर तो मेरे मा-जाये (सहोदर) बहिन और भाई ही हों, मैं उनके दयाभरे व्यवहारसे यह अनुभव करती हूँ। लोगोंमें फैली वातोंमें कितना असत्यका मिश्रण होता है, इसका आपको इसीसे अनुमान हो जायगा ।

सासजी, ननद और जेठानियोंके स्नेहका मैं वर्णन नहीं कर सकती। यह तो आपलोग कभी आयेंगे तभी पता लगेगा। यथार्थमें, मैं यहाँ बहुत ही प्रसन्न हूँ। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस प्रकारके अच्छे घरकी

भूमि

पाल

या व

उनक

मूत्र स

समूल

मुत्रादि

कि हम

Ψ,

ऋग्वेद

इच्छ्ड

ओर ज

प्राप्तिकी

ईश्वरक

गायोंके

इसी प्रव

भा

पहे, इस

सङ्ग प्

गायोंको

भी गोच

है, जिस्

है। पर्वत

ही है, उ

भी गोच

इ

'छक्ष्मी' वनते देखकर ईष्यिक कारण ही विष्नसंतोषी छोगोंने आपके सामने झूठी-झूठी वातें की थीं।

आप मेरी जरा भी चिन्ता न कीजियेगा, क्योंकि मेरी सासजी मेरी माँके खरूपमें और मेरे ससुरजी आपके खरूपमें सदा मेरा ध्यान रखते हैं। पूज्य माताजीको मेरा प्रणाम ।

आपकी बेटी सुरभिके प्रणाम ।

दुपहरकी चाय चढ़ानेका समय हो जानेके कारण सुरिभने पत्रको टेवलके दराजमें रख दिया और सोचा कि शामको या कल सबेरे डाकमें छुड़वा दूँगी। इतनेहीमें ननदजीका शब्दानल सुरिभके कानको जला गया। 'माँ, चाय चढ़ानेका समय हो गया है पर भाभीको तो यह स्व्नता ही नहीं है। यह क्या बहूके लक्षण हैं ?' और ननदजी आगे कुछ बोलती—इसके पहले ही—'नहीं बहिनजी! मैं अभी चाय चढ़ा देती हूँ,' कहती हुई सुरिभ रसोईघरमें पहुँच गयी।

सुरिम चाय चढ़ा रही थी, इसी बीच सुरिमकी सासने अपनी बेटीसे कहा—'पता नहीं, इतनी देरसे बहू अपने कमरेमें क्या कर रही थी, तू पहले चलकर जरा देख, मैं पीछे-पीछे आ रही हूँ।' माँकी आज्ञाकारिणी बेटी तुरंत भाभीके कमरेमें पहुँच गयी और सुरिमकी पेटी, टेक्क आदि खोजने-देखने लगी। टेक्क दराजमें खोजते हुए उसे सुरिमका अपने पिताके नाम लिखा पत्र मिला। उसी समय सुरिमकी सासने कमरेमें प्रवेश किया। गीधकी झपटके सदश जल्दीसे पत्र उठाकर बेटी अपनी माँसे कहने लगी—'देखा न माँ! भाभी चुपके-चुपके वापको चिटी लिखती है। पता नहीं, अपने लोगोंके बारेमें क्या-क्या लिखा होगा? तू भी कैसी है जो भाभीको कभी कुछ कहती ही नहीं!

व्यवहारशील माताने पुत्रीको पत्र पढ़कार हुनाके आज्ञा दी, इसलिये कि यदि पत्रमें सुरिमका कोई के ढूँढा जा सकेगा तो फिर उससे लड़नेमें सुविधा होगी। इसी समय सास-ननदको ढूँढती हुई सुरिमकी के जेठानियाँ भी वहाँ आ पहुँचीं।

सुरिमकी ननद्रने पत्र पढ़ना शुरू किया। पत्रा एक-एक शब्द सुननेवालों के हृदयमें किसी अगम्य संघीत्रों जाग्रत् कर रहा था। सुरिमकी नम्नता, सहनशीलता की हृदयकी सुन्दरताकी सिरिताका पिवत्र त्रिवेणी-संगम हे रहा था इस पत्रमें। सुरिमके संस्कारकी सीरिम झ पत्रमेंसे फैल रही थी और वह सुननेवालों के हृदय-अपन की मिलनताको मिटा रही थी!

पत्र पूरा होते-होते तो चारों ही नारियोंकी आँखें पश्चात्तापकी जलधारा वह निकली; क्योंकि सुरिभके स पत्रने उनके स्वभावको ही नहीं बदल दिया, पर्व संस्कारोंमें भी परिवर्तन कर दिया था।

तबसे सुरिभके प्रति सास-ननद और जेठातियों व्यवहार-वर्ताव बिल्कुल बदल गये। सुरिभके पत्रमें उद्घिष्ठि जीवन अब सच्चे अर्थमें साकार हो गया। सस्राल्के स्वभावमें और अपने प्रति होनेवाले व्यवहार-वर्तावमें सिपरिवर्तनका सुरिभने आनन्द और आश्चर्यके साथ अनुम्व किया; इतनेपर भी सुरिभ इस परिवर्तनके रहस्यको वही समझ सकी। किसी अदृश्य शक्ति अथवा प्रभुकी द्यावि वह परिणाम है—यों समझनेवाली सुरिभकों क्या पता कि यह शुभ परिणाम उसकी सास, ननद औ जेठानियोंके स्वभावकी बदबूको दूर करके उसके गृहि उपवनको सुगन्धित कर देनेवाले उसके अपने ही संस्वारि सौरिभका था! अपनी स्वभाव-सुधाके सिश्चनसे सुरिभे विषकों अमृतमें बदल दिया! (अखण्ड आनन्द)

—कु० पुष्पा बहिन ^{पंडवी}

गोचरभूमिकी गौरव-गाथा

(लेखक-श्रीगौरीशंकरजी गुत)

वह भी एक युग था जब हमारे भारतवर्षमें गोचर-भूमिकी प्रचुरता थी और निर्धन से-निर्धन व्यक्ति भी गाये पाल सकता था । गोचरभूमिमें चरनेवाली गायें हरी घास या वनस्पतिके प्रभावसे नीरोग और हृष्ट-पुष्ट रहतीं और उनका दूध सुपाच्य तथा पुष्टिकारक होता था। उन गायोंका मूत्र सर्व रोगों-विशेषकर उदर, नेत्र तथा कर्ण-रोगोंको समूल नष्ट करनेकी क्षमता रखता था। आज गोदुग्य-म्त्रादिमें वैसा चमत्कार न दीखनेका यही मुख्य कारण है कि हमारे देशमें गोचर भूमिकी समुचित व्यवस्था नहीं है । प, वैदिक युगमें गोचरभूमिका बड़ा महत्त्व था। मृग्वेद (१।२५।१६) में एक मन्त्र है-

जाने ोई दो।

होगी।

ते दोने

| पत्रश

संघर्षको

ता औ

रंगम हो

भ इस

-उपवतः

ऑखों

नेके इस

हंग्र

ानियोंके

लिखि

पुराले

रमें इस

अनुभव

ते खी

दयाका

म्या

顶

स्कारि

रभिने

पंड्या

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गन्यृतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥

इसका भाव है कि गायें जिस तरह गोचरभूमिकी ओर जाती हैं, उसी तरह उस महान् तेजस्वी परमात्माकी प्राप्तिकी कामना करती हुई बुद्धि उसीकी ओर दौड़ती रहे। ईश्वर्षी ओर बुद्धि लगी रहे, यह भाव व्यक्त करनेके लिये गायोंके गोचरभूमिकी ओर जानेका दृष्टान्त दिया गया है। सीप्रकार ऋग्वेद (१।७।३) में एक दूसरा मन्त्र है---

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयदिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्॥

भाव यह कि सुरपति इन्द्रने, दूरसे प्रकाश दीख पड़े, इस हेतु सूर्यको चुलोकमें रक्खा और स्वयं गायोंके म्ह पर्वतकी ओर प्रस्थान किया । दूसरे शब्दोंमें— गार्वेको चरनेके छिये पर्वतोंपर भेजना चाहिये। पर्वत भी गोचरभूमिकी श्रेणीमें आते हैं। पर्वतका पर्याय गोत्र है, जिसका एक अर्थ गार्योंको त्राण देनेवाला भी होता है। पर्वतोपर गौओंको पर्याप्त चारा और जल तो सुलभ रहता हीहै, उन्हें गुद्ध वायु और व्यायामलाभ भी हो जाता है। प्रमुराण, मनु, याज्ञवल्क्य तथा नारदादि स्मृतियोंमें भी गोचरम्मिका वर्णन मिलता है । उन सबका सारांश

संक्षेपमें यही है कि यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़नेबाले-को नित्य-प्रति सौसे अधिक ब्राह्मणभोजन करानेका पुण्य मिलता है और वह स्वर्गका अधिकारी होता है, नरकमें नहीं जाता । गोचरभूमिको रोकने या बाधा पहुँचानेवाले तथा बृक्षोंको नष्ट करनेवाले इक्कीस पीढ़ी-तक रौरव नरकमें पड़े रहते हैं। चरती हुई गौओंको वाधा पहुँचानेवालोंको समर्थ ग्रामरक्षक दण्ड दे, ऐसा पद्मपुराणमें कहा गया है-

गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्यजति हेतुना। दिने दिने ब्रह्मभोज्यं पुण्यं तस्य शताधिकम्॥ तसाद् गवां प्रचारं तु मुक्तवा खर्गान्न हीयते। यच्छिनत्ति द्रमं पुण्यं गोप्रचारं छिनत्त्यपि॥ तस्यैकविंशपुरुषाः पच्यन्ते रौरवेषु च। गोचारघ्नं ग्रामगोपः शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत्॥ (सृष्टिलण्ड, अ० ५९, श्लोक ३८-४०)

पद्मपुराणमें वर्णित एक प्रसङ्गके अनुसार चरती हुई गायको रोकनेसे नरकमें जाना पड़ता है। खयं महाराज जनकको चरती हुई गायको रोकनेके फलखरूप नरकका द्वार देखना पड़ा था । सावधान रहकर आत्मरक्षा करना कर्तव्य है; पर चरती गायको ही क्या, आहार करते समय जीवमात्रको रोकना या मारना मनुष्यता नहीं है। धार्मिक दृष्टिसे भी ऐसा करना अनुचित है।

पहले कहा गया है कि हमारे देशमें गोचरभूमिकी प्रचुरता थी । इतना ही नहीं; अपितु राजवर्ग तथा प्रजावर्ग दोनोंकी ओरसे गोचरभूमि छोड़ी जाती थी। पुण्यलाभकी दृष्टिसे धर्मशाला, पाठशाला, कूप और तालाब आदि बनवानेकी प्रथाकी भाँति गोचरभूमि खरीदकर कृष्णार्पण करनेकी उस युगमें प्रथा थी। आज भी वे गोचरभूमियाँ विद्यमान हैं और उनके दानपत्रोंमें स्पष्ट अङ्कित है--- 'इस गोचरभूमिको नष्ट करनेवाले

उन सबका सारांश यावन्द्रदिवाकर नरकवास करेंगे।' CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विभा

स्टेश

तथा

उतर

कुछ

हिना

स्रीसे

हमारे

कहव

कर इ

लिये

सामान

देखा-

दुर्वास

वह स

सामाः

और

सॉक

किवा

कह

खोलेग

कहा-

भीर

कर

गाँवके निकट चारों ओर चार सौ हाथ यानी तीन बार फेंकनेसे लकड़ी जहाँ जाकर गिरे, वहाँतककी भूमि और नगरके निकट चारों ओर इससे तिगुनी भूमि यानी बारह सौ हाथ भूमि गोचारणके लिये छोड़नेका आदेश देते हुए मनुजी आगे कहते हैं कि यदि उतनी भूमिके अंदरकी किसी ऐसी कृषिको, जिसके चारों ओर बाड़ न लगे हों, प्रामके पशु नष्ट कर दें तो यह उनका अपराध नहीं और इसके लिये उनको राजदण्ड नहीं मिलना चाहिये—

धनुद्दशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात् समन्ततः। द्दास्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु॥ तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पदावो यदि। न तत्र प्रणयेद् दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम्॥ (मनुस्मृति, अ०८, २३७।३८)

महर्षि याज्ञवल्क्यका भी यही मत है। उन्होंने पर्वतकी तराईके गाँवोंके निकट आठ सौ हाथ तथा नगरके निकट सोलह सौ हाथ गोचरभूमि छोंड़नेकी व्यवस्था दी है। छिँखा है— धनुक्कातं परीणाहो ग्रामे क्षेत्रान्तरं भवेत्। द्वे राते खर्वटस्य स्याचगरस्य चतुक्कातम्॥ (याज्ञव्क्यस्मृति २। १६७)

यह भी आदेश है कि खेत गाँव तथा शहरसे दूर हो और खेतोंमें वाड़ घनी हो। वाड़की गहराई इतनी हो कि कृषितक ऊँटकी दृष्टि भी न पहुँच सके और न कुत्ते, सूअर आदि ही उसके छिद्रोंसे किसी प्रकार अंदरकी ओर प्रविष्ट कर सकें। 'नारदस्मृति' के अनुसार बाड़ न लगानेके कारण खेतीको यदि पशुचर जायँ या खेतमें घुसें तो राजा पशुओंको दण्ड नहीं दे सकता, वह उन्हें हँकवा सकता है। वाड़ तोड़कर यदि पशु कृषिको नष्ट करें तो वे दण्डके अधिकारी होंगे।

मनुका भी यह कथन है कि राहके निकट या गाँवके पड़ोसके बाड़ छगे खेतोंमें यदि पशु किसी प्रकार पहुँचकर अनाज खा जायँ तो राजा पशुपालकपर सौ पण दण्ड लगाये, किंतु यदि पशु विना रखवालेका हो तो उसे सिर्फ हँकवा दे—

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः। स कालः शतदण्डाहीं विपालान् वारयेत्पश्न। (मनुस्मृति, अ० ८ । २४०)

महर्षि याज्ञवल्भ्यके वचनानुसार राह, ग्राम क्री गोचरभूमिके निकटके खेतको यदि रखवालेकी आत वस्थामें पशु नष्ट कर दें तो वह दोषी नहीं होगा। हैं, यदि खेतको रखवाला जान-बूझकर चरा दे तो वह अपार्थ है और चोरकी भाँति उसे दण्ड मिलना चाहिये— पथि ग्रामविश्वीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते। अकामतः कामचारे श्रीरवहण्डमहीते॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति अ०२। १६१

अन्तमें एक अत्यन्त रोचक और तथ्यपूर्ण प्रस्त उल्लेख्य है, जिससे गोचर भूमि हड़ पनेवाले नराक्षेत्र पापकी भयंकरतापर प्रकाश पड़ता है। एक बार ह चाण्डालकी पत्नी चिताग्निमें नर-कपाल रखका अ कौवेका मांस पका रही थी और उसको उसने इलेख चमड़े से ढँक रक्खा था। एक व्यक्तिको यह देख खमावतः कौतहल हुआ और उसने चाण्डालिनीसे प्रान्तिने ऐसी घृणित चीजको भी क्यों ढँक रक्खा है उसने कितना मार्मिक उत्तर दिया था—'मैंने से इं अपने कितना मार्मिक उत्तर दिया था—'मैंने से इं भयसे ढँक रक्खा है कि मेरा यह स्थान खेतोंके समीप यदि किसी ऐसे महापापी व्यक्तिकी, जिसने गोचित को अपने खेतमें मिला लिया है, दृष्टि पड़ जाणी मेरा यह आहार प्रहण करने लायक नहीं रह जाणा मेरा यह आहार प्रहण करने लायक नहीं रह जाणा

नृकपाले तु चाण्डाली काकमांसं श्रवमी चछाद गोचरक्षोणीकृषिकृद्दृष्टिभीति

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोचरभूमि हैं महान् पुण्य और उसे नष्ट करना या हड़पना है । हमारे देशमें गोवधकी भाँति गोचरभूमिका हमारे समस्याके रूपमें उपस्थित है । गोचरभूमिका हमारे वड़ा अभाव-सा है और उसकी वड़ी दुर्व्यवस्था है। कई कारण हैं, जिनपर फिर कभी विचार किया और

पढ़ो, समझो और करो

(3)

-नः।

न्।

1089

म औ

अज्ञात.

T | हाँ.

आपार्ध

द्यते।

हिति ॥

१६२

र् प्रस्

नराधमी

बार ए

तर अ

ने कुले

इ देखा

卿一

खा है।

ने इसे ह

समीपहै

ोचा भ

जायार्भ :

जायगा

वर्मण

तितः

中部

मि भी

हमारे

色月

वीराङ्गना

घटना गत जनवरीकी है । उत्तर रेलवेके सोद्पर विभागमें वाडमेर लाइनपर धुनाड़ा नामक एक छोटा-सा हरेशन है। एक दिन एक राजपूत अपने छोटे-से पुत्र त्या तरुणी पत्नीके साथ रातकी गाड़ीसे वहाँ उतरा। उतारते ही वह अपनी पत्नीसे यह कहकर कि---'गाँव कुछ दूर है, मैं गाड़ी ठाने जा रहा हूँ | तुम यहीं रहना—' गाँवकी ओर चल दिया।

कुछ ही समय बाद दो नर-राध्सस आये और उस ब्रीसे कहने लगे कि 'तम यहाँ अकेली क्यों बैठी हो, हमारे कार्टरमें चलो । वहाँ और भी स्त्रियाँ हैं ।'

उस स्त्रीने कहा-4मेरे पति मझसे यहीं ठहरनेको कहकर गाड़ी लेने गाँवमें गये हैं। अतः मैं यहीं टहरूँगी।

थोड़ी देरके बाद उनमेंसे एक आदमीने वापस छौट-का उस ब्रीको फुसला-समझाकर कार्टरमें जाकर ठहरनेके लिये विवश कर दिया । वह बेचारी अपने बच्चे तथा सामानको लेकर वहाँ चली गयी। उसने कार्टरमें जाकर देखा—वहाँ कोई भी स्त्री नहीं है। इधर वे दुष्ट अपनी इर्गासना पूरी करनेके लिये उसे बुरी तरह छेड़ने लगे। वह उनसे रक्षा पानेके छिये पेशावका वहाना करके— सामान तथा बच्चेको वहीं छोड़कर बाहर निकल गयी और तुरंत ही उसने कार्टरके किंवाड़ बंद करके वाहर साँकल लगा दी। अब तो वे बदमाश घबराये और किंगाड़ खोलनेके लिये पुकारने लगे। उस स्त्रीने साफ कह दिया कि मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।

बदमाशोंने धमकाकर कहा कि 'तू यदि दरवाजा नहीं बोलेगी तो हम तेरे बच्चेको मार डालेंगे। इसपर सतीने कहा—'मले ही तुम बच्चेको मार दो और मेरा सामान भी ख लो; परंतु मैं दरवाजा नहीं खोळूँगी।

उन क्र एक्समोंने नन्हे-से शिशुका एक हाथ काट-कार खिड़कीसे बाहर फैंक दिया और कड़ा—'तू अव

भी दरवाजा खोल दे, नहीं तो हम तेरे बच्चेको जानसे मार डालेंगे। इसपर जब उसने दरवाजा नहीं खोला तव उन नर-पिशाचोंने वच्चेका एक पैर काट डाळा। सतीने अपने हृदयको वन्नसा कठोर बना छिया। वे राक्षस अंदरसे चिछाते रहे और सती बाहर हुंकार करती रही । तदनन्तर उंन छोगोंने उस नवजात शिशुका सिर काटकर कहा—'त् अव भी मान जा—दरवाजा खोल दे।' रात ढल चुकी थी। इसी बीच वह राजपूत (उस सतीका पति) छौट आया और उधरसे निकला । सतीने उसे प्रकारकर पास बुलाया और सारी घटना कहकर सुना दी। फिर ठठकारकर कहा--- 'तुम्हारे पास तलवार है, इन्हें मार सको तो मार डालो, नहीं तो मैं मारूँगी। पुरुष उसकी बात सुनकर काँप उठा। पर सतीने विकराल रूप धारणकर तलवार हायमें ले ली और किंवाड़ खोल दिये। दरवाजा खुलते ही वे भागने-की कोशिश करने लगे। सतीने तलवार चलायी तव एक उसकी ओर लपका। सतीने तुरंत उसका सिर धड़से अलग कर दिया, फिर दूसरेकी भी तुरंत यही गति हुई। सतीने सामान लिया और बच्चेके कटे शरीरके टुकड़े बटोरकर उठा लिये और वह खामीको साथ लेकर सीवी थानेपर पहुँची । उसने थानेके अफसरको सारी घटना सुना दी। थानेदार उसके सतीव्यरक्षणके लिये स्वीकार किये हुए वीरत्वके विवरणको सुनकर बहुत प्रसन्त हुआ । सरकारसे अनुरोध करके उसने उस देवी-को पाँच सौ रुपयेका पुरस्कार दिल्वाया।

पुलिसने उनके घरवालोंको सूचना भेजकर उन्हें बुलाया और दोनों नर-पिशाचोंका पोस्टमार्टम करवाकर उन्हें फूँक दिया।

इस वीराङ्गना सतीके श्रीचरणोंमें वार-वार नमस्कार। (२) —सोनपुरी ल॰ गोखामी

कर्तव्य-पालन

वार्षिक परीक्षा चल रही थी, विद्यार्थी प्रश्नोंके उत्तर लिख रहे थे। एक नवीन नियुक्त अध्यापक भी सुपरवाइजर

HE.

और

गोदा

लोभ

वर्षमें

चाहे

वाने

इन्हें

ऐसा

ऐसी

जाती

हजार

और

जब

गोदा

वृत्तिव

नहीं

नीयत

नहीं

किया

पास

वहत

उसरे

बोलत

种

और

एक

उसन

किय

बर्च

उछ

थे। फिरते-फिरते उनकी दृष्टि एक विद्यार्थीपर पड़ी, उसकी खड़ा किया गया और उसकी बेंचसे घरसे लिखकर लाये हुए कागज मिल गये। अध्यापकने तुरंत उसका पेपर ले लिया और उसे निकाल दिया। यह देखकर दूसरे अध्यापक तो भौंचक ही रह गये। वह लड़का इसी स्कूलके प्रिंसपलका पुत्र था। दुपहरकी रिसेसमें दूसरे अध्यापकोंने उस अध्यापकको उलाहना देते हुए यह सलाह दी कि अब भी उस लड़केके कम रहे नम्बरोंको पूरा करके अपना बाजी सुधार लेनी चाहिये। पर अध्यापक आदर्शवादी थे। खयं कुछ बुराई तो की नहीं फिर अब यह बुराई क्यों की जाय ! नौकरीकी अपेक्षा उन्हें आदर्श अधिक प्रिय थे।

परिणामका दिन आ पहुँचा । चोरीके अपराधमें उसे अनुत्तीर्ण कर दिया गया । अध्यापकने अपने आदर्शका त्याग नहीं किया । अध्यापककी नौकरी सभीको जोखिममें दीखने लगी । इतनेमें ही चपरासीने आकर उन अध्यापकसे कहा—'आपको प्रिंसपल साहब बुलाते हैं।' ऐसा प्रसङ्ग पहले कभी नहीं आया था ।

अध्यापक धीरे-धीरे, पर दढ़ पादक्षेप करते प्रिंसपल-की आफिसमें पहुँचे। कुछ इधर-उधरकी बातचीतके बाद प्रिंसपल महोदयने कहा—'मुझे इससे बहुत ही आनन्द हो रहा है कि आप आदर्शको पकड़े रहे और नियमानुसार आपने मेरे लड़केको अनुत्तीर्ण कर दिया। आपने कदाचित् उसे उत्तीर्ण कर दिया होता तो मैं आप-को नौकरीसे अलग ही कर देता, और…।

'और साहेत्र ! इस समय यदि उसको उत्तीर्ण करनेके लिये मुझपर दबाव डाला जाता तो मैं अपनी जेवमें त्यागपत्र रखकर ही आया था ।' अध्यापकने कहा ।

यह सुनकर साहेबका आनन्द दूना बढ़ गया।
(अखंड आनन्द)
—इज्जतकुमार त्रिवेदी
(३)

ईमानदारसे चोर और चोरसे ईमानदार

हरनारायण सफल व्यापारी थे। राजस्थानसे सुदूर आसाममें जाकर उन्होंने पर्याप्त धन कमाया था। बड़े

परिश्रमी और सत्यशील थे। इनके दो संतान गी बड़ी लड़की गोदावरी और छोटा लड़का रामप्रसाद। गोदावरी रामप्रसादसे बारह वर्ष वड़ी थी । हरनाराक का देहान्त हुआ, उस समय रामप्रसाद केवल एक क्षेत्र था। उसके दो ही वर्ष बाद हरनारायणकी स्रीका म देहान्त हो गया । दोनों बच्चे अनाथ रह गये । गोदाकी की सगाई हो चुकी थी, विवाह होनेकी तैयारी थी कि उसकी माँके अकस्मात् मर जानेसे वह रुक गयी। पर काफी था । हिसाब-किताब भी सब साफ था। हरनारायणकी बहिन रामी अपने पुत्र सदासुखको लेव वहाँ आ गयी । सदासुखका हृदय तो तामस था, पा भी वह बड़ा चतुर और व्यवहारकुराल था। उसने दुकाला सारा काम सँभाल लिया और रामी दोनों बचोंकी दे भाल करने लगी। गोदावरीका विवाह भी कर दिया गा। रामप्रसाद पढ़ने लगा । गोदावरी अपने घरपर पुर्वी थी। रामप्रसाद लगभग दस-बारह वर्षका हुआ, तबतक अ की बूआ (सदासुखकी माता) का देहान्त हो गया अव सदासुखकी नीयत बिगड़ी । उसने रामप्रसाव बचपन तथा गोदावरीके विश्वासका अनुचित लाभ उस कर धीरे-धीरे सारी सम्पत्ति हड़प छी और दोती सालमें दूकानमें झ्ठा घाटा दिखलाकर कहने ला है 'अब कैसे काम चलेगा। पूँजी तो सारी घाटेमें लग^{ावी} रामप्रसाद इस समय लगभग १५ वर्षका हो गया ग बेचारा क्या करता—गोदावरीको इस बातका ^ल लगा, तब वह आयी, उसके पति आये—पर सदापुर्व झूठे वही-खाते बना रक्खे थे। दिखा दिये। ^{गोदानी} अपने भाई रामप्रसादको साथ लेकर घर चली गयी औ दुकान उठा दी गयी।

सदासुख भी ऊपरसे दुःख प्रकट करता हुआ हर्षभरे हृदयसे देश चला गया। उसका वह हर्ष ताम था; क्योंकि उसको भय बना था कि मेरा कहीं भंडाओं न हो जाय। हुआ भी यही। पाँच-छः वर्ष बाद निमीचन्द नामक व्यापारीके यहाँ झूठा जमा-खर्च कर्वा था, उसके मनमें राम जागे—छोटे बच्चे रामप्रसार

1

थी_

साद।

रायण.

वर्षका

न भी

दावरी.

यी वि

। पेस

था।

ते लेवा

पर बेंसे

कानका ती देख

गया।

वी थी।

क अ

गया।

प्रसादवे

भ उत

दोतीं

लगा वि

गयी।

या था।

त पत

दासुख

गोदावा

यी औ

EM

ताम

मंडाप्तीर दि जिल

करवा

प्रसार्व

दुर्दशाके समाचार सुनकर नेमीचन्दका हृदय काँप गया दुर्दशाके समाचार सुनकर नेमीचन्दका हृदय काँप गया और उन्होंने गोदाबरीके पित नौरंगरायके पास जाकर भारा गोदाबरी तथा रामप्रसादको अपने पास बैठाकर सारा जमा खर्च दिखा दिया और कहा कि 'तीन हजार रुपयेके लेभसे मैंने अस्सी हजार रुपयेका झूठा जमा-खर्च तीन वर्षमें किया है। मैं कोर्टमें सावित कर दूँगा, मुझे भी चाहे सजा हो जाय, पर मैं सदासुखको तुम्हारे पैसे नहीं खाने दूँगा।'

ये सब लोग इस बातको सुनकर दंग रह गये। इन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि सदासुख भी कहीं ऐसा काम कर सकता है। नेमीचन्दने समझाया कि 'लोभ ऐसी ही बुरी चीज है। पैसेको देखकर नीयत बिगड़ ही जाती है। मेरी भी तो बिगड़ गयी, तभी तो मैंने तीन हजारके लोभसे तुम बच्चोंको इतना नुकसान पहुँचाया और एक विश्वासघाती चोरकी सहायता की।' यों कहकर जब सारे बहीखाते दिखलाये, तब इन्हें विश्वास हुआ। गोदाबरी, उसके पति और रामप्रसाद—तीनों ही सात्तिक हित्ते थे। इन्हें सदासुखकी इस करनीपर क्रोध तो नहीं हुआ, बड़ा दु:ख हुआ—यह सोचकर कि उसकी नीयत क्यों बिगड़ी। उन्होंने मुकदमा चलाना तो स्वीकार नहीं किया पर सदासुखसे मिलकर बात करनेका निश्वय किया। तदनुसार ये तीनों और नेमीचंद उसके पास देश गये।

वह इन सबको देखकर सहम गया। पर बाहरसे वहुत आवभगत की। खा-पी लेनेके बाद सारी बातें उससे कहीं। सब कुछ सप्रमाण था। इससे वह क्या बोलता। अपनी भूल उसने स्वीकार की और कहा कि भेरे हाथमें ही सब रुपये रहते थे। मैं कुसंगमें पड़ गया और एक दिन रातको मेरे मनमें बुरे भाव आये। मैंने एक दोस्तसे सलाह की, वह भी कुसंगी तथा आवारा था। उसने भी सोचा, कुछ मेरे हाथ लगेगा, उसने मेरा समर्थन किया। पाँच हजार उसे मिले। उसने ही नेमीचन्द जीको जमा- खर्चके लिये तैयार किया और यह काण्ड मैंने कर डाला। उसने तो कुसंगतिमें लग गये। फिर मैंने देशमें

हवेळी बना ळी और कुछ रुपये लड़कीके विवाहमें खर्च कर दिये। मेरे पास अब नगद कुछ भी नहीं बचा है। मुझपर केस करोंगे तो मैं बदनाम हो जाऊँगा।' यों कहकर वह रोने लगा। सचमुच ही वह पश्चात्तापकी आगसे इस समय जल रहा था।

गोदावरी तथा रामप्रसादका हृद्य पसीज गया। गोदावरीने कहा-- भाईजी ! आप चिन्ता न करें मुझको तथा भैयाको रामी बुआजीने तथा आपने ही उस समय पाल-पोसकर हमारा जो महान् उपकार किया था, उसका कोई बदला नहीं हो सकता। आप यदि दुकानमें अपना हिस्सा रख लेते या कहकर रुपये ले लेते तो आपका अधिकार ही था । आपसे कुसंगके प्रभावसे यह बुरा कृत्य हो गया । पर अव पश्चात्तापकी आगसे आप-का वह पाप जल गया है । मैं आपके आशीर्वादसे प्रसन्न हूँ । भैया रामप्रसादकी दूकानमें पाँती कर दी थी । यह भी अब बीस-तीस हजारकी पूँजीवाळा हो गया है। आप आशीर्वाद दीजिये और हो सके तो मेरे पिताजीकी पुरानी दूकानको फिरसे चाछ करके इसका काम सँभालिये। रामप्रसादके पास ँजी है ही, यह आपके पास रहेगा। हमलोग भी देख-भाल करते रहेंगे । आप तैयार हो जाइये ।' नौरंगराय और बच्चे रामप्रसादने भी यही करनेको कहा ।

गोदावरी आदिके इस सुन्दर बर्तावको देखकर सदासुख चिकत हो गया। उसके हृदयमें पश्चात्ताप तो था ही, अब तो वह कृतज्ञतासे भर गया। सदासुखने स्वीकार किया। वह उनके साथ आसाम गया। हरनारायणजी-की पुरानी दूकान फिरसे चाळ हो गयी। इसके बाद तो सदासुख इतना बदला कि मानो सत्य, ईमानदारी और सेवा उसके खभाव ही बन गये।

--गिरघारीलाल

(8)

मंद करत सो करत भलाई लगभग दो-तीन वर्ष पूर्वकी यह घटना है। घटना क्या है मानव-मनकी छिपी अन्धकारमयी गुफाओंकी एक

संख्य

किया-

शिका

ओरिजि

मिलग

और हि

अध्यापव

साथ वा

रहेगा ?

मस्तिष्क

पागलों-स

फिरते हैं

प्रधानाध

सारे बाँ

और अध

चिकित्स

महाशय

पूर्वकर्मोप

क्षमा माँ

किसीको

अच्छी-बु

निमित्त इ

उमा संत

अने

विश्व उस

ऑखोंके

औ

13

भयानक झाँकी है। भयानक विस्फोट जिस प्रकार कभी-कभी पृथ्वीके गर्भमें छिपी वस्तुओंको निकालकर वाहर फेंक देता है, उसी प्रकार घटनाएँ भी कभी-कभी मानवके अन्तः प्रदेशको उलीचकर बाहर कर देती हैं और तब हम सोचने लगते हैं कि वैदिक ऋषियों और प्राणाचार्योंने मानव-मनके बारेमें जितने भी सूत्र गढ़े हैं, उनमें कितनी सत्यता है। एक ओर जहाँ इस मनकी विशालताके आगे समुद्रोंकी गहराई और गिरिश्च झोंकी उत्तुझता तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगती है, वहाँ दूसरी ओर यह कितना संकीर्ण, तंग और कृतम्न होता है कि अपने उपकारीका रक्त-पान करनेमें भी यह आगा-पीछा नहीं सोचता है।

बात यों हुई कि एक अध्यापक महोदय मानसिक रुग्णतावश जब-तव 'मेडिकल लीव' पर रहते थे। उस समय भी वे छुट्टीपर थे, किंतु जब उन्हें किन्हीं सूत्रोंसे पता चला कि दफ्तरसे उनका वेतन लगकर आया है तो वे वेतन-वितरणके दिन अपने प्रधानाध्यापक महोदयके पास पहुँचे और वहाँ अपनी विपन्नावस्थाका वर्णन कर उस वेतनको देनेकी प्रार्थना की । सरकारी नियमानुसार मेडिकल लीवपर रहते व्यक्तिको वेतन उसी समय मिलता है, जब वह खस्थ होकर रोग-मुक्त प्रमाणपत्रके साथ कामपर लग जाता है; किंतु कुछ तो उसकी करुण कहानी सुनकर और कुछ आर्थिक संकटाभारसे प्रसित उसकी दीनदशाको निहार कर प्रधानाध्यापकजीने वह वेतन उसे दे दिया; किंतु वेतन प्राप्त करनेकी आफिस-कापीपर उसके हस्ताक्षर लेना भूल गये। बादमें जब उन्हें इस चीजका ज्ञान हुआ तो उन अध्यापकको हुँद्वाया गया किंतु वे तो तबतक जा चुके थे। कागज दफ्तर पहुँचा दिये गये । बात आयी-गयी हो गयी। समय काले-धौले पंखोंपर सवार हो उड़ता रहा ।

और तब एक दिन उन्हीं अध्यापकने उच्चाधिकारियोंके पास प्रार्थनापत्र मेजा कि उन्हें अमुक मासका वेतन दिल्वाया जाय; क्योंकि उस अवधिमें वे मेडिकल लीवपर थे। प्रधानाध्यापकजीने उससे कहा—'भैया, तुम्हें वेतन मैंने दिया है और तुम्हारे हस्ताक्षर भी ओरिजनल कापीमें

मौजूद है। हाँ, दूसरी कापीमें तुम उस समय शीन्नाका हस्ताक्षर न कर सके थे। सो अब कर दो। विश्वासन हो तो दफ्तर जाकर देख आओ।' यों कहकर उन्होंने वह दूसरी कापी उनके सामने हस्ताक्षरके लिये सरका दी।

'मैं दस्तखत-त्रस्तखत कुछ नहीं करूँगा और नमें वेतनके विषयमें ही कुछ जानता हूँ। आपको जो कुछ कहना है अधिकारियोंसे कहिये। मैंने भी तो उन्हीं कहा है, आपसे तो नहीं कहा।' उन अध्यापकने और तरेरते हुए कहा।

ओरिजिनल कापी देखी गयी लेकिन वह तो नदाद। अधिकारियोंने कहा कि 'दूसरी कापीके हस्ताक्षरोंको देखें कर इस बातके सत्यासत्यका निर्णय देंगे।' किंतु दूर्ती कापीपर तो हस्ताक्षर ही नहीं थे। द्वेष रखनेवालेंक दाव लग गया। किसीने मामला 'ऐंटी करपशन्' तक पहुँच दिया। तहकीकातोंका ताँता शुरू हो गया। वायुकी ल्हों पर सवार खबर एक कोनेसे दूसरे कोनेतक फैल गयी।

अधिकारियोंने प्रधानाध्यापकजीसे 'मेडिकल लीव' की अवधिमें वेतन देनेका जवाव तलव किया तो अव्याक महोदयने वेतन देनेका प्रमाण माँगा। पक्षी बाज औ बहेलियेके बीचमें था।

प्रधानाध्यापकजीने उन अध्यापकको नाना प्रकारि समझाया—'सोचो…' मैंने तुम्हारे साथ क्या बुर्गा की। क्या संकटापन्न अवस्थामें तुम्हें वेतन दे के अपकार करना है! मैं वृद्ध हूँ, ब्राह्मण हूँ, मेरे जीवनमं इतिहासमें ऐसा कलङ्कपूर्ण काम नहीं मिलेगा। मैं क मलीभौति जानता हूँ कि यह काम तुम्हारा नहीं है। तुम्हारे तो कंघेपर रखकर बंदूक चलायी गयी है। वि कहते हुए उन्होंने अपने सिरकी टोपी उतारकर असे परोंमें डाल दी और स्वयं भी अचेत हो वहीं हुई पड़े। पर पात्राण भी कहीं पिघलते हैं!

'मैं दूब-पीता बच्चा नहीं, सेर भर आटा रोज उदार करता हूँ। उपदेश अपने पास रिवये और अपनी कर्ती का फल भोगिये।'

प्रधानाध्यापकजीने तब अपने इष्टदेवका कातर-मार्ग

क्या—'प्रमो ! उसे बुद्धि दो, उस बेगुनाहकी ओटमें शिकार खेळा जा रहा है।'

और तब एक दिन न जाने कैसे वह खोयी हुई ओरिजिनल कापी, जिसमें अध्यापकके हस्ताक्षर थे, दफ्तरमें कि गयी । उच्चाधिकारियोंने प्रधानाध्यापकजीसे क्षमा माँगी और हितैषियोंने उन्हें प्रतिष्ठापर आघात करनेके अपराधमें अध्यापकपर कानुनी कार्यवाही करनेकी सळाह दी।

अंधेरी रात तो तारागणको सुन्दर बनाती है। बेटेके माय बाप भी बहक जाय तो गङ्गाका जल मीठा कैसे हिंगा ए वे बोले ।

और एक दिन लोगोंने सना उक्त अध्यापक महोदयका गिलाष्क विकृत हो गया है। सिर मुँडवा लिया है। पार्लेसा प्रलाप करते हैं। घरके सामानको बाँटते मित हैं। बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट भी कर दिया है। प्रथानाध्यापकजीको पता लगा तो तुरंत वहाँ पहुँचे और सारे बाँटे सामानको पुनः एकत्रित कर तालेमें बंद किया और अयापक महोदयको अपने खर्चसे आगराके मानसिक विकित्सालयमें प्रवेश कराया । दो-तीन माहके बाद वे महाराय जब वहाँसे खस्थ होकर घर पधारे तो अपने र्षिकार्गेपर अत्यधिक पश्चात्ताप किया और तत्पश्चात् क्षमा माँगी ।

भीरे ही कर्मोंका प्रतिफल होगा भैया, नहीं तो, कोई किसीको न दुःख देता है न सुख । अपने ही पूर्वकृत कर्म अछी-बुरी सृष्टिका निर्माण करते हैं—दूसरा तो कोई निमत्त वनता है। इलाइल पीकर भी शंकर निरुद्धेग थे। रमा संत की इहइ बड़ाई। मंद करत सो करत भलाई॥

—गोपालकृष्ण जिंदल

भगवत्कथासे प्रेतोद्धार

^{अनेक प्रकारकी} विचित्रताओंसे भरा हुआ यह विशाल विश्व उस लीलामय प्रमुका एक इन्द्रजाल ही है। दिन-रात

हए भी हमारी आँखें नहीं खुळतीं, उस प्रभुकी सत्ता एव उसके सनातन विधानींपर आस्था नहीं होती, विश्वास नहीं होता । फलतः, इम स्वेच्छाचारितावदा नीतिपथसे विमुख हो अपना जीवन जन्म-जन्मान्तरके लिये घोर संकटमें डाल लेते हैं। प्रभुकी विचित्र लीलाओंका प्रत्यक्ष अनुभव कर नीचे कुछ पंक्तियाँ 'कल्याण'के पाठकों, विशेषकर उन महानुभावोंके ध्यानाकर्षित करनेके लिये उपस्थित की जाती हैं जिन्हें प्रभु अथवा उनकी लीलाओंपर कतई विश्वास नहीं होता।

घटना पिछले चैत्रसे श्रावणके अन्तर्गतकी है। मेरे परिवारका नियम है कि प्रतिदिन संध्या समय बच्चे-बूढ़े एक साथ बैठकर प्रार्थना करते हैं। बादमें रामायण, भागवत आदि किसी-न-किसी प्रन्थकी कथा भी प्रायः होती है जिसे मेरे पूज्य वृद्ध पिताजी तथा कुछ अन्य श्रद्धालु नर-नारी भी सुना करते हैं। एक दिन प्रार्थना समाप्त होते ही मेरी ग्यारह सालकी बच्ची जोरोंसे रोने लगी। इमलोगोंके बहुत समझाने-पर भी चुप नहीं होती थी। मैंने रंजमें उसे बहुत डाँटा। फिर तो वह बिल्कुल चुप हो गयी और पूछनेपर कि क्यों रो रही थी ?' उसने कहा-- 'कहाँ रोती थी ?' फिर उसे रामायण पढनेका आदेश देकर (क्योंकि उसे नित्य रामायण ही पढायी जाती थी) मैं कुछ स्वाध्यायमें लग गया । रासायण पढनेके सिलसिलेमें ही, कुछ देर बाद वह आकर मेरे पूज्य पिताजीसे रोती बाहर रास्तेकी ओर इशारा कर कहने लगी-- 'बाबा, देखिये, वह वहाँपर खड़ी औरत मुझे पढनेसे मना करती है, उसे मारिये न !' मैं यह सनकर तरंत वहाँ गया । देखा, रास्तेपर कोई औरत कहीं न थी। आश्चर्य हुआ! फिर उसे साथ ले जाकर कमरेमें बैठाया जहाँ पूज्य पिताजीको रामचरित-मानसकी कथा सना रहा था। यों तो बचीको कथा सुननेका शौक नहीं । अगर कभी जबरन बैठाया भी तो वह सो जाती या वहाँसे भाग जाया करती । परंतु, आज ऐसी बात नहीं थी । आज वह सावधानीसे पालथी लगा कथा सुन रही थी। मैंने सशंक हो बीचमें ही बचीसे (क्योंकि एक बार दो-तीन माह पूर्व रात्रिमें मुप्तावस्थामें ही वह अनायास रोने-चिल्लाने लगी, तो घरवालोंने किसी झाड़-फूँकवालेको बुलाकर दिखाया था) पूछा-'तुम कौन हो ! कहाँ रहती हो ! कहाँसे, किसलिये आयी हो ?' तो उसने उत्तर दिया—'मैं यहीं पासमें ही रहती हूँ, बहुत दूरसे अभी आयी हूँ, एक जगह कथा सुनने गयी बाँबोंके सामने होनेवाली उनकी अद्भुत लीलाओंको देखते आयी।' 'फिर कभी आओगी ?' मेरे प्रश्न करनेपर उसने CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

-

तावश ति म

उन्होंने दी।

न मैं ते बुह

उन्हींसे । ऑंब

दारद।

ते देख

दुर्सा

त्रालेंबा

पहुँचा

लहां)-

यी । वं की

ाध्यापक

ज ओ

प्रकारमे ा बुगई

वनभावे

हीं है।

। वी

र उसके

ल्द

उदास

कार्ती

T-ARM

ह

वष

18

पर

कथ

का

माध

पूछे

आर

मिन

भाषा

वातें

कि इ

था, उ

अद्भुत

अपन

हंग है

व्यवह

पुकार

नवीन

ब्रह्मावे

चरिता

रहनेकी

आचर

कितनी

वादनव

और

तरह है

翻章

उत्तर दिया—'एक दिन और आऊँगी।' मैंने कहा—'जब भागवतकी कथा होगी तब आना।' फिर मैं कथा कहने लगा और समाप्त होनेपर मैंने कहा—'अब कथा समाप्त हो गयी।' तो, 'अब जाऊँगी'—वह बोली। मैंने कहा—'जाओ।' बच्ची फुर्त्तीसे उठकर चल पड़ी। मैंने दो लड़कोंको पीछेसे देखनेको भेजा कि 'वह कहाँ जाती है ?' बच्ची राहपर कुछ दूर जा, फिर लौट आयी। मैंने उसके आते ही पूछा—'बच्ची, कहाँ थी?' 'घरपर सोयी तो थी!'—उसने कहा! अब वह प्रकृतिस्थ थी। धीरे-धीरे ये बातें सबोंको भूल गयी।

× × ×

दो महीने वाद ज्येष्ठका पुरुषोत्तम मास आया । महीने-भरके लिये शामको भागवतकी कथाका आयोजन किया। दो-तीन ही दिन कथारम्भके हुए थे कि प्रार्थनाके बाद बचीको एकाएक मूर्च्छा आगयी। होरा आनेपर पूछनेपर पता चला कि वही 'प्रेतात्मा' वादेके मुताबिक भागवतकी कथा सुनने आयी है। महीनेभर कथा चलेगी, यह जानकर नियमित रूपसे वह बच्चीके माध्यमसे (मूर्न्छी लगकर) आने भी लगी। दो ही दिनों बाद यह आश्चर्यजनक खबर घर-घरमें फैल गयी । प्रार्थना समाप्त हुई कि बच्ची बेहोश ! फिर क्षणभरमें होश दुरुस्त ! और बच्ची शान्त हो कथा सुननेके लिये बैठ जाती । यह तमाशा देखनेके छिये सायंकाल मेरे दरवाजेपर भीड़ लग जाती थी जो मुझे अखरने लगी। कथा-समाप्तिके बाद दिनोंदिन कुछ समयतक मेरी उसके साथ बातें हुआ करतीं जिसमें उसका नाम, पता, उसे किस प्रकार यह योनि मिली, रइन-सइन उसके संगी-साथी, कथा-श्रवणकी लगन आदि वातोंकी जानकारी मिली। मैंने तो तव दाँतों अँगुली काटी, जब उसके द्वारा यह मालूम हुआ कि मेरा सद्यः प्रसूत शिशु और उसकी माँ, जो सात वर्ष पहले ही एक साथ चल बसे थे तथा मेरा ज्येष्ठ पुत्र जो बीस वर्षकी कची उम्रमें ही अपनी नवविवाहिता पत्नीको छोड़ गत वर्ष आश्विनमें अकस्मात् सर्पदंशसे चल बसा था—सब-के-सब साथ-साथ रहते थे। धीरे-धीरे वे सब भी कथामें सम्मिलित होने लगे। विशेषता यह थी कि उन लोगोंकी सम्मतिसे ही कथाके अतिरिक्त समयमें सारणमात्रसे ही उनके आनेपर बचीके माध्यमसे घंटों अलग-अलग सवोंसे वातें हुआ करती थीं। और जीवित लोगोंकी तरह कमशः उनसे मेरी आत्मीयता बढ़ने लगी। लोगोंका इंगामा और बचीके शारीरिक कष्टको

देख मैंने उन (मृतात्माओं) से यह अभिलाषा प्रकट की कथा सुननेका वे कोई दूसरा उपाय सोचें जिससे बकी किसी प्रकारका कष्ट न हो और जन-साधारणकी भी भीड़ हो । इसपर उनके इच्छानुसार, अलग एक आसनका करोज किया जाने लगा, जहाँ वे अब बच्चीको विना मूर्लि कि ही आकर कथा सुनने लगीं । हाँ, बच्ची उन्हें साक्षात् के करती और बातें भी कर लेती थी।

इस प्रकार लगभग डेढ़ माहतक कथा चलती ही क्षे उन प्रेतात्माओंका नियमित रूपसे कथा-अवण भी चल रहा। कभी-कभी बच्चीके माध्यमसे वे बहुत रोने लगतीं के प्रेतयोनिसे अपने उद्धारके लिये प्रार्थना करतीं। मेरे आश्वक देनेपर चुप हो जातीं। इस प्रसङ्गमें काशीके एक हुम्बि महात्मासे पत्रद्वारा इनके उद्धारका उपाय पूछा तो ज्ञ मिला—

'देहि पिण्डं गयां गत्वा विशालामथवा पुनः। तथा—

विन्ध्यक्षेत्रस्य मातृभ्योऽथवा भक्त्या समर्पय। जीवितानां ज्यसूनां वा विश्वनाथः परा गतिः॥

अन्ततोगत्वा मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिए नवरात्रके अवसरपर इन्हें ले जाकर काशी विश्वनायर्ज शरणमें सौंप दूँगा । पूछनेपर उनकी सहर्ष स्वीकृति भी गयी । संयोगवरा मुझे जरूरी कार्यवरा पटनाकी ओर 🛭 पड़ा, वहाँ चार-पाँच दिन ठहरा। गङ्गा-स्नान नित्य करता प मैंने सोचा, शास्त्रोंमें श्राद्ध-तर्पणादिके करनेसे प्रेत-पितर्ण तृप्ति होनेकी बात लिखी है । इन प्रेतात्माओंके क्यानि इन्हें खाने-पीने आदि बातोंमें कष्ट उठाने पड़ते हैं अतः न इनके नामसे दो-चार जलाञ्जलि दे दूँ ? अतः ३४ हैं तक नित्य उनके नामसे मैंने गङ्गामें तर्पण किया। बार्स लौटनेपर उन लोगोंसे अलग-अलग जिज्ञासा कर^{नेपर} चला कि इन चार दिनोंमें उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। किसी अज्ञात शक्तिके द्वारा एक सुवर्णकी थाली नित्य मोर्क लिये मेवे-मिष्टान उन्हें मिलते थे और खा-पी होते थाली जहाँकी तहाँ चली जाती थी। इस तरह प्रेताला प्रत्यक्ष सुन और अनुभव कर पारलौकिक विषयों के सम् शास्त्रीय वचनोंकी सत्यता अक्षरशः प्रमाणित हुई और ^इ प्रति मेरी आस्या और भी अधिकाधिक दृढ़ हो गयी।

एक दिन बातचीतके सिलसिलेमें उन्^{मस} प्रसन्नतापूर्वेक कहा—'भाईजी! आज देवदूतने कहा है | Collection Haridwood

संस्या ५]

भाग ३६

Transie, होगोंकी यहाँ रहनेकी अवधि पूरी हो रही है। अव दो-चार दिन प्रकट की है। और कथा-पुराण सुन लो, फिर यहाँसे चल देना है। कुल ससे वकी एकको तो भादोंके अन्ततक जन्म ले लेना है और कुछ दो भी भीड़ र वर्ष बाद इस योनिसे मुक्त होंगे । किंतु यहाँ किसीको रहना तनका प्रवेत न होगा।' यह सुनकर शीव्र हमने योजना वना उन्हें मूर्छित क्रि (भ्रीमद्भागवत-सप्ताह) सुनाना आरम्भ किया । इस अवसर-साक्षात् देव पर कितनी ही नयी बातें देखनेको मिलीं। जैसे, अब तक क्यामें न सम्मिलित होनेवाले मेरे विंशतिवर्षीय दिवंगत पुत्र-त्ती रही क्षे अना तथा मुझसे एवं पिताजीसे मिलकर बच्चीके भी चल माध्यमसे वार्ते करना, प्राण-त्यागका कारण बताना, जीवन-लगतीं औ बालकी अन्य आवश्यक बातें, अन्य व्यक्तियोंद्वारा जाँचमें रेरे आश्वस कुं गये प्रश्नोंके उत्तर देकर उनके संदेहको दूरकर उन्हें एक सुप्रसिद आरर्च्यमें डाल देना । किसी अन्य प्रेतात्माद्वारा कथा-भूमिको छा तो उस मिनरोंमें लीप-पोत देना एवं अपनी एक खास विचित्र भाषाद्वारा वातें करना तथा विना वुलाये ही घरकी औरतोंसे वतंं करना आदि । सबसे बढ़कर मार्केकी वात यह हुई कि इस बीच मेरा सद्यः प्रसूत मृत शिशु जिसके सातवाँ वर्ष ण अब बचीके माध्यमसे आने लगा और विभिन्न प्रकारकी अद्भुत बाल-लीलाएँ करता हुआ प्रायः सदा ही घरमें रहने कर लिया है बा। प्रायः डेढ़ महीने यह क्रम चला। अव बचीका विश्वनाथजी अपना व्यवहार खाने-पीने, रहने-सोने, नहाने-पहनने आदिका कृति भी वि हंग ही बदल गया । बिल्कुल मासूम बच्चेकी तरह उसका ही ओर 🖥 व्यवहार सर्वोंके साथ होता । मैं भी उसे 'वचा वानू' कहकर व करता ध पुकारता, लाइ-प्यार करता, गोद लेता, जो मेरे लिये एक प्रेत-पितर्ष ^{नवीनता} थी। मुझमें विचित्र समस्व आ गया। भागवती कथा म्हाके मोहमंग-प्रसंगमें कृष्णमय अपने वचोंके प्रति गोप-गोषियांकी उत्तरोत्तर बढ़ती प्रीति एवं गुरु सान्दीपनि तथा मता देवकीकी मृत पुत्रोंको पाकर बढ़ते हुए प्रेमकी कथा चित्तार्थ होनेकी याद हो आयी।

भवा वान्'से बहुत-सी अद्भुत वातें मालूम हुईं। १०। २०वर्ष पूर्व मृत कितने ही लोगोंका प्रेत-योनिमें अवतक रहेनेकी वात एवं उनके जीवन-कालकी रहन-सहन, स्वभाव, भागरणका हूबहू प्रतिरूप बताना । भागवत-महाभारतकी कितनी ही रहस्यमयी कथाएँ सुनाना । श्रीकृष्णके बाँसुरी-भाव-भंगिमा तोतली बोलीमें गाते हुए प्रस्तुत करना। और गाँसरीकी ताल-मात्राके साथ गाना संगीत मास्टरकी तरह होता था, जिससे मेरी बची तो सर्वथा अनिभन्न ही थी। हैंगके अतिरिक्त इस संक्रमण कालमें बचीकी सारी चेष्टाएँ

लड़के-सी होतीं। दौड़ना, खेलना, कूदना, उन्हीं-सा पोशाक पहनना और बाहर दूर-दूर किसीके साथ जाना इत्यादि।

वचा बाबूकी यह करामात तो श्रावण तक चली। किंतु सप्ताह कथा समाप्त होनेपर उन प्रेतात्माओंके आग्रहसे मुझे परिवारके साथ जगजननी जानकीके दर्शनार्थ एक दिन सीतामढ़ी जाना पड़ा । वे भी गर्यी और वहाँ भी क्रमदाः उनका परिचय पाकर तीर्थविधिसे दर्शनादिकर शामको घर वापस आया । आज ही उन आत्माओंको यहाँसे कुछ दिनोंके लिये उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जाना था। रातके नौ बजते ही वे वारी-वारीसे मेरे पास बचीके माध्यमसे आ-आकर पैर छू प्रणामकर चलने लगीं। मैंने पूछा अभी इतना पहले ही क्यों जा रही है ? उन्होंने कहा--'११ वजेतक चला जाना है और देवदूत रथ लेकर खड़े हैं, जल्दी चलनेको कह रहे हैं। फिर वे घरके अन्य व्यक्तियोंसे मिलकर चले गये। 'बचा वावू'से पता चला कि जाते समय वे आत्माएँ हमसे विछुड़ कर बहुत रो रही थीं। इधर मेरा भी हृदय करुणासे भर आया। आँखसे आँसू गिर पड़े। इस अवसरपर भेरा बच्चा वाबू' ख॰ ज्येष्ठपुत्र और उसके साथी अपनी प्रेतयोनिकी पत्नीके साथ नहीं गये। कारणः एक तो ज्येष्ठ पुत्र बीमार था, दूसरे उसकी पत्नीके प्रसव भी हुआ था, जिसमें जन्मो-त्सव मनाने मेरी पत्नी भी आयी थी। 'बचा बाबू'से तो प्रतिदिनकी वातें मालूम होती ही थीं, पत्नीसे भी वस्तु-स्थितिका यथावत् परिचय मिला। अपने स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्रके पत्नी और प्रसवकी बात सुन आक्चर्यान्वित होनेपर अपनी पत्नीसे माळूम हुआ कि दो वर्षोंतक उसे (स्व॰ पुत्रको) अकेले रहनेमें कष्ट होगा, अतः आग्रहपूर्वक मैंने ही विवाह करवा दिया है। फिर प्रेतयोनिमें सद्यः गर्भ रहता है और एक माहके अंदर ही प्रसव भी। प्रेतशरीरकी आकृतिके विषयमें पूछनेपर पता चला कि पृष्ठ भाग खाली और मुँहका छिद्र सूईकी छिद्र-इतना होता है। ईश्वरीय नियमसे बद्ध होनेके कारण चारों ओर अन्न-जलकी प्रचुरता होनेपर भी उन्हें इच्छा-नुसार नहीं मिल पाता । गन्दे स्थानोंका जल तथा मारे-मारे फिरनेपर गन्दे स्थानों या दूकानोंमें फैले अन्नोंका रस मिल जाता है जो पर्याप्त नहीं होता । किंतु जबसे भागवती कथाका इन्हें सुअवसर मिला तबसे सारी असुविधाएँ दूर होती गर्यों। मुझे भी उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रसन्नताका अनुभव होता रहा। उन्हीं लोगोंसे यह भी विदित हुआ कि ठीक इहलोककी तरह गाँवके २०-२५ हाथ ऊपर अन्तरिक्षमें प्रेत-

हैं अतः हैं [: 3-8 F । बादमें

करनेपर हुआ, बी नित्य भोक ो लेनेके प्रेतात्मा

कथनातुः

पुनः।

मर्पय ।

गतिः॥

南柳 ई और ^अ गयी।

लोक भी है। उनके भी गाँव-नगर वसे हैं। उनमें भी नौकर, चाकर, वैद्य-डाक्टर, मूर्ज-पण्डित, साधु-वैरागी आदि सभी हैं। जैसा मनुष्यलोकमें होता है; क्योंकि कारणविशेषसे ही तो प्रेतयोनिमें जाते हैं और यह भी अनुभव किया कि अकाल-मृत्युसे या सर्पदंश, अग्निदाह, वृक्षपातादिसे मरनेपर ही लोग प्रेत होते हैं ऐसी भी बात नहीं ! बल्कि समयपर विना किसी विष्न-बाधाके मरने या विधिवत् अन्त्येष्टि किया करनेपर भी लोग प्रेतयोनिमें निश्चित अवधितक वास करते हैं। अपने-अपने कर्मानुसार वहाँ भी सुख-दुःखसे जीवन जाता है। जीवनकालमें जो धर्मात्मा, आचारनिष्ठ, विद्वान् होते हैं, प्रेतयोनिमें उनकी वैसी ही स्थिति होती है और भगवान्की ओरसे सुख-भोगकी, घर-महल, खान-पान आदि-की सारी स्व्यवस्था यहाँकी अपेक्षा अधिक कर दी जाती है। जो यहाँ कर्महीन, पापात्मा, दुराचारी रहते हैं, वे वहाँ भी भूखे-प्यासे मारे-मारे फिरते हैं। गंदे सूने खंडहरों, पेड़की डालियोंपर निवास करते हैं । पशुयोनिके प्रेतोंकी स्थिति धरतीके नीचे या ऊपर ही हड़ीके रूपमें रहती है, जबतक उन्हें रहना है, क्योंकि उनका तो दाह-संस्कार होता नहीं। प्रेतात्माओंने अपनी-अपनी स्थिति एवं घर-द्वार आदिके विषयमें भी पूरा विवरण दिया जो यहाँ विस्तारभयसे नहीं दिया जा सकता ।

श्रावण (१९६१) में में वीमार पड़ा। महीनों रोग-श्रावण (१९६१) में में वीमार पड़ा। महीनों रोग-श्रावण पड़ा रहा। इस दरिमयान प्रेतात्माएँ वरावर आकर मेरी सेवा अपने निश्चित माध्यमसे कर जाया करतीं। माद्र कृष्ण ८ मीसे ग्रुळ चतुर्थीं के भीतर मेरी दिवंगता पत्नीका मुजफ्करपुरके 'कोरलिहैया' ग्राममें कन्याके रूपमें तथा मेरी एक ग्रामीण बहनका सीतामदीके पास भवदेवपुरमें ब्राह्मण-कुल तथा उसकी माताका ग्रुद्रकुलमें कहीं जन्म हो गया। ऐसी सूचना उन्हीं लोगोंसे मिली। जाँच करनेपर कोरलिहया-की वात सत्य निकली। भवदेवपुरकी जाँच न कर सका।

श्रीमद्भागवतकथाकी महिमा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। इसीके कारण प्रेतात्माओंसे परिचय मिला, उनका उद्धार हुआ तथा कितनी ही अद्भुत बातोंकी जानकारी हुई। मुझे तो उस अवसरपर बराबर गोकर्णऔर धुन्धुकारीकी स्मृति आसी रहती थी। आश्चर्य यह होता है कि वायवीय शरीर

होनेके नाते धुन्धुकारी बाहर न बैठ सकनेके कारण केंद्रें छिद्रमें बैठता था पर यहाँ ये लोग वाहर ही बैठा करते वे इतना जरूर था कि देवयोनि होनेके कारण जमीनसे हैं स्पर्श न होता था।

नियमितरूपसे कथा सुननेवाले प्रेतात्माओंके नामवेदें मेरी पत्नी (रामकुमारी), मेरे पुत्रद्वय (विनयकुमार विजयकुमार), रामइकवाल (विनयका साथी जिन देनिक एक-डेढ़ माहके अंदरसे अभिचार-प्रयोगात्मक सर्वकों मृत्यु हुई), सिकली (रामइकवालकी बहन) के सिकलीकी माँ।

इन लोगोंके द्वारा जिन प्रेतात्माओंके परिचय मिले उन्ने दर्शन-नाम ये हैं—मेरी माताजी (श्रीराजेश्वरी देवी मृलु १९४४) ई०), पूज्य चाचाजी पं० श्रीसरयूप० द्यामां (मृ० १९४४) वा० जोधीसिंह (मृ० १९५२), जय झा (मृ० १९४४) सपुरा जयमन्त्र झा 'घुक्कू (मृ० १९४२), कैलाशनाथ ग्रक्त च्योत (रायबरेली) निवासी (मृ० १९४५), मोहनदादा केल निवासी, सुभद्रा (विनयकी सहचरी), जानकी (रामइक्जल ७ १० सहचरी)।

पूर्वोक्त प्रेतात्माओंके साथ ही इन लोगोंकी भी के गाणिये योनिकी अविधि पूरी हो गयी, सब-के-सब यहाँसे चले में पम ह उिल्लिखित बातोंके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें ऐसी हैं कि मानव यहाँ समावेश ठीक नहीं जँचता। वैज्ञानिक इसका शोध हिं लिये पुझसे बातें कर सकते हैं। लेथे उता सबका सार इतना ही प्रतीत होता है कि शास्त्रीय की मायान कितने अटल सत्य हैं, भगवत्कथा कितनी महिमार शोंमें शांकिशालिनी है, जिसके पानेको देवयोनि भी लालिया है। अतः हम मानव-देहधारियोंको कल्याणार्थ अप्रमार्थ हो। स्वाक्त पानेकर लेखिन स्वाक्त पानेकर लेखिन स्वाक्त पानेकर लेखिन स्वाक्त पानेकर स्वाक्त स्वाक्त स्वाक्त पानेकर स्वाक्त स्व

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूड्स्। अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri कल्याणक प्राप्य विशेषाङ्क

कल्याणके पिछले पैंतीस वर्षोंके प्रायः सभी विशेषाङ्क इतने अधिक जनप्रिय और आकर्षक हुए कि कत्याणक विशेषाङ्क इस समय अप्राप्य हैं। ग्राहक-गण उन्हें पानेके लिये वार-वार आग्रह करते रहते हैं; उनमें हे इकताल प्राप्त अग्रह करते रहते हैं; वर्षेत्र वेसमें कामकी अधिकताके कारण उनका पुनर्मुद्रण नहीं हो पाता। अब केवल चार विशेषाङ्कोंकी थोड़ी-थोड़ी प्रतियाँ दोप हैं।

माग ३।

-

कारण बाँचे

ठा करते थे। मीनसे इना

नामयेहैं_

विनयकुमार

जिन दोनेत्र क सर्पदंशने

हन) क्षे

0 89881

शुक्र चहोत

नदादा वैगत

र्थ अप्रमत

मे॥

वारोंके अलग-अलग लेनेपर सूल्य २०२९.०० है। एक साथ लेनेपर केवल २०२५.००। डाकलर्च हमारा। १--हिंदू-संस्कृति-अङ्क

पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, डाकल्ययसहित मृत्य ६ रु ५० नये वैसे । साथ ही इसी वर्षका अङ्क दूसरा तथा तीसरा विना मूल्य ।

इस अङ्कमें महान् हिंदू-संस्कृतिके प्रायः सभी विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें वेद, उपनिषद्, महामारत, रामायण तथा श्रीमद्भागवतकी सानुवाद सूक्तियाँ, हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप तथा महत्त्व, हिंदूधर्म, वर्णाश्रम, य मिले को स्रीनगरिचय, हिंदू-संस्कृतिकी व्यापकता, हिंदू-संस्कृतिमें त्याग और भोगका समन्वय, रामराज्यका खरूप, शिष्टाचार और मृत्यु ११५ साचार, आहार-विवेक, गोरक्षा, जीवरक्षा आदि विविध विषयोंपर वड़े-बड़े विद्वानों तथा अनुभवी पुरुषोंके लेख हैं। इसके अतिरिक्त भगवान्के अवतारोंके, देवताओंके, आदर्श ऋषि-महर्षियोंके, परोपकारी भक्त, राजा तथा ॰ १९४८) सपुरुषोंके, आचार्य, महात्मा और भक्तोंके एवं आदर्श हिंदू-नारियोंके वहुत-से पवित्र चरित्र हैं।

२—संतवाणी-अङ्क

पृष्ठ-सं० ८००, तिरंगे चित्र २२, इकरंगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, मूल्य डाकव्ययसहित रामइकगर्ल ७ ह० ५० नये पैसे, सजिल्दका ८ रु० ७५ नये पैसे।

इस अङ्कमें संतोंकी पत्रित्र, जीवन-निर्माणमें सहायक, जीवनको उचस्तरपर पहुँचा देनेवाटी निर्मछ ांकी भी के बाणियोंका अभूतपूर्व संकलन है, जो कुमार्गपर जाते हुए जीवनको वहाँसे हटाकर सन्चे सन्मार्गपर लानेके लिये से चले में पम सहद् वन्धु है। प्रवल मोह-सरिताके प्रवाहमें वहते हुए जीवोंके उद्घारके लिये सुखमय सुदृढ़ जहाज है। सी हैं जिल्लामा आयी हुई दानवताका दलन करके मानवको मानव ही नहीं, महामानव बना देनेके लिये दैवी शक्तिसम्पन तका शोव मिल्य और आचार्य है । जन्म-जन्मान्तरों के संचित भीषण पाप-पादपों से पूर्ण महारण्यको तुरंत भस्म कर देनेके. कते हैं। हिंदे उत्तरोत्तर बढ़नेवाला भीषण दावानल है। भगवान्की मधुरतम मुख्छविका दर्शन करानेके लिये संत-वचन शास्त्रीय क्षानात्र नित्य सङ्गी प्रेमी पार्षद हैं। इस प्रकारकी इस अङ्कमें ५८५ संतोंकी वाणियोंको अनेक गद्यों एकं जालायित है वियों में संग्रह किया गया है।

३--मानवता-अङ्क

पृष्ठ-सं० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर ३९ वहुरंगे, एक दुरंगा, १०१ एकरंगे और ३९ र भगवला खिचित्र । डाकन्ययसहित मूल्य ७ रु० ५० नये पैसे, सिजल्द ८ रु० ७५ नये पैसे । देशभरके चुने हुए महात्माओं और विद्वानों तथा विदेशी महानुभावोंके मानवतासम्बन्धी सद्विचारोंके संप्रहसे सम्पन्न और सन्नके द्वारा प्रशंसित ।

४—संक्षिप्त देवीभागवताङ्क जनवरी १९६० का विशेषाङ्क, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द ८.७५। डाकखर्च हमारा। इस विशेषाङ्ककी माँग इतनी अच्छी रही कि एक लाख पंद्रह हजार प्रतियोंका प्रथम संस्करण बहुत ही शीष्र मात हो गया और चाल वर्षके प्राहकोंके छिये ही दस हजार प्रतियोंका दूसरा संस्करण तत्काल छापना पड़ा। भोड़ी प्रतियाँ रोष हैं, जिन्हें लेना हो शीघ्रता करनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक - कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

जनवरी सन् १९६२ के विशेषाङ्क

'संक्षिप्त। शवपुराणाङ्क'का दूसरा संस्करण

प्रथम संस्करणकी १,३१,००० प्रतियाँ अत्यन्त शीव्रतापूर्वक विक गर्यों और सव पुराने प्रक्षिं -बी० पी०याँ तक न भेजी जा सकीं। इसिलिये कामकी भारी भीड़ होते हुए भी २०,००० प्रतियोंका हुए संस्करण छापा गया है। नित्य आनेवाली माँगको देखते हुए इसके भी वहुत शीव्र विक जानेकी का की जाती है। अतः जिन्हें लेना हो, वे कृपया शीव्र ७.५० मनीआईरहारा भेज दें अथवा बी० पी० का भेजनेकी आज्ञा प्रदान करें।

'कल्याण'का यह 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' प्रसिद्ध 'शिवपुराण'का संक्षिप्त सार-रूप है। 'शिवपुण शैव महानुभावोंकी तो परम प्रिय एवं परम आदरणीय वस्तु है ही, यह सभीके लिये उपादेय है। कि भगवान के शिवस्क्र परात्पर परब्रह्म परतम प्रभुके तत्त्वका वड़ा ही महत्त्वपूर्ण वर्णन है। भगवान कि बड़ी ही विचित्र मधुर लीलाओंका, भक्तवत्सलताका, उनके अवतारोंका, समस्त जगत्की एकात्मताका, कि विद्यु-महेशकी नित्य अभिन्नताका, साधनोंका, योग-भक्तिके तत्त्वोंका वड़ा ही विश्वाद तथा सर्वोपयोगीक है। इसकी सभी कथाएँ वड़ी ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक हैं। इसके पुराने 'शिवाङ्क'में प्रकाशित इसहत्वपूर्ण लेख तथा कुछ गम्भीर एवं सुन्दर सरल नये लेख भी प्रकाशित हुए हैं।

इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस पाठ्य-सामग्री है। वहुरंगे १७, दोरंगा-रेखाचित्र १, सादे १२ और। रेखाचित्र हैं। वार्षिक मृत्य केवल ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) डाकलर्च समेत है। हैं द्वावपुराणका सारहत्प इतना सस्ता केवल यही ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। अतः इसका अपने लिये तो हैं करना ही चाहिये, अपने इष्ट-मित्रों और बन्धु-वान्धवोंको भी ग्राहक बनानेका प्रयास करना चाहिये।

एक नयी योजना !

एक नयी पुस्तक

आदर्श चरितावली भाग ४

[संस्कारक महानुभावोंकी सत्-शिक्षा]

(चुने हुए पैगम्बर, संस्कारक, सुधारक संतोंके सोल्ड चिरत्र शिक्षासिहत) पृष्ठ-संख्या ६०, आर्टपेपरपर छपा सुन्दर दोरंगा टाइटल, मृ० २५ नये पैसे। डाकर्खर्च रिंह -हाकसे ६५, कुल २०।

आदर्श चरितावळीके तीन भागोंके प्रकाशित हो जानेकी सूचना गत अङ्कर्में दी जा चुकी है। -चौथा भाग है। इसमें निम्निळिखित सोळह सज्जनोंके चरित्र उनकी शिक्षाओंसहित दिये गये हैं

(१) महात्मा जरथुस्त्र, (२) हजरत मूसा, (३) महात्मा सोलन, (४) महात्मा सुकर्ति। दार्शनिक प्लेटो, (६) महात्मा अरस्तू, (७) संत कन्फ्यूशियस, (८) संत फ्रांसिस, (९) संत टालस्टॉय, (१०) राजा राममोहन राय, (११) महर्षि देवेन्द्रनाथ टाकुर, (१२) ईश्वरचन्द्र विश्व (१३) केशवचन्द्र सेन, (१४) स्वामी द्यानन्द सरस्वती, (१५) जस्टिस महादेव गोविन्द राति (१६) स्वामी श्रद्धानन्द ।

सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये ।

प है। हा वान् शिव ताका, हा रयोगी व गशित ह

804

त्राहकां

नेकी आ

० पी० हा

शिवपुता

२ और । है। हिं ज्ये तो सं ये।

ी पुस्तक

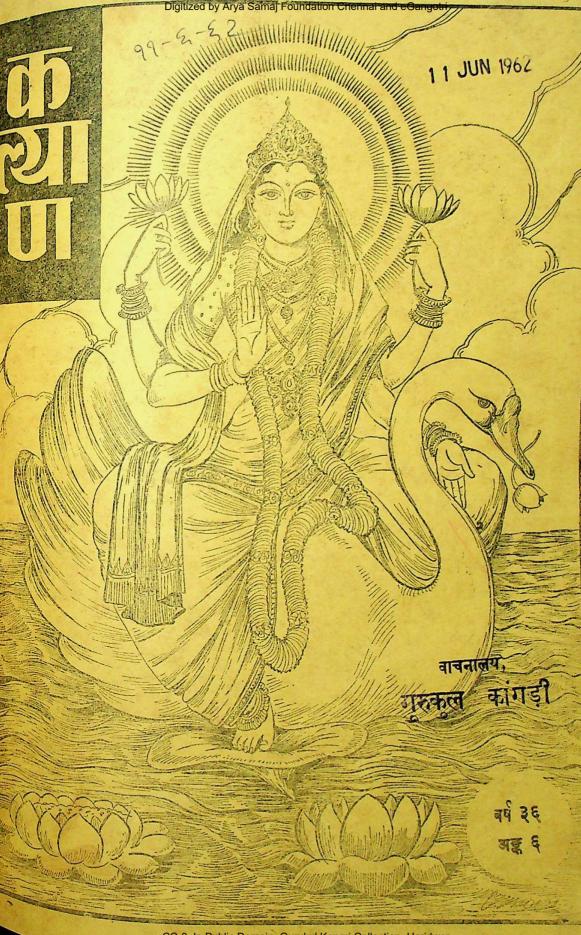
र्च कि

नुकी है।।

करातः। e) # विद्यास

रानाडे

गोरब



Digitized by Arya Samaj Foundat

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कुष्णा हरे कुष्णा कुष्णा कुष्णा हरे ही संस्करण—१,४८,००० (एक लाख अइतालीस हजार)

विषय-सूची कत्याण, सौर आपाढ़ २०१९, जून १९६२	
विषय पृष्ठ-संख्या	Tarre
१—बालकरूप राम गुरुकी गोदसे उतर भागे [किवता] (गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी) ९६१ २—कल्याण ('शिव') ३—परमात्मा, जीवात्मा और विश्व (ब्र० जगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्यजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी; अनु०—पं० श्रीश्रुतिशीलजी तर्कशिरोमणि) ४—तुम तो केवल निमित्त बनो [किवता] ९६८ ५—वर्तमान दोषोंके निवारणकी आवश्यकता (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ९६९ ६—श्रीरामनाम-निष्ठाके आदर्श श्रीप्रह्लादजी (पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज) १७३ ७—दूसरोंके दुःखोंमें अपना हिस्सा वँटवाओ [किवता] १९८ ९—वार-बार निश्चय करो १७८ ९—गोस्वामी तुलसीदासजी प्रतिदिन किस प्रन्थका पाठ करते थे १(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) १८२ ११—तुम और मैं [किवता] १८४ १२—'दूसरोन कोई' [कहानी] (श्रीरचक्र') १८५	१५—अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति (हनुमानप्रसाद पोद्दारके एक भाषणसे) १९४ १६—उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्द-प्रसाद श्रीवास्तव)
१३-संकल्प-शक्तिके चमत्कार (श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम्० ए०, बार-एट्-ला०) · · · ९८८	२२-पढ़ो, समझो और करो
१४-पर्यटन (श्रीरोषनारायणजी चंदेळे) ९८८	२३-फाग [कविता] (श्रीरामचरणजी
चित्र-सूची	
१-इंसवाहिनी सरस्वती ••	· '' (रैखाचित्र) ''' मुबग्र
२-बालकरूप राम गुरुकी गोदसे उत्तर भागे	· · · · · (तिरंगा) · · · ९६१
Tes	

वाधिक मूल्य आरतमें ६० ७.५० विदेशमें ६० १०.०० (१५ शिक्तिग) जय पावक रिव चन्द्र जयित जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥ जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ साधारण भारतमें विदेशमें (१०

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी एम्॰ ए॰, शास्त्री सुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar हरे हो

998

999

8003

8008

8004

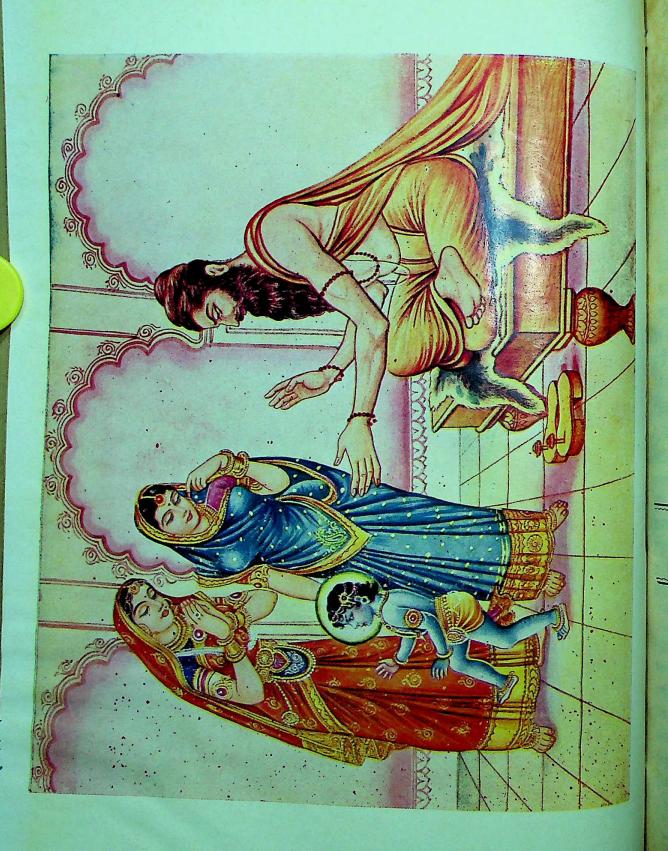
8008

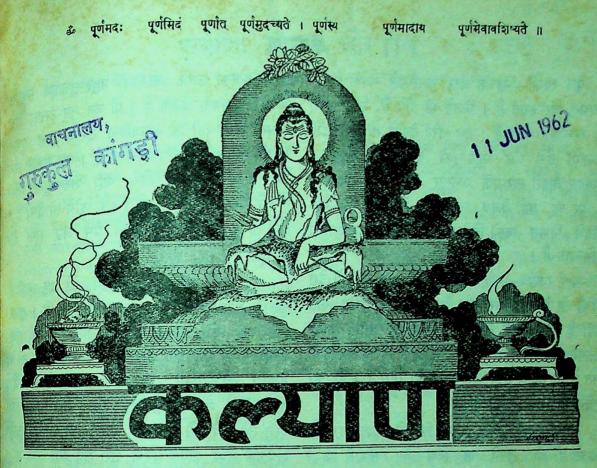
१०१५ १०१९

१०२४

मुखपृष्ठ ९६१

धारण रतमें देशमें १० 11 JUN POE





उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भृतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर आषाढ़ २०१९, जून १९६२

संख्या ६ पूर्ण संख्या ४२७

业在还还还还还还还

बालकरूप राम गुरुकी गोदसे उतर भागे

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे। महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु सजल नयन,

तनु पुलक, रोम-रोम जागे॥

लिये गोद, धाये गोद तें मोद मुनि मन अनुरागे। निरुखि मातु हरषी हिये आली ओट कहति

मृदु बचन प्रेमके-से पागे ॥

तुम्ह सुरतरु रघुबंसके, देत अभिमत माँगे। मेरे बिसेषि गति रावरी, तुलसी प्रसाद, जाके सकल अमंगल भागे॥

—गोखामी तुलसीदासजी

कल्याण

याद रक्खो—सबके अंदर समरूपसे सर्वथा निर्दोष भगवान् विराजमान हैं। जितने भी दोष हैं, सब बाहरी हैं; खरूपगत नहीं हैं। तुम दोष देखोगे तो तुम्हें दोष दिखायी देंगे और भगवान्को देखोगे तो भगवान्! व्यवहार बाहरी खरूपके अनुसार करनेमें आपत्ति नहीं है, पर वह करो केवल व्यवहारके लिये ही, और मन-बुद्धिमें निश्चय रक्खों कि इस रूपमें खयं भगवान् ही अभिव्यक्त हैं।

याद रक्खो—यदि किसीमें कोई दोष दिखायी देते भी हैं तो वे दोष वस्तुत: हैं ही, ऐसी निश्चित बात नहीं है । सम्भव है तुम्हारी द्वेषदिष्ट ही उसमें दोषकी कल्पना करती हो । और यदि दोष हैं भी तो यह कभी मत मानो कि वे दोष सदा बने ही रहेंगे । आयी हुई चीज चली भी जायगी ही ।

याद रक्खो—यदि तुम किसीमें केवल दोष ही देखते हो और तुमने यह निश्चय कर रक्खा है कि ये दोष तो इनमें सदा रहेंगे ही, तो तुम अपना और उसका दोनोंका अहित कर रहे हो; उसमें दोषका आरोप करके तुम अपनी दृढ़ भावनासे उन्हें यथार्थ दोष बनानेमें सहायता करते हो, अपने दृढ़ निश्चयसे उसमें दोषोंके सदा बने रहनेमें सहायता करते हो और दोष दीखनेके कारण सदा उसके प्रति द्वेषयुद्धि रखकर खयं जलते और उसे जलाते रहते हो । तुम्हारी द्वेषयुद्धि उसके मनमें भी तुम्हारे प्रति द्वेष पैदा कर देती है । इस प्रकार तुम द्वेषका एक बड़ा दुरूह जाल बना लेते हो और उसमें फँसकर सदा दुखी रहते हो । या एक विशाल विषवृक्ष लगाकर उससे जर्जरित होते रहते हो ।

याद रक्खो—यदि तुम किसीमें दोष न देखकर या गुण देखकर उससे प्रेम करते हो, सदा अपनी मधुर सुधामयी सद्भावना देते हो तो अपना और उसका दोनोंका सहज ही हित करते हो। तुम्हारी प्रेमभरी गुणदृष्टि उसमें गुणोंका निर्माण करती है, उन्हें बढ़ाती है और स्थायी बनाकर उसके जीवनको मधुर सुवार्ण हरे बनानेमें सहायता करती है । यों जब तुम उसके साधन करते हो तो स्वाभाविक उसके द्वार हो हितचिन्तन और हितसाधन होता है । यह निश्चर कि तुम दूसरेको जो दोगे, वही अनन्तगुन हे तुम्हारे पास छौट आयेगा । द्वेष दोगे तो द्वेष, द्वे दोगे तो दु:ख, प्रेम दोगे तो प्रेम और सुख तो सुख!

TI

TI

सिर

कि

1=

पर

(3:

याद रक्खो---तुम्हारा वास्तवमें कोई शत्रु 👬 तुम्हारे मनमें रहनेवाला शत्रुभाव ही शत्रु है। 🕫 प्रति यदि कोई सचमुच ही शत्रुता करता हो, ह बहुत बार तो यदि कोई शत्रुता करता दीखता है,ते तुम्हारी अपने मनमें रही रात्रुभावनासे ही दीखा यह निश्चित नहीं है कि वह शत्रुता करता ही है परंतु तुम खयं उसे अपनी ही भूलसे शत्रु मानका स रात्रताके अंकुर उत्पन्न करके उसे रात्र बना लेते और ठीक इसके विपरीत सचमुच शत्रुता करनेवाले ह भी तुम अपनी प्रेमभरी मैत्रीभावनासे प्रेम-दान कार्वे-सहज ही उसको सुख प्रदान तथा उसका निरहंका हित-साधन करके मित्र बना सकते हो। तुम 🔻 हित चाहते हो, सुख चाहते हो, अपने लिये वी चाहते हो तो बस, सभीका सदा प्रेमपूर्वक हित^ई रहो, सभीको सदा प्रेमपूर्वक सुख देते रहो और ह सदा अमृत वितरण करते रही ।

याद रक्खो—तुम्हारा किसीके सम्बन्धमें भी की निश्चय—अशुभके निर्माणके हेतु तथा सहायक की तुम्हारा और उसका दोनोंका निश्चय ही अहित की और शुभ निश्चय दोनोंका हित करेगा। अतर्व की परम मङ्गलमय, परम शुभ-खरूप भगवानको देखी, की अंदर सदा विराजित भगवानको जगाओ, उन्हें की उनका प्रकाश-विकास करके उसको तथा अवि धन्य कर दो। तथा ऐसा करके खयं भी परम धन्य हो की

वाचनालय,

परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

गूहकुल कांगड़ी

(मूल अंग्रेजी लेखक--- व जगदुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गाँवर्धनमठ, पुरी) [अनुवादक--पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि]

[गताङ्क पृष्ठ ९०२ से आगे]

सृष्टि-रचनाकी कथा और उपनिषद् और बाइबिलके कथनीपर आधारित अपने अनुमानोंके अलावा भी ईश्वरकी सर्वव्यापकता भी, जिसे सभी आस्तिक और आर्यसमाजी भी, मानते हैं, अद्वैतवादकी निर्दोषताको सिद्ध करनेमें पर्याप्त है। हमने जान-बूझकर इस वादको एक भनिश्चित सिद्धान्त' (Theorem) के नामसे पुकारा है; क्योंकि यह वाद भी गणितशास्त्रके 'लोगारिथमिक थ्योरम' (Logarithmic Theorem) भएक्सपोनेन्शियल थ्योरम' (Exponential Theorem) और 'डेमॉयर्स थ्योरम' (Demoivre's Theorem) अथवा २+२=४ के समान ही एक निश्चित सिद्धान्त है।

जब हम ईश्वरको सर्वव्यापी अथवा सवमें ओतप्रोत कहते हैं, तब हमारा तात्पर्य क्या होता है ? यदि हम प्रतिक्षण और प्रतिदिन अपने मुँहसे बोलनेवाले शब्दोंके ठीक-ठीक अर्थोंका सरण करें तो यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारे साधारण खदोंमें भी अद्देतवादका दर्शन भरा होता है। अब हम वर्तन, क्यड़ा और सोनेके आभूषणोंका उदाहरण लेकर यह देखेंगे कि उनमें कौन-कौन-सी चीज़ ओतप्रोत है। निस्संदेह उनमें कुम्हार, जुलाहा और सुनार ओतप्रोत नहीं हैं; अपितु मिट्टी, धागा और सोना ही इन पदार्थोंकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, कुंचाई संक्षेपतः सभी आकारोंमें ओतप्रोत है। दूसरे शब्दोंमें निर्माता नहीं, अपितु उपादान ही, जिससे उस पदार्थकी रचना होती है, उस पदार्थमें व्यापक होता है। अतः परमात्माकी सर्वव्यापकता भी इस बातको निर्विवादरूपसे सिद्ध करती है कि सृष्टिकी रचनामें उपादान परमात्मा है।

यह भी निस्संदेह सत्य है कि सृष्टिके पूर्व ब्रह्मको छोड़कर और कोई नहीं था, अत: वही इस जगत्का निर्माता
भी हुआ । इसी कारण वेदान्तशास्त्रमें उसे इस विश्वका
अभिन्ननिमित्तोपादान कारण' बताया है अर्थात् वही इस
अपनी निर्माणशक्तिके कारण व्यापक नहीं है अपितु उपादान-

यहाँ हम। रा दूसरा प्रश्न यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक कैसे सकता है ! गीतामें कहा है—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत॥ 'में प्रत्येक शरीरमें जीवात्माके रूपमें रहता हूँ।' और सभी आस्तिक इस वातपर एकमत हैं कि वह सर्वव्यापक है। पर क्या सर्वथा भिन्न गुण-धर्मवाले दो तत्त्व एक स्थानपर रह सकते हैं ? उन दोनोंका एक स्थानपर रहना क्या कभी सम्भव है ? क्योंकि भौतिकशास्त्रके 'विस्तारका सिद्धान्त' (Principles of Extension) आदि सिद्धान्तोंके अनुसार सर्वथा भिन्न गुण-धर्मवाले पदार्थ एक ही कमरेमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर तो रह सकते हैं, पर एक ही स्थानपर कभी भी नहीं रह सकते । उदाहरणके लिये एक कमरेके आधे स्थानपर अँधेरा हो और आधेमें उजाला हो, यह तो हो सकता है। पर जिस जगह अँधेरा हो, उसी स्थानपर उजाला अथवा जहाँपर उजाला हो वहींपर अँधेरा भी हो, यह बात विल्कुल असम्भव है। यदि तुमसे यह कहा जाय कि दो व्यक्ति एक ही स्थानपर हैं तो तुम झट यह अनुमान कर लोगे कि वे दो व्यक्ति न होकर दो नामधारी एक ही व्यक्ति होगा। यदि रामायणका एक श्लोक यह वतलाता है कि रामने रावण-को मारा और दूसरा श्लोक बताता है कि सीतापतिने रावणको मारा, तो चाहे तुम रामके नामसे अनिभन्न ही क्यों न होओ, इस वातको तत्क्षण समझ जाओगे कि राम और सीतापति एक ही व्यक्तिके नाम हैं। इसी प्रकार जब हम यह पढ़ते हैं कि इस शरीरमें परमात्मा भी है और आत्मा भी, तो हम उन दोनोंकी एकताका अनुमान कर लेते हैं, इसी प्रकार विश्वमें भी।

माया

यही मायावादका स्रोत है। जय हम कहते हैं 'ब्रह्म सत्यं जगिनमध्या' (केवलं ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है) तो इसका तात्पर्य क्या है श्रे क्या हमारा यहाँ मतलव यह है कि हमारे चारों ओरका संसार मिथ्या है, झूठ है श्रे 'वास्तविक, अवास्तविक और मिथ्या' ये तीन विकल्प होते हैं, जिन्हें हम अपनी नासमझीके कारण इन्हें (अवास्तविकता और मिथ्याको) एक कर देते हैं। इसी अपने सदोष ज्ञानके कारण जॉन्सनके समान विश्वास्तित्ववादी दार्शनिक (Idealism) अद्देतवादको दोषपूर्ण बताकर हमें यह समझानेकी कोशिश करते हैं कि अद्देतवादमें सृष्टि-

वापूर्ण हरू व उसका है द्वारा तर

ह निश्चय म्त्रगुना है तो देप, हुं गैर सुख

शत्रु नहीं गत्रु है। तुड़ रता हो, ब खता है, तो ही दीखता है करता ही है

मानकर हैं ना लेते हैं उरनेवाले हह रान करके

निरहंकार । तुम अ लिये क

क हित^{्र} और सर्

इमें भी ^{अंत} हायक क्रि

अहित की अतिएवं में

देखों, हैं।

तथा अपन

न्य हो जी

H

नह

4

प्रव

विषयक साधारण ज्ञानका भी अभाव है। पर संस्कृतका 'मिथ्या' राब्द 'झुठ' का वाचक नहीं है । झुठका अर्थ है कि किसी कामको न करते हुए भी उसको करनेका बहाना-सा करना । पर मिथ्यासे इस वातका द्योतन नहीं होता । कोई भी इस बातसे इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे चारों ओरके संसारका कोई अस्तित्व नहीं है। पर ये पदार्थ वास्तवमें हैं क्या, यह कोई नहीं जान सकता। उदाहरणके लिये, हम किसी चीजको परीक्षण करते हैं और देखते हैं कि किन क्रियाओंद्वारा हम उसका परीक्षण कर सकते हैं। हम देख, सुन, सूँघ, छू और चख सकते हैं और इन बाह्य इन्द्रियोंकी सहायताके बिना भी हम उसका विचार कर सकते हैं। इस प्रकार छः क्रियाएँ सम्भव हैं, पर ये सब कर्तृनिहित (Subjective) हैं, अर्थात् व्यक्तिके अंदरसे उत्पन्न होती हैं। कोई भी वाह्य ज्ञान विना हमारे मस्तिष्कमें गये हमारे लिये सहायक नहीं हो सकता । दूसरे शब्दों में, जो कुछ भी हम देखते और अनुभव करते हैं सब प्रपञ्च (Noumenon) है और जो इसके पीछे है, जिसे अप्रपञ्च (Phenomenon) कहते हैं, उसका कोई एक निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसी कारण सब ज्ञान कर्तामें हैं अर्थात् 'सब्जेक्टिव' है। प्रकाण्ड आचार्य श्री-स्वामी मधुसूद्रन सरस्वती अपने ग्रन्थ 'अद्वैतसिद्धि'में लिखते हैं---

मिथ्यात्वं सत्यत्वासत्यत्वाभ्यामनिर्वचनीयत्वम्। (जो न सत्य हो, न असत्य हो अतः अनिर्वचनीय अर्थात् जिसका वर्णन न किया जा सके, उसे मिथ्या

बिम्ब-प्रतिबिम्ब-वाद

कहते हैं।)

इस वादको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ हम एक पदार्थ और उसके प्रतिविम्यका उदाहरण देते हैं। जब एक लड़का अपने जीवनमें प्रथम बार दर्पण देखता है और उसमें अपना प्रतिविम्य देखता है तो वह यह कल्पना करता है कि उसीकी तरहका एक दूसरा लड़का दर्पणके दूसरी ओर ठीक उतनी ही दूरीपर खड़ा हुआ है। तब वह लड़का दर्पणके चारों ओर यह देखनेके लिये कि वह दूसरा लड़का कौन है, घूमता है, पर उसे कोई दूसरा लड़का नहीं मिलता। यह अनुभव उसे यह निश्चय करा देता है कि दर्पणका प्रतिविम्ब अवास्तविक है। पर इसे नितान्त असत्य भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि

उसने इस अपने प्रतिविभ्वके कारण ही विचार किंग के दूसरे लड़केकी खोज की, पर उसे अवास्तविक पाया। पर स्थितिको बिल्कुल अवास्तविक या असल्य भी नहीं कार सकताः क्योंकि जव वह दुवारा द्र्पणके सामने जाकत क होता है तो देखता है कि फिर वहीं दूसरा लड़का उसकी के टकटकी वाँचे देख रहा है । तब सत्य और वालाक वस्तुस्थिति क्या है ? यह प्रतिविम्य इस अर्थमें सत्य है हिं एक वास्तविक अनुभवका कारण होता है और इस 🗯 असत्य भी है कि इस प्रतिविम्बका पदार्थसे पृथक् है अस्तित्व नहीं है । जबतक पदार्थ दर्पणके सामते तभीतक प्रतिविम्बका भी अस्तित्व है और पदार्थके ह्या 🖁 जानेपर प्रतिविम्यका भी नाश हो जाता हैं। इसी सिंहिं वेदान्तके पारिभाषिक शब्दोंमें 'मिथ्या या अवास्तविक' क्व गया है। दूसरे शब्दों में, यदि दो पदार्थींका परस्पर सक्त इतना घनिष्ठ है कि एकके अस्तित्वपर दूसरेका अस्तित्व निर्भर हो, (पर यह आवश्यक नहीं कि दूसी अस्तित्वपर पहलेका भी अस्तित्व निर्भर हो। उदाहर्ण लिये, दर्पणमें पड़नेवाले प्रतिविम्बका अस्तिल पार्क अवलिम्बत है। यदि दर्पणके सामने पदार्थ हैं। तभी उसका प्रतिविम्ब होगा । पर यह आवश्यक वं कि प्रतिबिम्बकी सत्तापर पदार्थकी भी सत्ता अवलिम्ति। प्रतिविम्य न हो। पदार्थ तो रहेगा ही। क्योंकि पदार्थकी स प्रतिविम्बसे पृथक है) तो इसे वेदान्तमें 'बिम्ब-प्रतिबिम्बर्गा कहा गया है। प्रतिबिम्ब हमेशा पदार्थपर आधारित है पदार्थके न होनेपर प्रतिविम्य भी नहीं रह सकता। पर पर स्वतन्त्र है, वह प्रतिबिम्बके बिना भी रह सकता है। रूल बात-विम्व (पदार्थ) की हलचल प्रतिविम्बमें भी हलई पैदा कर देती है। पर विम्वमें विना हलचल पैदा कि दर्पणको हिलाकर प्रतिविम्यमें गति उत्पन्न की जा सकती है।

तीसरा—यदि दो दर्पणोंको आमने-सामने रखकर हैं दोनोंके वीचमें एक पदार्थ रख दिया जाय तो उस पदार्थ दर्पणोंका भी प्रतिविम्ब एक दूसरे दर्पणमें पड़ेगा। हैं प्रकार एक ही पदार्थके अनेक प्रतिविम्ब हो सकते हैं। प कई विभिन्न पदार्थोंका एक प्रतिविम्ब नहीं हो सकती। हैं तीन नियमोंको घटाते हुए जब हम कहते हैं कि पर्माल वास्तविक है और दूसरे सब पदार्थ अवास्तविक हैं, तो हमी मतलब यहाँ यही है कि ब्रह्मकी स्वयंकी एक तिल् की स्वतन्त्र सत्ता है, जब कि दूसरे पदार्थ उसीसे उत्पन्न हुए हैं।

संख्या ६]

भाग हैं

र किया क्षे

हा। पर

नहीं क्ष

जाकर हु

उसकी के

र वासानि

य है कि इ

इस अर्थ

पृथक् हो

सामने १

के हरा हि

ती सिति

त्तविक' ऋ

स्पर सम्बन

सरेका ई

कि दूसी

उदाहरणं

च पदार्था

ार्थ होग

वश्यक न

वलम्बित है

ार्थकी सर

तेबिम्बभा

धारित है।

। पर पहा

है। दुर्ल

भी हलक

टा किये।

सकती है।

रखकर अ

स पदार्थ गा । इ

ते हैं। व

न्ता। इत

परमाल

तो हमार

नित्य औ

I BU

क्रेसे प्रतिविम्बका विम्बसे उत्पन्न होना । अतः उन पदार्थोंकी जस आपार अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । यह मिथ्या शब्दका तात्पर्य है। विम्व और प्रतिविम्ब (ब्रह्म और जगत्) परस्पर सम्बन्धित है; क्योंकि विम्बके विना प्रतिविम्बकी कोई सत्ता वहाँ। पर वे भिन्न भी हैं; क्योंकि विम्व वास्तविक है और प्रतिविम्ब अवास्तविक ।

परिणामवाद, विम्व-प्रतिविम्बवाद और विवर्त्तवाद

यहाँपर कोई यह कह सकता है कि यह माननेके वजाय कि ब्रह्मका प्रतिविम्ब इन पदार्थों में पड़ रहा है, हम यही क्यों न मानें कि ब्रह्मके ही ये सब पदार्थ परिणाम हैं और इस तरह 'परिणामवाद' को ही क्यों न स्वीकार करें, जैसे कि बल्लभाचार्यजीने किया भी है । इस प्रश्नका उत्तर चार प्रकारसे दिया जा सकता है---

१-गुक्ल-यजुर्वेदमें एक मन्त्र आया है-पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्रच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

(वह ब्रह्म पूर्ण है, यह संसार भी पूर्ण है, यह पूर्ण उसी पूर्णसे प्रकट हुआ है, उस पूर्णमेंसे इस पूर्णके निकल आनेके बाद जो भी कुछ बचता है वह भी पूर्ण ही है।) अतः इसी प्रकार परिणामवाद भी इसीपर आधारित है कि वस्तुतः मिट्टी, धागा और सोनेके घड़े, कपड़े और आभूषणोंपर केवल प्रतिविम्न ही नहीं पड़ता, अपितु उतने समयके लिये मिडी घड़ेमें, धागा कपड़ेमें और सोना आभूषणोंमें परिणत हो जाता है। यह कथन ठीक है, पर जब मिट्टीसे घड़ा या धागेसे कपड़ा वन जाता है, तय वह फिर मिट्टी या धागा नहीं रह जाता; अपितु पूर्णतया घड़ा और कपड़ा बन जाता है। पर जैसे कि ऊपरके मन्त्रमें कहा है कि वह पूर्ण ब्रह्मसे जीवातमा और संसार आदि प्रकट हो जानेपर पूर्ण ब्रह्म बाकी ही रहता है, यह सिद्धान्त परिणामवादमें नितान्त असम्भव है। यहाँ जगरके मन्त्रकी कल्पना ऐसी ही है कि जैसे कोई एक ^{संदूक} रुप्योंसे भरा हुआ हो और जो उसमेंसे रुपये निकालते रहनेपर खाली न हो और सर्वदा भरा रहे। यह कल्पना या सिद्धान्त विवर्त्तवाद्में अथवा प्रतिबिम्बवाद्में ही सम्भव है, जो क्रमशः यह कहते हैं कि यह जगत् रस्सीमें सामिक समान भ्रम है अथवा ब्रह्म इस जगत्के रूपमें मितिनिमित हो रहा है, अतः उस पूर्ण ब्रह्मसे पदार्थोंके प्रकट होनेपर भी उसके अस्तित्वकी कुछ हानि नहीं होती। अतः यह मन्त्र परिणामवादका खण्डन करता है।

२-यदि यह कहा जाय कि परमात्मा या ब्रह्म पटार्थके रूपमें परिवर्तित हो जाता है तो उस पदार्थके विनाशसे ब्रह्मका भी विनाश मानना पडेगा । इसपर यदि यह कहा जाय कि दूसरे पदार्थ भी तो सभी विद्यमान हैं अतः ब्रह्मकी भी विद्यमानता है । तो इस दलीलके वावजूद भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि नष्ट हुए पदार्थका जो ब्रह्म है वह भी नष्ट हो गया । इस प्रकार ब्रह्मके एक अंशकी मृत्य माननी पड़ेगी । पर अद्वैतवाद इन आरोपोंसे मक्त है; क्योंकि प्रतिबिम्बका विनाश विम्बके विनाशमें कारण नहीं होता ।

३-यदि परिणामवाद सत्य है और ब्रह्म जगतके रूपमें परिवर्तित हो जाता है तो जगतको सत्य मानना पडेगा और यदि जगत सत्य है तो वेदान्तमें उसे अज्ञान, भ्रम और मोहयुक्त बताकर उसे छोड़नेके लिये तथा वर्णाश्रम, कर्म, उपासनाः श्रवणः मननः निद्धियासन आदि कठिनतम साधनोंके द्वारा उस ब्रह्मको प्राप्त करनेका आदेश क्यों दिया गया है ?

४-श्रीमद्भागवतके 'रासपञ्चक'में श्री'प्रतिविम्ववाद'का वर्णन निम्न शब्दोंमें हुआ है-

स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः। यथार्भकः

यहाँ ब्रह्म और सृष्टिके सम्बन्धकी तुलना उस बालकके साथ की गयी है जो अपने प्रतिविम्बसे खेलता है।

अतः जो सनातन धर्मके वैष्णव-मतावलम्बी यह कहते हैं कि शंकराचार्यजीने अपनी ही कल्पनासे मायावाद या विवर्तवादका सुजन किया है और उसके लिये किसी भी प्राचीन शास्त्रका समर्थन प्राप्त नहीं है, उनसे हमें केवल इतना ही कहना है कि उनका यह आरोप नितान्त गलत है; क्योंकि वेद, भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत भी, जिसे वैष्णव बहुत आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, विल्कुल स्पष्ट शब्दोंमें ·विवर्त्तवाद'का समर्थन करते हैं। यह भी कहना अनुचित न होगा कि इस वादके सुजनमें भगवान् शंकरकी कल्पनाका जरा भी अंश नहीं है, सब कुछ वेदादि शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तोंको ही उन्होंने नये रूपमें प्रस्तुत किया है। यद्यपि अपने पक्षकी पुष्टिके लिये अनेकों प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, पर यहाँ कुछ ही प्रमाणोंको उद्धृत किया

१—माथां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
(प्रकृति माथा है और ईश्वर उसका स्वामी है।)
२—अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन सुद्धन्ति जन्तवः ।
(ज्ञान अज्ञानके द्वारा ढक दिया गया है) इस कारण
सब प्राणी मोहको प्राप्त होते हैं ।)

३-नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
(अपनी योगमायासे ढके हुए होनेके कारण मैं सबके
लिये दृश्य नहीं हूँ।)

४-देवी ह्येषा गुणमयी सम साया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(तीन गुणोंसे युक्त इस मेरी मायाको पार करना वड़ा कठिन है। पर जो मुझे पा लेते हैं, वे इसे आसानीसे पार कर जाते हैं।)

५-मायां ततान जनमोहिनीम्।

(मनुष्यको मोहित करनेवाली मायाको उसने फैलाया।)

६-मन्यमानिमदं सृष्टमात्मानिमहं मन्यते।

(स्वयंको तथा इस जगत्को बना हुआ समझकर वह मनुष्यको इस जगत्के साथ संयुक्त करता है।)

७-यदिदं मनसा वाचा चक्षुभ्याँ श्रवणादिभिः। नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम्॥

(जो कुछ भी ज्ञान तुम मन, वाणी, ऑख, श्रोत्र आदि इन्द्रियोंसे ग्रहण करते हो, उन्हें तुम पूर्णतया मानसिक, भ्रमयुक्त तथा नश्वर समझो।)

इनसे और अधिक स्पष्ट प्रमाण और कौनसे हो सकते हैं ? फिर भी श्रीमद्भागवतका एक और प्रमाण हम यहाँ उद्भृत करते हैं—

रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवी यथा।

(जिस प्रकार साँप रस्सीमें आता है और फिर उससे गायव हो जाता है।)

केवल 'विवर्त्तवाद'को स्वीकार ही नहीं किया है अपितु शंकराचार्य तथा अन्य अद्दैतवादी विद्वानोंने इस वादको अनेक उदाहरणोंसे पुष्ट भी किया है। कई जगह चाक्षुष भ्रमको भी तथ्य मान लिया गया है। आधुनिक ग्रह-विज्ञानके अनुसार सूर्योदय और सूर्यास्त भी चाक्षुष भ्रम ही है।

व्याकरण-सम्बन्धी प्रमाण

अन्य भी प्रणालियाँ हैं जो आत्मा-ब्रह्मके एकत्वको सिद्ध

वस्तुतः प्रथम पुरुषका बहुवचन भ्रमपूर्ण है। ब तुम कहते हो 'हम' तो तुम्हारा मतलव होता है कि मैं औ तुम या 'मैं' और 'वह' अर्थात् 'मैं' और 'तुम' या 'मैं' औ 'वह'के मिलानेसे 'हम' बनता है न कि 'मैं' और 'मैंहे मिलानेसे। दूसरे शब्दोंमें, द्वितीय और तृतीय पुरुषमें एड ही प्रकारके सर्वनामोंको मिलानेसे (वह+वह=वे, तू+त्=तुम) बहुवचन बन जाता है, पर प्रथम पुरुषके विषयमें ऐसा तई है। वस्तुतः 'मैं' का बहुवचन नहीं बनाया जा सकता 'हम' तो एक धोखा या मिथ्या है अतः यह हमने पूर्व है बताया है कि 'मैं' शब्दद्वारा 'आत्मा'की अभिव्यक्ति होंं है। भगवान् शंकरने भी अपने भाष्यके प्रथम बाह्यमें है आत्माकी इस परिभाषाको रक्ता है—

युष्मद्सात्प्रत्ययगोचरयोः।

'त्' शब्दद्वारा संसारकी अभिव्यक्ति तथा भैं गर्व द्वारा आत्माकी अभिव्यक्ति होती है। इसका कारण गर्ह कि हमें अपने अंदरके तत्त्वका ही, जिसे आत्मा कहते हैं, जा होता है और दूसरे परार्थों का ज्ञान न होकर अनुमान होता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्यक्ष अथवा साक्षात्कारका विषय हमारी आत्मा ही होती है (इसको भगवान् शंकरके समान ही कार्डिनल न्यूमेन भी स्वीकार करता है) अर्थात् प्रथम पुरुषका एकवचन (मैं) ही हमारे ज्ञानका विषय होता है और यह प्रथम पुरुषका एकवचन, जैसा कि हम पहले देव चुके हैं, बहुवचन नहीं हो सकता। बहुत-से भी नहीं सकनेके कारण भीं का बहुवचन भी मिथ्या ही है। अर्व यह इस बातका निदर्शक है कि आत्मा (जो भीं) ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[भाग है। -त रहे हैं।

रहती है।

नहीं, और

नामके विषय

व्यक्तिवास

के एक्क

पाठमें ए

नके 'वह' व

है (वे) | व

ार 'त्र' के

। पर प्रधा

पूर्ण है। स

कि मैं औ

ा 'मैं' और

और भैंदे

पुरुषमें एउ

तू+तू=तुम)

में ऐसा नहीं

जा सकता

मने पूर्व ही

व्यक्ति होती

वाक्यमें ही

भी अल

ारण यह है

ते हैं, जान

अनुमान

का विषय

के समान

ति प्रथम

न होता है

गहले देव

में। नहीं

है। अतः

में, ब्रा

अभिव्यक्त होता है) यद्यपि अनेक दीखता है, पर है एक ही ।

इस प्रकार व्याकरण भी परमात्मा, आत्मा और जगत्की एकताका प्रमाण है तथा अनेकताके पीछे छिपी हुई एकताके साक्षात्कार करनेमें हमारी सहायता करता है।

क्रियात्मक सम्बन्ध

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि 'यदि परमात्मा और हम एक हैं तो दोनोंकी कियाओं में इतनी भिन्नता क्यों है ?? यह प्रश्न स्वामाविक है, पर ध्यान और साक्षात्कारद्वारा इस वात-को भी देखा जा सकता है कि वास्तवमें दोनों की क्रियाएँ भिन्न नहीं हैं अपितु एक ही हैं। जिस प्रकार कमरेके सब दरवाजे बंद कर देनेपर एक छोटी-सी दरारद्वारा थोड़ी-सी ही सर्वकी किरण अंदर आ पाती है, उसी प्रकार हमारी स्थिति है। हम भी परमात्माके समान ही कार्य करते हैं, पर ये हमारे कार्य शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिद्वारा सीमित कर दिये जाते हैं। अब यहाँ हम यह देखेंगे कि हम हर समय करते क्या रहते हैं।

जब सूर्य अस्त होता है तब दिनभरतक प्रकाश देने-वाली उसकी किरणें कहाँ गायव हो जाती हैं ? इसके उत्तरमें तुम यह कह सकते हो कि सूर्य अस्त होते हुए किरणोंको भी अपने साथ ही समेट ले जाता है। ठीक है, पर यह तुम्हारा कथन उन्हीं किरणोंके बारेमें ठीक हो सकता है, जो अभी भी सूर्यके अंदर हैं, पर जिन किरणोंको सूर्य बाहर फेंक चुका है उनका क्या होता है ? क्या वे सूर्यास्तके वाद भी चमकती रहती हैं ? विल्कुल नहीं, वह सूर्य उनको भी अपने साथ ही समेटकर ठे जाता है। अतः सूर्य भी एक मकड़ीकी तरह ही काम करता है, अर्थात् जिस प्रकार एक मकड़ी अपने अंदरसे ही जालेको निकालती है और फिर बादमें अपने अंदर ही समेट भी लेती है, उसी प्रकार सूर्य भी करता है। इसी प्रकार जब हम सोने जाते हैं तो हम अपने साथ बाहरके तमाम अनुभवोंको अपने साथ ले जाते हैं। जब कभी-कभी हम उन अनुभवोंको परस्पर मिला देते हैं तो हम उस समय 'ख्रानावस्था'में पहुँच जाते हैं और कभी-कभी जब हम उन्हें अपने ही अंदर किसी सुरक्षित स्थानपर इकडा कर देते हैं तो हम 'सुषुप्ति'में पहुँच जाते हैं, फिर जब हम जागते हैं तो सूर्यके समान हम भी उन सारे अनुभवोंको फिर अपने साथ है आते हैं। ये हैं हमारे कार्यः जो हम सर्वदा करते

रहते हैं । क्या हमारे ये कार्य परमात्माके सहश नहीं हैं ? क्या हम सोते और जागते नहीं हैं ? क्या हम अपने संसारका सपुष्त्यवस्थामें, जिस प्रकार परमात्मा प्रलयमें संसारका नाश करता है, उसी प्रकार नाश नहीं करते और फिर जिस प्रकार परमात्मा प्रल्यावस्थाके बाद संसारकी पुनः उत्पत्ति करता है, क्या उसी प्रकार हम भी अपने संसारकी पुनः उत्पत्ति नहीं करते ? और क्या हम जाप्रदवस्थामें अपने संसारका पालन नहीं करते ? अंतः जब हम परमात्माके समान ही संसारकी उत्पत्ति, पालन और नाशके कार्य करते हैं तो और इससे अधिक समानता क्या हो सकती है १

इसके अतिरिक्त जामदवस्थामें भी ये तीनों कार्य हो सकते हैं। जब तुम बिजली बुझा देते हो तथा सोनेसे पूर्व अपने कमरेको पूर्ण अन्यकारमय बना देते हो तथा अपनी आँखोंको बंद करके अपना ध्यान अपने किसी मित्र या सम्बन्धीपर केन्द्रित करते हो और उसे देखना चाहते हो तो वह मूर्ति तुम्हारे सामने प्रकट हो जाती है। यदि तुम्हारा संकल्प दृढ़ होता है तो मूर्तियाँ स्वयं प्रकट हो जाती हैं। क्या वह रचना नहीं है !

दूसरी ओर जाग्रदवस्थामें भी तथा प्रकाशके होनेपर भी अपनी आँखोंको बंद कर छेते हो और कहते हो कि प्रकाश नहीं है। अथवा जब तुम्हारा मन एक जगह लगा हुआ हो, तो यद्यपि तुम्हारी आँखें एवं कान खुले रहते हैं, फिर भी तुम कुछ देखते या सुनते नहीं हो। यदि एक डाकू या चोर आकर तुम्हारी चीजें चुरा ठे जाय तो भी तुम्हें उसका ज्ञान नहीं होता ।

श्रीकृष्णकर्णामृत'में एक बहुत मुन्दर श्लोक है, जो एक तरफ तो श्रीकृष्णकी लीला बताता है और दूसरी तरफ नैतिकता, मनोविज्ञान और तत्त्व-ज्ञानकी शिक्षा भी देता है। स्रोक इस प्रकार है-

मातः किं यदुनाथ देहि चषकं किं तेन पातुं पयः तन्नास्त्यच कदास्ति वा निशि निशा का वान्धकारोदये। आमील्याक्षियुगं निशाप्युपगता देहीति मातुर्मुहु-र्वक्षोजां गुककर्षणोद्यतकरः कृष्णः स पुष्णातु वः॥

भाता यशोदा वालकृष्णको एक निश्चित समयपर दूध दिया करती थीं। एक दिन मनोरञ्जनके लिये वालकृष्णने अपनी माँको बुलाया और दूध माँगा। यशोदाने कहा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इस समय तुम्हें दूध नहीं दूँगी' श्रीकृष्णने पूछा 'तो मुझे कब मिलेगा ?' उसने कहा 'रातको' श्रीकृष्णने फिर पूछा कि 'रात कब होती है।' उसने उत्तर दिया कि 'जब अँधेरा हो जाता है' जैसे ही यशोदाने यह कहा श्रीकृष्णने झट आँखें मूँद लीं और कहा कि 'माँ! अब अँधेरा हो गया है, लाओ, मुझे दूध दो।'

इस प्रकार यद्यपि तुम्हारे चारों ओर अनेक पदार्थ हैं, पर तुम्हारे लिये उनकी कुछ भी सत्ता नहीं है; क्योंकि तुम्हारा ध्यान उनकी तरफ नहीं है। यह सब क्या बताता है ? यही कि इस मनपर ही सारा संसार तथा सारे पदार्थ आश्रित हैं। जो कुछ भी हम सुनते या देखते हैं सब मनके कारण ही, और यह मन ही उनकी निर्दोषता और दोषताकी सिद्धि करनेवाला है। यही कारण है कि आधुनिक पाश्चात्त्य दार्शनिक क्षेत्रसे बाह्यास्तित्ववाद (Realism) सर्वदाके लिये खतम हो गया और उसका स्थान लिया है अन्तः-अस्तित्ववाद (Idealism) ने। आयरलैंडका बिशप वर्कले इस वादका

समर्थक था, जिसने इस वादको सारे यूरोपमें कैल्या परिणाम यह हुआ कि कार्लाइल, इमर्सन, काण्ट, हो थॉमस हिलग्रीन डॉयसन आदि सभी आधुनिक दार्शिक इस वादके समर्थक हो गये। तथा यूरोपमें नये विवारि फैलानेवाले रॉल्फ वाल्डो ट्राइन, सिडनी फ्लोवर, ऐला _{बीज} विलकॉक्स, विलियम वॉकर एट्किन्सन, प्रोफेसर केन केनी आदि महान् मनोवैज्ञानिकोंने भी इस वादका समक्ष किया। पर जैसा कि पहले वताया जा चुका है कि क्रिं आदि महान् दार्शनिकोंने भी, यद्यपि इस वादको माना, प इसका खुळे रूपमें प्रचार करनेका कभी साहस नहीं किए। जैसा कि श्रीशंकराचार्यने किया था। पर फिर भी उत्ही बाह्यास्तित्ववाद (Realism) का जो सदियोंसे चल अ रहा था, डटकर विरोध किया। अय यह निश्चित है हि एक समय वह आयेगा कि जब अमेरिका और यूरोक दार्शनिक विचार पूर्णरूपसे अद्दैतवादी हो जायेंगे और वेस भगवान् इांकरके विचारोंका प्रसार सर्वत्र करेंगे।

(क्रमशः)

तुम तो केवल निमित्त बनो

मन-इन्द्रिय-शरीर संबके हैं स्वामी एकमात्र भगवान। इनसे उनकी ही बस, सेवा करो निरन्तर अव्यवधान॥ भवन-विभूति, मान-मर्यादा, पद-ऐश्वर्य अमल आराम। सभी उन्हींकी वस्तु, सभीसे सेवा करो समुद अविराम॥ प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति, प्रतिभा-प्रभुता, ग्रुचि प्रशंस्य परिवार। करते रहो समर्पित सब ही, प्रभुको सादर निरहंकार॥ सबमें सदा विराजित प्रभु हैं, सब ही हैं प्रभुके आकार। आदर करो, सभीको सुख दो यथायोग्य बूते अनुसार॥ विनयी बनो, अहंता छोड़ो, नष्ट करो सब मद-अभिमान। बनो सहिष्णु, संयमी, ग्रुचि-मन, सुहृद्, साधु, ग्रुभ-गति-मतिमान॥ दुखद्-परुष-कदु-अहित भाव-वचनोंका कर पूरा परिहार। बनकर मधुर, मधुरता बाँदो, करो मधुर हितका विसार॥

सबको सुख हो, सबका हित हो, पायें सभी शान्ति-कल्याण। अशुभ-अशान्ति, दुःख-दुर्मितिसे पा जायें तुरंत ही व्राण। इसी भावनासे सब सोचों, करो इसीसे सारे करं। इस प्रकारकी प्रभु-सेवाको समझो सदा मुख्यतम धर्म। पोषण करो सभीका देकर सुख-सम्पत्ति सदा सानद। प्रभुपद-प्रीति करो वितरण, यों सेवाके द्वारा स्वच्छद। समझो सदा पूर्ण निश्चयसे तुम तो हो बस, केवल बन्न। यन्त्री वही, फूँकते सबके कानोंमें वे ही निज मन्न। प्रेरक वही, शक्ति उनकी ही, वस्तु उन्हींकी, वे ही भोष। भोक्ता स्वयं एक बस वे ही, तुम केवल 'निमित्त' हो बोषा।

वर्तमान दोषोंके निवारणकी आवश्यकता

(लेखक-अद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

रोषोंके निवारणके लिये लिखनेका मेरा अधिकार और सामर्थ नहीं है; क्पोंकि इस विषयमें वही पुरुष लिख सकता है जो सर्वथा निर्दोष एवं प्रभावशाली हो एवं उसीका असर पड़ता है। मैं तो एक साधारण आदमी हूँ, किंतू सबके सुझावके छिये छिखा जाता है।

वर्तमान समयमें हमलोगोंमें बहुत-से दोष आ गये हैं और बढ़ते ही जा रहे हैं। उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार करके उनके निवारणके छिये प्रयत्न करना विशेष आवश्यक है। बहुतसे मनुष्य तो अर्थलोल्लप होकर संसारके पतनोन्मूख प्रवाहमें ही वह रहे हैं, कितने ही मुज्य परके अभिमान और मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके छोभसे मोहित हुए पतनकी ओर जा रहे हैं। बहुतसे मनुष्योंको श्रद्धा-की कमीसे ईश्वर, धर्म, सत्संग और शास्त्रकी वातें अच्छी ही नहीं लगतीं और कोई-कोई तो इन सबको व्यर्थ समझकर उपेक्षा कर देते हैं । व्यक्तिगत स्वार्थको त्यागकर अपना और संसारका हित और परमार्थसाधनकी ओर दृष्टि बहुत ही कम लोगोंकी है, यह बहुत ही विचारणीय विषय है।

आय-कर, बिक्री-कर, मृत्यु-कर, सम्पत्ति-कर, दान-कर, विवाह-कर, व्यय-कर आदि करोंकी भरमारके कारण लेगोंकी नीयत बुरी होकर उनमें झूठ, कपट, चोरी, वेईमानी, धोखेबाजी, घूसखोरी आदि जोरोंसे बद रही है। इन सब दोषोंके दूर होनेका कोई सरल उपाय समझमें ^{नहीं} आया । किसी बड़े व्यापारीसे न्याययुक्त व्यवसाय करनेके लिये कहा जाता है तो उसका यही उत्तर मिलता है कि 'इस युगमें न्याययुक्त व्यवसाय चल ही नहीं सकता, ^{लाख} रुपयोंसे अधिक वार्षिक आमदनी होनेपर सरकार ही अनेक प्रकारके करोंद्वारा अधिकांश रुपये ले लेती हैं। अतः इस जमानेमें न्यायपूर्वक व्यवसाय करके तो कोई ळलपति-करोड्पति हो ही नहीं सकता ।'

महत-से लोग चोरवाजारी करके प्रतिवर्ष लाखों रुपये झोंपड़ी भी अच्छी और अन्यायसे प्राप्त महल भी किस CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एकत्र करते और सरकारसे छिपाकर गुप्तरूपसे रखते हैं। वे उनकी रक्षा भी बड़ी कठिनाईसे कर पाते हैं। किसीको न्याययुक्त सरकारी कर देनेके लिये कहा जाता है ती यह उत्तर मिलता है कि 'नाना प्रकारके झूठ-कपट, बेईमानी और इतना परिश्रम करके रुपये हम सरकारके लिये थोंड़े ही उपार्जन करते हैं। सरकारका यदि मामूठी कर होता तो वह उचित दिया भी जा सकता था, किंतु सरकारने इतने अधिक कर लगा दिये हैं कि यदि सरकारको सचाईसे न्यायपूर्वक सारी आमद्नी बता दी जाय तो अधिकांश धन सरकार ही ले लेगी।' कोई खार्थत्यागकी बात कहता है तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं। यह अन्यायसे उपार्जित धन परोपकारमें विशेष खर्च नहीं होता: क्योंकि पापके द्रव्यसे प्राय: पाप ही होता है। यदि उस द्रव्यको प्रमार्थमें या प्रोपकारमें दिल खोलकर लगा दें तो उस पापका कुछ तो प्रायश्वित हो, किंतु उस काममें न लगाकर उस द्रव्यको ऐश-आराम-शौकीनीमें और विवाह-शादीमें ही खर्च करते हैं, जिससे उनका यह लोक भी विगडता है और परलोक भी !

यदि किसीसे यह कहा जाय कि 'धन और जीवन तो जितना भाग्यमें लिखा है, उतना ही मिलेगा, जरा भी ज्यादा-कम नहीं हो सकता, अतः ईश्वर और अपने भाग्य-पर विश्वास रखकर झूठ, कपट, चोरी, न करके न्याययुक्त व्यवहार करना चाहिये। यदि मान लें कि झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी करनेसे धन और जीवन अधिक मिलता है तो भी वह किस कामका ? क्योंकि सचाईसे उपार्जित थोड़ा भी धन अमृतके समान है। उससे खानेके छिये रूखा-सूखा भी मिले तो बह भी अमृत है और अन्यायसे उपार्जित धनसे प्राप्त मेवा-मिष्टान भी विषके समान है । न्यायसे प्राप्त साधारण

भाग ३६ -

में फैल्या ार्ड , इव क दार्शनिः ये विचारित ऐला व्हील केसर जेम

का समर्थन है कि कॉल ने माना, प

नहीं किया, भी उन्होंने से चला अ श्चित है हि

गौर यूरोफ और वेस

(क्रमशः)

त-कल्याण ही त्राण।

सारे कर्म तम धर्म।

सानन्द्र। स्वच्छन्।

वल यना ज मन्त्र।

ही भोग्य।

हो योग्य ।

31

नह

अ

ह

पा

कामका ! वह भी विषके तुल्य ही है । न्यायपूर्वक थोड़ा भी जीवन उत्तम है और अन्यायपूर्वक बहुत लम्बा जीवन भी किस कामका ?' तो यह सुनकर वे निरुत्तर तो हो जाते हैं किंतु करते हैं वही जो सदा करते आये हैं। यह नहीं समझते कि मनुष्य-जीवन बहुत ही थोड़ा है और वह बड़े ही भाग्यसे, ईश्वरकी दयासे मिला है। अतः जिससे अपना शीघ्र उद्घार हो, उसी कार्यमें अपना जीवन बिताना चाहिये । इस बातको न सोचना-समझना बहुत ही दु:ख, लजा और आश्चर्यकी बात है।

विशिष्ट पदोंके लोभमें आकर बड़े-बड़े लखपति-करोड़-पति व्यक्ति भी मोहके कारण अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट हो जाते हैं। किन्हींको कोई उच्च पद प्राप्त हो जाता है तो वे उस पदके लोभ और अभिमानमें आकर मोहके कारण अपने धर्म, कर्म, न्याय, अन्याय, भूख, प्यास, सुख, दु: खकी कुछ भी परवा न करके उसीके पीछे अपने वास्तविक मानव-कर्तव्यको भूल जाते हैं।

बहुत-से मनुष्य मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा पानेपर यह नहीं समझते कि यह मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा नारावान् और क्षणिक है, यह आरम्भमें तो अमृतके समान प्रतीत होती है पर इसका परिणाम विषके समान है। इसीसे वे मोहके कारण अपने वास्तविक कर्तव्यको भूछ जाते हैं। इस कारण उनमें दिखाऊपन आ जाता है, जिससे दम्भ-पाखण्ड बढ़ जाते हैं। एवं वे न करने योग्य दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन करने लगते हैं और करने योग्य सद्गुण, सदाचार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यसे विञ्चत रह जाते हैं । इसके फलखरूप उनकी इहलोक और परलोकमें दुर्गति होती है।

बहुत-से मनुष्य नाटक, सिनेमा, क्लब, चौपड़, तारा, रातरंज खेळ-तमारो आदि प्रमादमें समयको व्यर्थ विताकर अपने जीवनको वर्बाद करते हैं । वे यह नहीं समझते कि लाखों रूपये खर्च करनेपर भी मनुष्य-जीवनके एक क्षणका समय भी नहीं मिल सुक्ता kang हिन्दी है। कि प्राप्त प्रायः नष्ट हो गया है।

मनुष्यजीवनका समय अमूल्य है, उसको नि:स्वार्थक भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, परोपकार (लोकहित) में क पर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

इस समय दहेजकी प्रथा भी दिन-पर-दिन 3 रूप धारण कर रही है । यद्यपि इसको रोकनेके हैं जनता तथा सरकारकी ओरसे प्रयत्न भी जारी है; कि कोई सफलता नहीं मिल रही है । जहां पहले चौदह की अवस्थाके और रजखळा होनेके पूर्व ही कन्याका कि हो जाया करता था, वहाँ वर्तमान समयमें सोळहसा वर्षकी रजस्वला लड़िकयाँ भी हजारोंकी संलो अविवाहिता ही हैं। इसमें, जो बहुत-से लोग वरपक्षा को उनकी इच्छाके अनुसार दहेजसे संतुष्ट नहीं ग सकते, यह भी एक प्रधान कारण है। कोई-कोई उड़ां तो धनके अभावके कारण माता-पिताके कष्टको देखा आत्महत्या कर लेती है और किसी लड़कीके फ अंथवा पिता धनके अभावमें विवाह न कर सकते कारण लड़कीको बड़ी देखकर दुखी हो आत्महत्या व लेते हैं। विचारकार देखें तो इन हत्याओंका पाप अर्जि दहेज लेनेवालोंको लगता है। प्राय: सभी प्रान्तों है जातियोंमें यह प्रथा न्यापक है। सभी लोगोंको सर्व दूर करनेके लिये लेख, ब्याख्यान, पत्र, सभा आ उपायोंद्वारा जोरदार प्रयत्न करना चाहिये। जो ^{की} व्यक्ति अपने कथनको स्वयं आचरणमें लाका हिला है, वह जनताका बड़ा भारी उपकार करता है; व्याँ उसके आदर्शको देखकर दूसरोंपर भी असर पड़ता है। जो केवल कहता ही है, स्वयं आचरण नहीं कर्ल उसका कोई विशेष असर नहीं होता । आजकल वहीं लिखनेवाले तो बहुत हैं, पर खयं आचरण का^{तेवी} कोई विरला ही है।

आचार-विचार भी दिन-पर-दिन नष्ट-भ्रष्ट होता है रहा है । खान-पानविषयक शौचाचार तो होटलें

[भाग ३६ ने:स्वार्यमान) में छा

तर-दिन उ कनेके हैं। री हैं। वि वौदह क्षे ाका विद् नोलह-सत्ता ो संख्या वरपक्षवाले नहीं व

कोई छड़ां को देखा कीके मा तर सकते महत्या ग गप अनुचि प्रान्तों औ को इस समा आह जो की र दिखा है; क्यों पड़ता है।

करनेवि होता उ होरलें हैं। 副

हीं कार्त

कल वहाँ

से होटलोंमें मछली, मांस, अंडा, मदिरा आदि घृणित वदार्थ भी शामिल रहते हैं । जो सर्वथा अपवित्र, शास्त्र-क्षित्र और हिंसापूर्ण होनेके कारण स्वारच्य और धर्मके विं महान् हानिकर हैं!

स्कृत-कॉलेज आदि शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा म होनेके कारण बालकोंमें चञ्चलता और उच्छूह्बलता भी बहुत बढ़ रही है। प्राचीन कालमें छात्रगण अपने आचार्य ऋषि-मुनियोंका बहुत अधिक आदर-सत्कार, सेवा-पूजा किया करते थे; किंतु इस समय विद्यार्थीगण अपने शिक्षकोंका उस प्रकारका आदर-सत्कार-सम्मान नहीं करते हैं। बल्कि कहीं-कहीं तो विद्यार्थी शिक्षकोंका अपमान भी कर बैठते हैं । यह बहुत ही अनुचित है । विद्यार्थियोंको अपनेको शिक्षा देनेवाले अध्यापकोंका सदा श्रद्वापूर्वक आदर-सत्कार-सम्मान करना चाहिये।

आजकल कारखानों, कार्यालयों या दुकानोंके गाळिकों और मजदूरों या कर्मचारियोंका पारस्परिक व्यवहार भी पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक कटु हो गया है। ^{अधिकां}श मालिक मजदूरों या कर्मचारियोंसे काम तो अधिक हेते हैं और मजदूरी या वेतन कम देते हैं, इसी प्रकार ^{मजदूर} या कर्मचारी भी काम कम करके अधिक पारिश्रमिक लेना चाहते हैं। मालिक तो कर्मचारियोंका जैसा आदर-सत्कार और प्रेम करना चाहिये, वैसा नहीं काते तथा कर्मचारी मालिकोंका नहीं करते। इसी कारण उत्तरोत्तर प्रतिद्वन्द्विता, लड़ाई-झगड़े बढ़कर देशकी वहुत हानि हो रही है। पूर्वकालमें कर्मचारी मालिकोंको िषताके समान और मालिक कर्मचारियोंको पुत्रके समान समझते थे, इससे उनमें परस्पर बड़ा ही प्रेम और सुख-शान्ति रहती थी । प्रत्यक्षमें छड़ाई-झगड़ा और गाळी गळौज तो कभी नहीं होता था । अतः सभीको अपने-अपने कर्तव्यका निःस्वार्थभावसे पालन करते हुए इसका षुभार करना चाहिये।

इस समय गोजातिका भी बड़ा हास होता जा रहा है। प्राचीन कालमें एक-एक नगरमें लाखों गौएँ रहा कत्ती थीं । वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डमें कथा आती है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके पास त्रिजटनामक एक ब्राह्मण आये और उनसे धनकी याचना की। श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा-- 'विप्रवर ! मेरे पास बहुत-सी गौएँ हैं। आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकेंगे, वहाँतककी सब गौएँ आपको मिळ जायँगी । ब्राह्मणदेवने वैसा ही किया और उनको हजारों गौएँ प्राप्त हो गयीं, जिससे वे बड़े ही प्रसन्त हुए।

विचार कीजिये, जहाँ विनोदके रूपमें एक याचकको इस प्रकार हजारों गौएँ दानमें दी जाती हैं, वहाँ दाता-के पास कितनी गौएँ हो सकती हैं ? भागवत द्शम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें वर्णन मिळता है कि नन्द-उपनन्द आदिं गोपोंके पास टाखों गोएँ रहा करती थीं। श्रीकृष्ण-के जन्म-महोत्सवपर ही नन्द जीने दो लाख गौओंका दान किया था (अ० ५)। राजा नृगका इतिहास प्रसिद्ध ही है कि वे हजारों गौओंका दान प्रतिदिन किया करते थे (भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्घ अ० ६४)। महाभारतकालमें राजा विराटके पास लगभग लाख गौएँ थीं, जिनका हरण करनेके लिये कौरवोंकी विशाल सेनाने त्रिगर्तराज सुशर्माके साथ दो भागोंमें विभक्त होकर विराट-नगरपर चढ़ाई की थी। (महा० विराट० ३५)।

उस समय गौओंकी संख्या पर्याप्त होनेके कारण द्घ, दही, घी, मक्खनकी भरमार रहती थी, पर आज तो औषधसेवनमें अनुपानके लिये भी गौका शद्भ घी प्राप्त होना कठिन हो रहा है। फिर यज्ञ और दैनिक खानपानके लिये तो प्राप्त होना बहुत ही कठिन है। इस समय लाखों गौएँ तो किसी-किसी जिलेमें भी मिलनी कठिन हैं । यह गोजातिका हास हमलोगोंकी उपेक्षाका ही परिणाम है । हमें समझना चाहिये कि गौ आव्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक—सभी दृष्टियोंसे परम उपयोगी है। गौके दूध, दही, वी आदिसे देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य आदि सभीकी तृप्ति होती है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी गौके दूध, दही, घी--सभी परम उपयोगी पदार्थ हैं। गौके दूध, दही, घी तथा गोबर-गोमूत्रके सेवनसे अनेक प्रकारकी बीमारियाँ दूर होती हैं। गौसे उत्पन्न हुए बैलोंसे जैसी खेती होती है, वैसी भैंसे आदि पशुओंसे नहीं हो सकती। गौ और बैलके गोबर-गोमूत्रसे खेतोंमें बड़ी अच्छी खाद होती है, जिसके मुकाबलेमें अन्य खाद इतनी उपयोगी नहीं है। अतः सभी दृष्टियों-से गौ और बैल हमारे देशके लिये महान् हितकर हैं।

इसीसे प्राचीन कालमें लोगोंकी गौओंके प्रति बड़ी ही महत्त्वबुद्धि, आदर और श्रद्धा-भक्ति थी और वे उनकी रक्षा करना अपना परम कर्तब्य मानते थे एवं उनकी रक्षा करना अपना परम कर्तब्य मानते थे एवं उनकी रक्षाके लिये प्राणोंकी भी परवा नहीं करते थे। जिस समय राजा दिलीप नन्दिनी गौकी सेवा कर रहे थे, एक सिंह आया और गौको खानेके लिये उद्यत हो गया। तब राजाने सिंहसे कहा—'तुम इसे छोड़ दो, मुझे खा लो।' इस प्रकार वे गौकी रक्षाके लिये सिंहको अपने प्राण देनेको तैयार हो गये। इससे उनका धर्म भी बच गया और प्राण भी बच गये; क्योंकि वह सिंह नहीं था, गौ ही मायासे सिंह बनकर राजाकी परीक्षा ले रही थी (पद्मपुराण उत्तरखण्ड)।

जिस समय पाण्डव इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे, उन दिनों एक दिन छुटेरे किसी ब्राह्मणकी गौएँ लेकर भाग गये। अर्जुनने जब ब्राह्मणकी करुण पुकार सुनी, तब वे भाइयोंके साथ की हुई शर्तका उछङ्गन करके चुपचाप उस कमरेमें जाकर शक्ष ले आये, जिस कमरेमें द्रौपदी-के साथ युधिष्ठिर थे और छुटेरोंका पीछा करके ब्राह्मणकी गौएँ छुड़ा लाये। इस प्रकार अर्जुन गौओंकी रक्षा करके युधिष्ठिरके रोकनेपर भी नियमभङ्गके प्रायश्चित्तरूपमें बारह वर्षके लिये वनमें चले गये (महा० आदि० अ० १३२)।

एक बार राजा नहुष बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये थे। उन्होंने व्यवनऋषिके बदलेमें मल्लाहोंको राज्यतक देना स्वीकार कर लिया, तब भी व्यवनऋषिने कहा कि मेरा मूल्य नहीं आया। इसपर राजाने वहाँ पधारे हुए मुनि गविजके निर्णयानुसार ब्राह्मण और गौको समान समझकर गौसे ऋषिका मूल्य आँक दिया। तब व्यवनऋषि बोले—'अव तुमने यथार्थमें मुझको मोल लेलिया। प्रकार उन्होंने गौका इतना आदर किया कि राज्ये। बढ़कर गौका मूल्य ऋषिके बराबर वतलाका के पकड़नेवाले मल्लाहोंको ऋषिके मूल्यमें एक गौहे। (महा० अनुशासन० अ० ५१)।

महाराज युधिष्टिरकी आज्ञासे भीमसेनने क्रिके सुशर्मिके द्वारा बळपूर्वक हरण की हुई गौओंको हुक युद्ध करके छौटाया था। इस प्रकार प्रकटमें युद्ध कर पहचाने जानेपर पाण्डवोंको पुनः बारह वर्ष कर भोगना पड़ता; पर उसकी भी परवा न करके गौके रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझकर उन्होंने कर छिये राजा सुशर्मिके साथ महान् युद्ध किया (का विराट० अ० ३३)।

अतएव हमलोगोंको सभी प्रकारसे गौओंकी म्लीगें रक्षा करनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये। गौओंकी क्षें लिये गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। हरेक भाईको करिये गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। हरेक भाईको करिये । इस समय तो गौओंका ह्वास बहुत की मात्रामें हो गया और हो रहा है। जगह-जगह कर्साई खुल गये और खुल रहे हैं। सरकारकी ओरसे ११ कि की गौका वध करनेपर प्रतिबन्ध होनेपर भी कार्ल विरुद्ध छोटे-छोटे बछड़े-बछड़ी और गौओंकी हिमाई रही है। इसलिये सभी मनुष्योंको गोरक्षाके लिये ते कि जीतोड़ प्रयत्न करना चाहिये, जिससे गोवध कर्तई हो और गोधनकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो, इसमें सभीका हो

इसिलये कल्याणकामी मनुष्योंको मान, वड़ाई, प्रतिः पदाभिमान, ऐश-आराम, भोग, स्वार्थ, दुर्गुण, दुर्ग्य दुर्व्यसन, आलस्य और प्रमाद आदिका त्याग कर्र निष्कामभावसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार अर्थि सेवनके लिये उत्साह और तत्परतापूर्वक प्राणपर्यन्त प्रस् करना चाहिये।

श्रीरामनाम-निष्ठाके आदर्श श्रीप्रह्लादजी

(लेखक—पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

श्रीप्रहादजीकी कथा नृसिंहपुराण, विष्णुपुराण (अंश १ अध्याय १७ से २० तक) तथा श्रीमद्भागवत (स्कन्य ७ अध्याय ३—१०) में है । यहाँ श्रीमद्भागवतके अनुसार संक्षेपमें उसे लिखा जाता है—

्पूर्व समयमें दितिके पुत्र हिरण्यकशिपुने घोर तप क्रिया, श्रीव्रह्माजी उसे वर देने आये । हिरण्यकशिपुने स्तृति की और फिर वर माँगा कि 'आपके बनाये हुए क्रिती भी जीव—मनुष्य, पशु, प्राणी, अप्राणी, देवता, देख एवं नाग आदि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो । भीतरबाहर, दिनमें, रातमें, आपकी सृष्टिके अतिरिक्त किसी जीवसे, अख-शस्त्रसे, पृथ्वी एवं आकाशमें कहीं भी मेरी मृत्यु न हो । युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके । मैं खतन्त्र सम्राट् होऊँ । लोकपालोंमें आपकी-सी महिमा मेरी भी हो तथा तपस्त्रियों और योगियोंके अक्षय ऐश्वर्य (अणिमादि) भी मुझे प्राप्त हों ।' ब्रह्माजीने उसे वे सभी वर दे दिये ।

(श्रीमद्भा० ७ । ३ । ४)

दैत्य-वालकों के पूछनेपर श्रीप्रह्लाद जीने स्वयं कहा है—'मेरा पिता तप करने मन्दराचलपर गया था, पिलेसे इन्द्र आदि देवोंने धावा किया । तब दैत्यगण इधर-उभर भाग गये । देवोंने छूढ-पाट कर मेरी माता कयाधू-को बंदी बना लिया । इन्द्र उसे ले जा रहे थे और वह रोती जाती थी । देविष नारद जी वहाँ आ गये । उन्होंने इन्द्रसे कहा कि 'इस निरपराध सती अवलाको छोड़ दो ।' इन्द्रने कहा कि 'इस निरपराध सती अवलाको छोड़ दो ।' इन्द्रने कहा कि 'इस के उदरमें दैत्यराजका वीर्य है, बालक होनेपर उसे मारकर इसे छोड़ दूँगा ।' नारद जीने कहा कि 'यह बालक हिरमक्त, निष्पाप और महात्मा है, इसे तुम नहीं मार सकते ।' देविषकी आज्ञा मानकर इन्द्रने मेरी माँको छोड़ दिया । 'इसके गर्भमें हिरमक्त है' ऐसा मानकर इन्द्रने मेरी माँकी प्रदक्षिणा

की और वे चले गये। मेरी गाँको श्रीनारद जीने अपने आश्रम-पर ले जाकर आश्वासित कर वहीं रहनेकी आज्ञा दी और कहा कि पतिके तपस्यासे आनेतक यहीं रहो। मेरी माँ वहाँ आश्रममें मुनिकी शुश्रृषा करती थी। दयाछु श्रीनारद जीने भागवतधर्म और विशुद्ध ज्ञानका उपदेश मेरे सुननेके उद्देश्यसे माँके प्रति दिया था। श्रीत्व-स्वभावसे मेरी माँको तो स्मृति नहीं रही, पर मुनिकी विशेष कृपासे मुझे स्मृति है।

(श्रीमद्भा० ७। ७। १--१६)

उधर हिरण्यकशिप वर पाकर भाईका वैर स्मरण कर विष्णुसे वैर करने लगा । उसने तीनों लोकोंको वश-में कर लिया । लोकपालोंकी शक्ति एवं उनके स्थान भी छीन लिये । देवगण स्वर्ग छोड़कर जहाँ-तहाँ फिरते थे । आकाशवाणीने देवोंको भरोसा दिया कि 'यह पुत्रद्रोह करेगा, तब मारा जायगा । उसके प्रह्लाद नामका एक पुत्र हुआ, वह गर्भके उपदेशानुसार धर्मात्मा और राम-नाम-जापक हरिभक्त हुआ । इसीसे हिरण्यकशिपु इस पुत्रसे वैर करने लगा। प्रह्लादको मारनेके लिये उसने बहुत-से उपाय किये । अस्त-रास्त्रोंसे मारकर, साँपोंसे कटवाकर, हाथियोंसे कुचळवाकर, पहाड़की चोटीसे गिरवाकर, समुद्र-में डळवाकर, पर्वतोंसे दववाकर तथा अग्निमें जळवाकर हार गया । अन्तमें वह इन्हें सभाके खंमेमें बँधवाकर स्वयं तळ्यारसे मारनेपर उद्यत हुआ । उसने धमकी देते हुए कहा-'बता, तेरा रक्षक राम कहाँ है ? अत्र मैं स्त्रयं मारता हूँ । प्रह्लादजीने कहा-- 'वह सर्वत्र है, तुममें, मुझमें, खङ्गमें और इस खंभमें भी है। हिरण्यकशिपुने कूदकर उस खंभेपर मुष्टिका मारी, तत्र बड़े भारी शब्दके साथ उसी खंभेसे भगवान् नृसिंह रूपसे प्रकट हुए। उस दैत्यके समक्ष विकरालरूपसे खड़े हो गये। दैत्य गदा छेकार भगवान्से युद्ध करने

ड़ाई, प्रतिह ।, दुराक त्याग कर्म चार आर्थि

[भाग ;

हे हिया।

कि राज्ये:

तलाकार 👸

एक मैहें

नने त्रिक्त

ओंको सुरा

में युद्ध कार

वर्ष वन्त्र

तरके गौळी

उन्होंने उसे

केया (महा

भोंकी भलीगी

ौओंकी क्षां

भाईको क

पालन का

बहुत अबि

ह कसाईड

रसे १४क

भी कार्त

की हिंगाई

लिये तेर्म

ाध कर्त्ह

सभीका म

चार आप पर्यन्त प्र

Fres

丽

गीत

₹H

होने

(रा

हरोग

विच

भोज

प्रभ

(सन

जान

阳

प्रस

प्रह

वि

विं

केह

लगा । भगवान्ने कुळ काल रण-क्रीड़ा कर उसे पकड़ लिया और घरकी चौखटपर अपनी जाँघोंपर गिरा नखोंसे उसका कलेजा विदीर्ण कर दिया और उसकी आँतोंकी माला पहन ली।

ब्रह्मा आदि देव एवं श्रीलक्ष्मीजी आदि कोई भी नृसिंह भगवान्को शान्त न कर सके; तव श्रीप्रह्लादजीकी ही प्रार्थनापर वे शान्त हुए और इन्हें वर माँगनेको कहा। इन्होंने निष्काम भक्ति ही माँगी। फिर अपने पिताके दोषोंको भी क्षमा करनेकी प्रार्थना की। भगवान्ने कहा कि 'तुम-सरीखे भक्तोंके पिताकी कौन कहे, इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं। तुम मेरी आज्ञासे इस मन्वन्तरभर राज्य करो। मेरी भक्तिमें रत रहते हुए अन्तमें मेरे धाम आओगे।'

(श्रीमद्भा० ७।४।१०)

श्रीप्रह्लादजीको गर्भमें ही श्रीनारदजीसे भागवतधर्म एवं विशुद्ध ज्ञानका उपदेश प्राप्त था, उसकी स्मृति इन्हें जन्मकालसे ही थी, इससे जन्मकालसे ही ये प्रेमपूर्वक श्रीरामनामका जप एवं कीर्तन करते थे। इससे इनपर आनेवाले विच्न निष्फल होते गये। इनके विरोधी नष्ट हो गये और इन्हें प्रत्यक्ष सिद्धि प्राप्त हुई । अतएव इनकी कथासे लाभ उठानेका संकेत शास्त्रोंमें है; यथा—

भवन्ति पुरुषा लोके मङ्गक्तास्त्वामनुवताः। भवान् मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक्॥ (श्रीमद्भा०७।१०।२१)

श्रीनृसिंह भगवान्ने श्रीप्रह्लादजीसे कहा है कि 'जगत्में जो पुरुष तुम्हारे अनुयायी होंगे, वे मेरे भक्त हो जायँगे; निश्चय ही तुम मेरे सभी भक्तोंके आदर्श हो' तथा—

'बेद बिदित प्रह्लाद कथा सुनि को न भगति-पथ पाउँ धरै ? (विनय-पत्रिका १३७) ऋग्वेदसंहिता म० १, अ० २१, सृ० १५४ में सूत्ररूपमें नृसिंह-अवतारकी कथा है, उसीका कि वेदके उपबृंहणरूप श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण कि इनकी कथा है, उसीका सूक्ष्म रूप उप के गया है, इसका अनुसरण कर उत्तम भिक्त करनी चाहिये।

श्रीप्रह्लादजीकी आदर्श भक्ति; यथा— 'नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे पहा

राम नाम नरकेसरी, कनक कसिपु कलिकाल। जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल॥ (रामचरितमानस वाल० २६-२७

श्रीरामनामका जप करते हुए प्रमु श्रीरामी प्रसाद (प्रसन्नता, अनुग्रह एवं निर्मळता प्रदान) कि उससे श्रीप्रह्लादजी भक्तशिरोमणि हो गये।

श्रीरामनाम नृसिंह भगवान्के समान है और जाल लोग श्रीप्रह्लादजीके समान हैं, यह (सद्गुणक्षी) हैं को दु:ख देनेवाले हिरण्यकशिपुरूपी कलिकालको माल (जापकका) पालन करेगा।

विशेष—'नाम जपत प्रमु ''''' अग्रिष्ट्राद्जी के पूर्वक रामनाम जपते थे, तब हिरण्यकशिपुने अर् अनुकूल गुण (विद्या) सिखाकर इनसे वैसे कर्म कर्ति चेष्टा की । वैसे राम-नाम-जपसे शुद्ध चित्रवर्ति भी शेष आयुके कालक्षेपमें कालानुसार गुणोंकी विषक्ती कर्म-कामनाएँ आती हैं, परंतु वे प्रमुके प्रसादसे अर्थ वियास होतीं । यथा—

(क) हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजीको पहाँ शिरवाया, पर इन्हें चोट नहीं लगी । वैसे ही किर्विकार बहुत लोगोंके कृत्य जापकको प्राप्त विवेकसे प्रिक्त जान पड़ेंगे। वे इसकी ऊँची दशाकी बढ़ा-चढ़ाका कि करेंगे, तब नाम-जपसे शुद्धचित्त जापकको विवेकसे लगेंगा कि यह बड़ाई कर मुझे पहाड़पर चढ़ाका दिने हैं है; क्योंकि मेरा खरूप तो अणु, भगवदाश्रित एवं असी

-नीका विका राण आहे

[भाग है

ऊपर है।

भक्ति ह

भे प्रहार्।

लेकाल।

साल ॥

० २६-२०

श्रीरामजी

ान) किय

और जाफ़

इपी) है

लको मारू

ह्लादजी फ्रे

शेपुने अ

कर्म कार

चित्तवारेष

ी विषमता

से उसे बं

पहाड्पा

कालिकाल

से प्रतिष्

इाकार खी

वेवेकसे म

का दकेंग

एवं अस्म

हैं कारण जीवात्मा भगवान्का शरीर है। अतः इसमें थ एग उन्हींके प्रकाशसे हैं और इसके कर्म उन्हींकी दी र्ह्ध शक्तिसे हैं। इस विचारके साथ आराधनापर रामनाम-क्रमबुक्षके द्वारा प्रभु-प्रसादसे चोट नहीं व्याप्त होगी---गीता ४। ११ एवं ७ । २१-२२ के प्रतिज्ञानुसार सकी रक्षा होती रहेगी।

(ख) इसी प्रकार त्वगिन्द्रिय-विषय (को भल वस्त्र, श्या आदि एवं स्त्री-संसर्ग) की प्राप्ति जगत्के द्वारा होनेपर यह हाथीसे कुचलवानेके समान डरता हुआ (शरीर-निर्वाहमात्र वस्त्र एवं धर्मपत्नी-संसर्ग रखता हुआ) रामनामपरायण रह सुरक्षित रहेगा ।

(ग) नेत्र-विषयको जछादके समान विचार कर होगाः क्योंकि रूपासक्तिपर अन्तिम संकल्पानुसार गीता ८।६ के अनुसार फिर-फिर जन्म-मरण होंगे। इस विचारसे जापककी उपर्युक्त रीतिसे नामद्वारा रक्षा होगी।

ं(घ) जैसे प्रहादजीको उनकी माताके द्वारा भोजनके साथ विष दिया गया, पर रामनामके जपके कारण प्रभुप्रसाद्से वे बचे रहे । वैसे ही इस जापकको जगत्से सिनाके सुखद परार्थ प्राप्त होते हैं, उन्हें यह विषय-प्रवर्द्रक जानकर विषके समान मानकर डरता हुआ शरीर-निर्वाह-मात्र ग्रहण करता है । प्रकृति-परिणाम-शरीरकी ममता-ह्मिणी माता खिलाती है, पर सप्रेम नाम-निष्ठापर श्रीराम-प्रसादसे यह सुरक्षित रहता है।

(ङ) हिरण्यकशिपुने अपनी बहन होलिकाके द्वारा प्रहादजीको जलाना चाहा था। होलिकाका यह प्रभाव या कि यह जिसें गोंदमें लेकर चितामें बैठे, वह जल जाता था और वह स्वयं ज्यों-की-त्यों रहती थी । वह वितामें प्रह्लादजीको लेकर बैठी; परंतु नाम-निष्ठा-प्रभावसे वहीं जल गयी, प्रह्लादजीका कुछ नहीं विगड़ा । इन्होंने

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापरामनैकभेषज्ञम् । नाम-अः दः ॥ । सर्वतापरामनैकभेषज्ञम् । Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पर्य तात मम गात्रसंगतः पावकोऽपि सलिलायतेऽधना॥

(नृसिंहपराण)

श्रीप्रह्लादजीने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा है कि 'रामनाम जपनेवालेको कहाँ भय है ? यह रामनाम सर्व तापों (आविदैहिक, आविमौतिक और आविदैविक तापों) को नष्ट करनेकी एकमात्र ओषि है। हे तात ! देखिये, मेरे शरीरके संगसे अग्नि भी इस समय शीतल जल-सी हो रही है।

हिरण्यकशिप ही दूसरे जन्ममें रावण हुआ है, वह मोहरूप कहा गया है--(विनय-पत्रिका ५८ देखिये) अतः हिरण्यकशिपुकी वहन होलिका मोहकी वहन अविद्यारूपिणी है। इस अविद्याकी गोदमें बैठा हुआ जीव जगत्को एक भगवान्का शरीर न मानकर नानात्व-दृष्टिसे रागद्वेषकी अग्निमें जला करता है। नानात्व जगत-के विविधरूप काष्ठकी लकड़ियोंकी चिता है। अविद्या-दृष्टिसे जीव इनमें आसिक्तसे तीनों तापोंसे जला करते हैं । ये बार-गर जन्म लेकर जलते और मरते हैं, अविद्या ज्यों-की-स्यों रहती है।

सप्रेम नाम-निष्ठासे जापक जगत्के सम्बन्धोंमें रहता हुआ भी विवेकद्वारा तीनों तापोंसे नहीं जलता; प्रत्युत तापदात्री अविद्या ही जल जाती है; तथा--

राम, राम, राम, जीय जौलीं तू न जिपहै। तौलों त् कहूँ जाय तिहूँ ताप तिपहें॥ (विनय-पत्रिका ६८)

ऐसेज कराल कलिकालमें कृपाल तेरे नामके प्रताप न त्रिताप तन दाहिये॥ (कवितावली उ० ७९)

जो मन प्रीति-प्रतीति सों रामनामहि रातो । तुलसी राम प्रसाद सो तिहुँ ताप न तातो ॥ (विनय-पत्रिका १५१)

यहाँतक जीवनपर्यन्त जापककी रक्षाके लक्ष्य कहे गये । अन्तकालकी रक्षाका लक्ष्य भी श्रीगोखामीजीने नाम-वन्दनाके अन्तके दोहेसे दिखाया है-

किय

परिव

'राम नाम नरकेसरी ''''—हिरण्यकशिपु अपने सभी उपायोंसे श्रीप्रह्लादजीको अवध्य देखकर अन्तमें खयं इन्हें सभाके खंमेमें बाँधकर तलवार लेकर मारनेपर उद्यत हुआ । उसने कृद्ध होकर कहा, बता, तेरा रक्षक राम कहाँ है ! इन्होंने सर्वत्र कहते हुए उस खंभेमें भी कहा, तव उसे उस खंभेमें नृसिंहका आकार लक्षित हुआ, उसने उसीपर मुष्टिका मारी । तब भगवान नृसिंह रूपसे उसी खंभेमेंसे प्रकट हो गये । फिर उन्होंने हिरण्यकशिपको मारकर प्रह्लादजीको गोदमें लेकर लाड्-प्यार किया ।

जापकके पक्षमें शरीर ही खंभा है। अवशिष्ट प्रारब्धकी आयु रस्सीका बन्धन है। जापक प्रह्लाद है; क्योंकि नामके प्रभावसे उसका आह्वाद अत्र प्रकर्ष सिद्ध हो गया है। कलिमय जगत्के किसी भी विव्रसे नष्ट नहीं हुआ । मोह (देहाभिमान) हिरण्यकशिपु है, यहाँ किलिमय जगत्का अन्तिम (मृत्यु समयका) काल, किलकाल हिरण्यक्रशिपु है, जो मोहकी अन्तिम बाधा है।

हिरण्यका अर्थ सोना है और कशिपुका अर्थ यहाँ पश्यक अर्थात् द्रष्टा है। मोह-वशीभूत जीवोंको देह खर्णवत् अत्यन्त प्रिय लगता है, इससे मरते समय वे इसे छोड़ना नहीं चाहते । परंतु जापकरूप प्रह्लाद नाम-निष्ठासे प्राप्त विवेकसे इस देहसे असंग रह शरीररूपी खंमेमें अपनेको आयुरूपी रस्तीमें बँघा हुआ मानता है, अतः इससे छूटनेकी ष्रतीक्षामें रहता है, इससे मृत्युसे नहीं डरता ।

जैसे वहाँ खंमेपर नृसिंहाकृतिपर मुष्टिक-प्रहारसे नृसिंह प्रकट हो गये और उन्हींसे रक्षा हुई, वैसे ही जापकके शरीरपर नामका नृसिंहरूप (पश्च संस्कार-रूपमें) रहता है, उसीके तात्विक ज्ञानसे जापककी रक्षा होती है।

नृसिंह भगवान्का आधा शरीर नरका और आधा सिंहका रहता है। वैसे जापकके नर-शरीरपर नामकी खेतवाही वस्वर्ध । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haribwar

पञ्चसंस्कारात्मक पञ्चाननाकृति रहती है। सिंहके एक ही रहता है, चार पञ्जोंसे भी वह मुखकी सी के फाड़ करता है, इसीसे पश्चानन कहलाता है। मुखके समान रामनामका मन्त्र रूप है। राम नाम मकार स्वरहीन होकर बीज होता है, बीजका कि (अर्थ) ही अवशिष्ट पाँच अक्षर होते हैं। यह (पक्क है 3 राममन्त्र) कानमें दिया जाता है और वाणीसे ज जाता है। मुद्रा (धनुर्जाण) वायुतत्त्वकी कोंकि हंमे हाथोंपर चिह्रस्त्पमें दिया जाता है। अर्ध्वपुण्ड्रूष्पके के छछाटपर (प्रधानतया) किया जाता है। कण्ठी कलें पहनायी जाती है; क्योंकि रसतत्त्वके रसनागृहीत पा वैसे कण्ठसे होकर भीतर जाते हैं। नाम-संस्कारका पृथिकी लोगोंसे व्यवहारमें सम्बन्ध रहता है।

पाँचों संस्कार अपने तत्त्वार्थोंसे जापकके की विषयोंके विकारोंसे रक्षा करते हैं। *

सिंह यदि अजा (बकरी) के मुखको मुखसे हैं। उसके चारों पाँवोंको अपने चारो पञ्जोंसे पकड़ है। क्षणभरमें मार छेता है, वैसे ही इस नृसिंह रूपसे 🕫 अजा (माया) के पश्चाङ्गों (शब्द, स्पर्श, रूप, ह गंध) को अपने पञ्चसंस्काराङ्गोंसे उनके तत्त्वार्थद्वारा अ शीघ्र निर्विकारकी रक्षा करता है। अजाके अर्थमें ग्रिण त्मिका माया; यथा-

'अजामेकां लोहितशुक्रकृष्णाम्' (क्वेता० ४ । ५) इस श्रुतिमें रजोगुण लाल, सच्च खेत और तमीण खाळी काळी प्रकृति (माया) कही गयी है। वैसे वकरी भी लाल, स्वेत एवं विशेषकर काली होती माया भी तमोमयी होती है। बकरी 'में,'में' बेहने

* इन पाँचों संस्कारोंके तत्त्वार्थ मेरे प्रन्थ 'प्रपति^{रहर}' और 'श्रीमन्मानस-नाम-वन्दना' में हैं। 'प्रपत्ति-रह्स्य' ई पता सद्गुर-कुटी, गोलाघाट, अयोध्या और श्रीमत्मार्क नाम-वन्दना' का—'खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वर वें

[भाग ३३

सिंहके की-सी के 色一般 राम नामश् नका विका

नह (पड्स गणीसे जा ी कॉर्मीन्द्रा

रूपके के कण्ठी वार्छ

हीत परा का पृथिवी

कके पाँचे

मुखसे औ नकड़ हे है

रूपसे गा ह्तप, स

र्थद्वारा औ में त्रिगु

10 8 14) र तमोगु 一部首

होती हैं , बोलने पत्तिरहर्व

-रहस्य ई त्रीमन्मान्स

हरेश्वर वेह

जाती है। मायाकी पहचान भी ऐसी ही कही जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत हो ह श्रुति गावा॥ ायी है; यथा--

∦ अरु मोर तोर तें माया । जेहि वस कीन्हे जीव निकाया ॥ (रामचरितमानस अर० १५)

इसमें 'मैं' ही मूल है, 'मैं' से 'तेंं' तथा 'मोर' होता है और 'मोर' से 'तोर' होता है ।

मायाके कार्यरूप पञ्चतत्त्वात्मक जापकके शरीररूप क्षेपर मृत्युकालका प्रहार आते ही नामके उपर्युक्त ग्रीसहरूपताके तत्त्वज्ञानसे मोहरूप हिरण्यकशिपुका सर्वथा गा हो जाता है। प्रह्लादजीका वन्धन छूट गया। वैसे ही जापकका भी संसार-वन्धन सदाके लिये छूट जाता है।

र्गिह भगवान्ने प्रह्लादजीको गोदमें लेकर प्यार क्रेया है, वैसे ही जापक अपने नित्यरूपसे भगवान्का पिकर हो उनके प्यारका पात्र हो सदाके लिये कृतार्थ हो जाता है । प्रमाण--

(रामचरितमानस अरण्य ३१)

अन्तकाले च मामेच सारनमुक्तवा कलेवरम्। यः प्रयाति स मजावं याति नास्यत्र संशयः॥ (गीता ८ । ५)

यस्य नाम महद्यशः न तस्य प्रतिमास्ति। (यजुः अ०३२ मन्त्र ३)

जिस (पर्मात्मा) के नाम और यश महान् हैं, उसकी बराबरीका कोई नहीं है।

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामेति नाम यः सारेत्। स पापारमापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने॥ (पद्मपुराण, क्रियायोग० व्यासवचन)

इस प्रकार श्रीप्रह्लादचरितसे रामनाम-निष्ठा एवं भक्तिकी परम शिक्षा प्राप्त होती है।

दूसरोंके दुःखोंमें अपना हिस्सा बँटवाओ

मत देखो किसके अंदर है कहाँ छिपा बैठा शैतान। दीखे तो, सद्भाव-शस्त्रसे करो तुरत उसका विट्यान॥ देखो सबके अंदर नित्य विराजित मंगलमय भगवान। पूजो प्रेम-सुमनसे उनको, रखो जगाये नित रख ध्यान॥ प्राणिमात्रमें रहे कहीं भी नहीं तुम्हारा किंचित् द्वेष। वितरण करो प्रेम शुचि सबमें करो दुःखमें दया विशेष ॥ क्षमा करो सबके दोषोंको ममता-अहंकार कर त्याग। सम सुख-दुःख रहो, बँटवाओ, पर-दुःखोंमें अपना भाग॥



मधुर

उद्भवजी व्रज पथारे। यशोदा मैया-नन्दवावासे मिले, गोपी-गोपबालकों तथा श्रीगोपाङ्गनाओंसे मिले। फिर एकान्तमें महामहिमामयी श्रीकृष्णकी नित्य अभिन्नखरूपा श्रीराधारानी-से मिले। राधाजी प्रेममें उन्मादिनी हो रही हैं, वे कभी तो ऐसा अनुभव करती हैं कि मैं प्रेमसे सर्वथा शून्य हूँ, केवल प्रेमका दम्भ करती हूँ; कभी प्रेमसरिताके एक विमल वियोग-तटपर अपनेको रोती-विलखती पाती हैं और कभी श्यामसुन्दरके मिलनका अनुभव कर आनन्दमत्त हो जाती हैं। वातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने उद्भवसे कहा—

उद्भव ! मुझमें तनिक नहीं है, प्रियतसके प्रति सञ्चा स्नेह। इसीलिये नहीं निकलते निष्दुर प्राण ' छोड़कर देह ॥ थे चढ़े जा रहें वे मथुरा जब अक्रके संग। फिर फिर देख रहे थे मेरी ओर दूरसे विगत उमंग ॥ जीवित छौटी प्रियतम-ही शून्य भवनमें लेकर प्राण। हुआ न हृदय विदीर्ण उसी क्षण मेरा पामर वज्र-समान॥ मनमें भरा लोभ जीवनका तनमें अतिशय ममता-मोह। इसीलिये ये प्राण अभागे सहते दारुण व्यथा-बिछोह ॥ दम्भपूर्ण रोना-धोना यह है सब मेरा विलाप। करुण भोले समझ नहीं पाते हैं मेरे मनका पाप ॥ **प्रियतमके** वियोगमें भी में रही निज चला योगक्षेम । उद्धव ! तुम ही समझो मेरा कहाँ **३यामसुन्दरमें**

· उद्भवजी ! प्रियतम स्यामसुन्दरके प्रति मे_{। सि} ब्रेम तनिक भी नहीं है। इसीछिये तो मेरे ये लि प्राण शरीरको त्यागकर निकल नहीं रहे हैं। अक्ष जव स्यामसुन्दर रथपर सवार होकर अक्रूके 🤉 मथुराको जा रहे थे, (तत्र मैंने देखा) वे दूरसे काल पीछेको मुँह फिरा-फिराकर मेरी ओर देख रहे थे। उन दृष्टिमें कोई उमंग—उत्फुलता नहीं रह गयी थी। बड़े उदास थे। इसपर भी मैं जीती-जागती अपने प्रा को लेकर प्रियतम स्यामसुन्दरसे शून्य इस का लौट आयी । उसी क्षण मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हो एव अवस्य ही वह पामर वज्रके समान कठोर है। हा विदीर्ण कैसे होता ? मेरे मनमें तो जीवनका लोग है और शरीरमें मेरी अतिशय ममता तथा मोह है इसीलिये ये अभागे प्राण दारुण बिछोह-न्यश सहते। रह रहे हैं। (यह मेरी सची व्याकुलता—सची मि पीड़ा नहीं है।) मेरे सम्पूर्ण रोने-धोनेमें और करण विलापमें दम्भ भरा है। मैं दिखावेंके लिये ही ह करती हूँ और मेरे माधव बड़े सीघे हैं, वे मेरे म इस पापको समझ ही नहीं पाते । (समझते होते मुझे सान्त्वना देनेके लिये तुमको क्यों मेजते।) प्रियत वियोगमें भी मैं अपने योगक्षेमका वहन कर ही (सचमुच वियोगपीड़ा होती तो योगक्षेम किसे सूजी इसीसे उद्भव ! तुम समझ लो कि मेरा प्रियतम स्थामहर् में (सचा) प्रेम कहाँ है **?** (इतनेमें भाव ^{बदहा ह} वे विरहन्याकुल होकर बोर्ली-)

छिदता है, होते सत्य, हृदय 夏南川 उसके नहीं किंत जाती, जिससे विरह-मुक्त हो मूक ॥ जाता हो मरकर मन विरह-विकल मूर्छा होती त्याग करती चेतना पर

संस्या ६]

ति मेत ह

नरे ये निष्

। उस कि

अक्रूरके हा

दूरसे वात्व

हे थे। अनु

गयी थी।

अपने प्रारं

इस भक्त

हीं हो ग

है।

का लोग म

मोह है

ाथा सहते ह

—सची कि

र करणा

लिये ही ह

वे मेरे म

ाझते होते

1) प्रियतन

तर ही

तसे सुराता!

म स्थामपुरी

व बदला है

हुक ॥

मूक॥

त्याग

सदा जलाती रहती, अन्तर बढ़ती उरमें आग ॥ भीषण समीपसे, प्रियतमके मेरे आये हो उद्भव ! बङ्भाग। सुनाओ और संदेश कुशल, भेजा हो कर अनुराग॥

'सचम्च हृदय तो विदीर्ण होता है, परंतु उसके दो रुक नहीं हो जाते। (दो ट्रक हो जाते तो) मैं बिरहसे छूट जाती और मेरा मन भी मरकर चुप हो जाता। (बिलाप-प्रलाप नहीं करता ।) विरहसे व्याकुल होनेपर मुझे मुर्छा तो होती है, परंतु (भीतरी) चेतना मुझे सागकर नहीं जाती । हृदयमें विरहकी भीषण आग बढती हती है, जो हृदयको सदा जलाती रहती है। बङ्भागी उद्व ! तम मेरे प्रियतमके पाससे आये हो । उनका कुशल-समाचार धुनाओ और उन्होंने अनुराग करके कोई संदेश मेजा हो तो उसे भी सुनाओ ।'

उद्भवजीने श्रीराधाको उनके प्रियतम श्रीकृष्णका कुराल-संवाद सुनाकर फिर उनका निम्निटिखित मधुर गम्भीर संदेश सुनाया-

राधे ! क्या संदेश सुनाऊँ, क्या कहलाऊँ सनकी बात। छिपा नहीं तुमसे कुछ भी जव घुलामिला रहता दिनरात ॥ अहैतुक हम दोनोंका, प्रिये ! प्रेम यह अति पावन। निरन्तर बढ़ता रहता, सहज मधुरतम मनभावन ॥ नहीं घटा सकते इसको हैं, कैसे भी शत-शत अपराध। भनुनय-विनय-—विषय-सुख मिध्या नहीं बढ़ा सकते निष्कारण, निरूपाधिक, कर साध॥ निर्मल, नीरव,

अपरिमेय. अनवद्य. अति-र्वचनीय अनन्त, अकाम, अदीन ॥

'राधिके ! तुम्हें क्या संदेश सुनाऊँ, मनकी कौन-सी बात तुमको कहलाऊँ ? जब मैं दिन-रात तुमसे घुळामिळा ही रहता हूँ, तब मेरा कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है। (मेरे सभी रहस्योंको तुम जानती हो।) प्रियतमे ! तुम्हारा और मेरा यह प्रेम नित्य है, अहैतुक है। (किसी भी हेतुसे बना हुआ घटने-बढ़नेवाला नहीं है ।) यह अत्यन्त पवित्र करनेवाला है । यह म्ध्रतम मनभावन प्रेम नित्य-निरन्तर सहज ही बद्ता रहता है । सैकड़ों-सैकड़ों कैसे भी अपराध इसको जरा भी नहीं घटा सकते और न झूटे अनुनय-विनय तथा विषय-सुख ही इच्छा करके भी इसे बढ़ा सकते हैं। यह प्रेम कारणरहित है, उपाधिरहित है, मलरहित है, बाहर बोलनेवाला न होकर मनकी चीज है, नित्य है, सीमारहित है, परिमाणरहित है, दोषरहित है, वाणीमें नहीं आनेवाला है, अन्तरहित है, कामनारहित है और उदार है।

अति शुचि गुरुतर प्रेम दिन्य यह दुर्लभ स्धाविनिन्दक स्वाद् । कैसे वाणीमें ला कर ₹, इसे अगुचि, लघु, मैं अस्वाद ॥ मथुरामें रहकर रहता प्रिये ! तुम्हारे संतत पास। प्रेमसे बँधा, इसी न पाता में अन्यत्र कदापि स्पास ॥ नित्य प्रेममें करता अपने अति अभावका बोध। बढते अपारका राधे ऋण कर पाऊँगा शोध॥ न

ध्यह दिव्य प्रेम अत्यन्त पवित्र है, गुरुतर है और अमृतको भी निन्दनीय कर देनेवाले दुर्लभ स्वादसे पूर्ण है। इसे वाणीमें लाकर मैं कैसे अपवित्र, लघु और नित्य, इयत्ताहीन । ई | ६स वाणाम प्यापार प CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

स्वादरहित बना दूँ। (जो प्रेम वाणीमें आ जाता है, वह अग्रुद्ध क्षुद्र तथा स्वादर्ग्न्य हो जाता है।) प्रिये! मैं मथुरामें रहकर भी इस पिवत्र प्रेममें बँधा हुआ सदा तुम्हारे पास रहतां हूँ। मुझे अन्यत्र कहीं भी कभी आराम नहीं मिलता। परंतु राघे! मैं तुम्हारे प्रति अपने प्रेममें सदा ही अत्यन्त कमीका बोध करता हूँ, तुम्हारा मुझपर अपार ऋण बढ़ा ही जा रहा है। इस ऋणकों मैं कभी भी चुका नहीं सकूँगा।

प्रियतम श्रीकृष्णका प्रेम-संदेश सुनकर राधा कुछ समयके लिये भावनिमग्न हो गयीं । तदनन्तर उन्हें दिखायी दिया, सचमुच श्रीकृष्ण सदा मेरे पास ही तो रहते हैं। परंतु फिर भावान्तर-सा हो गया । वे उद्धवसे कहने लगीं—

उद्भव ! सत्य सुनाया तुमने, मुझको त्रियतमका संदेश। घुले-मिले रहते मुझमें वे प्रियतम सर्वं काल, सब देश॥ में प्रेमग्रून्य रसवर्जित रसमय दिव्य चक्षसे निरन्तर रहते भी मैं देख न पाती मलिना दीनं॥ कसी विरह-व्याकुल हो जाती कर उठती तब करुण पुकार। प्राणोंके प्राण ! द्यित दीनदयाई हदय सुकुमार ॥ यमुनापुलिन नाचते सुन्दर नटवर वेश धरे वनस्याम । नहीं दिखाओंगे क्या दुःखिनि-को अब वह मुखचन्द्र ललाम॥

'उद्भवजी ! तुमने प्रियतमका यह सचा संदेश ही सुनाया है। सत्य ही, वे प्रियतम सब समय और सर्वत्र मुझमें घुळे-मिळे ही रहते हैं। पर मैं प्रेमश्र्न्य हूँ, मुझमें प्रेम-रसका सर्वथा अभाव है और मैं प्रेमानन्दमय दिन्य चक्कुओंसे रहित हूँ। अतएव निरन्तर पास रहनेपर भी मैं CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

दीना-मिलना उन्हें देख नहीं पाती । कभी बिह्नकृ हो जाती हूँ—तय करुण-स्चरसे पुकारने लाती हैं जाती हूँ को पण ! हे प्रियतम ! हे दीनले को मिलहृद्य ! हे घनश्याम ! तुम सुन्दर नटवर वेश का करके यमुना-तटपर नाचा करते थे, क्या अब अमा लिलत मुखचन्द्र इस दु: खिनीको नहीं दिखाओं।

(मेरे दीन होकर ऐसा कहते ही--) कोटि-कोटि विधु-सुधा मधुर हो सहसा उद्य स्याम रस-सार। अमित लगते सतत बरसाने शीतल परम सुधाकी धार॥ युगपत् वाह्याभ्यन्तर होता मधुर मिलन अश्राना। उनका विरह-यन्त्रणाकी सब उवाला हो जातीं तुरंत ही शान्त॥ **उ**ठतीं प्रेम-सुधा-रस-सागर-उत्ताल तरंग। अनन्त

हो जाते प्रफुछ सब अवयव प्रिय आलिङ्गन-संग॥ पाकर प्रेमसागर उठता नाच तब रस-राशि जाती वद विस्मृत हो जाता तब सब कुछ संसार ॥ कौन शरीर कहाँ

'करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमाओंकी मधुर सुवाकों रस-सार इयामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हो की और अपिरिमित रूपमें अविराम परम शीतल अमृतकी बरसाने लगते हैं। बाहर और भीतर एक ही सार्व का मधुर मिलन होता है। मैं और वे मिलते-मिलते थकते ही नहीं। मेरी विरह-यन्त्रणाकी सारी जा तरते ही शान्त हो जाती हैं। तब उस प्रेमार्क समुद्रमें अनन्त ऊँची-ऊँची तरक्षें उठने लगती हैं। सारे अवयव (आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय) प्रियत मधुर आलिङ्गन तथा सङ्ग प्राप्त करके प्रकृति हैं। प्रेम-समुद्र नाच उठता है और उसमें रसकी

िमाग है। विरह-ग्रा लगती हूँ हे दीना

वर वेश का अन्न अपना व ताओंगे ए .)

अ-सार। धार ॥

श्रान्त।

शान्त॥

न-संग ॥

तरंग।

अपार ।

वंसार ॥ सुवाको है

हो जो अमृतकी ही साथ है

ते-मिलते न सारी ज

न प्रेमास्ट गती हैं।

छित हो है

) वियति रसकी अ

बाढ़ आ जाती है । उस समय कौन है, कहाँ है, शरीर है या संसार है, यह सत्र कुछ विस्मृत हो जाता है। (रह जाता है केवल रस-ही-रस--'रसो वै सः।' रसरूप श्यामसुन्दर)।

इसी समय सहसा फिर मन-मोहन हो जाते अन्तर्धान। जल उठतीं फिर वही विरहकी ज्वाला, अति सन होता म्लान ॥ फिर मनमें आती-में क्यों हूँ जलती उनकी करके याद ? नहीं योग्य मैं उनके किञ्चित दोषमयी नित भरी विषाद ॥ ह्प-शील-गुणहीन कहाँ में, रूप-गुण-शील-निधान । कहाँ प्रेमसागर सुविज् वे, कहाँ प्रेमविरहित कहाँ अज्ञान ॥ उद्भव ! इसी दुःख-सुख-सागर-में में रहती नित्य निमग्न । इतना ह संतोष, वृत्ति अविरत रहती उनमें संलग्न ॥ (खिळा हुआ) मुख तुरंत अत्यन्त मिळन हो जाता । फिर मनमें आती-मैं उनके योग्य ही नहीं हूँ, (तब वे मुझसे क्यों मिलते ?) तब फिर उनकी याद करके मैं क्यों जलती रहती हूँ । मैं तो जरा भी उनके योग्य नहीं हूँ, दोषोंसे भरी हूँ और सदा विषादमें हूवी रहती हैं। (जो उनकी हो जाती है, वह तो सदा आनन्दमें ही डूबी रहती है।) कहाँ मैं रूप, शील तथा गुणोंसे रहित और कहाँ वे रूप, शील, गुणोंके भण्डार ! कहाँ वे प्रेमसमुद्र, महान् ज्ञानी और कहाँ मैं प्रेमसे सर्वथा रहित, गँवार । उद्भवजी ! (अधिक क्या कहूँ) मैं इसी प्रकार निरन्तर दु:ख-सुख-सागरमें डूबी रहती हूँ। पर इतना संतोष है कि (चाहे दु:खमें रहूँ, चाहे सुखमें) मेरी वृत्ति रहती है सदा अविराम उन प्रियतम श्यामसुन्दरसे ही चिपटी हुई ।' (इतना कहकर राधा प्रेमविद्वल हो गयीं और उधर-)

ही उद्भवके अन्तर सुनते में उमड़ा अतिशय अनुराग। हो श्रीराधा-पडे सुग्ध चरणों में तुरत चेतना त्याग ॥ 'इतना सुनते ही उद्भवजीके हृदयमें अत्यन्त अनुराग

उमड़ा और वे मुख होकर श्रीराधाजीके चरणप्रान्तमें 'इसी समय मनमोहन स्यामसुन्दर सहसा अन्तर्धान हो जाते और विरहकी भारी ज्वालाएँ जल उठतीं । मेरा अचेतन होकर गिर पड़े ।'

बार-बार निश्चय करो —

मुझपर सर्वराक्तिमान् भगवान्की अनन्त कृपा है। वे भगवान् मुझपर अहैतुक प्रेम करते हैं। उनकी कृपाशक्तिसे मेरे सारे विघ्न-वाधा नष्ट हो गये और हुए जा रहे हैं। उनकी कृपाशक्तिके प्रकाशमें मेरे समीप किसी प्रकारका अन्धकार नहीं आ सकता। उनकी रूपाशक्तिसे मेरे सारे दुर्गुण-दुर्विचार नष्ट हो गये हैं। उनकी रूपाशक्तिसे मुझमें विश्वास, प्रेम, शान्ति, समता आदि उत्पन्न हो गये हैं। उनकी रूपाशिकसे मेरी वृत्ति संसारसे हटकर उन्हींमें रमने लगी है। उनकी रुपाशक्तिसे मेरा भविष्य परमोज्ज्वल हो गया है। मैं समस्त पाप-तापसे मुक्त होकर उनके चरणकमलोंमें निश्चय ही पहुँच जाऊँगा।

गोस्वामी तुलसीदासजी प्रतिदिन किस ग्रन्थका पाठ करते थे ?

(लेखक--पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

आज संसारमें सबसे अधिक पाठ हनुमानचालीसा तथा रामचिरतमानसका ही होता है। पर तुल्सीदासजीने अन्तिम अवस्थामें इनकी रचना की, अतः उनके द्वारा इन पुस्तकोंके पाठकी सम्भावना ही नहीं होती। फिर यह बात खाभाविक है कि उनका दैनिक कार्यक्रम तीर्थमें घूमते-घामते भी सदा कुछ पाठ करते ही जाता था। भागवत, वाल्मीकिरामायण आदिका पाठ वे खूब करते थे, पर उनका प्रतिदिन पूरा पाठ सम्भव नहीं। और उन दिनों इतनी बड़ी पुस्तकों चलते-फिरते सर्वत्र लिये चलना अथवा प्रतिदिन इनका पूरा पाठ भी सम्भव न था और न वैसी विधि ही है। पर इस जिज्ञासाका सुन्दर समाधान उनके प्रन्थोंसे हो जाता है। उनको एक सहस्रनाम बहुत ही प्रिय था। वे उसका प्रतिदिन पाठ करते थे और चलते-फिरते भी पाठ करते रहते थे। यह इसलिये कि उस सहस्रनामकी पाठविधिमें भी इसका उल्लेख है, यथा—

मार्गे च गच्छमानास्तु ये पठिन्त द्विजातयः। न दोषा मार्गजास्तेषां भवन्ति किल पार्वति ॥

इस सहस्रतामकी महिमा भी बहुत है और माहात्म्य-वर्णनके ६० रहोक हैं। माहात्म्य-वर्णनके हिये सहस्र-नामाध्यायके अतिरिक्त एक खतन्त्र अध्याय भी है। इसके माहात्म्यमें यहाँतक कहा गया है कि इसका एक बार

१-(क) किसी छोटे स्तोत्रके एक बार पाठका प्रायः ऐसा महत्त्व बहुत कम मिलता है। पर हनुमान्जीद्वारा किये गये रामस्तोत्रका पाठ भी ऐसा ही कुछ है। यथा—

अनेकक्षेत्रधान्यानि गाश्च दोग्ध्रीः पयस्विनीः । आयुर्विद्याश्च पुत्रांश्च भार्यामपि मनोरमाम् । एतस्तोत्रं सकृद्धिपाः पठन्नाप्नोत्यसंश्चयः ॥

(स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड, सेतुमाहात्म्य ४६ । ६२)

(ख) पद्मपुराण उत्तर० अध्याय १२७ में आये 'योगसारस्तोत्र'का फल भी कुछ इसी प्रकार है— भी श्रवण, पठन अथवा जप करनेसे साङ्गवेद, प्राक्ष्म शास्त्र, स्मृतियों तथा कोटि-कोटि मन्त्रोंके भी श्रवणमा तथा पाठका फल प्राप्त हो जाता है। जो इसके ए स्लोक, पाद अथवा एक अक्षरका भी प्रतिदिन ए करता है, उसके सभी मनोरथ तत्काल सिद्ध हो जो हैं, फिर समुचे स्तोत्र-पाठकी तो बात ही क्या— सर्

H

मैन

आ

元

服

क

ही

पर

कि

देवं

प्राप्त

ना

सक्रद्स्याखिला वेदाः साङ्गा मन्त्राश्च कोटिशः।
पुराणशास्त्रस्मृतयः श्रुताः स्युः पठितास्तथा।
जप्त्वा चैकाक्षरं इलोकं पादं वा पठित प्रिये।
नित्यं सिध्यति सर्वेषामचिरात् किमुताखिलम्॥

पूज्यपाद श्रीगोस्त्रामीजी महाराजने इस सहस्रा तथा इसकी बातोंका बहुत जगह उल्लेख किया है। दोहावली (दोहा १८८) में वे लिखते हैं—

सहस्रनाम मुनि भनित सुनि 'तुल्रसीबङ्घम' नाम। सकुचत हिय हँसि निरक्षि सिय धरमधुरंधर राम॥

इस दोहेका प्रायः सभी टीकाकारोंने यही अर्थ कि है कि मुनिके कहे हुए रामसहस्रनाममें 'तुलसीवझा

> चतुर्णामपि वेदानां त्रिरावृत्या च यत्सलम्। तत्फलं लभते स्तोत्रमधीयानः सकृत्नरः॥ (पद्मपु॰ उत्तर॰ १२७। २८८, मोर प्राच्य संस्कृतः कलकत्ता, आनन्दाश्रम पूनामें २४९। १४०)

> महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः। सद्यो भवति ग्रुद्धात्मा स्तोत्रस्य पठनात् सकृत्॥ (वही स्त्रो॰ २८१।

> (ग) लिलतासहस्रनामकी महिमा भी देखते ही की

है। यथा— यः पठेन्नामसाहस्रं जन्ममध्ये सङ्क्राः। तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्विकित्वि^{षे:॥} (कल्रुश्रुति ४^{२,४३)}

२-जहाँतक ज्ञात है, अभीतक किसी सजनने इस देशि ओर विशेष श्रम करनेका कष्ट नहीं किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नाम पुनकर रामजी हँसकर सीताजीकी ओर देखते हुए मुकुचाते हैं।' (श्रीकान्तरारणजी, दीनजी आदि) हाँ ध्यान देनेकी बात है कि तुलसीदासजीने केवल भहस्रनाम' शब्द लिखा है, 'रामसहस्रनाम' नहीं। मेंने अग्रतक चार-पाँच रामसहस्रनाम देखे हैं। एक तो अनन्दरामायणके राज्यकाण्डके पूर्वाद्भके प्रथम अध्यायमें है, जो गणेशजीद्वारा कहा गया है । दूसरा मन्त्र-महार्णवका है, जो गीताप्रेससे प्रकाशित है। तीसरा कारादि रामसहस्रनाम है, जिसमें सभी नाम रकारसे ही आरम्भ होते हैं | चौथा 'मकारादि' है, जिसमें सव नाम मकारसे आरम्भ होते हैं, ये काशीसे प्रकाशित हैं। प इनमेंसे किसीमें भी 'तुलसीवछभ' शब्द एक दम नहीं आया। 'महाभार'त' के तथा स्कन्दें एवं गरुड़पुराणमें प्रोक्त विष्णुसहस्रनामोंमें भी यह शब्द नहीं मिलता । किमधिकं यह शब्द एकको छोड़कर किसी भी सहस्र-नाममें नहीं मिलता, चाहे वह किसी भी देवता या देवीका क्यों न हो ।

वह सहस्रनाम कौन-सा है

यह 'तुलसी-बल्लभ' नाम केवल एक ही सहस्रनाममें प्राप्त होता है। पूरा क्लोक इस प्रकार है—

तुष्ठसीवल्लभो वीरो वामाचारोऽखिलेप्टदः।
महाशिवः शिवास्तढो भैरवैककपालधृक्॥

यह श्लोक प्रमुराणोक्त वासुदेव (श्रीविष्णु) सहस्र-नामका है। वेंकटेश्वर प्रेस, बंगवासी प्रेस तथा मोर-प्राच्य

१-अनुशासनपर्व अध्याय १४९।

(पद्मपु॰ उत्तर॰ ७१ । २९५ वेंकटेश्वरप्रेस, बंगवासी तथा मोरप्राच्य संस्करण, पूनामें ७२ । २९७) संस्थानके संस्करणमें यह वचन ७१ वें अच्यायके १९७ वें इठोकमें आया है तथा आनन्दाश्रम, पूनाके संस्करणमें ७२ वें अच्यायके १९९ वें इठोकमें आया है। इस स्तोत्रका आरम्भ 'ॐवासुदेवः परं ब्रह्म' से हुआ और 'इत्येतद् वासुदेवस्य' से इसकी समाप्ति सूचित हुई।

यह वासुदेव कीन है ?

यह 'वासुदेव' भी एक असाधारण समस्या है। गोस्वामी तुलसीदासजीने मनु-शतम्हपाके तपप्रसंगर्में लिखा है——

> द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपिंह सिंहत अनुराग । वासुदेव-पद-पंकरुह दंपित मन अति लाग ॥ (वालकाण्ड १४३)

समस्याकी बात तब ज्ञात होती है, जब यह चौपाई आती है—

विधि हरि हर तप देखि अपारा । मनु समीप आए बहु बारा ॥ माँगहु वर बहु भाँति लुभाए । परम धीर नहिं चलहिं चलाए ॥

और अन्तमें---

जो स्त्ररूप बस सिव मन माँही। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥ जो भुसुंडि मन-मानस हंसा।

देखों सो सरूप भरि लोचन॥

की गयी प्रार्थनापर श्रीराममद्र राघवेन्द्रजी प्रकट हो जाते हैं। इस गुत्थीपर तो मानसपीयूष आदि व्याख्याओं में बहुत कुछ लिखा गया है; और सदा ही 'मानस-मणि' आदिमें शंकाएँ और समाधान छपते हैं। पर इसका यास्तविक समाधान तो स्कन्दपुराण, चातुर्मास्य-माहात्म्यके २७वें अध्यायमें होता है। वहाँ ॐकार तथा रामनाम-को ही द्वादशकलात्मक सिद्धकर 'वासुदेव'-मन्त्र माना है। विष्णुपुराण (अंश १ तथा ६) आदिमें भी 'वासुदेव' शब्दका 'परब्रह्म' अर्थ बतलाया है।

५- 'कल्याण'के संक्षित पद्मपुराणाङ्क पृष्ठ ६६९ में भी छप चुका है।

६-द्रष्ट्रव्य-संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क पृष्ठ ४९९ । स्कन्द-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

रं, पुराग, श्रवणमन

हसके एव विदेन पर इ. हो जाते

दिशः। स्तथा॥ प्रिये। वेलम्॥

सहस्रना किया है।

न सम । सम ॥

अर्थ किय लसीवछ्रभ

तम् । |रः ॥ | संस्कृत्वा

| १४०) कै: |

त्।।

ही वर्गी

रः । द्रैः ॥ ४२-४३)

स दोहें

२-अवन्तीखण्ड अध्याय ६३ वें प्रेसका संस्करण नवल-किशोरपेस लखनऊके संस्करणमें यह ७४ वाँ अध्याय श्लोक

रेनारुइपुराणः पूर्वखण्ड अध्याय १५ । ४-इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नाम सहस्रकम् ।

रामचरितमानस तथा उपर्युक्त सहस्रनाम

मानसमें इसकी छाया अनेक स्थलोंपर दीख पड़ती है । उदाहरणार्थ उत्तरकाण्डकी कुछ विशिष्ट चौपाइयों-को लिया जाय । गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं-

रासु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥ हिमगिरि कोटि अचल रघुवीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥ तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पुंज नसावन॥ सारद कोटि अमित चतुराई। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥

(उत्तरः ९१-९२)

इत्यादि चौपाइयोंका मूल स्रोत उपर्युक्त सहस्रनाम ही है। इसके मूलभूत बचन देखिये-

यमकोटिदुरासदः। सर्यकोटिप्रतीकाशो कन्दर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनैः॥ समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्यः ब्रह्मकोटिजगत्स्त्रष्टा वायुकोटिमहाबलः॥ कोटीन्दुजगदानन्दी रांभुकोटिमहेश्वरः। कुबेरकोटिलक्ष्मीवान् शक्रकोटिविलासवान् ॥

कोटि ब्रह्माण्डवित्रहः। हिमचत्कोटिनिष्कस्पः (वही १५५-१६१, पूना संस्करण १५१-१५०

वेंकटेश्वर आहे।

र्भा

में

अर्भ

मस्त

वह

है त

उन्हें

सम्रा

हमें

'उन

इस ही ह

गाण्ड

नाऊँ

जी ह

होहा अर्जुः

उनवे वहाँ

समङ्

यहाँ प्रायः दस श्लोकोंका भाव पूज्यपादने प्रायः उत्ते ही चौपाइयों-दोहे आदिमें लिया है। बालकाण्डकी सहसनाम सम सुनि सिव बानी। जिप जेई पिय संग भवानी।

यह चौपाई भी इसी सहस्रनामके—

नाम्नैकेन तु येन स्यात्तत्फलं ब्र्हि मे प्रभो। (२१४) रामराभेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनामतत्तुल्यं वरानने ॥ (३३१) रामनाम

---इन वचनोंपर निर्मित प्रतीत होती है।

इस सहस्रनामके अगणित विशेषण तथा नाम मं 'मानस'में व्यवहृत हैं । उनकी रामकथाका बीज भी क्षी संनिहित है। शिव-पार्वती-संवाद-दर्शन भी इसमें 🕫 है । पाठकोंको ध्यानसे पढ़कर स्वयं लाभ उपा चाहिये । आश्वर्य नहीं है कि इसीके नियमित पाठसे उर्व मानसनिर्माणकी विशेष क्षमता तथा 'रामकथानाणं अद्भत सिद्धिं मिली हो ।

तुम और में

प्रियतम ! मीठी नित याद तुम्हारी आती । मैं पल भर तुमको कभी बिसार न पाती ॥ जगनेमें, सपनेमें मेरे प्यारे !। हो होते कभी न मुझसे पल भर न्यारे॥ त्म दे दर्शन मुझको सदा परम सुख देते। कर मीठी रसकी बाते दुख हर छेते॥ रहते दिन-रात स्पर्श-सुख भारी। निज हृदय खोळ कह देते मनकी सारी॥ मिलनेपर भी मिलनेकी अभिलाषा। रहती बढ़ती ही नित्य मिलनकी आशा॥ नित मिलनेपर भी पल न दूर समृति होती। वह सदा तुम्हींमें प्यारे ! जगती-सोती॥

चातुर्मास्य-माहात्म्य अ० २४ स्रोक २० से २५।

इसमें स्पष्ट ही पहले प्रणव तथा रामनामके अक्षरोंमें १२ कलाकी प्रतिष्ठाकी बात है। आगे कुछ भ्रान्ति-सी^{है} फिर अगले अय्यायमें प्रसिद्ध 'वासुदेव मनत्र' हैं । पर पाठमें कुछ पीछिसे गड़बड़ी हुई मालूम पड़ती है।

१-इसकी छायामें 'दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन'में दाब्दसाम्य ध्येय है। यहाँ पूज्यपादने अपनी ओरसे केवल 'अमित' शब्द ही बढाया है।

२-इसके अनुवाद 'सक कोटि सत सरिस बिलासा' में भी सर्वथा राब्दैक्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'दूसरो न कोई'

[कहानी]

(लेखक---श्री (चक्र))

व्यस ! यह सम्राट्का यज्ञीय अश्व है — सम्राट् भंगाज युधिष्ठिरका !' महारानीने अपने कुमारको उत्साह-में भरे आते देखा तो वे चौक पड़ीं । पुत्रका अभिनन्दन भीष्ट नहीं था । 'तुम इसे क्यों पकड़ ले आये ?'

भाँ ! मुझे किसीका अश्व नहीं चाहिये; किंतु इसके मत्तकपर जो कुछ स्वर्णपत्रमें लिखा गया है, उसे पढ़कर तो देखों ।' कुमार आवेशमें था । अभी वह वालक है । वह अपने आवेशमें कहता जा रहा है—'सम्राट्का अश्व है तो क्या हो गया । युधिष्टिरजी सम्राट् हैं, इसीसे तो उन्हें अधिकार नहीं कि वे हसारा अपमान करें । हमको सम्राट्की आवश्यकता नहीं है । हमारे चाचाजी हैं न—हमें उनको छोड़कर और कोई नहीं चाहिये और वे हैं तब सम्राट्से में कहाँ डरता हूँ।'

'चाचाजी तो हैं ?' महारानीका कण्ठ भर आया। 'उनको छोड़कर और अपना है ही कौन; किंतु इस अश्वको तुम पकड़ोंगे तो युद्ध होगा। अश्वके पीछे ही उसके रक्षक आते होंगे। सम्भावना यही है कि गण्डीवधन्या अर्जुन ही प्रमुख अश्व-रक्षक हों।'

'मेरे पिताने युद्धमें प्राण दिये हैं! मैं युद्धसे डर जाऊँ तो तुम मुझे अपना पुत्र कहोगी माँ? और चाचा-जी हीं क्या कहेंगे?' बालकने कंघेपरसे ज्यासजित होंद्यसा धनुष उतारकर हाथमें ले लिया—'अश्वरक्षक अर्जुन ही हैं, मैंने लोगोंसे यह सुन लिया है। किंतु उनके पास गाण्डीय है तो मेरे पास ही धनुषका अभाव

'अर्जुन तुम्हारे चाचाजीके सखा हैं!' महारानी कैसे अपने इस दसवर्षीय किशोरको, समझ नहीं CC-0. In Public Domain पाती हैं । उनके पतिदेव महाभारत-युद्धमें धर्मराजकी सहायता करने गये थे पूरी सैन्यशक्तिके साथ । कोई भी तो छौटा नहीं उस युद्धसे । एक भी सैनिक समाचार देने नहीं छौटा । समाचार तो मिळा सम्राट्ने अभिषेकके पश्चात् जो चर भेजा, उसके द्वारा । वह महाविनाश और आज उनका एकमात्र आधार यह कुमार फिर धनुप उठाये युद्धका आह्वान कर रहा है ?

महारानी सती नहीं हो सकीं। पतिदेह मिल भी गया होता वे सती नहीं हो सकती थीं। पतिदेवने यह जो अपने वंशघरको उनकी गोदमें दे दिया था—तब यह केवल छः महीनेका शिद्यु था, जब महाराजने अन्तिम बार इसे गोदमें लेकर स्तेहसे सिर सूँचा इसका और कुरुक्षेत्रको प्रस्थान किया। जाते-जाते वे आदेश दे गये—'इसकी सावधानीपूर्वक रक्षा करना। यही अपने पितरोंको परित्राण देगा।'

महारानी अपने इस ठाठका मुख देखकर पितका वियोग झेठ गर्थी । अब यह दस वर्षका हुआ और फिर युद्ध ! वड़ा हठी है—बड़ा निष्ठुर है क्षत्रियका धर्म भी । कुमारने अक्वको पकड़कर अधर्म तो किया नहीं है । उसे रोक दिया जाय ? अक्व छोड़ देनेकी आज्ञा दे दी जाय ? हृदय यह भी तो खीकार नहीं करता । क्षत्राणी क्या मोहको कर्तव्यके ऊपर विजय पाते देख सकेगी ?

कुमार मान ही जायगा अस्व छोड़नेकी आज्ञा— इसका भी विस्वास कहाँ है। वह कहता है—'अर्जुन होंगे चाचाजीके मित्र; किंतु चाचाजी तो मेरे हैं, मेरे नहीं हैं क्या वे !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

। । । । । । । । ।

[भाग रा

श्वर आहे। गयः उत्न

ग भवानी।

की—

(३३४)

। (३३५)

ा नाम भी न भी इसीने इसमें हुआ

भ उठाव पाठसे उदं

त्था-ज्ञान'र्श

न्ति-सी है।

केवल 🏻

'नहीं क्यों होंगे!' महारानीने दढ़ खरमें कह दिया—'वे तुम्हारे ही हैं।'

महाराज युधिष्ठिरने राजसृय यज्ञ किया था । स्वर्गीय महाराजके साथ महारानी भी गयी थीं उस समय इन्द्रप्रस्थ । राजसूयकी महापरिषद्ने जिसको प्रथम पूज्य माना, वही मयूरमुकुटी, इन्दीवरसुन्दर नगर-प्रवेश करते ही उनका स्वागत करने आया था । उस द्वारिकेश-ने हृषीकेशने कहिये, अतिथियोंके चरण धुलानेकी सेवा ले रक्खी थी ।

'भाभी !' महाराजको पाद्य-निवेदन करके वह महारानीके सम्मुख आया और उसका वह नित्य प्रफुल्छ श्रीमुख, उसकी वह त्रिभुवन-मोहन छटा । उसका वह सम्बोधन खर—महारानीके प्राणोंमें वह सम्बोधन वस गया । वे आत्मविस्मृत खड़ी रह गयी थीं और आज भी वे विभोर हो जाती हैं उस सम्बोधन-खरका स्मरण करके!

'भाभी !' क्या हुआ कि श्रीकृष्णने केवल एक बार ही उन्हें इस प्रकार पुकारा था। क्या हुआ कि राजसूयकी व्यस्ततामें फिर मुकुन्दसे मिलनेका सौभाग्य नहीं मिला। क्या हुआ कि यज्ञान्तमें भी दूरसे ही उस कमललोचनके दर्शन करके विदा लेनी पड़ी। श्रीकृष्णकी वाणी तो असत्यका स्पर्श नहीं करती। उन लोकनाथने एक बार तो पुकारा था भाभी कहकर।

'माँ, मेरे और कोई नहीं है। अकेली तू है मेरी।' कुमारने अपने शैशवमें एक दिन कहा था। कितना खिन खर था उसका। महारानीने उसी दिन कुमारको बताया—'फिर ऐसी बात मत कहना। तुम्हारे चाचा हैं—स्नेहमय, सर्वसमर्थ चाचा। वे तुम्हारे ही हैं।'

'मेरे चाचा ! कौन हैं वे ! कहाँ रहते हैं ! कैसे हैं ! यहाँ क्यों नहीं आते !' शिशुने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी थी और महारानीने गद्गद खरसे उस अद्भुत देवर-का वर्णन किया था । माता-पुत्रमें यह वर्णन एक दिनका कहाँ रह गया । वार-वार प्रायः पुत्र अपने चाचाके कि

'श्रीकृष्ण तुम्हें शीघ्र दर्शन देंगे !' अभी पिछते हो महिं दुर्वासा आशीर्वाद दे गये कुमारको और आज ह धर्मराजका यज्ञीय अश्य—तो इस प्रकार पार्थ-सारिक दर्शन करेगा यह ?

भी देख हुँगा अर्जुनको और उनक्के गाण्डीको भी। कुमार अपना नन्हा धनुष छिये अश्वको बाँधने चला म है अश्वशालामें । वह वचपनसे अदम्य है। उसे आग्रहको महारानी प्रायः टाल नहीं पार्ती।

पिछले वर्ष महर्षि दुर्वासा अकस्मात् आ गये थे। वे आये दिनमें तव, जब भोजनशाला खच्छ हो इंग थी और अर्घ्य स्वीकार करनेसे पूर्व ही आदेश दिग-'मुझे अभी गरम खीर चाहिये! बहुत क्षुधातप्त हूँ।'

'आप आसन प्रहण करें ! अभी प्रस्तुत हैं है नैवेद्य !' महारानी और कह भी क्या सकती थीं।

'मुझे क्षणोंका विलम्ब भी असहा है !' महीं नेत्र कड़े किये-—'दुर्वासाका कोप त्रिभुवनविख्यात हैं।

'आप अकारण रुष्ट हुए जा रहे हैं !' कुमार वर्ल ही तो है । महर्षि आतङ्कित करना चाहते हैं, यह हैं अच्छा नहीं लगा और बोल उठा—'भय दिखलाका के आप कुछ हमसे नहीं करा सकते !'

'इतना साहस! इतना अपमान मेरा!' महीं जल ले लिया कमण्डलुसे हाथमें। महारानी उनके वार् गिर पड़ीं; किंतु उधर भला वे क्यों ध्यान देते। अर्थ रोपकम्पित खर गूँजा—'किस बलपर तू यह अर्ध दिखला रहा है!'

?' शिशुने प्रश्नोंकी झड़ी लगा 'चाचाको छोड़कर हमारा और है भी की है। गद खरसे उस अद्भुत देवर- कुमार निर्भय खड़ा रहा । माँने बार-बार कही है। 1-पुत्रमें यह वर्णन एक दिनका उसके चाचा सर्वलोक महेश्वर हैं, यज्ञ और तपके CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भोका वहीं हैं, तब ये महर्षि उसका विगाड़ क्या सकते हैं ?

कौन है तेरा चाचा ?' महर्षि दुर्वासा सम्भवतः उसे भी शाप देनेकी बात सोच चुके थे।

'श्रीकृष्णचन्द्र!' कुमारका स्वर अविचल था।

'श्रीकृष्णचन्द्र !' महर्षिके नेत्र सीधे हो गये। अञ्चलिका जल धीरेसे उन्होंने अपने कमण्डलुमें ही डाल ल्या। उनकी वाणीमें पता नहीं, कैसे रोषके स्थानपर स्तेहकी धारा उमड़ आयी---- 'तुमने उन हृषीकेशको देखा है वत्स ?'

'यह सौभाग्य मुझे अभीतक नहीं मिला !' कुमार भी बिनम्र हो गया । 'लेकिन वे मेरे चाचा हैं । निश्चय वे 童道!

'तुम्हें उनके शीव्र दर्शन होंगे ।' महर्षिने शापके शानपर वरदान दे दिया । 'तुम मुझे क्षमा कर दो ! श्रीकृष्ण निश्चय तुम्हारे हैं और उनके जनोंपर रोप करनेका साहस अब मुझमें कभी नहीं आयेगा !

महर्षिने सानन्द प्रसाद प्रहण किया था। वे पुनः शीघ स्यामसुन्दरके दर्शनकी बात कह गये थे और आज युद्ध आ गया अपने प्राङ्गणमें । महारानीको पता ही नहीं ल्गा इस तन्मयतामें कि उनका कुमार अपना नन्हा ^{धनुष} लेकर राजसदनसे बाहर भी जा चुका है।

'पार्थ ! एक अनस्र वालकपर दिव्यास्त्र उठाते वुम्हें लजा नहीं आयी।' उस मेघ-गम्भीर स्वरको पह्चानना नहीं पड़ता । दारुक पूरे वेगमें एथ दौड़ाता आ रहा है । पाण्डव-सेनाने सादर मार्ग छोड़ दिया है। अचानक श्रीकृष्णचन्द्र यहाँ आयँगे, सम्भावना भी किसीको

भाण्डीववारी कलको प्रद्युम्न अथवा साम्बपर भी इसी प्रकार दिव्यास्त्र उठा सकते हैं। स्वरमें झिड़की है,

रोष है, व्यंग है और पता नहीं क्या-क्या है । छिजित अर्जुनने अपना दिव्यास्त्र फिर त्रोणमें पहुँचा दिया है।

'श्यामसुन्दर !' वड़ा खिन्न, शिथिल स्वर धनं जयका था। वे इस दसवर्षीय बालकसे युद्ध करनेको विवश हुए थे। उन्होंने कितना चाहा था कि युद्ध टल जाय। वालक अद्भुत रूर् है। पार्थ हृद्यसे उसके प्रशंसक हैं। अकेले बालकने प्राय: पूरी पाण्डव-वाहिनीको त्रस्त कर दिया था । आधे मुहूर्तमें रणभूमि टूटे खों, मरे गजों एवं अश्वोंसे पट गयी । वालकके शरोंने सैनिकोंके शव विछा दिये । अन्तमें अर्जुन आगे बढ़े थे । उन्होंने सेनाको रोक दिया था युद्ध करनेसे।

'कहीं भगवान् पिनाकपाणि ही तो बालकका वेश वनाकर धनुष लिये युद्ध करने नहीं आ गये हैं। अर्जुनको सचमुच संदेह हो गया था । बाळक उनके शरोंके टुकड़े उड़ाये दे रहा था। उसके छोटे-से धनुषसे छूटे बाण गाण्डीव-धन्वाका कवच फोड़कर सीघे शरीरमें वुस जाते थे। रक्त झरने लगा या पार्थकी देहसे। वे अत्यन्त आहत हो चुके थे। सामान्य शरोंसे काम न चलते देखकर ही उन्होंने गान्धर्वास्त्र उठाया था; किंतु यह मयूरमुकुटी उनका सखा तो रुष्ट हो गया लगता है।

'श्यामसुन्दर !' अर्जुनने धनुष रख दिया और पुकारा; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रका रथ तो आगे ही बढ़ा जा रहा है । उन्होंने किसीका अभिवादन आज स्वीकार नहीं किया । पार्थकी पुकारपर उन्होंने च्यान ही नहीं दिया।

'चाचाजी!' सहसा विजयकी दृष्टि आगे गयी। बालक धनुष फेंककर रथसे कूद पड़ा है। साथ ही वे कूदे मयूरमुकुटी । दारुकने रथको रोक लिया है और वे दौड़े जा रहे हैं द्वारिकानाय दोनों भुजाएँ फैलाये।

'वत्स !' बालकको पदोंमें पड़नेका अवकाश नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६ कि विक

पिछले क् आज म्ह

र् य-सार्धिका

वको भी । चला एव । उसने

गये धे हो चुन

ा दिया-न हूँ।

स्तुत हों ती थीं।

! महिंग ख्यात है।

मार् वाल , यह उ

वलाका व

2) मही के च ते। अव

यह अह

नी कौंग

陋 तपके मिला । स्यामसुन्दरने उसे हृदयसे लगा लिया है मुजाओंमें भरकर । सम्भवतः उनके कमललोचनोंसे स्तेहके सुधाकण झर रहे हैं । उनका गद्गद खर सुनायी पड़ा—'मुझे तनिक विलम्ब हो गया आनेमें बेटा !'

अर्जुन समझ नहीं पाते कि बात क्या है। श्यामसुन्दरकी गति कभी किसीकी समझमें कहाँ आती है। पार्थने स्थ आगे बढ़ा दिया है। अपने सखाके समीप उन्हें जानेमें कब हिचक हुई।

'धनंजय !' सहसा पटुकेसे नेत्र पोंछते, वालकका हाथ अपने हाथमें लिये श्रीकृष्णने पीछे मुड़कर देखा— 'यह भी मेरा ही राज्य है। द्वारकासे अधिक मेरा है यहाँ । आज धर्मराजके सैनिक राजसदनमें मेरा आहिए स्वीकार करें ।'

वालक गद्गद हो रहा है । एक शब्द उसे कण्ठसे निकल नहीं पाता है । वह जो कुल कह सक था, स्यामको वाणीकी अपेक्षा कहाँ है । वे उन अनक भावोंको स्वीकृति दे रहे हैं अपने-आप ।

'अर्जुन! मैं भाभीके चरणोंमें प्रणाम करने जा हूँ।' बालकको अपने ही रथपर बैठा लिया अ भुवनेस्वरने—'तुम मेरा आतिश्य खीकार करोगेन!

इस आतिष्यको अस्त्रीकार करे, इतना अइ के होगा । यह आमन्त्रण ही था अर्जुनका अहोभाय।

संकल्प-शक्तिके चमत्कार

(लेखक---श्रीयुगलसिंइजी खीनी, एम्० ए०, वार-एट्-ला०)

पुरुष अपार शक्तिका मण्डार है। इस शक्तिके प्रकट होनेके अनेक प्रकार हैं; इसीलिये इसके विविध नाम और रूप हैं। यही शक्ति ध्यान या एकाप्रताके रूपमें ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञानमें और संकल्पके रूपमें कमेन्द्रियों के द्वारा कमीमें प्रकट होती है। यदि हमारा ध्यान अन्यत्र हो तो न तो हम कुछ देख सकते हैं और न कुछ सुन सकते हैं। जब जर्मन दार्शनिक हेगल विचारमें मग्न था, तब उसके नगरपर तोप चल रही थीं, पर वह उनका घोर गर्जन नहीं सुन सका। संसारमें जितने महान कार्य हुए हैं, उनका कारण संकल्प है। पुर्त्तगालके पाश्चिक पंजेसे गोवाका विमोचन समस्त भारतके संकल्पका सुखद परिणाम है। संकल्पके सम्बन्धमें मनुका कथन है

'संकल्पमूलः कामो वै यज्ञः संकल्पसम्भवः। वतनियमधर्माश्र सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥

अर्थात् कामनाओंका मूल संकल्प है, यज्ञ संकल्पसे उत्पन्न होता है, प्रतिज्ञा, नियमाचरण और धर्मानुष्ठान— सबकी संकल्पसे उत्पत्ति मानी गयी है। उपनिषदोंने तो मंकल्पकी महत्ता बतलाते हुए यहाँ तक कहा है कि—

संकल्पमयोऽयं पुरुषः—-अर्थात् यह पुरुष संकल्पका ही पुतला है।

संकल्प क्या है—यह भली भाँति जान लेना परमाक्त है। प्रत्येक संकल्प विचार है, पर प्रत्येक विचार संकल सीमातक नहीं पहुँचता । जिस प्रकार जलमें लहरें छं रहती हैं, उसी प्रकार मनमें विचार-तरङ्गे कीड़ा हां हैं; क्योंकि संकल्पविकल्पात्मकं मनः—अर्थात् मन संक विकल्पवाला है। एक विचार आता है, दूसरा विचार क प्रतिकूल उठता है। पुरुष इस दन्द्रका साक्षी बना खी और कोई निश्चय नहीं कर पाता। ऐसे संकल-किं विप्लवका मार्मिक वर्णन प्रसिद्ध नाटक हैमलेटमें महर्ग रोक्सपीयरने किया है। हैमलेट अपने पिताकी हत्याका ह लेनेके सोच-विचारमें ही जीवनकी लीला समाप्त कर हेता है उससे कोई हढ़ निश्चय नहीं वन पड़ता । किसी की करनेका पक्का निश्चयात्मक विचार ही संकल्प है। हैंगे साध्य था पिताका यह आदेश-पालन कि उसकी हैं यदला चाचासे लिया जाय। यह साध्य निश्चित गा साधनके सम्बन्धमें वह कोई पक्का निश्चय नहीं कर अतएव उसका संकल्प अपूर्ण ही बना रहा।

1

सा

चां

संकल्पमें साध्यः साधन और साधकमें सामझ्य ही होना अनिवार्य है। इस त्रिपुटीकी एकता ही ही है

भाग ३६

रा आतिष

ब्द उसे

वह सकत

उन अनको

करने जात

लिया अ

गिन ग

अज्ञ को

भाग्य।

परमावस

र संकलक

लहरें उत

क्रीड़ा क्रा

मन संक्र

विचार उर्व

बना रहता

कल्प-विकत

टमें महार

हत्याका दर्ग

कर देतारे

किसी कर्ग

है। हैमलें

सकी हला

भ्रत था।

हीं कर हैं

सामध्यं प्रदान करती है । अर्जुन राज्य-प्राप्तिको साध्य और युद्धको साधन मानकर रणक्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ था । खजनोंको सामने देखकर उसकी मित पलट गयी और शरीरकी गिति विचित्र हो गयी । भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अर्देशसे ही वह गतसंदेह होकर विजयी हो सका ।

साधारण-सा उदाहरण लीजिये। जब आप संकल्प कर क्षेते हैं कि प्रातःकाल चार बजे उठकर पाँच बजेकी गाड़ी पकड़नी है तो आप अपने-आप ठीक समयपर जाग जाते हैं। ग्रिर इस साधनामें घड़ीकी तरह काम करता है। यदि आपके इरादेमें जरा भी कचाई हो, आप नियत समयपर जाग नहीं सकेंगे। हल-संकल्पमें पुरुषकी मित स्थिर और ग्रिर सबल हो जाते हैं। इसी तथ्यको बतलानेके लिये आयुर्वेदके प्रसिद्ध प्रन्थ चरकने कहा है—

'सर्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्। लोकसिष्टति संयोगात्तत्र सर्वे प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात् चित्तः, आत्मा और शरीर—ये तीनों तीन रण्डोंके समान हैं । उनके संयोगसे संसारकी स्थिति है और उन्हींमें सब कुछ प्रतिष्ठित है । संकल्प-शक्तिका कारण तीनोंका मेल है । जहाँ एकता है वहाँ शक्तिका निवास है।

प्राचीन और अर्वाचीन कालमें जितने महान् पुरुष हुए हैं, उनमें अनेक व्यक्तिगत विशेषताएँ पायी जाती हैं। पर एक बात सबमें समान है और वह है उनकी विपुल संकल्प-शक्ति। परमात्माके संकल्पसे ही सुष्टिकी रचना होती है। आजन्म ब्रह्मचारी रहनेका कठोर व्रत ग्रहण करनेके कारण राजा धालतुके पुत्र देवव्रत भीष्म कहलाये। एल्प्स पर्वतको पार कर इटलीपर आक्रमण करनेका संकल्प जव नेपोलियनने निज सेनाके समक्ष प्रकट किया तो एक सेनाध्यक्षने उससे निवेदन किया कि यह कार्य असम्भव है। उसने तत्काल उत्तर दिया कि असम्भव शब्दको कोषसे निकाल डालो; संकल्प-शक्तिके धामने कुछ भी असम्भव नहीं है। वह जो दृढ़ विचार कर खेता, उससे पीछे हटना वह नहीं जानता था। उसने 'संकल्पमय पुरुष' होनेकी प्रसिद्धि प्राप्त की।

संकल्पसे मुठमेड होनेपर कभी-कभी कराल काल भी विकित हो जाता है। लन्दनके एक अस्पतालमें सन् १९२४ में एक रोगीसे कहा गया कि 'वह दो-चार दिन जीवित रह पक्तीता पुत्र हजारों मील दूर देश आस्ट्रेलियामें था। वह

उसे देखना चाहता था। तत्काल पुत्रको संदेश भेजा गया और फ़ौरन खाना होनेका तार उससे प्राप्त हुआ। बीमारके इच्छानुसार आस्ट्रेलियासे लन्दनके मार्गका नक्शा उसके पास लटका दिया गया और जिस वंदरगाहपर उसके पुत्रका जहाज पहुँचता, वह नक्रोमें अंकित कर दिया जाता। इस प्रकार सप्ताइ-पर-सप्ताइ बीतने छगे और पंजरका पुतला वह पुरुष अपने पौरुषके बलपर मौतके मुकाबलेमें डटा रहा। डाक्टर हैरान थे कि वह कैसे जी रहा है। जिस दिन उसका प्रिय पुत्र लन्दन पहुँचनेवाला था, उस दिन उसके मुखमण्डलपर अलौकिक छटा थी। स्नेह्मूर्ति मुतसे मिलकर वह शान्तिपूर्वक सदाके लिये सो गया। भौतिक विज्ञानकी पहुँचसे परे यह आध्यात्मिक चमत्कार इस गृढ़ तत्त्वपर अवलम्बित है कि पिता और पुत्र दोनोंके हृदयोंमें पावन प्रेमका पीयूष प्रवाहित थाः अतएव उनका परस्पर मिळनका विचार सत्यसंकल्प हो गया । जहाँ सत्य संकल्प है, वहाँ भगवान्का निघान है।

सन् १९५५ में एक दारुण रोगके निवारणमें संकल्पके सामध्येने समस्त संसारको चिकत कर दिया । उस वर्षमें प्रधान मन्त्री चर्चिल, जब वे निज कार्यालय नं० १० डाउनिंग स्ट्रीटमें काम कर रहे थे, सहसा पक्षाधातसे आक्रान्त हुए और उनका दाहिना हाथ वेकार हो गया । उनकी चृद्धावस्था देखते हुए उनके आञ्चावादी मित्रोंको भी विश्वास नहीं था कि वे पूर्ववत् खस्य हो सकेंगे और अपना पद सम्हालनेकी अमता प्राप्त कर सकेंगे। लोगोंकी धारणा तो यह थी कि वे आजीवन रोगी बने रहेंगे। पर चर्चिल इस कहावतके कायल थे कि 'सनके हारे हार है मनके जीते जीत ।' दिन-प्रति-दिन वे सारी शक्ति लगाकर पश्चाघातको पराजित करनेकी कोशिश करने लगे। शनै:-शनै: उनका दाहिना हाथ गतिमान होता गया । एक दिन वह भी आया जब वे उसे उठाकर मुखतक ले आये ! धीरे-धीरे वे अपना कार्य-भार थोड़ा-थोड़ा सम्हालने लगे । उनके मन्त्रिमण्डलके सदस्य मिलने आने लगे । और एक दिन वे पुनः अपने कार्यालयमें स्वस्य होकर आ विराजे । उन्होंने अपनी डायरीमें लिखा है कि 'मेरे पुनः स्वस्य हो जानेका कारण कोई नवीन औषघ नहीं थी। यह तो संकल्प-शक्तिका चमत्कार था और इस शक्तिके मूलमें मेरा यह इंढ़ विश्वास था कि परमातमा मुझसे कुछ काम और ळेना चाहता है।

जिस्य हैं। ही संकृत अमेरिकाके पिछले राष्ट्रपति आइजन हावरका जीवन संकल्पद्वारा रोगोंपर विजय प्राप्त करनेका च्वलन्त उदाहरण है। सन् १९४९में उन्हें दिलकी सख्त बीमारी हुई । उन दिनों वे प्रतिदिन १५० सिगरेट पी जाते थे और जब किसी बातपर क्रोध आता था तो वे आगवब्रूला हो उठते थे। डाक्टरोंकी सलाह मानकर उन्होंने एकदम ध्रूप्रपान करना छोड़ दिया और क्रोध न करनेका संकल्प किया । उन्हें आराम ही नहीं हुआ अपित उनके व्यक्तित्वमें विचित्र परि-वर्तन हो गया। इन्द्रियोंके दास न रहकर वे उनके स्वामी बन गये। अतः रोगका आक्रमण उनके लिये वरदान सिद्ध हुआ। सन् १९५७ में मोरक्कोके बादशाहका स्वागत सख्त ठंडकमें करते हुए वे पुनः रुग्ण हो गये, पर आत्म-नियन्त्रण और युक्ताहार-विद्वारके कारण वे दो तीन सप्ताहमें नीरोग हो गये और पेरिस जाकर 'नाटो' सम्मेलनमें भाग ले सके।

आजकल आइजन दावर आत्मसंयमके आदर्श माने जाते हैं । उनका पूरा नाम है डी॰ डी॰ आइजन हावर । पहला डी (discipline) 'अनुशासन' और दूसरा डी (determination) 'संकल्प'के सूचक समझे जाने लगे हैं । वे प्रकृतिके अनुरूप पथ्य-भोजनका सेवन करते हैं । प्रतिदिन सात वजेसे पहले उठ जाते हैं और प्रार्थना करनेके पश्चात आठ बजे काममें लग जाते हैं और चार घंटे कार्य-व्यस्त रहते हैं । नियमपूर्वक सदा दोपहरमें एक घंटा विश्राम करते हैं। शामके ६ बजेतक कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। फिर प्रार्थना करके दस बजेके लगभग वे सो जाते हैं। विनोदप्रियताके लिये उनकी एक बात प्रसिद्ध है। द्वितीय महायुद्धमें वे संयुक्त सेनाके प्रधान सेनापति थे। एक दिन सैनिकोंको उत्साहित करनेके लिये वे एक स्थलपर पहुँचे। उस समय वर्षाके कारण मंच रपटीला हो गया था। च्यों ही वे उस मंचपर चढ़ने लगे कि उनका पैर फिसल गया और वे घडामसे कीचड़में गिर पड़े। सिपाही इँसी न रोक सके। उनके इस बेहुदेपनपर सेनाध्यक्षने क्षमायाचना की, तो वे मसकराते हुए बोले कि 'मैं तो इन सिपाहियोंको उत्साह दिलाने आया था, इस रपटनेवाले मंचने मेरा साथ दिया और देखो ये लोग कितने आनन्दित हैं।' ये शब्द सनकर समस्त सेना उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी । वे अब अमेरिकाके राष्ट्रपति नहीं हैं, पर अपनी गुण-गरिमाके कारण वे सबके अद्धाभाजन हैं।

संकल्प-शक्तिके द्वारा श्रीसचिदानन्दने विहार प्रोक निर्माण कैसे करा दिया—यह वृत्तान्त परम प्रेरणाहरी सन् १९११ से पहले बिहार नामका कोई प्रदेश नहीं क वह विशाल बंगाल प्रान्तके अन्तर्गत था। उन दिने क्ष कलकी भाँति अनेक भारतीय छात्र इंगलैंडके विवाले शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनमें कतिपय छात्र विहारते। एक दिन परस्पर परिचय प्रदान करते समय सभी क अपने प्रान्तका नाम छेने छगे। जब सचिदानन्दकी गरी क्र तो उनके मुखसे सहज ही में निकल पड़ा कि भौ विहार प्रान्ताः इसपर विवाद छिड़ गया। उन्हें चुनौती दी गयी कि भारतके नक्शेमें या भूगोलकी किसी पुस्तकमें विहार नामके 🗟 प्रान्तका उल्लेख नहीं है। वे अपनी हारपर मन मार_{िक} समय मौन हो गये । वैरिस्टरी पास कर वे भारत कें अनेक प्रान्तोंको पार कर जब उनकी ट्रेनने बिहारों क्रे किया तो पहले रेलस्टेशनपर जिस बिहारी कान्सटेवला है पडी वह 'बंगाल-पुलिस'के बैजको धारण किये हुए ॥ उनकी सोयी हुई स्मृति जाग उठी और उसी क्षण उन्होंने कं किया कि घर पहुँ चकर भेरा पहला कर्त्तव्य होगा बिल एक पृथक् प्रान्त वनवाना और तबतक चैनसे न बैहूँग ह तक यह संकल्प साकार न हो जायगा । उस समय क्र अवस्था २३ वर्षकी थी । उन्होंने जो भगीरथ प्रयल है उससे वे इतने सर्विप्रय हुए कि सन् १९०६ में इमीरि केजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य हो गये और लार्ड लेमिरे कभी-कभी सार्वजनिक हितके प्रश्नोंपर उनकी राय हेते। सन् १९११ में जब सम्राट् जार्ज पंचम भारत पर्वा विहारके पृथक् प्रान्त बनानेका आन्दोलन बहुत प्र^{ह्} चुका था। अतः १२ दिसम्बरको दिल्ली दरवारमें 🎟 घोषणा की कि बिहार एक अलग प्रान्त बनाया ^{बाज} युवक सचिदानन्दने जो टढ़निश्चय कियां, वह सफ्ह हैं रहा । गीताके द्वादश अध्यायने 'दृढ़निश्चय' को भक्तक्र लक्षण बताया है। ऐसा भक्त भगवान्को प्रिय होता भगवत्-प्रेमसे सब कुछ सम्भव है।

'सामूहिक संकल्प' शक्तिका अथाह समुद्र है। हैं
महायुद्धमें निज देशवासियोंके मनोंमें विजय प्राप्त कर् संकल्प सामूहिक रूपमें जाप्रत् करनेके लिये प्रवाप चिलने जय सूचक संकेत (V) का प्रतिदिन प्रवाप की जो परिपाटी चलायी, उसका प्रभाव विज्ञी वेहार प्रदेश प्रेरणाप्रः रा नहीं प दिनों आ के विद्यालके विहारके हे

[भाग है।

सभी अंद्रे की वारी अ ार प्रान्तकाई भारतके हैं नामके हिं न मारकर भारत हो बिहारमें प्रहे सटेवलगर तं तेये हुए ग ग उन्होंने कं होगा बिहात न बैठूँग ह समय अं प्रयल है में इम्पीर र्ड लेमिरो ह राय देते। नारत पर्धार बहुत प्रबल वारमें सा नाया जाज

मत्त्रा (प्रिय होता रे

सफल हैं।

夏月 प्राप्त करें ये प्रधान

र प्रयोग है बिजलीकी

सर्वत्र व्याप्त हो गया । अन्ततोगत्वा उन्होंने जर्मनोपर विजय प्राप्त की। सन् १९४३में जब महात्मा गांधीने स्वराज्य-प्राप्तिके हिये Do or die 'कार्य साधयामि वा दारीर पातयामि' के महामन्त्रका घोष समस्त भारतमें मुखरित किया तो अंग्रेजों-का राज्यसिंहासन डगमगा उटा और इस संकल्पसे जो मुफल मिला वह स्वाधीनताके स्वरूपमें हमारे समक्ष है। 'संहतिः कार्यसाधिका' और 'संघं दारणं गच्छासि'के मृत्यं सामृहिक संकल्पका अंतुल बल है।

यह तो निर्विवाद है कि संकल्पसे कर्म उत्पन्न होता है। जो मनुष्य चोरी करते हैं, या डाका डालते हैं या किसी प्राणीकी हत्यामें प्रवृत्त होते हैं, वे भी चोरी, डाके या हत्याका संकल पहले करते हैं। परोपकारी पुरुष नदीमें इवते हएकी प्राण-स्क्षाका संकल्प पहले करता है। इन विविध प्रकारके संकल्पोंका मुख्यांकन करनेकी सरल कसौटी है। जिस संकलका परिणाम मङ्गलसय होता है वह अच्छा है और जिस संकल्पसे परिणाममें अहित होता है वह बुरा है । सत्संकल्प-में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' ये तीनों तथ्य निहित हैं। संत तुकाराम कहते हैं 'सत्संकल्पाचा दाता भगवान्'--अर्थात् पत्तंकस्पके देनेवाले भगवान् हैं। विषम परिस्थितिमें पड़नेपर अनेक महान् पुरुष सत्संकल्पके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते आये हैं। महामना गाँधी ऐसी प्रार्थना सर्वदा किया करते ये। अच्छे संकल्पसे जो कार्य वन पड़ता है वह स्थायी होता है और बुरे संकल्पका कार्य क्षणिक होता है । परम प्रतापी सम्राटों-^{के} विशाल साम्राज्य अतीतकालके विषय रह गये हैं, पर ^{'बहुजनहिताय} च बहुजनसुखाय च'—जो महान् कर्म उन्होंने किये, उनकी स्मृति सदा वनी रहेगी। लोकसंग्रहके कारण राम-राज्यका आदर्श भारतके समक्ष सर्वदा स्थिर रहेगा।

संकल्पके सम्बन्धमें यह वात सदा याद रखनी चाहिये ^{कि} कोरे संकल्प करते रहनेसे अर्थात् तदनुसार कार्ये न करनेसे आत्मशक्तिका हास हो जाता है। जय कोई काम करनेका संकल्प कर लिया जाय तो वह काम कर ही डालना चाहिये। प्रतिदिनके कार्यक्रममें जो कुछ करनेका संकल्प आपने किया है, उसके करनेमें ही आत्मोन्नतिका रहस्य छिपा इंआ है और ऐसा न करनेसे संकल्प शेलचिछीकी कोरी

कल्पनाएँ हो जाते हैं । भर्तृहरिकी सुक्ति पदं न धीराः' में कितना मर्म भरा हुआ है।

अच्छे संकरप कार्यान्वित करते-करते प्रत्येक पुरुष उन्नति-के उच्च शिखरपर पहुँच सकता है। यह सबल साधन सभीके लिये मुलभ है। रैसजे मैकडानल्ड दीन घरमें पैदा हुए थे। जय वे लन्दनमें थे, सदा सादा और सस्ता भोजन करते और चायके लिये पैसा न होनेके कारण गरम जल पीकर ही काम चला ठेते थे। लडकपनमें नेता बननेका जो संकल्प उन्होंने किया थाः उसे सदा ध्यानमें रखकर वे मजदूरोंकी सेवामें समय लगाते रहे । उनके बालकोंको घरपर बलाकर पढाते । उनके लिये सभा-भवन स्थापित किये और अनेक पुस्तकालय खोले। जय मजदूर-दल बना तो वे उसके नेता हो गये और एक दिन वह भी आया जब चुनावमें उस दलकी जीत हुई और वे प्रधानमंत्रीके आसनपर विराजमान हए । वेतारके तार (Wireless Telegraph) के आविष्कर्ता मार्कोनी-का कथन है कि 'संकल्य-शक्तिकी तुलनामें शब्द-शक्ति तुच्छ प्रतीत होती है । जिस मनुष्यका संकल्प सत्य और ग्रुद्ध है वह महान्-से-महान् कार्य कर सकता है ।' वैदिक सूक्तोंमें मनमें पवित्र संकल्प उत्पन्न होनेके लिये वार-वार प्रार्थना की गयी है । आइये, हम भी भगवान्से बारंबार यह निवेदन करें कि-

ॐ यत्प्रज्ञानमृत चेतो. धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यम्मान ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्त॥

·जो मन अनुभवः चिन्तन और धैर्य कराता है, जो इन्द्रियोंमें एक अमर ज्योति है वह मेरा मन ग्रुम संकल्पवाला हो।' आज जिस द्रुतवेगसे हमारे देशका नैतिक और आध्यात्मिक पतन हो रहा है, उसे रोकनेके लिये सामूहिक शिव-एंकल्प परम आवश्यक है। प्रधानमंत्री श्रीनेहरूका यह कथन सदा स्मरणीय रहेगा। 'We are little men, but when we serve a great cause, something of its greatness falls upon us'. अर्थात् हमलोग छोटे आदमी हैं पर जव हम किसी महान उद्देश्यकी पूर्तिमें लग जाते हैं, तो उसकी कुछ महत्ता हमपर अवतीर्ण होती है। शिव-संकल्पकी साधना ही प्रत्येक पुरुष-का परम पुरुषार्थ है।

पर्यटन

(हेखक--श्रीशैषनारायणजी चंदेहे)

- गुप्तकालके स्वर्णयुगकी सांध्य किरणें अन्तिम क्षणोंमें मनोहारिणी लग रही थीं। मृत्युके उपक्रमके साथ ही मानो जीवनकी उत्कट अभिलाषाका मनोरम रूप निखर आया था। और बस, सम्पूर्ण क्षितिज गहन अन्धकारमें समा गया ।

हाहाकार कर उठे आकाशके देवता। ध्रुव, बृहस्पति तथा मरीच्यादि सप्तर्षिगण अपनी नेत्रच्योतिसे धरतीकी ओर झॉकने लगे। शायद उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ।

भारत माँ विक्षुच्य हो उठी। उसने दिवाकरकी बौंहें पकड लेनेका संकल्प किया। उसने सोचा, ध्यदि सूर्यकी रिक्मयाँ ग्रहण कर ली जायें, तो सूर्य रुक सकता है जो किसी नैराश्यकी अतल गहराइयोंमें क्रमशः हुवता चला जा रहा है और फिर उत्थान।' माँके मानस-पटलपर चित्र अङ्कित हो गयाः उसने शीवता की । अपने पुत्र और नवजात पुत्रीको साथ लिया और द्रुतगामी वाहनपर आसीन हो गयी।

'आप यन्त्रवाहनके मर्मज्ञ नहीं हैं पूच्य ।' प्रज्ञाने हृदयके समक्ष अपना गौरव प्रकट किया।

'और तम्हारा मस्तिष्क अपने विवेकका कोई प्रमाण पस्तत नहीं कर सकता प्रशे! हृदयने अपनी महत्ता प्रकट की।

मॉने यह इन्द्र देखा। 'पर्यटनकी भूमिकामें ऐसा इन्द्र अञ्चभका प्रतीक होता है'--मॉने समझाया। 'प्रजे ! यन्त्र-संचालनका उत्तरदायित्व तमपर है और च्येष्ठ ! मार्ग-दर्शन-का कार्य तुम्हारा है।'-उन्हें निर्णय मिला।

प्रज्ञा अपनी विजयपर मुस्कुरा उठी, किंतु मार्ग-दर्शनकी बात उसे अपमान-जनक लगी। ऐसा भाव प्रकट किया, मानो इसे उसने अवहेळनाके कार्नोसे सुना है। प्रज्ञा यन्त्र-मंचालनके लिये उद्यत हुई। हृदयने माँसे कुढते हुए कहा-- 'जननी ! प्रज्ञा वड़ी धृष्ट है।'

मॉने कहा---'हॉं वत्त ! भृष्टता उसकी तर्कबुद्धिका वैभव है।

धिजसके अभावने हृदयको ईश्वर-जैसी मिथ्या वस्तुकी मान्यताके छिये विवश कर दिया है। क्यों माँ ! है न यही बात १'---प्रज्ञाने व्यङ्ग किया ।

'चुप भी रहो प्रशा! चलो विलम्ब न करो। एक क्षणका भी विलम्ब हमें स्पृहणीय नहीं । सूर्यका पतन बड़ी क्षिप्र गतिसे हो रहा है। भाँने विवाद आगे न बढ़ने दिया।

भ्रज्ञे ! मेरी अन्तरात्मा पश्चिम दिशाके अनुसाला विरोध कर रही है।'--हृदयने आक्षेप करते हुए कहा।

ध्आपकी अन्तरात्मा अवीध है। क्या उसने स्वी पश्चिम दिशाकी ओर डूबते नहीं देखा !'—और प्रा मुस्कुरा पड़ी।

यन्त्र-वाहन द्रुत गतिसे भागा जा रहा है। अगने उद्देश की प्राप्तिके लिये तीनों उत्कण्ठित थे।

यहाँ द्रीके माप-दंडमें योजनकी इकाई नहीं थी। आंत किञ्चित संज्ञा-प्राप्त सीमाएँ अङ्कित थीं उस मार्गपर।

भौतिक विश्वास' की परिधि-रेखा इस पार कर गये हों-प्रजाने भारत माँके प्रति अपनी गर्वोक्ति प्रकट की।

·यह उचित नहीं प्रशे ! भौतिक विश्वास हमें चोलि प्राप्तिमें संवल नहीं वन सकता । हमें अध्यात्म-मार्थ अवलम्बन ग्रहण करना चाहिये था। हम तमिस्राका वर्ण करते जा रहे हैं।'--हृदयने आकुलता प्रकट की।

भ्वन्धु ! यह तिमस्रा नहीं अपितु तुम्हारे नेत्री विशेषता है। अज्ञात, अव्यक्त, अरूप और अदृश हुई दृश्यमान होता है तथा प्रत्यक्ष, व्यक्त, साकार और स संसार तुम्हारी आँखोंका विषय नहीं वन पाता।'

भौ तुम्हें मार्गच्युत नहीं करना चाहता किंतु यह गां इमें श्रेयस्कर नहीं है, यह कभी समझ पाओगी। विम वस्तुके भोगकी अतृप्त कामनाएँ व्यक्तिकी सात्विक कि वृत्तिका विरोध करती है और शक्तिका संबल पाकर वर्ष या तो दानव वन जाता है अथवा जीवनको बोझिल समझ नैराश्यकी गहराईमें निस्पन्द हो जाता है। यह कॉमनाओं अतृप्ति मानव-हृद्यमें विंघा हुआ प्रकृतिका अव्यर्थ वण है इन कामनाओंके फलस्वरूप व्यक्तिकी मानसिक ^{श्रिकी} समरसता नहीं आती जो उसके जीवनका उद्देश है। वर्ष संग्रहका प्रयास इमारे जीवनको खोखला बना डालाही **इमें क्षणभर** विश्रामका अवकाश नहीं मिलता। यन्त्रा प्राप्य सुखकी आशामें हम स्वयं यन्त्र बन जाते हैं, फिर हा अपना कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। हम यन्त्रके सोचते हैं, यन्त्रके लिये समस्त चेष्टाएँ होती हैं, यन्त्रके यह जीवन काम आ जाता है। किंतु जीवनके लिये यन्त्रकी सार्थकता सिद्ध नहीं होती । उससे हमें संतोध और अर्वि प्रज्ञाने यन्त्र-वाहनके पहिये पश्चिम दिशाकी ओर मोड़ दिये। शान्ति दुर्छभ ही रहती है। साधनसे साध्यकी पूर्ति नहीं CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Handwar

ननुसरणका

ाने सूर्वत्रो

और प्रा

रने उद्देश

ी । अपितु

गये मां-

में च्योतिश

त्म-मार्गश

त्राका वरा

रि नेत्रई

ग्रहस्य तुर्

और हम

त् यह मा

ती । विश्व

त्त्वक कि

ाकर व्यक्ति

ठ समझका

तमनाओं व

वाण है।

क शिति

100

डाल्ता है।

। यन्त्रद्वा

फिर हमा

स्त्रके लि

यन्त्रके हिं

यन्त्रकी

र आर्तिः

र्ति नहीं

महा |

वाती, अपितु जीवन-पर्यन्त साधन ही हमारा साध्य वनकर रह जाता है।' हृदयने प्रतिवाद किया।

·यह नवीनताके प्रति तुम्हारे हृदयकी प्रतिकिया मात्र है। बन्त्र मानव-जीवनका आवश्यक और अभिन्न अङ्ग है और मानव-जीवनके उद्देश्यपर चिन्तन करना तुम-जैसे निष्क्रिय व्यक्तिका विषय है। प्रज्ञाने अपना दृष्टिकोण संक्षेपमें प्रस्तुत किया।

ध्यदि इसे निष्क्रियता कहती हो, तो तुम्हारे सिक्रय होनेका कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । तुम्हारा व्यस्त जीवन यन्त्र-बाहनका एक ऐसा गतिमान् पहिया है, जो प्रतिवन्धोंसे मुक्त और उद्देश्यहीन है। इस तरहका जीवन पाशविक जीवन है। इस तरहका प्राणी संसारमें पशु कहलाता है। ' जनतक हृद्य-ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, 'स्वार्थ'की सीमा पार हो गयी। अतिष्टकी आरांकाओंसे हृदय विक्षुच्ध हुआ जा रहा था। उसने भारत माँसे कहा-- भाँ! प्रज्ञाकी धृष्टता अव असह्य है। हम 'स्वार्थ'की सीमा भी पार कर गये। यह मार्ग हमें विल्कुल ही स्पृहणीय नहीं । स्वार्थकी भूमिकामें संघर्षका निर्माण होता है, जो विश्वके विनाशका पर्याय है। हमें अभी छौट जाना समीचीन होगा ।'

प्रज्ञा बोल उठी—'चतुर्दिक् स्वार्थके सम्यक् कर्षण-बलपर विश्वका स्थायित्व सुरक्षित है बन्धु ! तुम्हारी चिन्तन-शैली सर्वदा मुदियोंको प्रश्रय देती है।

'और तुम्हारी तर्क-बुद्धि धूर्तताका आश्रय ग्रहण करती है। माँ! दिवाकरकी किरणें हमसे दूर होती जा रही हैं। यह लो 'होम'की सीमा भी पार हो गयी।'

प्रज्ञाने कहा--- 'किंतु अनुचित क्या हुआ बन्धु ! तुम इसे लोम कहते हो, मैं इसे महत्त्वाकाङ्का कहती हूँ। जीवनमें उन्नतिके लिये क्या इसकी उपादेयता कुछ भी नहीं ? मैं तो समझती हूँ, मानव-जीवनकी सफलताका यही मूल-मन्त्र है। अङ्करके अभावमें निराधार है।' वृक्षके पल्लवित होनेकी

'वहिन ! तुम्हारे जीवनका लक्ष्य ही निर्धारित नहीं है, वहाँ उसकी सफलताका स्वरूप भी अनिश्चित है। तब अङ्कर और पल्लवका औचित्य भी सर्वथा विचारणीय हो जाता है।'

अवतक कोघ अौर 'संघर्ष'की सीमा पार हो चुकी थी। हिंदय अधीर हो उठा । प्रज्ञा मुस्कुरा रही थी । यन्त्र-वाहनकी गति विद्युत् गतिका अनुसरण कर रही थी। हृद्यने यन्त्र-वाहन अवहद्धं करनेके हेतु अपनी समस्त शक्ति नियोजित कर दी।

किंतु प्रज्ञाकी तर्क-बुद्धिकी अधीनतासे यनत्र-वाहन मुक्त न

'हिंसा'की भूमिपर तीनों गतिमान् थे।

'यह द्वेष, उत्पीड़न, अनाचार और रक्तपात उचित नहीं प्रज्ञे !'—हृद्यने आकुल होकर कहा।

भ्ये सब हमारी स्पृहाके परिणाम नहीं हैं बन्धु ! ये प्रकृतिके गन्तव्य-पथपर दृष्टिगोचर होनेवाळी समयकी माँगें हैं। अपने सुखके लिये मानव-समाजकी हर इकाई प्रयत्नशील है। इसल्यि यह कोई अस्वाभाविक नहीं।'—प्रज्ञाने प्रत्युत्तरमें कहा।

'यही तो मानव-समाजकी इकाईका गलत प्रयास है। उसका दृष्टिकोण व्यापक नहीं है। धरतीसे ऊपर वह इतना ही उठ सका है, जहाँसे नेत्रोंकी रिमयाँ केवल 'स्वार्थ'की क्षितिज-रेखाको स्पर्श कर पाती हैं। उसके विचारोंमें गगनका विस्तार नहीं । उसका चिन्तन खार्थमूलक होता है । क्रियाएँ स्वार्थमूलक होती हैं और उपयोग भी स्वार्थमूलक होते हैं। उसकी अव्याप्त मनोवृत्ति उसे मानव-हृद्यकी समष्टि-वेदनासे अस्पृष्ट रखती है । औदार्यकी प्रेरणा-जनित आत्मतृतिकी मधुर अनुभूतिसे उसका अन्तःकरण विञ्चत रहता है। इससे समाजकी इकाइयाँ विखरी होती हैं । इसे समाजका कल्याणकारी लक्षण नहीं कहा जा सकता ।'--हृदयके मनमें तूफान उठा था।

'हिंसा'की सीमा अपने रिक्तम वर्णमें दृष्टिगोचर होने लगी। प्रज्ञाको आभास हुआ, मानो वही दिवाकरकी किरणें हैं। एक मिथ्या प्रतीति । और प्रज्ञा किलक उठी । हृदय क्रन्दन कर उठा !

'हिंसा' की सीमा पार होते ही भारत मान देखा कि यन्त्र-वाइनमें अव हृदयका अस्तित्व न था, गतिका दबाव असह्य होनेके कारण वह घराशायी हो चुका था और हिंसाकी कोडमें उसकी रक्तरंजित देह तड़प रही थी!

यह 'मानव-हृदय'का बीभत्स हश्य था!

यन्त्र-वाहनकी गतिमें कोई मन्दता नहीं आयी थी। कहते हैं, यह मार्ग एक विशाल गहन तमोमय गह्नरमें जाकर समाप्त हो जाता है।

सप्तर्षिगण अनतक. अयोध्या और व्रजकी अन्यकारपूर्ण गलियोंमें 'राम' और 'कृष्ण'को हूँढ्नेका प्रयत्न कर रहे थे।

अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति

(हनुमानप्रसाद पीद्दारके एक भाषणसे)

मूनं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाथवम् ॥ मानव-जीवनके सम्पूर्ग क्षेत्रोंमें व्याप्त अनादिकालीन सनातन परम्परासे प्रचलित नित्य सर्वभूतमयी धर्ममयी सुसंस्कृत 'विचार और आचारप्रणाली' का नाम भारतीय या आर्यसंस्कृति है । यही सर्वाङ्गपूर्ण तथा चिरजीवी आद्य मानव-संस्कृति है । *

इस संस्कृति के परम करपाण कारी मुख्य लक्षण हैं—
अनन्त विभिन्न विचित्र जगत्के समस्त प्राणिपदार्थों में
एक नित्य सत्य परमात्माको देखना, समस्त विषमताओं में
नित्य सर्वत्रं परिपूर्ण सत्यके दर्शन करना, सतत मृत्युके
प्रवाहमें बहते हुए विश्वमें नित्य अमर अविनाशी सिचिदानन्द-तत्त्वकी उपलब्धि करना, ब्यावहारिक जगत्की
व्यवहार-भिन्नताका स्त्रीकार तथा तदनुरूप विषम आचरण
करते हुए भी समस्त चराचरमें समरूपसे स्थित एक आत्मामें
नित्य एकत्वकी अनुभूति करना, सहज ही सबके हितमें
रत रहते हुए संयमित जीवनके द्वारा जीवनके चरम
और परम लक्ष्य परमात्माकी ओर—पूर्णत्वकी ओर अविराम
अप्रसर होते रहना, एवं अपने निर्दोष तथा निष्कामभावसे
आचरित सम्पूर्ण कर्मोंके द्वारा भगवान्को पूजकर मोक्ष,
परम शान्ति अथवा भगवत्साक्षात्कार प्राप्त कर लेना ।

श्रे ऐसा होनेपर भी भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनतामें और उसकी नित्य महत्तामें अनास्था उत्पन्न करनेवाले तीन भ्रम बहुत कुछ कारण बने हैं—१. आर्य लोग वाहरसे आये, २. क्रमविकासवाद या उत्क्रान्तिवादका सिद्धान्त और ३. चार हजार वर्ष पहलेका इतिहास नहीं मिलता। ये तीनों सत्यसे सर्वथा दूर अतएव भ्रममात्र हैं, जो भारतको अपने गौरवसे गिरानेकी दुष्ट अभिसंधिसे या अज्ञानसे प्रचारित किये गये हैं । इन तीन महाभ्रमोंसे सर्वथा बचनेकी आवस्यकता है।

इसीसे भारतीय संस्कृतिमें त्यागकी महत्ता है, भोगनी नहीं । भारतीय संस्कृतिमें मानव यथायोग्य अधिकार नुसार प्रचुर सुख-समृद्धि, सौभाग्य-सम्पत्ति, अधिकाः ऐश्वर्य, शक्ति-सामर्थ्य, विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, का मान आदि भौतिक पदार्थीका अर्जन करता है, पर क उनका न तो संप्रह करता है और न अपने व्यक्तिक भोग-विलासमें ही उनका उपयोग करता है, वरं वह स समस्त पदार्थींको प्राणिमात्रमें स्थित परमात्माकी सेवान देश, जाति, जनमानव या प्राणिमात्रके माध्यमसे सर्गाप्त कर देता है। उसका समस्त अर्जन उत्सर्गमय ही होताहै इसीलिये 'अर्थ' एवं 'काम'की अवहेलना न करके उर्दे धर्मनियन्त्रित रखकर मोक्षकी ओर अग्रसर होते रहनेश्री साधन-पद्भति स्वीकार की गयी है। भारतीय संस्कृति अर्थ-धर्म-काम-मोक्षको 'पुरुषार्थ-चतुष्टय' कहा गया है। धर्मसम्मत 'अर्थ-काम' और छक्य 'मोक्ष'। मनु महाराव कहते हैं कि जो 'अर्थ' और 'काम' धर्मके विरोधी हैं। उन अर्थ और कामका त्याग कर देना चाहिये--

परित्यजेद्र्थकामी यो स्यातां धर्मवर्जिती। (४।१७६

एवं धर्म वस्तुतः वही है जो मनुष्यकी जीवनश्राक्ष मुख भोग-जगत्से मोड़कर भगवान्की ओर कर है एवं जिससे सतत अविराम अविच्छिन्न गतिसे जीवनश्रवाह निरन्तर समुद्रकी ओर वहनेवाळी गङ्गाजीकी धार्षि सदश उसी ओर—भगवान्की ओर ही वहता रहे—

मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गास्भसोऽम्युधौ।
भारतीय संस्कृतिका स्वरूप बतानेवाळी वेदवाणी हैं
ईशा वास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

'इस अखिल विश्वमें जो कुल भी जड-चेतन जगत (प्राणी-पदार्थ और गति-विधि) है, वह सब ईश्वरसे न्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए, त्यागपूर्वक भोगते रहो । इसमें आसक्त मत होओ । किसी अन्यके धनकी इच्छा मत करो ।'

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः। एवं त्विय नान्यथेतोऽस्ति न कर्म छिप्यते नरे ॥ (यजुर्वेद ४०।२)

'इस जगत्में इस प्रकार ईश्वर-प्रीत्यर्थ कर्म करते हुए सौ वर्षीतक (पूर्णायु) जीनेकी इच्छा करो यों त्यागपूर्वक किये गये कर्म मनुष्यमें लित नहीं होते। इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपर्यति । सर्वभूतेषुं चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ (यजुर्वेद ४० । ६)

'जो सब प्राणियोंको आत्मामें ही देखता है और सब प्राणियोंमें आत्माको देखता है, वह किसीकी निन्दा नहीं करता।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ (यजुर्वेद ४०।७)

'जिस कालमें सर्व प्राणी आत्मखरूप ही जाननेमें आते हैं, वहाँ एकत्व देखनेपर मोह और शोक कहाँ रह सकते हैं !

भारतीय संस्कृति मनुष्यको धर्महीन, जडवादी, कामोपभोगपरायण, संकुचित स्वार्थपर, देहात्मवादी और नास्तिक नहीं देखना चाहती । भारतीय संस्कृति चाहती है—मनुष्य धर्मपरायण हो, परार्थ त्याग करनेवाला हो। व्यक्तिगत जीवनके स्वार्थ, भोगविलासकी अभिलाषा, किसी भी प्रकारसे यश-मान-प्रतिष्टाकी चाह, दूसरेके विनारामें अपना विकास देखना, दूसरेके दु:खको अपना षुष समज्ञना; द्वेष, द्रोह, वैर, घृणा, हिंसा मतान्यता,

परापकारप्रियता, असहिष्णुता आदि दोपोंका सर्वया त्याग करके अद्रेष्टापन, मैत्री, करुणा, अहिंसा, सत्य, सेवा, क्षमा, दया, तितिक्षा, तप, परमत-सिहण्युता, इन्द्रिय-संयम, चित्तसंशुद्धि आदि सद्गुण तथा सद्विचारोंका करते हुए समस्त द्वन्द्वोंसे ऊपर उठकर भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करके सबमें सुख वितरणकर भगवान्को प्राप्त करे । मनुष्यमें आसुरीभाव, पाशविक भावका सर्वया अभाव हो। वह सचमुच मनुष्य वनकर देवत्व और अन्तमें ईश्वरत्वको प्राप्त कर ले। यही भारतीय संस्कृतिका महान् उद्देश्य है।

भारतीय संस्कृतिमें धनकी उपेक्षा नहीं है, पर वह धनको जीवनका उद्देश्य नहीं स्वीकार करती । धनको ही प्रधानता देनेवाला पूँजीवाद, मोगवाद या भोगप्रधान साम्यवाद भारतीय संस्कृतिको स्वीकार नहीं है। उसमें अर्थकी प्रधानता नहीं है, प्रधानता है अध्यात्मकी । इसीसे उसमें धनसंचय और धन-भोगकी अपेक्षा धनके त्यागकी विशेष महत्ता है । अधिक धन उपार्जन करनेकी अपेक्षा यथासाध्य आवश्यकताओंको कम करके सादी सरल पवित्र जीवनपद्भति समाज तथा व्यक्ति सभीके छिये सुखप्रद तथा वाञ्छनीय है। 'जीवनका स्तर उच्च' करनेके नामपर भोगविळासके ळिये अर्थकी आवश्यकताको अत्यन्त बढ़ा लेना और चोरी, ठगी, डकैती, विश्वास्यात, परस्वापहरण, धोखा, मिलावट, रिश्वत आदिके द्वारा धनोपार्जनका प्रयास करते रहना--- भारतीय संस्कृतिको खीकार नहीं है।

भारतीय संस्कृति अर्थोपार्जनके लिये कहती है-पर केवल अपने लिये नहीं । गीतामें भगवान्के वाक्य हैं— यश्वशिष्टाशिनः सन्तो सुच्यन्ते सर्विकित्विषै:। भुक्षते ते त्वघं पापा ये पचलयात्मकारणात ॥ (3123)

देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य एवं इतर--पञ्च-पक्षी, समल प्राणियोंका हमारे वृक्ष-लता-ओपधि आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भोगकी मधिकारा-अधिकार-

छ, यहा-पर वह व्यक्तिगत वह स

ही सेवांनं समर्पित होता है।

रके उहें रहनेकी

संस्कृतिन गया है।

महाराज रोधी हैं।

तौ । 1 808)

न-धाराका कार है

वन-प्रवाह । धाराक

(e)

वधौ। ाणी है/

गत्। नम् ॥

80 [1]

उपार्जनमें भाग है; इन सभीका हमपर ऋण है; क्योंकि हम इन सभीसे यथायोग्य सहयोग-सहायता प्राप्त करके ही जीवन-यापन और अर्थोपार्जन कर सकते हैं। अतएव इनका भाग इन्हें यथायोग्य दे देना यज्ञ है-पञ्चमहायज्ञ हमारी नित्यकी दिनचयमिं है । अतः जो मनुष्य इस यज्ञसे अवशिष्ट-इन सबका भाग दे देनेके बाद बचे हुए अन्नको खाता है, वह अमृत खाता है, पर जो कमाईका प्राप्य उचित भाग इन्हें न देकर—इनका ऋण न चुकाकर सत्र अकेला हुड्प जाता है, वह पाप खाता है। श्रीमद्भागवतमें तो अपना पेट जितनेसे भरे, उससे अधिकपर अपना अधिकार माननेवालेको चोर तथा दण्डका पात्र कहा गया है—'स स्तेनो दण्डमर्हति।' गीतामें भी देवताओंको न देकर स्वयं भोगनेवालेको चोर कहा गया है-- धो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।'

भारतीय संस्कृति केवल मनुष्यमें ही अपने आत्माको देखकर-उसकी सेवा-संरक्षण करके संतृष्ट नहीं है। वह प्राणिमात्रमें आत्माको देखकर—भगवानको देखकर सबके प्रति प्रेम करनेकी, सबकी सेवा करनेकी आज्ञा देती है । भगवान् गीतामें कहते हैं-

सर्वभृतस्थमात्मानं सर्वभृतानि योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ (६ 1 २९)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वे च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणञ्यामि स च मे न प्रणञ्यति॥ (६ 1 ३0)

'योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शी पुरुष सबमें—समस्त प्राणियोंमें आत्माको देखता है और समस्त प्राणियोंको आत्मामें देखता है।

'जो पुरुष सर्वत्र (सत्र प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियोंमें) मुझ (भगवान्) को देखता है और सबको मुझ (भगवान्) में देखता है, उसके छिये मैं कभी ओझछ नहीं होता और वह मुझसे कभी ओझल नहीं होता ।

पद्यति योऽर्जुन। आत्मीपम्येन सर्वत्र समं सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (६ | ३२)

'अर्जुन ! आत्माकी उपमासे अर्थात् अपने ही स्छ सम्पूर्ण प्राणियोंको जो समभावसे देखता है और उन्हें सुख या दु:खमें भी जो अपने ही समान समभाव एक है, मेरे मतमें वही योगी सर्वश्रेष्ठ है । श्रीमद्भागत कहा गया है-

मृगोष्ट्खरमकीखुसरीसृप्खगमक्षिकाः आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत। (19 | 88 | 91

'हरिन, ऊँट, गधा, बंदर, चूहा, साँप, पक्षी को मक्खी आदिको अपने निज पुत्रके समान समझे। उन और पुत्रमें अन्तर ही कितना है।'

वहिरन्तरपावृतम्। सर्वभतेष. यथा खममलाशयः॥ ईक्षेतात्मिन चात्मानं व्राह्मणे पुरकसे स्तेने ब्रह्मण्येऽकें स्फुलिङ्गने। अकृरे कूरके चैव समदक् पण्डितो मतः। नरेष्वभीक्षणं मङ्गावं पुंसो भावयतोऽविरात्। स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि॥ विस्टुज्य स्मयसानान् स्वान् दशं वीडां चदैहिकीम्। प्रणमेद् दण्डवद् भूमावादवचाण्डालगोखरम्। (११ । २९ । १२, १४, १५, १६)।

'शुद्रहृद्य पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके और अर्थ हृदयमें आकाशके समान बाहर और भीतर पिएन आवरणश्र्न्य मुझ भगवान्को ही स्थित देखे। जी प्र ब्राह्मण, चाण्डाल, चोर, ब्रह्मण्य, सूर्य, चिनगारी, ^{ब्रग्ह} और निर्दय सबमें समान दृष्टि रखता है, वहीं वर्षी पण्डित है । सभी नर-नारियोंमें जब मेरी (भगवान्की) भावना की जाती है, तत्र थोड़े ही समयमें मनुष्यके की स्पर्धा, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर हो हैं। लोकनिन्दा, उपहास आदिकी परवा न करके हैं CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

र्श

जीवन

योऽर्जुन। ों मतः॥

भाग ३६

६ । ३२) ने ही सल और उने

मभाव रख्त त्रीमङ्गागवत्रे

कियत्॥ 18/81 , पक्षी औ मझे । उने

पाचृतम्। हारायः ॥ लिङ्गके। मतः॥

चिरात्। त हि॥ हिकीम्।

खरम्॥ ५, १६)। ीर अपने

तर परिष् । जी पुर

ारी, गुल ी वस्ति।

गवान्की)

गौ एवं गघेको भी (उनमें भगवान् समझकर) पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे ।'

केवल चेतन प्राणी ही नहीं, जड पदार्थीमें भी भगवान्को ही देखे-

वं वायुमिनं सिळलं महीं च ज्योतींपि सत्वानि दिशो द्रमादीन् । सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यतिश्च भृतं प्रणमेदनन्यः॥ (११।२।४१)

'ऐसा पुरुष आकारा, वायु, अग्नि,जल, पृथ्वी,ग्रह-नक्षत्र, गणी, दिशाएँ, वृक्ष-लता, नदी-समुद्र—सभी भगवान्के श्रीर हैं, यों सबमें भगवान् समझकर अनन्यभावसे मत्रको प्रणाम करता है।

सीय राम सय सव जग जानी। करों प्रनाम जोरि जुग पानी॥ सो अनन्य जाकें असि मिति न टरइ हनुमंत। में सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

मनु महाराजने मनुष्यमात्रके दस धर्म बतलाये हैं, नो भारतीय मानव-संस्कृतिके स्वरूपको स्पष्ट करते हैं---धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः। भीविंद्या सत्यमकोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ (मनुस्मृति ६। ९२)

'यृति, क्षमा, दम, (मनका संयम), अस्तेय (किसीकी भी वस्तु या हकको किसी प्रकार भी लेनेका विचार तथा प्रयत्न न करना), शौच (बाहर और भीतरकी शुद्धि), धी (बुद्धि), विद्या, सत्य और अनोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।

क्हाँ तो भारतीय संस्कृतिके ये पवित्र उदार सर्व-भृतिहितमय भाव और कहाँ आजका कलह-हिंसामय नीयन १ आज अपने नीच स्वार्थके लिये एक मनुष्य ग्वाप्क मित्र मनुष्पके, तथा वन्दर, हरिण और अन्यान्य पशु-प्रियोके प्राण-हरण करनेमें हिचकता नहीं। इतनी ही वात नहीं है, वह अपने स्वार्थके लिये न माछ्रम प्राणिहिंसा-के कितने-कितने आयोजन करता है, जिनके द्वारा लाखों-

करोड़ों जीवोंकी हत्या होती रहती है और वह इसे अपना कर्त्तव्य तथा इसमें गौरव मानता है !

व्यवहारमें व्यावहारिक जगत्के नियमानुसार असमता रखना अनिवार्य है । माता और पत्नी दोनों समान अवयव-वाली स्त्री हैं, परंतु भाव और व्यवहारमें अनिवार्य सहज मेद है। हाथी, गौ, कुत्तेमें एक ही आत्मा है, पर उनके आकार-प्रकार, मूल्य तथा उपयोगमें अनिवार्य मेद है। हाथ, पैर, मस्तक, मुख, गुदा आदि सबमें एक ही आत्मा है तथा सत्रके सुख-दुःखमें समान अनुभूति है, परंतु व्यवहारमें अनिवार्य मेद है। पर यह सब होनेपर भी उनमें किसीमें न परस्पर द्वेष है, न किसीका अहित करनेकी चेष्टा है । इसी प्रकार समस्त प्राणियोंमें समभावसे आत्मा या भगवानुका दर्शन करनेवाली भारतीय संस्कृति विविध साधनोंसे सबकी सेवा-व्यष्टिके द्वारा समष्टि-की सेवा, सबका सहज हित करनेका आदेश देती है।

संत विनोबा भावे 'हिंदू' शब्दका अर्थ करते हैं-

यो वर्णाश्रमनिष्ठावान् गोभक्तः श्रतिमातृकः। सर्वधर्मसमाद्रः॥ मूर्ति च नावजानाति पुनर्जनम तस्मान्मोक्षणमीहते। भूतानुकूल्यं भजते स वै हिंदुरिति स्मृतः॥ हिंसया दूयते चित्तं तेन हिंदुरितीरितः॥

'जो वर्ण और आश्रमकी व्यवस्थामें निष्ठा रखनेवाला, गौ-सेवक, श्रुतियोंको माताकी भाँति पूज्य माननेवाला तथा सब धर्मीका आदर करनेवाला है, देवमूर्तिकी जो अवज्ञा नहीं करता, पुनर्जन्मको मानता और उससे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है तथा जो सदा सब जीवोंके अनुकूछ बर्तावको अपनाता है, वही हिंदू माना गया है। हिंसासे उसका चित्त दुखी होता है, इसलिये उसे 'हिंदू' कहा गया है।'

इस हिंदूने जिस जीवन-पद्गतिको--जिस आचार-विचार-पद्मतिको अपना रक्खा है, वही हिंदू-संस्कृति, भारतीय-संस्कृति या मानव-संस्कृति है।

इस भारतीय संस्कृतिकी अपनी कुछ विशेषताएँ ये हैं-

उद्य

अपः

चल

पड़ार

जर्ल्द

भिन्न

करने

हो ज

विला

न ध

हमारे

िखे

वाटि

नहीं :

ही दूर

हेस्र

र्ग है

भाज

- १. सबमें एक आत्मा होनेका विश्वास ।
- २. कर्मफलमें विश्वास ।
- ३. पुनर्जन्ममें विश्वास ।
- ४. मोक्ष या भगवत्प्राप्तिमें विश्वास ।
- ५. रागद्देषरहित जीवन-धारणोपयोगी वर्णधर्म तया आश्रम-धर्मकी व्यवस्था ।
- ६. विवाह-संस्कार ।
- ७. बड़ोंकी सेवा तथा गो-सेवा ।
- ८ संसारके विभिन्न मतवादों तथा उपासना-पद्धतियोंके प्रति उदारता,सिहण्यता तथा उन्हें अपनेमें समा लेनेकी चेष्टा।
- ९. 'अर्थ' तथा 'अधिकार'को प्रधानता न देकर 'त्याग' और 'कर्त्तव्य' को प्रधानता देना।

उपनिषद् कहते है-

न कर्मणा न प्रजयाधनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः॥

'कर्मसे नहीं, प्रजासे नहीं, धनसे नहीं, त्यागसे ही कोई अमृतत्वको प्राप्त होते हैं।

भारतीय संस्कृतिमें विवाह कोई समझौता या कंट्राक्ट नहीं है। भोग-विठासके छिये एक-दूसरेका खीकार नहीं है। नारी पुरुषकी सहधर्मचारिणी सेविका है और पुरुष नारीका स्वामी होनेपर भी उसका सेवक है। दोनों अभिन्नात्मा हैं। एक दूसरेके पूरक हैं। इसीसे उनका प्रथम मिळन—विवाह एक पवित्र 'धार्मिक संस्कार' है। परस्पर आत्मदान है।

भारतीय संस्कृतिमें देहकी स्वतन्त्रता सर्वथा मान्य है,परंतु उससे भी अधिक आवश्यकता है मस्तिष्कके स्वातन्त्रयकी।

आज हमारा देश विदेशी दासतासे मुक्त है, स्वतन्त्र है, पर यह राजनीतिक स्वतन्त्रता आध्यात्मिक स्वतन्त्रताके विना सर्वथा अपूर्ण है । आध्यात्मिक दासत्वसे हम मुक्त नहीं हुए हैं। इसीसे आज विदेशी वेशभूषा, आचार-विचार, नियम-कानून, विदेशी जीवनचर्याका प्रभाव हमारे जीवनमें सर्वत्र छाया है। हम शरीरसे मुक्त होते हुए ही मस्तिष्कसे गुलाम हैं। अपनी भारतीय संस्कृतिके प्रति अनास

.. सबसे अधिक गम्भीरताके साथ विचार काले के वात तो यह है कि हमारी भारतीय संस्कृतिपर नवीन आधुनिक सर्वथा विपरीत आसुरी संस्कृति आक्रमण हो रहा है और वह देशकी राजनीतिक हो होनेके बाद तो और भी प्रवल हो गया है। आसुरी संस्कृतिका लक्ष्य है—केवल भौतिक सुलेक घृणा, असिहणुता, प्रमाद, हिंसा इसके आधार हैं इन्हींके परायण हुई यह संस्कृति अपना विस्तार का कामक्रोधप्रायणाः) । अपनी संस्कृ करनेवाली शिक्षा, बाह्य विज्ञाल अनास्था उत्पन्न चमत्कार, हमारे देशकी दरिद्रता, एवं राजीवि कारणोंसे उत्पन्न कलह-विद्वेष इस विषवृक्षको सींच हैं ! इसीसे आज देश सर्वत्र दलबंदी, कल्ह, ह अराजकता और अनैतिकताकी ओर अप्रसर हो रहाँ दैवी सम्पत्तिका विनाश करके आसुरी सम्पत्तिका कि और फलतः चिरकालीन पवित्र आध्यात्मिक जीव सर्वनाश ही इस रूपमें उदित आसुरी संस्कृतिका उ है। दुःखकी बात है कि हमारा मस्तिष्क अव आसुरी भावनाका आश्रय करके सन्चे कत्याणी पराङ्मुख हुआ जा रहा है !

ऐसे विकट समयमें यह परमावश्यक हो मि कि हमारे देशके शीर्षस्थानीय नेताओंका और अति ध्यान भारतीय संस्कृतिकी महानता, उपादेयता और कि कारिताकी ओर खींचा जाय।

यह स्मरण रखना चाहिये कि एकमात्र अयामि भारतीय संस्कृतिकी रक्षा, प्रचार और खीकार ही स्पूर्णी जगत्को भीषण विध्वंससमृहसे बचाकर, उसके ह दु: ख-क्लेशोंका निवारण कर, उसे नित्य शास्त्रत ह शान्ति देनेमें समर्थ हैं। 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनी

'हरि: ॐ तत्सव्'

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक--सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीदान्तव)

[गताङ्कसे आगे]

बदरीनाथसे विदा

[भाग ३:

अनास्य ह

करने के

स्कृतिप्र ह

गया है।

सुखोपके

ावार हैं है

स्तार का है

ो संस्कृति

ह्य विज्ञाल

राजनीन

को सींच ह

मलह, बं

हो रहा है

त्तिका कि

नक जीवन

तिका उन

ष्क आउ

कत्याणक

म हो ग

र जनतः

और कर

अध्यामप्र

रिम्यूर्गेर

उसके स

शास्त्रत है ति ऽयंगी

र्री संस्कृति तीन दिनोंके इस सुखद और चिरस्मरणीय पावन तीर्थ-नीतिक हो वासके बाद आज वह विदा-वेला भी आ पहुँची थी, जिसमें हम इस पवित्र पुरीसे, उसकी इस पुण्यभूमिसे, अरण्य-खण्डोंसे, उन्नत हिममण्डित इवेत शिखरोंसे, भगवान् वदरीनाथके भव्य मन्दिर तथा तपोलीन भगवत्-रूप वदरीविशालसे खल्प कालमें ही नाता तोड़नेवाले थे । ५ जुलाईका मध्याह्नका समय आत्र-तासे अपराह्नकी ओर वढ़ रहा था । आज हमारा लक्ष्य गा-पाण्डुकेश्वरमें पड़ाव । सभी अपना सामान समेटनेमें उवत थे, भारवाहक भी अनुशासित और नियन्त्रित सैनिकों-से अपने हाथ-पैर मजबूत कर भारसाधनोंको सँभाल विस्तर क्सने लगे तथा कंडी-डंडीवाले अपने वाहनोंको डेरेपर लगा चलनेको प्रस्तुत हो गये । समयकी तीत्रगतिके कारण हमें भी जल्दी थी और हमारे कारण ही इन्हें भी । एक पड़ावसे दूसरे पड़ावपर पहुँचनेके लिये इस समूची यात्रामें हमें सदा ही ब्दी रही है। आज भी थी। किंतु आजकी यह जल्दी कुछ भिन्न थीः कुछ भयानक सी । यात्रापर जव हम चले, एकके गद एक पड़ाव पार करते मनमें बड़ा उत्साह रहता और इस उत्साहके कारण अनेक बार हम अपनी यात्रापर प्रस्थान करनेके निश्चित समयके कुछ पूर्व भी आगे बढ़नेको उद्यत हो जाते। भारवाहकोंको बुलाते, इनमें कभी कोई आनेमें कुछ विलम् करता तो कितनी झुँझलाहट होती हमें। आ**गे** व्हनेकी, ऊपर चढ़नेकी, जल्दी जो रहती। आज यह बात न थी। अब हमें न ऊपर चढ़ना था न आगे बढ़ना। सारे भारवाहकोंको भी, जो दो दिन पूर्वतक- हमारे लिये चले थे, हमारे लिये बढ़े थे, हमारे लिये ही दुर्गम भिटियाँ चढ़े थे, अब नहीं चलना था, अब नहीं बढ़ना था, नहीं अन वे दुर्गम वाटियाँ चढ़नी थीं। अब तो उन्हें कुछ ही रूतिक नीचे उत्तर पीपलकोटीतक हमें पहुँचाकर अपने भमका मेहनताना, परिश्रमका मोल और संकल्पकी दक्षिणा क्षेत्र युक्ति पाना था। पहले हमें लक्ष्यपर, जो हमारा अव भारती सुका था, पहुँच अपने मनोरथकी मुक्तिकी चाह रहती। आ_{ज इन्हें अपने} मनोर्थकी मुक्तिकी चाह थी और इसीलिये

आज इन्हें पूर्वापेक्षा जल्दी थी । कैसी दो-भाव और दुविधा भरी जल्दी थी यह। पहले हमें उत्साह रहता, आज हम हताश थे। जो मन सदा उल्लिसित रहा, आज अन्यमनस्क था, जाने क्यों ? कदाचित् संयोग और वियोगके भावोंकी ही महिमा थी यह । प्रिय वस्तुओंकी प्राप्तिः अभीष्टकी सिद्धि और आत्मीयजनोंके संयोग-मुखकी हमने जीवनमें अनेक बार अनुभूति की थी। इस यात्रापर उसका उत्कृष्ट रूप भी हमने देखा । इसी तरह प्रिय वस्तुओंके पृथक्त्व और आत्मीयजनोंके विछोहसे भी अनेक वार हम व्याकुल हो चुके थे। फिर जिस संयोग-मुखके लिये हम आकुल मनसे सदा वढ़ रहे थे, उसकी प्राप्तिके साथ ही वियोगका वह भय, जिसे हम इन तीन दिनोंतक यहाँके उस स्वर्गिक दृश्यमें भुला बैठे, भयानक रूपमें आज हमारे सामने आ गया। यह भय क्या एक यथार्थ था, जीवनका एक सत्य। हम कातर दृष्टिसे जीवनके इस सत्यकी ओर देखने लगे। हमारे हाथ-पैर चल रहे थे, हम अपना सामान समेट रहे थे, किंतु हमारे मस्तिष्कमें यूम रहा था—उत्तराखण्ड, उसके पावन तीर्थ और मनोरम दृश्य। इन सबको, जिनको अभी हमने देखा था, देख रहे ये और कुछ कालमें स्वप्निल बनाने जा रहे थे। जहाँ एक ओर हम इस निर्मम और कठोर काल-गतिके कायल थे, वहाँ दूसरी ओर हमें ऐसा लगा कि एक बार पुनः उत्तराखण्डकी वन-श्रीको, प्राकृतिक प्रभुसत्ताको, पावन सरिताओंको, कलकल करते निर्झर झरनोंको, शीतल जल-प्रपातोंको, अरण्य-खण्डोंको, हिम-शिखरोंको, हरी-भरी लता-कुञ्जों और शुरमुट-झाड़ियोंको, पुष्प-पौधों और विशाल तहओंको, इनपर बैठे कलरव करते पक्षियोंको, भूले-भटके दिखे वनचरोंको, यहाँके सभी देवालयोंको, देवालयोंके देवतुल्य देवसेवियोंको, साधना-रत उन सभी अरण्यवासी ज्ञानियों, ध्यानियों और संतोंको और दारिद्रच-दु:ख होते हुए भी सदाचारसे श्रमलीन तपस्वियोंसे यहाँके गिरिवासियोंको भरजोर, भर-नजर निरख हैं। गहरी खाइयों और भयानक खंदकोंको भी, मँडराते, बोर गर्जन करते, कभी गिरिखण्डोंपर बैठते, कभी चलते, कभी चढते, कभी उतरते उन मेवलण्डोंको, जिन्होंने पग-पगपर

यहाँ हमारा साथ दिया था, आज फिर भरपूर देख लेनेकी चाह उमड़ पड़ी। न हम अय यहाँ रह सकते थे और न फिर उत्तराखण्डके इस वैभवको देख ही सकते थे। जो देख लिया था, वह समय गत था, जो न देखा था वह भावगत। यह स्वल्प समयगत और अल्प भावगत भविष्यत्की मंजिलपर स्वप्नगत वनने जा रहा था। मनकी भयावह स्थिति थी। वह चल पड़ा उत्तराखण्डका चक्कर लगाने। कभी मेघ बन ऊँचे-ऊँचे शैल-शिलरोंपर मॅंडराता, कभी प्यासा पथिक बन निर्झर झरनों, शीतल जलप्रपातों और उमड़ती सरिताओंमें अपनी प्यास बुझाता, तो कभी रसिक मधुक बन पुष्पघाटियोंमें मकरन्द पान करने लगता। कभी भक्त बन किसी देवालय-में देव-आराधना लीन हो जाता तो कभी भक्तिरसमें तल्लीन भक्तोंके समूहमें खो जाता । फिर पलभर ठहरता, फिर मॅंडराने लगता । कभी किसी पुष्पका पराग पान करता तो कभी किसी पुष्पपर निमिषभर स्कता, छिन-छिन मँडराता, इम उसे संयत करनेका लाख प्रयत्न करते, पर पतंगकी तरह वह तो आज पागल था, दीवाना था अपने इश्कका। मनकी इस अस्थिर अवस्थामें हम धधकते हृदयसे भगवान् बदरी-विशालसे विदा लेने मन्दिरमें पहुँचे । अपने तीन दिनोंके पुरी-प्रवासमें हमने भगवान् वद्रीविशालके प्रायः सभी पूजन-दर्शन किये थे । इन दर्शनोंमें दर्शनार्थियोंका जो जमाव होता, उसे भी देखा था। इस समय भी काफी जमाव था, खासी अच्छी भीड़ । यात्रियोंकी यह भीड़ अनुपातमें अधिक हमें उत्तराखण्डके चारों धामोंमें ही मिली थी, यहाँ यह सर्वाधिक थी। मार्गमें मिले अगणित लोग और देवस्थानोंकी यह भीड स्नान-भजन-पूजन और आराधनाके वे सभी दृश्य, जो हमने अपने उत्तराखण्डकी इस यात्रामें देखे थे, एकबारगी दृष्टिके सामने होकर गुजरने लगे। मन अपनी अपूर्व गतिसे इन दश्यों-का हमें साक्षात्कार कराने लगा । अब उसे यमुनोत्तरी, गंगोत्तरीके दुर्गम भग और दुरूह घाटियोंको पार तो करना नहीं पड़ता था। अतः पलभरमें तो वह गंगोत्तरी पहुँच जाता, पलमें यमुनोत्तरी, पलमें त्रियुगीनारायण तो पलमें केदारनाथ, न कोई तारतम्य, न कोई सिलसिला था। जहाँ उसकी मर्जी करती अटक जाता, भटक जाता, चला जाता, चला आता। मनके माध्यमसे उत्तराखण्डके इस पावन तीर्थ-संगमकी हम एक बार फिर यात्रापर निकले। इस यात्रामें यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी और केदारनाथ सभी जगह गये। अव बदरीनाथकी भी यात्रा हम कर चुके थे। वैदलवाला

मार्ग विकट चढ़ाइयोंवाला फिर एकदम बीहड़ और क संकीर्ण । अधिक-से-अधिक ऊँचाईपर हमलोग चले 🐰 नीचे, कम नीचे नहीं, हजारों फुट नीचे यमुना ह मन्दािकनी और अलकनन्दाके पायन प्रवाहके निकः देवदार और चीड़के घने हरित पह्छवधारी वृक्ष, फरेंहे तर, लताओंसे आच्छादित विविध पौधे और अनत्तहम् वाली सौरभ विखेरती पुष्पावली इन दुर्गम घाटियोंमें कर शोभायमान थी । पावन सरिताओंके संगम, इन संक एकत्रित यात्रियोंका समूह, स्नान-ध्यान, पूजन-मनन, 🛼 पिण्डदान एवं तर्पणमें निमग्न। कैसा मनोभावन था यह क्ष श्रद्धा तथा भावसे कोई करबद्ध प्रार्थना कर सा कोई भगवान भास्करको अर्ध्य दे रहा है, कोई हार्यों लिये अपने भक्तिभावसे भीजी श्रद्धाञ्जलि भागीरथीं हो। रहा है तो कोई करा और जनेऊ थामे विधियत अपे हिं का श्राद्धः तर्पण और पिण्डदान । इन संगमोंपर एहे उनके यजमान, यात्रियोंका यह संगम कैसा चित्राकर्षक है मनोहारी, कैसा भक्तिभाववर्धक और कैसी असीम आसि का द्योतक होता, यह दश्यके दर्शकके ही समझबी होती । मन्दिरोंमें आचार्य, रावल और पुजारी वेहने यजुर्वेदकी ऋचाओं और भक्ति-गीतोंका मुक्तकण्ठसे ह पाठ करते । यात्रियोंके झुंड-के-झुंड प्रवेश करते तदनन्तर भगवद्दर्शन करते ही कैसा असीम हुल अन्यक्त शान्ति और एक प्रकारकी तपश्चर्याके वाद बेर सिद्धि होती है, उसका अनुभव करते ये भक्तजन।

मा

ट्ड

इस

यह

उनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[भाग ;

न ।

और अ बाद उसे अपना प्रभु मिल गया है। क्यों न हो ? साधारण-विख्ते हैं हे-साधारण इष्टकी प्राप्तिपर संतोष और मुखकी अनुभूति यमुना, गृ मानवकी प्रवृत्ति है, फिर इस महान् इष्टकी प्राप्तिपर आज निकट में उसका रोम-रोम, उसकी पार्थिय देहका कण-कण यदि प्रफुल्लित क्ष, फलेंने हे हो सन्दन कर रहा हो, नाच रहा हो, तो यह स्वाभाविक ही नन्त हार्ग था। उसकी कठिन तपस्याका ही तो परिणाम था यह। टियोंमें यत्र उसके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरताके निवारण-इन संग्रह की, अपनी श्रेष्ठ साधकी, कठिन त्यागकी ही तो फलसिद्धि मनन, चिल धी और कठोर कष्टोंका ही तो सुफल था यह । उसे उसके था यह हर प्रभू मिले । आखिर यह जीव उन्हींका तो अंश है । यथार्थमें कर रहा बीव और ब्रह्म एक ही तो हैं। एक ही वस्तुके दो नाम। ई हाथोंनं ह एक ही चित्रके दो दर्शन । एक सूर्यकी अनन्त किरणों रथीको भेंट और अनन्त प्रतिबिम्बोंकी तरह । सूर्यकिरणें त् अपने ति कितनी देरतक पृथक् रह सकती हैं, उसका भी एक समय पिर पण्डे एता है और उसके आते ही सूर्य समेट लेता है अपने इन त्ताकर्षक है अनन्त अंशोंको, अनन्त रूपों और अनन्त प्रतिविम्बोंको। रीम आसिह अनत कालसे विछुड़ा यह ईश्वर-अंशधारी जीव सृष्टिकी नाना समझकी योनियोंमें भटकता है, नाना प्रकारके कर्म-अकर्म करता है और जारी वेदमत आवागमनके चक्रजालमें फँसा रहता है, किंतु जब इसे अपने तकण्ठसे ल सत्क्रमोंके कारण मानवकी देंह मिलती है तो इस मानवरूपी श करते देहवारी जीवको एक विशेष ईश्वरीय शक्ति और मिल म सुला बाती है, वह है एक सन्दाव, जिसमें उसकी मुक्तिके वीज वाद जो न छिं रहते हैं। इस सन्द्रावका उदय होते ही वह जीवन्मुक्ति-के इस बीजका आरोपण करता है अपने ही अंदर। मुलभ बुद्धि, विवेक, ज्ञान और शक्तिके द्वारा बुद्धि मिट्टी बनती है, न कोई का विवेक लाद, ज्ञान पानी और शक्ति वह घेरा (बाड़ी) जिसकी खनीपर म षुरक्षामं सद्भावका यह बीज मुक्तिरूपमं अङ्कुरित होता है। मुख पुन्त कालानारमें यही एक विशाल बुक्षका रूप ले मुक्तिफलका जनक पुप्रवाहित 🕅 है। ऐसे पारिभाषिक और प्रयत्नरूपी मुक्तिवृक्षसे मुक्ति-योंकी यह म मार्कि अनन्त द्वार उद्घाटित होते हैं, उसकी शाखाओं और प्रभाव ह व्हिनियोंमें अनन्त फल फल जाते हैं जो अनन्त जीवोंकी मुक्ति-केसा अ का कारण वनते हैं। ऐसा मुक्ति-वृक्षरूपी वह बीज (मानव) तावरणकी इस इसको जन्म दे स्वयं तो मुक्त होता ही है, दूसरोंकी मुक्ति-节草 का हैत बनता है। सृष्टिके अनन्त जीवोंमें मनुष्य ही एक दुई प्रियत ऐसा जीव है, जिसे केवल यह विशिष्ट शक्ति प्राप्त है। उसकी टकका ई यह विवेकशक्ति एक ऐसा पारदर्शी ऐनक है, जिसके द्वारा उसे त्तराखण्ड वित-अनुचित, भक्टे-बुरे, हित-अनहित और उत्थान-पतनका बोघ होता है । इस प्रकार जब बीव मनुष्ययोनि प्राप्तकर इस र किर्व

विवेकशक्तिके द्वारा अपनेको पहचानता है, अनन्त कालसे अपने-आपपर पड़े अपने ही अपरिचयरूपी आवरणको हटानेमें समर्थ होता है। यथार्थमें अपने वास्तविक रूपको पहचानना ही मानवकी सबसे बड़ी सफलता है और इस पहचानका न होना ही उसकी सबसे बड़ी असफलता भी। जब उसे यह भान हो जाता है कि मैं क्या हूँ ? क्या कर रहा हूँ, तो छटपटाकर अपने पूर्ण रूप अपने पूर्ण आकारकी प्राप्तिकी दिशामें वह तेजीसे अग्रसर हो जाता है और फिर उसे भव-अवरोध उसी तरह नहीं रोक पाते, जैसे गङ्गाके प्रवाहको हिमालय । जन उसके अन्तश्चक्षु खुळ जाते हैं तो उसे उसकी (ज्योति) भगवान्तक पहुँचनेमें सुदृढ गढ़ और उसकी फौलादी दीवालें भी नहीं रोक पातीं। वह पागल पतंगेकी तरह अपनी दिव्यहिसे अपने इष्ट दीपकसे मिलनेको आतुर मन और प्राणभयसे रहित व्यथित-हृद्य लेकर भक्त्याकारामें मँडराता है। जीवको अपने आत्मतत्त्वका बोध होते ही वह संसारसे विमुख होने लगता है और फिर संसारविमुख होकर यह भक्त भ्रमररूपी मनसे तवतक चक्कर लगाता है उस वाटिकामें जवतक उसे उसका इष्ट, उसका आराध्य और अभीष्ट न मिल जाय। उसे तो केवल भान रहता है अपने इष्टका, अपने प्रियतमका। अपने प्रियतमकी पावन सुरिभमें वह प्रमत्त हो घूमता है। चकर काटता है। न उसे कण्टकाकीर्ण मार्गका भान है और न किसी पुष्पकी पंखुड़ियोंमें सदाको सो जानेका भय। ऐसा अवोधः काम-क्रोध-लोभ-मोहसे रहित ग्रुद्ध सात्विक निश्चल भावभरा मानव और भावुक भक्तजन अपने देवके सम्मुख होता है तो-

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । कोटि जन्म अब नासिह तबहीं ॥

- की उक्तिके आधारपर उसके अतीतके दोषोंका अपने-आप शमन हो जाता है और उसे भगवत्-साक्षात्कार सम-जीवनका वह मुख सहज प्राप्त हो जाता है; जो उसका जीवन-इष्ट भी होता है। इस भक्तिरसका, भगवान् और भक्तका यह दृश्य यहाँ उपिखत था। इम देख रहे थे, मानो मन्दिरकी वह निर्जीव पाषाण-मूर्ति, सजीव देहधारी मानवकी सदाक्त सगुणो-पासनाके कारण सजीव हो उठी हो। उस अवलोकनमें, भगवान् और भक्तमें एक विचित्र आभा, एक अलैकिक शोभा उस समय दृष्टिगोचर होती । दोनों मूक थे । न भगवान् कुछ बोलते न भक्त कुछ कहता। दोनों एक दूसरेको देखते, दोनों ही अपनी अपूर्व छवि-छटा छिटकाते, भावोंसे एक दूसरेमें

समाते, दोसे एक हो रहे थे। इसी समय किसी अज्ञात आवाजमें हमें सुनायी दिया—'तपस्यासे प्रसन्न देव सम्मुख हैं, वर माँग लो।' इस चौंके। क्या अभी भी हमारी कोई आकांक्षा है, कोई अभीष्ट है, कोई मनोरथ है ? यदि हो तो यह सुन्दर योगपर जीवनकी हर साध पूरी हो सकती है । हम विचारसरणिमें तैरने लगे। कुछ दूर जाते फिर क्लपर लौट आते । भवसागर उसड़ रहा था, जिसका न कोई आदि था न अन्त । हम उसकी एक कगारपर खड़े थे। इस पार क्या है, यह देख रहे थे, उसे देख चुके थे। भाव-तरङ्गोंसे तरङ्गायित इस भवसिन्धुका हमने अनेक बार अवगाहन करना चाहा, अनेक बार इसके पार क्या है, यह जानना चाहा, इसमें कितने रत हैं कितने कंकड़-पत्थर, यह मालूम करना चाहा, पर हम सदा ही असफल हुए । ऐसी स्थितिमें अब हमारी और क्या आकांक्षा और मनोरथ हो सकता था ? यात्रापर जब हम चले थे, तव भी हमने कोई मनौती नहीं की थी। एक सहज इच्छा थी जीवनके मुक्तिपथके पहचानकी । उसके निकटतम हम पहुँच चुके थे। अव केवल हमारा लक्ष्य था—अपने शेष जीवनमें मुक्तिपथपर सतत वढते जाना, विना रुके विना ठहरे, सरिताके निर्मल प्रवाहकी तरह । इससे अधिक हमारी न कोई चाह थी, न कामना । हमने जीवनको यहाँ देखा था, उसके यथार्थ मुखका साक्षात्कार किया था, अतः जीवनके इस सार्थक पक्षको भुला किसी अहर्य, अगोचर, स्वर्णिम मुख़की अब हमारी कोई चाह नहीं रह गयी। हमने जिस भमिपर जगतीका यह द्वन्द्व देखाः जीवनका मर्म पहचानाः अपने-आपको जाना, अपने इष्ट रूपको पहचाना तथा उसके आगे क्या है और उसके पीछे क्या, यह न जान पाया तो ऋषि सुतीक्ष्ण जिनके विषयमें तुलसीदास और कालिदासने कहा है--- 'नाम सुतीछन रति भगवाना' तथा 'नाम्ना सुतीक्ष्ण श्वरितेन दान्तः' का वह कथन बरबस हमारे स्खसे भगवत-चरणोंकी वन्दनामें इस भगवत्-साक्षात्कारके समय मखरित हो उठा--

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा।
समुझि न परइ झूठ का साचा।।
तुम्हिह नीक ठागेँ रघुराई।
सो मोहि देहु दास सुखदाई।।

और जीवनके चरमोत्कर्षकी मंजिलपर पहुँचनेवाले सुखसे अभिभृत हृदयसे भगवान् बदरीविशालके चरणोंमें अपनी अश्रु-अञ्जलि अर्पितकर हम सब फिर लौट पड़े जीवनहे स पथपर जिस पथसे हमने आज यह भगवत्साक्षात्कार किया।

जिस समय हमने बदरीनाथ छोड़ा, वर्षा हो रही थी। वदरीनाथमें तीन दिनके हमारे प्रवासकालमें वीच-वीचमें ह वर्षा होती रही थी। हमने अपना पहला मुकाम पाण्डुकेश्वा किया। दूसरे दिन सोमवती अमावस्या थी। सोमकी स्नान हमने जोशीमठमें किये। तीसरे दिन हम पीपलक्षेत्र पहँचे। पीपलकोटीमें हमने अपने भारवाहकों, कंडी-इंडीनलें का हिसाव भुगतान कर उन्हें छोड़ा। लगभग डेढ-पीक्षे महीने ये लोग हमारे साथ रहे, एक 'पारिवारिक सम्बन्ध सा हो गया था, इन्हें छोड़ते हुए हम और हमें होते हुए ये लोग आज कुछ अन्यक्त अभाव अस कर रहे थे । यों तो जीवनकी संजिलमें हमलेग कि ही कितनोंसे मिलते-बिछड़ते हैं । यही बात इन लेगें साथ भी हुई। किंतु हमारे और इनके मिलने किंदुओं प्रधान रूपसे एक बात और थी, जिसके कारण कदाचित् हमारी और इनकी यह मनोदशा हो गरी उत्तराखण्डकी यात्रापर हम अब इस जीवनमें फिर आनेतर नहीं थे और यदि आवें भी तो ये नेपाल-वासी ही हमें <mark>अर्</mark>र भारवाहकके रूपमें मिलेंगे, इसकी भी क्या सम्भावना। वर्ष कतई नहीं । इसी तरह वरावर अपना पेशा जारी रखें इन्हें आगे भी अनेक यात्री मिलेंगे, किंतु हम नी उत्तराखण्डकी यात्रामें अनेक अपरिचित ही मिलते हैं, कुर्व परिचयके साथ ही, कुछ-कुछ काल वाद सदाके लिये िष् जाते हैं। संसारमें मिलनेवाले विछुड़कर अनेक ^{वार कृ} मिल जाते हैं। पर उत्तराखण्डके बीहड़ वनों और हुई पथोंमें मिले यात्रियोंसे पुनः भेंटकी आशा क्वित् ही रही इसका कारण है, देशके हर कोनेके, सुदूर गाँवींसे लोग ई आते हैं, इनके यहाँसे लौटकर कार्यक्षेत्र और दूरीके का फिर मुलाकातकी कतई कोई सम्भावना नहीं रहती। है मुलाकात और संयोगको गोस्वामी तुलसीदास^{जीने हुल} उपमा दी है-

> तुरुसी या संसारमें भाँति भाँतिके होग। सबसों हिरु-मिरु चािुये नदी-नाव संजोग॥

गोस्वामी तुलसीदासजीका यह दोहा उत्तराख^{ण्डकी वर्ग} केवल अपरिचितोंके परिचय और उनके संयोग^{के विवे}र्ग ri Collection Haridage

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वरं हर दृष्टिसे सर्वथा सार्थक है। यहाँ देशके इर प्रदेश, हर भाषा-भाषी, भौति-भौतिके विविध वेशभूषाके यात्री मिलते [। इनसे मिलकर चलनेमें ही आनन्द और मुख मिल सकता है, अन्यथा गोस्वामी वुलसीदासजीके इस भावको मुलाते ही यात्रा-मुकामींपर साधन-संकीर्णताके कारण अनेक बार झराडा हो जाया करता, यह इमने प्रत्यक्ष देखा भी था।

पीपलकोटीसे इमलोग ऐसी मोटर-वसमें सवार हुए जो वीपलकोटीसे सीधे ऋषिकेश आती थी। इमारी वस पाँच बजे प्रात:काल पौ फटते-फटते पीपलकोटीसे चली और बीच-बीचमें कुछ ठहरती हुई सायंकाल संध्या होते-होते ऋषिकेश पहुँच गयी। इन चौदह धण्टोंमें इमने मोटरसे एक सौ अइतालीस भीलकी यात्रा की । पहाड़ी रास्तेके कारण इतनी थोड़ी दुरकी यात्रामें भी इमें चौदह घंटे लग गये। ऋषिकेशके चारों ओरका प्राकृतिक दृश्य आज हमें और भी सुहावना जान पड़ा । इसका कारण कदाचित् हमारी प्रसन्न मानसिक वित्त दृष्टि थी। जीवनके इतने बड़ कार्यको समाप्त करनेपर हमारे मनका हर्षांत्फुल्ल होना स्वाभाविक था। और ऐसी मनोवैज्ञानिक अवस्थामें इस दृश्यका और भी अधिक आकर्षक और मुन्दर दिखना भी सर्वथा स्वाभाविक। ऋषिकेशसे लामग बीस मील आगेसे पहाड़ बड़े सघन हो जाते हैं। उनके बीचका यह पहाड़ी आड़ा-टेढ़ा पथ और गङ्गाका लहराता, शान्त प्रवाह इस संध्याकालमें बड़ा ही मनोरम दृष्टिगोचर हो

रहा था। किर इम हर्षोत्फुल्ल ये यात्राके मुखद और सुन्दरतम संस्मरणांसे।

शृषिकेश पहुँचते-पहुँचते रत्नकुमारीने एक गीत ग्रुनगुनाया--

गीत

इिमगिरि भ्रमणः देवता दर्शनः पावन सरिता-जङ अमिषेक । निमक तनः सुविचार विमक मनः जाप्रति उन्मुख ज्ञान विवेक ॥ तीर्थाटन परिणति आनन्दितः यद्यपि कौट चले निज गेह। इदय श्रीचता पीछे। देवमूमि-सुषमाका नेह ॥ सर्पाकृति-संकुळ पर्वत-पथः उतर चडा समतककी ओर। वाहन चका सवेग त्यागताः वन समूह गिरि अश्रक छोर॥ सम्मुख ऋषीकेशमें देखाः सुरसरिका प्रवाह अति शान्त । शैंक शिखरसे उतर जाह्वनीः समतकपर केटीं हो श्रान्त ॥ लग कूजन रव इंक्ट्रत नृपुरः सन्ध्या अरुण चरणका न्यास । नभ-प्राङ्गणमें बिछे जलदके। मृदुल पाँवहांका रँग साज॥ सिक्त स्तिमित-साः वना मुकुर समः प्रतिविम्बित सन्ध्याका भार । नव ताराकी जगमग बेंदी, अरुण माँगयुत तम-कच जाल ॥ उन्नत गिरिपरः समतल भूपरः फैला सन्ध्या स्विप्नल कान्ति । निशि-तमः दिन-प्रकाशः मध्यस्थितः मानो देती श्रमको शान्ति ॥ उच भूमिसे समतलपर आ दिन्य धामको किया प्रणाम । हिम उज्ज्वल प्रकाशसे पावे जन-जीवन लघु किरण-ललाम ॥ (क्रमशः)

मेरे प्यारे भगवान सदा मेरे साथ रहते हैं

3400

मेरे प्यारे भगवान् प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थानमें, प्रत्येक स्थितिमें नित्य निरन्तर मेरे साथ रहते हैं। पक क्षणके लिये भी वे मुझसे अलग नहीं होते। मेरे सौभाग्यशाली नेत्र रसलुब्ध मधुकर बने नित्य निरन्तर विश्वविमोहन मधुर मुस्कानसे मण्डित उनके मुख-कमल-मकरन्दका पान करते रहते हैं; पर कभी अघाते ही नहीं। इसी प्रकार, वे मेरी आत्माके परमात्मा प्रियतम भगवान् भी सदा अपनी दिव्य सुधामयी दृष्टिसे मुझपर अमृतवर्षा करते रहते हैं। कभी मैं उनके सुकोमल क्रोडमें सो जाता हूँ और वे मेरे सिरपर हाथ रखकर मेरे केशोंको अपनी कोमल कराङ्गुलियोंसे सहलाने लगते हैं। कभी मैं उनके चरणकमलोंसे चिपट जाता हूँ। कभी वे मुझे हृद्यसे लगा लेते हैं। पता नहीं क्या-क्या करते हैं, पर रहते हैं सदा मेरे साथ ही!

में कभी जरा-सी भी दूसरी वात सोचना चाहता हूँ तो पता नहीं, वे कैसे जान जाते हैं और विश्वभुलावन मनभावन मेरे वे प्यारे तुरंत ही ऐसी जादूभरी हँसी हँस देते हैं कि उसी क्षण में सब कुछ भूल जाता हूँ । वे भगवान् क्षणभर भी मुझको तन-मनसे कभी भी अलग नहीं होने देते ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६

जीवनके, उस र किया। हो रही थी।

व-वीचमं व पाण्डुकेश्वरं सोमवर्ताह

पीपलकोर्य डी-डंडीवार्ले डेट-पौतेश क सम्बन्धः

हमें छोड़ो वि अनुभा ालोग नित

इन लेगींर ज्ने-विद्युइते

कारण है हो गयी। तर आनेवारे

ही हमें आरे विना । यत नारी रखनेन

हम नहीं हैं, कुछते

लिषि क बार पुर

और हुए ही रहतीहै। सि ला

द्रीके का रहती। ऐं

रजीने दुन

TI ग॥

ण्डकी यात्र के लिये वी

सत पंच चौपाई मनोहर

(केखक—खासीची भीप्रेमानन्दजी)

पूज्यचरण भागवतशिरोमणि प्रातःस्मरणीय श्रीगोखामी तुल्सीदासजीका यह छन्द—

सत पंच चौचाई मनोहर सानि जे नर उर धरे। इाह्य अविद्या पंचजनित विकार औरखुबर हरे॥

अनेकों बार पढ़नेके बाद मुझे यह प्रेरणात्मक भावना मिली कि मानसके सातों काण्डोंके अन्तर्गत छन्द, सोरठा, दोहा तथा जितनी चौपाइयौं हैं, उन सभीका सार (सत) स्वरूप जो पंच (पाँच) मनोहर चौपाइयाँ हैं, उन्हींको हृदयमें धारण करके मनुष्य दारुण अविद्या-प्रस्त पश्चजनित विकारको दूर कर सकता है। यही प्रपत्ति-योग है, जिसके सम्बन्धमें आदिकवि वाल्मीिक अपनी रामायणमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराधवेन्द्रके शब्दोंमें ही व्यक्त करते हैं—

सक्देच प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्वतं मस॥

श्रीमङ्गावद्गीता (१८।६६)में भी भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य सामेकं शरणं वज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो सोक्षयिष्यप्ति मा शुचः॥ आशय दोनों सद्ग्रन्थोंका एक ही है।

यों तो श्रीरामचिरतमानसके मर्गज्ञों, मानस-महार्थियों तथा मानस-राजमरालोंकी उक्तियों तथा निजी अनुभवोंके सम्बन्धमें अनेकों लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें भेरी कोई तुलना नहीं, किंतु कल्यांणप्रेमी बन्धुओंसे मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि भगवरप्रेरणाद्वारा मुझे जो रामचिरतमानसान्तर्गत 'सत पंच चौपाई मनोहर'का भाव हृदयङ्गम हुआ है, उसपर विचार-वितर्क करके ग्रहा-पूर्वक धारण कर नित्य प्राप्त:काल दोपहर तथा सायंकल पाठ करें। खल्पकालमें ही इसके द्वारा आपके मानसं शान्ति मिलेगी और भगवश्वरणोंमें अनुराग बढ़ेगा।

HP

द्वारा

यो

आपय

त्रहिं

Me 1

भयाव

नहीं

E 17

षाटा,

Ma !

सहन

सत्का अर्थ 'सत्य' और 'सार तत्त्व' भी होता है।
पूज्यपाद गोस्तामीजीने अन्तमें छन्द, सोरठा, दोहा अव
इलोकोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा, केवल चौपाइयोंके क्षे
ही संकेत किया । मानसमराल श्रीविजयानन्दजीका 'ल
पंच चौपाई' नामक श्रन्थ-गीताप्रेसद्वारा ही प्रकाशित हे
चुका है । किंतु उसकी भी व्याख्या अतीव दुरुह तथ सर्व-बोधगम्य नहीं । अत्तप्व सर्वसाधारणके लिये सं
कालमें धारण करने योग्य 'प्रपत्तियोग'की निम्निक्षि
पद्ध चौपाइयोंको समर्पित करता हूँ ।

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोका।
मोर सुधारिहिसो सब भाँती। जासु कृपा निहं कृपा अवाती।
गई बहीर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराज्।
असरन सरन बिरद सँभारी। मोहि जिन तजहु भगत हितकारी।
मोरे तुम प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तिज पद जलजात।
तुमहि बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तिज भवन काज मम किं।
बालक बुद्धि ग्यान बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीन।
दीन द्याल बिरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।
अस प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तिज भजन कर दें दिन त्ती।

प्रत्येक चौपाईके एक-एक खण्डमें महामन्त्र 'श्रीर्ण जय राम जय जय राम' का सम्पुट लगा दिया जाय है आकर्षण-मन्त्र हो जायगा !

बीमारी, अभाव और शारीरिक विकारोंसे परेशान न रहें

(लेखक-डा॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, दर्शनकेसरी)

्यं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते।
आतमा वै शक्यते त्रातुं कर्मिभः शुभलक्षणेः॥

वह मानवजीवन, यह मनुष्ययोनि संसारकी सब
स्पदाओंमें मुद्ध्य है। इसको पाकर ही शुभ कर्मिके
आ अपनी आत्माकी रक्षा की जा सकती है।

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः।

धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वञ्च्यते॥

भी व्यक्ति इस विश्वमें दुर्लभ मानव-जीवनको प्राप्त का धर्मका अपमान करता है और क्षुद्र वासनाओं (अन्यविश्वासों, विषय-सुखों, जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों, या व्यसनों) का दास बना रहता है, वह वास्तवमें मूर्ख है; क्योंकि वह मानवजीवनसे द्वेष करता है और ठगा ही ह जाता है। (महाभारत शान्तिपर्व ३०३, ३२; ३४)

आपकी परेशानी

शायद आप बीमारीसे परेशान हैं। लम्बी व्याधिने आपको पत्त-हिम्मत कर दिया है। डाक्टरोंकी तरह-तरहकी कड़वी दवाइयों और इंजेक्शनोंसे दुखी हो उठे हैं। खाटपर पड़े-पड़े आप मन-ही-मन मृत्युके दु:खद भयावह खप्त देखा करते हैं!

आप किसी अभावसे दुखी हैं। आपका कोई अङ्ग प्री ताह अपना कार्य नहीं करता। आँखसे पूरा दीखता नहीं। हाथ-पाँव काँपते हैं। आप जन्मसे कोई शारीरिक दोष लेकार पैदा हुए हैं। अंधे, काने, बहरें या पङ्गु है। आपका रंग काला है और उसके कारण आप तिस्कृत होते हैं। कुरूपताके कारण आपको समाजमें प्रा आदर नहीं मिलता। आप दुखी रहते हैं!

हो सकता है आप अपने यहाँ हुई चोरी, व्यापारमें वारा, विश्वासघात, मृत्यु, विछोह आदिसे उदास रहते हैं। इनके कारण आपकी मनोभूमि दु:खोंसे छड़ने, उन्हें सहन करने तथा संतुलन न विगड़नेके योग्य नहीं रह

गयी है । अर्थात् आपने वीमारी, अभाव, शारीरिक विकार, मृत्यु, विछोह आदिका सामना करनेका अभ्यास नहीं किया है । आप दु:खोंसे छड़ नहीं पाते हैं । दु:खोंके कारण आप कभी-कभी आत्महत्या तककी कुकल्पनाएँ मनमें कर छिया करते हैं । आपके मनमें सदा बेचैनी, द्वन्द्व और असत् कल्पनाएँ ताण्डव मचाये रहती हैं !

लेकिन, सच मानिये, वीर पुरुष वही है, जो जीवनकी कठिनाइयों और परेशानियोंसे विचलित नहीं होते। सचा न्यक्ति वही है, जो थोड़ी-बहुत कठिनाईसे मानसिक संतुलन नहीं खोता। मुसीवतोंको धेर्यसे सहता है।

संसारमें अनेक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्हें शारीरिक और मानसिक विरोधों और प्रतिद्वन्द्वोंका सामना करना पड़ा था। उन्होंने अपनी कष्ट-कठिनाइयोंके बावजूद साहस और हिम्मतसे उन परेशानियोंको सहा था और वे दीर्घ-काळतक जीवनकी रोशनी और हवाका आनन्द लेते रहे थे। कुछ उदाहरण देखिये—

वे बीमार रहे!

आपने अंग्रेजीके निबन्ध-लेखक राबर्ट छुई स्टीवेन्सन-का नाम सुना होगा । वे लेखन-कार्यमें अत्यन्त निपुण थे और कलमके जादूगर कहे जाते थे । किसी डाक्टरने कह दिया कि तुम तपेदिकके बीमार हो । बीमारी अपने फौलादी पंजे तुम्हारी गर्दनमें घुसा रही है । अधिक दिन संसारकी रोशनी और हवाका आनन्द न ले सकोंगे।'

स्टीवेन्सनके मनमें उथल-पुथल मच गयी। उनका धैर्य जागा, पौरुष उठा। उन्होंने मनमें कहा—

'तो क्या यह रोग वास्तवमें मुझे मक्षण कर लेगा ! मैं तो वीर योद्धा हूँ। मृत्यु, बीमारी और शारीरिक विकारके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये मेरा जन्म हुआ है।

के शद्धा. सायंकार

के मानसमे । । होता है।

हि। अया इयोंके लिये विका 'स्त

ताशित हो इंक्ड त्या लिये संबं

नेम्नलिखि

र सायक। बिमोचन॥ अद्याती॥

रघुराज् । हितकारी। तलजाता ।

तलजाता। । सम ^{काहा} न दीना।

हर भारी। इंदिन गती।

न्त्र श्रीति

ा जाय है

वि

वी

धी

अ

मा

वच

वीम

के

नाग

जारे

स्रा

अनु

दुर्व

नीर

अहि

अप

हम

और

कार

परि

रोग मुझे भक्षण नहीं करेगा । मैं अकाळ-मृख्युको कदापि प्राप्त नहीं होने दूँगा । जब्दी नहीं मरूँगा । मैं अन्ततक मृत्युसे छडूँगा । मैं एक साहसी व्यक्ति हूँ । तपेदिक मेरा कुछ नहीं विगाड पायेगा । मैं मनोबलसे इस मुसीबतको दूर करूँगा । जीवनके युद्धमें एक बुजदिल सिपाहीकी तरह पीठ नहीं दिखाऊँगा । मेरी शारीरिक निर्बल्ता कदापि मेरी इष्ट-सिद्धिमें बाधा नहीं पहुँचा सकेगी ।'

मनमें यह दृढ़ संकल्प आते ही उनका मनोबल जाप्रत् हो उठा । गुप्त मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ जाग उठीं ।

अब वे एक नये तरिकेसे मनको ढाठने लगे।
उनके विचारोंका क्रम बदल गया। अनेक बार प्रातःकाठ अथवा सोनेसे पूर्व शान्तचित्त हो वे सब औरसे
विचारोंको हटाकर रोगोंसे विरोध और निर्माताकी भावनाको मनमें दढ़ करने लगे; उन्होंने अनिष्टकी आशङ्काको
इस प्रकार सोचकर दूर कर दिया—

'मैं नीरोग हूँ । मैं बलवान हूँ । मैं जीवनमें पूर्ण अभय हूँ । मेरा जीवन संसारमें कुछ महत्त्वपूर्ण स्थायी कार्य करनेके लिये है । मुझे बहुत दिन जीना है । मेरे शारिमें कोई रोग नहीं हैं । मेरे साहसके सम्मुख कोई विघ्न-बाधा नहीं ठहर सकेगी । मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ । विकाररहित हूँ । आनन्दमय हूँ । मैं स्वस्थ हूँ । मैं विजय हूँ । मैं सफलता हूँ । मैं सत्-ज्ञान हूँ । मैं निर्विकार शुद्ध आत्मरूप हूँ । मेरे शारीररूपी ईश्वरके मन्दिरमें कोई विकार नहीं ठहर सकता । मैं व्याधिमुक्त सशक, पूर्ण स्वस्थ हूँ । दीर्घजीवी हूँ । मैं सर्वशिक्त सम्पन हूँ ।

वे पूरे विश्वास और अठल आत्मश्रद्धासे इन विचारों-को चुपचाप बोला करते थे। फिर ऐसा महसूस करते थे कि उनके शरीरके रोम-रोम और कण-कणमें स्वास्थ्य और यौवनका अंश समा रहा है। चलते-फिते, उठते बैठते वे उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घजीवनकी भ भावनाओं में रमण किया करते थे। वे मन ही मन पूर्ण स्वस्थ और विकसित हैं समुख व्यक्तिका कार्यके चित्र तैयार करते रहते थे।

जब वे 'आरोग्य' शब्दका उचारण कते, ह आरोग्यको बड़े ही व्यापकरूपमें देखते और अपने हो को पूर्ण आरोग्यमय अनुभव करते। अपने चौकं उन्हें स्वास्थ्य ही दिखायी देता। उनका मन आहे ही विचार करता। स्वास्थ्यकी इस आत्मप्रेरणाने हि एकचित्त होकर एकाम्म करनेसे यह गुण अपने इ उनमें विकसित हो छठा। स्वास्थ्यके भावने हे प्रत्यक्ष चमत्कारी फल दिया। यौवन, शक्ति, सैक् सिंद्रचारोंसे पृष्ट होकर उनका रक्त शुद्ध विकारिक्षां गया और उन्हें स्वास्थ्य तथा दीर्घजीवन प्राप्त हुआ।

मनोविज्ञानके इस अमृतमय नियमका उन्हें का अनुभव हुआ कि जो मनुष्य मनमें जैसी गुप्त का हु करता है, जिस प्रकारकी मानसिक स्थिति के मनको देरतक रखता है, प्रतिदिन प्रात:काल सार्क सोनेसे पूर्व शान्तचित्त होकर जो चिन्तन करता अन्तत: वैसा ही हो जाता है।

राबर्ट छुई स्टीवेन्सनने इन संकेतोंसे तपेरि विजय पायी। उन्होंने खूब भ्रमण किया। बा किया। पौष्टिक अन्न खाया। साहस जुटाकर वेर् पुस्तकों लिखनेमें लग गये। उनका भ्रमणसम्बन्धी सार्ट निवन्ध पुस्तकोंका बहुत प्रचार हुआ। प्रशान्त महार के जिस द्वीपमें वे रहते थे, वहाँके निवासियोंको हर् ऐसी प्रेरणा दी थी कि वे देवता समझका उन्होंने थे। एक बार उन्होंने लिखा था—

'मेरा निर्माण जीवनभर संघर्ष करनेके लिये हुंगी पर ईश्वरने मुझे यह प्रेरणा दी है कि मेरी लड़ाईका एक मरीजका कमरा और दवाकी शीशी ही है। वीमारीको मारकर भगाता रहा । मृत्युको मैते अ

पाल किया । मैं पूरे आत्मबलसे कह सकता हूँ कि मैं असफल नहीं रहा । मुझे तूर्यनादवाला स्थान और सिरपर नीली छतरीवाला आकाश ज्यादा पसंद रहा ।'

और यह केवल स्टीवेन्सनकी ही समस्या नहीं। आपकी भी हो सकती है। यही है वह लड़ाईका मैदान, जिसमें अनेक मरीज लड़ चुके हैं और कुछने शानदार विजय प्राप्त की है । शारीरिक अवस्था या अङ्गहीनतासे भीड़ित रहकर भी उन्होंने अपनी हिम्मत न छोड़ी और भीरजके साथ वे वीमारियोंसे युद्ध करते रहे।

लीजिये एक और ऐसे वीरकी जीवन-झाँकी देखिये-अपने अंग्रेजीके कवि एलेक्जेंडर पोपका नाम सना होगा। पोप काव्यशक्तिके खामी थे और बचपनसे ही मार्मिक किताएँ लिखने लगे थे, पर शरीरसे दुर्बल और वचपनसे ही रोगी रहते थे।

प्रतिवर्ष यह समझा जाता था कि वे शायद इस वर्ष भृयुके प्राप्त बनेंगे । पर अपने आत्मबलके कारण पोप वीमारीसे डरे नहीं | विचलित नहीं हुए | उन्होंने स्वास्थ्य-के नियमींका दृढ़तासे पालन करना शुरू किया । बिना नागा एक घंटा प्रात: शुद्रवायुमें टह्ळना और जहाँ भी गाँ, पैदल चलना प्रारम्भ किया । मनमें सदा आरोग्य-की भावनाको स्थिर किया ।

पोप लिखते हैं—-'मैंने बीमारी और अपने गिरे हुए बाख्यको खयं अपने मनोबलसे दूर किया है। मैंने यह अनुभव किया है कि जबतक मैं रोगका या गिरे हुए र्वेष सास्थ्यका चिन्तन करता रहूँगा, तबतक मैं कभी नीरोग नहीं रह सकता । हमारे रोग, अभाव, मृत्यु और अनिष्टके विचार ही हमें रोगी और दुर्बल बनाते हैं। अपनी मृत्यु अुदापे या बीमारीकी बात सोच-सोचकर ही हम सास्यको गिरा ठेते हैं। हमारा हर-एक निराशाजनक और अनिष्ट विचार रोग, अस्वास्थ्य और वृद्धावस्था पैदा काते हैं। मैंने निश्चय किया कि निरन्तर शारीरिक परिश्रम, टेइलना, व्यायाम, प्राणायाम और प्रसन्न-भाव

रखकर अपने गुप्त मनोबलको जाप्रत् करूँगा। इन्हीं शारीरिक व्यायाम और दृढ़ आरोग्य-भावनाने मुझे जीवन-का वल और आरोग्य दिया।'

रूजवेल्ट अमेरिकाके छोकप्रिय राष्ट्रपति हो गये हैं। दुर्भाग्यसे उनकी जवानीमें ही उन्हें छकवा नामक रोग हो गया था।

उन्होंने दढ़ निश्चय किया कि वे अपने मनोबळद्वारा लक्षवेको पराजित करेंगे। उन्होंने गुप्त मनोबल और मालिश, कसरत, प्रसन्न रहकर आरोग्य प्राप्त किया था। वे बहुत बड़ी आयुतक स्वस्थ-जीवन और यौवनका सुख खटते रहे।

वे प्रायः कहा करते थे कि ऐसे मनुष्य संसारमें बहुत कम हैं, जिनमें दृढ़ आत्मन्नल है, जिनको अपनी गुप्त शक्तियोंपर पूर्ण विश्वास है, जो वलपूर्वक किसी कार्यको करना जानते हैं, जो जीवनभर कठिनाइयोंका बड़ी वीरतासे सामना करते हैं, जो सदा अपनी शक्तिभर प्रयत करते हैं । मैं इस अनुभवपर पहुँचा हूँ कि मनुष्य मानसिक दृष्टिसे आरोग्य प्राप्त करे अर्थात् अग्नी शक्ति, अपने जीवनके प्रति उत्तम विचार रक्खे । रोग, विकार, उद्देग, शोक, दु:ख, चिन्ता, अविश्वास और भावुकता आदि दुष्ट मनोविकारोंके वशीभूत होकर रोते रहनेसे कदापि अच्छा स्वास्थ्य नहीं मिल सकता । सारे जीवन-भर रोते रहो, पर तुम्हारे ऑसू पोंछनेवाला कोई नहीं मिल सकता । तुम्हारे विचारोंका प्रवाह जिस ओर होगा, उसी ओर तुम बढ़ोगे।

अंग्रेज उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट और लाई बायरन जन्मसे लँगडे थे, पर उनकी इस विकृत अवस्थाने उनकी प्रसिद्धिको कभी नहीं रोका । अपने इस शारीरिक विकारकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया । स्कॉट लॅंगडेपनके वावजूद खेलोंमें हिस्सा लेते थे, घोडेकी सवारी करते थे, टहलने जाते थे, जंगलोंमें घमनेका उन्हें बेहद शौक था। इन उपायोंसे उन्होंने शारीरिक शक्ति बढायी और अंग्रेजी साहित्यकी श्रीवृद्धि की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वनकी है। न-ही-मन ए का कार्शक कारते, व

[भाग ।।

अपने शां पने चार्रे के मन आहे मप्रेरणामें हि ग अपने ज भावने ले क्ति, सौद्र

विकाराहित ास हुआ। उन्हें प्रा

ती गुप्त भार स्थितिमें अ तल सायंबा न काता

से तपेदिक या। वा टाकार वे ल

बन्धी साहि न्त महास

संयोंको उर् का उन्हें।

लिये हुआ ठड़ाईका है 自他

前鄉

' मृत

म्

अह

द्वित

परी

कह

विमु

समा

श्रीहाँ

होती

विस्वर

सन्तर्

उत्रोंने

मृत्युभ

वे लिखते हैं, 'मुझे जिंदगीमें जो सबसे बड़ा अनुभव हुआ, वह यह है कि हमारे बीमारी, अभाव, संताप, पश्चात्ताप एवं कमजोरीके विचार ही हमें वास्तवमें रोगी और अल्पायु बनाते हैं। मैंने निश्चय किया था कि चिन्ता और रोगके विचारोंको अपना जीवनरूपी रस नहीं चूसने दूँगा। मैंने कभी अपने अभाव या शारीरिक कमजोरीका कुचिन्तन नहीं किया। मैं कभी व्याकुल या हैरान नहीं हुआ। मैंने रोग और परेशानीके विचारोंको सदा अपने मनसे दूर रक्खा है। प्रसन्नता, उत्साह, आनन्द और खास्थ्यके विचारोंने ही सदा मुझे ऊँचा उठाया है।

यदि आपको कोई रोग हो और आप मनको उसीमें उल्झाये रहें, तो निश्चय जानिये इस अग्रुम चिन्तनसे आप और भी बीमार पड़ेंगे। यदि कोई अभाव हो, तो उस अभावकी बात सोचकर उस अभावको और भी अधिक बढ़ा लेंगे; यदि कोई मानसिक कष्ट हो, तो उसीके बारेमें सोच-सोचकर आप पागल हो उठेंगे। रोगका विचार ही आपको बीमार करनेवाला है।

रोगके विचारको तुरंत मनसे बाहर निकाल दीजिये। किसी अच्छे विषयपर जैसे—उज्ज्वल भविष्य, बच्चोंकी उन्नति, बढ़िया खास्थ्य, सैर, प्रकृतिका सौन्दर्य, संगीत, साहित्य—इत्यादिपर सोचिये। खास्थ्य और दीर्घकालीन यौवन आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। आरोग्यकी पवित्र भावनासे ही दिन प्रारम्भ कीजिये और रात्रिमें उसीसे दिन समाप्त कीजिये।

संसारमें सैकड़ों पुरुष हैं जो अज्ञानके कारण अपने-को रोगी कहते हैं । उनका शरीर ठीक है, पर उन्हें जैसे रोगोंका बहम हो गया है । यह बहम ही उनके शरीरको कमजोर कर रहा है । उनका मन रोगों-की कल्पनाओंसे भर गया है । रोगोंकी चिन्ता, डर, बहमके कारण ही वे बीमार माछम होते हैं । यदि वे मनको स्वास्थ्य, यौवन, आरोग्यके ग्रुम विचारिके लें, तो आज ही पूर्ण स्वस्थ और नीरोग हो सकते हैं प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल सोनेसे पूर्व महें शान्त कर पूरे आत्मविश्वासके साथ इन शब्दोंका वाक उच्चारण कीजिये—

भी पूर्ण स्वस्थ पुरुष हूँ । ईश्वरकी कृपासे मेरे ह अवयव अच्छी तरह अपना कार्य करते हैं । मैं हा नीरोग रहता हूँ और स्वास्थ्यके नियमोंका पाळा कर हूँ । मुझे ज्ञात हो गया है कि वीमारी और अमक्ष चृणित विचार ही मेरा सबसे बड़ा शत्रु है ।

में शुद्ध वायुमें निवास करता हूँ । शुद्ध कल प्रयोग करता हूँ । दीर्घ श्वास लेकर में फेफड़ों क शरीरमें जीवन-तत्त्व भरता हूँ । उस श्वाससे मुझे जीके शक्ति प्राप्त होती है और मेरी समस्त व्याधियाँ यू हे जाती हैं । में पूर्ण खस्थ और आनन्दमय हूँ । में पाचन-शक्ति बढ़ रही है, फेफड़े खस्थ हो रहे हैं, ह शुद्ध होकर उसका प्रवाह ठीक हो रहा है, कोष्ट्रव्ह खाँसी और अजीर्ण दूर हो रहे हैं । शुद्ध वायुमे हें दीर्घजीवन, आरोग्य और बल मिलता है ।

भिरा चित्त आरोग्यपर टिका रहता है । वह शि शान्त है । उद्देगरहित है । मैं उस महान् वीन का अंश हूँ जिसकी कियामें कोई चूक नहीं होती। एक बळवान् आत्मा हूँ । मैं परम पिता परमारमाके हैं एक रूप हूँ ।

'मुझमें पवित्रता, प्रसन्नता, आरोग्य और स्पर्का ही विचार आते हैं । उनसे मेरे शरीरमें बल, पौर्का आनन्द आता है । मेरे पवित्र विचारोंसे पवित्र श्रीवि विकास हो रहा है ।'

शुद्ध विचारोंसे शुद्ध रुधिर बनता है । शुद्ध विवार और का स्रोत शुद्ध मन है । अतः मनमें अपवित्र विवार कि नित्तुर नहीं रखना चाहिये ।

मृत्युके वाद — एक शास्त्रीय दृष्टि

वाचनालय,

(हेलक-साहित्यमहोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पंकज' शास्त्री, एम्०ए०, व्या० सा० न्यायीचार्य, सांख्य-योग-वेदान्ताचार्य)

पूर्व मन्त्र मृत्यु विश्वजनीन सत्य है——ध्रव सत्य है और अपिरहार्य है । सृष्टि तथा प्रलयका यह संधि-स्थल है । म्सुकाल सहसा उपस्थित होता है । अतः आ जानेपर मनुष्यको घत्रराना नहीं चाहिये, बल्कि वैराग्यरूप शस्त्रसे श्रीर तथा उससे सम्बद्ध अपनी देह-गेहासक्ति अर्थात अहंता-ममताको काट फेंकना चाहिये। श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके प्रथम अध्यायमें मरणासन्न राजर्षि पीक्षित्को सान्त्वना प्रदान करते हुए श्रीशुकाचार्य क्हते हैं कि 'राजन् ! अपने कल्याण-साधनकी ओरसे फेफड़ों ह विमुख एवं असावचान पुरुषोंकी वर्षों लंबी आयु भी आजाने ही व्यर्थ बीत जाती है। इससे उसे क्या धेयाँ दूर लभ ! सावधानीसे ज्ञानपूर्वक वितायी हुई घड़ी-दो-घड़ी भी श्रेष्ठ है । लिखा है——

प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षेहीयनैरिह। वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः॥ (२।१।१२)

इसी भारतवर्षमें राजिष खट्वाङ्ग अपनी आयुकी समाप्ति जानकार दो घड़ीमें ही सब कुछ त्यागकार श्रीहरिके अभयपदको प्राप्त हो गये और तुम्हारी तो पीक्षित् ! जीवन-अवधि अभी सात दिनकी है ।

मृखु क्या है ! कैसी है ! क्यों है ! कहाँसे प्रकट मात्माके ह होती और कहाँ लयको प्राप्त हो जाती है--आदि विवाजनीन एवं शाश्वत—सनातन समस्या है और इस-र स्वा प तबसे आजतक चिन्तन-मनन होता आ रहा है। सन्सुनातीय-संहितामें ऐसा लिखा है कि अपने सौ भिक्ते मृत्युके प्राप्त हो जानेपर प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र खयं म्खुभयसे भीत हो उठे। उस समय महात्मा विदुरजीने शुद्ध विव अपने गुरुदेव सनत्कुमारका समरण किया। वे पधारे विवार के और धृतराष्ट्रको मृत्युके भयसे भयरहित कर दिया। वद्गुसार मृत्युको उन्होंने प्रमाद सिद्ध किया—

मृत्युर्वे प्रमादः।

अर्थात् मृत्यु जीवका सबसे बड़ा प्रभाद है। जीवका स्वरूपसे च्युत रहना, दूर होना या दूर रहना ही प्रमाद या अस्त्रस्थता है । अपने स्वरूपमें स्थित जीव ही स्व-स्थ है और तद्विपरीत अपने स्वरूपसे विच्युत जीव ही अस्वस्य अयंवा मृत्यु-भयसे आक्रान्त है।

श्रीमद्भागवतके ११वें स्कन्धमें श्रीशुक मुनिने राजविं परीक्षित्को अन्तिम उपदेशके क्रममें कहा है—

जन्तोर्वे कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः (27136)

अर्थात् किसी भी कारणसे हो, जीवकी अपने स्वरूपकी अत्यन्त विस्मृति ही मृत्यु है।

देहान्त और देहान्तरधारण बीजाङ्कर-न्याय है। जिस प्रकार वीजसे अङ्कर और अङ्करसे वीजकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही एक देहसे दूसरीकी और दूसरीसे तीसरीकी उत्पत्ति होती है। राजन् ! मैं मर जाऊँगा, यह पशुओं-जैसी अविवेकमूळक धारणा छोड़ दो । जिस प्रकार शरीर पहले नहीं था और अब पैदा हुआ है तथा पुन: नष्ट हो जायगा, उसी प्रकार तुम पहले नहीं थे, अत्र तुम्हारा जन्म हुआ है और अभी तुम मर जाओगे-ऐसी वात नहीं है। जिस प्रकार अग्नि काष्ठसे सर्वथा भिन्न होती है-उकड़ीकी उत्पत्ति और विनाशसे वह सर्वथा पृथक वस्तु है, उसी प्रकार तुम भी देहादिसे अलग हो । स्वप्नावस्थामें ऐसी प्रतीति होती है कि मेरा सिर कट गया है और मैं मर गया हूँ । छोग मुझे इमशान-घाट लिये जा रहे हैं, चितापर सुला दिया गया हूँ और लोग मुझे जला रहे हैं, किंतु ये सारी शरीरकी अवस्थाएँ दीखती हैं, आत्माकी नहीं । आत्मा तो त्रिकालाबाधित द्रष्टा पुरुष है और इन दश्योंसे सर्वथा

[भाग ३। -

विचारासे म सकते हैं।

रोंका वारका

पासे मेरे ह

हैं। मैस

पालन का

ौर अभावत

शुद्ध जल्ब

मुझे जीवतं

य हूँ।में

रहे हैं, ह

कोष्ठवद्ध

वायुसे म

। वह

नहान् जीव

तं होती।

ल

क्र

पुरु

प्रार

शर्

आर्

जान

का

मान

आन

7

असङ्ग है। अथ च देखनेवाला जन्म और मृत्युसे रहित, नित्य शुद्र-बुद्र-मुक्त परमात्मस्वरूप है । घड़ेके फूट जानेपर आकाश पहलेकी माँति ही अखण्ड रहता है, परंतु घटाकारा नहीं रहता । ऐसा प्रतीत होता है कि वह महाकाशमें मिल गया है——वास्तवमें तो वह मिला हुआ ही था | उसका मिलना या विछुड़े रहना तो प्रतीति मात्र ही थी। मन ही आत्माके लिये शरीर, विषय और शुभाशुभ कर्मोंकी कल्पना कर लेता है और उस मनकी सृष्टि माया करती है। दीपकमें तमीतक दीपकपना रहता है, जबतक तेल, तेल रखनेका पात्र, बत्ती और अग्निका संयोग बना रहता है, उसी प्रकार जवतक आत्माका कर्म, मन, शरीर और इनमें रहनेवाले चैतन्याध्यासके साथ सम्बन्ध रहता है, तबतक उसे जन्म-मृत्युके चक्र संसारमें भटकना पड़ता है । जिस प्रकार स्वप्न-द्रष्टा पुरुषको अपना सिर कटना आदि व्यापार न होनेपर भी अज्ञानके कारण सत्यवत् प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार इस जीवको बन्धनादि न होते हुए भी अज्ञानवरा भास रहे हैं। यदि ऐसी आरांका की जाय कि फिर ईश्वरमें इनकी प्रतीति क्यों नहीं होती ? तो इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार जलमें दृष्टिगोचर चन्द्रमाके प्रतिविम्बमें न होनेपर भी होनेवाली कम्प आदि क्रियाएँ उसमें भासती हैं, उसी प्रकार देहाभिमानी जीवमें ही देहादिके मिथ्या धर्मींकी प्रतीति होती है, परमात्मामें नहीं और यह मिथ्या प्रतीति भगवत्कृपासे भक्तियोगके द्वारा धीरे-धीरे निवृत्त हो जाती है। मोस्वामी तुलसी-दांसर्जाने कहा है--

> सो माया रघुनाथ की, समुझे मिध्या सोपि। छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहीं पद रोपि ॥ मृत्यु देहके साथ ही पैदा होती है--

अपनी नव-विवाहिता पत्नी देवकीको कंसकी नंगी तल्बारसे वचानेके प्रयासमें वसदेवजीका उपदेश

(भागवत १० । १ । ३८-४३ में) कितना साएमहि मननीय है। कहते हैं--

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह भट्युजा नवता अद्य वाब्द्रातान्ते वा मृत्युवे प्राणिनां धुवा कर्मानुगोऽवशः। पञ्चत्वमापन्ने देही देहें प्राक्तनं **देहान्तरमन्**त्राप्य त्यजते यथैवैकेन पदैकेन व्रजंस्तिष्टन यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगति पर्यति यथा देहमीहरां मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः

मनसानुचिन्तयन् दृष्ट्रश्रुत(भ्यां प्रपद्यते तत् किमपि द्यपस्मतिः॥ दैवचोदितं धावति यतो मनोविकारात्मकमाप पश्चस् । देह्यसौ मायारचितेष गणेष सह तेन जायते॥ प्रपद्ममानः ज्योतिर्यथैबोदकपार्थिवेष्वदः

विभाव्यते। समीरवेगान्गतं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान् एवं विमुह्यति॥ रागानुगतो गुणेषु

'वीरवर ! जो जन्म लेता है उसके शरीरके सा^{य ही} भी उत्पन्न होती है । आज ही अथवा सौ वर्षकार प्राणीकी मृत्यु अवस्य होगी । अपने वर्तमान की हुए अन्त हो जानेपर जीव अपने कर्मानुसार दूसरे ग्री ग्रहण कर लेता और पहलेको छोड़ देता है। अ विवश होकर करना पड़ता है । तृण-जलेकि अनुसार एक शरीरसे शरीरान्तरमें चलते स्मार्थ एक पेर उठाकर दूसरा पैर उठाता है और ई रेंगनेवाली जोंक जैसे किसी अगले तिनकेको पहरी है, तब पहलेके पकड़े हुए तिनकेको छोड़ी उसी प्रकार जीव भी अपने कर्मके अनुसार किली को प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है।

जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी जाप्रदः नो राजाके जुद्धस—उसकी सवारी तथा उसके हार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

। सार्ग्रही हुं

िमाग ३३

जायते। तां धुवः। गोऽवशः। वपुः। गच्छति।

गतः।

गन् मृतिः॥ देतं पश्चमु ।

जायते ॥ ग्राव्यते । गन् मुह्यति ॥

सौ

के साथ ही ह में वर्ष गर र्तमान गर्म

दूसरे औ है। उसे

ा-जलोकान समय ह

और क्र त्को पह

छोड़ती है

र किसी र ज़ेड़ता है।

जाम्रव्-अ

सके ठाट

देखका और स्वर्गादि छोकोंमें इन्द्रादिके ऐश्वर्यको धुनका उसकी अभिलापा करने लगता है तथा इस क्राक्ति चिन्तनमें तन्मय होकर उन्हीं वातोंमें घुल-किकार एकाकार हो जाता है और स्वप्नमें अपनेको राजा (जैसे योगवासिष्ठके उत्पत्ति-प्रकरणमें वसिष्ठ नामका दुरिंद्र ब्राह्मण) अथवा इन्द्रके रूपमें अनुभव करने मता तथा उसके साथ ही अपनी दरिद्रावस्थाके शरीरको भूछ जाता है, उसी प्रकार जीव कर्मकृत कामना और कृतकर्मके बशीभूत दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है और अपने पूर्वशरीरको भूल जाता है।

जीवका मन विकारात्मक है--अनेक विकारोंका पन्न । मृत्युके समय वह अनेक जन्मोंके संचित और प्राख्य कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर पाञ्चभौतिक शीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन होता है।

गायारचित अनेक पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी रिं चिन्तनमें तस्त्रीन होता हुआ मान लेता है कि ^{'पह} में हूँ' उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है।

निस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा आदि जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तैलादि तरल स्निग्ध पदार्थीमें प्रतिविभ्वित होते हैं और वायुके झकोरोंके कारण जल आदि हिलने-डोलनेपर उनमें प्रतिबिभ्नित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं, वैसे ही जीव अपने खरूपकी विस्मृतिके कारण अज्ञानरचित शरीरमें राग करके उसको अपना-आप मान बैठना है और विमोहबदा उसके आने-जानेको अपना आना जाना मानने लग जाता है। मृत्यु किसकी होती है ? देहकी ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्धुवं जनम् मृतस्य च। तसादपरिहार्येऽथें न त्वं शोचितुमहिस॥

जो उत्पन्न होता है, उसीका नाश भी होता है और नो नष्ट होता है, वही फिरसे उत्पन्न भी होता है।

जन्म-मृत्यु वीजाङ्करवत् अन्योन्य एवं एक दूसरेका पूरक है और दोनों ही सापेक्ष हैं। यह चक्र पानीकी रहटकी तरह बराबर चलता रहता है । जिस प्रकार स्यंका उदय और अस्त आपसे आप होता रहता है और उसमें कभी वावा या अन्तर नहीं पड़ सकता, उसी प्रकार जन्म-मृत्यु अनिवार्य है।

जन्मसे पूर्व जो ये सब भूत अमूर्त थे और जन्मके पश्चात् जिन्होंने आकार धारण किया है, वे ही जब लयको प्राप्त हों तो इस वातकी शंका नहीं रह जाती कि वे कोई दूसरी या भिन्न वस्तु हो जायँगे । यही होता है कि वे फिर अपनी पूर्विस्थितिमें पहुँच जाते हैं। जन्म और मरणके बीच जो कुछ दीखता है, वह सोये हुए आदमीके स्त्रप्रकी भाँति मायाके भावसे सत्खरूप भासित होनेवाळा आकार है । एकरूप चैतन्य कभी नष्ट नहीं होता और वह सदा अविकृत रहता है। जो सभी स्थानोंपर और सभी शरीरोंमें रहता है और घात नहीं हो सकता; वह एकरूप चैतन्य ही इस विश्वकी आत्मा है । शरीर एक रहनेपर भी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के कारण उसमें अनेक भेद उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे-पहले इस शरीरमें बाल्या-वस्था दिखायी पड़ती है, फिर जब युवावस्था आती है, तत्र वह वालपन नष्ट हो जाता है। परंतु न तो बाल्या-वस्थाके विनाशके साथ ही शरीरका विनाश होता है और न युवावस्थाके अन्त होनेपर ही उसका अन्त होता है । ठीक इसी प्रकार एक देहका नारा और दूसरीकी प्राप्ति होती है।

कठोपनिषद् (२।२।७) में कहा है-प्रपद्यन्ते देहिनः। योनिमन्ये शरीरत्वाय स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

अर्थात् मृत्युके बाद इन जीवात्माओंमेंसे अपने-अपने कर्नोंके अनुसार कोई-कोई तो वृक्ष-पाषाण आदि अचल शरीरको धारण कर लेते हैं । गौतम-शाप-कर्शिता पाषाणी अहल्याकी कथा प्रसिद्ध है । विश्वामित्रशापिता रम्भाका शिला रूप वाल्मीकीय रामायणमें आया है । कोई-कोई देव, मनुष्य, पशु, पश्ची आदि जंगम शरीरोंको धारण कर लेते हैं।

महर्षि व्यासरचित ब्रह्मसूत्र पाद ३ में---

उत्कान्तिगत्यागतीनाम्—(२।३।१९) स्त्रसे एक ही जीवात्माके शरीरसे उत्क्रमण करने, परलोकमें जाने और पुन: लौट आनेका वर्णन आया है। इससे शरीरकी अनित्यता तथा जीवात्माकी नित्यता सिद्ध होती है। उत्कान्तिका अर्थ है—शरीरका वियोग। इसमें जीवात्माको गमनागमनशील कहा गया है।

उपनिषदोंमें जीवात्माको शरीरसे सर्वथा भिन्न तथा अणुपरिमाणवाला नित्य कहा गया है । श्वेताश्वतर (५।९) में लिखा है—

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः…,

अर्थात् बालके अग्रभागके सौ टुकड़े किये जायँ और उनमेंसे एक ट्रकड़ेके पुनः सौ ट्रकड़े ही माप जीवात्माका उतना समझना श्रुति शब्दोंमें जीवको ष्ट्रपष्ट अण् कहती है । अन्यथा वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म शरीरमें प्रविष्ट कैसे हो सकता । जीवको अणु मान लेनेपर भी जिस प्रकार किसी एक देशमें लगाया गया या मकानमें किसी एक जगह रक्खा हुआ चन्दन अपने गन्धरूप गुणसे सत्र जगह फैल जाता है, उसी प्रकार हृदयमें स्थित हुआ जीवात्मा अपने विज्ञानरूप गुणसे समस्त शरीर या अङ्गोंमें होनेवाले सुख-दु:खोंको जान सकता है । जिस प्रकार घरके एक कोनेमें रक्खा दीपक अपने प्रकाश-रूप गुणसे सारे घरको आलोकित कर डालता है, वैसे ही शरीरके एक देशमें स्थित अणुमापवाला जीवात्मा अपने चेतनरूप गुणसे समस्त शरीरको चेतनायुक्त कर देता है। गुण गुणीके साथ रहता है। गन्ध अपने

गुणी पुष्पसे अलग होकर स्थानान्तरमें फैल जाती है।

अंगुष्टमात्र क्यों ? जीवात्माको अंगुष्टमात्र कृष्ट देशीय अथवा अणु कहा गया है, वह बुद्धि और श्रीह गुणोंको लेकर ही है । अंगुष्टमात्र-कथन सक्त अपेक्षासे ही है । वास्तवमें वह विभु है । अणुका मार्थ कि जीव एक शरीरसे दूसरेमें जाते सम्बद्ध हि । परलोकमें भी उसका किसीनकि शरीरसे सम्बन्ध माना गया है तथा स्वप्न और सुक्ष भी देहके साथ उसका सम्बन्ध बताया ग्या (प्र० उ० ४ । २, ५)।

इसी प्रकार प्रलयकालमें कर्म-संस्कारोंके क्षे कारणशरीरसे जीवका सम्बन्ध बना रहता है वहाँ भी यह विज्ञानात्मा समस्त इन्द्रियोंके सिंहत ह परब्रह्ममें स्थित होता है।

३वेताश्वतर (५।८) में लिखा है— अङ्गुष्टमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितोश बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपिहा

'जो अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला, सूर्यके सदश फ़्रा खरूपतक संकल्प और अहंकारसे युक्त है वह बुर्हें गुणोंसे और शरीरके गुणोंसे ही आरेकी नीक सूक्ष्म आकारवाला है। ऐसा परमात्मासे भिन्न बीक भी निस्संदेह ज्ञानियोंद्वारा देखा गया है।' उपनिषदोंमें—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मित तिष्ठति। यह अङ्गुष्ठमात्र (अणुपरिमाणवाला) वीर्षः शरीरके मध्यमें हृदय-प्रदेशमें स्थित है ।

प्रव

मा

वह

H

जा

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमः। यह अङ्गुष्ठमात्र जीव धूमरहित अग्निशिखाकी औ की भाँति है।

महाभारतमें--

अङ्गुष्टमात्रं पुरुषं तं चकर्ष यमो बलात्। अर्थात् सावित्रीने देखा कि सत्यवान्की कार्याने देवताने उसके अंगुष्टमात्र जीवको अपने पाराद्वारा खींचकर, बाहर निकाल लिया ।

गरुडपुराणमें--

अङ्गुष्टमात्रः पुरुषो हाहाकुर्वन् यसो वलात्। तदेव गृह्यते दूतैर्यास्यैः परयन् स्वकं गृहम्॥

अर्थात् अङ्गुष्ठमात्र पुरुष यमराजद्वारा वरवस खींच लिया जाता है और यमदूतोंसे वन्धन प्राप्त होकर अपने धरको देखता हुआ लिवाया जाता है । निस्संदेह जीवात्माको अंगुष्ठमात्र या अणु कहनेका भाव उसकी सूक्ष्मताका बोधक है । वह मनुष्य-शरीरके हृदयके भावके अनुसार दहर, पद्म या हृत्पुण्डरीकको लक्ष्यमें रखकर ही कहा गया है । उसे छोटे आकारवाला वतलानेका अभिप्राय भी संकीर्ण अन्त:-करणके सम्बन्धसे है, अन्यथा वह विभु है ।

गीतामें आत्माको-

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।

—इन विशेषणोंसे विशिष्ट कहा गया है।

सामवेदकी छान्दोग्योपनिषद्में एक कथा अवतरित की गयी है। इवेतकेतु नामक एक प्रसिद्ध स्नातक स्रिक्तिमार एक वार पात्राठोंकी राजसभामें पहुँचा। उससे प्रवाहण नामक वेदान्ती राजाने पूछा—'क्या तुम अपने आचार्यसे शिक्षा पा चुके हो?' उसने कहा 'हाँ।' तब राजिं प्रवाहणने स्नातक इवेतकेतुसे पाँच प्रश्नकिये। उन्होंने पूछा— (१) यहाँसे मरकार यह जीवात्मा कहाँ जाता है? (२) वहाँसे फिर किस प्रकार लौट आता है? (३) देवयान और पितृयान मार्गका क्या अन्तर है? (४) यहाँसे गये हुए लोगोंसे वहाँका लोक भर क्यों नहीं जाता ? (५) इन सब वातोंको और जिस प्रकार पाँचवीं आहुतिमें यह जल पुरुषहूप हो जाता है, इस वातको जानते हो या नहीं ! इसपर ऋषिकुमार इवेतकेतुने कहा—'मैं नहीं जाता।' प्रवाहणने उसे फटकारा और कहा—'जब

तुम इन प्रश्नोंके उत्तर नहीं जानते, तब कैसे कहते हो कि मैं शिक्षा पा चुका।

रनेतमेतु लिजत-लिल्टित होकर पितामे पास अपना-सा मुँह लेकर लौट आया। पीछे उसके पिता उसे साथ लेकर प्रवाहणके पास गये। दानादि स्त्रीकार नहीं करके उन्होंने कहा 'आपने मेरे पुत्रसे जो पाँच प्रकृत पूछे थे, उनके उत्तर मुझे बतलायें। दोनोंको बहुत दिनोंतक वहाँ ठहरना पड़ा। राजाने पहले उसी पाँचवें प्रकृतका उत्तर दिया कि यह जल पाँचवीं आहुतिमें पुरुषरूप कैसे हो जाता है।

उत्तर—वहाँ घुळोकरूप अग्निमं श्रद्वाकी पहळी आहुति देनेसे राजा सोमकी उत्पत्ति होती है। मेघरूप अग्निमें राजा सोमको हवन कर देना दूसरी आहुति है। उससे वर्षाकी उत्पत्ति होती है। तीसरी आहुति है—पृथ्वीरूप अग्निमें वर्षाका हवन। उससे अन्नोत्पत्ति होती है। चौथी आहुति है—पुरुषरूप अग्निमें अनका हवन, उससे वीर्यकी उत्पत्ति होती है। पाँचवीं आहुति स्त्रीरूप अग्निमें वीर्यका हवन है, उससे गर्मकी उत्पत्ति होती है और इस तरह यह जळ पाँचवीं आहुतिमें 'पुरुष' संज्ञक होता है।

इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतके ३ स्कन्य, अध्याय ३१में है । अपनी जननी देवहूतिको उपदेश करते हुए महिष किपिल कह रहे हैं—माताजी ! जब जीवको मनुष्य-शरीरमें जन्म लेना पड़ता है, तब वह भगवान्की प्रेरणासे अपने पूर्व-कर्मानुसार देह-प्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्य-कणके द्वारा स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है । वहाँ वह एक रातमें स्त्रीके रजमें मिलकर एकरूप कलल बन जाता है । पाँच रात्रियोंमें बुद्बुदरूप हो जाता है । दस दिनोंमें बेरके समान कुछ कठोर हो जाता है और उसके बाद मांस-पेशी अथवा अण्डज प्राणियोंमें अण्डेके रूपमें परिणत हो जाता है । एक मासमें उसके सिर निकल आता है, दो मासमें हाथ-पाँव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जाती है। प्रमात्र एक और शीव

[भाग हैं।

ान स्थातं । एका मात्र है ते समय है (प्र० उ

और सुद्धि या गया |

किसी-निक्तं

तारोंके सहि रहता है। सहित उ

मन्वितोयः। गरोऽपिद्यः। सद्द्रा प्रका

है वह बुहि की नोकलें भेल जीवा

तिष्ठति।) जीव

ाधूमः। लाकी ^ऑ

कायारे

आदि अङ्गोंका विभाग हो जाता है और तीन मासमें नख, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री-पुरुषके चिह्न तथा अन्य छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। चार मासमें उसमें मांसादि सातों धातुएँ पैदा हो जाती हैं, पाँचवें महीनेमें भ्रख-प्यास लगने लगती है । छठे मासमें झिल्लीसे लिपटकर वह दाहिनी कोखमें (पुरुष हो तो) त्रूमने लगता है। उस समय माताके खाये-पीये अन्न-जलसे उसकी सत्र धातुएँ पुष्ट होने लगती हैं और वह कृषि आदि जन्तुओंके उत्पत्ति-स्थान उस जघन्य मल-मूत्रके अन्धकूपमें पड़ा रहता है। वह सुकुमार तो होता ही है, इसीलिये जब वहाँके भूखे कीडे उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गको नोचते हैं, तब अत्यन्त क्लेशके कारण वह क्षण-क्षणमें अचेत हो जाता है। माताके खाये हुए कड़वे, खंडे, तीखे, गरम, नमकीन, चटपटे और रूखे आदि पदार्थींका स्पर्श होनेसे उसके सारे शरीरमें पीड़ा होने लगती है। वह जीव माताके गर्भाशयमें झिछीसे छिपटा और आँतोंसे घरा रहता है। उसका सिर पेटकी ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं। वह पिंजड़ेमें बंद पक्षीके समान पराधीन एवं अङ्गोंको हिलाने-डुळानेमें भी असमर्थ रहता है। इसी समय अदृष्टकी प्रेरणासे उसे स्मरणशक्ति प्राप्त होती है और सैकड़ों जन्मोंके पाप-पुण्य कर्म याद आ जाते हैं। तत्र वह बेचैन हो जाता है और उसका दम घुटने लगता है। पातञ्जल योगदर्शनमें एक सूत्र आया है अर्थात् 'संचित, क्रियमाण तथा प्रारब्ध त्रिविध कर्माशयोंका अनुगामी जीव जवतक उसके कर्म संस्कार नि:शेष नहीं हो जाते, जन्म, आयु और भौगोंको पाता रहता है। इस प्रकार स्वर्गसे आनेवाला जीवात्मा भी पहले पुरुषके वीर्यके आश्रित होता है । फिर उस पुरुष-द्वारा गर्भाधानके समय स्त्रीकी योनिमें वीर्यके साथ प्रविष्ट करा दिया जाता है। वहाँ गर्भाशयसे सम्बद्ध होकर उक्त जीव अपने कर्मफलानुसार शरीरको प्राप्त होता है।

खप्नावस्थामें यह जीवात्मा इस लोक तथा परलोक

दोनोंको देखता है। वहाँ दुःख और सुख दोनोंका उपभोग करता है। इस स्थूल शरीरको स्वयं अके करके वासनामय नये शरीरकी रचना करके वह जगत्को देखता है। बृहदारण्यक (४।३।१०) में लिखा है—

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भविता अथ रथान् रथयोगान् पथः स्जते न तत्रानन्दा मुहः प्रमुदो वा भवन्त्यथानन्दान् मुदः प्रमुदः स्जते वेशान्तान् पुष्करिणीः स्रवन्तीः स्जते।

भावार्थ यह कि स्वप्नावस्थामें सचमुच न होते हुए भी रथ, रथको ले जानेवाले घोड़े या चालक और उसके मार्गकी तथा आनन्द, मोद, प्रमोद, कुण्ड एं सरोवर और निदयोंकी रचना कर लेता है। प्रश्नोपिनिष् के अनुसार तो वह जाग्रत्-अवस्थामें सुनी हुई, देखे हुई और अनुभव की हुई वस्तुओंको स्वप्नमें देखा है, किंतु विचित्र ढंगसे। चूँकि स्वप्न-सृष्टि भ्रमण है, वास्तविक नहीं, अतएव उस अवस्थामें किये हुए शुभाद्युभ कर्नोंके फल जीवात्माको नहीं भोगने पड़ते।

स्चकश्च हि श्रुतेराक्षते च तद्विदः -- समा (२।२।४)के अनुसार भविष्यमें होनेवाले शुभाशुभ परिणान का भी सूचक स्वप्त होता है। स्वप्त सर्वथा व्यर्थ नहीं है। 🔻 वर्तमानके आगामी परिणामका सृचक भी होता है, प्रय कुछ भी नहीं जानता । इसके शरीरमें जो ७२ हुआ हिता नामकी नाड़ियाँ हृद्यसे निकल समस्त ^{श्रीमि} व्याप्त हो रही हैं, उनमें फैलकर यह समस्त इरीरमें ^{व्या} हुआ शयन करता है। सभी नाड़ियोंका मूल तथा ^{हा} जीवात्मा तथा परमात्नाका निवासस्थान हर्ग है। स् जगह सुषुप्तिमें जीवात्मा शयन करता है। यह धु भी घोर तामसी सुखका उपभोग करानेवाली अज्ञातमी स्थिति है । प्रश्नोपनिषद्के अनुसार वह मन जब ति उदानवायुसे दव जाता है—उदानवायु सेन्द्रिय भी हृदयमें ले जाकर मोहित कर देती है, तब इसकी धु (शेष आगे) अवस्था होती है।

वास्तविक क्ल्याणके साधन

(परह्मीसे बचो, अंडे-मांस-मछली-शराव-तम्बाक्क् आदि छोड़ो, अहनिंश भगवान्का भजन करो)

्षरमपूज्यपाद उदासीन सिद्ध संत बाबासाहेव अनन्तश्रीबुद्धदासजी महाराज (खिचड़ीवाळे बाबा) के महत्त्वपूर्ण सदुपदेश] (प्रेषक--भक्त श्रीरामशरणदासजी)

अभी कुछ दिन हुए पिलखुवा हमारे स्थानवर भारतके सप्रसिद्ध उदासीन सिद्ध संत १००८ वावासाहेव श्रीवुद्धदासजी महाराज उपनाम स्विचड़ीयाले वावाजी वहुतसे संतोंके साथ पधारे थे । मैंने आपके कुछ सदुपदेश लिख लिये थे जो यहाँपर दिये जा रहे हैं। आशा है पाठक इन्हें ध्यानसे पढ़नेकी क्रया करेंगे। इसमें जो भी भूल रह गयी हो वह सब मेरी समझनी चाहिये, पूज्यपाद संतजी महाराजकी नहीं।

शराब-तम्बाक् आदि दुर्व्यसनोंसे बचो

कभी भूलकर भी शराव, वीड़ी, सिगरेट, तम्बाक नहीं पीना चाहिये। इनके सेवनसे युद्धि तामसिक हो जाती है। हमारी जमातके साथ कोई भी इनका सेवन करनेवाला साधु कभी नहीं चल सकता । हमने अपना ऐसा नियम बना लिया है। हम अपने स्थानपर भी ऐसे साधुको नहीं रहने देते। जो साधु होकर भी शराब, तम्याकू, सुल्का, गाँजा पीता है वह काहेका साधु है ? इसिल्ये साधु होकर कभी भी शरावः तमाक्, सुरुक्ता, गाँजा, चरस, अक्तीम आदि मादक द्रव्यका सेवन नहीं करना चाहिये। इनसे सदा वचना चाहिये। ग्रहस्थी है या साधु, जो भी इन्हें पीता है वही घोर अधःपतनको प्राप्त होता है। अतः सभीको इनसे बचना चाहिये।

दानका दुरुपयोग करना पाप है

बहुतसे गृहस्थी भक्त साधु-संतोंको इसीलिये रुपये आदि रानमं देते हैं कि भ्ये संत-महात्मा हैं, हमारे दिये रुपयोंका संदुपयोग करेंगे, वड़े अच्छे काममें लगायेंगे जिससे हमारा क्लाण होगा। १ पर बहुतसे साधु गृहस्थोंसे रुपये लेकर उनका हुस्पयोग करते हैं और उस स्पयेको सुल्तेमें, तम्बाकूमें, चरसगाजिमें पूँक डालते हैं। वे यह वड़ा पाप करते हैं। एक शासी बात है कि हम साधुलोग कुम्भपर गये थे। हमारी उदासी संतोंकी जमात भी गयी थी। हमने अपने कुछ साधु-होतींको कुम्भवर पहलेसे ही भेज दिया था। उनसे कह दिया था कि तुम जाकर ठहरों, हम वादमें आ जायँगे। हमने जाते

समय उन्हें आटेकी वे.री, दो कनस्तर भी तथा ग्यारह सौ रुपये नकद दे दिये थे । कुछ दिनों बाद हम वहाँ पहुँचे और जब उन साधुओंने हमें रुपयोंका हिसाब दिखाया तो पता लगा कि उन्होंने उन रुपयोंमेंसे तीन-चार सौ रुपये केवल सुरके-तम्वाकृमें ही फ़ूँक डाले थे। हमें यह देखकर वड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ । हमने उनसे कहा कि 'भाई ! उन भक्तोंने हमें ये रुपये इसिलये दिये थे कि हम इन रुपयोंको शुभ कर्ममें खर्च करेंगे, जिससे उन्हें पुण्य होगा। उन वेचारोंने हमें ये रुपये सुलेन-तम्त्राकृ पीनेके लिये थोड़े ही दिये थे । अव हम उन्हें क्या जवाव देंगे ? यह पाप किसके जिम्मे पड़ेगा और भगवान्के यहाँ इसका हिसाव कौन देगा ? वहाँ तो पाई-पाईका हिसाव देना पड़ता है। उस प्रमुसे कौन क्या छिपा सकता है ?' तभीसे हमने यह निश्चय कर छिया था कि अब इम अपनी जमातमें कभी भी सुल्मा-तम्बाक पीनेवाले साधको नहीं स्क्लेंगे।

थोड़े क्षणका कुसङ्ग भी पतन कर डालता है। क्सङ्से वचो

एक राजपूत-महाराजजी ! मैं आपको अपने साथ अपने गाँवको ले चलनेके लिये आया हूँ । कृपा करके मेरे साथ मेरे गाँवको चलिये ?

बाबासाहेब-भाई ! तुम्हें हमारे नियमका पता है ? राजपूत---नहीं तो बाबा। वावासाहेव-हमारा एक नियम है। राजपूत-वावासाहेव ! क्या नियम है आपका ? वावासाहेब-हमारा यह नियम है कि जो भी कोई

शराव-मदिरा पीता है, मांस-मछली खाता है, अंडे खाता है, हम उसके धरका कभी कुछ भी नहीं खाते-पीते। इसिल्ये पहले तुम हमें यह बताओं कि तुम शराब तो नहीं पीते ! अंडे-मांस-मछली तो नहीं खाते ? सत्य कहना ।

राजपूत-महाराज ! आपके सामने झूठ क्यों बोर्चू, में शराब तो पीता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६ -----

दोनोंवा यं अचेत रके वह 1901

भवन्ति। दा मुदः खूजते...

न होते लिक और कुण्ड एवं नोपनिषद

हुई, देखी में देखता स्रममात्र किये हुए

पड़ते। इस ऋस न परिणाम हीं है। ब

है, पर यह ,२ हजा त श्रीमं

ीरमें व्या तथा स

है। अ हि सुक्री

अज्ञानमर्यो तन तेजी य मनको

की सुधी

षि आगे।

त्रे

नो

बाबासाहेब--तुम शराब क्यों पीते हो ?

राजपूत—हमारे घरपर बहुतसे मेहमान आते रहते हैं, उन्हें शराब पिलानी पड़ती है। इसिलये उनके साथ मुझे भी पीनी पड़ जाती है।

बाबासाहेन—मेहमानोंको खूब छक्कर गायका दूध पिलाओ, उन्हें खूब रबड़ी खिलाओ, खूब मिठाई खिलाओ। क्या उन्हें शराब पिला-पिलाकर उनका ईमान बिगाड़नेसे, उनका धर्म विगाड़नेसे, उन्हें महान् पापका भागी बनानेसे ही उनकी मेहमानी होगी ? भला जिससे अपना और दूसरों-का धर्म जाता हो, वह कैसी मेहमानी ? वह कैसा स्वागत-सत्कार ?

राजपूत—वावासाहेव ! मेरी माँ पचासी वर्षकी है। वह खूव भजन-पूजन करती है और वह चौकेकी रोटी खाती है। मुझे शराव पीनेके कारण अपने चौकेमें भी नहीं धुसने देती, मुझसे बड़ी घृणा करती है।

बाबासाहेब—फिर भी तुम शराव पीते हो ? माताका कहना भी नहीं मानते ?

राजपूत—महाराज! शराव पीनेपर सव दुःख भूल जाते हैं।

बाबासाहेब—भगवान्का भजन करो, भजनका नशा ही सबसे श्रेष्ठ नशा है। भगवान्का भजन करनेसे सारे दुःखोंकी जड़ ही कट जायगी। फिर दुःख तुम्हारे पास भी नहीं फटकेंगे।

राजपूत—महाराज ! बहुत दिनोंसे शराब पीता हूँ इसलिये मुझे आदत पड़ गयी है। अब यदि मैं शराब न पीऊँ तो बड़ी व्याकुलता हो जाती है।

बाबासाहेब—हमारा एक राजपूत भक्त था जो एक गाँवमें रहता था। एक वार वह हमसे प्रार्थना करके हमें अपने गाँव लेगया। उसके घरवालोंने हमसे कहा कि भहाराज! हमारे घरमें एक ऐसा आदमी है कि जो हमसे कहता है कि तुम मांस-अंडे खाना आर मदिरा पीना छोड़ दो। नहीं तो, मैं विष आदि खाकर मर जाऊँगा और अपने प्राण त्याग दूँगा।

वह आदमी भांस-मिद्राके हाथ भी नहीं लगाता था और इसे घोर पाप मानता था । पर उसके घरवाले मांस-मिद्रा खाते-पीते थे । हमने उस मनुष्यको अपने पासमें बुलवाया और उससे कहा कि 'भाई ! तुम क्यों मरना चाहते हो, क्या कारण है १' उत्तरमें उसने हमसे क्या'महाराज! मैंने कैसे बुरे घरमें जन्म लिया कि जहाँ मान मछली, अंडे खाये जाते हैं और शराव पी जाती है १ मान खाना और शराव पीना मनुष्योंका कार्य थोड़े ही है। व्या तो राक्षसोंका काम है। जिस वरमें मास खाया जान के शराव पी जाय, उस राक्षसोंके घरमें जीनेसे तो कहीं मान अच्छा है। मुझे इन लोगोंको मांस-शराव खाते के देखकर बड़ा भारी दुःख होता है। मैंने इन्हें बहुत कु समझाया-बुझाया कि तुम मांस-मिद्रिरा मत खाओ के पर मेरी बात इन्होंने नहीं मानी; इसल्ये अब मैंने यह निश्चाक लिया है कि या तो ये मेरी बात मानकर अबसे मांसमित खाना-पीना छोड़ देंगे, नहीं तो, मैं अपने प्राण खाग हुँग। अपने जीवित रहते मैं अब अपने घरमें किसीको मांस-मित्र खाते-पीते और ऐसे राक्षसी काम महापाप होते ने देखूँगा।'

वह कोई पूर्वजन्मका महान् संस्कारी जीव था और किंत कारणवरा उसने ऐसे लोगोंमें जन्म ले लिया था। हमते उक्षे सन घरवालोंको अपने पास बुलवाकर समझाया कि भारी तुमलोग मांस-मिद्दरा क्यों खाते-पीते हो ? यह तो वहा को पाप है और यह राक्षसी कृत्य है। तुम इन्हें अवसे छोड़ हो। यह तुम्हारा भाई है, इसके प्राण बच जायँगे ? इसके विकों जो दुःख होता है वह भी नहीं होगा और तुम्हारा पर्कों भी नहीं विगड़ेगा। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि अबसे हम भूला भी कभी न तो कभी मांस खायेंगे और न शराव ही पींगी फिर उन्होंने उसी समयसे मांस-मिद्ररा खाना-पीना छों दिया। तब उस बेचारेको शान्ति हुई। अब उस धरमें की मांस-मिद्ररा नहीं खाता-पीता। इसलिये अब वह की मांस-मिद्ररा नहीं खाता-पीता। इसलिये अब वह की मुख्ते सुखसे रहता है और भगवान्का भजन करता है।

रावण ब्राह्मण था और वड़ा ही विद्वान् था, पर कुर्ला कारण वह मांस-मिंदरा खाने-पीने लगा और वह राक्षम कारण वह मांस-मिंदरा खाने-पीने लगा और वह राक्षम कारण । इसीसे उसकी बुद्धि घोर तामिसक होकर भ्रष्ट हो कि और वह यज्ञोंमें विच्न डालकर ऋषि-मुनियोंको सताने लगे अन्तमें भगवान् श्रीरामकी धर्मपत्नी सीताको हर खा रावण जीवोंको मार-काटकर उनका मांस खाता था, विपर्ण जीवोंको सताता था, इसीलिये उन जीवोंको मारने कार्वि जीवोंको सताता था, इसीलिये उन जीवोंको मारने कार्वि खा स्वयंको मरवा-कटवाकर उसको भोगना वहाँ

[भाग ३६

मसे ह्य

के जहाँ मांग

ती है ? मांह

इं ही है। य

या जाय औ

तो कहीं मा

व खाते भी

बहुत कु

खाओ की

यह निश्चयञ्च

मांस-महित

त्याग दूँगा।

मांस-महित

होते न

ग और किर्ी

हमने उसरे

कि भाई।

तो वड़ा बो

से छोड़ दो।

सके चित्तो

हारा परले

नि प्रतिशार्थ

हम भूलक

व ही पीयो।

ग-पीना छों

न घरमें कें

व वह व

पर कुसांके

राक्षम ब

भ्रष्ट हो गई

ाताने लग

हर लग

या, निरपण

रनेकारते

ाना पड़ी

इसिल्ये मांस-मिदरा कभी भूलकर भी नहीं खाना-पीना

एक क्षणभरका कुसंग भी भले मनुष्यका वोर अघःपतन कर डाल्ला है। इस विषयमें हम तुम्हें अपने जीवनकी एक भवंकर दुष्परिणामकी सत्य घटना सुनाते हैं—

एक बारकी बात है कि बहुत दिन हुए एक साध इमारे _{जस आया} और वोला कि 'महाराज! हमारे गुरुसे हमारा ल्डाई-झगड़ा हो गया और इस कारण हमारी उनसे बोल-वाल भी बंद हो गयी है। आप चलकर उनसे हमारा समझौता करा दीजिये। इम उसके गुरुसे उसका लड़ाई-झगड़ा शान्त कानेकी दृष्टिसे उसके साथ चल दिये और उसके गुरुके पास ना पहुँचे। उसका गुरु बड़ा कुसंगी था। वह सुल्का, तम्बाकू, शाव आदि सब पीता था। हमें इस बातका पहले विल्कुल पता नहीं था। हम उसके पास पहुँचे तो उसने हमारे सामने शराव पी और स्वयं शराव पीकर उसने इमसे भी कहा कि लो तुम भी शराव पी लो। हमने पहले तो इन्कार किया। पर उसने ज्व इमसे शराब पीनेका बहुत आग्रह किया तो हमने 'संतका ब्ह्ना मानना चाहिये' यह समझकर राराव पी ली। जरासे कुमंगसे इमारी दुर्बुद्धि हो गयी। जब हम वहाँसे लौटकर अपने गुरुके पास आये तो उन्होंने इमसे पूछा कि तुम आज कहाँ-पर गये थे ! इमने अपने गुरुजीको सब बातें बतायीं। इमारे गुरु पहलेंसे ही यह मलीमॉंति जानते थे कि वह शराव पीता है और बड़ा ही दुर्व्यसनी है। इसलिये इमारे गुरुने इमसे कहा कि ^{(ब्ह साधु} तो शराब पीता है ?' इमने कहा कि 'हॉं महाराज ! वह शराव पीता है।' गुरुजीने कहा कि 'क्या तूने भी उसके क्हनेसे शराब पी ली ?' मैंने कहा कि 'महाराज ! मैंने भी उस ष्पुके कहनेसे शराव पी ली।' गुरुजीने कहा—'अरे! वृते शराब क्यों पी ली ?' इमने कहा कि 'महाराज ! यह समझकर मैंने शराब पी ली थी कि 'संत कहता है' इसलिये भै हो। इसपर इमारे गुरुदेव बहुत नाराज हुए और उन्होंने हमें जोरोंसे डॉटते हुए कहा—

'अरे पगले ! वह तुझसे यह कहता कि त् टट्टी घोलकर भी है तो क्या तू संतके कहनेसे टडी घोलकर पी लेता! बो पाप करनेको कहे वह कैसा संत । और ऐसे संतका कहना मानना कैसी संत-भक्ति ? यह तो घोर पाप है। ऐसा भा संतका कहना मानना हो गया कि जो त् उसके कहनेसे श्रावजैसी घृणित चीज पीनेको तैयार हो गया ?' इमने उस

दिनसे फिर उस साधुके पास जाना और ऐसे साधुओंके पास-में बैठना भी विल्कुल बंद कर दिया। याद रक्खो—बुरे आदमीका कुसंग क्षणभरका भी बहुत बुरा होता है। इससे बचनेमें ही कल्याण है।

ओषधिके रूपमें भी शराब पीना निषेध

इम ग्रुद्ध जंगलकी जड़ी-बूटीद्वारा रोगियोंको ओषधि तैयार करके दिया करते थे। एक रोगके लिये जो ओषधि तैयार करनी पड़ती थी, उसे फूँकनेके लिये शरावका पुट देना पड़ता था। एक बार इमने उस रोगवाले रोगीसे ओषि तैयार करनेके लिये शराव लानेको कहा । रोगीकी हमारे प्रति वड़ी श्रद्धा-भक्ति थी, किंतु उसने इमें उससे शराव मँगाते देखकर अपने मनमें यह सोचा कि महाराज शायद खयं शराव पीते होंगे और इसीलिये यह ओषधि बनानेके नामपर शराव मँगाकर पीर्वेगे ? उसने इमसे कहा कि 'महाराज! मैं शराव अँगूरकी लाऊँ या और किसी प्रकारकी ?' इम यह भी नहीं जानते थे कि शराव कितने प्रकारकी होती है। हमने उसकी बातसे समझ लिया कि इसे यह शंका हो गयी है कि महाराज ओष्रधिके वहाने शराव मेंगाकर स्वयं पियेंगे । वस, उस दिनसे इमने ओषधि-को फूँकनेके लिये भी शराव मैँगाना बंद कर दिया और यह निश्चय कर लिया कि अबसे इम कभी भी शराबसे ओषि नहीं फूँकेंगे। उसी दिनसे हमने शरावकी जगह जंगलकी जड़ी-बूटीसे ओषि फूँकना प्रारम्भ कर दिया और इमें इसमें सफलता भी खूब मिली।

गोमृत्रका अद्भुत चमत्कार

गोमाता हमारी पूजनीया माता है। इसका गोबर-गोमूत्र बड़ी-से-बड़ी व्याधियोंको दूर करनेमें समर्थ है। एक बारकी बात है कि इमारे पास एक रोगी आया। उसे आतराकका रोग था। इम उसे जो ओषधि देना चाहते थे, उसके साथ कुछ शराव पिलाना अनिवार्य माना जाता था। पर इमने तो अब ओषिके रूपमें भी शराबका संसर्ग बिल्कुल बंद कर दिया था।

अतः यह प्रश्न सामने आया कि अब क्या करें और रोगी-को शराबकी जगह क्या दें ! इमने महाराज (भगवान्)का ध्यान किया और ध्यानमें यह प्रार्थना की कि महाराज अब इस क्या करें ? तब ध्यानमें ही हमें यह आदेश प्राप्त हुआ कि चुम अबसे इस ओषिके साथ शराबके बद्छे गोमूत्र दिया करो।

34

चल

उसर

उत्तर

बाहर

रात्रि

प्रतीत

इतनी

समझा

इमने आदेश पाते ही उस आतशकके रोगीको शराबके बदले गोमूत्र दिया । उसने ओषधिके साथ गोमूत्रका सेवन किया तो उसे पूर्ण लाभ हुआ । तबसे हम बराबर शरावकी जगह सबको गोमूत्रका प्रयोग करना ही बताते हैं और इससे सभीको ही बड़ा लाभ पहुँचता है। गोमृत्रकी अद्भुत महिमा है।

मांस-मदिरा घरको बर्बाद कर डालते हैं

शराव पीनेसे, तम्वाकू, गाँजा, चरस, मुल्का आदि पीनेसे, मांस-मछली-अंडे खानेसे हमारा धर्म तो भ्रष्ट, होता ही है, घर-के-घर बर्बाद हो जाते हैं। आजतक इमारे जितने भी ऋषि-महर्षि हुए हैं, जितने भी हमारे अनतार हुए हैं और जितने भी इमारे सिक्ख गुरु हुए हैं—सभीने मांस-मदिरा खाने-पीनेका निषेध किया है और उसे महापाप बताया है। ऐसे बहुत उदाहरण हैं जिनसे पता लगता है कि मांस-मदिराका सेवन करनेवाले बिल्कुल बर्बाद हो गये।

निरपराध जीवोंको सतानेका फल अवस्य भोगना होगा

किसी भी निरपराध जीवको कभी भूलकर भी मत सताओ, नहीं तो, निरपराध जीवको सतानेका फल तुम्हें अवस्य ही भोगना पड़ेगा । भगवान श्रीरामचन्द्रजी महाराज अवतार थे और वे साक्षात परमात्मा थे तो भी जब उन्होंने सीता-जीके कहनेसे सोनेके मृगको मारा तो उसका फल श्रीसीताजीको रावणद्वारा इरण करनेके रूपमें उन्हें भोगना पड़ा । उन्होंने अपनी इस लीलासे जगत्को यह बताया कि साक्षात भगवान होनेपर भी मारीच मृगका वध करनेपर मुझे उसका फल श्रीसीता-इरणके रूपमें भोगना पड़ा । तुम तो किस गिनतीमें हो । तुम्हें भी इन निरपराध जीवोंको मारनेका, सतानेका, खानेका बुरा फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। जब मैं ही नहीं बच सका तो तम कैसे बच सकोगे ! इतना ही नहीं, भगवान् श्रीरामने बालीको छिपकर मारा तो अगले अवतारमें भगवान् जब श्रीकृष्ण-के रूपमें प्रकट हुए तो पूर्वजन्मके बालीने भी व्याधके रूपमें जन्म लिया और उसने भगवान श्रीकृष्णके चरणोंमें वाण मारकर अपने पिछले जन्मका बदला लिया।

, इस लीलासे भी भगवान्ने जीबोंको यही शिक्षा दी कि

किसी भी निरपराध जीवको मारकर तुम बिना वदल कु किसी प्रकार नहीं बच सकते । उसका फल तुम्हें अवस्थ भोगना पड़ेगा। इसलिये जो गाय, वकरे, अंहे, मुग, म्ल आदि मार-मारकर खाते हैं, अगले जन्ममें उन्हें भी है प्रकार मरना पड़ेगा और अपने किये पापोंका फल अक्ष भोगना पड़ेगा। अतएव कभी भूलकर भी किसी भी निराह जीवको मत मारो, मत सताओ । इसीमें तुम्हारा क्लाकी

क्या अंडा खाना पाप नहीं है ?

एक बार हमारे पास एक सज्जन आये और उन्होंने कडा कि 'महाराज! इम मांस विल्कुल नहीं खाते, पढ़ अंडे खा लेते हैं। ' इमने उससे कहा कि 'तुम अंडे हो खाते हो ?' तो उत्तरमें उन्होंने कहा कि 'महाराज। श्रे खानेमें कोई दोष नहीं है और उसमें कोई हिंसा नहीं। इमने उससे कहा 'भाई ! अंडा खाना तो बहुत ही बारे मांस तो एक समय एक ही जीवको मारकर लाया जाती पर बहुतसे अंडे एक साथ खाकर तो तुम न जाने कि विन जीवोंको खा जाओगे ? और कितने जीवोंको मारनेका पारके के लोगे ? अंडा खानेमें हिंसा नहीं है, यह मानना स्त्र गलत है। उसमें घोर हिंसा है। इसलिये कभी भूलका अंडा नहीं खाना चाहिये।'

पुण्योंका संचय करो

तुम्हारे पूर्वजनमोंके ग्रुभ कर्मोंका ही यह फल है जो तुम्हारा इस सर्वोत्तम देश भारतवर्षमें जन्म हुआ है है तुम्हें इस दुर्लभ मनुष्य-योनिमें उत्तम कुल पात हैं है। अब यदि तुमने उत्तम देश, उत्तम योनि और हर कुलमें जन्म लेकर भी ग्रुभ कर्म नहीं किये, दान-पुष् किये और भगवान्के भजन-पूजन नहीं किये, तो सोवी अ तुम्हारा क्या होगा ? पिछले जन्मोंके वे पुण्य समाप्त हैं। सब कुछ समाप्त हो जायगा । इसलिये यदि तुम यह वी हो कि हम बराबर सुखी बने रहें तो तुम बरा^{बर शुभ ह} दान-पुण्य-भजन करते रहो, अपने सनातन धर्मातुसार क रहो और पापोंसे सदा वचते रहो। यही सुखी होनेक ^{हो} मात्र साधन है।

बोलो सनातन धर्मकी जय।

पढ़ो, समझो और करो

(?)

खप्रके खरूपमें सत्य

बह बृद्ध तो था, उसके बाल भी सफेद थे, पर सका शरीर न दुबला था, न दुर्बल । जब वह राहपर बला, बैसाखी टेककर, गर्दन झुकाकर, धीरे-धीरे बला, जैसे किसी वस्तुको ढूँढ़ रहा हो । कोई कभी अससे पूछता कि, 'बाबा क्या ढूँढ़ रहे हो ?' तो वह जत देता, 'रास्ता ढूँढ़ रहा हूँ, बाबा ! रास्ता खो ग्या है।'

'कहाँका रास्ता ?'

^{(यही} तो माछम नहीं ।' उसके स्वरमें निराशाकी ^{चिन} रहती।

'ख़त्र मचेमें ढूँढ़ते जाओ, बावा' उत्तर सुनायी देता और उसके साथ खखारकी हँसी ।

× × ×

एक चाँदनी रातको जब कि मैं अपने मकानके बहर बैठा नीलाकाशकी शोभा देख रहा था, उक्त इस महोदयको अपने मकानकी ओर आते देखा। राक्रिके समय उनका शुभागमन कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। निकट पहुँचते मैंने पूछा,—'क्यों बाबा! तिनी रातको कैसे आये ?' उसने उत्तर दिया, 'तुमसे कुछ कहना है।'

'सी रातको ? कल कहते, महाराज !'

^{(नहीं, कलतक} मैं भूल जाऊँगा। कल रातको मैंने एक सपना देखा है, वह तुमको सुनाना है।'

'अच्छा, तो आप सपना सुनाने आये हैं। मैं समझा कोई गहरी बात होगी।'

'व्हले धुनो, फिर कहना गहरी है या नहीं।'

'अच्छा, तो सुनाइये।' तब वृद्धने यों कहा—

मैंने सपनेमें देखा कि मैं रास्ता ढूँढ़ते-ढूँढ़ते, जैसा कि मैं प्राय: ढूँढ़ा करता हूँ, एक दिन एक गाँवमें पहुँच गया हूँ। गाँव छोटा है। उसमें रहनेवाले भी कम हैं। अधिकतर मकान टूटे-फूटे हैं । बहुतोंपर न छत है, न छप्पर; दीवारोंमें कहीं-कहीं दरवाजे छगे हैं । इस गाँवमें बहुत देरतक मैं भटकता फिरा। मुझको देखते ही छोग जान जाते थे कि मैं वहाँका रहनेवाला नहीं हूँ । मुझको संदेहयुक्त दृष्टिसे देखते थे। कभी-कभी कोई पूछता भी था कि 'मैं कहाँ जाना चाहता हूँ, किससे मिलना चाहता हूँ ।' मैं शहरकी तरफ जाना चाहता हूँ कहने-पर वह मुझे राह तो बता देता, पर चलते-चलते में फिर भटक जाता । ऐसे ही घूमते-घूमते मैं एक नदीके किनारे जा पहुँचा । नदी छोटी थी, बहुत गहरी भी नहीं । मैं उस पार जाना चाहता था, पर बहाव इतना तेज था, कि नदीमें उतरनेका साहस नहीं हुआ। वहाँपर एक आदमी मिला। उसने पूछा, 'आप कहाँ जाना चाहते हैं ?'

मैंने कहा, मैं जहाँ जाना चाहता हूँ वहाँका नाम भूल गया हूँ। मुझको युगल-मन्दिरका रास्ता बता देने पर, वहाँ जाकर मेरे जानेका स्थान कहाँ है, पता लगा लूँगा।

उसने कुछ नहीं कहा; हँसकर वह चुपचाप चला गया। मैं फिर इघर-उधर घूमता-फिरता रहा। घूमते-चूमते ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ केवल दो-एक मकान थे और चारों तरफ खुला हुआ था। वहाँ खड़े-खड़े सोच रहा था कि किघर जाऊँ। इतनेमें एक जीप-गाड़ी आती हुई दिखायी दी। थोड़ी देरमें वह आकर मेरे ही पास खड़ी हो गयी और बिना किसीसे कुछ कहे मैं तत्काल उसपर बैठ गया। तब मैंने गाड़ीपर बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

्याग है। बदला कुछो हैं अवस्य है

मुर्गे, महत्त्व उन्हें भी हां क्ल अवस्थ

भी निरपतः त कल्याण है।

उन्होंने हमें खाते, पर ह म अंडे हो हाराज! अं

सा नहीं है! त ही बुगहै वाया जाता है

न जाने किले नेका पापके

गनना सर्व ो भूलकार्य

इ फल है है हुआ है जे प्राप्त हुं न और उन्ह

ान-पुष्प व सोचो, अ साप्ता होते

म यह वर्ष बर शुभ ह निसार वर

निसार " होनेक ^{(ए} लोगोंको देखा, तो उनमें एक सज्जन जान-पहिचानके मिले। वे मुस्करा रहे थे। मुझसे पूछा 'कहाँ ?'

मैंने उत्तर दिया, 'युगल-मन्दिर ।'

कहा, 'ठीक है।'……गाड़ी चल दी। … आँख खुल गयी। वृद्ध महाराज' थोड़ी देर चुप बैठे रहे, फिर मुझसे पूछा, 'क्या समझे !'

मैंने कहा—'यह कि आप जैसे जाग्रदवस्थामें पागलकी तरह मारे-मारे इधर-उधर फिरा करते हैं, खमावस्थामें भी वैसे ही मारे-मारे फिरते रहे ।' उन्होंने कहा, 'नहीं समझे' सुनो । वह टूटे-फूटे मकानोंवाला गाँव इस असार संसारका ही प्रतीक है, जिसमें प्राणी-पदार्थ सब अनित्य हैं, क्षणमङ्कर है, परंतु इसमें मनुष्य जन्म लेता है, इसके काम-धंघेमें फँसा रहता है, धन-सम्पत्ति उपार्जन करता है, खूब दौड़-घूप करता है और अपनी समझसे सुखमें जीवन व्यतीत करता है । परंतु मनुष्य-जीवनका क्या उद्देश्य है, उसे कहाँ जाना है—सब भूल जाता है । 'मोहितो मोहजालेन पुत्रदार-गृहादिषु ।' इसी तरह उसके दिन कटते जाते हैं । माया-नदीको पारकर कहीं जा नहीं सकता है । पर भगवान्की कृपासे एक दिन उसकी आँखें खुलती हैं । वह देखता है—

सुकृतं न कृतं किञ्चिद् दुष्कृतं च कृतं मया।

तत्र वह मन-ही-मन भगवान्को स्मरण करने लगता है और किसीकी खोजमें रहता है जो उसे जीवनके सन्मार्गका पता बता दे। सौभाग्यवश एक दिन उसको एक पथ-प्रदर्शक मिल जाता है, जो उसको मनुष्य-जीवन सफल बनानेके राज-पथका निर्देश कर देता है। वह धन्य हो जाता है।

फिर थोड़ी देर चुप रहनेके बाद उन ज्ञानवृद्ध महोदयने पूछा, 'क्या समझे ?'

दयने पूछा, 'क्या समझं ?' मैंने उत्तर दिया, 'अबतक मैं आपको जो कुछ समझता था उसके लिये क्षमा कीजिये और आज आफ्ने चरण छूकर प्रणाम करता हूँ, कृपया प्रहण कीजिये। —(आचार्य) श्रीचारुचन्द्र चट्टोपाध्याय, एमः ए

(?)

सची सहानुभृति

हमलोग लाहौर गये थे । उस समय पाकिसा नहीं बना था । तीन मित्र तथा उनमेंसे एककी भीकी मनोरमा देवी भी हमारे साथ गयी थीं । एक दिन हम्ले अच्छी तरह ऊनी कपड़े पहन-ओढ़कर प्रात:काल एक निकले । जाड़ेकी मौसिम थी, फिर पंजाबका जाड़ा। टहलकर वापस लौट रहे थे कि देखा, सड़कके क्रि एक पेड़के नीचे एक तरुणी स्त्री अपने ३-४ माले बच्चेको छातीसे चिपकाये बैठी है। बच्चेके बदनपर एक कपड़ा नहीं है और वह स्त्री एक फटी-सी मैली साड़ी लिए उसीसे वह बच्चेको ढकनेकी कोशिश कर रही है। री ठिटुर रहे हैं, उनके बदन काँप रहे हैं। इस दर्ल देखते ही मनोरमाबाई ठहर गयी और तुरंत उस गरि पास जा पहुँची । हमलोग भी साथ-साथ गये—याँ हमारे मनमें कोई खास सहानुभूति नहीं थी, वरं हमी एक साथी मित्रने तो कहा--- 'क्यों वक्त बर्बाद कार्वे हैं। दुनियामें सभी तरहके लोग हैं। मनोरमा देवीने आ पास पहुँचकर रनेहसे पूछा—'बहिन ! तुम्हारा घर की है, तुम्हारे पास कपड़े नहीं हैं ? स्नेहमरी अवा सुनते ही वह फुफकारकर रोपड़ी, बोली—'घर ^{काड़े ही} तो यहाँ पेड़के नीचे जाड़ेमें क्या पड़ी रहती। में की मैट्रिक पास थे। एक जगह अस्सी रुपये महीकी नौकरी करते थे। उन्हें टी० बी० हो गयी। तीन ही बीमार रहकर वे मेरे दुर्भाग्यसे मर गये। उनकी ^{बीमार्ग} कपड़े-छत्ते बरतन सब समाप्त हो गये । मैं और बन्ने जैसे बैठे हैं, वैसे ही बच रहे । किरायेके मकानमें थे। उसने निकाल दिया। छः-सात महीने हु^{त्}, हि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जा पायी । कपड़े कहाँसे लाती ।

ज आपने क्तीजिये । एम० ए०

भाग ३६

पाकिला र्ती धर्मपती देन हमले काल घुमने का जाड़ा। nके किलो १-४ साले नपर एक मे

है। वी इस दस्क उस गृहि

ाड़ी लपेटेहैं

ाये—यर्वा वरं हमा : करते हैं।

देवीने आ रा घर की

भरी आवा

र कपड़े होते 一种的

रे महीने तीन सा

की बीमारि

र बन्बे कानमें ही

ने हुए, हि

अभक्ष्यभक्षण-त्यागसे मृत्युमुखसे बचना मेरी आयु उस समय लगभग १९ वर्षकी रही होगी। १९३२ ई० की बात है। मेरी दादी श्रीमती चुनाकुँअरि,

वेड़के नीचे गुजर करती हूँ। दिनमें बच्चेको लिये मजदूरी कुछ कर लेती हूँ, उसीसे पेटमें डालनेको कुछ मिल जाता है। बीचमें बीमार पड़ गयी थी, बच्चा भी बीमार हो गया। अस्पतालमें गयी, पर वहाँ भी कोई दवा-दारू नहीं मिली। भगवान्के भरोसे यहाँ आकर पड़ गयी। एक दिन एक दयाछ सज्जनने आकर कुछ पथ्य तथा दवाका क्तजाम कर दिया । दोनोंकी तबीयत तो कुछ ठीक हुई। पर अभीतक कमजोरीके मारे मैं मजदूरीपर नहीं

इमलोगोंके मनमें तो आयी कपड़ा दें, पर देते कहाँसे। इसी बीच कुछ बूँदात्राँदी शुरू हो गयी थी। इमलोग लाचार थे। पर मनोरमा देवीने अपना कम्बल, जो वे ओढ़े थीं, तुरंत उतारकर उसको ओढ़ा दिया और दूसरी ओर मुँह करके अपना स्वेटर उतारा और उसे देती हुई बोली—'बहिन ! इसे पहन लो और इसीमें बच्चेको हैका छातीसे चिपका लो । ऊपरसे कम्बल ओढ़ लो ।' यह सब इतनी जल्दी हो गया कि हमलोग देखते ही रह गये। मनोरमाके पति श्रीकुन्दनलालजीने प्रसन्न होकर कहा—'मेरे भी मनमें तो आयी थी कि कपड़ा दूँ, पर सोचा क्हाँसे दूँ। साथ तो लाया नहीं था। कम्बल-स्वेटर तो मेरे शरीरपर भी थे पर मुझे यह बात याद ही नहीं ^{आयी}। तुमने बहुत अच्छा किया।' कम्बल-स्वेटर तो हम सभीके पास थे, पर उनकी तरफ ध्यान गया तो केवल मनोरमाजीका ही । हममें किसीके मनमें यह बात नहीं आयी। वह स्त्री तो कृतज्ञतासे दब गयी। इतना ही बोल सकी। किर तो आँसुओंकी झड़ी लग गयी। 'तुमने बहिन! हमलोगोंकी जिंदगी दी है—भगवान् तुमको सदा अनन्त धुख दें। -रोशन लाल कपूर

(3)

जिनकी आयु लगभग ७५ वर्षकी होगी, अधिक बीमार हो गयाँ। उनकी चिकित्सा मेरे गुरु आयुर्वेदाचार्य पं ० मूलचन्दजी शास्त्री राजवैद्य, निवासी गोलागोकरणनाथजी कर रहे थे। चिकित्सा करते गुरुजीको लगभग सात-आठ दिन हो गये, किंतु लाभकी अपेक्षा हानि होती गयी । हताश होकर गुरुजीने मेरी मातासे और मुझसे कहा कि 'इनका बचना असम्भव है, औपधसे कोई लाभ नहीं पहुँच रहा है, भगवान् ही रक्षक हैं। इसलिये इनका मन जिन-जिनको देखने-मिलनेका हो, उन्हें दिखा दो।

यह सुनकर मुझे अत्यन्त दु:ख हुआ । किंतु धैर्य धारण करके मैं शुद्धचित्तसे देवालयमें गया और वहाँ भगवान् श्रीराधाकुष्णके सामने मैंने यह प्रतिज्ञा की कि 'यदि अशुभ चीर्जोके त्यागसे आप प्रसन्न होते हैं तो मैं आजसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मेरी दादी खस्य हो जायँ तो आजसे मांस-मछली खाना छोड़ता हूँ और अपने बाजारमें भी मांस-मछली नहीं विकने दूँगा।

मैं घर छौट आया और उसी शामसे मेरी दादीका त्रिदोष ज्वर कम होने लगा । एक सप्ताहमें वे एकदम ठीक हो गयीं । गुरुजीने कहा कि 'अव तो विना ओषघि दिये भी रोगीकी दशा ठीक है। ' तबसे मैं इस प्रतिज्ञा-का पूर्णरूपसे पाठन करता चला आ रहा हूँ । मैंने इतिहासमें पढ़ा था कि राणा साँगापर विजय प्राप्त करनेके हेतु बाबरने नमाज पढ़ते समय खुदासे यह प्रार्थना की कि 'मैं यदि राणा साँगापर विजय प्राप्त कर छूँ तो मैं कभी शराब नहीं पीऊँगा ।' और बाबर राणा साँगापर विजयी हुआ । इतिहासकी इसी स्मृतिने मुझे मांस-मछली-त्यागके लिये प्रेरित किया था ।

> —राजिष डा॰ कुँवर धनश्यामनारायणसिंह 'श्याम' (8)

जिसकी चीज, उसीको अर्पण बम्बईमें अनाजके एक थोक व्यापारीके यहाँ उगाहीके

रुप

बंद

हर्षः

भिग

प्रसा

लड़व

दोनों

स्रिये

शुख

महीन

एक

हो

आया

भोज

हसपर

कि अ

कामपर नौकरी करनेवाले पोपटलालको डेंद्र सौ रुपये वेतन मिलता था। बाल-बच्चे देशमें बूढ़े माता-पिताके पास रहते। पोपटलाल बम्बईमें एक बासेमें भोजन करता और रातको गदीमें सो रहता।

थोक अनाज और किरानेके न्यापारियोंके यहाँ बम्बईमें नमूने साफ करके उन्हें बोरोंमें भरनेके लिये अधिकांशमें स्त्रियाँ रक्सी जाती हैं और उन्हें 'पालावाली' कहते हैं।

पोपटलालकी गदीमें पालावाली जानकीबाई पचास-पचपन वर्षकी एक विधवा स्त्री थी। कुटुम्बमें वह अकेली ही थी।

भारत सरकारके इनामी वांड पहले-पहले निकले तब पोपटलालकी गदीके सभी लोगोंने अपने बहुत थोड़े वेतनमेंसे कुछ बचाकर पाँच रुपयेका एक बांड खरीदने और नसीब आजमानेका निश्चय किया । पोपटलालने जानकीबाईसे पूछा—'तुश्चे भी एक बांड लेना है न ?'

'बहुत थोड़ी तनस्वाहमेंसे पाँच रुपये कहाँसे निकार्छं'

'कोई आपत्ति नहीं, अभी पाँच रुपये मैं दे देता हूँ, तुझें सुविधा हो तो मुझको लौटा देना।'

यों कहकर पोपटलाल पाँच रुपयेका एक बांड जानकीबाईके लिये खरीद लाया | जानकीबाईको देने लगा | जानकीबाईने कहा—'मैं कहाँ सँभालकर रक्लूँगी, तू ही अपने पास रख।'

पोपटलालने 'यह बांड मेरा और यह जानकीबाईका' यों मन-ही-मन निर्णय करके दोनों बांड अपने पास रख लिये।

फिर तो यह बात भूल गयी । लगभग डेढ़ वर्ष बीत गया । जानकीबाईने वहाँ नौकरी छोड़कर दूसरी जगह कर ली और अन्तमें बीमार पड़कर वह अपने देश चली गयी । पोपटलालको अपने पासके दोनों बांडोंमें अबतक किसीपर इनाम नहीं मिला । अन्तमें अभी-अभी इनामोंकी अन्तिम घोषणाने पोपटलालके पासके एक बांडपर ढाई हजार रूपमेन इनाम मिला। वह इनामके रूपये भी ले आया। हुन बीच उसे जानकीवाई याद आ गयी। दोनोंमेंसे जानकीवाई का कौन-सा बांड था, इस बातको याद करनेका उसने खूब प्रयत्न किया और अन्तमें उसके मनमें यह निष्ण हो गया कि इनाम उसके बांडपर न मिलकर जानकीवाई वालेपर मिला है।

अजब महँगीका जमाना और डेंद्र सौ रुपयेकी होटें. सी तनख्वाह, अतः पोपटलालने निश्चय किया कि ज़ाम की रकम वही रख लेगा। जानकीबाईने अभी उसे पंच रुपये ही कहाँ लौटाये हैं ? फिर कौन-सा नम्बर उसका है, यह भी उसको मैंने कहाँ बताया था। और जानकीबाई इस समय कहाँ है, इसका भी किसको पता है? यह सम सोचनेपर भी पोपटलालकी अन्तरात्माने इसे नहीं माना।

दिन बीतते गये, त्यों-त्यों पोपटलालके मनमें बी विमासान मच गया । बुद्धि कहती है—'अरे मूर्ब ! ए ले, ऐसा मौका तुझे फिर कब मिलेगा ?' परंतु वहाँ बी तुरंत ही अन्तरातमा कराहने लगती—'जानकी बी तुझसे अधिक गरीब है । तु मुझको—तेरी अन्तरात्मां धोखा देकर कवतक इन रुपयोंको पचाकर एख सकेगा!

आखिर पोपटलालने जानकीबाईका पता लगाना शुरू किया और बड़ी मेहनतके बाद उसे खबर मिली कि जानकीबाई अपने गाँवपर है और वहाँ अपने घरके परि ही थोड़ी-सी जमीनमें धानकी खेती करके अपना क्षि चलाती है।

और एक रविवारको खूब सबेरे पोपटलाल वर्म्स एस-टी बसमें सवार होकर पनवेल उतर गया और वे कोस पैदल चलकर जानकीबाईके गाँव पहुँच ^{गया}।

'अरे पोपट ! तू, यहाँ मेरे गाँवमें ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

=

गेषणार्वे

रुपयेका

时

क्षीगृहं.

उसने

निश्चय

कीवाई-

होटी-

इनाम-

से पाँच

उसका

नकीवाई

गृह सव

माना ।

में घो

11

हाँ तो

कीवाई

ात्माको

初!

ा गुरू

矛盾

ने पास

काम

田朝

त वी

श्वानकीबाई ! उस बांडके पाँच रुपये तुमने मुझको नहीं दिये, उन्हें छेने आया हूँ ।'

'पाँच रुपयेके लिये इतना बसका भाड़ा खर्च करके यहाँ आया ? कैसा मूर्ख है । ले ये तेरे पाँच रुपये और चाहिये तो बसका भाड़ा भी ले ले ।' जानकीवाईने पाँच रुपयेका नोट पोपटके हाथपर रक्खा और पोपटने अपनी बंडीकी जेबमेंसे २५००) रुपये निकालकर जानकीवाई-को देते हुए कहा— 'बसका भाड़ा तो नहीं चाहिये, लेकिन पाँच रुपये तो जरूर लेने हैं । इन पाँच रुपयों-पर तुझे २५००) का इनाम मिला है ।'

और जानकीबाईकी आँखोंसे आश्वर्य, आभार और हर्षके आँस् ढलककर उसके झुरी पड़े कठोर चेहरेको भिगोने लगे। (अखंड आनन्द)

—गोपालदास प्र॰ मोदी

(4)

दूटा प्रेम फिर उमड़ा

मुजफ्तरपुर जिलाके दक्षिण दिशामें त्यागी ब्राह्मणों-का एक सुन्दर गाँव है। बाबू रामप्रसाद तथा श्याम-प्रसाद नामके दो भाई थे। बड़े रामप्रसादके एक लड़का तथा छोटे श्यामप्रसादके दो लड़के थे। परस्पर दोनों भाइयोंमें अत्यन्त स्नेह था किंतु दोनों भाइयोंकी ब्रियोंमें परस्पर देष था। इसके फलखरूप महासंप्राम शुरू हो गया, मुकदमा चला और छोटे भाईको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गयी।

स्थामप्रसादने बहुत प्रयत्न तथा अर्थव्यय करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी चाही । दैवयोगसे छुट्टी मंजूर हो गयी । स्थामप्रसाद सीघे मुजफ्फरपुरसे घर आया । अपनी स्त्रीसे पूछा । 'आज भैयाके यहाँ भोज है । कल न्त्का (भतीजेका) यज्ञोपवीत है ?' स्पर स्त्रीने अन्यमनस्क होकर पूछा,—'सुननेमें आया था कि आपको ग्यारह महीनेकी जेलकी सजा हो गयी है ।

और आप जेलमें हैं। इसपर श्यामप्रसादने कहा कि 'जेलमें तो था ही, किंतु नृत्का जनेऊ है, इसलिये मैंने बहुत प्रयत्न करके केवल एक दिनके लिये छुट्टी पायी है। धुनते ही स्त्रीने कहा—'डूव क्यों नहीं मरते! निमन्त्रणतक भी नहीं है और खानेके लिये बेचैन हो, उस दुष्ट भाईके लड़केका जनेऊ देखनेके लिये रुपये खर्च करके आये हो। इसपर श्यामप्रसादने कहा कि ''सुनो 'हम जेलसे आयेंग, दो-चार क्योंतक तेरे तथा मेरे मनमें दुःख बना रहेगा। फिर दोनोंमें मेल-जोल हो ही जायेगा। कहोगी कि 'ऐसा नहीं हो सकता' तो मैं कहूँगा 'ऐसा होगा हा।' क्योंकि यही प्रकृतिका नियम है। संयोग-वियोग, प्रीति-वैर होते जाते रहते हैं। फिर भी हम अनेकों यज्ञ तो देखेंगे, किंतु तुम जानती ही हो कि नृत्का यज्ञोपत्रीत तो फिर नहीं देख सकूँगा।"

इन दोनोंमें ये बातें हो रही थीं, ठीक इसी समय रामप्रसाद छोटे भाई श्यामप्रसादके आनेकी बात धुनकर छोगोंके कहनेपर श्यामप्रसादको भोजनके छिये बुछाने आये थे। पति-पत्नीमें बात हो रही थीं, इसिछिये रामप्रसाद भीतकी आड़में खड़े होकर सब धुनने छगे। भाईकी बात धुनकर वे रोने छगे और रोते-रोते अधीर होकर छपककर छोटे भाईको हृदयमें छगा छिया। जब ऊँचे खरमें विशेषरूपसे दोनों भाई रोने छगे तब तो वहाँ बहुतसे नर-नारी इक्हें हो गये। दोनों भाइयोंको यों स्नेहसे मिछते देखकर भछे मानवोंके मनमें राम और भरतका मिछाप-जैसा प्रतीत हुआ। फिर रामप्रसादने भाई श्याम-प्रसादको प्रेमपूर्वक भोजन कराया और यज्ञोपत्रीत हो जानेपर खयं मुजफ्फरपुर जाकर अपने पाससे रुपये छगाकर छोटे भाईको छुड़ाकर भातृ-प्रेमका आदर्श दिखाया। हृदय पछटते ही प्रेम हो गया।

—पं॰ रामविलास मिश्र, कथावा चक

(年)

बचोंके चरित्र-निर्माणका नमृना

घटना जनवरी सन् १९६२ की है। मैं एक दिन मेडिकल कालेजसे चारजाग लखनऊ स्टेशनपर बससे जा रहा था । उस समय प्राय: सभी विद्यालयोंमें छुट्टी हो चुकी थी। अतएव सभी छात्र घर जानेकी तैयारीमें थे एवं वे भिन्न-भिन्न साधनोंद्वारा अपने घरोंकी ओर अप्रसर हो रहे थे। रास्तेमें कुछ छात्र अपनी योजनानुसार बसके द्वारा भी जा रहे थे। इतनेमें अन्य छात्रोंके साथ एक लगभग सात वर्षकी बालिका भी बसपर चढ़ी, परंतु वह कंडक्टरसे बिना टिकट लिये ही आगे बढ़कर सीटपर बैठ गयी। प्रायः कंडक्टर इन बच्चोंके स्थानपर जाकर उनको टिकरें देते हैं। परंतु दैवयोगसे ऐसी घटना हुई कि कंडक्टर भी अपने स्थानपर खड़ा रहा और वह भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुई, परंतु वह पूरे रास्ते उसकी ओर देखती रही । सब लोग अपने-अपने स्थानपर बससे उतर रहे थे। जब उस बालिकाके उतरनेका स्थान आया तो वह भी दरवाजेकी तरफ आयी तथा उसने कंडक्टरसे टिकटके लिये आग्रह किया । कंडक्टर यह सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया । कंडक्टरने उससे पूछा कि 'बेटी !

तुमने टिकट क्यों नहीं ली ?' उसने उत्तर दिया कि 'नुमक्षे सीटपर आये ही नहीं, तो मैं क्या करती । कंड्य बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा जाओ बेटी, इसके मूँगफली लेकर खा लेना; क्योंकि तुम अपना सफ्र ल कर चुकी हो।' परंतु उस बालिकाने आग्रह करके का कि 'तुम मुझे टिकट दे दो, नहीं तो, इस घटनाके सके पर मेरी माताजी मुझे मारेंगी । अन्तमें उसने क्षि लेकर उसे फाड़ डाला और वह अपनी राहपर 🕫 दी । परंतु उसके ये शब्द 'माताजी मुझे मार्गे मेरे हृदयपर एक अमिट छाप छोड़ गये । किली वास्तविकता, स्पष्टवादिता, सचाई एवं शिक्षा थी हा शब्दोंमें। एक चावलके देखनेसे ही चावल पके कि ही इसका पता लगता है। इसी तरह यह बात छोती थी पर इससे बचीके माता-पिताकी सचाई तथा बची चिरत्र-निर्माणकी चेष्टाका पता लगता था। मेरी इन्ना कि मैं उतरकर उससे परिचय करूँ एवं उसके मा पिताके दर्शन करूँ, जो अपनी संतानको इतनी साल से सत्य-जीवन बनानेका प्रयत कर रहे हैं। पांतु क चल चुकी थी और वह बालिका भी मेरी आँखोंसे और जी एटि हो चुकी थी।

—भजनसिंह सलूजा एम० बी० बी० एस्०(प्रथम^{क)} (१४)

(80)

पुत्तकोक वर्षकी ह

(४) खर

फाग

(रचयिता--श्रीरामचरणजी इयारण भित्र')

सुधि भूल ही जाय है घाट की बाट की, बीन बजावै जबै बनमाली। कहिये कहा कौन सौं बाकी कर्बों--निहं जातु है, नैन की सैन है खाली॥ 'मित्र' जू कापै गुलाल की झोरी सजाय--फिरै बनाय पाली । विन चढ़ैगी चलाय भटू, बृषभानुजा पै नँदलाल की लाली॥

कों जो साळै सबै ब्रज बढ़ी तोरी प्रतीत सौं स्याम मौंहि तौ कहै गढ़ी है। त् भट्ट कौं बात लगायबे यह 'मित्र' मड़ी मैं भाँतिन लखी हर मोद रहै त् मनोज की तो चढ़ी है। ळाळी चढी गुलाल न लाली अली ! नँदलाल की

हो नयी पुस्तकें ।

अमृतके घूँर

(लेखक-डा॰ रामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ ए॰, पी-एचु॰ डी॰)

आकार डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य १.००, डाकलर्च ८०, कुल १.८०।

प्रसिद्ध विचारशील श्रीमहेन्द्रजीके इस प्रन्थमें अमृत-ही-अमृत भरा है। हमारे आजके कलिकलुषित असुर-भवापन विषमय जीवनको बदलकर उसे देवी सम्पदासे युक्त अमृतमय बनानेवाले परम सुन्दर भावोंका इस**में** वह रहा है। पाठक इससे लाभ उठायें—इसमें उल्लिखित भावोंको अपने जीवनमें उतारकर पवित्र आदर्श-क्षेत्र वर्ने, इसी आकाङ्कासे यह प्रन्थ प्रकाशित किया गया है।

आदर्श चरितावली भाग ५

आदर्श राज-शिक्षा]

(चुने हुए प्रसिद्ध सम्राट्, राजा, शासक, रानी आदिके सोठह चित्र शिक्षासहित) पृष्ठ-संख्या ६४, अधीपाका सुन्दर दोरंगा टाइटल, मूल्य .२५ न० पै०। डाकखर्च रजिस्टर्ड डाकसे .६५ कुल .९० न० पै०।

आदर्श चितावळीके चार भागोंके प्रकाशित हो जानेकी सूचना पहले दी जा चुकी है। यह पाँचवाँ भाग है। ामें निम्नलिपित सोलह सज्जनोंके चरित्र उनकी शिक्षाओं सहित दिये गये हैं—

(१) सम्राट् अशोक (२) सम्राट् समुद्रगुप्त (३) सम्राट् हर्षवर्धन (४) हजरत धुळेमान (५) साव्वी से और जि एठिजाबेथ (६) बादशाह अक्तवर (७) महाराणा प्रताप (८) छत्रपति शिवाजी (९) गुरु गोविन्दर्सिंह (१०) नेपोलियन बोनापार्ट (११) महारानी विक्टोरिया (१२) महाराज रणजीतसिंह (१३) रानी अहल्याबाई प्रभाव (१४) रानी छदमीबाई (१५) कैसर विलियम और (१६) लेनिन ।

पुत्तक-विक्रेताओंको सभी पुस्तकोंपर नियमानुसार कमीशन दी जाती है। प्राहकोंसे निवेदन है कि पुनकोंका आर्डर देनेसे पहले अपने पुस्तक-विकताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। इससे उनको भारी डाक-वर्षकी बचत होगी।

गीताप्रेसकी निजी दुकानें तथा स्टेशन-स्टाल

(१) कलकत्ता-नं ३०, बॉसतला गली; (२) वाराणसी-नीचीबाग; (३) पटना-अशोक राजपथ; (४) लगांश्रम-गीताभवन; (५) हरिद्धार-सन्जीमंडी, मोतीबाजार; (६) कानपुर-बिरहाना रोड (७) दिल्ली-नई सड़क। हन सभी दूकानोंपर मासिक 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के ग्राहक भी वनाये जाते हैं।

सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये

व्यवस्थापक गीतात्रेस, पो० गीतात्रेस (गोरखपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(के वहा के सुनने

ाग ३६

-

'तुम भेत कंडक्य

, इसकी

सफ्र तम

टिक्ट प(च

मार्गी कितन

ा थी इत कि नहीं

छोटी सी

वन्चीवे

इच्छा हु के माता

सरका

परंतु स

ही है।

18

स्वयं प्राहक वनिये और मित्रोंको वनाइये

'कल्य 'के अवतकके विशेषाङ्कोंमें सबसे अधिक विकनेवाला चाल वर्षका विशेषाङ्क

'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क'

'कल्याण'के अवतक कुल पैतीस विशेषाङ्क निकले हैं, जिनमें २४वें वर्षका 'हिंदु-संस्कृति, १,२५,००० छपा था, जो उस समयतकके विशेषाङ्कोंमें सबसे अधिक था। उसके बादके किया कारणोंसे कम संख्यामें छपने लगे। फिर ३४ वें वर्षका 'सं० देवीभागवताङ्क' १,२५,००० छपा। उसके गत वर्षका 'सं० योगवाशिष्ठाङ्क' १,३१,००० छापा गया, जो अब अमाप्य है। चाल वर्षका 'संक्षित्र पुराणाङ्क' उसी हिसाबसे १,३१,००० छापा गया; परंतु उसकी माँग इतनी अच्छी रही कि सब मिला हाथ विक गर्या और हजारों पुराने माहकोंको भी अङ्क न मिल सके। इसिलये कामकी भाग होनेपर भी २०,००० प्रतियोंका दूसरा संस्करण छापा गया है। इस प्रकार इस अङ्ककी एक लाल कि हजार प्रतियाँ छप गर्या, जो एक कीर्तिमान अङ्क है।

यह विशेषाङ्क सुप्रसिद्ध शिवपुराणके सारक्षपमें सरल हिंदी भाषामें बहुत ही सस्ता है। क्र भगवान् शिवकी बड़ी ही विचित्र मधुर लीलाओंका, भक्तवत्सलताका और उनके अवतारोंका त्यारे भक्तिके तत्त्वोंका बड़ा ही विशद और सर्वोपयोगी वर्णन है। कथाएँ वड़ी ही रोचक तथा प्रभावोताकों

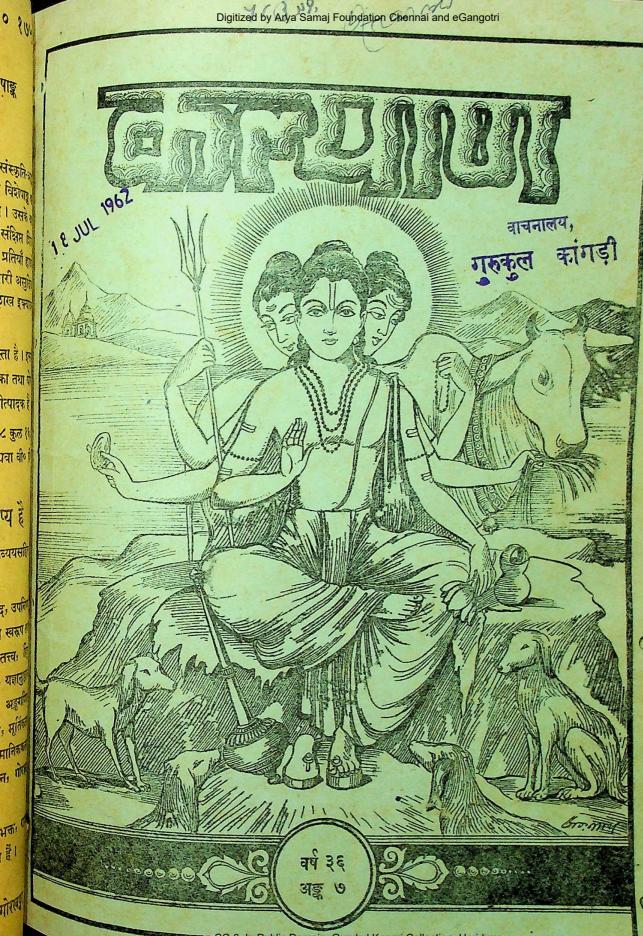
पृष्ठ-संख्या ७०४, चित्र 'सुन्दर बहुरंगे १७, दोरंगा १, सादे १२ तथा रेखा-चित्र १३८ कुर । जिन्हें छेना हो, वे वार्षिक मृत्य रु० ७.५० (डाकखर्चसहित) भेजकर प्राहक वन जायँ अथवा के द्वारा भेजनेकी आज्ञा हैं।

कल्याणके २४वें वर्षका विशेषाङ्क 'हिंदु-संस्कृति-अङ्क' अब भी प्राप है

पृष्ठ ९०४, लेख-संस्था ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मृत्य ६.५० डाकन्यपर्ण स्नाथ ही इसी वर्षका दूसरा तथा तीसरा अङ्क बिना मूह्य ।

इस अङ्कमें महान् हिंदू-संस्कृतिके प्रायः सभी विषयोंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें वेद, वर्ण महाभारत, रामायण तथा श्रीमद्भागवतकी सानुवाद सुक्तियोंके साथ-साथ हिंदू-संस्कृतिका सक्षा महत्त्व, हिंदू धर्म, वर्णाश्रम, दर्शन-परिचय, हिंदू-संस्कृतिकी व्यापकता, परलोकवाद, श्राद्ध-तक संस्कृतिमें त्याग और भोगका समन्वय, समाजरचना, ज्ञान, भक्ति, योग, मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र, वर्णि पीडिविद्यान, रामराज्यका स्वरूप, शिष्टाचार और सदाचार, आहार-विवेक, आयुर्वेद, विज्ञान, वर्णी कर्मविज्ञान, उपासनातत्त्व, तीर्थ-व्रत, पर्व-त्योहार, शिक्षा, विभिन्न सम्प्रदाय, स्थापत्यकला, मन्दिर, पृति शिख्य, चित्रकला, नाट्यकला, चौंसठ कलाएँ, गान्धर्वविद्या, वाद्ययन्त्र, क्रीडा, अस्त्र-शास्त्रादि, वैमाकिष् विविच्या काल-विज्ञान, ज्योतिविज्ञान, ज्योतिष, सामुद्धिक, नक्षत्र-विज्ञान, रज्ञ-विज्ञान, विव्यान के जीवरक्षा आदि विविध्य विषयोंपर वड़-वड़े विद्यानों तथा अनुभवी पुरुषोंके लेख हैं।

इसके अतिरिक्त भगवान्के अवतारोंके, देवताओंके, आदर्श ऋषि-महिषयोंके, परीपकारी भके तथा सत्युरुषोंके, आवार्य, महात्मा और भक्तोंके एवं आदर्श हिंदू-नारियोंके बहुत-से पवित्र विश्व विष्य विश्व व



पाङ्क

संस्कृ_{तिश} विशेषाहू । उसके

संक्षिप्त ि प्रतियाँ हा ारी असुहि ताख इका

ता है। ह का तथा है ोत्पादक है। ८ कुल 🏗

यवा वीः प्य है

व्ययसि

इ, उपनि स्वक्ष तत्त्वः । यशत्र अङ्ग्राहि

, मृति मानिक^ड नः ग्रे

भक्ता punte

गोर्व

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कुष्ण हरे कुष्ण कुष्ण कुष्ण हो हो। संस्करण—१,४८,००० (एक काख अदतालीस इजार)

विषय-सूची	कल्याण, सौर श्रावण २०१९, जुलाई १९६२
iru	चित्रमा ।
1919	१५-भारतीय साहित्यमें 'आर्य'-सम्बन्धी
१-दशरथकी गोदमें वालक राम [कविता]	
(गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी)१०२५ २-कल्याण ('शिय')	मान्यता (प्राध्यापक श्रीवद्रीप्रसादजी
२-कल्याण (पंश्वर)	पंचोली एम्० ए०, साहित्यरत) १०५३
३-दुःख-मुख (प्रेषक-श्रीशशिशेखर नागर) १०२७	१६-स्मरण और युद्ध [कहानी] (श्रीशिशः)
४-मैं मानव हूँ [कविता] (पं० श्रीस्रज-	शेखर नागर एम्० ए०) १०५१
चंदजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी) १०२८	१७-द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा [कविता](श्रीगणेश-
५-मनुष्यका कर्तव्य (ब्र॰ पूच्यपाद श्रोत्रिय	प्रसादजी 'मद्नेश') *** १०६१
ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी शर्माः	१८-शारीरिक रोग और मनोविकार
अनु ० – श्रीमुरेश एम ० भट०) १०२९	(श्रीकन्हैयालालजी लोढ़ा) 💛 १०६२
६-एक ही दो बने लीला कर रहे हैं [कविता] १०३०	१९-मानवताकी परिधि [कहानी] (श्रीरूप-
७-पतन या उत्थानमें मनुष्य स्वतन्त्र है	नारायणजी चतुर्वेदी) "१०६६
(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १०३१	२०-विश्वकल्याणका मूलाधार—आत्मीयताका
८—त्वं ब्रह्मासि (पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र) १०३५	विस्तार (श्रीअगरचंदजी नाहटा) ः १०६८
९-में प्रभुमें, प्रभु मुझमें [कविता] १०३९	२१-मृत्युके बाद-एक शास्त्रीय दृष्टि(साहित्य-
१०-मधुर १०४०	महोपाध्याय पं० श्रीजनार्दनजी मिश्र
११-(स्तारथ साँच' [कहानी] (श्री (चक्र') १०४२ १२-सची सहायता भौतिक नहीं, आध्यात्मिक	'पङ्कज' शास्त्री, एम्० ए०, व्या॰ सा॰
है! (डा०श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०	न्यायाचार्य, सांख्य-योग-वेदान्ताचार्य) * ' १०७३
ए०, पी-एच्० डी०) १०४५	२२-देश किथर जा रहा है ! (हनुमानप्रसाद
१३-मेहनतसे शान्ति (श्रीकृष्णवछभदासजी	पोद्दारका एक प्रवचन कुछ घटा-बढ़ाकर) १०८०
'साहित्याचार्य', 'साहित्यरत्त') '' १०४७	पाद्वारका एक प्रवचन कुछ पटा पड़ारर
१४-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्द-	२३-अनुनय [कविता] (प्रो० श्रीबाँकेबिहारी-
दासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्री-	जी झा, एम्० ए०, साहित्याचार्य) *** १०८१
गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव) १०४९	२४-पढ़ो, समझो और करो १०८४
——————————————————————————————————————	
चित्र-सूची	
१ —भगवान् दत्तात्रेय · · ·	••• наув
२- द शस्थकी गोदमें बालक र(म	(रेखाचित्र) १०११ (तिरंगा)
(""")	
THE STATE OF THE S	

वार्षिक मूल्य भारतमें ६० ७.५० विदेशमें ६० १०.०० (१५ शिलिंग) जय पात्रक रित चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय।। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय।। जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते।। साधारण भारतमें विदेशमें

सम्पादक—हतुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाङ गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री CC-0. In Public Romain Gurukulakangri Collection, Haridwar, गोरसपुर 16 71/1 1095

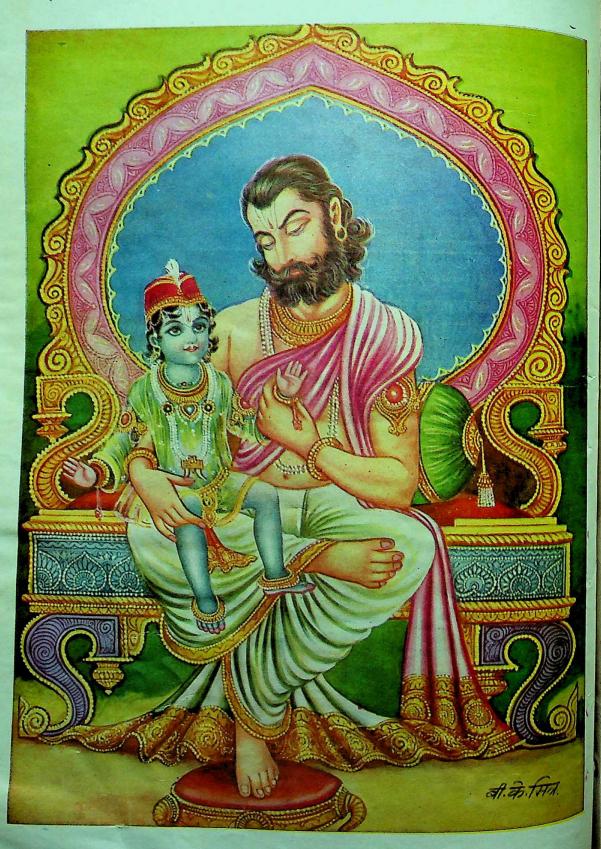
मुखपृष्ठ

धारण रतमें रवमें

गुरुकेटा कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कल्याण रह



CC-0. In Public **उत्तादाम की ruki द्र्यों** कु**ना कार्क**ti**राम** Haridwar



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्। ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भृतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात्॥

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर श्रावण २०१९, जुलाई १९६२

् संख्या ७ पूर्ण संख्या ४२८

दशरथकी गोदमें बालक राम

सोहत सहज सुहाये नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कि दैन॥
सुंदर सब अंगिन सिसु-भूषन राजत जनु सोभा आये लैन।
बड़ो लाभ, लालची लोभबस रहि गये लिख सुखमा बहु मैन॥
भोर भूप लिये गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन।
बालक रूप अनूप राम-छिब निवसित तुलसिदास उर-ऐन॥
—गोखामी वुलसीदासजी—गीतावली

The same of the sa

कल्याण

याद रक्खो—अहंकार ही सारे अनर्थोंका मूल है, अहंकारसे ही ममता तथा रागद्धेष उत्पन्न होते हैं। 'मैं' है तो 'मेरा' है, 'मेरा' है तो मेरा सुरिक्षत रहे और बढ़े. जो मेरा है उसमें देष। राग-देष ही काम-क्रोध-लोभ-मोहकी उत्पत्तिमें प्रधान हेतु हैं।

याद रक्खो—शरीरमें और नाममें 'अहं'-बुद्धि न हो तो शरीरके रहने या न रहनेमें सुख-दुःख क्यों होगा और निन्दा तथा स्तुतिमें सुख-दुःख होगा । निन्दा 'नाम'की होती है और प्रशंसा भी 'नाम'की । जब मनुष्य निन्दा और प्रशंसामें हानि-लाभ मानता है और दुःख-सुखकी अनुभूति करता है तो मानना चाहिये कि वह अहंकारसे अभिभूत है । अपने आत्मखरूपसे विश्वत है ।

याद रक्यो-इस अहंकारके कारण ही बुद्धिमान्-वाणीसे आत्माका तत्त्व निरूपण करनेवाले बुद्धिमान् भी मूर्व हो जाते हैं और अपने-अपने मत-वादके लिये लड़ने-झगड़ने लगते हैं । इस अहंकारजनित अज्ञानके कारण ही स्थूल शरीरकी पूजा और नामकी प्रशंसा चाहते हैं । लोग मेरा चित्र या मूर्ति रखकर पूजा-सम्मान करें । 'मेरा नाम इतिहासमें अमर रहे'---ऐसी आकांक्षा आत्मामें तो होती ही नहीं । यह सारी अज्ञानकी क्रियाएँ होती हैं अहंकारके कारण ही । बुद्धिमान् मनुष्य भी अपनी प्रशंसात्मक जीवनी लिखना-लिखाना चाहता है, बुद्धिमान् मनुष्य भी गुण-प्रशंसाके हेतुभूत अभिनन्दनादि स्वीकार करता है, बुद्धिमान् मनुष्य भी लोकोपकारके नामपर अपने भावोंका प्रचार करता है और बुद्धिमान् मनुष्य भी धन कमाकर उसके द्वारा परोपकारके बहाने नाम-आरामकी आकांक्षा करता है । यह यथार्थ बुद्धिके लक्षण नहीं हैं । तमसा-च्छन निपरीतदर्शी बुद्रिका ही यह खरूप है । इस बुद्रिवाला मनुष्य वास्तवमें बुद्रिमान् नहीं है । आत्म-दर्शनकी दृष्टिसे यह वास्तवमें मूर्खता ही है।

यह सत्र अहंकारका ही अवश्यम्भावी दुष्पिणाम याद रक्खों—इस अहंकारका दमन हुए विना क न तो त्याग होगा, न शक्ति मिलेगी और न मूर्जा मिटेगी। अहंकारके नाशके लिये खास तीन उपाय हैं

है।

माँगः

होती

हम ।

लोलु

वह द

जाते

हमारी

नहीं

किसी

गये ह

समाप्त

इसका

पराधी

आ ज

वस्तुत

सभीकं

करें।

सुलक

सुवी ह

जाता

इनको

ये

मेमरे

जीवना

आशा

मिलेगा

- (१) अपने तथा जगत्के स्वरूपपर विचार के अपनी दीनता, असमर्थता और असहायताका पित्र प्राप्त करना, उसे स्वीकार करना और सर्वशिक्त सर्वसमर्थ सर्वज्ञ तथा अहैतुक सुहृद् भगवानके शाला होकर उनसे नित्य संयोग कर लेना । अपना ह दैन्य ही अहंका नाश करनेमें समर्थ है और इसी के से समर्थ भगवान्की प्रपत्ति प्राप्त होती है।
- (२) विवेक-विचारपूर्वक शरीर तथा नालें अहंकारको निकालकर सबके द्रष्टा आत्मामें उसे हि करना । मैं शरीर नहीं हूँ, नाम नहीं हूँ । इन हलें सारी क्रियाओंको हर समय— जाप्रत्-स्वम-सुपुतिमें के वाला निरपेक्ष द्रष्टा हूँ । शरीर और नामके हानिक मेरा कोई हानि-लाभ नहीं होता । और यह द्रष्टा है । वास्तवमें एक परमात्मा अतिरिक्त और कुल भी न है, न होता है ।
- (३) भगवान् ही अपने-आप अपने ही हैं लिये अपने ही संकरपसे सृष्टिके तथा सृष्टिके हैं कार्यों के रूपमें अभिव्यक्त हैं । वही आप नित्य के आप अपनेमें लीला कर रहे हैं । सृजन-संहार, अर्थ प्रभी उन लीलामयकी लीला है । यहाँ दें प्रजन संहार, अर्थ सभी उन लीलामयकी लीला है । यहाँ दें प्रजन संहार, अर्थ प्रभी उन लीलामयकी लीला है । यहाँ दें प्रजन संहार, अर्थ प्रभी उन लीलामय और उनकी लीला । लीलामय लीलाम अर्थ हैं क्योंकि लीलामय ही लीलाम लीलाम अर्थ हैं क्योंकि लीलामय ही लीलाम हैं हैं , मैं उनकी लीलाका उन्हींका अपनेसे ही कि हैं । हुआ एक खिलौना हूँ । वास्तवमें वे ही वे हैं ।

याद रक्खो—इन तीनोंमेंसे किसी एक्सो अर्थ अहंकारका नाश करनेका प्रयत करना वर्षि अहंकार ही बन्धन है, अहंकारका नाश ही मुर्कि

'शिव'

दुःख-सुख

[एक महात्माका प्रसाद] (प्रेषक—श्रीशशिशेखर नागर)

जानते हुए भी हम नहीं कर पाते हैं, यही समस्या है। इसके लिये पहले लक्ष्यसे परिचित होकर अपनी मँगको पहचानना आवश्यक है। माँग वह है जिसकी पूर्ति होती है। दायित्वकी पूर्तिमें ही उसकी पूर्ति निहित है। हम अपने दायित्वको क्यों नहीं पूरा कर पाते ? सुखकी लेलुपतामें मानव जवतक आवद्ध रहता है, तवतक वह दुखी रहता है। सुख-दुःख विधानके अनुसार आते-जाते हैं। अतः सिद्ध होता है कि इनका आना-जाना हमारी इच्छापर निर्भर नहीं है। सुख चाहनेपर भी नहीं मिलता तथा रोकनेपर भी नहीं रुकता। विधानसे किसीका अनिष्ट नहीं होता। आये हुए दुःखका तथा गये हुए सुखका आदर करें।

सुखकी वास्तविकताका ज्ञान होनेपर उसकी आशा समाप्त हो जाती है। संकल्प-पूर्तिको सुख माना जाता है। इसका सदैव रहना असम्भव है। संकल्प-पूर्ति-कालमें पाधीनता रहती है और उसके पश्चात् जीवनमें जडता आ जाती है। सुखकालमें भी सुख हितकर नहीं है। क्स्ताः सुख हमें उदार बनानेके लिये आता है। सभीको अपनाकर हम मिले सुखको सहजभावसे वितरित करें। दुखीको सुखी करें। यदि उदारता नहीं है तो सुखना सदुपयोग नहीं कर सकते। यदि केवल आप ही सुखी होना चाहते हैं तो वहींसे दुःखका आरम्भ हो जाता है। सुख-दुःख अपने आप आते-जाते रहते हैं। जनको साधक साधन-सामग्री मानता है।

ये दोनों अवस्थाएँ हैं, जीवन नहीं । उदारता और प्रेममें जीवनकी समस्याओंका हल है । उदारता तभी जीवनमें आती है जब हम सबको प्यार करें । सुखकी आशा न करें । सुख कर्तन्य-पालन तथा प्रमुके विधानसे मिल्रा। । संवर्ष तभी जीवनमें आता है, जब हम सुखकी

आशा करते हैं । सुखर्की आशा छोड़ देनेसे दुःखका भय भी नहीं रहता । सुखर्की अनुभूतिसे पूर्व दुःख ही रहता है । भूखकी व्यथासे ही भोजनका सुख उत्पन्न होता है । दुःखसे ही सुखकी दासताका नाश होता है । सुख-दुःखका वन्धन टूटते ही चिन्मय जीवनसे एकता होती है । प्रेमकी जागृति होती है । चाहरहित जीवनमें प्रेम खतः जाग्रत् होता है । जहाँ क्षोभ तथा क्रोध है, वहाँ सहज स्नेह नहीं आ सकता । जीवनका सुनहरा भाग वह है—जब वह होता है जो प्रभु चाहते हैं । इन्द्रियोंकी दासता समाप्त हो जाती है। हमें विना मनका जीवन चाहिये जिससे योग, बोध तथा प्रेमकी प्राप्ति होती है । हे प्यारे ! तेरी इच्छा पूरी हो । हम दूसरोंके काम आयें, और निष्काम हों, एक ही बात तीन तरहसे विभिन्न दृष्टियोंसे कही जाती है ।

क्या हम बेमनके हो सकते हैं ? जब हमारा संकल्प पूरा होता है, इसका परिणाम वही होता है जो उसकी उत्पत्तिसे पहलेकी स्थित होती है । करनेका आरम्भ विना देहाभिमानके नहीं होता । इसके रहते हुए अभाव, जडता तथा पराधीनतासे मानव नहीं बच सकता । करनेका अर्थ है कि हम पराधीन न बनें, किंतु यदि करना ही पड़े तो वही करें जिससे कि वह साधन बने । वह है कि दूसरेके हितके लिये करें । अपने लिये कुछ न चाहें । इससे सत्यकी जिज्ञासा जाप्रत् होगी । प्रियका चिन्तन स्वतः उद्बुद्ध होता है । करनेंमें और चिन्तनमें भेद है । जो सदैव अपना है उसीका चिन्तन इष्ट है । सही काम करनेसे रागकी निवृत्ति होती है । संयम स्वभावसे ही जीवनमें आ जाता है । वस्तु, योग्यता, सामर्थ्यरूपसे जो प्राप्त है, उससे दूसरोंका हित करें । त्याग—प्रेमसे अपना हित करें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विना क

म्युनाहे पाय है चार के

र्वशक्तिः शाणात सपना ह

इसी हैं ा नालें उसे लि

इन सं

हानि-सन् द्रष्टा र भारतसन

前時時間

, उद्भी

कों क

अफी

कि है

१०२८

समान

पूर्वसंस

स्रभाव

प्रकारे

लैकिव

सरूप

पशु-जी

स्रभाव

ह्मपसे

है, वि

है।ए

नीति,

रहता है

पामर_

सुख प्रा

अन्तः क

ल्ह्पव

षुष वि

अविहित

वेष्टा क

जवतक

कर्म तथ

वे सालि

कातमें

1

सेवा दूसरेके लिये तथा प्रियका चिन्तन अपने लिये ही साधन है। प्रियके चिन्तनसे रसकी अभिन्यक्ति होती है। जीवन वही है जहाँ प्रियकी उत्कट लालसा है। जो सदेव अपना है। उसीका चिन्तन वाञ्छनीय है।

आस्तिकके जीवनमें इन प्रश्नोंका कोई स्थान नहीं है कि वे कैसे हैं; कहाँ हैं, क्या करते हैं। प्रियता रहते नीरसता नहीं आती। आत्मीयताको सजीव बनानेके लिये उनसे कुछ नहीं चाहना, उन्हींका होकर रहना तथा उन्हींकी सेवा करना होगा। राधा-कृष्ण तथा सीता-राममें राधा कृष्णकी प्रियता है तथा सीता रामकी प्रियता है। क्या प्रियता प्रियसे अलग रह सकती है! क्या धूप और सूर्य अलग-अलग हैं! इसलिये दो होते हुए भी एक हैं। यह मार्ग प्रियताको लेकर चलता है। अपनेको जलकर आगे बढ़ता है।

जो स्थिति परिश्रमसाध्य है वह सहज नहीं हो सकती। मन, इन्द्रियाँ, शरीर जड हैं। छोग कहते हैं हमारा मन दुखी होता है। मन न सुखी होता है और न दुखी, अहंकी प्रतिक्रिया मनके द्वारा होती है। जबतक मन अहंमें छीन नहीं होता, तबतक सुवन्दुः हो को बराबर मनको विचित्रित करते रहेंगे, तबतक कि शुद्धि भी नहीं हो सकती । निस्संगतासे अहं शुद्ध हो प्रेमके योग्य बनता है । अपनी असमर्थताको स्वीका करके हम समर्थके साथ नाता जोड़ते हैं । यही कि अहंका नारा । ईश्वरके अस्तित्वमें श्रद्धा होते ही कि आहंका नारा । ईश्वरके अस्तित्वमें श्रद्धा होते ही कि आहंका जाता है ।

संसारका प्रत्येक आस्तिक धर्म तीन वातें मानता है-

- (१) ईश्वर एक है।
- (२) वह सर्वसमर्थ है।
- (३) वह सदैव सबका है।

इतना मानकर चलनेसे मनुष्य पूर्ण निष्काम होगा बिना निष्काम हुए हम शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते सत्सङ्ग और विवेकके द्वारा हम निष्काम हो सकते हैं। विवेक राग और आसक्तिसे हमें निवृत्त करेगा। प्रेम हो उदार बनाकर ईश्वरीय प्रेमके योग्य बनाकर प्रिक प्रेमी बनायेगा। यहीं समस्त सुख-दुः खोंका पर्यनम्म होता है।

में मानव हूँ

[रचियता—पं० श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)]

में ř, वस, मानव अच्छा तो अमरोंको जानो, पिशाचोंको बुरा पहचानो, रहने दो, मैं तो को मानव देव न दानव मैं ř, मानव कहो कहो पका, कचा, कहो लुचा, कहो न त्रिगुणसमन्वित मनुका वचा सूरज प्रभा नव हूँ ॥ चंद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मनुष्यका कर्तव्य

गचनात्व, गारुकृत कांगड़ी िलेखक-व्र॰ पूच्यपाद श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी श्रीमाँ (अनुवादक-श्रीसुरेश एम० भट०)

सभी मनुष्योंके अन्त:करणकी जाग्रत्-अवस्था एक मान नहीं है । चित्तकी जाप्रत्-अवस्थाके हेतुभूत र्कृतंस्कार तथा वर्तमान पुरुषार्थके आधारपर मनुष्य-क्षमाव सार्त्विक, राजस और तामस—इन तीनों गुणोंके प्रकारोंसे व्याप्त हैं।

तामस खभावयुक्त मनुष्य लोकव्यवहारकी नीति, बैकिक कर्तव्य, सत्रास्त्र, शास्त्रीय कर्तव्य और आत्म-ब्रह्म आदिसे अनिमज्ञ रहता है । उसका मनुष्य-जीवन षुजीवनसे कुछ विशेषता नहीं रखता | राजस समावयुक्त मनुष्य लौकिक कर्तव्यको और न्यूनाधिक-रूपसे शास्त्र तथा सकाम शास्त्रीय कर्तव्यको भी समझता है, किंतु सत्शास्त्र और आत्मखरूपसे वह अनभिज्ञ रहता है। एवं सात्त्विक स्वभावयुक्त मनुष्य छौकिक व्यवहारकी नीति, खकर्तव्य और शास्त्र तथा सत्शास्त्र आदिसे अभिज्ञ ह्ता है। उसको केवल आत्मस्वरूपका ही ज्ञान नहीं होता।

राजस और तामस स्वभावयुक्त मनुष्यकी गणना पामर—विषयी मनुष्योंमें भी की जा सकती है। उनमें सुख प्राप्त करनेकी तो बड़ी इच्छा होती है, किंतु उनका अतःकरण अल्पविकसित होनेके कारण वे यथार्थ सुखके सहपको समझ नहीं पाते । इसीलिये वे व्यावहारिक पुष किंवा ऐहिक सुख अथवा सुखाभासको ही विहित-अविहित किसी भी प्रकारसे प्राप्त करनेकी इच्छा और वैद्य करते हैं। ऐसे अविवेकप्रधान अन्तः करणवाले मनुष्य जनतक चित्तमें स्थित मलविक्षेपादि दोषोंका निष्काम-की तया उपासना आदिसे नाश नहीं कर लेते, तबतक वे सालिक भाव किंवा यथार्थ मुमुक्षुभावको प्राप्त कातेमें असमर्थ रहते हैं।

सालिक स्वभावयुक्त मनुष्यके चित्तमें विवेक होनेके

कारण वह नित्यानित्य वस्तुके खरूपको समझता है। उसका अन्त:करण तथा इन्द्रियाँ उचित प्रवृत्तिमें लगे रहनेके कारण, वह नित्य सुखस्क्ष्प आत्मतत्त्वका अनुभव करनेके छिये शुद्ध प्रयत्नका सेवन करनेमें समर्थ होता है और इसीलिये वह पुरुष तत्त्वविद्याका अधिकारी है।

सारिवक खभावयुक्त मनुष्योंमें भी सभीका चित्त-विकास एक-सा न होकर न्यूनाधिक होता है । आत्म-खरूपका अज्ञान होनेके कारण उसके सम्बन्धमें तथा उसके साधनादिरूप अन्यान्य विषयोंमें भी मनुष्यको न्यूनाधिक संशय-विपर्यय रहता है । आत्मखरूपमें संशय, विपर्थय और अज्ञान—ये तीन मोक्षप्राप्तिमें प्रतिबन्धक होनेके कारण विष्करूप हैं। अतएव इन तीनोंका नाश करनेके छिये साधकको श्रवण, मनन और निदिध्यासनका अनुष्ठान करना चाहिये।

आत्मखरूपका प्रतिपादन करनेत्राले उपनिषद् आदि सत्शास्त्रोंका एकाप्रचित्तसे सत्पुरुपोंके द्वारा श्रवण करनेसे आत्मस्वरूपादिका परोक्षज्ञान होता है और सत्तशास्त्रोंके मुख्य प्रतिपाद्य विषयका ज्ञान होता है। श्रवण करनेके वाद एकान्तमें श्रवणके अर्थका मनन करना चाहिये। मनन करनेसे आत्मा, ईश्वर, मोक्ष, मोक्षसाधन और ज्ञानसाधनके निर्णयरूप प्रमेयके वारेमें जो संशय रहता है, वह दूर हो जाता है | मनन करनेसे जब समस्त संशयोंका नाश हो जाता है, तभी चित्तवृत्तिको आत्मखरूपमें स्थित करनेके लिये निदिध्यासनकी प्रवृत्ति-का आरम्भ होता है।

संशय हलाहल विषरूप है। वह जन्नतक साधकके चित्तमें प्रकट किंवा अप्रकटरूपसे विद्यमान रहता है, तबतक उससे ठीक ठिकानेसे निदिध्यासन नहीं हो CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६

ख-दु:खेरे कि चिक युद्ध होता

स्वीका यही ।

ही अ

ाता है_

म होगा। सकते।

कते हैं। प्रेम हो प्रियन

लिये

खरू

इसके

और

प्रमा

है।

फिर

तीव,

इसक

बहुत-

वास्त

श्रद्धा-

कमीव

इसीसे

तत्परत

(हस्यः अच्छी

यह स

भी सा

सागर

संसारस

मिल ह

ल्य

अनुसा

तभी ।

प्राप्त ह

सकता । इसीलिये विवेकसम्पन्न साधकको चाहिये कि वह यथायोग्य मननके द्वारा सम्पूर्ण संशयोंका नाश करे।

देह तथा जगत्के प्राणिपदार्थोंके प्रति मनुष्यकी जो ममता रहती है, वही अनन्त अनर्थोंको उत्पन्न करती है। वह ममता साधारण अभ्याससे निवृत्त नहीं हो सकती। दीर्घकालतक नित्य आदरपूर्वक चित्तवृत्तिको आत्माकार करनेका प्रयत्न करनेपर ही ममताकी निवृत्ति होती है। ममताकी निवृत्ति होनेपर चित्त सृक्ष्म तथा निर्मल हो जाता है, इससे साधक सर्वान्तरतम-सृक्ष्मतम-आत्मखरूपका अनुभव करके कृतार्थ होता है। तृष्णाका अशेष त्याग होनेपर जब साधकको करामलकवत् तत्त्वानुभव होता है, तब उसके चित्तमें सब प्रकारके दुःखोंका अभाव, ब्रह्मानुभवसे समस्त भोगोंकी युगपत् प्राप्तिका अनुभव तथा कृतार्थता आदिका स्फुरण होता है और शान्ति-तृप्तिका अनुभव होता है।

साधकको जबतक ऐसा अनुभव न हो, तबतक यथाधिकार, दृढ आग्रहसे खकर्तव्यका पालन करना चाहिये। सर्वात्मभावरूप प्राप्तव्य स्थितिके खरूपको आप्त-पुरुषोंके द्वारा यथार्थ रीतिसे समझकर उसे प्राप्त करनेके लिये सोत्साह दृढ प्रयत्नका आरम्भ करना उचित है। प्रमाद, आलस्य तथा इन्द्रियोंकी निषिद्ध और उन्मत्त प्रवृत्ति—इन अभ्यासके विरोधी सभी दोषोंको हिई रूपसे दूर करना चाहिये।

प्रत्येक विवेकी मनुष्यको अपने चित्तमें हैं। दोषोंको सावधानीसे दूर करना चाहिये तथा धैर्य हुक विवेक पुरस्सर अपने चित्तका विकास करके उत्तोह प्राप्तव्यका सामीप्य-सम्पादन करना चाहिये।

निषिद्ध प्रवृत्तियोंका अवरोध करके पशुसे कृ होना, अन्तिम प्राप्तव्यके स्वरूपको समझकर कृष्ण साधक होना, देवी-सम्पत्तिकी प्राप्ति होनेपर देहामिना हिथिल करके साधकसे देव होना, देवी सम्पत्ति सुस्थिरताद्वारा अन्तः करणमं शुद्ध-सात्तिक द्रव्योका हं करके तथा देहाभिमानकी विशेष निवृत्ति करके हं ईश्वर होना, तथा देहाभिमानकी अतिशिष्ठ कर विचत्तविको सर्वाधिष्ठान परमात्माके अभिमुख करके हं परमात्मरूप-ब्रह्मरूप हो जाना । इस तरह उत्ती चित्तविकास करनेसे ही साधक कृतार्थ होता । अन्यथा नहीं । अतएव प्रत्येक विवेकसम्पन्न साम्ब अपने वास्तविक हिताहितका विचार करके, अहिं प्रवृत्तियोंसे दूर रहकर हितकर प्रवृत्तियोंमें ही ही एवं प्रवृत्तियोंसे दूर रहकर हितकर प्रवृत्तियोंमें ही ही हितकर प्रवृत्तियोंमें ही ही हितकर प्रवृत्तियों ही ही हितकर प्रवृत्तियों ही ही ही हितकर प्रवृत्तियों ही ही हितकर प्रवृत्तियों ही ही ही हितकर प्रवृत्तियों ही ही हितकर प्रवृत्तियों ही ही हित्ति हित्ति हितकर प्रवृत्तियों ही ही हित्ति हितकर प्रवृत्तियों ही हित्ति हित्ति हित्ति हित्ति हित्ति ही हित्ति हित्ति ही हित्ति हित्ति हित्ति हित्ति ही हित्ति हित्ति हित्ति हित्ति हित्ति ही हित्ति हित्ति हित्ति हित्ति हित्ति ही हित्ति हित्त

एक ही दो बने लीला कर रहे हैं

कर दिया प्रभुने मुझे निहाल । हटा आवरण, कटा जंजाल ॥ दीखते अनावरण नँदलाल । बजाते मुरली मधुर रसाल ॥ सदा सर्वत्र सभीमें इयाम । विविध लीलाकरते अभिराम ॥ खेलते अपनेमें अविराम । भरे होठों मुसकान ललाम ॥ वनाकर विविध वेष औ साज । साथ ले तद् अनुकूल समाज ॥ गान गाते ही उठते गाज । रचाते कभी मिटाते राज ॥ नित्य रसक्षप रसिक-सिरमौर । एक ही तत्त्व न कोई और ॥ वहाते रसधारा सब ठौर । युगल मनमोहन इयामल-गौर ॥ सर्वपर सर्व सर्व-अधिराज । एक ही, दो बन, रहे विराज ॥ देख मैं, महाभाव रसराज । हो गया सफल, मिटे सब काज ॥



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पतन या उत्थानमें मनुष्य स्वतन्त्र है

(लेखक--श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मन्ष्य सम्पूर्ण सांसारिक दुःखों और दोषोंसे सदाके हिये सर्वया सम्बन्धरहित होकर परमानन्द और परमशान्ति-ब्रह्म नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाय---इसके लिये गीतादि शास्त्रोंमें बहुतसे सायन बताये गये हैं और यह भी कहा गया है कि उस परम पदस्वरूप प्रमात्माकी प्राप्ति सुगम होनेके कारण शीव्र हो सकती है। यह बात विवेक-विचारसे समझमें आती है। किंतु िं भी कार्यरूपमें न आनेके कारण कठिनता प्रतीत होती है, जिससे निराशा-सी हो जाती है और साधनकी गति तीव, संतोषजनक और निरन्तर एक-सी नहीं रहती। इसका कारण क्या है ? और उपाय क्या है ?—इस प्रकार ब्हृत-से साधक प्रश्न किया करते हैं । इसका उत्तर यह है कि शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंके तत्त्व-रहस्यको वास्तवमें यथार्थ न समझनेके कारण साध्य और साधनपर श्रद्धा-विस्वास पूर्णतया नहीं होता । इस श्रद्धा-विस्वासकी कमीके कारण ही साधनपर रुचि कम हो जाती है। इसीसे निराशा-सी उत्पन्न होकर साधनके छिये निरन्तर तत्पता नहीं होती ।

इसके लिये साधकको प्रथम तो साध्य वस्तुके तत्त्व-हिसको सत्सङ्ग और सत्-शास्त्रोंके द्वारा विवेकपूर्वक अछी तरह समझकर धारण करना चाहिये और दूसरे यह समझना चाहिये कि उस परमात्मासे बढ़कर अन्य कुछ भी साध्य वस्तु नहीं है। उसकी प्राप्ति हुए विना इस दुःख-सागर संसारसे जीवका छुटकारा नहीं हो सकता और संसारसे छुटकारा हुए विना जीवको नित्य परमशान्ति कि ही नहीं सकती। इसिटिये उस साध्यखरूप परमात्माको लक्ष्य वनाकर शास्त्रनिर्दिष्ट मार्गोमेंसे किसी एक मार्गके असार सावधानी और तत्परतापूर्वक चलना चाहिये। प्राप्त कर सकता है। मान लीजिये एक व्यक्ति कलकत्तेसे काशी जाना चाहता है और वहाँतककी सड़क साफ है तथा साधन भी मोटरगाड़ीका उसके पास है | मोटरके अगले भागमें दो बिजलीकी लाइड भी लगी हुई है, जो दो फर्लांगतक वरावर आगे से आगे रास्ता दिखाती रहती है | किंतु घोर अन्यकारमयी रात्रिका समय है और सड़कके अगल-बगल दोनों ओर गढ़े और जंगल हैं तथा वह स्वयं ही मोटर-चालक है । अतः वह सावधानीके साथ तत्परतासे मोटरको चलाये तो शीघ्र ही गन्तव्यस्थानपर पहुँच सकता है; किंतु वह मदिरा पीकर प्रमत्त हो असावधानीसे चलाये तो मार्गके अगल-बगलके गड़ों और जंगलमें गिरकर महान् खतरेमें पड़ जाता है ।

यह एक दृष्टान्त है । इसका अभिप्राय यह समझना चाहिये कि यहाँ साधनविषयमें प्रमात्माका प्रमचाम ही काशी है । इस संसारसे निकलकर परमात्माको प्राप्त करनेका इच्छुक मनुष्य ही काशी जानेकी इच्छावाला व्यक्ति है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग ही निष्कण्टक, खच्छ और सुगम सड़क (मार्ग) है । मनुष्य-शरीर ही मोटरगाड़ी है । उसमें आगे-से-आगे बराबर रास्ता दिख्छानेवाले विवेक और विचार ही मोटरमें लगी हुई दो लाइट हैं । अज्ञानमयी मोहमाया ही घोर अन्यकारमयी रात्रि है। दुर्गुण और दुराचार ही मार्गके दोनों ओरके गढ़े और जंगल हैं। खयं साधक ही मोटरचालक है। सावधानीपूर्वक तेजीके साथ निरन्तर साधन करनेसे शीघ्र परमात्माकी प्राप्तिका होना ही सावधानीके तत्परतासे सङ्कपर मोटर चलानेसे शीघ्र गन्तव्यस्थानपर पहुँच जाना है । प्रमादपूर्वक मोहमें पड़ना ही मदिरा पीकर प्रमत्त होना है और तज्जनित असावधानीके कारण दुर्गुण-दुराचारमें पड़ना ही गढ़े और जंगलमें गिरकर महान् खतरेमें पड़ जाना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६

में हिं

ते उत्तोत शुसे मूल

र मुख्यं हाभिमातः तो सम्पत्तिः

योंका संक करके के थिल करे

त्ते ईस उत्तीः होता है

सायक

ही संब

HE

को

इसलिये साधक सदा सावधान, जागरूक और अपने साधनमें तत्पर रहे; साधनमें शिथिलता कभी भी न आने दे । सर्वप्रथम तो साधकको अपने लिये यह निर्णय करना चाहिये कि गीतादि शास्त्रोंमें निर्दिष्ट कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग—इन तीनोंमेंसे मेरे छिये कौन-सा साधन (मार्ग) ठीक है । उस निर्णय करनेका तरीका यह है कि उन तीनों मार्गीमेंसे जो मार्ग अपनी शक्ति, बुद्धि और समझके अनुकूल हो, जिसमें अपनी श्रद्धा, विस्थास और रुचि हो, उसीको अपने लिये निश्चयपूर्वक चुन लेना चाहिये; क्योंकि वही उसके लिये सबसे बढ़कर सुगम, उत्तम और लाभदायक मार्ग है। जबतक मनुष्य गन्तव्यस्थानका और मार्गका निर्णय नहीं कर लेता. तबतक वह वहाँ जा ही नहीं सकता । मार्गका निर्णय कर लेनेके पश्चात् वह उस मार्गपर चलना शुरू कर दे और मार्गपर चलते समय ऐसी सावधानी रखे कि कहीं मार्गको छोड़कर विपरीत मार्ग यानी कुमार्गरूप गढ़ेमें न चला जाय । असावधानीमें हेतु हैं—संशय, भ्रम, अज्ञान, आसक्ति,प्रमाद और आलस्य। ये ही मनुष्यको सुखका प्रलोभन देकर मोहित करते हुए पतनके गर्तमें डाल देते हैं। इसलिये इन सबका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि इनके त्यागमें मनुष्य खतन्त्र है ।

मनुष्य जिस कर्मको बुद्धिद्वारा बुरा समझता है, उसे करना भी नहीं चाहता, फिर भी छोड़ नहीं पाता और जिस कार्यको अच्छा समझता है, उसे करना चाहता है फिर भी उसे कर नहीं पाता । इस प्रकार त्यागनेयोग्यको न त्यागना और करने योग्यको न करना—यही प्रमाद है। इस प्रमादमें मनुष्यका अज्ञान ही हेतु है। किंतु मूर्खतावरा मनुष्य इसमें अपने प्रारब्धको, दूसरे व्यक्तियों-को, परिस्थितिको (घटनाको), अपने पूर्वके कर्मीको, समयको अथवा कोई-कोई तो ईश्वरको भी कारण मान लेता है; किंतु इन सबमें कोई भी कारण नहीं है। यह सब उसकी बेसमझी है। वस्तुतः ही अपना कारण है; क्योंकि न करने योग्य

क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष आदि दुर्गुण, 🐯 ह चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि दुराचार, खेटक नशा आदि दुर्व्यसन और व्यर्थ कर्मके त्यागमें त्या योग्य भक्ति, ज्ञान, योग, वैराग्य, सद्गुण-सदाचार के सम्पादनमें भी यह सर्वथा स्वतन्त्र है। किंतु 🔊 दूसरोंके मत्थे दोष मँढ़कर अपनी सफाई देता है, इ इसकी बुरी आदत है। कोई-कोई साधक कहा कि प्रमात्माकी प्राप्तिविषयक योग, भक्ति, ज्ञान, के सद्गुण-सदाचार आदि जितने साधन हैं, वे भी सक आते हैं, उनको मैं हितकर भी मानता हूँ, अब्रक्ति भी है, रुचि भी है, पर कर नहीं पाता। किंतु की विचार किया जाय तो वास्तवमें उसने साधनको हितकर समझा ही नहीं । हितकर न समझनेमें क श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही है । उस कमीके 🔻 ही साधनमें तत्परता और उत्साह नहीं होता । 🕫 गहराईसे विचार करना चाहिये।

जब हम यह समझ लेते हैं कि इस मिठाईमें मिला हुआ है, तब भूखों मरनेपर भी उस 🕅 खाना नहीं चाहते । इसी प्रकार जब हम उस प्रम अनर्थकारक मान छेंगे तो फिर नहीं करनेपोय क कभी नहीं करें गे और करनेयोग्य कर्मको अवस्य बी भगवान्की प्राप्तिको परम हितकर मान लेनेपर ^{और ह} विना हमारी बड़ी भारी हानि है—यह समझ लेनेग उसके साधनमें किसी प्रकारकी त्रुटि या बाधा पर्व तो उसको हम कैसे सहन कर सकेंगे। उसके हमें घोर पश्चात्ताप और दुःख होगा । प्रापणीय ब लिये विरह्न्याकुलता और छटपटाह्ट होगी। प्राप्त किये बिना हम रह नहीं सकेंगे। यदि ऐस होता है तो इसमें श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही हैं। उसीके कारण रुचिकी कमी है और हिंचकी साधनमें उत्साह और तत्परता नहीं होती त्याप्त न करने योग्य काम, साधनकी शिथिलतामें मनुष्य खर्य ही हेती CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

होती

त्याज्य जिसमे

मुझे :

अर्जुन अनि

भी वर पापका

和 महा

नेहत

और इ

कोई व्यक्ति प्रारब्ध, परिस्थिति (घटना), देश, काल, इदि, शे कर्म या ईस्यर आदि कोई भी नहीं ।

ईखर, महापुरुष और शास्त्र आदि तो साधककी मद्द करनेवाले हैं । उनसे तो मनुष्य चाहे जितनी मदद हे सकता है । उनसे मदद लेनेमें भी मनुष्य स्वतन्त्र है। परंतु मनुष्य अज्ञानसे ईश्वरको पाप करानेवाला मान लेता है और प्रमाणमें यह रलोक भी कहता है—

जानामि धर्म न च मे प्रवृत्ति-र्जानाम्यधर्मे न च मे निवृत्तिः। केनापि देवेन हदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽसि तथा करोमि॥ (पाण्डवगीता)

भैं धर्मको जानता हूँ, पर मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्मको भी जानता हूँ, पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती; क्योंिक अपने हृदयमें स्थित कोई देव जिस प्रकार मुझे प्रेरित और नियुक्त करता है, वैसे ही मैं करता हूँ।

किंतु यह सिद्धान्त दुर्योधनका है, जो सर्वथा लाज्य है। पर सबसे उच्चकोटिका सिद्धान्त गीताका है, जिसमें साक्षात् भगवान्के वचन हैं। पाप होनेके विषयमें अर्जुनने भगवान्से पूछा था---

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। ^{अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥} (गीता ३। ३६)

'श्रीकृष्ण । तो फिर यह मनुष्य खयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है ?'

इसके उत्तरमें भगवान्ने यह कहा— कोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महारानो महापाप्मा विद्वयेनमिह वैरिणम्॥ 'जोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह क्रित खानेवाळा अर्थात् भोगोंसे कभी नहीं अघानेवाळा

भगवान्ने कामकी उत्पत्ति रजोगुणसे बतलायी और रजोगुण रागखरूप ही है। भगवान् अर्जुनसे पहले भी कह चुके हैं-

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते । सङ्गात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥ (गीता २।६२)

'विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुपकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विन्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर दिया गया कि आसक्तिसे कामकी और कामसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है। सारे अन्योंका मूल आसक्ति ही है। इसलिये मनुष्यको स्त्री, पुत्र, धन, मकान, कुटुम्त्र, शिष्य, मठ-आश्रम, मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, पद, शरीर आदि किसी भी प्राणी, पदार्थ और किया आदिमें भूलकर भी किंचिन्मात्र भी कभी आसक्ति नहीं करनी चाहिये। इस आसक्तिका कारण है अहंता, ममता और अहंता-ममताका कारण है अज्ञान (अविद्या)। योगदर्शनमें बतलाया गया है-

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्। (योग०२।३-४)

'अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंता), आसक्ति, द्वेष और मरण-भय--ये पाँच क्लेश हैं। इन पाँचों क्लेशोंमें बादवाले चारोंका कारण अविद्या है। अर्थात् अत्रिद्यासे ही अहंता और आसक्ति आदिकी उत्पत्ति होती है।

आसक्ति है अतः सारे क्लेशोंकी जड और आसक्तिकी जड़ है अविद्या (अज्ञान) | इस अज्ञानसे ही संशय, भ्रम और प्रमादकी उत्पत्ति होती है, अज्ञानका नाश होता है यथार्थ ज्ञानसे और उस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिके छिये शास्त्रोंमें बहुत-से उपाय और बड़ा पापी है; इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान ।' जान होता है । भगवानने अर्जुनसे कहा है—— बतलाये गये हैं । ईश्वरकी भक्ति करनेसे ईश्वरकी कृपासे

दिचि।(क् किंतु अ ता है, क क्ल ज्ञान, के

खेलना

में तथा है

री समान श्रद्धा-कि नत् भरी

गधनको ज झनेमं क मीके क

। इसि मेठाईमें है

开 麻 स प्राप्त पोग्य क

क्य को औ र

लेगा या पड़ती

उसने ह निय बढ

1 30 神

EG 1 和

青月

मिचित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (गीता १०।९)

'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही रमण करते हैं।'

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मासुपयान्ति ते॥ (गीता १०। १०)

'उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नारायाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्त्रता॥ (गीता १०। ११)

उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही 'उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अज्ञानजनित अंधकारको देदीप्यमान तत्त्वज्ञानरूपी दीपके द्वारा नष्ट कर देता हूँ ।'

तथा निष्कामभावपूर्वक कर्तव्यपालनरूप कर्मयोगसे भी ग्रुद्ध हुए अन्तःकरणमें अपने-आप ही यथार्थ ज्ञान प्रकट हो जाता है।

निह ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मिन विन्दति॥ (गीता ४।३८)

'इस संसारमें यथार्थ ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्त:करण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है।'

एवं महापुरुषोंके बतलाये हुए साधनके अनुसार चलनेसे भी इस यथार्थ-ज्ञानकी प्राप्ति उनकी कृपासे हो जाती है— तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ 'अर्जुन! उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके हैं जाकर समझ; उनको भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम कर्ते उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरकाही प्रश्न करनेसे वे परमात्माको भलीभाँति जाननेवाहे हैं महात्मा तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डा येन भूतान्यदोषेण द्रक्ष्यस्थातमन्यथो मिर। (गीता ४।३

'पाण्डुपुत्र ! जिसको जानकर फिर द इस फ्र मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा जिस ज्ञानके हुगाः सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और हैं मुझ सिचदानन्द्धन प्रसारमामें देखेगा ।'

तथा गीतादि शास्त्रोंके अर्थ और भावको साक्त उनका अध्ययन करनेसे भी यथार्थ ज्ञानकी प्रक्रिं जाती है। भगवान्ने बतलाया है—

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाञ्च यतयः संशितवताः। (गीता ४। २८ का उत्तराः

'कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतोंसे युक्त पहीं पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करते हैं।'

और गीताका खाध्याय करनेवालेके लिये मान कहते हैं कि जो पुरुष इस धर्ममय हम दें संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं कि यज्ञसे पूजित होऊँगा (गीता १८।७०)। कि उसे यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। इस यथार्थ क्रिंग प्राप्तिमें प्रधान हेतु है श्रद्धा-विश्वास। भगवान्ते कहा है श्रद्धावाँ ल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतिद्विषा ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमिविरेणाधिगव्छित।

दान कर्म

संख

ही व

स्थूल स्थूल परम

स् कारनेवे ध्यान

पदार्थी पहुँच

no

.खयं इ उपदेश ''वेदों

ब्रह्म सहस्रा

और पै

आदिवा

किंतु विना श्रद्धाके किया हुआ सभी कुछ व्यर्थ है— अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं छतं च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्पेत्य नो इह ॥ (गीता १७। २८)

अर्जुन! विना श्रद्धाके किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह सब असत् है—इस प्रकार कहा जाता है। इसिलिये वह न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही। अतः सभी श्रुभकर्म श्रद्धापूर्वक ही करने चाहिये।

श्रद्राकी प्राप्ति होती है अन्तः करणकी शुद्धिसे।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत। श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ (गीता १७।३)

'भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसिलये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है; वह स्वयं भी वही है।'

अन्तः करणकी शुद्धि होती है विवेक वैराग्यपूर्वक भक्ति, ज्ञान और योगके साधनसे। इसिट्ये मनुष्यको उचित है कि भक्ति, ज्ञान और योगमेंसे जिसमें उसकी रुचि और विश्वास हो, उसीको टक्ष्य बनाकर उसे विवेक-वैराग्यपूर्वक परम उत्साह और तत्परतासे करे।

त्वं ब्रह्मासि

(लेखक-पं॰ श्रीकमलापतिजी मिश्र)

परिणाम है और वह इसपर ध्यान जम्मून्स कूपसे सूक्ष्मताकी ओर साधक उसका सब व्यापार जाय और अन्तमें श्निराकारको समझ ले, इसीलिये दृष्टि सहजमें उस ऋषियोंने ऐसा स्थूल वर्णन किया है। यह तो प्रथम स्थान है, जहाँसे ब्रह्मके वास्तविक खरूपके ज्ञानके

> उपनिषदों में भी ऋषि इसी प्रकार स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर बढ़े हैं । इस यात्रा और उसकी सफलताकी झाँकियोंको ही हम उपनिषद् कह सकते हैं । भारतीय दर्शनों में भी तत्त्व-चिन्तनका यही क्रम है । वहाँ भी ईश्वरतक पहुँचनेके पहले दशेन्द्रियवाद आदि स्थूल लक्ष्य दृष्टि-गोचर होते हैं ।

उपनिषदों में स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेके अनेक विवरण हैं । छान्दोग्योपनिषद्में यह प्रकरण है कि नारदजी सनत्कुमारके पास गयें और बोले कि 'मुझे उपदेश दीजिये।' सनत्कुमार बोले कि 'तुम क्या-क्या जानते हो, कहो।' नारदने कहा—'मैं चारों वेद, गणित, तर्कशास्त्र आदि जानता हूँ।' सनत्कुमारने कहा कि 'ऋग्वेद आदि नाम ही हैं। गणित भी नाम है।

मनुष्य खयं सूक्ष्मका स्थूल परिणाम है और वह स्थूल पदार्थोंसे ही घिरा हुआ है । उसका सब व्यापार स्थूल पदार्थोंसे है । अत: उसकी दृष्टि सहजमें उस परम सूक्ष्म ब्रह्मकी ओर नहीं जाती ।

स्विमकी ओर ध्यानको ले जाने तथा उसे हृद्यंगम कातेके लिये यह आवश्यक है कि पहले अत्यन्त स्थूलपर यान जमाया जाय और तब क्रमसे उत्तरोत्तर सृक्षम पदार्थोंकी ओर चला जाय। इसी प्रक्रियासे हम ब्रह्मतक पहुँच सकते हैं।

हमारे ऋषि-मुनियोंके ध्यानमें यह बात थी। उन्होंने खं इसी मार्गसे सिद्धि प्राप्त की थी और इसी मार्गसे उपदेश भी दिया। छोग शङ्का किया करते हैं कि 'वेदोंमें एक ओर तो ध्यानगम्य, परमसूक्ष्म, निराकार क्रिक्ता वर्णन है और एक ओर 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात' इस मन्त्रमें उसे हजार सिर, आँख और पैरोंबाला बतलाया है। ये तो परस्परिवरोधी बातें हैं।' पर वस्तुतः ये विरोधी बातें नहीं हैं। हजारों सिर आदिवाले ब्रह्मका वर्णन जान-बूझकर किया गया है।

भाग ३।

नेयोंके ए ाम काले

सरलताकृत

गण्डव। मिथ। ४।३। इस प्रक

के द्वार और पै

ो समझ्य ो प्राप्ति है

ावताः । । उत्तर्ण

त यहाँ

र्ष कार्

·阿利 (1) 科 (1) 科

TO TO

अतः तुम नामकी उपासना करो । इससे यह होगा कि जहाँतक नामकी गति है, वहाँतक तुम्हारी गति भी हो जायगी । तुम नामको ही ब्रह्म समझो ।'

नारदने पूछा कि 'नामसे श्रेष्ठ क्या है !' उत्तर मिला कि 'वाक्' नामसे श्रेष्ठ है। वाक्से ही वेद विज्ञप्त होते हैं। उसीसे धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, सुन्दर, असुन्दर आदि सब कुछका ज्ञान होता है। अतः नामसे वाक श्रेष्ठ है।'

नारदके पूछनेपर सनत्कुमार इसी प्रकार उत्तरोत्तर श्रेष्ठको बतलाते चले । उन्होंने कहा कि बाक् या वाणीसे मन श्रेष्ठ है । उससे विचार किये बिना मनुष्य कुछ नहीं करता । और मनसे श्रेष्ठ संकल्प है। संकल्पसे ही मनन और वाणीका प्रेरण होता है। संकल्प ही ब्रह्म है । फिर चित्त संकल्पसे श्रेष्ठ है, उससे ध्यान श्रेष्ठ है। घ्यानसे श्रेष्ठ विज्ञान है और उससे बल श्रेष्ठ है । बलसे श्रेष्ठ अन्न है; क्योंकि वह बलका मूल है । अन्नसे जल श्रेष्ठ है; क्योंकि उससे ही अन्न उत्पन्न होता है। जलसे तेज श्रेष्ठ है, उससे आकारा श्रेष्ठ है। आकारासे श्रेष्ठ स्मरण है, उससे श्रेष्ठ आशा । आशासे श्रेष्ठ प्राण और उससे सत्य। सत्यसे श्रेष्ठ विज्ञान है; क्योंकि विशेषका ज्ञान हुए विना पुरुष सत्य नहीं बोळता । सत्यसे बढ़कर मित है; क्योंिक मननके बिना विज्ञान या विशेष ज्ञान उत्पन्न होता नहीं । श्रद्धा मितसे श्रेष्ठ है; क्योंकि श्रद्धाके बिना मनन नहीं हो सकता। श्रद्धा निष्ठासे होती है, अतः वह और भी श्रेष्ठ है। कृति निष्ठासे श्रेष्ठ है। करनेसे ही निष्ठा होती है। कृतिसे सुख बड़ा है । सुख पाकर ही कोई कुछ करता है। अतः सुखकी ही विशेष जिज्ञासा करनी चाहिये।

नारदने कहा कि 'मैं सुखकी विशेष जिज्ञासा करता हूँ।'

अन्तमें उन्होंने कहा कि 'भूमा ही सुख है, अल्पमें करते। इस सेतुको तरकर अन्धपुरुष भी अप सुख नहीं। हे नारद! जहाँ साधक और कुछ नहीं देखा। Kan हिता है। इसे पिक्ट स्प्राताधी करी। अनुपतापी होता है। इसे

और कुछ नहीं सुनता, और कुछ नहीं जानता, वह के हैं। जहाँ कुछ देखा, सुना और जाना जाता है, वह के हैं। भूमा ही अमृत है और अल्प ही मर्त्य है। क्म्मा अपनी ही महिमामें प्रतिष्ठित है। यही प्रमा है। यही प्रमा है। यही प्रमा है। यही आत्मा है।

स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेका जो उदाहरण के उपस्थित किया गया, उसमें भूमाको—अखण्ड परिपूर्णकों ब्रह्म माना गया है। पर यहाँ भूमाका विशेष कि या परिचय नहीं है। आगे चलकर नाना भिक्ष्मिं वात प्रकट की गयी है। और यह उदाहरण सूक्ष्में ओर जानेकी एक शृङ्खला है। स्पष्टतः यह का बादकी विचार-धारा है। प्रारम्भमें किसी ए वस्तुको ही ब्रह्म माना गया है, जैसे आकाशकी कहा गया है कि आकाश नामसे प्रसिद्ध आत्मामें के और रूपका निर्वाह है। वही ब्रह्म है, वही अमृत है। बृहदारण्यकमें ओंकारको आकाश मानकर अंक ब्रह्मरूपमें वर्णन है।

धीरे-धीरे आत्मातक पहुँच हुई । उद्दालक की कहा है कि सत् या आत्मा ही सबका मूल है। इं सूक्ष्मता या अणिमाका अन्त है । उन्होंने उद्दाल कहा है कि 'वट वृक्षके एक फलके भीतर अन्तक्ष हैं । यही अणिमा है, यही सत्य है, यही आत्मा है।

फिर यह कहा गया कि पृथ्वीमें छिपे धनकों के नहीं जानते। वैसे ही अनृतसे आच्छादित स्कि ज्ञान भी लोगोंको नहीं होता। आत्मा हृद्यमें हैं। 'हृदि अयम्' यह निरुक्ति है। यह बात जातका ही स्वर्गलोक जाता है। लोकोंमें संघर्ष न होते हैं। लिये उन्हें विशेषरूपसे धारण करनेवाले सेतुका आत्मा है; दिन-रात इस सेतुका अतिक्रमण नहीं की अस्ति जरा, मृत्यु, शोक, पाप या पुण्य स्पर्श करते। इस सेतुको तरकर अन्धपुरुष्ठ भी अस्ति करते। इस सेतुको तरकर अन्धपुरुष्ठ भी अस्ति हो। इसे पिर्ण

मुद्रव्य रहित से अ

HE

317

लोक

स्मरणी ब्रह्म-स् याज्ञवन मानते

की व सम्प्रद उस दृ

जो ब्रह्म याज्ञवल विवरण

₹

से कह किसी शिष्यसे इसज्ञान किया।

उत्तरसे आर्त्तमा पुरुपकी चक्षु अ

पृथ्वीमं, वनस्पति है, उस

्र उत्त इस भाग ३६

, वह मून

हरण अ रिपूर्णको

ष विकेश

ङ्गेयोंनं ए

सूरमर्श

कसी एव

काशको।

त्मार्मे ताः

अमृत है।

उसीन

F 雅

त वस्त

मा है।

को ले

सत्यन

में है।

ाननेवार्ग

नेक्षे

和不

न करते।

र्श

न्धं ती

वार्व

अध्यकारपूर्ण रात्रि भी दिन हो जाती है; क्योंकि वह लेक सर्वदा प्रकाशमय है।

वह अ 自會 धीरेधीरे ब्रह्मका खरूप विशेष स्पष्ट हुआ । मुद्रलोपनिषद्में कहा गया है कि 'ब्रह्म तीन तापोंसे प्रम क हित, छः कोपोंसे शून्य, छः ऊर्मियोंसे वर्जित, पञ्चकोशों-में अतीत, षड्भाव-विकारोंसे रहित, अतः विलक्षण है। यहींपर जनकके यज्ञमें याज्ञवल्क्यजीका संवाद भी माणीय है। इससे हमें यह दिख्ळाना अभीष्ट है कि क्रा-माक्षात्कारका या ब्रह्मको जाननेका दावा करनेवाले गाइवल्क्य कितने असिहण्यु थे। वे ब्रह्मसे परे न कुछ मानते थे, न यह सहन कर सकते थे कि उससे परे-मह कार्य बी बात जाननेका किसीको अधिकार है। यह भी एक सम्प्रदाय था और आज भी है । साथ ही गार्गीके प्रश्नसे उस दूसरे सम्प्रदायका ज्ञान होता है, जो ज्ञानमें अतृप्त ग, जो ब्रह्मके बादकी स्थिति भी जानना चाहता था, जे ब्रह्मकी भी पुंखानुपुंख परीक्षा करना चाहता था। ^{याज्ञवल्क्य}संवादमें भी स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेका विवरण है।

है।इ राजा जनकते एक हजार गौएँ मँगवायीं और ऋषियों-से कहा कि 'जो ब्रह्मज्ञानी हो, वह इन्हें ले जाय।' जब उदाहरण किसी ऋषिका साहस न हुआ, तत्र याज्ञवल्क्यने अपने शिष्यसे गौएँ हँकवा दीं । इसपर ऋषियोंने उनके क्रिज्ञानकी परीक्षा शुरू की। पहला संवाद अश्वलने किया। उन्होंने यज्ञ-सम्बद्ध बातें पूछीं और याज्ञवल्क्यके वत्तरसे वे संतुष्ट हुए । दूसरा संवाद जरत्कारु गोत्रमें उत्पन्न अर्तभागसे हुआ । उन्होंने पूछा कि जिस समय मृत पुरम्मी वाणी अग्निमें लीन हो जाती है, प्राण वायुमें, चें आदित्यमें, मन चन्द्रमामें, श्रोत्र दिशामें, -श्रीर श्वीमें, हृदयाकारा भूताकारामें, रोम ओप घियोंमें, केरा वनस्पतियोंमें तथा रक्त और वीर्य जलमें स्थापित हो जाते हैं, उस समय यह पुरुष कहाँ रहता है ?'

समुदायके बीच होने योग्य नहीं है । आओ, हम एकान्तमें विचार करें ।'''विचार होनेपर जरत्कार-गोत्रोत्पन्न आर्त्तभाग भी चुप हो गये।

इस प्रकार अनेक ऋषियोंसे संवाद हुए। अन्तमें गार्गी-ने पूछा कि जो द्युळोकसे ऊपर, पृथ्वीसे नीचे तथा चुलोक और पृथ्वीके मध्यमें है और जो स्वयं चुलोक और पृथ्वी है तथा जिन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान कहते हैं, वे किसमें ओतप्रोत हैं ?

याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि 'आकाशमें । "इसी प्रकार सब कुछ अन्तमें ब्रह्ममें ओतप्रोत सिद्ध हुआ । गार्गीने पूछा कि 'ब्रह्म किसमें ओतप्रोत है ?' तब याज्ञवल्क्य बोले कि 'यह अतिप्रश्न है । अतिप्रश्न न कर । तेरा सिर कटकर न गिर पड़े ।''''तव गार्गी चुप हो गयी।

धीरे-धीरे मन और आत्माके लयकी युक्तियाँ सामने आयीं। मन दो प्रकारका माना गया —अशुद्ध तथा शुद्ध । जिसमें कामनाओंके संकल्प उठें, वह अशुद्ध; जिसमें कामनाओं-का अभाव हो, वह शुद्ध । विषय-संकल्पसे रहित मन ही मोक्षका कारण है। ब्रह्मविन्दूपनिपद्में कहा गया है कि 'विषय संकल्परहित मन ही हृदयमें स्थिर होकर उन्मनीभावको प्राप्त होता है, अर्थात् संकल्प-विकल्पसे रहित होता है। यही परमपद है। यही ज्ञान और यही मोक्ष है। उस समय साधक ब्रह्मभावको प्राप्त होता है । उस समय साधक प्रणव और परमात्माकी एकता करे और प्रणवातीत तत्त्वका चिन्तन करे। ऐसी चिन्तन-छब्ध उपलब्धि भाव-खरूप होती है, अर्थात् उसके विना समाधि शून्यरूप होती है। तत्र सायक सोचे कि यही अवयवहीन, विकल्पशून्य, निरञ्जन, मलरहित ब्रह्म है और वही मैं हूँ । यही पुरुषका ब्रह्मरूप होना है ।

नारद-परित्राजकोपनिषद्में यही बात प्रकारान्तरसे संक्षेपमें है। ब्रह्माजीने नारदसे कहा कि 'ब्रह्म अपना सीपर याज्ञवल्क्यने कहा कि 'यह प्रश्न जन- खरूप ही तो है। आत्मा ब्रह्म ही है। इसके सिवा कुछ CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar ही है। इसके सिवा कुछ नहीं है । जो यह समझते हैं कि ब्रह्म दूसरा है, में अन्य हूँ, वे पशु हैं ।'

बृहदारण्यकमें आया है-

स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्माभयं वै ब्रह्माभयं हि वै ब्रह्म भवति, य एवं वेद। (४।४।२५)

'यह महान् आत्मा जन्मसे रहित, वृद्धावस्थासे हीन, मृत्यु तथा भयसे भी रहित है। ब्रह्म अभय है, वह निश्चय ही अभय है। जो यह जानता है, वह अवस्य ब्रह्म हो जाता है।'

तात्पर्य यह कि कुछ भृङ्गी-कीट-जैसी बात है। ब्रह्मका चिन्तन, मनन, निदिध्यासन करते-करते साधक ब्रह्म ही हो जाता है। इसीलिये कहा है—

आत्मा वा अरे द्रप्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निद्धियासितव्यः।

अर्थात् आत्माको देखो, सुनो, मनन करो, घ्यान लगाओ।

छान्दोग्यमें कहा है--

यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः, तस्मिन्यदन्तः, तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति॥ (८।१।१)

अर्थात् इस ब्रह्मपुर-शरीरके भीतर जो सूक्ष्म, कमल-सदश स्थान है, उसमें जो सूक्ष्म आकाश है और उसके भीतर जो है, अर्थात् ब्रह्म, उसे दूँदना चाहिये, उसकी विशेष जानकारी करनी चाहिये।

क्यों ? इसलिये कि जगत् दुःख-समूह है । वाराहो-पनिषद्में कहा है—

अङ्गस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत्। अन्धं भुवनमन्थस्य प्रकाशं तु सुचक्षुपाम्॥

अर्थात् अज्ञानीके लिये यह जगत् दुःख और पापमय है और ज्ञानीके लिये आनन्दमय—जैसे अन्धेके लिये सब कुछ अन्धकारमय है और आँखवालोंको प्रकाशमय है। अतः ज्ञानके द्वारा आवन्दमय होनेके लिके क्रिजान आवश्यक है। ब्रह्मविद्या है क्या ! अस्प्रानेक्ष कहा गया है कि 'सर्वको एक अज तथा तखतः के रूप समझना चाहिये | आत्मा और परमात्माके अकि किसी वस्तुका भान न होना ही चित्तक्षय है। अयोगस्थ होकर कर्म करो । ''योगमें प्रवृत्त होने अन्तः करण धीरे-धीरे वासनाओंसे विरक्त होका अन्तः कर्ममें संलग्न होता है और प्रसन्नताका अनुभव कर है। वह किसीको उद्देग नहीं पहुँचाता। यह प्रभूमिका है। साधक श्रेष्ठ विद्वानोंका आश्रय लेता है पद और परार्थोंके विभागको हृदयंगम करता है कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करता है। बाह्य अचल दोषोंको वह ऐसे त्याग देता है, जैसे सर्प केंचुल्लो यह दूसरी भूमिका है।

तीसरी भूमिकामें साधक शास्त्रोंमें बुद्धिको किस करता है, विषयोंमें अनासक्त होता है और दृष्टि किं करता है। तब हृदयमें संतोष और आनन्दका क् जमता है और अन्य उदात्त भावोंके लिये स्थान किं है। यहाँ साधककी संकल्पात्मक वृत्तियाँ समाप्त हो अं हैं। ये तीन भूमिकाएँ जाम्रत्-स्वरूपा हैं।

चतुर्थ भूमिकामें अज्ञानके क्षीण होनेसे सार्क समभाव आता है। तब अद्वैतभाव दृढ़ होका हैं। भाव शान्त हो जाता है। इसीलिये साधक लेक स्वप्नवत् देखने लगता है। पाँचवीं भूमिकामें सार्क चित्त विलीन होकर सत्त्वमात्र बचता है। क सांसारिक संकल्पोंका उदय नहीं होता। इसने समाप्त हो जाते हैं और साधक केवल अद्वैत विली आ जाता है। अतः वह आनन्दमयी स्थितिमें हिती वह अन्तर्मुख हो जाता है और ऐसा देख पड़ता हैं। थका हुआ कोई सो रहा हो।

दमय—जैसे अन्घेके लिये सब छठी भूमिकामें सत्, असत्, अहंकार, अर्हिं भाँखवालोंको प्रकाशमय है | कुछ नहीं रह जाता | मननात्मक वृत्ति भी समार्थ CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

H H

जार्त

乖

परे हैं

हिर तत्त्व

सूर्यमण

सङ्, उ

होता है अन्धं ततो

करते अविनाइ

प्रमत्त है

क्ठोपनि

छेथे हहा

सुपिनियन

तः चेतन

के अतिहि

13

त हों।

ोकार उत

मिव का

यह प्रा

लेता है।

रता है

आचाण

तेंचुखो**ं**

हो ज

सार्थक

का है

लेक

सावक

135

ससे हैं।

स्थिति

Selle Come

जाती है। साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। उस समय वह चित्रके दीपक-जैसा निश्चेष्ट रहता है। सातवीं भूमिका विदेहमुक्ति है। यह भूमिका वाणीसे रो है। यहाँ योगकी पराकाष्ठा है। ईशावास्योपनिषद्में आया है---

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। पूपन्नपावृणु सत्यधर्माय इप्ये॥ ·हे ईश्वर ! आपका सत्यस्वरूप मुख ज्योतिर्मय मुर्यमण्डलरूपी पात्रसे ढका है। मैं आपका दर्शन कर स्कूँ, इसके लिये आप उस आवरणको हटा लीजिये। उक्त ईशका दर्शन न करके अन्यकी उपासनासे क्या होता है ?

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। तो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः॥

जो विनाशशील देव या पितर आदिकी उपासना तो निस्त र्राष्ट्रिकिं काते हैं, वे अज्ञानरूप तममें प्रवेश करते हैं। जो का अविनाशीमें रत हैं अर्थात् उपासना के निष्याभिमानमें थान हो प्रमत्त हैं, वे और भी घोर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं।' वह ईश्वर या आत्म-तत्त्र अति दुर्लभ है। क्छोपनिपद्में आया है---

श्रवणायापि बहुभियों न लभ्यः श्रुण्यन्तोऽपि वहवो यं न विद्युः। आश्चर्यो वका कुरालोऽस्य लन्धा-

ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुरालानुशिष्टः॥ 'जो बहुतोंको सुननेको भी नहीं मिलता, सुनकर भी बहुतेरे जिसे समझ नहीं सकते, उस गूढ़का वर्णन करनेवाला भी दुर्लभ है और उससे मुनकर प्रहण कर सकनेवाला भी दुर्लभ होता है। तत्त्वज्ञसे शिक्षा-प्राप्त ज्ञाता भी परम दुर्लभ होता है।

कारण यह है कि-नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेश्रेष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वित्रृणुते तन् स्वाम्॥ अर्थात् प्रवचन, बुद्धि या सुननेसे परब्रम्न नहीं मिलता । वह जिसे खयं वरण करता है, उसीको मिलता है । उसीके सामने ब्रह्म अपना यथार्य खरूप प्रकट करता है।

अतः इस तत्त्वके जिज्ञासुओंको अपनेको आत्माके वरणके योग्य बनाना चाहिये । यही परम पुरुषार्थ है ।

मैं प्रभुमें, प्रभु मुझमें

में रहता हूँ प्रभुमें ही नित, प्रभुका मुझमें नित्य निवास। प्रभुके सिवा अन्य कोई भी सत्ता नहीं, नहीं अवकारा॥ जव जो भी मिलता, उसमें ही दिखता प्रभुका मोहन रूप। भले बना हो वह अति सुन्दर, अथवा हो बीभत्स कुरूप॥ सवमें है प्रभुकी गुण-गरिमा, सबमें हैं मंगलमय भाव। सबके द्वारा अपने ही प्रभु करते प्रकट विचित्र विभाव॥ कहते. प्रभु, खेलो तुम, मेरे-अपने 'विविध खाँग-अनुसार। र्कितु देखते रहो निरन्तर मुझे, न भूलो किसी प्रकार'॥ सदा कराते रहते अनुभव कर अनन्त छीछा विस्तार। कभी न सोते, सोने देते जग-प्रपंचमें, प्रभु बेकार॥ देख देख में प्रभुको, प्रभुकी लीलाको पाता आह्नाद। नित्य नवीन मधुरतम रसका छेता मैं दुर्छभ आखाद॥

CC-0. In Public Demain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

りなくなくなくなかなからなんなんなかっち

金をなるなるなるなるなるなかなから

मध्र

भगवान्के सखा श्रीउद्भवजीसे राधाने पुनः पूछा---'प्राणनायने और कुछ कभी मेरे छिये कहा हो तो उसे भी सुनाओ ।' उद्भवजी बोले—'महामति राधिके ! जब मैं आने लगा तत्र तुम्हारी स्मृतिमें श्यामसुन्दर अत्यन्त विह्वल हो गये। उन्होंने अश्रुविगलित नेत्रोंसे न जाने कितना कहा-क्या कहा | मैं आपको कहाँतक सुनाऊँ । आपका स्मरण आते ही श्यामसुन्दरकी विलक्षण स्थिति हो जाती है। वे आपका गुणगान करते हुए अपने प्रेमियोंकी व्याख्या करने लगे और बोले--

> मुझसे करके प्रेम चाहता, उसका बदला पाना। वह भी सुकृति पुण्यजन, जिसने मुझको फलदाता जाना ॥ उससे ऊँचा वह प्रेमी है, जो निष्काम प्रेम करता । सेवा करके मुक्ति चाहता, मायिक जगसे जो डरता ॥ उससे भी ऊँचा वह मेरा प्रेमी शुद्ध हृदय प्यारा । देते-देते मुझे मधुरतम वस्तु कभी न थका-हारा॥ भी उच्चस्तरपर वह, जो सेवा करता दिन-रात। फल सदा चाहता, सेवाकी बढ़ती अभिजात ॥ किसीका जो दास, किसीको नहीं बनाता दास युग-युग सेवा ही जो करता, त्याग अन्य ब्यवहार सभी ॥

'उद्भव! मुझसे प्रेम करके जो उसका कोई बदला चाहता है, वह पुण्यात्मा भी सुकृति ही है; क्योंकि उसने मुझको फल देनेवाला समझा है । उससे भी ऊँचा प्रेमी वह है, जो मायिक जगत्से डरा हुआ है और लौकिक-पारलौकिक सभी कामनाओंको छोडकार मेरी मेलाहे Collection, Haridwar दिन्याधार-भूमि

द्वारा मुक्ति चाहता है । उससे भी ऊँचा वह निशुक्त करणवाला मेरा प्रेमी है, जो मुझको मधुरतम देते-देते कभी थकता ही नहीं, हारता ही नहीं अपनेको देनेवाला मानता है)। उससे ऊँचे सापः प्रेमी है, जो दिन-रात (सेवाके छिये ही) सेवा क है और सेवाका फल भी सदा सेवाकी सुन्दर वृद्धि ही क है, जो (मेरे सिया) न किसीका दास है और न कि दास बनाता है, जो अन्य सारे व्यवहारोंका ह करके युग-युग मेरी सेवा ही करता है।

ऊँची प्रेममयी हैं उससे सौभाग्यवती गोपी। जो निज सुखको भूल सर्वथा, सबसे बढ़कर हैं ओपी ॥ स्नेह-राग-अनुराग-भावकी, उठती जिनमें अमित तरङ्ग। जिनका मुझसे छाया सारा जीवन, सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग ॥ केवल यही चाहतीं, मैं बस, रहँ देखता उनकी और। नित्य प्रेमाणैव, रहे रहे कहीं भी ओर न छोर ॥

'उससे ऊँची वे सौभाग्यवती प्रेमखरूपा गेर्पी हैं, जो अपने सुखको सर्वथा भूल गयी हैं औ (त्यागमय प्रेम-राज्यमें) सत्रसे बढ़कर शोभा पा ही जिनके जीवनमें पवित्र स्नेह, राग, अनुराग ^{त्या} रूपी प्रेमकी अपरिमित तरङ्गें उठती रहतीहैं जिनका समस्त जीवनं और एक-एक अ**ङ्ग**प्र^{वाई है} ही छाया है। वे केवल वस, यही चाहती हैं (प्रसन्न मुखसे) उनकी ओर देखता रहूँ उनके प्रेमसमुद्रमें बाढ़ आती रहे और उसकी ओर-छोर न रह जाय।

> पर राधा तो उन सबकी है भावत ।

दिव्य उनके स्नेहा करनेव नित्य रहित अचिन्त

राधाक

तम है

जानते

बुद्धिके

विशुद्धान

(तम के

नहीं।

स्तापाः

सेत्रा श

द्रि ही पह

न किर्म

रोंका ल

1 1

1

: 11

1

11

गोगा

नया में

हती हैं

त्यङ्ग हैं।

青年

सिका

जिसके स्तेह-सुधाका है ग्रुचि
एक एक कण अति पावन॥
तिरवधि, नित्य नवीन, नित्य
निरुपम, निरुपाधिक नित्य उदार।
तित्यानन्त-अचिन्त्य-अनिर्वचनीय अनुल रस-पारावार॥
राधाप्रेम परम उज्ज्वलतम
विधि-हरि-हर-अविगत-गति रूप।
परमहंस-तापस-योगी-मुनिमति-दुर्गम आश्चर्य स्वरूप॥

"परंतु उद्भव! श्रीराधा तो उन समीकी सुन्दर दिव्य आधारम्मि हैं। (राधासे ही गोपाङ्गनाओंका और अनके प्रेमका अस्तित्व है) वह राधा ऐसी है कि जिसके मेहामृतका एक-एक कण पवित्र है और अत्यन्त पवित्र करनेवाला है। राधाका प्रेम-रस-समुद्र सीमारहित है, नित्य उपमारहित है, नित्य उपाधि-रहित है और नित्य उदार है, वह नित्य अनन्त-अचित्य और अनिर्वचनीय, अतुलनीय रस-सागर है। राधाका प्रेम परम उज्ज्वलतम है। (सर्वथा विशुद्ध-तम है।) ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी उस प्रेमकी गतिको नहीं जानते। परमहंस, तपस्ती, योगी और मुनियोंकी (विशुद्ध) वुद्धिके लिये भी वह दुर्गम तथा आश्चर्यस्वरूप है।

पर इससे उसका न तनिक भी परिचय कभी हुआ, होता। बहता सहज तीव्रगति, मंजुल मधुर दिन्य यह रस-सोता॥ चौंसठ-कला-चतुर स्वाभाविक, पर वह मनकी अति भोली। नहीं जानती दंभ-कपट वह, नहीं बनावटी कुछ बोली॥ सहज विनम्र सरल ग्रुचि अंतर, निइछल सुधासनी वाणी। सुधास्रावी स्वभावसे आप्यायित सब ही सदा दीखती प्राणी ॥ रहती उसको निजमें दोषाविल समझ न पाती कैसे क्यों भारी। उससे प्रसन्न सब

''(इत्नी उचस्तरकी मूर्तिमान् प्रेमखरूपा होनेपर भी) राधाको अपने इस प्रेमका न तो कभी तनिक परिचय प्राप्त हुआ और न कभी होता ही है | यह मधुर मनोहर दिव्य प्रेम-रसका स्रोत तो सहज ही-अनायास ही बड़ी तीव्रगतिसे बहता रहता है। राधा चौंसठ कलाओंमें खभावसे ही चतुर है। (उसे कोई कला सीखनी नहीं पड़ी, तयापि वह मनकी अत्यन्त ही भोली है। दम्भ और कपट क्या होता है, इसका उसे पता ही नहीं है और बनावटी बोळी— बनाकर बात करना भी वह नहीं जानती । उसका हृदय सहज ही विनम्र, सरल और पवित्र है एवं उसकी वाणी भी सहज ही छळरहित और मधुर अमृतमयी है। उसमें खभावसे सहज ही मधुर अमृत बहता रहता है, जिससे सभी प्राणी आप्यायित रहते हैं। (यह सत्र होनेपर भी) उसको तो अपनेमें सदा भारी-भारी दोषोंकी ही पंक्तियाँ दीखती हैं। वह समझ ही नहीं पाती कि उससे सभी नर-नारी इतने प्रसन्न—संतुष्ट क्यों रहते हैं ?

मेरे प्रति क्यों प्यार, उसे है नहीं कैसे इतना ? नहीं मैं स्वयं खिंचा रहता क्यों उसके प्रति कितना ?॥ चिकत, किंतु अति सहज प्रेमकी बनी दिन्य वह पावन मूर्ति । सदा सहज ही मेरे मनमें नव-नव रसकी स्फूर्ति ॥ राधा गुण-गण विमल अमोलक रत्न विलक्षग पारावार । जितना गहरा जभी डूबता, नव-नव रत्न अपार ॥ पाता नहीं पा सका, पा न सकूँगा कभी गुणगणोंकी मैं थाह । राधा गुण-बनी रहेगी निधिमें डूबे रहनेकी चाह ॥ कैसे में क्या क्या गुण गाऊँ, क्या भेजूँ उसको संदेश। ओतप्रोत सदा उसमें सभी काल सब देश ॥

''(इतना ही नहीं), उसको इसका भी पता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

है कि मेरे प्रति उसका इतना प्रेम क्यों है ? और न इस बातका ही पता है कि मैं खयं उसके प्रति क्यों कितना (अधिक) खिंचा रहता हूँ । (वह यह सव देखकर) चिकत हुई रहती है, परंतु उद्भव ! राधा सहज ही दिव्य प्रेमसे विनिर्मित सबको पवित्र करनेवाली मूर्ति है, वह मेरे मनमें सदा नये-नये एसकी सहज ही स्फूर्ति करती रहती है। राधाके निर्मल अमूल्य गुण-समूह एक विलक्षण समुद्र हैं। मैं जब उसमें जितनी गहरी डुबकी लगाता हूँ, तब उतने ही नये-नये रतन प्राप्त करता हूँ । मैं राधाके गुणोंकी थाह न तो पा सका हूँ और न कभी आगे पा ही सकूँगा। राधाके उस गुण-समुद्रमें सदा डूबे रहनेकी ही मेरी चाह बनी रहेगी। (तब

फिर) मैं कैसे राधाके क्या-क्या गुण गाऊँ और ह क्या संदेश भेजूँ। मेरा जीवन तो सभी देश, सभी का उसीमें ओतप्रोत है।

> मेरी भोलीभाली प्राणेश्वरिसे यह कहना सत्य। मधुर तुम्हारी ही स्मृतिमें है जीवन लगा निरन्तर निला।

''हाँ, उद्भव ! तुम मेरी उस भोली-भाली प्राणेश रावासे यह सत्य संदेश अवश्य कह देना कि शाधे कि जीवन नित्य-निरन्तर तुम्हारी ही मधुर स्मृतिमें संलमहै।

उद्भव भी यह कहते-कहते अश्रुपूर्ण छोचन और गर्गहाँ गये और श्रीराधा तो भावावेशमें मधुर मूर्छाको प्राप्त हो गर्व

'स्वारथ साँच'

[कहानी]

(लेखक--श्री चक्र)

'मैं ठहरा स्वार्थी मनुष्य और उसमें भी व्यापारी। मुझे कोई मूर्व बनाकर ठग ले, इसे मैं सहन नहीं कर सकता।' भगवान् ही जानें कि वे खार्थी हैं तो परमार्थी कौन होगा । उनके-जैसा नि:स्पृह, सेवापरायण मुझे तो देखनेमें ही नहीं आया।

गोरा वर्ण, लम्बा, दुवला देह । लम्बा ही मुख और सरल भोले नेत्र। शरीरपर एक बगलवंदी, लगभग घटनोंतककी धोती । जेबमें ठौंग-इठायची भरे रहते हैं। स्वयं उनके छिये न छौंगका उपयोग है, न इलायचीका । जो भी परिचित मिलेगा, बड़ी नम्रतासे प्रणाम करेंगे और तब उनका हाथ अपनी जेबमें जायगा। आपका छुटकारा नहीं है उनकी छौंग-इलायची लिये विना।

सिरके अगले भागमें केश नहीं रहे हैं। जो हैं, इवेत हो चुके हैं। शरीरपर झुर्रियाँ पड़ चुकी हैं। गलेमें तुलसीकी कण्ठी और हायमें जपकी शोली लिये यह वृद्ध जहाँ भी मिलेगा जुन भी मिलेगा का निलेगा का निले

मूर्ति । उन्हें देखकर मुझे स्मरण आ जाता है-तृणाद्पि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

वार्धक्य है ही रोगोंके प्रावल्यकी अवस्था। अव शरीर भी अनेक व्याधियोंसे प्रस्त रहता है; किंतु की अपने रोगकी, अपनी पीड़ाकी चर्चा उन्होंने की ही तनसे और धनसे भी वे अभावप्रस्त, रोग पीड़ित जी सेवामें ही जुटे मिले मुझे। आज इसके यहाँ ^और् उसके यहाँ— उनके कहीं भी जानेका एक ही प्रार्वे है--उसकी कोई सेवा करनी होगी।

'कभी इस मले आदमीको क्रोध भी आती है।

मैंने एक परिचितसे पूछ लिया था हँसीमें। 'वे तो परम संत हैं। उनको क्रोध भला केरे सकता है ?' बड़ी श्रद्धाके साथ ये शब्द करें किंतु वे साधु-वेशधारी होंगे, इस संदेहमें आप तर्म

काम कहें

कर

संख

E

एक सुना उनके

शीघ्रत प्रशंस

उनवे

प्रयत नेत्र तो उ

काम

श्रा उनके

निकल सुने । हो, य

उनकी वित् क

जैसा छाउ

और से

भाग ३६

सभी वार

प्राणेक्ष (धि | मे रुग्न है 🏻

गद्गर्ह हो गर्या।

ना।

। उन्ह क्रभी है

त जनेंग और क

ता है!

न पड़

रे:॥

कीही

प्रयोज

南南

वेसे अ

रहते हैं एकाकी । पत्नीका परलोकवास बहुत पहले हो चुका और पुत्र कहीं दूरके नगरमें कोई काम करता है। भजन, सेवा और तीर्थवास—-उनके अव इतने ही काम हैं और उनसे कुछ कहिये उनकी प्रशंसामें तो

क्हेंगे-- में खार्थी हूँ । वनिया ठहरा । मुझे मूर्व वना-कर कोई ठग ले, यह मैं सहन नहीं कर सकता। 'रघुनायजीकी लीला ! बड़े लीलामय हैं वे ।' यह

एक दूसरा वाक्य है जो उनके मुखसे मैंने कई बार सना है। जब भी किसीके किसी दोषकी चर्चा आप उनके सम्मुख करेंगे, वे इस वाक्यको दृहरा देंगे और मने होंठ तथा झोलीके भीतर अँगुलियाँ अधिक शीव्रतासे चलने लगेंगी।

उन्हें कष्ट होता है, उद्देग होता है जब उनकी प्रशंसा की जाती है अथवा उनका सम्मान करनेका कोई प्रयत करता है। उस समय ऐसा छगता है कि उनके नेत्र भर आये हैं। लेकिन आप उनका तिरस्कार करें तो उनके कानपर जूँ नहीं रेंगती । उन्हें सेवाका कोई बाम बता दें तो उनका मुख खिल उठता है ।

'बच्चा क्या करता है आजकल ?' मैंने एक बार या उनसे । मुझपर उनका इतना स्नेह है कि मैं जन्ने शरीर तथा पुत्रका समाचार यदा-कदा पूछ लेता हूँ। 'मूर्षता करता है! वनियेका बेटा होकर मूर्ख निकला।' उनके मुखसे पहली बार झुँझलाहटके-से शब्द हुने थे मैंने । उन्होंने मेरे सम्मुख किसीकी निन्दा की हो, यह पहला अवसर था। अतः मुझे कुत्तूहल हुआ। उनकी कुटियापर गया था मिलने । जमकर बैठ गया । वित क्या है, यह जान लेना मुझे महत्त्वकी बात लगी।

⁴क्या रक्ला है। रामजीकी लीला है। वे जिसे भी नाच नचायें। वे सम्हल गये थे और पूछनेपर पिता कहते हैं कि वह मूर्व हो गया है। वह कि के किन कितने हैं आज ! लेकिन देता चाहते थे मुझे; किंतु उनमें यह खेद क्यों जागा, मुझे यह जानना ही था ।

'बह आजकल करता क्या है ?' प्रश्नपर मैंने बल दिया । 'रहता कहाँ है ?'

'व्यापार करता है। रुपये इकट्ठे करनेके चक्करमें पड़ा है। ' उन्होंने मुझे संकोचपूर्वक थोड़ेमें वता दिया कि लड़का कहाँ रहता है, क्या करता है।

'कोई बुराई तो करता नहीं !' मैंने कहा--'युवक है, उपार्जन करता है और उपार्जन ईमानदारीसे करता है।'

'र्युनायजी जिससे जो करायें, ठीक ही है! वे अत्र अपने चित्तमें सावधान थे। सम्भवतः लड्केकी निन्दा मुखसे निक्त गयी इसका भी खेद था उन्हें।

'आप उसे मूर्ख क्यों कहते हैं ?' मैंने हठपूर्वक पूछा। 'जो अपना स्वार्थ भी न समझे, वह मूर्ख ही तो है। उन्होंने आग्रह करनेपर बताया—'क्या बनेगा रुपयोंसे ? बैंकमें बहुत धन एकत्र हो गया तो उससे लाम ! इतना धन उसके पास अब है कि वह सादा जीवन व्यतीत करते हुए निश्चिन्त भजन करता रहे।'

लड़केकी पतीका भी देहान्त हो चुका है । वह फिर विवाह करेगा या नहीं, मुझे पता नहीं है; किंतु पिताकी इसमें सम्मित नहीं है । उन्होंने उसे साल-दो-साल साथ रक्खा था। वह भी प्रतिदिन सवा लाख नामजप करता था उन दिनों । उसे भी बगछबंदी और घुटनों-तक धोती पहिने, हाथमें जप-सोली लिये, घुटे सिर मैंने देखा है।

त्याग और तपका यह जीवन सबके वशका नहीं हुआ करता । उस युवकसे साधक-जीवन निभा नहीं, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता । वह अब व्यवसाय करने लगा है। तनिक सुख-सुविधा, थोड़े अच्छे वस्न-भोजनकी उसकी आकाब्धा अस्वाभाविक तो नहीं है।

मूर्व है तो बुद्रिमान् समाजमें कितने हैं आज ? लेकिन अब इनसे कुछ पूछना व्यर्थ है । इन्होंने इतना भी

南日

खुनाथ

65

आ

यह हैं, भौ

या भौति

नहीं मिट

नेवल ई

ही उनर्क

युद्धका स उत्तमोत्तम

पुसंचालि

सहायतासे

नो इस

विशाल उ

सैन्य शक्तियों में

श्री

मह भगवान्व

बता दिया, यही कम नहीं है । उनसे विदा लेकर का कितना श्रम और समय इस मूर्खताके पींड के मैं उस दिन चला आया।

'आप यह पद-संग्रह कितनेमें ले आये ?' मैं उनकी कुटियापर यह सुनकर गया था कि आजकल वे रुग्ण हैं। किंतु वे उलटे मेरे सत्कारमें व्यस्त हो गये थे। एक पुस्तक पड़ी थी आसनके समीप और नयी लगी वह मुझे । मैंने भी उसकी एक प्रति अभी चार-छः दिन पहले खरीदी है।

'आप इस बार ठगे गये।' उन्होंने छपा मूल्य दिया था । यहाँ बहुतसे दूकानदारोंने स्वयं पद-संग्रह छपवाये हैं । पुस्तकपर मूल्य अधिक छपवा रक्खा है । प्राय: ठीक मूल्य पूछनेपर छपे मूल्यसे कममें वे पुस्तक देते हैं।

'मैं कहाँ ठगा गया ?' मेरे ठीक मूल्य बतलानेपर वे बोले—'ठगा गया वह बेचारा ! रघुनाथजीकी लीला !'

में चौंका । सचमुच ठगा कौन गया ? जिसे पुस्तक-के चार आने मूल्य अधिक देने पड़े वह या जिसने चार आनेमें अपनी ईमानदारी, सत्य, विश्वसनीयता बेच दी वह ?

'चार आनेके लिये मैं झिकझिक करता तो ठगा जाता ।' उन्होंने दूसरा सूत्र सुनाया--- 'मेरी शान्ति और समय जाता उस चार आनेमें, जिस समयमें दो-चार भगवनाम तो लिया ही जा सकता है।

'सचमुच आप पक्के व्यापारी हैं !' मैंने उन्हें मस्तक झुकाया तो वे मेरे पैर पकड़ने लगे।

'प्रशंसासे क्या मिल जाता है मनुष्यको ? निन्दासे उसका क्या बिगड़ जाता है ? उस दिन वे तनिक खुलकर बोल रहे थे--- 'वह प्रशंसाके पीछे जब पागल होता है, निन्दासे व्यथित होता है तो अहंकार उसे ठग लेता है। वह केवल अपनेको मूर्व बनाता है।

'ओह ! सचमुच अहंकार मूर्ख ही तो बनाता है ऐसे सब अवसरोंपर हमें ।' मैं सोच रहा था कि जीवन- नष्ट हुआ तथा हो रहा है।

'जीवनकी आवश्यकताएँ अधिक नहीं हैं। थे—'पेटकी वे कहते जा रहे क्षुधा योहे निवृत्त हो जाती है। थोड़ेमें शरीरकी रक्षा हो को पूर्ण सं है । मनुष्यको उसकी जीम ठगती है । और एक गा थ ठगती है । वस्त्रादिके साज-शृंगारपर—फैरानप हो स्या उ वाला व्यय मूर्खता ही है । आपने कुर्ता पिह्ना ह कोट-कमीज, यह पूरे नगरमें कोई ध्यान नहीं देता आपका सजना केवल अपने मनके मिथ्याभिमाल संतोष है । मन ठगता है आपको कि लोग क्या कहें।

मैंने उनसे आज पूछा था कि 'आप अपेते खार्थी क्यों कहते हैं ?

'मैं अपने स्वार्थपर दृष्टि रखता हूँ ।' उन्होंने ना था--- 'बनियाँ हूँ मैं। कोई मुझे ठग ले, यह हुं सहन नहीं होता । मेरा मन, मेरा अहंकार ही है ठग सकता है। यह न ठगे तो दूसरा कौन छोग! आप सत्र तो श्रीरघुनाथजीके खरूप हैं। आप तो ह इस दीनपर अनुप्रह ही करते हैं।'

उनके राब्दोंमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं थी। उनि खर, उनके भरे-भरेसे नेत्र कह रहे थे कि ये ^{हर} उनके हृदयसे निकल रहे हैं।

'पूरा संसार ही तब मूर्ख है !' मैंने उन्हें उन्हें नहीं दिया था। उलाहना देनेकी धृष्टता भी ^{नहीं ब} सकता था उस समय । वैसे में उनसे पिहास व लेता हूँ; किंतु उस दिन वातावरण इतना गर्भी है गया था, मैं इतना अभिभूत था कि परिहास या व्यंकी हैं। वह ३ कल्पना भी मनका स्पर्श नहीं करती । मैं सीवने था और उस चिन्तनमें ये शुब्द अपने आप ही पुली निकल गये थे।

'आरचर्यकी क्या बात है ।' बिना संकृति हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

間

हीं देता।

गिमानव

कहेंगे!

अपनेवी

ने बताय

यह मु

तो स्र

चे ऋ

हीं ब

ास की

भीर क

ने ला

ति ही

वे िशर खरमें बोले—'यह संसार ही अज्ञान-चालित है। ज्ञान संसारका निवर्तक है, प्रवर्तक तो है नहीं। खुनायजीकी छीछा ही ऐसी है।

प्यह दौड़-भूप, यह व्यप्रता-व्यस्तता, यह अशान्ति-र्क्ण संवर्ष—सत्र मूर्वता है !' मैं अपने चित्तमें सोचने _{ला था}—'सचमुच यदि हम सोचने लगें कि इसका नपर हो स्या उपयोग ? इससे क्या लाभ या क्या हानि ? हमारे खोगोंमें, हमारे क्षोभोंमें भी कितने सार्थक निकलेंगे ? नहिना व

'जीवका खार्थ विना सोचे-समझे श्रम करते रहनेमें

तो नहीं है ?' वे कहने छमे—'पदार्थोंकी राशि वह एकत्र भी कर ले, सबका कोई वास्तविक उपयोग है उसके छिये ? उसे सोचना तो चाहिये ही कि उसका सचमुच खार्थ किसमें है।

'तो आप इस अर्थमें स्वार्थी हैं !' मैं हँस पड़ा और वे संकुचित हो गये; किंतु बात तो उनकी ही सची है। सचा खार्थ तो प्रमात्मामें ठीक-ठीक छग जानेमें ही जीवका है और यह स्वार्थ उन्होंने साधा है । अपने पुत्रको वे मूर्व कहें, यह अधिकार है उन्हें।

सची सहायता भौतिक नहीं आध्यात्मिक है!

(लेखक--डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आप समझते हैं रुपया-पैसा, शिफारिश, सेना, मित्र ग भौतिक वल मनुष्यकी सहायता करते हैं।

यह बात सही नहीं है। सची सहायताएँ ईश्वरीय होती हैं मौतिक नहीं। जहाँ इस दुनियाके व्यक्तियोंसे सहायता न्हीं मिल्ती, वहाँ आध्यात्मिक सहायता हमें उवार लेती है। ठगेगा! केवल ईश्वर और धर्ममें सची निष्ठा चाहिये।

महाभारतके युद्धसे पूर्वकी वात है । योगेश्वर श्रीकृष्ण भावान्की सहायता माँगनेके लिये अर्जुन और दुर्योधन दोनों है उनकी सेवामें उपस्थित हुए।

श्रीकृष्ण अधिपति थे, उनके पास विपुल सेना थी। उद्भा सब सामान बड़ी भारी संख्यामें था। हर प्रकारके उत्तमोत्तम अचूक हथियार शस्त्रागारमें सुरक्षित थे। इतनी रुषंचालित और विशाल सेना और हर प्रकारके उत्तम हथियारोंकी महायतासे कोई भी रात्रु वड़ी आसानीसे जीता जा सकता था।

सैन्य-संचालन, रुपया और नाना प्रकारकी भौतिक विश्वास रखनेवाला कौन ऐसा वुद्धिहीन होगा। हो इस सेनाकी ताकतको न छेना चाहेगा। जिसके पास भियाल जन-समृह हो, एक-से-एक बढ़िया अचूक अस्त्र-शस्त्र हैं। वह भला कैसे आसानीसे हराया जा सकता है ?

हुर्योधन श्रीकृष्णके पास पहले आये थे। वादमें अर्जुन अये । अतः भ्रथम चुनाव करनेका अधिकार दुर्योधनको था । वर्जुनकी वारी बादमें आती थी।

भावान् श्रीकृष्णने कहा, आप दोनों मुझसे सहायता माने अये हैं । ठीक है । मैं सहायता दोनों पक्षोंको ही दूँगा। मुझे अपनी सम्पूर्ण ताकतको दो हिस्सोंमें बाँट लेना चाहिये । वह बँटवारा मैं इस प्रकार करता हूँ । सुनिये-

एक ओर मेरी विशाल सेना, तमाम अस्त्र-शस्त्र, रथ, हाथी-त्रोड़े, यन्त्र इत्यादि सारा युद्धका सामान तथा मेरे सैनिक, सेनासंचालक योद्धा, पलटन सब भौतिक शक्ति रहेगी। मेरे शस्त्रागारमें जो कुछ है वह यह पक्ष ले सकेगा।

दूसरी ओर मैं, केवल मैं ही सहायताके लिये उपस्थित रहूँगा। एक शर्त यह है कि मैं युद्धमें स्वयं आक्रमणके लिये हाथ नहीं उठाऊँगा । लड़नेके लिये कोई हथियार कभी हाथमें नहीं लूँगा। सिकय रूपसे स्वयं किसी प्रकार भी युद्ध नहीं करूँगा। किसीको नहीं मारूँगा। मेरी तो केवल विचार और योजनामात्रसे ही आध्यात्मक सहायता होगी।

अव एक ओर मेरी सारी 'नारायणी' सेना, युद्धकी विपुल सामग्री, अर्थशक्ति है और दूसरी ओर मैं खुद हूँ। आप लोगोंमेंसे जो जिसे चाहे-(भौतिक अथवा आध्यात्मिक सहायता) ले सकता है। पहले दुर्योधन आये थे इसलिये पहले माँगनेका अधिकार दुर्योधनको है।'

दुर्योधन अपने-आपको बुद्धिमें सबसे चतुर समक्षते थे । वे सोचने लगे-सेनाकी शक्ति ही तो वास्तवमें युद्धमें काम आती है। जिस पक्षसे युद्ध करनेके लिये अधिक संख्यामें व्यक्ति रहेंगे, जिसके पास युद्धकी अधिक सामग्री होगी, अन्ततः वही पक्ष तो विजयी होगा ? सैनिकोंकी संख्या और लड़ाईके सामानका ही युद्धमें गुप्त महत्त्व होता है। एक आदमी, और सो भी विना लड़े और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

द्र

दासने दे

ओर वित

हैरान थे

लेकिन स

उनका इ

संतदासज

द्वारसे के

रह जाते

उनका स

करते हैं

धनीभूत-

ओर चाँ

वंगलको

भीछ निव

उनका ह

असभ्य ३

के चारों ;

हथियार लिये, भला इतनी विपुल सेनाको कैसे हरा सकेगा ? कदापि नहीं ! मैं तो अधिक-से-अधिक सेना, सैनिक, युद्ध-सामग्री और आर्थिक सहायता लूँगा।

इस प्रकार तर्क कर वे भगवान् श्रीकृष्णसे बोले, 'प्रभो ! मुझे महाभारत-युद्ध जीतनेके लिये आप अपनी सम्पूर्ण सेना तथा लडुनेकी सामग्री सहायताके रूपमें दे दीजिये।'

भगवान् श्रीकृष्णने समस्त सामग्री दुर्योधनको सहर्ष दे दी। वह भी इस बड़ी भौतिक सहायताकी प्राप्तिमें मन-ही-मन प्रसन्न होता चला गया। फिर इसकी प्रतिक्रिया जाननेके लिये उन्होंने अर्जुनकी ओर देखा।

गाण्डीवधारी अर्जुन बोले—'योगिराज! यह तो मेरे मनकी ही बात पूर्ण हुई। वास्तवमें मेरा भौतिक शक्तिमें तिनक भी विश्वास नहीं है। मैं तो आपको ही लेना चाहता था। यदि मुझे प्रथम चुनावका अवसर मिलता, तब भी प्रभो ! मैं आपको ही चुनता । आपकी अतुल वुद्धि, महान् आध्यात्मिक शक्तियाँ, सलाह, युद्धसम्बन्धी जानकारी और सदा परछाईंकी तरह मेरे साथ रहना-ये सभी वस्तुएँ आपकी विशाल सेना और विपुल युद्ध-सामग्रीसे वहत अधिक शक्तिशाली हैं। आप आध्यातिमक शक्तिके अनन्त भंडार हैं। मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि मनुष्यकी सची सहायता भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है। भौतिक शक्ति जल्दी ही समाप्त हो जाती है, किंतु आध्यात्मिक शक्ति अनन्त है, अखण्ड है। वही स्थायी सहायता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'अर्जुन! यह तुमने अक्षरशः सत्य ही कहा है । अविवेकी मनुष्य भ्रमके कारण भौतिक सहायताको महत्त्व देते हैं । अर्थ, सैन्यवल, युद्धसामग्री, शस्त्रवल, शारीरिक ताकतकी सहायतासे मनुष्यको कुछ देरके लिये सामयिक लाभ भले ही प्राप्त हो जाय, परंतु ऐसा व्यक्ति अपने अंदर रहनेवाली आध्यात्मिक शक्तिको क्षीण कर बैठता है, उसका आत्म-विश्वास खो जाता है। इससे अन्तमें उसका विनाश हो जाता है। मैं निःशस्त्र रहकर युद्धमें तुम्हारा रथ हाकूँगा और निरन्तर अपना आध्यात्मिक बल तुम्हें देता रहूँगा। मेरे सामने न तो अपनी कीर्ति दिखानेका प्रलोभन है, न रणमें वीरता या कुशलता दिखानेकी मेरी इच्छा है।

महाभारतका घमासान युद्ध हुआ, जो अनेक दिन चलता रहा। उसमें बड़े-बड़े योद्धा, असंख्य सेनाएँ, विपुल युद्ध-सामग्री नष्ट हो गयी। देखते-देखते समस्त भौतिक इक्ति नष्ट हो गयी। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक शक्तिसे अर्जुन शक्तिशाली और विजयी हुए। युद्धकालमें ऐसे-ऐसे विकट संकट उपस्थित हुए, जिनमें भगवान्की सलाह ही अर्जुनका एकमात्र सहारा वनी; वे भयंकर कठिनाइयोंमेंसे निकल सके और अन्तमें महाभारतकी विजय हुं

इसका कारण ? भगवान् श्रीकृष्ण युद्धमं क्र आध्यात्मिक वल वढ़ाते रहे। निरन्तर उन्हें निराहाः और कायरतासे निकालकर नव उत्साह और सहस्र रहे । जय-जय अर्जुनके मस्तिष्कमें असंतुहन हुआ मानसिक क्षोभसे उद्दिम हुए, तब-तब वे उन्हें विवेकपूर्ण और ठंडा करते रहे । धैर्य वँधाते रहे। प्राः प्रोत्साहन और कर्त्तव्यवुद्धिको सामने रखकर कार्य कर्ते क्रो, 3 उपदेश देते रहे । उन्हें स्वावलम्बनका अमृतपान कार्ते भाँति प

सची सहायता स्वयं मनुष्यकी अन्तरात्मा ही प्रकाहि कि देख करती है। वहीं सदा अर्जुनको उद्बुद्ध करती ही। इ भगवान् श्रीकृष्ण मार्ग-दर्शनके लिये अर्जुनके साथन है जिस वर तो सम्भव था वे कहीं या कभी मार्गच्युत हो ही जाते का हो। तुम मोहवरा कुछ गलती कर बैठते। पर आध्यात्मिकः मनुष्यकी जीवन-नौकाको कर्त्तव्य-पथपर स्थिर रखी अर्जुनके वहाने युद्धक्षेत्रमें ही दिया हुआ भगवान् श्रीहरू गीता-ज्ञान आज भी जगत्के जिज्ञामुओंकी शान्ति, कि और कर्तव्यपरायणता बनाये रहता है। संकट और ग्र सान्त्वना प्रदान करता है।

अतः आप अपनेको हाड्-मांसका शरीर मत मार्रे अपनेको सत्, चित्, आनन्दस्वरूप आत्मा मानिये।

आप यह नारावान् रारीर नहीं, अजर अमर 🥡 आत्मा हैं । सर्वशक्तिसम्पन्न आत्मा हैं । इस नश्चर ही प्रति किसी तरहका मोह मत रखिये। चिन्ता, माह दुःख, उत्तेजना भौतिकवादीको ही हो सकते हैं, आर्फ़्र नहीं । वह इन्द्रियोंके वशमें नहीं होता ।

भारतीय संस्कृति अध्यात्मवादको ही प्रधानता है आध्यात्मिक राक्तियोंका ही सर्वोपरि महत्त्व मानती है। इ में अध्यारमका महत्त्व भी संसारकी महानतम वस्तुओं है हैं। उसका लाभ सृष्टिके सब लाभोंसे अधिक है। हैं मनुष्यने पशुत्वकी कोटिसे उठकर देवत्वकी ओर बी की है, वह आत्माकी अनन्त राक्तियोंके कारण ^{ही है।}

'मैं पवित्र अविनाशी और सशक्त आत्मा हूँ । हैं। चमत्कारी दिव्य अंश हूँ । मुझमें सब ईश्वरीय दिव्य कु दिव्य शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, जो सृष्टिकर्ता ईश्वरमें हैं। यह मान्यता भारतीय अध्यात्मवादका आधार है।

भारतीय संस्कृतिकी पुस्तकें, हमारे ऋषि गुर्कि तिलक् अ दृष्टिकोण सदा आपको चौंकाता है और सदा यह यह भाज देव हंतोंका स है कि 'रे अविनाशी शक्तिशाली आत्माओं ! वुम अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

2080

निराशाः है

साहम ह न हुआ

गतिमक ग रखती

न् श्रीकृष त्ते, निर्म और ग्र

मत माहि प्रमर अल

श्वर शी , भा है आतम्ब

उम्हें किसी प्रकारकी अशक्तताका अनुभव नहीं करना है | तुम अन्त शक्तिशाली हो । तुम्हारी विद्याः वलः बुद्धिः, शक्तिः सामर्थ्यका पार नहीं है। जिन साधनों, जिन दिव्य ताकतोंको क्रेर तुम पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हो, वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। उन्हें हुम्हारी शक्तियाँ इन्द्र-यज्ञोंसे भी अधिक हैं । सफलता और है। पुनः ह्वास्य, आनन्द और प्रसन्नता तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं। कार्य को छो, अपने आत्म खरूपको, अपने दिव्य हथियारोंको भली-न क्यों हैं माँति पहिचानो और वुद्धिपूर्वक कर्तव्यमार्गमें जुट जाओ । प्रित्ति हो।याद रक्खो कि तुम केसे पीछे रहते हो।याद रक्खो कि तुम कल्पवृक्ष ी रही है। तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण होनी हैं। तुम पारस हो। तुम साथ न हो बिस वस्तुको स्पर्श करोगे, वही सोना हो जायगी। तुम अमृत ो जते 🛪 हो। तुम्हारी आत्मा सदा अमर वनी रहेगी, तुम सफलता हो।

याद रक्खोः, तुम नक्कर शरीरमात्र ही नहीं हो । क्षुद्र जीव नहीं हो, क्षणमात्रमें मर जानेवाछे व्यक्ति नहीं हो, वरं आत्मा हो, परम शक्तिशाली आत्मा हो। तुम क्षुद्र वासना या इन्द्रिय जन्य विकारोंके गुलाम नहीं हो । गंदी आदतें तुम्हें अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकतीं; क्योंकि तुम स्वभाव-से ही परम पवित्र हो । पापमें इतनी शक्ति नहीं कि वे तुमपर शासन कर सर्कें । तुम्हें अपने आपको दीन-हीन नहीं सम**झना** है। हे महान् पिताके महान् पुत्रो ! अपनी महानताको पहचानो । उसे खोजने, समझने और जीवनमें उतारनेके लिये तत्परता-पूर्वक जुट जाओ । तुम सत् हो । चित् हो । तुम आनन्द हो । अपनी वास्तविकताका अनुभव करो और अपनी आध्यात्मिक राक्तियोंको विकसित करो।'

मेहनतसे शान्ति

(लेखक--श्रीकृष्णवल्लभदासजी 'साहित्याचार्य' 'साहित्यरत्न')

'दण्डवत् महाराज ! दण्डवत् महाराज !' श्रीरघुवीर-^{तसने} दो बार दण्डवत् कीः किंतु संतदासजीका ध्यान इस <mark>बोर विल्कुल नहीं खिंचा। समागत संत इस बातको लेकर</mark> हैंगन थे। आखिर वे परस्पर कानाफ़ूसी करने लगे। ^{हेकिन} संतदासजी खेतमें लगातार कुदाल चला रहे थे। जन्म शरीर पसीनेसे तर हो रहा था । आगत संतोंने ^{संत्रासजीका} नाम खूव सुन रक्खा था । 'संतदासजीके बासे कोई भी भूखा नहीं लौटता। कई बार वे खुद भूखें ाता क्षी ए जाते हैं, लेकिन अभ्यागत सदा संतुष्ट होकर लौटता है। है। इह जिक्का सारा जीवन सेवामय है । दूर-दूरसे संत यहाँ आया तुओं किते हैं। आजसे पाँच वर्ष पहले गिरिनारका यह पर्वत-पाद भीभृत-जंगली वृक्ष-बेलोंसे भरा था। किंतु आज यहाँ चारों बोर चाँदनी बिछी हुई है। संतने अपने परिश्रमसे कालको आबाद कर दिया है। इससे पहले यहाँ खूँखार । कि निवास करते थें । यात्रियोंको अकेले-दुकेलेमें लूट लेना जिस काम था । आज वाबा संतदासजीकी कृपासे ये असम्य भील परम वैष्णव बन गये हैं। संध्या होते ही जंगल-के जातें ओरसे भक्तलोग आने लगते हैं। प्रायः सभी लोग किंद्र और कंडी धारण करते हैं । उन लोगोंका आचरण भाज देव गुल्य हो गया है । अब वे लोग दिल खोलकर है। अप व लाग स्वीति होता है। अप व लाग स्वीति होता

'संतजी बौरा गये हैं' गोवर्धनदासजीने कहा। 'बौरा तो तुम गये हो ' यमुनादासने प्रतिवाद किया।

'में कैसे बौरा गया हूँ १'

'देखते नहीं हो, संतजी काममें लगे हैं।'

'हाँ, यह वात ठीक है । इनका शरीर पसीनेसे भींग गया है ?'

गोकुलदासजी जमीनपर चिपिया गाड़ते हुए बोले कि—'भाई ! प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं । इन्हें दौलत मिल गयी है। अब संतोंकी क्या जरूरत है। 'किंतु गोवर्धन-दासजीने इस बातका सख्त विरोध किया । 'संतजीको मद होना असम्भव है।' गोकुलदासने कहा—

> देवरिषि होइ वानी। न

जरा जोरसे पुकारकर देख छो ।' जब यमुनादासजीने संतको जोरोंसे पुकारा तो उनका ध्यान इस ओर खिंचा। किंतु गोकुलदासजीकी बात सत्य रही । संतदासजीने दण्डवत् लेनेसे साफ इन्कार कर दिया और उन्होंने झोंपड़ेकी ओर इशारा किया । संत लोग दंग रह गये । वैशाखका महीना । दोपहरका समय और चिलचिलाती धूप। कहाँ जायँ ? चारों ओर दूर-दूरतक जंगल। गोकुलदासने कहा-

प्रिम्पिक प्रकार करते हैं। झोंपड़ेपर साँझ-सबेरे कीर्तन होता 'हमलाग भर भए जा । प्रकार करते हैं। झोंपड़ेपर साँझ-सबेरे कीर्तन होता 'हमलाग भर भए जा । एकमात्र गुरु श्रीसंतदासजी हैं।' इत्यादि। जाना ठीक नहीं। इन्होंने 'भेख'का अपमान किया है।' CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आ

विवि

निर्र

भाँ

फिर

उर्स

प्रदे

भव

गोय

वुला

हरिः

गये

सप्ता

mo

आर्ग

तीन

जाय

यथाश

हम इ

गंगोः

वद्री

हुए

होग

किंतु यमुनादासने इस प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया उन्होंने कहा—

'आदर निरादर--दोनोंमें हमें समान रहना चाहिये।

'संत सुखो बिचरंत मही।'

आखिर तय यह हुआ कि झोंपड़ेपर चला जाय। ज्यों ही वे लोग पीछे मुड़े कि उन लोगोंने कई भीलोंको दौड़े आते हुए देखा ? मच्यम कद, चौड़ी छाती, हाथमें धनुष और बाण, बिरल मूँछें, कठोरतम भुजदण्ड, सतेज आँखें और गोरा-बदन।

आते ही उन लोगोंने संतोंके चरण-स्पर्श किये। गोवर्धन-दासजी चौंककर दूर खड़े हो गये। यमुनादासजीकी आँखोंमें आँसू बह चले। संतोंकी विचित्र दशा हो गयी। आज संतोंने भगवान् राम और लक्ष्मणका साक्षात् खरूप देखा। संत लोग प्रेम-भावसे ओतप्रोत हो गये। आखिर सब झोंपड़ेकी ओर चले।

इस झोंपड़ेको वहाँके लोग मन्दिर भी कहते हैं । यहाँ शान्तिका साम्राज्य है। प्रवञ्चनामय आधुनिक शहरोंसे यह स्थान दूर—सुनसान अरण्यमें है। यहाँ सहज ही समाधि लग जाती है। गोवर्धनदासने कहा—

भाई, कुछ भी कहो, पर सत्ययुग तो यहींपर है। शहरमें पढ़े-लिखे लोग हमारी हँसी उड़ाते हैं। आज धर्मका बास बहाँ नहीं है। यहाँ है। फिर भी हमारे संत उन्हीं शहरोंमें जाते हैं और वहीं रामायण कहते हैं।

'जैसे रावणके राज्यमें ऋषि लोग वनमें रहते थे, वैसे ही हमको यहाँ आ जाना चाहिये। गुरुभाई ! दस वर्षतक मैं गुजरातमें रहा; किंतु किसी भगतने कभी भी सीताराम भी नहीं किया। अब जमाना बदल गया है।' अपना आसन उतारते हुए यमुनादासने कहा।

शोंपड़ेके चारों ओर तुलसीके पौधे लगे हैं। बेला और रातरानीकी सुन्दर सुगन्धि फैल रही है। सर्वत्र शान्ति-ही-शान्ति है। संध्या होने चली है। सूर्यनारायण दिनमर आकाशमें भ्रमण करके मानो थककर विश्राम करनेके लिये सागरमें जा रहे थे। सुदूर क्षितिजपर लटकती हुई उनकी वर्तुल स्वर्णिम आकृति पक्ते घड़ेकी तरह लाती थे।

आरती आरम्भ हो गयी। प्रार्थना हुई। सभीने कर दण्डवत्-प्रणाम किया। गोकुलदासके आश्चर्यकी उस सीमा नहीं रही, जब उन्होंने संतदासजीको अपने कर लोटते हुए पाया। पहले तो उन्होंने समझा, को संत हैं। किंतु जब उन्होंने महंतजीको पहचाना, तक अवाक् रह गये। संतदासजीने सभी संतोंका चरण-सर्व के बारीसे करना चाहा; किंतु फिर किसीने भी चरण-सर्व के बारीसे करना चाहा; किंतु फिर किसीने भी चरण-सर्व के बारीसे करना चाहा; किंतु फिर किसीने भी चरण-सर्व के

करने दिया। दृश्य देखने ही योग्य था । प्रेम-रसन्न

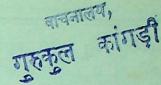
ही उमड़ पड़ा था।

ब्यालूके बाद सत्संगति ग्रुरू हुई। गोवर्धनदासने क्र भागलपुरी चादर ओढ़ते हुए कहा—'संतजी! आह जैसे भूलेभटकोंको वचनामृत पिलाइये।' कुछ देर मेन कर गोमुखीको सँभालते हुए श्रीसंतदासजीने कहा-भा और बात तो तुमको मालूम ही है; क्योंकि 'रामायण'में संस सारी बातें आ जाती हैं। लेकिन यह मैं अपना अनुमाह रहा हूँ कि मेहनत ही एक ऐसी चीज है जो मनुष्यक्षे ह उठाती है। मैं भी इधर-उधर वहुत दिनोंतक धूमा ह किंतु शान्ति कहीं नहीं मिली। अपने रामको शानि 🕏 आकर मिली। मेहनतका काम करो और फिर जा ही देखो, ध्यानमें कितना मन लगता है। आपलेगींबे बहुत दुःख हुआ होगा। आपलोगोंकी दण्डवत् भैं ली । इसका कारण यह है कि भौंने प्रतिज्ञा कर ^{ही है} 'रोज तीन घंटे खेतमें काम करूँगा और इसके ^{बीच किं} बाततक न करूँगा। अपरोध अपराध क्षमा करें। "भें दासजीकी ऑखोंमें ऑसू आ गये। उन्होंने साष्टाङ्ग र्ल् करते हुए कहा—'महाराज! आप जैसे महान् संके मैंने दुर्भावना की। इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ। मंग जीने उन्हें हृदयसे लगा लिया । सभी संतोंने ^{संतर्गा} प्रशंसा की । संतदासजीने चलते समय कहा—भीरा गा छोटा-सा दास है। भूल-चूक आपलोग क्षमा क^{रें । ह} काफी हो चुकी है। अब आपलोग आराम करें।

लगभग एक बज गया था। सुदूर जनग्र्य महिल् बाघ तुमुल घोष कर रहा था। आवाज प्रतिष्विति दिगन्तमें पुञ्जीभूत हो रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

उत्तराखण्डकी यात्रा



(लेखक--सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

गताङ्कसे आगे]

उपसंहार

उत्तराखण्डके इस अजायवघरमें हमने जिस दरवाजेसे प्रवेश किया था, वह ऋषिकेश था । अजायवघरकी तरह अगणित अजीय-अजीय चीजें हमने उत्तराखण्डमें देखीं। विविध रूपोंमें विविध भावनाओंसे देव-दर्शन किये । प्रकृति-तिरीक्षण किया, भाँति-भाँतिके लोगोंसे मिले और विविध भाँतिसे पुजा-अर्चना की, भगवत्-आराधना की । आज फिर उत्तराखण्डके उसी द्वारपर हम लौट आये । अव हम उसी संतरीके साथ थे, जिसकी इजाजतसे इस महान प्रदेशमें बुसे थे। अतः उत्तराखण्डके द्वारपाल ऋषिकेशके प्रति एक कृतज्ञ भावसे आज हम विदा ले रहे थे।

ऋषिकेशमें हम एक दिन रहे। गोविन्ददास गीता-भवनके सत्संगमें भाषण देने गये। यद्यपि वे श्रीजयद्यालजी गोयन्दकासे मिलने ही गये थे, परंतु चारों धामोंकी इस यत्राके अनन्तर जयदयालजी उन्हें सत्संगमें भाषण देने न बुलते, यह एक अस्वाभाविक वात थी। दूसरे दिन हम हरिद्वार आये और इस यात्रा-यज्ञका अवसृथ स्नान हमने हरिकी पैड़ीपर किया।

ग्यारह जुलाईकी संध्याको हम वसद्वारा दिल्ली पहुँच गये। इस प्रकार अठारह मईसे ग्यारह जुलाईतक सात सप्ताह हमें इस यात्रामें लगे।

उत्तराखण्डकी हमारी यह यात्रा, जैसा पहले कहा गया है सात सप्ताहमें समाप्त हुई। यदि जवलपुरसे यात्राका आरम्भ माना जाय तो इस यात्रामें रेल, मोटर और पैदलके वीनों मार्ग आये और यदि दिल्लीसे यात्राका आरम्भ माना गय तो हम मोटर और पैदल दो प्रकारके मार्गोद्वारा चले। ययार्थमें यात्राका आरम्भ दिल्लीसे ही हुआ।

हमारी यह यात्रा प्रधानतया धार्मिक यात्रा थी। अतः हम कहीं एक रात्रि और कहीं तीन रात्रि ठहरे । यमुनोत्तरी गंगोत्तरी और केदारनाथमें हम एक-एक रात्रि ठहरे और भेदरीनाथ, ऋषिकेश एवं हरिद्वारमें तीन-तीन रात्रि । छौटते हुए हम भरिकेशमें फिर एक रात्रि रहे और हरिद्वारमें दो रात्रि। रीप समय यात्रामें चलते ही बीता। CC-0.1

मोटरद्वारा हमने जो यात्रा की, उसमें इस यात्रामें हमें कोई विशेष आनन्दका अनुभव नहीं हुआ । जिस आनन्दका हम अनुभव प्राप्त कर सके, वह हमें पैदल यात्रामें ही प्राप्त हो सका।

इस यात्रामें उत्तराखण्डके इन चारों धामीतक पहुँचने-में हमें प्रत्येक धामके लिये दस हजार या इससे भी ऊपरकी चढ़ाई चढ़नी पड़ी । केदारनाथकी यात्रामें तो ग्यारह हजार सात सौ पचास फुटतक । हर धामके लिये हम यह चढ़ाई चढ़ते और फिर काफी नीचेतक उतरते। ठंडका अनुभव हमें प्रत्येक धाम पहुँचनेके दो-तीन दिन पूर्वसे धामसे उतरनेके दो-तीन दिन वादतक होता । केदारनाथमें सबसे अधिक ठंडका अनुभव हुआ । वर्षाके कारण यह ठंड और बढ़ गयी थी । परंतु केदारनाथकी ठंडके लिये हमें जितना डरा दिया गया था, वैसी असह्य सदींका हमें वहाँ भी कोई अनुभव नहीं हुआ । गोविन्ददासको तो केदारनाथकी सदीं बहुत मामूली जान पड़ी; क्योंकि उन्होंने वताया कि वे पाँच-छः वर्ष पहले दिसम्बरमें चीनकी राजधानी पीकिंगकी ठंडका अनुभव कर चुके थे। जहाँका तापमान सूत्यसे भी पंद्रह डिग्री नीचे था।

इस यात्रामें हमने शारीरिक दृष्टिसे जितना कष्ट भोगा, उसका इसके पूर्व हमें कभी अनुभव नहीं हुआ था । मनुष्यकी तीन प्रधान आवश्यकताएँ हैं—भोजन, यस्त्र और निवास । भोजनमें हमें गेहूँका खरात्र आटा, नये चावल, दाल ऐसी जो यहाँके पानीके कारण सीजती नहीं । हाँ, दो चीजें अच्छी मिलती थीं—एक ग्रुद्ध घी और दूसरी .आल् । इन पाँच चीजोंके सिवा हमें किसी तरकारी, फल आदि अन्य आवश्यक खाद्य वस्तुओंके दर्शन नहीं हुए । केदारनाथ-मार्गमें एक दो स्थानोंपर तथा वद्रीनाथ-मार्गमें जोशीमठमें कुछ हरे फल, सेव, नासपाती आदि अवस्य मिलते हैं, पर वहाँ भी हरी तरकारीके नामपर कुछ नहीं। फिर यात्रा मुकामोंपर कहीं भी घोत्री न मिलनेके कारण गरम कपड़ोंके सिवा रोप कपड़े हमें मैले-कुचैले ही पहनने पड़े और गरम कपड़े तो उन्हीं स्थानोंपर पहने जा सकते थे, जहाँ ठंड थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गती थी

िभाग है।

सभीने पर ी उस मपने चले

1,藏 ना, तव ते

ण-स्पर्ध ह रण-सर्ग ह

-रसका ह

दासने अन ! आप ह रेर मौन ह

र्ग-।भा ण'में संसत

अनुभव ह

नुष्यको ह घूमता ए

ानि क ् जप श्र

तेगोंक्रे अ त् मेंगे

री है।

ीच कि 小睡

াই ক্র

संतके हैं 17 संवह

संतद्गि U UH F

就 19

महार

निव हैं

8-

百

मो

या

मि

लोग

स्टें

जह

यद्या

यह ः

आक

समय

सरित

काशी

वड़ी र

और ः

दिखाः

सुखोंसे

और

₹3 E

हुए हैं

होते ह

है तो इ

इमारे

होती

यात्री

ऐसे स्थानोंपर सात हफ्तेकी यात्रामें शायद हम केवल दो हफ्ते रहे हों । निवासके स्थान कैसे थे, इसका उल्लेख इस पुस्तकके पिछले अध्यायोंमें अनेक स्थलोंपर हुआ है। डाक-बंगलों और केदारनाथ-वदरीनाथकी धर्मशालाओंको छोड़ चिट्टयोंकी जिन धर्मशालाओंमें हमें टहरना पड़ा, उन धर्मशालाओंके मकान सारी आधुनिक सुविधाओंसे रहित थे। स्नानागार और शौचालय तो दूरकी वात है, लघुशंकाके लिये भी एक एक फर्लांग दूर जाना पड़ता था । कोई मोरी नरदातक नहीं, जहाँ हाथ धोये जा सकें। भाग्यवशात् यदि कोई बीमार हो जाय तो उसे १०४ और १०५ डिगरी वुखारमें भी ल्धुरांकाके लिये रात्रिको बरसते पानीकी भीषण सर्दीमें ऊवड़-खावड़ मार्गसे फर्छोगभर चलना पड़े और हाथ घोने या कुल्ला करनेके लिये भी वाहर निकलना पड़े। फिर निवास-स्थानकी इस व्यवस्थामें गंदगीकी पराकाष्ठा, मिक्लयोंके दल-के-दल और अनेक स्थलोंपर खटमल, पिस्सू, चीलर, न जाने कितने प्रकारके की डे-मकोडे ।

रास्ते अनुमानसे अधिक उतार-चढ़ाववाले । यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीका मार्ग तो अत्यन्त बीहड़, दुर्गम और भयानक है । जहाँतक मार्गोंके चढ़ाव-उतारका प्रश्न है, वह किसीके बूतेकी बात नहीं। वह तो हिमालयकी शोभा है । किंतु जहाँतक मार्गके ऊवड़-खावड़ और बीहड़ताका प्रश्न है, हल किया जा सकता है और किया जाना चाहिये । केदारनाथ और बदरीनाथके रास्ते चढ़ाव-उतारके होनेपर भी बुरे नहीं हैं ।

यात्रियोंकी संख्या प्रतिवर्ष वढ़ रही है । यह सचमुच खेदकी वात है कि यमुनोत्तरी और गंगोत्तरीके मार्गोंको स्वतन्त्र भारतकी सरकारने अव भी ठीक नहीं कराया है सौभाग्यसे भारत एक गणरान्य है, वह भी धर्मनिरपेक्ष राज्य । भारतमें विभिन्न मतों, धर्मों और सम्प्रदायोंके लोग रहते हैं। सबके हित-साधनके लिये सबको सम न्याय मिले । सभीके साथ सम-व्यवहार हो, इसके लिये जरूरी था कि राजकीय स्तरपर धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया जाय । किंतु इस राजकीय स्तरपर धर्मनिरपेक्षताका अर्थ । कदापि नहीं । यदि ऐसा होता तो हमारी सरकार कुम्भ, ग्रहण, संक्रान्ति आदि अवसरोंपर जो मेलोंका प्रवन्य करती है, वह क्यों करती । कहा जा सकता है कि इन कुम्भ, सूर्य और चन्द्र-ग्रहण तथा संक्रान्ति आदि पर्वोके समय सरकार जो प्रवन्ध करती है, वह धार्मिक दृष्टिसे नहीं, वरं यात्रियोंकी सुख-सुविधा, उनके स्वास्थ्य और सुरक्षाकी दृष्टिसे करती है। शासन-व्यवस्थाः, इस यातायातस निःसदेह हिमालयकपारचय आर् CC-0. In Public Domain. Gundkul Kangri ट्रीकिंटाश्यान्मित्रे प्रचारकी दिशामें बड़ा काम हुआ

के कर्तव्यरूपमें हम भी इस तर्कसे सहमत हैं और जाहों यही हैं कि हमारी सरकार भले ही धार्मिक सरकार ने के किंतु एक स्वतन्त्र देशकी सरकारके नाते उसके सुशासन के मुन्यवस्थाके लिये जो उत्तरदायित्व उठाने पड़ते हैं, उक्षे अनुरूप तो बने । भारतमें हमने जनतन्त्रकी स्थापना क्षी हित और उसकी अधिकाधिक हैं। यह जनताके संकल्पसे प्रेरित होकर ही । फिर हम ही उसके हितांकी, उक् मुखोंकी, उसके शरीर और स्वास्थ्यकी उपेक्षा करें, के जोखिममें डालें, यह हमारी कर्तव्य-मूर्छा ही नहीं, एक संक विधर्मीपन भी होगा । केदारनाथ और बदरीनाथके रास्ते के हैं, इसका श्रेय स्वतन्त्र भारतकी सरकारको न होकर और सरकारको है। यमुनोत्तरी और गंगोत्तरी मार्गमें एक साने द्सरे स्थानकी दूरी, कहाँ चढ़ाई आरम्भ होती है, क्हाँ आर इसकी सुचनाएँ तक नहीं लिखी गयी हैं। इलाजकी भी हैं व्यवस्था नहीं है। इन मार्गोंमें शौचालय और मूत्रालय कार्ते सिवा सरकारने कुछ भी नहीं किया है। अतः हर की सरकारको अनेक प्रकारके शाप देता हुआ यह यात्र ऋ है। स्वतन्त्रताके वाद मोटरोंके रास्ते अवस्य कुछ दूरतक है हैं और तेजीसे आगे वढ रहे हैं। इन मोटर-मागोंसे जहाँ ए ओर यातायातकी सुविधाएँ वटी हैं, दूसरी ओर यात्रा धार्मिक महत्त्व भी घटा है। हम यह जानते हैं कि ब ऋषिकेशके आगे मोटर-मार्ग नहीं था और लोग वर्गीका या केदारनाथ पैदल जाते थे तो उन यात्रियोंकी संख्या ^ई वहुत अधिक नहीं होती थी। ज्यों-ज्यों साधन बढ़ेः यात्रिकें संख्या भी बढ़ती गयी और आज तो प्रतिवर्ष प्रत्येक धार्म हजारोंकी संख्यामें देशके विभिन्न भागोंसे लोग यात्रापर अ हैं। स्वाभाविक ही है कि जिस धामको देशकी जितनी ^{अर्कि} आवादी आयगी, उसका महत्त्व उतना ही अधिक बहेगा पुराने जमानेमें सुदूर गाँवोंसे दो-दस आदमी इन पुण्यपानी यात्राकर जब लौटते थे, तो अनेक अजीव और चमक्री कथाएँ लोगोंको सुनाते थे और ये इने-गिने दो-दस आदमी हजारों प्रामवासियोंको उत्तराखण्डकी महिमासे अव्यति ही देते थे। आज जब इतनी बड़ी संख्यामें लोग यात्रापर आहे। तो कहना न होगा कि भारतकी कितनी बड़ी आबादी यात्रियोंकी यात्राओंसे लाभान्वित होती है और उत्तरिष्ट हिमालयकी महिमासे परिचित । अतः मोटर-मार्गीसे मेट्टि इस यातायातसे निःसंदेह हिमालयकेपरिचय और उत्तरालाई

र न के

ना की है

क सेवाई

करें, से

रास्ते क्र

कर ओ

क स्थाने

नहाँ उतार

भी औ

त्य बनाते

हर यात्री

त्रा कृत

रतक दे

जहाँ ए

(यात्राज्ञ

कि बा

बद्रीनाथं

खा ग

यात्रियोत्री

ह धामहो

पर आ

नी अधिक

बंदेगा

यधार्मार्ग

मत्कारिक

गदमी ही

गत की

आते हैं

ही इव

विण्डवी

मोर्गे

विण्डक

आहै

भाग ३१ किं इसके साथ ही जो एक वड़ी हानि हुई है और हो रही है चाहते ह उसकी भी हमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। साधारण वातोंमें मोद्र यातायातसे यहाँके निवासियों, मजदूरों आदिको यात्रियों में यात्रा-कालमें जो थोड़ी बहुत मजदूरी और व्यवसाय तासन के मिल जाता था वह छिन गया है और अब यह पूँजीवाले उन क्ट अ होगोंका रह गया है जो अपनी लागतके वलपर मोटर हुँ होंगर बड़ी-बड़ी दूकानें लगाकर बैठ गये। निम्न रर्नेका मजदूर या छोटा व्यापारी अपनी असमर्थताके कारण की, उन्हें बहाँ पहले था, उससे भी नीचे आ गया है। मजद्रोंको अय मजदूरी तलाराने या तो ऋषिकेश उतरना पड़ता है क संबंध अथवा अन्य मोटर-अड्डोंपर जाना पड़ता है, फिर इस खुदगर्जी-के कारण मनरूरों की अपनी साख भी गिर गयी है। दूसरी सबसे प्रधान हानि जो मोटर यातायातसे हो रही है, वह है गात्राके आकर्षणमें कमी होना । आस्था और आकर्षण ग्रापि दो अलग-अलग चीजें हैं, किंतु उनका सम्बन्ध अयोत्य है। विना आकर्षणके आस्था सम नहीं होती। यह आस्या चाहे व्यक्तिके प्रति हो, किसी वस्तुके प्रति हो य अपनी भावनाओंके किसी देवताके प्रति हो। जबतक हमें उस व्यक्ति, उस वस्तु और उस देवतामें विद्यमान कुछ आकर्षक तत्त्व दिखायी नहीं देंगे, हमारा उस ओर खिंचाव नहीं हो सकता और विना मनका खिंचाव हुए हमारे अंदर आसा प्रकट नहीं हो सकती। फिर यह आस्था भी दो प्रकारकी होती है—एक रस्मी (व्यावहारिक), दूसरी आन्तरिक । हमारे यहाँ नर्मदा-तटपर, गंगा-तटपर हर पूर्णिमाको ^{मेळे} लगते हैं । **सू**र्यग्रहण, चन्द्रग्रहण और कुम्भ, अर्द्धकुम्भके ^{समय} लोग सैकड़ों-हजारों नहीं, लाखोंकी संख्यामें इन पावन सिताओंमें पर्व-स्नान करते हैं; यही नहीं, मथुरा, वृन्दावन, काशी, पुरी, द्वारिका, रामेश्वरम् आदि तीथोंको प्रतिवर्ष एक वड़ी संख्यामें लोग जाते हैं। किंतु आजके उत्तराखण्डके यात्रियों और इन तीथोंके यात्रियोंमें यदि हम भावनाकी दृष्टिसे मिलान करने वैठें तो हमें एक वड़ा अन्तर शायद आकाश-पातालका दिखायी देगा। अध्यातम-सुखकी प्राप्तिके लिये आधिभौतिक हुबाति पिण्ड छुड़ाना या उनका त्याग करना जरूरी होता है और इसके लिये सर्व-प्रथम हमें उस वातावरणसे उस जीवनसे कें देरके लिये दूर हटना पड़ता है, जिसमें हम कण्ठतक डूबे हुए हैं। उत्तराखण्डका हर यात्री इस जीवनसे घरसे विदा होते ही मुक्त हो जाता है। यदि इसमें थोड़ी-बहुत कमी रहती भी हैतो ऋषिकेश्से तो वह सर्वथा गुद्ध सात्त्विकी हो ही जाता है। पर हमारं अन्य तीर्थोंके, जिनकी यात्रा मोटर रेल या अन्य वाहनोंसे होती हैं। सम्बन्धमें यह बात नहीं हो पाती । इसका कारण है। यात्री अपने पारिवारिक नागरिक जीवनमें पूर्णतया लिस रहते हुए ही ये यात्राएँ करता है। फिर जहाँ ये तीर्थ हैं, वहाँ भी

पूर्णतया नागरिक जीवन रहता है। अतः मुखमें रहकर मुख-की और दुःखमें रहकर दुःखकी वड़ाई हम जिस तरह नहीं जान पाते । नागरिक जीवनमें रहते हुए अध्यात्म-मुखकी सची अनुभूति नहीं उठा पाते । फिर च्यों-च्यों यात्रीका हिमालयकी निर्मम कायासे सम्पर्क होता है, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता है अपने अंदरकी वासनाएँ माया-मोह पीछे छोड़ता जाता है। इन बीहड़ पथों और दुर्गम चढ़ाइयोंसे जब वह प्रकृतिके इस विराट्रूपका साक्षात् करता है, अपने इष्ट मनोरथोंको साकार देखता है तो सांसारिक माया-मोहके ममत्वकी तो कौन कहे, स्वलको ही भुळा बैठता है। देव-दर्शन, प्रकृति-दर्शनका यह दिव्य सुख जो यहाँ मिलता है वह अधिकतर हमारी श्रद्धापुर्ण कष्टसाधनाके कारण। अपने अनवरत श्रमके कारण। मोटरासे रेलगाड़ियों और अव हवाई जहाजोंसे भी लोग तीर्थ-यात्राएँ करते हैं । कोई कुछ दिनोंमें, कोई कुछ घंटोंमें अपने मनोरथोंको पा जाते हैं। किंतु इन कुछ दिनों और वंटों बाद विना किसी विदोष कष्ट या अमुविधाओंके इन देव दर्शनोंमें, और उत्तराखण्डके इस वीहड़ और विकट चढ़ाईवाले पैदल मार्गसे चलकर हफ्तों बाद प्राप्त होनेवाले दर्शनोंके सुखमें जो अन्तर है, उसमें जो गहराई है, उसे कोई वक्ता, लेखक या कवि नहीं नाप सकता। वह तो इस पथके यात्रीके ही अनुभव-की चीज है। यहाँ जैसा मुखः विपुल वनश्रीकी अनुपम शोभा और जैसी आत्म-शान्ति मिलती है, पग-पगपर पैदल चलने-वाले यात्रीको हिमालयके इस महान् प्रदेशमें उसके दर्शन और अनुभव-मुलके आगे सचमुच स्वर्गिक मुल भी भीका पड जाता है। निर्विवादरूपसे मोटर-यात्रामें यह सुख क्षीण हो जाता है। रारीर-श्रम, कष्ट और यातनाएँ ही आदमीकी अनुभवकी लम्बी मंजिल तय करती हैं। बिना यह मंजिल तय किये कोई अच्छे-बुरेकी, सुख-दु:खकी, गुण-अवगुण और ग्राह्य-अग्राह्यकी पहचान नहीं कर पाता । यही नहीं, भौतिक भव-व्याधियोंसे प्रस्तः भौतिक क्लेशोंसे कसा और यातनाओंसे डँसा मानव जव जीवनकी विषम और कष्टतर कसौटीपर कसा जाता है, तभी वह प्रकृति और परमेश्वरके निकट पहुँच पाता है। सीधे शब्दोंमें असाक्षात्का साक्षात्कार वह तभी कर पाता है, जब उसके अदृश्य अन्तःकरणसे एक टीस उठती है, किसी कष्टके अतिरेकमें वह करुण कण्ठसे आर्तनाद कर उठता है। कष्टकी यह स्थिति, आत्माका यह जोर जीवनके सीधे-सादे रास्तेसे नहीं जा पाता । इसके लिये तो विपरीत परिस्थि-तियाँ, संवर्षमय जीवन और त्रुजानी मंजिल ही कारगर होगी। उदाहरणार्थ कुछ ऐसी बातें हमारे सामने हैं, कड़ी धूपमें मेहनत करनेपर जब शरीर पसीनेसे तरबतर हो जाय, तभी तनको सहलाती शीतल हवा तरल और मधुर मालूम पड़ती है। तृषासे जब हमारा कण्ठ सूख जाय और क्षुघारे प्राण

事

स्व

प्रार

निः

ऐति

आः

वर्त

पढ़ा

भार

भेष्ठ

विकल हो जायँ, तभी भूख और प्यास तथा अन्न और जलकी हमें वास्तवमें पहचान होती है। इसी तरह सहस्रों लट्टुओंसे जगमगाते विजलीके प्रकाशकी पहचान हम कहाँ कर पाते हैं, यह तो हमें तभी होती है, जब हम किसी निर्जन बीहड़ वनमें रात्रिके अँधेरेमें भटक जायँ और सौभाग्यसे यदि कहीं कोई जुगनू चमक जाय अथवा सौदामिनी दमक जाय तो हमें अधियारे और उजियालेका भेद तत्क्षण मालूम हो जाता है। यही नहीं, उसी समय अधियारेके आधिपत्यसे मुक्ति दिलाने-वाले प्रकाशकी एक किरणके प्रति हम तत्क्षण कृतज्ञभावसे नतमस्तक हो जाते हैं। इसी तरह नौ मासपर्यन्त अपने उदरमें एक मांसपिण्डको धारण कर कामनाओंके सखकी प्रतीक्षामें कष्टकी मंजिलपर चल घोर प्रसवपीडाके बाद ही नारीको नवल शिशुके दर्शन होते हैं और ममतामयी माता या जननीका सौभाग्य-पद मिल पाता है। अतएव कछोंकी इस गाथामें सदा ही छोटे-बड़े सुखोंकी सृष्टि हमें दिखायी दी है और इसीलिये हमें किसी वड़े सुखकी प्राप्तिके लिये सीधे-सादे मार्गसे न चलकर ऊँचे-नीचे आड़े-टेढ़े रास्ते जाना ही श्रेयस्कर होता है। दुष्कर और दुर्गम मार्गसे चलकर सुखप्राप्तिकी आकांक्षा और संतोषका अनुभव ही हमारी सभ्यताका, हमारी संस्कृतिका प्रधान लक्षण है। यही बात हमारे उत्तराखण्डके इन देवस्थानोंके सम्बन्धमें है। हम जानते हैं आधुनिक युग विज्ञानका युग है। यदि इसे हम वैज्ञानिक युग न भी कहें तो विकासका युग तो कहना ही पड़ेगा। आज हम वहाँ खड़े नहीं रह सकते जहाँ आजसे सी-दो सी वर्ष पूर्व खड़े थे। यदि हम ऐसा करें भी तो हमें इससे कुछ हासिल नहीं होना है, उल्टे हमारे साथी हमसे इतने आगे दूर निकल जायँगे कि इम उन्हें देख भी न सकेंगे। ऐसी स्थितिमें हमें जमानेके साथ तो चलना ही पड़ेगा, किंतु जमानेकी इस हवामें बहनेकी अपेक्षा यदि हम अपनी अलगं रफ्तार वना सकें तो हमारा पूर्व अस्तित्व भी बना रहेगा और वर्तमानके भी हम पीछे न रहेंगे।

हमारी राय है कि उत्तराखण्डके धामोंको चतुर्दिक् मोटर-मार्गोंसे घरनेकी अपेक्षा कुछ सिद्धान्त बनाये जायँ और इन सिद्धान्तोंके अनुसार यातायातकी सुविधाएँ बढ़ायी जायँ। इन सिद्धान्तोंमें पहला सिद्धान्त तो यह तय किया जाय कि उत्तराखण्डके चारों धामोंके कम-से-कम पच्चीस-पच्चीस मील इस तरफतक मोटर-मार्ग लाकर छोड़ दिये जायँ शेष पच्चीस मीलकी दूरी यात्रियोंके पैदल मार्गकी रहे। पैदलके इस मार्गको शासन पक्का बनवा दे, किंतु इसकी चौड़ाई इतनी ही रहे, जिसमें कि इसपर केवल पैदल आदमी, साइकिलें, खचर आदि ही जा सकें। जीप, मोटर कार आदि नहीं। अन्यथा अधिका-रियों और धनिक वर्गके लोगोंकी यात्राएँ जीपों और मोटर-

कारोंसे ही होंगी । नतीजा यह निकलेगा कि ये तीर्थहाः रहकर सेर-सपाटेके स्थान वन जायँगे, जिससे इन विश्व जीपों और मोटरकारोंका जमाव जन-साधारणकी के अधिक होने लगेगा और शासनके लिये यह एक समस्त्र जायगी। जैसा कि हमने वदरीनाथ अध्यायमें संक्षेप्ते देवस्थानोंमें प्रत्यक्ष या परोक्षमें वढ़ रहे अनाचारांकी कि की है, उसका मूल कारण बदरीनाथ पुरीको आधुनिकता क्र करना है। यदि जैसे साधन और मुविधाएँ बदरीनाथ को लिये जुटायी गयी हैं और दूसरी जगह भी जुटायी गयी हैं। इसमें संदेह नहीं कि वही वातें जो बदरीनाथ पुरीके सकत सुननेको मिलती हैं, अन्य धामोंमें भी हो जायँगी। आ इस दृष्टिसे इन देवस्थानोंको सर्वथा पवित्र रखनेके लिये सहा को कुछ कड़े कदम उठाने चाहिये। मदिरा सेवन, विका और चोर-वाजारी आदि अनैतिक वातोंके लिये तो सखातं तुरंत सख्त कानून बनाने चाहिये। हमारा विश्वात है। उत्तर-प्रदेशका शासन और उसके सभी विधायक हमोह सुझावपर गौर करेंगे।

दूसरी प्रधान बात है, इस क्षेत्रकी आर्थिक उन्नीतं जैसा कि हमने अभी कहा, हम इस यात्रापर प्रधानतया धाँ भावनासे ही गये थे; तथापि जवतक आधिमौतिक श्री जिसके लिये कहा गया है 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' 🜃 मानव किस प्रकार रहता है और क्या क्या सहता है ही भी ऑखें नहीं मूँदी जा सकतीं। अतः आध्यात्मिक प्रेरणहेर् सात सप्ताहोंका जीवन ओत-प्रोत रहनेपर भी हम 🦚 गरीबीको तथा अपनी सरकारकी अकर्मण्यताको देखकाई हुए बिना न रह सके। यों तो सारा भारत देश हैं हैं है, न ्लोगोंको भर पेट भोजन मिलता है, न पहनेकी वस्त्र और न रहनेको यथेष्ट आच्छादन । जहाँ प्रकृति^{ते अ} धन बरसाया है, वहाँ मानवके कुछ न करनेके का गरीवी और उत्कट स्थितिमें है। यहाँ इतना पानी है अन्यत्र कहीं नहीं, उसका सिंचाईमें कम से कम उपयोगहीं है। इस सिंचाईसे यहाँ केवल अधिक अन्न ही नहीं अ जा सकता, परंतु फर्लोगों लम्बे-चौड़े फलोंके उद्यान हमा सकते हैं। खनिज पदार्थों की खोजकर उन खनिज प्र पर्वतराजके पेटसे निकालकर जन-उपयोगमें लाया जा ही है। जंगली वृक्षों और वाँससे कागजके कारलाते कर् सकते हैं। भेड़ोंकी नस्लोंका सुधार कर उनसे कनकी वढ़ा ऊनके गृह-उद्योग जारी किये जा सकते हैं। मार्गके हरसिल नामक गाँवमें हमने जनका यह उद्योग कर यहाँके लोग लोई, कम्बल आदि बनाते हैं। यदि इत्रं श

तीर्थसानः न तीर्थस्य (णकी अंत क समस्य संक्षेपमे ह कि विकास निकता प्रक

[भाग है।

रीनाथ पुरी यी गयी है, है रीके सम्बद्ध र्गी। अवस लिये सत्ता ान, व्यभिन

तो सरकार विश्वास है है क हमारे झ

उन्नतिशं नतया धारि क शरीरो धनम्'तक ता है। ह

व्रेरणासेह हम की देखका हुन देश ही गरी

गहननेको हैं कृतिने अ 神柳 福信

उपयोग हैं हीं अर्थ न लगावेड ज परार्थी

ा जा सर् चलविं नकी उत्

村村 योग हैं

हें शिर्व

क्षरपर सहयोग और प्रोत्साहन मिले तो ये लोग और अधिक उपयोगी कार्य कर सकते हैं । अन्य स्थानोंपर भी इस उद्योग-को बढ़ाया जा सकता है। काश्मीरमें जिस तरह दस्तकारीका काम अच्छा होता है और विपुल परिमाणमें वहाँके निवासियों-की आजीविकाका साधन काश्मीरके गृह-उद्योग ही हैं, उसी तरह यहाँके निवासियोंको भी इन उद्योगोंकी स्थापना कर ख़ावलम्बी बनाया जा सकता है। जड़ी-बूटियों, बनौषधियोंका बी भंडार यहाँ अज्ञानके आवरणमें विख्रुत पड़ा है, उसकी खोज कर कौन-कौनसी जड़ी-बूटियाँ भूगर्भमें हैं, कन्द, बेलें और छताएँ कौनसे उपयोगमें जा सकती हैं, इसका अनुसंधान

और अन्वेषण करा राष्ट्रका स्वास्थ्य-संरक्षण कर उसे स्वावलम्बी वनाया जा सकता है। यहाँके वृक्षांसे अनेकोंमें एक गोंद-जैसा लैसदार पदार्थ पाया जाता है, अनेकोंमें तैल-जैसा तरल पदार्थ, इनकी भी खोजकर विविध वस्तुओंके निर्माण और उपयोगमें इन्हें लाया जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि न जाने क्या-क्या यहाँ किया जा सकता है। इस ओर वासुमती चावल बहुतायतसे होता है। आद्की खेती भी हमने खूब देखी । इस दिशामें भी सिंचाई आदिके साधन बढ़ाकर पैदा-वार बढ़ायी जा सकती है । किंतु, ये कार्य तो दूर रहे, सरकार अभीतक यात्रा-मुविधाएँ भी नहीं जुटा पायी है। (ऋमदाः)

भारतीय साहित्यमें 'आर्य'-सम्बन्धी मान्यता

(लेखक--प्राध्यापक श्रीबद्रीप्रसादजी पंचोली एम्० ए०, साहित्यरल)

किसी भी राष्ट्रके लिये उसका इतिहास प्रेरण-स्रोत होता है। इस कथनमें किसी प्रकारकी असंगति नहीं है और साथ ही यह भी सत्य है कि विकृत इतिहास राष्ट्रीय जीवनमें विष घोल दिया करता है। कोई भी आक्रान्ता अपना प्रभाव श्रायी वनाये रखनेके लिये राष्ट्रीय साहित्यमें मिश्रण करना प्रारम्भ करता है और कम-से-कम उन मान्यताओंको समाप्त करनेका तो प्रयत्न अवस्य ही करता है, जिनके आधारपर उस राष्ट्रके लोग गौरवके पदपर आरूढ़ रहते हैं, एक सूत्रमें नियद्ध होते हें या हो सकते हैं। बौद्धिक युगमें तो इस ^{साधन}का और भी अधिक सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है।

विगत राताव्दीमें भारतपर योरोपीय जातियोंका आक्रमण हुआ और उन्होंने उक्त साधनको प्रमुख रूपसे अपनाया । सबसे पहले उन्होंने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि भारतमें ^{ऐतिहासिक-}ज्ञानका अभाव था । तदुपरान्त अनुमानोंपर आवारित मनमाना इतिहास प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया। वर्तमान शिक्षाप्रणालीके सभी विशेषज्ञ जानते हैं कि विद्यालयोंमें ^{पढ़ाये} जानेवाले इतिहासका भावी जीवनमें कोई उपयोग नहीं हैं न हो सकता है। इसिलये वर्तमान ढंगकी इतिहासकी ^{शिक्षा} केवल विद्यार्थियोंके मनको विकृत करनेके साधनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं कही जा सकती।

१८३५ ई०में लार्ड मैकालेने कहा था कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य ब्रिटिश म्यूजियमके दो ग्रन्थोंके समान भी भेष नहीं है। इसीसे उसने ऐसी योजना बनायी थी कि

भारतमें ऐसी श्रेणी उत्पन्न की जाय, जो रूप और रंगमें भारतीय हो पर रुचि, सम्मति, विचार और वुद्धिमें पूर्णतः अंग्रेज हो।'(G. H. 1. vol. VI P. III)

अल्वर्ट वेवर और ह्विटलिंगने वताया कि महाभारत और गीतापर ईसाई धर्मका प्रभाव है। ग्रिसवोल्डने लिखा कि वैदिक त्रिदेव-विचार ईसाई धर्मग्रन्थोंकी त्रयी (Trinity) के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रकार भारतीयतापर होते हुए आक्रमणको देखकर किसी-किसी उदार योरोपीयका मन तिल-मिलाया भी । गोल्डस्ट्रकरने लिला-ध्राथ, वेबर, ह्विटलिंग, पूहन आदि विद्वान् किसी रहस्यपूर्ण कारणसे इस बातके लिये दृढसंकल्प हैं कि जैसे भी सम्भव हो भारतका गौरव नष्ट किया जाय।'

मैक्समूलर, ह्विटने, ब्लूमफील्ड, ओल्डेन वर्ग आदि सभी प्राच्यविद्याविद्यारदोंने जी खोलकर भारतीय धर्म और दार्शनिक मान्यताओंकी निन्दा की । हाँ, यह ठीक है कि बीच-बीचमें वे कुछ प्रशंसात्मक वाक्य भी अपनी निष्पक्षता सिद्ध करनेके लिये कह गये हैं। विलियम आर्चरने सम्पूर्ण भारतीय साहित्यको 'वर्बरताका स्तूप' कहकर इस प्रवृत्तिको चरम सीमा-तक पहुँचा दिया। उनके पिछलग् भारतीयोंने उन्हींकी हाँ-में-हाँ मिलाकर उनकी मान्यताओंको पुष्ट करनेके लिये भारतीय साहित्यसे प्रमाण खोजना प्रारम्भ किया । भारतके कुछ लोगोंने इस आक्रमणका सामना करनेके लिये अपने साहित्यका युगा-

आये हैं

अलगसे करनेवार

आदि

दास या

इन्द्र राज

एक स्था

जानो उ

ह्यार्थान्

इन्द्र

राष्ट्र प्र

नरूप बौद्धिक विवेचन करके उसकी श्रेष्ठता स्थापित की। आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्द ऐसे विचारकोंमें सबसे आगे थे, जिन्होंने अपनेको आर्य अथवा श्रेष्ठ कहा, भारतीय साहित्यको आर्यसाहित्यकहा और भारतीय भाषाओंको आर्य भाषाओंके नामसे सम्बोधित करके आर्य (श्रेष्ठ) राष्ट्रका विचार हमारे सामने रक्ला । स्वामीजीकी शैली तार्किक होनेसे न केवल आक्रमणका सामना करोमें ही समक्ष थी वरं प्रत्याक्रमण करनेमें भी अमोत्र दास्त्रके समान थी। पाश्चात्त्योंने कल्पना की तथा कल्पित युक्तियाँ गढ़-गढ़कर यह प्रचार किया कि योरोपीय आदिम जाति ही आर्य थी, जो कभी भारतमें जाकर बस गयी। निश्चय ही इसके प्रचारका कारण राजनीतिक रहा है। भारतीयोंमें र ष्ट्रपेमके प्रति उदासीनता उत्पन्न करना भी इसका एक प्रधान उद्देश्य था।

भारतीय साहित्यमें 'आर्य' शब्दका प्रयोग कहाँ किस अर्थमें हुआ है यह दिखाना ही प्रस्तुत लेखका विषय है। हाँ, इतना कि कहीं भी 'आर्य' दाब्द किसी जातिके रूपमें व्यवहृत नहीं हुआ है और न कहीं बाहरसे ऐसी जातिके भारतमें आगमनकी वात ही भारतीय साहित्यमें कहीं मिलती है। आर्य-क्रमणकी मान्यता रखतेवाले सभी विद्वानींने भी इस वातको स्वीकार किया है। आर्योका निवासस्थान पृथक् रूपसे विवेचनका विषय है। यहाँ केवल आर्य शब्दपर ही विचार किया जा रहा है।

वैदिक संहिताओंमें लगभग ६० वार आर्य शब्द आया है। ऋग्वेदमें ३३ वार इस शब्दका व्यवहार हुआ है-१० बार बहुवचनमें और २३ बार एकवचनमें । बहुवचनमें भी यह ७ बार कर्ताकारकमें पुँक्टिङ्गके रूपमें, १ बार कर्म कारक (पु॰) में और २ वार कर्ताकारकमें नपुंसकलिङ्गमें व्यवहृत हुआ है। एकवचनमें यह शब्द ४ बार कर्ता-कारकमें, ३ बार सम्बन्धकारकमें, ९ बार कर्मकारकमें, १ बार अपादानकारकमें, ७ वार सम्प्रदानकारकमें और १ वार करण कारकमें प्रयुक्त हुआ है। कहीं भी यह शब्द किसी आक्रान्ता जातिकी सूचना नहीं देता।

ऋग्वेदके (५। ३४। ६) इस मन्त्रमें आर्य शब्द इन्द्रका विशेषण है। कहा गया है—'आर्य अर्थात् स्वामी इन्द्र विश्वका दमन करनेवाला सबको डरानेवाला है, वह श्रमिकोंको नियन्त्रित करता है (इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः)। यहाँ इन्द्र शब्द

राजाका पर्याय मात्र है और आर्य उसका विशेषण। आर्य शब्दका अर्थ स्वामी और वैश्य किया है (क आय राज्यका . स्वामित्रेइययोः, अर्थ एव आर्थः)। एक अन्य के होतींव (१० | ३८ | ३) में कहा गया है—जो दानगीह है इन्द्र बहुतोंके द्वारा स्तुत होकर हमें कर्म अथ्या संग्रामके लिये प्रेरणा देता है (यो नो दास आयों वा पुरक्षे इन्द्र युधये चिकेतति) । उल्लेखनीय यात गर् यहाँ आर्य और दास दोनों शब्द एक ही अर्थमें को ७।८ और इन्द्रके विशेषण हैं। वह स्वामी इन्द्र अमिग्रें हैं (८ आदर्श बनता है (विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः — ११०१। १३८ । ३) । उसके समस्त श्रेष्ठपुरुष (आर्थ) का (दास) समान हैं। (यस्यायं विश्व आर्यो दासः—ऋ०८ (५१।९)। उक्त चारों स्थानोंपर आर्य एवं समाक प्रयोग एक साथ हुआ है। तीन 'स्थानींपर आर्व ह स्वामी या श्रेष्ठके अर्थमें इन्द्रका विशेषण है और एक सर पर श्रेष्ठ मनुष्योंके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी ल दास शब्द दो स्थानोंपर अमिकवर्गके लिये, एक सक भृत्य या भक्तके लिये तथा एक स्थानपर दानशील अई इन्द्रका विशेषण बनकर प्रयुक्त हुआ है।

ऋग्वेदमें दस्यु या दुष्ट आयोंसे भिन्न माने गर्ने कहा गया है 'हे विद्वान्, वज्र धारण करनेवाले इद्र ह दुष्टोंके लिये शस्त्र-प्रयोग करके शक्तिशाली या ज्ञानसन जिसके (शुम्नं) आर्यको वर्धित करते हो अथवा करो। १ (१ है कि आ १। १०३। ३)। वह इन्द्र यज्ञ करते हुए अभा^इ वे तीनों अ करते हुए आर्यकी जीवनसंग्राममें रक्षा करता है (मा भुवनेषु रे यजमानं आर्यं प्रावद्—ऋ० १।१३०।८)। एक सि नेवल ए पर कहा गया—'इन्द्र मनुष्यको उन्न्वल ज्योति 🌃 म्युक्त हुउ कि वेसाम्र करे (विद्वत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् — ऋ०१०। ४३।४) यहाँ आर्य राब्द च्योतिका विशेषण और श्रेष्ठता या उन्नि दानशील (का प्रतिपादक है। विद्याद्वारा आर्यत्वका वरण करके विद्वानोंको की इन्द्र सभी नाशकारी शक्तियोंसे रक्षा करते हैं (हर्व 'आर्याः' व दस्यून पार्यं वर्णमावत्)। इन्द्र आर्योको हिंसकारे अभिवर्द्धित करता है, (१०।४९।३) उनकी सार्व मयोग मिल अधिकता बनाये रखता है। वह कहता है कि मैं वर्ष आर्यों (दासमार्थम्) को विशेषतः निर्धारित करती हैं पिन्न चुनता हूँ (विचिन्वन् — ऋ० १०। ८६। १९)। हिंसक मनोवृत्तियों (तृत्सुभ्यः) पर आयोंकी प्रकार विचारधाराओं या वाणियों (गन्या) की विजय लाग की विजिय

M | Miles 🤰 (ऋ॰ ७।१८।७)। वह दास अथवा आर्य अय होतींका साथ-ही-साथ वध करनेमें समर्थ है (१०।१०२।३)। निर्वीह है शत्रता करनेवाले दास, वृत्र अथवा आर्योंको शूर सेनापति मिया के या राजा (इन्द्र) मार देता है (६।३३।३ तथा ६। वा प्रकृष्ट ६० । ६)। उनको मारकर सुन्दर दानशील व्यक्तियोंकी इन्द्र गत कि और वृत्र दोनों ही रक्षा करते हैं (६।२२।१० तथा ^{२४में} को ७।८३।१)। इन्द्र आयोंको पापोंसे निवारित करता अमिन्नोहे है (८। २४। २७)।

उक्त सभी स्थानोंपर इन्द्रके साथ आर्य एवं दास झब्द आये हैं। कहीं दास शब्द आर्यका विशेषण है और कहीं अलाप्ते अमिकोंकी सूचना देता है और कहीं केवल दान ग्रतेवाले व्यक्तिका द्योतन करता है। दस्यु, हिंसक, डाक् आदि लोगोंके लिये प्रयुक्त हुआ है। कहीं भी आर्य और एक हा रास या दस्यु अलग-अलग जातियोंके रूपमें वर्णित नहीं हैं। इंद्र राजाः सेनापति अथवा तन्नामादेवके लिये आया है। एक सानपर कहा गया है कि 'उन छोगोंको विशेष तौरपर शील अर्थे जानो जो आर्यरूप धारण किये हुए दस्यु हैं (वि जानी-ग्रापीन् ये च दस्यवः — ऋ०१।५१।८)।

इन्द्रके अतिरिक्त अन्य देवताओंके सूक्तोंमें भी आर्य ब्द प्रयुक्त हुआ है। एक मन्त्र (ऋ०७। ३३।७), विसके ऋषि और देवता वसिष्ठ-पुत्रगण हैं, में कहा गया । १ (हा है कि अमि) वायु और सूर्य संसारको जल प्रदान करते हैं। अभ्यो वे तीनों अप्रणी ज्योति स्वरूप श्रेष्ठ प्रजोत्पादक हैं (त्रयः कृण्वन्ति है (सा सुवतेषु रेतः तिस्रः प्रजा आर्था ज्योतिरयाः) यहाँ ऋग्वेदमें एक हार म्ब्रीलिङ्गमें प्रजाका विशेषण होकर यह शब्द वि म सुक्त हुआ है। एकमन्त्रमें अमिदेवसे प्रार्थना की गयी है ४३।४) किवेसाम्राज्य और पर्वतोंमें उत्पन्न (खनिज) सम्पत्तियोंको उल्लंह रानशील (प्रसिद्ध) या छिपे हुए अज्ञात (वृत्राणि) श्रेष्ठ कर्तके विद्यानिको प्राप्त करावे (१० | ६९ | ६) । यहाँ वृत्राणि हैं (ह^{र्न} 'अर्थाः' का विरोषण विरोषतः द्रष्टव्य है ।

पवमान सोमके विशेषणके रूपमें भी 'आर्य' शब्दका भेषा मिलता है (इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्थम्। वार्व भागिताहै (इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्ता । प्राप्त अराज्यः —ऋ०९।६३।५) जिसका तात्पर्य र्ता अराज्यः—ऋ०९।६३।५)।जाराजाः भारति भी पवित्र, श्रेष्ठ या सबका मङ्गल करनेवाला है। अन्यत्र)। श्री भाग है कि ये सोम श्रेष्ठ पुरुषों (आर्था) के वरों में

६३। १४)। सायणने यहाँ आर्याःका अर्थ 'यजमानाः' किया है। विश्वेदेवोंके स्कमं आया कि उन्होंने पृथ्वीपर शोभनदान प्रदान करके उत्तम संकल्पोंकी सृष्टि की है (सुदानव आर्या वता विस्जन्तो अधि क्षमि—ऋ० १०।६५।११) यहाँ 'आर्याः' शब्द 'त्रताः'का विशेषण है (आर्यात्रता-आर्यव्रत=श्रेष्ठ संकल्प, ऐसे संकल्पींचाले जहाँ रहते हों बह आर्यावर्त।)

मन्यु सूक्तमें आया है 'हम मन्यु (साहस, यज्ञ अथवा कर्म) से युक्त होकर दानशील श्रेष्ठपुरुषों (दासमार्थम्) को संतुष्ट करें (साह्याम्—ऋ० १०।८३।१ अथर्ववेद ४ । ३२ । १) विष्णुसूक्त (१ । १५६ । ५) में कहा गया है कि तीन स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) में स्थित विष्णु आर्यको संतुष्ट करता है। यहाँ आर्य शब्दके आध्यात्मिक, आधिरैविक और आधिभौतिक अर्थकी ओर संकेत है। ऊपर केवल आधुनिक विद्वानों-द्वारा प्रयुक्त भौतिक अर्थकी दृष्टिसे ही विचार किया गया है। अन्य अर्थोंमें तो 'किसी भी तरह आर्य शब्द किसी जातिकी सूचना देनेवाला नहीं हो सकता।

सामवेदमें तीन बार और यजुर्वेदमें चौदह बार आर्य शब्द आया है, परंतु लगभग वे सभी मन्त्र ऋग्वेदके ही हैं। इसलिये उनपर पुनः विचार करना व्यर्थ होगा। अथर्ववेदमें वारह बार आर्य शब्द ब्यवहृत हुआ है। —तीन स्थानोंपर एकवचन कर्ताकारकमें, पाँच स्थानोंपर एकवचन कर्मकारकमें, एक खानपर सम्प्रदान कारकमें और एक स्थानपर सम्बोधनकारकमें तथा १-१बार बहुवचनमें न्पुंसकलिङ्ग एवं पुँछिङ्गमें कर्ताकारकमें।

एक मन्त्रमें आर्य उन्ज्वल या श्रेष्ठ अर्थमें ज्योतिका विशेषण है (विदृत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् अथर्ववेट २०। १७। ४)। सायणने इसका अर्थ किया है आर्यम् अर्य वा अरणीयम् अभिगमनीयम् सेवनीयम् सेवन करने योग्य। स्वामी भी सेवा करने योग्य होता है। एक अन्य मन्त्रमें इन्द्र कहता है कि 'मैं कर्म करनेवाले (दासमार्यम्) श्रेष्ठ पुरुपको चुनकर उसकी सहायता करता हूँ (२०।१२६।१९)। यहाँ 'इन्द्र: इचरत: सखा' अर्थात् 'इन्द्र कर्मठ व्यक्तियोंका मित्र हैं इस कथनकी पृष्टि होती है। यह मनत्र ऋग्वेदमें

अथर्ववेदका एक मन्त्र आर्य शब्दपर और अधिक

भिक्ष भारता) तथा प्रकाशयुक्त विचारोंकी अथववदका दार्म हैं ridwar (बाजं गोमन्तमक्षरन्) बरस्ते-हैं। (ब्यूकांट Odmain प्रकाश हिल्ले विवास सिन्त्र । हैं ridwar

या है (क्र

刊010

दास शब्द आर्य रह

क श्वान

ाने गये हैं।

ज्ञानसम्ब

समाउँ

यदी विशो वृणते दस्म आर्या अग्नि होतारमध धीरजायत। अर्थ है जव प्रजाएँ कर्ममात्रके होता (प्रेरक) अग्निके गुणोंका वरण करती हैं तब उनमें शक्तिसम्पन्न अथवा सामर्थ्य-शील श्रेष्ठ बुद्धि या प्रज्ञाका जन्म होता है।

(अथर्व ० १८ । १ । २१)

इस मन्त्रमें 'आर्या घी' (श्रेष्ठ बुद्धि) शब्द द्रष्टव्य है । उदात्त गुणों और प्रकृष्ट बुद्धिके द्वारा ही मनुष्य आर्यत्वका वरण करता है और ऐसे आर्यकी (आर्य वर्ण) इन्द्र दस्युओंको मारकर रक्षा करता है (अथर्व० २० । ११ । ९—हत्वी द्स्यून् प्रायं वर्णमावत्) । यहाँ, सायणने अर्थ किया है-आर्याः सवैरिभगन्तन्या—श्रेष्ठ वुद्धिसम्पन्न प्रजाएँ । श्रेष्ठ प्रजाका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि यह कोई पृथक जाति थी।

एक स्थानपर आया है कि 'हे स्वामी ! (आर्य) तुम्हारी सविताके समान प्रतिष्ठा हो और समस्त प्रजाएँ तुम्हारे दानको स्वीकार करें। (अथर्व० १९ । ४५ । ४)। एक श्रेष्ठ सदाचारी व्यक्ति कहता है कि मेरे संकल्पको न कोई दास और न कोई आर्य ही भंग कर सकता है। यहाँ आर्य और दास शब्दोंका अलग-अलग प्रयोग है; परंत दोनोंका व्रत (संकल्प) से सम्बन्ध है। वज्री इन्द्र दास, आर्य एवं वृत्र मनुष्योंको (कर्मशील, श्रेष्ठ एवं अप्रसिद्ध) सोमके आनन्दसे युक्त करता है (२० । ३६ । १०) । सायणने अर्थ किया है-अार्याण अरणीयानि श्रेष्टानि । अथर्ववेदमें चार वर्णोंमें प्रिय बननेकी कामना की गयी है जहाँ 'आर्य' शब्दका अर्थ वैश्य वर्ण किया गया है। संधिच्छेद करते समय वहाँ आर्थके स्थानपर 'अर्घ' भी माना जा सकता है। (अथर्ववेद-१९ । ३२।८; १९।६२।१) और दो मन्त्र ऐसे हैं जिनमें 'आर्य' शब्द 'द्विज' (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के अर्थमें प्रयुक्त हुआ है (शृद्ध उतार्थः ४ । २० । ४; शृद्धमृतार्यम् ४। २०।८)। उक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओंमें कहीं भी किसी आक्रान्ता आर्यजाति और किसी आदिवासी दत्य था दास जातिका वर्णन नहीं है।

ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् और पुराण वैदिक ज्ञानकी ही व्याख्या करते हैं । उनमें भी एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो 'आर्य' नामक किसी जातिविशेषकी सूचना देता हो।

पारियात्र पर्वतोंके तीचके पृथ्वी खण्डकोट ष्टार्काकर्त Gस्मैरा। इसको Collectio विभावाखाओंको निवारण करनेके लिये जो नि

सभी निवासियोंको आर्य कहा गया है। (आस्पुक् पूर्वादासमुद्रातु पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योको विदुर्बुधाः।) निरुक्तकार यास्कने श्रेष्ठ आसिक को ही आर्य कहा है (आर्या ईश्वरपुत्राः)। पाणिनिने सर्वाः वैश्य अर्थ आर्य राब्दका लिखा है और यह भी वताया है। आर्य शब्द ब्राह्मण वा कुमारके साथ जुड़ता है (क्र प्रार्थको : ब्राह्मणकुमारयोः—६।२।५८)। आर्यल या अक के वरण करनेका उल्लेख हो चुका है। ऐसे होगांको का ने 'आर्यकृत' (४।१।३०) कहा है। जातका भारतीय संस्कृति' नामक प्रन्थमें श्रीमोहनला ह लिखा है कि 'अनार्य' वर्ग या जातिका अस्तिल जातक नहीं था। (पृ० २६७) आर्य और अनार्य शब्द 🕏 मात्र थे (वही)।

चाणक्यके समयमें मनुस्मृतिके इस कथनको अ प्रामाणिक माना जाता था कि कोई आर्य सम्रुद्ध दास (गरं नहीं बनाया जा सकता । उस समय स्वतन्त्र नागितः है। कहलाते थे। वे कर देकर राज्य-कार्योंमें सम्मित आहि अधिकारी वनते थे । कुछ आर्थिक दशासे विवस क्रीस कहलाते थे। वे राज्यकी ओर करसे मुक्त थे (अर्थ है। वा उसकी मध्यकालीन टीकाएँ)। उनसे भी करता ह नागरिक बननेकी अपेक्षा की जाती थी। यदि केई समा आर्य न वने तो उसे १२ पण दण्ड देनेकी व्यवस्था बीली (दासमनुरूपेण निष्क्रियेण आर्यमकुर्वतां द्वादशपणहण

पतञ्जलिने कालक वनसे पश्चिममें आदर्श ^{पर्वता} हिमालय और विन्ध्याचलसे घिरी हुई पृथ्वीको आ^{र्याक} है। आदर्श पर्वत एशिया माइनरका अद्ररस ग^{ुर्} (सिनाई) पर्वत है। और कालक वन हिन्देशियाय चीनके जंगल । मनुस्मृतिमं वर्णित पूर्व एवं पिक्ष क्रमशः प्रशान्तसागर एवं भूमध्यसागर होंगे। इह भूखण्डमें बसे हुए श्रेष्ठ पुरुष ही आर्य कहे गरे। आर्यावर्तकी सीमाएँ छोटी होती गयीं । विशिष्टस्मृति आते तो कुछ लोग गङ्गा और यमुनाके वीचके आर्यावर्त कहने लगे। (वसिष्ठसमृति १।१।१०)

आर्यशब्दकी परिभाषा की गयी है— आर्तत्राणे समर्थश्च स आर्यं इति क्यो सततं

शालासु

एशियाकी जाता है भार

वैचारधार के अनुया प्रहण किय

व्यवहारमें दीक्षित हो अधिकतर

भारत एवं धैर्यंव

अख्य

अर्थात ल्दके सम करती है।

इसी भादि-त्रह्मा स्त्या, वात खा। उत्त किम्बी भी

नेवास मान गतिके लोग दिलाते ये

वहाँ य करनेका प्रय

वहाँ पारवैदि विदिक्तभालम

अर्थ रे।

हरदाता ल

हिं सम्ब

। बी हो

पर्वततः

ाया या ।

रति तक

आत्तरा श्रीत या प्रयत्नशील रहता है तथा जो दुःखोंसे त्राण करनेमें मियोक समर्थ है वह आर्य कहलाता है।

वह शब्द ऋ-गतौ धातुसे व्युत्पन्न होता है और इसका ने स्पार्थ प्राव्यक अर्थ भामन करने योग्य' होता है। श्रेष्ठ गुणोंकी ओर वताया है। मन करनेके कारण अथवा आदर्श गुणसम्पन्न होनेके कारण ा है (क्र प्रार्थको शालीन भी कहा जा सकता है। जिसका अर्थ है— या अर्क ग्राह्म वसन्ति, शालिभिर्जीवन्ति, सदाचारैः शालन्ते इति गोंको की अपनी इस परिभाषाके कारण ही आर्य कोई यूरोप या मध्य-(_{जातरहरू} एवियाकी घुमक्कड़ जाति थी, इस धारणाका खण्डन हो लाल महं जाता है।

भारतमें वैदिक विचारधाराके अतिरिक्त जैन और बौद्ध श_{ब्द कि} विजारधाराएँ भी पनपीं । जैन और वौद्ध दोनों ही सम्प्रदायों-के अनुवायियोंने 'आर्य' शब्दको श्रेष्ठतात्राचक मानकर ही 🕫 किया है। 'आर्य' का पर्याय अर्य शब्द वैश्यवर्णके लिये यनको अ व्यहरमें वैदिक कालसे ही आता रहा है। यद्यपि जैनवर्ममें दास (पर्रा रीक्षि होनेके लिये कोई जातिबन्धन नहीं है, परंतु फिर भी ागरिक ही व अभिकार जैन वैस्य ही हैं । पाण्डवपुराणमें सुभचन्द्राचार्यने ं आदे हैं भारत एवं भारतवासियोंके विषयमें लिखा है— रा श्रीमद्रत

धैर्यवर्यार्यंखण्डेऽस्मित्रार्यंखण्डे समण्डिते। अखण्डाखण्डलाकारै जैनैजीवनदायिभिः

(१ 1 ७३)

अर्थात् इस धीर-वीर श्रेष्ठ लोगोंके मुमण्डित आर्यखण्डने प्रापणहरू रिके समान जीवनदायी लोगोंकी एक अखण्ड जाति निवास

इसी तरह त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरितमें कहा गया है कि आर्यावर्व प ^{शिंद्रह्मा} भगवान् ऋषभदेवने वेदोंको सर्वप्रथम लिपिवद्ध कार्या, बदमें कुछ अनार्य और धूतोंने उनमें सम्मिश्रण कर वा। उक्त दोनों उद्धरणोंसे स्पष्ट होता है कि जैन धर्मा-किमी भी प्राचीनकालसे ही भारतमें एक ही अखण्ड जातिका भास मानते थे। इसका नाम आर्थ-खण्ड था और उस भीतेते लोग श्रेष्ठताके कारण (धैर्य वा वर्यके कारण) आर्य र्^{तिक} , ^{रिवाते} ये । जैन साध्वियोंके संघको भी आर्यिका-गण कहते हैं। वहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ स्वार्थीलोग यह सिद्ध किते प्रति कर रहे हैं कि आर्य तो बाहरसे आये ही, इस भावते पश्चित्योंने सिद्ध कर दिया और जैन धर्मावलम्बी का महामाविद्विक्षालसे ही निवास करते थे, वे अनार्थ थे। विकास है। निवास करत थ, प विकास है। वैश्योंको 'अर्घ' या आर्य कहा जाता था।

किसी भी तरहसे परिवर्तित आर्य नहीं हैं। भिवष्यमें भारतकी राष्ट्रीय अखण्डतापर यह प्रवृत्ति विषैला प्रभाव डाल सकती है। इसलिये विद्वानोंको इसका विरोध करना चाहिंगे और केवल उक्त कल्पनापर विश्वास करनेवाले एवं अनुसंधान करनेवाले लोगोंको उक्त दो उद्धरण या इसी तरहके अनेक उद्धरण, जो जैन-साहित्यमें भरे पड़े हैं, उनका अध्ययन पहले करना चाहिये। वैदिक-सा**हित्यपर** पाश्चात्त्योंका प्रहार अधिक हुआ है। उसका मनमाना अर्थ भी किया गया है। जैन-साहित्य इस प्रहारसे बचा है। उससे ऐसे उद्धरण लेकर यदि अनुसंधान किया जाय तो यह राष्ट्रीय जीवनको विकृतिसे बचानेकी ओर सबसे वड़ा प्रयत्न होगा।

बौद्ध-साहित्यके आधारभूत त्रिपिटकोंमें 'आर्य' राब्दका प्रभूत प्रयोग मिलता है। विनयपिटकमें बौद्धज्ञानको 'आर्य ज्ञान' (१।४) एवं मध्यममार्गको 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' कहा गया है । बौद्धोंमें भी भिक्षणियोंका 'आर्या-संघ' होता है (विनयपिटक २ | १) । विनयपिटकके महावगास्कन्धकमें कहा गया है कि दो अनार्यसेवित अतियोंको त्यागकर बुद्धने आर्य-सत्य-चतुष्ट्यको जाना और आर्य अष्टांगिक मार्गका उपदेश दिया (१।५)। बुद्धके शिष्योंको आर्य शिष्य कहा गया है (१।१।१७) जो स्रोत, आपन्न, सकुद्गामी, अनागामी और अर्हत् होता है । उपोसथस्कन्धकमें आर्य गौद्धभिक्षुको कहा गया है। चर्मस्कन्धक (५।२।७) में गौतम कहते हैं कि 'आर्य पापमें नहीं रमता ।' यह भी कहा गया है कि आर्य-आयतन या वणिक पथमें जहाँ तीर्थिक (जैन-साधु) रहते हैं कोई अन्तराय होगा (६।४।७)। यहाँ जैन लोगों-को वावैश्योंका आर्य कहा गया है।

थम्मपद बौद्ध साहित्यकी गीता है। उसमें एक स्थानपर आता है कि विद्वान् लोग आयों अथवा आसपुरुषोंके ज्ञानमें रत रहते हैं (आर्याणां गोचरे रताः २।२)। अन्यत्र भी आर्य प्रवेदिते धर्मे रमते किल

धम्मपद (६। ४) बौद्ध धर्मको आर्यधर्मसे अभिन्न माना है। एक अन्य स्थानपर धर्मजीवी आर्योंके धर्म और बौद्धशासनको समान बताया है।

अर्हता शासनं यस्तु आर्याणां धर्मजीविनाम्। (धम्मपद १२ । ८)

आर्यत्रतका जपर उल्लेख हुआ है। धम्मपदमें भी 'व्रतमन्तमार्यम्' (१५।१२) का उल्लेख है। बुद्ध कहते हैं---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

स त्वं कुरु द्वीपमात्मनः क्षित्रं व्यायामे पण्डितो भव । निधूतमलो हि अनंजनो दिव्यमार्थभूमिमेष्यसि ॥ (धम्मपद १८ । २)

यहाँ दिव्य आर्यभूमिसे स्वर्गकी ओर संकेत किया गया है। आर्यभूमिके रूपमें बौद्ध भी भारतको मानते थे। बुद्ध कहते हैं कि केवल प्राणियोंको न मारनेवाला आर्य नहीं है वरं सभी भूतोंके प्रति अहिंसाका भाव रखनेवाला आर्य कहा जाता है। (अहिंसा सर्वभूतानामार्य इति उच्यते—धम्मपद—१९।१५)। उन्होंने यह भी कहा है कि वाणीकी रक्षा करो, मनको संयत करो, शरीरसे अकुशल मत होओ। इन (अष्टांगिक मार्ग—बौद्ध धर्म) से कर्मपथका शोधन करके किर ऋषिप्रवेदित वैदिक धर्मकी आराधना करो (अराधयेन्मार्गमृषिप्रवेदितम्—२०।९)

यूनानी राजदूत मेगास्थनीजने लिखा था कि समस्त भारत एक विराट् देश है। इसमें कई जातियोंके लोग वसते हैं। इनमेंसे एक भी आदमी मूलतः विदेशी-वंशोत्पन्न नहीं हैं। स्पष्ट जान पड़ता है कि सभी भारतवासी आदिम अधिवासियोंके वंशधर हैं। इसके अतिरिक्त भारतमें कभी विदेशियोंका उपनिवेश स्थापित नहीं हुआ। (Mac. Crindle Ancient India, Megasthnese P. 34.)

यदि बाहरसे सचमुच कोई जाति आकर वसती और भारतीय उसका नामोल्लेख करनेमें अपनी हतक समझते अथवा उनकी स्मरणशक्ति कमजोर भी होती तो भी एक विदेशी तो अवस्य ही निष्पक्षभावसे उसका उल्लेख कर सकता था।

पुराणोंमें विभिन्न जातियोंका उल्लेख हैपरंतु आर्य नामकी किसी जातिका किसी भी पुराणमें नाम नहीं मिलता। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृतिके विश्वकोष हैं। उनमें भी ऐसी कोई सूचना नहीं मिलती। वाल्मीिक ऋषिने 'आर्य' शब्दका प्रयोग प्रभूतरूपसे किया है। वे कहते हैं कि सबके प्रतिसमानताका व्यवहार करनेवाला और सदैव प्रियदर्शन आर्य कहा जाता है (अवतरिणका)। एक स्थानपर (२।३।२५) म्लेच्छोंसे भिन्न श्रेष्ठ लोगों (आर्यों) का उल्लेख मिलता है।

रामको वनवासके लिये दशरथ आज्ञा नहीं देते, क्योंकि मनमें चिन्तित हैं कि आर्यलोग मुझे पुत्र बेचनेवाला अनार्य कहेंगे और उसी तरह बदनाम करेंगे जैसे शराबी ब्राह्मणको किया जाता है (२।१२।२८)। वे कैकेयीको

अनार्या (२।१६।१९) और अनार्यं बुद्धिवाल (क मति २। १६। २८; २। १८ ४४; २। २७।। कहते हैं । भरत कई बार माताको आर्या (२।२४) २ | ३३ | १६, २०) कहते हैं किंतु उसको रामकः कारण मानकर उन्होंने कहा है अनार्यामार्यका (वा० रा० २।६०। २६)। आर्यंबुद्धि (२।६८।२) हिं प्र आर्थमार्ग (२।७३।६) द्याब्दोंका प्रयोग भी बेल्नाल है। रामका यह गुण है कि अनायोंसे भी सौहाई हो तो की (६।६।११-१५)। राम कहते हैं कि—अनावत वीकार संस्थानः—यदि आर्यं दिखाता हुआ में अनार्य हु अप (२।६९।५)। कैंकेयीके प्रति कहे गये शब्दों बत उक्त वाक्यसे प्रकट है कि एक व्यक्ति अपने कमेरे हैं अनार्य बनता है। वाली वानर था परंतु उसकी 📹 आर्यपुत्र (४।१५।८) और आर्य (४।१०।३ नामसे ही सम्बोधित करती है। मन्दोदरी भी रावणक्रेश (६।१६।६) कहकर ही सम्बोधित कर्त वाल्मीकिने कहा है कि आयु, ज्ञान और ओजमें वृद्ध हैं ही द्विज या आर्य कहा जाता था (२ । २९ । १३)।

कुन्दमाला नामक नाटक दक्षिणी किय दिङ्गा व पित में नागकी रचना है। कुछ लोग इसे बौद्ध विद्वान है भित भी रचना भी मानते हैं। उन्होंने अनेक बार आर्य, आर्य व शो आप पुत्र शब्दोंका प्रयोग इस नाटकमें किया है। उसे हो नाय स्थानपर आता है—

अहं रामस्तवाभूवं त्वं में कण्वश्च ग्रैशेरी यूयमार्था वयं चाद्य राजानो वयसा हता।

कण्वने रामको 'राजा' कहकर आशीर्वाद दिग प्राप्त त्या । इस ही जाते रामने उनको आर्य कहकर प्रणाम किया था । इस ही जाते रामने कहा कि शिशु अवस्थामें मैं तुम्हारे लिये राम प्राप्त की देख और मुझे राजा बना दिया है।

उक्त सारी बातोंके आधारपर हम कह सकते हैं में प्र राब्द कभी भारतीय साहित्यमें जातिवाचक नहीं हो। एक विशेषणमात्र था। श्रेष्ठताका प्रतिपादक। एक विशेषणमात्र था। श्रेष्ठताका प्रतिपादक। एक भी पहीं अपने कमोंसे आर्य वा अनार्य हो सकता था। अधि या ओजकी गुरुता होना आर्यका लक्षण माना भारतके सभी भागोंमें और यहाँ प्रचलित होने

(८। ८८ । ५८) | वं केंकेयीकों विचारधाराओंमें । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar [माग

शब्दों बात मसे ही अ

तकी पत्नी

1 2013

एवणको अ

F TO

वाही (क्र डा॰ देवसहाय त्रिवेदने सत्य ही कहा है कि आयोंके २।२४। बहरते आनेकी वात किसीके उर्वर मस्तिष्ककी कल्पना प्राप्त कल्पना सम्बद्ध (प्राङ्मीर्यविहार)। जब सारा साहित्य इस वातको भागको विकार करता है कि आर्य कोई जाति नहीं थी । यह केवल योमायको किलायक विकोपण है और विकार न क्षाना के विशेषण है और पिता, पति, पत्नी आदिके |६८|२| हिंद्रे प्रभूतरूपसे इसका साहित्यमें उल्लेख है, यही नहीं योग 🛊 होल्वालमें हम अपने भाईतकको अनाड़ी (अनार्य) कह देते हैं ौहाई हि ते कोई कारण नहीं ज्ञात होता कि ऐसी कोई जाति अनायेन विकार करके भारतमें उसके बाहरसे आनेकी कल्पना की अनार्व है 🕫। हाँ, ईरान आयरलैंड (ऐरियन) यूरोप (आर्यप)

शब्द वहाँ आर्य होनेकी, या पहुँचनेकी साक्षी देते हैं तो ऐसा कोई कारण भी नहीं है कि श्रेष्ठताको केवल भारतकी ही दायाद्य मानी जाय।

िलेखकने वैदिक, जैन, वौद्ध आदि धर्मोंके साहित्यसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि 'आर्य' शब्द भारतमें श्रेष्ठतावाचक विशेषणमात्र रहा है । कहीं-कहीं विशेषण विपर्ययके रूपमें 'श्रेष्ठ मनुष्य' के अर्थमें भी प्रयुक्त हुआ है। उत्तरी भारतमें ही नहीं, दक्षिणी भारतमें भी यही परम्परा रही है। —सम्पादक]

स्मरण और युद्ध

[कहानी]

(लेलक—श्रीशशिक्षर नागर एम्० ए०)

वेत कर्ता फ्तरण और युद्ध असम्भव हैं साथ-साथ ।' मनमें में बद्ध हो किल उठ रहा था । मुझे क्षमा कीजिये मेरी दुर्बलता-ए। मेरा मन शंकालु है और मेरी बुद्धि अस्थिर है; त् कि मिर भी मुझे विद्याका अभिमान है। मेरे अकाट्य तर्कके आर्ब अमें आपकी कोई बात नहीं चलेगी । आप या तो चुप । उन हो जायँगे या उठकर चले जायँगे, लेकिन मैं अपनी स विजयपर मन-ही-मन गर्व करता हूँ । प्रकटमें चाहे कें कें कि भें जानता ही क्या हूँ, बालक हूँ, परंतु मनमें ँ(।) ^{ब्ह्ता} हूँ भैं सब कुछ जानता हूँ, बालक तो आप हैं।' भान तो व्यक्तिको सुलझाता है और तुम उलझते । इस इंडि जाते हो ।' मेरे मित्रने मुझे समझानेका प्रयत्न किया। 'जिनकी बुद्धि मन्द होती है, वे दूसरोंके बुद्धि-वैभव-को देख नहीं सकते।' मेरा उत्तर कड़वा था। वह हते हैं अप हो गया।

मैं फिर विचारोंमें उलझ गया। या तो स्मरण ही एक हैं भाग या युद्ध । दोनों कैसे हो सकते हैं ? जान बचाने-अप । दाना कल हा तनात . अप । दाना कल हा तनात . अप । दाना कल हा तनात ! णिक्षेत्रमें स्मरण ! वड़ी अजीव बात है । गङ्गातटपर भाषा लेकार लोगोंको स्मरण करते मैंने देखा है, यह

लड़ाईके मैदानमें भजन करनेका विधान, वड़ी समस्या है।

नवीन विचारोंकी खोजमें कभी-कभी मैं उन मित्रोंके प्रति भी अपनी शंका प्रकट करता हूँ, जिन्हें मैं अपनेसे कम बुद्धिमान् मानता हूँ । शंकाकी जटिलताके कारण जब वे कोई समाधान नहीं कर पाते, तो मुझे अपनी बुद्धिपर फिर गर्व करनेका अवसर मिल जाता है।

'स्मरण और युद्ध एक साथ कैसे होगा ?' पास बैठे मित्रसे मैंने पूछा !

'आपको तो ब्रह्मा ही आकर समझायँगे, मुझमें सामर्थ्य नहीं है ।' मेरा मित्र विगड़ बैठा ।

मैंने कई टीकाएँ देखीं । संतोष नहीं हुआ । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रत्येक व्यक्तिने शायद अपने संतोषके लिये टीकाएँ लिखी हैं। अगले दिन मैंने अपनी डायरीमें लिख दिया--'स्मरण और युद्ध साथ-साथ असम्भव हैं।'

'क्यों नहीं हो सकता ?' मेरा मित्र उत्तर चाहता था। 'क्या दो काम एक साथ तुम कर सकते हो ?'

'हम प्राय: करते ही हैं।' सरल भावसे उसने

उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'तुम्हारा मतलब यह है कि व्यक्ति समाधि लगाकर गा भी सकता है।

वह हँसा । 'सोते जगते सब दिन श्राम । जिपये राम राम अभिराम' बोलकर मानो उसने किसी गहन बातको सूत्ररूपमें कह दिया हो।

'क्या सोना-जागना युद्ध करने जैसा है ?' मैंने शंका की।

'मैं युद्धका अर्थ कर्त्तव्य-कलाप समझता हूँ।' उसने समाधान किया।

किसे ?

'अर्जुनका युद्ध करना कर्त्तव्य-कर्म था न ? आपका कर्त्तव्य भी आपका युद्ध ही तो है।

'आपकी यह बात मान भी छूँ तो एक शंका फिर भी बनी रहती है। दो काम एक साथ नहीं हो सकते । या तो काम कर लीजिये या स्मरण ।

मेरा मित्र इस प्रश्नके लिये तैयार नहीं था। लेकिन थोड़ी देर सोचकर बोळा---

'हो सकते हैं।'

'कैसे ?'

'आप साइकिल चला सकते हैं और गा भी सकते हैं।' 'यह तो सम्भव है, लेकिन क्या गणितका दुर्बीच प्रश्न हल करते समय, जब आप एकाप्रतासे उसमें जुटे हों, आप किसी गीतकी रचना कर सकते हैं।

'आपको प्रभु सद्बुद्धि दें' कहकर वे चले गये।

मेरा मस्तिष्क वुडवर्थ, म्यूरहैड, हाब्सके विचारों-से भरा था । एक समयमें एक ही काम हो सकता है। यह मनोविज्ञानका सिद्धान्त है। यदि समरण करते समय कोई काम करना पड़ा तो उसमें बिघ्न अबस्य पड़ेगा । लेकिन टाइपिस्ट टाइप भी करता है और बात भी करता है। यह-फो॰ अध्यात्सको सक्तान हो स्वातना है बाधा ट्यान्सं मुस्यान के किसी ध्यानमें तहीन से।

इसका अर्थ है कि अभ्याससे दो काम एक है। सकते हैं। यह सबके लिये सम्भव नहीं। कुर एक ही कामको पूरा जोर लगाकर भी असा है। पाते, फिर दो कामकी बात ही जाने दो। अर्ज़ी कोई प्रन्थ पढ़ता हूँ तो स्मरण छूट जाता है।

उस दिन कॉलेजमें गीताके मनोवैज्ञानिक छ एक विद्वत्तापूर्ण भाषण सुना। उसी आधारपर 🖙 युद्भय च' की मनोवैज्ञानिकतापर फिर सोचनेको कर गया, परंतु सूत्र नहीं मिल रहा था।

था तो माला फेर ले या बातें का है। तुरंत ही ताड़ना कर दी थी।

मालाका बातोंके साथ मेल नहीं बैठता बी स्मरण तल्लीनतासे किया जायगा, कर्त्तव्यक्षी छुट जायगा।

'प्रत्येक कामको मन लगाकर करो' 'माला जपते समय किसीसे मत बोले। व्यवस्था दी !

आज्ञा तो सिरपर रख ठी ठेकिन समस उलझ गयी।

'रोटी सेंकते समय किसीसे वातें मत बी उनका बहुको आदेश है।

'फिर मुखमें राम हाथमें कान' वाठी वात की मैंने माँसे शंका की।

'तेरेसे तो बहस करा छो, करने-करानेको^{द्धा} माँने कोई उत्तर नहीं दिया !

×

उस दिव्य मूर्तिको मैं कभी भूल तहीं उन्नत ललाट, गौर आकृति, रिक्तम्बर्ग होती

अ

[47]

एक सह

ों। बुद्ध

अच्छा मही

। अपनी ह

ाता है।

ज्ञानिक पु

रपर भाग

चनेको ग्रा

कार ले

बैठता ते

व्य-कर्म इ

बोले।

समस्य

मत का

त की

मो उन

नहीं है

湖

119

प कैंठे मेरी ओर देख रहे थे, मानो वे, मेरे मनको पढ़ रहे हों।

'कुछ पूछना है, मित्र !'

'मित्र' शब्द सुनकर मेरा हृदय गद्गद हो गया। भयसंकोच समाप्त हो चुका था।

भ्युद्ध और स्मरण एक साथ कैसे होगा, महाराज ! मैं बहुत दिनोंसे उलझ गया हूँ।

'तुम्हारा प्रश्न बहुत सुन्दर है।' कितने उदार थे वे। मेरे दोषको भी उन्होंने गुण समझा। मन-ही-भन मैंने अभिवादन किया ।

'होता है । इसमें संदेह नहीं हो सकता । तुम मेरी चिट्ठी लिखते समय क्या-क्या सोच रहे थे।' भैं सब्जीमण्डीसे पटेलनगर चला गया था और अपने मित्रसे खरीदे हुए प्लाटके बारेमें चर्चा कर रहा था।' 'दो काम तुमने एक साथ कैसे किये ?' 'मनकी रोष राक्तिसे।'

'ब्ल । मनकी शेष शक्तिसेतुम स्मरण कर सकते हो।' 'कार्यमें कोई बाधा तो नहीं होगी ?'

'बाधा नहीं सहायता मिलेगी | तुम दबे हुए

अनावश्यक संकल्पोंके विष्नसे मुक्त रहोगे। कार्य सफल होगा !

'और यह जो सुना जाता है—माछा ही जप छो या वातें ही कर छो।'

में मन-ही-मन अपनी शंकाओंपर लज्जित था। 'एकाग्रताको लक्ष्यमें रखकर यह बात कही जाती है। प्रायः छोग एक काम करनेके वहाने दृसरा काम विगाड़ लेते हैं। महाराजका समाधान अतर्क्य था।

एकाप्रता प्राप्त होनेपर भी तो एक समयमें एक ही काम हो सकेगा-स्मरण या काम।

वे पूर्ववत् ही मुस्करा रहे थे। खंडे होकर मेरी पीठ थपथपाकर बोले-

'तुम्हारा चिन्तन बहुत अच्छा है। ऐसे ही करते रहना चाहिये । जिज्ञासाको जगाये रक्खो ।'

'क्षमा कीजिये महाराज, मेरी बुद्धि मुझे चैन नहीं लेने देती । मुझे समाधान मिल जाय तो मैं निहाल हो जाऊँ।'

'यद्भ औरं स्मरणमें कोई अन्तर नहीं है। जीवन और साधनामें अन्तर रहते, न जीवन जीवन है और न साधना साधना ही ।' महाराज जाप करने चले गये।

द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा

नग्न होती द्रौपदी दुःशासनके खींचे चीर आतुर अधीर टेरी कृष्ण नाम रट के। ए हो व्रजराज लाज जाती सभा बीच आज, है है ए कलेजा नाथ टूक टूक फट के। करुणा-पुकार-भूरि भार ना सके सँभार, के हिये के तार राधिकारमन भटके-से आप बैठे सटके बसन पट के॥ लाय-लाय थान

—श्रीगणेशप्रसाद 'मदनेश'

のなんでんかんでんかん

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शारीरिक रोग और मनोविकार

(लेखक-श्रीकन्हैयालालजी लोहा)

संसारमें जितने भी सुख हैं, उनमें स्वास्थ्यका स्थान सर्वोपरि है। स्वास्थ्यके अभावमें विपुल वैभव, धन-धान्य, भोग-सामग्री आदि सभी भोगोपभोग तया सुखके साधनों-की प्राप्ति व्यर्थ है। अखस्य अवस्थामें जीवन नीरस, भारभूत एवं मृत्यु-तुल्य वन जाता है । अस्वस्थताके इस अभिशाप तथा खस्थताके वरदानसे सभी जन परिचित हैं तथापि स्वास्थ्यके धनी विरले ही व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं। खास्थ्यका जितना हास इस युगमें हुआ है, उतना शायद ही किसी युगमें हुआ हो।

आधुनिक कालमें मानव-समाजमें रोग जितने भयंकर एवं व्यापक रूपमें फैले हैं, उसे देखकर हृदय दहल उठता है । आजके अधिकांश मानव मन्दाग्नि, सिरदर्द, रक्तचाप, अर्श, उन्निन्द्रा, उपदंश, प्रमेह, ज्योतिक्षीणता, निर्बटता, क्षय, कैंसर, हृद्रोग आदि अगणित रोगोंसे प्रस्त हैं। विविध चिकित्साप्रणालियोंका आश्रय ले, दवाई-पर-दवाई मुँहमें उँडेलकर पेटको दवाखाना बना देने, इंजेक्शन-पर-इंजेक्शन लगवा कर सारे शरीरको चलनीकी तरह छिदवा देनेपर भी रोग मनुष्यका पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की? कहावत चिरतार्थ हो रही है और वह पथभ्रष्ट पथिक-की भाँति इधर-उधर भटक रहा है !

जैसे नगरमें प्रज्विलत आगको चारों ओरसे घेरकर बुझाया जाय तो वह शीघ्र शान्त हो जाती है, परंतु एक ओरसे तो बुझानेका प्रयास किया जाय और दूसरी ओर-से उसे जलते रहने दिया जाय तो वह आग शान्त न होकर उस नगरको भस्मीभूत कर देती है, इसी प्रकार चिकित्सा करते समय केवल दवाका ही सहारा लिया जाय और अन्य साधनोंकी अवहेळना की जाय तो रोग शान्त नहीं हो सकता। परंतु दुर्भाग्यसे चिकित्सा अभिप्राय अभिप्राय तथा मानसिक दोनों प्रकारिक आर्थि। Kangh Calletti अपिराक्त तथा मानसिक दोनों प्रकारिक आर्थि।

क्षेत्रमें आज यही हो रहा है और यही वह कारण है है आधुनिक चिकित्सापद्धतियोंको रोगनिवारणमें भू सफलता नहीं मिल रही है।

H

91

र्घा

प्र

तन

अस

तन

(त्त

यह

शार

मुद्रि

इति

वृत्ते

सार्व

लेते

प्राधि

धर्मा

और

रोगोंका निदान करते समय आजके चिकिसका सारा ध्यान रोगीके शरीरपर ही केन्द्रित रहता है। यह भूल जाता है कि रोगोत्पत्ति एवं खास्यप्राक्षि अकेले शरीरका ही नहीं, अन्य तत्त्वोंका भी योग है। यही वह भूल है जो चिकित्सकको अपनी सफलाव निश्चयात्मक विश्वास नहीं होने देती। वस्तुतः सास्य का सम्बन्ध केवल शरीरसे न होकर मन, बुद्धि, आव आदि जीवनके सम्पूर्ण अङ्गोंसे है। जैसा कि सर शब्द के निरुक्त अर्थसे स्पष्ट है।

खस्थ शब्द 'स्व' और 'स्थ' इन दो पदोंसे न है। जिसका व्युत्पत्ति-परक अर्थ होता है, अपनेमें 🕅 होना, सम स्थितिमें रहना । चिकित्साशास्रके प्रसा प्रणेता श्रीचरकने खास्थ्यके लक्षण वर्णन करते हर

'प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते।'

—कहकर अन्यान्य वातोंके साथ आत्मा और ^{मर्ब} प्रसन्नता—निर्मलताको भी खास्थ्यमें महत्त्वपूर्ण सा दिया है। होम्योपैथीके प्रवर्तक सेम्युअल हैंगीकी अपने प्रसिद्ध प्रन्थ आर्गेननमें 'अनुभूति एवं ^{गतिके हर्ष} जीवनीशक्तिके प्रदर्शित आध्यात्मिक गत्यात्मक परिवर्तन ही रोग है तथा मानव-शरि^{सं झ} और मस्तिष्ककी ही प्रधानता है, अगर उनको ठीक वी दिया जाय तो अन्यान्य अङ्ग स्वतः ही अच्छे हो जाते हैं। कहते हुए सभी रोगोंका उद्गम-स्थल मनको कार्ली है । आधुनिक संत श्रीविनोवा भावे स्थितप्रवृद्य स्वास्थ्यका विवेचन करते हुए छिखते हैं स्वास्थ

मेहै। शारीरिक स्वास्थ्यका अर्थ है घातुसाम्य रहना और मानसिक आरोग्यका अर्थ है चित्तकी समता रहना और मानसिक शान्ति रहना ।' तात्पर्य यह है कि स्वास्थ्यका क्षेत्र केवल शरीरतक ही सीमित न होकर मन और आत्मातक व्याप्त है।

देहचारी प्राणीके जीवनका सृजन उसके तन और मन—इन दोनोंकी एकरूपतासे हुआ है । इनका प्रारम्परिक सम्बन्ध दूध-पानी-जैसा है । इनमें इतना धिनष्ठ सम्बन्ध है कि मनका प्रभाव तनपर और तनका प्रभाव मनपर पड़े बिना नहीं रहता। यही कारण है कि तन और मनका एकके बिना दूसरेका स्वस्थ रहना असम्भव है।

मनोभावोंसे स्नायु-तन्तु प्रभावित होते हैं और उनमें तनाव उत्पन्न होता है। स्नायु-तन्तुओंके तनावका प्रभाव रक्त-संचार एवं अङ्गोपाङ्गोंपर पड़ता है। मुख्मण्डलपर तो यह प्रभाव इतना स्पष्ट व्यक्त होता है कि एक मानस-राम्क-वेत्ता किसी मनुष्यकी मुख-मुद्राको देखकर, उसपर मुद्रित मनोवृत्तियोंको इस प्रकार पढ़ लेता है मानो कोई इतिहासवेता इतिहासके पृष्ठोंको पलटकर उसमें वर्णित क्तोंको पढ़ने लगा हो। सामान्य-जन भी क्रूर और साचिक व्यक्तिकी पहचान उसकी मुखाकृतिसे ही कर लेते हैं। पशु और बालक भी अपने घातक एवं रक्षकको उसकी आँखोंकी दृष्टिसे ही पहचान लेते हैं। हिंसक प्राणियोंकी आकृतिपर उनकी मानसिक क्रूरता स्पष्ट इलकती है। सदय हृद्यवाले प्राणियोंकी आकृतियोंसे साचिकता टपकती है। अतः यह कथन कि श्रीर-रचनाका मूलाधार मन है—समीचीन ही है।

तन और मनके इस घनिष्ठ सम्बन्धसे प्रायः सभी धर्मप्रवर्तक एवं तत्त्ववेत्ता भी परिचित थे। इसीलिये उन्होंने अपने प्रणीत प्रन्थोंमें खस्थ रहनेके हेतु संयमी और निष्पाप जीवनयापनपर पूरा जोर दिया है। इस

युगके 'महात्मा' गाँधीने भी 'आरोग्य-साधन' प्रन्थमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि स्वस्थ मनवालेका शरीर स्वस्थ होता है। उनका कथन है कि जिसका मन विकार-रहित होता है, उसका रक्त इतना ग्रुद्ध होता है कि उसपर विपका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसकी सचाईके मीराँ और खामी दयानन्द सरस्वती निकट अतीतके ज्वलन्त प्रमाण हैं । इनके मनोबलका ही प्रताप था कि इनके शरीरको हलाहल विप भी कुल हानि नहीं पहुँचा सका। मनोविकारोंका शरीरपर पड़नेवाले प्रभावका विवेचन करते हुए अमेरिकन विद्वान् मि० ट्रायन छिखते हैं कि 'क्रोधसे रक्तमें इतना परिवर्तन हो जाता है कि थूक विषरूप हो जाता है, क्रोधरूपी मनोविकारसे शरीरका तापमान बढ़ जाता है। हृदयकी गति तेज हो जाती है और रक्त दूषित हो जाता है। शरीरके पोषकतत्त्व रस आदि धातुएँ विषयुक्त होकर पोषण करनेके बजाय विष फैळाकर रोगोंका बीजारोपण करने लगती हैं। एक बार एक स्त्री कोधमें आगववूला हो रही थी, उसी समय उसने अपने नन्हें शिशुको स्तन-पान कराया । उस शिशुपर उसके विषैले दूधकी ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उसने कुछ ही कालमें अपनी जीवन-छीछा समाप्त कर दी । इसी प्रकार एक व्यक्तिमें क्रोधका सर्प फुफकार उठा और उसने दूसरे व्यक्तिको काट खाया । फलतः सामनेवाले व्यक्तिपर थूकका ऐसा विषैठा प्रभाव पड़ा कि वह कुछ समय पश्चात् ही मर गया।

श्रीजेम्स एलेनका कथन है कि 'निराशासे मन्दाग्नि रोग हो जाता है। उस मन्दाग्निको भिटानेके लिये दी गयी दवाओं और इंजेक्शनोंसे कुछ लाभ नहीं होता, जब कि आशा, उत्साह एवं उछासके वायुके प्रथम झोंकेसे ही जठराग्नि प्रज्वलित होने लगती है।'

घृणाके कारण उन्नकाई (वमन) और उदासीनताके कारण जमुहाईका आना तो सामान्य-सी वातें हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

एण है कि णमें भूग

कित्सक्ता है। इ स्थ्य-प्राप्तिं योग है।

सफलान : स्नास्य द्रि, आन

कि सर

रोंसे जा नेमें शिव प्रस्था ने हुए-

ते।'

神 神 神 神 神

部部

मित्र अ

阿里

आर्गित

त्र

ही

कार

शरी

निर

मना

शारी

शारी

सभी

मानसिक चिन्ता-विषाद आदिसे अपचन, क्षय तथा हिस्टिरिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।

वनमें एकाएक शेर सामने आता दिखायी देनेपर कई व्यक्ति खड़े-खड़े ही मल-मूत्र कर देते हैं। पुलिसके भय तथा अपने किसी प्रियजनके अहित होनेके डरसे अनेक व्यक्तियोंको पेचिस हो जाती है। इसका भी कारण भयके प्रभावसे आँतोंका एकदम ढीला पड़ जाना ही है। भयसे कभी-कभी रोमाञ्च हो जाता है और रक्त-प्रवाह रुक जाता है। फलतः मृत्युतक हो जाती है। भूतके मिथ्या भयसे मनुष्य मर जाता है।

मनमें सदा खिंचाव तथा अशान्ति रहनेसे पेटमें अल्सर रोग हो जाता है। कामोद्रेकसे पीड़ित व्यक्ति स्वप्नदोष तथा धातुमेहका शिकार होता है और उन्मत्त-सा व्यवहार करने लगता है। उसका यह उन्माद बढ़ जाता है तो वह मूर्च्छित होकर प्रलाप करने लगता है। मनोविज्ञानसे अनिभज्ञजन उसे भूत या डाकिन लगना कहते हैं। इसकी सर्वोत्तम चिकित्सा भी मनोविश्लेषण या सम्मोहन किया-द्वारा उसकी कामवासनाके मूलमें रहे मोह या भ्रमको दूर करना ही है।

सर्पविष-विशेषज्ञ चिकित्सकोंका कथन है कि निर्विष सर्पसे दंशित लाखों व्यक्ति केवल सर्प-विषके भयसे अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं।

राजसी वृत्तियों अर्थात् भोगोंके अत्यधिक उपभोगसे राजरोग क्षय हो जाता है । अनेक सेनिटोरियमोंमें चिकित्सा करा लेनेपर भी नहीं मिटनेवाला वह राजरोग राजसी वृत्तियोंको त्यागकर साच्विक वृत्तियोंको तथा संयमको अपनानेसे मनके शान्त हो जानेपर खतः समुल विनष्ट होता देखा गया है । कामनाओं तथा दुर्वासनाओंसे अभिभूत व्यक्ति सिरदर्द, रक्तचाप, क्षय, हृद्य-रोग आदि व्याधियोंसे पीड़ित रहता है और जब वासनाओंकी संख्या, वेग तथा भार इतना बढ़ जाता

है कि हृदय उसे वहन नहीं कर सकता ने से विश्राम करनेको विवश होना पड़ता है। फलतः हुस्न गति सदैवके लिये रुक जाती है।

यह तो विदित ही है कि घनिष्ठ स्नेहींके निका शोकविह्नित व्यक्तिको पड्स्स भोजन भी नीस है लगते हैं।

यदि चित्तमें चिन्ताकी ज्वाला जल रही है तो क कितने ही विटेमन और प्रोटनोका सेवन किया जा उनसे रस एवं रक्त नहीं बन सकेगा। यही नहीं, ह चिन्ता शनै:-शनै: शरीरको निर्बल बना चितामें पहुँग देती है । धन्वन्तरि वैद्य और स्नमान हर्मां मं पुनर्जन्म लेकर उसे नहीं बचा सकते। चिन्ताका ग्रीएए पड़नेवाले प्रभावका अनुमान इसीसे लगाया जा सका है कि अत्यधिक चिन्तासे लंकाके एक व्यक्तिके का एक ही रातमें इवेत हो गये थे। मानसिक किंग शारीरिक रोगोत्पत्तिमें दो प्रकारसे कारण बनते हैं-प्रथम तो उनका सीधा प्रभाव पड़ता है जैसा कि आ वर्णन कर आये हैं। दूसरा इन अप्रशस्त एवं कृति भावोंसे कुपथ्य, अनियमितता, दुराचार, दुर्वसन प्रवृत्तियोंको अव अमक्ष्यमक्षण आदि असंयमपरक मिलता है । असंयमयुक्त प्रवृत्तियाँ प्राकृतिक ^{नियार्क} उल्लब्बनके कारण बनकर शरीरको रुग्ण बनाती ^{है ता} इन्द्रियोंको उत्तेजित कर मनको आकुल एवं अर्रान रखती हैं, जिससे जीवनीशक्तिका तीव्रतासे हास हैंग है और ऐसे व्यक्तिके शंरीरमें रोग-निवारणकी क्षम क्षीण होतीं जाती है, रोग उसे घेरे रहते हैं। असंयमीके पीछे उसी प्रकार लगे रहते हैं जिस प्रा छाया कायाके । अतः नीरोग रहनेके छिये प्रथम औ आवश्यक शर्त है कि जीवनको संयमयुक्त विताया जाय यह सर्वथा असम्भव है कि कोई असंयमी जीवन विताये और स्वस्थ भी बना रहे । आजका मानव निवारणकी शक्ति दवामें मानकर संयमकी उपेक्षा करि

माग है।

तः हृत्यन

में नियनमें

नीरस ही

है तो गृहे

क्रिया जब

नहीं, वह

नामें पहुँच

हकीम भी

ता शरीरप

जा सकता

क्तिके बा

क विकार

नते हैं—

कि आ

वं कुरिसा

दुर्व्यस्म,

को जन

नियमीन

ते हैं ता

ं अशान

रास होत

前

स प्रका

थम औ

जाय।

तीवन भी

है। इसीका परिणाम है कि सम्प्रति मानवसमाज रोगसे आक्रान्त, प्रस्त एवं संत्रस्त है। मनेन्द्रियका संयम खिनसे तथा दुर्भोगों एवं अतिभोगोंसे बचकर रहनेसे ही खस्थ रहा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

गठिया, क्षय, केंसर, रक्तचाप, हृदय आदि समस्त भयंकर एवं साधारण रोगोंमेंसे कोई भी रोग ऐसा नहीं है, जिसकी जड़ मनमें न हो और जो असंयम, कुत्सित इच्छाओं, कुचेष्टाओं, दुर्वासनाओंसे पोषित न हुआ हो। इसी प्रकार ऐसा भी कोई रोग नहीं है जो मानसिक निर्मळता एवं संयमके समक्ष ठहर सकता हो त्या जिसके कीटाणु पावन मनस्वी व्यक्तिके तनमें घर कर सकते हों । चोरी, व्यभिचार, विश्वासघात, प्राणघात आदि पापकृत्य करनेवाले व्यक्तिका मन आत्म-ग्लानि, हीनता, भय, आशंका आदि भावोंसे सतत संतप्त, संत्रत्त, अशान्त एवं तनावयुक्त रहता है। उसके अतःकरणमें अन्तर्द्वन्द्व तथा विष्ठव मचा रहता है। जैसे, जिस राष्ट्रमें गृह-युद्ध एवं विष्ठव हो रहा हो, उसका सर्वतोमुखी पतन होता है, इसी प्रकार जिस व्यक्तिके हृदयमें ग्लानि, हीनता, द्वन्द्व आदि भावोंके विष्ठवके बवंडर उठ रहे हों, उसका भी सर्वतोमुखी पतन अवश्यम्भावी है। अन्तर्द्वन्द्व एवं हृदयोद्वेलनके कारण उसके स्नायु-तन्तुओंका तनाव बढ़ जाता है और रिं कोष तेजीसे टूटने लगते हैं। शरीरकी सृजन-किया शिथिल तथा छीजन-क्रिया सिक्रय हो जाती है। मनमें आकुलता तथा अशान्तिका साम्राज्य छा जाता है। उसकी क्लोरी उष्माँक जीवनीशक्ति अत्यधिक पिमाणमें क्षीण तथा व्यय होने लगती है। परिणामतः शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका तीव्रतासे हास होने लाता है। उसके तन और मनकी दुर्बलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। और यह सर्वमान्य तथ्य है कि शारीतिक निर्वलता रोगोंके पनपने, तथा मानसिक दुर्बलता सभी दुः लोंके अङ्कारित होनेके लिये उर्वर भूमि है।

अतएव रोग और दु:खोंसे मुक्तिके छिये दुर्भावना तथा दुष्कृत्य-रूप पापके परित्यागके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

महात्मा गान्धीका (यंग इंडिया २२ सितम्बर १९३६ ई० में प्रकाशित) यह अनुभव कि 'आत्मा जैसे-जैसे पापोंसे छुटकारा पाती जाती है, वैसे-ही-वैसे उसका शरीर भी नीरोग होता जाता है। भारतवर्षके लिये नवीन नहीं है। अति प्राचीन कालसे ही ऋषिगण इस तथ्यसे अवगत थे । फलतः उन्होंने धर्मशास्त्रोंमें रोगोत्पत्तिको पापके परिणामरूपमें प्रतिपादित किया है। प्राचीनकालमें इस तथ्यके व्यावहारिक आचरणपर इतना बल दिया जाता था कि उस समय किसी रोगके हो जानेप्र रोगी व्यक्तिको वैसे ही लिजत होना पड़ता था जैसे आज या आजसे कुछ पूर्व सुजाक या उपदंशके रोगीको लज्जित होना पड़ता था। उस समय रूग्णता शब्द अपवित्र विचार, दुर्भाव, पाप तथा असंयमका पर्यायवाची था । धर्माचार्य और आरोग्यशास्त्री आधुनिक सभ्यताके चकाचौंधसे चौंधिया कर चाहे आज इस सिद्धान्तको न देख पाते हों, परंतु देहाती नागरिकोंके अन्तः करणमें आज भी यह संस्कार घर किये हुए है। वे जब रुग्ण होते हैं तो उनके मुखसे परम्परागत संस्कार-वशात् सहज ही निकल पड़ता है कि 'हे प्रभो ! हमने ऐसा क्या पाप किया, जिसके फलखरूप हमें यह रोग हुआ। वे आज भी रोगोत्पत्तिका कारण पाप या कुत्सित वृत्तियोंको मानते हैं। उनकी यह मान्यता भ्रान्ति या अन्धश्रद्धा-जन्य न होकर तथ्यपूर्ण है ।

प्रयोजन यह है कि जिसका मन शुद्ध, निर्विकार, नीरोग है, उसके पाचक, स्नायु आदि संस्थान भी नीरोग होते हैं | उसका रक्त इतना शुद्ध तथा सक्षम होता है कि शरीरमें उत्पन्न, विद्यमान एवं प्रवेशमान सभी प्रकारके रोगके कीटाणुओंको परास्त और विष्यंस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मव गेंग

कर देता है। उसे रोगके कीटाणुओंके विनाशके छिये किसी दवा या इंजेक्शनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः मानसिक निर्मलतासे बढ़कर न तो कोई शक्ति-प्रदायिनी दवा ही है और न रोग-विनाशक अमोध ओपिष ही।

परंतु खेद है कि आजके चिकित्साशास्त्री बाह्य कारणोंसे उत्पन्न शरीरस्थ रोग-कीटाणुओंके विनाशके लिये तो प्रयत्नशील हैं, लेकिन मनोभूमिकामें उत्पन्न काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, अहंकार, हिंसा, वैर, विषयासक्ति, कषाय, स्वार्थपरता, कुटिलता, आवेग, आकुलता, भय, चिन्ता और अतृप्ति आदि विकार या गंदगियोंसे उत्पन्न रोग-कीटाणुओंके विनाशकी ओर उनका किश्चित् भी ध्यान नहीं है। ये ही वे घुन हैं जो रोगोत्पत्तिमें कारण वनका है और दिमागको दुर्बल बनाते हैं और यह किसीरे कि नहीं है कि देह और दिमागकी दुर्बलता सब रोगेंब कारण है। अतः सफल चिकित्साके हेतु चिकित्साकें मनोविकारोंको दूर करनेके सिद्धान्तको पुनः प्रतिष्ठाल करना होगा।

हर्षका विषय है कि आधुनिक विज्ञानकी है शाखाओं 'मानस-शरीर-विज्ञान' (साइकोसोमिटिक) के परामनोविज्ञानका ध्यान इस ओर गया है के उन्होंने इस तथ्यको स्वीकार किया है। आशा है के समुचित विकाससे निकट भविष्यमें ही चिकिताकार क्रान्ति होकर समीचीन एवं सर्वाङ्गीण चिकित पद्धतिको स्थान मिलेगा।

मानवताकी परिधि

[कहानी]

(लेखक—श्रीरूपनारायणजी चतुर्वेदी)

'सुनती हो ? आज भगवान् हमारी कुटियापर खयं पधारे हैं।' अपनी पत्नी सुचेतासे कौस्तुभने कहा।

'क्या कहा ? मैं आयी ।' पत्नी बोली । आँगनसे गायका दुहना छोड़ धुचेता दौड़ आयी । उन्होंने देखा कि एक धुन्दर बालक उनके कुटी-द्वारपर पड़ा कराह रहा है । बालक अति क्षीणकाय था, पर उसकी आँखोंमें चमक थी । वह बहुत धीरे-धीरे केवल इतना ही बोल सका—'मुझे टी० बी० है । जीवनकी कुछ घड़ियाँ शेष हैं । निर्धन माता-पिता मेरे जीवनसे निराश हो चुके । मरनेके लिये मुझे इस द्वारपर डाल गये हैं ।'

कौस्तुभका कलेजा भर आया। वह बोला—'भगवान्, और तीसरा सोते हुए एक बालकका। वार्य मेरे बच्चेको कौन मार सकता है ?' फिर सुचेतासे कहने था—श्यामा। वह छोटी-सी गाय बड़ी अची लगा—'तुम जाकर दूध उन्नालकर ठंडा करो। शहद उसका दूध-सा सफेद बच्चा रोचन था। चमकती नागकेशर और दो बूँद दालचीनी डालकर ले आओ। सतर्क कान, उछलता शरीर और गुच्छेदार पूँछ। में छालको बिछोनेपर लेटाता हूँ।' 'बारीश बेटा! यह घर तेरा है। बिल

गये मिद डॉक

ग्र

मत

एव सुन

चिः

सेन

और

की

उत्प

हेलाव स्पर्मे थे, प

कुटि

भक्ति इंडाउ

अपने सम्पव भाग है

-

नकार है

सींसे छि

न रोगींग

福斯

प्रतिष्ठाप्य

ानकी हो

उम) जो

है जी

ग है ज़

क्रिनेगर लेट जा'—इतना कहकर कौस्तुभने सँभालकर दोनों हार्थोपर पाँच वर्षके वन्चेको उठा लिया और ले जाकर सुचेताके विछौनेपर लेटा दिया । हवाका हल्का _{बोंका} आया और पीपलके पत्तोंमेंसे सूरजकी पहली किरण करियामें प्रविष्ट हुई । 'बीरन'को अपना नाम 'वारीश' प्रनक्त हर्ष हुआ । बिछौना बड़ा कोमल था और उसपर ह्रेकर सची वत्सलताका अनुभव बीरनको हुआ । हँचे गहेसे कहने लगा—'पिताजी ! मैं यहीं रहूँगा, मुझे मत छोड़ना।"

मुचेता सफेद प्यालेमें दूध ले आयी । वारीशके क्षिपर हाथ फेरकर धीरे-धीरे दूध पिलाने लगी। कौस्तुभ एक ओर खड़ा आँसू बहा रहा था। वालकका एक हाथ हुचेताके गलेमें था । दूध पीकर वह सो गया । भक्तके चित्रसे माला खिसककर उसके पास आ पड़ी ।

दस वर्ष पहले डॉक्टर कौस्तुभ पूना टी० बी० सेनिटोरियमके सुपरिटेंडेंट थे, सुचेता रूसी महिला थी और नर्स होकर आयी थी। गुण, स्वभाव और आचरण-की एकताके कारण कौस्तुभ और सुचेतामें स्नेहबन्धन उपन हुआ और वे कुछ ही कालमें प्रणयसूत्रमें वँध गये। संतानहीन दम्पति जीवमात्रकी सेवा करते, मांस-मिंदेरासे दूर रहते और अतीव पवित्र जीवन व्यतीत करते । बॅक्टर कौस्तुभ सेनिटोरियमसे इस्तीफा देकर मैसूरमें ^{कृदिया} बनाकर रहने लगे थे। केवल असाध्य रोगोंका देशी र्वा करना उनका कर्म था। वे प्राकृतिक चिकित्सकके रूपमें प्रस्यात थे । अपनी कुटियापर रोगी नहीं देखते थे, पर नित्य चार घंटेके लिये मैसूरके सिविल अस्पताल-में काम करने जाते थे। जनता उनके लिये श्रद्धा और भक्तिके भाव रखती थी और प्रमात्माकी कृपासे उनके हें बाई रोगी न मरा था । आज तो वारीशको अपने पुत्रके रूपमें उनको जीवनदान देना था । उनके सम्बर्भ आनेसे ही रोगी आधा अच्छा हो जाता था। सूनापन व कस मिटा । CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुत्रवत् परिचर्या और अनुभवगम्य शुश्रूषासे वारीश टो वर्षमें ही पूर्ण खस्थ हो गया । इतना ही नहीं, उसके शरीरमें एक ऐसा कवच उत्पन्न हो गया कि छूतकी घातक तथा संक्रामक बीमारियोंके मरीजोंके बीच वह निर्भीक विचरण कर सकता था । इन रोगोंके कीटाणुओं-पर वह विजय पा चुका था और प्रायः डॉक्टर कौस्तुभके साथ वह अस्पतालमें जाता तथा रोगियोंकी परिचर्या करता और उनके रोगोंको समझनेका प्रयास करता ।

आज वारीश पिताके साथ अस्पतालमें है । एक अचेड़ स्त्री पूर्ण विक्षिप्तावस्थामें आयी । कपड़े फाड़ती और बाल नोचती थी। कभी खूब हँसती थी, कभी रोती थी और कभी यह कहकर गाती थी-

'बीर गया जमलोक मेरा दिल बीराना।' हठात् वह डॉक्टर कौस्तुभके सामने आयी और उसने वारीशको देखा । वह उससे चिपट गयी 'छाछ द छौट आया । मेरा बीरन, मेरा छाछ, देख तो माँका हाछ । अब न जाना पूत नहीं मर जाऊँगी।' स्त्री बड़े जोरसे काँपी और काँपकर बेहोश हो गयी।

दो महीनेमें बीरनकी माँ ठीक थी । आज डॉक्टर कौस्तुभ बड़े अनमने हैं। सुचेता तो बौखला गयी थी। कभी बालकके मुँहपर हाथ फेरती, कभी उसके कपडे सँभालती और कभी चित्रकी हिरनीको देख लेती। उसका वारीश आज बीरन बनकर अपनी असली माँके साथ जा रहा है । बीरन चला गया और मुचेता आँसू बहाती आँखे बंद किये प्रार्थना करती रह गयी !

दो महामानव कौस्तुभ और सुचेता मानवताकी सेवामें तत्पर हैं, पर उनके जीवनका रस चला गया है। जहाँ-तहाँ जब-तब उनके नेत्रोंमें आँसू छठछठा आते हैं। अस्पताल दोनों ही जाने लगे हैं और रोगी-रोगीमें उनको वारीशके दर्शन होते हैं। सब कुछ है, पर आत्माका

त्साजगत् चिकिता

रुटिया व (छपा रा ऑगन र सों

थोडी बूप या। 🖣 间柳

एक रा र्थना कर ए हार्गि

।यका र ते सार्व हती औ

विश्वकल्याणका मूलाधार —आत्मीयताका विस्तार

(लेखक—श्रीअगरचंदजी नाहटा)

उपनिषद्के वर्णनके अनुसार सृष्टिसे पूर्व ब्रह्म से गये हैं। उसे फिरसे याद दिलानेके लिये ही वेदाल, अकेला था, तब उसने विचार किया कि मैं एकका अनेक जैन आदि आध्यात्मिक दर्शनोंका उदय हुआ। वेदाल हो जाऊँ—'एकोऽहं बहु स्याम्'। इसलिये मृल तत्त्व ने कहा, 'ब्रह्म एक है' और समस्त प्राणी उसीके एक ही था, एक ही ब्रह्मके अंश संसारके समस्त प्राणी सनातन अभिन्न अंश हैं। इसके द्वारा मृलगत एकताकी हैं। इसीलिये उनमें संज्ञाएँ, इच्छाएँ, आवश्यकताएँ बहुत कुछ ओर इस दर्शनने हमारा ध्यान आकर्षित किया। जैन एकसी ही पायी जाती हैं। खतन्त्रता, अमरता, अखण्ड दर्शनने प्रत्येक आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व माना, पर अनन्त सुख सभी चाहते हैं। लौकिक व्यवहारमें आहार, यह बतलाया कि स्वरूपतः सभी प्राणी एक-जैसे हैं। निद्रा, भय, मैथुन आदि सभीमें समान हैं। मूलगत सत्ताकी अपेक्षासे सभी सिद्ध-बुद्ध-परमात्मखरू

एकताके साथ विश्वके प्राणियोंमें जो अनेकता दिखायी देती है, वह भी सकारण और आवश्यक है; क्योंकि ब्रह्मको विनोद करना था, लीला या कीड़ा करनी थी और सभी प्राणी एक-जैसे होनेपर उनमें परस्पर उतना आकर्षण नहीं होता तथा उसके बिना ब्रह्मका संकल्प पूर्ण नहीं होता । प्रत्येक प्राणीकी पहचान या उसके खतंन्त्र व्यक्तित्वका अनुभव भेदबुद्धिपर ही आधारित है। सभी प्राणी एक समान ही होते तो उनकी अलग-अलग पहचान होना कठिन था । यह भेदभाव ही मायातत्त्व है और मूलकी एकता या अभेद ही ब्रह्मतत्त्व है। वेदान्तदर्शनका यह मन्तव्य है कि एक ब्रह्म ही सत्य है, और सब जगत् मिथ्या है—'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या। अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यमें प्रकृति-प्रदत्त अनेक विशेषताएँ हैं । मन, भाषा, बुद्धि आदिकी शक्ति पश्-पिश्च-जगत्की अपेक्षा उसे बहुत अधिक मिली है। और इसीके कारण मनुष्योंमें अलगाव या भेदभाव भी अधिक है। प्रकृतिने अरबों-खरबों मानवादि प्राणियोंको उत्पन्न किया और उनकी आकृति, वर्ण, ध्वनि, रुचि, स्वभाव आदि अनेक वातोंमें भिन्नता रक्खी । इसी भिन्नताके कारण हम एक दूसरेको अलग-अलग समझने छो हैं और मूछगत चैतन्यसत्ताकी एकताको

से गये हैं। उसे फिरसे याद दिलानेके लिये ही वेदाल, ने कहा, 'ब्रह्म एक है' और समस्त प्राणी उसीके सनातन अभिन्न अंश हैं । इसके द्वारा मूलगत एकताकी ओर इस दर्शनने हमारा ध्यान आकर्षित किया । जैन दर्शनने प्रत्येक आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व माना, पर यह वतलाया कि स्वरूपतः सभी प्राणी एक-जैसे हैं। मूलगत सत्ताकी अपेक्षासे सभी सिद्ध-बुद्ध-परमात्मखत्व हैं। राग-द्वेष कर्मबन्धके प्रधान कारण हैं और कर्मेंके कारण ही यह देहादिकी भिन्नता है। कर्मीके नष्ट हो जानेपर सभी आत्माएँ एक ही सिद्ध-मुक्तकी श्रितिको पा लेती हैं। सिद्ध अवस्थामें उनमें कोई भी भेदभाव नहीं रहता । इसिलिये आत्माके मूल खभावको पहचान-कर उसीमें स्थिर रहना आत्मधर्म है । आत्माका धर्म या लक्षण चैतन्य है । अनात्म-पौद्गलादि दश्यमान सभी पदार्थ जड हैं। कमेंकि कारण जडसे आताका सम्बन्ध हो गया है । उस अनात्मभाव (जर्डको अपना मानकर उसपर ममत्व करने)को अभेदविज्ञानके द्वार हटाना है । आत्मखरूपकी विस्मृति ही सारे दुःखेंका कारण है और आत्मज्ञान ही मोक्षका। आत्मज्ञान य आध्यात्मिक ज्ञान दोनों एक ही है। 'आत्मज्ञान अध्यातम भाव समो शिव साधन अन्य न कोई।'

विश्वके समस्त प्राणी सुखाभिठाषी हैं और जीवित रहना चाहते हैं। कोई भी प्राणी मरना या दुःख पानी नहीं चाहता। जैसे हम सुख चाहते हैं, वैसे ही दूसी प्राणी भी। अतः किसीको भी किसी प्रकारका कृष्ट देना हिंसा है, पाप है और समस्त जीवोंके साथ आत्मीप्य व्यवहार ही अहिंसा है, धर्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आतमव आतमी सुखं व

मानवमें

विचार सम्बद्धाः विचार सम्बद्धाः विचार सम्बद्धाः विचार सम्बद्धाः विचार विचार सम्बद्धाः सम्बद्धाः विचार सम्बद्धाः सम्वदाः सम्बद्धाः सम्वदाः सम्बद्धाः सम्व

तिया है। व जाठवकी व बाहे नुकासान इसी श्रेणीये तेते हैं पर स

मनीविय

जिसान न जिसान कर

हते हैं। व जीवनकी वृ ग्रीमियांवाळीं

हिं। गया

श्रेगीम आ शहें छाने के

कानमें ही

[و الله

1

के

हो

म्रो

q

न-

र्भ

和

ना

N

ħĪ

या

d

आतमवत् सर्वभृतेषु यः पश्यति स पश्यति ।' आतमेपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन । आतमोपम्येन सर्वत्र स योगी परमो मतः॥ पुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

मानवमें अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनकी प्रधानता विवार और विवेक ही पशुओंसे उसे पृथक् कर हैं। समृह तो पशुओंका भी होता है और मनुष्यों- अभी पशुओंके समृहको 'समज' कहते हैं, पर मानवों- अभी पशुओंके समृहको 'समज' कहते हैं, पर मानवों- अभी पशुओंके समृहको 'समज' कहते हैं, पर मानवों- अभी उसे केवल अपने ही स्वार्थ या हितका ध्यान खिका अपने साथी—चाहे वे परिवार, जाति या को हों—सबका ध्यान रखते हुए जीवन-न्यवहार अम होता है। बहुत बार अपने लाभको गौण करके दिसोंको किसी भी तरहका नुकसान न हो, इ धानमें रखते हुए प्रवृत्ति करनी पड़ती है। वे ऐसा ध्यान नहीं रक्खा जाय तो सामाजिक के असा-व्यक्त और छिन्न-भिन्न हो जाय।

मनियोंने विश्वके मानवोंको तीन श्रेणियोंमें विभक्त क्षि है। पहली श्रेणीमें वे आते हैं, जो केवल अपने ही सलकी वात सोचते और करते हैं। दूसरेका उसमें बहु सितान ही हो, इसकी उन्हें परवाह नहीं होती। सि श्रेणीमें वे आते हैं, जो अपने स्वार्थको तो प्रधानता ते हैं पर साथ ही यह भी स्थाल रखते हैं कि दूसरोंका सिनान करके भी दूसरोंको सुख-शान्ति पहुँचानेमें दत्तचित्त हों। तीसरी श्रेणीमें वे आते हैं, जो अपना सिना करके भी दूसरोंको सुख-शान्ति पहुँचानेमें दत्तचित्त हों। परोपकारमें, दूसरोंकी सेवामें ही वे सुख और कितार्थताका अनुभव करते हैं। इन तीन सिभी क्यार्थताका अनुभव करते हैं। इन तीन सिभी व्यक्ति चाहते हैं कि हम उत्तमकी सिनामें आयें, लोग हमारी प्रशंसा करें; पर वे उत्तम सिनो औरं, लोग हमारी प्रशंसा करें; पर वे उत्तम कार्य नहीं करते। अतः केवल इच्छा सकता। प्रस्थेक

मनुष्यको स्थिरचित्त होकर गम्भीरतासे सोचना चाहिये कि वह किस श्रेणीमें है । यदि निम्न कक्षामें है तो मध्यम और उत्तम श्रेणीमें और मध्यम कक्षामें है तो उत्तम श्रेणीमें आनेका प्रयत्न करना चाहिये। स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ-ये इन तीनों श्रेणियोंके तीन रूप हैं। आज दुनियाँमें स्वार्थका बोलवाला है, अपने तनिक-से लाभके लिये दूसरोंका वड़े-से-वड़ा नुकसान करनेमें लोग नहीं हिचकते । अतः प्रसेवा और सवमें भगवद्रूपका दर्शन करनेवाले विरले एवं दुर्लभ हैं । वैसे संसारमें अच्छे और बरे व्यक्ति सब समयमें रहे हैं; पर जिस समय सार्त्विक प्रकृतिवालोंकी अधिकता होती है, उसे सत्ययुग कहा जाता है। जब राज्स प्रकृतिवालोंकी अधिकता होती है, उसे त्रेता और द्वापर तथा तामसी प्रकृति एवं प्रवृत्तिवाले व्यक्तियोंकी अधिकतावाले कालको कलियुग कहते हैं। यद्यपि सात्त्रिक प्रकृतिवाले व्यक्तियोंकी आज भी नास्ति नहीं है, तथापि वे हैं विरले ही । इसीलिये संत महापुरुवोंने ग्राम-नगरोंमें घूम-चूमकर यह संदेश प्रसारित किया कि खार्थको घटाकर परार्थमें प्रवृत्त होओ। परोपकारके समान कोई धर्म नहीं है--- 'परोपकार: पुण्याय पापाय परपीडनम् ।'

भारतीय धर्मों में अहिंसाको परमधर्म माना गया है— 'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसाका अर्थ है प्राणिमात्रके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध जोड़ना। जैसा व्यवहार हम अपने लिये पसंद नहीं करते, वैसा दूसरोंके लिये हम नहीं करें। यही अहिंसक व्यवहारकी कुंजी है—

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

आज हम इस महान् शिक्षाको भूल गये हैं, और प्रति-समय दूसरोंके साथ ऐसा व्यवहार करते रहते हैं, जैसा व्यवहार दूसरे व्यक्ति हमारे प्रति करें तो हम बहुत ही बुरा समझते हैं और कभी नहीं चाहते । भारतीय मनीषियोंने तो यहाँतक कहा है कि यदि अन्य व्यक्ति हमारे प्रति अनुचित व्यवहार करता है, तो भी

हम उसके साथ उचित और अच्छा व्यवहार ही करें, हम उसकी भूलको खयं करके दुहरायें नहीं। हमारी अच्छाईका प्रभाव आगे-पीछे अवस्य पड्नेवाला है, इसका हम विश्वास रखें और अपनी सज्जनताको न खोयें ।

व्यक्तियोंका समूह ही समाज है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे परस्पर अनेक प्रकारकी सहायता प्राप्त करता रहता है। एक व्यक्ति जो नहीं कर पाता वह समाज या संगठित व्यक्तियोंका समूह सहजमेंही कर सकता है। दूसरोंकी सहायताके बिना हम जीवित नहीं रह सकते, आगे नहीं बढ़ पाते; इसिंठिये दूसरोंकी सहायता करना हमारा भी कर्तव्य हो जाता है। इस केवल लेना ही नहीं, देना भी सीखें।

व्यक्तिका जन्म एक परिवारमें होता है । चाहे वह माता-पितातक ही सीमित परिवार हो या भाई, बहिन, काका, बाबा आदिका विशाल कुटुम्ब हो, पारस्परिक सहयोगसे ही सबका जीवन सुखकर होता है। बालक होनेपर जिन-जिन व्यक्तियोंसे उसे जो-जो सहायता मिली है, उसे चाहे भूल जाय, पर यह निश्चित है कि यदि उसे माता-पिता आदि परिवारकी सहायता नहीं मिली होती तो उसका जीवित रहना दूभर हो जाता। वास्तवमें हमारा यह जीवन अनेक व्यक्तियोंकी सेत्रा-शुश्रृषा, शिक्षा तथा सहायता-सहयोगपर ही निर्भर है। एक परिवारमें रहनेसे एक दूसरेके प्रति सहज ममत्व हो जाता है और एक दूसरेकी सेवा करनेकी भावना और प्रवृत्ति होती है। इस ममत्व या आत्मीयताके कारण ही अपने परिवारके व्यक्तिको शारीरिक, आर्थिक, मानसिक—किसी भी प्रकारका कष्ट आता है तो हम उसे निवारण करनेके लिये बेचैन-से हो उठते हैं । उसके लिये खयं कष्ट उठानेको तैयार हो जाते हैं, क्योंकि उस व्यक्तिके साथ हमारा पारिवारिक या आत्मीय सम्बन्ध है । उसके कप्टको हम अपना कष्ट मानते हैं। अपने पास जो भी धन, बल, बुद्धि हैं। अज व्यक्तिमें स्वार्थ इतना अधिक हो गया है कि CC-0. In Public Domain Garukul Kangri Collection, Haridwar

उसका उपयोग करके आत्मीय जनकी पुषश्चिक सहायक होते हैं। पर यह पारिवारिक आत्मीयताका सम्ब है बहुत ही सीमित और संकुचित, इसीछिये महापुर्यो कहा है कि आत्मीयताके सम्बन्धको विस्तृत काते हे जाओ । पहले पड़ोसीको, फिर समाज, जाति, गाँववारी अपना ही समझकर उनके प्रति भी परिवारके लोहें भाँति व्यवहार करो । क्रमशः देश और राष्ट्रके सम्ब प्राणियोंके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध जोड़ते चले जां। उनके दुःखको अपना दुःख मानो । कोई भी पराया ह है, सभी अपने हैं--इस भावनाके उदित होते ही हि द्वेष, कलह, ईर्ष्या, संघर्ष आदि अशान्तिके समत काल खतः समाप्त हो जायँगें । जो तेरे और मेरेके पंदेमें पे हुआ है, उसे महापुरुषोंने हीन कोटिका (लघु) या कहा है; और जो विश्वके साथ मैत्री या प्रेमका सम्बन्ध जोता है, वह महान् यानी महात्मा है-

अयं निजः परो चेति गणना लघुचेतसाम्। वसुधैव उदारचरितानां त्

जिस व्यक्तिको हम अपना मान लेते हैं, उस व्यक्ति को दूसरा कोई कष्ट पहुँचाये तो उसका प्रतीकार कर्न के लिये हम मरने-मारनेको तैयार हो जाते हैं; इससे ब्र तात्पर्य निकलता है कि जिसे हमने आत्मा मान िया उसकी रक्षा करना, उसके सुख-दु:खकी चिन्ता करना दुखी अवस्थामें हर प्रकारका सहयोग देकर उसका दुः। निवारण करना यह हमारा कर्तव्य है। जिन व्यक्तियीं हमने पराया मान लिया है, उनके प्रति हमारी बैती सहानुभूति नहीं होती । इसीसे उनको कष्ट देनेमें भी नहीं हिचकते। अतः समस्त दोषोंका मुल अपनेसे भिन दूसरे प्राणियोंको पराया मानना है। यदि हम पर्पोकी भी अपना मानने लग जायँ तो उनके प्रति भी वैसा है व्यवहार करेंगे, जैसा अपना माने हुए व्यक्तियों या कुर्षी जनोंके साथ करते हैं।

संस्या ७

अपने खार्थ ज़ोंको भी क्रानेको तु

हैं स्पेकि उसने त्याग 阿色1

क्स अ क्तित कर बत ही सु

भारतीय प्रधानता दी

हैं, मैं भी व म्रि दुविधा

पे सत्र अ जनने और

चैतन्यमूर्ति 前州意

शासभावना भागा जैर्स

एवन्धींसे : प सक्पत मानें, किस

ही हिंसा ण विकारभ न हो, पर

वितः दूर जैनदर्शनने

औ(अहिंस पयी जाती जादि स्थाः

जिल्ह्य हिये विश रानिव

30%

ते के

वालेश

लोगेन

HAT

जाओ।

या नही

霞明

में फूल

व्यक्ति

जोड़त

ाम्।

म्॥

कारने

से यही

(MI)

काला

दु:ख

त्यांने

वैसी

ने भी

भिन

योगे

सा ही

क्षार्थमें थोड़ी-सी भी कमी आयी कि वह पारिवारिक क्षेत्र भी पराये मान बैठता है, उनके साथ भी संघर्ष ब्रिको तुल जाता है—लड़ने-झगड़नेको उतारू हो जाता क्षेत्रोंकि उसका परिवारमें जो आत्मीयभाव था उसका क्षते लाग कर दिया है, अपने व्यक्तियोंको पराया मान 🕅 है। इसी तरह पराये माने जानेवाले व्यक्तियोंको र्षं हम अपना मानते चले जायँ और आत्मीयताको क्लि करते चले जायँ तो अवश्य ही उसका परिणाम 👸 ही सुबद होगा—अपने लिये भी और दूसरोंके लिये भी। भारतीय दर्शनोंमें पूर्वोक्त भावना या आत्मभावनाको क्षाता दी गयी है । प्राणिमात्रमें भगवान् विराज रहे हुँ मैं भी वही हूँ हम सब एक ही ब्रह्मके अंश हैं, तब प्रदुविधा, अलगाव वा संघर्ष क्यों ? हिंसा, द्वेष, कलह— ोस अज्ञानमूलक हैं। अपने खरूपको ठीकसे न बने और समस्त प्राणियोंमें व्याप्त अपने-ही-जैसे उस क्रियम्र्तिं ब्रह्मको भूल जानेके कारण ही, जो ब्रह्म भेंभी हैं, तेरेमें भी हैं और सभीमें समानरूपसे व्याप्त हैं। भागामासे व्यक्ति यह विचार करेगा कि चैतन्यखरूप काम जैसी मेरी है, वैसी ही दूसरोंकी है। शारीरिक मियोंसे चाहे जगत्के प्राणी भिन्न-भिन्न माछ्म देते हैं, श सक्तपतः सब एक ही हैं। फिर किसको पराया मिं, किससे छड़ें-झगड़ें। दूसरोंकी हिंसा मूळत: अपनी है हिंसा है। अपने मनमें किंचित् मात्र भी हिंसा विकारभाव आ गया तो चाहे दूसरेका कुछ भी नुकसान हों, पर अपने आत्म-गुणोंकी हिंसा तो हो ही गयी। क्तः दूसरोंको मारना ही हिंसा नहीं है, अपने मनमें भी पैदा होना ही अपनी हिंसा है। आध्यात्मिक कर्शनि तो इस बातपर खुब जोर दिया है। हिंसा के अहिंसाकी अनेक सूक्ष्म व्याख्याएँ जैनदर्शनमें भी नाती हैं और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति भीद सावर जीवों और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, क्षित्रम्, इन (चलने-फिरनेवाले) जीवोंकी रक्षाके होते स्व (चलन-१५८नवाल) मया है । विधान किया गया है ।

हमारा आदर्श अहिंसाका होते हुए भी जीवन-व्यवहारमें हिंसा अनिवार्य है। इसिक्टिये दूसरे जीवोंके साथ हमें कैसा व्यवहार करना चाहिये ? हिंसाका पाप कम-से-कम कैसे लगे ? और उसके लिये हमें अपने जीवनको कैसा वनाना चाहिये ? इसका भी बहुत सुन्दर विधान सनातन, जैन, बौद्ध आदि धर्मोंके प्रन्थोंमें प्राप्त होता है। हिंसाको कम करनेके छिये सबसे अधिक आवश्यकता है संयमकी । इसलिये अहिंसाके विकासके लिये संयम-धर्म अनिवार्य है । संयमका अर्थ है — अपनी इन्द्रियों और मनको काबूमें लाना । आवश्यकताओंको कम करते जाना । शारीरिक, मानसिक, वाचिक—तीनों प्रकारकी प्रवृत्तियोंमें कमी या संकोच करते रहना ही अहिंसाकी ओर बढ़ना है । हम अज्ञानवश अपनी आवश्यकताओंको बढ़ाते रहते हैं, अनावश्यकताओंको आवश्यकताएँ मान बैठते हैं और इसीलिये संप्रह और उपभोगकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। जिन व्यक्तियोंको जीवन धारण करनेके लिये जिन-जिन वस्तुओंकी जितने परिमाणमें आवश्यकता है, उन्हें उतनी मिल नहीं पातीं; अतः वे दुखी होते हैं,दूसरोंसे ईर्ष्या-द्वेष रखने लगते हैं। वास्तवमें वस्तुओंकी कमी नहीं है | कई व्यक्ति अपनी शक्ति और सत्ताके वल-पर वस्तुओंका अधिक संप्रह कर लेते हैं, आवश्यकता होनेपर भी दूसरोंको नहीं देते । इसीलिये संघर्ष छिड़ते हैं। एक-एक इंच जमीन, धन और स्रीके लिये महायुद्ध छिड़ते हैं, लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंका संहार होता है । धन-मालकी बेसुमार वर्त्रादी होती है । यदि हम बाँट-बाँटकर खाना सीखें, दूसरोंकी आवश्यकताओंका भी ध्यान रखें और अपनी आवश्यकताओंको घटाते जायँ तो ये सारी वर्वादियाँ और युद्ध सहज ही रुक सकते हैं । हम अपनी इन्द्रियोंके गुलाम बने हुए हैं और चञ्चल मनकी लहरोंके पीछे भागते-फिरते हैं। यही असंयम और हिंसाका कारण है, यदि हम अपनी विलासिताके दास न हों, फैशनके फित्र्में न उल्झें,

(हेखक-

眼

अप उर

ने जीवाद

सुप्ति तर

हैं।इन

附意1

सुंदरीं

जनु जं

मृत्युव

श्रीरसे रि

उणाता न

मुक्स-शरीर

प्रधान होत

नीयके क

गीता

वा

तश

'जिस्

गये वस्त्रींट

शीको ह

स्थूट

तीन प्रका

व जला

िंह शरी

बहते हैं,

तीनों वट

अंथायमें

तस

ख्छ-सु

दुर्व्यसनोंमें न पड़ें और संयमके मार्गपर चलें तो खयं अपिरिमित सुख-शान्तिका अनुभव करेंगे और दूसरोंकी सुखप्राप्तिमें भी सहज सहायक होंगे। इच्छाएँ और तृष्णाएँ तो अनन्त हैं। उनके चक्करमें पड़नेपर तो अशान्ति ही मिलेगी। अहिंसा और शान्तिके लिये तो संयम अनिवार्य है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करें। इसके लिये चार भावनाओंका निरूपण किया गया है—मैत्री, कारुण्य, प्रमोद और मध्यस्थ । 'समेषु मैत्री'—जो व्यक्ति हमारे समान स्थितिवाले हैं, उनके साथ मित्रवत्—मैत्री व्यवहार हो; क्योंकि मित्रता समान वय, रुचि और खभाववालेके साथ ही हो सकती है । विषमके साथ मैत्री नहीं होती; यदि कोई कर भी ले तो टिकती नहीं | दूसरी भावना है कारुण्यकी। वह दीन और दुखी जनोंके प्रति होती है। किसीको किसी भी प्रकारके कष्टमें देखकर हमारे मनमें जो कम्पन होता है, वही करुणा है। हम उसके दु:ख-निवारणके लिये बेचैन-से हो जायँ; जहाँतक उसका दुःख दूर न हो, हमें चैन न पड़े और उसका दुःख दूर करके ही इम शान्तिकी साँस लें । यही 'कारुण्य' भावनाका परिणाम है। तीसरी भावना है 'प्रमोद ।' उसके लिये कहा गया है--- 'गुणिषु प्रमोदम्' । किसी भी व्यक्तिमें अपनेसे अधिक कोई भी अच्छी बात या विशेषता देखकर मनका प्रफुल्टित होना ही प्रमोद है। दूसरोंकी उन्नति देखकर हम हर्षित हों, ईर्ष्या न करें, दूसरोंके गुणोंके विकासमें सहायक हों, बाधक नहीं । यदि इस तरहका हमारा व्यवहार हो और एक दूसरेके उत्कर्षमें सहयोगी बनें तो यह संसार स्वर्ग वन जाय । चौथी भावना है-मध्यस्थ—'माध्यस्थ्यभावो विपरीतवृत्तौ' । अर्थात् जो विपरीत प्रवृत्तिवाले हैं--दुष्ट हैं, हित शिक्षा देनेपर भी जो आक्रोश धारण करते हैं, उपकारी व्यक्तिसे भी जो

दुर्व्यवहार करते हैं, ऐसे अधमजनोंके प्रति हो उपेक्षा-वृत्ति हो, द्वेष नहीं । हम अपने संतुलन्त्रोः खोवें । वह दुष्ट है तो हम दुष्ट क्यों वनें ! यि है क्रोध करता है तो हम उसके समान क्रोधी क्रों के हमारा तो ऐसे व्यक्तियोंके प्रति कारुण्य-भाव ही है। कत्र ये पथभ्रान्त अज्ञानी जीव इन दुष्प्रवृत्तियोंसे हुन सन्मार्गपर आयें गे, उनका कैसे उद्घार होगा—यही हुन चिन्ताका विषय हो । पर उनके प्रति तनिक भी रुक्त मनमें न आने पाये । हमारे महापुरुषोंने अपने जीवतं इन भावनाओंको मूर्तरूप दिया था। हम भी उन्हीं संतान हैं; अतः हमारा कर्तव्य हो जाता है किह समस्त प्राणिमात्रके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध को हुए दूसरोंके दु:ख-निवारणमें प्रयत्नशील हों, उनके उनके सहयोग दें । उनकी विपत्तिमें हाथ बटायें, उनके हुई बाधक न बनें । उनके दुःखको अपना दुःख मार् अपने पास जो भी धन, शक्ति, बुद्धि है उसका उपन दूसरोंकी सेवाके लिये करें—पातञ्जलयोग-दर्शनमें सीव मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाकी भावना कहा है। 🖥 देखें कोई दूसरा है ही नहीं | वह भी अपना ही स है। हमने भ्रान्तिवश उसे पराया मान रक्खा है। ह तरहकी पारस्परिक सहयोगकी भावना और प्रवृत्ति समाज, देश और विश्वका कल्याण हो सक्ता है। जिनके पास जो वस्तु अधिक है, वे उसे दूसोंको देन मार्ग खुळा रक्खें। धनको अपना न मानकर, वह समर्ब व्यक्तियोंके द्वारा ही उसे मिला है, इसिल्ये आकी उसका ट्रष्टी मानें । जब जिन्हें जिस वस्तुकी आवर्यक हो, यदि वह अपने पास है तो देनेमें संकोच तो होई नहीं, वरं उत्साह हो। हम एक दूसरेके पूर्क की सबमें भगवान्के दर्शन करें। जनसेवा ही सन्वी प्र सेवा है । एवं सबके कल्याणमें ही अपना कल्याण है। इसे सदा ध्यानमें रक्खें।

मृत्युके वाद—एक शास्त्रीय दृष्टि

्रेवक—साहित्य महोपाध्याय पं०श्रीजनार्दनजी मिश्र 'पङ्कज् ' शास्त्री, एम्० ए०, व्या० सा० न्यायाचार्य, सांख्य-योग-वेदान्ताचार्य) [गताङ्कसे आगे]

बह जीवात्मा सुषुप्तिका अन्त होनेपरं जागता है।
अव उसके छय होनेका भी कारण—स्थान वही है।
बो जीवात्मा सोता है, वही जागता है। जाग्रत्, स्वप्न,
सुप्ति तथा तुरीया—ये चारों जीवात्माकी ही अवस्थाएँ
है। इन चारोंके कमशः विस्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म ही।
सि हैं। गोसामी तुलसीके शब्दोंमें—

दि ह

ों को।

ही हो।

हरम्

ो हमां

ो दुर्भन

जीवन

उन्होंबं

कि हा

बद्धाते

तं सुख

उपको

ं इसीव

一部

ही स्तु

है। ह

त्तिर्व

ता है।

肺

समाजन

अपने

स्पर्का

हो है

ने प्र

可意

हुंदरीं सुंदर वरन्ह सह सव एक मंडप राजहीं । ज्ञु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं ॥ मृखुकालमें सूक्ष्मशरीरसिहत यह जीवात्मा स्थूल-ज्ञीरिसे निकल जाता है । उसके बाद स्थूल कायामें ख्या नहीं रह जाती । इससे सिद्ध होता है कि गरमी स्मशरीरिकी रहती है और सूक्ष्मशरीर तेजस्त्व-श्या होता है ।

गीता २ के २२ क्लोकसे स्पष्ट हो जाता है कि किंकों कई शरीर होते हैं। प्रसिद्ध क्लोक यह है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
'जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्रोंको त्यागकर
में वस्त्रोंको धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने
शीको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।'

स्थूल, सूर्म (लिङ्ग) तथा कारण भेदसे शरीर भी कि प्रकारके होते हैं । स्थूलशरीर दफना दिया जाता व का दिया जाता है । फिर भी सूक्ष्म, जिसे कि श्रीर कहते हैं तथा कारण, जिसे वासनामय शरीर कि लें अविशिष्ट रहते हैं । दूसरे शरीरमें जाते समय कि विद्या जाते हैं । सांख्य-प्रवचन-भाष्यके तीसरे कि सूत्र शरीरोत्पत्ति-सम्बन्धके आये हैं । तसाच्छरीरस्य तस्मात् त्रयोविंशतितत्त्वात् व्यादिक्षमशरीरद्वयस्यारम्भः—

रेरे तत्वोंसे स्थूल तथा सूक्ष्म रारीरोंकी रचना हुई है।

त्रयोविंदातितत्त्वेऽवस्थितो हि पुरुषस्तेनैवोपाधिना पूर्वकृतकर्मभोगार्थं देहाहेहं संसरित ।

२३ तत्त्वोंके शरीरमें स्थित पुरुष अपने पूर्वकृत कर्मोंके फलोपभोगके लिये एक देहसे दूसरीमें जाता है। लिखा है—

मानसं मनसेत्रायमुपभुङ्के शुभाशुभम्। वाचा वाचा कृतं कर्म कायेतैव तु कायिकम्॥ स्थ्रव्हारीर—

मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरत्र तथा। स्थूलशरीर माता-पिताके रजोवीर्यद्वारा निर्मित होता है। लि**ङ्ग शरीर**— सप्तदशैकलिङ्गम— '

यह सूक्ष्म शरीर भी आधाराघेयभावसे दो प्रकारका होता है। १७ तत्त्रोंके मिलनेसे लिङ्ग शरीर बनता है। एकादश इन्द्रियाँ, पञ्च-तन्मात्राएँ तथा बुद्धि—अहंकार बुद्धिके ही अन्तर्गत माना गया है। अतः सांख्यानुसार यह लिङ्ग शरीर १७ तत्त्रोंका तथा पुराणोंके अनुसार अहंकारको लेकर १८ का होता है। स्थूलकी भाँति लिङ्ग देहके अवयव नहीं होते। प्राण अन्तःकरणका ही वृत्ति-मेद है। जीवित शरीरमें पञ्च-कोश होते हैं—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय कोश। मृत शरीरमें अन्नमय कोश जला दिया जाता है।

उत्क्रमणके समय योगवासिष्ठके अनुसार यह जीव पुर्यष्ठक (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि तथा अहंकार) को साथ छिये चछता है। अर्चिरादि मार्गमें जो अर्चि, अहः, पक्ष, अयन, संवत्सर, वायु और विद्युत् आदि बतलाये गये हैं, वे उन-उन नाम और लोकोंके अभिमानी देवता या मानवाकृति पुरुष हैं। वेदान्त-दर्शनमें इन्हें— 'अतिवाहिकास्तिल्ङ्झित्'—ये अतिवाहिक अर्थात् एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुँचा देनेत्राले कहे गये हैं। ब्रह्मिवद्याके रहस्यविज्ञ पुरुष पहले अर्चिको प्राप्त होते

संस्था

बाल वि

होता है

एक व्य

होती है

स प्रका

हः या

प्रहरको

वैया भा

ही एक

है। कृष

रो पक्षीं

रात है।

'अयन'

अर्थ गमन

अयन द

देवताओं

एक रात

स प्रका

चन्द्रमादि

तारागणव

लेक्स संव

पिक्रमा

मिद्ध म

गुक्त

₹H

हिनमें एक

विक्रमें प

हैं, अर्चिसे दिवसको, दिवससे शुक्रपक्षको, शुक्रपक्षसे उत्तरायणके छः महीनोंको, छः महीनोंसे संवत्सरको, संवत्सरसे सूर्यको, स्र्यसे चन्द्रमाको, चन्द्रमासे विद्युत्को । वहाँसे अमानव पुरुष इनको ब्रह्मके पास पहुँचा देता है ।

जत्र यह पुरुष इस मर्त्यलोकासे ब्रह्मलोकाो जाता है, तत्र वह वायुको प्राप्त होता है। वायु उसके लिये रथ-चक्रके छिद्रकी भाँति रास्ता देता है। उस रास्तेसे वह ऊपर चढ़ता है। फिर वह सूर्यको प्राप्त होता है। सूर्य उसे वहाँ लम्बर नामक बाह्ममें रहनेवाले छिद्रको सदश राह देता है। उस रास्तेसे ऊपर उठकार वह चन्द्रमाको प्राप्त होता है। चन्द्रमा उसे नगारेके छिद्रके सदश रास्ता दे देता है। उस रास्तेसे ऊपर उठकार वह शोकरहित ब्रह्मलोकाो प्राप्त होता है। सूर्यकी ये रिश्मयाँ इस लोका परलोका माध्यम है। सूर्यकी ये रिश्मयाँ इस लोकामें और उस सूर्यलोकामें—दोनों जगह गमनागमन करती हैं। वे सूर्यमण्डलसे निकलती हुई शरीरकी नाड़ियोंमें व्याप्त हो रही हैं तथा नाड़ियोंसे निकलती हुई सूर्यमें फैठी हुई हैं। लिखा है—

एता आदित्यस्य रइमय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात् प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये स्ताः। (छान्दोग्योपनिषद् ८ । ६ । २)

उत्क्रमण—

रारीरं यदवाप्नोति यचाप्युत्कामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवारायात्॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनरचायं विषयानुपसेवते॥
उत्कामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपर्यन्ति पर्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥
(गीता १५। ८-१०)

जिस समय जीवात्मा एकसे अविक शरीरोंमें संचार करता है, उस समय उसे ऐसा जान पड़ता है कि मैं ही कर्ता और भोक्ता हूँ। जिस समय कोई मनुष्य राजकीय विलासोंसे सम्पन्न किसी स्थानमें निवास करता है, उस समय उसे देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि वह बहुत धनवान् तथा विलासी है। ठीक, इस भौति जीवात्माकी अहंकर्तावाली भावना बहुत अधिक तीत्र एवं बळ्ती है जाती है । जब जीवात्मा शरीरका त्याग करता है, त्व वह इन्द्रियोंका सारा साज-सामान भी अपने साथ ही है जाता है । अस्त होनेवाला सूर्य जिस प्रकार लेकि नेत्रोंका प्रकाश भी अपने साथ ले जाता है अयवा वयु जिस प्रकार पुण्प, चन्दन, केसर, कस्त्र्री तया पर फूलोंका परिमल छूट ले जाती है, ठीक उसी प्रकाश शरीरको छोड़कर जानेके समय उसका खामी जीवाल भी मन तथा श्रोत्रादि छहों इन्द्रियोंको अपने साथ हे जाता है । यहाँ स्मरणीय है कि स्थूल कर्ण, नास्कि, नेत्रादि नहीं, बल्कि उनकी सूक्ष्म शक्तियाँ अभिप्रेत हैं। वेदमें कहा है—'कर्णयोमें श्रोत्रमस्तु । चाक्ष्णोमें चक्षुरला। इससे स्पष्ट है कि दोनों कानोंसे श्रोत्र तथा दोनों नेत्रोंसे चक्षु भिन्न वस्तुएँ हैं अर्थात् उनके सूक्ष्म तत्व हैं।

जिस प्रकार बुझ जानेपर दीपक अपनी प्रभा अपने साथ ले जाता है, उसी प्रकार इस जीवात्मा तथा शरीले सम्बन्धमें होता है। यहाँ ईश्वर शब्द से यह भाव है कि यह जीवात्मा मन-बुद्धिसहित समस्त इन्द्रियोंका सामित तथा शासक है। मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंसे युक्त आस्मिको ही भोक्ता कहा गया है।

उत्क्रमणके दो सनातन मार्ग

उत्क्रमणके दो ही शाश्वत तथा समातन मार्ग हैं— एक उत्तरायण और दूसरा दक्षिणायन । प्रथमको ही अचिरादि-मार्ग, सुषुम्णामार्ग, देवयान मार्ग आदि नामी अभिहित किया गया है । दूसरेको धूम-मार्ग, पित्या तथा दक्षिणायनकी संज्ञा दी गयी है । काल-गणनार्थ यह निम्नलिखित प्रक्रिया श्रीमद्भागवतपुराणके र स्कन्ध ११ अ० में इस प्रकार चलती है—

दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है। तीन अणुओं के मिलनेसे एक 'त्रसरेणु' कहलाता है, जी खिड़िकयों या जालंमार्गसे होकर आयी हुई सूर्यक्षे रिमयों के प्रकाशमें आकाशमें उड़ता देखा जाता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओं को पार करनेमें सूर्यको जितना का जाता है। उसे 'शुटि' कहते हैं। इसे सीण जगता है, उसे 'शुटि' कहते हैं। इसे सीण

38

1

ति ति

ति

री है

育

वायु

40

प्रकार

वात्मा

प हे

सेका,

1

स्तु।

नेत्रोंसे

अपने

रीरके

青雨

खामी

गत्मा-

न्यान

नाकी

जी

翩

意

काल

क्रिल विधा कहलाता है और तीन वेधका एक 'लव' होता है। तीन छवको एक निमेष और तीन निमेषको क्ष क्ष्मणं कहते हैं। पाँच क्षणोंकी एक 'काष्ठा' होती है और पंद्रह काष्ठाका एक 'लघु' होता है। र्व्ह लघुओंकी एक नाड़िका (दण्ड) होती है और ह प्रकार दो नाड़िकाओंका एक मुहूर्त बनता है और हः या सात नाड़िकाओंका एक 'प्रहर' वनता है। ह़िल्लो 'याम' भी कहते हैं। यह दिन या रात्रिका क्षा भाग होता है । चार प्रहरका दिन और उतनेकी हिएक रात्रि होती है। पंद्रह दिनका एक पक्ष होता है। कृष्ण तथा शुक्लके भेदसे यह दो प्रकारका होता है। रो पक्षोंका एक 'मास' होता है, जो पितरोंका एक दिन-ति है। दो मासकी एक ऋतु और छः मासका एक ख्यन' होता है । इण (गतौ) धातुसे निष्पन्न अयनका र्भ गमन होता है । दक्षिणायन तथा उत्तरायणके भेदसे अप दो प्रकारका होता है । ये दोनों मिलकर क्ताओंका एक दिन-रात होता है। दक्षिणायन देवताओंकी 🕅 रात तथा उत्तरायण एक दिन कहलाता है। स प्रकार मनुष्यकी परमाय सौ वर्ष कही जाती है। ष्द्रमादि ग्रह, अर्रिवनी आदि नक्षत्र तथा समस्त गाग्गके अधिष्ठाता कालरूप भगवान् भास्कर परमाणुसे क्रा संवत्सरपर्यन्त द्वादश राशिरूप भुवनकोशकी निरन्तर पित्रमा किया करते हैं। वेदमें लिखा है---

हें स्ती अन्वहं देवानामुत मर्त्यानाम्। अर्थात् देवता तथा मनुष्यके ये ही दो सनातन

गुष्त्रकृष्णे गती होते जगतः शाइवते मते।

पत्त्रया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः॥

(गीता ८। २६)

हस जगत्के ये दी प्रकारके—शुक्ल तथा कृष्ण वर्णि देवयान और पितृयान मार्ग शास्त्रत माने गये हैं। लमें एकके द्वारा गया हुआ नहीं छौटता तथा दूसरेसे किंग जीव पुनः छौट आता है अर्थात् जन्म-मरणके किंग पह जाता है। गीतामें लिखा है— नैते स्ती पार्थ जानन् योगी मुद्यति कश्चन । तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ (८।२७)

भावार्थ — हे पृथापुत्र अर्जुन ! इस प्रकार इन दोनों सनातन मार्गोंको यथावत् जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता । अतः हे अर्जुन ! त् सब कालोंमें योगसे युक्त हो मेरी प्राप्तिके लिये साधन करनेवाला हो ।

यहाँ कालका अर्थ कालामिमानी देवताओंसे सम्बन्ध रखनेवाला मार्ग है। उत्क्रमणके लिये उत्तरायणका समय ही प्रशंसित है।

श्रीमद्भागवत (१ स्क० ९ अ० २९) में आया है— धर्म प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः। यो योगिनइच्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः॥

अर्थात् भीष्मिपतामह इस प्रकार जब धर्मका प्रवचन कर रहे थे कि वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा, जिसे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्परायण योगीलोग चाहा करते हैं।

यदि अर्चिमार्गका अधिकारी रात्रिमें मरेगा तो उसका दिनके अभिमानी देवताके साथ सम्बन्ध दिन होनेपर ही हो सकेगा। इस बीच वह अग्निके अभिमानी देवताके अधिकारमें ही रहेगा। कृष्णपक्षमें मरनेवालेका शुक्ल-पक्षाभिमानी देवताके साथ सम्बन्ध शुक्लपक्ष आनेपर ही होगा। इसके बीचकी अवधिमें वह दिनके अभिमानी देवताके अधिकारमें रहेगा। यदि दक्षिणायनमें मरेगा तो उसका उत्तरायणाभिमानी देवताके साथ सम्बन्ध उत्तरायण आनेपर ही होगा। इसके बीच वह शुक्ल-पक्षाभिमानी देवताके अधिकारमें रहेगा। गीता अ०८के २४, २५ में उत्तरायण तथा दक्षिणायनका उल्लेख हुआ है। अग्निज्योंतिरहः शुक्लः षणमासा उत्तरायणम्। तत्र प्रयाता गच्छिनत ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥

जिस मार्गमें ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है, दिनका अभिमानी देवता है, ग्रुक्ठपक्षका अभिमानी देवता है और उत्तरायणके छः महीनोंका अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगिजन उपर्युक्त देवगणोंद्वारा क्रमसे ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। साभारणतः यही नियम है कि जिस समय मृत्य

सङ्गा

क्राशिक्

इ: मर्ह

है, व

प्रभंधाम

करके उ

का अभि

क्राँसे व

देता है

परिं उ

दि

धूमो

मृत्

है, जिस

समय स

स्मृति भ

क्षुच ह

लाते हैं

चारों ओ

की जीव

चन्द्रमाव

न तो

उजाला

हता है

त्तव्यता-

नहीं हो

जीवन म

वस, इ

होती है

यदि वा

अर्थात् ः

दक्षिणाः

जसके

आती है, उस समय मनुष्य अपने मनमें जिसका ध्यान या स्मरण करता है, वह वही हो जाता है। जिस प्रकार कोई भयभीत होकर वायुवेगसे भागता हुआ अचानंक कूपमें गिर पड़े, उस समय उसके गिरनेसे पहले उसे सँभालनेके लिये आगे कोई वस्तु नहीं रहे तो गिरनेके सिवा और कोई उपाय नहीं रह जाता। इसी प्रकार—'अन्ते मितः सा गितः' न्यायेन मृत्यु-कालमें जीवके सामने जो कल्पना आकर पूर्वाभ्यास या संस्कार-बलसे खड़ी हो जाती है, उसी कल्पनाके रूपके साथ मिल जानेके सिवा उस बेचारेके लिये कोई दूसरा उपाय रह नहीं जाता और यह नियम है कि मरते समय जीवको जिसका स्मरण होता है, उसी योनिमें वह जाता है।

गीतोक्त अग्निसे तात्पर्य यह है कि ज्ञानका मूळ आधार शरीरगत उष्णता है और प्राणोंके प्रयाणके समय इस शरीरस्थ अग्निके भरपूर बलकी आवश्यकता होती है । उस समय शरीरके भीतर तो अग्निकी ज्योतिका प्रकाश रहना ही चाहिये और बाहर शुक्र पक्ष, दिवस और उत्तरायणके छ: महीनोंमेंसे कोई महीना अवस्य होना चाहिये । इस प्रकार सभी अच्छे योग मिलने चाहिये। ऐसे योगमें ब्रह्मज्ञानी देह-त्याग करते हैं और ब्रह्मखरूपमें मिल जाते हैं। इस श्लोकमें उपपादित योगका इतना अधिक माहात्म्य है और यही मोक्ष-धाममें पहुँचनेका सरल मार्ग है। इस मार्गकी पहली सीढ़ी शरीरगत अग्नि, दूसरी सीढ़ी उस अग्निकी ज्योति, तीसरी सीढ़ी दिनका समय, चौथी सीढ़ी राक्र पक्ष और इसके बाद पाँचवीं या सबसे ऊपरकी सीढ़ी उत्तरायणके छः महीनोंमेंसे कोई एक महीना है। इसीको अर्चिरादि अर्थात् सूर्यकी किरणोंवाळा मार्ग कहते हैं।

गीता-तत्त्व-विवेचनीमें लिखा है—'यहाँ ज्योतिः पद 'अग्नि' का विशेषण है और 'अग्निः' पद अग्नि अभिमानी-देवताका वाचक है। उपनिषदोंमें इसी देवता-को 'अर्चिः' कहा गया है। इसका खरूप दिव्य प्रकाशमय है। पृथ्वीके ऊपर समुद्रसहित सब देशोंमें इसका अधिकार है तथा उत्तरायण मार्गमें जानेवाले अधिकारीका दिनके अभिमानी देवतासे सम्बन्ध का देना इसका काम है । उत्तरायण मार्गसे जानेका जो उपासक रात्रिमें शरीर-त्याग करता है, उसे ह रातभर अपने अधिकारमें रखकर दिनके उदय होने दिनके अभिमानी देवताके अधीन कर देता है और दिनमें मरता है, उसे तुरंत ही दिनके अभिकारि अभिमानी देवताको सौंप देता है। 'अहः' पर कि अभिमानी देवताका वाचक है, इसका ख़क्स और अभिमानी देवताकी अपेक्षा बहुत अविक दिव्य प्रसार मय है । जहाँतक पृथ्वीलोककी सीमा है अर्थात् किं दूरतक आकाशमें पृथ्वीके वायुमण्डलका सम्बन्ध वहाँतक इसका अधिकार है और उत्तरायण मो जानेवाले उपासकको शुक्र पक्षके अभिमानी देवाते सम्बन्ध करा देना ही इसका काम है। अभिप्राय इ है कि उपासक यदि कृष्णपक्षमें मरता है तो तुतं ही अपनी सीमातक ले जाकर यह उसे गुरुक्त अभिमानीके अधीन कर देता है। 'शुक्रः' पर 🕦 पक्षाभिमानी देवताका वाचक है। इसका खरूप लि अभिमानी देवतासे भी अधिक दिव्य प्रकाशमा है भूलोककी सीमासे बाहर अन्तरिक्षलोकमें—जिन लेके में पंद्रह दिनके दिन और उतने ही समयकी कि होती है, वहाँतक इसका अधिकार है और उत्ताक मार्गसे जानेवाले अधिकारीको अपनी सीमासे पार 🜃 उत्तरायणके अधिकारी देवताके अधीन कर देन स्व काम है । यह भी पहलेकी भाँति यदि साधक दिशा यनमें इसके अधिकारमें आता है तो उत्तरायणका स्म आनेतक उसे अपने अधिकारमें रखकर और बी उत्तरायणमें आता है तो तुरंत ही अपनी सीमासे प करके उत्तरायण-अभिमानी देवताके अधिकारमें सौंप देताहै।

जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तर दिशाकी और की हैं, अर्थात् मकरसे मिथुनराशितककी छमाहीको उत्ताक कहते हैं । उस उत्तरायण-कालाभिमानी देवताका वर्क पहाँ 'षण्मासा उत्तरायणम्' पद है । हिंग खरूप शुक्लपक्षाभिमानी देवतासे भी बढ़का

1

वें क्या

निवल

उसे म्ह

होनेप

औ(वे

नेकारिक

दिनहे

अपि.

प्रकाश-

जितनी

न्व है,

邢

देवताहे

प्राय स्

ो तुरंत

क्र-पक्षे

द गुरू

प दिन

मय है।

न लोके

和旗

उत्ताक

स्का

इस्म

दक्षिण

रे की

देताहै।

उत्ताक्री

। वार्क

इस्म

प्रमाशमय है । अन्तिरिक्षिलोक्षके ऊपर जिन लोकोंमें अमाशमय है । अन्तिरिक्षलोक्षके ऊपर जिन लोकोंमें कु महीनोंके दिन एवं उतने ही समयकी रात्रि होती है बहाँतक इसका अधिकारिको अपनी सीमासे पार करके उपनिषदोंमें वर्णित संवत्सरके अभिमानी देवताके बास पहुँचा देता इसका काम है । वहाँसे आगे संवत्सरका अभिमानी देवता उसे सूर्यलोक्षमें पहुँचा देता है । बहाँसे कमशः आदित्याभिमानी देवताके अधिकारमें पहुँचा देता है । क्षा है । फिर वहाँपर भगवान्के परमधामसे भगवान्के बर्ध उसे परमधाममें ले जाते हैं ।

दक्षिणायन---

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः वण्मासा दक्षिणायनम्। तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥ (८।२५)

मृत्युके समय वायु और कफका प्रकोप होता है, जिससे अन्त:करणमें अन्धकार भर जाता है । उस सम्य सभी इन्द्रियाँ लकड़ीकी तरह जड हो जाती हैं, सृति भ्रममें पड़ जाती है, मन बहुत ही चञ्चल और क्षुय हो जाता है और प्राण चारों ओरसे दवकर घुटने व्यते हैं। शरीरस्थ अग्निका तेज नष्ट हो जाता है और गों ओर केवल धुआँ-ही-धुआँ फैल जाता है, जिससे शरीर-भी जीवन-कळाका अन्त हो जाता है । जिस प्रकार ष्ट्रमाके सामने जलसे भरा काला बादल आ जानेपर ^{न तो} पूरा अँघेरा ही रहता है और न पूरा-पूरा ^{जाल ही} रहता है, बल्कि कुछ-कुछ धुँघला-सा प्रकाश ह्ता है, उसी प्रकार उस समय जीवमें एक ऐसी बिथता-सी आ जाती है, जिसमें वह मरा हुआ भी वहीं होता और न होरामें ही रहता है तथा उसका जीवन मरनेके किनारेपर पहुँचकर रुक-सा जाता है। भ, प्राणोंके प्रयाणके समय इसी प्रकारकी दुर्दशा होती है। यह तो हुई शरीरकी अवस्था। अत्र यदि वाहरकी परिस्थिति भी इस प्रकार प्रतिकूल हो क्षित् हुष्णपक्ष हो, रातका समय हो और उसपर भी किंद्री हैं। पहीनोंमेंसे कोई महीना हो अर्थात् जिसके प्राणींके प्रयाणके समय जन्म-मरणका

प्रचित रखनेवाले इस प्रकारके लक्षण एक साथ एकत्र हों, भला, उसके कानोंको ब्रह्म-खरूपकी प्राप्तिकी बात कैसी सुनायी पड़ सकती हैं । जिस मनुष्यका देहपात ऐसी दुरवस्थामें होता है, वह यदि बहुत होता है तो चन्द्रलोकतक ही जा सकता है। जन्म-मरणके प्रामतक पहुँचानेवाला यही कष्टप्रद धूममार्ग है। (हिंदी) ज्ञानेश्वरीसे—

यदि अन्त समयमें जीव अर्चिरादि-मार्ग भूल जाय और धूम्रमार्गमें लग जाय तो फिर संसारके बन्धनमें पड़ जाता है।

यहाँ 'धूमः' पद धूमाभिमानी देवताका अर्थात् अन्धकारके अभिमानी देवताका वाचक है । उसका खरूप अन्धकारमय होता है । 'रात्रिः' पद भी रात्रिके अभिमानी देवताका वाचक है । 'कृष्णः' पद कृष्णपक्षाभिमानी देवताका वाचक है और दक्षिणायनम् कर्कसे लेकर धनुराशितककी छमाहीके अभिमानी देवताका वाचक है । ये उपर्युक्त देवता मृत पुरुषको पितृलोकाभिमानी साधकको आकाशाभिमानी देवताके पास और वह आकाशाभिमानी देवता चन्द्रलोकमें पहुँचा देता है । इस प्रकार ब्रह्माके लोकतक सभी आवागमनशील लोक हैं ।

योगमार्गसे उत्क्रमण

श्रीमद्भागवतके स्कन्ध २ अ० २ में श्रीशुक्तदेव मुनिने सद्योमुक्ति तथा क्रममुक्तिका उपदेश देते हुए योगमार्गसे उत्क्रमण करनेकी प्रक्रिया वतलायी है । ब्रह्मनिष्ठ योगीको इस प्रकार शरीर-त्याग करना चाहिये—

स्वपार्ष्णिनाऽऽपीडिय गुदं ततोऽनिलं
स्थानेषु षट्सून्नमयेज्ञितक्लमः ॥१९॥
नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः॥
तस्माद् भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत
निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः ।
स्थित्वा मुद्दूर्तार्धमकुण्डदृष्टिर्निर्भिद्यमूर्धन् विस्तुनेत् परंगतः ॥२१॥
अर्थात् पहले एडीसे अपनी गुदाको दबाकर स्थिर

संस्था

म्हींपर व

प्राप्त कर

服

वा

ग्र एक

मनमें रि

त्या तेज

(14)

अथवा शर्र

है। उसन

हैं और प्र

उत्तायणव

मासि चन

पालेकान्त

अर्थात

अहन्यह

चलारिः

वह प्रे

ितमं २

याविभूत

येक्से जात

निस्तर् अन

है। भूत,

सिना भोग

होका कार्य

हो जाय और तब बिना घबराहटके प्राणवायुको षट्चक्रभेदनकी रीतिसे ऊपर ले जाय । मनखी योगीको
चाहिये कि नाभिचक मणिपूरकमें स्थित वायुको हृदयचक्र अनाहतमें, वहाँसे उदानवायुके द्वारा वक्षः स्थलके
ऊपर विशुद्ध चक्रमें, फिर उस वायुको धीरे-धीरे तालुमूलमें
विशुद्धचक्रके अप्रभागमें चढ़ा दे। तदनन्तर दो आँख,
दो कान, दो नासाछिद्रोंको और मुख—इन सातों
छिद्रोंको रोककर उस तालुमूलमें स्थित वायुको भौंहोंके
बीच आज्ञाचक्रमें ले जाय। यदि किसी लोकमें जानेकी
इच्छा न हो तो आधी घड़ीतक उस वायुको वहीं
रोककर स्थिर लक्ष्यके साथ उसे सहस्रारमें ले जाकर
परमात्मामें स्थित हो जाय। इसके बाद ब्रह्मरन्ध्रका भेदन
करके शरीर-इन्द्रियादिको छोड़ दे।

दक्ष-यज्ञमें सतीके देहत्यागके अवसरपर भी इसी
प्रणालीका उछेख हुआ है । ज्ञानेश्वरीके छठे
अध्यायमें संत ज्ञानदेवने भी यौगिक उत्क्रमणके लिये
इसी पद्धतिको निर्दिष्ट किया है । योगियोंका
रारीर वायुकी भाँति सृक्ष्म होता है । योगी ज्योतिर्मय
मार्ग सुषुम्णाके द्वारा प्रस्थान करता है । आकाशमार्गसे
अग्निलोक जाता, जहाँ उसके वचे-खुचे मल भी जल
जाते हैं । इसके ऊपर भगवान्के शिशुमार नामक
ज्योतिर्मय चक्रपर पहुँचता है । महाप्रयाणके लिये ब्रह्मसूत्र
पाद २ अध्याय ४ सूत्र १७ में उल्लिखित हुआ है—

तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासाम-र्थ्यात्तच्छेपगत्यनुस्मृतियोगाच हार्दानुगृहीतः शताधिकया।

स्थूलशरीरसे निकलते समय उस जीवात्माका निवास जो हृदय है, उसके अग्रभागमें प्रकाश हो जाता है। उस प्रकाशमें जिसके निकलनेका द्वार प्रकाशित हो गया है, ऐसा वह विद्वान् ब्रह्मविद्याके प्रभावसे तथा उस कियाका शेष अङ्ग जो ब्रह्मलोकमें गमन है, उस गमन-विषयके संस्कारकी स्मृतिके योगसे हृदयस्थ प्रमिश्वरकी स्मासे अनुगृहीत हुआ एक सौ नाड़ियोंसे अधिक जो एक (सुषुम्णा) नाड़ी है, उसके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे निकलता है। रातं चैका च हृद्यस्य नाड्य-स्तासां मूर्धानमभिनिस्स्तैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति

विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥

अर्थात् इस जीवात्माके हृदयमें एक सौ एक निह्नां हैं । उनमेंसे एक मूर्घा (कपाल) की ओर निह्नले हुई है । इसीको सुषुम्णा कहते हैं । इसके द्वारा क्या जाकर मनुष्य अमृतभावको प्राप्त होता है। दूसी नाड़ियाँ मरणकालमें नाना योनियोंमें ले जानेवाली है।

यह तो आद्यशंकराचार्यके शारीरकभाष्यानुकूळ है और ब्रह्मज्ञानी योगियोंका मार्ग है । भक्तोंके लिये खाँ क्या गुंजाइश हो सकती है, इसका स्पष्ट संकेत आवर्ष रामानुजके श्रीभाष्यद्वारा हुआ है । लिखा है—

अनया नाडीनां शताधिकया मूर्धन्य नाड्यैव विद्रो गमनम् । विद्वान् हि परमपुरुषाराधनभूतात्यर्थः प्रियविद्यासामर्थ्याद्विद्या शेषभूत तयाऽऽत्मनोऽत्यर्थः प्रियगत्यनुस्मरणयोगाच्च प्रसन्नेन हार्देन परमपुरुषेणारु गृहीतो भवति । ततश्च तदोकः—तस्य जीवस्य स्थानं हृद्यमग्रज्वलनं भवति । अग्रे ज्वलनं प्रकाशनं यस्। तदिद्मग्रज्वलनम् । परमपुरुषप्रसादात्प्रकाशितद्वारो विद्वान्तां नार्डी विजानातीति तया विदुषो गतिरुपप्रवेशे

भावार्थ यह है कि भक्ति एवं आराधनाद्वार प्रस्न नारायण सुषुम्णाके द्वारपर, जहाँसे उत्क्रमण होना चाहिं। मुस्कुराते हुए खड़े हो जाते हैं। वहाँ उनकी मुस्कारों जो प्रकाश होता है, उसी प्रकाशित द्वारसे भक्तको अ सुषुम्णा नाड़ीकी ठीक-ठीक पहचान हो जाती है औ वे उसीसे उत्क्रमित हो जाते हैं। सगुणोपासकके वि यही रास्ता निकल आता है।

जीवन्मुक्त तथा विदेहमुक्तोंके छिये उत्कारणका प्रि ही नहीं उठता।

श्रुति कहती है—

न तस्य प्राणा उत्कामन्ति । अत्रैव समवलीयते।

ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति । (बृहदा० ४ । ४ । ६)
अर्थात् उसके प्राण उत्क्रान्तिको नहीं प्राप्त होते।

1

ाड़ियाँ

नेक्ली

उप

दूसरी

ल है

ग चार्व

विदुपो

त्यर्थ-

त्यर्ध-

णानु-

स्थान

यस्य

तद्वारो

पद्यते।

प्रसन

गिर्धे।

कानसे

ते उस

ओ

所來

ह्याँग हो जाते हैं। यह ब्रह्म हुआ ही ब्रह्मको प्राप्त किता है। पहर्षि व्यासके—

{वाङ्}मनसि दर्शनाच्छकाच तथा सोष्यते तदुप-{गमिदिभ्यः}।

्हन दोनों सूत्रोंके अनुसार तो इस मनुष्यके मर
हा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाते समय वाणी

हमें क्षित होती है, मन प्राणमें, प्राण तेजमें

ह्मा तेज परदेवतामें स्थित होता है । (छा० उ०६।

(१६) उस समय यह आत्मा नेत्रसे या ब्रह्मरन्ध्रसे

हमा शरीरके अन्य किसी मार्गद्वारा बाहर निकलता

है। उसके निकलनेपर उसीके साथ प्राण भी निकलते

हैं और प्राणके निकलनेपर सभी इन्द्रियाँ निकलती हैं।

गहरपुराणके अनुसार ऐसे मनुष्य जिन्हें न तो ज्ञायणका मार्ग मिलता है और जो न दक्षिणायन-णीसे चन्द्रलोकतक ही जानेके अधिकारी हैं, उन्हें सलेकान्तर्गत विविध नरकोंमें जाना पड़ता है। विवे—

पडशीति सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। अर्थात् संयमनीपुरीकी सीमा ८६ हजार योजन है। अहत्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम्। अवारिशत् तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति॥

बह प्रेत प्रतिदिन चलता रहता है और एक राततिम २४७ योजनकी दूरी तय करता है। जीवके
व्यक्ति लिइदेहके द्वारा पुरुष एक लोकसे दूसरे
किन अपने प्रारच्य कर्मोंको भोगता हुआ
है। मृत, इन्द्रिय और मनका कायरूप स्थूलशरीर
किन करना ही प्राणीको मृत्यु है। श्रीमद्भागवत
(रहता करना ही प्राणीको मृत्यु है। श्रीमद्भागवत
(रहता करना ही प्राणीको मृत्यु है। श्रीमद्भागवत

योज़नानां सहस्राणि नवति नव चाध्वनः। त्रिभिमुंहूर्तें द्विभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः॥ अर्थात् यमलोकका मार्ग निन्यानवे हजार योजन है। इतने लंबे मार्गको दो ही तीन मुहूर्तमें तय करके वह नरकमें तरह-तरहकी यन्त्रणाएँ भोगता है। लिखा है—

क्षु त्रूपरीतोऽर्कद्वानलानिलैः

संतप्यमानः पथि तप्तवालुके। कृच्छ्रेण पृष्ठे कराया च ताङ्गित-श्चलत्यराकोऽपि निराश्रमोदके॥

अर्थात् भूख-प्यास उसे बेचैन कर देती है तथा घाम, दावानल और छुओंसे वह पच जाता है। ऐसी अवस्थामें जल और विश्राम-स्थानसे रहित उस तप्त-वालुकामय मार्गमें जब उसे एक पग भी आगे बढ़नेकी ताकत नहीं रह जाती, यमदूत उसकी पीठपर कोड़े बरसाते हैं। तब बड़े कष्टसे उसे चलना ही पड़ता है।

मृत्युके सम्बन्धमें उपनिषदोंमें सर्वप्रथम नचिकेताने ही यमाचार्यसे अपनी राङ्का प्रकट की है। कठोपनिष**द्में** लिखा है—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः॥
(१।१।३०)

अर्थात् मनुष्यके मर् जानेपर खमावतः यह राङ्का प्रकट होती है कि शरीरपात हो जानेके बाद भी आत्मा रह जाती है—कुछ छोग ऐसा मानते हैं; और कुछ जो, नास्तिक श्रेणीके हैं, यही कहते हैं कि शरीर नष्ट हो जानेपर आत्मा नामकी कोई वस्तु नहीं रह जाती। इस आशङ्काका आचार्य यमने बड़ा निश्चयात्मक तथा निर्णयात्मक उत्तर दिया है। पाठक कठोपनिषद्में पढ़ छेनेका कष्ट करें।

अन्तमें पाठकोंसे मेरा निवेदन है कि इस जीवका अनादिसिद्ध बन्धन और उससे मुक्ति दोनों ही उस जगत्कर्ता परमेश्वरके अधीन हैं। इत्यलम्।

देश किथर जा रहा है ?

(हनुमानप्रसाद पोद्दारका एक प्रवचन कुछ घटा-बढ़ाकर)

देशमें इस समय जो पतनका प्रवाह वह रहा है, वह अत्यन्त भयानक है। दु:खकी वात तो यह है कि इस पतनको उत्थान माना जा रहा है। सभी क्षेत्रोंमें विपरीत-बुद्धि हो गयी है। इसीसे आज हमलोग भगवान्को, धर्मको, त्याग-संयमको, सत्य-सदाचारको, अहिंसा-द्याको और कर्तव्यको भूलकर असुरभावापन हो रहे हैं।

सचाई और ईमानदारीका हास

हमारी ईमानदारीका इतना हास हो गया है कि सभी वर्गोंके लोग धनके लिये चोरी, बेईमानी, छल-कपट, मिलावट, परस्वापहरण, हिंसा आदि करनेमें बुद्धिमानी मानने लगे हैं। ईश्वर-धर्मका कोई भय नहीं, कानूनका बचाव होना चाहिये, और जहाँ कानून मनवानेवाले और माननेवाले समझौता करके भागीदारी कर लेते हैं, वहाँ तो कुछ कहने सुननेकी बात रह ही नहीं जाती । व्यापारीमें तथा अधिकारीवर्गमें चोरी-चूसखोरी आगकी तरह बढ़ रही है और पैसा हो जानेपर यह नहीं देखा जाता कि पैसा किस साधनसे आया है। किसी तरह भी हो, पैसा आया कि उसे समाजके नेता होने-का, विद्वानोंद्वारा आदर पानेका, अधिकारियोंके द्वारा सम्मान पानेका, समाजमें परम सत्कार तथा उच्चस्थान पानेका अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस 'चोर-पूजा' से समाजका बड़ा ही अहित हो रहा है।

मिलावटका मसला बड़ा भयानक है। घी, आटा, तेल, मसाला आदि खाने-पीनेकी चीजोंमें और देशी-विदेशी दवाइयोंमें मिलावट तथा नकली चीजोंकी भरमार हो ही रही थी। अरारोट, मधु (शहद), कपूर, केसर, कस्त्री, चाय आदि ही नहीं, जिनसे देशी दवाएँ बनती हैं—वे सकते। यह कैसा विज्ञान है पता नहीं। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अकलकरा, पीपल, काली मिर्च, अशोकछाल, अंक्र छाल, शिलाजित, कत्रावचीनी, काकड़ासिंगी, कायफ, दराम्ल, दालचीनी, पितपापड़ा, ब्राह्मी, बंसलोचन आहे सैकड़ों चीजें भी नकली विक रही हैं। मर्गीत लोग सैंधव नमक खाते हैं, देशी चीनी खाते हैं, प उन्हें पता नहीं कि समुद्री नमकके कारखानोंमें जान सेंघा नमक और गुड़के या मीठोंके गंदे शीरेमें मिळी चीनी मिलाकर देशी चीनी वनायी जाती है के अर्थलोल्प्पताके कारण यह मिलावटका पाप व्यापाते नामपर यत्र-तत्र बढ़ता जा रहा है । हजारों मिलार करनेवालोंपर मुकदमे चले हैं, पर उनकी संखा ते अगणित है।

हिंसाका विस्तार

हिंसाका प्रसार बेहद हो रहा है। मनिक द्वेष-हिंसाकी तो वात ही नहीं, वह तो बहुत बहेर्ब ऊँचेपर उड़नेवाले लोगोंमें भी भर गयी है, 🕫 हिंसाकी भी कम बढ़ती नहीं हो रही है। वैष्ण ल सदासे निरामिषाहारी घरानोंमें मांसाहार आरम्भ हो 🌃 है । अंडे और शराव तो मामूली वात है ।* सामी तौरपर करोड़ोंके नये-नये कसाईखाने खोले जा हिहैं। मछली, मुर्गी, स्अर, अंडोंकी इन्डस्ट्रियाँ खुल ही हैं। हिंसाका यह खुळा व्यापार हिंसकोंको सम्मान दिला 'हिंसक-पूजा'को प्रोत्साहन दे रहा है।

प्रथा भी बढ़ रही है। डाक्टर लोग रोगीकी नाड़ी देखकर मुक्त हाथ धोते हैं, कहीं रोगके कीटाणु न आ जायँ। हायमें बैछ आ सकते हैं, पर जूँठनमें — मुँहमें शूकमेंसे की यणु वी

दिल्लगीर्य

यरोपका विगिसित युवतियों

नामपर अ गदा स

आइतिर्क भसीभूत

ब्रा रही सिने

भ्रष्ट हो न्नर्य कर

महान् शु नर-नारी :

उस क्षेत्र होनेसे :

मित, उन

पड़ी-लिख

खा सि

सम्मान इ सप्रकार

हिहै।

और शील

निलंजता

उस दिन

明 की हुई

साय सिन

गरे। ह

जिसका

अर्जन-

यमल,

आह

मर्यादी

जमाका

मिलवी

है औ

यापात्वे

मिलावर

त्या तो

मानसिक

बहेर्ब

वही

व ता

हो मि

साकारी

रहे हैं

ही हैं।

िला

विनि

र साबुक

前额

根等

हिंद्-स्रीकी पवित्रता और सतीत्वका नाश

हिंदू-स्रीकी पवित्रता, सतीत्व, पातित्रत आदि आज हिल्लीकी चीजें बनती जा रही हैं । हम अन्घे होकर गूरोका अनुकरण कर रहे हैं; हमारी फैशनपरस्ती, क्वितिता, सिनेमा, संस्कृति तथा कलाके नामपर होनेवाले अवियों और वालिकाओं के अर्धनग्न नाच, स्वतन्त्रताके मग्र आनेवाळी उच्छृङ्खळता, सहशिक्षा, युवतीविवाह, ह्या साहित्य, गन्दे विज्ञापन आदि चीजें आगमें घीकी अहतिकी भाँति—हमारी नारी-पवित्रताके प्रम धनको -म्मीमृत करनेवाली असंयम तथा असदाचारकी आगको ख़ा ही हैं!

मिनेमा देखनेवाले तरुण-तरुणियोंके चरित्र बुरी तरहसे भर हो रहे हैं और जो सिनेमामें अभिनेता-अभीनेत्रीका भ्यं करते हैं, उनकी दशा तो विशेष दयनीय है । वे कोई हात् शुकदेव-सदश स्त्रीपुरुष-भेद-ज्ञानसे रहित परम संयमी ग्रनारी तो हैं ही नहीं। वासनाभरे जीवनको लेकर ही प्राय: अ क्षेत्रमें आये हैं । दिन-रात परस्पर अवाय स्पर्शादि होनेसे उनका चिरत्र भ्रष्ट होना स्वाभाविक ही है। मि, उनका समाजमें सम्मान अधिक होनेसे उच्चकुलकी षी लिखी लड़िकयोंकी तथा उच्चिशिक्षित तरुणोंकी भी 🔞 मिनेमामें नटी-नट बननेकी हो जाती है। पैसा, समान और स्वेच्छाचारकी छूट —तीनों ही मिलते हैं। समाजमें यह 'व्यभिचार-पूजा' बढ़ती जा ही है। हमारी स्त्रियोंमें स्वाभाविक ही उचित लज्जा भी शील एक महान् गुण था । अत्र उसके बदले मिल्जिता और उच्छूह्हलाकी असीम वृद्धि हो रही है। स दिन समाचारपत्रमें मीरजापुरका समाचार छपा था— भहिशिक्षासे सब प्रकारके सम्बन्धोंमें पूर्णता प्राप्त कें हुई आजकलकी कुछ छात्राएँ अपनी शिक्षिकाओं के मि सिनेमा देखने गयीं । वहाँ कुछ छात्र भी मिल मि क्या था। वह दश्य देखनेमें आया कि मिक्का वर्णन नहीं किया जा सकता×××× ।'

'आगरेके एक कॉलेजमें तो छात्राओंने यहाँतक कड दिया कि हमारे अर्धनम्न नृत्यको यदि छात्रोंको नहीं देखने दिया जायगा तो हम नाचकर ही क्या करेंगी ।

सतीत्व तो कोई वस्तु ही नहीं रह गया है । कुमारी माताओंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। हमारे सामने आज संयमपूर्ण ऋषि-जीवन आदर्श नहीं है। आदर्श है यूरोपका उच्छूङ्खल असंयमी जीवन। इसीसे विवाह-विच्छेद (तलाक) आदिकी वृद्धि हो रही है। उस दिन एक समाचारपत्रमें छपा था कि 'अमेरिकामें विवाहिता स्त्रियोंमेंसे प्रत्येक हजार पीछे ४३को तलाक मिला है तथा प्रत्येक हजार पीछे ३१ पतियोंसे अलग हो गयी हैं।'--इसीकी नकल हमारे यहाँ भी होने जा रही है!

विलायतकी सिनेमा अभिनेत्रियोंके सम्बन्धमें एक अखबारमें छपा है-

····फिल्मी कलाकारोंकी जिंद्गियाँ कितनी घृणित और दुःखर होती हैं, इस वातका लोगोंको पता नहीं है। सच्चे प्रेमको तो उन्होंने तिलाञ्जलि ही देदी है। ××××मेरी छाइन मेनरो—आज फिल्मी दुनियाँमें प्रसिद्धिके शिखरपर है, वह पति बद्छनेकी आदी हो गयी है । × × टीटा हैवर्थ छः पति बदल चुकी है जैसे पाँवकी ज्तियाँ हो । × × ×'

इन फिल्मी अभिनेताओंके करोड़ों पुजारी हैं--और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है । इसका क्या परिणान होगा, सोचनेसे ही हृदय कॉंप उठता है।

संयमहीनता और रोगोंकी वृद्धि

संयमका अभाव, खानपानकी अपवित्रता, गन्दी वस्तुओंका सेवन भयानक रूपमें वढ़ रहा है । असंयमी जीवन वीमारियों-का कारखाना होता है। वहाँ नयी नयी बीमारियोंका उत्पादन होता रहता है। शरीरसे पहले मनकी बीमारी होती है, वह पीछे शरीरके रोग-रूपमें प्रकट होती है । मानसिक

संख्या

नारण है

विल

क्री चीजें

南南南

धनी लोग

भी पाँच

हजार रूप

ग्र-नारी

आचार

बीमारीका नाश हुए बिना शारीरिक बीमारी केवल इंजेक्शनों और दवाइयोंसे नंहीं मिट सकती । दवा और डॉक्टरोंका अधिक विस्तार जनताके खारूथविस्तारमें कारण नहीं बनता, रोगविस्तारमें ही कारण बनता है। अमेरिकामें आज सबसे ज्यादा औषधविज्ञानका प्रसार है। पर वहाँ असंयम बढ़ता जा रहा है और इसके परिणामखरूप बीमारियाँ भी उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं। ('कल्याण'के गत मार्चके अङ्कमें पृष्ठ ८२२ पर प्रकाशित 'रोगी देश अमेरिका' शीर्षक लेख देखिये।)

अभी हालमें न्यूयार्क—अमेरिकाका एक रूटरका तार पत्रोंमें छपा है, जिसका शीर्षक है—'सभ्यताकी बीमारियाँ' (Diseases of Civilization) उसमें शिकागोंके लोयोला युनिवर्सिटी मेडिकल स्कूलमें प्रतिरोधक औषध तथा जन खास्थ्यके प्राध्यापक डाक्टर हर्बर रैटनरने बताया है कि सारे संसारमें युनाइटेड स्टेट (अमेरिका) ही एक ऐसा देश है जहाँ आवश्यकतासे अधिक औषधका सेवन किया जाता है, ऑपरेशन होते हैं और इन्जेक्शन लगवाये जाते हैं। प्रो० रैटनरने एक सामान्य अमेरिकीका यह चित्र अपनी एक भेंटमें प्रस्तुत किया, जिसको न्यूयार्कके जन-तन्त्रात्मक संस्थाओंके अध्ययनकेन्द्रने २०-५-६२ को जनताके सामने रक्खा।

'हमलोग थुलथुल, आवश्यकतासे अधिक भारी और प्रचुर मात्रामें दंत-रोगके शिकार हैं। हमारी उदर-अन्त्र-प्रणाली विगड़कर फट-फट करनेवाले गैस-इंजनके समान कार्य करती है। हमलोगोंको न नींद आती है और न हमलोग जाप्रत्-अवस्थामें ही ठीक-ठिकानेसे कार्य कर सकते हैं।

'हमलोग स्नायु-विकारजनित रोगोंसे ग्रस्त रहते हैं । हमलोगोंका रक्त-चाप (Blood pressure) अधिक रहता है । हमारे हृदय और मस्तिष्क पूरी अवधितक कार्य नहीं करते । जीवनके मध्याह कालमें ही हमें हृदयके रोगोंके बड़े व्यापक रूपमें दर्शन होने लगते हैं । हमलोगों- की मृत्युके कारणोंमें आत्महत्या एक प्रधान कारण है। इस प्रकार हम सभ्यताके रोग-प्राचुर्यसे पीड़ित हैं। *

अमेरिकाकी देखादेखी आज अन्य-परानुकाणपराग भारतवर्षमें भी संयम-नियम घट रहा है और दवा इंजेक्टर का रोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। अभी हमारी सामा तपोभूमि ऋषिकेशमें गङ्गातटप्र करीब ८ करोड़ राके पूँजी लगाकर सोवियट विशेषज्ञोंकी देखरेखमें ऐंटीनायोहिन दवा बनानेका एक बृहत् कारखाना स्थापित काने व रही है। इसमें सालमें २६ करोड़ रुपये मूल्यकी एँके बायोटिक ओषधियाँ तैयार होंगी। भारतवर्षमें रोगन बढ़ेंगे और इसलिये इन ओषघियोंकी माँग न बढ़ेगी ते कारखाना चलेगा कैसे ? कारखाना रोगोन्मूलनके क्षि तो बन ही नहीं रहा है, बन रहा है उत्पादन बड़ा-बड़ा कर उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक ओषधियाँ वेचकर मुनाप्त कमानेके छिये ! अतएव इस प्रकारके कारलांकी सफलताके लिये खाभाविक ही देशमें रोग-विस्तार आक्ष होगा । रोगविस्तारका प्रधान कारण असंयमपूर्ण जीवन ते है ही, जिससे शारीरिक रोगोंके मूलकारणभूत मानिक रोग उत्पन्न होते एवं बढ़ते रहते हैं । दूसरा बड़ा काण होगा—इन ऐंटीबायोटिक ओषधियोंकी प्रतिक्रिया। 🐔 शिक्षा, कुसंगति आदि मानसिक रोग तो थे ही, अब बढ़ानेवाले सिनेमा तथा उच्छृङ्खल सभ्यता थी 🏻 ही, अब 🤃 बायोटिक दवाओंका बड़ा भारी कारखाना भी खुलगया-ग्रहमहीत पुनि बात वस तेहि पुनि बीछी मार। ताहि पिआइअ बारुनी कहतु काह् उपचार॥

*We are flabby, overweight and have a lot of dental cavities.....our gastro-intestinal system operates like a spluttering gas engine. We can't sleep, we can't get going when we are awake.

We have neuroses; we have high blodpressure. Neither our hearts nor our heads last as long as they should. Coronary disease at the peak of life has hit epidemic proportions. Suicide is one of the leading causes lot diseases of the suffer from a plethora of diseases.

The l

1*

न्त्यग

क्रान-

सरकार

रपयेवी

योरिक

रने न

ऐंटी.

रोग न

गी तं

लिवे

ग-वदा-

मुनापा

वानोंकी

वस्यक

वन ता

निसिक

कारण

1冊

उनन

的

41-

ot of

can't

ke. olood.

1254

the ions.

eath.

कामोपमोग और अर्थप्राप्तिकी इच्छा ही इसमें भी

विलासिताका रोग

विद्यासिता और फैशनपरस्तीका रोग भी देखारेखी बढ़ता जा रहा है। जीवनका स्तर ऊँचा करनेके
बामप कीमती फैशनेवल कपड़े, कीमती ज्ते, साज-सामानकी चीजें, शृंगार-प्रसाधनकी वस्तुएँ, सिनेमादर्शन, रेडियो
शिर्व अनावश्यक वस्तुओंकी आवश्यकता इतनी वढ़ गयी
है कि जीवन अत्यन्त खर्चीला हो गया है और उसकी
श्रीके लिये नाना प्रकारके भ्रष्टाचार किये जाते हैं।शौकीन
भी गँच सौसे हजारतककी सिलाईके कोट, स्त्रियाँ हजार-दो
खार स्पयेकी एक-एक साड़ी पहनती हैं। जहाँ गरीव
सनारी बदन ढकनेके लिये कपड़े नहीं पाते, वहाँ यह
आचार उच्चस्तरके जीवनके नामपर बढ़ रहा है! एक-

एक कोटकी सिटाईमें सैकड़ों मनुष्योंके बदन ढके जा सकते हैं और एक-एक साड़ीकी कीमतमें सैकड़ों बहिनोंको ठजा-रक्षा हो सकती है ! पर इस ओर ध्यान ही नहीं है । जीवनका स्तर ऊँचा उठना चाहिये (?), चाहे कितने ही अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार करने पड़ें !

धर्म और भगवान्की अवहेलना

धर्म तथा भगवान्को तो सर्वथा ढकोसला बताया जाने लगा है। संकट पड़नेपर भले ही भगवान् याद आवें, यों साधारणतया तो अपने कर्म तथा वचनसे भगवान्-का विरोध ही किया जाता है। इसीसे देवी सुरक्षाका जो परम लाभ मिलता था, उससे हमलोग विश्वत हुंए चले जा रहे हैं। मानवजीवनका ऋषिप्रोक्त उद्देश्य भगवत्प्राप्ति तो विस्मृत हो ही गया है! यह बहुत ही शोचनीय है। भगवान् सुबुद्धि दें और सबकी रक्षा करें।

のの人をくらんのかのかのかのかのかのかのから

अनुनय

(रचियता—प्रो० श्रीवाँकेविहारीजो झा, पम्० प०, साहित्याचार्य)

जीवन की भीषण झंझा के झोंकों से उद्भ्रान्त—
विकल आज आ पड़ा शरण में प्रभुवर !स्वामिन्!!कान्त!!!
अधःपतन की सीमा पर में पहुँच गया हूँ नाथ!
देखों, अब भी दया करो हे ! पकड़ों मेरा हाथ!!
किया मोहवश जाने कितने अध सस्नेह अपार!
अब तो जी घबराता मालिक ! लख भव-पारावार!!
गरज रहीं उत्ताल तरंगें, नाव पड़ी मँझधार, हे भवाब्धि-कवर्तक! हा, लो थाम जरा पतवार!!
निशिदिन सुख के अन्वेषण में सदा लगाये ताक, जीवन की इस मृगतृष्णा में रहा छानता खाक!!
साथी तो थे बहुत, किंतु हा ! सभी छोड़कर साथ—
जाने कहाँ गये, एकाकी धुनता हूँ में माथ!!
शिथिल हुए सब अङ्गों में पीड़ा का दुर्वह भार!
जीवन की गोधृलि देख प्राणों में हाहाकार!!

निज अनुराग-सुधा-रस शुचिका देकर स्नेहिल दान, आज मिटा दो मेरी चिर-तृष्णाको हे भगवान् !!

पढ़ो, समझो और करो

(?)

मित्रताका निर्वाह

हंजारीमल और वसन्तलाल दोनों बचपनके मित्र थे। यह लगभग पंद्रह-बीस वर्ष पहलेकी बात है। दोनों ही बड़े होकर अपने-अपने व्यापारमें लग गये । वसन्तलालको व्यापारमें कुछ सफलता मिली। उसने जितने रुपये कमाये, उसका अपनी स्त्रीको जेवर बनवा दिया। हजारीमलका काम नहीं चला। वह संकटमें रहा। होते-होते उसका काम फेल होनेकी नौबत आ गयी। उसे तेईस हजार रुपयेका देना हो गया। बहुत दुखी था हजारीमल। वसन्तलालको इसका पता लगा। पर उसके पास नगद रुपये नहीं थे। वह अपने कुल रुपयोंको गहनेमें लगा चुका था। व्यापारका काम परायी रकमसे करता था। उसकी साख अच्छी जम गयी थी। उसको अपने दोस्त हजारीमलकी दुरवस्थापर वड़ा दुःख हुआ, उसने मन-ही-मन सोचा-गहना न वनवाया होता तो आज ये रुपये हजारीमलके संकट-निवारणमें काम आते। उसने बहुत डरते-डरते अपनी पत्नीसे सारी बातें कहीं; क्योंकि गहना उसीके पास था। पत्नी वड़ी ही साध्वी निकली। उसने कहा-- आप इतना संकोच क्यों करते हैं ? गहना आपने ही तो बनवाया था और आज अपने मित्रकी इजत बचानेके लिये आपको ही उसकी जरूरत है। इसमें मुझे पूछतेकी कौन-सी वात है ? मित्रकी इजत तो हमारी ही इजत है। गहनेसे तो केवल मेरे शरीरकी ही शोभा बढ़ी मानी जाती है, पर उनकी इजत वचनेमें तो हमारे दोनों परिवारोंकी शोभा है। आप अभी ले जाइये।'

पत्नीकी इन वातोंको सुनकर वसन्तलालकी आँखोंमें स्नेहके आँमू आ गये । उसे पत्नीके इस व्यवहारसे बड़ा ही संतोष तथा प्रसन्नता हुई। उसने गहना लियाः गलाया और वेचकर नगद रुपये कर लिये । हजारीमलके कर्जदारोंकी सूची वह पहले ही ले आया था । उसने अपने एक आदमी-को भेजा और उससे कह दिया कि 'तुम जाकर इन सबको रुपये देकर फाड़खती ले आओ, सबसे यही कहना किं में हजारीमलजीका ही आदमी हूँ । उन्होंने रुपये भेजे हैं । कहीं मेरा नाम किसी भी तरह न आ जाय। 'ऐसा ही हुआ था। हजारीमलके घाटेका और उनकी कठिनाईका महाजनोंको पता भी नहीं था। इससे किसीको कोई संदेह नहीं हुआ। सबने रुपये ले लिये। फाइखतीकी रसीदें लिख दीं। रसीदें म वसन्तलालके पास पहुँच गर्यी। वसन्तलाल सदाकी माँव रातको हजारीमलके घर गया । वहाँ हजारीमल और उस्त्री स्त्री—दोनों रो रहे थे। छोटा लड़का पास वैठा माँगाई मुँहकी ओर निहार रहा था-विचित्र विषादमरी मंगिमाते। वसन्तलालने जाकर वातचीत की, सहानुभूति प्रकट करते हुए समझाया—'भाई! धीरज रक्खो—भगवान्को याद को उनकी कृपासे बहुत कठिन कार्य भी आसान हो जाया कता है। हजारीमल जानते थे कि वसन्तलालके मनमें वास्तवमें सर्व सहानुभृति और दुःख है, पर उसके पास नगद रुपये हैं नहीं, वह कहाँसे दे। गहना वेचकर वह रूपये दे दे व तो हजारीमलके मनमें कल्पना भी नहीं थी। वसन्तराखा उपकार माना । दोनों स्त्री-पुरुष रोकर कहने लगे-भाई! तुम्हारे पास होता तो तुम दे ही देते। हमारे भाग्यकी का है। तुम हमारे लिये इतने दुखी होते हो, यह सचमुच हमो लिये बहुत दुःखद है। हम अपने सच्चे मित्रको दुःख पहुँचानेमें कारण बन रहे हैं। वसन्तलालको आँखें भी वस पड़ीं । पर उसने कुछ नहीं कहा—धीरेसे पाइसतीरी रसीदोंका लिफाफा हजारीमलके विछौनेपर तिकयेके नीवेस दिया । वसन्तलालका साहस नहीं हुआ—वह डरा कि क्षी मेरे इस वर्तावसे हजारीमलके मानको ठेस न_ुलग जय। इस संकुचित न हो जाय—इसलिये उसने मुँहसे कुछ भीन कहकर चुपके-से लिकाका रख दिया और प्रणाम करके व चला गया।

समय उ

भानजा है ऐसा

ह् वर्षो

संतान न

उन्होंने उ

हीं होने

ते हुए

आर

आठ वर्ष

ऐसी सि

सोची । तु

गह सुझ

ग्रहरमें भी

दिनोंमें अ

फ्रारके इ

है। इला

दुशनका

नवनीत र

पांच माहत

विवे अ

णे-मुक्त

स्टेश सर्व किया

अनेको व

या, भर

श्चिनमं

और हुका धेटकर न

भी न चल

^{डेन्}र मिल

क्षिती है।

अलमारीमं

वाह अभ

हिंदिति

पीछिमे जय हजारीमल रोते हुए विछौतेपर हेटे, तिला कुछ सरका, तय लिफाफा दिखायी दिया । खोलकर देख तो रसीदोंको देखकर दंग रह गया। संबेरे महाजनांते पत लगनेपर उन लोगोंने कहा कि 'कल आपने हपये मिजना हैंगे थे। हम छोगोंने रसीदें लिख दी थीं। तव हजरीमली समझमें वात आयी । वसन्तळाळसे मिळनेपर उसने वहे —रामलल शर्म संकोचसे स्वीकार किया।

उग्र कर्मका हाथोहाथ दण्ड

कुछ उप्र कर्मोंका फल इसी जन्ममें हाथोहाथ मिल जाता है। इसी तरहकी एक घटनाका यहाँ उल्लेख किया जा स्व

उम्बी

नापदे

मासे ।

करता

नं सर्व

ने हैं ही

दे, वह

लल्ब

भाई!

ी वात

हमारे

तु:ख

ो वरस

खतीभी

वि सव

के वहीं

य।वह

भीन

के ग

तिष्य

र देखा

में पत

वा दिवे

रीमलबी

पुने वह

ल श्रम

नाता है।

हमारे एक परिचित वन्धु XXXXमें रहते हैं। उस समय उनके साथ उनकी एक विधवा वहिन और दसवर्षीय मनजा भी रहता था। वहिन विधवा है और वच्चा नादान है ऐसा समझकर उन्होंने उसे अपने पास रख . लिया था। है ऐसा समझकर उन्होंने उसे अपने पास रख . लिया था। है वर्षोंसे वे लोग रहते चले आ रहे थे। भाईके कोई स्वान न थी, अतः मनकी सारी ममता भानजेके पक्षमें आयी; हिने उसे कभी भी किसी भी वस्तुके अभावकी अनुभूति ही होने दी। स्वयं मितव्ययी और कुछ सीमातक कृपण होते हुए भी भानजेके मामलेमें उनकी हथेलीमें छिद्र हो नाम करता था।

आठ वर्ष पूर्व उन्हें गैसकी भयंकर शिकायत रहने हो। वैसे तो यह वीमारी उन्हें गत वीस वर्षोंसे थी; किंतु आठ वर्ष पूर्व तो उसने उग्र रूप धारण कर लिया था। ऐसी शितिमें उन्होंने वीमारीका जमकर इलाज करनेकी सेत्री। दुकानको बहिन और भानजेके सुपुर्दकर जिसने जो आह सुझायी, वहीं जा पहुँचे। इलाजके सिलसिलेमें वे हमारे हिमारी अवस्य प्राप्त हो जाती थी। उसमें केवल एक ही काले अवस्य प्राप्त हो जाती थी। उसमें केवल एक ही काले शब्द रहते थे—'कुशल है और यही आशा करते हैं। इलाज जमकर करवाना। इधरकी फिकर मत करना, खानका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है। बस, 'संत हृदय स्वीत समाना।' जानेकी जल्दी उन्होंने नहीं की। पूरे पंत्र माहतक उन्होंने जमकर इलाज करवाया। आखिर लीट पंत्र अपने शहरको—सर्वोशमें नहीं तो, अधिकांशमें वे पंत्र का हो चुके थे।

त्रेशनपर उन्हें भानजा मिला। बड़े प्रेमसे उसने चरणत्रिं किया। तत्पश्चात् कुछ कामको निपटाकर शीघ ही घर
क्षेत्र कहकर चल दिया। ये घर आ गये, किंतु यह
क्षि भर तो वीरान हो चुका है। पचास-साठ हजारके मालकी
क्षेत्रमें किठनाईसे पाँच-छः सौका माल बचा था। घर
केर्कर नहीं आया। तत्पश्चात् काफी समयतक उसका पता
केर्कर नहीं आया। तत्पश्चात् काफी समयतक उसका पता
केर्कर नहीं आया। तत्पश्चात् काफी समयतक उसका पता
कि चला। विहिनसे घर-दुकानकी दुर्दशाका कारण पूछा तो
कि उसने तो स्वयं गत छः माहसे खाट पकड़
कि उसने तो स्वयं गत छः माहसे खाट पकड़
कि उसने तो स्वयं गत छः माहसे खाट पकड़
कि अभक्ष्य पदार्थके अवशेष भी दीख पड़े। इनका हृदय
का उडा—'माधव ! यह तेरी क्या लीका है ?

मैं यह क्या देख रहा हूँ ।' कहकर इन्होंने आँखें मींच छीं। दिल थाम लिया और फफ्क-फफ्ककर रो पड़े। पास-पड़ोसके लोग आये। ऊपरी सहानुभूति दिखलायी। साथ ही सख्त कार्यवाही करनेका अमूल्य परामर्श भी दे दिया। इनसे अव घरकी दशा देखी नहीं जाती थी, घरका कोना-कोना इन्हें अपनी करुण कहानी कहता-सा प्रतीत होता था। साथ ही उस उद्दण्ड और पापात्मा भानजेको दण्ड दिल्यानेका मौन संकेत भी कर रहा था। कण-कण चीत्कार कर रहा था। मौका देखकर बहिन भी एक दिन अपने दूरके श्रशुरगृह (कलकत्ते) खिसक गयी। कुछ छोगोंने एक अर्जी छिखी और उन्हें उसपर केवल हस्ताक्षर करनेको कहा। बाकी कार्र-वाई करनेका उत्तरदायित्व उन्होंने ओटना स्वीकार किया। अर्जीपर हस्ताक्षर कर दिये गये । लोग पुलिस-स्टेशनकी तरफ रवाना हुए। थाना अभी थोड़ी दूर ही रह गया था कि ये आँधीकी तरह दौड़े आये और अर्जी लेकर शीवतासे वापिस लौट गये । अर्जीके इन्होंने दुकड़े-दुकड़े कर दिये । बहिन और भानजेको इन्होंने क्षमा कर दिया।

किंतु लीलाधर इस क्षमादानको सहन न कर सके । जिस प्राणीको हम किन्हीं कारणोंसे दण्ड देना नहीं चाहते अथवा चाहते हुए भी नहीं दे पाते, उसको दण्ड देनेके लिये स्वयं जगन्नियन्ताको व्यवस्था करनी पड़ती है

कुछ समय पश्चात् इनको कलकत्तेसे एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें बहिनके लकवा हो जानेके समाचार लिखे थे। कुछ दिनों पश्चात् उसके काल-कवलित हो जानेकी सूचना मिली इन्हें । इनको मर्मान्तक वेदना हुई । अभी इस वेदना-का याव भरा भी नहीं था कि उधर भानजेके विषपान करनेके समाचार प्राप्त हुए। ××× से चले जानेपर उसकी पीठमें एक छिद्र हो गया था, जिसमेंसे चौवीसों घंटे मवाद-रक्त आदि रिसते रहते थे। पैसा पासमें था नहीं। कुछ रोगके कारण और कुछ आत्मग्लानिवश उसने विषपान कर लिया था। किंतु विधाताके घर अभी उसके लिये ठौर नहीं थी, सो प्राणान्त न हो सका । हाँ, विषके तीक्ष्ण प्रभावसे सारे शरीरपर सफेद-सफेद निशान वन गये थे। वादमें उनसे एक प्रकारका वदबूदार पानी भी वहने लगा। इन्होंने सुना तो कलकत्ते भागे। उसकी दशा देख कलेजा मुँहको आता था। खूब दौड़-धूप की; किंतु अन्ततोगत्वा उसे मौतके मुँहमेंसे न निकाल सके। उधर एक नौकर, जो उनकी दुकानपर था और उस पापकर्ममें सम्मिल्ति था, वम्बई भाग गया; वहाँ

HEAT

अहस्य

और ते

ग्रह्थके

गेई नहीं

ह्यास्का

स्मे। रि

देखीं, प

ह्यो, दर

मुराहीको

भावाज ह

ग्ये। ब

माल वच

घटः

उनके न्य

इस मील

है मुझे ए

असेसर (

संयो

हो गयी।

और १०

र्वा इतर्न

भिना अन

व्या व

अर्भण्यत

ज्ञता । म

इतिनमं व

बुमानिका

शिति थी-

可可

होकल ट्रेनमें असावधानीवश अपनी दोनों टाँगें गँवा वैठा। इन्होंने सुना तो पछाइ खाकर गिर पड़े। वोले—'लीलाधर! लीला समेटो, बहुत हुआ; अब नहीं देखा-सहा जाता। आखिर सारा दण्ड उनको ही क्यों मिलना चाहिये? मैं भी तो उसमें भागीदार हूँ। भात विखेरकर कौओंको न्यौता तो मैंने ही दिया था। मैंने ही कुछ समझदारीसे काम लिया होता तो आज यह काण्ड क्यों देखनेको मिलता। अन्तर्यामी! बच्चे नादान थे। अज्ञानवश दुष्कर्म कर वेठे।'—कहते हुए वे बच्चेकी तरह फूट-फूटकर रो पड़े। तत्पश्चात् किसीको भेजकर उन्होंने नौकरको अपने पास बुलवाया और अपनी दुकानपर पुनः उसे शरण दी।

आज उस बातको आठ वर्ष होनेको आये । अपने अध्यवसाय और लगनसे इन्होंने पुनः अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। किंतु कभी-कभी उस घटनाके स्मरणसे वे अत्यधिक विचलित हो जाते हैं और तब कह उठते हैं, 'भरी बंदूक नादानोंके हाथमें मैंने पकड़ायी। दण्डका भागी मैं था, किंतु मिला उन्हें। अन्तर्यामी कैसा है यह तुम्हारा न्याय!' संत भी भला, किसीको दोष देते हैं ?

—गोपालकृष्ण जिंदल

(3)

'चुरा गया'

कुछ वर्षों पहले जब वम्बईके पश्चिमीय भागमें 'लोकल इलेक्ट्रिक ट्रेन' ग्रुरू हुई थी, उस समयका प्रसङ्ग है। आरम्भमें तो गाड़ियोंकी चीजें सुरक्षित रहीं; परंतु कुछ दिनों वाद—गाड़ियोंके पंखे तथा ट्यूवलाइटोंके स्थानपर नये पोस्टर लगे दिखायी दिये। जहाँ ट्यूवलाइट और पंखे लगे थे, वह जगह खाली थी और वहाँ पोस्टरोंमें 'चुरा गया' (Stolen) आदि वाक्य विभिन्न भाषाओं और अक्षरोंमें लगे दिखायी देने लगे। जनता आश्चर्यमें थी कि रेलवे 'वाच एण्ड वार्ड' विभागके लिये इतने रुपये खर्च करती है, तब भी 'चुरा गया'—यानी गाड़ियोंमें लगे पंखे और ट्यूवलाइट चोरी हो जाते हैं, यह तो बड़े ताज्जुवकी यात है।

हमारे एक भाई हैं—यहाँ नाम नहीं लिख रहा हूँ— वे एक बड़े बुद्धिमान् और जनताके सेवक हैं। इन्होंने रेलवे-को शिक्षा देनेके लिये एक तिकड़म रचा। रेलके डिब्वेमें जहाँ 'चुरा गया' पोस्टर लगे थे, वहाँसे धीरेसे एक पोस्टर उखाड़ लिया और उसे अपनी कमीजकी जैवपर पिनसे लगा लिया। गाड़ीके दूसरे मुसाफिर इन माईकी इस कार्यवाहीको अत्त नेत्रोंसे देखते रहे। गाड़ी चर्चगेट स्टेशनपर पहुँची और वे माई उतरकर गेटसे वाहर निकलने लगे। टिकटकलक्य टिकट माँगा तो उन माईने जेवपर लगे 'चुरा गया' पेल की तरफ अँगुली कर दी। टिकटकलक्टरने उसे पहुरा पृद्धा—'क्या चुरा गया ?' उस माईने जवाब दिया—'मले पास चुरा गया'। टी० सी० गरम हो गया और उसने माइ चुकानेके लिये कहा। माईने उत्तर दिया कि आपकी लिये इतने-इतने लोग ध्यान रखते हैं, तब भी वस्तुएँ नला कर जनताके सामने 'चुरा गया' यह वोर्ड लगा दिया कर जनताके सामने 'चुरा गया' यह वोर्ड लगा दिया कर इं, फिर मैं तो अकेला और अनेक उपाधियोंसे विराह अमनुष्य हूँ। मेरा पास चोरी हो गया, इसलिये मैंने भी क्ष पोस्टर लगा लिया।

टी० सी० उन भाईको स्टेशनमास्टरके पास लेगा। वहाँ कुछ बोल-चाल हुई और अन्तमें भाईको कोर्टमें के करनेका निश्चय किया गया। भाई तो यह चाहते ही थे, वे उत्साहसे कोर्टमें गये। न्यायाधीशके सामने मामल पे हुआ । रेलवे अधिकारियोंसे पूछ-ताँछके बाद कोर्टने अ भाईकी जवानी ली। उन्होंने इतना ही कहा—''रेलके पा इतने-इतने 'बाच एंड वार्ड'के आद्मी होनेपर भी वर्ष चोरी हो जाती हैं और उन खाली स्थानोंपर नयी वस्तुओं व्यवस्था करनेके बदले 'चुरा गया' (Stolen) आहे पोस्टर लगाकर जनताके सामने अपनी कमजोरी खबी बर है। देशका एक बहुत बलवान् अङ्ग भी इतनी कार्की दिखाता और ऊपरसे पोस्टरोंका खोखला प्रदर्शन कर्ता तो क्या इसमें देशका अपमान नहीं है ? मैं तो केवल रेल्की शिक्षा देनेके लिये ही कोर्टमें हाजिर हुआ हूँ और स्वील मैंने अपनी जेवपर रेलवेका ही 'चुरा गया' पोस्टर पीरा पी चोरी हो गया'-यह बतानेके लिये लगाया है।"

उन भाईकी दलील न्यायाधीशके गले उतर गर्वी कें कोर्टमें उपस्थित होनेका उनका आन्तरिक मुन्दर उद्देश कोर्टकी समझमें आ गया। न्यायाधीशने कैसला के हैं कि कोर्टकी समझमें आ गया। न्यायाधीशने कैसला के हैं वितर्भ रेलवे अधिकारियोंको वड़ी फटकार बतायी और उन्हें वेतर्भ रेलवे अधिकारियोंको वड़ी फटकार बतायी और उन्हें वेतर्भ रेलवे अधिकारियोंको वड़ी फटकार बतायी और उन्हें वेतर्भ रेलवे अधिकारियोंको वड़ी कि ''आप हमारे देशकी नाक कटानेको तैयार हो गर्वी अधिकार हो 'चुरा गया' के तमाम पोस्टरोंको उतारकर कहाँ जो-जो वस्तुएँ गायव हुई हैं, वहाँ-वहाँ तमी वर्ष उपायायी जायँ।''

1

भीरवं

लक्यने

पोस्य-

पहका

'सहित,

ने भाडा

रेलवां

चोरी हो

न लगाः

या जाता

रा हुआ

भी यह

ते गया।

टिमें पेरा

ही थे, वे

ला पेश

र्टने अ

वेके पार

वस्त्रं

यस्तुओं श

) आहे

ली जाती

क्मजोर्ध

करता है

रेलको

इसीलिय

मेरा पार

ायी और

हेश्य में

रेते हुए

चेताक

मिहैं।

双乘

बी वर्ख

उसी दिनसे रेलवेके सब डिब्बोंमेंसे 'चुरा गया'के पोस्टर अहरव हो गये और उन स्थानोंपर नये-नये फरफराते पंखे और तेज रोशनीबाले टचूब लग गये। (अखण्ड आनन्द) ——श्रेमकुमार एन० ठकर

(8)

वहकी बुद्धि

अभी हालकी बात है, उत्तरप्रदेशके ही एक गाँवमें एक हुशके घरमें रातको चोर चुसे। घरमें स्त्रियाँ सो रही थीं। पुरुष क्षें नहीं था। चोरोंने गहना-कपड़ा वटोरकर लगभग बीस ह्याका माल एक पेटीमें भरा और उसे उठाकर ले जाने हो। स्त्रियोंमें एक बहू जाग रही थी। उसने सारी वातें हेतीं, पर वह पहले कुछ नहीं वोली। जब चोर पेटी ले जाने हो, दरवाजेतक पहुँचे कि उसने उठकर पानीकी एक वड़ी हुएहीको उठाकर बड़े जोरसे चौकमें पटका। घड़ाकेकी अग्रज हुई—चोर डरकर पेटीको वहीं छोड़कर तुरंत भाग हो। वहूकी ठीक समथपर उपजी बुद्धिने वीस हजारका माल वचा दिया।

(4)

षोडशनाम मन्त्रजपका चमत्कार

घटना लगभग आठ साल पूर्वकी है, मैं वस्ती जिला को त्यायालयका असेसर था। मेरा घर वस्ती कचहरीसे स्मिल दूर गाँव (कुरियार) में है। एक दिनकी वात पुने से एक कतल-केसके सिलसिलेमें जज साहयके न्यायालयमें असेस (जूरी) की हैसियतसे उपस्थित होना था।

संयोगवरा उस दिन सवेरेसे ही घनघोर वर्षा आरम्भ होगी। मार्ग कचा, किसी वाहनका प्राप्त होना असम्भव और १० वर्ज कचहरीमें उपस्थित होना अत्यन्त आवश्यक। त्रिज्ञनी तेज और प्रतिकृष्ठ कि छाते ही भी सहायता छे क्या कचहरीमें न षहुँचनेपर ५१) रुपये जुर्माना देना कचहरीमें न षहुँचनेपर ५१) रुपये जुर्माना देना क्या । इसके अतिरिक्त जवावदेही और अयोग्यता, क्या मनमें विचार उठा कि 'कुछ भी हो' ऐसे तूफान और अमेनिका मय। यही विचार करते-वरते ९ वज गये । वही

हैं न सुिव सीता कर पाई। उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥

मनमें किसी प्रकार चैन न आता था। वर्षा बढ़नेकी जगइ घटनेका नाम न छेती थी । ऐसी स्थितिमें किंकर्तव्य-विमृद् होकर चारपाईपर पड़ गया । वगलमें 'कल्याण'का एक अङ्क खुळा पड़ा था। कुछ न सूझनेपर वही उठाकर देखने लगा। दैवयोगसे दृष्टि एक लेखपर पड़ी, जिसमें लिखा था 'किसी भी कार्यमें आरम्भसे लेकर अन्ततक यदिमनसे घोडश नाम मन्त्र 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ का जप चलता रहे तो वह कार्य अवस्य सफल होता है।' पंक्ति पढ़ते ही मनको कुछ सम्बल-सा मिलता प्रतीत हुआ । वर्षा अनवरत चल रही थी। चारपाईसे उठकर खड़ा हो गया । शरीरपर एक कम्बल और उसके ऊपर एक चद्दर डाला और पानी तथा तूफानमें ही चल दिया। पूरी एकतानतासे मन 'हरे राम हरे राम''' ''' का जप कर रहा था । मनमें कार्य-सिद्धिका आकर्षण भी था और 'कल्याण'के उस लेलकी परीक्षाका भी भाव था। दोनोंके संयोगसे तन्मयता बढ़ती गयी। वर्षाके सरगमपर पाँव सरपट चलने लगे । मन्त्र-जप सस्वर हो रहा था । मार्ग बहुत ही ऊलड़-खावड़ होते हुए भी उस दिन हर रोजसे सरल मालूम पड़ने लगा । उसी तुमानमें कितनी जल्दी और कव मैं जजसाहवके न्यायालयके सामने पहुँच गया, मुझे पता ही न चला। घडी देखा तो वारह वज रहे थे।

न्यायालय-कक्षमें प्रवेश करके देखा, मुकद्दमेकी कार्यवाही चाल् थी। पहुँचकर जजसाहवको नमस्कार किया। उन्होंने मेरी ओर देखते ही, जूरीकी कुर्सियोंकी तरफ नज़र डाली। सभी कुर्सियाँ खाली थीं। मेरे अतिरिक्त और दो असेसर थे, जो कक्षके बाहर ही बैठे ऊँघ रहे थे। ये दोनों असेसर महोदय कई घंटे पूर्व ही वहाँ पहुँच चुके थे, किंतु पुकार न होनेकी वजहसे बाहर ही बैठे ऊँघते रहे।

जजने जब कुर्सियों के लाली देखा तो तुरंत ही पेशकारसे प्रश्न किया कि 'आज असेसरों की पुकार हुई ही नहीं क्या ?' और मुझे बैठनेका संकेत किया । बात सचमुच यही थी। मैंने समझ लिया कि 'गई गिरा मित फेरि' के अनुसार ही प्रभु-प्रेरणा-से आज असेसर लोग पुकारे ही नहीं गये। फलतः में सबसे पीछे पहुँचनेपर भी सबसे आगे पहुँचा हुआ माना गया और बहुत पहलेसे उपस्थित वे दोनों असेसर मेरे बाद आकर बैठे। मुकदमेकी अवतक हुई सारी कार्यवाही कैंसिल कर दी गयी और सुनवाई फिरसे आरम्भ हुई।

भारतीय

अभाव है

त्र हो र

विशाविद

संस्कृति

संस्कृति

इस

भर

संस्कृति

संस्कृति

अव

वि

औ

संस्कृति

संस्कृति

hor

संस्कृति

मैंने निश्चय कर लिया कि हो-न-हो अवश्य ही यह प्रभुनामके उसी षोड्या नाममन्त्रका चमत्कार है, जिसके कारण यह अप्रत्याशित बात घटित हो गयी। घटनाका स्मरण करके मन बार-बार पुलकित होने लगा। परीक्षाके भावपर ध्यान जानेपर ग्लानि भी हुई, किंतु प्रभुके क्षमाशील स्वभावपर ध्यान जाते ही वह विलीन हो गयी और मन द्विगुण उत्साहसे 'हरे रामहरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।'का जप करने लगा।

'हारेहुँ खेल जितावहिं मोही'के अनुसार यह घटना मेरे जीवनमें घटित हुई और मैं इसे भक्तजनकी भटाईके लिये ही यथा तथा प्रकाशित कर रहा हूँ । ॐ तत्सत् । ——वृजमोहन चौषरी

> (६) आद्शं द्यालुता

यह घटना सन् १९५८ की है। बर्नपुर अस्पतालसे एक महिला निकली, जो कि थोड़े दिनों पूर्व रेलसे कटकर घायल हो गयी थी, अस्पतालमें कोई ऐम्चुलेंस नहीं थी, जो उसे घर पहुँचा देती। लाचार होकर वह पैदल जा रही थी, इतनेमें एक साहबकी कार उसके पाससे आकर गुजरी और वहीं ठहर गयी। साहबने उसे कारमें बिठाकर निश्चित स्थान-पर पहुँचा दिया। आश्चर्यकी बात यह कि अबतक कई टैक्सियाँ पार हो चुकी थीं, लेकिन किसीने भी उसकी तरफ देखा नहीं। इधर एक विदेशीको देखिये, जिसने हमारे-जैसे काले-कल्टटेकी मदद की। धन्य उसकी सम्यता तथा संस्कृति।

—–शुकदेवप्रसाद

(0)

मृत्युके समय देवदूतोंका आगमन

आजके युगमें मृत्युके समय यमदूत अथवा देवदूत आनेकी वातका शिक्षित लोग मजाक उड़ाया करते हैं। किंतुं नीचे एक ऐसी सची वटनाका वर्णन किया जा रहा है, जिसको पट्कर भौतिकवादी शिक्षित वर्ग भी आश्चर्यान्वित होगा।

यह घटना आजसे १५-२० वर्ष पुरानी है। मेरे पिताजीके लघुभ्राताके श्रधुरके एक निकट सम्बन्धी भगवद्भक्त, कर्मकाण्डी एवं कथावाचक ब्राह्मण थे। वे सास्विक प्रकृतिके थे। संस्कृतके वे अच्छे ज्ञाता थे। श्रीमद्भागवतपुराण और महाभारत ग्रन्थोंके वे अच्छे वाचक थे। जब वे वृद्ध हो गये और उनका शरीर दिन-प्रति-दिन श्रीण होने लगा, तब उन्होंने एक दिन घरवालोंको अपनी

मृत्युका निश्चित दिन बता दिया। उन्होंने अव अपना हुन् करानेसे भी इन्कार कर दिया । मृत्युके छ:-सात निकृ उनकी तिवयत ठीक थी और निकट भविष्यमें मृखु होते कोई सम्भावना नहीं थी। किंतु उनके कथनानुसार निश्चि दिन (एकादशीका दिन था ।) प्रातःकाल चार वजे उन्हें तवियत कुछ खराव हुई। एक जगह भूमि वोकर और की पोतकर स्वच्छ कर दी गयी एवं शय्यापर उनको हिया कि गया । विष्रसमृहद्वारा गीतापाठ एवं भजनादि हो रहा था। नौ वजेके लगभग उन्होंने कहा 'एक घड़ी बाद मेरी मूल हो जायगी; मृत्युके बाद कोई शोक न मनावें। आज तो में लिये शुभ दिन है; क्योंकि श्रीकृष्णमुरारि मुझे बुल रहे है। इस प्रकार वात करते-करते ही वे बोले—'देखो, वह आसाह से विमान उतर रहा है, जिसपर पीतवर्णकी ध्वजा लगी हं है। उसपर दो भगवान्के पार्षद (देवद्त) पीतामारावी चवॅर लिये बैठे हैं।' यह बात सुनकर सबको बड़ा कीता हुआ । विमान तो सिवा उनके और किसीको नहीं दिख ए था। उपर्युक्त वाक्य कहते ही उनका स्वर्गवास हो गा। सबको एक भीनी-सी अद्भत सुगन्धका अनुभव हुआ औ सबके नेत्र एक क्षणके लिये अज्ञात शक्तिके वशीभूत हो वंही गये । नेत्र खोलनेपर सवने देखा कि कुछ क्षणों पूर्वका बातावल गायव हो चुका है। पण्डितजीका निजींव स्थूल शरीर ए है। तदनन्तर छौकिक अन्त्येष्टि क्रियादि की गयी।

यह घटना राजस्थानके भीलवाड़ा जिलेके एक ग्रामकी है। —हिंदा क्यांस निहें स्वास, एम्॰ एस्स

(6)

मच्छर, मक्खी, विच्छू इत्यादि कीड़ोंके विषक्ष करनेका उपाय

विच्छू-जैसे विषैठे जानवरके विष दूर करने हैं अनुभूत उपाय है। आमका ताजा बौर एक सेर ठेकर हाई पर आध घंटेतक खूब मठना चाहिये। फिर हाथोंको आध है सूखने दिया जाय। इससे हाथोंमें जादू-जैसा असर हो बाई और यह असर पूरे एक वर्ष रहता है।

जय कभी कोई विच्छू इत्यादि काट हे तो जिस आर्म ने हाथोंमें बौर मला हो, वह आदमी जिसको विच्छूने हैं है उस आदमीको आठ-दस मिनटतक हाथोंसे महे (ब्रॉव काटा है) निश्चय ही आराम हो जायगा। परंतु इस ग्रेटकें प्रयोगमें पैसा लेना महापाप है।

संस्कृति-माला भाग १ से ८ (कक्षा ३ से १० के लिये)

T 35

इल्व

देन पूर्व

होनेबी निश्चित

उन्हें

र हो।

य दिव

हा था।

री मृत्यु

तोमो

हेहै।

गसमान-

उगी हुई

म्बर्धारी

कौत्हर देख ख

गवा ।

आ और

ते वंद हो

वातावरव

रीर पड़ा

मकी है।

एस् सी॰

वेष द्

和時不可

आध गेरे

जाता है

आदमी

To A

प्रायः सभी देशहितैषियों तथा शिक्षाविशारदोंने यह स्वीकार किया है कि शिक्षा-संस्थाओं के वर्तमान पाठ्यक्रममें अत्या संस्कृतिके ज्ञानका समावेश न होनेके कारण आज देशके नवयुवकों अनुशासनहीनता आ गयी है । नैतिक वलका अपनि हो गया है और उच्छुक्षलता वढ़ गयी है । भारतीय संस्कृतिके अमर सिद्धान्तोंसे परिचित होनेपर ही ये कमियाँ अपनि संकृती हैं । इसिलये विरला-शिक्षण-संस्थाओं के सम्मान्य कुलपित पद्मश्री पं० श्रीशुक्रदेवजी पाण्डेने विभिन्न कक्षाओं के सम्मान्य कुलपित पद्मश्री पं० श्रीशुक्रदेवजी पाण्डेने विभिन्न कक्षाओं के विभिन्न कार्यां मानसिक धरातलके अनुरूप प्राचीन भारतीय संस्कृतिका एक पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिये विभिन्न क्षाधियों के मानसिक धरातलके अनुरूप प्राचीन भारतीय संस्कृतिका एक पाठ्यक्रम तैयार करनेके लिये विभिन्न क्षाधिय सजनों की एक उपसमिति श्रीयुत डॉ० कन्हैयाललजी सहल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, अन्यक्ष—हिंदी-संस्कृत-क्षाधि स्वर्णा कर्मा कार्यक्ष, पिलानी (राजस्थान) की अध्यक्षतामें नियुक्त की थी । उसने विभिन्न कक्षाओं लिये जो क्षाकृत वनाया, उसीके अनुसार ये पुस्तकें तैयार हुई हैं ।

पुस्तकोंका विवरण इस प्रकार है-

हंस्कृति-माला भाग १ (कक्ष्मा ३ के लिये)—लेखिका—श्रीमती प्रेमा सरीन एम्० ए०, गृष्ठ-सं० ४८, मुन्दर दोरंगा मुख-गृष्ठ, मूल्य . २० नयेपैसे, डाकखर्च अलग । इसमें रामायण, महाभारत, श्रवणकुमार, प्रह्राद, श्रुव, सती सावित्रीकी कथाएँ और पालनीय नियम हैं।

संस्कृति-माला भाग २ (कक्षा ४ के लिये)—पृष्ठ-सं० ५६, मुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, मू० . २५ नये वैसे। डाकखर्च अलग। इसमें सत्यकाम जावाल, महाशाल शौनक और अङ्गिरा ऋषि, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी, नचिकेता, इन्द्र-विरोचन, श्रीकृष्ण, भक्त हनुमान, भीष्मपितामह, युधिष्ठिर और एकलव्यकी कथाएँ तथा पालनीय नियम हैं।

संस्कृति-माला भाग ३ (कक्षा ५ के लिये)—लेखक—पं० श्रीरामकृष्णजी दार्मा, पृष्ठ-संख्या ८८, मूल्य . ३० नये पैसे । इक्ष्यर्च अलग । इसमें महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, भगवान् परशुराम, महात्मा कवीर, गुरू नानकदेव आदि १९ पाठ हैं।

संस्कृति-माला भाग ४ (कक्षा ६ के लिये)—पृष्ठ-संख्या १०४, सुन्दर दोरंगा सुखपृष्ठ, मृत्य . ३५ नये पैसे। डाकखर्च अलग । इसमें भक्त सुत्रत, भक्त परीक्षित्, मातृपितृभक्त श्रवणकुमार, चैतन्य महाप्रमु, समर्थ स्वामी रामदास, महासुनि वशिष्ठ, दिलीप, भक्त सूरदास, तानसेन, मीराँ आदि २६ पाठ हैं।

पंक्ति-माला भाग ५ (कक्षा ७ के लिये)—लेलक—पं० श्रीव्रजभूषणलालजी शर्मा, पृष्ठ-संख्या ९६, सुन्दर दोरंगा पुलपृष्ठ, मूल्य . २५ नये पैसे । डाकलर्च अलग । इसमें जातक कथाओंका परिचयः चाणक्यः चरकः, कालिदासः, कर्णः, रमयन्तीः बुद्धः, महावीरः, तक्षशिलाः, नालन्दा आदि १७ पाठ हैं।

संस्तृति-माला भाग ६ (कक्षा ८ के लिये)—पृष्ठ-सं० १००, सुन्दर दोरंगा सुख-पृष्ठ, मृ० .३५ नये पैसे । हाकलर्च अलग । इसमें दानवीर दानव नमुचि, राजा त्रिविक्रमसेन और भिक्षुक वर्षोदक्की कहानी, धवलमुख और उसके दो मित्र, भरत मुनि, कपिल मुनि, भामती, रामकृष्ण परमहंस आदि १९ पाठ हैं।

संकृति-माला भाग ७ (कक्षा ९ के लिये)—ले०—श्रीवसन्तलालजी दार्मा, एम्० ए०, साहित्याचार्य, पृष्ठ-सं० १५२, कुत्र दोरंगा मुख-पृष्ठ, आठ सादे चित्र, मू० .५५ नये पैसे । डाकखर्च अलग । इसमें ब्रह्मतेजकी विजय, अभिमानका त्याग, महर्षि दृश्यङ्डाथर्वणकी क्षमाशीलता आदि १२ पाठ हैं ।

मंस्कृति-माला भाग ८ (कक्षा १० के लिये) — पृष्ठ-सं० १३६, सुन्दर दोरंगा मुख-पृष्ठ, दो तिरंगे तथा दो सादे आर्टपेपरपर छपे चित्र, मू० .५५ नये पैसे । डाक-खर्च अलग । इसमें ईशादि तेरह उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, हैं इंगा और मोहेन-जो-दड़ो तथा विक्रमिश्लाके पाठ हैं।

ये सभी पुस्तकें साफ सुन्दर अक्षरोंमें छपी हुई हैं। स्कूल-कालेजोंके पाठ्यक्रममें सम्मिलित करने योग्य हैं। क्षिताओंको नियमानुसार कमीशन तथा अपने निकटस्थ स्टेशनतक नियमानुसार फ्री-डिलेजरी मिलती है। आशा है कि शिक्षा-जगत इनसे लाभ उठा सकेगा।

न्यवस्थापक गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

बहुत दिनोंसे अप्राप्त पुस्तकका नया संस्करण मार्क्सवाद और रामराज्य

(लेखक-श्रीखामी करपात्रीजी महाराज)

आकार डिमाई आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ८६०, मूल्य ४.००, डाकावर्च १.६०, कुळ ५.६०।

प्रस्तुत प्रन्थमें पाश्चात्त्य दार्शनिकों एवं राजनीतिक्षोंकी जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, उनके आलोचना तथा उनके साथ भारतके प्राचीन ऋषियोंके मतका तुलनात्मक अध्ययन एवं उनकी श्रेष्ठाक प्रतिपादन है। साम्यवादके आचार्य मार्क्सके सिद्धान्तके प्रत्येक अङ्गपर बड़ी ही तर्कपूर्ण शैलीसे विका किया गया है।

इस पुस्तकमें इतनी अधिक सामग्री आ गयी है कि इसे दर्शन और राजनीतिका 'विश्वकोष' का भी अनुपयुक्त न होगा।

प्रथम संस्करण छपनेके बाद शीघ्र ही बिक गया थाः परंतु अनेक तरहकी क्रिटिनाइयोंके कारण प्र दूसरा संस्करण जल्दी न तैयार हो सका। प्राहकोंका बड़ा आग्रह था। इस बार बौद्ध-दर्शनके वहुत्ते नये पृष्ठ जोड़े गये हैं। फिर भी मूल्य पहलेबाला ही रक्खा गया है। इस पुस्तकके प्रथम संस्करणपर अनेकं प्रसिद्ध समाचारपत्रोंने प्रशंसात्मक सम्मतियाँ छापी थीं।

एक नयी पुस्तक

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका परिचय और उपदेश

(लेखक--आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, एम्० ए०)

आकार डवल काउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या २८०, सुन्दर तिरंगा चित्र, सू० १.००, डाकलर्च 🐠 कुल १.८०।

प्रस्तुत पुस्तक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध एवं गम्भीर विचारवील आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाया महोदयके वँगला भाषामें लिखित श्रीमङ्गावद्गीता एवं गीतावका भगवान श्रीकृष्ण-सम्बन्धी महत्त्वप्र बेखोंका हिंदी-भाषान्तर है।

आशा है कि गीतांप्रेमी पाठकगण इस ज्ञान-गम्भीर और रसमय ग्रन्थसे लाभ उठा सकेंगे।

हिन्दी पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेसे पहले अपने शहरके पुस्तक-विक्रेताओंसे ग्राप्त करनेका ग्राप्त
करना चाहिये। इससे आप भारी डाकखर्चसे बच सकेंगे।

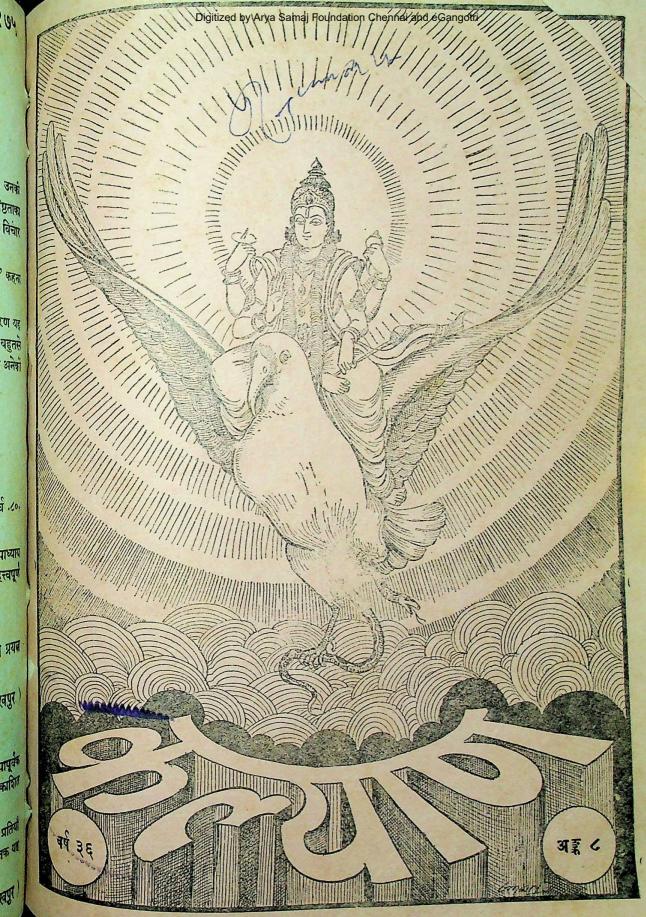
व्यवस्थापक—सीताग्रेस, पो० गीताग्रेस (गोरावपुर)

कल्याणके चाल् वर्षका विशेषाङ

'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क'का दूसरा संस्करण अभीतक मिलता है—जिन्हें लेना हो, वे कृपप्त वार्षिक मूल्य रु०७.५० मनीआर्डरसे भेजकर ग्राहक वन जायँ अथवा विशेषाङ्कसहित अबतकके प्रकारि अङ्क वी०पी०द्वारा भेजनेकी आज्ञा प्रदान करें।

यह विशेषाङ्क इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि इसकी एक लाख इक्यावन हजार प्रिष्टी (दो बारमें) छप चुर्की। अवतकका कोई विशेषाङ्क इतनी अधिक संख्यामें नहीं छप सका। जवति समाप्त नहीं हो जाता, उसके पहले ही अपने मित्रोंको इसका ग्राहक बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



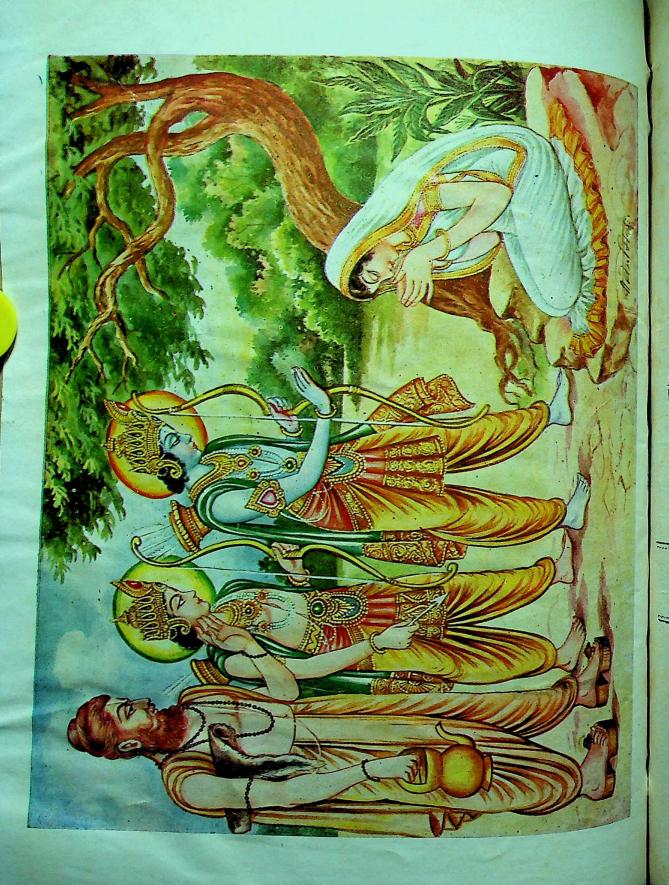
100

वर्षा

विषय पृष्ठ-संख्या विषय १४ अनु २०१९, अगस्त १	९६२
The state of the s	A COLUMN TO SERVICE AND ADDRESS OF THE PARTY
। १-अहल्यापर कृपा । कावता । (गास्वामा । ११-त्वास्थ्य-प्राप्तिक सात्त्विक उपाम / ৯	संख्या
नलमीटामजी—गीतावली) १०८९ श्रीशिवानन्दजी शर्मा, एम० ए०)	225
े व्याप्त / किया । १९ वर्ग दात्रा आर सुलाहा हम सहा ध्या	
र्कल्याण (पश्च) (१९७) रक्लें (श्रीअगरचन्द्रजी नाहरा) · · · । १३-विनय (हरितन) (१९००)	११६
३-परमात्माः जीवात्मा आर विश्व (मूल १३-विनय [कविता] (श्रीवालिकशनजी गर्ग)	
श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी १४–उत्तराखण्डकी यात्रा (सेठ श्रीगोविन्द-	११८
महाराज, गोराशीनम्बर, परी: अनुसारक- दासजी, श्रीमती रवक्रमारी देवी, श्री-	
षं ० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि) १०९१ गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव) *** १	११९
४-महामानव [कविता] (श्रीगणेशप्रसाद-	
जी 'मदनेश') · · · १०९५ वी० एड्) · · १०९५ १६ – इन्द्रियनिग्रहकी समस्या (श्रीगौरीशंकरजी	१२५
र्-तवा (महात्मा श्राचातारामदास आकार-	2 210
नायजा सहाराज) १०१६ । १७० हों। शहानामें सन् नामोनाम	,,,
६-मधुर ११०० साहित्य (पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा) १	१२९
७-संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करें (डा॰ १८-भयंकर हिंसा-उद्योग! "१	१३२
श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, १९-साधनाकी सिद्धि (श्रीविश्वेश्वरनारायणजी) १	१३५
पी-एच्॰ डी॰) ••• ११०१ २०-गीतावलीमें भक्ति-तत्त्व (श्रीपरमलालजी	
८-अमृतका पुत्र [कहानी] (श्री चक्र) ११०५ गुप्त) र ९-श्रीगदाधर भट्टकी भक्ति-भावना (श्रीक० २१-विरहातरा राधाके प्रति एक अन्तरङ	१३७
11 11/2/3/1 1/11/2 2/11/2	8×8
गोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत) · · · ११०८ सखीके उद्गार [कविता] · · · १ १०-विरहिणी [कविता] (श्रीमुंशीरामजी २२-हमारे देवालय और आश्रम (श्रीओंकार-	
शर्मा 'सोम' एम्० ए०, पी-एच्० डी०, मळजी सराफ) ःः १	१४२
	१४५
-10001-	
चित्र-सूची	
(स्वायन)	०८९
२–अहल्यापर कृपा (तिरंगा)	

बार्षिक सूल्य भारतमें ६० ७.५० विदेशमें ६०१०.०० (१५ शिल्मि)

जय पावक रिव चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय।। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अविठात्मन् जय जय।। जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमागते।। साधारण प्रव भारतमें ,१५ विदेशमें ,५। (१० देंस)



🕉 पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनि समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०१९, अगस्त १९६२

संख्या ८ पूर्ण संख्या ४२९

अहल्यापर कृपा

भूरि भाग-भाजनु भई।

रूपरासि अवलोकि बंधु दोड प्रेम सुरंग रई॥
कहा कहें, केहि भाँति सराहें, नहि करत्ति नई।
विनु कारन करुनाकर रधुबर केहि केहि गति न दई॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूर्रात मंगल-मोदमई।
नुलसी है बिसोक पित-लोकहि प्रभु-गुन गनत गई॥
—गोखामी तुलसीदासजी—गीतावली

いるべんべんべんべん

कल्याण

याद रक्खो—भोगोंमें सुखं वैसे ही नहीं है जैसे पानीमें घी नहीं है, बाद्धमें तेल नहीं है, मृगतृष्णाके मैदानमें जल नहीं है और अग्निमें शीतलता नहीं है । अतः जो कोई भी भोगोंसे सुखकी आशा रखता है उसे सदा निराश ही रहना पड़ता है । तथापि मनुष्य मोहमें पड़कर भोगोंमें सुखकी सम्भावना मानकर उनके अर्जन तथा सेवनमें लगा रहता है और फलख़रूप नित्य नये-नये रूपोंमें दुःखोंसे—तापोंसे जलता रहता है ।

याद रक्खो—भोगकी वासना मनुष्यके विवेकका हरण कर लेती है, इसिलिये वह अपने मले-बुरे भविष्य-को भूलकर किसी भी साधनसे,—चाहे वह सर्वथा निषिद्ध तथा समस्त मङ्गलोंका नाश करनेवाला ही क्यों न हो—इच्छित भोग प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है और इसके परिणामखरूप बीचमें ही नयी विपत्तियोंसे घिर जाता है तथा उनसे बचनेके लिये फिर-फिर नये नये कष्टसाध्य कुकृत्य करने लगता है। इससे विपत्तियोंका, पापोंका और तापोंका ताँता कभी दूटता ही नहीं।

याद रक्खो—भोगवासनावाले मनुष्यको कभी कुछ इच्छित भोग मिल जाता है तो उसका लोभ और भी बढ़ जाता है, साथ ही वह सफलताके गर्वमें फूलकर सबका तिरस्कार करने लगता है। लोभ और गर्व— दोनों ही उसको पुन: बुरे-बुरे कमोंमें लगाकर पतनकी और ले जाते हैं।

याद रक्खो—भोगवासनावाला मनुष्य सदा चिन्ता-प्रस्त रहता है। इच्छित भोग प्राप्त न होनेपर तो चिन्ता उसे रहती ही है। प्राप्त होनेपर उसकी चिन्ता और भी बढ़ जाती है; क्योंकि ज्यों-ज्यों उसकी भोगकामना पूरी होती है, त्यों-ही-त्यों वह कामनाकी आग—अग्निमें घीकी आहुति पड़नेपर अग्निके अधिक भड़क उठनेकी तरह—और भी भड़क उठती है, इसीके साथ उसकी चिन्ताकी आग भी बढ़ती है, जिससे उसकी भीतरी जलन और भी बढ़ जाती है। वह खुद उससे सदा जला करता है और अपने स्मे रहनेवालोंको भी देेष, द्रोह, क्रोध, वैर, हिंसा कामनाके साथ-साथ पनपते और बढ़ते रहते हैं, के क्रा जलाया करता है।

याद रक्खों—अग्नि जितनी वड़ी होती है, अने ही उसकी गरमी दूर-दूरतक जाती है। इसी प्रका कामनाकी अग्नि जितनी वढ़ी हुई होती है, उतनी है अधिक वह अपनेको तथा अपने सम्पर्कमें अनेको पार्श्ववर्तियोंको जलाती है। इतना ही नहीं, कुछ मे सम्बन्ध न रखनेवालोंको भी कभी-कभी उससे बड़ा संता मिलता है।

河区

स्रोंकि उ

कुछ नह

अतः अ

वर्तव्य य

बाँध दें

अनुकूल

है। उ

भी अशा

भी शा

भिन्नता व

द्वारण ब

रीते हुए

ग्राण ह

वीजोंको

व्हों हैं

ल्पसे आ

स्रोंकि ज

भाथ वह

अपनी :

अत्यधिक

भ्री आव

जीवनका

भिन्नार, इ

(0)

सेवानिवृ

याद रक्खो--यह कामनाकी अग्नि विषयौंकी गाः से नहीं बुझती, इसे बुझानेके लिये तो वैरायखं धूळ और भगवरप्रेमरूपी अजस्र अमृत-जळधारा चहिये। वह वैराग्य तभी प्राप्त होगा, जब भोगोंमें दुःखें दर्शन होंगे। भोग सुखरहित, दु:खालय और दु:ख्यों ही हैं, पर भ्रमवश-मोहवश उनमें सुखनी माला हो रही है और जैसे शरावके नशेमें चूर मनुष्य गर नालेमें पड़ा हुआ भी अपनेको सुखी बतलाता है, बेरे ही उसे भोगोंमें सुखोंकी मिथ्या अनुभूति होती है। शराबीका जैसे वह प्रलाप होता है, वैसे ही उसका मै प्रठाप होता है । इस मोह-मदके नाराके लिये आवसक है—भोगोंके नम्रखरूपके दर्शन, जो भगवकुगरे संतोंकी वाणीद्वारा कराये जाते हैं । भोगोंका पार्थ खरूप दीखनेपर तो उनसे वैराग्य हुए विना रहेगा है नहीं । तभी असली सुखखरूप भगवान्की ओर वित्री गति होगी। अतएव संतोंका सङ्ग प्राप्त करनेकी चेष्रा करो।

याद रक्खो—सत्संग न मिलनेशर दूसरा शर्म है मोहभंगका—जो सहज ही देर-सबेर प्राप्त होता है है—वह है भयानक दुःखोंका आक्रमण । भगवित मङ्गलविधानसे प्रकृति स्वयं यह कार्य करती है । होनेपर चेत हो जाता है, ऑखें खुल जाती हैं और मनुष्य भगवान्की ओर लगनेका प्रयास करता है।

परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

(मूल अंग्रेजी लेखक— র০ जगद्रुरु अनन्तश्री श्रीशंकराचार्य श्रीगारतीक्षणतीर्थजी महाराज, गोवर्थनमठ, पुरी)
[अनुवादक——पं० श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि]

[अङ्क ६, पृष्ठ ९६८ से आगे]

हमारे दुःखोंका कारण

南

के हा

उत्ती

प्रका

नी ही

आनेवाले

रूछ भी

ा संता

न्नारि

ग्यरूपी

ाहिये।

दु:खोंके

खयोनि

मान्यता

गन्दे

है।

का भी

विश्वर्भ

ल्यासे

य्याय

गा ही

चेत्रभी

ते।

सधित

ता ही

वार्क

यह कारणका विवेचन हमारी प्रकृति या खरूप तथा द्रुव्यर प्रकाश डालनेके साथ-साथ हमारे अंदर होनेवाले क्षां एवं उनकी चिकित्साओंपर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है, ब्रांक अद्भैत वेदान्त हमें यह बताता है कि यह संसार ख्यमं कुछ नहीं है; अपित जो कुछ हम बनाते हैं, वही संसार है। आः आत्माका स्वरूप और मनको समझ लेनेके बाद हमारा क्रिय यह है कि हम मनको अनुशासित करें, उसके पंखोंको क्षे हैं, ताकि वह उड़ने न पाये तथा उसको आत्माके अनुश वना दें। कहा भी है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

भन ही मनुष्यके बन्धन तथा बन्धनसे मुक्तिका कारण है। उदाहरणके लिये—एक राजा धनोंमें लोटता हुआ ^{भी अशान्त} रह सकता है और एक गरीव धनके न होनेपर मी शान्ति, संतोष और आनन्द पा सकता है। पर इस म्त्रिताया असमानताका कारण क्या है ? निश्चय ही इसका ग्रिण बाह्य पदार्थ नहीं हो सकते; क्योंकि एक आदमी गरीव हेते हुए भी प्रसन्न रहता है। यदि वाह्य पदार्थ ही प्रसन्नताके ग्रण हों, तो हम यह क्यों देखते हैं कि दूसरा आदमी भवान होते हुए भी दुखी है ? आजकी मनोवृत्ति अनावस्यक विश्वाकर निर्यात करना है और इस मनोवृत्तिके लोग क्ते हैं कि निर्यात माँगको बढ़ाता है। इस प्रकार वे कृत्रिम क्से आवस्यकताको बढ़ावा दे रहे हैं। पर यह ठीक नहीं; क्षिज्ञ कोई अपनी इच्छाओंको बढ़ा लेता है, तो उसके भियवह अपनी प्रसन्नताको भी कम कर लेता है। पर हम भनी आवश्यकताओंको बढ़ाते जा रहे हैं। फलतः हम भेविधिक दुखी भी होते चले जा रहे हैं। इस प्रकार जीवन-भै आवश्यकताओं के प्रति हमारे मानसिक विचार तथा हमारे भीनका स्तर ही हमारी इन आपत्तियोंका कारण है। इसी भार, इसका क्या कारण है कि एक आदमी, जो कभी केवल भित्मासपर गुजारा करता थाः अब १०००) तथा भानिवृत्त (Retirement) होनेके बाद ५००) मिलनेपर गुजारा नहीं कर सकता और हमेशा दुखी रहता है। यह इसी कारण है कि उसका मन जीवन के ऊँचे स्तर (आडम्बरमरे रहस-सहन) का आदी हो गया और वह हमेशा उस मनुष्यको वैसा ही रहने के लिये मजबूर किया करता है। हमारी आवश्यकताएँ जितनी ही कम होंगी, उतनी ही अधिक प्रसन्नता हमें मिल सकेगी। यदि हम सादा जीवन और उच्च विचारको अपना लें, तो हम बहुत सुखी हो सकेंगे। जब किसी चीजकी आशा की जाय और वह प्राप्त न हो तो स्वभावतः ही मनमें निराशा वैदा हो जाती है और वह दु:खका कारण होती है। पर यदि हम लाभकी आशा करते हुए हानि भी सहनेको तैयार रहें तो हमें किसी प्रकारका दु:ख न हो और न निराशा हो। ये सब उदाहरण हमारे मनःप्रभावके निदर्शक हैं, जो हमारे सुख एवं दु:खके उत्तरदायी हैं।

अथवा, कल्पना कीजिये कि एक आदमी मद्रासमें रहता है और उसका लड़का जो बम्बईमें रहकर ५००) प्रतिमास कमाता है, मर जाता है, पर उसके मरनेका समाचार अभी उसके पिताको नहीं पहुँचा। तबतक उसका पिता अपने पुत्र-के उत्तम स्वास्थ्यके बारेमें सोचता-सोचता बहुत खुश रहता है, पर मृत्युके समाचारके पहुँचते ही दुली हो जाता है। अथवा यों कल्पना कीजिये कि अखबारमें निकलता है कि अमुक व्यक्ति मर गया, पर यह अखबारकी सूचना गलत हो, वह व्यक्ति जीवित हो, फिर भी उस व्यक्तिका पिता अवस्थ दुखी होगा; क्योंकि यह भावना उसके अंदर घर कर चुकी है कि उसका पुत्र मर गया। अतः पिताके सुख या दुःखका कारण पुत्रका जिंदा रहना या मरना नहीं है, अपितु उसकी अपनी ही भावनाएँ हैं।

अथवा यदि कोई आदमी किसी दूसरेको गाली दे, तो उसका मुँह दर्द कर सकता है, पर उस दूसरे आदमीके कान तो (गालियोंको सुननेके कारण) कभी भी दर्द नहीं कर सकते, फिर भी वह दुखी हो जाता है। क्यों ? इस दशमें उसका दुःख किसी शारीरिक दोषके कारण नहीं है अपित मानसिक विचार हैं, जो उसका ध्यान उन गालियोंके अथौंपर

मंख्या

अर्थात

अर्थात्

ही सर

अर्थात्

गया है-

उसको

उसे हैं

कॉटेद्वा कहकर

बॉटेको

एक दु

है।इस

विषको

दोनों :

जीवन-

ध्य ३

वेह हा

है जो

नहीं है,

होगी,

पड़ेगा

काँटों के

समाप्त

मिश्री

क्राना

खींच ले जाते हैं। इसी प्रकार जब दो व्यक्ति तुमसे दूर . खड़े होकर आपसमें बात कर रहे हों और तुम यद्यपि उनकी वात क्या, उनके एक शब्दको भी न सुन सकनेके कारण यह संदेह अथवा कल्पना कर लेते हो कि वे दोनों तुम्हारे विरुद्ध ही कुछ बात कर रहे हैं और तुम दुखी हो जाते हो। यहाँ-पर भी तुम्हारे दुःखका कारण उनकी बातें न होकर तुम्हारे अपने ही मनके विचार हैं। वस्तुतः यह तुम्हारा अपना ही दोपपूर्ण मन है, जो तुम्हें कायर और दुखी बनाता है। इसी प्रकार जब एक चोर देखता है कि एक पुलिसका आदमी उसके पीछे-पीछे आ रहा है, (चाहे उस पुलिसका उस चोर-पर संदेह न भी हो) तो झट इस निष्कर्षपर पहुँच जाता है कि वह उसे गिरफ्तार करने आ रहा है। तब वह या तो उस पुलिसपर ही आक्रमण कर देता है, नहीं तो, भागनेकी कोशिश करता है, जिससे पुलिसके आदमीको संदेह हो जाता है और वह चोरको पकड़ लेता है। यह भी एक उदाहरण दोषयुक्त मनका है जो सबको कायर बनाता है। ये सभी बातें हमारे अपने अंदरसे ही उत्पन्न होती हैं, अतः इन सबके लिये मन ही उत्तरदायी है।

वास्तविक चिकित्सा

दूसरी तरफ, यदि हम यह जान लें कि आत्माका स्वरूप और उसका लक्ष्य क्या है तो हम अनुभव करेंगे कि दैवी आनन्द हमारे अंदर ही है तथा निदिध्यासनका मार्ग जान-कर उस तक पहुँचनेकी कोशिश करें (जिस प्रकार एक वाण अपने लक्ष्यको वेधकर उसके साथ एक हो जाता है) तो असीम आनन्द हमें अभी और यहीं प्राप्त हो सकता है। पर यदि हम हमेशा दुःखोंके बारेमें ही सोचा करेंगे तो हम उन्हें च्यादा अनुभव करेंगे; क्योंकि भ्रमर-कीट-न्यायके अनुसार यह एक प्राकृतिक नियम है कि जिस बातका हम सतत विचार करते रहेंगे, हम उसीको हरदम अनुभव करेंगे और वहीं हो जायँगे । यह प्रयोगात्मक मनोविज्ञान है, आधुनिक डॉक्टर रोगीके कमरेमें इसीका प्रयोग करते हैं तथा हिप्नोटिन्म और मेस्मरिच्मका रहस्य भी यही है । प्राचीन पौराणिक कथाओं में इस यह पाते हैं कि हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कुम्मकर्ण और कंस आदिने अपनी मृत्युके समय प्रभुको प्रत्यक्ष देखा । पर इसका कारण क्या है ? यही कि वे (अपइयंस्तन्मयं जगत्) हमेशा दिन-रात परमात्माका विचार करते थे। यद्यपि उनका यह ध्यान भक्ति या प्रेमके कारण नहीं, अपित

घृणा अथवा डरके कारण ही था, फिर भी उनके मनमें श्रेषा ध्यान सदा रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंमें प्रभुके दर्शन किये। उन्होंने प्रभुके दर्शन उसी रूपमें किये जिस रूपमें कि वे उन्हों ध्यान करते थे। मक्त लोग तो उसका ध्यान भगवान, जि अथवा गुरुके रूपमें करते हैं और उसका दर्शन भी वे उने रूपमें करते हैं, पर वे जो उसका ध्यान अपने शक्के रूपमें करते हैं, अन्तमें उसी रूपमें अर्थात् वैरीके रूपमें ही प्रभुव दर्शन भी करते हैं।

ग्रीष्मकी दोपहरीके सूर्य-प्रकाशको तुम अपनी आँखें वर करके इन्कार कर सकते हो। यह कह सकते हो कि धूप या स्ं-प्रकाश है ही नहीं; पर जब अंदरसे प्रकाश होता है तो उस्ते आन्तर और बाह्य सभी पदार्थ प्रकाशित हो जाते हैं; श्लोंके उस दशामें मन ही सब कुछ कार्य करता है। अतः अपने मनपर नियन्त्रण करो, उसे लक्ष्यपर लगा दो और त तुम निश्चयसे उद्देश्यतक पहुँच जाओगे तथा पूर्ण सफला प्राप्त करोगे।

हमारा सच्चा और वास्तविक उद्देश्य क्या और कहाँ है! बैंबा कि पहले ही बताया जा चुका है कि परमात्माके साथ एक होना ही उद्देश्य है। वह सर्वव्यापी है, अतः हमारे अंदर भी है। तब हमारा यह शरीर क्या है ! यह आत्माका एक बाह आच्छादनमात्र है । अतः यदि हम इस तथको बार्व (अपने भ्रमको मिटाकर शरीर, इन्द्रिय तथा मनकी दासती मुक्त हों) तथा आत्माके दैवी स्वभावका साक्षात्कार कों तो सफलता निश्चित है। इस प्रकार हमारा उद्देश्य ऊँचा है पर उस तक पहुँचनेका मार्ग सरल। इसकी अपेक्षा और कैंवे उद्देश्य और सरल मार्गकी कल्पना नहीं हो सकती।

कुछ प्रश्न

यहाँपर यह प्रश्न हो सकता है कि ठीक है, यदि हम परमात्मा हैं अर्थात् सचिदानन्द-स्वरूप हैं तथा यदि मृत्रु अज्ञानता, दुःख आदि बाह्य कारणोंसे पैदा होनेके काण अज्ञानता, दुःख आदि बाह्य कारणोंसे पैदा होनेके काण उपलक्षणमात्र हैं, तो हम आनन्द-प्राप्तिके लिये प्रयत्न की उपलक्षणमात्र हैं, तो हम आनन्द-प्राप्तिके लिये प्रयत्न की करें ? क्या अज्ञानता और अप्रसन्नता, गरम पानीकी उण्णाक समान, अपने आप क्रमशः कम होते हुए अन्तमें विद्कृष्ट समान, अपने आप क्रमशः कम होते हुए अन्तमें विद्कृष्ट समाप्त नहीं हो जायँगी? हमारा उत्तर यहाँयह है, ठीक है। प्रमान वैसे ही छोड़ दिये जानेपर थोड़े समय बाद अपने आप

1

र्भवा

उन्होंने

उन्होंने

उसका

१ पिता

हें स्वान

प्रभुक्त

लें वंद

या सूर्व-

उसमे

क्योंकि

अतः

र तव

उपल्ता

१ जैसा

ह होना

है।

वाह्य

ो जान

सतासे

र कों

चा है।

हम

मृख्

कारण

मों

गतार्ग

ट्रेल

अभ

हंडा हो जायगा, पर हमने यह कभी नहीं कहा कि चृत्हे या अप्रेपर चढ़े रहनेके बावज्द भी वह ठंडा हो जायगा। उस अप्रेपर चढ़े रहनेके बावज्द भी वह ठंडा हो जायगा। उस हालामें तो वह और न्यादा ही गरम होगा। इसी प्रकार वि जीवनमें दु:खदायी तत्त्वोंको प्रोत्साहन मिलता रहेगा, अर्थात् अज्ञान और दुष्कमोंका सिलसिला जारी रहेगा, तो वह और दुःख कैसे नष्ट होंगे और अपने स्वरूपभूत लक्षण अर्थात् आनन्दतक कैसे पहुँचा जा सकेगा।

यहाँ यह भी शंका हो सकती है कि जब केवल परमात्मा है सस्य है और शेष सब मिथ्या है तो हम दो मिथ्याओं अर्थात् पुण्य-पापमें मेद करके प्रथमका पालन तथा दूसरेका मा क्यों करें ? इसका उत्तर संस्कृतके इस सुभाषितमें दिया गाहै—

कण्टकं कण्टकेनैव गरेण च यथा गरम्।

क्लाना करो कि तुम्हारे पैरमें काँटा गड़ जाय और तुम उसको निकालना चाहो तो तुम उस समय क्या करोगे ? अरे कैसे निकालोगे ? उस समय तुम उसे एक दूसरे काँदेद्वारा ही निकाल सकोगे, पर क्या उस समय तुम यह ब्ह्मर कि दोनों ही काँटे हैं अतः दोनों ही बुरे हैं, हाथके गरेंको फेंक दोगे ? ठीक है कि दोनों ही कॉटे हैं पर उनमें एक दुःखदायक है और दूसरा दुःख हटाकर मुख देनेवाला है। इसी प्रकार एक डाक्टर भी मनुष्यके शरीरमें रहनेवाले विषको नष्ट करनेके लिये दूसरा विष देता है। हैं रोनों यद्यपि विष ही, पर दोनोंमें भेद है। पहला जीवन-गशक है, दूसरा जीवन-रक्षक है। उसी प्रकार ण और पुण्य निस्संदेह मिध्या हैं, पर प्रथम मिध्याका ^{ब्रह्म} हैं जो दुःखदायी है और दूसरा मिथ्याका वह रूप है नो मुखदायी है। यदि तुम्हें दुःखके प्रति कोई आपत्ति वहीं है, तो तुम्हारे मनमें पापके प्रति भी कोई आपत्ति नहीं हों।, पर यदि तुम मुख चाहते हो, तो तुम्हें पुण्य करना ही पहेगा और जिस प्रकार पैरमें कॉटा निकालनेके बाद दोनों केंदोंको दूर फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार पुण्यका कार्य माप्त हो जानेपर दोनों (पाप-पुण्य) से परे हो जाना महिये। शास्त्रकी आज्ञा है—

उभे पुण्यपापे विध्य

अर्थात् पुण्य और पाप दोनोंसे परे हो जाय। अब एक और राङ्का उत्पन्न होती है कि यदि कोई पाप लिए विस्कुल बंद कर दे, अथवा यों कहिये कि बर्तनको चूल्हेपरसे उतार दे तो क्या पानी स्वतः ही ठंडा नहीं हो जायगा ? यदि हो जायगा अथवा पाप नहीं करेगा, तो केवल उतना ही कहना कि प्पाप न करो? क्या पर्याप्त नहीं है ? फिर ईशसाक्षात्मारके लिये अवण, मनन, निर्दिध्यासनके द्वारा आत्मस्वरूप जानकर उसकी परमात्माके साथ एकताका ज्ञान करना इन सबकी क्या जरूरत है ? इसका उत्तर दो तरहसे दिया जा सकता है।

१-यह ठीक है कि आगपरसे पानीको उतार दिये जाने-पर वह ठंडा अवस्य हो जायगा; पर वह ठंडा होनेमें कितना समय लेगा, यह तुम्हारी इच्छापर निर्भर न होकर उसके टेम्परेचरपर निर्भर है। पर यदि तुम बहुत प्यासे हो और देरतक प्रतीक्षा नहीं कर सकते, तुम्हें उसे ठंडा करनेके लिये स्वयं कोशिश करनी पड़ेगी, अर्थात् उसे एक वर्त्तनसे दूसरे वर्त्तनमें डालना पड़ेगा, नहीं तो, उसे वर्फमें रखना पड़ेगा । जिससे कि पानी जल्दी ठंडा हो जाय । उसी प्रकार यहाँ भी, हमने अपने इस जन्ममें तथा पिछले जन्मोंमें बहुत-से पाप किये हैं, इसिलये स्वभावतः ही हमें उनके फल भोगने पड़ेंगे । यदि हम आगे और पाप न करते हुए उतने समयतक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर सकते हैं, जवतक कि सारे पाप स्वयं समाप्त न हो जायँ तो कोई आपत्ति नहीं । पर यह असम्भव ही है। हम शीघ-से-शीघ इन पापोंसे छुटकारा पाना चाहते हैं । यदि तुम दुःख अथवा कष्टका अनुभव नहीं करते हो, तो उसका इलाज करके दु:खसे छुटकारा पानेके लिये कोई कुछ न कहेगा। पर यदि दुःख हैं और उनका अनुभव भी तुम करते हो तो उससे छूटनेका इलाज भी आवश्यक ही है। अलङ्काररूपसे यदि दर्पणमें तुम्हारा चेहरा भद्दा न दीखता हो तो तुम्हें अपनी आँखें बंद करनेकी कोई जरूरत नहीं है। पर यदि तुम्हारा चेहरा भद्दा दीखता है और तुम उसे देखना नहीं चाहते तो तुम्हें अपनी आँखें बंद करनी ही पड़ेंगी। उसी प्रकार यहाँ भी यदि तुम्हें कोई दुःख नहीं है और तुम सर्वदा स्वर्गीय आनन्दमें रहते हो, तो समझो कि तुमने अपना उद्देश्य प्राप्त कर लिया है और अपनी मंजिलतक पहुँच गये हो, फिर तुम्हें श्रवण आदिकी भी कोई ज़रूरत नहीं है। पर यदि तुम दुखी हो और उस दुःखसे तुम छूटना चाहते हो तो, जिस प्रकार पानीको शीम ठंडा करनेके लिये वर्फ आदिकी सहायता लेनी पड़ती है, उसी प्रकार तुम्हें श्रवण, मनन आदिकी सहायता लेनी पड़ेगी तथा पापसे छूटकर मोक्षकी ओर बढ़ना पड़ेगा।

A.C.

酥

जीव

য়াচ

आद

काबृ

वलात

EH

नहीं

होनेव

आदत

आदत

यही

स्पी

निरन्त

पैले

सफल

को स

उच्च

२-गरम पानीके वर्तनके नीचेसे आग हटा देनेसे क्या तात्पर्य सिद्ध होता है ? इसका उत्तर तो यह पता लगानेके बाद ही भिल सकेगा कि उस दशामें अग्नि पदका क्या अर्थ है ? शास्त्रका कथन है-

अविद्याकां मकर्मि भर्जन्म

-- और हमारा अनुभव भी हमें यही वताता है कि तीन पदार्थ हैं जो हमें वन्धनमें डाल देते हैं और हमारे जन्मके लिये जिम्मेदार हैं, जिस जन्ममें हम अपनी आत्माको भूल जाते हैं। वे कारण हैं—(१) अपने अनन्त स्वरूपके प्रति अज्ञानता, (२) सांसारिक पदार्थोंकी इच्छाएँ और (३) वे मूर्खतापूर्ण कर्म जिन्हें हम अपनी इच्छा या वासनापुर्त्तिके लिये करते हैं। अज्ञानताके कारण हमारे अंदर इच्छाएँ पैदा होती हैं, इच्छाओंके कारण हम कर्म करते हैं और उन कर्मोंके फल भोगनेके लिये हमें विभिन्न शरीरोंमें जन्म लेना पड़ता है । तब हम अपने इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा सांसारिक विषयोंके दास वन बैठते हैं। अतः जनतक वन्धन-के मूल कारण अज्ञानताको विनष्ट न किया जाय तबतक बन्धन भी विनष्ट नहीं हो सकते । दूसरे शब्दोंमें, वह अग्नि, जिसे हम आत्म-साक्षात्काररूपी पानीके नीचेसे हटाना चाहते हैं, अविद्या है और जबतक श्रवण-मननादिद्वारा अज्ञानरूपी अग्निको हटा नहीं देते, तवतक ठंडा जल प्राप्त नहीं कर सकतं । यह इस वातको दिखानेके लिये पर्याप्त है कि अवण, मननादि साधनोंकी क्या जरूरत है।

गतिविधि

जीवात्माके दैवी आनन्दको छोड़कर इस अज्ञान और दुः खकी स्थितिमें पहुँचनेकी तथा फिर अपने स्वरूपकी ओर जानेकी गतिविधियोंका वर्णन वैदान्तिक शास्त्रोंमें बड़ी ही सुरुचिपूर्ण रीतिसे किया गया है। इसका वर्णन सौर मासके बारह महीनोंके नामोंके आधारपर भी किया गया है। उसका संक्षेप इस प्रकार है—

१—चेत्र—यह शब्द उस आत्माकी विचित्रताका वर्णन करता है तथा परमात्माके उस संकल्पका परिचायक है, जिसके द्वारा वह ब्रह्म स्वयंको बहुत रूपोंमें प्रकट करता है।

२-वैशाख—इसका अर्थ है शालाओंको फैलाना, अर्थात् ब्रह्म अपने प्रकाशन (Manifestation) की शालाओंका विस्तार करता है। ३-ज्येष्ठ—इसका अर्थ है बड़ा। तथा बहुत्वके काल होनेवाले परिणामोंका द्योतक है। जैसा कि श्रुतिका क्ष्म है—'द्वितीयाद्वें भयं भवति' (अन्यके होनेसे डर रहता है) अर्थात् मनुष्योंमें अधिकार, सुविधा, श्रेष्ठता तथा वहण्य प्राप्त करनेके लिये झगड़ा होता है।

४-आपाद — का अर्थ है चारों ओर होनेवाले अस्त्र दु:ख । यह वताता है कि उन झगड़ोंसे किस प्रकार अस्त्र दु:ख पैदा होते हैं । जब मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जा है, तो वह आश्चर्य करता है कि वह इतना दुखी क्योंहै! और वह इस दु:खके कारणको द्वँदनेका प्रयास करता है।

५-श्रावण—का अर्थ है गुरुसे शिक्षा ग्रहण करना।
और वह मनुष्य दुखी होनेपर उससे छुटकारा पानेके लि
पदार्थों के पीछे छिपे हुए सत्य-तत्त्वको हूँ ढ़नेका प्रवास करता है और उसकी शिक्षा लेनेके लिये वह गुरुके पाउ जाता है।

६-भाद्रपद का अर्थ है आनन्द अथवा प्रसन्ता (भद्र) की (पद्र) स्थिति (अथवा वह ज्ञान, जो हमें ज़ स्थितितक पहुँचाता है) और यह उस उद्देश्यकी व्याला करता है, जिसको पानेके लिये साधन-प्रयत्न करता है।

७-आश्विन--यह शब्द संस्कृत व्याकरण अश् धातुसे बना है, जिसका अर्थ है व्याप्ति और संवात । यह पर यह बताता है कि परमात्मा सब जगह व्याप्त है और हमारे शरीरमें भी है। वह हमें निर्देश करता है कि हम उन सर्वव्यापी तथा शरीरस्थ आत्माका साक्षात्कार करें। तब हमारा शरीर क्या है ? इसका उत्तर अगलेमें है।

८-कार्तिक--इस पदका अर्थ है, चमड़ा (अवि बाहरी आवरण)। यह पद ऊपरके प्रश्नका उत्तर देता है कि यह शरीर उस अविनाशी आत्माका (कार्तिक) बाहरी आवरण है। अगला प्रश्न है, शरीर और आत्माके सम्बन्धिं। कि हम इन दोनोंमें किसकी खोज करें। उत्तर है-

९-मार्गर्शार्ष--अर्थात् जो शीर्षस्थानीय हो, मुख हो, उसकी (मार्ग) खोज करनी चाहिये। अर्थात् बी सवसे (शीर्ष) मुख्य परमात्मा है, उसीकी (मार्ग) खोब करनी चाहिये।

अवतक हमने अवण और मननपर विचार किया। हमने जो कुछ भी अभीतक सीखा, वह वेदान्तके हुए। ग ३६

कारण

ता है।

वङ्णन

असह्य

असह

जाता

यों है !

10

इ.स्ना ।

के लिये

हे पास

सन्नताः में इस

याखा

'अश्'

ह पर

हमारे

म उस

। तव

अथग ता है बहरी

न्ध्रमें,

मुख

र् जी

खोंग

ह्या ।

अन्हीं तरह निश्चित किया गया है। पर यह हमें स्वस्थ क्रातिके लिये पर्याप्त नहीं हैं; क्योंकि कई जन्म-जन्मान्तरों-कि की गयी संसारकी उपासनाकी वासना (संस्कार) हमारे बीवनको बदलने नहीं देती। यह वासना, जिसे दारीर-_{शास्त्रज्ञ} संवेदनात्मक प्रतिक्रिया तथा साधारण मनुष्य अहतके नामसे पुकारते हैं, कई तरहके कष्ट देती है। वह वासना केवल उत्तम विचारोंके निरन्तर ध्यानसे ही शब्में लायी जा सकती है। कभी-कभी हम इन आदतोंके द्वारा बलत कुमार्गपर ले जाये जाते हैं, उस समय हमें चाहिये कि हम विचारपूर्वक कुमार्गसे पृथक् होकर उत्तम मार्गको अपनायें। उत्तम और नैतिकतापूर्ण आदतें हमें कभी दुःख या कष्ट नहीं देतीं, जब कि अविद्या अथवा कुसंगतिके कारण उत्पन्न होतेबाळी बुरी आदतें हमें सदा कष्ट देती हैं। इन बुरी अदतोंको हटानेका एकमात्र मार्ग यही है कि हम बुरी आरतोंको नष्ट करते हुए अच्छी आदतोंको अपनाते जायँ। वही निदिध्यासन है, जिसे दूसरे शब्दोंमें सतत धाराप्रवाह-ली ज्ञान भी कह सकते हैं; क्योंकि उच्च विचारोंका निरत्तर ध्यान ही हमारे मस्तिष्क एवं हृदयके हर कोनेमें फैंहे और चिपटे हुए अज्ञान एवं कुविचारोंको हटानेमें क्षल हो सकता है। इस प्रकार ये तीनों स्तर पूर्ण होते हैं—

१-अवण--इसके द्वारा हम विद्वानोंके मुखसे ज्ञानकी वृतं सुनते हैं।

२-मनन—इसमें हम अपने सारे संदेहों एवं कठिनाइयों-को समाप्त कर देते हैं।

र-निदिध्यासन—इसमें हम अवतक सीखे हुए उच्च विचारोंको अपने जीवनमें ढालते हैं तथा अपने दैनिक जीवनको उन्हों उच्च विचारोंके अनुरूप मोड़ते हैं। अव---

१०-पौप—का अर्थ है (पुप्-पोपणे) 'निरन्तर पुष्ट करना'। उच्च विचारोंको अपने अंदर पुष्ट करना। जब कोई इस स्थितिपर पहुँच जाता है, तो और क्या करनेकी जरूरत रह जाती है? पर जबतक वह जीवित है, उसे कोई-न-कोई काम अबस्य करना पड़ेगा, उस स्थितिमें वह क्या करेगा और क्या न करेगा? इसका उत्तर अगला पद देता है—

११-माध-अर्थात् वह (अव) पाप (मा) नहीं करेगा। जो कोई जीवात्मा और परमात्माकी एकताका साक्षात्कार कर छेता है, वह पाप कभी नहीं कर सकता। वह सदा हानि-छाभ एवं स्वार्थसे परे होकर पुण्य एवं सत्कर्म ही करेगा। और—

१२-फाल्**गुन**—अर्थात् वह कभी नीच काम नहीं करेगा । इस प्रकार अन्तमें हम ऐसी स्थितिमें पहुँचते हैं—

'उमे पुण्यपापे विध्य' जहाँ हम अपने स्वार्थके लिये न कोई पाप ही करते हैं और न पुण्य ही; क्योंकि प्रत्येक काम, जो फलप्राप्तिकी दृष्टिसे किया जायगा, नीच ही होगाऔर प्रत्येक काम जो निष्कामबुद्धि, कर्तव्यबुद्धि अथवा ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किया जायगा, उत्तम होगा। इस प्रकार जैसे-जैसे हम आध्यात्मिक सीदीपर चढ़ते जायँगे, वैसे-वैसे ऊँची-ऊँची स्थितिपर पहुँचते जायँगे और आखिरी स्थितिपर पहुँचनेके वाद निष्काम कर्मके सिवा और कोई कर्म नहीं रहता। यही कारण है कि वारहवें मास फाल्गुनके वाद चक समाप्त हो जाता है और तेरहवें मासकी आवश्यकता नहीं रहती। (आगामी अंकमें समाप्य)

महामानव

はんでんなんなんでん

'मदनेश' वे ही नरलोकमें महान् महाकष्ट सह पीड़ितोंके कष्ट हर लेते हैं।
समतासे, प्रकृत सरसतासे, साधुतासे,
हँसमुख हँस हँस वश कर लेते हैं॥
टलते न टालते निकालते जो मुँहसे हैं,
पालते हैं संतत उसे जो धर लेते हैं।
सर्वस्व देते पर लेते कुछ भी हैं नहीं,
बदलेमें केवल सुयश भर लेते हैं॥
—गणेशप्रसाद 'मदनेश'

いなべんべんべんべん

संवा

(लेखक-महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

सीताराम ! भोजन नहीं, सेवा; सेवा--श्रीभगवान्-के शरीरकी सेवा।

न मेऽस्ति बन्धुर्न च मेऽस्ति शत्रु-र्न भूतवर्गों न जनो मदन्यः। शरीरभेदै-त्वं वाहमन्यच हरे: शरीरम्॥ विभिन्नमीशस्य (विष्णुरहस्य)

मेरा बन्धु नहीं है, मेरा शत्रु नहीं है, जीवसमूह नहीं है, मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है; तुम, मैं और अन्य जो कुछ भी—सब भगवान् श्रीहरिके विभिन्न शरीर हैं।

यान्यमूर्तानि मूर्तानि यान्यत्रान्यत्र वा कचित्। सन्ति वै वस्तुजातानि तानि सर्वाणि तद्वपुः॥ (विष्णुप्राण १।२२।८६)

निराकार या साकार यहाँ वा अन्य कहीं, जो कुछ भी वस्तुसमूह है, सभी श्रीवासुदेवका शरीर है। तुम्हारा देह है भगवान्का शरीर और तुम हो उनके अंश।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता १५।७)

इस जगत्के जीव मेरे सनातन अंश हैं। अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ (गीतां ७।५)

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार मेरी अपरा प्रकृति है; यह निकृष्ट है । इससे उत्कृष्ट मेरी जीवस्वरूपा परा प्रकृति है। उसने जगतको धारण कर रक्खा है। जीत्र उसका अंश है, उसकी प्रकृति है।

श्रीभगवान्ने उद्भवसे कहा है— एकस्येव ममां शस्य जीवस्यैव महामते। बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः॥ (श्रीमद्भा० ११ | ११ | १

हे महामते ! मेरा अंशस्वरूप अद्वितीय यह आहे जीव अविद्याके द्वारा वन्ध और विद्याके द्वारा मोक्षको प्रा हुआ करता है।

अविद्या क्या है ?

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीतिता। मैं देह हूँ--इस बुद्धिका नाम अविद्या है। स अविद्याके प्रभावसे ही तुम देहको 'मैं' समझ रहे हो-यह 'अहं' और मम-

मम माता मम पिता ममेयं गृहिणी गृहम्। एतद्न्यं ममत्वं यत् स मोह इति कीर्तितः॥

मेरी माता, मेरा पिता, मेरी यह घरवाली, मेरा म —इन सबमें और अन्यान्य वस्तुओंमें जो ममल है उसीका नाम मोह है। इस अहं-ममने ही संसासी रचना की है।

तुम अपने नित्यं शुद्ध सनातन ज्योतिर्मय ख्रह्म अविद्यावरा भूलकर श्रीभगवान्की देहको में समझ्ब अपनेको खो रहे हो । तुम तो उनके हो; सागरमें ता की तरह, चन्द्रमामें किरणके तुल्य और सूर्यमें रिक सदश तुम उनके साथ सदा एकीभूत हो, तब भी हैं अपनेको भूलकर भगवान्की देहको छीनकर इस देखे मैं कहकर इसकी सुख-खच्छन्दताके लिये पागलकी ता भटक रहे हो । तुम उन्हींको भोजन करवा रहे हैं। वे खा रहे हैं । तुम अविद्याके वश होका अंडेमु मछछी—इन सब जीवोंकी हत्या करके उदर पूर्ण कर्ण CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

31

प्रवेश प्राणि प्रका

होम होम-

यदि लहस्

किर प्राणि

इसी

हते की 3

जस्त

है, उ किया

भाग पशुक

असंय मन ३

हो ज

मते।

तरः॥

1818

इ अनारि

तको प्राप्त

तेता।

है। इस

हो-

हम्।

तः॥

मेरा ध

मत्व है।

संसारकी

वरूपका

समझका

में तरह

棚

भी तुम

र देहको

नी तह

रहे ही

हेमुर्गे.

र्न करते

समान

अर्थम नहीं है। एक अविद्याके कारण तुम कौन हो यह भूछ गये हो । फिर अखाद्य-कुखाद्य चीजोको रसनाके सुबके हिये खा रहे हो । श्रीभगवान् कहते हैं---अहं वैश्वातरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः। चत्रविधम्॥

प्राणापानसमायुक्तः पचास्यननं (गीता १५। १४)

में वैश्वानर---जठराग्निरूपसे प्राणियोंके शरीरोंमें क्रेश करके उनके उदीपक प्राण-अपान-वायुके साथ क्रीयोंके खाये हुए— मक्ष्य, भोज्य, लेख, चोष्य—चारों प्रमारके अन्नको पचाता हूँ । अग्निमें यदि उत्तम घृतद्वारा होंग किया जाय तो उस होमके धुएँकी सुगन्ध मनुष्यके क्ष-मनको पवित्र करती है । केवल मनुष्य ही नहीं, उस होम-धूम-गन्धसे स्थावर-जङ्गम सभी पवित्र होते हैं, परंतु गद्दे उस अग्निमें मुर्गी, मछली, मांस, अंडे, प्याज, ह्मुन जलाये जाते हैं तो उसकी दुर्गन्धसे वहाँ टिकना किन हो जाता है, शरीर अस्वस्थ होता है, चराचर प्राणिमात्रके देह-मनको वह दुर्गन्य दूषित कर देती है। सी प्रकार भगवान् जठराम्नि बनकर देहमें विराजमान ह्रते हैं, उसमें मांस, मछली, मुर्गी, अंडे, प्याज, लहसुन-भी आहुति देनेपर उन्हें उन दृष्ट अपवित्र दुर्गन्वयुक्त जिल्लामोगुण बढ़ानेवाले विषाक्त आहारोंको पचाना पड़ता है उसीके द्वारा समान वायु समस्त शरीरका पोषण किया करती है, अतएव वह विष सारे शरीरमें फैळ जता है, देहके सारे उपादान विषाक्त हो जाते हैं।

जो द्रव्य खाया जाता है, उसके तीन भाग होते हैं। 🦏 भाग मल-मूत्रके रूपमें वाहर निकल जाता है, एक भाग देह बनता है और एक भाग मन । बकरे आदि क्षित्र मांस खानेपर इन्द्रियाँ पशुकी इन्द्रियकी तरह भेर्पेयत विषयप्रवण और कामाकुळ हो जाती हैं। भा भी उन्हींके सुरमें सुर मिला देता है। मनुष्य उन्मत हो जाता है और वीर्यध्ययको रोक नहीं सकता । शरीर-भी सार धातु है — त्रीर्य । त्रीर्य ही आत्मा है । उस

आत्माका हनन न करना अखाद्य भोजन करनेवाठोंके लिये प्रायः कठिन हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर भाँति-भाँतिक रोगोंसे प्रस्त होकर अन्तःसारश्रन्य और मन विषयोन्मत्त हो जाता है । यथेच्छ राजस-तामस आहारसे मनुष्यत्व नष्ट होता है, जीवनके वास्तविक उद्देश्यकी विस्मृति हो जाती है। तामसी आहार तो सभी तरहसे हानिकर होता है। संयभी पुरुष राजसी आहार करके वलवान् हो सकता है। सांसारिक विषयोंमं उसकी बुद्धिका तीक्ष्ण होना भी असम्भव नहीं है, उसके द्वारा भौतिक सुखैश्वर्य बहानेवाले पदार्थोंका आविष्कार भी हो सकता है: परंतु उसके छिये अध्यात्मका द्वार तो बंद हो जाता है । राजस-तामस भोजन करनेवाला यदि भगवानका नाम लेता है तो वह भगवत्प्रेमके लिये नहीं लेता । उसमें छिपी कामना रहती है-सांसारिक सुख, धार्मिक प्रसिद्धि और यश प्राप्त करनेकी ही। प्रेमी कभी हिंसा'नहीं कर सकता। मनुष्य ईश्वर-दशनके लिये आता है, यह बात राजस-तामस मोजन करनेवालेके मनमें भूळसे भी नहीं आती । वह देह नहीं है-आत्मा है-यह समझनेकी उसकी शक्ति नहीं रह जाती।

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विश्वेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥ (इवेताश्वतरोपनिपद् ५ । ९)

केशके एक अग्रभागको सौ भागोंमें बाँटकर फिर उस प्रत्येक भागके सौ भाग करनेपर जो एक भाग होता है, जीव उसीके समान अणु परिमाणवाला है, जीव अनन्त हैं।

देहेन्द्रियमनःप्राणधीभ्योऽन्योऽनन्यसाधनः नित्यव्यापी प्रतिक्षेत्र आत्मभिन्नः स्वतः सुस्त्री ॥ (आत्मसिद्धि—मगवान् यामुनाचार्य)

देह-इन्द्रिय-मन-प्राण-बुद्धि आदिसे अन्य अनन्यसाधन भगवदास, नित्यन्यापी प्रतिक्षेत्रमें भिन्न स्वतः सुखी आत्मा है । आत्मा चिद्घन है--

2-

HE

सभी

अधी

লা

TE

अंद

अनाह

नेता

ज्योति

ब्रह

प्राप

इसीसे

नामम

चेतन

ओंका

गतं

ब्रह

नाइ

भीतर

नहिम

तदेतत् सत्यं यथा सुदीप्तात् पायकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रद्याः प्रभवन्ति सहपाः । तथाभ्रराद् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र वैदापियन्ति ॥

वह यह अक्षर ही परम सत्य है, जैसे सुदीत अग्निसे उसीके समरूप सहस्र-सहस्र स्कुलिंग निकलते हैं, हे प्रिय ! वैसे ही पुरुषोत्तम अक्षर ओंकारसे नाना प्रकारके जीव उत्पन्न होते हैं और अन्तमें उसी परम कारणमें ही विलीन हो जाते हैं।

केतल एकमात्र आहारके दोषसे ही मनुष्य अपनेको खो देता है— भगवान्की देहको अपनी देह बताकर उसे छीनकर अखाद्य-कुखाद्यके द्वारा शरीरको पृष्ट करके पशुकी भाँति जगत्में रहता है—

आहारराज्ञौ सन्बद्यक्तिः सन्बद्युद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिप्रतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥ (छान्दोग्योपनिषद् ७ । २६ । २)

आहारशुद्धिसे सत्त्वशुद्धि होती है, सत्त्वशुद्धि होनेपर अचला स्मृति होती है । स्मृति होनेपर ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र---इन तीन प्रन्थियोंसे छुटकारा मिल जाता है । प्राणात्मा महाकाशमें पहुँच जाता है । इन्द्रियोंके द्वारा जो विषयोंका प्रहण होता है उसका नाम आहार है। पहले सात्त्रिक आहारके द्वारा मन तथा शरीर शुद्ध होकर देहका उपादान बद्छ जाता है। तत्र इन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, मन्य-- इन पाँचों ही विषयोंको श्रीभंगवान्के रूपमें ग्रहण करने लगती हैं। जब यथेन्छ विषयभोगके कारण रोग, शोक, पाप, ताप, अशान्तिके मारे जीव हाहाकार करने लगता है, तत्र श्रीभगत्रान् ही गुरुरूपमें आकर उससे कहते हैं—'अरे, रो मत । तू कितना भी पतित क्यों न हो, तेरे लिये उपाय है । त् भगवान्का नाम ले, तुझे भगवान्की प्राप्ति हो सकेगी । तुझे आत्मस्बरूपकी उपलब्धिके लिये अलग चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी। नाम लेते हुए सात्त्रिक आहार करनेपर जब शरीरका उपादान बदल जायगा, तब उनका संधान मिलेगा, तू उनके स्मीव परम सुन्दर उपोतिर्मय रूपके दर्शन कर सकेगा, उनके सुमधुर वंशीका गान सुनकार धन्य होगा।

गुरुदेवके आदेशानुसार वह पथश्रष्ट रोगशोक आत्र यन्त्रणासे व्याकुल मनुष्य भगवान्का नाम लेका भगवाने जीवन उत्सर्ग कर देता है । वह प्रात:कालमें लेक श्यनके समयतक जो कुछ भी लेकिक-वैदिक की करता है, सब भगवान्की सेवाके भावसे करता है। सबेरे उठकर नित्यक्रिया और स्नान, संध्या, पूजा, जा जो कुछ भी करना है—-श्रीमगवान्की सेवाके माने करना आरम्भ कर देता है। रसना निरन्तर नाम-रससे रिक्त रहती है । षहले-पहले इसमें आनन्द नहीं आता। बो उयों शपका क्षय होता है, त्यों-ही-त्यों आनन्द क्ला रहता है । श्रीभगवान्के प्रसाद-अन्नके द्वारा उन्हीं शरीर केहनी सेवा होती है । वह पवित्र प्रसाद-अत बनाकर वैश्वानररूपी भगवान्के भोग लगाता है। उसे अमृतमय रसरक्त आदि जो कुछ भी बनता है, उसने द्वारा समान वायु समस्त शरीरका पोषण करती है। **रारीर पोचणादिकं समानकर्म—(** शाण्डिस्योपनिष्त्)

सतत नामकीर्तन और उस पवित्र प्रसारकों भोजनसे कुछ दिनों में शरीरका उपादान बदल जाता है— शरीर शुद्ध हो जाता है, इसके फलस्बरूप आसा जा उठता है, तब अपने-आप ही भीतर कितने प्रकार्व मधुमय नाद स्वतः ही उठने लगते हैं। कितनी और बनकर आत्मा खेल करता है।

आक्ष्मा तो अन्य कुछ भी नहीं है—आ^{ला है} ओंकार है, आत्मा ही प्राण है । अज्ञानसे ही ^{ग्रह} आत्मा-ओंकार अधोसुखी रहता है ।

प्रणवः सर्वदा तिष्ठेत् सर्वजीवेषु भोगतः। अभिरामस्तु सर्वासु ह्यवस्थासु ह्यवेसुरः। (योगचूडामणि-उपितसः) ग ३६

रमणीय

उनकी

-ज्यात्र-

वत्सेवां

लेवा

क क्ष

ता है।

जा, जा

ं भावसे से रिस्त

। जो

बढ़ता

उन्होंने

नाद-अन

। उससं

, उसने

है।

मिपद्)

मादान्त

ना है-

मा जा

प्रकारिक री ज्योति

ात्मा ही

司軍

ातः।

वः॥

पनिषर्

प्रणव रमणीय होनेपर समस्त प्राणियोंमें भोगके समय _{सभी अवस्थाओं}में अर्थात् जाम्रत्-खप्न-सुवुक्षिमें सदा अयोमुख रहता है।

ब्रानिनाम् धर्चगो भ्रयादहाने स्यादधोम्खः। एवं हि प्रणबस्तिष्ठेद् यस्तं चेद् स चेद्वित्॥ अनाहतस्वरूपेण ज्ञानिनाम्ध्रमो जानी ऊर्घ्यगत होते हैं, अज्ञानसे अधोमुख रहा जाता है; इस प्रकार प्रणव स्थित है । जो उसको जानते हैं, वे ही कार्य बेदज्ञ हैं। पापन्ता क्षय होनेपर अज्ञानके नाशसे अमहतस्वरूपमें प्रणव ज्ञानियोंके लिये ऊर्ध्वगमनकारी होता है। तब प्रणवकी निम्नगतिका अवसान हो जाता है---व्यंतिर्भय प्रणव ऊपर उठता रहता है ।

ब्रह्मादिस्थावरान्तान्तं सर्वेवां प्राणिनां खलु। प्राणः प्रणव एवायं तस्मात् प्रणव ईरितः॥ (शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता)

ब्रह्मादि स्थावरपर्यन्त सभी प्राणियोंका प्राण प्रणव है। सीसे उसका नांम प्रणव है । ओंकारमें 'म'कार पाद नामभय है। परानाद ही भगत्रान् हैं, वे ही सब भूतोंके चेतन हैं, वे ही शब्द ब्रह्म हैं।

चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मेति मे सतिः। (शारद)

सभी प्राणियोंके चैतन्य ही शब्दब्रहा हैं, वे ही र्भेकार हैं, वे ही समष्टिमें आत्मा और व्यष्टिमें जीव हैं। गतो द्या चीजनासेष प्राणिष्वेच व्यवस्थितः। ^{ब्रह्माण्डं} यस्तमेतेन व्याप्तं स्थावरजङ्गमम्॥ ^{नदः} प्राणाश्च जीवश्च घोपश्चेत्यादि कथ्यते । (प्रपञ्चसार)

^{बह} ओंकार ही सबका बीज है—समस्त प्राणियोंके भीतर स्थित है। इसीके द्वारा ब्रह्माण्ड ग्रस्त है; स्थावर-म्हम सम्बो समान्छन्न करके विराजमान नाद प्राण, जीव,

घोष आदि नामोंसे कहा जाता है । शरीर--मगत्रनाम और सात्त्विक आहारके द्वारा शुद्ध होनेपर मीतर निरन्तर वहुत प्रकारके अनन्त नाद् ध्वनित होते रहते हैं । ऋगसे मेघ, झरना आदि नाद और विविच ज्योतियोंका आविर्माव होता है, जिससे—'यह देह आत्मा नहीं है, मैं देहसे अतीत नित्य-शुद्द-बुद्ध आत्मा हूँ —यह प्रत्यक्ष हो जाता है। मन रात-दिन आनन्द्से भरा रहता है; आत्मज्ञानीके िरुये आनन्दके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहता । श्रीभगवान् उसकी इष्टमूर्ति धारण करके दर्शन देते हैं, वर देते हैं। सगुण मन्त्र इष्टके अङ्गमें लय हो जाता है—रह जाता है नाद्मय ओंकार । वह शान्त अजर अमृत अमय हो जाता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचित न काङ्कृति। समः सर्वेषु भृतेषु मङ्गिकं लगते पराम्॥ (गीता १८। ५४)

श्रीभगवान्ने कहा है -वह ब्रह्मको प्राप्त प्रसन्निचत्त पुरुष शोक नहीं करता, कुछ भी आकाङ्क्षा नहीं करता। समस्त भूतोंमं समान होकर मेरी प्राभक्ति प्राप्त करता है। फिर वे अपने साथ मिला लेते हैं। तत्र समुद्रमें तरंगमें, सूर्यमें रिनमें और चन्द्रमामें किरणमें कोई भेद नहीं रह जाता।

नदी समुद्रमें मिलनेके लिये दौड़ती है, परंतु वाद्धना बाँध उसके मार्गको रोक देता है । वह नीख हदन करने लगती है । उसका ऋन्दन सुनकार समुद्र स्थिर नहीं रह सकता । वह पूर्णिमाके दिन वढ़कर नदीको आत्मसात् कर लेता है-अपनेमें मिला लेता है । हमारे ठाकुरने कहा है-

जिसके तेरे नामपर झरते पदपंकज-युगपर सदा उसका अधिकार ॥ ही

मधुर

सिचेदानन्द्धन परात्पर प्रभु बालगोपालरूप श्याम-सुन्दरको निहत करनेके कांसके सारे प्रयास निष्फल हो गने, तब दृष्ट असुर-मन्त्रियोंकी सम्मतिके अनुसार धनुर्यज्ञका बहाना रचकर कुबलयापीड हाथी और मुष्टिक-चाणूरादि पहल्यानोंके द्वारा श्रीकृष्णको निहत करानेकी बुरी नीयतसे श्रीकृष्ण और बलरामको लिवा लानेके लिये कांसने अकूरजीको नन्दब्रज भेजा।

अक्रूरजी मक्त थे, वे मगवचरण-दर्शनकी विशुद्र खाळसा लेकर नाना प्रकारके मङ्गलमय मनोरथ करते हुए मथुरासे चले और नन्दगोकुलके समीप पहुँचकर स्थामसुन्दरके चरणचिह्नोंको देखते ही रथसे सहसा क्दकर प्रेमभावावेशमें धूलमें लोट गये। उन्हें कैसा और कितना विलक्षण आनन्द मिला, इसे वे ही जानते हैं।

तद्दनन्तर त्रजमें वे नन्द्यावा-यशोदाप्तैयासे मिले। उन्हें कंसका संदेश सुनाया। श्रीराम तथा श्रीकृष्णको मथुरा भेजनेकी वात पक्की हो गयी। श्रीराम-श्याम मथुरा जा रहे हैं, कव लौटों गे यह पता नहीं—इस ममाचारसे भारा नन्दत्रज व्याकुल हो उठा। विभिन्न भावोंसे स्नेड करनेवाले सभी वर्गीमें करुणारस फूट पड़ा। चारों और हाहाकार मच गया।

वात्सल्यरसपूर्ण यर्गोदामैया और नन्द्वावा तथा उनके समवयस्क गोप-गोपी और भगवान्के वाल-सखाओंकी दशा अत्यन्त करुणोत्पादक हो गयी । प्रेमरसनयी श्रीगोपियोंको दशाका तो संकेतसे भी वर्णन नहीं किया जा सकता और इनमें राधाकी स्थिति सबसे अधिक गम्भीर थी !

उन्होंने जब सुना कि उनके जीवनधन स्थामसुन्दर दाऊजीको सङ्ग लेकर अकूरके साथ मथुरा जा रहे हैं तो उनके सारे मन-तनमें भीषण ज्यात्र मुख्य शेर विपाद का गया, उनके समस्त परम शोभामय अङ्ग प्रस्पङ्ग शिक्ष हो गये । हृदयका सारा रस जल गया। दोनों आँखें सूख गयीं और फल में पड़नी के हो गयीं । जीवनमें घना अंधकार का गया। (श्रीरावर्ष ऐसी दशा सुन-समझकर) उनके प्रियतम श्रीश्यामसुल उनके समीप उन्हें समझाने आये । कुल कहना चाहतेथे, पर बोल ही नहीं सके, राधाकी अत्यन्त आर्त दश देखकर उनके मनमें भी अधार विधादका उदय हो आया। वे जड पाषाणवत् हो गये, मानो सारी चेतन ही विलुप्त हो गयी हो । दोनों प्रिया-प्रियतम माने विरहकी भयानक आगसे जलने लगे । उन्हें न संसार्षी सुधि रही, न अपने जीवनकी !

मानव

双 3

मबसे

वड़ी स

पाना :

ह

हम उ

कमी न

सामध्य

To.

यदि ह

क्यों र्व

हे

न शार्र

जा सब

भी अन्य

租前

भीतर है

जा नि

H

स्थान

शा य

संकेत ह

i

जिसमें सुर-मुनियोंकी भी गति नहीं है, ऐसे इस दिव्य प्रेमरसकी महिमा कौन कह सकता है !

मधुपुरी गवन करत जीवनधन।

लै दाउए संग सुफलक-सुत,

सुनि जिर उठी ज्वाल सब मन-तन॥

मई विकल, छायौ विषाद सुख,

सिधिल भये सब अंग सु-सोभन।

उर-रस जरवी, रहे सूखे हैं

हग अपलक, तम व्यापि गयो वन॥

लगे आय समुझावन प्रियतम,

पै न सके, प्रगच्चो, विषाद सन।

वानी स्की, प्रिया लिख आस्त,

थिर तन भयौ, मनो बिनु चैतन॥

बिरहानल विय-प्यारी,

कौन कहैं महिमा या रतिकी,

जरन लगे, बिसरे जग-जीवन।

गति न जहाँ पावत सुर-मुनिजन॥

संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करें

(लेखक-डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

आरसे पूछा जाय कि 'क्या आप इस संसार और मत्य-जीवनकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं ? _{अप} पूर्छेंगे, 'वतलाइये वह क्या है **?** हम और सब छोड़-ग्र उसे अयस्य ही प्राप्त करना चाहेंगे।'

हमारे पास जो भी घन है । उसे देकर हम संसारकी मासे अच्छी वस्तु प्राप्त करना चाहेंगे । अपनी छोटी-की सब सम्पनि वेचकर हम विश्वकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु ही णा चाहेंगे । हम साधारणसे कमी संतृष्ट न होंगे ।

हमारे पास दो हाथोंकी शक्ति है, यदि उनके द्वारा इम उस श्रेष्ट वस्तुको प्राप्त कर सकते हैं, तो इसमें कोई क्मी नहीं रक्खेंगे । अपनी पूरी शारीरिक शक्ति और मार्ग्य लगाकर उसके लिये प्रयत्न करेंगे ।

हमारेपास कियाशींल मस्तिष्क है । उसकी सहायतासे गर्दे हम विश्वकी इस श्रेष्ठतम वस्तुको पा सकते हैं तो मों पीछे रहेंगे ।

लेकिन निश्चय जानिये, वह बहुमूल्य वस्तु न धनसे, ^{न शरीरिक} शक्तिसे, न किसी बाहरी ताकतसे ही जीती ^ब सकती है। ईश्वरकी कितनी बड़ी कुपा है कि संसार-भीअन्य दुर्लम वस्तुओं - जैसे जल, वायु इत्यादि - की तरह ^{१ह भी} हम सबके लिये सर्वसुलभ है । मानबीय पहुँचके कि है। केवल उसके लिये सच्ची चाह एवं सतत ^{शैर} निरन्तर अभ्यासमात्रकी ही आवश्यकता है ।

मंसारकी सर्वश्रेष्ट वस्तु वड़ी दिव्य और अदृश्य हैं। अपने हम सभीको जह बहुम्ल्य मशीन दी है, जिसके ^{शा यह} वस्तु उत्पन्न की जा सकती है ।

अथर्ववेदमें इस महाज्ञाक्ति—इस सर्वश्रेष्ठ वस्तुका कित इन शब्दोंमें कर दिया गया है।

खं नो मेधे प्रथमा। (अथर्व०६।१०८।१)

सद्विचार ही संसारमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु है

विचार उत्पन्न करनेका यन्त्र हमारा अपना मस्तिष्क है । हमारा वह मस्तिष्क हमारी रुचि, संगति, मनोवृत्ति, बुद्धि और आचार-विहारके अनुसार भिन्त-भिन्न प्रकारके अच्छे-बुरे (जैसे हम चाहें) विचार पैदा करता है।

मस्तिष्कको सही दिशामें चलायें तो अच्छे खास्य प्रदान करनेवाले प्रेरक विचार पैदा होते हैं, किंतु यदि उसीको गलत दिशामं मोड़ दें तो उससे रोग, चिन्ता, उद्देग और क्रोध इत्यादि मनोविकार उत्पन्न हो जायँगे ।

सद्विचार — आशा, उत्साह, पौरुष, धर्य, त्याग, प्रेम, आनन्द और उन्नतिके विचार एक महान् उत्पादक शक्ति हैं। जो विचार मनुष्यको नयी-नयी प्रेरणा, नयी दिशा, जिन्दगीकी नयी आशा दे, उसे सही मार्गमें बढायें, वही मानवकी बहुमूल्य सम्पत्ति है।

विचार-यन्त्र मनुष्यशरीरका सबसे कीनती भाग है। आप पागळखानेमें जाकर देखिये । आपको भारी भरकम. मजबूत, खुबसूरत तरह-तरहके जवान निलेंगे । उनका तन आपको खुब स्वस्थ दिखायी देगा। वे कुरती लड़ें, तो अच्छों अच्छोंको जमीनपर पटक मारें। पर खस्थ तनमें सदा स्वस्थ मन रहेगा ही, यह आवस्यक नहीं । उन पागलोंको बाहरसे देखकर नहीं कहा जा मकता कि वे वास्तवमें पागल हैं या नहीं । पर तीखी दृष्टिसे देखने और कुछ देर साथ रहनेपर आप पायेंगे कि उनका मस्तिष्क ठीक खस्य विचार पैदा नहीं कर रहा है। उनकी रुचि विकृत हो गयी है। वे समाजके लिये खतरनाक सिद्ध हो गये हैं। उनमें कुछ-न-कुछ मानसिक विक्षेप अवस्य है । उनका मानसिक संतुलन गड़बड़ हो गया है । साधन और साध्य, उचित और अनुचित, जरूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भड़क निपार श्यित गया।

द हो क्षिण में नसुन्द्रा

हते थे, दश

य हो चेतना

पारकी

ऐसे

HE

317

मान

सवा

羽艺

व्यर्थ

और

विचा

यन्त्रव

वारिक

पूर्वक

1

ष्टए

करो

वैठी

कहते

वढ़ार्त

और

आश्

और बिना जरूरी; सौन कार्य पहले करें, सौन बादमें करें, इसका विवेक; कहाँ जोर डालें, कहाँ कम महत्त्व दें, इन सबमें सही संतुलन न होना ही मानसिक विकृति है। कभी भय, कभी उत्तेजना, कभी लोभ, कभी अहंकार, क्रोध, चिन्ता इत्यादि किसी भी मनोविकारका आधिक्य मनमें एक प्रकारकी गाँठ-सी उत्पन्न कर देता है। यही विचार-यन्त्रका गलत प्रयोग है। मनोविकारों के उच्लृह्खल और अनियन्त्रित हो जानेसे ही माँति-माँतिके मनके रोग पैदा होते हैं।

मानस रोग असंख्य हैं । बहुक्ष्पी हैं । नाना स्तरके हैं। किसीको उप्र हैं, तो किसीमें कुछ न्यून। कोई निराशामें रो रहा है, कोई काल्पनिक भय देखकर मरा जा रहा है। किसीको अपने मातहतों, परिवारके सदस्यों या देशके नेताओंपर क्रोध आ रहा है । कोई बार-बार अपने शरीरको धो-धोकर आन्तरिक एकत्रित गन्दगीसे पीछा छुड़ाने जा रहा है। किसीकी मानसिक विकृतिने उसमें विशेष प्रकारकी शारीरिक अङ्ग-भंगिमा पैदा कर दी है। कुछ व्यक्ति बार-बार रूमालसे अपना मुँह पोंछते हैं, कुछ गुप्त अङ्गको खुजलाते हैं, नाकमें हाथ डालते हैं; कुछ बनाव-शृंगार टोपीको खास तरीकेसे सजाते हैं, शीशेके आगे घंटों खड़े रहकर अपना रूप निहारते हैं, छैल-छवीले वने रहते हैं, उचक-उचक कर औरतोंको देखते हैं। यह सत्र मनमें वर्षोंसे इकड़े, बचपनसे चले आते क्विचारोंका विष है। ऐसे असंख्य मानस रोगी आपको दैनिक जीवनमें मिल जायँगे । ये विचार-यन्त्र अर्थात् अपने मस्तिष्कके गलत उपयोगके दुष्परिणाम हैं। गन्दे विश्वास, वासनाएँ, चिन्ताएँ अन्तर्मनमें जमकर मानस-रोग उत्पन्न करते हैं।

विचार-यन्त्रको आन्तरिक संघर्षोंके थपेड़ोंसे वचानेकी अतीव आवश्यकता है। मनमें विकार अधिक दिनोंतक ठहराकर हम जीवनभरके लिये मनोरोगोंको न्योता देते हैं। मनका गलत उपयोग आजन्म कर्षीमें फ्रेंसानेगल होता है।

ऐसे व्यक्ति भाग्यशाली हैं जो विचार-यन्त्रको छं दिशाओं में चलाकर जीवनको सत् प्रेरणाओं, उन्न योजनाओं और स्वास्थ्यसे भर लेते हैं तया छिन प्रकारकी दृषित स्नान्तियों-या अंधविश्वासों में नहीं फुँसी

राक्षस कहीं और नहीं, इस दुनियामें ही होते हैं। जो व्यक्ति मानसिक गन्दगीसे भरा हुआ है और उसीबे दैनिक जीवनमें उभार रहा है, वह राक्षस ही है—बहें उसका शरीर मनुष्यका ही क्यों न हो। विचारयन्त्रे उलटी दिशामें घुमा देनेसे मनुष्यकी भ्रान्तियाँ, गल मान्यताएँ और अन्तर्मनकी जिटल प्रन्थियाँ उभर उन्ने हैं। उसका राक्षसी स्वरूप ऊपर आ जाता है। अब हमारे समाजमें तो अधिकांश व्यक्ति भ्रमित, चिना और उद्विग्न हैं, नाना प्रकारकी मानसिक परेशनियों आक्रान्त रहते हैं, झाड़-फ़ुँक जादू-टोने, जन्तरभा कराया करते हैं, उससे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि अपने मस्तिष्कको राक्षसी दिशामें विकसित कर रहे हैं। जिस य॰त्रसे वे देवत्वको जाग्रत् कर सकते हैं, उसीबे गलत दिशामें घुमाकर अपने निन्द्य घृणित स्वरूपको अग्वत स्वरूपको पढ़ हुए हैं।

सही रूपमें प्रयुक्त मस्तिष्कका फल सद्विचार है। गलत रूपमें प्रयुक्त मस्तिष्कका कुफल विषेत्रे विचार औ कुकल्पनाएँ हैं । हमेशा किसी भयको प्रत्यक्ष देखा अपना तिरस्कार करना, जरा-सी असफलतासे निराश औ हतोत्साह हो जाना, झींकना, उत्तेजित हो उठना, छोटी वातपर बिगड़ उठना, भावनामें बहुत अधिक वह जाना आवेशमें आकर जली-कटी सुनाने लगना विचार-शिक्त अर्थिय है। हर प्रकारसे घातक और त्याच्य है। मिं दुरुपयोग है । हर प्रकारसे घातक और त्याच्य है। मिं विकार प्रत्यक्ष नरक-तुल्य है । कुविचार मनुष्यको जीते वि

विह गा

सानेवाल

को मंडी

, उत्तम

बिर्म

फॅसते।

होते हैं।

उसीनो

— चाहे

(-यन्त्रवो

, गल

नर उठनी

। आव

चिन्तित

शानियोंसे

त्तर-मन्तर

किवे

हिंहैं।

उसीको

ते जा

गा है।

बार औ

देखना,

शि औ

छोटी सी

जागा

शक्तिवा

। मनी

जीते जी

मस्मी अग्निमं ढकेल देते हैं। वह सारे दिन अंदर-ही-अंदर जल करता है। कुविचारी सबको अपना शत्रु भत बैठता है, या अपनेको सबसे कमजोर मानकर दुबका सुख्याया-शर्माया रहता है। अपने लिये पोच विचार एख दु:खमं डूबा रहता है। रोग, शोक, चिन्ता, व्याधि, बहुता, ग्लानि, निर्बलता, शक्तिहीनताके विचार मनुष्यके भरी शत्रु हैं। सही दिशामें चलनेवाला सबसे बड़ा शत्रु!

संसारके मनुष्यों ! आपका मस्तिष्क ईश्वरकी बड़ी के है । वह आपको सही दिशामें उत्पादन-सृजनात्मक भय विचार उत्पन्न करनेके लिये दी गयी हैं । अपने अपको अन्तर्द्वन्द्वों, द्विविधापूर्ण परिस्थितियों, संदेहों तथा वर्षके वितर्कोमें मत डालिये । आपके मस्तिष्कसे खस्थ और आशाबादी विचार ही उत्पन्न होने चाहिये । प्रत्येक वितरसे आत्मविश्वास पैदा होना चाहिये ।

यहाँ हम कुछ विचार-बीज दे रहे हैं। ये विचारयन्त्रको सही दिशाओं में घुमाने की रीतियाँ हैं। जैसे रम्य
बिद्याओं में घुमाने की रीतियाँ हैं। जैसे रम्य
बिद्याओं हम बीज बोते हैं और माँति-माँति के बृक्ष और
पुष्प पंदा होते हैं, वैसे ही इन विचारों पर मनको दृद्धापूर्वक एकाप्र करने से विचार-यन्त्र उन्हीं दिशाओं में चलता
है। बाइबिलमें लिखा है, 'माँगो और तुम्हों मिलेगा।
प्रत्याओं और द्वार तुम्हारे लिये ख़ुल जायँ गे। तलाश
करों और तुम पा लोगे।' ये सब वाक्य हमारे अन्तरमें
वैधी हुई उस दैवी शक्तिके सूचक हैं, जिसे अन्तरात्मा
कहते हैं और जो हमें सदा ऊँचा उठाती है और आगे
विवारी है।

कुछ दिव्य प्रेरक विचार-बीज

मनमें कहिये, में सदा आशा, विश्वास, उत्साह और स्थिरवृद्धि रखता हूँ । में अपनी उन्नतिकी अशा, अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियोंके प्रति पूर्ण विश्वास और अपने ळक्ष्यके प्रति उत्साहकी पूँजी लेकर जीवनमें प्रविष्ट हुआ हूँ । अपने उदेश्यमें मेरी बुद्धि पूर्ण-रूपसे स्थिर है ।

जिसका अपनी शक्तियोंमें विश्वास होता है, पृथ्वीपर उसके लिये कौन-सी वस्तु साध्य नहीं है ? आत्मा ही सब शक्तियों और उच्चतम गुणोंका अपने-आपमें एक उत्पत्ति-स्थल है । मैं अपने आत्माको अपना दिव्यक्ष्प समझता हूँ । मुझमें ईश्वर मेरे आत्माका रूप धारणकर विराज्मान हैं । मेरे मन, वचन, कमेंकि माध्यमसे ईश्वर ही प्रकट हो रहे हैं ।

जिसका आत्मामें विश्वास नहीं होता, जो उसकी आज्ञाको नहीं सुनता, उसका चित्त सदा संशयसे उद्भान्त बना रहता है और वह सर्वत्र भ्रान्ति-ही-भ्रान्तिको पाता है । मैं यह जानकर सदा सही दिशामें ही चळता हूँ । खस्थ और उत्तम विचार ही मनमें रखता हूँ ।

यस्य तसिम्न विश्वासस्तदाज्ञां न श्रृणोति यः। संशयोद्भ्रान्तचित्तः स भ्रान्तिमेवाधिगच्छति॥

—विद्याधरनीतिरत्नम्

अर्थात् थककर भी यदि कोई अपने साहस और उत्साहको न छोड़े, तो दुर्गम अरण्यमें भ्रान्त होकर भी वह अपने मार्गको अवश्यमेव पा जाता है।

मैं कठिन स्थितियोंमें भी अपने साहस और उत्साह-को सम्हाले रहता हूँ । अतः मैं अपने सही मार्गपर चलता रहूँगा ।

अनन्ते के वयं श्रुद्रा नैवं चिन्त्यं कदाचन। कणस्य पर्वतस्यापि स्थितिस्तस्मिन् यतः समा॥

—विद्याधरनीतिरत्नम्

अर्थात् इस अनन्त ब्रह्माण्डमें हम क्षुद्रोंकी क्या पूछ है—ऐसा मैं कभी नहीं विचारता हूँ । विश्वमें कण और पर्वत दोनोंकी एक समान स्थिति है । इन दोनोंको विकासका समान अवसर मिळता है । मैं चाहे कण

服 服

हैं;

वह

विज्ञ

शीघ्र

लेका

यूरोप

दिन

वास्त

नायुय

भी इ

30

जीवन

स्ते

冊

रसते

विख्

हूँ तो भी विकसित हो सकता हूँ। मुझे कभी भी किसी भी दशामें निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। बूँद-बूँदसे सागर बनता है। इसी नियमके अनुसार शक्तिका कण-कण एकत्रित कर मैं महानताकी और बढ़ रहा हूँ।

निर्धन और निर्वल होकर भी मानव सदा ही महान् विभ्तियोंसे भरा हुआ है । मानवको देवता बनना चाहिये। महानता प्राप्त करना उसकी अन्तिम गति है। मैंने अपने इस जीवनमें महानताकी सिद्धिको ही अपना छक्ष्य चुना है।

किं धनं किं वलं लोके का वा राजादिसत्किया। नैतिकं वलमाधेयं यद्धि सर्वार्थसाधकम्॥

-विद्याधरनीतिरत्नम्

धन क्या, बल क्या अथवा राजाओंसे प्राप्त सत्कार भी कौन-सी विशेषता रखता है। ये कुछ नहीं। मैं सदा-सर्वदा नैतिक बलको ही धारण करता हूँ, जो कि समस्त अर्थोंको सिद्ध करनेवाला है।

हीनोऽहं हन्त दीनोऽहं व्यामोहं त्यज सत्वरम्। नाकाशो रजसाऽऽक्रान्तिश्चरं म्हानो हि तिष्ठति॥

—विद्याधरनीतिरत्नम्

मैं हीन हूँ, मैं दीन हूँ इस न्यामोहको सदाके लिये मैंने त्याग दिया है। आकाश चिरकालतक केवल धूल, मिट्टी और तूफानसे भरा नहीं रह सकता। अन्तमें उसे अवश्य ही खच्छता प्राप्त होगी। धूल इत्यादि तो क्षणिक हैं। इसी प्रकार मेरी सारी परेशानियाँ क्षणिक हैं। कलको अवश्य दूर हो जायँगी। वे अल्पकालिक हैं। अब उनका अन्त निकट आ गया है। अब मैं न्यर्थ न घवराता हूँ, न अशान्त ही होता हूँ।

मैं दीन नहीं हूँ। मैं निर्वल नहीं हूँ। मैं किये भी प्रकारसे हीन या निर्वल नहीं हूँ। मैं तो सद-कि आनन्द-खरूप परम राक्तिशाली आत्मा हूँ। कुर्व असंख्य गुप्त आत्म-शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। आत्मिक्कार्क कुंजीसे मैं उन्हें खोल रहा हूँ।

प्रसुप्तं नाम यत् किंचिज्ज्योतिस्तेऽन्तर्विराजते। कुरु यत्नेन तद् बुद्धं लोको बुद्धो भविष्यति॥ —विद्याधरतीतिस्स

ं जो दिन्य ज्योति मुझमें सुप्त हो रही है, उस्को यत्नपूर्वक प्रबुद्ध कर रहा हूँ । उस ज्योतिके प्रबु होनेपर समस्त संसार ही प्रबुद्ध हो जायगा ।

हमारा यह कर्त्तन्य है कि हम सदा इस माजा को दृढ़ रक्खें कि हम सब स्थानोंमें, सदा सब कुड़ करनेमें निश्चितरूपसे पूर्ण समर्थ हैं। इस बातको दृ करनेसे हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित होती हैं। अर्ज़ी शक्तियों के प्रति मनुष्यका जितना दृढ़ विश्वास पत्रता जाता है, वह ज्यों-ज्यों जीवनकी छोटी सफलताएँ प्रान्त करता जाता है, त्यों-त्यों उसमें महानताके गुणींका विकास होता जाता है।

सद्विचार (अर्थात् अपनी बुद्धि, प्रतिभा औ राक्तियोंके प्रति अखण्ड विश्वास) ही मनुष्यकी उन्निक मूळ मन्त्र और संसारकी सर्वश्रेष्ठ कीमती वस्तु है। उसे धारण करनेसे मनुष्य सफळताओंकी ओर खतः अग्रस होने ळगता है।

जिसने अपने विचार-यन्त्रको सही दिशामें चला सीख लिया है, उसकी उन्नतिमें देर नहीं समझी चाहिये।

अमृतका पुत्र [कहानी]

(लेखक-श्री'चक्र')

मृत्यु—हम-आपने मृत्यु नहीं देखी । हमलोगोंने सम्मिलत रहे हों, यह भी सम्भव है; किंतु मृत्युको ताण्डव करते देखा था उसने और उस मृह्यताण्डवने उसे लगभग पागल बना दिया था ।

भीगे हैं।

में विस्

सत्-चित्-

一頭

विश्वासर्वा

ाजते।

यति॥

नीतिरत्नम्

उसको है

के प्रबुद

भावना-

तव बुछ

तको दृ

। अपनी

पक्ता

तिर ग्राम

गुणोंका

॥ और

उन्नतिका

134

अप्रसा

चला

समझर्ना

वह एक युवक ही था तव । युवक तो वह अव भी हैं, किंतु उसपर—उसके तनसे अधिक मनपर जो बीती है, उसके कारण उसके केश श्वेत हो गये हैं । अव वह एक प्रौढ़ व्यक्ति दिखलायी पड़ता है । यूरोपके वितीय महासमरके प्रारम्भसे पूर्व वह विश्वविद्यालयमें विज्ञानका छात्र था । युद्ध प्रारम्भ हुआ और देशके कर्णधारोंने अनिवार्य सैनिक भर्तीका आदेश दिया । भुक्तकोंसे विदा लेकर उसे कंचेपर राइफल उठानी पड़ी । शीप्र ही एक जहाज उसके-जैसे ही अल्हड़ युवकोंको लेकर इंगलैंडके बन्दरगाहसे चला और उन सबको यूरोफी मुख्य भूमिपर उतार गया।

उत्तेजना प्राप्त करनेका एक सहारा था—राष्ट्रीय गान। दिन्सत दौड़-धूप, राइफल-मशीनगनकी तड़तड़ाहट, बिब्दकी दुर्गन्थ और ऊपर आकाशमें उड़नेवाले बिसुयानोंकी घरघराहट। इन्हीं सबमें जैसे तैसे कुछ पेटमें भी डालते रहना और रात्रिमें कभी खाई में, कभी कैम्पमें उछ समय नेत्र बंद कर लेना। सैनिकके इस युद्धकालीन जीवनको भी यदि जीवन मानना हो—किंतु वे सब इसके अभ्यस्त हो चले थे। उछलते-कूदते, हथियार साम करते, वन्दूकों भरते या मार्च करते भी खुलकर हसते, परस्पर हँसी-ठहा करते। समय मिलनेपर पत्र जिबते उनको जिन्हों उनके समाचारकी खदेशमें प्रतीक्षा थी। एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे शिवरमें वह स्वला रहा। मोर्चेपर जानेको ही आया था, पहुँच

गया। रात्रु कहाँ है, कियर है, कुछ पता नहीं। ऊँची-नीची झाड़ियोंसे भरी वनभूमि थी। गोले फटते थे, गोलियोंकी बौछार आती थी और इधरसे भी तोपें, मशीनगनें तथा राइफलें लगातार आग उगल रही थीं।

उसके एक साथीका बायाँ हाथ वमका एक विस्तोट उड़ा ले गया । दूसरे समीपके सैनिककी कनपटीमें गोली लगी और वह देर हो गया । युद्धकालमें यह सब देखने-का अवकाश नहीं होता । वे झाड़ियोंकी ओट लिये बढ़े जा रहे थे । कभी पेटके वल सरकते थे, कभी उठकर दौड़ पड़ते और कुछ दूर जाकर लेट जाते थे ।

एक वार रात्रुको भागना पड़ा । कोई दीखा नहीं भागता; किंतु जब सामनेसे गोले-गोली न आते हों, आगे बराबर बढ़नेको अवकाश मिले । रात्रु भाग ही रहा हो सकता है । रात्रु ?—जिन्हों कभी देखा नहीं, जिनसे कभीका कोई परिचय नहीं, जिन्होंने अपना कुळ विगाड़ा नहीं, वे अब घोर घृणाके पात्र रात्रु हो गये! कैसे हो गये ? यह सोचना भी उसके लिये राष्ट्रदोह था ।

सहसा शत्रुने 'कुमक' झोंक दी । अपनी ओरके नायकोंमें कुछ मन्त्रणा हुई । एक-दो ट्रक भरकर कुछ दूसरी प्रकारके सैनिक छाये गये । वे छोग दिनभर पता नहीं, पूरे मैदानमें क्या करते रहे । भूमिमें पतछी नालियाँ उन्होंने खोदीं, कुछ तार बिछाये और भी कुछ करते रहे; किंतु उसे सब जानने-देखनेकी न आज्ञा थी, न सुविधा और न जिज्ञासा ही । उसे तो गरम राइफल भी एक ओर रखनेकी आज्ञा नहीं थी । गोलियोंका निरन्तर कार्ने-के पर्दे फाइता शब्द तथा बारूदका धुआँ !

रात्रिका अन्धकार आया । खाइयोंमें घुटने-घुटने दलदलमें खड़े रहता था । मच्छरोंने दुर्गति कर स्वखी

HE

भारत

ाससे

चाहर

तैयार

कटी

शीघ्र

पोड़ी

मक्खन

उछ है

नेषु अ

17

वह के

गंदगी

हैनरी

थी । एक बार निकलकर शत्रुपर टूट पड़नेका आदेश मिल्ना—वह प्रसन्न ही होता । जीवनकी अपेक्षा मृत्यु अधिक वाञ्छनीय लगने लगी थी उसे ।

राष्ट्र सम्भवतः उसके लोगोंका पता पा गया था। विपक्षसे आते गोले-गोलियोंकी बौछार बढ़ती गयी। राष्ट्र-सैनिकोंके शब्द आने लगे। सम्भवतः अगली खाईपर आक्रमण हो गया था। कुछ मिनट गये और राष्ट्रकी एक ढुकड़ी उसकी खाईके समीप आ गयी। अंधाधुंध गोली चलाये जा रहा था वह।

'पानी ! हैनरी, दो घूँट पानी !' एक क्षीण स्वरने समीपसे उसे पुकारा। उसने झुककर पानीकी बोतल खोळी और नीचे देखा। गोळी लगनेसे उसका साथी खाईकी कीचड़में गिर पड़ा था और तड़प रहा था।

सहसा लगा कि पूरी पृथ्वी फट गयी। चीत्कारसे दिशाएँ गूँज उठीं। खाईके बाहरसे लोथड़ोंकी वर्षा उसके सिरपर हुई। पूरी वर्दी गरम चिपचिपे पदार्थसे गीली हो गयी। जिसे वह पानी पिलाने झुका था, वह प्यासकी सीमाके पार जा चुका था। खाईके दूसरे सैनिकोंका उसे स्मरण नहीं। वह राइफल उठाये बाहर निकला और एक ओर दौड़ा।

अन्धकारमें लाशोंकी ठोकरें, रक्तका कीचड़, कटे-फटे शवोंपर जब पैर पड़ता था लेकिन रात्रिसे दारुण निकला दिनका प्रकाश। उस प्रकाशमें उसने जो कुळ देखा—मांसका ढेर पड़ा था चारों ओर। जहाँतक दृष्टि जाती थी, पृथ्वीपर रक्त जमा था और उसमें ऑतें, लोथें बिळी थीं। राइफलें, मशीनगर्ने जहाँ-तहाँ पड़ी थीं। कर्णभेदी क्रन्दन अब भी नहाँ-तहाँसे उठ रहा था।

वह पागळ हो गया । जबतक उसके पास कारतूस रहे, वह उन क्रन्दन करते छटपटाते-तड़पते लोगोंको मृत्युकी निर्मम पीड़ासे शान्तिकी निद्रामें सुलाता चला गया। पूरा मैदान पटा पड़ा था। अपने-परायेका मेद कैसा, सबके शरीरोंके चिथड़े थे वहाँ। लेकिन उसके कारतूस समाप्त हो गये। वह राइफलसे ही कईकी कपालकी कर लेता; किंतु ठोकर खाकर गिरा और मुर्च्छित हो ग्या।

हैनरी पागल हो गया था । उसे युद्धभूमिसे पीते अस्पताल मेजा गया था और वहाँसे इंगलैंड; किन वहाँ भी उसे बंदीगृहमें रहना पड़ा । युद्धकालमें अन जैसे अर्धविक्षित (चिकित्सा उसे पूरा खस्थ नहीं का सकती थी) को देशमें अटपटी बातें फैलानेके लिये खतल नहीं छोड़ा जा सकता था । लेकिन महायुद्ध समाप्त होने पश्चात् उसे घर लौट जानेकी खतन्त्रता मिल गयी।

भी मरना नहीं चाहता । वे सबको मार हेंगे! मुझे बचाओ ! मुझे मृत्युसे बचनेका मार्ग बताओ! हैनरीका यही पागळपन है । उसे लगता है कि गृष्ट्रं कर्णधार फिर युद्ध करेंगे और जो बीमत्स दृश्य उसने देख है, वह नगरोंमें ही उपस्थित होगा । मृत्युसे वह अपन आतंकित हो गया है । अब अमरत्व उसे कौन दे दे!

'मुझे मृत्युसे बचनेका मार्ग बताओ !' अनेक गिर्जाधोंने वह जा चुका है। ठार्ड विश्वप तकसे रोकर प्रक्ष चुका है। कोई उसकी बात नहीं सुनता। पागठकी बात कौन सुने। सुनकर भी कोई क्या कर सकता है। मृत्युसे बचनेका उपाय किसके पास धरा है।

'मृत्युसे बचनेका उपाय है !' उस दिन अ भारतीय गैरिकधारीने चौंका दिया सबको । वह सा एक सभामें कुछ कहने खड़ा हुआ था। उसने जैने ही सम्बोधन किया—'अमृतपुत्रो !' पागल हैती दौड़ता मंचपर जा चढ़ा और उसने साधुके हाय पक्ष लिये। कातरवाणी थी उसकी—'मुझे मृत्युसे बचनेका उपाय बताओं ? तुम्हारे पास वह उपाय है ?'

'तुम्हें भारत चलना पड़ेगा !' साधुने सम्भवाः उस पागलसे पिण्ड छुड़ानेके लिये युक्ति निकाली । भीं कहीं भी चलूँगा ! जो कहो, कहूँगा !' हैंगी दढ़ था और साधुके आदेशपर वह मंचसे नीचे अवा चुपचाप बैठ गया प्रवचन सुनने । -पाल-किया गया।

भाग ३६

मेसे पींहे ड; वितु लमें अ

नहीं वा ये खतन सिंड मा

र देंगे! वताओ !

के राष्ट्रके उसने देख

ह अत्यन न दे दे।

गर्जाघरोंमं छ चुवा

की बात ता है।

दिन अ 展 棚 तंने जैसे

हैना य पवाइ

सम्भवतः

, हेनी

चे आका

यी।

बचनेका

ी

अमृतपुत्रो ! साधुने प्रवचन प्रारम्भ किया— मृत्युका भय सत्रको ही है, किंतु प्रमादवश उसे हम भूल जाते हैं । हमें इन महाभागके समान उससे हुरतेकी उत्कण्ठा नहीं है । वह उत्कण्ठा हो तो अमल हमारा स्वत्व है । वह हमारा स्वरूप है ।

हैनरीको इस सबसे कोई प्रयोजन नहीं था । उसे क्षा पागल कहते हैं तो वह झगड़ता नहीं । यह मातीय साधु उसकी पता नहीं क्यों प्रशंसा करता है। mसे भी उसे कोई प्रसन्तता नहीं । वह मृत्युसे छूटना बहता है । मृत्यु, जिसका ताण्डव वह देख चुका है । _{'तम} हो कौन ?' हैनरी साधके साथ लग गया 💵 अब वह इस साधुका पीछा छोड़नेको भला कैसे

तैया हो । निवासस्थानपर आकर साधुने हैनरीसे पूछा । 'में हैनरी विल्सन' सीधा उत्तर था।

'लेकिन हैनरी विल्सन कौन !' साधु समझानेके लाएर आ गये—'तुम्हारी अंगुली मैं काट दूँ तो क्री अँगुली हैनरी विल्सन रहेगी क्या ?'

'यह केवल हैनरी विल्सनकी अँगुली होगी!'

हैनरी विज्ञानका छात्र रह चुका था। उसे बहुत ^{शीष्र यह बात समझमें आ गयी कि शरीर हैनरी विल्सन} ^{ग्हीं है}। वह तो हैनरी विल्सनका शरीरमात्र है।

^{'यह} शरीर हैनरी विल्सनका नहीं है !' साधुने अब क नयी बात उठायी । प्रतिभाशाली हैनरी चौंका; किंतु ^{पे}हीं देरमें उसने यह तथ्य भी समझ लिया । रोटी, चावल, मन्दन आदिसे बना शरीर जो बचपनमें कुछ था, अब 🕫 है, उसका कैसे हो सकता है। कटे बाल, ^{म्ब आ}दिके समान ही तो शरीर है।

फ्रिटमें रक्खा मक्खन मक्खन है और पेटमें जानेपर विल्सन ?' साधुने पूछा—'फिर तुम जो री चाल्यमें पेटसे निकाल आते हो, वह भी हैनी विल्सन है या नहीं ?

'वाह ! वड़ा मूर्ख निकला मैं !' खुलकर हँसा हैनरी । वह अर्घविक्षिप्त उठकर कूदने लगा ।

'जो हैनरी नहीं है, जो हैनरीका नहीं, उसके मरने जीनेकी चिन्ता हैनरीको क्यों !' साधु फिर मूळ प्रश्नपर आ गये 'वह तो मरेगा ही । उसे मृत्युसे बचाया नहीं जा सकता । बचानेका कोई उपाय हो भी तो मुझे ज्ञात नहीं।

'मरने दो उसे !' हैनरी उसी प्रसन्नतामें कह गया। लेकिन उसकी प्रसन्नता क्षणिक नहीं थी। सचमुच मृत्युके भयसे वह अपनेको मुक्त पाने लगा था।

'हैनरी विल्सनको मैंने मृत्युसे बचानेका वचन दिया है।' साधुका स्वर स्थिर था—'मैं अपने वचनपर दढ़ हूँ।' 'आप हैनरीको ही मृत्युसे बचनेका मार्ग बताओ !' स्वस्थ स्वर था हैनरीका ।

'हैनरी कभी मरता नहीं ! उसे कोई मार नहीं सकता । वह तो अमृतका पुत्र है !' साधुने कहा ।

'अमृतका पुत्र!' हैनरीकी समझमें बात नहीं आयी। इतनी सीधी सरल बात तो नहीं है कि झटपट समझ ली जाय।

'हैनरी कौन ?' कुछ क्षण रुककर खयं हैनरीन पूछा । वह अब गम्भीर हो गया था । चिन्तन करने लगा था और आप जानते हैं कि इस प्रकारका चिन्तन उसे अपने पागळपनसे मुक्त कर देनेके छिये पर्याप्त था।

'नहीं, आज मुझे सोचने दीजिये ! मैं आऊँगा आपके समीप !' साधुको हैनरीने रोक दिया बोलनेसे । वह उठ खड़ा हुआ । विदा होते-होते उसने कहा- 'आप ठीक कहते थे कि मुझे भारत जाना पड़ेगा। अमरत्वका संदेश जिस भूमिसे उठा, वहीं उसे प्राप्त किया जा सकता है।'

×

हैनरी भारत आया, इतना ही मुझे पता है । वह उन साधुसे भी कदाचित् मिळा नहीं । सुनते हैं कि वह उत्तराखण्डकी ओर एक बार साधारण भारतीय साधुके वेशमें देखा गया था।

श्रीगदाधर भट्टकी भक्ति-भावना

(लेखक--श्रीक० गोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न)

प्रभु-प्राप्तिके लिये ज्ञान, कर्म और भक्ति—तीनों ही साधन माने गये हैं। किंतु सभी भक्त महानुभावोंकी तरह भट्टजी भी ज्ञान और कर्मकों भक्तिके समक्ष गौण मानते हैं, साथ ही दुष्कर भी। रूप, गुण, शील, ज्ञान, सत्कुल, शास्त्रज्ञान आदि भक्तिके पूरक या हृदयकी शुद्धतामें सहायक साधन अवश्य हो सकते हैं, साध्य नहीं। उनके प्रियतम तो प्रेमसे ही प्राप्त हो सकते हैं। यह प्रेम जब प्रगाद और सत्त्विष्ठ होता है, तब वह भक्तिका रूप प्राप्त करता है। ऐसी भक्तिसे प्रभुचरणोंमें प्रीतिकी वृद्धि होती है, उनकी रस-लीलाओंके चिन्तन और अनुगायनसे हृदय और वाणी निर्मल होती है। वे कहते हैं—

भौर कहा किह सकै 'गदाधर' मोहन मधुर बिलासा जू। रसना हियो सुद्ध किरवे को गावत हिरके दासा जू॥ (प० सं० ४४)

ठीठामय प्रभुकी मधुरा भक्तिसे ठौकिक वासनाएँ निवृत्त होती हैं। ठीठा दर्शन और अनुचिन्तनसे संसारका ताप-दाप नष्ट होता है। कहते हैं—

यह सुख जो हिये बसे तौ मिटे भव-दाहु। कहत गदाधर मन कत इत उत जाहु॥ (प० सं० ४५)

फिर रसिकोंके लिये तो यह लीला-रस पान करने योग्य ही है—

हीला लिलत (भ्रमुकुंद चंद्र' की करहु रसिक रस-पान। अविचल होहु (सदा जुग-जुग यह जोरी बलि 'कल्यान'॥ (प० सं० ४६)

युगल-खरूपकी यह उपासना उनकी साधनाका सर्वख है। श्यामा-श्यामके युगल-रूपकी माधुरीपर तो वे— निरिंख निरिंख बिल जाइ 'गदाधर' छिब न बढ़ी कछु थोरे। (प० सं० ४७) उनका यह न्यौछावर होना जीवनके किसी क्षण घटना नहीं; क्योंकि यह आनन्द अनादि, अनन्त, किय

HE

मुख

भावा

सूर

नुभूति

सहज

कह

उत्रा

और

वैधी

अभि

पाद्रे

निवे

कीम-

THE

नितप्रति रासविलास ज्याहविधि नित सुरतिय सुमनिवासैग। नित नव-नव आनंद बारिनिधि नित ही गदाधर लेत बलैग। (प० सं० ४८)

कित्री रासिवलासकी किसी अनुरागत्रती गोपाङ्गात्रे रूपमें ही इस रसानन्दका स्वयं आस्त्राद पा रहा है औ तदूप होकर ही—

प्रेम पागि उर लागि रही 'गदाधर'
प्रभुके पिय अंग-अंग सुखदैनी।
(प० सं० ५८)

— के रूपमें आत्मविभोर होकर प्रेमणो हृद्यसे खं भी रस-प्राप्ति कर रहा है और प्रियतमको भी रसरा करता है। इस रस-क्रीडामें किव उसी 'गोपी-भाग' की प्राप्ति करता प्रतीत होता है, जिसकी परम पिणित 'राधाभाव', 'राधा-तत्त्व' में है। इसीलिये वह कि अन्तरङ्ग सहचरीके रूपमें स्वयं रस-केलि करता हुआ प्रियतम-प्रियतमाकी रस-खेलाओंकी शोभाका मादनभाव मोदन-भावसे दर्शन करता है। देखिये एक झलक—

> रीझि देति वृषभानुजा पियके उरज अँकोर। सोभा निरखत 'गदाधर' मुदित उभय कर जोर॥ (प० सं० ७९)

माधुर्यभावकी यह उन्च स्थिति है। इन लि^{जी} छीछाओंकी अधिकारिणी सहचरियोंके रूपमें हरिलीहाओं तो वे सर्वदा मग्न हैं—

ऐसोई ध्यान सदा हिर को किये जो रहै। तौ पै 'गदाधर' याके भागहिं को कहैं॥ (प० हं० ६८) वस्तृतः भइजी-सरीखे महानुभाव कितने भाग्यशाली हैं, जो दिवानिशि लीलानुगायन-चिन्तनमें निरत हैं। यह शुलसौभाग्य तो देव-दुर्लभ है, जो चिरसामीप्य सहचरी-भागुरूप व्रज-भक्तोंको प्राप्त है, उसके लिये तो देवाङ्ग-गर्भ गालायित हैं, इतना ही नहीं—
सरललना फूलनि वरसें वे दिंग आवन की तरसें।

मुख्ला फूलिन बरसें वे दिंग आवन कीं तरसें। रंगु बड़थी अति भारी तन की गति सवनि बिसारी। गुन गाइ 'गदाधर' जीजै, मनु प्रेम, रंग सों भीजै।

(प० सं० ७८)

प्रेमरंगसे भीगा कविका हृदय उस लोकातीत आत्मा-तुभूतिको समाधिगत करता है, जिसे अभिव्यक्त करना हृज नहीं कहा है—

र्ह्मं हिंग कहें मत्त भयों 'गदाधर' वरने भाव उर को । (प० सं० ८०)

अतः प्रिया-प्रियतमकी परस्पर रसकेलि और मधुर भावों त्या शृङ्गार-चेष्टाओंका ध्यान ही उसके लिये सुलभ है—— परस्पर की चोज मौजनि धरि 'गदाधर' ध्यान। (प० सं० ८४)

प्रमुकी अनन्त लीलाएँ हैं, अगणित चरित्र हैं— कहि न सके कोउ हरि के अगनित चित्र, चरित्र । जिहि तिहिं भाँति 'गदाधर' रसना करहु पवित्र ॥ (प० सं० ६४)

इस प्रकार भक्ति-सुरसिरमें कविका जीवन डूबता-जाता चिन्मय रसिनिधिको अन्ततः समुपलब्ध करता है और उसमें एकीभूत होकर तादात्म्यका चिरन्तन सुख प्रम करता है।

भहनी भक्तिके दोनों रूपोंको प्रहण करते हैं। जो भी वा नवधा और रागानुगा वा प्रेमलक्षणा रितके नामसे अभिहित है। नवधा भक्तिमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, प्रारंसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, साल्य और आत्म-निवेदनका समावेश है। श्रवणसे आत्मनिवेदनतककी क्षम-कोटियाँ भक्तिकी उत्तरोत्तर स्थितियाँ हैं। क्रमशः प्रिसिद्धि करता हुआ साधक चरमकोटि आत्मिनवेदनको

पहुँचता है । इन नव प्रकारोंको हम तीन वर्गीमें विभाजित करें, तो श्रवण, कीर्तन, स्मरण; पादसेवन, अर्चन, वन्दन; दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये तीन त्रिकुटियाँ वनती हैं । इन त्रिकुटियोंकी संगति भट्टजीके त्रिविय रूपोंमें (कीर्त्तनकार, कवि और भक्तकें साथ) क्रमशः बैठायी जा सकती है । क्रमिक विकासकी दृष्टि-से प्रारम्भमें वे भगवल्छीला श्रवण करते-कराते हुए उसका अनुकीर्तन करते हैं। एकान्त क्षणोंमें प्रभु और प्रभुके चरित्रोंका स्मरण भी करते प्रतीत होते हैं । यही उनका 'कीर्तनकार' रूप हो सकता है, जिसमें वात्सल्य-भाव-निष्ठ नन्दालयकी लीलाओंका प्राधान्य है । यहाँ वे 'सत्यम्'की कला-साधनामें निरत हैं | साधनाकी यह कोटि जब अधिक गहनताकी ओर अभिमुख होती है, तब वे कुछ और अन्तर्मुख होते-से लगते हैं, यहीं उनका 'कवि' रूप उभरता है । उसमें तादात्म्यकी मात्रा बढ़ जाती है और अन्तस्तलकी भावनाएँ रागानुगा होती हुई शृङ्कार-रसमें निष्ठा पाती हैं । पादसेवन-अर्चन-वन्दनके रूपमें उनकी यह निष्ठा चिरतार्थ होती है। यह उनकी साधनाका 'शिवम्' रूप है । जिसमें काव्य और शृंगार दोनोंकी संगीतात्मकता संबिटत होकर उन्हें ब्रजगोष्ठकी सरस लीलाओंकी ओर प्रवृत्त करती है। उनका यह कविरूप ही चरम अवस्थाको पाता है और 'भक्त'रूपमें अभिव्यक्त होता है । यह उनके जीवनका 'सुन्दरम्' पार्ख्न है, जिसे वस्तुतः स-हित या निःश्रेयसकी भावना कह सकते हैं और जिसमें दास्य-सख्य-आत्मिनवेदनकी भक्ति संनिहित है। उनका अनुचरी, सहचरी और एकात्म-दम्पति-भावना इसीका प्रतिरूप है । लोक-वेदसे परे निकुञ्जकी रसलीलाएँ महाभावरूपमें वे इसी स्थितिमें चित्रित करते हैं । नित्य-साहचर्य वा सख्य-भावना ही उनकी इस साधनाके मूलमें है । यह परम माधुर्य, सखी-गोपी-भावकी साधना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ती क्षणको न्त, नित्य-

ने वस्सैया। त बढ़ैया॥ सं० ४८)

गेपाङ्गमाने हा है औ

नी। तं० ५८)

्यसे खयं रस-दान

भाव' की परिणति

वह एक (ता हुआ

(百·川) 不一

(II 0 (8)

निवृत्र-

11 (6)

सव

हो

意

वाव

郁

ठनव

इस प्रकार भक्तिकी त्रिकुटियोंके साथ भट्टजीके व्यक्तित्वका कितना विलक्षण सामञ्जस्य है, जिसमें विविध रसों, भावनाओं, उपासनाओं, लीलागायनों, साधनाओं, आराधनाओंका मधुर अन्तर्भाव होता है । इन सबका पर्यवसान भी अन्ततः प्रेमलक्षणा, रागानुगा भक्तिमें होता है, जो उनकी चिर-परमिसिद्ध है । यह निरोधरूपा है । वल्लभाचार्यकी साधनामें भक्तिका बीज-भाव छुद्ध पुष्टि है, तो निम्बार्कीय तथा राधावल्लभीय रस-परम्परामें यही सखी—गोपी-भाव है, जिसे महाभाव-रूपमें राधा-तत्त्व कहते हैं और जिसे चैतन्य महाप्रभुने भी अनन्य-राधा-कैंकर्यके रूपमें स्वीकार किया है । महजी इसी मिक्त-परम्पराको लेकर चले हैं । वृषभानुनन्दिनी, उनकी रसलीला उनकी मधुर भक्तिकी सर्वोपरितामें उनकी पूरी निष्ठा है, कहते हैं—

. अंग अंग सों प्रेम बरषत सकल सुखकी मूरि। राधे जू के चरनकी रज गदाधर सिर भूरि॥ (प० सं० २५)

'सकल मुखकी मूरि' चरण-रेणुको पानेके लिये ही तो वे ब्रज-रजका अनुपल सेवन कर रहे हैं।

इन्हीं भक्ति-विधाओं के अनुरूप उनके पोषक अङ्ग---नाम-माहात्म्य, गुरु-महिमा, अनन्य-भाव, सत्संग, कथा आदिका निरूपण भट्टजीने अपने काव्यमें सुन्दर किया है, देखिये---

हिरे हिरे हिरे हिरे रिट रसना मम।

पीवित खाति रहित निधरक भई होत कहा तोकों सम॥
तैं तौ सुनी कथा निहं मों से अगनित उधरे महाधम।
ज्ञान ध्यान जप तप तीरथ ब्रत जोग जाग बिनु संजम॥
हेम हरन द्विज-द्रोह मान मद अरु पर गुरुदारागम।
नाम प्रताप प्रवल पातक के होत जात सलभा सम॥
हिह किलकाल कराल ब्याल विष ज्वाल विषम मोये हम।
बिनु हिह मंत्र 'गदाधर'के क्यों मिटिहै मोह महातम॥
(प० सं० २३)

इरिके नाम-कथा-श्रवण-कीर्तन और स्मरणसे जीवनके उद्धार तथा समग्र संयम-साधनाओंसे रहित होनेपर भी प्रवल पातकोंके निवारण एवं कलिकालकी विषम जालको से मुक्तिका कितना अमोघ मन्त्र बताया है उन्होंने! साथ ही अपनी निस्साधनता, दीनता और आत्म-मर्त्तन भी इससे ज्ञापित है।

पाद-संवन, अर्चन और वन्दनके रूपमें तो वृद्धका योगपीठका रूपका, उनका काव्य-चित्र स्पष्ट ही है, अदि और अन्तकी पंक्तियोंसे ही उनकी भावना परिलक्षित हो रही है ।

श्रीगोविंद पदारविंद सीमा सिर नाउँ। श्रीवृंदावन-विपिनमोिलवेभव क्छु गाउँ॥ श्रीवृंदावनजोगपीठ गोविंद निवासा। तहाँ 'श्रीगदाधर' सरन चरनसेवा की आसा॥ (प० सं०६)

'गुरु-गोविन्द' और उनके नाम-रूप-छीछा-धामके प्रति उनकी निष्ठा इन शब्दोंमें प्रकट हो रही है।

दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनके भाव भी कविने अपने काव्यमें जहाँ-तहाँ दरसाये हैं—

श्रीगोविंदपदपह्मच सिर पर विराजमान
कैसे कि आवे या सुख को पिरमान।

व्रजनरेस देस बसत कालानल हू न त्रसत
बिलसत मन हुलसत किर लीलामृतपान॥
भीजे नित नयन रहत प्रभुके गुनग्राम कहत
मानत निह त्रिविध ताप जानत निह आन।

तिनके मुखकमल दरस पावन पदरेनु परस
अधमजन 'गदाधर' से पावे सनमान॥

(प० सं० १३)

कितनी भावावेश और अनन्यताकी स्थिति है। ऐसे प्रभुकी प्रपत्ति, शरणागित कौन नहीं चाहेगा ? इसीर्विये पुन:-पुन: वे विनय करते हैं—

वितर 'गदाधर' मनु निजदास्यम्, भावय मे श्रुतिभिरुपास्य । (प० सं० १४)

क्यों न करत 'गदाधर'हि निज द्वारको परिवार। (प० सं० १६) भाग देई

-

जालाओं.

उन्होंने!

म-भत्सेना

वृन्दावन

है। आहे

वित हो

1

11

नं ६)

के प्रति

ने अपने

U

83)

नीलिये

सम्।

88)

१६)

इस प्रकार भक्ति-भावनामें जहाँ भक्त प्रभुके प्रति स्वर्गित समर्पित है, वहाँ प्रभु भी उसके सर्वथा अधीन स्वर्गित समर्पित है, वहाँ प्रभु भी उसके सर्वथा अधीन हो जाते हैं। जो अधम प्रभुक्ती एक बार शरणमें आ जाता हो वे उसे उत्तमोत्तम सिद्धि प्रदान करते हैं— सुक्तिवधू उत्तम जन लाइक ले अधमनि की दीनी जू। (प० सं० ५०)

बारे ही तें गोकुल गोपिनि के सूने घर तुम डाटे जू।
हैितहाँ निस्संक रंक लें दिश्व के भाजन चाटे जू॥
हितनी भारी भक्ति-परवशता है। इसी अन्योन्यहिताना ही तो फल है कि भक्त भी—
हुन जाइ उठाइ 'गदाधर' भाग 'आपुनौ सान्यो जू।
(प० सं० ४९)

भरूजी प्रमुमें अनन्य आश्रय और आस्था लेकर भक्ति-तिर हैं। हरि ममतापूर्वक उनकी लाज रक्लेंगे, यह जना दृढ़ विश्वास है——

किरहे कृष्णनाम् सहाइ।
अधमता उर आनि अपनी मरत कत अकुछाइ॥
अधम अगनित उद्धरे तब जात कहत संसार।
कवन उद्यम आपने किर सक्यो निज्ज निस्तार॥

नेंकु ही धों किर भरौसी बसत जाके गाउँ। क्यों सु ममता छाँडिहै छै जियत जाकी नाउँ॥ विरद विदित बुळाइ बहु तक हिर न धरिहै छाजु। तौ 'गदाधर' निगम आगम सब बकत बेकाजु॥ (प० सं० २१)

इसी विश्वासके वलपर अपनी मोह-खार्यमयी वृत्तियोंसे अवगत होते हुए भी वे प्रभुकृपाके लिये आशान्वित हैं। कहते हैं, ये आर्त्त वचन—

मोहि तुम्हारी आसा जिनि करहु निरास।
मनु मेरी बाँध्यो मोह-पास। स्वारथ-पर सो धौं कैसी दास॥
मोहि आपनी करनी कै त्रास। निसि बीतित भिर भिर छेत स्वास॥
रचि रचि कहिए बाते पचास। मन की मिछनता को कहँ न नास॥
जो चितवे नैकु श्रीनिवास। 'गदाधर' मिटहि दोष दुख अनायास॥
(प० सं० ५)

इस प्रकार उनका प्रेम अनन्य है। एकमात्र अपने आराध्यमें ही निष्ठा, उसीको सर्वस्व मानना, उसीको उप- लिन्यका लक्ष्य रखना, अन्य शक्ति-साधनोंका तदङ्गलेन उपयोग करते हुए उन्हें ही सब कुछ न मान लेना उनकी अनन्यता है। इष्ट्रप्राप्तिके लिये सभी बाधक तत्त्वोंको छोड़ा जा सकता है *।

विरहिणी

(रचियता—श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम' एम्० ए०, पी-एच्० डी, डी-लिट्०)

मेरे मानसकी कमनीय किशोरी कामना।
मेरे भोले हृदयकी भन्य भावनी भावना॥
मेरे भोले हृदयकी भन्य भावनी भावना॥
मेर्जि एक सूत्रमें आज कामना-भावना।
मधुर स्वाद चखेगी युगल मिलनसे कल्पना॥
× × ×

मेरी विकल विरहिणी वर्षों वर-वंचित रही।
पर मञ्जु मिलनकी टेक सदा संवित रही॥
देखे भुवन-लोक-तनु विपुल-दिशा-विदिशा-महीं।
पड़ भँवर जालमें कहाँ-कहाँ बिछुड़ी बही ॥
केसे क्रोध, द्रोह, मद, मोह, लोभ लम्पट मिले।
पाके जिनका मलिन संसगं, नियम-संयमहिले॥
बोथी पूत, चढ़े अब-ओघ, आवरण आविले।
जोथे भाव दीस, दब गये, सभी स्वर सोहिले॥

मेरी सती दुखी, रो उठी, विरह, फिर खळ खळे।
पावे त्राण कहाँसे, अंग-अंग दुखने दछे॥
तम इधर, उधर रज, रुद्धमार्ग उपर तछे।
सत आवे, हो उद्धार, विकट संकट टले॥
जागो, जागो, ओ सङ्गाव, काम बाजी बनो।
भागो, भागो, भीर प्रमाद, पप-पट मत तनो॥
मेरी जाग कल्पना काम-भावकी संगिनी।
यह व्यथित विरहिणी, पुनः परम पति प्रणयिनी॥
पावे प्रेम प्रसाद पवित्र, बने संयोगिनी।
यह पुण्य, अधःसे उध्वें लोक गति रोहिणी॥

× × ×
यह धर्म, युक्त हों दो वियुक्त जिस कर्मसे।
यह मर्म सुरक्षित, देव-वरणके वर्मसे॥

* श्रीगदाधर भक्क जीवन झाँकी, काव्यसौद्दर्श और भावविश्लेषणसहित, अप्रकाशित सटीक काव्य-वाणीका एक अंश ।

स्वास्थ्य-प्राप्तिके सात्त्विक उपाय

(लेखक--प्रो० श्रीशिवानन्दजी शर्मा, एम्० ए०)

सभी महापुरुष युग-युगान्तरसे सुखी जीवनके लिये शरीर
श्वा एवं पुष्टिके महत्त्वपर बल डालते रहे हैं। अनेक सद्ग्रन्थ

भी शरीरकी उचित संरक्षा करनेका आदेश देते हैं। महाकवि

कालिदासने तो इसको धर्मका आद्य साधन ही उद्घोषित

किया है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनस्' ठीक भी है, शरीर

हसका निवासस्थान है, आवास है। शरीर मोक्षप्राप्तिका साधन

है तथा सुखी जीवनका भी प्रथम साधन है। अतः जो इसे

पापका घर बना ले, वह घोर अपराधी है तथा जो इसकी उपेक्षा

करके इसे विनष्ट होने दे, वह भी परम निन्दनीय है। इसे साध्य

मानकर इसकी सेवा-शुश्रुषामें भी संलग्न रहना अविवेक है।

सेवह लखनसीय रघुवीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि॥

'धर्म तो ऐहिक एवं पारलैकिक सिद्धिका साधन है।'

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (कणाद)

ऐहिक सिद्धि ही पारलैकिकी सिद्धिकी सीढ़ी है तथा ऐहिक विद्धिके लिये स्वास्थ्यरक्षा नितान्त आवश्यक है। 'नायमात्मा वक्हीनेन लभ्यः'—उपनिषद्का प्रसिद्ध वाक्य है।

स्वास्थ्यरक्षाके लिये कुछ वातें विशेष आवश्यक हैं— चित्तशुद्धि (चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा आदि विकारोंसे प्रक्ति), नियमित एवं संयमित जीवन, उचित भोजन, परिभम तथा व्यायाम एवं विश्राम।

चित्तशुद्धिका अर्थ है—चित्तको निर्विकार बना लेना। चित्तके समस्त विकारोंका मूल कारण मोह है। सच तो यह है कि कैवल सभी मनोविकार ही नहीं, अपितु प्रायः शारीरिक रोग भी मोहके कारण ही उत्पन्न होते हैं। इस तथ्यके प्रमाण-स्वरूप आधुनिकतम मनोविज्ञान एवं ओषधिविज्ञान स्पष्टरूपसे सास्य कर रहे हैं। लगभग चार शताब्दी पूर्व महान् द्रष्टा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने सूत्ररूपसे यही निश्चय किया था कि भोह सकत ब्याधिन्ह कर मूला। शारीरिक तथा मानसिक कष्टका उद्गम मोह ही है। प्रायः हम कर्तव्यभावनासे प्रेरित न होकर मोहके कारणसे ही अपना समस्त कियाकलाप करते हैं। प्राण्यों तथा वस्तुओं प्रति हमें मोह होता है। राग-द्रेष इसके दो पहलू हैं। वस्तुओंका परिग्रह-संग्रह ही मोहके कारण होता है और परिग्रह ही छोटे झगड़ों और महान् युद्दोंका कारण, अप्रच्छक अथवा प्रच्छन रूपसे होता है।

किसी अन्य व्यक्तिकी किसी वस्तुके नारा होनेपर हमें कोई दुःख नहीं होता है। जिस व्यक्तिसे जितना सम्बन्ध है।

उसीके अनुपातसे हमें उसके दुःखमें दुःख होता है। क्ष हमारी किसी वस्तुका नाश होता है तब हमें वड़ा दु:ख होता है। सैकड़ों कीमती घड़ी रोज टूटती हैं, हमें ध्यान मी नहीं होता । किंतु यदि मेरी वड़ी टूट गयी है तो घोर क्लेश होता है। इसका कारण मोह ही तो है। मुझे अपनी पड़ीके पी मोह है। अन्य व्यक्तियोंकी घड़ियोंके प्रति नहीं है। सेक्र व्यक्ति नित्यप्रति मृत्युको प्राप्त होते हैं; किंतु मेरे किसी सम्बंध की मृत्यु हो तो मुझे दुःख होता है। इसका कारण मोह है। जितनी मोहकी मात्रा हमारे मनमें किसी व्यक्ति या वस्तुके प्रति होती है, उसके सम्बन्धमें हमें उतना ही दुःख होता है। हमारी इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि हमें मोहके कारण ही विविध वस्तुओंके प्रति आकृष्ट कर देते हैं तथा विशिष्ट वस्तुओंनी सम्प्राप्ति एवं संग्रहके द्वारा हम मिथ्या तुष्टिका अनुभव करते हैं। कहीं चटपटे, गरिष्ठ भोजनसे इन्द्रियोंकी मिथ्या तृष्टि करके हम शरीरको कष्टमें डाल देते हैं, कहीं वस्तुओंके विषय-में मेरा-तेराके झगड़ेसे मनको शोकमें डाल देते हैं तथ बुद्धिकों अन्धकारमें डाल देते हैं।

A

निरी

हिं

और

कर

मुखव

में ऐ

मुक्त

मुविध

होकर

दोपन

साहर

विस्त

द्वारा

किसी

तथा

अवा

वर्तम

मयद

निश्चय ही हमें मोहका त्याग करना चाहिये। मोहत्याम का अर्थ यह नहीं है कि हम वस्तुओं एवं व्यक्तियोंसे घृणा करें। वस्तुओं एवं मनुष्योंमें कोई दोष नहीं है। मोहल्पी दोष ते अपने मनमें है। मोह-त्यागका अर्थ यह है कि हम वस्तुओं त्याग नहीं, बिल्क उनकी वासना, उनके प्रति आकर्षणक त्याग करें; संसारका त्याग नहीं, बिल्क सांसारिकताका त्याग करें। संसार तो छोड़ दिया, वस्तुओंका परित्याग भी कर दिया, करें। संसार तो छोड़ दिया, वस्तुओंका परित्याग भी कर दिया, किंतु मोह अब भी सताता है तो क्या लाम हुआ ? वस्तुओंका उपभोग करें, प्रयोग करें, किंतु आवश्यकतानुसार करें। त्यागमावसे करें।

ईशावास्यमिः सर्वं यत्किच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुक्षीथा मा गृधः कस्यस्बिद्धनम्॥

— त्यागपूर्वक भोग करें।

मोह सभी मनोविकारोंका सेनापित है। यदि मोहके
भगा दिया तो इसकी सेना भी भाग उठेगी। कटकमें मगहर्
मच जायेगी। मोह मूल है।

'छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।' —यदि इम कठोर दण्ड मी दे रहे हों, तो मी ईप्पां है। जब

ख होता

भी नहीं

वेश होता

कि प्रति

। सैक्डो

सम्बन्धी.

मोह है।

वस्तुके

ोता है।

विविध

स्तुओंकी

व करते

या तृप्ति

विषय-

हैं तथा

इ-त्याग-

ा करें।

दोष तो

तुओंका

र्म्बणका

ा त्याग

दिया

तुओंका

करें।

11

मोहको

गदङ

ईष्याः

होकर हो प्रहास प्रेरित हो कर नहीं, यि क कर्तव्यभावनासे प्रेरित हो कर हैं। यह आदर्श स्थिति है। मोह त्यागकर, मनोविकारों को हो कर जितना भी मन पिवत्र कर लेंगे, उतना ही मुख आ कर सकेंगे। मोह त्यागसे ही संतोष हित भी स्वयं आ जाती है। मनको शुद्ध करने के लिये अने क उपाय हैं। अपने मनका क्रिक्षण करना चाहिये। हम जिस प्रकार दर्पणमें अने क वार मुखाकृति देखकर उसके दाग-धव्ये मिटाते हैं, उसी प्रकार अन्तर्मुखी हिके हारा अन्तर्कृति-निरीक्षण (Introspection) करें और अपने दोषों, विकारों को पहिचानकर उनको एक-एक करें, चुन-चुनकर निराकरण कर दें। शरीर-स्नानके हारा केंसे शरीरको शुद्ध करते हैं, मनको भी वैसे ही शुद्ध करें। सत्य मेंचेंने, कहने एवं करने का अभ्यास मनकी शुद्धिमें सहायक है।

अद्भिगीत्राणि ग्रुद्धचन्ति सनः सत्येन ग्रुद्धचिति। शरीर-श्रद्धि होनेपर अथवा स्वच्छ वस्त्र पहिनकर कैसा र्ष होता है ? मनको खच्छ, ग्रुद्ध, निर्मल करनेपर तो अनुपम स्तकी प्राप्ति होती है। मानसिक स्वच्छता होनेपर अनिर्वचनीय ख़का अनुभव होता है जो कि दारीरको पुष्ट करता है। दिन-में ऐसा एक समय निश्चित कर हैं जब हम कार्यव्यस्ततासे कु हों। नित्यप्रति प्रातः, सायं अथवा सोनेसे पूर्व, जब भी हुतिथा हो, तव अकेले बैठकर अपने विचारोंको देखें। थोड़ी देखक अपने साथ भी बैठना सीखें। जव हम अपने ही विचारों-के जुल्सको देखें। एक-एक करके ईर्घ्या, द्वेष, भय, घृणा, विना, विषाद, यश-लालसा, काम,क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि क्किएँको दूर करें। कर्तव्य-निष्ठासे प्रेरित होकर, साहससे परिपूर्ण होतर, इन विकारोंसे ऊपर उठकर कार्य करना सीखें। एक-एक ^{रोफ़}नाशका उपाय सोचें, प्रभुके सहारेसे उसे प्रयत्न करें और ^{षाहस} तथा विश्वास रक्खें । नित्यप्रति आत्मचिन्तन, आत्म-क्रिलेणहारा अपने दोषोंको मनन, विचार तथा प्रयत्नके गा निर्वल कर दें। तभी मनको प्रभुमें एकाग्र कर सकेंगे, किसी भी कार्यमें पूर्ण शक्तिका प्रयोग कर सकेंगे। विकार मन व्या शरीरको निर्वेल बनाते हैं, इनसे मुक्त होनेपर शक्ति अवाधित होकर उग्र हो जाती है।

^{जहाँ} आत्मसुधारका संकल्प है, वहाँ आत्मसुधार ^{अवस्य} होगा।

अपनी तुलना दूसरे व्यक्तिसे न करके अपने विगत और अतमानकी तुलना करें और नित्यप्रति पहलेसे अच्छा होनेका भक्त करें। विकारोंके रहनेपर तो विश्वभरकी सम्पदा, अतुल भहान् पद, असीम विद्या पाकर भी सुख नहीं हो सकता। क्षीणताप्रद मोहादि दोषोंको हटाकर रिक्त मनको पोषक भावोंसे परिपूरित कर देना चाहिये। प्रभुसे प्रेम और जनतारूपी जनार्दनसे प्रेम करना सीखें। इनसे मनको वल मिलेगा। स्वार्थ छोड़कर परमार्थकी ओर वढ़ें, संकीर्णता छोड़कर व्यापकता, उदारता, सहनशीलता सीखें।

अन्तःकरणके ग्रुद्ध होनेपर, अन्तःकरणकी ध्विन जीवन-पथमें प्रकाशपुञ्ज होकर सहायक होती है। पवित्र अन्तःकरणकी ध्विनकी उपेक्षा करके विपरीत आचरण करनेसे मन दुर्वेट होता है।

ग्रुद्धः स्वस्यः सुखी मन सुन्दर स्वास्थ्यका प्रथम रहस्य है। सन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

—मन ही मानवके दुःख-सुखका भी कारण है—
'जितं जगत् केन ? मनो हि येन ।' जिसने मनपर विजय
प्राप्त कर छी, उसने संसारको जीत छिया । मनको सुखी रखनेके छिये पुराने विकारोंका निराक्तरण, यम-नियमद्वारा नये दोषोंका प्रवेश मनमें न होने देना और सावधान रहकर प्रभुस्मरण, जनसेवामें रत रहना आवश्यक है। यम-नियमद्वारा
मनमें नये दोषोंको विल्कुछ न आने दें। सावधानीसे जीवनको
नियमित संयमित रक्खें। उदारचेता होकर प्रभुमिक एवं
जनसेवाका भाव रक्खें। इससे चित्त प्रसन्न होगा।

प्रसन्नचित्त व्यक्तिके शरीरमें शक्ति, स्पूर्ति, बल, ओज, स्वस्थता होती है। चिन्ता आदि क्षीणता करनेवाले विकारीको छोड़कर काम करना सीखें।

मन, वचन, कर्मकी एकता होनी चाहिये। अन्यथा मानव दुर्बल वन जाता है। हम भले ही किसी दूसरेको घोला दे दें किंतु अपने-आपको नहीं दे सकते। मन-वचन-कर्मकी एकता होनेपर मनमें तनाव (Tension) भी उत्पन्न नहीं होता है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

ऐसा होनेपर मानव निर्भय हो जाता है। निर्मीकता ही जीवन है। पुण्यकी राहपर रहनेसे मानव सवल, निर्भय रहता है।

जीवित तथा विगत संतों, महापुरुषोंकी जीवनीसे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। स्वाध्याय (सद्ग्रन्थोंका अनुशीलन) भी मानवके जीवन-पथको ज्ञानप्रभासे आलोकित करता है। प्रकृति-के सौन्द्र्यका संदर्शन, भ्रमण, प्रकृति-सामीप्य भी मानवके मनको उदात्त एवं बलवान बनाता है।

मोह-त्यागके लिये तीन उपायोंका विशेष सहारा मिल सकता है। संसारके तीन महान् धर्मोंमें मोहपर विजय प्राप्त

和

सम

विशे

हिन

माहा

करनेके लिये बताये हुए उपायोंमें साम्य है। हिंदू-धर्ममें व्रत, दान एवं तपका विधान है। इस्लाममें इन्हें रोज़ा, ज़कात, नमाज़ और ईसाई-धर्ममें (Fasting, Charity and Prayer) कहते हैं।

वत मनको संयमित करनेमें विशेष सहायक होता है। वत करनेमें ध्यान रखना चाहिये कि हम केवल स्वादिष्ट भोजन-सामग्रीका ही त्याग न करें बल्कि उसकी इच्छापर भी संयम करें। वतके अन्तमें सरल, सास्विक भोजन करें।

दान करना भी हमारे मोह एवं धनकी वासमाकी मात्रा-को कम करता है। दान करनेसे धनके प्रति हमारे मोहपर नियन्त्रण होता है। हमारे धर्ममें दानका विशेष महत्त्व है। सब धन प्रभुका ही है। हमारे पास जो कुछ भी धन है, हम तो उसके ट्रस्टीमात्र हैं। जनता-जनार्दनकी सेवामें धनका उपयोग करना हमारा परम धर्म है। हम ऊँचा बनकर दान न करें, बल्कि कर्तव्य-पूर्तिके भावसे, निरिममान होकर, अपनी कम-से-कम आवश्यकताओंकी पूर्तिसे बचे हुए शेष धनको सेवा-कार्यमें दे दें। दानमें सेवाभाव अन्तर्निहित होता है। अपनी आवश्यकताओंको कम करते चले जायँ। त्यागपूर्वक भोग करें, जैसा कि ईशावास्य उपनिषद्का उपदेश है। 'त्यागपूर्वक' का एक अर्थ दानपूर्वक भी है। स्वेच्छापूर्वक दान देकर रिक्त होना, कम-से-कम धन अपने उपयोगमें रखना, स्वेच्छागृहीत दैन्य (Voluntary poverty) है, जिसकी प्रशंसा गाँधीजी करते थे। यह मानो स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर बढना है।

मोहपर विजय प्राप्त करनेके लिये प्रभुकी प्रार्थन। परम विरोष सहायक है। मोह-निशा किसी प्रकार भी भगवत्-कृपा-के बिना पार नहीं हो सकती। दुर्वल मानव प्रभुकृपासे ही बलवान् होकर मोह-कटकपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। प्रार्थनाका अर्थ है—(१) प्रभुक्ती शरणागति ग्रहण करके आत्मसमर्पण एवं भक्तिपूर्ण आत्म-निवेदन तथा (२) पूजा (कीर्तन, जप, तप)। पूजाके तीन रूप हैं—कीर्तन, जप तथा तप। पहिले हरिकीर्तन, फिर मानसिक जप, फिर उसमें तिलीन हो जाना—यह क्रम है।

'राम राम रटः राम राम जपः राम राम रमः जीहा रे।'

यह तुलसीदासजीका उपदेश है। प्रभुमें लीन होना ही स्धूलसे सूक्ष्मकी ओर बढ़ना है। लय होनेसे विचारश्रून्यता आती है। श्रून्यतामें आकाश उत्पन्न होता है। आकाश (Vaccum) होनेपर शक्तिका संचार होता है। उस

आकाशमें प्रभुका प्रकाश चमकता है। वतसे अधिक का और दानसे अधिक प्रार्थना करनी चाहिये। इस फ्रास्ट्रे मानव-जीवनकी सफलता एवं सार्थकता प्राप्त होती है। इस प्रकारसे आत्मकल्याणके द्वारा लोककल्याणकी साधना करें।

भोजन-विधिमें व्रतका अन्तिम स्थान है। पृथी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पाँचों तत्त्वोंपर भोजनिषि आधारित है। पृथ्वी-तत्त्वसे सम्बन्धित अन्न है। पृथीना अंग ठोस अथवा स्थूल अन्नमें अधिक होता है। जलतन्त्रे सम्बन्धित दूध, सब्जी, शाक हैं; क्योंकि उनमें अन्नकी अपेक्ष जलका तत्त्व अधिक होता है। सूर्यकी किरणोंसे पक्रनेगरे फलोंमें अभि-तत्त्वकी मात्रा अधिक होती इसी आधारण पालके फलोंमें अधिक शक्ति नहीं होती, चाहे उनका लाद अधिक हो। पत्तियों (पालक, मेथी, सलाद, मूलीकी पत्ती, तुलसी आदि) में वायु-तत्त्व अधिक होता है; क्योंकि वृक्ष, पीपे, अपनी पत्तियोंके द्वारा ही सॉंस छेते हैं। अन्तमें आकाश तस्य है जो व्रत, उपवासके द्वारा उपलब्ध होता है। व्रते उदर खाली होता है और शून्य उत्पन्न होता है। पृथीते आकाशकी ओर ऊपर उठना चाहिये अथवा यों किहुंगे कि स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर आगे वढ़ना चाहिये। पृथ्वीकी अपेक्ष जल-तत्त्व, जलकी अपेक्षा अग्नि-तत्त्व, अग्निकी अपेक्षा वायुज्ञत और वायुकी अपेक्षा आकाश-तत्त्व अधिक वलप्रद है। रोधे दालको धीरे-धीरे कम करके शाक, सब्जी, फलका आहार करें । ठोस भोजन कम बार करें और कम मात्रामें हैं।

ठोस भोजन (अन्न) से शरीरको बल (Strength) की प्राप्ति हो सकती हैं। किंतु शक्ति (Energy) अधिक नहीं प्राप्त होती है। यह एक प्रचलित भ्रम है कि अधिक खातें विशेषतः अधिक अन्न खानेंसे अधिक शक्ति उत्पन्न होती है। वल तथा शक्ति हैं, इससे बलका उत्पादन अवश्य होता है। वल तथा शक्ति में भेद है, बल शक्तिकी अपेक्षा तुच्छ होता है। परम बल्ह्याली व्यक्ति थोड़ी-सी दूर चलकर, जीनेमें चढ़कर थक जाता है। पहलवान लोग अधिक खानेपर जोर डालते हैं। अधिक खानेपर जोर डालते हैं। अधिक खानेपर जोर डालते हैं। अधिक खानेपर होते हैं। जयतक कोई पहलवान व्यायाम करता रहता है। त्रवतक उसे इसका अनुभव नहीं होता । सर्वविदित है कि पहलवानकी वृद्धावस्था दुःखद होती है; क्योंकि वह तब उतना व्यायाम तथा भोजन नहीं कर पाता।

न्यायाम तथा माजन नहां पर पाता। व्रत करनेसे द्यारीरमें दुर्वलता नहीं आती, यद्यपि हेल भास होता है। व्रतसे स्वस्थता, द्युद्धता, द्यक्ति, संजीवन, स्फूर्ति आते हैं। व्रत-कालमें पाचन-क्रियाके स्थानपर 735 -के दान मकारस 1 38 私 | जल,

नविधि

का अंश

अतत्त्वसे

अपेक्षा

क्रनेवाले

धारपर

ा खाद

पत्ती,

, पौधे,

गकाश-

| व्रतसे

पृथ्वीते

हेर्रे कि

अपेक्षा

यु-तत्त्व

रोटी

आहार

th)

ह नहीं

खानेसे

तीहै।

য়ক্তি-

खाली

ा है।

खाने-

उत्पन्न

ताहै

青雨

उतना

和

चन

क्रिया अधिक उम्र एवं प्रयल हो जाती है। शरीरसे गन्दा, विजातीय द्रव्य रेचन-कियाके द्वारा बाहर आया करता है। रेसा प्रतीत होता है मानो दुर्बलता बढ़ रही है, किंतु वास्तव-मु अवाञ्छित, अनावश्यक, विषैला, हानिप्रद विजातीय द्रव्य क्षी बीरे व्रतके द्वारा मल, मृत्र, पसीना आदिके रूपमें शरीर-में निकलकर शरीरको स्वस्थ वनाता है। जो शारीरिक शक्ति हुले भोजनके पाचनमें संलग्न थी, वह त्रतकालमें विजातीय व्यक्तो इकडा करके वाहर प्रक्षिप्त करनेमें व्यस्त हो जाती है। गवन-क्रियामें अत्यधिक शक्तिका प्रयोग होता है। व्रतकालमें गवत-क्रिया परिसमाप्त हो जानेपर साधारण रेचन-क्रिया ही का रहती है, जिससे शरीरकी मशीनरीको विश्राम भी मिलता है।

रेचनमें उखाड़-पछाड़ होनेके कारण शरीरकी दुर्वछता त्या कष्टका मिथ्या आभास होता है। जिस प्रकारसे कि मलके ऊपर एक काईकी परत पड़ जाती है जो कि उसकी ब्द्वु तथा गन्दे स्वरूपको ढके रहती है, किंतु जरा-सा भी उस परतको छेड़ते ही वदवू उठ खड़ी होती है और उसका गता सहप दिखायी पड़ जाता है, उसी प्रकारसे नित्यके बीवनमें तो शरीरमें स्थित गन्दे द्रव्यपर मानो परत पड़ जाती हैं किंतु व्रतसे वह परत फटने लगती है और शरीरमें स्थित गं<mark>र्गी दिखलायी देने लगती है। पर व्रतद्वारा यह धीरे-धीरे</mark> ^{पमाप्त} हो जाती है। जवतक यह विजातीय द्रव्य वाहर न आ ^{ब्य} तवतक विविध कष्ट अनुभव होते हैं। इस प्रकार हम रेखते हैं कि व्रतका स्वास्थ्यके लिये उतना ही महत्त्व है, ^{जितना} किं भोजनका है । भोजनकी सहायता व्रतद्वारा होती है।

👸 बतकी भी एक विधि है, जिस प्रकारसे कि भोजनकी पक विधि है। व्रतमें आराम तथा नीबूके पानी, शहद आदि-म् सहारा ठेना आवश्यक है। व्रतकी अवधिका निर्णय भी क्रिंभज्ञसे पूछकर करना चाहिये। यों कम-से-कम एक सप्ताह-भें एक दिन तो विलकुल निराहार रहकर नीबूके पानी आदि-पर अथवा परम सास्विक, सरल तथा सूक्ष्म भोजनपर निर्भर हिंगा चाहिये । हमारे पूर्वजोंने व्रतोंका कितना अधिक माहातम् वर्णितं किया है।

^{पञ्च}तत्वोंके सिद्धान्तपर आधारित प्राकृतिक चिकित्सामें भी अन्तिम प्रमुख शाखा व्रत (उपवास) है। मानवदेह भिक्तिति विनिर्मित है। प्रकृतिमें भी मानव देहकी सम्यक्

चिफित्साके लिये पाँचों तत्त्व विद्यमान हैं। पञ्चतत्त्वरचित इस देहकी वास्तविक, नैसर्गिक, स्वामाविक, चिकित्सा प्रकृतिके पञ्चतत्त्वोंके द्वारा ही सम्भव है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाशसे क्रमशः सम्बन्धित मिट्टीसे चिकिरसा (Mud treatment etc.), जलसे चिकित्सा (Water treatment), अग्निसे चिकित्सा (Sunbath treatment, Electric treatment), वायुसे चिकित्सा (Airbath, Steambath etc.,), आकाशसे चिकित्सा (Fasting) उपवास है। उपवाससे शारीरमें शून्य आकाश (Vaccum) उत्पन्न होता है। ग्रून्य ही ग्रक्ति-केन्द्र होता है।

हम दिनमें अनेक बार कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं। लगभग पचीस वर्षतक तो दारीरका निर्माण, विकास (Building and development) चलता है। तवतक तो सुन्दर, शक्तिपद, गरिष्ठ भोजनकी आवश्यकता है, किंतु तदनन्तर तो केवल रक्षण (Maintenance) रह जाता है। जिसके लिये उतने भोजनकी आवश्यकता नहीं रहती, तत्र थोड़ा खाना ही उपयुक्त रहता है। किंतु प्राय: हम पूर्ववत् ही खाते रहते हैं। यह बुरा है। कुछ परिश्रम करने-के पश्चात् ही हम भोजन करनेके अधिकारी हैं। प्रातः उठते ही चाय पीना, फिर नहा-धोकर प्रातराश (Breakfast) नाश्ता करना अनिधकार चेष्टा है, जो कि झूठी भूखको तो संतृष्ट करता है किंतु वास्तविक क्षुधाको क्षीण करता है। विशेषतः थोडा परिश्रम करनेवाले व्यक्तियोंको तो नाहता करना ही नहीं चाहिये । नाश्ता छोड़ देनेपर सफाईकी किया (रेचन) बढ़ेगी, जठराग्नि तेज होगी। काम करनेके पश्चात् ही भोजन और फिर विश्राम करना चाहिये और सादे भोजन (मसाले आदि छोड़कर) की ओर प्रवृत्त होना चाहिये। भखके विना ही भोजन करना देहके प्रति अत्याचार है, विना श्रमके भोजन करना अनिधकार चेष्टा है। भोजनके उपरान्त कुछ विश्राम न करना भी शरीरके प्रति कूरता है। नियमित समयपर नियमित विधिसे नियमित भोजन करना चाहिये। प्रातः बहुत हस्का भोजन तथा शामको उचित मात्रामें पर्याप्त भोजन करना चाहिये।

प्राणीको परिश्रम करनेपर ही भोजन पानेका अधिकार है। मानसिक परिश्रमके अतिरिक्त दैहिक श्रम करना अत्यन्त आवस्यक है। व्यायाम भी एक प्रकारका दैहिक श्रम है। योगियोंने मांसपेशियों (Muscles) के व्यायाम (दंड, बैठक, मुगदर आदि) की अपेक्षा स्तायुओं (Nerves) के व्यायाम (यौगिक आसन, प्राणायाम आदि) को अधिक पूर्ण तथा श्रेयस्कर समझा है। पहलवानीसे बल और योगाभ्याससे शक्तिकी दृद्धि होती है। शक्ति ही दीर्घ जीवन तथा स्फूर्ति देती है।

अन्तमें विश्रामका महत्त्व है। विश्राम ही मानवको पुनः

बलशाली बना देता है। उचित समयपर पर्याप्त निद्रा प्राप्त करना श्रेष्ठ विश्राम है। देवीभागवतमें तो निद्राक्षे कल्याणदात्री देवी और परमात्माके सहश सुखदा माना है। भी द्रां ब्रह्मतुलां परमात्माके सहश

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता। नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमो नमः॥

अपने दोषों और भूलोंका हम सदा ध्यान रक्वें

(ठेखक--श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

प्रकृतिकी लील बड़ी विचित्र है। प्रत्येक व्यक्तिमें कुछ विशेषताएँ होती हैं, तो कुछ किमयाँ भी । सम्पूर्ण गुणोंका आकर तो परमात्माको माना गया है, यद्यपि इस कथनमें भी एक दृष्टिविशेष ही काम कर रही है। अन्य दृष्टिवाले, परमात्मामें भी कभी या दोष वतला सकते हैं। इसी तरह केवल किमयाँ ही किमयाँ हों 'और विशेषता कुछ भी न हो ऐसा भी व्यक्ति कोई न मिलेगा । विचार करनेपर उन किमयों में व्यक्ति कोई न मिलेगा । विचार करनेपर उन किमयों में व्यक्ति कोई न किनेगले व्यक्तिमें भी कुछ-न-कुछ विशेषता दिखायी दे देगी । कई बार तो वे किमयाँ भी विशेषताका रूप धारण कर लेती हैं। अतः हमारे सामने यह समस्या उपस्थित होती है कि अपने जीवनको हम कैसे उन्नत बनावें ? चूँकि प्रत्येक प्राणी जिस स्थितिमें वह है, उससे अच्छी उन्नत स्थितिमें होनेका प्रयत्न करता रहता है, पर सफलता थोड़े-से ही व्यक्तियोंको मिल पाती है, अतः इसपर गम्भीर मननकी जरूरत है।

सवसे पहली बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको किसी-न-किसी गुणका इतने अच्छे रूपमें विकास कर लेना चाहिये कि जिससे उसकी दूसरी किमयाँ अप्रधान (गौण) हो जायँ— दव जायँ। वास्तवमें किसी एक भी गुण या विशेषताका अच्छे रूपमें विकास किया जा सके तो जीवनमें वह बहुत बड़ी सिद्धि है। उस एक गुणके साथ और भी बहुत-से गुण खिंचे हुए चल आयेंगे। कई गुण जो एक दूसरेसे सम्बन्धित होते हैं, छनका तो उस विशेष गुणके साथ स्वयं विकास हो जाता है। साधारण मात्रामें जो गुण सभी या बहुत-से व्यक्तियोंमें पाये जाते हैं, उनकी प्राप्तिसे तो कोई व्यक्ति यश और लाभ साधारणरूपमें ही पा सकता है। पर उसी गुणका विकास यदि दूसरोंकी अपेक्षा अधिक मात्रामें किया जा सके तो उसे अनेक प्रकारके लाभ, आर्थिक उन्नति और यश आदि अवश्य मिलेंगे।

गुणोंके विकासका एक सीधा एवं सरल उपाय है हि जिन व्यक्तियों में उन गुणोंका अधिक विकास हुआ हो, उने उनके प्राप्त होनेके कारणोंको हम खोजें, एवं जानें और साथ ही अपनेमें कौन-सी कमियाँ हैं, जिसके कारण हम इच्छित विकास नहीं कर पा रहे हैं, इसपर भी गम्भीरतासे विचार करें । फिर साधक कारणोंको अपनायें और याक कारणोंका परित्याग कर दें । अपनी कमीको दूर किये विना हम उन्नत नहीं हो सकते । कमियाँ अते प्रकारकी होती हैं--शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, आस्कि बौद्धिक, नैतिक आदि । सबसे पहली कमी है-आत्मविश्वार का न होना या कम होना । किसी भी कार्यको समन्न करके लिये सबसे पहले आत्मविश्वास होना चाहिये कि दूसरे व्यक्ति जय इस तरहसे उन्नति कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता, प्रयत करनेपर अवस्य कर सकूँगा । दृढ़ संकल किसी भी कार्यकी सिद्धिके लिये अत्यन्त आवश्यक है। सिद्धि पानेके लिये मनोवलको बढ़ाना होगा, विखरी हुई शितवींकी बटोरकर एकत्रित करना होगा।

दूसरी आवस्यकता है सतत अभ्यासकी। किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करनेके लिये उसके अनुकूल अभ्यासकी आवस्यकता होती ही है। जितना अधिक अभ्यास किया जायगा, कठिन कार्य भी सुगम होता चला जायगा; क्योंकि कोई भी काम नया-नया प्रारम्भ करते समय एक बार कठिन-सा लगता है और बीच-बीचमें कठिनाइयाँ उपस्ति होकर मनोवलको कमजोर बना देती हैं, अभ्यासको आग बढ़ानेमें विम्न-बाधाएँ उपस्थित करती हैं। बहुत-से काम केवल दो-चार बार कर लेनेसे ही सफल नहीं हो पाते, उसके लिय दीर्चकालके निरन्तर अभ्यासकी आवस्यकता होती है। बहु दीर्चकालके निरन्तर अभ्यासकी आवस्यकता होती है। बहु हम शारीरिक बल बढ़ाना चाहते हों तो हमें काफी दिनोंतक द्रा पाप्त निद्राको गना है।

ग इंद =

न है कि ो, उनमे गैर साथ इच्छित

विचार वाधक हो दूर अनेक

मात्मिक, विश्वास-करनेके

रं व्यक्ति नहीं कर संकल्प

। सिंदि त्तयोंको

ती कार्य-धासकी 柳

神神 पिखित

आग विवल 市局市

। यदि

福店

ब्यायाम या कसरत करनी होगी । व्यायाम करते समय पहले कुछ कप्टका अनुभव भी होगा, पर दृढ़ मनोवलसे उस अम्यासको चालू रक्खा जायगा तो देर-सवेर उस अभ्यासके अनुरूप सिद्धि या सफलता अवश्य मिलेगी । इसलिये यदि हममें सतत एवं आवश्यक परिमाणमें अभ्यासकी कमी है, तो उस कमीको भी मिटाना आवश्यक हो जाता है।

यि हमें संगीतज्ञ वनना है तो बहुत दिनोंतक स्वर-माप्रना करनी होगी और जवतक कोई विशेषता उस क्षेत्रमें इमें प्राप्त न हो जाय, तयतक उस अभ्यासको जारी रखना होगा; क्योंकि साधारण गाने-वजानेवाले तो 'बहत' व्यक्ति है, उनके स्तरसे भी ऊँचे उठे विना हम ुजो अधिक आदर, नाम या धन कमाना चाहते हैं, वह प्राप्त नहीं कर सकते। विशिष्ट अभ्यासका नाम ही साधना है । यदि साधना करते हुए भी सिद्धि नहीं मिल रही है तो कहीं कुछ कमी या त्रिट अवस्य है और उसे खोजकर उसको दूर करनेका प्रयत्न करना होगा।

व्यक्तियोंमें कुछ योग्यताएँ और विशेषताएँ तो प्रकृति-पदत्त होती हैं और कुछका अर्जन अभ्यासके एवं प्रयत्नके बारा करना पड़ता है। यदि प्रकृति-प्रदत्त विशेषताओंका भी हम ठीकसे उपयोग नहीं करेंगे, तो वे भी कुण्ठित हो जायँगी और यदि हम उनको ठीकसे पहचानकर उनका उपयोग या अम्यास करते रहेंगे तो उनका विकास बहुत अच्छे रूपमें और बहुत शीघ हो सकेगा । कुछ शक्तियाँ प्रकृतिसे कम मिली होती हैं, पर यदि हम निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे तो ^{स्त्री} हुई शक्तियाँ प्रकट हो जायँगी । उनके विकासके लिये हमें कुछ विरोष समय एवं श्रम देना आवश्यक होगा। कुछ योड़ी-सी कमियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनको दूर करना कठिन और असम्भव भी होता है। पर उनकी संख्या बहुत ही नगण्य है। इसलिये हमें हतोत्साह नहीं होना चाहिये। च्यादा अच्छा वहीं है कि हमारेमें जो प्रकृति-प्रदत्त शक्ति, योग्यता, प्रतिभा है, उसके द्वारा जिन-जिन कार्योंमें हम अधिक सफल हो सकते हैं, उनके लिये विशेष प्रयत्न करें। जिस ओर हमारी रुचि भा हो, उस ओर प्रवृत्त होनेसे अधिक शक्ति लगानी पड़ती है और सफलता कम ही मिलती है। अपनी रुचिके कार्योंमें हम ^{शीव} और अधिक सफल हो सकते हैं, यह समीका अनुभव है।

अधिक सफलता प्राप्त करनेके लिये आवश्यक है, सबसे पहले विक करना और उसके वाद तदनुकूल साधन-सामग्री-

को जुटाना और वाधक कारणोंको हटाना । दूसरे, अनुभवी व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आकर उनसे मार्गप्रदर्शन और अनुभव प्राप्त करना। प्रत्येक व्यक्तिको अपने एक या दो-चार ऐसे अनुभवी ग्रुभचिन्तक विचारशील गुरुजन चुनकर निश्चित कर लेने चाहिये जिससे कठिनाइयोंको हल करनेमें मुविधा हो। जब भी हमारा मार्ग अवरुद्ध हो जाय, हम उन व्यक्तियोंके द्वारा मार्ग एवं साहस लेकर वाधाओंको हटानेमें समर्थ हो सकें। इसलिये प्रत्येक धर्म-सम्प्रदायमें गुरुको बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है और कहा गया है कि गुरुके विना ज्ञान प्राप्त नहीं होता ।

प्रत्येक मनुष्य कहीं-न-कहीं भूल कर दैठता है, पर अपनी भूल कहीं नजर नहीं आती, दूसरोंकी भूल पकड़ने या वतलानेमें व्यक्ति वहुत होशियार होता है, पर अपनी भूलको ठीकसे पकड़ना या अनुभव करना, बहुतसे व्यक्तियोंके लिये कठिन कार्य है। इसलिये जीवनमें आत्मावलोकन या आत्म-निरीक्षणकी भी वड़ी आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य करते समय सतर्क या जागरूक रहना आवश्यक होता है; क्योंकि तनिक-सी भूल भी वना-बनाया खेल विगाड़ देती है। कुछ हितचिन्तक मित्र भी ऐसे होने चाहिये जो अपने साथी-का ध्यान उसकी कमी एवं भूलोंके प्रति आकर्षित करते रहें । बहत बार हम अपनी भूलको ठीकसे नहीं समझनेके कारण ही असफल होते हैं। दूसरोंको दोप देते हैं, चिढ़ते हैं, कुट्ते हैं, पर इससे कुछ लाम नहीं होता, नुकसान ही होता है। कई वार तो ऐसा भी होता है कि दूसरा हमें कोई गलती वताये तो हम उसे अपना विरोधी मान बैठते हैं— उसके कहे हुएकी उपेक्षा करते हैं, उसे कुछ अयोग्य वार्ते भी कह देते हैं और उससे झगड़ दैठते हैं । पर चाहिये यह कि दूसरा जो हित-वुद्धिसे हमारी भूल वतलाता हो और विचार करनेपर उसका कहना सही हो तो हमें उसका आदर करना चाहिये, उपकार मानना चाहिये। इसलिये अपनी भूल ज्ञात होनेपर बहुत-से व्यक्ति अपना कान स्वयं पकड़ते हैं —अर्थात् भूलको स्वीकार करते हुए मुझसे यह गलती क्यों हुई और भविष्यमें ऐसी गलती न हो, इसके लिये सजग हो जाते हैं।

गुणोंका विकास करनेके लिये दोषोंको दूर करना आवश्यक है ही; क्योंकि हमारी शक्ति जो दोपोंमें लगी हुई है, वह क्षीण हो रही है। उसे जवतक वहाँसे हटा न छैं, गुणोंके

तैर

कह

उसे

4.4

H

ह्ये

84

विकासमें वेग न आयगा । इस सम्बन्धमें सबसे पहली बात तो यह है कि हम अपने दोषोंको पहचानें और उनको दोषरूप मानें, अन्यथा हम दोषोंको दूर कर ही कैसे सकेंगे ? बहुत बार हम अपने दोषों या भूलोंको स्वीकार ही नहीं करते और दुराग्रहवश उनका समर्थन कर बैठते हैं । बहुत-से दुर्व्यसन हमारी शक्ति और समयको बरबाद कर देते हैं। फिर भी हम उन्हें छोड़ नहीं पाते। इसमें मनोवल-की कमी तो है ही, पर दूसरा कारण यह भी है कि वे दुर्व्यसन इमारे लिये जितने घातक हैं, उनके उतने घातकपनका हम सही अनुभव नहीं कर पाते । यदि हम उन दुर्व्यसनोंसे मुक्त होना चाहते हों तो दो ही उपाय हैं कि हम सत्संगमें, सत्प्रवृत्तियोंमें अधिक-से-अधिक लगे रहें और दुर्व्यसनों तथा दुर्गुणोंको अपने लिये बहुत घातक मानते हुए उनके प्रति अरुचि पैदा करें, पुनः-पुनः पश्चात्ताप करते हुए दृढ़ मनोबल-से उन्हें दूर हटानेमें पूर्णरूपसे कटिबद्ध हो जायँ।

कहा जाता है कि भूल करना मनुष्यका स्वभाव है, पर साथ ही यह भी निश्चय रखिये कि भूलोंका संशोधन करते

रहना भी उसका परम आवश्यक कर्तव्य है और सावधनी रखनेसे भूल करनेके स्वभावपर बहुत कुछ विजय पात की ज सकती है। बहुत-सी भूलें तो अज्ञानता और अन्यमनस्त्राहे कारण होती हैं। अतः अज्ञानताको दूर करनेके लिये एही और सच्चे ज्ञानकी आवश्यकता है तथा अन्यमनस्मताको दूर करनेके लिये एकाग्रता और सावधानीकी आवस्यकता होती हैं। जिस समय इम जो काम करें, मनको उसीमें केन्द्रित रख्तें, अन्य वातोंमें भटकते हुए मनको इधर-उधरसे हटा हैं और पूरी सावधानीसे कार्य करनेमें जुट जायँ । पहले एक कर कुछ कठिनाई होगी—मन इधर-उधर भटकेगा, पर अम्यार और निश्चयके बलपर वे कठिनाइयाँ दूर होकर सही कार्य करना हमारा स्वभाव बन जायगा । क्रमशः भूलें कम होती जायँगी और कार्यमें सफलता बढ़ती जायगी।

यदि हमें अपनेको आदर्श उन्नत और सफल बनाना है तो हमें ऊपर वतलायी हुई बातोंको सदा ध्यानमें रखना चाहिये। ऐसी और भी अनेक बातें हैं, वे चिन्तन और विवेक्से स्कृ हो सकेंगी।

विनय

(रचियता—श्रीबालिकशनजी गर्ग)

ओ अनन्त ! तुम निखिल-नियन्ता ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हो। रघुनन्दन-यदुनन्दन हो, सम्पूर्ण देवि-देवेश्वर हो॥ निराकार-साकार, सगुण-निर्गुण भी हो त्रिगुणेश्वर हो। अज-अनादि-अन्यक्त-अगोचर, सर्वेश्वर परमेश्वर हो॥ अखिलेश्वर ! तुम अविनाशी अजरामर लोकोजागर हो। निर्विकार निर्छिप्त निरंजन भक्त-हृदय नटनागर हो॥ हो, प्रेम-इन्दु हो, अक्षय करुणासागर हो। अतुलित वैभव-ऋद्धि-सिद्धि-पति, सकल शक्तिके आगर हो॥ जगाधार ! पंकिल तमसावृत अन्तस्तल उज्ज्वल कर दो। विनय यही, नीरस जीवनको प्रभो ! प्रेम-पूरित कर दो॥ विनय स्वरूपका उद्बोधन विस्मृत प्राणीको सत्वर दो। भवके भयसे मुक्त करो, सर्वज्ञ विभो ! मंगल वर दो॥



उत्तराखण्डकी यात्रा

(केखक--सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

हालमें ही चीनकी बदनीयतीके कारण हमारी सरकारके क्षन खड़े हुए हैं और उसने इस क्षेत्रमें कुछ फौजी चौकियाँ जगाने, मोटर-मार्ग वनवाने आदि वातोंकी व्यवस्थाकी घोषणा ही है। हमें मालूम हुआ कि सरकार इस ओरके मार्गीको क्रवानेमें अव तेजीसे अग्रसर है और प्रतिमील पचास-प्चास हजार रुपये व्यय कर रही है, ठीक भी है। किसी संकटकी खितिमें मुकाबलेपर खड़े होनेके लिये श्रम-शक्ति और व्ययको नहीं आँका जाना चाहिये। ऐसे समय हमें तो केतल यह देखना पड़ता है कि हम हाथ-पैरोंसे मजबूत हैं या महीं, जिस भूमिपर हम खड़े हैं, वह मजबूत है या नहीं। गरि इन दो बातोंको हमने देख लिया तो हमें यह रेखनेकी जरूरत नहीं रह जाती कि जिससे हमारा मुकाबला है, उससे हम कमजोर हैं या ताकतवर । इस दृष्टिसे हमारी वर्तमान तैयारी सर्वथा उचित और आवश्यक है। किंत्र, इस आकिसक स्थितिमें हमें अतीतके अनुभव और भविष्यकी आराङ्काओंको भी नहीं भुलाना है। आज हम अपनी सुरक्षाकी हिंसे जो भी कदम उठावें, उन्हें पूर्ण रीतिसे सोच-समझकर विवारोंकी काफी गहराईतक आकर निश्चित करें। अन्यथा भीं ऐसा न हो कि ये सुरक्षात्मक कदम हमारी ही अरक्षाके गरण वन जायँ। हिमालय स्वयं इस देशका एक प्रहरी है, उसे निसर्गने ही यह दायित्व सौंपा है। उसपर पहरा बैठाने-श्री आवश्यकता, जो स्वयं प्रहरी है, किस रूपमें और कितनी रिक है। यह हमें देखना है। आज हम लम्बे-लम्बे और चैहे-चौड़े मोटर-मार्ग बना दें, पहाड़ोंको उड़ाकर सैनिक जमानके लिये मैदान बना लें तथा उसकी दुर्गमता हर दृष्टिसे ^{इम कर} उसपर अपना मैदानों-जैसा आधिपत्य जमा लें, तो भायह बात हमारे हितके अनुकूल होगी—यह हमें देखना है। हम विचारकर देखें तो मालूम होगा जब हमारे क्षेत्रमें मड़कें नहीं थीं, हिमालय दुर्गम था। जैसे-जैसे मार्ग बने इसकी र्णिमता कम हुई और अधिकाधिक संख्यामें लोग जाने-आने हो। अव जब कि तेजीसे इस क्षेत्रमें सड़कें बन रही हैं, तो निश्चित है इसकी दुर्गमता सर्वथा छप्त होकर वह सर्वगम्य भ जायमा । इतिहास बताता है, कदाचित् हिमालय अपनी सी हुर्गमताके ही कारण सुरक्षित रहा । उसका दुर्गम रहना

ग ३६

-

नावधानी

न की जा स्किताहे

त्ये सही

स्रताको

ता होती

त रक्तें,

हें और

क बार

अभ्यास

ही कार्य

म होती

ग है तो

त्राहिये।

से स्पष्ट

ही देशके लिये श्रेयस्कर है और सुगम होना क्लेशकारक। हाँ, सैनिक महत्त्वकी सड़कें अवश्य वनायी जायँ। वे सड़कें कम हों, गुप्त मार्गों-जैसी अज्ञात हों और इस प्रकार बनायी जायँ कि शत्रुके लिये जरा-सी देरमें वेकार कर दी जा सकें। इस दृष्टिसे हिमालयकी दुर्गमताको यदि हमने कायम रक्ला तो सदाकी तरह वह तो अजेय रहेगा ही, देशका भी एक सजग प्रहरी बना रहेगा।

इसीके साथ हमारी यह भी राय है कि चीनके कारण आपद्धर्मके रूपमें हमने हिमालयपर जो सैनिक पहरा बैठानेकी ठानी है वह उसकी रक्षाके लिये पर्याप्त नहीं है। इतिहास साक्षी है, जैसा कि हमने अभी कहा, हिमालय स्वयं एक प्रहरी रहा है, एक महान् देशका महान् प्रहरी । उसे कौन हटा पाया है। कौन हटायेगा ? न आजतक वह आगे बढ़ा है न कभी पीछे हटा। अपने प्राकृतरूपमें पुरातन कालसे भारतका एक प्राकृत प्रहरी वना वह अडिगमावसे आज भी खड़ा है। हमारी ही कतिपय भूलोंने उसे आज विवाद-कैदमें डाल दिया है। अब आवश्यकता इस बातकी है कि जिस हिमालयने हर दृष्टिसे सदा हमारी रक्षा की, उसे हम ऑलोंसे ओझल न करें और इस बातका प्रयत करें कि भारतका प्रत्येक बच्चा हिमालयके साथ अपने सम्बन्धको समझ ले। यदि सभी उसका वास्तविक परिचय पा सकें, अपनेको उसके अधिक निकट ला सकें तो निःसंदेह वह सदाकी तरह हमारी रक्षा और गौरव-वृद्धि करता रहेगा । हिमालयसे इस देशके निवासियोंका निकट सम्बन्ध कायम करनेके लिये सरकारको अविलम्ब कुछ क्रियात्मक कद्म उठाना चाहिये। कुछ वातोंका तो सम्बन्ध केवल यात्रा-विषयक है, जिसमें बे साधन जुटाये जायँ जिनसे उत्तराखण्डकी यह कष्टतर यात्रा कुछ सुगम हो और जन-साधारण अधिक-से-अधिक संख्यामें हिमालयके प्रति आकर्षित हो। यात्रा-विषयक सुविधाओंमें हमने अनेक बातें सुझायी हैं, मार्गोंका अच्छा होना, आधुनिक ढंगसे आवासगृहोंका निर्माण, साफ-सफाईकी व्यवस्था, यात्री-मुकामोंपर पानीकी व्यवस्था, चिकित्सालयोंकी स्थापना, सस्ती और अच्छी खाद्यसामग्रीका प्रवन्ध आदि बातें प्रमुख हैं। इस सम्बन्धमें मुननेमें आया है कि शासन ये सारी व्यवस्थाएँ

व्

ि

T

नि

कर्ह

दिग

मार

जुटानेमें तेजीसे अप्रसर हो भी गया है। पर्यटकों या तीर्थ-यात्रियोंके सिवा भी जो प्रधान कार्य उत्तराखण्डके इस बृहद् क्षेत्रमें किये जा सकते हैं, वे हैं-यहाँ छोटे-बड़े गह-उद्योगोंके निर्माणके । इस सम्बन्धमें हमने कुछ मुझाव अभी दिये भी हैं। इसके अतिरिक्त, हमारी रायमें सरकारको कुछ वैज्ञानिक भूनार्भशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, अर्थशास्त्री, रसायनशास्त्री, कृषि-विशेषज्ञ आदि ऐसे विद्वानोंकी एक समिति तुरंत नियुक्त करनी चाहिये जो उत्तराखण्डके इस प्रदेशमें यहाँके लोगोंसे और अधिकारियोंसे सम्पर्क स्थापित कर इस वातका पता लगावे कि भारतके आर्थिक विकासके लिये हिमालयका किन-किन दिशाओंमें उपयोग किया जा सकता है। इन विद्वानोंकी रिपोर्ट मिलनेपर सरकारको यदि कुछ मूल्यवान् तथ्य नजर आवें, जिनकी कि पूरी-पूरी सम्भावना है, तो सरकारको इस क्षेत्रमें विभिन्न विषयोंके कुछ अन्वेषण-केन्द्र भी स्थापित करने चाहिये। इस तरह हम देखेंगे कि निकट भविष्यमें ही हिमालय जो आज भारतका सरताज है, वह केवल ताज या मुकुट ही न रहकर उसका देशके जन-जनके हृदयसे सम्बन्ध हो जायगा।

उत्तराखण्डके इस क्षेत्रमें सरकारने अनेक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कार्य किये हैं जिसकी हम सराहना करेंगे और इस सद्भावनाके लिये उसे वधाई देंगे। इन कार्योंमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो हुई, वह है यात्रियोंको हैजेके टीके लगवानेका प्रवन्ध। हमें वताया गया कि जबसे शासनने यात्रियोंको हैजेका टीका लगवाना अनिवार्य किया है तभीसे यहाँसे हैजेकी वीमारी गायच हो गयी है। इसके विपरीत जय यह व्यवस्था नहीं थी या शिथिल थी तो प्रायः प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं हैजेका प्रकोप हो ही जाता था। इसी तरह चारों धामोंमें तथा कुछ प्रधान चिट्टयोंपर औषधालयोंका प्रबन्ध, डाकघर आदिकी व्यवस्था तथा बदरीनाथ, केदारनाथ-मार्गमें एक स्थानसे दूसरे स्थानकी दूरी, ऊँचाईकी जानकारी, स्वास्थ्य-रक्षासम्बन्धी हिदायतें आदि अनेक उपयोगी वातें की गयी हैं। केदारनाथ-मार्गमें कुछ स्थानोंपर उन स्थानोंकी समुद्र-सतहसे ऊँचाईकी जो सूचना हमें मिली वह अंग्रेजीमें थी। इन सुचनाओंको यहाँ अंग्रेजीमें पाकर हमें कुछ आश्चर्य हुआ, पर जल्दी ही हमारी समझमें भी आ गया कि ये सूचनाएँ वर्तमान सरकारद्वारा निर्देशित न होकर अंग्रेजी सरकारके जमाने की हैं और इन वारह वर्षोंमें हमारी सरकारने इन्हें हिंदीमें देनेका इसलिये कष्ट नहीं उठाया कि उसकी रायमें

कदाचित् इन सूचनाओंका उपयोग विदेशी पर्यटकों माअभे तन्त्रके सरकारी अधिकारियोंमात्रके लिये है। तीर्थयात्री ते जिनकी संख्याके आगे ये विदेशी पर्यटक और सक्ता अधिकारी नगण्य हैं, ज्ञासनकी दृष्टिमें अनपद, अग्निकिके मूर्ख हैं जो केवल अपनी धर्मान्यता या अन्य-श्रद्धाते क्रा ही ये यात्राएँ करते हैं। उन ही दृष्टिमें ऊँचाईनीचाईक्क क्ष भेद ? इसकी उन्हें जरूरत भी क्या ? इन अशिक्षित, अनार, ग्रामवासी, गॅवारोंके वोटसे चुनी सरकार और उसके क्युं इन अधिकारियोंकी इस अवज्ञापूर्ण कृतिके प्रति हमं जो क्षेत्र और दुःख हुआ, वह हम किन शब्दोंमें व्यक्त करें, समझे नहीं आता। अंग्रेज भारतीय किसानों, मजदूरोंक्षे मेक्कें सदृश समझते थे, उसी प्रकार व्यवहार भी करते थे, जर्व चाहे जहाँ हाँक दें। किंतु, अब हमारी ही सरकार, क्षि हमने ही बनाया है, यदि हमारे साथ वही व्यवहार करे तो ग हमारा ही दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है ? अंग्रेजीनी ज़ सूचनाओंको हमारे बारह व्यक्तियोंके दलमें केवल गोविदः दास, रत्नकुमारी और गोविन्दप्रसादने पढ़ा। अस ने व्यक्ति, जो सभी साक्षर थे, विदेशी भाषाके जाता न होते कारण इन तिष्तियों में क्या लिखा है, स्वयं न समझ गये। इसी तरह उन हमारे यात्रियोंको जो पग-पगपर इस निर्क बीहड़ प्रदेशमें सूचनाएँ प्राप्त करनेके अभिलापी रहते हैं जब इन तिष्तियोंपर अपरिचित भाषामें कुछ लिखा उर्दे दिखायी देता है तो क्या यह भी सम्भव नहीं, उनके मन उल्टा भ्रम और संदेह पैदा हो जाय। अतः अधिकारिकी हमारी विनम्र प्रार्थना है कि यदि इन अशिक्षित यात्रियोंई आप सहायता नहीं कर सकते तो भगवान्के लिये अर्क मार्गमें समस्याएँ तो खड़ी न कीजिये। यदि हम सरकाते इस वातके लिये कैफियत लें कि यहाँ एक ओर रें डाकघरों में, सरकारी दफ्तरों में, सचिवालयों में और बहुँक कि फौजी कार्यालयोंमें जय हिंदीका प्रचलन किया जा ख्र^ह तो उत्तराखण्डके इस क्षेत्रमें, जहाँ कि नव्ये प्रतिशत वार्व अंग्रेजी न जाननेवाले ही होते हैं, यह अंग्रेजीका आहमा क्यों ? अंग्रेजी भारतकी मातृभाषा नहीं, दासताकी प्रतीक है। यदि कहा जाय कि अहिंदीभाषी प्रदेशों, विशेषकर दक्षिणे आनेवाले यात्रियोंके कारण अंग्रेजीका प्रयोग किया ग्याहेती यह तर्क भी तथ्यपूर्ण नहीं । दक्षिणके भी सभी यात्री अंभी पढ़े-लिखे नहीं होते । अतः सभीकी सुविधा और सहूरिया की दृष्टिसे उचित तो यही हो कि हिंदीके साथ-साथ अन

[भाग रे।

कों या असे

विध्यात्री हो,

र सरकार्ग

शिक्षित और

दाके कारा

वाईका का

तः अन्पद्

तके कलपुर्वे

मं जो धोम

रें, समझमें

ांको भेड़ी

थे, जब र्ज

कार, जिले

करे तो यः

जिकी इन

उ गोविदः

अन्य नी

ा न होने

झ पाये।

इस निर्जन

रहते हैं।

रेखा उन्हें

नके मनं

वेकारियोंने

यात्रियोधी

त्ये उनके

सरकारत

(रेक्सें)

यहाँतक

जा रहा है

ात यात्री

आडम्बर

ातीय है।

दक्षिणसे

ाया है तो

अंग्रेजी

हू लियत

अत्य

प्रदेशिक भाषाओं में भी ये सूचनाएँ अंकित की जायँ।
सूचनापटोंपर अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ अंग्रेजी भी
सूचनापटोंपर अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ अंग्रेजी भी
सूचनापटोंपर अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ अंग्रेजी भी
सूचनापटोंपर अन्य प्रादेशिक भाषाओं के उन
प्रान वनकर नहीं। पहले हमें अपनी मातृभाषाओं के उन
सूचें स्वाव यात्रियों का ध्यान रखना है जिनके कारण ही ये
सूनाएँ चल रही हैं। फिर देशी या विदेशी उन पर्यटकों का,
जिनका काम अंग्रेजी के बिना नहीं चल सकता। हमारा
विश्वास है हमारी सरकार और उसके अधिकारियों का
साभिमान जगेगा और अपनी मातृभूमिमें अपनी मातृभाषाओंपर अंग्रेजी के आधिपत्यका वे स्वयं कारण न वनेंगे।

जैसा पहले कहा गया है, उत्तराखण्डके इन चारों धामोंके मर्ग चार प्रसिद्ध नदियोंके किनारे-किनारे गये हैं। यस्तोत्तरीका मार्ग यमुनाके किनारे-किनारे, गङ्गोत्तरीका मार्ग गङ्गके किनारे-किनारे, केदारनाथका मार्ग मन्दाकिनीके किनारे-हिनारे और यदरीनाथका मार्ग अलकनन्दाके किनारे-किनारे।इन निर्वियंके दोनों ओर हिमालयकी उत्तङ्ग शिखरावली है। समुद्रकी सतहसे पंद्रह हजार और उससे भी ऊँची शिखरावली सदा हिमसे आच्छादित रहती है। रोष शृङ्गावलीपर कहीं चीड़, क्हीं देवदारके सुन्दर वन हैं, कहीं अन्य प्रकारके तरुओंकी स्थन वृक्षावली । कहीं-कहींके शिखर एकदम तरुरहित क्षिम्बर हैं। ऐसे शिखरोंमें अनेकोंमें विभिन्न वर्णोंके पाषाण है। इन पाषाणोंमें कई अमुककी आभासे चमकते हैं। गुनोत्तरीके मार्गमें चीड़के घते वन हैं, गङ्गोत्तरीके मार्गमें देक्यारके। केदारनाथके मार्गमें सघन वृक्षोंकी छाया है और ^{य्रीनाथके} मार्गकी शृङ्गावली अधिकतर वृक्षोंसे रहित है। चरों मार्गोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी गिरिश्रेणियाँ हैं, चारों ^{मार्गोकी} नदियोंका नीर भी विभिन्न रंगका है। यमुनाका ^{साम,} गङ्गाका इवेत, मन्दाकिनीका हरा और अलकनन्दा-भ नील । हिमानियोंके शृङ्ग भी अलग-अलग प्रकारके हैं। भेदारनाथकी हिमानी श्रृङ्गावली (जो तेईस हजार फुटके लामा ऊँची है) के सहश महान् हिमानी तो हमने कहीं देखीनहीं। रत्नकुमारीने काश्मीरमें भी नहीं और गोविन्ददास-ने सिट्जरलैण्डमें भी नहीं । बदरीनाथके चारों ओरकी हिमानीपर वर्फका छिड़काव-सा हुआ है। हम पहाड़ोंपर भिर्म हैं, परंतु ऐसा भव्य और मनोहर पर्वतीय प्राकृतिक स्य हमते कहीं नहीं देखा । हिमालय कितना सम्पन्ने वैभव-गली तथा महान् है और वह इसी देशके नहीं, परंतु समस्त मित्र प्रकृति-प्रेमियोंको क्यों आकर्षित करता है, इसका इस

यात्रामें हमें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। इसीलिये शायद एक अंग्रेज सर जान स्ट्रेवीने लिखा था—'मैंने अनेक योरपके पार्वत्य प्रदेशोंको देखा, परंतु अपनी महानता; भव्यता तथा सुन्दरूतामें योरपका कोई भी पहाड़ हिमालयकी वरावरी नहीं कर सकता।' इस प्राकृतिक शोभाको निरखते-निरखते मनुष्य केवल अपने शारीरिक कष्टोंको भूल जाता है, इतना ही नहीं, जैसा हमने पहले कहा है, अनेक बार अपने-आपको भी विस्मृत कर देता है। इसका भी हमें स्वयं अनुभव हुआ है।

हम केवल प्राकृतिक सौन्दर्य देखने नहीं गये थे। हम तो गये थे धार्मिक भावनाओंसे भरी तीर्थ-यात्राके लिये। अतः हमें देवदर्शन, देवपूजा आदिमें जो आनन्द आता, वह हमें और गद्गद कर देता। ये देवमन्दिर कव बने थे; इन्हें किसने वनवायाः इनकी मूर्तियाँ कव प्रतिष्ठित हुईं आदि तर्कपूर्ण विचार भी इन दर्शनों और इस पूजनके समय हमारे मनमें न आते । इन निर्गुण पाषाणनिर्मित मन्दिरोंके निकट पहुँचते ही हमें ऐसा लगता जैसे सगुण साक्षात् भगवत्-चरणोंके समीप हम आ गये हैं । हम यदि नास्तिकों-को छोड़ दें, तो आस्तिकोंके लिये भारतीय धर्ममें निर्गण और सगुण दोनों ही प्रकारकी भगवत्-उपासनाएँ हैं। भगवान्के रूप अनन्त हैं, उनकी प्राप्तिके मार्ग अनन्त । पहले शायद तव, योग और यज्ञ ही भगवत्-प्राप्तिके साधन माने जाते थे। लोग कहते हैं, उस कालमें ये स्थल केवल तपोवन थे। केदारवन और वदरीवन आदि, जहाँ ऋषि-महर्षि और संसार-विरक्त पुरुष तपस्या करते थे । कुछ केदारनाथकी भैरव-झाँपसे कूदकर इसिटये आत्महत्या कर लेते थे कि वे उस आत्महत्याके पश्चात् सीधे स्वर्ग जायँगे। यह निर्गुण उपासना ही उस समय थी। सगुण उपासना नहीं। और मूर्तिपूजा तो हिंदू-धर्ममें वादमें आयी।

कुछ लोग मूर्तिपूजाको एक बड़ा भारी पाखण्ड मानते हैं । उनके विचारमें मूर्तिपूजा हिंदू-धर्मका निरा ढाँगमात्र है । हम यह मानते हैं कि निर्गुण उपासना शायद सगुण उपासनासे पुरानी है और मूर्तिपूजा उस सगुण उपासनाके भी बादकी । परंतु, क्या पुरानी सभी बातें नयीसे श्रेष्ठ हैं? यदि यह मान लिया जाय तब तो फिर इस विश्वासकी ही इतिश्री हो जाती है कि मानव विकास-पथसे उन्नतिश्री ओर जा रहा है । हम तो सगुण उपासना और मूर्तिपूजाको निर्गुण उपासनासे श्रेष्ठ इसलिये मानते हैं कि इस पंथने हमारे आध्यात्मक मार्गको सरल कर दिया है ।

सगु

गोखामी तुलसीदासजीने केवल एक चौपाईमें निर्पण उपासनासे सगुण उपासनाका श्रेष्ठत्व सिद्ध कर दिया है। रामचरितमानसके किष्किन्धाकाण्डमें शरद्शृतुका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

पूरुं कमरु सोह सर कैसें। निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जसें॥ जैसा कि ऊपर कहा गया है पूर्वकालमें मोक्ष-प्राप्ति-के प्रधानतया तीन मार्ग थे—तप, यज्ञ और योग। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें इन्हीं तीनों मार्गोंका अनुसरण होता रहा। द्वापरके अन्तमें और कल्यियुगके प्रारम्भमें भक्तिका उदय हुआ। श्रीमद्भागवतमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-प्रकरणमें विस्तारमें इस सम्बन्धमें कथा आधी है।

भगवान् श्रीकृष्णने सगुणरूप परमेश्वरको भजनेवाले अपने भक्तोंको योगियोंसे भी श्रेष्ठ माना है। वे कहते हैं— मच्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते में युक्ततमा मताः॥

(गीता १२।२)

सिंचदानन्दयन निराकार ब्रह्ममें आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश अर्थात् परिश्रम विशेष हैं; क्योंकि देहाभिमानियोंमें अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है, अर्थात् जवतक शरीरमें अभिमान रहता है, तबतक शुद्ध सिंचदानन्दयन, निराकार ब्रह्ममें स्थिति होनी कठिन है। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

क्छेशोऽधिकतरस्तेषामन्यक्तासक्तचेतसाम् । अन्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ इस प्रकार निराकार और निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाके मार्गको—पयान पंथ कृपान कै धारा तथा—

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विबेक । होइ धुनाच्छर न्याय जों पुनि प्रत्यूह अनेक ॥ —कहा गया है।

कदाचित् इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीको भी निर्गुण उपासना नहीं भायी। जेसा कि वे कहते हैं— निर्गुन मत निहें मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्म रिट उर अधिकाई॥ वे आगे कहते हैं—

विविध माँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा॥ भि लोचन विलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निरगुन उपदेसा॥

इस तरह हम देखते हैं, हमारी यह सगुणोपासना और मूर्तिपूजा हमारे धर्ममें कोई पालण्ड या ढोंग बनकर नहीं

आध्यात्मिक प्रेरणाका सरह क्षेत्र आयी, वरं हमारी बनकर आयी है। यह बात केदारनाथ और बदरीनाको ये यात्राएँ और स्पष्ट कर देती हैं। तपोवनोंका, तपसाक्ष समय अब बीत गया । यदि आज केदारनाथ और वर्रीनाथ के मन्दिर न होते, केदारनाथका शिवलिंग और वदरीविशाला मूर्ति न होती तो प्रतिवर्ष वहाँ जो हजारों और लाखें यात्री जाते हैं तथा वहाँसे आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त करके अते हैं वे क्या केवल केदारवन और वदरीवनके दर्शनमात्रको जते! प्राकृतिक दृष्य तो कैलासमें उत्तराखण्डके इन चारों धार्मे भी श्रेष्ठ बताये जाते हैं । परंतु, कैलासमें इस प्रकार मन्दिर और मूर्ति न होनेके कारण कितने लोग कैलावी यात्राको जाते हैं ? यदि यह कहा जाय कि कैलासका मार्ग और भी दुर्गम है, इसलिये वहाँ जानेका लोगोंको साहस नहीं होता, तो रत्नकुमारीसे हमें माळूम हुआ कि कासीसं अमरनाथका मार्ग बहुत ही दुर्गम है, इतनेपर भी अमरनाथ में प्रतिवर्ष राखी-पूर्णिमापर जो मेला लगता है, इजारों यात्री शिवलिंगके दर्शनार्थ इस मेलेमें जाते हैं। अतः सप्टहैि केदारनाथ या बदरीनाथ अथवा अमरनाथ सहसोंबी संख्यामें जो यात्री जाते हैं, वे इन स्थलोंके प्राकृतिक हस्योंके निरीक्षणके लिये नहीं वरं इन देवस्थानों, मिंदर्गे और मूर्तियोंके कारण। यही वात यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरीके सम्बन्धमें भी है। एक निश्चित सानी जहाँ कि हमने यमुनाके दर्शन किये, उसके साकार लाकी देखा, इसी तरह गङ्गोत्तरीमें भागीरथीको, हमने उसकी वहीं उपासना आरम्भ कर दी। इन सरिताओंके वहाँ मित भी वन गये। प्रतीकरूप मन्दिरोंमें गङ्गा और यमुनाक्षी मूर्तियाँ भी बैठा दी गयीं । आज हजारों यात्री यमुनोत्तरी और गङ्गोत्तरी जाते हैं । यमुना और गङ्गाके साकारखल्क दर्शन करते हैं, उनमें स्नान करते हैं, तटपर भजन-पूजनकरी हैं और इनके मन्दिरोंमें जाकर यमुना और गङ्गा-मूर्तिक्ष दर्शन पूजन करते हैं। किंतु, हम देखेंगे तो माल्म होगा कि यात्रियात्र आकर्षण गङ्गा-मन्दिर और यमुना-मन्दिरकी गङ्गामूर्वि और यमुनामूर्तिकी अपेक्षा सम्मुख वहती गङ्गा और यस्नी की निर्मल तेज धाराके प्रति अधिक होता है। इस्म कारण है मन्दिरकी गङ्गामूर्तिमें गङ्गा अन्यक्त हैं, इसी तरह युनी म्तिमं यमुना और निकट ही गङ्गा भी प्रत्यक्ष हैं, और यमुना भी। स्वामाविक है जो प्रत्यक्ष है, सदेह, सरस है, सजीव है, स्वी फलदाता है, उसीकी उपासना, उसीकी सेवा और उसीक

भाग ३६

रल होत

दरीनाथकी

तपस्यका

वद्रीनाथ-

विशालकी

खों यात्री

त्रके आते

को जाते।

रों धामांते

प्रकारके

कैलासकी

सका मार्ग

ाहस नहीं

काश्मीरमं

भमरनाय-

ारों यात्री

पष्ट है कि

सहस्रोंकी

प्राकृतिक

, मन्दिरों

री और

स्थानसे

र रूपको

उसवी

तं मिदा

ी मर्तियाँ

री और

-स्वरूपके

तन करते

दर्शन-

त्रियोष

गङ्गामूर्ति

यमुना-

इसका

यमुना'

नाभी।

सद्यः

उसीकी

क्षेत्र सभी करना चाहेंगे। अव्यक्त, अगोचर, निर्जीव और नीरमके निकट कीन जाना चाहता है। जब इष्ट, अभीष्ट या _{गरिश्वर} प्रत्यक्षमें सामने है तो परदेके पीछे परोक्षमें जानेकी क्रित क्या ? वस, यही वात निर्गुण निराकार ब्रह्म और सुण साकार ब्रह्मके वीच है । निर्गुण स्णोपासनाके लिये है। गङ्गा और यमुनाकी तरह यदि क्रिंण और निराकार ब्रह्मका साक्षात्कार हो सकता, तो गरियोंके समीप जानेकी फिर जरूरत न पड़ती। निर्गुण और क्रितकारकी साधनाके दुष्कर और दुर्गम पथको हमारी साणोपासनाने सहज सुगम और सर्व-सुलभ कर दिया है। इतके द्वारा हमने उस तत्त्व-त्रह्मका अधिक सामीप्य पाया क्षेत्रसभी प्राप्तिके लिये हमारे पूर्वज तत्त्वज्ञानी, योगी, मुनि, लाखी उप्र तपश्चर्या और कष्टकर साधनारत होते थे। जैसा कि हमते प्रस्तुत पुस्तकमें भी प्रसंगानुसार यदा-कदा इस सवस्यमें संक्षेपसे कुछ चर्चा की है, हमारी सगुणोपासनाने हों भीय राममय सब जग जानी का महामन्त्र दिया है। हम सृष्टिके कण-कणमें, अणु-अणुमें भगवत्साक्षात्कार करते है। अतः हमारी दृष्टिमें फिर निर्गुण और निराकार तथा अवक और अगोचर ब्रह्मकी कल्पना नहीं रह जाती।

केदारनाथ, वदरीनाथके और यहाँके कुछ मन्दिरोंके सम्बन्धमें कुछ लोगोंने हमसे कहा कि ये मन्दिर पाण्डवोंके ^{जनवाये} हुए हैं। कुछने वताया जगद्गुरु शंकराचार्यके। 🕫 बोले कि ये गढ़वालके कत्यूरी वंशके शासनकालमें ^{रह्मों} और बारहवीं शताब्दीके वीचमें बने हैं। कुछने तो ^{यह} भी कहा कि गढ़वालके अठारहवीं राताब्दीके भीषण कृपके बाद इनका निर्माण हुआ है। इन मन्दिरोंकी मृतियोंके सम्बन्धमें भी भिन्न-भिन्न वातें कही गयी हैं। किंदित मूर्तियोंके सम्बन्धमें (जिनकी संख्या पर्याप्त है) ^{बहु कहा} गया है कि सन् १७४१, ४२ में रुहेलोंने इन्हें किया है। जो कुछ भी हो, मन्दिर कभीके वने हों, किंवा कभी भी स्थापित हुई हों, आज तो ये मन्दिर और मूर्तियाँ ही उत्तराखण्डके यात्रियोंको आध्यात्मिक प्रेरणा की हैं। अतः हमारी दृष्टिसे केदारवन और वदरीवन तथा ज्ञालण्डके तीर्थ-स्थलोंकी जो महिमा इन वनों, निद्यों, केंचों आदिके कारण थी, वह इन मन्दिरों और मिंदरोंकी मूर्तिपूजाके कारण कहीं बढ़ गयी है। अतः भातिन्धमें इन मन्दिरों और मूर्तिपूजाका प्रवेश उसे भावहारिक रूप देकर उसके विकासका कारण बना है।

फिर यहाँका पंडावर्ग, जिस शुद्धता और सात्विकतासे यह पूजा कराता है, वह सोनेमें सुगन्धका मिश्रण कर देती है। हम इस पंडावर्गकी प्रशंसा इस पुस्तकमें प्रसंगानुसार अनेक स्थलेंपर कर चुके हें और पुस्तकके इस उपसंहारमें भी हम इस वर्गकी भूरि-भूरि प्रशंसा करनेके अपने लोभका संवरण नहीं कर पाते। ये पंडे शुद्ध ब्राह्मण हैं और इनकी पुस्तकों (विहयों) से पता चलता है कि इन स्थानोंके ये सैकड़ों वर्षोंसे पूजक रहे हैं। फिर इनकी पुस्तकोंमें न जाने कितना पुराना इतिहास भी भरा पड़ा है जो एक खोजका विषय हो सकता है।

उत्तराखण्डके इस क्षेत्रका इतिहास बहुत पुराना है। प्राग्-ऐतिहासिक कालमें यह भूमि किंनर, किरात और नाग जातियोंके लोगोंकी मानी जाती थी, जिसका वर्णन महाभारतमें भी आया है। वनपर्वके १४० वें अध्यायमें निम्नलिखित क्लोक आया है—

किराततङ्गणाकीर्णं पुलिन्दशतसंकुलम् । हिमवत्यमरेर्जुप्टं बह्वास्चर्यसमाकुलम् ॥ सुबाहुश्चापि तान् दृष्ट्वा पूजया प्रत्यगृह्णतः । विषयानते कुलिन्दानामीश्वरप्रीतिपूर्वकम् ॥

(१४0 | २६-२७)

किरातोंका वर्णन महाकवि कालिदासने भी अपने महा-काव्य कुमारसम्भवमें किया है। महाकवि भारविका तो किरातार्जुनीय महाकाव्य है ही।

किंतर, किरात और नाग जातिके बाद यहाँके रहने-वालोंके लिये 'खस' शब्दका उपयोग हुआ है। महाभारतमें युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें जो लोग भेंट लेकर आये ये उनमें 'खसों'का भी उल्लेख है।

खसा एकासनात्यहीः प्रद्रा दीर्ववैणवाः।

कौरव-पाण्डव-संग्राममें खस लोगोंने सात्यिकिके सङ्ग युद्ध किया था जिसका उल्लेख महाभारतमें समापर्वमें आया है।

इस प्राग्-ऐतिहासिक कालके बाद इस भूमिका ऐतिहासिक काल आता है। जिस समय यहाँ राकों और हूणोंका भी आधिपत्य हुआ था, हर्षवर्धनकी मृत्युके पश्चात् जब हर्षका साम्राच्य तितर-बितर हुआ तो उसके बाद इस भूमिपर लगभग दो राताब्दीतक अर्थात् सन् ६५० से ८५० ईस्वीतक तिब्बती शासन रहा। कत्यूरी वंश इस क्षेत्रका

잯

देवं

प्रदु

प्रथम ऐतिहासिक शासन है। लेकिन अवतक इस कुलके आरम्भिक नरेशोंके समयका निर्णय नहीं हो सका। कत्यूरी वंशके कुछ ताम्रपत्र भी मिले हैं। इस वंशमें कई प्रतापी राजा हुए। राजकाल वारह सौ ईस्वीतक रहा। वारह सौ ईस्वीमें वह पँवार वंश आया जिसके वावन गढ थे। इन्हीं गढ़ोंके कारण इस क्षेत्रका नाम गढवाल पड़ा।

पँवार वंशका दौर-दौरा सन् १८०० तक रहा । सन् अठारह सौके वाद इस क्षेत्रपर गोरखा-शासनकाल आता है और इसके बाद यह क्षेत्र अंग्रेजी राज्यमें सम्मिलित हुआ।

टिहरीपर अंग्रेजी राज्यके आधिपत्यमें कुछ राजाओंकी रियासर्ते भी थीं, उन्हींमें गढ़वालके कुछ हिस्सेपर टिहरीके राजा राज्य करते थे। सन् १९४७ की पंद्रह अगस्तको अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये । उसके पश्चात् अन्य रियासतोंके सदृश टिह्री रियासतका भी भारतीय गणराज्यमें विलीनीकरण हो गया । इस प्रकार इस क्षेत्रका प्राचीनकालसे अर्वाचीन समयतकका एक लम्बा इतिहास है जो इस पुस्तक-का विषय नहीं।

इस प्राचीन संस्कृतिप्रधान भारत देशमें हिमालय सदा ही सर्वाधिक आकर्षणका केन्द्र रहा है। देशके प्राचीन विद्वानों-ने निम्न पाँच भागोंसे युक्त हिमालयका वर्णन किया है-

खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिता नेपालकूर्माचलौ। केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिरः करमीरसंज्ञोऽन्तिमः ॥

अर्थात् (१) नेपाल, (२) कूर्माचल, (३) केदार, (४) जलंधर और (५) कश्मीर । इन पाँच खण्डोंमेंसे उत्तराखण्डके चारों धाम वर्तमान गढ़वाल तथा टिहरी जिलोंके अन्तर्गत आते हैं । इसके पूर्व-उत्तरमें तिन्वत है, पश्चिम-उत्तरमें हिमाचल प्रदेश और दक्षिण तथा पूर्वमें उत्तर प्रदेशके देहरादून, विजनौर, नैनीताल और अल्मोड़ा जिले हैं। गढ़वालका क्षेत्रफल पाँच हजार छः सौ उन्नीस वर्गमील और टिहरीका क्षेत्रफल चार हजार पाँच सौ सोलह वर्गमील है। गढ़वालकी आवादी लगभग पाँच लाख पैंतीस हजार और टिहरीकी लगभग चार लाख है। गढ़वाल लगभग समूचा पार्वत्य प्रदेशं है, जिसमें ऋषिकेशकी समुद्र सतहसे ऊँचाई एक हजार फुटसे लेकर नन्दादेवी त्रिशूलकी ऊँचाई पन्चीस

हजार छः सौ साठ फुट है। पंद्रह-सोलह हजार फुटके जार की पर्वतश्रेणियाँ सदा हिमसे आच्छादित रहती है। इसे नन्दादेवी और वदरीनाथ—दो श्रेणियाँ हैं । नन्दादेवी और बदरीनाथ दोनों श्रङ्गायलियाँ पूर्व दिशासे पश्चिम दिशानी और करीव पचीस मीलतक फैली हुई हैं। नन्दादेवी शृङ्गावर्थी नन्दादेवी, नन्दाकोट, त्रिशूल जैसे ऊँचे शिखर हैं। यद्रीनाय श्रङ्गावलीमें वदरीनाथ, चौखम्मा और केदारनाथ। ये हो श्रेणियाँ यथार्थमें एक ही श्रेणी हैं। इस श्रेणीको अलक्कारके पीपलकोटीके निकट काटकर दो खण्डोंमें विभक्त कर दियाहै। ये दोनों खण्ड एक दूसरेसे कुछ ही मीलके अन्तरपर गङ्गार्थ धाराकी ओर ढल जाते हैं। इस स्थानको कुछ लोग हिमाल्य द्वार और कुछ क्रोंच-द्वार कहते हैं। केरारनाथके पर्वतिशिवा सवसे ऊँचे हैं । इनमें दो सबसे ऊँचे शिखरांका नाम भारत खण्ड और खरचाखण्ड है । भारतखण्डकी ऊँचाई स्नामा वाईस हजार आठ सौ फुट और खरचाखण्डकी लामा इक्कीस हजार सात सौ फुट है। इन्हीं शिखरोंकी तहैयों केदारनाथका मन्दिर है। इन शिखरोंके दक्षिण पूर्व मंदाकिनी निकली है। वदरीनाथ पर्वतश्रेणीके सर्वोच्च शिखरा नाम चौखम्भा है जिसकी ऊँचाई लगभग बीस हजार फुट है। चौलम्भाकी हिमानीके अलकापुरी नामक खलसे अलकनन्त्र उद्गम है। केदारनाथ और वदरीनाथ यथार्थमें एक दूसी बहुत दूर नहीं है। केवल ढाई कोसका अन्तर है। पंख नदियोंमें वहाव और पहाड़ोंके कटावसे एक जगहसे दूसी जगह जानेमें लगभग सौ मीलका रास्ता तय करना पड़ता है। इसीलिये एक कहावत प्रसिद्ध हो गयी है कि—'नौ दिन की अढ़ाई कोस ।' अर्थात् जैसा कि ऊपर कहा है, ^{यद्यी} केदारनाथ और वदरीनाथकी एक दूसरेसे दूरी केवल अवृह कोस है परंतु एक स्थानसे दूसरे स्थान पहुँचनेमं प्रतिहित यदि दस-ग्यारह मील चला जाय जो यहाँके यात्री प्रायः चल करते हैं तो लगभग सौ मील चलनेके कारण यथार्थमें अहार्र कोसकी दूरीकी यात्रामें नौ दिन लग जाते हैं। गङ्गा और यमुनाके उद्गम भी बहुत दूर नहीं । कहते हैं, तुंगनाथते केदारनाथ, बदरीनाथ, यमुनोत्तरी और गंगीत्तरी वार्षि शिखर दीख पड़ते हैं। इस यात्रामें तुङ्गनाथ न जा सकतेश हमें खेद रहा । (शेष अगले अङ्गर्मे)

गुरु और शिष्य

(लेखक-श्रीलालचन्दजी शर्मा बी०ए०, बी०एड्)

तब और अब

भाग ३१

टके उत्तर

दिवी और

शाकी ओर

र ज्ञावलीं

वद्रीनाथ

। ये दो

लक्तनदाने

दिया है।

र गङ्गारी

हिमाल्य-

वंतशिवा

म भारत-

लामग

लगभग

तलैटीमें

ग पूर्वते

शिखरदा

फुट है।

हनन्दाका

दूसरेते

। परंत ने दूसरी

इता है।

देन चले

यद्यपि

अडाई

प्रतिदिन

: चल

अदाई

। और

गनाधसे

चार्कि

कनेका

इमें)

पाश्चास्य जगत्की मौतिक उन्नतिके आकर्षक एवं प्रवास प्रकाशकी चकाचौंधसे भारतीयोंके नेत्र चौंधिया रहे हैं। हम जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पाश्चास्य रीति-नीतिका अनुकरण करना ही अपना परम कर्तव्य समझने छगे हैं। अब क्षेत्रोंके समान शिक्षाक्षेत्रमें भी यह अन्धानुकरण हो रहा है। गुरु और शिक्षाक्षेत्रमें भी यह अन्धानुकरण हो रहा है। गुरु और शिक्षाक्षेत्रमें भवन सम्बन्धपर विचार करते ही आजके शिक्षालयोंके अनुशासनिवहीन तथा अश्रद्धापूर्ण वातावरणमें भारतकी प्राचीन वाणी 'आचार्यक्षेत्रभव' विद्यत हो जाती है।

आजके अप-टू-डेट (Uptodate) युगमें गुरुमें श्रद्धा खना मूर्वता मानी जाती है। गुरुकी आज्ञाओंका पालन व्यता तथा उसकी सेवा करना प्रतिगामिता तथा भोंदूपन है। जनतक समाजमें ऐसी विचारधारा प्रवाहित होती हों। और ऐसी धारणाओंको पोषक तत्त्व प्राप्त होते रहेंगे, समाज कभी भी उन्नत नहीं हो सकेगा। तैत्तिरीय अनिषद्में 'मातृदेवो भव' और 'पितृदेवो भव'के साथ धानार्यदेवो भव' कहकर आचार्यको माता और पिताके अस्य सान और महत्त्व दिया गया है। इतना ही नहीं, ^{अनेक} स्थानोंपर गुरुकी महिमा ईश्वरसे भी अधिक गायी षी है और यह महिमा-गायन अनायास नहीं है, गुरुके ^{गुल्लिक} महत्त्वने कविके मानसको महिमा-गायनके लिये भेष कर दिया है। गुरुकुलप्रणालीके अनुसार वाल्यावस्था-^{में} गुरु-गृहका सदस्य वनते ही वालकका शिक्षणकार्य भाम हो जाता था। गुरु उसे न केवल अक्षराम्यास, ^{भाषाबोध}, व्याकरणपरिचय, साहित्य-दिग्दर्शन आदि भाता, अपितु यह भी सिखाता था कि सदाचरण, चरित्र, ह्रव-पवित्रता, अतिथि-सेवा, स्वजन-स्नेह, भ्रातृ-भावना, ण्दु:खकातरता और परोपकार किसे कहते हैं। जिलानेकी पद्धति भी उनकी अपनी थी । श्रेष्ठ गुणोंके अनुसार स्वयंके जीवनको ढालकर अपने जीवनमें उन भिन्ने पूरा उतारकर गुरु अपने जीवनसे उन गुणोंकी कियातमक शिक्षा देते थे। उन गुरुजनोंका व्यावहारिक विका पत या उन उरसारा बालकोंके कोमल मनपर एक गहरी छाप छोड़

देता था। इतना ही नहीं, बालकोंका मन और जीवन उनसे सत्येरणा पाकर स्वतः वैसा ही ढलने और वनने लगता था। श्रेष्ठ गुणोंकी आधारशिलापर निर्मित बालकोंके जीवनके भवनका भला और भव्य होना स्वाभाविक है। गुरुजनोंने सरल बालकोंको सद्गुणी युवकके साथ-साथ श्रेष्ठ पण्डित भी बनाया।

वे गुरुजन गुणपुञ्ज ही नहीं, ज्ञानपुञ्ज भी होते थे। ब्रह्मसूत्रका प्रथम सूत्र—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' जिज्ञासु विद्यार्थींके मनकी ज्ञानपिपासाको प्रकट कर रहा है। विद्यार्थीं में विश्वकी रहस्यमयी गुत्थियोंको सुलङ्गाकर परम सत्यको प्राप्त करनेकी उत्कट चाह थी। जिज्ञासासे पूर्ण तथा ज्ञानप्राप्तिके योग्य अधिकारीको पाकर गुरु उसे ज्ञानका उपदेश देते थे और वार्तालाप, विवेचन, विश्लेषण, विचार-विनिमय और गम्भीर चिन्तनके द्वारा छात्र उस ज्ञानको उपलब्ध करते थे। ज्ञानी याज्ञवत्वयके वाक्य 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्लोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इसी तथ्यकी आवृत्ति है।

माता-पिता वालकके जीवनके सुन्द्र निर्माणके लिये वालकोंको उन्हीं आचार्योंके समीप मेजते थे, जो आचारवान् और गुणवान् होते थे। जिज्ञासुआंका जमयट उन्हीं आचार्योंके पास रहता था जो ज्ञानवान् और बुद्धिमान् होते थे। सरल वालकको सद्गुणी युवक और सद्गुणी युवकसे श्रेष्ठ पण्डित—ऐसे समन्वयपूर्ण व्यक्तिका सतत निर्माण करते हुए गुणवान् एवं ज्ञानवान् आचार्य ही भारतके धर्म, ज्ञान, संस्कृति और सम्यताकी ज्योतिको अखण्डित रख सके, जो समयके भीषण झंझावातोंमें भी अकभ्यित रूपसे प्रकाश विकीर्ण करती रही। ऐसे गुरुजनोंके चरणोंमें मस्तकका नत होना तथा उनके लिये 'आचार्यदेवो भव' कहना स्वामाविक ही है।

भारतवर्षमें आजके युगमें भी इस आदर्शसे प्रेरित गुरुजन हैं, किंतु संख्यामें बहुत ही कम। इन आदर्श गुरुजनोंकी आज्ञा मानना, सेवा करना, उनमें श्रद्धा रखना कुछके लिये हास-परिहासकी वस्तु है। यह हास-परिहास भी जनसाधारण नहीं, आधुनिक उच्चित्रक्षालयोंके अधिकांश विद्वजन करते हैं। इनके अनुसार प्राचीन पद्धति या स्थितिकी पुनः प्रतिष्ठा असम्भव है। फिर तो

de

前布

रेशका

अहंका

नहीं स

मंश्या

To.

उनकी नकलपर उनके छात्र अपने-आप हास-परिहाससे बढ़कर उपहास करने लगते हैं। इसमें न उन अध्यापकोंका दोष है और न उनके छात्रोंका। आजका युग मास एजूकेशन (Mass Education) का है। छात्र तथा सम्बन्ध मास कॉनटैक्ट पारस्परिक (Mass Contact) पर आधारित है । छात्रोंका मास एडिमशन (Mass Admission) होता है और अध्यापकोंका मास अपाइंटमेंट (Mass Appoint ment) होता है। बी॰ ए॰ की महर लगी है अतः विद्यार्थी को एम्॰ ए० में प्रवेश पानेका अधिकार है और एम्० ए० की डिग्री मिलनेपर पढ़ानेका अधिकार है। पूर्ण ज्ञानकी प्राप्तिके स्थानपर परीक्षोत्तीर्ण होने या करानेकी अधिक चिन्ता है। एक उतना ही पढ़ना चाहता है और दूसरा उतना ही पढ़ाना चाहता है जिससे परीक्षोत्तीर्ण होने या पढ़ानेमें कठिनाई न हो। अध्यापकने नहीं पढाया अथवा उससे नहीं पढ़ा तो भी विद्यार्थीको निश्चिन्तता है। उत्तीर्ण होनेके लिये अनेक शॉर्ट नोटस (Short notes) से वाजार परिपूर्ण है । ज्ञानके लेने या देनेके लिये जिस रीतिसे अध्यापक तथा छात्र एक छतके नीचे बैठते हैं, वह रीति ही दोषपूर्ण है। स्थिति ऐसी है कि यद्यपि अध्यापक अयोग्य हैं, फिर भी उनकी नियुक्ति हो जानेके कारण ज्ञानप्राप्तिके लिये उनके पास ही जाना होगा और यद्यपि विद्यार्थी अनिधकारी हैं, फिर भी उनको प्रवेश मिल जानेके कारण ज्ञान देना ही पड़ेगा। पाश्चात्त्य प्रणालीपर आधारित आधुनिक शिक्षा-संस्थाओं में ऐसे अवसर अत्यल्प संख्यामें पाये जाते हैं, जब कि अधिकारी छात्रको योग्य अध्यापक और योग्य अध्यापकको अधिकारी छात्र मिले।

सच्चे जिज्ञासु तथा सच्चे ज्ञानीके अभावके अतिरिक्त अधुना अध्ययन-अध्यापनकी प्रेरणा ज्ञानार्जन अथवा ज्ञाना-भिवृद्धि नहीं, विणग्वृत्ति देती है। एकमात्र अर्थ और अर्थप्राप्त्यर्थ अधिकार अथवा एकमात्र कामोपभोग ही सबका छक्ष्य है। इसिल्ये अध्ययन भी अन्य व्यवसायोंके समान एक व्यवसाय वन गया है तथा आधुनिक अध्ययन येनकेनप्रकारेण उपाधिकी प्राप्तिके बाद राजकीय नौकरी पानेका सरल साधन हो गया है। यह भावना ही समाप्त होती चली जा रही है कि अध्ययन या अध्यापन उदरपूर्ति बा भोगप्राप्तिसे कहीं अधिक जीवननिर्माणकी, चारित्रिक उत्थानके द्वारा राष्ट्रोत्थानकी, लोकसंग्रहकी और का प्राप्तिकी एक साधना है। आधुनिक अध्यापक तथा लोक जीवनसे—जहाँपर हास और विलासके, मनोविनोद और मनोर अने अनेक साधन हैं—उस जीवनसे तप्रकार तत्परता तथा संयमकी भावना विछ्ठत होती जा रही है। फलस्वरूप विद्यार्थियोंकी अपने अध्यापकांसे न किया है, न उनके प्रति आदर या श्रद्धा है, और न अध्यापकांसे स्वयंका जीवन तप, संयम, त्याग, ज्ञान, गुण आदि हाँ को उनत हैं जो वे अपने विद्यार्थियोंके आदर और श्रद्धा उन्नत हैं जो वे अपने विद्यार्थियोंके आदर और श्रद्धा वात्र वन सकें।

उचस्तरके शिक्षालयों के शिक्षकों तथा शिक्षाधिंगेंते स्नायुओं में यह विष तो फैल ही रहा है। प्रारम्भिक तथा माध्यमिक विद्यालय भी इससे बच नहीं पाये हैं। उनक्ष भी वातावरण विषाक्त हो चुका है। अधिकांश शिक्षकों ने कर्तव्यके प्रति जागरुकता है, न अपने छात्रोंके प्रति निर्मल स्तेह है और न स्वयं के जीवनमें चारित्रिक या नैति बल है। स्वयं के दोषकों न देखकर अथवा दोषकों दक्षे के लिये यह कहा जाता है कि वालकों में अनुशासन नहीं है, अपने गुरुजनों के प्रति आदर नहीं है आदि। अधुन माता-पिताके सम्मुख यह प्रश्न नहीं है कि इस योष य उस अयोग्य अध्यापकके समीप अपने वालक शिक्षणिं से अथवा नहीं, अपने प्राम या नगरिक विद्यालयमें भेजे अथवा नहीं, जहाँ धी और कोरोजम्ब अद्भुत मिश्रण है।

अध्यापकका कार्य ही यह है कि सम्पर्कमें आनेवाले अथवा समीपस्थ विद्यार्थीं अशानान्धकारको दूर कर्क उसे ज्ञानके आलोकसे आलोकित कर दे। पग्नुत्वसे उन्न उठाकर मनुष्यत्व ही नहीं, देवत्वकी उपलब्धि करा दे। वालक इतने बड़े मनोवैज्ञानिक होते हैं तथा उनका सल हृदय इतना गुणग्राही होता है कि अपने गुरुवर्गि थाह पा लेनेमें उन्हें विलम्य नहीं लगता। जो अध्याप सचमुच स्नेह करता है, परिश्रमसे पढ़ाता है, चित्रमें महान् है, कर्ममें नैतिकतानुमोदित है, ऐसे गुरुवर्गि आदर वे वालक अनायास ही करते हैं। उन अध्यापकी आज्ञाका पालन वे प्रसन्नमनसे करते हैं। ऐसे अध्यापकी आज्ञाका पालन वे प्रसन्नमनसे करते हैं। ऐसे अध्यापकी अज्ञाका पालन वे प्रसन्नमनसे करते हैं। ऐसे अध्यापकी कर्ति कामनासे दूर आदर्शि प्रेरित होकर अपने कर्ति कामनासे दूर आदर्शि प्रेरित होकर विश्व है कि वहीं देश और का पालन करते हैं। यह निश्चित है कि वहीं देश और

संस्था ८]

इही समाज स्थिर रह सकता और उन्नित कर सकता है वहीं समाज स्थिर रह सकता और उन्नित कर सकता है वहीं अध्यापकोंके जीवनमें निर्मित तथा उच्च चिरित्रका परम वहीं ज्ञानका मृत्य है, इन्द्रियोंपर संयम है, लक्ष्यके प्रति करता है, अनुभवोंकी राशि है, शिक्षणकी योग्यता है और असे बालकोंसे पवित्र स्नेह है।

हिसे योग्य आचार्यों के सम्पर्क या सामीप्यमें आकर बाल हिसे योग्य आचार्यों के सम्पर्क या सामीप्यमें आकर बाल होता खुवक विद्यार्थीमें गुरुसे निकटता, चरित्रका विकास, हार्वाक संग्रह, ज्ञानका संचय, श्रद्धाका उदय और जीवनका हियान स्वयं और सहज ही होता है। ऐसे गुणोंसे ही श्रेष्ठाक कल्याण सम्भव है। प्रस्तुत लेखका निष्कर्ष हि नहीं है कि गुरु-शिष्य-सम्यन्धके क्षेत्रके अन्तर्गत प्राचीन मार्तमें सब कुछ श्रेष्ठ था एवं आधुनिक भारतमें सब इह हीन है। किंतु इतना अवश्य है कि श्रेष्ठताकी अधिकता आजकी अपेक्षा तय अधिक थी। साथ ही इस लेखका तात्पर्य यह भी नहीं कि श्रेष्ठताकी प्राप्तिके लिये आधुनिक पद्धतिका पूर्णतया उन्मूलन करके प्राचीन प्रणालीका पूर्णल्पसे पुनः प्रचलन किया जाय। ऐसा करना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। हाँ, शिक्षाके स्तरको उच्च बनानेके लिये अधुना प्रचलित प्रणालीमें प्राचीन श्रेष्ठताकी प्रतिष्ठा करनी आवश्यक है। नियुक्ति-समिति विद्यालयोंमें ईमानदारीके साथ योग्य अध्यापकोंकी नियुक्ति करे और परीक्षणकी विविध पृष्ट विधियोंको अपनाते हुए अध्यापक योग्य विद्यार्थियोंको परीक्षामें उत्तीर्ण करें। जवतक आधुनिक प्रणालीमें प्राचीन काल-जेसी श्रेष्ठताका (उससे अधिक नहीं तो कम-से-कम उतनी ही मात्रामें) आविर्माव नहीं होगा, तवतक राष्ट्रकी, राष्ट्रके नागरिकोंकी उन्नति हो सकेगी, इसमें संदेह है।

इन्द्रियनिश्रहकी समस्या

(लेखक--श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)

इन्द्रियनिग्रहका अर्थ इन्द्रियोंको वरामें रखना है। इन्द्रियोंके हो भेद हैं—अन्तःकरण और विहःकरण। मन, बुद्धि, अहंबार और चित्त—इनकी संज्ञा अन्तःकरण है। और दस इन्द्रियोंकी संज्ञा विहःकरण है। अन्तःकरणकी ज्ञां इन्द्रियोंकी कल्पनाभर हम कर सकते हैं, उन्हें देख वहीं सकते। परंतु विहःकरणकी इन्द्रियोंको (उनके गोलकोंको हम देख भी सकते हैं।

अन्तः करणकी इन्द्रियोंमें मन सोचता-विचारता है और बुद्धि उसका निर्णय करती है, उसपर अपना आखिरी फैसला तीहै। कहते हैं—जैसा मनमें आता है, करता है। मन बिगासक ही रहता है, पर बुद्धि उस संज्ञयको दूर कर देती । चित्त या दिल अनुभव करता है या समझता है। बुद्धिकों लोग साधारणरूपसे अभिमान समझते हैं, पर बुद्धि उसे सार्थपरक इन्द्रिय बताता है।

पैर, जननेन्द्रिय और गुरा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके गुण मूर्ख-से-मूर्ख मनुष्य जानता हैं। इसिटिये वतानेका प्रयोजन नहीं है।

इन चौदह इन्द्रियोंको जो अपने वशमें रखता है, वह जितेन्द्रिय कहलाता है। परंतु यह काम वड़ा कठिन है। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि कठिन समझकर यह छोड़ ही दिया जाय। आज-के-आज कोई जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। इसके लिये उसे अभ्यास या साधनाका प्रयोजन होता है। इन्द्रियाँ जंगली जानवर वा नये वेल वा घोड़ेकी तरह वन्धन तुड़ाकर भागना चाहती हैं। जरा-सी लगाम ढीली हुई कि नये घोड़ेकी तरह इन्द्रियाँ मनुष्यको लेकर कहाँ गिरा देंगी, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसलिये लगाम वरावर कड़ी रहनी चाहिये। यही इन्द्रियनिग्रह है। सच तो यह है कि जो इन्द्रियनिग्रह कर लेता है, वह कभी हारता नहीं; क्योंकि मनुष्यको दुर्जल करनेवाली इन्द्रियोंके फेरमें वह नहीं पड़ सकता।

सबसे जबर्दस्त काम जो आदमीको करना चाहिये, वह इन्द्रियनिग्रह ही है। यही मुख्य धर्म है। इसके बाद तो आगेका काम सहज हो जाता है। मनुष्य समाजमें रहता है, जहाँ उसकी इन्द्रियोंको विचलित करने या डिगानेके बडे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गोर जान जार और

ALL WILL

तपश्चर्याः रही है। निकटना ध्यापकोंदे

हियोंने श्रद्धांके आर्थियोंके

मक तथा । उनका अक्षेमें र कि प्रति

कि प्रति या नैतिक को दकने

ासन नहीं । अधुना योग्य या शिक्षणार्य

या नगरके

ोटोजमका आनेवाले सुर करके

त्रसे उत्तर करा दे। का सरल कुरुजनोंकी

अध्यापक चरित्रमे इहजनोंका

यापकोकी व्यापककी न और

कर्तव्यः जीर

संस्था

प्रशिक्षित

献

है। इस

हेन्से भर

साधन होते हैं, इसिलये उसे इन्द्रियोंको अपने वशमें रखने-की बड़ी आवश्यकता होती हैं; क्योंकि यदि सब लोग इन्द्रियों-को बेलगाम। छोड़ दें, तो समाजसे व्यवस्था उठ जाय और सर्वत्र 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'का अंटल साम्राज्य हो जाय। इसिलये स्वार्थरक्षाकी दृष्टिसे भी मनुष्यको इन्द्रियनिग्रह-का प्रयोजन है।

सम्पत्ति और धनके कारण भाई-भाई और वाप-बेटेमें भी लड़ाई हो जाती है और एक दूसरेकी जानका गाहक हो जाता है। महाभारत और रामायणकी घटनाओंका सम्बन्ध सम्पत्तिके सिवा स्त्रीसे भी है। द्रौपदी और सीताके कारण भी अनेक घटनाएँ हुई हैं। जो हो, मनुष्यमें लोभ बहुत होता है। वह अपनी वस्तु तो किसीको देना नहीं चाहता, पर दूसरेकी लेनेकी बराबर इच्छा करता है, इसलिये लोभ बड़े अनर्थकी जड़ है। मनुष्य दूसरेकी स्त्रीको कुट्टिसे भी देखनेमें आगा-पीछा नहीं करता, पर यदि उसकी पत्नीपर कोई कुट्टि डालता है, तो वह नहीं सह सकता। इसीलिये विवाहप्रथा चलायी गयी, जिसमें कोई दूसरेकी पत्नीकी ओर आकर्षित न हो। फिर भी मनुष्य नहीं मानता।

इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं और मनुष्यको अन्धा कर देती हैं, इसीलिये मनुस्मृतिमें कहा है कि मनुष्यको जवान माँ, वहन और लड़कीसे भी एकान्तमें वातचीत न करनी चाहिये। कुछ लोग कहेंगे कि लेखकका मन कलुषित था और अपनी ही नाई वह सबको समझता था, इसलिये उसने ऐसा लिखा है। पर यह उनका भ्रम है। मनुष्यका हृदय कितना दुर्बल होता है, यह बृहस्पित, विश्वामित्र और पराशर-जैसे ऋषि-मुनियोंके आख्यानोंसे स्पष्ट होता है।

हमारी समझसे सदाचारकी जड़ इन्द्रियनिग्रह ही है। इस एक ही साधनासे मनुष्य सदाचारी रह सकता है। इन्द्रियनिग्रहके विना सदाचारका पालन सम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यह सच है कि मनुष्य दण्डके भयसे भी दुराचरणमें प्रवृत्त नहीं होता, पर तभीतक जबतक भय रहता है। परस्त्रीसे छेड़-छाड़ करनेसे पिट जानेका डर सदा बना रहता है। इसके बाद मनुष्यको सदाचारी—कम-से-कम ऊपरी वा दिखाऊ सदाचारी बनानेमें लोकलजा भी काम करती है। प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित मनुष्य लोकलजा, बदनामी और अपमानके भयसे सदाचारी रह जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संसारमें सभी इस नियमसे चलते हैं, परंतु सच्चे सदाचारी लाखोंमें ही मिलते हैं।

बौद्धमतमें पहले स्त्रियोंका स्थान न था। यहाँ कि हिं धर्मकार्यमें स्त्रियोंकी सहायता नहीं ली जाती थी। जातके जाना जाता है कि धार्मिक कार्योंमें स्त्रियाँ इस दंगसे स्वाक्ष देती थीं कि किसीको यह न मालूम हो कि इसमें ब्रिक्त कुछ दिया है; क्योंकि ऐसा पता लगनेसे ही सहायता अलीक हो जाती थी। पीछे अपने मुख्य शिष्य आनन्दके कर्ले खुद्धदेवने स्त्रियोंको भी संघमें लिया, पर साथ ही आनन्दके कहें दिया कि यह धर्म जो बहुत कालतक चलता अ अल्पकालीन ही होगा। मिक्षुओंके संघ तो थे ही, मित्रुक्ति के भी संघ बने और इतिहास बताता है कि इससे किस प्रात अनाचार फैला।

चीनमें भिक्षुसम्प्रदाय भारतके ढंगपर नहीं फैला क्रोंहे वहाँ कौदुम्विक जीवनकी प्रवलता थी। इसलिये क्रिकें व्यवहारके समय चीनी लोग वड़ी-बूढ़ीसे माताके समान क्री वहनके सहश और छोटी स्त्रीसे लड़कीं समान व्यवहार करते हैं। यही भावना प्रत्येक मनुष्यकी होने चाहिये। हमारे देशमें गुजरातियों में वड़ा सुन्दर चलन है क्री वह सबके लिये अनुकरणीय है। वे पुरुषोंको तो भाई क्री स्त्रियोंको वहन (वेन) कहते हैं। नामोंके साथ भाई क्री खहन (बेहन या वेन) शब्द जोड़ देते हैं। इससे क्रिकें प्रति हृदयमें आदर और सम्मानकी वृद्धि होकर कुमान्नी दूर होती है।

नीतिमें कहा है कि दूसरेकी स्त्रीको माता मानो, पर हम कहते हैं कि आप माता, वहन या लड़की कुछ भी न माने पर इतना तो अवश्य मानें कि अपनी पत्नी नहीं है, पर्मि है और इसलिये हमें उसे परायी पत्नीके स्पर्मे है और इसलिये हमें उसे परायी पत्नीके स्पर्मे हे स्वना चाहिये । वस, स्त्रियोंके विषयमें हमारे अंदर में माव आना और इसीको लानेके लिये हम सबको यल करने माव आना और इसीको लानेके लिये हम सबको यल करने चाहिये । जिस दिन हम इतना कर सकेंगे, उसी दिन हमें सदाचारका साम्राच्य स्थापित हो जायगा । हमको यह कार याद रखना चाहिये कि जिस वस्तुके देखनेसे लोग बढ़ता है। उसे देखते रहनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है।

अन्तमें भगवान् बुद्धका यह सदुपदेश भी अप्राविष्ठ न होगा। बुद्धका कहना है—हम अप्रसन्न हैं; क्योंकि हमी इच्छाएँ मूर्खतापूर्ण हैं। यदि हम सुखमय जीवन चिहते हैं वे वह अनायास आ जानेवाळा नहीं है, वरं सुविचारों, सुवाबे और सुकर्मोंसे वह बनाया जा सकता है। शिक्षा और सामाविष्ठ

संस्या ८] भाग ३१

हिंतक हि

जातकी

ने सहायन

समें ब्रिक्ने

ा अस्वीकृत

के कहने

आनन्द्रभे

लता, अव भिक्षुणिवी. किस प्रश्रा

ला; स्रोहि ये स्त्रियों

समान और

लड्की

ध्यकी होती

प्रन है और

भाई और

भाई और

से वियों

क्रभावना

ते, पर हम

न माने

है, परार्व

रूपमें ही

अंदर यही

र्गल करना

देन हममें

यह बराबर

बढता हो।

म अपने हृद्यको पवित्र कर और नैतिक नियमोंका पालन कर स्मित्रा वदल सकते हैं। यदि हम दुःखोंसे छूटना भूत ते हमें अपनी इच्छाशक्ति प्रवल करनी चाहिये; क्षि मनुष्यके खभावमें विचार वा अनु भ्तिकी अपेक्षा इच्छा-इ स्थान वड़ा है।

मंतारमें धर्मके नामपर बहुत मार-काट और युद्ध हुए -क्षेप वास्तवमें वे सब अज्ञानजन्य हैं। जो परलोक और क्रियर नहीं मानते, वे भी सच्चरित्रता और नैतिकताको

मानते हैं और इसिट्ये नैतिकताको ही मानवधर्म कहा जाय, तो अनुचित न होगा। मनुष्य और गृहस्यजीवन समाज-शास्त्रके नियमोंपर ही अतिवाहित किया जाता है, जिसका मुख्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार आचरण करनेके लिये स्वतन्त्र है, जबतक वह दूसरेकी स्वतन्त्रतामें बाधा नहीं डालता । इसके अनुसार रुचि-विचित्रताके कारण अनेक धर्म वा पंथ उत्पन्न हुए हैं, जिनपर लोग स्वतन्त्रतापूर्वक चलते हैं।

हमें अशक्तसे शक्त बनानेवाला हमारा साहित्य

(ठेखक--पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

आजके वैज्ञानिक कहते हैं-

(क) निर्वलोंके रहनेके लिये संसारमें कोई स्थान

(ल) प्रकृति चुन-चुनकर निर्वलोंको समाप्त करती

(ग) योग्यतम प्राणी ही जीवन-संवर्षमें ठहर सकते हैं। गारांश यह है कि जीवनके लिये शक्ति चाहिये। परंतु द्भात भारतके लिये अभिनव नहीं । भारतीय एक श्लीक्षित भ्रामीण भी जानता है कि शक्ति-हीन मनुष्य सदैव कि गुँहमें रहता है, वह न जाने कब समाप्त हो जाय। भतिय ऋषि-मुनि तो आजके लाखों वर्ष पहले इस प्राकृतिक क्को समझते थे। उनका अपना एतद्विषयक ऐसा निर्देश-भद्री था—

वीरभोग्या वसुन्धरा। दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशत्त्रया ॥

व्हमी शास्त्रोक्त सत्य है कि शक्ति विश्वव्यापी तत्त्व सका विश्वके सभी विषयोंके साथ अविभाज्य-सम्बन्ध है ।

l. Weak beings have no place in the world. 2. Selection of the nature.

3. Survival of the fittest.

भ प्राप्त वार गुड़ने देवताके प्राप्त जाकर उनसे प्रार्थना की कि भिक्षेत्र सुन्ने खाये जाते हैं। यह सुनकर उन्होंने भी गुड़का व्याप जात है। निष्या। यह आसीण ऐतिहा एतिहायम ही तो है।

भे हें मनुष्य ! भाग्यसे पीछा छुड़ाकर शक्तिभर प्रयत्न कर; ्र भगुष्य ! भाग्यस पाछ। छुज्ञानार राज्य वस्तु भी । इसकी प्रत्येक वस्तु भी ।

धर्म, संस्कृति, दर्शन और विज्ञान-जैसे महतोमहीयान् विषय भी इसके असंस्पष्ट नहीं है। निम्न-लिखित शास्त्रीय प्रमाण इस तथ्यके प्रतिपादक हैं-

या विभित्ते जगत्सर्वमीश्वरेच्छा छलौकिकी। सैव धर्मों हि सुभगे ! नेह कश्चन संशयः॥

योग्यताविष्ठना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः । (पानअल सा०)

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियसाणानि सर्वशः॥ Man is the greatest Radio and is able himself with the higher to connect Force विज्ञान ।

एक अन्यतम वात यह भी कि शक्ति संस्कृत-साहित्यमें परम-तत्त्वके रूपमें निरूपित हुई है। और त्रिदेव तो उसमें भगवतीशक्तिके भिक्षक-से जान पडते हैं-

या मूळप्रकृतिः सुक्ष्मा जगद्म्बा सनातनी । सैव साक्षात् परं बहा सास्माकं देवतापि च॥ (दे० भा०)

- १. जो ईश्वरेच्छा अलैकिकी शक्ति सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है--वहीं धर्म है।
- २. धर्मीकी योग्यता-युक्त शक्ति ही धर्म है। (पातक्षल-योग साधना।)
 - ३. प्रकृतिकी शक्तिद्वारा ही जगत्के सब कार्य होते हैं। (गीता)
- ४. मनुष्यमें ऐसी भी सामर्थ्य है कि वह साधनाद्वारा अपना सम्बन्ध भगवान्की अलौकिक शिनिके साथ स्थापित कर सकता है। (अध्यात्मविश्चान)
 - ५. जो सनातन सूक्ष्म मूल शक्ति है वही परमात्मा है।

अप्रसिंगिक कि हमारी

हिते हैं तो ं, सुशह्यें

साधनाते

मंख्या

कुछ ही

स्म् मण्ड

3

सर्वभी

रेसा व

भगवान

新 3

र्जाव्य-

मैं तुहे

धर्मराउ

वा वि

त्वं माया परमा शक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी। तव शक्तया वयं शक्ताः सृष्टिस्थितिरूयादिषु॥³ (तन्त्र० सा०)

शक्तिविषयक यह भी लोकायत असंदिग्ध तथ्य है— सद्ग्रहीनं विधिहीनं न वदन्ति जनाः किल। शक्तिहीनं तथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्॥

(दे० भा०)

इस तरह हम देखते हैं हमारा शास्त्रीय साहित्य शक्तिकी भाँकी लेता, उसपर चँवर दुलता तथा मोर्छल करता प्रतीत होता है, अपितु सृष्टिका सबसे पहला महाप्रन्थ ऋग्वेद शक्ति-प्राण अग्नि शब्दसे ही शुरू होता है। उसका 'वागम्भूणी' सूक्त (१०।१२५) तो शक्ति-महत्त्वका ही अविकल परिचायक है। सम्पूर्ण निगमागम ही शक्ति-महत्त्व-व्याप्य है। विशेषतः देवीभागवतको तो शक्ति-भागवत ही कहना चाहिंगे; क्योंकि यह विश्व-दुर्लभ शक्तिप्राण महापुराण है।

ऐसी शक्ति-घन परम्परा भारतमें शताब्दियोंतक अविच्छिन्न चलती रही। आज भी काव्योंमें एतत्सम्बन्धी चर्चा पढ़नेको मिलती है। महाकवि भारविकृत किरातार्जुनीय महाकाव्य तो इस दिशामें विलक्षण जान पड़ता है। उसका अर्जुन विप्रवेश- घारी इन्द्रके प्रश्नोंके उत्तरमें गीताके अनार्यजुष्ट, अस्वर्ग्य और अकीर्तिकर शब्दोंको अर्द्धचन्द्र देता दीख पड़ता है। उसके वाक्य प्रशासनोचित शक्ति-प्रदर्शनमें एकान्त सत्य-से प्रतीत होते हैं—

अनिर्जयेन द्विषतां यस्यामर्षः प्रशाम्यति । पुरुषोक्तिः कथं तस्मिन् बृहि त्वं हि तपोधन ॥ अजन्मा पुरुषस्तावद् गतासुस्तृणमेव च । यावन्नेपुमिरादत्ते विलुप्तमरिभिर्यक्षः ॥

१. त्रिदेव भी भगवती शक्तिकी कृपासे ही जगत्का सर्जन-विसर्जन और पालन करते हैं। ध्वंसेत हृद्यं सद्यः पराभूतस्य मे परैः। यद्यमर्वः प्रतीकारं भुजालम्बं न लम्भयेत्। तुल्सीके मानसमें लक्ष्मणके शब्द भी न केवल प्रमार ओज एवं तेज-प्रधान हैं, प्रत्युत शक्ति-शून्य हृद्यको भी शक्त वनानेवाले हैं। धनुष-मंगके प्रसंगमें वे क्षात्र-धर्मके क्रिके ऊँचे मंचसे वोलते हैं—

सुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहीं सुमाव न कलु अभिग्रा। जो राउर अनुसासन पावों । कंदुक इव ब्रह्मांड उठाती। काँचे घट जिमि डारों फोरी । सकों मेरु मूलक इव तेते॥ तव प्रताप महिमा मगवाना । को बापुरो पिनाक पुणा॥

तोरों छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बह नाय। जो न करों प्रभु पद सपथ पुनि न घरों घनु हाय॥

ऐसे शक्ति-प्रधान साहित्यिक वातावरणका ही यह क म्परागत पुण्य-प्रताप है कि आज भी हम आर्थोचित स्थक व्यक्तित्व, सबल नीति और सूक्ष्म प्रशासनके पद्यक्षकी भूल नहीं पाये—

स्ववीर्षगुप्ता हि मनोः प्रस्तिः। अत्मोदयः परज्यानिनीतिरिति। परज्यानिनीतिरिति। विकास स्वाद्यः परज्यानिनीतिरिति। विकास स्वाद्यः स्वादः स्वत

१. शत्रुद्वारा पराजित मुझ-जैसेकी तो हृद्रति अवस्य ही हो जाती, यदि हे ब्राह्मण ! प्रतिकार-प्राण क्रोध मेरी सहावती करता ।

२. एक बार युद्धकालमें वर्षासे तंग आकर नेपोलियते सेनापतिसे कहा था——तुम युद्धके लिये प्रयाण करो, वर्षाको बंद के पड़ेगा, सूर्यको निकलना पड़ेगा एवं की चड़को सूबना होगा एक बार उसने एक संधिसमितिमें को धावेशमें आकर खड़े होते हैं हाथमें एक चाँदीका प्याला लेकर तोड़ दिया । बस, कि वर्ष था सब सहमत हो गये। लक्ष्मण तो शेषावतार थे उनके कि तो असम्भव कुछ था ही नहीं, अतएव यह गवोंक्ति नहीं स्वमाविति है।

३. मनुकी संतान दूसरेपर निर्भर नहीं रहती। वह

४. रात्रुकी हानि और अपना लाभ ही राजनीति है।
५. राम्नास्त्रद्वारा सुरक्षित देशमें ही शास वर्व प्र

होती है।

२. साधारणतः त्रिदेव-द्रोही समाजमें उतना अथम नहीं समझा जाता, जितना अशक्त—बलहीन मनुष्य ।

३. अग्निमीले पुरोहितं यशस्यदेवमृत्विजम् ।

४. शत्रुओंका नाश किये बिना ही जिसका क्रोध शान्त हो जाता है उसके लिये यह कैसे कहा जा सकता है कि वह वस्तुतः पुरुष है।

५. मनुष्य जवतक शत्रुद्वारा अपने अपहृत यशका शस्त्रोंद्वारा प्रत्याहरण नहीं करता, तवतक तो वह संसारमें अनुत्पन्न, मृतप्राय पवं तृणसमान ही है।

हंस्य ८]

भाग ३३

-

तै:।

वेत् ॥

ल प्रसार

ो भी शह

के कितने

अभिमान्॥

उठावीं ॥

न तेरि॥

पुराना।

नाथ।

ाथ ॥

यह प

त सशक्त्र

। द्यलण्डले

भी है

ठ-विनिन्दर

वस्य हो बंद

सहायता व

नेपोलियवरे

नि बंद बोर्ग

बना होगा। हे होते हैं

, फिर में उनके लि

वभावोकि है।

ति, वह अपूर्व

तहै। चर्चा प्रवीत कि और तेज एवं बक्रके प्रतीक हैं। महर्षि वशिष्ठसे ग्राजित होकर विश्वामित्र कहते हैं---ब्रह्मतेजोबळं भिग्बलं आत्रियबरं यह भी उल्लेखनीय ऐतिहासिक तथ्य है कि आजसे ्र ही समय पहले भी हमारे यहाँ शौर्य और क्षमताका हुमण्डल था, उसीके तो ये अवशिष्ट चिह्न हैं—

१—रण-गङ्गा

२—धारातीर्थ

३—शरणागतधर्म⁹

इतने सप्रमाण विवेचनसे यह सिद्ध हो जाता है कि मारे पास अय भी शक्ति-प्राण साहित्य है। कमी है केवल मंगीम एवं सार्वजनीन योग्यतम नेतृत्वकी । परंत हा बाब्छित नेतृत्व भी हमारे साहित्यमें विद्यमान है। वह है भागत् वासदेव श्रीकृष्णका लोकोत्तर व्यक्तित्व । देखिये वे ही और कितने बल, विश्वास और अधिकारके साथ र्ज्ञब्यविमूढ अर्जुनसे कहते हैं-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मासेकं शरणं भहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यमि मा श्रवः ॥

अर्जुन ! तू सव धर्मोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जा। हिं सब पारोंसे मुक्त कर दूँगा, सोच मत कर।

ग्रप्राज्य हस्तगत होनेके बाद भगवान् वासुदेवके सफल ^{एं} अनुभूत नेतृत्वका अभिनन्दन करते हुए हर्षोत्फुछ फ्लांजने भी एक वार इस प्रकार कहा था— व विभूतिरनुभावसम्पदां भूयसी

तव यदायतायतिः। **(तर्वगुरुभारभारतं** वर्षमद्य वर्तते सम

हे गोवर्डनधारी ! आपकी कुपा-विभृतिका ही ऋ अम-त्कार है कि आज सम्पूर्ण भारतवर्ष मेरे अधिकारमें है। अप हमारा कर्तव्य है कि इस भगवान्के तथाकथित नेतृखोचित न्यक्तित्वको ही इष्ट मानकर अपने जीवनको प्रकर्षोन्मल बनावै तथा भगवान्के आत्म-विश्वासपरक इन वचनोंको भी न भुलावें---

> भूतानामसि चेतना । उद्भवश्च भविष्यतास्। संयमतामहम् । यमः दण्हो दमयतामसि ॥ नीतिरस्मि जिगीषताम् ।

अन्तमें इतना-सा निवेदन पर्याप्त होगा कि हम भगवती शक्तिकी शास्त्रोचित उपासनामें संलग्न रहें एवं शक्तिको ही बुद्धि-वल उपलक्षणसे ज्ञान-वल, त्राण-वल, धन-वल और दाम-बल समझें एवं विश्व-बल भी। तथा ब्रह्मतेज और क्षात्र-तेज-समन्वित समाज-निर्माणका प्रयत्न करें-

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्जो चरतः सह। तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेयं देवा सहाग्निना ॥ (वेद्)

हमें पूर्ण आशा है, आज भी हमारा यह शक्ति-व्याप्य साहित्य हमें अशक्तसे शक्त बना सकता है यदि हम योग्य-विधिसे इसका मनन-निदिध्यासन करते रहें।

> वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्था विद्वस्य बीजं परमासि माया। समस्तमेतत् देवि सम्मोहितं त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ दु० स०

くるとの

^{१. एक} क्षत्रियके लिये युद्ध गङ्गा-स्नान है। तलवारको धार तीर्थ है तथा शरणागतको रक्षा करना उसका परम धर्म है।

रे. पूर्णावतार योगेश्वर एवं महापुरुष श्रीकृष्णके लिये तो अशक्य कुछ भी नहीं है।

३— उद्भव, चेतना, यम, दण्ड एवं विजय-नीति मेरा ही रूप है।

४--शास्त्रोक्त पुण्य देश वही है जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय विरोध न रखते हुए एक ही उद्देश्यके लिये समानतया प्रयत्न करें।

भे हैं जगदम्बा ! तुम अनन्त वल्रसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्वकी वीजरूपा परा माया हो। देवि ! तुमने इस भारतो मिहित कर रक्खा है। अतः तुम्हारी प्रसन्नतासे ही इस पृथ्वीपर जीवको मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

मयंकर हिंसा-उद्योग !

(बड़े-बड़े वैज्ञानिक कसाईखानोंकी योजना)

एक बार महामना मालवीयजी गोरखपुर प्रधारे थे। वे जब गोरखपुरमें नदीके उस पार मोटरसे उतरे तब उनका चेहरा बहुत उदास था। पूछनेपर पता लगा कि 'रास्तेमें मोटरसे एक गिलहरी मर गयी, इसका उन्हें बड़ा ही दु:ख है और वे प्रायश्चित्त करना चाहते हैं।' महात्मा गाँधीजीकी अहिंसाप्रियता प्रसिद्ध है।

भारतके प्रायः सभी धर्माचार्यों, योगियों, अध्यातम-वादियोंने अहिंसाका प्रतिपादन किया है । अष्टाङ्ग-योगशास्त्रमें तो सबसे पहले साधन यम-नियममें सबसे प्रथम 'अहिंसा'का नाम आया है । ऐसे अहिंसक महापुरुषोंके परम्परागत अहिंसाप्रधान देशमें आज जो घृणित हिंसाका असीम प्रचार हो रहा है, वह सर्वथा अकल्याण-कारी तो है ही, देशके लिये पतनका लक्षण, कलङ्करूप और महान् दु:खका हेतु है ।

कहाँ तो यह आशा की जा रही थी कि अहिंसाप्रिय महात्माजीके अहिंसात्मक प्रयत्नोंसे प्राप्त अशोक-चक्ररूप अहिंसाव्वजी खराज्यमें गोवव तो सर्वथा बंद हो ही जायगा (ऐसी आशा भी दिलायी गयी थी), अन्यान्य प्राणियोंकी हत्या करनेवाले कसाईखाने भी बंद हो जायँगे और कहाँ आज गोवधकी संख्यामें वृद्धिके साथ ही ये बोर हिंसा-उद्योगकी वृणित योजनाएँ। कैसा दुर्दैव है।

वड़े ही दुर्भाग्यकी बात है कि आज भारतकी विकास-योजनाओंमें, शिक्षाके अभ्यासक्रममें, कृषिक्षेत्रमें तथा आहार-समस्यामें—सर्वत्र प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपमें हिंसाको प्रोत्साहन दिया जा रहा है। मछ्छी-उद्योग, मुर्गी-उद्योग, अंडोंका प्रचार, मांसाहारसे लाभका प्रचार इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजनामें मुर्गापर ३ कोह, मछलीपर १० करोड़ तथा सूअरपर २६ लाख हमें खर्च करनेकी योजना थी। पर तीसरी योजनामें मुर्गीप १० करोड़, मछलीपर ३० करोड़ तथा सूअरपर स्व करोड़ रुपया खर्च किया जायगा!! (अहिंसा १ जुलाई)। HE

34

चूने

砨

वैद्याः

मेडक

सावव

प्रत्येव

ल्गार्य

मुनि

प्रंतु

हेर्नवी

न्ति

की जा

मांस-बाजार-रिपोर्ट और राष्ट्रसंघकी 'फुड एंड एप्रीकला ऑरगेनिजेशन' और 'वर्ल्ड हेल्थ ऑरगेनिजेशन' की सिफारिशोंके अनुसार भारत-सरकार मांसका उत्पादन बढ़ाने लिये जोरोंसे प्रयत्नशील है। लाला हरदेवसहायजी लिखते हैं कि कृषि-जाँच-परिषद् तथा गोसंवर्धन-परिषद्के सदसोंकी जानकारीके लिये एक उच्च सरकारी अधिकारीने जे नोट तैयार किया है, उसके अनुसार (अबसे लेका) सन् १९८१ तक १९,२०,६२,५०० मन गोमंस और १५,४६,५०,००० मन मांसका उत्पादन बढ़ानेकी तजवीज है। (पता नहीं यह कहाँतक ठीक है, पर गरि सत्य है तो अत्यन्त भयानक तथा घोर पतनखरूप है!)

कुछ समय पूर्व एक सरकारी रिपोर्टमें मांसिवोषी संस्कारोंको मिटाकर मांसाहारके प्रति छोगोंकी हिंव बढ़ानेकी चेष्टा करनेकी बात कही गयी थी। इसी प्रकारी कुचेष्टाओंका फल है— निरामिषमोंजी घरोंमें भी अंडोंग खुला आहार और कहीं-कहीं मुर्गी-बकरेके मांसका भी प्रचार । आज गोमांस, गायोंके अन्यान्य अङ्ग, चर्छ आदिका निर्यात बढ़ाया जा रहा है । बंदरोंका निर्यात बढ़ाया जा रहा है । बंदरोंका निर्यात मी शुरू हो गया है । अर्थशासियोंके द्वार भिवंदेशी मुद्राकी आवश्यकता' ही इसका कारण बताय भी विदेशी मुद्राकी आवश्यकता' ही इसका कारण बताय जाता है । परंतु इसके साथ ही एक प्रधान हिंपा कारण जाता है । परंतु इसके साथ ही एक प्रधान हिंपा कारण हो, जो अब प्रत्यक्ष हो रहा है, और वह है— हिंपाके हैं, जो अब प्रत्यक्ष हो रहा है, और वह है स्वार आकांक्षा।' प्रति प्रीति तथा हिंसाके प्रचार-प्रसारकी उत्कट आकांक्षा।'

कारोड़,

ाख रुपये

ने मुनीप

(पर स्व

1 (

प्रीकरचा

शन' की

वढ़ानेवे

लिखते हैं

तदस्योंकी

ारीने जो

लेका()

गोमांस

बढ़ानेकी

पर यदि

पहें!)

सविरोधी

ती रुचि

प्रकारकी

अंडोंका

सका भी

, चमड़

नियति

मेद्रकोंका

ने ब्रा

ा वताया

कारण

侵相

र्माक्षा।'

अस दिन एक सरकारी पत्र (कृषि-समाचार) में छपा है किं विशेषज्ञका कहना है कि ताजे पकड़े हुए मेटकोंको बूतें साथ मिला करके जो खाद तैयार की जायगी, ह बहुत बढ़िया किस्मकी खाद होगी। एक खेतकी विवार बढ़ानेके लिये १०० मेढक पर्याप्त हैं। विदेशों में क्षेत्रोंका निर्यात तो हो ही रहा था, अब खादमें जीवित क्ष्मांभा प्रयोग होगा । वेचारे मेढकोंकी मौत आयी !

इस हिंसा और मांस-प्रचारकी योजनामें अब हिंसाके बा बहुं बहुं कारखाने (कसाईखाने) खोळनेकी योजना बीहै, जिसमें मांस तथा प्राओं के अङ्गोंका लाभप्रद और अर्थ-गक उत्पादन होगा । इन कसाईखानोंके लिये चार क्का सोचे गये हैं—मद्रास, दिल्ली, बंबई और कलकत्ता। प्रवेक कसाईखानेमें शायद दो-दो करोड़ रुपयेकी पूँजी बायी जायगी। माछम हुआ है कि मद्रास सरकारने तो भी इस योजनाको स्वीकार नहीं किया है। दिल्ली मुनिसिपल कार्पोरेशनने योजना स्वीकार कर ली थी ^{पं}तु गुड़गाँवके समीप, जहाँकी[.] जमीन इस कार्यके लिये केंबी वात थी, वहाँके हजारों गोभक्त किसानोंके द्वारा स्वाह्मकी धमकी दी जानेपर एक बार यह कार्य रुक ष है। पर बंबई और कलकत्तेमें अभी नहीं रुक षा है। वंबईसे १९ मील दूर देवनार नामक स्थानमें रि६ एकड़ जमीनपर इस यान्त्रिकः वधालय—कसाई-धने निर्माणकी बात है। इसकी योजनाके अनुसार—

(क्) इस कसाईखानेको भारत-सरकार, महाराष्ट्र-भकार और त्रंवईकी स्युनिसिपलिटी चलायेगी।

(ख) इसके छिये छगभग २०००००० (दो भोड़) रपयोंका व्यय करदाताओंकी गाढ़ी कमाईसे िल्ले (कममेंसे किया जायगा।

(ग) इस कसाईखानेमें प्रतिदिन ६००० भेड़ें-हो, ३०० गाय-बैल-भैंस और १०० भार पाय-बल-मस जार के ज्ञान के विकास के प्राप्त व्यवस्था

(घ) कसाईखानेके साथ ही गौ, बैठ, भैंसे तथा अन्यान्य कत्ल किये हुए प्राणियोंके अङ्ग-उपाङ्ग—जैसे जीम, ऑत, खून, हड्डी, चरबी, मांस, आदिके बड़े-बड़े उद्योग विदेशी उद्योगपतियोंके द्वारा चलाये जायँगे।

बताया जाता है कि इसके छिये छगभग ६४ एकड़ जमीनपर काटे जानेवाले पशुओंका वाजार तथा विश्रामालय रहेगा । इसके वाजारमें एक साथ २४००० भेड़ें-वकरे और १२०० भैंसे-बैठ रह सकेंगे। इसी प्रकार विश्रामालयमें भी इतने ही पशु रह सकेंगे।

इसके निर्माण तथा अन्यान्य सुविधाओंके छिये निम्निलिखित रूपसे खर्चका अनुमान किया गया है-पशु-वाजारके लिये ४००००००) (चार्जीस लाख), कसाईखानेके लिये २५००००) (पचीस लाख) और विदेशी मशीन आदि सामानके तथा निर्माण आदिके छिये १,४६०००००) (एक करोड़ छियाठीस ठाख रुपये) लगाये जायँगे। इसके चलानेमें वार्षिक खर्च २२५१०००) (वाईस लाख इक्यावन हजार) रुपये होंगे और वार्षिक आमदनी होगी ३४९४१००) (चौंतीस लाख चौरानबे हजार एक सौ रुपये)। इस हिसावसेवार्षिक १२४११००) (वारह लाख इकतालीस हजार एक सौ) रुपयेका मुनाफा रहेगा !!

मि० वर्नवर्गर्का रिपोर्टमें यह सिफारिश की गयी है कि कसाईखानेमें कल्ल किये गये पशुओंके चमड़े, हड्डी, मांस आदि अवशेषोंको मूल्य चुकाकर खरीद लिया जाय और उनसे अन्यान्य उद्योग चलाये जायँ तो विशेष लाम हो सकता है।

यह भी विदित हुआ है कि इस कसाईखानेके साथ लगभग ६० एकड़ जमीन कत्ल किये गये पशुओंके जीम, आँत, लीवर, किडनी, खून, चरबी, हड्डी, चंमड़ा, खुर और सींग आदिके उद्योगके लिये स्वी गयी है।

यहाँ विदेशी उद्योगपितयोंके सहयोग तथा पूँजीसे अलग-अलग कारखाने खोले जायँगे।

इस प्रकार जब विदेशी उद्योगपितयों के सहयोग और उनकी पूँजीसे पशुओं के अङ्गों के कारखाने चलेंगे, तब यह भी निर्विवाद है कि इन कारखानों के लिये कचा माल देनेकी जिम्मेदारी खाभाविक ही कसाईखानेपर रहेगी और ज्यों-ज्यों यह माँग बढ़ेगी, त्यों-त्यों अधिक-से-अधिक पशुओं का वध करना भी आवश्यक होगा। इसीलिये शायद अभी एक पाली (शिफ्ट) के छः घंटे में उपर्युक्त संख्यामें पशुवधकी योजना बनायी गयी है। फिर, आवश्यकतानुसार एक पाली (शिफ्ट) के बदले दो (शिफ्ट) भी चलायी जा सकती है।

भारतवर्षमें इस प्रकार सरकारी योजनापूर्वक भयानक घोर हिंसामय उद्योग (Industry) चळाये जायँगे । यह कल्पना भी किसीने कभी नहीं की होगी; पर दुर्भाग्यवरा आज वही चीज आँखोंके सामने आ गयी है!

बंबईके प्रस्तावित इस कसाईखानेके विरुद्ध बंबईकी प्रसिद्ध 'जीवदया-मण्डली' के द्वारा 'देवनार कसाईखाना निषेधक समिति' बन चुकी है और उसके द्वारा सराहनीय कार्य हो रहा है।

कलकत्तेके बहुत समीप डानकुनी नामक स्थानमें ऐसे ही यान्त्रिक बृहद् कसाईखानेके निर्माणकी योजना है। उसमें भी पर्याप्त पूँजी लगाकर वैसे ही घृणित वधकाण्डरूप उद्योग चलानेकी योजना है। यहाँ भी मारे हुए पशुओं-के खून, लेण्ड, आँत आदि अझोंसे एड्रेलिन, इन्स्पुलिन,

पिटिट्रिन, थॉरक्सिन, द्वारमोन्स आदि दवाइयाँ कानिकी योजना है।

संतोषकी बात है कि यहाँ के आसपासके बाजन गाँवोंकी प्राय: सभी जनता इस पापमयी योजनाके बिख्त है। कलकत्तेमें इस कसाईखानेके निषेधके लिये एक समिति भी बन चुकी है जिसके द्वारा उत्साहपूर्वक कर्ताई खानेके विरोधमें कार्य हो रहा है। यहाँकी भूमिके सम्बन्धमें हाइकोर्टमें केस भी किया गया है।

हमारी उन-उन स्थानोंकी—जहाँ ये हिंसामय कर्ताः उद्योग स्थापित होनेकी बात है, जनतासे, बंबई त्य कलकत्तेके प्रभावशाली धनी-मानियोंसे, नेताओंसे त्य समस्त भारतवासियोंसे यह विनीत प्रार्थना है कि वे इस प्रकारके दुष्कार्योंका घोर विरोध करें, तन-मन-धनसे निषेक समितियोंकी सहायता करें और ऐसा वातावरण उत्क कर दें जिससे ऐसी हिंसामयी योजनाओंका सफल होना असम्भव हो जाय।

अंग्रेजी शासनके समय एक बार मध्यप्रदेशके लोग नामक स्थानमें तथा पंजाबमें ठाहोरके समीप बड़े क्लाई खाने खोठनेकी योजनाएँ बनायी गयी थीं, परंतु जताने घोर विरोधके कारण वे योजनाएँ असफल हो गयी थीं। उस समय हिंसक ब्रिटिश सत्ता थी, पर आज तो अहंस के प्रतीक अशोकचक्रका ध्वज उड़ानेवाली स्मी अहंसाके सिद्धान्तको माननेवाली अपनी सरकार है। अत: हमें अधिक आशावान् होकर कार्य करना चाहिये। भगवान्की कृपा और निर्दोष किंतु बल्यान् प्रयाह होते सफलता प्राप्त होना कोई बड़ी बात नहीं है।*

^{*} इसमें अधिकांश मसाला बम्बईसे प्रकाशित 'जीवदया' नामक गुजराती पत्रसे लिया गया है।

साधनाकी सिद्धि

(लेखक-शिविस्वेश्वरनारायणजी)

बहुत बार ऐसा प्रश्न उठ खड़ा होता है अथवा अनेक व्यक्ति पूछ बैठते हैं िक मैं िकतने वर्षोंसे साधनमें ज्या हूँ, परंतु मुझे अभीतक कुछ भी सफलता न मिल सकी। तब क्या यह सही है िक साधनाकी ओर जीव ज्या रहे और उसे कुछ आध्यात्मिक लाभ सुलभन हो ? एस तरहका प्रश्न तो सचमुच साधनमार्गमें जुटे हुए विशेष व्यक्तियोंके मनमें एक प्रकार कौत्हुहल पैदा कर देता है।

न ३६

नानेकी

वावन

ने विरुद्

ये एक

कसाई-

भूमिके

कसाई-

वई तया

सि तय

के वे इस

निषेधक

ग उत्पन

तल होना

के लोग

डे कर्साई

न जनताके

गयी थीं।

ने अहिंगा

ही हमार्ग

रकार है।

चिहिये।

यत होतेप

*

बस्तुतः साधन-सम्बन्धी प्रक्रियाकी ओर ध्यान दिया ज्ञय तो इसके रहस्यका भेद ख़ुल जाय । अध्यातम-सुख-लम अथवा इस जीवनको सार्थक बनानेके लिये हमारे शाबकारोंने विभिन्न उपाय बताये हैं। किस प्रकार हम परम सुखके अधिकारी बन सकेंगे । किस प्रकार हमारी मनः स्थिति साधनाकी पृष्ठभूमितक पहुँचनेमें समर्थ हो सकेगी। यदि कुछ गहराईसे इस सम्बन्धमें सोचें तो पता च्छेगा कि साधनकी समप्र प्रक्रिया भगवान्की मधुर शँकी कराकर उसी प्रेमालोकके आनन्दमें हमको पहुँचा देतेमें समर्थ है । इसको हम भगवत्प्राप्ति, मोक्ष, निर्वाण क्हें, अथवा अपनी भाषामें अपनी रुचिके अनुसार जो भी ^{नित}नवीन संज्ञा देते रहें । साधनकी मूळत: सिद्धि भी ^{पही} है। इसी सिद्धिके लिये शास्त्रकार अनेकानेक उपाय काते हैं। उन उपायोंको यथार्थतः कार्यरूपमें न लानेसे हैं हमें भिद्धि नहीं प्राप्त होती, अध्यात्म-लाभ नहीं ^{होता}। भगवान्को बहुत निकट-से-निकट देखनेके छिये म्हात्मा एक जिज्ञासुसे कहते हैं—

(जीवको उस मधुर आनन्दकी प्राप्तिका उपाय ही नहीं सूझता। यदि थोड़े कालके लिये जीव भी उस अपयका अवलम्बन करके देख ले तो उसे उसका मिठास

तव जिज्ञासु प्रश्न करता है— 'वह कौन-सा उपाय है भगवन् ?'

महात्माजी कहते हैं— 'वह उपाय तो बहुत ही सहज है; परंतु इस सहज उपायमें लगन तीव्र होनी चाहिये। सर्वप्रथम जीवको अपना मन, जिसका है, उसे सौंप देना चाहिये।'

जिज्ञासु— (आश्चर्ययुक्त हो) 'यह मन किसका है ?' इसपर महात्मा बोले— 'यह मन भगवान्का है । जिसकी सम्पत्ति हमें धरोहरख़रूप मिली है, उसे सौंप देनेमें तो अति हर्ष होना चाहिये।'

जिज्ञासु— 'जब जीव अपना मन भगवान्**को सीँप** देता है—तब बदलेमें जीवको मिलता क्या है ?'

महातमा—'उठते बैठते, सोते-जागते अथवा हर क्षण अपने प्यारे भगवान्का ही सतत स्मरण—याद ।' इसी उपाययोगको भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

तसात् सर्वेषु कालेषु मामनुसर युध्य च।

प्रय्यर्पितमनोवुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥

(गीता ८। ७)

अर्थात् 'इसिलिये (अर्जुन !) तुम सब समय निरन्तर मेरा स्मरण करो और युद्ध करो । यों मुझमें मन-बुद्धि समर्पण किये हुए तुम निस्संदेह मुझको ही प्राप्त करोंगे।'

जो निरन्तर भगवचिन्तन-स्मरणमें छगे रहते हैं, वे भले ही उदर-निर्वाह हेतु तथा छोकसेवा-हित कार्य-रत पाये जाते हों, परंतु उनका मन तो नित्य-निरन्तर अपने परम प्यारे भगवान्के चरणकमछोंमें ही बँधा रहता है।

जिज्ञासु—- 'यह कैसे हो सकता है कि शरीरसे संसार-के अनेकानेक कार्य भी हों और मन भगवान्में ही रमा

前

रहे । एक ही साथ दो कार्योंका होना तर्क तथा मनोजैज्ञानिक दृष्टिसे भी अनहोनी बात माछूम पड़ रही है । तब भला यह कैसे सम्भव है कि शरीरसे सांसारिक कार्य हों और मनमें भगवान्की चिन्तन-धारा ही प्रवाहित होती रहे ।'

जिज्ञासुके इस प्रश्नपर महात्माजी कुछ क्षण मौन रहे । फिर अपने गम्भीर चिन्तनके बाद बोले—

'यह सब सम्भव है सिर्फ अम्याससे । जिस चीजमें हमारा विशेष आकर्षण होगा, प्रेम होगा, उसीका चिन्तन अपने आप प्रति-क्षण होगा । जब हम कोई सांसारिक कार्य करते हैं तब क्या तन और मन उसीमें बँधे रहते हैं ? बीच-बीचमें हम मनको कुछ सोचनेका अवसर अवस्य देते हैं ।'

जिज्ञासु—'परंतु किसी भी कार्यमें तन्मय हुए बिना वह कार्य जल्दी सिद्ध भी नहीं होता । यदि मुझे वाणी-की खतन्त्रता दें तो मैं यह अवश्य कहूँगा कि बिना किसी कार्यमें तदाकार हुए उस कार्यका सफल होना बिल्कुल ही असम्भव है ।'

महातमाजी—'परंतु यह क्यों भूल जाते हो कि भगविचन्तन किसी कार्यमें बाधक न होकर सहायक ही होता है। यह तो सिर्फ मनको एक आदत डालनेका दृढ़ संकल्प कर लेना है कि हर अवस्था तथा हर कार्यके आगे-पीछे भगवन्नाम और खरूपका चिन्तन अवश्य करना है। यदि इस तरहका अभ्यास निरन्तर बढ़ता जाय तो सम्भव है, कुछ ही कालमें मन अपना आश्रय अनन्त-सुखके भण्डार भगवानके चरणकमलोंमें स्थिर पायेगा।'

जिज्ञासु—'इसका कोई प्रमाण भी है ?'

महात्माजी—'अवश्य । प्रमाण तो अनेकों हैं । महात्मा गांधीका एक लेख छपा था 'हरिजन' नामकी पत्रिकामें । विषय था—अनवरत नाम-साधना । कैसे हम हर हालतमें भगवन्नामका स्मरण रख सकते हैं, उस लेख- को पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है। गांधीजी लिखते हैं के यदि भाषण देता हूँ, अनेकानेक व्यक्तियोंसे बातें करता हूँ, चर्खा चलाता हूँ, अयग्रा कोई भी कार्य करता हूँ, चर्खा चलाता हूँ, अयग्रा कोई भी कार्य करता हूँ, मेरे अंदर नित्य ही हरक्षण राम-नामकी व्यनि निकली रहती है। उन्होंने उसी लेखमें लिखा था—'आप क्ष सकते हैं ऐसा करनेमें समर्थ कैसे हैं ?' उत्तरमें लिखे हैं—'सिर्फ अभ्याससे ही इस अनवरत नाम-सालों समर्थ हो रहा हूँ। आप सब भी ऐसा कर सकते हैं। आवश्यकता है—पूर्ण संकल्पके साथ आदत डालनेकी।

अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अनन्यभिक्त का यही साधन भी है। जिसमें न किसी खास सम्मक्षे निकालनेकी आवश्यकता है और न किसी भी आडम्बर-की। आवश्यकता है सिर्फ हर हालतमें नाम रटनेकी आव डालनेकी। प्रारम्भमें भले ही किठनाइयाँ प्रतीत हों। परंतु बाद में इसमें एक असीम आनन्दकी अनुभूति होंगी जो वाणीका विषय नहीं कि उसे व्यक्त किया जा सके। भिक्तकी चरम साधनाकी सिद्धि भी इसीसे होती है। हम कैसे अपने प्यारे प्रभुको हर अवस्थामें स्मरण ख सकते हैं, श्रीआनन्दधनने बड़े ही सुन्दर ढंगसे इसमें व्यक्त किया है। वे लिखते हैं—

उदर भरण के कारणे गउवाँ बन में जाय। चारों चरे चहुँ दिसि फिरें वाकी सुरत बछरूआ माँय। सात पाँच साहेलियाँ रे हिल मिल पाणीड़े जाय। ताली लिये खल-खल हँसे, वाकी सुरत गगरूआ माँय। नटवा नाचे चौकमें रे, लोक करे लख शोर। बाँस ग्रही घरते चढ़े, बाको चित न चले कहुँ केर। जुवारी-मन जूआ बसे रे, कामीके मन काम। आनन्दचन प्रभु यूँ कहें, तू ले भगवतको नाम।

पेट भरनेके लिये गाय वनमें जाती है और वार् चरती चारों दिशाओंमें फिरती है पर असे मनकी वृत्ति बछड़ेमें लगी रहती है। सात्र्यां सखियाँ मिलकर जल भरने जाती हैं और ग ३६

San San

- 1H

काता

रता क

निक्रती

आप पुष्ठ

नं डिखते

निएममें

ते हैं।

उनेकी।

न्यभक्ति-

समयके

आडम्ब(-

ती आदत त हों।

ति होगी

ा सके।

ती है।

एण ख

ते इसको

जाय।

माँय ॥

जाय।

साँय ॥

शोर।

होर ॥

काम।

नाम ॥

र चारा

उसक

पात-पाँच

हें और

वड़ोंको सिरपर लिये ताली देती खिलखिलाकर हँसती हैं, वर्ते करती हैं। पर उनकी मनकी वृत्ति घड़ेमें रहती है। हर चौकमें नाचता है, लोग शोर मचाते हैं, वह वाँस पकड़कर उसपर चढ़ जाता है पर उसका चित्त क्हीं दूसरी ओर नहीं जाता, उसीमें लगा रहता है। जैसे नुआरीके मनमें जुआ बसता है और कामीके मनमें काम, हो आनन्दघन प्रभु कहते हैं कि तू मन लगाकर भावान्का नाम ले ।

जिस प्रकार लोभी व्यक्तिको दिन-रात, हर क्षण विक्री स्मृति बनी रहती है तथा कामसे जर्जरित व्यक्ति प्रयंक क्षण स्रीका ही स्मरण करता है। इसीके साथ वे क्षी और कामी अपने नियमित कार्योंका सम्पादन भी क्रतेही हैं, उसी प्रकार हर कार्यके पीछे भगवनाम-रूपका

चिन्तन करता रहे तो वह अनवरत साधना उच्च कोटिकी ही हो जायगी। इसीलिये तो महात्मा तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसमें प्रार्थना करते हैं--

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

इस अनन्य साधनामें, जिसमें न किसी खास समय-की आवश्यकता है और न बाहरी किसी जप-तप-त्रतकी, यदि दृढ्तापूर्वक तैलधारावत् अभ्यास किया जाय तो साधकके हृद्यदेशमें भगवान्का मधुर स्थान होगा-मिलन होगा । मधुर भावनाकी सिद्धि होगी । भक्त हर क्षण मानससेवा अर्थात् अष्टयाम सेवामें लग जायगा । उसे फिर बाहरी पूजा-अर्चनाकी आवश्यकता ही न रह जायगी । सम्पूर्ण साधनकी सिद्धि भी इसीमें है ।

गीतावलीमें भक्ति-तत्व

(लेखक--श्रीपरमलालजी गुप्त)

तुल्सीका युग पराधीनताका युग था । हिंदूजातिपर म्हार-पर-प्रहार हो रहे थे । निराशा बढ़ती जा रही थी। भे समय लोगोंकी आँखें स्वभावतः ईश्वर (पराशक्ति) र्भ ओर जाती हैं । अतः बाह्य जीवनमें कोई अवलम्ब न का वे किसी अलौकिक राक्तिका आश्रय ढूँद रहे थे। हिले कवीर आदि संतोंने भगवान्का निर्गुण, अन्यक्त ओचर रूप सामने रक्खा । परंतु यह रूप छोगोंकी छिसे ओझल होनेके कारण वास्तविक उपचार न कर का। उल्टे अटपटी और रहस्यात्मक उक्तियोंसे जनता भाह होने लगी। निर्गुणिये और कर्मकाण्डी अपना महल ^{प्रतिपादित} करनेके लिये विविध उक्तियोंद्वारा साधारण मताको भ्रममें डाल रहे थे। कत्रीर-जैसे भक्तोंने जो वताया, वह साधारण जनताकी समझसे बाहर भार और तुलसीदासने इस अभावकी पूर्ति की और कार्षिक सामने भक्तिका सरल एवं सीधा मार्ग रक्खा।

उन्होंने अव्यक्तके स्थानपर व्यक्तकी साधना एवं प्रेमका प्रतिपादन किया। आचार्य गुक्कका कथन है--- 'इस जगत्-से सर्वया असम्बद्ध किसी अन्यक्त सत्तासे प्रेम करना मनोविज्ञानके अनुसार सर्वथा असम्भव है। सूर एवं तुलसीने इस तथ्यको हृदयंगम करके उस अलैकिक एवं अन्यक्त शक्तिको छोकके बीच अवतरित किया। यही रूप प्रेमके लिये सहज हो सकता था । निर्गुणिये संतोंने बाह्य जगत्में उसकी सत्ताको सर्वथा अखीकार कर दिया था। वे उसकी खोज हृदयमें ही करते थे। कवीरने कहा था---

मोकों कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में। न में मंदिर न में मस्जिद न काबा कैलासमें॥ इसके विरुद्ध गोखामीजीने उसकी सत्ता वाहर मानी-प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिये तें।

अत्

निय

इसी आधारपर उन्होंने अगोचर एवं अव्यक्त ईश्वरको लोकके बीच प्रतिष्ठित कर दिया जो भक्तोंका सहज आलम्बन बन सकता था, जो सदा उनके साथ प्रेम-लीलाएँ कर सकता था, उनका दुःख निवारण करनेमें सहायता कर सकता था। दूसरे शब्दोंमें उनका खामी, सखा, पति, पुत्र आदि सम्बन्धद्वारा उनके सबसे निकट आ सकता था। आलम्बनके इस रूपसे भक्तिकी एक नयी लहर दौड़ गयी, इसने समस्त धार्मिक अंधकारके बीच एक विद्युत्सी चमक पैदा कर दी। आशाके सौरभसे जीवन-वन सुरभित हो उठा।

भक्तिके अङ्ग एवं रागानुगा भक्ति

नारद एवं शाण्डिल्यके भक्तिसूत्रोंमें भक्तिकी दो अवस्थाएँ वतलायी गयी हैं—१-साधन अथवा गौणी भक्ति और २-साध्य अथवा परा भक्ति । प्रथम अवस्थामें भक्ति एक साधनके रूपमें गृहीत होती है और दूसरी अवस्थामें वह स्वयं साध्य होती है । इस भक्तिके दो मेद किये गये हैं—१ वैधी भक्ति और २ रागानुगा भक्ति । वैधी भक्तिमें भक्तिके विधि-विधानोंके वन्धन होते हैं । भागवतमें वैधी या नवधा भक्तिका इस प्रकार विवेचन हुआ है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इसमें नाम-माहात्म्य, रूप-माहात्म्य, सेवा-विधि और मानसिक भावकी प्रधानता होती है। रागानुगा भक्तिमें गुद्ध प्रेमका ही महत्त्व है।

गोखामीजीकी भक्ति-पद्मतिकी विवेचना करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि सच्चा भक्त भक्ति-शास्त्रकी विधाओंसे नियन्त्रित नहीं होता, जिस प्रकार सच्चा व्यक्ति छक्षण-प्रन्थोंकी सीमाओंमें आबद्ध नहीं रहता। गोखामीजी एक साधकके रूपमें हमारे समक्ष आते हैं, कबीर आदि संतोंकी भाँति ब्रह्मानुभूतिमें सिद्ध भक्तोंकी भाँति नहीं। वे अपनेको मायापाशसे आबद्ध, अज्ञानान्धकारमें भटकने-

वाला एक क्षुद्र जीव मानते हैं। आत्मदोषोंकी ऐसे स्पष्ट खीकारोक्ति सच्चे साधकोंमें ही हो सकती है। उनकी भक्ति शास्त्रकी रीति-नीतियोंसे अनुशासित नहीं हुई। उसमें उनका हृद्य बोल रहा है। भक्तिमें प्रेम ही मुख्य है, रोष सत्र बाह्य बिह विधान भक्तको या तो प्रेमकी ओर उन्मुख काले लिये हैं या प्रेमकी अभिन्यक्तिमात्र । यद्यपि गोसामीकी वैधी भक्तिके अङ्गों—आरती-नाम-जप आदिका भी उल्लेख किया है तथापि प्रेमको प्रधानता देनेके काल उनकी भक्ति रागानुगा भक्ति ही कही जायगी। गीतः वलीकी रचनाका उद्देश्य इसी रागात्मिका भक्तिका पेक करना ही है । उसके पदोंमें उनके भीतर छिपा झ भक्त अपनी भावधारा उँडेल रहा है। प्रेमकी रस्थाल मग्न भक्त रामकी महिमाका वखान कर रहा है। आ यह कहना कि तुलसीकी भक्ति वैधी भक्तिकी कोंग्रिं आती है और सूरकी रागानुगा भक्तिकी कोटिमें, आंक्ष सत्यता रखता है । कम-से-कम 'गीतावली'को देखा तो यह भ्रम न रहना चाहिये। हाँ, सूरकी भक्तिरे ए अवश्य भिन्न है । इसका कारण यह है कि मूरने उसन जीवनसे असम्बद्ध एवं एकान्तिक रूप सामने रम्बा है। तुलसीने उसे लोकसे सम्बद्ध कर दिया है। सूरकी ^{भिर्की} तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक है।।

श्रीमद्भागवतके अनुसार भक्तिके चार प्रकार हैं—र तामसी, २ राजसी, ३ सात्त्विकी और ४ निर्गुण। गोखामीजीकी भक्ति चौथे प्रकारकी है। इस भक्ति साधना करनेवाला भक्त कुछ भी नहीं चाहता। उसकी भक्ति फलकी आकांक्षासे रहित या निष्काम होती है। भक्तिके लिये यही भावना सर्वोत्कृष्ट मानी गयी है जिसके भक्तिके लिये यही भावना सर्वोत्कृष्ट मानी गयी है जिसके कामनाका पूर्ण तिरोभाव हो। गीतामें इसे बहुत महत्त्व वि कामनाका पूर्ण तिरोभाव हो। गीतामें इसे बहुत महत्त्व वि कामनाका वर्ण तिरोभाव हो। गीतामें इसे बहुत महत्त्व वि कामनाका वर्ण तिरोभाव हो। गीतामें इसे बहुत महत्त्व वि कामनाका वर्ण तिरोभाव हो। गीतामें इसे बहुत महत्त्व वि गया है। गोस्वामीजी भक्तिको छोड़कर अन्य किसी प्रका इच्छा नहीं करते और अवसर आनेपर भक्तिका ही ब संख्या ८]

कुलियास जिय जानि सुअवसर भगति-दान तय माँगि लियो। भक्तके लिये भक्तिका आनन्द ही उसका फल है। गोलामीजी एकमात्र भक्तिको ही वरेण्य भानते हैं। दास्यभावना

भिक्तिमें प्रेमके अतिरिक्त आलम्बनके महत्त्व और अपने दैन्यका अनुभव परम आवश्यक अङ्ग है। आचार्य शुक्रका यह कथन दास्यभावनाकी मितके लिये पूर्णतया युक्तियुक्त है, परंतु सभी क्राकी भक्तियोंके लिये नहीं। भक्तोंके खभावके अरुसार पाँच प्रकारकी भक्तियाँ मानी गयी हैं—१ शान्त, दास्य, ३. सद्ध्य, ४. वात्सल्य और ५. मधुरा मित । शान्तभावकी भक्तिमें भक्त मन-इन्द्रियोंको वियन्त्रणमें रखकर निरपेक्ष एवं विरक्त होकर शान्त क्तिसे ईश्वरकी आराधना करता है। दास्यभावकी भितमें सेव्य-सेवकका सम्बन्ध रहता है | सेवकमें जितना देख, आत्मसमर्पण पूर्ण होगा और जितनी उसमें सेवाके म्हलकी अनुभूति होगी, उतना ही वह सेव्यका सांनिध्य **पात कारागा और अन्तमें सेवक-सेव्य एक हो** गरंगे। सखाभावकी भक्तिमें भक्तमें दैन्यके स्थानपर गागी एवं आत्मीयताका भाव रहता है। सेवक लागीसे उरता भी है; परंतु सखा उसका अन्तरंग साथी हैंकर आनन्द लाभ करता है। सूरदासकी भक्ति इसी क्षारकी थी। पहले उन्होंने सेन्य-सेवक-भावसे विनयके ष अवस्य कहे हैं; परंतु बादमें वल्लमाचार्यके संसर्गसे उन्होंने श्रीकृष्णके अन्तरंग सखा बनकर उनकी लीलाओं-^{का बखान} किया। उनकी अनुभूति एक गोपकी अनुभूति है। बहुतसे समीक्षक उनकी भक्तिमें वात्सल्य और माधुर्यभाव भी देखते हैं । उनके मतानुसार बाल-विलामें वात्सल्य और गोपियोंके संयोग-वियोगमें माधुर्य-भाव मौजूद है; परंतु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि मूर्ति आलम्बनकी क्रीड्गओंमें आश्रय यशोदा या मिष्योंके साथ हृदयका तादात्म्य नहीं किया । उन वर्णनोंमें वे उनसे निरपेक्ष परंतु कहीं समीप ही देखें जा सकते हैं।

गोखामीजीकी भक्ति दास्यभावकी है । दास्य-भावकी प्रतिष्ठाके, जैसा कि आचार्य शुक्कने कहा है, दो पहछ हैं— १. आलम्बनका महत्त्व और २. सेवक-का देन्य या लघुत्व । गोखामीजीने स्थान-स्थानपर इनकी उद्भावना की है । 'विनय-पत्रिका'में तो इनका पूर्ण उत्कर्ष मिलता ही है । गीतावलीमें भी यत्र-तत्र इसकी व्यञ्जना है । रामके माहात्म्यका वर्णन करते हुए तुल्सी अघाते नहीं हैं । कभी वे अपने आराध्यकी अनन्त रूप-राशिके अनुभवसे प्रेम-पुलकित हो जाते हैं, कभी अनन्त शक्तिकी झलक पाकर विस्मित एवं उत्साहित हो उठते हैं और कभी अनन्त शीलका स्मरण करते-करते भाव-विभोर हो उठते हैं । रामकी दानशीलता, भक्तवत्सलता, पतित-पावनता आदिकी चर्चा स्थल-स्थलपर की गयी है । गीतावलीसे एक उदाहरण लीजिये—

दूसरो न देखतु साहिव सम रामे। बेदऊ पुरान कवि कोविद विरद-रत जाको जस सुनत गावत गुन ग्रामे॥

महत्त्वकी अनुभूतिको साथ ही अपने छघुत्व या दैन्यकी अनुभूतिका भी पूर्ण विकास गोखामीजीमें मिछता है । अपने दोषों, अवगुणों, अज्ञान, माया आदिकी खीकारोक्ति मनको निर्मछ कर देती है । ऐसा करनेसे एक प्रकारका संतोष भी प्राप्त होता है, जिसे आधा छाभ समझना चाहिये । 'गीतावछी' में तुछसीदासजीने स्थान-स्थानपर अपनेको किंकर, चेरो, ज्उँ व खानेवाछा, भिखमंगा, पतित, पापी आदि कहा है—

कहिहों बिल रोटिहा रावरो बिनु मोल ही बिकाउँगो। तुलसी पट कतरे ओहिहों, ऊबरी जूठिन खाउँगो॥

तुलसीकी इस भक्ति-पद्भितमें बहुत-से समीक्षक लक्षो-चप्पो या चापळ्सीकी गन्थ पाते हैं जो निकटताकी नहीं, दूरीकी परिचायक है। इस सम्बन्धमें हमारा मन्तन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६

न्ती है। अनुशासित हा है।

य विवि व कारनेके स्वामीजीने

देका भी के कारण गो। गीता-

का पोपण छेपा हुआ

रस-धारामें है । अतः ती कोशिं

, आंशिक तो देखका

नित्ते यह र्ने उस्म

(क्खा है। की भक्तिमें

र हैं--१ निर्गुण। भक्तिनी

होती है।
हे जिसमें
हत्व विष

हरपार सी फलबी - ने ब

ता ही बा

AF

THE

देका

死

南

ओर

सभी

स्रीव

है कि तुल्सीकी लघुत्वकी भावना इस प्रकर्षको पहुँची है कि अन्तमें महत्त्वको उसे अपनाना पड़ता है और लघुत्व महत्त्वमें अन्तर्हित हो जाता है। दूसरे गोस्नामी-जीको व्यष्टिकी अपेक्षा समष्टि, व्यक्तिकी अपेक्षा समाज-का अधिक ध्यान था। इसलिये उन्होंने सेव्य-सेवक-भावके निष्कण्टक मार्गको अपनाया। समाजके लिये भक्तिका यही रूप उपयोगी था।

आलम्बनमें शक्ति, शील और सौन्दर्यका समन्वय

गोस्वामीजीने अपने आराध्यमें अनन्त शक्ति, शीठ और सौन्दर्यका समन्वय किया है। सूरदास अपने आराध्यके सौन्द्रयंकी ओर ही अधिक आकर्षित हैं। इसिलिये उन्होंने श्रीकृष्णके लोकानुरञ्जनकारी रूपके स्थानपर सौन्दर्यरूपका ही अधिक उद्घाटन किया है। उनकी भक्तिमें सौन्दर्यका उछास ही अधिक छलकता है। गोस्नामीजी अपने रामको कर्तन्य-क्षेत्रमें अप्रसर होता हुआ देखते हैं, जिससे लोकका अनुरञ्जन होता है। जहाँ एक ओर सौन्दर्यकी अनन्त राशि जनकपुरके नर-नारियों और ग्रामवधूटियोंका मन विमोहित करती है, वहाँ दूसरी ओर इस महान् शक्तिद्वारा लोकपीड़कोंका विनाश होता है। इसके अतिरिक्त उनके खभावमें शीलकी पराकाष्ट्रा दिखलाकर मानवताके लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया गया है। 'शीलके असामान्य उत्कर्षको प्रेम और भक्तिका आलम्बन स्थिर करके उन्होंने सदाचार और भक्तिको अन्योन्याश्रित करके दिखा दिया । १ (गोस्वामी तुलसीदास-आचार्य रामचन्द्र शुक्क) रामके ये तीनों रूप एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं। जहाँ शक्ति और शील है, वहाँ सौन्दर्य है, जहाँ शक्ति और सौन्दर्य है वहाँ शील है और जहाँ शील और सौन्दर्य है वहाँ शक्ति है। 'गीतावळी'से एक उदाहरण ठीजिये। कौशिकद्वारा राम-ळक्ष्मणका परिचय दिया जा रहा है-

ये दोऊ दसरथके बारे।

नाम राम घनस्याम, लघन लघु, नखसिख अँग उजियारे ॥ निज हित लागि माँगि आने मैं धर्मसेतु रखवारे । धीर बीर बिस्दैत बाँकुरे महाबाहु बल भारे ॥ इस प्रकार उन्होंने रामके रूपमें तीनोंका उका दिखाकर भक्तिके छोकोपयोगी खरूपकी अवतारणा की। गीतावछीं में इन तीनों रूपोंमें सौन्दर्यकी प्रधानता है या यों कहना चाहिये कि शक्ति और शीलका सौन्दर्भ ही समन्वय किया है। गीतावछीं के जनकपुरकी नालि द्वारा रामके सौन्दर्यका वर्णन, वनमार्गमें प्रामकपूर्णि द्वारा रामके सौन्दर्यका वर्णन, वाल-वर्णन, उत्तरकाण्ड्य संयोग-छीछाओं के वर्णन इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार वर्णनोंमें सुरके माधुर्य भावका प्रभाव दिखायी देता है।

हृदय और बुद्धिका सामञ्जस

भक्ति एक रागात्मिका वृत्ति है जिसका सम्बर्ध हृदयसे है । वह ज्ञानका क्षेत्र नहीं है । सूरने इसीब्ले ज्ञानका परिहास किया है । गोस्वामीजीका मार्ग भी ज्ञानगार्ग नहीं है । उसे वे सुगम भी नहीं मानते। उनके मतानुसार तर्क और सिद्धान्त केवल बुद्धिया वितण्डावाद खड़ा करते हैं, उनसे इस परम सत्तार्थ अनुभूति दूर ही रहती है । उसे प्राप्त करनेका सीधा राखा प्रेम है—

जोग न बिराग जाग तप न तीरथ त्याग, पही अनुराग भाग खुळे तुळसी के हैं। परंतु जहाँ एक ओर ने भक्तिको ज्ञानसे रोष समझते हैं वहाँ दूसरी ओर ज्ञानद्वारा भक्तिकी प्रतिस्थापना उन्नत कोटिकी मानते हैं। ज्ञानसे भक्ति श्रेष्ठ है; परंतु ज्ञानसे समन्वित भक्ति श्रेष्ठतर है। गोस्वामीजीकी भक्तिं विरति एवं विवेकको समुचित स्थान प्राप्त है।

भक्ति-पद्धतियोंका समन्वय

गोस्वामीजीके समयमें भक्तिकी अनेक पद्भित्य प्रचित थीं । बौद्ध-जैन-शास्त्र, निर्गुण आदि मत और रौव, वैध्णव आदि सम्प्रदाय चल रहे थे। गोस्नामी जीने सबको अस्वीङ्गत करके एकमात्र शुद्ध रामभितिका जोरदार समर्थन किया और इन सभी सम्प्रदायोंको उसमें समन्वित कर दिया। देववादका ऐसा समन्वय शास्त्र ही कहीं अन्यत्र मिले। कवीरने जिस मार्गद्वारा बहुवें वादको हटाकर एकेश्वरवादका नारा बुलंद किया, बहुवें वादको हटाकर एकेश्वरवादका नारा बुलंद किया,

विह गा

उत्कृत ग की। नता है सौन्द्यम नारियों.

नधूरियों. काण्डकी प्रकारक

ग है।

सम्बन्ध इसीलिये मार्ग भी

मानते। बुद्धिका सत्ताकी

ग रास्ता ाग,

नमझते हैं ा उन्नत ज्ञानसे

भक्तिमें

पद्गतियाँ ने मत गोखामी-भक्तिका

ते उसमें शायद

ा, वह

बहुदेव-

स्का सही उपचार नहीं था । गोस्नामीजीने रामकी भित्रमें ही शंकर आदि देवोंकी भक्तिको उचित स्थान क्षा सही मार्गका अवलम्बन किया । रामभक्तिके लिये उहाँने शंकरकी भक्तिको पहले आवश्यक बताया है। भीषण शंकरकी प्रेरणासे ही रामके समीप जाते हैं— का सिख आसिष पाइके।

कं मनिह मन कहत विभीषन सीस महेसिह नाइके।। लोकमत और साधुमतका समन्वय

गोसामीजीकी भक्तिमें व्यक्ति और समाज (विशिष्ट को सामान्य) दोनोंके हितोंका सामञ्जस्य है। व्यक्तिके क्याणके लिये गोस्वामीजी सभी सांसारिक वन्धनोंको बाका एकमात्र रामभक्तिका वन्धन बाते हैं। उनके मतानुसार संसारके सत्र प्रपश्च त्याग-क्र रामकी शरण जानेमें ही व्यक्तिका कल्याण है। ह व्यक्तिका विशिष्ट धर्म है । गोस्वामीजीके काव्यमें शान्यानपर ऐसे उद्गार मिलते हैं जिनमें एकमात्र गमिकिकी सार्थकता स्वीकार की गयी है । दूसरी ओ, गोखामीजी समाज या छोकहितकी दृष्टिसे उन ली क्यनों, मर्यादाओं, कर्तव्यों एवं सम्बन्धोंको भी विकार करते हैं जो सामाजिक जीवनके उन्नयनमें योग क्षेहैं। यह व्यक्तिका सामान्य धर्म है। इसी कारण गेंबामीजीके वाक्यमें कहीं-कहीं विरोधी धारणाएँ पायी

जाती हैं । जिस स्थानपर जिस मतकी उन्होंने उपयुक्तता समझी है, वहाँ उसी दृष्टिसे विचार किया है । उनके लोकोपयोगी सामान्य धर्मकी व्याख्या सर्वमान्य है; क्योंकि उससे विशिष्ट धर्ममें कोई अङ्चन नहीं होती। इस प्रकार दोनोंका समन्वय भी हो जाता है । सुरकी भक्तिमें इस प्रकारका कोई समन्वय नहीं है । उसका रूप लोक-निरपेक्ष या ऐकान्तिक है।

तुलसीकी मौलिकता

गोखामीजीकी भक्तिका मुख्य उद्देश्य जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सामञ्जस्य लाना है। उनकी व्यापक दृष्टि भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों कालोंमें फैले हुए जीवनके विशाल क्षेत्रतक पहुँची और उससे उपयोगी तत्त्वोंका चयन किया, उन्होंने सामञ्जस्यद्वारा जीवनकी पूर्णताका चित्र तो प्रस्तुत किया ही, साथ ही सब उपयोगी तत्त्वों-को मिलाकर भक्तिका एक ऐसा रसायन तैयार किया जो युग-युगतक मानवताको संजीवनी-राक्ति देनेमें समर्थ है । इसके पूर्व इस प्रकारकी भक्ति-पद्धति और किसी कविमें नहीं पायी जाती । यह एक ऐसा मिक्शचर है, जिससे समाजके खारध्यकी पूर्णतया रक्षा होती है। सुरकी भक्तिमें यह बात नहीं है । गोखामीजीके भक्ति-सिद्धान्त आज भी नव-जीवन प्रदान करते हैं । इसीलिये घर-घरमें उनका प्रचार है।

विरहातुरा राधाके प्रति एक अन्तरङ्ग सखीके उद्गार

तुम उनकी, वे नित्य तुम्हारे—रहते नित्य तुम्हारे साथ। तुम्हें नित्य रखते अपनेसे मिली, इयाम अपनी ही बाथ॥ 'उनसे तुम हो अलग'—करो मत ऐसा कभी भूल संदेह। युळामिळा एकत्व सत्य है, भले पृथक् दिखर्ती दो देह ॥ देश-कालका, कोई भी, हो सकता कभी नहीं व्यवधान। सभी देश-कालोंमें निश्चित नित्य संगका बना विधान॥ तुम खरूपतः और तत्त्वतः दोनों सचमुच नित्य अभिन्न। करते तत्सुख-सुखी-परस्पर छीला मधुर बने-से भिन्न॥ विरह-मिलन है—प्रेममयी इस लीला-सरिताके दो छोर। इनमें नित बहती-यह दिव्य सुधा-रसकी धारा सब ओर॥



हमारे देवालय और आश्रम

(लेखक--श्रीओंकार मलजी सराफ)

इमारे पूर्वजोने, ऋषियोंने, मुनियोंने, विद्वानोंने ऐसा कोई भी काम नहीं किया, जिसमें मानव-कल्याणका महान उद्देश्य अन्तर्निहित न था । सारे भारतवर्षमें --देशकी चारों दिशाओंमें—देशके प्रत्येक अञ्चलमें उन्होंने मन्दिरों, आश्रमों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रोंकी स्थापना की । इसमें उनका महान् उद्देश्य था—जनकल्याणकारी कार्यक्रमकी प्रेरणा थी। यह वात इतिहास हमें स्पष्ट रूपसे वताता है कि जो-जो विदेशी हमें, हमारे धर्म, हमारी सभ्यता एवं इमारी संस्कृतिको मिटानेके लिये दृढ़ संकल्प लेकर इस पुण्य-भूमिपर आये, उन्होंने हमें मिटानेसे पिहले हमारे इन धार्मिक केन्द्रों—मन्दिरीं एवं आश्रमींको ध्वंस करनेका अधिक-से-अधिक प्रयत्न किया । इसीसे इम यह भलीभाँति समझ सकते हैं कि इमारा हिंदुओंका—प्राण ये धार्मिक केन्द्र ही थे। इमारे जीवनकी संजीवनी शक्ति—हमारी संस्कृतिकी उत्कृष्टता —हमारे धर्मकी उदात्त भावना एवं हमारी सभ्यताकी सम्पूर्ण भिंति इन मन्दिरों एवं आश्रमोंमें पूर्ण रूपसे समन्वित थी।

मुसल्मान आक्रान्ताओंने हमारे इस रहस्यको समझ लिया था। इसीलिये उन्होंने सारे भारतवर्षमें असंख्य हिंद मन्दिरों, मूर्तियों, आश्रमों एवं विद्यापीठोंको घ्वंस कर दिया। उनको मिटा दिया। उनके स्थानपर मस्जिदे बनवा दीं, मीनारें खड़ी कर दीं। इसके असंख्य उदाहरण हमारे सामने हैं। इतना करके भी वे हमें सम्पूर्णरूपसे नहीं मिटा सके। इसका कारण क्या था ? हमने सन् ७११ से सन् १८५७ तक अर्थात् ११४६ वर्षोतक लगातार अपने इन मन्दिरों, आश्रमों एवं धार्मिक केन्द्रोंकी रक्षाके लिये अनवरत संघर्ष किया, अपना रक्त इनकी रक्षाके लिये वहाया । एक-एक मन्दिरकी रक्षाके लिये हमारे अनेकों मस्तक निछावर हो गये । असंख्य हिंदुओंने धर्मकी रक्षाके लिये अपने प्राण दिये। इसने अपनी पूर्ण शक्तिके साथ हमारे इन प्राणकेन्द्रोंके मिटानेवालोंका मुकाबला किया । इम मिटकर भी बचे रहे । हमारा पूर्णरूपसे विनाश-साधन नहीं हो सका। हमने अपने प्राण देकर धर्मकी रक्षा की, धर्मने हमें बचाया । हमारे अस्तित्वको मिटने नहीं दिया । कोई भी निर्बल जाति अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिये इतने दीर्घकालतक नहीं लड़ सकती । पर हमारी शक्ति असीम थी, अतः इम लड़ते रह सके ११४६ वर्षोतक । आश्चर्य तो इस बातका है कि भारतवर्ष स्वाधीन हो जानेपर भी हमारा यह

संघर्ष समाप्त नहीं हुआ है। अभी भी हम लड़े ही जा रहे हैं। हमारा यह संघर्ष आज १२५१ वर्षका हो गया है। देखें कव इसका अन्त होता है!

(H

मुसल्मानोंके बाद अंग्रेजोंका आगमन हुआ। उन्होंने बं हमारी इस संजीवनी-शक्तिको हृदयङ्गमं किया। पर स्न १८५६ तक हमारे मिटानेके लिये वे कुछ अधिक उद्यो नहीं कर सके। उन्होंने समझ लिया था कि हिंदू-मिर्तिक्षे ध्वंस करनेकी चेष्टा करते ही, हमारा टिकना किन हो जायगा । यदि हम ऐसा करेंगे तो हमें लगातार हिंदुजाति संघर्षमें रत होना पड़ेगा । उन्हें मुसल्मानोंके इतिहास शिक्षा ली । उन्होंने हमारे राजनीतिक और अर्थनीतिक संगठन पर-व्यवस्थापर धावा बोल दिया। पर हमारा धारि संगठन सन् १८५६ तक उन्होंने प्रायः अछता छोड़ खा। जहाँ सन् १८५६ में उन्होंने इसको तोड़नेका जरा-सा भी प्रयास किया, वहीं इमने अपने मन्दिरों और आश्रमीं माध्यमसे अपनी संस्कृति और धर्मके सारे भारतकार्म ११४६ वर्षके संवर्षके बाद भी वचे हुए अगणित केंद्री —एक ऐसी प्रचण्ड शक्तिका संगठन किया, जिसने स १८५७ में सारे भारतवर्षमें ब्रिटिश शक्तिके साथ डटका बा लिया । इम यह मानते हैं कि इस स्वाधीनता-संप्राममें पुष् मानोंने भी इमारा आंशिक रूपमें साथ दिया। पर यथा^{ई वा} यह थी कि वे अपनी राजनीतिक सत्ताको बनाये रखनेके वि हमारा साथ दे रहे थे एवं हम अपने धर्मकी — संस्कृतिकी-सभ्यताकी--मातृभ्मिकी, 'स्व' की एवं सर्वस्वकी स्थाके लि अपने प्राणोंकी आहुतियाँ दे रहे थे। सन् १८५७ का गुर कितने ही कारणोंसे—हमारी दुर्बलतासे—कमजोरियाँहे विश्वासघातियोंके कुचक्रोंसे—विफल हो गया। पर इस युद् अंग्रेजोंको निम्न दो यथार्थ तत्त्वोंको हृद्यंगम करा दिया। व यथार्थताएँ ये हैं-

(१) जबतक हिंदुओंके ये धार्मिक केन्द्र देशल्य और आश्रमादि बने रहेंगे तवतक जब कभी भी इस प्रकार्य संगठन पुनः हो सकता है। उनका अस्तित्व खतरेंगे पर सकता है।

(२) यदि हिंदुओंकी धार्मिक व्यवस्थामें किसी प्रकार भी हस्तक्षेप किया जायगा—तो कभी शान्तिके साथ शाक्ष

ही जा रहे

गया है।

उन्होंने भी

। पर सन

क उद्योग

-मन्दिरोंको

कठिन हो

हिंदूजातिने

इतिहाससे

क संगठन

ा घामिक

इ रक्वा।

रा-सा भी

आश्रमीके

भारतवर्षमे

त केन्द्रीसे

जिसने सन

टकर लेहा

ममें मुसल

यथार्थ वात

वनेके लि

कृतिकी—

रक्षाके लिये

७ म गुर

मजोरियोंसे)

इस युद्धने

दिया।वे

_देवाल्य

स प्रकारका

तरेमें पड़

क्ष संवालन नहीं किया जा सकेगा और वरावर संवर्ष छेते रह्ना पड़ेगा।

(?)

अंग्रेज बुद्धिमान् थे। उन्होंने यथार्थताको समझा। वे ह्मारे देवाल्यों और आश्रमोंकी तहमें पहुँचनेका प्रयत करने हो, जिससे कि वे विना इनमें हस्तक्षेप किये हमारे विनाशके अय तरीकोंको अपना सकें ।

वे इस तथ्यको अति शीघ्र समझ गये कि इन देवालयों और मिद्रोंकी स्थापनाका प्रधान उद्देश्य—देशके जनसाधा-एको व्यापकरूपसे शिक्षित करना और देशकी जनताके साथ अपना सतत सम्पर्क कायम रखना है। देशकी जनता, विना क्षी बर्चके इनमें स्थापित पाठशालाओं और चतुष्पाठियोंमें शिशा प्राप्त करके स्वधर्ममें दृढ़ हो जाती है। देशमें साक्षरताके भार और निरक्षरताके विनाशके लिये ये मन्दिर और आश्रम गुल केन्द्र हैं। यहाँ शिक्षा-प्राप्तिके लिये किसीको कुछ भी व्य नहीं करना पड़ता । विद्या यहाँ विकती नहीं है-दान री जाती है। विद्या-दान ही इनका प्रधान उद्देश्य है। यह विक्षापद्धति ही हिंदुओंको स्वधर्मकी रक्षाके लिये प्रेरणा

अंग्रेजोंने इस पद्धतिका अध्ययन किया और विवेचन क्षि। उन्होंने यह अच्छी तरहसे समझ लिया कि जवतक हिंऔं ग्रह विद्यादान इन मन्दिरों एवं आश्रमोंमें चलता रेंगा तयतक हिंदुओंके स्वधर्मप्रेम, स्वदेशप्रेम, स्वाभिमान ^{एवं सामर्थ्यपर आघात नहीं किया जा सकेगा। यह तथ्य} मन्त्रमें आ जानेपर—उन्होंने लार्ड मेकालेको इस प्रकारकी ^{एक योज}ना बनानेका आ**दे**श दिया कि जिससे देशमें प्रचलित ^{विका}यद्वितिके बदले ऐसी शिक्षा-पद्धितका प्रचलन किया जा क जो हिंदुओंकी भावनाको मिटा सकनेमें समर्थ हो। ^{बार्ड} मेकालेद्वारा प्रस्तुत योजनाके आधारपर हमारे मन्दिरों और आश्रमोंके इस विद्यादानके सदाव्रतको मिटानेका कार्यक्रम भेजीने गुरू कर दिया। कलकत्ता, वम्बई और मद्रासमें विश्वविद्याल्योंके नामपर हमारे विद्यादानके विनाश-साधनके थि विनाशकेन्द्र स्थापित कर दिये गये। इन विश्वविद्यालयोंके अनुर्गत सारे देशमें स्कूलों-कालेजोंका जाल विछा दिया ^{ाया}। इन विनाश-केन्द्रोंमें शिक्षा प्राप्त करनेवालोंको क्रमशः श्रीपकल्पमें सरकारी नौकरियाँ देनेका आश्वासन देकर इनको क्षिम-निर्माता कारखानोंमें परिवर्तित कर दिया गया।

इनमें ईसाई धर्मकी शिक्षा देनेका प्रवन्ध हुआ । हमारे इति-हासको गलतरूपमें छात्रोंके सामने उपस्थित करनेके लिये नये प्रन्थोंको प्रस्तुत करवाकर नया पाठचक्रम प्रचलित किया गया । हमारे वच्चे-कालिदास और भवभृतिके बदले सेक्स-पियर और मिल्टनके गीत गाने लगे। कृष्णके बद्ले उनको काइष्ट देनेकी व्यवस्था कर दी गयी। अंग्रेजोंने एक तरफ तो शिक्षाकी यह व्यवस्था प्रचलित की, दूसरी तरफ युरोपसे ईसाई मिरानरियोंको इस देशमें अधिक-से-अधिक बुलाने और उनके द्वारा गिरजाघरोंकी स्थापनाके साथ-साथ मिशनरी स्कूलों, नर्सिंग-होमों एवं अस्पतालोंको स्थापित करके जनसाधारणके मनको अपनी तरफ आकर्षित करनेका उद्योग किया, ११४६ वर्षोंके संघर्षमें हमारा जो ध्वंस नहीं हुआ था, सन् १८५८से लेकर १९०० तकके ४२ वर्षों उससे अधिक ध्वंस-साधन हो गया। इस प्रकार अंग्रेजोंने हमारे देवालयों और आश्रमोंके प्रधान उहे इय-'विद्यादान' पर चारों तरफसे आधात करके हमें, हमारी संस्कृति और सभ्यताको मिटानेका उद्योग आरम्भ किया और वे अपने उद्देश्यमें बहुलाभमें सफल हुए । हमने जो इतनी बातें लिखीं — इसीसे यह प्रमाणित होता है कि हमारे देवालयों, आश्रमों, धार्मिक केन्द्रोंकी स्थापनाका प्रधान उद्देश्य 'विद्यादान' था। अब हम इनके अन्य उद्देश्यों-पर भी प्रकाश डालते हैं।

(3)

देवालयोंकी स्थापनाका द्वितीय उद्देश्य हिंदूधर्मके उदात्त सिद्धान्तोंका व्यापकरूपसे प्रचार करना था। प्राचीन समयमें अर्थात् आजके प्रायः ७०,८० वर्ष पहले तक इनके पुजारी महान् विद्वान्, सेवामावी, श्रीमगवद्भक्तिपरायण, कष्टसहिष्णु, परिश्रमी एवं चरित्रवान् व्यक्ति ही हुआ करते थे। वे अपने-अपने अञ्चलके जनसाधारणमें धर्मका प्रचार करते थे, धर्मशास्त्रोंकी व्याख्या करते थे, ग्रामीण अञ्चलोंमें पुराणादिका पाठ करते थे, मन्दिरोंमें आनेवालोंके सुख-दुःखके भागीदार होते ये-जनसाधारणके दुःखमें सान्त्वना देते थे—उनके मुखमें मुखी होते थे, मन्दिरोंमें आगत स्त्री-पुरुष और शिशुओंको सदाचार, सत्यनिष्ठ एवं सत्य-व्यवहारका उपदेश देते थे। जनसाधारणके व्यक्तिगत मामलेंको सत्परामर्श द्वारा मुलझानेका काम भी ये पुजारी ही कर देते थे, कारण जनताका इनमें विश्वास था और इनके आचरणपर श्रद्धा थी। हिंदुओंके समस्त धर्म-प्रचारका माध्यम देवालयोंका पुजारी-

री प्रकारका

थ शासन

वर्ग ही था। ऐसा एक भी मन्दिर देशमें नहीं था, जहाँ धार्मिक ग्रन्थोंके नित्थपाठकी—श्रीभगवन्नाम-स्मरणकी ध्यवस्था न हो। इसके लिये हमारे राजस्थानमें तो दोपहरका समय निर्धारित रहता था जिससे कि आवाल-वृद्ध-वनिता इसमें सरलतासे सम्मिलित हो सकें।

(8)

'विद्यादान' और धर्मके प्रचारके लिये इन देवालयों एवं आश्रमोंमें अपना पुस्तकालय भी रहता था। इनमें हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित रहते थे। विद्यार्थींवर्ग अपने गुरुजीसे विद्या सीखता था और आवश्यकतानुसार अपने व्यवहारके लिये इन ग्रन्थोंकी नकलें कर लेता था। विद्यार्थियोंके आवासकी समस्याका भी ये देवालय और आश्रम ही समाधान कर देते थे। 'नालन्दा' के खँडहर आज भी इस सत्यको विश्वके समक्ष घोषित कर रहे हैं।

मन्दिरोंके पुजारियों एवं ब्रह्मचारियोंको आयुर्वेदीय चिकित्साका भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। वे आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार बिना किसी मूल्यके—खर्चके देशकी जड़ी-बूटियोंसे, बनस्पतियोंसे अपने-अपने अञ्चलके जनसाधारणकी चिकित्सा अखस्थ होनेपर कर दिया करते थे।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि इन देवालयों और आश्रमोंके द्वारा गृहस्थकी शिक्षा, धर्म-शिक्षा, चिकित्सा एवं अन्यान्य आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाती थी । पंचायतके लिये स्थानका काम भी ये मन्दिर ही देते थे । यहीं लोग समवेत हो जाते थे और सभा और बैठक कर लेते थे।

(4)

इन मन्दिरोंके संचालनके लिये बड़ी ही सरल व्यवस्था थी। जन-साधारणकी ओरसे—प्रत्येक गृहस्थके घरसे 'सीधा' (खाद्य-सामग्री) देनेकी नित्य ही व्यवस्था थी। ऋषकी वर्ग घर-घर जाकर खाद्य-सामग्री संग्रह कर हैता या गृह्स ही मिन्दरोंमें पहुँचा जाते थे। खाद्य-सामग्रीका कोई अमा नहीं रहता था। इस खाद्य-सामग्रीसे पुजारीका को ब्रह्मचारियोंका तो भरण-पोघण हो ही जाता था पं इसके साथ-साथ आये हुए अतिथियोंको भी श्रीमाग्रस प्रसाद प्राप्त हो जाता था। इन देवालयों एवं आश्रमें यह व्यवस्था थी कि कोई भी हिंदू, तीर्थयात्री विना होती थे प्रकारके खर्च और कष्टके भारतव्यापी समस्त तीर्थी यात्रा कर लेता था। उनको न ठहरनेकी चिन्ता होती थे और न भोजनकी, वे मिन्दरोंमें रात काट सकते थे और श्रीभगवान्के प्रसादसे अपने पेटकी क्षुधाको निकृत कर लेते थे।

हमारे पूर्वजोद्वारा स्थापित इन देवालयों और आश्रमंत्री स्थापनाके ये ही प्रमुख उद्देश्य थे। हमारे अस्तित्व एवं राष्ट्रीय एकता (National Integration) के प्राफेल ये देवालय और आश्रम ही ये। यहींसे हमें जीवनत्री प्रेरणा मिलती थी। कर्तव्य-मार्गका वोध यहींसे होता था। इन्हींके सहारे युग-युगोंसे हिंदू जीवन चलता आता है। इनकी स्थापनाका उद्देश्य देशके जनसाधारणका—देशके अमीर राजन्यवर्ग और गरीवका—सुखी एवं दुखी मानक्श (सर्वोदय) था। हमारे देवालयों और आश्रमोंसे यह ध्वी अहर्निश प्रतिध्वनित होती रहती थी कि—

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।'

मन्दिरोंमें प्रतिध्वनित इस भावनामें—भगवान्से वी

गयी इस प्रार्थनासे इनकी स्थापनाका उद्देश्य स्पष्ट हो
जाता है।*

-see

* आज हमारे देवालयोंकी और देवालयोंके द्वारा समाज-रक्षण-पद्धतिकी सर्वाङ्गीण दुर्दशा है। हम स्वयं ही अनेक प्रकारिंसे उनके विनाश साधनमें लगे हैं। पर यह सारण रखना चाहिये कि देवालयोंके साथ हमारी अमर संस्कृति जुड़ी है। देवालयोंके विनाशमें हमारी तथा हमारी संस्कृतिका विनाश निहित है। प्रसन्नताकी वात है कि कलकत्तेके पुराने जनसेवक सम्मान्य श्रीओंकारमलजी सराफके प्रयवसे व्यवस्था संस्थाण-समिति' की स्थापना बहुत व्यापक लोकहितकर उद्देश्योंको लेकर हुई है। उस समितिको भारतके प्रसिद्ध विद्धानों, राजपुर्श तथा अन्यान्य प्रतिष्ठित पुरुषोंका समर्थन प्राप्त है। हम चाहते हैं कि हिंदूमात्र तन-मन-धनसे यथासाध्य इस समितिके पवित्र कार्यम्य योगदान करे। इस सम्बन्धमें प्रकाशित साहित्यको प्राप्त करने तथा विशेष बातें जाननेके लिये मन्त्री, श्रीदेवालय-संस्था समिति, १२ चौरिवी रोड, कलकत्ता १३ के पतेसे पत्रव्यवहार करें। —सम्पादक

पढ़ो, समझो और करो

(?)

भाग ३३

त्रहाचारी. या गृह्सु

ोई अमाव

वर्ग और

था—एवं

भगवान्का

आश्रमोद्दी

वेना किसी

। तीर्घोक्त

ा होती भी

थे और

निवृत्त

आश्रमोद्री

स्तित्व एवं

प्राणकेन्द्र

जीवनकी

होता था।

ाता है।

—देशके

मानवका

यह ध्वीन

r: 1'

रान्से की

स्पष्ट हो

ति उनके

में हमारां

यतसे एक

राजपुरुष

त्र कार्यमें

य-संरक्षण

मुक-सेवा

(स्यानी लड़की हो गयी) विवाह तो करना ही है, पर वेती पाँचसे कममें मानते ही नहीं, तुम जानती हो, मेरे **ग**त कुछ भी नहीं है। दो सालकी मेरी वीमारीमें सब स्वाहा हो गया—' यों कहकर पन्नालाल रो पड़ा। पत्नी सीता भी रोपड़ी। लड़की सो गयी थी, उसकी ओर मॉॅंने देखा तो रुलायी और भी बढ़ गयी । करुणा-रस मानो मूर्तिमान् हो ग्या। बाहर किवाड़की आड़में खड़ा कोई देख-सुन रहा था।

पाँचवें दिन अकस्मात् वर्दवानसे मेजी हुई एक बीमा गितरी पनालालको मिली, उसमें छः हजारके सौ-सौके नोट थे। मेजनेवालेका कोई पत्र साथ नहीं था । लिफाफेपर मेजनेवालेका नाम-पता था, पर पन्नालालके पता लगानेपर वहाँ उस नामका कोई आदमी नहीं मिला । लड़कीके विवाहके स्रि भगवान्ने ही यह सहायता भेजी है, यह समझकर प्राललने सानन्द लड्कीका विवाह कर दिया।

'साढ़े ग्यारह हजारकी डिग्री थी। कुर्कीका आर्डर हो क्का कल-परसों कुर्की आयेगी। नकद पैसा एक भी पास न्हीं। कुर्कीमें घरके कपड़े-लत्ते, वर्तन तथा एक छोटा-सा घर इंब हो जायगा । बदनामी तो होगी ही, राहके भिखारी हो ज्यंगे। भवरवाला बहुत परेशान है, अपनी बदनसीबी और असमर्थतापर रो रहा है ! कोई सहायक नहीं !

दूसरे दिन समाचार मिलता है, कोर्टमें रूपये पूरे भरे ग्ये। कुर्कीका हुक्स रह् कर दिया गया।

विधवा लड़की है। तीन वर्ष पहले व्याह हुआ था। भूमें सहायक कोई नहीं, विधवाके माता-पिता मर गये। बहुत वहें भरानेकी माता-पिताकी एकमात्र लड़की, बड़े मुखसे पली-पुषी। विवाह भी बड़े सम्पन्न घरमें हुआ। पर दोनों ओर ही अकस्मात् भयानक घाटा लगा । सब कुछ जाता रहा । हों मार्भ फेल हो गये। इसी चोटसे माता-पिता और कित्र देहान्त हो गया। लड़की सर्वथा असहाय, असमर्थ।

कहाँ जाय, क्या करे । अकस्मात् एक दिन ढाई सौ रुपये मनीआर्डरसे आये। फिर तो कभी कहींसे, कभी कहींसे मनीआईरसे रुपये आने ल्यों, हर महीने। कभी डेढ़ सौ, कभी दो सौ, कभी ढाई सौ। भेजनेवालेके नाम-पते विभिन्न और सभी गलत। भगवान्ने ही यह सहायता की!

ऐसे ही चोरीसे सहायता करनेवाले पवित्र मूक सहायताके लिये सदा प्रस्तुत एक आदमी हैं और उनका यह कार्य सतत चादू है। यहाँ तो नमूनेके तौरपर ये तीन उदाहरण दिये गये हैं।

एक जानकार

(?)

हिंसाका वदला

सुजानगढ़ (राजस्थान) से पूर्व छः कोसपर ढोगरास गाँव है। वहाँके ठाकुर थे किसनसिंह । विवाहको दो वर्ष हुए थे। ठाकुर अपनी ठकुरानीके साथ एक समय ऊँटपर सवार होकर कहीं जा रहे थे। रास्तेमें उदरासर नामक गाँवके बगलसे जाते समय वकरियोंकी टोलीके साथ एक बड़े भारी वकरेको चरते देखा । उसे देखकर ठकुरानी पतिसे बोळी-'आपके घर आनेके बाद मैंने कभी पेटभर वकरेका मांस नहीं खाया है। देखिये, यह कैसा मोटा-ताजा वकरा चर रहा है।

तीन-चार दिनोंके वाद किसनसिंहने जाकर अकेले चरते वकरेको काँटोंसे दवा दिया और कुछ रात बीतनेपर उसे बोरे-में भरकर वह अपने वर ले आया और मारकर मांस पका-कर सब लोगोंने खा लिया।

एक सालके बाद ठकुरानीके बचा हुआ। वह दिनोंदिन बढ़ने लगा । माता-पिताके आनन्दकी सीमा नहीं रही । तेरह वर्षका होनेपर उसकी सगाई कर दी गयी और चौदहवें वर्षमें विवाह करनेका निश्चय किया गया । विवाहकी तैयारी हो गयी | बान बैठ गया | सगे-सम्बन्धी सब घरमें जमा हो गये। बारातका समय हो गया। बाजे बजने लगे। लड़केको स्नान कराकर विवाहकी पोशाक पहनायी गयी और उसे गणेश-पूजनके लिये बैठाया गया । इसी समय अचानक लडका बेहोश होकर गिर पड़ा । चारों ओर इल्ला मच गया । होश करानेकी चेष्टा की जाने लगी। लोग इवा करने लगे। किसन-

6-

सिंहने समीप आकर कहा—'बेटा बालसिंह! तुम्हें चैन है या नहीं, चेत करो, देखो कितने लोग तुम्हारे लिये चिन्तित हो रहे हैं।'

बालसिंहने होशमें आकर् कहा—'पिताजी ! आपकी हमारी इतने ही दिनोंकी माँगत थी । मैं उदरासरके कुँवरदान चारणका छोड़ा हुआ वही वकरा हूँ जिसे आपने काँटोंमें दवा दिया था और ऊँटपर लादकर घर लाकर मार डाला था और मांस पकाकर मिलकर खाया था । मैंने आपसे अपना वही बदला चुका लिया । अब मैं जा रहा हूँ ।'

इतना कहकर वह सदाके लिये सो गया । सब रोते रह गये!

—भूरामल गिनाड़िया

(३)

हलवाईकी ईमानदारी

एक गरीब हलवाईकी ईमानदारीकी जो घटना मुझे बतायी गयी, वह इस प्रकार है।

भी उन दिनों कानपुरके कर्नलगंज मुहल्लेमें रहता था । सर्राफेकी दूकान थी, गहने बनानेका काम करता था । दिनभर दूकानपर काम करता था, फिर शामको सारा मालअसवाब चाँदी-सोना-जेवरात आदि लेकर घर चला जाया
करता था । घर दूकानसे थोड़ी ही दूरपर था । दूकानमें
सुरक्षाका उचित प्रवन्ध न होनेसे कीमती सामान वहाँ नहीं
छोड़ता था । रोजकी माँति उस शामको भी मैं माल लेकर,
जो गोल डब्बोंमें भरा था, घर जा रहा था । उन दिनों शहरमें हिंदू-मुस्लिम दंगे जोरोंपर थे । शहरमें शान्ति बनाये
रखनेके लिये फौजकी गश्त होती रहती थी । सूरज डूबनेके
बाद पूरे शहरमें कफ्यूं लग जाता था । उसके बाद कोई बाहर

घूमते पकड़े जानेपर गिरफ्तार कर लिया जाता या।
में दूकान बंद करके ज्यों ही चार कदम आगे वहा या कि
गोरे सिपाहियों की ललकार मुनायी पड़ी, मुझसे रुकने के लि
कहा गया। मेरे पास मूल्यवान् सामान था। गोरों के हाथे
पड़कर पता नहीं उसकी क्या दुर्गति हो, क्या पता ये लेख लूट-खसोटकर खा-पी जायँ, जिसकी कि सौ फीसदी सम्माका
थी, मैंने जल्दीसे बद़कर वह सारा माल सामने की एक हलवाई की दूकान में फेंक दिया। उस हलवाई ने जल्दी-जली जो अपनी दूकान बंद की तो उसकी बहुत-सी मिठाई विवा कर बर्वाद हो गयी। बाद में गोरे सिपाही मुझे लारी में वैठाका को तवाली ले गये। वहाँ नाम-पता आदि पूँछकर रात म रखनेके बाद दूसरे दिन सुबह मुझे छोड़ दिया गया।

मैंने अपने मालके मिलनेकी कोई उम्मीद नहीं (स्वी थी | उसे भगवान्के सहारे छोड़ दिया था | मिल्रेगा को अच्छा, न मिल्रेगा तो भी कोई उपाय नहीं | पर मैं उस हलवाईका बहुत आभारी हूँ कि उसने पूरा-पूरा माल वैसा है मुझे लौटा दिया | मेरा एक पाईका भी नुकसान नहीं हुआ | बुद्ध महाशयजीने थोड़ी देर रुकनेके बाद पुनः कहा--

'पता नहीं वह बेचारा कहाँ है और कैसी हाल्तमेंहै। वह जहाँ भी हो भगवान् उसका भला करे तथा उसको और उसके बचोंको तरक्की दे।'

खुदाके बंदे, उस ईमानदार हलवाईकी मार्मिक ब्ह्नी सुनकर मुझे विस्मयमय हर्ष हुआ और पुराने ऋषि-मिर्गिकी उपदेश 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' ,दूसरोंके धनको मिट्टीके समहो याद आ गया। मेरी आँखें गीली हुए किना न रह सकीं।

—सुबोधकुमार द्विवेरी

दो विचित्र स्वप्र

[कुछ दिनों पहले पिलखुआके भक्त श्रीरामश्चरणदासजीने महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजीके सत्संगमें सुने हुए एक प्रसङ्गके आवार्ष एक लेख भेजा था। उसमें जिस घटनाका उल्लेख था, उसका सम्बन्ध सम्मान्य श्रीरणवीरजीसे था। श्रीरणवीरजी आर्यसमाजके प्रसिद्ध एक लेख भेजा था। उसमें जिस घटनाका उल्लेख था, उसका सम्बन्ध सम्मान्य श्रीरणवीरजीसे था। श्रीरणवीरजी आर्यसमाजके प्रसिद्ध उर्दू 'दैनिक मिलाई विद्यान् महात्मा श्रीआनन्दस्वामीजी महाराज (गृहस्थाश्रमका नाम—श्रीखुशहालचंदजी) के सुपुत्र हैं और प्रसिद्ध उर्दू 'दैनिक मिलाई उपर्वुक स्वामी तथा सम्पादक हैं। अंग्रेजी शासनमें इनको फाँसीकी सजा हुई थी, ये जेलमें रहे थे और फिर निर्दोष छूट गये थे। अत्वय उपर्वुक स्वामी तथा सम्पादक हैं। अंग्रेजी शासनमें इनको फाँसीकी सजा हुई थी, ये जेलमें रहे थे और फिर निर्दोष छूट गये थे। अत्वय उपर्वुक स्वामी तथा घटनाकी ठीक जानकारीके लिये श्रीरणवीरजीसे पूछा गया। उन्होंने उत्तरमें लिखा है—

'पूज्य स्वामीजीने अथवा लेखक महोदयने दो घटनाओंको एक कर दिया है। अपने जेल-जीवनमें मुझे कुछ अजीवसे भाषाित अपने जेल-जीवनमें मुझे कुछ अजीवसे भाषाित अपने जेल-जीवनमें मुझे कुछ अजीवसे भाषाित अपने अनुभव हुए। जैसे—'स्थानका प्रभाव क्या है, अन्न और अन्नके बनानेवालेका उस अन्नके खानेवालेपर क्या प्रभाव पड़ता है, संगंका

संख्या ८]

भाग ३६

-

ा था।

य कि

नेके छि के हायमें

ता ये लेग

सम्भावना

ानेकी एक

ल्दी-जली

उाई विला

में वैठाका

रात भर

नहीं रक्ती

मिलेगा तो

पर मैं उस

छ वैसा ही

हिं हुआ।

ालतमें है।

उसको और

क वहानी

षे-मृनियोंश

ीके समान

विना न

नगर दिवेही

ज्याधारपर

के प्रतिष

मिलाप के

व उपयुक

11

प्रमाव है और मन्त्रका क्या प्रभाव है। यह भी देखा कि मन शुद्ध, स्वच्छ और एकाय हो तो उसके लिये भूत, भविष्य, वर्तमान सब एक हो जाते हैं, दूर तथा निकट भी एक हो जाते हैं।

बे सब तो लंबी बातें हैं। वे दो घटनाएँ जो छेखमें एक कर दी गयी हैं—ये हैं।'

श्रीरणवीरजीने इतना लिखकर उन दोनों महत्त्वपूर्ण घटनाओंका संक्षेपमें उल्लेख किया है। उनको यहाँ प्रायः उन्हींकी भाषामें अल्ला-अलग दो शीर्षक देकर प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक इनपर विचार करें और लाभ उठावें। —सम्पादक]

(8)

स्थानका प्रभाव

पहले दिन मैं लाहौरके वोस्टील जेलमें पहुँचा तो रातको मैंने बहुत भयानक सपना देखा । एक कच्चा-सा देहाती क्कान। उसके छोटे-से द्वारसे मैं भीतर घुसा। खुले ऑगनमें वहुँचा। आँगनसे एक कोठरीमें । वहाँ मेरी माताजी अपने बलों कंबी कर रही थीं । मैंने उन्हें वालोंसे पकड़ा । वे विलायीं तो उन्हें घसीटता हुआ मैं वाहर ऑगनमें ले आया। और पता नहीं, कहाँसे एक छूरा लेकर वार-बार उनकी छाती-में बीपने लगा । मेरे सामने वे तड़पीं । मेरे सामने उनका बूत वहा। फिर भी मैं रुका नहीं। छूरेके वाद छूरा मारता चल गया।

और इसी घवराहटमें जागकर देखा-अंधेरी कोठरी है। के है। कहीं कुछ नहीं। अपने माता-पितासे मैं प्यार करता हूँ। अपनी पूज्या माँके लिये ऐसी वात मैंने कभी सोची ही नहीं। दुःख हुआ कि ऐसा सपना आया क्यों ? रातभर सो न्हीं पाया । सुवह होते ही जेलवालोंसे कहा—'मेरी माताजी-म इल पूछ दीजिये मेरे घरसे । शायद उनकी तवीयत अची नहीं। ' उन्होंने पूछकर बताया कि 'वे बिल्कुल ठीक है। लेकिन दूसरी रात फिर वही सपना। फिर मैं सो ^{नहीं पाया}। सलाखोंवाले द्वारके पास आकर ख**ड़ा हो गया**। ^{तभी गश्त} करते हुए एक जेल अफसर उधरसे गुजरे। मुझे देतकर बोले—'तुम सोये नहीं १' मैंने उन्हें स्वप्नकी बात कीं तो वे आश्चर्यसे बोले—'यह कैसे हो सकता है ? तुम कल यहाँ इस कोठरीमें आये हो, परसोंतक यहाँ एक और ^{आद्मी} था। एक देहाती। उसने ठीक ऐसे ही अपनी मॉकी हें वा की थी। ठीक ऐसा ही वह मकान था जैसा तुमने सपनेमें देखा। ठीक ऐसे ही वह बदनसीब माँ तड़पी और चिल्लायी भी। ठीक ऐसे ही वह शैतान उसे छुरेके बाद छूरा मारता ाषा था। मैंने गवाहोंके बयान सुने हैं। परसों ही उस रेहातीको फॉसीकी आज्ञा हुई । उसे सेंट्रल जेलमें भेज दिया ाषा । लेकिन तुमको यह सपना आया कैसे ११

तव मैंने समझा कि हमारे शास्त्र जिसको स्थानका प्रभाव कहते हैं, वह क्या है। वह अभागा आदमी मुझसे पहले कई मास इस कोठरीमें रहा । हर समय वह अपने कुकृत्यकी बात सोचता था और उसके विचार, उसकी भावनाएँ, उसकी पापमयी अनुभूति इस कोठरीके कण-कणमें धँसी जाती थी। वह चला गया लेकिन उसकी दूषित, पापपूर्ण भावना अब भी इस कोठरीमें है, उसीके कारण मैं यह सपना देखता हूँ ।

मैंने जेलके अधिकारीसे कहा-'आप कृपा करके मेरी कोठरी बदल दीजिये। मैं यहाँ रहूँगा नहीं। ऐसा न हुआ तो मैं अनशन कर दूँगा।

लेकिन अनशनकी नौबत नहीं आयी । दूसरे दिन मेरी कोठरी बदल दी गयी। फिर वह सपना कभी आया नहीं।*

भोजन बनानेवालेका भोजन करनेवालेपर प्रभाव

यह घटना लाहौरके सेंट्रल जेलमें हुई । मैं तब फॉसीकी कोठरीमें था। फाँसीका हुक्म हो चुका या। यहीं मैंने पहली बार भगवान्की उपलब्धि की । पहली बार सच्चे रूपमें मैं आस्तिक बना। (वह दूसरी कहानी है, उसे यहाँ नहीं लिख्ँगा) यहीं मैंने पूच्य पिताजीसे उपनिषद् पदना ग्रह किया । गायत्री और मृत्युझय-मन्त्रका जप भी ग्रुरू किया । मन खच्छ था, निर्मल और शान्त ।

* संगका अद्भुत प्रभाव है । जैसा संग होता है, जीवन उसी रंगमें रँग जाता है। संग केवल मनुष्यका ही नहीं होता। स्थान, भोजन, वस्त्र, चित्र, साहित्य, व्यवसाय, दर्शन, श्रवण, स्पर्श आदि सबका होता है और उसका निश्चित प्रभाव पड़ता है। बुरी चीजोंके संगसे मन बुरा बनकर जीवन बुरा हो जाता है, इसीसे सभी प्रकारके दु:संगका त्याग करना आवश्यक है।

> बरु भल बास नरक कर ताता। दृष्ट संग जिन देहिं विधाता।।

> > सन्पादक

माध्यातिमक संगका क्या

爺

79

धीरे

तभी एक रात गंदे-गंदे सपने आने लगे। हर बार मैं पबराकर उठता। थोड़ा-सा जाप करके सो जाता। फिर वही खप्न। वही रोती-चिछाती हुई नौजवान-सी लड़की। वही कुकर्म। तंग आकर रातके दो बजे मैंने हाथ-मुहँ धोये। जापके लिये बैठ गया। लेकिन पहलेकी तरह जापमें भी जी नहीं लगा। दूसरे दिन पिताजी आये तो उनसे सारी बात कही। उन्होंने पूछा—'कोई बुरी किताब तो नहीं पढ़ी?'

मैंने कहा—'मेरे पास उपनिषदोंके सिवा कोई किताव है ही नहीं।'

वे बोके—'किसी बुरे आदमीकी बातें तो नहीं सुनी ?'
मैंने कहा—'यह फाँसीकी कोठरी है। यहाँ आयेगा
कौन ?'

वे बोले- 'कोई बुरा खाना तो नहीं खाया ?'

मैंने कहा—'खाना तो बहुत स्वादु था। एक नया कैदी आया है। उसने बनाया था।'

पिताजीने जेलवालोंसे पूछा तो पता लगा कि यह नया कैदी एक नौजवान लड़कीसे बलात्कार करनेके अपराधमें कैद हुआ है। उसकी सारी कहानी सुनी तो वह ठीक वही थी जो मैंने सपनेमें देखी थी।

प्रकट है कि उसके वाद मैंने उसका बनाया हुआ मोजन नहीं किया, फिर वह सपना भी नहीं आया।

तब समझा कि हमारे शास्त्र भोजन वनानेवालेकी शुद्धता-पर जो इतना जोर देते हैं, सो क्यों देते हैं।*

---रणवीर

* भोजन एक पिनत्र यश है, जिसके द्वारा वैश्वानररूपसे अन्तरमें विराजित भगवान्की पूजा होती है, वह जीमकी तृप्तिके लिये खाया जानेवाला 'खाना' नहीं है। भोजनका मन तथा शरीर-पर अनिवार्यरूपसे बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उपर्युक्त सत्य घटनासे यह सिद्ध होता है—भोजन बनानेवाले व्यक्तिके विचार-परमाणु भी भोजन करनेवालेके मनपर अपना प्रभाव डालते हैं। इसीलिये भोजनकी पिनत्रतापर शास्त्रोंने इतना जोर दिया है। भोजनकी पिनत्रताके लिये नीचे लिखी वातं आवश्यक है।

(क) भोजन जिन पदार्थोंसे बना है वे पदार्थ सत्य और म्यायसंगत रीतिसे उपार्जित धनसे खरीदे हुए हों, अन्यायोपार्जित धनसे अन्नकी अञ्जुद्धि होती है और खानेवालेकी दुद्धि विगड़ती है। (६)

एक अद्भुत चमत्कारी कवच ! आप सिद्ध कर देखें।

चौदह-पंद्रह वर्षकी कन्या बुखारसे बड़बड़ा रही है। क्रं दिनोंसे बुखारकी तेजी ही कम होनेमें नहीं आ रही है। डाक्टरी उपचार चल रहे हैं, किंतु गरमी, सिर-दर्द, पीड़ा और ज्वरका प्रकोप कम नहीं हो रहा है। डाक्टर परेशान और घरवाले उद्विग्न! अब क्या करें।

मेरे चचा डा॰ बेनीचरण महेन्द्र (अध्यक्ष विज्ञानविभाग आगरा कालेज) उसे देखने गये। लड़कीकी बुरी हालत थै। वह तड़पती हुई विस्फारित नेत्रोंसे आनेवालोंको देखती, प

(ख) भोजन करानेवालेके मनमें प्रेम तथा सद्भाव हो, हा या असद्भाव न हो। इसीलिये श्रीकृष्णने दुर्योधनके यहाँ भोजन नहीं किया था। द्वेष, दु:ख और असद्भावयुक्त भोजनसे शरीरमें के होते हैं और मानस रोगोंका भी उदय तथा संवर्धन होता है।

(ग) भोजन बनानेवाला स्नान किया हुआ शुद्ध हो, सन्ध्र कपड़े पहने हो, उसके कोई रोग न हो, वह काम, क्रोध, भय, हिंस। विषाद आदिकी मानस स्थितिमें न हो। सर्वथा शुद्ध आवार विचारवाला हो।

(घ) भोजन बनानेका स्थान गन्दगी भरा न हो, शुद्ध भेष हुआ हो, अहिंसामय हो, एकान्त हो, सम्भव हो तो गोबर तथा शुद्ध मिट्टीसे लिपा-पुता हो।

(ङ) भोजन-पदार्थ राजस-तामस न हों—अधिक खड़ी अधिक नमकीन, अधिक कड़वा, अधिक तीखा, अधिक गरम, जलन पैदा करनेवाला और रूखा तथा मनमें रजोगुणीवृत्ति—भोगवासनाके उत्पन्न करनेवाला भोजन राजस होता है। एवं रसहीत दुर्गन्थयुक्त, बासी, जूठे, अमेध्य, मनमें पापवृत्ति तथा विकार पैरा करनेवाले—लहसुन-प्याज आदि पदार्थ तामसिक हैं और गर्म अंडे तथा मांस आदि तो घोर तामसिक है। इनसे बुद्धिनारी सक्तनाश तथा विभिन्न मानस तथा शारीरिक रोगोंकी तिथित उत्पत्ति होती है।

(च) किसीका जूँठा न हो। जब भोजन बनानेबालेके अतः
रस्थ विचारोंके परमाणुओंका खानेबालेपर असर होता है तब जूँठनव
असर तो निश्चय होगा हो। जूँठन खाना अत्यन्त हानिकर है।
आजकल जूँठनका विचार प्रायः उठ गया है। ब्यक्तिगत ही तही
सामूहिक 'वफे पार्टी'में प्रत्यक्ष पशु-आचारवत जूँठन खायी बती

-र देखें।

गा ३६

है। की रही है। नीड़ा और ान और

गनविभाग लत थी। खती, पर

हो, देव नोजन नहीं रीरमें रोग है।

हो, खच्च भय, हिंसा, , आचार-

शुद्ध धोया तथा शुद

के वहा म, जलन गवासनाको

रसहीन वेकार पैदा र शराव

बुद्धिनारी। निश्चित

हेका अनी । जूँ ठनका कर है।

ही नहीं। ायी जाती

-सम्पदिक

भण्याम् कुळ जागृति-सी आयी। वह लड़खड़ाती-सी जवानमें बोली… ह्योत ''स्तोत ।' _{फ्तोत}, क्या, कोई भी न समझ पाया । हमारे चचाजी क्रायक उस लड़कीका अभिप्राय समझे और बोले, 'ले किया, तूने अच्छी याद दिलायी ! अभी स्तोत्रसे तेरा बुखार

कीन-सा स्तोत्र ! कैसा स्तोत्र ! क्या यह भी चिकित्सा-ग्राबनी कोई नयी खोज है ? हमलोग कुछ भी समझ न पाये।

कुछ कह न पाती । सभी बड़े परेशान थे । चचा साहय भी

कुछ नार क्षीमारके समीप आ खड़े हुए। उन्हें देखकर उस कन्यामें

उधर चचा साहब, बीमारके पास सिरहाने बैठ गये और उसके ऊपर हाथ फेरते हुए संस्कृतमें कुछ मन्त्र परम 👊 और पूर्ण विश्वासके साथ उच्चारण करने लगे। वे उस मनके शब्दों, छिपे हुए विचारों और गुप्त संकेतों (Suggestions) में तन्मय हो गये । लगभग दस भित्रतक बीमारका कमरा मन्त्र-ध्वनिसे मुखरित होता रहा। गरा वातावरण मन्त्रकी आवाजसे गूँजने लगा । कन्या गन दिलायी देने लगी, उसकी पीड़ा कम दिखायी दी और गैरे भीरे जैसे किसी अहरय गुप्त शक्तिका प्रभाव उसपर होने बा। उसे नींद आ गयी। सभी चिकत थे। लड़कीकी तड़पन महो चुकी थी। फिर बुखार नापा गया, तो सबने आश्चर्यसे लाकि सचमुच वह कम होकर ९९ पर आ गया था। ^{ब्र} एक हैरतमें डालनेवाला **दृ**ष्य था । जहाँ डाक्टरका लिक्_{रन} कुछ काम न कर सका था, वहाँ हमारे चचाजी-^{श्र चमत्कारी} स्तोत्र काम कर गया था। वह कौन-सा करिश्मा ण, सब पूछने लगे।

सभी उस स्तोत्रकी बातचीत सुनने लगे। हमारे चचाजी-वेबाया, भैने इस अद्भुत स्तोत्रका प्रयोग अनेक संकट-^{श्ळीन} परिस्थितियोंमें किया है। बिच्छू काटनेसे लेकर भृष्यस्तताः, नौकरी छूटनाः धुखारः, तिवयत खराव होनाः मी, मुसीवत, विपत्ति, सिर-दर्द, चिन्ता और अन्यान्य किटकालीन परिस्थितियोंमें काममें लिया है। हर तकलीफमें क्षेत्रों अपना चमत्कार दिखाया है। मुझे ही नहीं किंकों अद्भुत लाभ पहुँचा है।'

हमने पूछा, आपको यह किसने सिखाया ?

वे वोले, 'एक वार हम बीमार पड़े थे। बीमारीसे बड़े पितान थे। मन बड़ा उद्विग्न था। सब प्रकारके उपाय करके

हार रहे थे। हमसे मिलने एक मित्र आये तो उन्होंने उन्हीं दिनों आगरेमें आये हुए एक महात्माका नाम बताया और उनसे सलाह लेनेको कहा । महात्माजीको वड़ी कठिनाईसे लाया गया, तो उन्होंने एक स्तोत्रका पाठ किया और देखते-देखते दस मिनिटमें मुझे मानसिक वल मिला। स्तोत्रका अर्थ विस्तारसे समझा और पूर्ण विश्वासके साथ उसे नवरात्रमें सिद्ध किया । अव यह मेरी पेटेन्ट दवाई वन गया है । अनेक व्यक्ति संकटके समय मुझे बुलाकर इसका पाठ कराते हैं और सदैव लाभ उठाते हैं। इसमें अपूर्व शक्ति, साहस और गुण भरे हुए हैं । यह वड़ा गुणकारी है। इसके एक-एक शब्दमें नयी शक्ति उत्पन्न करनेका रहस्य भरा पड़ा है। यह एक चमत्कारी कवच है।'

मैंने पूछा, 'आप तो विशानके आचार्य हैं। आपको इस स्तोत्रपर कैसे विश्वास हुआ ! धर्म और विज्ञान तो विल्कुल पृथक् दिशाओंमें चलते हैं ! एक अद्राप्रधान है, तो दूसरा बुद्धिप्रधान ।'

वे बोले, 'आप जानते हैं कि ध्वनिका प्रमाव मनुष्यके शरीर और मनपर पड़ता है। युद्धमें बन्दूक, वम, बारूदके फटाके तथा भीषण ध्वनियोंसे मनुष्यके शरीर और मनमें अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कितनों ही के मुँह टेदे हो जाते हैं, लकवा हो जाता है, नाड़ीसंस्थान कमजोर पड़ जाता है और हृदयके अनेक रोग विकसित हो जाते हैं। तेज आवाजसे वायु-मण्डलमें कम्पन पैदा होते हैं जो वायुके माध्यमसे मनुष्यके मस्तिष्कपर मजबूत प्रभाव डालते हैं। यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है। इससे रोगी और चिन्तित मनमें शान्ति और बल पैदा हो सकता है। जिस स्तोत्रको मैं पढ़ता हूँ, उससे वायुमण्डलमें आरोग्य, बल, शान्ति और रक्षाकी वृद्धि होती है। ये कम्पन वीमारके गुप्त मनमें जाकर रोग-शोक, पीड़ा और परेशानीके विचार दूरकर दिव्य मानसिक वलकी सृष्टि करते हैं। इस आत्मबलसे ही रोग दूर होते हैं। जितनी पुष्टतासे व्यक्ति स्तोत्रका पाठ करता है, उतनी शीवतासे ही क्लेश और परेशानी दूर होकर आनन्द और खास्थ्यकी स्थिति आती है । यह मनो-वैज्ञानिक प्रक्रिया (दवाई) है।

वह स्तोत्र कौन-सा है ?

इस चमत्कारी स्तोत्रका नाम 'रामरक्षास्तोत्र' है। इसके बुध कौशिक ऋषि हैं। इसमें महासती सीता तथा महा-शक्तिकेन्द्र भगवान् श्रीराम इसके देवता हैं। श्रीमान हनुमान्जी इसके कीलक हैं। यह अनुष्टुप् छन्दमें लिखा गया है। भगवान् रामकी इतनी प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं कि उनकी सिद्धिसे संसारके सब शारीरिक और मानसिक रोग दूर किये जा सकते हैं। सिद्धिकर्त्ताको बड़े विश्वास और आत्म-श्रद्धासे इसका पुनः-पुनः पाठ करना चाहिये और विरोषरूपसे नवरात्रमें इसको सिद्ध करना चाहिये। रामनवमी भी इसके लिये पवित्र अवसर है।

उत्तम तो यह है कि 'रामरक्षास्तोत्र' का अर्थ समझ लिया जायः क्योंकि इसके अक्षर-अक्षरमें शक्ति-संचारकी पवित्र भावनाएँ भरी पड़ी हैं।

लीजिये आप भी सिद्ध कीजिये

नीचे लिखे रामरक्षा स्तोत्रपर ध्यान एकाग्र कीजिये। उच खरसे और प्रगाढ़ श्रद्धापूर्वक उच्चारण कीजिये। आपमें भगवान् श्रीरामके प्रति जितना अखण्ड विश्वास होगा, उतना ही लाम होगा। विना श्रद्धाके कुछ लाम न मिलेगा।

'रामरक्षा स्तोत्र' एक मनोवैज्ञानिक ओषि है। इसमें वे सब भव्य विचार भरे पड़े हैं जिनसे मानसिक रोग दूर होते हैं और अलैकिक शक्ति उत्पन्न होती है।

जब आप बेहद घवरा रहे हों, परेशानी मारे डालती हो, जीना न चाहते हों, घोर अशान्ति और घृणामेंसे गुजर रहे हों, जीवन नीरस और दुखी माल्म होता हो, संसार कपटी, निर्दयी और पाखण्डी प्रतीत होता हो तो आप रामरक्षा स्तोत्रका पाठकर सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्तिसे जरूर लाभ उठायें। धन-बल, विद्यावल और बुद्धिवलसे भी अधिक बलवान् यह मन्त्र है। इससे कुसंस्कार दूर होकर ग्रुम संस्कार जमते हैं और आशाकी किरणें फूट निकलती हैं। हजारों व्यक्ति रामरक्षा-स्तोत्रसे मृत्यु, परेशानी, पागलपन और आत्महत्या-जैसे रोगोंसे बचे हैं। इससे शरीर रोगविहीन होता है, आरोग्यकी वृद्धि होती है, मस्तिष्क तथा ज्ञानतन्तु पुष्ट होते हैं, स्मरणशक्ति तीव्र होती है, रक्तचाप (ब्लडप्रेसर) और हृदय-रोग मूलसे दूर हो जाते हैं । हमारे मानसिक स्वास्थ्य और संतुलन (Mental balance) के लिये इसका प्रतिदिन पाठ किया जाय तो गुणकारी है। प्रत्येकको पूजाके साथ प्रतिदिन इसका अभ्यास करना चाहिये। (अनुष्ठानके लिये रोज ११ पाठ हों तो उत्तम है)

चमत्कारी रामरक्षा-स्तोत्र

चिरतं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् । एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ श्रीरघुनाथजीका चरित्र सौ करोड़ विस्तारवाला है और उसका एक-एक अक्षर भी मनुष्योंके बड़े-से-बड़े पापोंको नाश करनेवाला है ।

ध्यात्वा नीळोत्पळश्यामं रामं राजीवलोचनम्। जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ॥ २ । सासित्णधनुर्बाणपाणि नक्तंचरान्तकम् । जगत्त्रातुमाविभूतमजं विसुम् ॥ ३॥ स्वलीलया रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापन्नीं सर्वकासदाम्। शिरों में राधवः पातु भालं दशरथात्मजः ॥ १॥ जो नीलकमलदलके समान स्यामवर्ण, कमल्लाक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित, हाथोंमें खड़, तूणीर, ध्रुप औ बाण धारण करनेवाले, राक्षसोंके संहारकारी तथा संगति रक्षाके लिये अपनी लीलासे ही अवतीर्ण हुए हैं, उन अज्जा और सर्वव्यापक भगवान् रामकी सीताजी और स्थापकी सहित यादकर प्राज्ञ पुरुष इस सर्वकामप्रदा और पा विनाशिनी रामरक्षाका पाठ करे। वे कहें कि राभा में सिरकी और दशरथात्मज मेरे ललाटकी रक्षा करें।

कौसल्येयो दशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती। प्राणं पातु सखत्राता मुखं सौमित्रिक्तलः॥ १। कौसल्यानन्दन वे श्रीराम मेरे नेत्रोंकी रक्षा करें। विश्वामित्रप्रिय कानोंको सुरक्षित रक्कों और यशरक्षक श्रीम नाक तथा सौमित्रिवत्सल मेरे मुखकी सदैव रक्षा करें।

जिह्नां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः।

स्कन्धौ दिञ्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः॥ ६। करो सीतापतिः पातु हृद्यं जामदग्न्यजित्। मध्यं पातु खरध्वंसी नाभि जाम्बवदाश्रयः॥ ।। सुभीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमयभुः। रक्षःकुलविनाशकृत्॥ ८॥ रघूत्तमः पातु दशसुखान्तकः। जंघे सेतुकृत्पातु विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वषु ॥ ९ ॥ कण्ठकी भरतविद्वा विद्यानिधि, मेरी जिह्नाकी कंधोंकी दिव्यायुध और भुजाओंकी महादेवजीका धुन तोड़नेवाले वीर राम रक्षा करें। हाथोंकी सीतापित हर्गी परशुरामजीको जीतनेवाले राम, मध्यभागकी खर नाम राक्षसका नाश करनेवाले और नाभिकी जाम्यवान्के आप्र रूपी राम रक्षा करें । मेरी कमरकी सुग्रीवके स्वामीः सिक्यां हनुमत्प्रभु और ऊर्ओंकी राक्षसकुल-विनाशक खुश्रेष्ठ श्रीम रक्षा करें । मेरे जानुओंकी सेतुकृत, जंबाओंकी रामकी मारनेवाले, चरणोंकी विभीषणको ऐश्वर्य देनेवाले और क श्रीराम मेरे सारे शरीरकी रक्षा करें।

एतां रामवलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्। स विरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्॥ १९। पातालभूतलञ्योमचारिणीश्रक्षमचारिणः न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रचितं रामनामितः॥ १९।

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्। तो न लिप्यते पापै भुंक्ति मुक्ति च विन्द्ति ॥ १२॥ रामनाम्नाभिरक्षितम् । जगज्जैत्रैकमन्त्रेण यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः॥ १३॥ जो पुण्यपुरुष रामवलसे सम्पन्न इस रक्षाका पाठ करता है, वह दीर्घायु, सुखी, पुत्रवान, विजयी और विनय-समन होता है। जो जीव पाताल, पृथ्वी अथवा आकाशमें विचरते हैं और जो छद्मवेशसे घूमते रहते हैं, वे रामनामोंसे मुक्षित पुरुषको देख भी नहीं सकते । 'राम' गुममद्रं 'रामचन्द्रं' आदि पवित्र नामोंका स्मरण क्रतेसे मनुष्य पापोंमें लिप्त नहीं होता है। वह इन नामोंकी शकिसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

जो पुरुष जगत्को विजय करनेवाले एकमात्र मन्त्र गमनामसे सुरक्षित इस स्तोत्रको कण्डमें धारण करता है, अर्थात् जवानी याद कर उपयोगमें लाता है, उसे संसारकी स्व सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं अन्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥१४॥ जो मनुष्य वज्रपञ्जर नामक इस रामकवचका स्मरण करता है उसकी आज्ञाका कहीं उल्लङ्घन नहीं होता और उसे सर्वत्र ज्य और मङ्गलकी प्राप्ति होती है।

आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः। तथा लिखितवान्प्राप्तः प्रबुद्धो बुधकौशिकः॥१५॥ श्रीशिवजीने रात्रिके समय स्वप्नमें इस रामरक्षाका जिस क्षा आदेश दिया था, उसी प्रकार प्रातःकाल जागनेपर बुध-भैशिक ऋषिने इसे लिख दिया।

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्। अभिरामिस्रलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः ॥१६॥ जो मानो कल्पवृक्षोंके वगीचे हैं तथा समस्त आपत्तियोंका अन करनेवाले हैं, जो तीनों लोकोंमें परम सुन्दर हैं, वे श्रीमान् राम हमारे प्रभु हैं।

रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ। पुण्डरीकविशालाक्षौ ः चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१७॥ फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ। पुत्री दशरथस्यैतौ आतरौ रामलक्ष्मणौ ॥१८॥ शरण्यो सर्वसस्वानां श्रेष्टो सर्वधनुष्मताम् । रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥१९॥ जो तस्म अवस्थावाले, रूपवान्, सुकुमार, महाबली, भारते समान विशाल नेत्रवाले, चीरवस्त्र और कृष्णमृगचर्म भी, फ़िम्ल आहार करनेवाले, संयमी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, हिण्यूर्ण जीवोंको शरण देनेवाले, समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ और

राक्षस-कुलका नाश करनेवाले हैं, वे खुश्रेष्ठ दशरथकुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई हमारी रक्षा करें।

आत्तसज्जवनुषाविष्रस्पृशावक्षयाञ्चगनिषङ्गसङ्गिनौ । रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावयतः पथि सदैव गच्छताम्॥२०॥ कवची खङ्गी चापवाणधरो युवा। गच्छन्मनोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२१॥ शूरो लक्ष्मणानुचरो बली। रामो दाशरथिः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः ॥२२॥ काकुत्स्थः पुरुषः वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः । श्रीमानप्रसेयपराक्रमः ॥२३॥ जानकीवल्लभः इत्येतानि जपेन्नित्यं मद्गक्तः श्रद्धयान्वितः। अइवमेधायुतं पुण्यं स प्राप्नोति न संशयः॥

जिन्होंने संघान किया हुआ धनुष ले रक्खा है, जो बाण-का स्पर्श कर रहे हैं तथा अक्षय वाणोंसे युक्त तूणीर लिये हुए हैं, वे राम और लक्ष्मण मेरी रक्षा करनेके लिये मार्गमें सदा ही मेरे आगे चलें।

सर्वदा उद्यत, कवचधारी, हाथमें खड्ग लिये, धनुष-वाण धारण किये तथा युवा अवस्थावाले भगवान् राम लक्ष्मणजीके सहित (आगे-आगे) चलकर हमारे मनोरथोंकी रक्षा करें।

(भगवान्का कथन है कि) राम, दाशरथि, शूर, लक्ष्मणानुचर, वली, काकुतस्थ, पुरुष, पूर्ण, कौसल्येय, रघूत्तम, वेदान्तवेद्यः यज्ञेद्यः, पुराणपुरुषोत्तमः, जानकीवल्लभः, श्रीमान् और अप्रमेयपराक्रम—इन नामोंका नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक जप करनेसे मेरा भक्त हजारों अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक फल प्राप्त करता है-इसमें कोई संदेह नहीं।

द्वीदलक्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्। स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः॥

जो लोग दुर्वादलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन, पीताम्बरधारी, भगवान् श्रीरामका इन दिव्य नामोंसे स्तवन करते हैं, वे संसारचक्रमें नहीं पड़ते।

उपर्युक्त स्तोत्रके अक्षर-अक्षरमें शक्ति भरी हुई है। पूर्ण विश्वासके साथ जपनेसे चमत्कारी फल प्राप्त होते हैं। आप भी सिद्ध कर देखिये।

—डा॰ रामचरण महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी॰

(9)

अभिभावककी त्यागभावना

जूनका महीना था। सब हाई स्कूल खुल गये थे। नये सत्रका पहला दिन था । विद्यार्थियोंके अभिभावक

१. पूरे स्तोत्रके लिये पाठकोंको गीताप्रेस, गोरखपुरकी 'स्तोत्र-रत्नावली' पुस्तक पढ़नी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६ -

11 41171 RI. म्॥३॥

RI : 11 8 11 कमलन्यन

धनुष और या संसाखी उन अजना लक्ष्मणजीहे

और पार राघव मी

ती । 5: 11 4 1 (क्षा करें।

क्षक श्रीराम करें। तः।

कः ॥ ६ ॥ त्। यः॥ ॥

मुः। हत्॥ ८॥ कः।

मु ॥ ९ ॥ भरतविद्वा जीका धरुष

ति, हृदयनी वर नामके

नुके आश्रम , सिक्थवाँशी (श्रेष्ठ श्रीराम

ही रावणको हे और वी

देत्। は川90月

में: ॥ ११॥

ज्यतः

af fi

एकके बाद एक चले आ रहे थे। जिस अभिभावककी वार्षिक आय १२००) रुपयेसे कम हो, सरकारकी ओरसे उसके बालकोंकी फीस ई० बी० सी० माफ की जाती थी। लगभग सभी अभिभावक इससे लाभ उठा रहे थे। शामतक माफी चाहनेवालोंमें, जो पढ़े-लिखे थे वे माफीके फार्मपर हस्ताक्षर करके और विना पढ़े-लिखे लोग बायें हाथके अँगूठेकी लाग लगाकर उपकार मानकर चले गये।

मेरे क्रासमें एक सिंधी लड़की नये वर्षसे भर्ती हुई थी। स्कूलका समय पूरा होनेपर में हाजिरी रजिस्टर लेकर स्टाफल्ममें आकर कुरसीपर बैठ गया। इतनेमें वह सिंधी लड़की स्टाफल्मके दरवाजेपर दिखायी दी। 'कैसे आना हुआ बहिन !' मैंने सीधा प्रश्न किया। उसने जरा सकुचाते हुए कहा—'साहेव! मेरे पिताजीने पुछवाया है कि 'मैं यदि एक सप्ताह बाद फीस मरूँ तो कोई आपित्त हैं !' मैंने नकारमें सिर हिलाते हुए कहा—'नहीं, कोई आपित्त नहीं है, परंतु तुम्हारे पिताजीको कल आते समय स्कूलमें साथ ले आना।' 'अच्छी बात है'—कहकर लड़की चली गयी।

दूसरे दिन एक अधेड़ सद्ग्रहस्थ मेरी आफिसमें आये, वह लड़की साथ थी। इससे मैंने अनुमान कर लिया कि ये उसके पिता होंगे। आते ही वे दोनों हाथ जोड़कर मुसकराते हुए खड़े हो गये। उनकी पोशाक देखनेसे कल्पना होती थी कि वे कोई अफसर होने चाहिये।

मैंने कहा—'देखिये, सरकारकी ओरसे यह घोषणा की गयी है कि जिस अभिभावककी वार्षिक आय १२००) रूपयेसे कम हो, उसके बच्चोंकी ई० बी० सी० फीस माफ कर दी जाय। आपकी इच्छा बच्चीकी फीस माफ करानेकी हो तो मैं फार्म दूँ।'

मेरा यह स्पष्टीकरण सुनकर, आजतक किसी भी अभिभावकके मुखसे नहीं सुने गये थे, ऐसे वचन उन्होंने कहे—'नहीं जी, मेरा मासिक वेतन दो सौ रुपये है। कुटुम्बके आधे दर्जन सदस्योंका भरण-पोषण इसी आयसे करता हूँ। इधर मेरे लिये सब नया है। अतः पहला वेतन सब घरकी चीजोंके जुटानेमें खं हो गया। अब चार दिनोंके बाद वेतन मिलेगा। आपको एतराज न हो तो—' 'नहीं, नहीं, मुझे कोई एतराज नहीं है।' उनके कथनका मर्म समझकर मैंने उनका वाक्य पूरा नहीं होने दिया। 'परंतु बड़े-बड़े जमींदार और सेठ लोग भी अपने बच्चोंकी फीस माफ करवानेके फार्म भर गये हैं।' मैंने कहा।

वे बोले—'ठीक है, वे सरकारकी आँखोंमें धूल क्षेक्त ठग सकते हैं, लेकिन में अपनी आत्माको कैसे धोला हैं। इस प्रकार प्राप्त की हुई विद्या व्यर्थ होती है। ईमानरारिक निर्भय जीवन ही सच्चा जीवन है।' मैंने उनकी आँखों ईमानदारीके स्पष्ट दर्शन किये। इतनेमें प्रार्थनाकी धं सुनायी दी। वे अभिवादन करते हुए उठ खड़े हुए औ उन्होंने मेरे पाससे जानेकी अनुमित चाही। उन्हें को देखकर मेरा मन उनके प्रति निमत हो गया। अलख आनन्द

(2)

गिद्धनीका सतीत्व

जिला सीतापुर त० मिश्रितके अन्तर्गत पवित्र तपोभूमी नैमिषारण्य एवं मिश्रित तीर्थके बीचमें एक गौआपुर नाम ग्राम है। खेतमें फसल कट जानेपर वर्तमान समय मैक्क हो गया है । उसी स्थानकी यह सत्य एवं रहस्प्रपूर्ण घटाहै। गत वैशाख पूर्णमासी शनिवार तदनुसार दिनाङ्क १९ मं सन् १९६२ ई० को खेतमें एक मृतक पक्षी ग्रप्र पड़ा देव गया, जिसपर मादा पक्षी गिद्धनी उस मृतक शक्को अले परोंसे दके बैठी थी। ग्रामके कुछ बच्चोंने उस गिइतीही ईंटके ढेलोंसे मारा । पर वह अपनी जगहसे नहीं हरी। त बच्चे उसे पकडकर ग्राममें ले आये, परंत ग्रामके निवास्यिने उसे छुड़वा दिया। वह गिद्धनी वहाँसे छूटकर पुनः मुक गिद्धके शवके पास पूर्ववत् बैठ गयी । जव तीन-चार दिनीतः यही कम रहा तो ग्रामके मनुष्य जाकर कौत्हल्से विव देखने लगे। उस पक्षिणीका यह नियम था कि यदि कैं उसे छू लेता था तो वह स्नान करके पुनः अपने <mark>स्थानप</mark> पूर्ववत् बैठ जाती थी। स्नानके लिये नहर समीपमें थी। उसने खाना और पीना विल्कुल छोड़ दिया था। पर्व यदि कोई मनुष्य आकर उससे यह कहता कि 'यह गङ्गाज हैं तो वह कुछ विचार कर गङ्गाजलको ग्रहण कर लेती थी। कोई झूठ ही पानीको गङ्गाजल कह देता तो उसे नहीं पीत थी। उस मृतक गिद्धके शवसे दुर्गन्ध भी नहीं आती थी। उसे देखने सभी प्रकारके लोग सरकारी उच्चिषिकारी भी आवे अनेकों प्रकारसे उसकी परीक्षा ली गयी परंतु वह परीक्ष सफल हुई। इस प्रकार दो सप्ताह व्यतीत होनेपर गत अमावस्या शनिवार दिनाङ्क २ जून सन् ६२ ई० को बा पश्चिणीने भी प्राण त्याग दिये। प्रातः लेख प्रतिपदाको सर्वसम्मतिसे चिता बनाकर विधिपूर्वक दोतिम —मह्मानन्द हेकेता दाइ-संस्कार किया गया।

'कल्योणि के अजिवन ग्राहक बानिय ग्रहकता पान्ति

प्रतिवर्ष 'कल्याण' का मुल्य भेजनेकी बात समयपर स्मरण न रहनेसे बहुतसे प्रेमी प्राहक-प्राहिकाओंको किता होती है और समयपर रुपये न पहुँचनेके कारण बी० पी० द्वारा 'कल्याण' बहुत देरसे मिछनेपर उन्हें क्षोभ कार्य है। ग्राहकोंको इस असुविधासे बचानेके लिये हमारे ट्रस्टीगणने यह निश्चय किया है कि जो ग्राहक रू १००) (एक सौ रुपये) एक ही साथ भेज देंगे वे 'कल्याण' के 'आजीवन ग्राहक' बना लिये जायँगे। अर्थात किसाथ एक सी रुपये देकर आजीवन शाहक वननेवाले सज्जन या देवी जवतक स्वयं जीवित रहेंगे और क्रिलं 'कल्याण' का प्रकाशन होता रहेगा, तवतक उनको प्रतिमास नियमित रूपसे ठीक समयपर 'कल्याण' वाता रहेगा। (ग्राहक वननेवाले व्यक्तिका देहावसान हो जानेपर उनके उत्तराधिकारीको 'कल्याण' वी जीता अथवा किसी कारणविद्रोषसे 'कल्याण' का प्रकाशन वंद हो जायगा तो संस्थावर उन आजीवन गहका कोई हक दोष नहीं रहेगा।)

ऐसे आजीवन ग्राहक 'कल्याण'की विशाल ग्राहक-संख्याकी दृष्टिसे वहुत ही कम, एक परिमित संख्यामें ही लाये जायंगे ।

अतएव 'आजीवन ग्राहक' वनना चाहनेवाळे सज्जनों और देवियोंको तुरंत रू० १००) (एक सी रूपये) मोबाईर या डाकवीमाद्वारा या बैंक-ड्राफ्टसे भेजकर अपना नाम शीव्र दर्ज करा छेना चाहिये। निर्धारित हंखापूरी हो जानेपर और ग्राहक नहीं वनाये जा सकेंगे।

फल्याण' के प्रेमी महानुभाव स्वयं आजीवन ग्राहक वर्ने और चेष्टा करके आजीवन ग्राहक वननेके क्षे अपने इष्ट-मित्रोंको प्रेरणा करें एवं रुपये भिजवानेमें शीघ्रता करें।

व्यवस्थापक-'कल्याण', पो० गीताप्रेस, गोरखपुर

नेची पुस्तकें !

भाग ३६ -

ल झोनन

गेला दूँ!

मानदारीका

ने आँखोंने नाकी धंधे

हुए औ

उन्हें जाते

। अल्रष्ट

ाल स्थवारा

ा तपोभृमि

पुर नामः

स्य मैदान

घटना है। इ १९ मई

पड़ा देखा

वको अपने

गिद्धनीको हटी। तव

नेवासियोंने

नः मृतक र दिनोंतक

रसे चित्र

यदि औ स्थानपर

पमें थी।

। परंडे

गङ्गाजल

लेती थी।

नहीं पीती

ाती थी।

भी आये परीक्षामे

गत ल्ये , को चार तः व्येष

दोनींका द हेकेद्रा प्रकाशित हो गयीं !!

गीता-दैनन्दिनी सन् १६६३ ई०

आकार २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ ४१६, बाइंडिंग क्राथकी जिल्द, मूल्य .६२ नये पैसे। डाकखर्च .७५ अलग। 🔞 बार .७५ नये पैसे मूल्यवाली गोरखपुरी कपड़ेकी सजिल्द पुस्तकें बनवानेकी व्यवस्था नहीं है।)

^{इसमें} सदाकी तरह हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और भारतीय शक-संवत्की तिथियोंसहित पूरे वर्षमें दैनिक क्रमसे सम्पूर्ण क्रिवद्गीता, तिथि, वार, घड़ी और नक्षत्रका संक्षिप्त पत्रक, अंग्रेजी तारीखोंका वार्षिक कैलेंडर, प्रमुसे विनती, ईश्वर-कि आत्मोन्नति, अपने स्वामाविक गुणोंको जाग्रत् कीजिये, संतोष कीजिये, ज्ञान-प्राप्तिके साधन, भगवत्सारणका प्रभाव, जिमाति विना सुख नाहीं, आनन्दमें निमग्न रहिये, नित्यसुखी कौन हैं, कुछ जानने योग्य वातें, जैसे—रेलभाड़ा, रेलके हैं अवस्थिक नियम, डाक, तार, इन्क्रमटैक्स, सुपरटैक्स, मृत्यु-कर, पुराने-नये पैसे तथा मेट्रिक माप-तौल आदिकी जिलाणी, दैनिक वेतन तथा मकान-भाड़ेका नकशा, अनुभूत घरेलू द्वाओंके प्रयोग, स्वास्थ्य-रङ्गाके सप्तसूत्र, विं आदि भी दिये गये हैं।

कि गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है। यहाँ आर्डर देनेके पहले अपने यहाँके पुस्तक-के माँगिये। इससे आपका समय तथा पैसे वच सकते हैं।

भारतमें आर्य बाहरसे नहीं आये

लेखक-शीनीरजाकांत चौधरी (देवशर्मा)

शिक्षर २०४३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३६, मू० .१५ नये पैसे (डाकखर्च रजिस्ट्रीसे .६० नये पैसे)। व्यवस्थापक-गीतात्रेस, पो० गीतात्रेस (गोरखपुर) 'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क

'संक्षिप्त ब्रह्मवेवर्तपुराणाइः'

- (१) वर्षोंसे हमारे कृपालु तथा प्रेमी महानुभाव जिस रसपूर्ण श्रीकृष्णलीला-कथासे पूर्ण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क प्रकाशित करनेका अनुरोध कर रहे थे, वही इस वार प्रकाशित होने जा रहा है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा श्रीराधिकाजीका अमृतोपम लीलार्यान तो है ही, दिव्यलोकोंका, कर्म और कर्मफलोंका, ज्ञान-विज्ञानका, भगवान् शंकर और गणेशके चरित्रोंका, दुर्लभ स्तोत्रों, कवचों और मन्त्रोंका बड़ा विशद विवेचन है। अतएव वैष्णव-भक्तींक ही नहीं, यह पुराणाङ्क सभीके लिये प्रमोपयोगी और संग्रह करने योग्य है। इसके सभी प्रसंग उपदेशप्रद, मनोरञ्जक, मधुर, मनोहर तथा सर्वदुःखहर होंगे। इस अङ्कमें बहुतन भावपूर्ण वहुरंगे, इकरंगे और रेखाचित्र रहेंगे, जिनसे अङ्क और भी सुन्दर तथा आकर्षक होगा।
 - (२) इस वर्ष महँगी तथा रबर्च और भी बड़ा है, अतः मूच्य बढ़ानेके प्रस्तावभी आये, पंत मुल्य न बढ़ाकर वही ७.५० ही रक्तवा गया है। पृष्ठ-संख्या भी वही ७०० के लगभग होगी। झ अङ्ककी बहुत अधिक माँग होनेकी संभावना है। अतएव पुराने ग्राहकोंको तुरंत ७.५० (सात स्पे प्चास नये पैसे) मनीआर्डरद्वारा भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये। नये ग्राहकोंको भी अभीरे रुपये भेजकर अपना नाम दर्ज करा लेना चाहिये, अङ्क शीघ समाप्त हो जायगा और दूसा संस्करण न छपेगा तो प्राप्त होना संभव नहीं होगा ।
 - (३) रुपये भेजते समय मनीआर्डरके कूपनमें पुराने ग्राहक अपनी ग्राहक संख्य लिखनेकी कृपा अवश्य करें और नाम, पता, ग्राम, मुहल्लेका नाम, डाकघर, जिला, प्रदेश-सब बहुत साफ साफ बड़े अक्षरों में लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' लिखन कृपया न भूलें । रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भेजें । मनीआर्डर फार्म अगले अङ्कमें भेजाज सकता है। केवल विशेषाङ्कका मूल्य भी ७.५० है, अतः पूरे वर्षका ही ग्राहक बनना उचितहै।

(४) जिन पुराने ग्राहक महोद्योंको किसी कारणवश अगले वर्ष ग्राहक न रहना है वे कृपया एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे डाकखर्चकी हानि न उठानी पड़े।

(५) गीताप्रेसका 'पुस्तक-विभाग' तथा 'कल्याणकल्पतरु-विभाग' कल्याण-विभागते पृथक् हैं। अतः पुस्तकोंके तथा 'कल्पतरु'के लिये उन उनके व्यवस्थापकोंके नाम अला प व्यवहार करना चाहिये और रुपये भी अलग-अलग उन्हींके नामसे भेजने चाहिये।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत देरसे दिये जातेंगी संभावना है। यो सजिल्दका मृत्य ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) है।

(७) इस अङ्कमें लेख प्रायः नहीं जायँगे। इस अङ्कित सामग्री भी कहीं बढ़ ग्री । अङ्किती सामग्री भी कहीं वढ़ ग्री । अगले अङ्गोंमें देनी पड़ेगी। अतएव कोई महानुभाव लेख, कविता आदि कृपया न भेजें। व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) ड॰ प्र

190

28.80

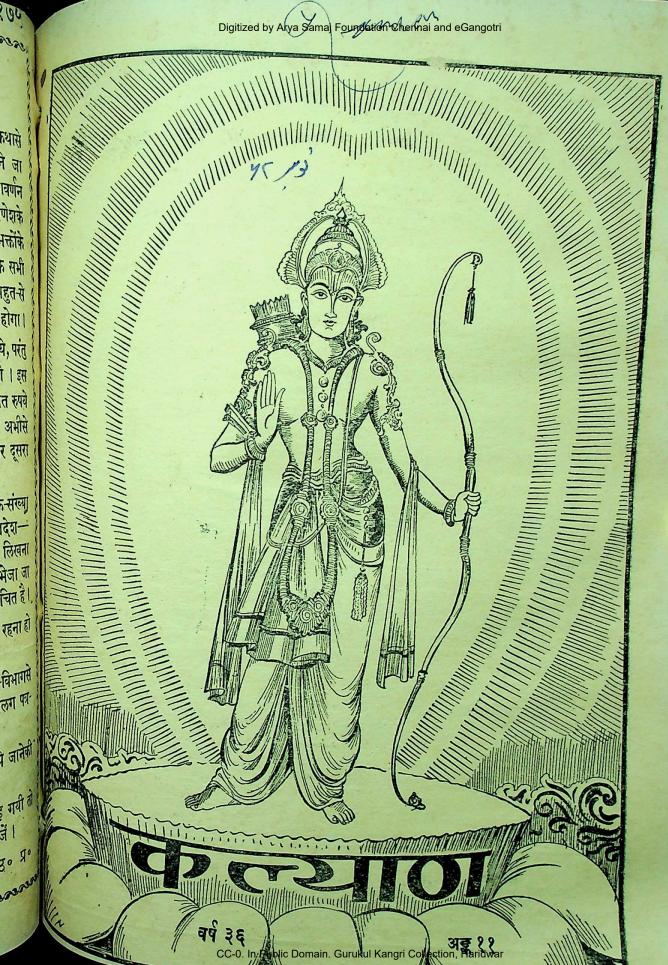
म्थासे

ने जा विर्णन पोशके मक्तोंके

ह सभी

ाहुत-से होगा।

ये, परंतु



हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानिक-राम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपीप्रिय राधेश्याम॥
संस्करण—१,४८,००० (एक लाख अइतालीस हजार)

विषय-सूची	कल्याण, सीर मार्गजीर्ष २०१९, नवम्बर १९६२	
विषय १-रामके वियोगमें कौशल्या [किवता] (गीतावलीसे) २-कल्याण (गीशवं) ३-विद्वत्ता और तत्त्वज्ञानका भेद (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) १२८६ ४-निष्काम कर्मसे परमात्माकी प्राप्ति (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १२८६ ५-मधुर ६-ज्योति' (डॉ० श्रीमुंशीरामजी शर्माः एम्० ए०. पी-एच्० डी०, डी० लिट्०) १२९२ ७-क्षमा [किवता] (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) ८-श्रीरामनामामृत और उसकी प्रयोग-विधि (पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज) १२९४ ९-आत्मशक्तिका अक्षय मण्डार आपमें लिया हुआ है (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न) १०-श्रीरामचरितमानसमें आगम-तत्त्व (डा० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट्०)	११-कथानक-निर्माणमें तुल्सीका दृष्टिकोण (डा० श्रीगोपीनाथजी तिवारी एम्० ए०) १३०६ १२-दुःख भाग्य-विधाताका दण्ड-विधान नहीं, बिक उसकी अनुपम देन है (श्री- सत्यदेवजी आढ़ा, आर० ए० एस्०, असिस्टेंट कमिश्नर) १३१० १२-व्रज्ञकी माधुर्य-भावना और श्रीगदाधर मद्र (क० श्रीगोकुळानन्दजी तैलंग, साहित्यरल) १३१३ १४-देखे सकल देव [कहानी] (श्री चक्र) १३१७ १५-धर्मबुद्धिकी आवश्यकता (श्रीपरिपूर्णानन्द- जी वर्मा) १६-सम्मान प्राप्त करनेका महत्त्वपूर्ण उपाय (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) १३२२ १७-स्वाध्याय-संग्रह (स्व० श्रीविश्वामित्र- जी वर्मा) १३२४ १८-साकेतवासी योगिराज स्वामीजी श्री- च्योतिःप्रकाशाश्रमजीके जीवनकी कुछ वातें, हिमालयमें सिद्ध महात्माओंके दर्शन (भक्त श्रीरामशरणदासजी) १३२५ १९-भारतके तीन अमूल्य रत्न ! (श्रद्धेय श्रीप्रसुद्दजी ब्रह्मचारी महाराज) १३३०	
१-भगवान् श्रीरामचन्द्र (रेखाचित्र) १२८१ (तिरंगा) १२८१ (तिरंगा) १२८१		

वार्षिक मृल्य । भारतमें ६० ७.५० | विदेशमें ६०१०.०० | (१५ शिलिंग) जय पावक रिव चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय जय जय विश्वरूप हरि जय। जयहर अखिलात्मन् जय जय॥ जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें

सम्पदिक <u>Publi</u>मिशप्रशाद्धभेक्ष्ण, स्वित्तमकाख्या ओखासी प्रम् ए ए , शास्त्री मदक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर हरे ॥

०६

१०

13

११७

२०

१२२

३२४

324

₹₹°

व्यष्ट्र

ारण तमें शमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हो। हरे राम हरे राम राम राम जय ग्रुभ-आग्रा। मा तारा। जय गणेश, दुर्गा, जय जय जय जानकि-राम । गौरीशंकर सीताराम ॥ जयति शिबा-शिव जय रघुनन्दन जय सियाराम। त्रज-गोपीप्रिय राधेश्याम ॥ संस्करण—१,४८,००० (एक लाख अइतालीस हजार)

विषय-सूची	कल्याण, सौर आश्विन २०१९ सितम्बर १९६२
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ठ-संख्या
१-वड़मागी काग [कविता]	१०—आत्मखरूपानुसंघान (व्र० पूज्यपाद श्रोत्रिय व्रहानिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी हार्मा)
(डा॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्॰ ए॰ः पी-एच्॰ डी॰) *** ११७५	१८-धामरक्षा-कवचं भी सिद्धिकी विधि "१२११
९-मधुर ११७९	
१—मुरलीमनोहर २—बङ्भागी कौआ	-मूची (रेखाचित्र) मुलपृष्ठ (तिरंगा)
साधारण	

चार्षिक मूल्य ? भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु०१०.०० (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत चित आनँद भूमा जय जय ॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय।। जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

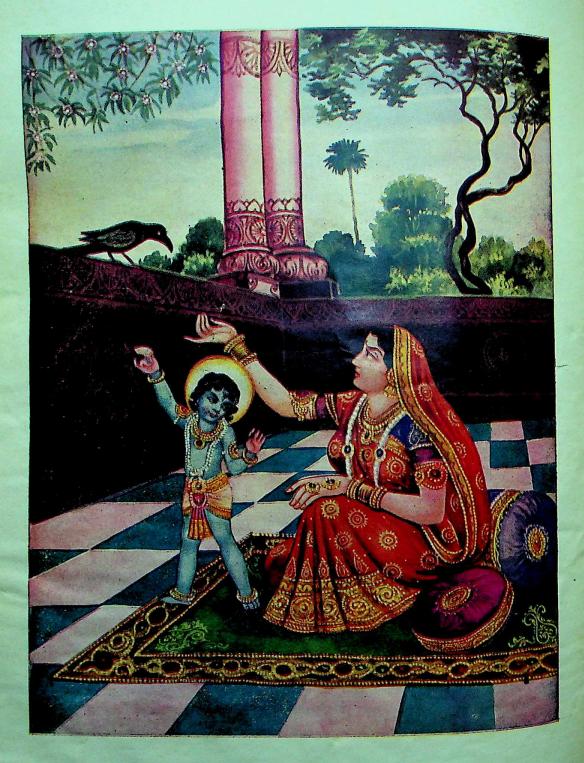
भारतमं विदेशमें (१० व्स

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोखामी एम्० ए०, शास्त्री CC-0. In Fusing Bornam. Gurukur Kangni Collection, Handwar

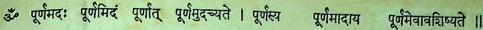
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri रेहर संख्या २२११ २२११ २२१२ मुखगृष्ठ ११५३ CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



बड़भागी कौआ



आइ खावहु पूप, खेळहु लाल सँग खग-मौर।





उमासहायं परमेश्वरं प्रभ्रं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भृतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर आश्विन २०१९, सितम्बर १९६२

संख्या ९ पूर्ण संख्या ४३०

बड़भागी काग

ठालन ! देखु आयौ काग।
खान पूआ हाथ तेरे मधुर अति बङ्भाग॥
देउँ पूआ ताहि मैया ! देखु जाइ न भाज।
ढिंग बुलावहु काग, खेलों तेहि सँग हों आज॥
लाल के सुनि बैन जननी रही काग निहोर।
आइ खावहु पूप, खेलहु लाल सँग खगमौर॥

中ででかんかんかん

कल्याण

याद रक्खो—तुम्हें जो तन-मन-धन, शक्ति-बल, बुद्धि-विवेक, पद-अधिकार मिला है, सब भगवत्सेवाके लिये मिला है। यही उनका सदुपयोग है। बड़ी सावधानीके साथ प्रत्येक वस्तुका सदुपयोग करो। इसीमें तुम्हारा कल्याण है और उस वस्तुकी सार्थकता है। यदि तुम सावधानी नहीं रक्खोगे तो उनका दुरुपयोग होगा; शरीर-को सत्कार्योमें नहीं लगाओगे, वह दुष्कार्योमें लगेगा; मनसे सच्चिन्तन नहीं करोगे, वह बुरा चिन्तन करेगा; धनको गरीबोंकी सेवामें नहीं लगाओगे, वह विलासमें लगेगा!

याद रक्खो—किसी भी वस्तुका सदुपयोग न करनेपर या तो उसका दुरुपयोग होता है, जो नयी-नयी बुराइयाँ पैदा करता है, जिनसे दु:खोंकी नयी-नयी भूमिकाएँ बनती हैं अथवा वह वस्तु नष्ट हो जाती है।

याद रक्लो—सबसे मूल्यवान् वस्तु हैं—समय और मन। इन दोनोंको निरन्तर सावधानीके साथ निरन्तर भगवत्सेवा, परमार्थ-साधन, ऊँचे उठानेवाले कार्योंमें लगाये रक्लो। न व्यर्थ खोओ, न प्रमाद करो। आलस्य और दीर्घसृत्रतासे समय व्यर्थ जाता है और न करने योग्य कामोंमें लगाने और करनेयोग्य कामोंमें न लगानेसे प्रमाद होता है। इसी प्रकार मनसे भगवचिन्तन या ग्रुभचिन्तन न करके जगचिन्तन करनेसे उसका व्यर्थ उपयोग होता है और पाप या अशुभ चिन्तनसे प्रमाद होता है। समयके एक-एक क्षणको भगवान्की सेवाके हेतु सत्कार्यमें नियुक्त स्वरों और मनको व्यर्थ चिन्तन और असचिन्तनसे बचा-

कर नित्य निरन्तर ग्रुभ चिन्तन या भगवचिन्तनमें लाहे रक्खो—यही समय और मनका सदुपयोग है।

याद रक्खों — जो वस्तु भगवान्की सेवाके निम्ति लगकर सदुपयोगमें आ गयी, वह तुम्हारी हो गयी। वे धन सेवामें लग गया, वह तुम्हारा हो गया; जीवनका वे समय भगविचन्तनमें लग गया, वह तुम्हारा हो गया; लावे द्वारा जितना सत्कार्य बन गया, वह तुम्हारा हो गया। नहीं तो, ये सब चीजें नष्ट होनेवाली हैं। इन्हें बरोला और साज-सवाँरकर रखनेसे ये नहीं रहतीं, प्रतिपल हका नाहा हो रहा है और अन्तमें ये सर्वथा नष्ट हो जाँगी। जितना इनको तुमने सत्कार्यमें लगा दिया, उतनी हकी सार्थकता हो गयी।

याद रक्खो—मानव-जीवनका एक-एक क्षण अस्व है; क्योंकि भगवान्की स्मृति-सेवामें लगनेपर वह प्रमह्म भगवत्प्राप्तिमें हेतु बनता है । गया क्षण फिर लेखा आता नहीं, अतएव प्रत्येक क्षणको भगवान्की सेवामें अन न पड़े । खास-प्रश्वासकी भाँति लगातार भगवान्की स्मृति-सेवामें अन न पड़े । खास-प्रश्वासकी भाँति लगातार भगवान्की स्मृति-सेवामें अन सेवा बनती ही रहे । तुम कहीं भी जाओ, तुम्हारे क्षण कमी न भूले और प्रत्येक कार्यके द्वारा तुम सर्वत्र क्षण भागवान्की सेवा हो कर रहे हो—यह निश्चय बना ही भगवान्का सेवा हो कर रहे हो—यह निश्चय बना ही सेवा कर पाये तो तुम सदा सर्वत्र भगवान्का साधाका रेसा कर पाये तो तुम सदा सर्वत्र भगवान्का साधाका और दिनभर उनकी पूजाका ही पवित्रतम कार्य करें हो । यही तुम्हारे जीवनका सदुपयोग है ।

शिव'

परमात्मा, जीवात्मा और विश्व

(मुल अंग्रेजी लेखक-नि श्रीजगद्गुरु अनन्तश्री श्रीशङ्कराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज, गोवर्धनमठ, पुरी)

[अनुवादक-पं० श्रीश्रुतिशीळजी शर्मा, तर्कशिरोमणि]

[अङ्क ८, पृष्ठ १०९५ से आगे]

शक्ति-सत् और असत् (मिथ्या)

सत्, चित् और आनन्दकी दैवीशक्ति हमारे अंदर है भि हमें प्रत्यक्ष देखना एवं प्राप्त करना है। उसके लिये में चतुर्मुखी शक्ति प्राप्त करनी होगी; क्योंकि वेद कहता है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

न्तनमें लावे

त्राके निमित्त

हो गयी। जो

जीवनका जो

ो गया; तनके

रा हो गया।

न्हें बरोखा

न्रतिपल इनक्ष

हो जायँगी।

उतनी इनशी

सण अमूल

वह परम दुले

फिर लैंखा

की सेवानें ही

-सेवामें अना

ग्रान्की स्पृत

महारे कार्यका

मधुर सर्ग

सर्वत्र सिंग

य बना है।

का साक्षाका

कार्य करते

्वल्रहीन व्यक्ति इस आत्माका साक्षात्कार नहीं कर हक्ते।' गीतामें अर्जुनको दुर्बल मस्तिष्कवाला देखकर श्रिष्ण कहते हैं—

श्चदं हृदयदीर्बन्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ सुबदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ । ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

ेह अर्जुन ! अपने हृदयकी दुर्बलताको दूर कर, उठ और लड़ । मुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयकी चिन्ता नकरते हुए युद्ध करता हुआ तू अपने धर्मका पालन कर, विषय तुझे छू भी नहीं सकता ।' पर हमारी ये सभी अक्तियाँ (शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक) अच्छे भ्रमें ही लगायी जानी चाहिये, बुरे कामों नहीं । अपनी भनिसक-शक्तिको स्वयंको अनुशासनमें रखने और दूसरोंकी विषया करनेमें लगाओ, नहीं तो निश्चय समझो कि तुम गरीरिक-हिष्टेसे बलवान् होते हुए भी निर्बल ही वने रहोगे ।

^{बळं} बळवतामस्मि कामरागविवजितम् ।

भही शक्ति दैवी होती है, जो काम और पक्षपातसे कि है। शेक्सपीयर भी कहता है—

'राक्षस या दैत्यके समान बलशाली होना उत्तम है, पर

अव किलो दैत्यकी ही तरह लोगोंको सतानेमें लगाना उत्तम
विश्वानी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक
किलो दूसरोंकी सहायता करनेमें ही लगाओ, उनको
प्रं दुःख देनेमें नहीं।'

श्रीकृष्ण और शिशुपाल

इस प्रसंगमें श्रीमाघ कविद्वारा किया हुआ एक वर्णन स्मरण हो आता है, जिसमें शिशुपाल श्रीकृष्णको भद्दी-भद्दी गालियाँ देता है और श्रीकृष्ण उसे चुपचाप सुनते रहते हैं। तव शिशुपालका एक सहायक श्रीकृष्णकी इस चुप्पीपर फवती कसता है और कहता है कि श्रीकृष्ण हार गये। उसी समय सात्यिक प्रत्युत्तर देता है 'क्या बात करते हो ? देखो, शिशुपालको तो कोधने जीतकर अपने शिकंजेमें जकड़ रक्खा है, जव कि श्रीकृष्णने क्रोधको जीत रक्ला है। अर्थात् शिशुपालको यदि कोधने जीत रक्खा है, तो श्रीकृष्णने कोधको जीत लिया है, इस प्रकार श्रीकृष्ण शिशुपालको जीतनेवालेको भी जीतनेवाले हैं। तव वे इस क्षुद्र प्राणी (शिग्रुपाल) द्वारा कैसे जीते जा सकते हैं ?' पर जब कर्तव्यका समय आता है तो हम देखते हैं कि श्रीकृष्णने क्रोधसे नहीं, अपित अपना कर्तव्य या धर्म समझकर शिशुपालको नष्ट कर दिया। यह है आत्मानुशासित शक्ति, नैतिक, शारीरिक और मानसिक जिसकी हमें आवश्यकता है और जिसे हमें पाना है।

परिणाम

इस प्रकारकी शक्ति हमें भगवद्भजनसे ही प्राप्त हो सकती है—

सोऽहंभावेन प्जयेत्।

(अपनेको परमात्माके साथ एक करते हुए ही परमात्माकी पूजा करनी चाहिये।) जिसने अपना स्वर परमात्माके स्वरके साथ मिला दिया, उसके बारेमें भागवतका कथन है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्गावमात्मनः। भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

'जो प्रत्येक पदार्थमें अपनेको तथा परमात्माको देखता है तथा जो अपनेमें और परमात्मामें प्रत्येक पदार्थको देखता

訓

हू, जी

मं चा

म उत्त

द्वेको

情3

लें परम

बह न

इता है

स्त्रो वि

अनया

यहाँ

खा है

कि एव

है उसक

स देन

क्लन्द-प्र

बान

है वही सचा और सर्वश्रेष्ठ भक्त है ।' गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

'जो सब पदार्थको वासुदेवके रूपमें देखता है, वह महात्मा दुर्लभ है।' ऐसे महात्माके विषयमें यम अपने दूतोंसे कहते हैं—

सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः सः एकः। इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात्॥

'जिन्होंने अपने हृदयके अंदर विद्यमान प्रभुपर भक्तिपूर्वक अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया है तथा जो परमात्माके
साथ एक हो गये हैं, उन्हें तुम दूरसे ही छोड़कर आगे चले
जाओ (क्योंकि वे मृत्युको जीत चुके होते हैं, तथा उनका
न्याय करना तुम्हारे और मेरे अधीन नहीं है।' यह परम
आनन्दकी स्थिति किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, उसका
विचार अब करते हैं।

जब हम इस ज्ञानकी स्थितितक पहुँच जाते हैं तथा निष्कामभावसे सब कार्य करते हैं, तब हम कर्त्तव्योंको कर्त्तव्यकी दृष्टिसे करते हैं, न कि फलाकांक्षाकी दृष्टिसे । और उसका परिणाम यह होता है कि पूर्वजन्मके कमाये हुए सारे पाप और दुःख समाप्त हो जाते हैं । तब अविद्या, काम अथवा कर्म इनका कुछ भी अर्थ नहीं रह जाता और न इनके कारण होनेवाले जन्मका ही कुछ मतलब रह जाता है । अर्थात् जन्म-मरणका चक्र इस मोक्षकी स्थितिपर आकर सर्वथा समाप्त हो जाता है ।

ठीक है, नये कर्म उत्पन्न न भी हों, पर पिछले कर्मोंका क्या होता है ? इसका उत्तर वेदान्त सूत्र देता है—

तद्धिगम उत्तरपूर्वार्धयोरइलेषविनाशौ।

अर्थात् ज्ञानीके पूर्वसंचित कर्म समाप्त अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं और उसके आगामी कर्म निष्काम भावसे किये होनेके कारण उसके जन्मके हेतु नहीं बनते और प्रारच्य कर्म भी नष्टगत हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें पहुँचे हुए ज्ञानीकी उस मनुष्यसे उपमा दी जा सकती है कि जिसका बैंकमें कुछ न हो तथा कुछ कमाता न हो और जो कुछ पासमें था वह भी खर्च हो गया हो, अर्थात् उसके पास धन न हो। उसी प्रकार ज्ञानीके भी पूर्वसंचित कर्म नष्ट हो जाते हैं, आगामी भी कुछ नहीं रहता तथा प्रारच्य भी समाप्त हो जाते हैं। संक्षेपमें उसके कोई कर्म शेष नहीं रहते, बे उसे जन्म-मरणके चक्रमें डाल सकें। उसके विषयमें वेर्क्स कथन है—

अस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये।

'उसकी और ब्रह्मकी एकता होनेमें देरीका कारण उसके कर्म हैं। अर्थात् कर्मके समाप्त होते ही वह ब्रह्मे मिल जाता है।'

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति।

'उसके प्राण बाहर नहीं निकलते तथा उसे दूसरे जन्ममें नहीं ले जाते; क्योंकि उसके कर्म सर्वथा समाप्त हो गये होते हैं।' अपितु—

अत्र ब्रह्म समइनुते।

'वह यहीं ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है, उसके साथ एक हो जाता है।' एक उदाहरण इसको स्पष्ट कर देगा—कल्पना करो कि एक कैदी, जो जेलसे छूटा नहीं है, एक जेलसे दूसरे जेलको ले जाया जाता है तो उसके साथ सर्वदा एक पुलिसका आदमी रहता है, जो उसे एक जेलो दूसरे जेलको ले जाता है, पर यदि वह जेलसे सर्वथा मुक्त हो जाय तो कोई पुलिसका आदमी उसके साथ नहीं रहता। इसी तरह कोई जीवात्मा, बन्धनसे मुक्त न होकर, एक शारीरसे दूसरे शारीरमें यदि जाता है, तो कैदीके साथ पुलिस के आदमीकी तरह प्राण इस जीवात्माके साथ सदा रहता है। पर जब वह मुक्त हो जाता है, तो किर प्राण उसके साथ नहीं रहता, अतएव उसे दूसरा जन्म भी नहीं लेना पहता। क्योंक वह परमात्माके साथ एक हो जाता है।

यही हमारे महर्षियों द्वारा वताया हुआ मार्ग है, जिसे होकर हम अपने मूल स्थान परमात्मातक पहुँच सकते हैं। हम आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीके द्वारा इस संवार में आये थे, पर 'जिनविपरीतक्रम' (जैसा कि स्वामी स्वार्म संवार्म संवार्म संवार्म संवार्म संवार्म संवर्म के जिसे हम मानवजीवनके उद्देश्यको, जिसे उचित-अनुचितको विचार कर कार्य करनेकी सुविधा है प्राप्त उचित-अनुचितको विचार कर कार्य करनेकी सुविधा है प्राप्त उचित हो । दूसरे प्राणियोंका शरीर भोग-क्षेत्र' है कर लेते हैं । दूसरे प्राणियोंका शरीर भोग-क्षेत्र' है कर लेते हैं । दूसरे प्राणियोंका शरीर भोगनी जहाँपर कि जीवातमा पिछले जन्मोंके कर्मोंका कल भोगती इस प्रकार प्राचीन कर्मोंके फलको काटता है; पर मानविध है, इस प्रकार प्राचीन कर्मोंके फलको काटता है; पर मानविध होरीर एक कर्म क्षेत्र है, जिसमें इस केवल पिछले जन्मोंक

मि ३६

-

हते, जो

वेदका

11

कारण

हैं ब्रह्मसे

ने दूसरे

साप्त हो

थ एक

देगा—

है, एक

के साय

क जेळसे

था मुक्त

रहता।

, एक

पुलिस-हता है।

ाथ नहीं

पड़ताः

जिससे

ते हैं।

संसार

सदा

वापिस

र्गतापर

जिसमें

, प्राप्त

ना है।

मोगता

ानवीय

त्मिकि

क्रांब फल ही नहीं काटते, अपितु ऐसे नये कर्म भी करते हुं बी मोक्षके दरवाजोंको खोल दे। इसलिये यह मनुष्य-श्री सबसे उत्तम है। अतएव मानव-शरीरको पानेके वाद मं विधि कि हम अपने अंदर स्थित परमात्मापर ही अपना क्ष केन्द्रित करें। यदि हम यह कर छें, तो निश्चय ही क्र उत्तम मार्गपर चलकर अपने लक्ष्यपर पहुँच जायँगे। हैं बेंह यह कहे कि 'दैनिक जीवनके कार्य ही इतने अधिक कि उन्हींको करते-करते सारा समय बीत जाता है, अतः क्षेपमात्माकी उपासना करनेके लिये समय ही नहीं मिलता? क्षेत्रस्का यह कहना एक वहाना मात्र ही है। वेदान्त कभी 🛮 महीं कहता कि अपने अन्य काम छोड़कर केवल ब्रामाके ध्यानमें लग जाओ । इसके विपरीत वह यही 🔊 है कि अपने दैनिक कार्यको पूरा करते हुए संसारमें ला बीखो। पर इसके साथ ही इस वातका भी ध्यान ह्नो कि कहीं तुम परमात्माको न भूल जाओ । यही क्षका सौन्दर्य है। जनकने इसी प्रकारके जीवनको क्षावा था। अपना ध्यान परमात्मापर केन्द्रित करते हुए वह राजाके कर्तव्यको नहीं भूला। आत्मैकत्वके दर्शनका बी मार्ग है।

सांसारिक रङ्गमञ्ज

वहाँ फिर एक जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि यह मान के भी कि सत्, चित्, आनन्द ही आत्माका वास्तविक का है और शेष अज्ञान, दुःख आदि उपाधि हैं, जो को बारा आत्मापर लाद दिये गये हैं, पर यह कैसे सम्भव कि एक ज्ञानी दुःखका अनुभव करते हुए भी यह माने अस्ता सक्प आनन्दमय ही है। इस प्रश्नका समुचित अवश्यक है; क्योंकि इसी उत्तरपर 'जीवन्सुक्ति' कि आवश्यक है; क्योंकि इसी उत्तरपर 'जीवन्सुक्ति' कि आवश्यक है; क्योंकि इसी उत्तरपर 'जीवन्सुक्ति' कि आधारित है। विदेह-मुक्ति (मृत्युके बाद कि भी वीचमें रहते हुए आनन्द-प्राप्तिके सिद्धान्तको मानवे की कीई भी सरलतासे तैयार नहीं होगा। इस प्रश्नका अमावान् श्रीविद्यारण्य 'पञ्चदशी'में इस प्रकार

भागे गन्त्रोर्द्धयोः श्रान्तौ समायामप्यदूरताम् । भेगेन् धैर्याद् द्वतं गच्छत्यन्यस्तिष्ठति दीनधीः ॥ 'दो यात्री, जो दोनों ही पूरी तरह थके हुए हैं, यात्रा करते हैं। उनमें एक, जो यह जानता है कि मंजिल करीय ही है, साहस बटोरता है, थकावटको सहन करता है और आगे चल पड़ता है (घर पहुँचनेके लिये, जहाँपर वह अपनी टाँगें पसारकर आरामकी नींद ले सके) पर दूसरा, जो अपनी मंजिलको पास नहीं समझता और यही कल्पना करता है कि घर तो अभी बहुत दूर है और उसे अभी बहुत चलना है, शीघ ही थक जाता है और आगे बढ़नेसे इन्कार कर देता है।

इसके और अधिक स्पष्टीकरणके लिये हम एक और उदाहरण देते हैं। कल्पना करो कि तुम एक नाटक देखने जाते हो, जहाँ तुम देखते हो कि भगवती सीताको (जिनका तुम जगजननीके रूपमें आदर करते हो) रावण धमका या डरा रहा है। पर तुम उसका आनन्द टेते हो, और रावणका अभिनय तुम्हें पसंद आ गया तो तुम 'फिर एक वार, फिर एक वार' चिल्लाते हो । पर दूसरी तरफ तुम कहीं जाते हुए देखते हो कि तुम्हारे सामने ही (नाटकमें नहीं, वास्तवमें) एक गुंडा एक स्त्रीसे छेड़खानी कर रहा है तो तुम गुस्सेमें भरकर उस गुंडेपर टूट पड़ते हो। पर इस भेदका कारण क्या है, कि तुम एक ओर जगन्माता सीताको कष्टमें देखकर भी आनन्द लेते हो और दूसरी तरफ एक अनजान स्त्रीको कष्टमें देखकर गुंडेपर टूट पड़ते हो ? इसका कारण है तुम्हारा विचार । दोनों दृश्योंमें तुम समान दृश्य ही देखते-सुनते हो कि एक दुष्ट एक स्त्रीको सता रहा है और वह रो रही है, पर नाटकमें तुम यह विचार करते हो कि सव काल्पनिक है। अतः उसके विषयमें तुम कुछ नहीं कहते, इसके विपरीत आनन्दसे टिकट खरीदकर नाटकका मजा छेते हो । पर दूसरे दृश्यको काल्पनिक न मानकर अर्थात् वास्तविक मानकर गुंडेपर टूट पड़ते हो और अनजान स्त्रीको बचा लेते हो । इसी उदाहरणसे द्वैती और अद्वैतीका भेद समझा जा सकता है। दोनों (द्वैती और अद्वैती) अपनी इन्द्रियोंसे समान अनुभव लेते हैं, पर द्वैती (परमात्मा और संसार दोनोंको सत्य माननेवाला) संसारसे होनेवाले सुख-दुःखको सत्य या वास्तविक मान लेता है तथा निराशा और दुःखोंका शिकार हो जाता है, जब कि अद्वैती यह समझता है कि सब

TERE

आरो

होता

य मं

हसप्र

श्रीमत

गधव

दु:ख-सुख काल्पनिक हैं; वास्तविक नहीं; और (नाटकमें सीता और रावणके दृश्यके समान) इनसे प्रभावित न होकर तटस्थ बना रहता है।

रासलीला

परमात्मा और जीवात्माकी स्थिति तथा उनके कार्यकी रूपरेखाका चित्रण भगवान् श्रीकृष्णकी रासलीलाके रूपमें बडी ही सन्दरतासे किया गया है। वेसमझ लोग रासलीलाको गलत समझकर गलत रूपमें ही उसे लोगोंके सामने प्रस्तुत करते हैं, जब कि वास्तवमें वह 'प्रपञ्चात्मक नृत्य'का एक प्रतीक है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस संसारके साथ सर्वदा नृत्य करता रहता है । बाइबिलका 'सोलोमनके गीत' (The song of solamon) श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीलाकी छायामात्र हैं। यहाँ हम रासपञ्चाध्यायीके अधिक विस्तारमें नहीं जायँगे । यह रासलीला परमात्मा और प्रपञ्चके सम्बन्धकी रूप-रेखा हमारे सामने प्रस्तुत करती है। भगवानुके नृत्यका वर्णन इस प्रकार है-

माधवो अङ्गनामङ्गनामन्तरा माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना । इत्थमाकिएते मण्डले मध्यगः संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः॥

रासमण्डल भगवान् और जीवात्माओंका एक चक्र है जो संसारको बनाते हैं। इस रासमण्डलमें प्रत्येक गोपीके दोनों ओर तथा चक्रके मध्यमें भी श्रीकृष्ण अपनी बाँसरी बजाते हुए नृत्य कर रहे हैं । यह हमें यह बताता है कि जीवात्माएँ वहुत हैं और परमात्मा एक। पर वह एक होते हुए भी हमारे चारों ओर विद्यमान है, और यही हमें देखना भी है। अर्थात् गोपियाँ जैसे अपने चारों ओर श्रीकृष्णको देखते हुए उन्हींके ध्यानमें मग्न रहती थीं, उसी प्रकार हम जीवात्माओंको भी चाहिये कि हम अपने चारों ओर परमात्माकी विद्यमानताको अनुभव करते हुए उसके ध्यानमें मग्न रहें। रासलीलाकी कथा आगे चलती है कि गोपियोंका अहंकार वढ जाता है तव श्रीकृष्ण जिनके साथ गोपियाँ प्रसन्न होकर नाचती-गाती थीं-

प्रशामाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ।

-अचानक गायव हो जाते हैं। तव गोपियाँ वहुत हुन हो जाती हैं और उन्हें चारों दिशाओं में हूँ हना आरम क देती हैं, पर सिवा अन्धकारके उनके हाथ कुछ भी कें आता । तय वे बाह्य प्रपञ्चमें हूँ ढनेके सानपर को अंदर ही ढूँढना गुरू कर देती हैं तथा खयंको भी भूल्य श्रीकृष्णके लिये आत्मसमर्पण कर देती हैं। त्य वे स स्थितिपर पहुँचती हैं—

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।

उनका मन भगवान्पर ही केन्द्रित हो जाता है, उनम वार्त्तालाप भगवद्विषयक ही होता है, उनके की भी भगवान्से सम्बन्धित ही होते हैं तथा अपनेपनको भूला वे त्रिल्कुल परमात्ममय हो जाती हैं। तत्र स्या होता है।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।

और तब भगवान् यहाँ-वहाँ—सब जगह मुसकराते हर प्रकट हो जाते हैं तथा पहलेके समान ही खगींय गूँखी बजाना आरम्भ कर देते हैं। इस कथाका तालर्य अलब सरल और स्पष्ट है। जब मनुष्यमें अहंकार पैदा हो जा है, तब परमात्मा अदृश्य हो जाते हैं और अंधकारके लि उस अहंकारीको कुछ भी नहीं दीखता। पर जब ब अहंकारको दूर झटककर परमात्माके प्रति आत्मसम्बर्क साथ एक हो जाता है, तब परमात्मा सर्वत्र दीखने लाते हैं तथा उसके साथ आनन्दका व्यवहार करते हैं। हुले शब्दोंमें अहं कारसे रहित होकर 'नर' इस देहमें रहते हुए भी 'नारायण' वन जाता है। फिर एक वार वहाँ हम वी प्रश्न पूछना चाहते हैं कि 'इस परमात्माकी एकतासे बढ़का और उद्देश्य क्या हो सकता है तथा वेदान्तके द्वारा कार्य गये इस मंजिलतक पहुँचनेके मार्गसे और अधिक सरह मार्ग दूसरा कौन-सा हो सकता है ?'

उपसंहार

इस प्रकार हमारे उद्देश्य और उसके मार्गके वार्ष वेदान्तके पवित्र उपदेश हैं । वेदान्तके इन पवित्र उपदेशीं सार महर्षि वेदव्यासने सूत्रके रूपमें लीगोंको दिया और भगवान् आद्यशंकराचार्यने जिन्होंने २५०० वर्ष पूर्व अविकि को ज्ञानका प्रकाश देनेके लिये जन्म लिया था मही वेदव्यासके ब्रह्मसूत्रोंपर एक अमर भाष्य हिखा। (स्मा)

ज्ञान-निश्चय

(हेखक-स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

श्रात-निश्चयके सम्बन्धमें अवधूत श्रीदत्तात्रेय कहते हैं—
अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमञ्ययम् ।
हृति स्थानिश्चितो सुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत् ॥
हृति निश्चितः स्थात्, सुक्तो भवेत्, अन्यथा बद्ध एव ।
जिसको परब्रह्म वासुदेव नामसे भी कहा जाता है और अविकारी (जन्मादि छः विकारोंसे रहित) है, वह
ग्राह्म में स्वयं ही हूँ । जो पुरुष इस प्रकार दृढ़ निश्चयका
अरोश कर सकता है, वही (जन्म-मरणके बन्धनसे) मुक्त
होता हैं और जो मोक्षके द्वार-स्वरूप मानव-दारीरके मिलनेग्रामी विषयासक्ति न छूटनेके कारण ऐसा निश्चय नहीं कर
क्ता, वह अनादिकालसे ही बन्धनमें पड़ा है और उसका

इक्षन चालू ही रहता है तथा मनुष्यजनम व्यर्थ चला

यहाँ जिस निश्चय करनेकी वात कही गयी है, उस निश्चयको क्षी तर्कके द्वारा या युक्ति-प्रयुक्तिसे अथवा धका मारकर क्षारती बुद्धिपर आरूढ़ करनेके लिये नहीं कहा जाता है। सम्कारका निश्चय तो किसी भी प्रकारके साधनाधिकाररिहत मुख्य भी कर सकता है। परंतु ऐसे निश्चयकी कोई भी श्रीमत नहीं है; क्योंकि बुद्धि किस क्षण जड और अस्थिर क्षायाणी होकर इस निश्चयसे डिंग जायगी, यह नहीं कहा सम्वाली होकर इस निश्चयसे डिंग जायगी, यह नहीं कहा सम्वाली होकर इस निश्चयसे डिंग जायगी, यह नहीं कहा सम्वाली होकर इस निश्चयसे डिंग जायगी, यह नहीं कहा सम्वाली होकर इस निश्चयके अभावमें जीवको जन्मान्तरमें शिक्ता पड़ेगा। इस निश्चयका अपरोक्ष करनेके लिये असको विवेकादि साधन-चतुष्टयसे सम्पन्न होना ही चाहिये। व्याही कर्म और उपासनाके द्वारा चित्तके मल और विक्षेप क्षेत्रों हूर करना चाहिये।

मल और विक्षेप—चित्तमें होनेवाली राजसिक और विक्षेप—चित्तमें होनेवाली राजसिक और विक्षेप—चित्तमें होनेवाली राजसिक और कहते मिलनतासे मोह, अकर्मण्यता, प्रमाद, आलस्य, किनी, भय, निद्रा, संशय, संदेह, अनीश्वरता और विपर्यय-मिलनी कारणस्पा देहात्मबुद्धि उत्पन्न होती है; राजसिक मिलनता, शोक, काम, कोध, लोभ, दम्म, ईर्ष्या,

मद, मत्सर, अहंकार आदि चित्तमं विक्षेप करनेवाले दोष उत्पन्न होते हैं। इन दोषोंके वेगसे चित्त अशान्त, दुखी, चञ्चल और व्यप्न रहता है। अतएव इस निश्चयका अपरोक्ष करनेके तथा उसे नित्यके जीवनमें उतारनेके लिये इन दोषोंकी निवृत्ति अनिवार्य है। ये दोष भी रहें और ज्ञानका निश्चय भी रहें—यह दिन और रात्रिको साथ रखनेकी कल्पनाके सहश्च है। निष्काम कर्म और उपासनाके द्वारा इन दोषोंकी निवृत्ति करनी ही चाहिये।

चित्तको उपर्युक्त प्रकारसे अधिकारयुक्त वना लेनेके वाद ही 'मैं ब्रह्म हूँ'—ऐसा निश्चय करनेके लिये विचार किया जा सकता है। इसके लिये प्रथम तो जीवका स्वरूप समझना चाहिये; क्योंकि जवतक शरीर है, फिर चाहे कोई जीवन्मुक्त शानसम्पन्न मुनि ही हो,—तवतक जीवभावकी सर्वथा निवृत्ति नहीं होती। केवल उसका वाध होता है—अर्थात् 'मैं जन्म-मरण धर्मवाला जीव हूँ' ऐसी जो भ्रान्ति हो गयी थी, उसकी निवृत्ति हो जाती है। आत्मा और अन्तःकरणका सम्बन्ध न रहे तो शरीर जीवित ही नहीं रह सकता और शरीरको तो प्रारब्ध-क्षय न होनेतक जीवित रहना है। अतप्त्व जैसे अविद्याका लेश रहता है, वैसे ही जीवभावका भी लेश रहता है; क्योंकि जीवभावके विना शरीरका कोई भी व्यवहार नहीं हो सकता। (परंतु यह प्रारब्ध केवल व्यवहार भरके लिये ही रहता है, वस्तुतः उसकी स्थिति तो तत्त्वतः स्वरूपभूत मुक्तकी ही है।)

चैतन्य सर्वव्यापक-रूप होता है, तव उसे 'ब्रह्म' कहा जाता है; वही जव शरीरविशेषमें प्रकट होता है तव 'आत्मा' या प्रत्यगात्मा कहलाता है और 'आत्मा' जव शरीरके साथ तादात्म्यसम्बन्धवाला हो जाता है, तव उसे 'जीव' कहते हैं।

जैसे दीपक प्रकाश ही करता है, अन्य कोई क्रिया नहीं करता, वैसे ही चैतन्य साक्षीकी भाँति ही रहता है, वह कोई क्रिया नहीं करता। पर वह चैतन्य निर्मल होनेपर भी देहादिकी भावनासे मिलन-जैसा, निर्विकल्प होनेपर भी सिवकल्प-जैसा, अजड होनेपर भी जड-जैसा और व्यापक होनेपर भी परिच्छिन्न-जैसा हो जाता है। इस प्रकार देहके संगके कारण शुद्ध आत्मामें जीवभाव आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

िभाग ३६

वहुत हुई। आरम इर इन्छ भी नहीं नपर अपने

भी भूक्त तब वे उस

ता है, उनका कर्म भी नको भूब्ला या होता है।

तः । सकराते हुए वर्गीय बाँसी त्पर्य अवन देश हो जाता कारके स्वि

बता है।

र जब वह ।ात्मसमर्पणके नि लगते हैं हैं । दूसों दें रहते हुए

पहाँ हम की जासे बढ़का द्वारा कार्य सरल मार्ग

ार्गके बार्मे उपदेशों

दिया और अज्ञानियोः आज्ञानियोः

था, महाप (समाप्त)

परमे

訊

眼

眼

अपने

研

बह ि

इतने

लोंग

ही वि

ही ब्रह

前

जल जैसे तीन रूपोंमें—(१) वर्फके रूपमें, (२) भापके रूपमें और (३) प्रवाही रूपमें, अलग-अलग दीख पड़ता है, तथापि वह जल ही है। ऐसे ही चैतन्य भी तीन रूपोंमें रहता है--(१) जगत्रू पमें, (२) जीवरूपमें और ब्रह्मरूपमें। ये तीनों ही रूप दिखायी देते हैं भिन्न-भिन्न स्वभाववाले, परंत हैं एक ही, केवल विवर्तसे भिन्न भासते हैं। रस्सीमें सर्प दीखता है, तब रस्सी जैसे सर्प नहीं हो जाती; ठूँठमें चोर दीखता है, पर ठूँठ चोर नहीं हो जाता, वैसे ही चैतन्य विभिन्न रूपोंमें भासनेपर भी अपने मूल निर्विकल्प, निर्विकार स्वरूपमें ही रहता है। वह अपने स्वरूपको कभी नहीं छोड़ता, इसीसे वह 'अच्युत' कहलाता है।

संक्षुव्धमधुब्धमिति द्विरूपं संवित्स्वरूपं प्रवदन्ति सन्तः। (योग० वा० नि० उ० ३४ । ४८)

संवित्—चैतन्य दो रूपोंमें रहता है—(१) संक्षुब्ध विवर्तभावसे---जीव-जगत्के अवताररूपमें, (२) अक्षुब्ध---निर्विकल्प, निर्विकार, निरञ्जनस्वरूपमें।

यहाँतक विचार करनेपर हमने यह देखा कि जीवका ब्रह्मके अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है, जिससे जीवका कोई स्वतन्त्र लक्षण निर्धारित किया जा सके । ब्रह्म स्वयं ही बहिर्मुख होकर देहविशेषमें आत्मारूपसे प्रकट होता है और अपनी ही मायासे देहके संगके कारण जीवभावको अङ्गीकार करके जन्म-मरणके चक्रमें भटकनेवाला हो जाता है।

अनादिमायया सुप्तो बन्धं कल्पितवान् यथा। नित्यमुक्तोऽपि सोपायं मोक्षं कल्पितवांस्तथा ॥

अनादि और अनिर्वचनीय मायाके आवरणके कारण आत्मा स्थूल शरीरके जन्म-मरणको और सुक्ष्म शरीरके आवागमनको अपनेमें मानकर अपनेमें बन्धनकी कल्पना करता है। बन्धनकी कल्पना हुई तव उस बन्धनसे छूटनेके लिये मोक्षकी भी कल्पना करता है और उसके लिये मोक्षके साधनों-की या उपायोंकी कल्पना करता है।

आत्माऽऽत्ममायया बद्धो बिभर्ति विविधास्तनुः।

आत्मा अपनी ही मायामें बँघकर विविध शरीर धारण करता है-अर्थात् जन्म-मरणके प्रवाहमें फिरता है । अब ब्रह्मके स्वरूपका विचार करें। ब्रह्म यानी बृहत्—सबसे बड़ा, सबसे विशाल, जिससे विशाल और कुछ हो

ही नहीं सकता । वह सर्वव्यापक है, सर्वत्र परिपूर्ण है संक् है, साथ ही सर्वभूताधिवास भी है। वह निर्विकल, निर्विक निराकार और निरञ्जन है। सत्-चित्-आनन्दल भी ब्रह्मका स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि मन, वाणी वहाँ कु नहीं सकते, इसिटिये उसके स्वरूपका वर्णन भी नहीं सकता। जो कुछ भी कहा जाता है, सब संकेतमात्र है। उसकी परा और अपरा शक्तियोंका भी पार नहीं है।

श्रुतिमें एक संकल्प मिलता है-यदेवेह तद्मुत्र यद्मुत्र तद्निवह । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।

जो ब्रह्म एक शरीरमें प्रत्यगात्मारूपसे प्रकट होता वही ब्रह्म सर्वव्यापकरूपसे सर्वत्र फैला हुआ है। इस 🛤 जो तत्त्व सर्वत्र परिपूर्ण है, वही ब्रह्मतत्त्व शरीरविशेषमें प्र हो जाता है। जो पुरुष इन दोनोंमें--प्रत्यगाता के परमात्मामें अथवा जीवचैतन्य और ब्रह्मचैतन्यमें भेद देख है, वह परवश हुआ जन्म-मरणके चक्रमें भटकता ही ख है। उसका भव-भ्रमण मिटता नहीं।

इस सम्बन्धमें गीता कहती है-परतरं नान्यत् किंचिद्स्ति धनंजय। (गीता ७।७)

अर्जुन ! मुझसे भिन्न इस विश्वमें और कुछ भी नहीं। सर्वं जगद्वयक्तमूर्तिना। ततिमदं मया (918)

यह समस्त जगत् मेरे अन्यक्त खरूपके द्वारा व्यातहै। अर्जुन ! श्रीकृष्णके स्वरूपमें तो मैं तुम्हारा रथ हँक हा हूँ — तुम्हारा सारथि हूँ और एक हाथमें घोड़ोंकी लाम औ दूसरेमें चाबुक पकड़े बैठा हूँ। यह बात सत्य है। गर्व दूसरा मेरा ही अव्यक्त-सर्वव्यापक और सूक्ष्म खरूप है विकी द्वारा यह समस्त, जगत् व्याप रहा है। इसी भावनी श्रीमद्भागवतमें भगवान्ते यों व्यक्त किया है—

मनसा वचसा - दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः। बुध्यध्वमञ्जसा ॥ अहमेव न मत्तोऽन्यदिति (११ 1 १३ 1 २४)

मन, वाणी, ऑख तथा अन्यान्य इन्द्रियोंके द्वार कि जिस पदार्थका ज्ञान होता है, वह सब मैं ही हूँ । मुझते अन्य कुछ है ही नहीं, बस इतनी सरल बात समझ हो।

[भाग ३। र्ण है। सन्ति। स्प, निविद्या दल्प भी श् ी वहाँ पहुँच न भी नहीं वितमात्र है।

नहीं है।

ति। हट होता है इस प्रशा रोधमें प्रश यगातमा औ भेद देखा ता ही रहत

ोता ७।७) भी नहीं है। तिंना। (918) व्यास है।

नंजय।

(थ हाँक रहा लगाम और है। पर्व प है, जिसके सी भाको

यै:। सा॥ (\$ 1 38)

मुझसे भिन्न ले।

राय जिस

श्रीअष्टावक .मुनि कहते हैं— ययैवादर्शमध्यस्थे रूपेऽन्तः परितस्तु तथैवासिन् शरीरेऽन्तः परितः परमेश्वरः ॥

द्र्पणमें जहाँ प्रतिविम्य दीख पड़ता है, वहाँ चारों ओर र्रागके सिया अन्य कुछ भी नहीं है, वैसे ही यह शरीर या बात दीखता है, वहाँ भी उसके चारों ओर सर्वत्र एक एमेश्वरके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है।

यह कहा गया कि ब्रह्म निर्विकार है, निराकार है और क्रिज़न है, फिर वह सर्वरूप और सर्वाधार भी है, तथापि क अच्युत भी है—कदापि किसी कालमें या किसी संयोगमें ह अपना खरूप नहीं छोड़ता। अय जो यह मानें कि वह माने सहपका त्याग करता है तो वह निर्विकार कैसे कहला क्रता है ! (उसे तो सविकार कहना चाहिये) और यदि इ किसी भी स्वरूपको धारण करता है तो उसे निराकार क़्रें कह सकते हैं और यदि वह उपाधिके गुण-दोषको ग्रहण ग्रता है तो उसे निरञ्जन कैसे कहा जा सकता है ?

ब्रह्म किसी भी कालमें अपने स्वरूपका त्याग नहीं करता, हुत्तेपर भी वह अनेक रूपोंमें दिखायी देता है और विविध सोंमें उपासित होता है।

मणिर्यथा विभागेन नोलपीतादिभियुतः। रूपभेद्मवामोति ध्यानभेदात्तथाऽच्युतः॥

क्हीं एक स्फटिकशिला पड़ी है तो उसके पास लाल, पीले विविध रंगोंकी जितनी वस्तुएँ रक्खी जायँगी, वह उतने विविध रंगोंकी दिखायी देगी। स्फटिक स्वरूपसे इवेत हैं। अपने सक्ष्पका कभी त्याग नहीं करती, इतनेपर भी आधिके संयोगसे वह विविध रंगोंवाली दिखायी देती है, वैसे विवास सिंह पर तो अच्युत ही है—िकसी भी कालमें अपने क्रियमें च्युत नहीं होता, तथापि उपासनाके भेदसे वह विविध भामें उपासित होता है।

इस प्रकार ब्रह्म निजस्वरूपमें रहता हुआ ही सर्वरूप है जाता है, यह बात स्पष्ट ही है । परंतु अधिकारके बिना भूष्य ऐसी सरल वातको भी समझ नहीं पाता और गोते वाता रहता है।

एक अल्प शक्तिवाला मनुष्य भी जब अपने स्वरूपका किये विना ही दूसरे रूपमें दिखायी दे सकता है, तब सर्वशक्तिमान ब्रह्म सर्वरूपमें दिखायी दे, इसमें क्या आश्चर्य है ?

देखिये, एक नट है। वह कभी राजाका, कभी चपरासी-का, कभी ब्राह्मणका तो कभी चाण्डालका यों अनेक वेष धारण करके अभिनय करता है। तथापि किसी भी वेशका अभिनय करते समय उसके अपने नट-स्वरूपका निश्चय जरा भी नहीं छूटता । वह सब प्रकारसे अपने स्वरूपमें अच्युत ही रहता है।

देखिये न, एक गृहस्थ कितने सम्बन्धोंका निर्वाह करता है और कितने अधिक स्वाँग धारण करता है । वह एक ही सज्जन किसीका चाचा है, किसीका मामा है, किसीका पिता है तो किसीका पति है और अपने सम्बन्धानुरूप ही दिनभर व्यवहार करता है, परंतु उसका अपने इस निज स्वरूपका निश्चय कभी नहीं छूटता कि मैं अमुक जातिका, अमुक गोत्र-का, अमुक नामवाला और अमुक काम करनेवाला हूँ।

साधारणतः मनुष्य साधनसम्पन्न न होने तथा अनुमवी गुरुका आश्रय न होनेके कारण अवतार-रहस्यको नहीं समझता और न यही समझता है कि ब्रह्मके खरूपको जानने-के पश्चात् ब्रह्मकी (आत्मारूपसे) एक क्षुद्र देहमें कैसे अहं-बुद्धि हो जाती है।

इस कोटिके मनुष्योंके हितार्थ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी योगवासिष्ठमें गुरु वसिष्ठसे पूछा है-

सर्वोनुभवरूपस्य तथा सर्वोत्मनोऽप्ययम्। अनन्तस्यात्मतस्वस्य देहेऽपि किमहंग्रहः॥

जो सबका अनुभवरूप है तथा भृतमात्रमें सर्वात्मारूपसे विराजित है, उसका इस क्षुद्र देहमें अहंभाव कैसे हो जाता है ?

यह प्रश्न अनादिकालीन है और सबको संतोष हो जाय, ऐसा एक ही समाधान भी इसका नहीं हो सकता । जो अकारण ही हो जाता है, उसके कारणको भला कहाँ खोजा जा सकता है ? इसलिये प्रत्येक व्यक्ति, अपनेको अनुकूल प्रतीत होता है, ऐसा कोई समाधान प्रसंगके अनुसार गढ़ लेता है और इसमें कुछ बुराई भी नहीं है।

इसमें कोई मायाको इसका कारण वतलाते हैं; पर साथ ही मायाको अनिर्वचनीय कहते हैं। कोई इसे ईश्वरकी माया कहते हैं तो कोई अविद्या । फिर उस अविद्याके भी मूलाविद्या

हिगा

और तूलाविद्या-ये दो विभाग करते हैं । कोई अज्ञान बतलाते हैं तो कोई स्वरूपका अज्ञान या उसकी विस्मृति कहते हैं। कोई इसे परमेश्वरकी लीला कहते हैं और कोई परमेश्वरकी इच्छा भी बतलाते हैं।

हमें तो श्रीगौड़पादाचार्यका 'ईश्वरस्य स्वभावोऽयं पूर्ण-कामस्य का स्पृहा ।' अथवा योगवासिष्ठका 'आत्मनो हि स्वभा-वोऽयं हेतुस्तत्र सुदुर्गमः ।'-अधिक अच्छा लगता है। 'दुर्गम' शब्दका प्रयोग होता तो बहुत अधिक परिश्रमसे पता भी लगाया जा सकता, परंतु यहाँ तो 'सुतरां दुर्गमः' कहा है। अतः यही समझ लेना है कि इसके हेतुकी खोज अनादिकालसे चल रही है, परंतु जिसमें कोई हेत हो ही नहीं, उसमें हेतु कहाँसे मिल सकता है। चाहे जितने दीर्घकालतक खरगोशके सींगकी खोज की जाय, पर जब वह है ही नहीं-तब कहाँसे मिल सकता है ?

फिर, यहाँ स्वभावका अर्थ भी समझना चाहिये । यहाँ खभावका अर्थ दूसरे किसीसे अलग करनेवाले अमुक गुण-धर्म नहीं हैं। यहाँ तो यह अर्थ है कि आत्माका आत्मापन या ईश्वरका ईश्वरपन ही ऐसा है कि वह जिस आधारमें प्रकट होता है, उस आधाररूप ही हो जाता है।

योगवासिष्ठमें अध्यासको एक प्रसंगमें यों समझाया गया है-

यथा सस्वमुपेक्ष्य स्वं शनैर्वित्रो दुरीहया। अङ्गीकरोति श्रद्भत्वं तथा जीवत्वमीश्वरः॥

एक विप्र जैसे शूद्रकन्याकी कामना होनेपर अपने विप्रत्य-की उपेक्षा करके सूद्र वन जाता है, वैसे ही शरीरका संग होनेपर ईश्वर जीवभावका अंगीकार कर लेता है-मैं जीव हूँ-ऐसा मानने लगता है।

श्रीमद्भागवतमें यह प्रसंग इस प्रकार समझाया गया है-गायतो नृत्यतः पर्यन् यथैवानुकरोति तान्। एवं बुद्धिगुणान् पर्यन् अनीहोऽप्यनुकार्यते ॥

किसी संगीत-सम्मेलनमें गान और नृत्य देखते-देखते जैसे दर्शकगण, इच्छा न होनेपर भी डोलने लगते हैं, ताल देते हैं और कोई-कोई गाने भी लगते हैं, वैसे ही आत्मा भी पूर्णकाम होनेपर भी बुद्धिके भोग देखकर उनमें ललचा जाता है और परिणाममें उसके साथ एकरूप हो जाता है। यहाँतक जीवके स्वरूपपर तथा ब्रह्मके स्वरूपपर विचार किया गया।

और विशुद्ध आत्मामें जीवभाव कैसे आता है और क्रें अध्यास होता है—इसपर भी विचार किया गया।

अध्यास केवल भ्रान्तिमूलक है। देहके सम्पर्कमें अनेप निर्विकार आत्माको मिथ्या यानी अकारण तादात्म-सम्बन स्वाभाविक ही हो जाता है। जैसे स्फटिकके पास छाल पुण स देनेपर स्फटिक स्वाभाविक ही लाल दीखता है और उस ला पुष्पके न हटाने तक वह लालिमा—मिध्या दिखावामात्र होने पर भी-दूर नहीं होती। (ऐसी भ्रान्तिको शास्त्रीय भागाने 'सोपाधिक भ्रम' कहा जाता है।) इसी प्रकार जवतक आता और लिंगदारीर पास-पास रहते हैं, तवतक स्वाभाविक ही छिंगदेहके धर्म आत्मामें दीखते ही हैं और अधास _{चार} रहता ही है। अर्थात् जीवभावकी निवृत्ति न होनेका अर्थ व हुआ कि आत्माको ऐसा निश्चय करना चाहिये कि भैं ज़ दोनों देहोंसे भिन्न हूँ ।' ऐसा निश्चय होते ही कारणकारी नष्ट हो जायगा और पश्चात् प्रारब्धका क्षय होते ही खु शरीर यहीं नष्ट हो जायगा और लिंगदेह, कारण शरीक आधारके अभावमें, स्थूल दारीरको छोड़कर बाहर निकली ही नष्ट हो जायगा । इस प्रकार तीनों देहोंका नाश हो जानेगर आत्माको अध्यास होनेका कोई कारण ही नहीं ए जायगा । [आत्माके अध्यास होनेमें कारण है अविद्या (कारण शरीर) और अध्यास होता है लिंगदेहमें और उसके द्वारा स्थूल देहमें भी।]

इस भावको दत्तात्रेय इस प्रकार व्यक्त करते हैं-घटे भिन्ने घटाकाशमाकाशे लीयते यथा। परमात्मनि ॥ योगी स्वरूपे देहाभावे तथा

घड़ा फूट जानेपर जैसे घटाकाश उपाधिके अभावनं महाकाशमें मिल जाता है, वैसे ही तीनों देहोंके नाशसे, उपाधिके अभावमें, योगीका आत्मा परमात्मस्वरूप ही रह जाता है। यहाँ कोई क्रियापद नहीं दिया गया, इसका भाव यह है कि आत्मा स्वरूपतः परमात्मा ही है, देहके संगसे जीवभावकी प्राप्त हो गया था, वह पुनः भ्रान्तिके दूर होते ही परमात्मलस्य रह गया—इतना ही कहा जाता है । असलमें नया कुछ भी नहीं होता। जो वस्तुतत्त्व है, उसका यथार्थ अनुभ होता है।

इतना समझनेके बाद अब भीं दोनों देहोंसे भिन्न हूँ। ऐसा निश्चय करना बिल्कुल सरल बात है। इसके ^{लिये} भगवित भाग ३६ और क्षे

में आनेपर

तम्य-सम्बन्ध

छ पुष्प रख

उस लाल

मात्र होने-

य भाषामें

तक आत्मा

भाविक ही

यास चाव्

ा अर्थ वह

ह भैं इन

कारणशरीर

ही स्थृत

ग शरीरके

र निकल्वे

हो जानेपर

नहीं रह

रा (कारण

गैर उसके

11 ने ॥

अभावमं उपाधिके

नाता है।

眼色雨

विभावको ात्मस्वरूप

या कुछ

अनुभ

黄一 भगवात

र्गक्राचार्यने 'हग्हश्य-विवेक' का सरल साधन बतलाया है, उसे करना चाहिये।

बरद्रष्टा घटाद्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा। देहो नाहमित्यवधारयेत्॥ तथा

पहेंको देखनेवाला जिस प्रकार घड़ेसे भिन्न ही—जुदा ही होता है और किसी प्रकारसे भी वह चड़ारूप नहीं होता, _{सी प्रकार} मेरी देहको देखनेवाला मैं देहसे जुदा ही—भिन्न वैहँ, किसी प्रकार भी देहरूप नहीं हूँ । इसी प्रकार मैं अपने क्षिका अपनी बुद्धिका तथा इन्द्रियोंका द्रष्टा हूँ; अतएव मैं वे स नहीं हूँ, उनसे अलग ही हूँ ।

अथवा मैं जिसको मेरा कहता हूँ, उससे मैं जैसे भिन्न 👬 हैं, वैसे ही मैं देहको भी भेरा कहता हूँ । अतः उससे भी हा ही हूँ । इसी प्रकार, भिरा मन यह वात नहीं मानता, भी बुद्धि इस सम्यन्धमें निश्चय नहीं कर सकती, मेरी इन्द्रियाँ त्रावसाने कारण शिथिल हो गयी हैं और मेरे प्राण बहुत हैं सूम चल रहे हैं '—मैं यों कहता हूँ और मानता हूँ, आएव मैं इन सबसे भिन्न ही हूँ।

इस प्रकार नित्य भाव और प्रेमसे मनन करते-करते भी की देशेंसे भिन्न हूँ ' ऐसा दृढ़ निश्चय हुए विना नहीं हो। परंतु सिद्धि न मिलनेतक सतत परिश्रम करना चहिये।

इस छोटे-से नियन्धमें अपने इस निश्चयपर पहुँचे कि ज्ञाननिश्चयको हृद्यंगम करनेके लिये अधिकारकी परम आवश्यकता है, क्योंकि अधिकारके विना केवल बुद्धि-आल्ड रहनेवाले ऐसे निश्चयका कोई मूल्य नहीं है।

इसके वाद निश्चय करनेके साधनके सम्बन्धमें विचार करते समय पहले जीवके स्वरूपका विचार किया और इस निष्कर्षपर पहुँचे कि ब्रह्मसे भिन्न जीवका कोई स्वतन्त्र स्वरूप ही नहीं है जिससे उसके स्वरूपके लक्षणोंको निर्धारित किया जा सके । इसके पश्चात् ब्रह्मके स्वरूपका विचार किया गया और इस निश्चयपर आये कि जो कुछ भी मन तथा इन्द्रिय-गोचर विश्व दिखायी देता है, वह ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

जीव और ब्रह्म स्वरूपतः एक ही हैं, इतनेपर भी जीव अपनेको ब्रह्मसे पृथक् क्यों मानता है और कैसे जन्म-मरणके चक्रमें घूमता रहता है, इसका समाधान करते समय अध्यास-का विचार करके इस परिणामपर आये कि अध्यासकी निवृत्ति-के द्वारा आत्माको अपने विस्मृत स्वरूपमें प्रतिष्ठित करना-यही मोक्षके लिये उत्तम साधन है। मोक्ष कोई बाहरसे लानेकी वस्तु नहीं है, परंतु जो वस्तुतत्त्व है उसके यथार्थ ज्ञानसे अनुभवमें आनेवाला ही मोक्षका खरूप है और इसके सम्बन्ध-का अनुभव ही ज्ञान-निश्चय कहलाता है।

अंदर भगवान्को भरो

सुख या दुःख किस्ती प्राणी, पदार्थ या परिस्थितिमें नहीं हैं। ये हैं मनकी कल्पनामें। जहाँ मनमें अनु-ला है, वहाँ सुख है और जहाँ प्रतिकृछता है, वहाँ दुःख है। अनुकृछता-प्रतिकृछता इसीछिये है कि मनमें अपूर्ण जगत् भरा है। इसीसे सुख-दुःख, हर्प-शोक आदि उत्पन्न करनेवाली अनुकूल-प्रतिकूल मिन्हें हुआ करती हैं। मनमें भगवान्को भर छें तो जगत् निकल जायगा। उसीके साथ अनुकूल-प्रतिकृल भार भी निकल जायँगी। अतएव भगवान्को भरनेकी चेष्टा कीजिये। भगवान् ठोस है, जगत् पोला है। भेजां भगवान् भरेंगे, जगत् अपने-आप ही निकलता चला जायगा और फिर वहाँ जगत् आ नहीं सकेगा। अतु सरग, जगत् अपन-आप हा ानकछता पद्धा आदिका भी कहीं नाम-निशान नहीं रह भूभा। एक प्रमानन्द-सुधा-सागर ही लहराता रहेगा।

परामक्तिके आदर्श श्रीभरतजी

(लेखक - पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

श्रीभरतजीका स्वरूप समझनेके लिये प्रथम रामायणकी परमार्थ-व्यवस्था देखनी चाहिये । वह श्रीरामचरितमानस बाल० २४-२५, इन दो दोहोंमें एवं विनय-पत्रिका पद ५८में समझायी गयी है; तथा—

तासां क्रिया तु कैंकेयी सुमित्रोपासनात्मिका । ज्ञानशक्तिश्च कौसल्या वेदो दशरथो नृपः ॥ क्रियायां कलहो दृष्टो दृष्टा प्रीतिरुपासने । ज्ञानेनात्मसुखं नित्यं दृष्टं निर्हेतुनिर्मलम् ॥ (शिवसंहिता १८ । ४६-४७)

अर्थात् राजा दशरथ वेदस्वरूप और उनकी तीनों शक्तियाँ (रानियाँ) वेदकी काण्डत्रय-रूपिणी हैं । उनमें कियाशक्ति (कर्म) श्रीकैकेयीजी, उपासनाशक्ति श्रीमुमित्राजी और सरस ज्ञान-(पराभक्ति) रूपिणी श्रीकौसल्याजी हैं । कियामें (सकामता आनेपर) कल्ह देखी जाती है, इससे श्रीकैकेयीजीके द्वारा कल्ह हुआ । उपासनामें प्रीति होती है, इससे श्रीमुमित्राजीमें प्रीतिकी ही व्यवस्थाएँ हैं और सरस ज्ञानमें नित्य आत्ममुख होता है, इससे श्रीकौसल्याजीमें अलौकिक विवेकद्वारा मुखकी व्यवस्थाएँ हैं ।

क्रियाशक्ति श्रीकैकेयीजीकी शुद्ध निष्कामावस्थासे श्रीभरतजीका प्रादुर्भाव हुआ। ये अक्षर (प्रत्यगात्मा— प्रकृतिवियुक्त शुद्ध जीवात्मा) स्वरूप हैं, परम विवेकी हैं। उपासनाशक्ति श्रीसुमित्राजीके दो पुत्र हुए। उनके एक श्रीलक्ष्मणजी ब्रह्म श्रीरामजीके उपासक हुए और दूसरे श्रीशत्रुष्ठ अक्षर (श्रीभरतजी) के उपासक हुए।

श्रीभरतजीने अपनी माता कैकेयीजीकी सकामतासे माँगे हुए वरदानकी पूर्तिमें चौदह वर्ष श्रीरामजीकी पादुका-पूजा करते हुए उसके लक्ष्यसे उपासनापूर्वक स्वस्वरूप-रक्षा की है। श्रीमुमित्राजीसे उपदिष्ट श्रीलक्ष्मणजीने चौदह वर्ष वनवासी श्रीराम ब्रह्मकी सेवासे स्वस्वरूप-रक्षा की और श्रीदात्रुव्वजीने अक्षर (प्रत्यगात्मस्वरूप) श्रीभरतजीकी उपासना की है। वनवासपूर्तिपर एवं श्रीरामजीके राज्यासीन होनेपर तीनोंको एक समान फल्स्वरूप श्रीराम-परिकर होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है; यथा—

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते। गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सिक्त बिराजते॥ (रामचिरतमानस उत्तरः १२)

'तत्कतुर्न्याय'से श्रीभरत आदिकी यही नित्य श्रिति है। यथा—

सोऽइनुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चिता। (तैत्ति०२।१) शूरी क

हो जा

श्रीमर्

रीलासे

मयनेव

अमुरों

अमृतः

श्रीताम वह स

伊利

क्या

Wing.

वह (मुक्तात्मा) उस विज्ञानस्वरूप ब्रह्मते साथ समस्त भोगोंको भोगता है । गीता (१२।१-५) व्रह्मोपासना और अक्षर (जीवात्माके प्रकृतिवियुक्त स्वरूप) की उपासनाओं में तारतम्य पूछा गया है । वहाँ प्रथम ब्रह्मोपासनाको सुलभ एवं शीघ्र साध्य कहकर अक्षरोपासनाको अत्यन्त कष्टसाध्य कहा गया है—इसका रामानुजभाष्य देखिये। *

उपर्युक्त रीतिसे ग्रुद्ध निष्काम कर्मयोगके अनुष्ठाले प्रकृतिवियुक्त प्रत्यगात्म-स्वरूपका साक्षात्कार होता है। कि प्रारम्भागकी अवशिष्ट आयुमें जब इसकी प्रकृतिकरिणी माताके परिणामरूपी शरीरकी अङ्गभूता दस इन्द्रियाँ और मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—इन चौदहोंकी भेग स्पृहा बाधक होती है, जैसे श्रीकैकेयीजीने सकामावस्थाने अपने पुत्रके लिये चौदह वर्षोंका राज्यभोग चाहा था। तर प्रकृतिवियुक्त जीवात्मा श्रीभरतजीकी वृत्तिसे रहन अपने स्वरूपकी रक्षा करता है।

यह अपनेको श्रीरामजीका अंश्मूत अङ्ग मानक्ष्य अतएव उनके लिये ही अपनी स्थिति मानकर उनके तेवक (शेष) रूपमें ही प्रकृतिके भोगोंसे पीठ देकर श्रीरामबीके पद-पीठ (खड़ाऊँ) पर अङ्कित उनके चौबीस वरणिवहीं लक्ष्यपर चौबीस तत्त्व (प्रकृति) में व्यापक मावत्वत्वकं अधारपर अपनी स्थिति रखता है। जैसे (मुण्डक० ३।१। अतियोंमें ईश्वरकी स्वादराहित्य महिमाकी देखकर १-२) श्रुतियोंमें ईश्वरकी स्वादराहित्य महिमाकी देखकर शोकरहित होना कहा गया है।

* 'कल्याण'के 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क' में 'उपासनाको तर्व' शिर्षक मेरे छेखमें इन उपासनाओं पर विशेष विचार किंग गया है।

श्रीमरतजी श्रीरामजीके गुणोंपर मुग्ध हो पराभक्ति-श्रिमर अनकी भक्ति करते थे; यथा—

केंदेखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात । गम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जलजात ॥ (रामचरितमानस उत्तर०१)

इस वृत्तिसे यह प्रत्यगात्म-साधक अवधिरूपी आयु श्रीकर भगवान्का नित्य-शेषत्व श्रीभरतजीके समान पाता श्रीगीता (१२ । ३-५) में जिसे अत्यन्त कष्टसाध्य श्रीगया है, वह भी श्रीभरतजीकी पराभक्ति-निष्ठासे सुलभ हो जाता है।

उपासनाशक्तिके पुत्र श्रीशत्रुष्ट्रजीने परम विवेकी भागवत क्षेमतर्जीकी सेवानिष्ठासे वही लाभ और मुल्भ रीतिसे क्षा किया है।

श्रीभरतजीकी भक्ति-निष्ठा एवं उनके प्रेमामृतसे संसारके मधुओंका हित करनेके लिये कृपासिन्धु श्रीरामजीने ही अपनी क्रीसे संयोग बनाये हैं—

भेम अमिअ मंदरु विरहु भरतु पयोधि गँभीर । मधि प्रगटेउ सुर साघु हित कृपार्सिधु रघुवीर ॥ (रामचरितमानस अयो० २३८)

श्रीभरतजी प्रेमके गम्भीर सागर (क्षीरसमुद्र) हैं, श्रीमन्विरह मन्दराचल, साधु देवता, प्रेम अमृत और स्पनेवाले यहाँ श्रीरघुवीर ही हैं। वहाँ अमृत पीकर देवोंने स्पुर्गे जीता है। वैसे ही यहाँ भी प्रेमामृतसे साधुलोग समुर्गे वृत्ति (कामादि) को जीतते हैं। वहाँ देवोंको समुक्ती वड़ी आवश्यकतापर समुद्र मथा गया है, वैसे यहाँ भे साधुओंके लिये इस प्रेम-भक्तिकी वड़ी आवश्यकता

पुरू कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
पम मगित रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥
(रामचरितमानस अयो० २०८)

यह परम साधु श्रीभरद्वाज महर्षिने कहा है कि हमलोगोंकी श्रीमभक्तिस्पी रसकी सिद्धिके लिये (इस घटनाका) स्वाप्त ही श्रीगणेश हुआ; अर्थात् हमने श्रीरामभक्ति-सिद्धिके पाठका श्रीगणेश (प्रारम्भ) आज तुमसे श्री जिसे तुम कलङ्क मान रहे हो, यथार्थमें यह कहीं है; प्रत्युत यह रसायनसिद्धिमें प्रयुक्त होनेवाली

कजली (कलङ्क) के समान है। पञ्च-रसाहिमका प्रेमल्ख्नणा रसरूपिणी भक्तिकी इससे सिद्धि होगी। इस चरितसे भक्ति-साधकोंको यह आधार मिलेगा कि इसमें स्वार्थका सर्वथा त्याग रहना चाहिये। भक्तिके बाधक गुरुजनोंकी भी आज्ञा त्यागपर दोष नहीं और स्वामी श्रीरामजीका पूर्ण भरोसा रखना चाहिये। इत्यादि। तुम्हारे प्रेमको देखकर लोग इस राम-प्रेम-पथपर आरूढ़ होंगे। उनकी वह रसाहिमका-भक्ति अवश्य सिद्ध होगी।

यह महर्षि श्रीभरद्वाजजीका आशीर्वादात्मक वचन है, इसके अनुसार श्रीराम-विरहसे क्रमशः श्रीभरतजीके प्रेमामृतके विकास देखिये—

(१) गीता (४। ११) के अनुसार भगवान् भक्तिंके भावानुसार उनसे वर्तते हैं। श्रीभरतजी केकय देशमें रहते हुए श्रीरामजीमें अगाध प्रेम रखते थे; तदनुसार ही यहाँ श्रीरामजीके भाव कहे गये हैं—

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फ्ल दूसर नाहीं।। रामहि बंधु सोच दिनराती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि माँती॥

तथा भक्त भगवान्को अर्पण करके ही कोई वस्तु प्रहण करते हैं, वैसे ही श्रीरामजीने भी विना श्रीभरतजीके राज्यपद लेना नहीं चाहा—

जनमे एक संग सब भाई।' से प्रमु सप्रेम पछितानि सुहाई।'तक (रामचरितमानस अयो० ७-१०)

(२) यहाँ श्रीअवधमें अनर्थ प्रारम्भ होते ही वहाँ श्रीभरतजीको अपशकुन होने लगे थे। फिर समाचार पाकर वे तुरंत आये। यहाँपर कैंकेयीजीके द्वारा समाचार जानकर वे अत्यन्त दुखी हुए। इन्होंने श्रीराम-विमुख जानकर उस माताका आजन्मके लिये त्याग कर दिया। यथा—

कैंकई जो हों जियत रही । तो हों बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूकि कही ॥ १ ॥

लोक-बेद-मरजादः दोष-गुन-गति चित चख न चही। तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही॥ (गीतावली उत्तर०३७)

फिर भरतजीने श्रीकौसल्याजीके समक्ष आकर शपयोंसे अपने हृद्यकी शुद्धता प्रकट की, उसपर श्रीकौसल्याजीके भाव देखिये—

ते । राजते ॥

ए० (२) स्थिति हैं;

ता ।

२।१) मके साथ १-७ । ५

१-५) में इ.स्वरूप) वहाँ प्रथम

ोपासनाको गानुजभाष्य

अनुष्ठानसे । है । फिर कृतिरूपिणी

द्रयाँ और की भोगः गमावस्थारे

था। त

मानकर के सेवक श्रीरामजीके

रणिवहोंके वत्स्वरूपके , ३ । १ । देवकर

का त्रवं

翻

研門

इसणी

调

湖湖

दे ग्रह

न्या माँ

तिहै।

施

जिनहीं क्ष हो,

ोंग वृ

क्रा अ

मुस्य

भी भी

मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ। कहित राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥ राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे ॥ बिधुविष चये सबे हिमु आगी । होइ बारिचर बारि विरागी ॥ भएँ ग्यान बरु मिटै न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ॥ मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न रुहहीं॥ अस किह मातु भरतु हियँ लाए । थन पय सवहिं नयन जल छाए।। (रामचरितमानस अयो० १६८-१६९)

यहाँ माताने श्रीभरतजीके श्रीराम-प्रेमकी बड़ी सराहना की है और इन्हें कैकेयीके पक्षमें कहनेवालोंको कौसल्याजीन शाप दिया है कि वे लोकमें मुख और परलोकमें मुगति न पार्वे । फिर 'थन पय स्रवहिं''' इससे इन्हें श्रीरामवत् प्रिय मानना प्रकट किया है।

(३) राजा दशरथकी क्रिया हो जानेपर गुरु श्रीवसिष्ठ-जीने राज-सभामें श्रीभरतजीको बुलाकर समझाया और कहा कि पिताके वचनको सत्य करो, इसका मन्त्रियोंने और माता कौसत्याजीने भी समर्थन किया। तव श्रीभरतजीने श्रीराम-विरहके आधारपर गुरु-वचनको भी अस्वीकार किया और कहा---

गुर बिवेक सागर जगु जाना । जिन्हिह विस्व कर बदर समाना ॥ मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भएँ विधि विमुख विमुख सव कोऊ॥

फिर श्रीभरतजीने सबसे अनुरोध किया कि आपलोग आज्ञा और आशीर्वाद दें कि मेरी प्रार्थना सुनकर और मुझे अपना मक्त जानकर श्रीरामजी राजधानीपर लौट आवें। श्रीराम-स्नेहरूपी अमृतसे पगे हुए अपने वचनोंसे श्रीभरतजी सभीको अत्यन्त प्रिय हुए, इसपर सभी उनकी प्रशंसा करने लगे--

मातु सचिव गुर पुर नर नारी । सकल सनेहँ बिकल भए भारी ॥ भरतिह कहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरित तनु आही॥ तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥ जो पाँवर अपनी जड़ताईँ। तुम्हिह सुगाइ मातु कुटिलाईँ॥ सो सठु कोटिक पुरुष समेता । बिसाहि करूप सत नरक निकेता ॥ अहि अघ अवगुन नहिंमिन गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥ (रामचरितमानस अयो० १८४)

यहाँ माता, मन्त्री, गुरु वसिष्ठ एवं पुर-नर-नारी आदि सभीने श्रीराम-प्रेमकी मूर्त्ति कहा है और इन्हें माता कैकेयीके पक्षमें माननेवालोंको सभीने शाप दिया है-- भो सद

कोटिक "। फिर सभीने 'अहि अव ", इस अद्वार्थ

(४) श्रीभरतजीको सेना एवं समाजके साथ अने सुनकर श्रीनिषादराजको इनमें कपटभाव होनेका संदेह हुन कि ये सेना लेकर इसलिये जा रहे हैं कि सानुज श्रीरामजीवे मारकर अकण्टक राज्य करें; अन्यथा इन्होंने साथमें सेन क्यों ली है ? ऐसा ही संदेह आगे श्रीलक्ष्मणजीको भी हुआ है, श्रीभरतजीके गूढ़-अभिप्रायभरे चरित्रोंके रहस्य एमहम्भे कठिन हैं, श्रीकौसल्याजीने कहा है-

कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशास्पते। ज्येष्ट्रो विरुष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते॥ (बाल्मी० २।६१।१५)

पंद्रहवें वर्षमें लौटनेपर भी छोटे माई मताबीश भोगा हुआ राज्य ज्येष्ठ और गुणोंमें भी श्रेष्ठ श्रीरामबीन भोगंगे, तिरस्कार कर देंगे। इस विचारसे भी श्रीभता राज्य और सम्पत्तिके स्वामी नहीं हुए कि मेरा उच्चि राज्य श्रीरामजी कैसे भोगेंगे ? पुनः सेना और समाका साथमें लानेका रहस्य यह है कि जव वर्षके प्रारम्भ मास कैसे सातों द्वीपोंसे आये हुए राजाओं के समक्ष श्रीरामजी क मेरे गये, इसमें वहुतों के समक्ष उनका अपमान हुआ है। अ उनका मनाना भी बहुतोंके समक्ष होना चाहिये और वर्ग सेनाके समक्ष उन्हें श्रीगुरुजीके द्वारा अभिषिक्त कराके लग जाय, तव उनके योग्य हो । इस गुह्य मर्मको सहसा श्री निषादराज एवं श्रीलक्ष्मणजीने नहीं समझा।

श्रीराम-प्रेमवश निषादराज श्रीभरतजीसे लड़नेका प्रका करने लगे। सहसा छींक होनेपर परीक्षार्थ मेंट लेकर सामने आये और दूरसे ही मुनीश्वर वसिष्ठजीको प्रणाम स्थि। श्रीगुरुजीने श्रीभरतजीको उसका श्रीरामजीमें मित्रभव कहा। श्रीराम-सखा सुनकर उसे श्रीराम-तुस्य मानकर श्रीमत्ती रथसे उतरकर उससे मिले। इनके सद्भावपर वह विदेह है गया, एकटक देखता रह गया। फिर उसके साथ श्रीभरतानी श्रीगङ्गातटपर श्रीरामघाटमें स्नान किया और वर माँगा भरत कहेउ सुरसारि तव रेनू । सकल सुखद सेवक सुर्केनू ॥ जोरि पानि बर मागउँ पहूं। सीय राम पद सहज संहूं॥ (रामचरितमानस अयो० १९७)

फिर लोगोंको ठहराकर निषादराजसे पूछा कि क्हाँग श्रीसीताजी, श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजीने रातमें श्र्ण

[भाग ३३

स अद्वेश साथ अने संदेह हुआ श्रीरामजीको साथमें सेना हो भी हुआ प समझनेमें

पते। न्यते॥ शहशाहरा भरतजीश श्रीरामजी र श्रीभरतन नेरा उच्छि समाजग्र

है। अतः और वनमें त्राके लया सहसा श्री-का प्रवन्ध

मास चैत्रमें ती वन मेत्रे

积 机柏 田 柳 ाव कहा। श्रीभरतजी विदेह हो

भरतजीने 前川一 सुरधेनू ॥ संग्रू ॥

碱水 श्यन

290)

श्रिय । उसने शीशमवृक्षके नीचे कुशकी साथरी विवासी। वहाँपर इन्होंने श्रीसीताजीके वस्त्रोंसे झड़े हुए रिवणा मी देखे और तीनोंकी सुकुमारताका क्षण्कर बहुत विलाप किया, तव श्रीनिषादराजने समझाया । (५) शृङ्गवेरपुरसे श्रीरामजी पैदल ही गये, यह ्र_{ह्मकर श्रीभरतजी} भी पैदल ही चले और तीसरे प्रहर 🔊 पहुँचकर उन्होंने स्वयं श्रीत्रिवेणीमें स्नान किया और क्रणंक्रो दान-मानसे संतुष्ट किया; तत्पश्चात्—

ह्य सामल घवल हलोरे । पुलक सरीर भरत कर जोरे ॥ क्ल कामप्रद तीरथराऊ । बेद विदित जग प्रगट प्रमाऊ ॥ र्छं भीख त्यागि निज घरमु । आरत काह न करइ कुकरमू।। ब्रिक्षिं जानि सुजान सुदानी । सफ्रु करिं जग जाचक बानी ॥

आय न धरम न काम रुचि गति न चहुउँ निरवान। जनम जनम रित राम पद यह बरदानु न आन ॥ ह्रं गमु कृटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिव द्रोही।। वा गम चरन रित मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।। ह्रजमभरिसुरति विसारउ । जाचत जु पवि पाहन डारउ ॥ 職 रहि घटें घटि जाई। वढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई।। क इंगान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निवाहें।। जन्म सुनि माँह त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगरु देनी।। ब मतं तुम्ह सब विधि साधु । राम चरन अनुराग अगाधृ ॥ है स्त्रानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥ (रामचरितमानस अयो० २०४-२०५)

क्षाँ तीर्थराज प्रयागसे अत्यन्त आर्त्त होकर श्रीभरतजीने बिमाँगी है। देवोंसे वरदान माँगना और बात है; किंतु मागना क्षत्रिय-धर्म नहीं है; पर आर्त्त होनेपर वह भी विहै। आर्त्त भिक्षुकको दयाछ एवं उदार दाता बहुत हिंदेता है। आपको यहाँ अत्यन्त दुर्लभ भक्ति माँगनी क्षि ऐसा वहा है। 'अरथ न धरम न "' मैं चारों हैं वाहता, मुक्ति भी न लेनेपर मेरा जहाँ-कहीं भी भेही, वहाँ-वहाँ मेरी श्रीरामचरण्में प्रीति रहे, बस, अन्य कुछ नहीं चाहिये। श्रीमद्भागवत (७।१०।४-७) श्रीनृतिंह भगवान्से भक्त श्रीप्रह्लादजीने कहा है शिक्षा वरदान चाहता है, वैभवकी आशा रखता है, भू भूष ही नहीं; प्रत्युत व्यापारी—वैश्य है और सेवकपर भे जामिलकी धाक जमानेके लिये वैभव देनेकी इच्छावाला भोभी लामी नहीं है। मैं आपका निष्काम भक्त हूँ और

आप मेरे निष्काम खामी हैं। राजा और उसके सेवकका-सा (अर्थापेक्षी) सम्बन्ध मेरा और आपका कमी नहीं। यदि आप मुझे कामपूरक वर देना ही चाहते हैं तो मैं आपसे यही माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें कोई भी कामना पैदा ही न हो । तथा श्रीमद्भागवत (१०।३९।२) में भी कहा गया है कि लक्ष्मीपति भगवान्के प्रसन्न होनेपर ऐसी कौन वस्तु है जो नहीं प्राप्त हो सकती, तथापि भगवत्परायण लोग उनसे किसी पदार्थकी कामना नहीं करते।

भक्तको श्रीहरिसे कामना क्यों नहीं करनी चाहिये ? इसका रहस्य यह है कि मक्ति करके उसके प्रति कुछ भी चाहनेसे वह अभीष्ट वस्तु फलस्वरूपा और भगवान् एवं उनकी भक्ति उसके साधन हो जाते हैं। वह भक्ति एक प्रकार वाणिज्यमें परिणत हो जाती है। जैसे रूपया देकर चावल लिया जाता है। रुपया देनेमें उसका निराद्र और चावल लेनेमें उस चावलका आदर होता है, वैसे ही भक्ति करके भक्तिके अतिरिक्त उससे अन्य कुछ भी फल चाहनेमें उस फलका आदर और भक्ति एवं इष्टदेवका भी निरादर होता है, इसीसे भक्तलोग फल-रूपमें मुक्ति भी नहीं ठेते।

जब भक्त भगवान्को ही प्राप्त होते हैं और फिर संसारमें नहीं आते, तब मुक्तिका सर्वस्व तो इन्हें स्वतः प्राप्त हो जाता है (गीता ८। १५-१६ तथा ९। २५ देखिये)।

श्रीगोस्वामीजीने अन्यत्र भी इसपर जोर देकर कहा है---

रहित सीताराम सनेह । परमारथ तुंलसी सो फल चारि को फल हमार मत एहु॥ परह नरक फल चारि सिसु मीच डाकिनी खाउ। तुलसी राम सनेह को जो फल सो जरि जाउ॥ (दोहावली ६०, ९२)

श्रीभरतजीका भाव उक्त श्रीप्रहादजीके समान तो उक्त दोहे मात्रमें आ गया, अव श्रीभरतजी आगे बढ़ते हैं-

·जानहु राम कुटिल करि···'—भाव यह कि उपर्युक्त भक्ति में इस अभिप्रायसे नहीं माँगता कि श्रीरामजी इससे मुझपर प्रसन्न हों और लोग मेरी वड़ाई करें; प्रत्युत श्रीरामजी चाहे मुझे कृटिल जानें और लोग भी मुझे 'गुरु-साहिब-द्रोही' कह-कर मेरी निन्दा करें कि इसने खामी श्रीरामजीकी एवं गुरु-जनोंकी आज्ञा नहीं मानी; तात्पर्य यह कि सर्वान्तर्यामी स्वामी स्वयं तथा अन्य लोगोंके द्वारा भले ही मुझसे प्रतिकृल रहे,

सुन

सव

雅

नस

अमे

और

और

तो :

द्रोही

भिन्

30

33

फिर भी मेरे एकाङ्गी प्रेमका सदा एकरस निर्वाह हो, आगे दृष्टान्तसे भी इसे ही पुष्ट करते हैं।

'सीताराम चरन रित' ऊपर छन्दानुरोधसे 'राम' मात्र कहा था, यहाँ अपनी युगल उपासनाको स्पष्ट किया है।

'जल्द जनम भरि'''— उपर्युक्त वातोंपर संदेह हो सकता है कि तुम प्रेम करोगे तो श्रीरामजी तुम्हें कुटिल कैसे जानेंगे ? इसपर कहते हैं कि चातक मेघसे प्रेम करता है, स्वातीका बूँद्भर जल ही चाहता है, पर मेघ उसपर वज्र और पत्थर गिराता है तो भी चातक प्रेम कम नहीं करता, रट लगाये ही रहता है। वैसे ही यहाँ मेघके मुधि विसारनेकी माँति श्रीरामजीका मुझे कुटिल जानकर मेरी उपेक्षा करना है और लोगोंका मुझे गुरुद्रोही कहना वज्र गिराना तथा साहिव-द्रोही कहना पत्थर बरसाना है। मेघकी उपेक्षा एवं उसके पविपाहन डालनेपर यदि चातक रटन कम कर दे तो वह प्रेमका आदर्श न रहेगा, वैसे मैं भी आदर्श प्रेम ही चाहता हूँ, घटनेवाला नहीं। विनय-पत्रिका पद ६५ में भी ऐसा ही प्रेम हढ़ किया गया है, देखिये।

चातक तो सदा एकरस रट लगाये रहता है, पर श्रीभरत-जो अपना प्रेमभाव उत्तरोत्तर वढ़ानेके आदर्शपर दृष्टान्त रखते हैं—

'कनकिह वान चढ़इ''''— बान (वर्ण)=रंग, आभा, दीप्ति, कान्ति । सोना च्यों-ज्यों अग्निमें तपाया जाता है, त्यों-ही-त्यों उसमें दीप्ति वढ़ती है, वैसे ही प्रियतमके प्रेम-निर्वाहमें भी जितना ही कष्ट सह-सहकर प्रेम-निर्वाह किया जाय, उस प्रेमकी उतनी ही अधिक शोभा है और इसीमें सच्चे प्रेमीकी पहचान होती है । यहाँ अग्निरूप श्रीरामजी और कञ्चनरूप श्रीभरतजी हैं । वे यदि जगत्—शरीरके द्वारा इन्हें तीनों तापोंसे ताप दें, तब भी इनका प्रेम कम नहीं होना चाहिये, यह भाव है ।

'भरत वचन सु.नि'''?—ित्रवेणीके मध्य सरस्वतीजी हैं ही, उन्होंने तीनोंकी ओरसे कहा है।

'तात भरत तुम्ह' '' '-' 'सव विधि साधू' हो, मन, वचन और कर्मसे तथा भीतर-वाहर, सबसे सद्भाववाले हो। 'अनुराग अगाधू' श्रीरामचरणमें तुम्हारा इतना गहरा अनुराग है कि जिसकी थाह ब्रह्मार्ष विसष्ठजी, श्रीनिषादराजजी, श्रीलक्ष्मणजी तथा देवगण भी नहीं पा सकते। चरितके द्वारा प्रकट है।

'बादि गलानि करहुं "'-श्रीभरतजीको ग्लानि थी-

'जानहु राम कुटिल'' लोग कहहु''' यह अभी कहा कि उसका निराकरण करती हुई श्रीत्रिवेणीजी कहती है कि अ कुटिल आदि नहीं हो; प्रत्युत 'सव विधि साधू' हो, कुल श्रीरामजीके चरणोंमें अगाध अनुराग है। तुम अपनी ही और की एकाङ्गी प्रीति न समझो; प्रत्युत 'तुम सम रामहि के प्रिय नाहीं।'

इन रीतियोंसे श्रीत्रिवेणीजीने समझा भर दिया है। इसे आर्त्त होकर भिक्षा माँगनेपर भी भिक्षा नहीं दी, इसक्षि है तुम्हारा श्रीरामचरण-प्रेम इतना अगाध है कि और देखें आवश्यकता ही नहीं है। 'भइ मृदु वानि'—निवेणीकी मृदु वाणीसे ही कहा है। आगे दोहेमें देवोंने 'भरत ध्याप आदिसे उचस्वरसे उसका समर्थन किया है और पुण-वर्ष स अपना अनुमोदन भी प्रकट किया है।

इस प्रकार यहाँ श्रीभरतजीकी आदर्श मिक्तका वर्णा एवं अ त्रिवेणीजी तथा देवोंके द्वारा उसका समर्थन एवं अ मोदन हुआ।

(६) त्रिवेणी-तटसे श्रीभरतजी महर्षि भरद्वाजी पास आये । उन्हें 'जानहि तीनि काल निज ग्याना।' श्रे कहा गया है। अतः उन्होंने उक्त त्रिवेणी-वाक्यको सुन एवं सं भी विचारकर उसका ही उक्तम रीतिसे समर्थन किया है—

सकल सुमंगल मूल जग रघुवर चरन सनेहु॥
सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। मूरि माग को तुम्हिह सान॥
सुनहु भरत रघुवर मन माहीं। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नही।
तुम्ह पर अस सनेहु रघुवर के। सुख जीवन जगजस जह ना की
तुम्ह तो भरत मोर मत एहू। घरें देह जनु राम संस्।
तुम्ह कहूँ भरत कलंक यह हम सब कहूँ उपदेसे।

राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गतेषु॥ (रामचरितमानस अयो॰ २०७-२०८)

इन वचनोंसे श्रीभरतजीकी मिक्तका वर्णन किया और 'हम सब कहँ उपदेस' एवं 'भा यह समउ गनेस' इन बर्का से स्वयं इस मिक्त-शिक्षाकी दीक्षा ली हैं। इनकी मिक्कि आदर्श माना है—इसके होष भाव ऊपर आ गये हैं।

आदर्श भक्त श्रीभरतजीकी इस समयकी द्रशाका क्ष्म करनेसे इसके आधारपर सबको उस सामर्थ्यकी प्राप्ति हैं। जिससे वैसी भक्ति होती है।

ाजरात्त वसा माक्त हाता है।
(७) श्रीभरतजीकी भक्तिपर मुग्ध हो महर्षि आगे उन्हीं
यश वर्णन करते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मी कहा है। है कि छ । प्रमी ही ओर प्रमीह केंद्र

भाग ३ः

त्या है, इतहे इसिट्टिये हि और देनेत्री — त्रिवेणीजीरे सरत धन्य क पुण्य-वर्षा वर

का वर्णन एवं अनु भरद्वाजनीहे । । । । ं ऐसा सुन एवं सवे किया है— । निहु ॥

। कोउ नहीं। । जड़ ना है। राम संस्थे। उपदेंसु। गनेसु॥

२०७-२०८) म किया और म' इन क्की

ये हैं। ह्याका ध्वन प्राप्ति होती !

र आगे उन^{का}

नव विषु विमल तात जसु तोरा । रघुवर किंकर कुमुद चकोरा ॥
तित सदा अँग्रइहि कवहूँ ना । घटिहि न जग नम दिन दिन दूना॥
तिक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रमु प्रताप रिव छिविहि न हरिही ॥
तिति दिन सुखद सदा सब काहू । प्रिसिहि न केंकइ करतवु राहू ॥
तून राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान दोष निहं दूषा ॥
तून राम अव अमिअँ अयाहूँ । कीन्हेहु सुलम सुषा वसुधाहूँ ॥
राम भगत अव अमिअँ अयाहूँ । कीन्हेहु सुलम सुषा वसुधाहूँ ॥

कीरित विधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ वस राम प्रेम मृग रूपा।।
तात गलानि करहु जियँ जाएँ। डरहु दिरद्रिहि पारसु पाएँ॥
तुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
तव साधन कर सुफल सुहावा। कखन राम सिय दरसनु पावा॥
तिह फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥
तत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ॥
(रामचरितमानस अयो० २०९-२१०)

निव विधु विमल तात: "'—ऊपर 'तात तुम्हार विमल साई। पाइहिं" यह कहा गया है। उसीकी यहाँ 'अधिक अमेद रूपक' द्वारा व्याख्या करते हैं कि प्राकृत चन्द्रमा तो पुराना और समल है, पर तुम्हारा यश्रूष्णी यह चन्द्रमा नवीन और निर्मल है। 'रघुवर किंकर कुमुद चकोरा'—कुई स्थावर और क्कोर जंगम है, वैसे ही श्रीरामभक्त भी निवृत्तिवाले सावर श्रीलोमशजीकी माँति और प्रवृत्तिवाले जंगम श्रीनारदजीकी माँति होते हैं, इससे दोनों ही प्रफुल एवं अनिद्तित होंगे तथा अवधवासी एवं वनवासी दोनों ही सुखी हों।

'उदित सदा''''— वह घटता-बढ़ता है तथा अमावास्या और प्रतिपदाको तो उसका उदय भी नहीं होता, पर यह सदा है जगत्में उदित एवं दिन-दिन दूना होता रहेगा, घटेगा ने कभी भी नहीं।

कि तिलोक प्रीति..., चह चन्द्रमा तो कोक सोकप्रद पंकज है। है, पर इस यशचन्द्रमें तीनों लोक प्रीति करेंगे। भु प्रताप रिव..., उसकी छिवका सूर्यद्वारा हरण होता कि मिलीन सकलंक' यह कहा गया है, पर यह यश-कि श्रीराम-प्रतापके साथ चमकता हुआ रहेगा।

भिति दिन सुखद सदा भन्नता हुआ रहेगा।
पिनिति दिन सुखद सदा भन्नता हुआ रहेगा।
पिनिति दिन सुखद सदा भन्नता हुआ रहेगा।
पिनिति दिन सुखद सदा भन्नता सुलम है; वह रातमें ही
पिनिति दुखदाई है, इससे सबको सुलम है; वह चन्द्र
पिनिति दुखदाई है, पर यह तो राम-विरहीको अत्यन्त

भा सब कें मन मोदु न थोरा। "मरतु प्रानिप्रिय मे सबही के॥ (रामचरितमानस अयो॰ १८५)

'प्रसिहि न कैकइ' '' उसे राहु प्रसता है, पर इसे कैकेयी-का कर्तव्यरूपी राहु छू भी नहीं सकेगा—'जो पाँवर'' तुम्हिह सुगाइ''' उपर्युक्त शाप-प्रसंग देखिये।

'पूरन राम सुपेम पियूषा'—उसमें कलाओं के घटनेषर अमृत-वर्षामें न्यूनता भी होती है, पर यह सदा श्रीरामधेमते पूर्ण ही रहता है; यथा—

सियराम प्रेम पियूव पूरन होत जनमु न नरत को । (रामचरितमानस अयो० ३२६)

वह 'सकलंक' है; यथा—' सिंस गुरुतियगामी' (राम-चिरतमानस अयो॰ २२८) पर यह 'गुरु अवमान दोष नहिं दूषा' है, गुरुजीने आज्ञा दी थी —

'करहु राज परिहरहु गळानी । मानहु मोर वचन हित जानी ॥'
पर श्रीभरतजीने इसे राम-प्रेम वाधक मानकर नहीं माना,

पर श्राभरतजान इस राम-प्रेम वाधक मानकर नहीं माना, इस दोषसे श्रीभरतजीका यश दूषित नहीं हुआ; क्योंकि गुरुजी इनकी इस अगाध-भक्ति-निष्ठापर प्रसन्न ही हुए हैं।

'राम भगत अब अमिअ''''—बहाँ देवगण अमृत बीते हैं और यहाँ रामभक्त—

भरत चरित करि नेमु तुरुसी जो सादर सुनहिं। सीय राम पद पेमु अवसि होइ मत रस विरित ॥ (रामचरितमानस अयो० ३२६)

इस अमृतसे भक्तलोग भवरससे वैराग्य और सीताराम-प्रेम या नित्य अमर पद पाते हैं।

'कीन्हेहु सुलम सुघा बसुघाहू।'

—वह स्वर्गके देवोंको ही मुलम है और यह पृथिवीके लोगोंको भी मुलम है—

ंसियराम प्रेमिपयुष "किकाल तुलसी से सठिन्ह"

उपर्युक्त 'कीरति विधु तुम्ह कीन्हि अन्पा ।'—तुम्हारे इस कीर्तिचन्द्रकी उपमा है ही नहीं, चन्द्रमामें मृगका नित्य निवास है, वैसे ही तुम्हारी इस कीर्तिमें श्रीराम-प्रेमका नित्य निवास है, वैसे ही तुम्हारी इस कीर्तिमें श्रीराम-प्रेमका नित्य निवास है, वैसे निवास हमालका व्यवधान नहीं है—उपर्युक्त दोहा ३२६ देखिये। चन्द्रमाका मृगाङ्क श्याम दीखता है, वैसे प्रेमका रंग भी श्याम कहा गया है। 'डरहु दरिद्रहि पारमु पाएँ' -श्रीराम-प्रेम पारस है और कल्झ दारिद्रय है। दोनों एक साथ नहीं रहते; यथा—'तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके।' (उत्तर १११) जैसे पारसके स्पर्यसे लोहा सोना हो जाता है, वैसे

अहैत

स्वमं

अद्भेत

मोग

ने इसे

इरनेव।

में बहुत

37

स्त्री

श्रीण

असते

कें स

新北

ही श्रीरामप्रेमके सम्बन्धसे कलङ्क स्वर्णभूषणरूप हो गया। तुम्हारे इस प्रेमादर्शसे और लोग भी शोभा पायेंगे। तुम्हारे पास पारस है, पर तुम उसके गुण भूले हुए हो, इससे कलङ्कसे डर रहे हो।

यहाँ महर्षि भरद्वाजजी जौहरी-रूप होकर उस पारसका परिचय दे रहे हैं, जैसे त्रिवेणीजीने समझाया है। उनके वचन स्वतः प्रमाण थे, ये अपने वचनोंमें प्रामाणिकता पृष्ट करते हैं। 'सुनहु भरत हम झूठ न'''—यहाँ झूठ न कहनेमें तीन प्रवल कारण कहते हैं—

- (क) हम उदासीन हैं। अतः हमारा कोई रात्रु-मित्र नहीं है और न किसीसे स्वार्थदृष्टि ही है कि किसीके स्नेह एवं दबावसे झूठ बोलें।
- (ख) हम तपस्वी हैं, अतः तपस्या नष्ट होनेके भयसे भी झूठ नहीं बोल सकते।
- (ग) हम वनमें रहते हैं। अतः कन्द-मूल-फल एवं वल्कल वस्त्रसे निर्चाह हो जाता है, इससे किसीसे व्यवहार

करनेका प्रयोजन ही नहीं, तय झूठ-ऐसे पापमें क्यों पक्त होंगे ? व्यवहारमें पड़नेपर ही युधिष्ठिर-ऐसे धर्मावतारको भी झूठ योलना पड़ा है।

'सय साधन कर सुफलः''—प्रथम श्रीराम-दर्शनपर इन्हींने कहा है——

आजु सुफ्क तपु तीरथ त्यामू। आजु सुफ्क जप जोग विरान्॥ सुफ्क सक्क सुम साधन साजू। राम तुम्हिह अवलोकत अजृ॥ (रामचरितमानस अयो० २०७)

'तेहिं फलकर फल''''—फलका फल उस फलका भीत करना (खाना) हैं; अन्यथा वह निष्फल समझा जाता है। जब फलरूप श्रीरामजी प्राप्त हुए, तब उनका उपभोग उनकी प्रेममिक्तिद्वारा ही होता है, वह मिक्ति मुझे तुम्हारे दर्शनींहे प्राप्त हुई, यह ऊपर 'तुम्ह कहँ भरत कलंक यह''' इस दोहेमें कहा गया। अतः फलका आस्वादन करना हमने तुम से सीखा है। इससे हम एवं प्रयागनिवासी तथा प्रयाग तीर्थ भी सुन्दर भाग्यवान हुए।

आत्मवत्सर्वभूतेषु

(लेखक-पं० श्रीकमलापतिजी मिश्र)

आत्मवत्सर्वभूतेषु—सवको अपने-जैसा समझो, यह वात हमारे यहाँ सदासे बार-बार कही गयी है। सबको अपने-जैसा समझो, किसीको कष्ट न दो, सबका उपकार करो, सबसे बन्धुता रक्खो, सबको अपना ही रूप समझो, यह बात वेदोंसे लेकर लोकोक्तियों तकमें व्याप्त है।

अथर्ववेदकी पैप्पलाद शाखाके ये दो उद्धरण हमारे कथनके पोषक हैं—

ज्यायस्वन्ताश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सधीचीनान् वःसम्मनसस्कृणोमि॥

अर्थात् श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदयसे मिल-कर एक साथ रहो, कभी अलग न होओ। एक दूसरेको श्रसम रखकर, साथ मिलकर भारी बोझ खींच ले चलो, परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्त जनोंसे मिले रहो।

सहृद्यं साम्मनस्यमिवहेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभि हर्षत वःसं जातमिवाध्न्या॥ सबके बीचसे विद्वेषको हटाकर सहृद्यता और सम्मनस्त्रा का प्रचार करता हूँ । जिस प्रकार गौ अपने सद्योजत बछड़ेसे प्रेम करती है, वैसे ही सब परस्पर प्रेम करें।

तुरंत उत्पन्न बछड़ेपर गौका कितना प्रेम होता है गई अनुभव प्रायः सबको होगा। वह उसे क्षणभर भी आँखर्म और नहीं होने देना चाहती, उसे छूनेवालेपर टूट पड़ना चाहती है और उससे दूर रहनेपर भी उसका मन उसीमें बँधा होता है।

्र व्यासदेवने अठारह पुराण लिखनेके बाद कहा— अष्टाद्शपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥ अर्थात् व्यासकी दो बातें सब पुराणोंकी सार हैं। वे यह कि परोपकारसे पुण्य होता है और पर-पीड़नसे पाप पर-पीड़न पाप है, यह भावना 'आत्मवत्सर्वभूतेषु'की ही प्रतिष्वनि है।'

साधारण नीतिमें भी कहा है—
आत्मनः प्रतिकृलानि परेषां न समावीत।

'जो अपनेको अच्छा न लगे, वैसा व्यवहार हूसके
साथ न करो।'

ाग ३६

-

में प्रदृत

स्को भी

दर्शनपर

विरागू॥

आजू ॥

(00)

का भोग

ाता है।

ा उनकी

दर्शनोंसे

••• इस

मने तुम-

ग प्रयागः

ोप आगे)

मनस्कृता-सद्योजात

ता है। यह

वकी ओर

चाहती है

होता है।

A I

A 11

रहै।वे

से पाप।

भूतेषु भी

त्।

सबकी अपने-जैसा समझना, यह हमारी संस्कृतिका अङ्ग सबकी हमने सदा निष्ठासे आराधना और साधना की है। इसकी हमने सदा निष्ठासे आराधना और साधना की है। इस साधनामें यहुत आगे वह चुके हैं। दर्शनोंमें हमारा म इस साधनाके अतिरिक्त और क्या है? एकको अर्देखाद इस साधनाके अतिरिक्त और क्या है? इस हमें देखना, सबको एकमें देखना, यह साधना क्या है? इस हमें देखना, लोगोंके कथनानुसार भन्ने ही हममें अनेक दोष अर्थे हों, पर कहरताका लोग हुआ है, इसे कौन न कोगा। कहरता कम होना भी हमारी संस्कृतिकी विशेषता है के उसका आधार है यही 'आत्मवत्सर्वभृतेषु'। अपढ़ है सक्ता आधार है यही 'आत्मवत्सर्वभृतेषु'। अपढ़ है सिमां स्वात से भरा है कि साधनके मार्ग भन्ने ही अलग होनों हों, पर लक्ष्य एक है। सबको वहीं पहुँचना है। और ल्या होनेके कारण उससे किसी भी रूपमें प्रेम स्तेष्ठे, उसतक पहुँचना चाहनेवाले भाई-भाई हैं, यह स्वा आप हुई। इसी वातको पुष्पदन्ताचार्यने महिम्न:स्तोत्र-

ह्यानां वैचित्रयादजुकुटिलनानापथजुषां नुणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।

अर्थात् तुम्हीं वह हो, जहाँ सवको पहुँचना है, चाहे कोई क्षेवींचित्र्यके कारण सीधे रास्तेसे जाय या टेढ़े रास्तेसे। भैजलमात्रको जैसे-तैसे समुद्रमें ही पहुँचना है।

इसी 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' भावनाके कारण हमारा हाथ लिके उपासना-स्थानको ढहानेके लिये कमी नहीं उठता, इसीके ला हम कापालिक, शैव, शाक्त आदि सभीको अपना ज्यते हैं। इसीके कारण हम अपने उपास्य देवोंकी संख्या जीत नहीं रखते—हम कहीं भी चौरा वनाकर, पूर्ण श्रद्धासे लि मी गवाकी पूजा शुरू कर सकते हैं।

ह्वी भावके कारण हममें इतनी अहिंसा और दया है। असी अपने हैं, सभी अपने ही रूप हैं तो द्वेष किससे बाव १ यह भावना इतनी गहरी है कि हम अस्प्रािकताके संस्कारसे प्रभावित होनेपर भी अन्य लोगोंकी कि क्म कभी नहीं होते। हम जो कहीं क्रूरता करते हैं, वह

ितः, हमारे यहाँ भूत राब्द भी तो बहुत व्यापक है। क्षेमगुण्यमात्रतक ही सीमित नहीं। इसकी छपेटमें पशुः कि होर, पतंगः, वृक्ष सभी आ जाते हैं और सबको समान

^{आत्मत्रत्}सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।

फिर, 'पण्डितास्तत्त्वद्शिनः ।' पण्डित तत्त्वद्शीं होते हैं । अतः हम कह सकते हैं कि सबको समान समझना हमारे यहाँका एकमात्र नहीं, तो एक बहुत बड़ा तत्त्व है ।

हमारी इस भूत-दयाका क्रमिक इतिहास हमारे ग्रन्थोंमें है। हमारे यहाँ नित्य करणीय एक 'भूतयज्ञ' है। उसमें मनुष्यके अतिरिक्त सभी जीव-सृष्टि है, जो चार श्रेणियोंमें विभक्त है। उनके नाम हैं—उद्भिज, स्वदेज, अण्डज तथा जरायुज। मनुष्य भी जरायुज ही है, पर धर्माधर्मका अधिकार प्राप्त होनेसे वह उक्त सृष्टिसे भिन्न है। हमारे यहाँ विधान है कि हम इस भूत-संघके कल्याणके लिये प्रतिदिन 'भूतयज्ञ' करें, इन भूतोंकी तृष्टिके लिये उनका स्मरण कर कुछ भोजन उत्सर्ग करें। यह भावना ही वृद्धिको प्राप्त हुई और जड पदार्थोंतक पहुँची। चेतन तो दूर, जडको भी हम कष्ट न दें।

इस भावनाके लिये त्याग बहुत आवश्यक है। त्यागके लिये भोगसे विरत होना आवश्यक है। त्याग और भोगके समन्वयके विना इस भावनाकी पूर्णतातक हम नहीं पहुँच सकते। इसीसे वह विदेह स्थिति प्राप्त हो सकती है, जिसके कारण राजा जनकका नाम ही विदेह हो गया। वे राजा थे, पर भोक्ता नहीं। जैसे ईश्वर अलिप्त होकर सृष्टिका संचालन, नियन्त्रण और रक्षण करता है, वैसे ही जनक भी अपने राज्यका करते थे। यहाँ भोग और त्यागका समन्वय है। तभी संसारमें अलिप्त होकर रहा जा सकेगा। तभी मनुष्य कमल-जैसा हो सकेगा, जो जलमें रहकर भी उससे अलिप्त रहता है।

मोगसे लोम उत्पन्न होता है । मोगकी तृप्ति मोगसे नहीं होती । अग्नि घीसे तृप्त नहीं होती । वह और बढ़ती है, उसे और भोगकी भूख लगती है । इस ओरके उपकरण जुटानेमें लोम आ कूदता है । यजुर्वेदमें इस ओर कितना अच्छा संकेत है—

ईशा वास्पिमदं सर्वं यिक्तिव जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

अर्थात् इस दृश्य जगत्में जो कुछ है, वह ईशसे ओत-प्रोत है। इस संसारका भोग त्यागभावसे करो। कभी किसी-का धन न छीनो।

इस मन्त्रमें तीनों बातें हैं—अद्देत भावना भी, त्याग और भोगका समन्वय भी, तथा लोभका वारण भी । धनसे तात्पर्य सिक्के मात्रसे नहीं है, प्रत्युत किसी भी ऐसी वस्तुसे है जिसका लोभ हो सके । जिस वस्तुका लोभ होता है, वही Digitized by Arya Samaj Foundation Chennal and eGangotri

वन हो जाती है। अतः किसी भी पदार्थमें लोभ न करना, उसपर अपने प्रभुत्वकी भावना न होने देना, उसे दूसरोंके उपभोगकी वस्तु बनाना, यही निर्लेप है, यही त्याग है और यही सबको आत्मवत् बनानेका साधन है।

किसी वस्तुको अपना मानकर उसके लिये अभिमान करना अहंकार है। अहंकारसे बुद्धिकी निर्मलता नष्ट होती है। गीतामें इसीलिये मोहको बुद्धिनाशका कारण कहा है। अहंकारसे सम्मानकी इच्छा होती है, इससे दूसरेका अनादर करके भी आदर प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। और इस इच्छासे तेजका, तपका क्षय होता है—

असम्मानात्तपोवृद्धिः सम्मानातु तपःक्षयः ।

सम्मानसे तपःक्षय होता है। अतः सबको समान समझना ही इसकी ओषधि है। तब मनुष्य अपना अपमान अपने ही द्वारा समझकर शान्त रहेगा। जब कोई पराया नहीं तो असम्मान किससे ?

पर इस भावनाको उत्पन्न करना सहज नहीं। संवारमें रहते हुए, उसके सब काम करते हुए, उनसे अलिप्त रहना दल-भातका कौर नहीं। यह एक योग है, जिसे वही साध सकता है, जो उस भावनामें लीन होनेका आग्रही हो, जिसकी आत्मा प्रवल हो, इच्छा-शक्ति बलवान् हो और जो मनको जीत ले। वह कर सकता है जो अपनेको सबके साथ तन्मय कर ले। तभी अलिप्तता उत्पन्न हो सकती है। गीतामें यही जात इस क्षोकमें कही है—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः। सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

भोगके त्यागसे स्वतः मुख उत्पन्न होता है। कारण, जिन भोगोंमें हम मुख मानते हैं, उनमें वस्तुतः मुख नहीं है। नहीं तो, धनकुवेर लोग क्यों दुखी हों, जो हर प्रकारका भोग प्राप्त कर सकते हैं। मुख तो अपने ही भीतर होता है। वह अपनेमें उठनेवाली वासनाकी शान्तिसे प्रकट होता है।

वासनाओंकी शान्तिसे मनुष्यका व्यक्तित्व फैलता है। अपने अल्पत्वको दूर करना और विशालताको बढ़ाना ही परम सुख है। यह बात वेदमें यों कही है—

यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति।

अर्थात् विशालतामें ही सुख है, अल्पतामें नहीं । यहाँ व्यक्तित्वकी, हृदयकी विशालतासे ही तात्पर्य है । हजार एकड़के खेतसे नहीं । पर यह हृदयकी विशालता सक्को क्य समझनेपर सबको अपना ही रूप समझनेपर आवेगी, ये नहीं तभी मनुष्य कह सकेगा—

अयं निजः परो वेति गणना लघुवेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुदुस्वक्रम्॥

अर्थात् यह मेरा, यह दूसरेका, यह विचार उन्होंके संकुचित व्यक्तित्ववालोंके होते हैं । उदारचितों—कि व्यक्तित्ववालोंकी दृष्टिमें तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही उनका कुरू होता है ।

मनुष्यका व्यक्तित्व संकुचित क्यों होता है ? इसलि है वह अपनेको एक रारीरमात्र मानता है और उसकी तृष्टे हैं सुखके साधनोंको परम तत्त्व मानकर उनके संवर्धन, पेत तथा रक्षणमें ही दत्तचित्त रहता है। 'मैं और मेर्र' है कठघरेमें वह अपनेको वंद कर विशालतासे अपनेको पृथक केता है। अतः विशालताके अनुभवके लिये इस कार्यी वाहर निकल आना, उससे बहुत दूर चला जाना, अ है जाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके विना न संकोब है होगा, न सुख मिलेगा।

इस 'मैं-मेरा' के कठघरेसे निकलकर मनुष्य असेने समाजमें पाता है। यह दूसरा कठघरा है। इसने किंक भागनेपर वह राष्ट्रसे चार ऑलें करता है। यह तीसरा कर्क है। इससे भागनेपर वह पृथ्वीकी अनन्तता और उस्ते हों। तादात्म्यसे आगे बढ़कर अने एकात्मके दर्शन होंगे, तव 'निज-पर'की शृह्वलाएँ दूर वाकी-पनुष्य मुक्त हो जायगा। वह तव सबको आत्मवत् एक सकेगा। तभी वह समाज, राष्ट्र, देश, विदेश, जाति के लेका आदिसे ऊपर उठकर सबमें एकात्मताका अनुभव कर संभा आदिसे ऊपर उठकर सबमें एकात्मताका अनुभव कर संभा

इसके लिये आवश्यक क्या है १ आवश्यक यह है है है मां पहले मनुष्य अपने कुटुम्बसे प्रेम करे, फिर पड़ोसिपाँत क्रिक करे । तय मुहल्ले-टोलेसे। फिर नगरसे, उसके पासके प्रामाने देशसे—इस प्रकार अपने प्रेमकी सीमाका विस्तार करता बार्व प्रेम रवड़के समान होता है। वह वढ़ता चलता है क्रिक नहीं। यह उसका विशिष्ट गुण है। अतः निःशंक होत्र उसकी सीमाको बढ़ाते रहना चाहिये।

आचार्य रामचन्द्रजी, ग्रुह्मने लिखा है कि 'जो लीग क्षेत्र मित्र स्थान स्

ता सबको समू यिगी, याँ नहीं।

[माग ३३]

तसाम्। उनकम् ॥ र तुच्छेरि

ारितों—विश उनका कुटुन

? इसलिये हि सकी तुछ ब संवर्धन, पोत मौर मेरा' ह नेको पृथक्त इस कठवरी ाना, उसे म न संकोच क

एँ दूर गाँगी-

ात्मवत् समग्र ड़ोसियोंसे प्रेम र करता जाया

निःशंक होत

ता है। द्वा

खुपियंति प्रेम नहीं, जो अपने देशवासियोंको देखकर ्र वहाँ उठते, उनसे दो क्षण वातें नहीं कर सकते, वे क्ष्मिमी वर्ने, अपने देशप्रेमकी दुहाई दें और देशभक्तिके क्ष्यान दें, यह बात समझमें नहीं आती।

हें ही यह भी कहा जा सकता है कि जिनमें कभी देश-क्रित थी, जिन्होंने उसका विस्तार नहीं किया, विदेशोंको क्षा न समझा, समस्त पृथ्वीके समस्त दृश्य-प्रपञ्चमें प्रतेमका अनुभव न किया, वे विस्वयन्धुताका डंका कैसे

विश्ववन्धुताका सबको अपने-जैसा समझनेका मार्ग तो ही हुरुम्बसे सीमाका सार्वभौम प्रसार । उसके विना क्षिमधुता क्या और कैसे ? किसी देशके आय-व्यय आदिके कंडे देलकर उनके आधारपर उस देशसे सहानुभूति प्रकट ब्राल्यान देना एक बात है और उसके बीच रहकर, क्क एकात्मताका प्रसार कर, उसके लिये आँसू वहाना या व्या रोना दूसरी वात ।

नुष्य असे हमारी और विदेशी दृष्टिमें बहुत अन्तर है। स्वामी इसमें निज्ञ निकानदजीने एक स्थानपर लिखा है कि 'कोई नयी योजना इ तीसरा क्या को रखनेपर विदेशी पूछता है कि क्या इससे मेरी आमदनी ा और उसे हों। १ पर भारतीय पूछता है कि क्या इससे मुझे गे बहुबर उते के मिलेगा ११

वह हमारी दृष्टि बहुत महत्त्वपूर्ण है । इससे हमारे जीवन-बब्स प्रकट होता है । हम सांसारिक पदार्थोंकी ओर ा, जाति, वं हो, इमारी दृष्टि उनके पार आध्यात्मिक शान्ति या म्ब कर ^{संक्रा} जिल्ही ओर है। तात्पर्य यह कि 'आत्मवत्सर्वभृतेषु' भावना-क यह है है है मार्कि हम सहज पथिक हैं और उसकी प्राप्तिके सहज किती हैं। साथ ही, हम मोक्षको इसलिये नहीं चाहते कि पासके प्रामी कि हमारा कल्याण हो । हम तो 'आत्मनो मोक्षार्थं जगतो ^{का च' के समर्थक हैं | जगत्का कल्याण पहले ।}

वस्तुतः सवको अपने-जैसा माननेकी भावनासे ही जगत्-केल्याण हो सकता है। राष्ट्र-राष्ट्रका संवर्ष, मालिक-मजदूर-भिष्कं, छोटे-बड़ेका संवर्ष, लक्ष्मी-सरस्वतीका संवर्ष, गुणसे हो। असे हैंष, अनेक वादोंका जन्म और उनका संघर्ष, संस्कृति-ती हैं। असत पत्न वादाका जन्म आर उनका उनका समान स्वाहिक स्वाहि का पही भावना यदि सार्वभौम हो जाय तो न कित्र उत्पन्न होगाः न मुसोलिनी । न मजदूर-संघोंकी जरूरत रहेगी, न पत्रकार-संवोंकी । सवमें इसी उपायसे सहज ही सामञ्जस्य और प्रेम हो सकेगा।

पर, जैसा कि कहा जा चुका है, यह योग है। एक दिनमें, एक क्षणमें यह योग सिद्ध होनेका नहीं । सम्भव है, सैकड़ों वर्ष या अधिक समय लग जाय । पर इसीको लक्ष्य मानकरः सर्वत्र, बाल्यावस्थासे ही इसकी शिक्षाका विधान किया जाय तो संसारमें स्थायी शान्तिकी सम्भावना है । इसी भावनासे आन्तरिक मुख और स्वाधीनताकी सिद्धि सम्भव है। अन्यथा हम प्रतिदिन मनोमालिन्य, द्वेष और हिंसा-प्रतिहिंसाकी ओर अग्रसर होते जायँगे और विनाशके उपकरणोंका आविष्कार करते जायँगे। हमारे मनकी अशान्ति, हमारा संकुचित व्यक्तित्व एक दिन हमें ही खा जायगा।

इस भावनाकी ओर अग्रसर होनेमें देश-कालकी बाधा नहीं है। कुछ व्यक्ति भले ही समान न हों, पर सवकी आवश्यकता समान हो सकती है। गहरी नींद सो जानेपर सव समान हो जाते हैं । ऐसे ही लक्ष्यकी प्राप्तिमें भी सब समान हो सकते हैं। या होते ही हैं। अतः सर्वत्रके मनुष्य, सब देशों और सव जातियोंके मानव, सर्वदा इस भावनाकी ओर अग्रसर होनेका व्रत छेकर इसकी सिद्धिमें छग सकते 🐉 इसके साधक हो सकते हैं। इतनेसे ही उनमें बहुत कुछ सौहाई उत्पन्न हो जायगा।

व्यक्तिके निर्माणसे ही समाजका निर्माण होता है। समाजन के निर्माणसे विश्वका हित हो सकता है और व्यक्तिका निर्माण ही इस साधनामें मुख्य है । इस भावनाकी प्राप्ति साम्हिक रूपसे घंटा-घड़ी वजाकर, शङ्ख फूँककर या व्याख्यान-भाषण देकर नहीं की जा सकती । यह व्यक्तिगत साधनाकी वस्तु है। एक व्यक्तिका प्रभाव बहुतोंपर पड़ा करता है, यदि वह व्यक्ति शुद्ध चित्तसे अपने लक्ष्यकी प्राप्तिका इच्छुक हो। एक व्यक्तिका कितना प्रभाव पड़ सकता है और एक व्यक्ति क्या कर सकता है, यह खोजने दूर नहीं जाना है। शक्तिका एक कण ऐटम बम वन सकता है। शक्तिके उस कणकी हूँढ़ना और उपयोगकी कल्पना तो मानवके वशकी बात है उससे संहार भी किया जा सकता है, संरक्षण भी । इसीलिय हमारे यहाँ कहा है कि प्रतिक्षण संकल्पको गुद्ध रक्ला जाय। संकल्प अशुद्ध रहेंगे तो प्राप्त शक्ति भी आसुरी ही होगी, वह अहित ही करेगी।

इसलिये बहुत शुद्ध संकल्पसे, इस भावनाकी ओर अग्रसर होना चाहिये। बात यह है कि कर्मका प्रभाव कर्ता तक ही सीमित नहीं रहता । वह बहुत दूर तक जाता है ।
कर्मका प्रभाव सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर पड़ता है । एक उदाहरण
लीजिये । किसी तालावके शान्त जलमें एक पत्थर फेंकिये ।
पत्थर गिरनेपर तरंगें उठेंगी, जो तालावभरमें फैल जायँगी ।
उसी प्रकार मन या इन्द्रियोंकी हलचलसे वायुमण्डलमें स्पन्दन
होते हैं । ये सूक्ष्मरूपसे वायुमण्डलमें फैलते हैं और ब्रह्माण्ड
भरके वायुमण्डलमें संक्रमित होते हैं । तब ये आकाश, तेज,
पृथ्वी तथा जलपर अपना प्रभाव डालते हैं । इस प्रकार
कर्मका प्रभाव सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर पड़ता है । अतः मनुष्य यदि
ग्रुभ संकल्पसे कर्म करेगा तो उसका प्रभाव ग्रुभ पड़ेगा,
अग्रुभसे करेगा तो अग्रुभ पड़ेगा । इसीलिये ग्रुभकर्म करना ही
सर्वथा उचित है ।

कमेसे ही संस्कार बनते हैं । एक ही कर्म बार-बार करनेसे उसका स्थायी प्रभाव पड़ता है । इसी प्रभावको 'संस्कार' कह सकते हैं। 'रसरी आवत जात ही सिलपर परत निसान' यह दूसरा उदाहरण लीजिये। जिस मिट्टीके वर्तनमें बहुत दिनोंसे धी रक्खा जाता हो, उसे तोड़कर जला देनेपर धीकी सुगंधि आती है, और यही नहीं, वर्तनकी भरममेंसे ही धीकी ही सुगंधि आती है। यह उस वर्तनपर घीका संस्कार है। ऐसे ही कर्मका मनुष्यमें संस्कार पड़ता है, जो दूसरे जन्ममें, पहले शरीरके भस्म हो जानेपर भी जाता है। कारण, संस्कार आन्तरिक होता है, वह और दूरतक जाता है। अतः यदि हम सबको समान, अपने-जैसा समझनेकी भावनाका संस्कार डालें तो वह भी एक ही जनममें समाप्त नहीं हो जायगा । किसी मनुष्यमें विश्वबन्धत्व देखिये, अनेक विशिष्ट गुणोंकी अनायास सिद्धि देखिये, तो वह उसी जन्मकी नहीं है, वह न जाने कितने जन्मोंका संस्कार है, जो अब प्रकट हुआ है।

कहनेका तात्पर्य यह कि मनुष्य सदा मुखकी खोजमें रहता है। वह दुःखसे यथासाध्य दूर रहना चाहता है। उसके सब कर्म, सब संकल्प, इसीके लिये होते हैं। इसी प्रवृत्तिको लक्ष्य करके हमारे शास्त्रों और दर्शनोंने परम मुखकी प्राप्तिके मार्ग बतलाये हैं। वे भिन्न-भिन्न हैं। किसीमें मनन प्रधान है, किसीमें शरीर-कष्टका—तपका योग है, किसीमें दोनों हैं। उसके बाद जो परम मुख प्राप्त होगा, वह प्रायः परलोकसे सम्बद्ध, अतः आधुनिक विश्वास और तर्ककी कसौटीपर पूरा न उतरनेवाला है। इस वर्तमान समयमें नाना जंजालोंमें जकड़े मनुष्यको

इतना समय भी नहीं कि वह शास्त्रालोचन करे, किसी ए मार्गको पकड़े और परम सुखके संधानमें दत्तचित्त हो।

पर, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' वाली भावनामें न तो कुन्न मनन आवश्यक है, न शरीरको कुछ कष्ट देना है न यश-अनुष्ठानादिकी तरह यह अर्थ-परवश् है । इसमें ते भावना मात्रसे अपने व्यक्तित्वको विशाल करना है । इसमें ते भावना मात्रसे अपने व्यक्तित्वको विशाल करना है । इसमें ते लिये संसारको छोड़कर किसी कंदरामें जाना तो इसके एक दम प्रतिकृल है । यह योग वहुत कम उपकरणांत्राल, संसार्व कर्म करते हुए ही करनेके योग्य तथा सबके लिये सरल है। हम यह संकेत कर चुके हैं कि वर्तमान समयक्षी स्में विपत्तियों तथा अव्यवस्थाओंकी स्थायी शान्ति या शमनक्षी में यह महीषध है।

यह किसी वर्ण या जाति या देशके लोगोंके लिये हैं नहीं है। इसकी सिद्धिके सब लोग समानरूपसे अधिकाएँ हैं। कितने ही अधिक साधक इसके हों, यह सिद्धि उत्ती हैं। शीध होगी तथा फलद होगी। इसके साधनमें विफल होगे। साधकको किसी प्रकारकी हानिकी आशंका भी नहीं। न मानसिक, न शारीरिक, न आर्थिक।

अतः ऐसी उत्तम सिद्धिके साधनमें हम सक्को निग्रह्म चित्तसे, अविलम्ब लग जाना चाहिये। कालान्तरमें इसके काल संसारमें स्थायी शान्ति, सुखका साम्राज्य होगा। मानव भी सच्चा सुख प्राप्त कर, भोग और त्यागका समन्वय कर सकेगा। तब न किसीको, किसी राष्ट्रको जीतनेकी आसी होगी, न किसीको अपना दास बनानेकी प्रवृत्ति, न कि वस्तुका एकाधिकार प्राप्त करनेकी स्पृहा। यह संसार असमयके भारत-जैसा हो जायगा, जब न किसी बस्ते वाद होता था, न कहीं चोरी होती थी, न किसीमें लोग था। ऋग्वेदके संज्ञानसूत्रमें कहा है—

समानी व आकृतिः समाना हृद्यानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासित॥
अर्थात् सबकी चेष्टा समान हो, सबके निश्चय समान है।
सबके हृद्य एक हों। कहीं विषमता न हो। अन्तक्ष्मी
उदारता भी समान हो। सब लोग साकार समताके समा
साथ रहें।

साय रह।
यह बात 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' की भावनासे ही हो सही
है। अतः वही हमारा रुक्ष्य, ध्येय, प्रेम हो। तभी क्रवा
होगा।

कहीं यह कमजोरी आपमें तो नहीं है ?

(लेखक-डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०,पी-एच्० डी०)

शिवजीके दो पुत्र हैं-कार्त्तिकेय या स्वामीकार्तिक और दूसरे श्रीगणेश । ये दोनों पुत्र अपने पिताके समान ही विचित्र और अद्भुत हैं। एकसे दूसरा वद-चदकर, रूपमें भी और गुर्गिमं भी। स्वामीकार्तिककी अनेक आँखें, तो गणेशका हाथी-_{बैसा सिर} और मुखमण्डल । मोटा पेट और चूहेसे प्रेम! रोनों ही विचित्र !

िभाग ३६

किसी एउ

न तो वहुत

देना है न

। इसमें तो

है। इसरे

इसके एक

ाला, संसार्डे

मंस्ल है।

तमयकी सम

शमनकी भी

कि लिये है

रधिकारी है।

द्रं उतनी ही

वेफल होनेग

नहीं। न

को निःगङ्ग

इसके कारण

मानव भी

तमन्वयं का

मी आमी

ता न जिली

संसार उस

घरमें ताल

लोम धा।

वः ।

समान हैं।

न्तः करणोत्री

ताके समान

हो सार्व

भी कल्बान

त हो।

वे दोनों आपसमें एक दूसरेको चिढ़ाते । इसपर पार्वतीजीन अव्य होकर एक दिन भगवान् शिवसे कहा-

भहाराज ! ये दोनों वच्चे आपसमें लड़ते-झगड़ते रहते है। कृपा कर इन्हें इस प्रकार समझा दी जिये कि एक दूसरेकी अर्थ रीका-टिप्पणी न किया करें। भगवान् शिवजीने दोनों प्रांको बुलाया । भगवान्ने वडे प्रेमसे सहानुभूतिभरे स्वरमें क्य-'स्वामीकार्तिक ! गणेश ! तुम दोनों ही भाई-भाई हो । रोनों ही बुद्धिमान् और पूर्ण विवेकी हो; लेकिन तुममें एक बड़ी कमजोरी है।

'क्या कमजोरी है ?' दोनोंने श्रद्धासे पूछा ।

शिव बोले, 'संसारकी सृष्टि गुण-दोषमयी है। इस जगत्-का प्राणीमात्र गुणों एवं दोवोंका पुझ है । किसीमें गुणोंकी अधिकता है तो किसीमें दोषोंकी संख्या वड़ी हुई है। दृष्टि-रोष यह है कि मनुष्य दूसरेका दोष देखता है, उसके गुण नहीं। दोषदर्शन एक भारी कमजोरी है। जिसकी दोषदर्शनकी रिह होती है, वह विकारी व्यक्ति बड़े महापुरुषोंमें भी कोई-न-🍀 दोष हूँद निकालता है। दूसरी ओर, जिसमें गुणग्राहकता रीती है, वह पापीके भी गुण ही देखता है। थोड़े-बहुत गुण-रोष तो समीमें होते हैं। तुम दोनोंकी जैसी दृष्टि होगी, वह ल्यं जैसा होगा, दूसरेके उसी गुण-अवगुणको महत्त्व देगा। जिसमें स्वयं दोष हैं, वह दूसरेके दोष ही देखेगा । इसके विपरीत जिसमें गुण हैं, वह गुणोंको ही देखेगा । जिसकी नेज़र दूसरेके अवगुण खोजनेमें लगी रहती है, वह किसी कारकी उन्नति नहीं कर पाता। उलटे दूसरोंके दुर्गुण उसमें भ कर होते हैं। अतः तुम दोनोंको दोषदर्शनके सिवा गुणप्राहकताकी दृष्टिको ही महत्त्व देना और अपनाना चाहिये।

शिवकी विवेकसे भरी हुई मधुर वात सुनकर दोनोंको ज्ञान हो गया । उस दिनसे उन्होंने दूसरोंके दोष गिनने बा कमजोरियोंपर खिल्ली उड़ानेकी दृत्ति छोड़ दी। गुणप्राही दृष्टिको विकसित करने लगे।

X × अष्टावकका नाम आपने सुना होगा।

काले-कुरूप, आठ जगहसे टेढ़े-मेढ़े। उनका कोई अङ्ग सीधा नहीं । हर प्रकारकी शारीरिक कमजोरी । जब वे सभामें आये तो उनकी इस अजीव शकल और टेढ़े-मेंद्रे अरीरको देखकर सव हँस पड़े । सवको उनमें दोष दिखायी पड़े ।

अष्टावक बोले, 'मुझे यह कहते हुए खेद है कि इस सभामें चमार अधिक हैं। चमार चमड़ेको देखता है। आप मेरे आठ जगहसे टेढ़े-मेढ़े इस काले-कलूटे शरीरको देखकर हँस रहे हैं। आप ही वताइये, इस शरीरको लेनेमें मेरा क्या दोष है १ ईश्वरने जैसा मुझे वनाया, वैसा अच्छा-बुरा आपके सामने मौजूद हूँ । मैंने अपने ज्ञान और बुद्धिको अधिक-से-अधिक वढ़ाया है। यह स्वाध्याय और अभ्याससे पैदा किया हुआ ज्ञान ही मेरी अर्जित सम्पत्ति है । इसमें आपमें कोई भी शास्त्रार्थमें मेरा मुकावला न कर सकेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

यह कहकर उन्होंने वड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया, जिसे सारी सभा मन्त्र-मुग्ध-सी सुनती रही । जैसे-जैसे उन्हें अष्टावक्रजीके गुण माळ्म हुए, वैसे-वैसे वे उनसे प्रभावित होते रहे । अन्तर्भें उनकी विद्वत्ताके भक्त वन गये । यह है गुणोंकी विजय । X

कटराजनीतिश ब्राह्मण चाणक्यकी कहानी आपकी स्मृतिमें उभर रही है। श्रीशिवनारायण द्विवेदीके शब्दोंमें उसको एक वार फिर सारण कीजिये-

X

मगधकी राजधानी पाटलिपुत्रमें आज मृत महाराज महानन्दका श्राद्ध है । राजमहल आगन्तुक ब्राह्मण और अतिथियोंसे भरा हुआ है। देश-देशान्तरोंसे आये हुए विद्वान् ब्राह्मण एक ओर बैठे शास्त्रोंकी चर्चा कर रहे हैं। दूसरी ओर राजाके शूर सामन्त एकत्र होकर विद्वानोंकी बातें सुन

प्राणी

補

नेहि

सर्व

13

जपर

इस्रोंक

(इ अ

्ति हो एसंर्क

₹

इते रा

रै। जो

होना उ

ने गिर

कु ग्र

विसे अ

ी। मन

ने मा

ी हुआ

रहे हैं। प्रधान मन्त्री राक्षसपर कुलपुरोहितको लानेका भार दिया गया है। राक्षस उसे लेनेके लिये उसके घर गया है।

वह चाणक्यसे मिला जो पाँवमें चुमे कुशाको उखाड़नेमें कमर कसकर लगा हुआ है। कुशा उखाड़कर वह उसकी जड़में छाछ डालकर उसे जला रहा है। ऐसे दृद्दिश्चयी विद्वान् ब्राह्मणको देखकर शकटारने इसीके द्वारा नन्दवंशका नाश करवाना सोचा।

बड़ी नम्नताके साथ वह इस चाणक्यसे मिला और एक पाठशालाका अध्यापक बनाकर उसे पाटलिपुत्रमें ले आया। आदके मौकेपर शकटारने देखा कि यही मिड़ा देनेका समय है। चाणक्यको अच्छे कपड़े पहनाकर वह सभामें ले आया और पुरोहितके ऊँचे आसनपर बैठाकर स्वयं चला गया।

चाणक्यका रंग काला-स्याह और शकल बहुत भद्दी थी। कुरूपताकी जैसे वह साक्षात् प्रतिमा ही था। मन्त्री राक्षसने आकर ऐसी भद्दी शकलवालेको वैठा देखकर उससे पृछा और शकटारकी कथा उसने राजासे कही।

राजा शकटारपर पहलेसे ही नाराज था । सभामें ऐसी गुस्ताखीकी बात सुनकर आगबबूला हो गया । सभामें आकर राजाने काले-भद्दी शकलवाले चाणक्यको पुरोहितके आसनपरसे चोटी पकड़कर उठाया और लात मारी ।

सभामें इस अपमानसे चाणक्यका क्रोध जाग उठा । उसे शकटारके छिपे भावका कुछ भी पता न था । उसने जमीन-पर लात मारकर कहा—

'ओ राजकुलकलङ्कः महानन्द! तूने सभाके बीचमें निरपराध ब्राह्मणका अपमान किया है। इसका बदला तुझे मिलेगा।'

इसके बाद सभाकी ओर मुँह करके उसने कहा—'हे सभ्यगण! मैं चाणक्य शर्मा हूँ। महानन्दने आज निरपराध मेरा अपमान किया है। इसका बदला मैं इसे दूँगा। आप सबके सामने मैं प्रतिश्चा करता हूँ कि जबतक नन्दवंशका नाश न कर सकूँगा तबतक मेरी चोटी खुली रहेगी। यह खुली चोटी काला भुजंग बनकर नन्दवंशको ला जायगी।'

यह कहकर चाणक्य सभासे शकटारके घर चला गया। उसकी उम्र वाणी सुनकर सब लोग शंकित हो उठे।

और चाणक्य-जैसे दिरद्र ब्राह्मणकी दृढ़ प्रतिज्ञाके सामने एक राजा तिनकेके समान उड़ गया। काला-कुरूप ब्राह्मण अपनी अद्भुत विद्या, दृढ़ प्रतिज्ञा और शक्तिके कारण इतिहास. का एक महान् पुरुष बना ।

इस प्रकारकी शारीरिक त्रुटियोंसे परिपूर्ण अनेक गुणी पुरुषोंके उदाहरण भरे पड़े हैं। यदि मनुष्य उनकी त्रुटियोंको ही देखता रहे, तो क्या लाभ ?

× × ×

इन दृष्टान्तोंसे हम एक चिरन्तन सत्यपर पहुँचते हैं, जो किसी प्राचीन संस्कृत कविने इन शब्दोंमें लिखा है—

प्रायेण सामग्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।

अर्थात् ब्रह्माजीका स्वभाव सब गुणोंको एक ही स्थानमें एकत्र करनेके विरुद्ध है। वे कहीं किसी गुणकी सृष्टि करते हैं, तो कहीं किसीकी। सबमें गुण-ही-गुण हों या दोष-ही-दोष हों, ऐसी बात नहीं है।

यह हमारा दोष है कि हमें दूसरेमें छिद्र-ही छिद्र दिखाणी देते हैं, दूसरेके गुण नजर नहीं आते।

द्सरोंके गुण और अपने दुर्गुण देखिये

हमारी यह सबसे वड़ी कमजोरी है कि हम अपनेकी बुद्धिमत्तामें सबसे बढ़-चढ़कर समझ ठेते हैं। हम सबकी अपनी विद्या और बुद्धि बड़ी दीखती है। हम-प्रायः समझते हैं कि हम जो सोचते हैं, जो करते हैं या लिखते हैं, बही उचित है। वही सबसे अधिक विवेकपूर्ण है। हम-जैसा ज्ञान-वान्, बुद्धिमान् और विवेकवान् इस संसारमें अन्य कोई नहीं हो सकता। जब माँ सरस्वती बुद्धिका मण्डार वितरित कर रही थी, तो डेढ़ हिस्सेमें हम सब और आधेमें शेष सारा संसार था।

हमारे गुणोंका आर-पार नहीं। हम-जैसा समझदार, बुदि-मान् और गुणवान् दुनियामें दूसरा कौन है ?

अपने प्रति यह अहंकारकी भावना ही बढ़कर मनुष्यके पतन और सांसारिक पतनका कारण बनती है। इस संकुर्वित भावनाके कारण हमें अपने चरित्रमें गुण-ही-गुण और दूसरोंमें अवगुण-ही-अवगुण दीखते हैं। हमें अपने व्यक्तित्वमें अच्छाइयाँ ही-अच्छाइयाँ प्रतीत होती हैं और हम दूसरोंमें दोष ही योष पाते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारे समाजके हर सदस्य में दोष-ही-दोष भरे हैं और बुसइयाँ-ही-बुराइयाँ एकत्रित हैं।

TT 3年 前記

इतिहास-

क गुणी

र्वियों को

हैं जे

1

स्थानमं

करते

ही-दोक

देखायी

(पनेक)

सबको

मझते

वही

ज्ञान-

नहीं

र रही

सारा

बुद्धि-

ध्यके

चित

रोंमें

ऱ्यां-

दोष

गलत दृष्टिकोण छोड़िये

अपने अंदर गुण और दूसरोंमें दुर्गुण ही देखना एक अपने अंदर गुण और दूसरोंमें दुर्गुण ही देखना एक अपने इंदिनोण है। संसारका हर प्राणी एवं पदार्थ तीन गुणोंसे का हुआ है। यह सारा संसार ही गुण-दोषमय है। प्रत्येक जीम कुछ तुराइयाँ हैं, तो कुछ अच्छाइयाँ भी हैं। प्रत्येक की बहरसे कुछ तुटियाँ और परेशानियाँ दिखायी देती हैं, वे छिप हुआ कुछ सुख भी है। केवल ईश्वर ही दोषमुक्त हो का है।

हम यह मानते हैं कि मानव एक दुर्बल प्राणी हैं; लेकिन मिं दुर्बलताके साथ-साथ उसमें कुछ गुण भी छिपे हुए शिक्षेक दिव्यताएँ भी मौजूद हैं। खेद है कि हमारी दृष्टि क्यों खराबियोंको छाँटने, उनकी व्यर्थ ही आलोचना करने, जल अच्छी-दुरी टीका-टिप्पणी करनेमें ही लगी रहती है। लांकी कह आलोचना करने, उनकी दुराइयाँ निकालनेमें हमें ख अजीव खाद आता है। इस छिद्रान्वेषणसे हमारे अहंकी कि विराणि हमारे अहंकी कि विराणि हमारे अहंकी कि विराणि हमारे कि विराणि हमारे अहंकी कि विराणि हमारे कि विराणि हमारे अहंकी कि विराणि हमारे हमें कि विराणि हमारे कि विराणि हमारे हमें हमारे हमारे हमारे हमारे कि विराणि हमारे हमारे कि विराणि हमारे हमारे हमारे कि विराणि हमारे हमारे

हत प्रकार हमारा अधिकतर समय दोषदर्षनमें ही व्यतीत त्राता है। दूसरोंके दोष गिनकर हम पापरूपी पंकमें को रहते हैं और अप्रत्यक्ष रूपसे उन्हें ही प्रहण करते रहते रीजे जैसा चिन्तन करेगा, वैसा ही विचार उसके गुप्त मनमें हिला। वैसी ही उसकी मनोष्टित्त बनती जायगी। अन्ततः वैअच्छा या बुरा भाव मनकी स्थायी वृत्ति बन जायगी।

^{जाम तत्त्वोंसे} लाभ उठावें या पर-दोष-दर्शनसे दुखी बनें

किसी व्यक्तिके सद्गुणों या उजले पक्षको देखकर लाभ आ अथवा अवगुणोंको देखकर पाप और पतनमें फँसना, किसिता—यह आपके हाथकी वात है। उत्तम तत्त्वों, अग्रे गुणों तथा श्रेष्ठताओंको देखने और उनका चिन्तन अभे आपको लाभ होगा। ये दिव्य गुण आपमें भी विकसित

पर यदि आप दोष-दर्शन करेंगे, तो ये बुराइयाँ बरवस के मानसिक जगत्में प्रविष्ट हो जायँगी । मन पापमय कि हैंगा । उन बुराइयोंसे मिलकर आपके मनमें कि राक्षसत्व जाग उठेगा । इसलिये दूसरोंके दुर्गुणों- की न चर्चा करना और न उनका चिन्तन करना ही ठीक है।

ईश्वर स्वयं चाहता है कि दोष जनताके नेत्रोंसे दूर रहे। जनताकी दृष्टि उसतक न जाय। हमारे शरीरके कुछ अङ्ग कुरूप हैं, दुर्गिन्धिमय हैं। समाजका यह नियम है कि वे अङ्ग जनहितकी दृष्टिसे दके रहें।

इसी प्रकार मनुष्यके चरित्रके अन्धकारमय पक्षोंका ढका रहना ही जनहितकी दृष्टिसे उचित है। गंदगीसे किसे लाभ हो सकता है ? ढकी रहनेसे गंदगी स्वयं नष्ट हो जाती है।

एक विचारक लिखते हैं--

'इस गुण-दोषमय संसारमें हम उपयोगी तत्त्वांको ही ढूँ हैं । उन्हीं दिव्य गुणोंको प्राप्त करनेका प्रयत्न करें और उन्हीं दिव्य सम्पदाओंके साथ विचरण करें, तो हमारा उत्थान, प्रगति और सची उन्नति हो सकती है । जीवन सुखमय हो सकता है ।

बुराइयों से भविष्यके लिये शिक्षा ग्रहण करें । असफलताओं से सावधान होकर सफलता और विद्विकी ओर अग्रसर हों । खतरों से सावधान रहें और अपनी दुर्बलताके निवारणका प्रयत्न करके अपनी चतुरताका परिचय दें, तो बुराइयाँ भी हमारे लिये मङ्गलमय हो सकती हैं । चतुर वैद्य वह है जो विषोंका शोधन और मारण करके अमृतोपम ओषधि बना लेता है । इसी प्रकार चतुर मनुष्य वह है जो बुराइयों से भी लाभ प्राप्त कर लेता है। '

गुणग्राहक दृष्टि विकसित कीजिये

दूसरोंके गुणोंको देखकर उन्हें अपने चरित्रमें धारण करनेसे हम लाभ उठा सकते हैं। अतः हमें जीवनमें उन्नतिके लिये गुणप्राहक दृष्टि जाप्रत् करनी चाहिये।

गुणप्राहक हंसकी तरह है, जो दूधका दूध और पानीक। पानी कर देता है। एक नीच व्यक्ति गायके थनपर लगी। जोंककी तरह है, जो दूधके स्थानपर रक्त ही चूसता है।

गुणप्राहक कमलकी तरह है। कमल कीचड़से सदा ऊपर ही रहता है। कमल गंदगीमें उत्पन्न होता है, पर गुणीजन कमलका सौन्दर्य, रंग, गन्ध ही देखते हैं। क्या हम उसकी गंदगीको देखकर नाक-भौं सिकोड़ते रहेंगे ? क्या उसे कीचड़ ही समझेंगे ? क्या उसके आस-पासके दुर्गुणोंको ही देखते रहेंगे ? नहीं, उसकी तुटियाँ निकालना एक अत्याचार होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हमें तो उसके गुण अर्थात् उसका सौन्दर्यः उसकी सुवासः उसकी मृदुलताको ही प्रहण करना चाहिये । कमलके पास गंदगी हुआ करे, हमें उससे क्या ? हमें तो उस पुष्पकी उत्तमता ही प्रहण करनी चाहिये।

गुलाबके चारों ओर कॉंटें हैं। तिनक-सी दृष्टि बची कि कॉंटा उँगलीमें लगा। उफ् लहू निकल पड़ा, पीड़ा हुई; मनसे हाय-हाय शब्द निकले। पर इससे क्या १ हमें तो गुलाबकी सुगन्धिमय सौरभ तथा सौन्दर्यको ही देखना चाहिये। उसके गुणोंको ही ग्रहण करना चाहिये।

इस समाजमें हमारे चारों ओर अच्छे-बुरे असंख्य मनुष्य हैं। उनके चरित्रोंमें गुण और श्रेष्ठताएँ भी अनेकानेक हैं। इनमेंसे अनेक गुण आपमें नहीं हैं। आपको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि ये श्रेष्ठ गुण आपमें भी विकसित हों। आप उनके दोषोंके स्थानपर गुण-दर्शन और गुण-चिन्तनकी ही आदत डालें। इस गुणप्राहकताकी अभिवृद्धिसे आप दिव्यता-की ओर ही वहेंगे। महानता प्राप्त करेंगे।

दुष्टोंका स्वभाव

आप दुष्टोंका स्वभाव पास न फटकने दें । दुष्ट खरावियों-को ही देखा करता है । दुष्टोंका एक लक्षण यह है— गुणिनां गुणेषु सत्स्विप पिछुनजनो दोषमात्रमादत्ते । पुष्पे फले विरागी क्रमेलकः कण्टकोधिमव॥ अर्थात् जैसे ऊँट फल-फूलोंसे प्रीति न करके केवल काँटों-को खाता है, उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य गुणियोंमें गुणके रहते हुए भी उनके दोष ही देखता है।

विद्या विवादाय धनं सदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय। खलस्य साधोर्विपरीतमेतज् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

अर्थात् दुष्टोंकी विद्या विवाद करनेके लिये, धन अभि-मान करनेके लिये और शक्ति दूसरोंको दुःल और कष्ट पहुँचानेके लिये होती है, परंतु सज्जनोंकी विद्या ज्ञानके लिये, धन दान देनेके लिये और शक्ति दूसरोंकी रक्षा करनेके लिये होती है।

इसके विपरीत सजन पुरुष दूसरोंके गुणों और श्रेष्ठताओंको ही देखते हैं। सदा अच्छाइयोंको देख और ग्रुभ चिन्तन-द्वारा दिन-दिन ऊँचे उठते जाते हैं।

साधु स्वभाव यह है---

मुखेन नोद्गिरत्यूर्ध्वं हृद्येन नयत्यधः। जरयत्यन्तरे साधुर्दोषं विषमिवेश्वरः॥ साधु पुरुष वह है जो किसीके दोषको मुखपर नहीं छो। चुपचाप मनमें रख लेते हैं या उपेक्षा कर देते हैं जैसे किसकी विषको पचा लिया था। कभी उसे प्रकट नहीं किया। यदि हम किसीकी कोई दुर्वलता या त्रुटि सुनें तो चुप हम ही उचित है।

अपने दुर्गुण देखिये और उन्हें दूर कीजिये

ऊपर सिद्ध किया गया है कि पर-दोष-दर्शनसे मनुष स्वयं पापी बनता है । लेकिन अपनी खरावियाँ, बुध्यं, कमजोरियाँ और बुराइयाँ मालूम कर उन्हें दूर करनेते वह उन्नति करता जाता है। हमें चाहिये कि अपने दोषोंके लि अपनेको सजा दें और भविष्यमें अपनी गलतियोंको कि कभी न करनेका दृढ़ संकल्प करें।

शास्त्रोंकी आज्ञा है-

यथा हि निपुणः सम्यक् परदोपेक्षणं प्रति। तथा चेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनात्॥

अर्थात् जैसे पुरुष पर-दोषोंका निरूपण करतेमें आ कुश्चल हैं, यदि वैसे ही अपने दोषोंको देखनेमें हों तो ऐस कौन है, जो संसारमें कठोर वन्धनोंसे मुक्त न हो जाय।

महापुरुष वननेका मार्ग आत्मग्रुद्धि है। अतः चुन-चुनक्र अपने दोषोंको निकाल डालिये। अपने साय रूरिअका कदापि न कीजिये।

अन्ना जहीत ये असन्नशिवाः। (अथर्ववेद १२।२।२७)

अर्थात् हे साधको ! श्रेष्ठ वननेके लिये, अपनी उन्नीति लिये और आगे वढ़नेके लिये अपने दोषों और हुर्गुणीय परित्याग करो ।

क्या आपके मनमें दुर्बल विचार या वासनासे त्नी हैं कुकल्पनाएँ आती हैं ? क्या आप ईप्यां, द्रेष और व्यक्ति में लिस हैं ? क्या सारे दिन अपने शरीरका ही श्रृङ्कार कि करते हैं ? ये या इसी प्रकारके अन्य रोग यदि आपके के हुए हैं, तो तुरंत सावधान हो जाइये । इन्द्रियोंके प्रति सतर्क और सावधान रहिये । उन्हें पतनकी ओर सतर्क और सावधान रहिये । उन्हें पतनकी ओर किये । वासनासे मुक्तिका उपाय विषयोंमें दुःखरोपर्वि और श्रीकेये । वासनासे मुक्तिका उपाय विषयोंमें दुःखरोपर्वि और श्रीकेये । वासनासे मुक्तिका उपाय विषयोंमें दुःखरोपर्वि और श्रीकेये । इनसे दोष दूर किये और अगर श्रीक स्वान्तन है । इनसे दोष दूर किये और सन हल्का और शान्त रहता है ।

मधुर

भगवान् श्रीकृष्णका वलरामजीके साथ मथुरा जाना निश्चित हो गया है। दिव्य मधुर रसमय सारा वृन्दावन भवी वियोगके दारुण दावानलसे दग्ध हो रहा है। भगवान् श्रीकृष्णकी अभिन्ना मूर्ति प्रेममयी श्रीराधाकी विचित्र दशा है। वे कभी तो श्रीकृष्णके साथ अपनी नित्य एकताका अनुभव करके दुःख भूल जाती हैं और कभी भावी विरह्मी ज्वालासे जल उठती हैं। श्रीकृष्ण उनसे वार-वार मिल्कर उन्हें भाँति-माँतिसे समझाते हैं। इसी राधामाधव-वार्तालापका एक प्रसंग है। एकान्तमें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीकृष्णकी आत्मस्वरूपा राधा की हैं। स्यामसुन्दर उनके पास विराजित होकर उनकी पर्यलमें परिवर्तित होनेवाली भाव-लहरियोंका सतृष्ण निरीक्षण कर रहे हैं—कभी समझाते हैं, कभी खयं उन मावनराक्षोंमें तरिङ्गत होने लगते हैं। प्रसंग यह है—

बिषम बिछुड़नेकी वेलामें राधा हुई उदास। अश्रुधार वह चली हगोंसे, निश्वास ॥ चला दीर्घ बौली करती करुणाकन्दन, 'मेरे प्राणाधार !। निराधार ये प्राण रहेंगे, कैसे क्यों निस्मार ? ॥?

स्यामपुन्दरके मथुरा पन्नार नेसे जो विछोह होगा, उसका समय आ गया, वह समय रावाके छिये वड़ा ही विषा है। वे उदास हो रही हैं। उनकी आँखोंसे आँपुओंकी धारा बहने छगती है और छंबे-छंबे श्वास आने लगते हैं। वे अत्यन्त करूण-भावसे क्रन्दन करती हुई बोठीं— भेरे प्राणोंके आधार! तुम्हारे चले जानेपर ये मेरे प्राण निराधार हो जायँगे, किर ये कैसे बचे रहेंगे— और जीवनका सार जो तुम हो, उसके चले जानेपर होंगे भी क्यों ११

बद्ला भाव तुरंत, न जाने क्यों. पलभरमें अन्य । वोली —'हम दोनों स्वरूपतः अविरत नित्य अनन्य ॥ भी कहीं देह, छटता नहीं कभी भी संग। नित्य मिले रहते जीवनके सकल अंग-प्रत्यंग ॥ हो पाता न कभी हम दोनोंका यथार्थ विच्छेद् । कर सकते न कभी, कैसे भी, देश-काल-तन भेद्र ॥ तुम्हारे देह-प्राण-मन बने चरण युगल सम त्राण । तुम्हारे ही प्राणींसे हुआ मेरा निर्माण ॥ सब नित्य वसे रहते तुम मुझमें आवास । सहज मध्र तुममें सहज हो रहा मेरा मोठा नित्य निवास ॥

दूसरी भाव-तरङ्ग आयी, तुरंत न जाने क्यों भाव वदल गया। पल्रभरमें ही दूसरा भाव आ गया। वे बोलीं—'प्यारे स्यामसुन्दर! हम दोनों तो स्वरूपतः नित्य जिरन्तर अनन्य हैं, एक ही हैं। शरीर कहीं भी रहे, हम दोनोंका संग कभी छूटता ही नहीं। हम दोनोंके जीवनके—(केवल शरीरके नहीं—) समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग (समस्त भाव-विचार, परिस्थिति, अनुभूति तथा उनके अवान्तर भेद आदि अपनी-अपनी कलाओं-सहित) नित्य मिले रहते हैं। हम दोनोंका सच्चे अर्थमें कभी विच्लेद हो ही नहीं पाता। देश-भेद, काल-भेद और शरीर-भेद कभी किसी प्रकार भी हम दोनोंमें भेद उत्पन्न नहीं कर सकते। मेरे प्राण ही तुम्हारे शरीर-मन-प्राण और चरण-युगल वने हुए हैं और मेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६ नहीं रहते। से शिवकीं ही किया।

चुप रहना

निसं मनुष्य माँ, त्रुटियाँ, करनेसे वह दोषोंके लिये

प्रति । नात् ॥ करनेमं अर्ध ॉ तो ऐस जाय । जुन-जुनकर हुन-जुनकर

ति उन्निहें र दुर्गणिया से स्वीहुई

र्यान्यां होते।

सारा निर्माण तुम्हारे प्राणोंसे हुआ है। (मैं तुम्हारे प्राण हूँ—तुम मेरे प्राण हो।) तुम नित्य अपने सहज मधुर निवासस्थानरूप मुझमें बसे रहते हो और मेरा बड़ा मधुर नित्य निवास तुममें हो रहा है। (यों कभी तो सर्वया एकात्मभावकी तरङ्ग आती है और कभी दोनों दोनोंमें नित्य सम्मिलित हैं यह भाव-लहरी लहराती है।) इतनेमें भाव बदलने लगा—तब वे बोलीं—

'नित्य मिलनमें भी जब आती कभी बिरहकी वात। सुनते ही जल उठते सारे मेरे तत्क्षण गात॥ इतना कहते ही आकुल हो हुई पुनः बेहाल। तन-मनमें सर्वत्र जल उठी कठिन ज्याला कराल ॥ जली लता-सी पड़ी, उठाकर रखी इयामने गोद । कमलींसे लगे केश सहलाने मधुर समोद् ॥ वचन-सुधा अति मधुर पिलाकर **छौ** टाया तन चेत। बोले हदय लगाक्र प्रियतम माधव प्रेमनिकेत ॥

'प्यारे स्यामसुन्दर ! इस प्रकार हमारा नित्य मिलन है, पर जब कभी तिनक-सी भी विछोहकी बात आ जाती है तो उसे सुनते ही उसी क्षण, मेरे सारे अङ्ग जल उठते हैं ।' इतना कहते ही व्याकुलता बढ़ गयी, फिर बुरा हाल हो गया। उनके तन और मनमें सर्वत्र (सर्वाङ्गोंमें) बड़ी विषम विकराल ज्वाला जल उठी। वे दाझी हुई बेलकी तरह (मूर्च्छित होकर) गिर पड़ीं। स्यामसुन्दरने तत्काल उन्हें उठाकर अपनी गोदमें ले लिया और अपने मधुर करकमलोंसे वे उनके मधुर केशकलापको प्रसन्नतासे सहलाने लगे। फिर अपनी वचन-सुधा-धाराका पान कराया, जिससे उसी समय उनके शरीरमें चेतना होर आयी। तब उनके प्रियतम प्रेमधाम श्रीमाधव उनको अपने हृदयसे लगाकर कहने लगे—

> 'प्रिये! मधुरतम है यह लीला-रस-वारिधिका रंग। विचित्र तुम्हारे, इसमें विविध लीलारसके ही खरूप दो-विप्रलंभ-संभोग नहीं वस्तुतः हुआ न होगा, हममें कभी वियोग ॥ अग्नि-दहनता, दुग्ध-धवलता, ज्यों रवि-रिम अभिन्त । त्यों में तुम, तुम मैं; न करो तुम प्रिये ! तनिक मन खिन्न ॥ मथुरा रहूँ, द्वारका, चाहे हो कोई-सा स्थान । हम दोनोंके बीच न होगा कभी रंच बने दो खेल रहे नित्य अनादि अनन्त । मधुर दिव्य रस-मत्त परस्पर निरतिशय रंत॥ नित्य

प्रिये राधिके ! यह जो कुछ (मथुरा जाना) आदि हो रहा है, सब तुम्हारे छीछा-रस-समुद्रके परम विचित्र रंग हैं । इस रससुधासागरमें विविध तर हों उठती रहती हैं। तुम्हारे इस छीछा-रसके ही दो स्वरूप हैं—वियोग और सम्भोग। वास्तवमें तो हमछोगोंमें न कभी वियोग हुआ है और न कभी होगा ही ! जैसे दूध और धवछता, अप और उसकी दाहकता, सूर्य और उसकी किरण तिय अभिन्न है, वैसे ही में तुम हूँ और तुम मैं हो (हम दोनों सदा एक ही हैं)। अतएव प्रियतमे ! तुम अप सनको तिनक भी उदास मत करों। मैं मथुरा रहूँ, द्वारण मनको तिनक भी उदास मत करों। मैं मथुरा रहूँ, द्वारण रहूँ, चाहे किसी भी जगह रहूँ। हम दोनोंके बीकों रहूँ, चाहे किसी भी जगह रहूँ। हम दोनोंके बीकों

भाग ३६

ना होट

को अपने

ादि हो

न रंग

हिं।

त और

आ है

अप्रि

नित्य

(配

अपने

ाका

विमें

कभी जरान्सा भी पर्दा या पृथक्ता रहेगी ही नहीं । हम महा एक रहते हुए ही, दो बने हुए खेल रहे हैं। हम और हमारा यह खेल अनादि अनन्त है। इसीसे हम रोनों दिव्य मधुर रसमें मत्त हुए नित्य-निरन्तर एक दूसरे-में अनुरक्त हैं।

राधा हुई प्रसन्न देखकर प्रियतस-वदन प्रसन्न। तत्सुख-सुखी सदा ही दोनों सहज अभिन्न विभिन्न ॥

(प्रियतम स्यामसुन्दरका मुखकमळ यह कहते-कहते खिल उठा ।) राधाने जत्र प्राणप्रियतमका मुख प्रसन्न देखा तो वे भी प्रसन्न हो गयीं। इस प्रकार वे दोनों सदा ही अभिन्न तथा सदा ही भिन्न रहते हुए एक दूसरेके सुखमें सुखी रहते हैं।

प्रम और चरम त्यागमय इस मधुरतम सत्-चित्-आनन्द-भगवत्खरूप प्रेमदेवकी जय हो !

(लेखक—व्र॰ पूच्यपाद श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनशुरामजी शर्मा क्रिक्ट्रिं स्रोहिंदि अनुवादक और प्रेषक-श्रीसरेश एम र नि

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरसे पर तथा उनसे मनोनाश कहा जाता है। अर्थात् व्युत्थान संस्कारोंका विलक्षण स्वभावयुक्त जो आत्मा है, उसका साक्षात्कार क्रानेके लिये साधकको चाहिये कि वह अपनी चित्तवृत्ति-को आत्माके वास्तविक स्वरूपमें संलग्न करता रहे। इसी क्रियाको 'आत्मखरूपानुसंघान' कहते हैं।

आत्मखरूपका यथार्थ अनुभव प्राप्त करनेके साथ ही अनुष्ठान करने योग्य तीन साधन वेदान्त शास्त्रमें बतलाये गये हैं—आत्मखरूपका अनुसंघान, मनोनाश और वासना-स्य। इन तीन साधनोंमें भी, सत्त्वापत्तिरूप ज्ञानकी चौथी भूमिकाका सम्पादन करनेकी इच्छावाले मुमुक्कुके लिये आतमस्त्रपका अनुसंघान ही मुख्य साधन है। आत्म-बिरूपानुसंधानके दृढ़ अभ्याससे आत्मखरूपका साक्षात्कार होनेपर मुमुक्षु कृतार्थ हो जाता है। आत्मखरूपानुसंधान-के अभ्यासके साथ-साथ मनोनारा और वासनाक्षयका अम्यास गौणरीतिसे करना आवश्यक है।

जिस प्रकार दीपकसे ज्वालाएँ निकला करती हैं, उसी मन श्रुभाशुभ वृत्तियोंकी परम्परामें परिणमित होता हिता है। मन इन शुभाशुभ वृत्तियोंकी प्रम्परामें परिणमित न होकर उनसे निरुद्धरूपमें परिणमित रहे, इसीको

अभिभव होनेपर निरोध-संस्कारोंका प्राद्रमीव होना और चित्तका निरुद्ध स्थितिमें रहना-यही मनोनाश है। रजोगुण या तमोगुणसे मनके स्थ्लभावकी निवृत्तिको मनोनाश अथवा मनोजय कहते हैं।

नित्यानित्य वस्तुके विवेकसे प्रादुर्भूत शमदमादिरूप शुद्ध वासनाके दृढ़ होनेपर, निमित्त प्राप्त होनेपर भी क्रोधादिकी उत्पत्तिका अभाव होना-वासनाक्षय अर्थात् अशुद्ध वासनाकी निवृत्ति है।

इन्द्रियादिके द्वारा प्रतीत होता हुआ यह नामरूपात्मक सर्वजगत् मृगजलकी भाँति असत्य है—सत्य नहीं है, और यह सब ब्रह्म ही है--ऐसे दृढ़ निश्चयको तत्त्वज्ञान कहते हैं । तत्त्वज्ञानके बिना मनोनारा नहीं होता और मनोनाश किये विना तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं होता । अद्वितीय ब्रह्माभिमुख मनोवृत्ति ज्ञानमें हेतुरूप है, इसलिये तत्त्वज्ञान अन्यवृत्तियोंके नाशका साधनरूप है।

वासनाक्षयमें मनोनाशकी और मनोनाशमें वासनाक्षय-की आवर्यकता है; इसी तरह तत्त्वज्ञानमें वासनाक्षयकी और वासनाक्षयमें तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

gi

त्रव

धीषूना

शिवार

一

म्लसा

西山

निवार

तत्त्वज्ञान-सम्पादन करनेके लिये तीन साधन हैं—— वेदान्त शास्त्रका श्रवण, मनन और निदिध्यासन । मनो-नाशके लिये मनोवृत्तियोंका निरोधरूप योग है और वासना-क्षयके लिये अशुद्ध वासनाओंके विरुद्ध शुद्ध वासनाओंको उत्पन्न करना—साधन है ।

वेदान्त शास्त्रका श्रवण और मनन किये बिना निर्दिष्यासन अर्थात् आत्मस्वरूपका अनुसंधान नहीं हो सकता । वेदान्तशास्त्रके श्रवण और मननसे, बुद्धिके जो प्रमाणगत—असम्भावना तथा प्रमेयगत असम्भावनारूपी दोष हैं, वे निवृत्त हो जाते हैं । किंतु आत्मसाक्षात्कारके अभावसे देहादिमें ममत्वकी बुद्धि तथा जगत्में सत्यपनकी बुद्धि निर्मूल नहीं होती । अतएव ऐसी मनोबुद्धिको निर्मूल करनेके लिये मुमुक्षुको दीर्घकाल, निरन्तर, आदरपूर्वक आत्मस्वरूपका अनुसंधान करना चाहिये । अनादरसे अभ्यास करनेपर अभ्यासका परिपाक नहीं होता । इसलिये साधकको आदरपूर्वक ही अभ्यास करना चाहिये ।

'मैं देहादि नहीं किंतु सिचदानन्द ब्रह्म हूँ और यह नामरूपात्मक जगत् भी सिचदानन्द ब्रह्म ही है'—ऐसा दृढ़ परोक्षज्ञान वेदान्तशास्त्रके मननसे सुसिद्ध होनेपर; आत्म-स्वरूपका अपरोक्षज्ञान सम्पादन करनेके लिये मुमुक्षुको प्रात:काल तथा सायंकाल श्रद्धा, सावधानी और उत्साह-पूर्वक आत्मस्वरूपानुसंधान करना चाहिये। शान्त दिव्य प्रकाशरूप ब्रह्मस्वरूपमें चित्तवृत्तिका लय होनेपर अभेद-भावका अनुभव करना आत्मस्वरूपानुसंधान है।

आत्मखरूपानुसंयान करनेवाले साधकको अपने चित्तमें अडिग श्रद्धा, अपूर्व उत्साह, दृढ़ता और पूर्ण सावधानी, रखनी चाहिये, ताकि आत्मखरूपानुसंधान अल्प समयमें परिपक होकर आत्मसाक्षात्कारका हेतुरूप बन सके।

आत्मखरूपानुसंधानको दृढ़ करनेके छिये आहारको. नियममें रखना, योग्य ब्रह्मचर्यका सावधानीके साथ पालन करना, नेत्रादि इन्द्रियोंको वशमें रखना, निष्प्रयोजन वाचन तथा निरर्थक बातोंके श्रवणका परित्याग करना अहि नियम उपयोगी हैं। अतः साधकको चाहिये कि वह इन नियमोंका सावधानीके साथ पालन करे।

जो मुमुक्षु शुद्ध बुद्धिसे मोक्ष प्राप्त करनेकी इला रखता है, उसे देहादिमें ममत्व-बुद्धिका त्याग करके आत्मामें ममत्व-बुद्धिकी सुदृदृ स्थापना करनी चाहिये; और देहसम्बन्धी प्राणिपदार्थोंमें ममत्व-बुद्धिका त्याग करके आत्मामें ही ममत्व-बुद्धि स्थापित करनी चाहिये। ऐसी स्थिति हो जानेपर 'व्यवहार किस तरह चलेगा' इस प्रकारकी शंका करना उचित नहीं है; क्योंकि नस्की तरह कृत्रिम आस्था रखकर बाह्य व्यवहारका यथायोग निर्वाह किया जा सकता है।

चैतन्य अथवा ब्रह्म दुःखसे अत्यन्त रहित और प्रमानन्दरूप है। साधकको सभी दृश्य पदार्थोमें आग्रहपूर्क चैतन्य ब्रह्मकी भावना करनी चाहिये। अपनी इन्द्रियोके तथा अन्तः करणके बाह्य वेगको हृदयाभिमुख करना मुमुक्ष के लिये आवश्यक है। जो मुमुक्ष अपने अन्तः करणकी वृत्तिको ज्ञानार्जनयुक्त कर लेता है, वह सर्वत्र ब्रह्मतलका अनुभव करता है।

परम तत्त्वका अनुसंधान करनेसे ही बुद्धि कृतार्थ होती है । सर्वव्यापक परमतत्त्वका अनुसंधान करके उसकी साक्षात्कार करनेपर मुमुक्षुकी बुद्धि कृतार्थ होती है; इसि लिये मुमुक्षुको नित्य उस परम तत्त्वका अनुसंधान करने प्रयत्नवान् रहना चाहिये।

भक्तिमार्गमें सगुण ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके विये जिस तरह सर्वत्र सगुण ब्रह्मका अनुसंघान करना आवश्यक है, उसी तरह निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार करनेके विये साधकको सर्वत्र निर्गुण ब्रह्मका अनुसंघान करना चाहिये। निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका परिपाक होनेपर वह उपासनी ज्ञानरूपमें परिणमित होती है; और ऐसी स्थिति होनेप साधकको जीव तथा जगत्के अधिष्ठानरूप ब्रह्मक

ा आदि वह इन

ाग ३६

ो इन्छा कारके ये; और करके । ऐसी

गाः इस नटकी यथायोग्यः

र परमा-प्रहपूर्वक. न्द्रियोंके मुमुक्ष

करणकी नतत्त्वका र्थ होती

उसका है; इस-कारनेमें

市的 विश्यक 市耐

गहिये। उपासना

होनेप ब्रह्मका

सहिता है। इस साक्षांत्कारके द्वारा प्रारच्यकी मगित होनेपर उस तत्त्वज्ञानी महापुरुषको विदेहकौवल्यकी प्राप्ति होती है।

जो मनुष्य ब्राह्मी स्थिति सम्पादन करके शाश्वत शान्ति ल करनेकी इच्छा रखता है, उसके छिये आत्मखरूपका इसंगन करना परम कर्तन्य है । आत्मखरूपका असंगान करनेसे मुमुक्षुको प्रत्यगमिन्न ब्रह्मका साक्षात्कार वाहै।

आतमखरूपका अनुसंधान करनेवाले मुमुक्षको

अप्रमादी होना चाहिये। विवेक-वैराग्य आदि साधनोंके नाम तथा उनके लक्षणोंको पुस्तकोंमें पढ़कर केवल कण्ठस्थ कर लेनेसे काम नहीं चलता । अपने अन्त:करणमें तथा इन्द्रियोंमें प्रत्येक साधनका परिपाक करनेके लिये सावधानी, धैर्य और दढ़ताके साथ प्रयत्न करना आवश्यक है।

जो मनुष्य कृतार्थ होनेकी इच्छा रखता है, उसे अकर्ता, अभोक्ता, असंग, विसु और सचिदानन्दरूप आत्माका प्रम प्रेम और असाधारण एकाम्रतासे अनुसंधान करना चाहिये।

वास्तविक साधुता

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी दार्मा)

गमीरतापूर्वक विचारते हुए अन्तर्दृष्टिसे देखने तथा अविशिलनसे यह निश्चय होता है कि विना सची साधुताके न्निकि ख-पर-कल्याण सम्भव नहीं । भारतवर्षमें क्कानेक द्वेत, अद्वेत, विशिष्टाद्वेत, शैव, शाक्त आदि ल्याय हैं । इनमें परस्परके रीति-रिवाजों—इष्टमन्त्रों, लयों तया पारिभाषिक शब्दोंमें बड़ा मतभेद है। लापे 'साधु' शब्द इन सभीमें समानरूपसे अभीष्ट ल आहत है। इतना ही नहीं, यह गृहस्थोंमें भी षहत है। गीता ४। १४ में आये 'परित्राणाय ष्मां के 'साधु' शब्दकी व्याख्यामें प्रायः सभी भवार्याने सन्मार्गस्य गृहस्य-विरक्त सबको 'साधु' मा है। गीतामें यह साधु शब्द चार तथा रामचरित-भूमंपचहत्तर बार आया है। अमरसिंह आदि कोशकारोंने म, सज्जन, कुलीन आदि कई शब्दोंको भी 'साधु' लिस एर्याय माना है । यदि इन्हें भी गिना जाय तो हिमादिमें इस शब्दकी संख्या बहुत बढ़ जायगी। भूषे यहाँ प्राय: 'साधु' शब्दपर ही विशेषरूपसे

साधु-महिमा

साधु-महिमाके सम्बन्धमें ये वचन ध्यान देने योग्य हैं---

साधवो हृद्यं महां साधूनां हृद्यं त्वहम्। मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागि ॥ (श्रीमद्भा० ९ । ४ । ६८)

परित्राणाय साधूनां "सम्भवामि युगे युगे। (गीता ४।८)

'साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कर हानी॥' 'साधु अवग्या कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥' 'साधु ते होइ न कारज हानी।'

'ते सज्जन मम प्रानिप्रय गुन मंदिर सुखपुंज।' 'अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृद्य बसै धन जैसे॥'

इतनेमें सब बातें आ जाती हैं। बल्कि एक पहली ही बात पर्याप्त है कि भगवान् साधुको छोड़कर और कुछ नहीं जानते । अब बाकी ही क्या रह गया । वस्तुतः

१. गीताका ठीक यही वचन पद्मपुराण उत्तरखण्ड १६९ । ७ तथा श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण १ । ३८ । ११ में भी आया है।

संत

T 3

इस दृष्टिसे एकमात्र साधुका ही भविष्य निर्भय है। अन्य व्यक्तियोंके कर्मफलका कुछ ठिकाना नहीं।

साधुका लक्षण

पद्मपुराणमें भक्तवर पुण्डरीक श्रीभगवान्से साधुकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं---

येषां वचिस ते नाम हृदि रूपं च सुन्दरम्। कर्णयोश्च गुणारोपस्त एव खलु साधवः॥ भवतो भवति स्वान्तं येषां शुश्रूषणे विभो। उत्तमाङ्गे च निर्माल्यं त एव खलु साधवः॥ येषां च वुद्धिः रात्रौ च मित्रे च कमलापते। चयापचययोश्चैव त एव खलु साधवः॥ येषां विकुरुते चेतो न विकारस्य कारणे। सित लक्ष्मीपते नूनं त एव खलु साधवः॥

(पद्म० उत्तर० २१९। २६-२९, मोर० तथा वे॰ प्रे॰ २१५ । २६-२९ आनन्दाश्रम॰)

अर्थात् जिनके जीभपर रामनाम, हृदयमें उनका सुन्दर रूप, कानोंमें कथा, मनमें सेवाभाव, सिरपर भगवत्प्रसाद हो, जिनकी बुद्धि लाभ-हानि एवं शत्रु-मित्रमें समान हो, जिनका मन कभी विकृत नहीं होता, वे ही साधु हैं।

इसी ग्रन्थमें अन्यत्र साधुका लक्षण इस प्रकार बतलाया है-

यथालब्धेऽपि संतुष्टः समचित्तो जितेन्द्रियः। हरिपादाश्रयो लोके विषः साधुरनिन्दकः॥ निवेंरः सद्यः शान्तो दम्भाहंकारवर्जितः। निरपेक्षो मुनिर्वीतरागः साधुरिहोच्यते ॥ लोभमोहमद्रकोधकाम।दिरहितः कृष्णाङविदारणः साधुः सहिष्णुः समद्र्शनः॥ समचित्तो मुनिः प्रीतो गोविन्दचरणाश्रयः। सर्वभूतद्यः कार्यो विवेकी साधुरुत्तमः॥

अर्थात् जो मिल जाय उतनेमें ही संतुष्ट रहनेवाला, समानचित्त, जितेन्द्रिय, अनिन्दक, निर्वेर, दयाञ्च, शान्त, निश्छल, निरपेक्ष, निरहंकार, वीतराग, मननशील, लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध आदि दुर्गुणोंसे रहित, सहिण्यु

विवेकी व्यक्ति साधु कहा जाता है। वाल्मीकीय रामान १।१।१५ में भगवान् रामको नारहजी हा कहते हैं-

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।

यहाँ सभी टीकाकारोंने 'साधु' शब्दका अं मृदु-मधुर स्वभाववाला किया है । अतः मृदु-मधुर समार का होना ही संक्षेपमें साधुता है। अग्निपुराणमें साधुना लक्षण इस प्रकार वतलाया गया है—

त्यक्तात्मसुखभोगेच्छाः सर्वसत्त्वसुस्त्रीषणः। भवन्ति परदुःखेन साधवो नित्यदुःखिताः॥ परदुःखातुरा नित्यं स्त्रसुखानि महाल्यि। नापेक्षन्ते महात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥ परार्थमुद्यताः सन्तः सन्तः कि कि न कुर्वते। ताहगप्यम्बुधेर्वारि जलदैस्तत्प्रपीयते॥ एक एव सतां मार्गो यदङ्गीकृतपालनम्। दहन्तमकरोत् क्रोडे पावकं यदपाम्पतिः॥ आत्मानं पीडयित्वापि साधुः सुखयते परम्। ह्लादयन्नाश्रितान् वृक्षो दुःखं च सहते स्यम्॥

अर्थात् साधुजन सत्र सुख-भोग छोड़का दूसीवे दुः खको ही दूर करनेमें लगे रहते हैं। दूसरेके दुःको दूर करनेके लिये अपना भारी-से-भारी सुख भी छोड़ देतेहैं। जैसे समुद्रका जल बादल ही पान करते हैं, वैसे 🕫 पुरुषका तन-मन-धन प्रोपकारमें ही जाता है । रहुकी भी वे शरणमें आनेपर पालन करते हैं। जैसे सा अपने हृदयमें बड़वानलको धारण करता है। जैसे 🎎 स्वयं धूप-गरमी सहता हुआ पथिकोंको आह्लादित ^{काता} है, उसी प्रकार साधुपुरुष खर्य अनेक कष्ट महन्त्र भी दूसरेके दुः खको दूर करनेमें ही प्रवृत्त रहता है। इन स्रोकोंमें साधुके लिये संत शब्द भी व्यवहत हुआ है । गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

भुर्जतरू सम संत कृपाला। परहित सह नित विपति विस्ताल । जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहि जग जस पावा ोय रामायण जी सायु

भाग ३३

दका आं इर समान

श्चणः।

में साधुका षिणः।

वताः॥ त्यपि। रताः॥ हुर्वते।

रुवत । वियते ॥ इनम् ।

पतिः॥ परम्। यम्॥

र दूसिने दु:खनो

ड़ देतेहैं।

राष्ट्र में साहर जेते हुए

त कार्ता.

ा है। इत हुआ

प्रवा ।

क्षेत्र हृत्य नवनीत समाना । कहा कियन्ह परि कहै न जाना ॥ क्षेत्र परिताप द्रवह नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥ क्षेत्र सहिं दुख परिहत लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥ व्यकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खराराया ॥ मर्तृहिरि भी यही कहते हैं—

क्षेसत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये।' (नीतिशतक ७५)

महाभारत भी वहता है—

परोपकारैकधियः स्वसुखाय गतस्पृहाः।

जगद्विताय जीवन्ते साधवस्त्वादशा सुवि॥

(श्येनकपोतीयम्)

गादजीसे भगवान् कहते हैं—

पट विकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख्यामा॥ अमित बोध अनीह मित्योगी। कवि कोबिद सत्यसार जोगी॥ मानद सद हीना। धीर धरमगति परम प्रजीना ॥ छमा मयत्री दाया। मुदिता सम पद प्रीति अमाया॥ रंभ मान मद करहिं न काऊ।

भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥ ^{गावहिं} सुनहिं सदा मम लीला।

हेतु रहित परहित रतसीला ॥ विषय अलंपट सील गुनाकर ।

पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥ कोमलचित दीनन्ह पर दाया ।

मन बच क्रम मम भगति अमाया॥ बिगत काम मम नाम प्रायन।

सांति बिरति बिनती मुदितायन॥ सरलता मयत्री।

हिजपद प्रीति धर्म जनयत्री॥ सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।

परुष बचन कबहूँ नहिं बोलिहं॥

महाभारतमें सावित्रीद्वारा कहे गये संतके लक्षण इस प्रकार हैं—

न चाफलं सत्पुरुषेण संगतं ततः सतां संनिवसेत् समागमे । (वन० २९७ । ३०)

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा। अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः॥ ''सन्तस्त्वेवाण्यमित्रेषु द्यां प्राप्तेषु कुर्वते। (वन० २९७।३६)

सतां सदा शाश्वतधर्मवृत्तिः सन्तो न सीद्दित न च व्यथन्ति। सतां सङ्किर्नाफलः संगमोऽस्ति सद्भ्यो भयं नानुवर्तन्ति सन्तः॥ (वन० २९७। ४७)

अर्थात् संतोंका समागम कभी निष्कल नहीं होता । साधुजन किसीसे द्रेष नहीं करते। (गीता १२।१४)के—

अद्घेष्टा सर्वभृतानां मैत्रः करुण एव च।
—आदि वचनोंमें भी यही कहा गया है।) वे सदा कृपा-दान करते हैं। यही उनका सहज धर्म है। संतोंसे कभी भय नहीं होता।

इसी प्रकार नारदपुराणके चौथे अध्यायमें सनत्कुमार-नारद-संवादमें साधुके गुण भी कहें हैं।

वस्तुतः ये सभी गुण वड़े दुर्छम हैं । पर इनका अध्ययन-अध्यापन आज संसारमें नहीं होता । जब कभी होता था, तब भी इनका संश्रय-संग्रह कठिन था । इसीछिये प्रह्लादने असुरोंको कहा था कि ये सभी महान् गुण तो ईश्वरको शरणागित तथा ईश्वरद्वारा कृपा करके प्रदान किये जानेसे ही सम्भव हैं—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यिक्तिचना सर्वेर्गुणैस्तत्र समासते सुराः। हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः॥ (श्रीमद्भागवत ५ । १८ । १२)

परमार्थ-पत्रावली

(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

(?)

सप्रेम हरिस्मरण । आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ ।

१. वेदान्त-सिद्धान्तानुसार ईश्वर और जीव एक ही हैं।

२. आत्मा मुक्त जीवका ही खरूप है। जबतक मायासे आवृत रहता है, वह जीव कहलाता है। मायाका बन्धन हटनेपर वही शुद्ध आत्मा रह जाता है।

जीव और ईश्वर कभी एक थे, बादमें पृथक् हुए
 ऐसी बात नहीं है, सदासे ही पृथक् हैं।

४. वेदान्त-सिद्धान्तानुसार ईश्वर और जीव जाति तथा खरूपसे भी एक हैं। भक्तिके सिद्धान्तसे जातिसे एक हैं, किंतु खरूपसे भिन्न-भिन्न हैं।

५. इस संसारमें पूर्ण सत्य परमात्मा ही हैं।

६. जिस प्रकार जीव अनादि है, उसी प्रकार कर्म भी अनादि हैं। यदि कर्म अनादि नहीं माने जायँ तो 'जीव' संज्ञा ही नहीं बनती।

७. जीव और ईश्वरके मिलनकी कोई अवधि निश्चित नहीं की जा सकती।

८. जीवमें कभी अज्ञान पैदा हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। अज्ञान सदासे है। जैसे किसी कन्दरामें ठाखों वर्षोंसे अँघेरा है, किंतु प्रकाश होते ही वह क्षणमें ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानरूप प्रकाशसे अज्ञानरूप अन्यकारका नाश हो जाता है। जिस क्षण प्रकाश होता है, उसी क्षण अन्यकार रह नहीं सकता। इसमें अवधिका कोई प्रक्रन ही नहीं है। अन्यकार यह नहीं कह सकता कि मेरा यहाँ इतने वर्षोंसे अधिकार है, इतना शीघ्र क्यों चला जाऊँ। वस प्रकाश होनेभरकी देर है कि अन्यकार समाप्त।

९. आत्मा-जीवात्मा दो नहीं हैं । जब प्राणी मायासे

आवृत है, तब वह जीवात्मा या जीव कहा जाता है। अवही मायासे मुक्त हो जाता है, तब आत्मरूप का जाता है। मायासे मुक्त जीव ही आत्मा है।

१० मुक्तिका आनन्द मोग्य नहीं होता। मुक्त आत्मा खयं आनन्द स्वरूप ही होता है। वह अन्त्र चेतन होता है, जड नहीं। उसका कोई भोक्ता होता। आनन्द अलग हो और आत्मा अलग हो, ऐसी बात हो हो वह अनिर्वचनीय कहा गया है। भक्तों की मुक्तिका अन्तर उनके भगवान्में केन्द्रीभूत रहता है। भक्त अपने प्रभु दर्शन, भाषण, स्पर्श आदिसे नित्य आनन्दित रहता है। यह आनन्द भी चेतन आनन्द है, जड नहीं है। दोने ही बातें ठीक हैं। इसका वास्तविक अनुभव तो खसंब है, जो साधनद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

HH.

的

गीता

प्रकार

सकत

ने म

रायक

हो, सं

निर्धे

मन्य,

पालनेम समय,

(?)

सादर राम राम। तुमने पूछा कि कभी संसारमें और कभी इधर-उधर मन चला जानसे नाम-जपमें भूल हो जाती है, इस भूलका सुधार कैसे हो। सो ठीक है। जहाँ कहीं भी मन जाय, वहाँसे उसे बार-बार हराका भगवान्के जप-ध्यानमें ही लगाना चाहिये। दुनियामें नाम-जपके वरावर दूसरा कोई भी साधन नहीं है—इस प्रकार समझना चाहिये। जहाँ आसित होती है। वहीं मन जाया करता है। तुम्हारी संसारमें, सांसांकि पदार्थों में आसित है, तभी मन संसारकी ओर जाता है। इसलिये संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गर और अनिय इसलिये संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गर और भगवानमें समझकर उसके प्रति वैराग्य करना चाहिये और भगवानमें आसित्त—प्रेम करना चाहिये। तब फिर मन अपने आसित्त—प्रेम करना चाहिये। तब फिर मन अपने आसित्त—प्रेम करना चाहिये। तब फिर मन अपने आया । इसलिये नाम-जपके लिये ऊपर लिखे अहुना जायगा। इसलिये नाम-जपके लिये ऊपर लिखे अहुना साधन करना चाहिये।

भजन खूत्र बनता रहे, भगत्रान्में अनन्य प्रेम हो _{अय}्रसका उपाय पूछा सो बहुत ठीक है । श्रद्धा-क्ष होनेसे अनन्य भजन वन सकता है । भगवान्में प्रेम क्षेका उपाय पूछा सो ठीक है। जो वस्तु अच्छी समझी वती है, साधारणतया उसीमें प्रेम हुआ करता है। मात्रात्के समान वास्तवमें कोई है ही नहीं--यह वत तत्वसे समझ लेनेपर भगवान्में अनन्य प्रेम हो कता है। भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, लीला, मार्की वार्ते ही लोगोंसे सुने, पुस्तकोंमें पढ़े और साझें लोगोंको सुनाये । इस प्रकार अभ्यास करनेसे म्रे इ सकता है। भगवान्में अनन्य प्रेम हो, इसके स्रो भगवान्से करुणभावपूर्वक स्तुति-प्रार्थना करे। ीता और रामायणका अर्थ और भावसहित पाठ करे। मा नहीं समझमें आये तो वार-वार अर्थ ही पढ़े। इस कार श्रद्धापूर्वक अभ्यास करनेसे भगवान्में प्रेम बढ़ स्तता है।

तुमने लिखा कि भगवान्के भजनके लिये एकान्तमें ते समय मिलता नहीं, गृहकार्य करते समय ही गृह-र्भिकी सृति न रहकर भगवान्का चिन्तन किस प्रकार है सो ठीक है। इसका उपाय पहलेके पत्रमें लिखा हैं ग कि गोपियोंकी तरह प्रत्येक कार्य करते समय ष्वान्को याद रखना चाहिये । हाथोंसे काम करे और को भगवान्का ही चिन्तन करे। भागवतके दशम क्षिके ४४ वें अध्यायके १५ वें श्लोकमें बतलाया है— दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-

पेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ । गयित चैनमनुरक्तियोऽश्रुकण्ड्यो

धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥ जो गौओंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते भिय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको किमें इलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते भिष्म जल छिड़कते समय, झाड़ू देने आदि कार्यों-

को करते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका गान किया करती हैं—इस प्रकार सदा श्रीकृष्णमें ही चित्त लगाये रखनेवाली वे त्रजवासिनी गोपियाँ धन्य हैं !

इस प्रकार गोपियोंकी भाँति घरका प्रत्येक कार्य करते हुए परम प्रेमास्पद, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सम्पूर्ण गुणोंके समुद्र भगवान्में मनको तन्मय करके सदा उनका चिन्तन करना चाहिये।

सप्रेम राम राम ! आपका पत्र मिला । समाचार लिखे सो जाने । आपने लिखा कि 'सम्भव है मेरा जीवन भ्रममय, दम्भाचरणयुक्त, नास्तिकतापूर्ण है' सो इस प्रकार नहीं लिखना चाहिये। जो नास्तिक होता है, वह अपनेको नास्तिक नहीं समझता । आपने लिखा कि शूद्र, पतित, डोम होनेके नाते भगवान् मुझसे कितनी दूरपर हैं, सो अवगत किया । आपको इस प्रकार नहीं समझना चाहिये; क्योंकि गीतामें तो भगवान्ने यहाँतक कह दिया है— मां हि पार्थ व्यपाश्चित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैद्यास्तथा शुद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

·हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्ध तथा पापयोनि— चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं।'

इसिंठिये उनके शरण हो रहना चाहिये । फिर उनसे थोड़ी भी दूरी नहीं है । गीता अ० ९ इलो• २९ में कहा गया है-

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मिय ते तेषु चाप्यहम्॥

भीं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मुझे अप्रिय है और न प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ता है। ज् न वन जाता

ोता । मुक हि आनन भोक्ता नही सी बात नहीं का आन्द

सपने प्रभवे रहता है। है । दोनें

नो स्वसंवेद 1

नारमें और ं भल हो डीक है। र हराका

दुनियामें 前竟一 होती है।

नांसाविक ता है।

अनित्य गवान्में

अपने रफ ही

अनुसार

ह

प्रध

अध

जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्यापक हुआ भी अग्नि साधनोंद्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है, वैसे ही सब जगह स्थित हुए भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके ही अन्त:करणमें प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट होते हैं।

फिर अपनेको दूर समझकर उससे बिच्चित तो रहना ही नहीं चाहिये।

आपने लिखा कि 'मुझ-जैसा पतित एकादशी, द्वादशी, अमावास्या, पूर्णिमा आदिके व्रतका अधिकारी हो सकता है क्या ! यदि हो सकता है तो विधि लिखिये।' सो ठीक है। उपवास तो कोई भी कर सकता है। विधि इस प्रकार समझना चाहिये। एकादशीका व्रत करनेके लिये दशमीके दिन सायंकाल भोजन नहीं करना चाहिये। फिर एकादशीको विल्कुल भोजन न करके द्वादशीको थोंड़ा भोजन करना चाहिये। यह तो सर्वोत्तम है। ऐसा न हो सके तो एकादशीके दिन फलाहार कर सकते हैं। वह भी दिनमें केवल एक बार। उस दिन अन्न तो खाना ही नहीं चाहिये तथा यम और नियमोंका भी पालन करना चाहिये।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरित्रहा यमाः। (योगदर्शन २।३०)

''अहिंसा (किसीकी हिंसा न करना), सत्य (यथार्थ भाषण), अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (सब प्रकारके मैथुनोंका त्याग) और अपरिप्रह (सब प्रकारके परिप्रहोंका अभाव)—ये पाँच 'यम' हैं।"

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (योगदर्शन २।३२)

'शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), संतोष, तप, खाध्याय (सत्-शास्त्रोंका अध्ययन) और ईश्वर-प्रणिधान (ईश्वरकी शरण)— ये पाँच 'नियम' हैं ।'

इस प्रकार इन पाँचों यमों और पाँचों नियमोंका भी पालन करना चाहिये।

आपने पूछा-- 'मैं डोम होनेके कारण पापरहित

किस प्रकार हो सकता हूँ ! तथा मेरा शीष्रसेशी उद्घार हो सके—ऐसा उपाय बताइयें सो बहुत के हैं । चाहे कितनी भी नीची जातिका, नीचे वर्णका दुराचारी—कैसा भी क्यों न हो, केवल भगवानके का होकर भजन करनेसे वह शीघ्र ही मुक्तिको प्रकृत्त जाता है । गीता अ० ९ श्लोक ३० और ३१३ स्पष्ट लिखा है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनयभाष। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥

'यदि कोई अतिराय दुराचारी भी अनन्यभावसे के भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही कले योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसे भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजते समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

स्थियं अवित धर्मात्मा राश्वच्छान्ति निगच्छित।
कौन्तेय प्रति जानीहि न में भक्तः प्रणस्पति।
'वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सा
रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है । हे अर्ज़।
तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'
जब इस प्रकार भगवान् खुले शब्दोंमें कहते हैं

तव उनके शरण हो जानेमें देर करनी ही क्यों चाहिं। आपने लिखा—'मेरा जीवन तो अति विकाय वासनासे युक्त है, मन कभी संयमसे नहीं हि सकता' सो ज्ञात किया। जीवनको विषयोंके क्रिं हिंगा चाहिये। संसार नाशवान्, क्षणमङ्गर, दुःख्य होना चाहिये। संसार नाशवान्, क्षणमङ्गर, दुःख्य और आदि-अन्तवाला है—यों समझकर विषयोंसे क्रिं करना चाहिये। इससे विषय-वासना दूर होका क्रिं समझता है।

आपने लिखा कि 'मैं किस प्रकार अपने ह्यूण पहुँच सक्ँगा, मैं सब प्रकारसे शुभ कर्म अपने बिल्कुल ही असमर्थ हूँ।' सो जाना। इस प्रकार आपने ollection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शीष्र से की वान के राज को प्राप्त हैं।

तन्यभाक्। हि सः॥ न्यभावसे के इंही माले अर्थात् उस्ते रके भजतरे

णस्यति॥ है और स्त्र हे हे होता। में चित्र ति नहीं ह

गच्छति।

दुः क्षित्र क्

前爾

ति कर्मे तर्म कर्मे तर्म आपने तिएश नहीं होना चाहिये। केवल भगवान्की शरणसे अप अपने लक्ष्यपर पहुँच सकते हैं।

और भी कोई बात आपको पूछनी हो तो निस्संकोच छ सकते हैं । आप प्रसन एवं स्वस्थ होंगे । हम सब प्रसन हैं ।

(8)

सप्रेम हरिस्मरण । आपका ता० ८—१०—५६ का गुजराती पत्र यथासमय मिल गया था । गुजराती पत्रोंके उत्तरकी यहाँ ठीक व्यवस्था न होनेके कारण उत्तरमें किल्म हुआ । भविष्यमें यदि आप हिंदीमें, चाहे वह काम-चलाऊ ही हो, पत्र लिख सकें तो सुविधा रह सकती है । गुजरातीकी अपेक्षा तो अंग्रेजीमें भी सुविधा है; क्योंकि अंग्रेजी जाननेवाले लोग प्राय: सभी जगह मिल जाते हैं ।

आपने मेरे लिये जो बड़ाईके शब्द लिखे सो आपके भवकी बात है। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरे रिये हुए उत्तरको पढ़कर, मनन करके आपको जो अम प्रतीत हुआ तथा आपने अन्य प्रश्न लिखे सो अपके प्रेमकी बात है।

प्रमुके साक्षात्कारके लिये आपने भक्तिमार्गकी अवश्यकता लिखी तथा पूछा कि किस आश्रममें हक्तर साधन करना चाहिये, सो ठीक है। भक्तिमार्ग स्वसे उत्तम है। भगवत्साक्षात्कारके लिये श्रद्धा-प्रेम श्रान है। जल्दी-से-जल्दी भगवान् के मिलनेका उपाय छा सो श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान् की अनन्यभक्तिका साधन करनेसे भगवत्कृपासे भगवान् अतिशीघ्र मिल सकते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५४-५५ का विस्तृत अर्थ गीताप्रेससे प्रकाशित गीताकी तत्त्व-विवेचनी नामकी टीकामें देख सकते हैं। आश्रम-परिवर्तनकी स किल्युगमें आवश्यकता नहीं है। समय बड़ा विकट है। आप जिस आश्रममें हैं, उसीमें रहते हुए साधन किस प्रतीत होता है। गृहस्थाश्रम छोड़कर

वानप्रस्थ तथा संन्यासके धर्मपालनमें तो बहुत ही कितनाई है। असली संन्यासीका मिलना अत्यन्त कितन हैं। गृहस्थ-धर्मके पालनमें कमी रह जाय तो भी इतनी आपित नहीं है। आश्रम बदलनेमात्रसे मनके संकल्प-विकल्प नहीं मिट जाते। उनके रूपान्तर होकर नये-नये संकल्प आते रहते हैं।

प्रभुकी प्राप्तिक लिये सहुरु वनकर मेरा मार्गदर्शन करें, लिखा सो मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ। प्रशंसाकी वातें लिखकर मुझे लिजत नहीं करना चाहिये। गुरु बननेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है। हाँ, आपका यह लिखना बहुत ठीक है कि प्रभु सबके अन्तःकरणमें विराजित हैं। मेरे द्वारा आपको प्रेरणा मिलती है, यह तो आपके विश्वासंकी वात है।

ब्रह्मचर्य-पालनके लिये आप जो चेष्टा कर रहे हैं, वह बहुत ठीक है। और भी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। आहार-विहारकी पवित्रताके लिये तथा श्वियोंसे वचनेके लिये जो प्रयत्न आप कर रहे हैं, वह बहुत ठीक है।

मनकी चञ्चलता मिटानेके लिये अभ्यास और वैराग्य साधन हैं। गीता अध्याय ६ श्लोक ३५-३६ की तत्त्व-विवेचनी टीकामें विस्तारसे ये साधन वतलाये गये हैं। उनमेंसे आपके लिये जो अनुकूल पड़े, उसे चुनकर तदनुसार साधन करना चाहिये। पातञ्चल-योगदर्शनमें भी प्रथम पादके १२ वें सूत्रमें यह बात कही गयी है कि अभ्यास और वैराग्यसे चित्तकी चञ्चलता दूर हो सकती है तथा मन वशमें भी हो सकता है।

कार्यकी सफलता ईश्वरकी कृपासे ही होती है। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। उनकी कृपा सभीपर है। इस बातका विश्वास करना चाहिये। विश्वास ही प्रधान बात है।

आपको जिस परिस्थितिमें स्त्रप्त-दोष हुआ, इसे मैं विशेष दोष नहीं मानता । ईश्वरकी कृपासे आप बच गये ।

ge.

सव

समुद्

'सतो

गुनो

116

गंगनाः

भी आं

क भ

7

हाँ क

राको

शेर ज़ंग

司用

明章 ष्ये थ्

भगवान्के शरण होकर स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे मनुष्य दोषोंसे बच सकता है।

गुरु बननेके लिये लिखा सो परमगुरु परमात्मा हैं। मेरा गुरु बननेका अधिकार नहीं है। मेरी सामर्थ्य भी नहीं है । परमात्माको ही परम गुरु मानकर साधन करना चाहिये । यही मेरी सम्मति है । उनकी कृपासे सब काम हो सकता है । मुझसे जो प्रश्न आप पूछना चाहें, पत्रद्वारा अथवा मौका मिले तो मिलकर पूछ सकते हैं। अपनी सम्मति दी जा सकती है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है-

- (१) वासना सर्वथा निर्मूल तो भगवान्की प्राप्ति हो जानेपर होती है। भगवान्की प्राप्ति श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्के शरण होनेपर उनकी दयासे होती है।
- (२) मनकी अखण्ड शान्ति और सर्वथा शुद्धि भी भगवान्की प्राप्ति होनेपर होती है।
- (३) भगवान्में अनन्य प्रेम हो जानेपर उनका विस्मरण नहीं होता ।
- (४) ब्रह्मचर्य-पालनके विना कोई कार्य सिद्ध नहीं होता—यह आपका लिखना युक्तिसे तो ठीक ही है; पर भगवान्की विशेष दयासे असम्भव भी सम्भव हो सकता है।
- (५) भगवत्साक्षात्कार श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्की शरणागतिसे होता है।
- (६) गृहस्थाश्रममें न पड़कर ब्रह्मचर्यके पालनके विषयमें पूछा सो आपकी बात ठीक है। आपकी वय कितनी है ? यदि आपको कामविकार न होता हो, आप वैराग्यपूर्वक भगवद्भिक्तके आश्रयसे शुद्ध रह सकते हों तो विवाहकी आवश्यकता नहीं है । यदि मन शुद्ध न रह सकता हो और स्रीकी तरफ जाता हो तो विवाह कर लेना ठीक है। विवाह करनेके लिये माता-पिताकी सेवा, संतानकी प्राप्ति आदि कारण तो गौण हैं।

भीष्मपितामहकी तरह गृहस्थमें रहकर अविवाहित

जीवन बिताते हुए आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन सर्वेति है । गृहस्थाश्रममें ऋतुकालके समय महीनेमें एक ग्रा स्त्री-प्रसङ्ग करनेवाला गृहस्थ भी ब्रह्मचारीके तुत्र है। ऋषिलोग विवाह करके भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वनमें जीवन बिताया करते थे और वैराग्यपूर्वक रहका गृहस्थधमिके अनुसार केवल ऋतुकालमें महीनेमें एक का स्त्री-प्रसङ्ग करते हुए धर्मपालन किया करते थे।

- (७) सत्रमें भगत्रद्भाव करके दूसरोंकी निषाम भावसे सेवा करते हुए उनके हितमें रत रहना—गृह ऊँचे दर्जेका प्रमार्थ है।
- (८) मन ध्यानके समय इधर-उधर चला जाता है लिखा सो उसे वार-बार खींचकर, ला-लाकर भगवान्में लाव चाहिये। गीता अध्याय ६, श्लोक २६ का अर्थ गीता तत्त्व-विवेचनी टीकामें देखकर तदनुसार श्रद्धा-भक्तिर्षक नामका जप तथा ध्यान करनेका अभ्यास करना चाहिं। संसार और शरीरसे वैराग्य करना चाहिये।
- (९) संसारमें भगवान् और भगवान्के भजारे बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है—ऐसा दढ़ विश्वास है जानेपर निरन्तर भजन-ध्यान बना रह सकता है।
- (१०) नियमपालनमें भूल हो जानेपर अपनेपर शासन करनेके लिये उस दिन एक समयका उपनार करना चाहिये अर्थात् उस दिन दिनभरमें केवल एक बा भोजन करना चाहिये।
- (११) भगवान्में श्रद्धा और प्रेमकी प्राप्तिके विव भगत्रान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव तथा तत्वरहस्यके समझकर साधन करना चाहिये।
- (१२) यदि चित्तमें वैराग्य हो, मनइन्द्रियोप नियन्त्रण हो तो विवाह विना किये भी परमात्माकी प्रापि हो सकती है । विवाह कोई परमात्माकी प्राप्तिमें सहायक वस्तु नहीं है। वैराग्यपूर्वक गृहस्थाश्रममें भी हिनी भगवान्की प्राप्तिं की जा सकती है।

उत्तराखण्डकी यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव)

[गताङ्कसे आगे]

तत्वादेवी और बद्रीनाथ दोनों श्रेणियोंसे अनेक निद्याँ
तिक्ली हैं—जिनमें भागीरथी, यमुना, अलकनन्दा और
महाकिनी प्रमुख हैं। इन निदयोंके अनेक स्थलोंपर संगम
पुर हैं। संगमके ये स्थल प्रयाग कहे जाते हैं। देवप्रयागमें
स निद्यांको अपनेमें समाविष्टकर भागीरथी गङ्गानाम धारण
प्रआगे बढ़ती है। देवप्रयागके आगे प्रयागराजतक फिर
भी संगम नहीं मिलता। फिर प्रयागराजमें यमुनाको भी
भानमें विलीन कर लेती है और आगे गङ्गासागरमें स्वयं
सहुमें समाहित हो जाती है।

[भाग ३३

न सर्वोत्तम

एक जा

तुल्य है।

कारते हुए

क (हका

नं एक वार

ती निष्नाम

ह्ना—यह

जिता है

नमें लगात

अर्थ गीताः

भक्तिपूर्वक

चाहिये।

के भजनसे

वेश्वास हो

अपनेपर

उपवास

एक बा

前向

हस्यको

न्द्रयोप

ते प्राप्ति

सहायक

16年

इन श्रेणियोंमें अनेक झीलें भी हैं, जिनमें दो प्रमुख हैं— क केदारनाथसे लगभग ढाई मील आगे चोरावाड़ी, जिसका क्षेजीके भस्म-विसर्जनके बाद अब 'गाँधी-सरोवर' नाम ग्रेग्या है और दूसरी बदरीनाथसे सोलह मील पश्चिममें स्रोपंध'।

गंधकने यहाँ अनेक तसकुण्डोंका निर्माण किया है।

को यमुनोत्तरीके तसकुण्डोंके दर्शन किये, एकमें स्नान भी।

क्योत्तरीके एक तसकुण्डका तापमान लगभग दो सौ डिग्री

शिक्षमें चावल और आलू उवल जाते हैं। गङ्गोत्तरीमार्गमें

क्यानीमें, केदारनाथ रास्तेमें गौरीकुण्डमें तथा बदरीनाथमें

श्री अनेक तसकुण्ड हैं। इस क्षेत्रमें अनेक खनिज पदार्थ भी

किनमें लोहा, ताँबा, सीसा, अभ्रक, गंधक, कोयला,

क्या आदि प्रमुख हैं।

नीचेकी भूमिमें ग्रमी है, ऊँचे स्थलोंमें ठंडक । जितना कैंग सल होता जाता है, उतनी ही ठंड बढ़ती जाती है। अ भारी है, पाचन दूषित हो जाता है।

शृतुएँ तीन हैं—ग्रीष्म, वर्षा और शीत । ग्रीष्मको क्षेष्ठीयाखडसो कहते हैं । वर्षाको बस्काल और शीत शिको ह्यूंद । वंबईमें वर्षाकाल आरम्भ होनेके पश्चात् क्षेष्ण एक पक्षमें पानी आ जाता है।

जंगल असीम है। इसीलिये गढ़वाल जिलेके सरकारी

श कंगलिवभाग (Forest Division) किये गये हैं।

श जिलेकी सरकारकी प्रधान आय जंगलसे ही है। टेहरी

श्रिके विलयनके पूर्व उसकी वार्षिक आय केवल आठ लाख

भी भी, जो आगे चलकर सन १९४९में रियासर्तोंके

विलयनके समय लगभग पैतालीस लाख हुई और अब एक करोड़ वार्षिक है।

वनस्थली जगत्में वृक्षों, लताओं, फूलों और फलोंमें जिनकी प्रधानता है, उनका यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ प्रकरणोंमें प्रसंगानुसार उल्लेख किया जा चुका है।

जहाँतक जंगम जगत्का सम्बन्ध है, वन-पशुओंमें यहाँ शेर, चीता, रीछ, सूअर, लाल और काले मुँह्के बंदर और कई तरहके मृग एवं कई प्रकारकी विल्लियाँ रहती हैं। आठ हजार फुटसे ऊपर कस्तूरीमृग पाया जाता है, जिसकी नाभिसे कस्त्री निकलती है। गन्ध-मार्जार नामक एक जातिकी विल्लीकी नाभिसे भी कस्तूरी निकलती है। दस हजार फुटके लगभग ऊँचाईपर सुरागाय पायी जाती है, जो स्वेत और श्याम दोनों रंगकी होती है-कोई-कोई कवरी भी। इन सुरा-गायोंकी पूँछके चँवर वनते हैं। गङ्गोत्तरीके मार्गमें हमें स्याम सुरागाय मिली। पक्षियोंमें काग, गिद्ध, मोर, कबूतर, तोता, मैना, चकोर, बाज, कठफोड़ा, बुलबुल और कोयल प्रमुख हैं। इन पक्षियोंके वहाँ भिन्न-भिन्न नाम हैं। बुलबुलको मोनाल और कोयलको कोकला और पोकरा कहते हैं। गोरैया भी प्रचुर परिमाणमें पायी जाती है। इस ओर विरोषकर केदारनाथ और वदरीनाथ-मार्गमें हमें अनेक रंगकी चितकवरी वड़ी ही आकर्षक अत्यन्त मुन्दर तितलियाँ मिलीं, जैसी हमने पहले कभी नहीं देखी थीं—किसी अजायवघरमें भी नहीं । इन्हें देख संग्रह करनेकी इच्छा होती है।

जल-जीवोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी मछलियाँ सभी जगह देखनेमें आती हैं।

विषेठे जन्तुओंमें सर्प, बड़े-बड़े काले बिच्छू और गिरगिटान पाये जाते हैं। गङ्गोत्तरीके मार्ग और गङ्गोत्तरीके तटपर तो पग-पगपर बड़े-बड़े गिरगिटान दिखायी देते हैं।

गृह-पशुओंमें गाय, बैल, भेड़, बकरी और कुत्ते प्रमुख हैं। कुछ स्थानोंपर भैंसें भी देखीं, पर बहुत कम । इस ओरकी गायें प्रायः काले रंगकी छोटे कदकी होती हैं। प्रधानतया इस पहाड़ी क्षेत्रके निवासियोंके पालतू पशु भेड़-बकरी ही हैं। इन पहाड़ियोंके अधिकांश पथ पगडंडियोंकी तरह अत्यन्त संकीर्ण—ऊबड़-खाबड़ दुर्गम होते हैं, फिर ये पहाड़ोंकी

TEC

वरी

और

酮

हनार

बेतां म

बोकर

बेड्डा

भागमें

भागक

गेहूँवार

बद्में !

है।चा

नेचले

सानक

निश्चय

वित्राके

ऊँचाईपर किनारे-किनारे ऐसे बनाये गये हैं जो नीचेके खण्डों या नदियोंकी घाटियोंसे हजारों फुट ऊपर पहाड़ोंपर लटके-से जान पड़ते हैं। जरा-सा भी पैर फिसलनेसे नीचे जीवन-नाशकी सम्भावना हर क्षण बनी रहती है। इन रास्तों में बड़े पशु नहीं चल सकते; क्योंकि ये अत्यन्त संकीर्ण और दुर्गम हैं। किंतु भेड़-वकरे आदि पशु जिन्हें पहाड़ोंपर चढनेका अभ्यास है, आसानीसे इन दुर्गम मगोंको पार कर लेते हैं। इसीलिये उत्तराखण्डके इस दुर्गम मार्गमें सामान ढोनेके लिये वाहनके रूपमें लोग भेड़-वकरोंका ही सहारा लेते हैं । लोग ऊनकी थैलियाँ वनाकर, इन थैलियोंमें सामान भरकर उन्हें मेड़ या बकरेकी पीठपर कस देते हैं। पहाडोंपर सामान ढोनेवाले वंजारे सैकड़ों भेड़-बकरोंके काफिले ले-लेकर सामानकी दुलाईका व्यवसाय करते हैं और इस तरह हिमालयके इस वीहड़ और दुर्गम पार्वत्य प्रदेशमें आसानीसे ये लोगोंकी रोजमर्राकी चीजें दूर-दूरसे उन्हें लाकर देते 'हैं तथा देशके नागरिक जीवनसे यहाँके निवासियोंका सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इस यात्रामें हमें भेड़-वकरोंके अगणित काफिले मिले, जिनके कारण अनेक बार हमारा यात्रा-मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता था। कुत्ते बड़े-बड़े वालवाले, कदमें काफी बड़े और तगड़े होते हैं। इन्हें शिकारी कुत्ते कहा जा सकता है। एक बात इन कुत्तोंमें नयी दिखायी दी । मैदानोंके कुत्ते अपनी पूँछको जपर उठाकर टेढ़ी रखते हैं, इसीलिये यह कहावत प्रचिलत हो गयी है कि 'कुत्तेकी पूँछ बारह वर्ष पोंगलीमें रखे, पर जब निकालो टेढ़ी-की-टेढ़ी?। यहाँके कुत्ते अपनी पुँछको प्रायः नीचेकी ओर सीधी रखते हैं। यह पूँछ टेढ़ी नहीं होती, यहाँ सामानसे लदे भेड़-वकरोंके काफिलोंके साथ आगे-पीछे दो-दो तीन-तीन कुत्ते प्रायः हर समय रहते हैं, जिन्हें इन काफिलोंके सचेतक कहा जा सकता है।

मानवोंमें यहाँके निवासी मंगोल हैं, जो प्रधानतथा दो जातियोंमें वॅटे हुए हैं—एक वीठ और दूसरे डोम । वीठ जातिमें ब्राह्मण और क्षत्रिय प्रमुख हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें अनेक उपजातियाँ हैं और डोम भी अनेक उपजातियोंमें बँटे हैं। इन्हींमें हरिजन भी हैं।

यहाँके निवासियोंकी भाषा गढ़वाली कही जाती है, जो प्राचीन खसभाषासे निकली है।

अधिकांश लोगोंका धर्म हिंदू-धर्म है। इनमें वैष्णव, शैव और शाक्त—तीनों ही पंथोंको माननेवाले हैं। कुछ जोशी पंथके भी हैं, जो शायद गोरखनाथका पंथ था। मुसल्मान, ईसाई, सिख, जैन गिनतीके ही हैं। यहाँके निवासियोंका रंग गेहुआँ और गोरा है। संबंध और काले व्यक्ति किचत् ही देखनेको मिलते हैं। पुरुष सिरपर छोटा दुपट्टा या टोपी, सिरके नीचे शरीरके असे भागपर पाजामा पहनते हैं। स्त्रियाँ भी शरीरपर अधिकतर कोट और पाजामा ही पहनती हैं। स्त्रियाँ भी शरीरपर अधिकतर कोट और पाजामा ही पहनती हैं। स्त्रियोंके आभूषणोंमें नाककी नथ सबसे अधिक धान आकर्षित करती है, यह दुड्डीसे भी नीचेतक लंबी होती है। कानोंमें वालियोंको भरमार रहती है। नथ प्रायः सोनेकी और वालियाँ प्रायः चाँदीकी होती हैं। गलेमें पचास-पचास तोले तककी चाँदीकी हँसली और रुपयेवाली एक कंठी रहती है। हाथमें चालीस-चालीस तोलेतकके कड़े और पैरोंमें लामा इसी वजनके पायजेय रहते हैं। परंतु पैरके पायजेय बहुत कम स्त्रियाँ पहनती हैं। प्रायः नंगे पैर ही रहती हैं।

यहाँके अधिकांश लोग शाकाहारी हैं, मांसाहारी नहुत कम । खानेमें छूआछूत काफी है ।

रीति-रिवाज विभिन्न जातियों और वगों में यद्यि पृथक् पृथक् हैं, किंतु हैं वही एक शताब्दी पीछेके। खत-राज्यूतें और खत-वाझणों में यद्यपि विवाह-संस्था है, पर वही आसी पद्धतिवाली। पर्याप्त रुपया कन्याशुल्कके रूपमें देकर विवाह होते हैं और इन विवाहों में पाणिप्रहण-संकल्प आदिकी पद्धित काममें नहीं लायी जाती। इसके साथ ही अन्य अनेक वर्तें जो आजके जमाने में अनैतिक और अनाचारका रूप ले उन्ने हैं, यहाँ के लोगों में विद्यमान हैं। जैसे वड़े माईकी विध्वाक पत्नी वना उससे संतित उत्पन्न करनेका रिवाज आज मी प्रकटरूपमें इस ओर प्रचलित है। दूसरी ओर ब्राह्मण और क्षत्रियों में मेदानों की तरह स्त्रीका पुनर्विवाह वर्जित है। इति साथ सवर्ण विवाहका रिवाज भी प्रायः इनमें नहीं है। ब्राह्मण और राजपूत कन्या-शुल्क देकर किसी खस-ब्राह्मण तथा खि और राजपूत कन्या-शुल्क देकर किसी खस-ब्राह्मण तथा खि राजपूतकी बेटी चरमें डाल लेते हैं और फिर उसके साथ मोजन-सम्बन्ध भी नहीं रखते।

सुना गया कि पिछली शताब्दीमें यहाँकी खिसवा और डोम जातियोंमें राक्षस-विवाह-पद्धित प्रचलित थी। किसी भी स्थानी लड़कीका अपहरणकर उससे विवाह कर लिया जाता था और लड़कीके पिताको कन्या-शुल्क देकर उसका व्यक्ति अधिकार भी प्राप्त कर लिया जाता था। अंग्रेजी शासनकार इस कुप्रथापर कुछ रोक लगी, किंतु अभी भी यदा कदा यह पुराती इस कुप्रथापर कुछ रोक लगी, किंतु अभी भी यदा कदा यह पुराती पद्धित काममें लायी जाती है। उसके सिवा इस क्षेत्रके कुछ

-। सांबल । पुरुष के उसरी

ग ३६

नते हैं। पहनती वाँधते क धान

ती है। की और स तोले-

(हती है। ं ल्यामा हित कम

ारी वहत

पि पृथक्-ा-राजपूर्ता आमुरी-र विवाह

ने पद्धति क वातें। ले की

विधवाको भाज भी मण और

। इसीके । ब्राह्मण

॥ खस-市叫

ाया और हसी भी या जाता त्यायिक

नकलिम [पुरानी

क कुछ

हिसाँमें बहु-पति-प्रथा भी प्रचलित है, जिसके अनुसार अनेक भह्योंकी एक पत्नी होती है।

इस क्षेत्रके निवासियोंकी आजीविकाके अनेक साधन हुए देशके अन्य भागोंकी तरह यहाँके लोगोंका प्रायः क्षा केवल खेती-किसानी ही है, जो प्रधानतया यहाँके विवासियोंके ही उद्यमका ही परिणाम है। शासनद्वारा अभी-क औद्योगिक क्षेत्रमें कोई ऐसा कदम नहीं उठाया गया है, क्षिसे इस क्षेत्रकी जनताका जीवन-स्तर कुछ ऊँचा उठे और _{झ विप्ल सम्पदाप्रित प्रदेशसे देशको भी कुछ हासिल हो सके।}

आमतौरपर यहाँ फसलें प्रायः दो होती हैं—रवी और बीत । स्वीमें जौ, गेहूँ और सरसों तथा खरीफमें धान और मँडुवा (रागी) की उपज होती है। जैसा कि ऊपर 🕫 गया है, पहाड़ोंकी तलहटीमें तथा चार-चार, पाँच-पाँच बार फरकी ऊँचाईतक उपत्यकाओंके निचले भागोंके मीरीतुमा बने खेतोंमें ही इस ओर सारी खेती होती है। इन क्षोमं पानी पहुँचानेके लिये पहाड्रोंसे वहते झरनोंको बाँधकर क्तीम बहाया जाता है। मैदानोंकी तरह यहाँ भी खेतोंको पानीसे भ उन्हें मचाकर धान रोपा जाता है। धान अप्रैलमें बोया-गा जाकर सितम्बरमें काटा जाता है। फिर उसी खेतमें गेहूँ कार अप्रैलमें काट लिया जाता है। मुँडुआ भी अप्रैलमें किर अक्टूबरमें काटा जाता है। पहाड़ में मँडुवा (रागी) को हैं। कहते हैं, जो नीचेका कोदो नहीं है। अनेक खेतोंके आधे भामें चावल बोये जाते हैं और आधेमें मॅडुवा। चावलवाले माको सठयारा (साठी चावल) कहते हैं और मॅडुवावाले ^{माको} कोदारा। जाड़ोंमें कोदारा खेत खाळी छोड़ दिया ^{जा है, पर} सठियारा नहीं; उसमें गेहूँ वोया जाता है। इस विवाह भागका नाम वादमें ग्यूंवारा हो जाता है। यही खेत ^{बिर्म} मँडुवा बोया जानेपर कोदारा बन जाता है। पिछले वर्ष भीनका जो भाग कोदारा था, वह इस वर्ष सठियारा बन जाता विचावलकी फसलकी कटाई सबसे पहले ऊपरी भागोंमें होती है। ि नीचेकी ओर, उसके विपरीत रवीकी फसल पहले भगसे ग्रुक होकर ऊपरकी ओर तैयार होती है। क्षान्त्री ऊँचाई-नीचाईके अनुसार ही खेतीकी पैदावारका और जिन्स-विभाजन होता है। अधिक ऊँचे स्थानोंमें कि एक ही फसल होती है। जहाँ मई-जूनतक वर्फ पियलती कि प्रसलें काटना सम्भव नहीं होता । हमने अपनी कि वीरान मईके आखीरमें जहाँ इन खेतोंमें धानके हल्के-कि हो पौधोंकी सघन हरियाली देखी, वहीं दूसरी ओर अनेक

खेतोंमें खड़ी गेहूँकी फसल भी। इस तरह आवहवा और स्थानकी ऊँचाई-नीचाईके कारण इन खेतोंमें धान्योंका आगे-पीछे बोना-काटना भी चलता रहता है। इस ओर हमने देहरादूनके प्रसिद्ध वासमती चावलकी भरपूर खेती देखी, यह खेती यद्यपि वैयक्तिक स्तरपर ही थी। छोटे-छोटे अगणित खेतोंमें अगणित गिरिवासियोंके प्रयत्न और उनकी प्राप्त्याशा धानके इन नन्हें पौधोंकी कोमल कोपरोंमें प्रतिविभिवत हो रही थी। क्या ही अच्छा हो, सरकार इस ओर सहकारी खेतीको प्रोत्साहन दे और इस सामृहिक खेतीकी दिशामें यहाँके निवासियोंको अनुप्रेरित करनेके लिये उन्हें उपयुक्त भूमि, जल, वीज, खाद और खेतीके अन्य साधनोंसे सम्पन्न वनाये।

तरकारियोंमें इस ओर हमें केवल आलुकी पैदावार ही अधिक दीखी । अन्य तरकारियाँ प्रायः नहीं उपजायी जातीं । इसका प्रधान कारण यहाँके लोगोंके जीवन-स्तरका निम्न होना है। कुछ भागोंमें, जहाँसे मैदानी बाजार नजदीक हैं-प्याज, लहसन, बैगन, भिंडी, तरई, लौकी आदि तरकारियाँ होती हैं, जो केवल इन वाजारोंमें खपतकी दृष्टिसे ही उपजायी जाती हैं। यदि साग-भाजीकी माँग बढ़े और मैदानी बाजारोंके लिये निर्यातकी कोई व्यवस्था हो सके तो, इसमें संदेह नहीं, हिमालयके इस क्षेत्रमें प्रायः सभी प्रकारकी तरकारियाँ तैयार की जा सकती हैं।

क्रविके बाद यहाँके लोगोंकी आजीविका प्रधानतया यात्रियोंकी इंडी, कंडी चलाने और उनका सामान आदि ढोनेसे चलती है। डंडी-कंडीपर बैठकर अपने शरीरको अन्य मानवोंसे दुलवाना विशेषकर इस युगमें कहाँतक उचित है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। हाँ, किसी हदतक ऐसे लोग जो अपनी शारीरिक अवस्थामें असमर्थ हैं, कंडी-डंडीपर चढ़ें तो अक्षम्य नहीं; किंतु देखा यह गया है कि दारीर-श्रमसे जी चुरानेकी प्रवृत्तिके कारण प्रायः सभी साधनसम्पन्न व्यक्ति खचरों और घोड़ोंकी बनिस्वत आदमीके ऊपर लदकर अपनी धार्मिक यात्राएँ करते हैं; परंतु जबतक इन कंडी-डंडीवालोंकी आजीविकाका कोई दूसरा जरिया नहीं निकलता, आदमीपर आदमीके लदनेकी इस कुप्रथाको भी बंद करवा देनेका परामर्श देते हुए भी हिचिकचाहट होती है । कड़ा परिश्रमी और उद्यमी जीवन तो पुरुषके पौरुषका प्रतीक है । पर जव वह आदमीकी असहाय अवस्थामें होता है, कर्ता उसे बेबस मनसे आपद्धर्मके रूपमें करता है, तत्र ऐसा प्रशंसित श्रम भी दो रूपोंमें विभक्त हो जाता है-एक प्रशंसाके, दूसरा निन्दाके।

मेराम

अविङ

जहाँ एक ओर अमकर्त्ताकी असहाय और विवश स्थितिके प्रति दर्शकके मनमें दया और करणाकी उत्पत्ति होती है, वहीं दूसरी ओर अस लेनेवाले व्यक्ति या समाजके प्रति भी उसके मनमें एक खाभाविक रोष और ग्लानि । हमलोगोंने इस यात्रामें अमकी महत्ता नहीं, वरं उसकी मर्यादाका अतिक्रमण भी देखा।

श्रम करते इन मजदूरोंको देख हमें गो॰ तुलसीदासजीका-आरत काह न करइ कुकरमू। माँगौं भीख त्यागि निज घरमू॥ -कथन अनेक बार याद आया। पहाड़ोंके वहादुर कंडी-डंडीवाले तथा सामान ढोनेवाले भारवाहक सिंहकी-सी अपनी छाती ताने शरीरसे बड़ा निर्मम परिश्रम लेते हैं । जेठ-वैशालकी चिलचिलाती धूपमें अपनी पीठपर डेढ़-डेढ़, दो-दो मनका असवाव लादे--वह भी एक सजीव देहधारी मानवका-सीधे पहाड़ोंकी चोटियोंपर चढ़ते हैं । स्वयंको तथा अपने भारको शान्ति-सुख पहुँ चाना, अपने जीवनको जोखिममें डाल ऊपर छदे अपने सामान, स्वामीकी सुरक्षाका बीड़ा उठाना आदि अनेक बातें जो इन भारवाहकोंको करनी पड़ती हैं, केवल इसलिये कि यात्राकालमें इन्हें अपने इस उद्योगसे इतना हासिल हो जाता है कि ये यात्रियोंको यात्रा करा जय घर लौटें, तब अपने बाल-वचोंके मुँहमें कुछ चून डाल सकें। हमने इन भारवाहकोंकी वेष-भूषा, उनकी रहन-सहन और उनका खाना-पीना भी अत्यन्त निकटसे देखा है। यनजारोंकी तरह एक पड़ावसे दूसरे पड़ाव पहुँचनेकी जल्दीमें या कहना चाहिये कि निष्ठुर कर्तव्यकी कड़ीको पूरा करनेके लिये ही मानो इनका जीवन हो, न नहानेपर ध्यान, न खाने-पीनेकी रुचि। और जब इन दो बातोंका ही ध्यान नहीं, तब ठीक कपड़े पहनने और साफ-सफाईसे रहनेकी वात तो कोसों दूर रहती । वास्तवमें ये उस आदर्शके प्रतीक थे, जिसमें कहा गया है--भोजन जीवनके लिये है, जीवन भोजनके लिये नहीं ।' ये इसीलिये खाते जिसमें इनका जीवन चलता रहे; इसी तरह अन्य बातोंके सम्बन्धमें इनका आम मितव्ययी दृष्टिकीण रहता । रहीम खानखानाने एक जगह पेटकी इस पीड़ाको बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त किया है, वे कहते हैं-

रिहमन पेटे सों कहत क्यों न भए तुम पीठ।
भूखे मान बिगारहू भरे विगारह डीठ॥
वास्तवमें उदरपूर्तिके इस दुर्लक्ष्यपर पहुँचनेके लिये
जीवनकी मंजिलमें आदमीको कैसी-कैसी ऊँची-नीची वाटियाँ
और कैसे-कैसे गंदे मैले-कुचैले नदी-नाले पार करने पड़ते

हैं ! जीवनकी गति और इस गतिमें मानवगति भी केंवे विचित्र है, कौन निर्णय कर पाया है ! आयुनिक युक्त महान् सुधारक और मानवतावादी विश्वबन्धु बापू जब विमन्न गये, तब उनके सामने भी इसी प्रकारका धर्म-संकट अ उपस्थित हुआ । बापूके सामने मनुष्योद्धारा खींचे जानेबले रिक्शेपर बैठनेका प्रसङ्ग आया । बापू विचारमम हो गवे हि रिक्शेपर बैठनेका प्रसङ्ग आया । बापू विचारमम हो गवे हि रिक्शेपर बैठा जाय या नहीं । विवदा स्थितिमें वे भी रिक्शेक्त यही सोचकर बैठे थे कि जबतक इन रिक्शा-चालकों है लिं जीविकाका दूसरा प्रबन्ध नहीं होता, तबतक इनके रिक्शोक्त न बैठना इनके प्रति हमारी असहयोगश्चरित्तका सूचक होग और जिसका तात्कालिक परिणाम यही होगा कि हमारी जे उनके प्रति सहानुभूति और सहयोगकी भावना है, वह उनके लिये हमारे इस निर्णयके कारण उत्की समस्या वन जायगी।

उत्तराखण्डके इस क्षेत्रमें हमें कुछ नये अनुमव हुए। जहाँ एक ओर हम यहाँके निवासियोंकी दरिद्रता, साहसीवृत्ति और कठिन परिश्रम करनेकी प्रवृत्तिसे परिचित हुए, व्हाँ दूसरी ओर उनकी उत्कट ईमानदारीका भी हमें पानगर परिन्वय मिला। इमलोग कोलाहलपूर्ण नागरिक जीवनमें रहते हैं। अनेक बार पहाड़ी-प्रदेशों, हिल स्टेशनोंकी भी सैर कर चुके हैं। गोविन्ददास तो प्रायः विश्व-भ्रमण। किंतु अभागम दरिद्र-जीवनमें भी जिस सदाचारके दर्शन यहाँ हमें हुए। उसकी हम क्या, कोई आशा नहीं रख सकते । जो लेग स कहते हैं कि चोरी आदि जुर्म गरीबीका परिणाम है, उहें उत्तराखण्डके इस अत्यधिक गरीब और अमेरिकाके अविषक अमीर क्षेत्रोंका निरीक्षण करना चाहिये । शायद उत्तराखण्डके इस क्षेत्रसे अधिक गरीव संसारका कोई क्षेत्र न होगा और निर्विवादरूपसे अमेरिकासे अधिक धनवान् संसारका अन्य केर्ड स्थान नहीं । उत्तराखण्डके गरीवोंमें जुर्म करनेकी स्पृतन प्रवृत्ति है और अमेरिकाके धनवानोंमं जुर्म करनेकी अधिकतम प्रवृत्ति । दोनों स्थानोंके जुर्म करनेवालोंके ऑकड़ोंसे यह बार सिद्ध हो जाती है। स्पष्ट है, कोई अधिपाप गरीवीका नतीं न होकर यथार्थमें नैतिकताके अभावपूर्ण जीवनका और उस्बी परम्पराके परित्यागका परिणाम है। गरीव से-गरीव व्यक्ति ह प्रकारके जुमोंसे मुक्त रह सकता है और धनवान्से धनवान् व्यक्ति इस प्रकारके जुमौंसे युक्त । फिर इस प्रकारके निर्का वियावान वन-प्रदेशमें यहाँके निवासियोंके आचरणकी गर उचता तो उनकी नैतिक दृढ़ताका ही प्रमाण हो सकती है किसी राजदण्ड या वैधानिक भयका कदापि नहीं। हमें बहुँ

भाग ३६

-

भी कैसे

कि युगहे

न शिमल

तंकट आ

जानेवारे

हो गये दि

रिक्शोपर

静崗

रिक्शोंश

चक होगा

हमारी जो

वह उनके

जायगी।

व हए।

गहसीवृत्ति

हुए, वहाँ

यग-पगपर

रहते हैं।

कर चुके

अभावस्य

हमें हुए।

लोग यह

है, उन्हें

अत्यधिक

खण्डके

गा और

त्य क्षं

न्यूनतम

धिकतम

यह बात

नतीजा

उसरी

命即

धनवान्

निर्जन

ते यह

ती है

यहाँके

होगोंकी ईमानदारीके कुछ व्यक्तिगत अनुभव भी हुए, जिनके आधारपर हम कह सकते हैं कि उत्तराखण्डकी प्रिमारामें यहाँके नियासियोंकी ईमानदारी और नैतिक आचरण काफी दूरतक उत्तरदायी है और इसके लिये हम इस क्षेत्रके इन भूखे-नंगे श्रमिकों और गिरि-गाँववासी अपशेकों हदयसे धन्यवाद देते हैं।

प्रस्तुत निवन्ध-मालामें हमने यात्रामार्गोका विवरण, यात्री-मुक्तमों (चित्रयों) की जानकारी, प्रमुख स्थलोंकी ऊँचाई और औषधालय, डाकवर, तारवर, डाक-बँगलों आदिकी बानकारी परिविष्टमें दी है।

बात्रासे छौटनेके उपरान्त हमारे अनेक मित्रोंने उत्तराखण्डके प्राकृतिक सौन्दर्य और उसकी महत्ता तथा अके परोक्ष पक्षोंका परिचय पानेकी दृष्टिसे पत्र लिखे। भित्रंकी जिज्ञासा और उनके स्नेह-आग्रह्से हमने कुछ लेख लि नो हरिद्वार, यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और वरीनाथ शीर्षकसे हमारे प्रान्तके दैनिक 'नवभारत', ष्राणकी प्रसिक मासिक पत्रिका 'सरस्वती', दिछीके मासिक षत्र आजकलः तथा वस्यईके प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग'में थ्रक्पृथक् रूपमें प्रकाशित हुए। दो रेडियो वार्ताएँ भी 👯 एक आकारावाणीके दिल्ली केन्द्रसे, दूसरी भोपालसे। ल लेवों और रेडियो वार्त्ताओंको पाठकों और श्रोताओंने ष्क सुना और अपनी सद्भावना, ग्रुभकामना और प्रशस्तिके ष हमें लिख डाले। इन पत्रोंमेंसे कुछको हम परिशिष्टमें उद्देत कर रहे हैं । हमारा विश्वास है, इन पत्रोंसे भी ^{शुक्रां}की ज्ञानबृद्धि होगी और जनरुचि तथा उत्तराखण्ड— निमक्त हिमालयके परिचयकी दृष्टिसे भी एक दूसरेको ^{निक्ट} लानेमें ये पत्र सहायक होंगे ।

इस महत् यात्रासे छोटनेक बाद १८ मईके पूर्वकी और ११ जुलईके बादकी हमने अपनी मानसिक स्थितिपर हिंगत किया। निरपेक्ष-दृष्टिसे अपने ही विषयमें जानकारियाँ उद्या यद्यपि कठिन होता है, तो भी एक साधकके मनसे विस्था भी जा सकता है और हमने किया भी। खुदका मित्राण, स्वयंका सिंहावलोकन हम करने बैठे। 'इमद्यान-विश्वा हमारे यहाँ बहु-प्रचलित संयुक्त शब्द है। क्षणिक विश्वों इन शब्दोंका प्रायः प्रयोग होता है। अतः

क्षणिक आवेशमें हम भी यहाँ कुछ लिख डालें तो वह सत्य वस्तुस्थितिका दिग्दर्शन नहीं हो सकता । अतः मौनकी महिमाको भङ्ग न करते हुए इस विषयको यहीं छोड़ अन्तमें हम केवल एक ही वात लिखेंगे कि हिमालयपर जाकर इस विराट प्रदेशमें कुछ समय विताकर मानवको उसके जीवनका परिचय तो मिलता जाता है, वह स्वयंके असाक्षात् रूपको भी देख लेता है। इस ग्रुभ्र-दीत ज्योतिमें यहाँ उसे दर्शन होते हैं शिव और शक्तिके, प्रकृति और पुरुषके । यहीं उसे भान होता है अपनी अस्पज्ञताका और पूर्ण पुरुषकी सर्वज्ञताका। प्रकृति कितनी महान् है, उदार है, वरदायिनी है और उसके सम्मुख संवर्षरत मानव-जीवन कितना क्षद्र और संकीर्ण ! उस जीवनकी छोटी-छोटी वातें सृष्टिके इस सर्वश्रेष्ठ प्राणीको कहाँ-से-कहाँ ले जाती हैं, जो ब्रह्म-साक्षात्कारकी क्षमतातक रखता है। मनुष्यको उसका यथार्थ रूप दिखानेके लिये हिमालयके दर्शन तथा उन प्रदेशोंका भ्रमण और रमण शायद एक आवश्यक चीज है। इसीलिये हमारे ऋषि-मुनियों, तत्त्ववेत्ताओं, धर्माचार्यों और संतोंको यह भूमि इतनी प्रिय थी। तपस्वी यहीं तप करते ये, ऋषि-मुनि यहीं रमते थे, साधुओंने यहाँ समाधि लगायी और योगियोंने अलख जगायी। संतोंने यहाँ गायाः सुधारकोंने, धर्मसंस्थापकोंने इसे ही अपना साधनाक्षेत्र बनायां, भगवान् व्यासदेवने यहीं महाभारत और पुराणोंकी रचना की और तत्त्वज्ञानके महान् प्रन्थ शांकरभाष्यको भी आदिगुरु शंकराचार्यने यहीं लिखा।

ऐसे उत्तराखण्डकी इस गरिमामय महापावन तपोम्मिको, जिसके सम्पर्क-सुखमें हमने सात सप्ताह बेसुध हो बिताये, उसकी गिरि-गुफाओं, पावन सिताओं, बहते अनन्त झरनों, ऊँचे गिरते जल-प्रपातों, कलरव करते पिक्षयों, मृगशावकों, अन्य वनचरों, जलचरों, पावन देवस्थलों, पुण्य सिता-संगमों, विटपों, लता-गुल्मों, झाड़ी और झरसुटों, निश्छल-निरिममानी गिरिग्रामवासियों, देखे-अनदेखे, जान-अनजाने, पिचित-अपरिचित शैलखण्डों, खाई-खंदकों, उनके निवासी, योगी-यती, वैरागी, साधु-संन्यासी सभी जड-जङ्गम जगत् तथा शीतल-मंद-सुगन्ध युक्त बहते पवनको, जिनका आतिथ्य-सत्कार हमने इन बीते दिनोंमें जाने-अनजाने पाया, आज कृतज्ञमालसे अगणित प्रणाम कर इस निबन्धमालाको समाप्त करते हैं।

श्रीकृष्णजनमाष्ट्रमी-महोत्सव

(भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप और अवतारके हेतु)

[हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन]

मञ्जीर-न प्र-रणन्-नवरत्न-काञ्ची-श्रीहार-केसरिनखप्रतियन्त्रसङ्घम् दृष्ट्यार्तिहारि-मसिबिन्दु-विराजमानं कलिन्दतनुजा-तट-वालकेलिम् ॥ कुन्द-प्रसून-विरादेर्दशनैश्चतुर्भिः संद्र्य मातुरनिशं कुचचूचुकात्रम्। वक्त्रमवलोकयतो मरारे-मनीषितमातनोत् ॥ र्मन्दिस्मतं मम हतुं कुम्भे विनिहितकरं खादु हैयङ्गवीनं दृष्ट्रा दामग्रहणचद्धलां मातरं जातरोषाम्। पायादीषत्प्रचितिपदी नापगच्छन् न तिष्ठन् मिथ्यागोपः सपदि नयने मीलयन विश्वगोप्ता ॥ अंसालिम्बतवामकुन्तलभरं मन्दोन्नतभ्रलतं किंचित्कञ्चितकोमलाधरपुटं साचित्रसारेक्षणम्। आलोलाङ्गलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा मूळे कल्पतरोख्रिभङ्गलितं ध्यायेज्जगन्मोहनम् ॥

स्वयं भगवान्का अवतरण

आजका यह दिन परम धन्य है । इसी दिन इसी भारतवर्षमें मथुराके कंस-कारागृहके कृष्ण-तम-घन निभृत कश्चमें घनश्याम श्रीकृष्ण—अनिर्वचनीय-अचिन्त्य-अनन्त-ऐश्वर्य-सोन्दर्य-माधुर्य-परिपूर्ण, अनिर्वचनीय-अचिन्त्य-अनन्त्य-अनन्त-दिव्य-रस-सुधा-सार-समुद्र, अनिर्वचनीय-अचिन्त्य-अनन्त-सर्वविरुद्ध-गुणधर्माश्रय, सर्वछोक-महेश्वर, सर्वातीत, सर्वमय, नित्य निर्गुण-सगुण, समस्त-अवतार-त्रीज, अनन्त-अद्भुत-शक्ति-सामध्य-स्रोत, सहज अजन्मा-अविनाशी, सचिदानन्द-स्वेच्छा-विग्रह, स्वयं भगवान्का महान् मङ्गळमय, महान् महिमामय और महान् मधुरिमामय प्राकट्य हुआ था।

घोर-बल-दर्पित अतिशय अत्याचारी असुररूप दुष्ट राजाओंके तथा अनाचार-दुराचार-परायण प्राणियोंके विषम भारसे आक्रान्त दुःखिनी वसुंवराने गोरूप धारण कर्त करुण क्रन्दन करते हुए ब्रह्माजीके पास जाकर अर्जा दुःखगाथा सुनायी । पृथ्वी देवीने कहा—

献

南

होत

माव

FITTE

'जो भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिसे विहीन हैं और जो श्रीदृष्ण-भक्तोंके निन्दक हैं; जो पिता, माता, गुरु, ही, पुत्र और पोष्य-वर्गका पालन नहीं करते; जो दयाश्रमी रहित हैं, गुरु और देवोंके निन्दक हैं; जो मित्रदेश, कृतम्न, झूठी गत्राही देनेवाले, विश्वास्वातक 🞕 स्थाप्यधनका अपहरण करनेवाले हैं; जो कत्याणल मन्त्र और एकमात्र मङ्गळजनक हरिनामको बेचते हैं; बे जीवोंकी हिंसा करते हैं और अत्यन्त लोभी हैं; जो पूर लोग पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत, नियम—कुछ भी नहीं करते; जो पापात्मालोग गौ, ब्राह्मण, देवता, वैणा, श्रीहरि, हरिकथा तथा हरिभक्तिसे द्वेष करते हैं--ऐसे जो दैत्यगण विविध रूप धारण करके अनवरत अयाचार अनाचार-दुराचार कर रहे हैं, उन सबके भीषण भारते ^{हैं} अत्यन्त पीड़ित हूँ ।' तत्र ब्रह्माजीने पृथ्वीको साय लेका भगवान् शंकर और अन्यान्य देवताओंको साथ लिया औ वे क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ उन्होंने पुरुषस्कर्व द्वारा भगवान्का स्तवन किया। इसके कुछ दे गर ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो गये और उन समाधिगत ब्रह्माजीकी क्षीराब्धिशायी भगवान्की देववाणी सुनायी दी। ब्रह्मावीन उसे सुनकर देवताओंसे कहा— 'हमलोगोंकी प्रार्थनीके पूर्व ही भगत्रान् वसुंधराकी विपत्तिको जान चुके हैं। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर (ईश्वरेश्वरः) अपनी काल्यिति द्वारा धरणीका भार उतारनेके लिये जनतक पृथ्नीप लीव करें, तत्रतक तुमलोग भी यदुकुलमें जन्म लेका अवी सहयोग प्रदान करो । भगवान्के अंत्री *छी*ळामें

रण करके

कार अपनी

हैं और जो

गुर, बी.

दयाश्रामी

मित्रद्रोही.

क औ

र्भल्याणस्य

वते हैं: जो

; जो मृद्ध-

रु भी नहीं

, बैणाव,

前___清

अत्याचार-भारसे में

नाथ लेका

लेया ओ

रुषसक्तके

देर गर

रहा। जीको

ब्रह्माजीने

प्रार्थनाके

कुते हैं।

लशकि

र होता

सहस्वद्रत स्वराट् अनन्तदेव भगवान्से पहले ही प्रकट हो जाँगे। भगवती विष्णुमाया भी नन्दपत्नी यशोदाके मंसे अवतरित होंगी, वे परम पुरुष साक्षात् भगवान् सर्व वसुदेवके घरमें प्रकट होंगे। उनकी सेवा-प्रीतिके विषे (अथवा उनकी तथा उनकी प्रियतमा श्रीराधाकी सेवके लिये) देवाङ्गनाएँ भी वहाँ जन्म धारण करें——

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः । जनिष्यते तिन्नयार्थं सम्भवन्तु सुरिस्त्रयः ॥ (श्रीमद्रागवत १० । १ । २३)

श्रीरोदशायी भगवान्की इस दैववाणीसे यही सिद्ध होता है कि अवकी वार साक्षात् परम पुरुष स्वयं महान् ही प्रकट होंगे (क्षीराव्धिशायी नहीं)। महान्के पुरुषावतार, गुणावतार, छीछावतार, अंशावतार, क्रव्यतार आदि अनेक प्रकारके अवतार होते हैं और समी पूर्ण होते हैं; पर उनमें छीछाभेदसे शक्तिका मक्ष्य न्यूनाधिक रहता है। किंतु यह अवतार स्वयं महान्का है। इसमें अन्य सभी अवतारोंके, भगवत्स्वरूपोंके भाव सम्मिछित हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार ब्रह्माक्षित आदि समस्त देवता गोछोकमें स्वयं भगवान् श्रीरणिकी सेवामें जाकर वहाँ श्रीराधा-माधवके दर्शनका सेमाय प्राप्त करते हैं और पृथ्वीका भीषण भार हरण करें और मधुर छीछा-रसका विस्तार करनेके छिये महत्त्वपूर्ण कातर प्रार्थना करते हैं।

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् द्रवित हो जाते हैं और उन्हें अपनी अनन्त महिमा और भक्तोंकी हिमताका परिचय देकर अन्तमें कहते हैं—देवताओ ! हिमताका परिचय देकर अन्तमें कहते हैं—देवताओ ! हिमताका परिचय देकर अन्तमें कहते हैं क्यं पृथ्वीपर कितीर्ण हो जगा—तुमछोग भी अंशरूपसे पृथ्वीपर किता । इसके वाद भगवान् दिव्य गोप-गोपियोंको हो अतर उनसे मक्षर वचन कहते हैं—गोप-गोपीगण! मि होगा नन्दके वजनाममें अवतीर्ण होओ । श्रीराधिके!

तुम इषमानुके घर जाओ । मैं तुमको बालकरूपमें कमलकाननमें प्रहण करूँगा; राघे ! तुम मेरी प्राणाधिका हो, मैं भी तुम्हारा प्राणाधिक हूँ । हम दोनोंमें कुछ भी मेद नहीं है, हम सदा ही एक हैं।

त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम्। न किंचिदावयोभिन्नमेकाङ्गं सर्वदैव हि॥ (व्र० वै० कृष्ण० ६। ६७)

इसी बीचमें वहाँ एक दिव्य मणि-रत्तों, पारिजात-कुसुम-माठाओं, श्वेत चामरों तथा विद्युद्ध काषाय वस्त्रोंसे विभूषित शत-शत-सूर्य-प्रभाओंके सदश तेज:पुञ्ज रथ आया । उस रथमें कमनीय श्यामसुन्दर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये पीताम्बरधारी भगवान् नारायण विराजित थे। उनके साथ महादेवी सरस्वती और महाठक्ष्मी भी थीं । वे भगवान् नारायण रथसे उतरे और तुरंत श्रीकृष्णके शरीरमें ठीन हो गये तथा इस परमाश्चर्यको देखकर सव छोग चिकत हो गये—

गत्वा नारायणो देवो विलीनः ऋष्णविष्रहे। दृष्ट्या च परमाश्चर्यं ते सर्वे विस्सयं ययुः॥

इसके पश्चात् एक दूसरे परम सुन्दर देदीप्यमान स्थमें चतुर्भुज, वनमालाविभूषित, अपार प्रभाशाली जगत्पति भगवान् विष्णु पञ्चारे और वे भी स्थसे उतरकर भगवान् श्रीराधिकेश्वरके शरीरमें लीन हो गये—

स चापि लीनस्तत्रैय राधिकेश्वरिवशहे॥

इससे भी यही सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् स्वयं भगवान् हैं और उनके इस स्वरूपमें सबका तथा सबके छीछा-कार्योंका एकत्र समावेश है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें आता है कि इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने देवी कमछा छक्ष्मीसे मुसकराते हुए कहा कि देवि! तुम कुण्डिन नगरमें राजा भीष्मकके घर देवी वैदर्भीके उदरसे अवतरित होओ, में वहाँ जाकर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा। तदनन्तर वहाँ पन्नारी हुई देवी पार्वतीसे भगवान्ने कहा—'तुम महामाया सृष्टि-संहार-

् उनकी अंशमे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

an

3700

चों

निहा

स्वत्र

पुरा

ल्तमं

पति इ

नान

कारिणी हो । तुम अंशरूपसे व्रजधाममें जाकर यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण होओ । मानवगण नगर-नगरमें भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करें गे । तुम्हारे प्रकट होते ही वसुदेव यशोदाके सूतिकागृहमें मुझे रखकर तुम्हें ले जायँगे । फिर कंसको देखते ही पुन: तुम भगवान् शिवके पास चली जाना । मैं पृथ्वीका भार उतारकर अपने धाममें लौट आऊँगा ।'

इसके बाद कोन देवता किस नाम-रूपसे कहाँ अवतार हेंगे—विशिष्ट-विशिष्ट देवताओंके हिये भगवान्ने इसका निर्देश किया है।

श्रीकृष्णका दिच्य विग्रह अप्राकृत-भगवत्स्वरूप ही है

भगवान् श्रीकृष्ण खयं भगवान् हैं, उनका दिव्य शरीर कर्मजनित प्राकृत या सिद्धिजनित 'निर्माणशरीर' नहीं है। वह प्राकृत शरीरसे सर्वथा विलक्षण हानोपादानरहित दिव्य सिचदानन्दमय भगवत्स्वरूप है। इसके प्रचुर प्रमाण श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा अन्यान्य प्रन्थोंमें उपलब्ध हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें ही श्रीकृष्ण और सनत्कुमारके वार्तालापका एक सुन्दर प्रसङ्ग आता है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनेको प्राकृत बतलानेकी चेष्टा की है और सनत्कुमारने उनके प्रभोंके उत्तरमें उनकी भगवत्ता सिद्ध की है, उनके शरीरको साक्षात् चिदानन्दमय भगवदेह बतलाया है और 'वासुदेव' नामका बड़ा ही विलक्षण अर्थ किया है। प्रसङ्ग इस प्रकार है—

एक बार ब्रह्मतेजसे उद्घासित सैकड़ों बड़े-बड़े ऋषि-मुनीश्वर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये आये थे। फिर उस मुनि-समामें परम तेज:पुञ्ज सर्वाङ्गसुन्दर पाँच वर्षके नम्न बालकके रूपमें श्रीसनत्कुमारजी पधारे। उन्होंने आकर मुनियोंसे कुशल-प्रश्न करके कहा कि 'श्रीकृष्णसे तो कुशल पूछना व्यर्थ है। ये स्वयं ही समस्त कल्याणके बीज हैं। अथवा इस समय इन परमात्मा श्रीकृष्णका दर्शन ही आपलोगों-के लिये कुशल है; प्रकृतिसे अतीत, निर्गुण, निरीह, सर्ववीज और तेज:स्वरूप ये भुग्वान् मक्तोंके अनुरोधसे ही पृथ्वीका भार उतारनेके छिये अवतित हुए हैं। इसपर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'विप्रवर ! व शरीरवारी मात्रके छिये कुशळ-प्रक्त अभीप्सित है, तब हु में ही कुशळ-प्रक्षका पात्र क्यों नहीं हूँ ??

शरीरधारिणश्चापि कुशलप्रइनमीष्सितम्। तत्कथं कुशलप्रइनं मयि विप्र! न विद्यते॥

सनत्कुमार जीने उत्तर दिया—'प्रभो ! शुमअशुम सन प्राकृत शरीरमें ही हुआ करते हैं; जो शरीर नियहें और सारे कुशलोंका बीज हैं, उसके लिये कुशलम्भ निर्यक ही है ।'

शरीरे प्राकृते नाथ संततं च गुभागुभम्। नित्यदेहे क्षेमवीजे शिवप्रश्नमार्थकम्॥

तब भगवान् बोले—'विप्रवर ! शरीरधारी मात्र है प्राकृतिक माने जाते हैं, क्योंकि नित्या प्रकृतिके कि शरीर होता ही नहीं।'

> यो यो विश्रहधारी च स स प्राकृतिकः स्मृतः। देहो न विद्यते विष्र तां नित्यां प्रकृति विना॥

इसके उत्तरमें सनत्कुमारजीने कहा—'प्रभो! बें देह रज-वीर्यके द्वारा उत्पन्न होते हैं, वे ही प्रकृतिक माने जाते हैं। आप तो स्वयं सबके आदि हैं, सके बीज—कारण हैं और प्रकृतिके नाथ हैं, स्वयं भगवात् हैं। आपका देह प्राकृतिक कैसे हो सकता है! आप वेदवर्णित समस्त अवतारोंके निधान, सबके अविनाशी बीज, तिय सनातन, खयं ज्योति: स्वरूप प्रमात्मा प्रमेश्वर हैं।

रक्तविन्द्र्ज्ञचा देहास्ते च प्राकृतिकाः स्मृताः। कथं प्रकृतिनाथस्य वीजस्य प्राकृतं वपुः॥ सर्ववीजश्च सर्वादिर्भवांश्च भगवान् स्वयम्। सर्वेषामवताराणां निधानं वीजमव्ययम्॥ कृत्वा वदन्ति वेदाश्च नित्यं नित्यं सन्ततनम्॥ ज्योतिःस्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम्॥

इसपर श्रीकृष्णने पुनः कहा—'विप्रवर ! इस सम्प मैं वसुदेवका पुत्र हूँ, अतएव मेरा शरीर रजीवीयांश्रित

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

किए के प्रवर ! ज्व है तक्ष

[भाग ३६

तम्। चते॥ शुभ-अशुभ

रीर नित्य है

बुराल-प्रभ भंस । हम् ॥ री मात्र ही

रुतिके विन

तः। ना ॥ भो ! जो

प्राकृतिक , सक गवान् हैं।

वेदवर्णित ोज, नित्य 1

ताः । ग्यः॥

यम्। 刊 || नम् ।

H |

याश्चित

न समय

ही हैं। फिर में प्राकृतिक और कुशल-प्रश्नका पात्र

禮意? बासुदेबोऽहं रक्तवीर्याश्रितं वपुः। क्यं त प्राकृतो विष शिवप्रश्नमभीज्लितम्॥ 'वासदेव' शब्दका अर्थ

इसपर अन्तमें सनत्कुमारजी बोले---'नाथ! (वासुदेव-ख्या अर्थ दूसरा है--) वासुका अर्थ है--जिसके बोमकूपोंमें अनन्त विश्व स्थित हैं, वे सर्व-निवास महान् क्रा पुरुष; और उनके जो देव हैं—स्वामी हैं, वे हैं अप स्वयं प्रमन्नहा 'वासुदेव' । इसी 'वासुदेव' नामका कों वेद, पुराण, इतिहास, आख्यान आदि वर्णन करते हैं। आपका शरीर रजवीर्यसे बना है, यह किस वेदमें कियीत है ? ये सब मुनिगण यहाँ साक्षी हैं, धर्म भी क्ष्रं साक्षी हैं और वेद तथा चन्द्र-सूर्य भी मेरे साक्षी हैं (आप सचिदानन्दमयशरीर हैं)।

वासः सर्वेनिचासश्च विश्वानि यस्य लोमसु। तस देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतीरितः॥ गस्देवेति तन्नाम वेदेषु च चतुःषु च। पुराणेध्वितिहासेषु वार्तादिपु हर्यते॥ च कवीर्याश्रितो देहः क ते वेदे निरूपितः। सिंक्षणो मुनयश्चात्र धर्मः सर्वत्र एव च॥ साक्षिणो मम वेदाश्च रविचन्द्री च साम्प्रतम्॥

(ब्रह्मचैवर्त् ०, श्रीकृष्ण-जन्म-खण्ड, अ० ८७) हिं साक्षात् खयं भगवान् श्रीकृष्णने द्वापर युगके क्तमें भारतमें अवतीर्ण होकर इस धराको धन्य किया था। अव इनकी प्राकट्य-छीछाका पवित्र स्मर्ण करें।

श्रीकृष्णका प्राकट्य

^{मङ्गरमय} भाद्रपद्के कृष्ण पक्षकी अष्टमी है, मध्य किंका समय है, सब ओर घोर अन्यकारका साम्राज्य है; भंतु अकत्मात् समस्त प्रकृति ल्छाससे भरकर उत्सवमयी में जाती है, सारी प्रकृति अपने प्रमाश्रय प्रमदेवका कात करनेके लिये सज-धजकर समुत्सुक हो उठती है।

सव दिशाएँ प्रसन्त हो गयीं, नदियोंका जल निर्मल हो गया, सरोवरोंमें रात्रिको ही कमल खिल उठे, दृश्लोंकी शाखाएँ पुष्प-फलोंसे लद गयीं, साधुओंका मन आनन्दोनमत्त हो गया, निर्मल मन्द-सुगन्ध मलय-समीर बहने लगा, देवताओं के बाजे खयं ही बज उठे, गन्धर्व-किंतर नाचने-गाने लगे और सिद्ध-चारण सब स्तवन करने छगे। क्र्र कंसका कारागार एक विळक्षण ज्योतिसे जगमगा उठा । महामहिम श्रीवसुदेवजीको अनन्त सूर्य-चन्द्रमाओंके सहरा एक प्रचण्ड-शीतल प्रकाश दिखायी दिया और उसमें दीख पड़ा राङ्क-चक्र-गदा-पद्मसे सुशोभित, चतुर्भुज, विशालनयन, वक्षःस्थलपर भृगुलता, श्रीवत्स और रन्नहार धारण किये, विविध सूषणोंसे विस्षित, किरीट-मुक्ट-कुण्डलधारी, जिसके अङ्ग-अङ्गसे सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्यकी रसमयी त्रिवेणी वह रही है---ऐसा एक चमत्कारपूर्ण अद्भुत बालक ।

वसुदेव-देवकीने स्तुति की, भगवान् श्रीकृष्णने उनको अभय-आश्वासन देकर अपने पूर्व-अवतारोंके सम्बन्धकी तथा वरदानकी बातका स्मरण कराया। तब देवकीने उनसे कहा, मैं कंसके भयसे अधीर हो रही हूँ--- कंसादहम-धीरघी: ।' श्रीभगवान्ने कहा-'यदि ऐसी बात है तो मुझे तुरंत गोकुलमें पहुँचा दो और यशोदाके गर्भसे प्रकट हुई महामायाको ले आओ ।

इतना कहकर भगवान तुरंत शिक्षरूप हो गये। भगवान्के शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी ऐश्वर्यरूपको देखकर भी वसुदेव-देवकी—भगवान्की छीछाशक्तिकी प्रेरणासे वात्सल्य रसका आविर्भाव होनेपर—डर गये और शिश्चको हृदयसे लगाकर ले जानेका विचार करने लगे। पर जायँ कैसे ? हाथोंमें हथकड़ी है, पैरोंमें बेड़ी है, छोहेका मजबूत दरवाजा बंद है, बाहर शक्षधारी प्रहरी हैं; इससे वे अत्यन्त विषाद प्रस्त होकर मन-ही-मन भगवान्के शरणापन हो गये । वस, तुरंत हाथोंकी हथकड़ी, पैरोंकी बेड़ी खुल गयी और विशाल लौह-कपाट भी अपने-आप ही खुल गये । यह सब भगवान्की अघटन-घटना-पटीयसी माया-

शक्तिसे हो गया, ऐसा नहीं मानना चाहिये। श्रीकृष्णकी हृदयपर रखते ही सारे वन्धन अपने-आप कट जाते हैं। फिर बन्धन-मुक्तिके लिये कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। इसके विपरीत जबतक श्रीकृष्णको हृदयपर नहीं रक्खा जाता, तवतक हजार-छाख प्रयास करनेपर भी वन्यन नहीं खुलता । मायाकी साँकलोंसे हाथ-पैर और गलेसे बँधा हुआ बहिर्मुख जीव कामना-वासनाके बंद दढ़ छौह-कपाटोंके अंदर संसारके कारागारमें पड़ा रहता है । काम-क्रोधादि शत्रु सदा उस कैदलानेपर पहरा लगाये रहते हैं। अतएव वह जीव किसी प्रकार भी कैदसे नहीं छूट सकता। पर जब वसुदेवजीकी भाँति वह श्रीकृष्णको छातीसे चिपकाकर ब्रजकी राहपर चल देता है, तब माया-मोहकी सारी हथकड़ी-बेड़ी खुल जाती हैं, काम-क्रोधादि पहरेदार सो जाते हैं, कामना-वासनाके कपाट खुल जाते हैं—विना ही प्रयास संसार-वन्धनसे उसे मुक्ति मिल जाती है । भगवान् वसुदेवजीकी गोद्में आकर जगत्को इस वातका संकेत कर रहे हैं।

गोकुलके लिये प्रस्थान

वसुदेवजी कारागारसे निकलकर धीरे-धीरे वाहर सङ्कपर आ गये । श्रीकृष्ण अप्राकृत प्रमानन्द्धनविग्रह हैं, अतः उन्हें हृद्यपर रखकर चलनेवाले वसुदेवको किसी कष्टका तो अनुभव हुआ ही नहीं, वरं पद-पदपर वे आनन्दसिन्धुमें अवगाहन करने लगे बहिर्मुख जीव अभिमानका भार उठाकर संसार-पथपर चलता हुआ पद-पदपर दु:ख-भोग करता है । इस दु:खसे छूटना हो तो भाग्यवान् वसुदेवकी श्रीकृष्णको हृद्यमें लेकर उनकी लीलाभूमि ब्रजकी ओर चल देना चाहिये।

वह्यदेवजी इधर-उधर चारों ओर भयभरी दृष्टि डालते हुए धीरे-धीरे चुपचाप ब्रजकी ओर बढ़ रहे हैं। इसी समय देवराज इन्द्रके आदेशसे आकाशमें काले-काले बादल

उमड़ आये, धीरे-धीरे गरजने लगे, बीच-बीचमें विक्ष चमकने लगी और लगातार वर्ष होने लगी। हिंद्रेने विचार किया कि 'मूसलधार वर्षा होनेसे म्थुरावर्ष कोई भी घरसे बाहर नहीं निकलेंगे, अतएव वसुदेवजीके जानेका किसीको पता नहीं लगेगा। बीच-वीचमें विज्ञी का प्रकाश होते रहनेसे अँघेरेमें वसुदेवको आगे वहने भी कोई कष्ट नहीं होगा। अीकृष्णको हृदयमें एका अन्धकार्मय मार्गमें चल पड़नेपर भी मनुष्य प्यम् नहीं हो सकता । इसीिळये विजली आज वारना हँस-हँसकर वसुदेवको पथ बतला रही है। वसुदेवी चुपचाप परंतु शीघ्रतासे आगे बढ़े जा रहे हैं।

आकारामें मेघोंके आते ही भगवान् अनत्ते श्रीकृष्णकी सेवाका सुअवसर जानकर वहाँ आ गये औ अपने हजार फनोंको फैलाकर वसुदेवके सारे अङ्गोंपर छाप किये उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

अनन्तदेव श्रीसंकर्षण श्रीकृष्णका ही दूसा हा हैं; परंतु अनादिसिद्ध दास्यभावके कारण वे विभिन रूपोंमें सदा श्रीकृष्णकी सेवा ही करते रहते हैं। श्रीकृष्णके खरूपानन्दकी अपेक्षा सेवानन्दका ही माध्ये अधिक है, अतएव स्वयं श्रीकृष्णतक इस आनन्दक आस्वादन करनेके लोभसे दासाभिमानी अपने ही रूपी अपनी सेवा करते हैं।

शय्यासनपरीधानपादुकाच्छत्रचाम्रैः कि नाभूस्तस्य कृष्णस्य मृर्तिभेदैस्त मृर्तिषु॥

— ब्रह्माण्डपुराणके इस वचनके अनुसार संकर्षण श्रीरोषजी राय्या, आसन, वस्त्र, पादुका, छत्र, चँवर ^{आर्रि} नाना मूर्तियाँ धारण करके अखिलरसामृतमूर्ति श्रीगो^{विन्दर्की} सेवा किया करते हैं। शेषजी फणोंकी छाया किये चळी हैं, इस बातका वसुदेवजीको पता भी नहीं है।

वसुदेवजी यमुनातटपर पहुँच गये। पर उन्होंते देखा यमुनामें मानो भयानक तूफान आ गया है। वड़ी

de

भाग ३६ -

चमें विज्ञां गी । इन्द्रने मथुरात्रासी वसुदेवजीके में विज्ञी-ागे बढ़नेमं

में एका य प्यम्बर वार-गा वसुदेवजी

अनन्तदेव गये और नेपर छाया

सरा रूप विभिन्न हते हैं। ैमाधुर्य

गनन्दका ह्यपे

र्नेषु ॥ संकर्षण र आदि

विन्दकी चलते

उन्होंने । बड़ी

कुँची कुँची पहाड़-जैसी तरङ्गें उठ रही हैं; सैकड़ों, हजारों बहे-बहे भँवर पड़ रहे हैं । वसुदेवजी यमुनाका यह भीषण हुए देखकर चिकत और भयभीत हो रहे हैं। सोचते हुं—रात बीत रही है, पार जाकर छौट न सका तो पता नहीं सबेरे कांस जागते ही क्या अनर्थ कर इलिगा । वे यमुनाके तीरपर असीम अनन्त भवसागरसे तरंत पार कर देनेवाले श्रीहरिको गोदमें लिये हुए ही उस पार पहुँचनेकी चिन्ता कर रहे हैं। यह वात्सल्य-सिकी अनिर्वचनीय महिमा है । फिर भगवान्की गैगव-माध्री भी विळक्षण चमत्कारी वस्तु है। भुक्ति-मिक-सिद्धिकी स्पृहा, ऐश्वर्यज्ञान, तत्त्वानुसंधान—कुछ भी क्यों न हो, दिव्य वात्सल्यरस और शैशव-माध्री-एसके सुधा-स्रोतमें सब तुरंत बह ही जाते हैं।

वसदेव श्रीकृष्णको गोद्में लिये यमुनातटपर खडे व्यक्ति वित्ते चिन्ता कर रहे हैं । उधर यमनाजी श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शाकी कामनासे व्याकुल हैं और धैर्य ग्रेड़कर अस्तव्यस्त तरङ्गोंके द्वारा बढी चढी आ रही हैं। यमुनाका ताण्डव-मृत्य हो रहा है और वे उछल-उछलकर अपने परम प्रेमास्पद प्रभुके अरुणचरणोंका स्पर्श पानेके लिये वारंवार मस्तकको ऊँचा उठाये जा रही हैं। ^{ब्रुदेवने} व्याकुल होकर चारों ओर देखा—अगाध जल हैं और जलराशिके पहाड़-के-पहाड़ उछल रहे हैं। भगवान्ने पिता वसुदेवजीकी व्याकुळता देखकर धीरेसे महसा यमुनाके मस्तकको अपने चरणकमळींका स्पर्श-एवं प्रदान कर दिया। यमुना निहाल होकर झुकने लीं, मानो दण्डवत् कर रही हैं। वसुदेवजीने चिकत हिंह्से देखा—सामनेका जल घट रहा है। वे कुछ और ^ओ वहें, जल और भी कम मिला । श्री**कृष्ण-चर**ण-सर्शकी अपार तृष्णा लिये जो यमुना अपनी उत्ताल तरङ्गमङ्गिमाओंसे ताण्डव नृत्य करती हुई बढ़ी चली जा हीं गीं, श्रीकृष्ण-चरणका स्पर्श पाते ही उनकी बाढ़ र्वित स्क गयी, तरङ्गें क्रमशः थम गयीं, ब्रहावका वेग

रक गया, यमुना निश्चल-निस्तरङ्ग हो गर्यो । यमुनाका वह भीषण तूफान वस्तुत: तूफान नहीं था, वह था श्रीकृष्ण-चरण-स्पर्शकी उत्कट ठाळसासे सहज होनेवाळा यमुनाका ताण्डवनृत्य । अब बसुदेनजी अनायास ही पार हो गये।

पर किस रास्तेसे जाकर वे तरंत नन्द्रघरमें पहुँचें ? यमुनाके निर्जन तटपर इस निस्तब्य निशामें उन्हें कौन मार्ग बताये ? वसुदेवजी श्रीकृष्णको गोदमें छिये किसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। उनके पीछेसे यमुनाजी मन-ही-मन मृद्-मृद् कलकल निनादके द्वारा कहने लगीं--- 'जाओ वसुदेव ! याद रक्खो---श्रीकृष्णका मक्त कभी पथ-श्रष्ट नहीं होता, मार्ग नहीं भूळता; वह जिस ओर चलने लगता है, उसी ओर उसके लिये मार्ग बन जाता है। वसदेव! तुम्हें मार्ग खोजना नहीं पड़ेगा, मार्ग स्वयं ही तुम्हें खोज लेगा । वह पथ ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शक बनकर तुम्हें नन्दालयमें ले जायगा। तुमने श्रीकृष्णको गोदमें जो ले रक्खा है। फिर चिन्ता क्यों कर रहे हो ?

श्रीवसुदेवजी सीधे नन्द्महलमें पहुँच गये। देखा, सभी सो रहे हैं। वे सहज ही सृतिकागृहमें जा पहुँचे और शिशु श्रीकृष्णको यशोदाके पास सुलाकर यशोदाकी सद्यः प्रसूता कन्याको लेकर मथुरा कारागारमें लौट आये। उनके लौटते ही पूर्ववत् सब कुछ ज्यों-का-त्यों हो गया। यशोदाको यह भी पता नहीं लगा कि उनके पुत्रका जन्म हुआ या कन्याका । शिशुरूप श्रीकृष्णके लीलासे रोनेपर ही यशोदा जागीं, तब उन्हें पता लगा कि उनके नील कमलदलके सदश श्यामवर्ण पुत्र हुआ है।

दहरों च प्रबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम्। नीलोत्पलदलस्यामं ततोऽत्यर्थं मुदं ययौ॥ (विष्णुपराण)

श्रीकृष्णका दो रूपोंमें देवकी और यशोदाके गर्भसे प्राकट्य

कुछ ब्रजप्रेमी विद्वानोंकी ऐसी मान्यता है कि श्रीमगवान् ऐश्वर्य और माधुर्यके मेद्से 'श्रीवासुदेव' और 'श्रीगोविन्द'—इन दो खरूपोंमें एक ही साथ देवकी और यशोदा दोनों माताओंसे आविर्भूत हुए थे। इस सम्बन्धमें हरित्रंशको किसी-किसी प्रतिमें यह एक श्लोक मिलता है----गर्भकाले त्वसस्पूर्णे अष्टमे मासि ते स्त्रियौ। देवकी च यशोदा च सुषुवाते समं तदा॥

'असम्पूर्ण गर्भक्षालके आठवें महीनेमें देवकी और यशोदा दोनोंने ही एक ही समय श्रीकृष्णको प्रकट किया था।' यशोदाजीके श्रीकृष्णके बाद ही योगमाया प्रकट हुई थीं। अतएव कालभेदसे यशोदाके दो बालकोंका-श्रीकृष्ण और योगमायाका प्रकट होना सिद्ध होता है। श्रीदेवकीके श्रीकृष्ण वासुदेवस्वरूप ऐश्वर्यमय राङ्ख-चक-गदा-पद्मवारी चतुर्भुत्र थे और श्रीयशोदाके श्रीकृष्ण माधुर्यमय द्विभुज नराकृति परम्हा थे। वसुदेवजी जव वासुदेवस्वरूप भगवान्को यशोदाके पास लेकर आये, तब वह वासुदेवस्वरूप उसी क्षण श्रीगोविन्दस्वरूपमें लीन हो गया। दोका एक खरूप हो गया, ऐश्वर्य माधुर्यके महासमुद्रमें निमग्न हो गया । इसके पश्चात् वसुदेवजी यशोदाकी उस योगमायाकी अंशरूपा कन्याको लेकर मथुराके कारागारमें छोट आये।

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकार्द्भसे भी यह एक समय दो जगह अलग-अलग प्रकट होनेकी वात सिद्ध की जाती है---

नन्दस्यात्मज उत्पन्ने जाताह्वादो महामनाः ।

'श्रीनन्द जीके आत्मज (पुत्र) उत्पन्न होनेपर उन महामनाको परम आह्वाद हुआ। १ ये वचन शुकदेवजीके हैं। यदि नन्दजीके श्रीकृष्ण न प्रकट होते तो शुकदेवजी 'आत्मजे उत्पन्ने' पुत्र उत्पन्न हुआ क्यों कहते ! 'स्वात्मजं मत्वा'---'नन्द् जीने अपना पुत्र मानकर पर्भ आह्वाद प्राप्त किया' ऐसा कह देते । वस्तुत: क्या बात है, पता नहीं ।

पर सर्वसमर्थ, कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्ययाकर्तुंसमर्थ मगनान्ते लिये एक ही साथ दो जगह प्रकट होनेमें कहीं उछ भी आश्चर्यकी वात नहीं है।

जो कुछ भी हो, भगवान्की परम मशुरतम शिशुलीलाका दिव्य दुर्लम आनन्द तो श्रीयशोदा मैया, नन्द बाबा और ब्रजवासी ग्वालबालों तथा भाग्यकी व्रजाङ्गनाओंको प्राप्त होता है।

तदनन्तर वे मूर्तिमान् आनन्द-उयोति श्रीगोधिन्द् मात यशोदाकी गोदमें शोभा पाने लगे। मानो चिदानन्द्सरोत्रां ऐसे एक नील-फमलका विकास हुआ, जिसकी सुगन अवतक भ्रमरोंको कभी सूँघनेको नहीं मिली थी, जिसकी सुगन्यको प्यन कभी भी हरण करके नहीं हे जा पाय था, जिसको कभी कोई तरङ्ग-कण स्पर्श नहीं कर पाप था और जिसको इससे पहले किसीने भी नहीं देखा था। अनाघात, अनपहृत, अनुपहृत नीळकमल-सदरा श्रीकृष्ण हैं। अर्थात् इससे पूर्वके भगस्य भक्तोंने ऐश्वर्यमय नारायण आदि रूपोंका आस्वादन प्राप्त किया था, इनका नहीं; अतएव ये अनाघात हैं। इससे पूर्वके पवनरूप महाकवियोंने श्रीनारायणादि ऐश्वर्यहर्णेन गुणगान किया था, इनका नहीं; अतएव ये अनपहत हैं। प्राकृत कमल जैसे जलमें उत्पन्न होता है, वैसे यह कमर जलमें यानी प्रपञ्च-जगत्में नहीं अवतीर्ण हुआ है। जलमें उत्पन्न कमलको तरङ्गोंके थपेड़े लगते हैं, प तरङ्गरूप प्रपञ्चान्तर्गत गुण इनको कभी छूतक नहीं गये हैं। इससे ये अनुपहत हैं और ऐश्वर्यमय या ऐश्वर्य-माधुर्य-मिश्रित रूप पहले देखे गये हैं, पर यशोदोत्सङ्गविहारी हन नीलश्यामको अवतक किसीने नहीं देखा है; इस^{िलेये वे} अद्रष्ट हैं।

इसका दूसरा भाव यह भी परम सत्य है कि श्रीभगवान्का यह मधुरतम खरूप ऐसा विलक्षण है कि इसमें क्षण-क्षण नये-नये सौन्दर्य-माधुर्यादि सोका प्रतिक्षण नये-नये ठीळाभावोंका विकास-उछार होता रहता है। इसलिये प्रेमी भक्त प्रतिक्षण ही इनके प्रके

भगत्रान्क रें दुछ भी

भाग ३६

मञ्जातम ोदा मैया, भाग्यवती

वेन्द्र माता र-सरोवरमें ो सुगन्ध

, जिसकी जा पाया कार पाया

वा था। अदृष्ट भ्रमरह्म

दन प्राप्त हैं। इससे र्यह्यपेंका

हृत हैं। ह कमल

म है। हैं, पा

गये हैं। र्निश्रित री इन

छिये ये

रसोका

होता प्रत्क

_{भावको} अमूतपूर्व ही अनुभव करते हैं—इनका प्रत्येक _{भाव} नित्य नवीन, सदा अनास्यादित ही दीखता है। भृद्गेरनपहृतस्रोगन्ध्यमनिले-अनामातं नीरेष्वनुपहतसूमींकणभरैः। स्तृत्यन्नं अहर्ष्टं केनापि कचन च चिदानन्दसरसो यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवीजस्तद्भवत्॥ श्रीकृष्णावतारके प्रयोजन

वरावर ब्रह्मके इस दिव्य अवतारके प्रधान हेत क्राति हए कहा गया है—

आत्मारामान्मधुरचरितैर्भक्तियोगे विधास्यन् नानालीलारसरचनयाऽऽनन्द्यिप्यन् स्वभक्तान्। रैत्यानीकैर्भवमतिभरां वीतभारां करिष्यन मुर्तानन्दे। वजपतिगृहे जातवत् वादुरासीत् ॥ (श्रीआनन्दबन्दावनचम्पू)

श्रीमगत्रान्के इस प्रकारके अवतार-प्रहणके तीन प्रात कारण हैं—(१) अपने मधुर छीछाचरितोंके ग्रा आत्माराम मुनियोंको प्रेमभक्ति-योगमें लगाना, (२) विविध ठीलारसोंकी रचनाके द्वारा अपने प्रेमी महोंको आनन्दित करना, उनके विद्युद्ध प्रेमरसाखादनके बा मुखी होकर उन्हें प्रेमरसास्वादन कराकर मुखी काना और (३) दुर्दान्त दैत्योंके मीषण भारसे अत्यन्त वीं हुई पृथ्वीका भार उतारना । इन्हीं तीन मुख्य श्योजनोंसे आनन्दस्बरूप भगवान् श्रीकृष्णं व्रजनरेश न्द्याग्राके घरमें जन्म लेनेकी भाँति प्रकट हुए ।

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी लीलामें इन तीनों ही प्रयोजनोंको भळीभाँति सुसम्पन्न किया । भगवान्ने मधुर मज्लीलामें वात्सत्य-सात्य-मधुर आदि विभिन्न रसवाले प्रेमीजनोंको दिव्य प्रेमरससुधाका आस्वादन कराया और किया । यहाँ बीच-बीचमें ऐश्वर्यभावका ग्रहण करके र्वेषोके प्राण हरणकार उन्हें मुक्ति प्रदान की । मथुरा और द्वारकाकी लीलामें माधुर्यरसकी अपेक्षा ऐश्वर्यका तथा प्रमा निष्काम कर्म और ज्ञानका परम विशुद्ध भात अधिक वितरण किया । बड़े-बड़े ऋषि-मुनि ज्ञानी अमलात्मा प्रमहंस महात्माओंको आकर्षित करके अपनी विशुद्ध भक्तिमं नियुक्त किया।

श्रीकृष्णचरितमें पूर्ण भगवत्ता और पूर्ण मानवताका सम्मेलन

यह तो हुई स्वयं भगवान्के तत्त्व, महत्त्व और नित्य रसमाधुरीकी बात । पर यों भगवान् श्रीकृष्णके विलक्षण लीलाचरितमें पूर्णभगवत्ता और पूर्णमानवताका एक ही साथ प्रमाश्चर्यमय सम्मेळन है । वे पूर्णतम भगवान् हैं और पूर्णतम मानव हैं। उनके चिरत्रमें जहाँ एक ओर भगवत्ताका अशेष वैचित्र्यमय ठीलविलास है, दूसरी ओर वैसे ही मानवताका परम ओर चरम उन्कर्ष है। अनन्त ऐश्वर्यके साथ अनन्त माधुर्य, अप्रतिम अनन्त शौर्य-वीर्यके साथ मुनिमनमोहन नित्यनव निरुपम सौन्दर्य, वज्रवत् न्याय-कठोरताके साथ वुसुमवत् प्रेम-कोमलता, नव-नव-राज्यनिर्माण-कौशलके साथ स्वयं राज्यग्रहणमें सर्वथा उदासीनता, अनवरत कर्मप्रवणताके साथ सहज , पूर्ण वैराग्य और उदासीनता, परम राजनीति-निपुणताके साथ पूर्ण आच्यात्मिकता, सम्पूर्ण विषमताके साथ नित्य समता, सर्वपूज्यताके साथ सेवापरायणता—यों अनन्त युगपत् आपातविरोधी भावोंका पूर्ण और सहज समन्वय श्रीकृष्णके जीवनमें प्रत्यक्ष प्रकट है।

श्रीकृष्ण सव ओरसे पूर्ण हैं

साथ ही जो छोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् न मानकर योगेश्वर, आद्र्श महापुरुष, उच्चश्रेणीके निष्काम कर्मयोगी मानते हैं, उनके लिये भी भगवान् श्रीहृष्णने अपने आदरी जीवनमें जो कुछ दिया है, वह इतना महान्, इतना विशाल, इतना उदार, इतना आद्शे, इतना अनुकरणीय है कि उसकी कहीं तुलना नहीं है। हम उनको प्रत्येक क्षेत्रमें सर्वथा सर्वोच्च आसनपर आसीन पाते हैं । अध्यात्म, धर्म, राजनीति, रण-कौशल, विज्ञान, कला, संगीत, नेतृत्व, सेवा, पारिवारिक जीवन, समाज-सुधार—कहीं भी देखिये, ने सर्वत्र सदा सनके छिये आदर्श, दिव्य आशाका निश्चित संदेश लिये सफलता, युश्यता और अनुभ्तिसे पूर्ण आचार्य-पद्पर प्रतिष्ठित हैं और स्वयं पथप्रदर्शक बनकर—स्वयं ही सुदृढ़ नौकाके केवट बनकर सबको सब प्रकारकी असुविधाओं और बन्धनोंके अगाध समुद्रसे सहज पार कर देनेके लिये नित्य प्रस्तुत हैं।

आज हम इस मङ्गलमयी उनकी जन्मतिथिके मङ्गल दिवसपर उनके चरण-शरण होकर अपना जन्म-जीवन सफल और धन्य करें।

बोलो नन्द-यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्णकी जय!
नव-नीरद्-नीलाम कृष्ण तन परम मनोहर।
त्रिभुवनमोहन रूपराशि रमणीय सुभग वर॥
कस्तूरी-केसर-चन्दन-द्रव-चर्चित अनुपम।
अङ्ग सकल सचिन्मय सुषमामय सुन्द्रतम॥
कीर-चञ्चु-निन्द्क निरुपम नासा मणि राजत।
कुञ्चित केश-कलाप कृष्ण लख अलिकुल लाजत॥

सिर चूड़ा, शिखिपिच्छ, मुकुट मणिमय अत्युज्यल। कर्ण-युगल कमनीय कर्णिका कुण्डल झलमल ॥ कुटिल भुकुटि, हग-युगल विशद् विकसित अम्बुजसम रुचिर भङ्गिमा, लिलत त्रिभङ्गी, मध्यम वंक्रिमा पीत वसन तडिताभ, दशन द्युतिमय, अरुणाधर। मुख प्रसन्न, मुसकान मधुर, मुरलिका मधुर कर। नित सेवक-भक्तानुग्रह-कातर। रस-प्रेम-सुधा-आस्वादन-तत्तर॥ प्रेम-रसिक वज-प्रिय वज-जन-सखा-स्वामि-सेवक तन-मन-धन। नन्द-यशोदा-तनय वाल-व्रजरमणी-जीवन॥ भगवत्ता, सत्ता, ईश्वरता सारी तजकर। वज-जन-सुख-हित-हेतु द्विभुज निज-इच्छा-वपुधर॥ भाद्र-अष्टमी, कृष्ण पक्ष, बुधवार अनुत्तम। द्युभ रोहिणि नक्षत्र, मध्य-रजनी मङ्गलतम। हुए प्रकट श्रीनन्द-यशोदाके प्रिय सुत बन। निज-स्वरूप वितरण-हित बनकर सबके निजजन॥

परमात्मप्रेम और भगवद्भक्ति

(लेखक-पं॰ श्रीसूरजचन्दंजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)

सर्वेश्वर-सम्बन्धका ज्ञान होनेके बाद तो प्रमास-प्रेम सहज हो जाता है। प्रेम किया नहीं जाता, वह गुद्र आत्माका स्वभाव है, जिसके उपलब्ध होते ही सम्पूर्ण अभाव दूर हो जाते हैं। उपलब्धिका अर्थ अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं—नित्य प्राप्तकी स्मृति या अनुभूति है। मन जब अपना वास्तविक अधिष्ठान छोड़कर विषयों में प्रवृत्त होता है, तब समज्ञना चाहिये कि उसे स्वभावकी विस्मृति हो गयी है। उसे पुन: अपने घरमें स्थापित करना ही स्वाध्य-लाभ करना है। अपने स्वभावसं मनका बाहर जाना ही अस्वस्थ अवस्था है और अपनेमें ठहरे रहना ही स्व-स्थिति है।

आत्मा तो तीन कालमें अशुद्ध नहीं होता; क्योंकि वह 'चेतन अमल सहज सुखरासी' ईश्वरका सनातन अंश है। शरीर कभी शुद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि उसकी उत्पित्त ही अशुचिसे हुई है। शुद्ध करना है तो मनको ही। मनको प्रभुकी और किया कि वह शुद्ध, और जड वस्तुओंकी ओर घुमाया कि अग्रुद्ध । नळी टूँटी इधर घुमायी तो पानी वंद और वाटरवर्म्स थो घुमायी तो पानी प्रारम्भ । अहंकारका खिच दवाया ते 'लाइट' ग्रुरू और अहंकारको ऊँचा किया कि लाइट वंद । तालेकी चाभी इधर घुमायी तो ताला वंद और उधर घुमायी कि ताला खुला । पानीसे ही कीचड़ हुआ और पानीसे ही साफ हुआ । 'भनके हारे हार है और मनके जीते जीत ।' ताल्पर्य यह कि परमात्माकी और मन चूमा कि वह ग्रुद्ध हो गया और विषयोंकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । अव हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । अव हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । उसे हम परमात्माकी और गया कि अग्रुद्ध हो गया । अग्रुद्ध हो गय

ॐकारेश्वर, महाकालेश्वर, रामेश्वर और पुक्रीश्व आदि सर्वेश्वर महाशिवको कहते हैं—ये पु^{वृति अवश्वके} अधिष्ठाता होनेसे आनन्दके समुद्र हैं। उपिष्वी निय

संस्य ९]

ज्वल । लमल ॥ वुजलम्। वंकिम॥ जाधर । र कर। -कातर। न्तत्पर ॥ मन-धन। जीवन ॥ तजकर। वपुधर॥ नन्तम।

भाग ३६

। नलकी की ओ वाया तो में लाइट

लतम ॥

वन।

जिजन ॥

वंड और वड हुआ है औ

की ओ तंनी औ

की ओर हा कुछ

धुरमेश्रा अवस्थाके

विषदीर्वे

कारण शरीरके समष्टिरूपको 'ईश्वर' संज्ञा दी गयी है। कारण विवाहके समय महादेव प्रभु कहते हैं हमारे शा शा, दादा विष्यु और परदादा तो सबके हम ही है। इस प्रकार शान्ति और आनन्दमय सर्वेश्वर प्रभुके म्म्यको पहचानकर हमें समत्वकी ओर जाना चाहिये: ्र्_{ष्रु परमार}मासे प्रेम हुए त्रिना इस तत्त्वकी उपलब्धि म्म्य नहीं । परमात्माका अर्थ है 'महाब्रह्मा' जिसे शास्त्रोंमें क्षणार्भिते नामसे उछिखित किया गया है । ये ही _{अन अवस्थाके} अधिष्ठाता होनेसे सृक्ष्म शरीरके स्वामी है। गीतामें भगवान्के द्वारा आदेश दिया गया है कि क्षाता इस नामवाला तत्त्व इस देहमें पर-पुरुषके ल्मं क्रीडा कर रहा है। जिस प्रकार ईश्वर हृदयमें क्षाजमान होकर सर्वभूतोंको घुमा रहा है, उसी प्रकार पापतत्व पर-परुत्रके रूपमें सबकी देहोंमें सुशोभित है। गीतामें 'परमात्मा' और 'ईश्वर' का तो वर्णन आया र्षंतु भगवानुका नहीं; क्योंकि गीता भगवानुकी कही हुँ है— 'श्रीभगवानुवाच', न कि 'श्रीपरमात्मा उवाच' या 🍇 उवाच'। ईश्वर और परमात्माका वर्णन तृतीय पुरुषके लमं हुआ है। सत्रमें एक सृत्रात्नाको पहचानकर सभी कींसे सहज प्रेम होना ही परमात्मप्रेमका लक्षण है।

'भगवान्' शब्द मुख्यत: श्रीविष्णु, श्रीकृष्ण या वासुदेव-र्वे सुमें पुरुषोत्तमके लिये प्रयुक्त है, जो जाप्रत् अवस्थाके ^{भीष्ठाता} होनेसे स्थूल शरीरके साथ-साथ अखिलविश्व-भार्के अधिपति हैं—संरक्षक हैं । सम्पूर्ण विश्व-विराट्के में भिष्णका विधान या कानून ही 'श्रीमद्भगवद्गीता' है, मिने सम्पूर्ण विश्व-विराट्को आकृष्ट कर रक्खा है। सबका अर्काण करनेंत्राले ही श्रीकृष्ण हैं। आकारामें जो कियापक स्यामसुन्दरकी झाँकी न हो तो अनन्त प्रह-^{अप्रह परस्पर} टकरा जायँ । वे उनके आकर्षणसे ही मियमित होकर नित्य चक्कर लगा रहे हैं। उनकी भक्ति है की जा सकती है — जानना और प्रेम करना ^{गती} मानना केवल उन्हींके प्रसादसे प्राप्त होता है।

अपना प्रस्वार्थ भगवद्धक्तिमें नहीं माना जाता । भगवद्गक्तिमें लेना चैन तक नहीं, सब देना-ही-देना ते । अन्य पाठशालाओंमं पाठ याद होनेपर छट्टी हो जाती है, परंत भगवद्धक्तिकी पाठशालामें याद हो गया, उसे अनन्तकाल जिसे वह ठाष्ट तक छद्रीकी भी इच्छा नहीं होती । हरिका भक्त मुक्ति इसीछिये नहीं चाहता । ज्ञानमार्गमें मुक्ति ध्येय है और प्रेममार्गमें वह हेय है ।

मुक्ति कहे गोपल सीं, मेरी मुक्ति कराय। वजरज उडि मम्तक चढै, मृक्ति मृक्त है जाय ॥

यदि मक्तिको अकेले सिद्धलोकमें न रहना हो तो वह वृन्दावनमें जाकर सहज गोपीभावसे प्रभुछीछामें सम्मिछित हो सकती है। वहाँपर वह अपने धर्मसे मुक्त होकर स्थिरता छोड़ती हुई नित्य निकुञ्जमें, नित्य रासमें निमग्न रह सकती है । शर्त है कि इसमें श्रीराधिकाजीकी अनुमति हो; क्योंकि भगवरप्रेमका निगृद रहस्य, उसका परम मर्म वे ही समझती हैं--केवल एक वे ही । भक्तिको वहीं अनन्य या पुष्ट समझना चाहिये, जहाँ किसी भी प्रकारकी पूजा भी खीकार नहीं की जाती। वहाँ तो भक्त-

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥ सबको प्रणाम करता है और समझता है--

में सेवक सवराचर रूप स्वामि भगवंत।

वह सत्रको मान देकर आप अमानी रहताहै। सम्पूर्ण मान हनन करनेवाले हनुमान् भी भक्तिके आदर्श हैं । सम्पूर्ण राम-परिवारकी रक्षा करनेपर भी वे कहते हैं 'प्रभो ! आपकी ही कृपा है ।' वे प्रतिष्ठा नहीं लेना चाहते । प्रयागराजमें जैसे सरस्रती गुप्त रहना चाहती है, उसी प्रकार वे भगवद्भक्त सबसे छिपकर रहना चाहते हैं । ब्रह्माजी भी इसीलिये पूजा नहीं चाहते। केवल पुष्करमें ही उन्होंने अपने श्रीविप्रहको प्रकट किया है,

HY

हरेन

कल

भाष्

पवित्र व

हीनाम,

अत्यथा र

बड़े

अनुसार

उसाहके र

म्हान् पुण्य

मिसे चल

ययी सूच

चना दुउ

स्रामन्त्रका

ने अधिक

ग्रेमियोंके ह

हिमी अंश

होसकता है

ह्या दे-

गवान् श्र

30

ख्याणका

श्रोने इस ह

क्ल्याण की

मिन्यमें नि

(8)

(5)

विशोम भी

अन्यत्र नहीं । भगवद्भक्तोंके चरणचिह्नोंको धारण करके ही भगवान् अपनी छातीको कोमल वनाते हैं । जैसे प्रेममें प्रदर्शन नहीं होता, 'दर्शन' होता है; 'प्रसिद्धि' नहीं होती, 'सिद्धि' होती है; वैसे ही भक्तिमें 'विभक्ति' नहीं होती । पतिकी भक्तिको ही भगवद्भक्तिका सर्वोत्कृष्ट प्रतीक मानना चाहिये । वह पत्नी अपने पतिसे इतनी अधिक लगी हुई होती है कि उसकी तनिक-सी त्रिभक्ति उसे सहन नहीं होती । विभक्ति यानी अलग होना और भक्ति यानी लगन । श्रीमान् वरराजासे लग्न होते ही दरिद्र घरकी लड़की भी श्रीमान् वन जाती है, उसी प्रकार भगवान्में लगते ही हमारी वृत्ति सम्पूर्ण विश्वकी स्वामिनी बन जाती है--यही कारण है कि वह प्रभुके सम्बन्धसे सम्पूर्ण विश्वकी भक्तिमें उछिसित होती जाती है । प्रतिक्षण वर्द्भमान प्रेमसम्पन्ना भक्ति ही मानव-जीवनका चरम परम लक्ष्य है।

सर्वेश्वर प्रमु सुषुप्ति अवस्थाके खामी होनेसे तमोगुणके अनुशासक हैं, इसलिये उनसे नित्य-संयुक्त काली-निद्राद्वारा नित्य-नियमित संयुक्त होकर ही शान्ति मिलती है। इसीलिये उसके प्रतिष्ठाता 'शंकर' हैं—शान्ति करनेवाले। इसी प्रकार हिरण्यगर्भके रूपमें महाब्रह्मा प्रमात्मा स्वप्न-अवस्थाके स्वामी होनेसे रजोगुणके अधिष्ठाता हैं, इसी कारण खप्रमें अनेकानेक संकल्प-विकल्प होते रहते हैं । इहलोककी अधिष्ठात्री जामृत् अवस्थाकी मालकिन हो भगवद्गक्ति है, जो विष्णु भगवान् वासुदेव पुरुषोत्तमके उत्तम खरूपमें निरन्तर बढ़ती हुई रहती है। इहलोक यानी इन्द्रियोंका लोक और परलोक यानी मनका लोक, उसी प्रकार परमलोक यानी आनन्दका लोक । इन सव लोकोंमें आलोक आत्माका है। जाप्रत् अवस्थामें विष्णुका लक्ष्मीके साथ खेल चलता है। खप्तमें सरखतीके साथ ब्रह्मदेवका संकल्प-विकल्प चलता है और सुषुप्तिमें शंकरके साथ पार्वती, काली निद्रा या सम्पूर्ण अहंकारका संहार

करनेवाली दुर्गाका रमण चलता है। जाप्रत् अनुसार भगवान् रुक्मिणी आदि हजारों शक्तियोंके द्वाक्त अनुशासक हैं; क्योंकि जाम्रत् अवस्थामें इन्द्रियके द्वि ही आलोक आता है । उनकी इच्छासे ही कमीका राधिकाजी उनके सुखको बढ़ानेके ध्येयसे उन्पर 🛊 अनुशासन कर लेती हैं—यही भगवद्गिका एहरा है जो हमारे पुरुषार्थीकी पराकाष्ट्रा है। परमार्थ है-सर्विश्वरका. सम्बन्धः प्रम प्रमार्थ है — प्रमात्माका प्रेम क्षे उनका मर्म यथार्थ रूपसे अनुम्तिमं आना ही सार्थ, पार् प्रमार्थ और प्रम प्रमार्थसे भी परे भगवान्की अन्य अन्यभिचारिणी अहैतुकी परात्परा भक्ति है, जो हाला चरम ध्येय है।

सर्वेश्वर प्रभु महादेवका सम्बन्ध स्थामसुन्दरके सक आकृतिवाली उनकी बहन कालिकासे क्यों हुआ! इसीलिये कि सत्त्वगुण संसारके संहारका कार्य को अर्थात् समस्त क्रियाओं के अहंकारको अपनेमें समेर है। इसी कारण रुद्रदेव अहंकारके अधिष्ठाता माने जाते हैं। लाल वर्णके ब्रह्मदेव-स्वरूप परमात्मा तेज:सह्य होती उनको कर्पूरगोर शरभावतार शंकर भगवान्की कृत सरस्वती दी गयी है कि रजोगुण शान्त रहे, निकि भावसे सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त रहे । इयामसुन्दर भगवार विष्णुखरूप श्रीकृष्ण पुरुपोत्तमको इसीलिये स्रिके वर्णवाले परमात्मा ब्रह्माकी वहन लक्ष्मी दी गयी है कि वे समुद्रमें सोये ही न रहें, रजोगुणकी सहायता पका सत्त्वगुणको हृद्यमें रखकर अपनी दृष्टिको भगगन् महादेवके प्रति चढ़ाकर सुद्र्शन प्राप्त करें और अपन विवेकपूर्ण कर्म चलाते हुए सृष्टिका संरक्षण कर^{तेमें सार्थ} वने रहें । तात्पर्य यही है कि सर्वेक्षा महावेका सम्बन्ध, परमात्मा ब्रह्माका प्रेम और विणुभावात् भक्तिकी परम चरम अनुभूति ही मानव-जीवनकी संभूष कृतकृत्यता है।

श्रीभगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

(बोड्या नामके लगभग ८६६ करोड़ महामन्त्र अर्थात् १३% अरवसे अधिक नामका जप)

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम् । पाननेभ्योऽपि हरेनीसैव केवलम् ॥ हरेनींस . हरेनींम हरेनीसैव केवलम्। क्ली नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

भाग है।

अवस्याने

बाक्र के द्वारि

कामी कार्न

नपर न

रहस्य है,

青--

प्रेम औ

र्ध, परार्थ,

अन्या

नो हमाग

के समान

हुआ!

ार्य को

मेट ले।

ाते हैं।

होनेसे

निलि-

भगवात्

पाका मागत्

अपना

नं समयं

हिंग

वान्वी

HIP

पाधरोंमें भी मधुर, मङ्गलोंमें भी मङ्गल और पावनों जित्र करनेवालों) में भी पावन केवल हरिनाम ही है। क्षाम, हरिनाम, केवल हरिनाम ही कलियुगमें गति है। अवधा गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है।

बहे ही हर्षकी बात है कि 'कल्याण'में प्रकाशित प्रार्थनाके भुगर भगवत्प्रेमी पाठक-पाठिकाओंने गतवर्ष यहत ही आहं साथ नाम-जप स्वयं करके तथा दूसरोंसे करवाकर 🕫 पुण्यका सम्पादन किया है। उनके इस उत्साहका पता ली चलता है कि पिछले वर्ष जहाँ केवल १२०० स्थानोंसे श्री स्चना दर्ज हुई थी, वहाँ इस वर्ष १३४० स्थानोंकी ज़ा दर्ज हुई है और मन्त्र-जप जहाँ गतवर्ष केवल पूरे क्षान्त्रका ३४ करोड़ हुआ था, वहाँ इस वर्ष ८६ करोड़से वैअधिक ऊपर हुआ है । इसके लिये हम सभी नाम-मियोंके हृदयसे आभारी हैं। मन्त्रजपकी इस संख्या-वृद्धिमें भी अंशमें अष्टप्रहीके संकटका भय भी एक प्रधान कारण किता है। वह विपत्ति भी स्वागतके योग्य है, जो भगवान्में भादे—भगवान्का स्मरण करा दे। इसीलिये कुन्तीदेवीन भाग श्रीकृष्णसे विपत्तिका वरदान माँगा था---

विपदः सन्तु नः शश्वत्।

कुछ भी हो, मन्त्र-जप-संख्याकी यह वृद्धि ब**ड़ी** ही श्राणकारिणी है। हमें आशा है कि हमारे पाठक-पाठिका की इस वर्द्धमान उत्साहकी उत्तरोत्तर वृद्धि करते जायँगे। प्रार्थनापर इस वर्ष जो जप हुआ, इसके भिष्यमें निम्नलिखित निवेदन है-

(१) इस वर्ष भी केवल भारतमें ही नहीं, ब्राहर विद्योमि भी जप हुआ है।

(२) इसमें केवल उपर्युक्त सोलह नामके महामन्त्रकी

ही संख्या जोड़ी गयी है। भगवान्के अन्यान्य नामांका भी वहुत जप हुआ है, वह इस संख्यासे पृथक है।

- (३) बहुत-से भाई-बहिनोंने जप अधिक किया है, सूचना कम भेजी है और कुछ नाम-प्रेमियोंने तो केवल जप करनेकी सूचना भर दी है, संख्या लिखी ही नहीं।
- (४) कुछ भाई-बहिनोंने केवल जप-संख्या ही नहीं लिखी है, उत्साहवश नाम भी लिखे हैं, यद्यपि हमारे पास लिखित नामोंके प्रकाशनकी उपयुक्त सुविधा नहीं है। इसके लिये क्षमा-प्रार्थना है।
- (५) बहुत-से भाई-बहिनोंने आजीवन नाम-जपका नियम लिया है, इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं।
- (६) स्थानोंका नाम दर्ज करनेमें यथासाध्य सावधानी बरती गयी है। इसपर भी भूल होना एवं कुछ स्थानोंके नाम छूट जाना सम्भव है। कुछ नाम रोमन या प्रान्तीय लिपियोंमें लिखे होनेके कारण उनका नागरी रूपान्तर करनेमें भूल रह सकती है, इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं।
- (७) सोलह नामोंके पूरे मन्त्रका जप हुआ है-८६, ५०, ९५, ३०० (छियासी करोड़, पचास लाख, पंचानवे हजार, तीन सौ)। इनकी पूर्ण नाम-संख्या होती है-१३, ८४, १५, २४, ८०० (तेरह अरव, चौरासी करोड़, पंद्रह लाख, चौबीस हजार, आठ सौ)।

स्थानोंके नाम इस प्रकार हैं-

अंजनासँगी, अकबरपुर, अकलकोट, अगेहरा, अगौस, अचलजाम् , अचलपुर, अजमेर, अजैपुर, अठेहा, अतरहोला, अतर्रा,अथरौली,अदलहाट,अनूपपुर,अन्ताना, अन्नामलाईनगर, अबोहर, अमरवाड़ा, अमरावती, अमलनेर, अमलापुरम्, अमात धर्मक्षेत्र, अमीनगर सराय, अमृतसर, अम्बडगद्दी, अम्बारी, अम्बालाछावनी, अरई, अरनी, अरिया, अरसारा, अरुविक्सरा, अर्जुनापाद, अलवंडी, अलवन्दा, अलावलपुर, अलिपी, अलीगंज (एटा), अलीगंज (सोरी) अलीगढ़, अलीचपुर कैम्प, अलीपुर जीता, अल्मोड़ा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अवसेरीखेडा, अशोकनगर, अहमदाबाद, अहिल्यापुर, ऑतरी, आकोट, आकोला, आगरा छावनी, आगरा शहर, आठगढ, आदोनी, आनन्दनगर, आनन्दपुर, आनन्दपुरम् (शिमोगा), आवगीला,आवगीला सायर, आबूरोड,आमाटोला, आयराखेड़ा, आरम्र, आरम्भा, आरा, आलन्द, आलीम्ड, आवया जागीर, आसन्सोल, आसी, इगलास, इचलकरंगी, इटारसी, इटौंजा, इन्दौर, इलाहाबाद, ईकरी, ईटहर, ईसागढ, उगामा, उगारखुर्द, उच्चापिंड, उजान गंगोली, उजीरे, उज्जैन, उडुपि, उत्तरसंडा, उदईपुर, उदयपुर, उदयपुरा (सागर), उन्नाव, उन्हेल, उपाध्याछापर, उमगरा, उमधा, उमरानाला, उमरी, उमला, उरदीन, उलझावन, उलिणा (हाथीखर), ऊँटी, ऊना, ऊमरपुर, एकमा, ५६ ए. पी. ओ., एरंडोल, ऐझी, ॐनगर (भद्रपुरा), औंटा नागनाथ, औरंगावाद, कंधार, ककिंद्रगाँ, ककवाड़ा, किकनाडा, कचौरा, कजरा, कटक, कटकी (रीवाँ), कटगी (रामपुर), कटघरवा, कटहराटाड, कटिहार, कदाणे, कनास, कन्दईपुर, कन्नोद, कपुरदा, कमलापुर, कमासिन, कमासी, करमा, करमाटाँड, करलू, करवड़, करवल मझगाँवा, करसौत, करियत, करुआ, करोम, करौंदी, कवीं, कलकत्ता, कलमन्री, कलाली, कवलास, कवर, काँकरोली, काँकर, काँठ, कागुपाडु, काठमाण्डु, कातुरली, कादरगंज पढेरा, कादिराबाद, कानिश्चणी, कापसी, कामठी, कारंजालाड, कानपुर, कालियास, कालूचक, कावलि, कावीठा, काशीपुर, किछा, किरारी, किशुनगंज (दमोह), किशुनगंज (म० प्र०), किश्तवाइ, किष्टामपिल, कुंजरोद, कुँड्ई, कुटला, कुढ़ैच, कुण्टाकानम्, कुमादपुर, कुम्भकोणम्, कुम्हरिया खास, कुरनूल बाजार, कुरम, कुलकुलपिल, कुलाली, कुवामला, कुसगवाँ अहिरान, कुही, कुचिबहार, कृष्णपाली, केंद्रमा, केन्नेम्र, केशवदासपालन, कैकलूर, कैंथरा, कैथा, कैलगढ़ स्टेट, कोकरीकलाँ, कोटगीर, कोचीन, कोटरी, कोटेतरा, कोठड़ी (उज्जैन), कोतमा, कोद्दोभाठा, कोथापल्ली, कोपड़िया, कोपाखेड़ा, कोयमबत्तर, कोरो राघवपुर, कोल्हापुर, कोसली, कोहरगढ़ी, कौवाहा, खगौल, खजुराहा, खजूरीपंथ, खडिया, खडेरटीकतपुरा, खड़ेही, खतौला, खतौली, खपरा, खपरापाली, लमरिया, लम्हौती, लरगपुर-अरसारा, लरगपुर भरीड, खरगापुरमिश्र, खरदाह, खरहाठार, खरिका, खरीकबाजार, वर्साङ्ग, वलपुरा (बाला), खामखेड्रा, खारी, खालिसपुर-खीरीकोठा, खुड़ी, खुदागंज, खुरजा, खुरानामपुर, खुसरूपुर, झॉसड़ी, झॉसी, झारसुगुड़ा, झालरापाटण, झिर्या, प्रा खीरीकोठा, खुड़ी, खुदागंज, खुरानामपुर, खुसरूपुर, झॉझर, झूथरी, झूमरी तिलैया, झूमियाँवाली, ट्रांडवी, ह्यां

खूँटलिया; खेरागढ़; खेरेबाबा (मथुरा), खैराबाद, के खोपली, खौड, खौरी, गंगाखेड़ा, गंगाधार, गंगापुर (राजसाः गंगोरा, गंगोह, गगहा, गठपूरा, गडत, गढ़गाँव, गहाँ गढ्वा, गढ्वाङ्ग, गढ्ग, गढ़ीपुराहरदा, गभाना,गमनियाहा गया, गरचा, गोरीफा, गरौठा, गर्लाङ्ग, गवालेङ्ग, गला गाजियाबाद, गाडरवारा, गादिया, गारंगा, गिरंगा, गिरंगा, गुजराः, गुड़िहारी (रायपुर)ः गुडेवल्ट्र्रः, गुनाः,गुराड़ियाक्कि गुरावड़ा, गुलवर्गा, गेंडोली, गेसुपुर, गोंडा, गोहरा, गोल गोझरिया, गोढवा, गोड़हिया, गोड्डॉ (करमाटाँड), गोपाला (पटना), गोपालपुर (भोपाल), गोरखपुर,गोलभा,गोलाजा (वक्सर), गोविंदगढ़ (जयपुर), गोविंदपुर, गोविंगुः देवी, गोविंदोडीह, गोसाईंगंज (फैजाबाद), गोमाईंगं गोसी अमनौर, गौरा, गालियर, घनौरा, भाराफु घुटकूनवापारा, घुसुड़ी (हवड़ा), घोंटा, घोडा, क्रण तिवारी, चकराता, चकिया, चक्रमर, चक्रौंध, चण्डील चतुरैया, चनायनवाँध, चन्दवारा, चन्दा, चन्दौसी, चतुरु चम्पानगर, चाँग, चाँदपुर (बिलारी), चाँदपुर सा चाँदराना, चाईवासा, चालीसगाँव, चावण्डिया, वियाँक चिटगोप्पा, चित्तावद, चित्तेगॉव, चिवरोल, चिरन महिली चिलवरिया, चीखलठान, चीपरुपह्लि, चुरवरा, चुरैला चेताँ, चेरिया वरियारपुर, चैनपुर, चोकड़ी, चोगोष चोपड़ा, चौधरी वसन्तपुर, चौपारण, चौरा, चैहा छतरपुर, छपकहिया, छपरा, छपारा, छिंच, छिंगे छिबरामऊ, छौलापुर, अंगीपुर छितीपुर, छिन्दवाड़ा, जंबुसर, जगतपुर अहीर, जगदीश, जगदीशपुर अहाली जगनेर, जगाधरी, जड़ोल, जनगाँव, जनारा, जनौड़ी, जखा जबलपुर, जमनी पहाङ्पुर, जमशेदपुर, जमालीपुर, जामालीपुर, शिव, जमुई पण्डित, जम्मू, जम्मूतवी, जयपुर, वयिद्धा दाणी, जयहरी खाल, जरगवाँ, जरार, जरवाडी, जलाँक जलानाः, जवाहिरः, जसोः, जागपुरः, जादूशानाः, जानकः जामागुड़ीहाट, जालन्धर शहर, जालोर, जावद, जावरा, जावली, जीराबर जुमेराती, जुन्हेरा, जुहाबदा, जेतलपुर, जेलदाएँ, जैतपुर, जैतहरी, जैतीपुर कुहआ, जैतीली, जैयारी, जोगीरमपुरी, जोगीराङ्गा, जोजोहाटू, जोधपुर, जोवाहरी जीनपुर, जौराखेरा, न्वाली, झजर, झड़ोल, झरी, झलेखा झाँसड़ी, झाँसी, झारसुगुड़ा, झालरापाटण, झिटिया, झिलीवार

मंख्या

भवानी लोवन

तिमर्न तिरुवइ

神灵 दनापुर

स्त्री) दारापुर

दिलीपन दुर्गीगुरि देवकलि

देवली, बोरऊ, **धनीगवा**

धुनसोर देखी,

धर्मशाल

नगीना, नेन्द्रन्पु (नेपार

न्खन, नवधनः नागौद,

नान्देड़ नासिक (पार्ल

निवादा नेपानगः नोनार

न्यू अल

पटीवा,

भाग ३३

ाद, कें

राजसार

गदिशि

नियालाः

ि गाजना

, गिर्धान

ड़ेयावि_{ज्या}

, गोगावाँ,

गोपालप

गोलावाजार

गोविंदपुर

गोसाइगाँ३

घाटमपुर

चकरण

चण्डीगर

चन्द्रप्र

र सान

चिरगाँग)

महादेवी

च्रैल्या।

चोरगोधाः

चौहा

हिछोर

जंगीपुर

, जपला

यसिंहपुरा

जल्मावि)

जालनाः

रीराबाद।

जैती

, जिल

वरडीहा

लोवर

इहैर, टाँकी कदल (श्रीनगर), टिकारी, टिंगिरिया, क्ष्रिंग, हिमरनी, टीकमगढ़, टेंगा (अफ्रीका), टेमीखुर्द, क्षेत्र, देमोरनी, टेहरीवाजार, ठठारी, ठठिया, ठीकहाँ ्रामीपुर, हूण्ड, डॅडवा, डकसरीरा, डगावाँ शंकर, बाहिल रोड, डुगरा, डुन्वा, डुमटहर, डेहली, डोंड़ी, क्षेत्रा टोला, ढखवा, ढाणकी, ढावला मोहन, तपकरा, क्षोवन वन्धवारण्यः, तमलूरः, तारापुरः, तालडीहः, तालिः, तिकपुरः, क्रार्ती, तियरा, तिरवा पुराना (श्योपुरकलाँ), तिरुनेलवेली, क्रिवह्यारु, तिरुवारूर, तिलकपुर, तिलाठी, तुंदू, तुनिहा, र्ग, तुल्सीपुर ग्रांट, तूँगा, तोंडोली, तौरा, त्रिचनापल्ली, _{विवेद्धम्}, थाना, थोखा, दतुआर, दनियाल परसौना, तापुर (बाबादीन), दवखोहरा, दवयाना वँगला (निरसा हीं), दमोह, दरवा, दरिआँवा टोला, दलकी, दशवरहा, ह्मीाँव, दामोदरपुर, दारे-ए-सलम (अफ्रीका), राएएर, दारी, दार्जिलिङ्ग, दिग्धी, दिघवटकुटी, दिदवारा, विर्णपनगर, दिल्ली, दुब्बाक, दुभी महिनाथपुर, दुर्गापुर, र्ग्गीगुडि (शिमोगा), देपालपुर, देउलगाँव साकरसा, रेकलिया, देवकली, देवगाँव, देवबंद, देवरिया, देवलाया, वेकी, देहरादून, दोदपुर, दोलाईश्वरम्, दौराला, दौलतपुर, बोरक, धनगरहा, धनगाड़ा, धनवाली, धनवाही, ^{দ্দানা} (धुंधुची), धरान (जुद्धनगर), धर्मकुंडी, र्मग्राल (कॉंगड़ा), धापेवाडा, धार, धारवाड़, भुत्तोर, धुलिया, नंदग्राम, नई आवादी संजीत, नई ह्लि, नगला उदैया, नगला मुर्ली (हिम्मतपुर), ^{गीना,} नजीराबाद, नडियाद, नदवई, नथुवाखान, न्दनपुर, नन्दाडीह, नवीपुरखेरिया, नयागढ़, नयानगर (नेपाल), नयावाँस, नयासराय, नरखोरिया, नरमण्ड, ^{नेखन}, नरसाईपिंहल, नरसिंहपुर, नल्लजर्ला, नलिनी, ^{नव्धन}, नवादा, नवीनगर, नसीरावाद, नागपुर, नागलपुर, नागौर, नाड़ीकलॉ, नाड़ीखर्द, नादनेर, गिल्हें, नान्हकार, नारदीगंज, नारनौल, नारायनपुर, ^{नातिक,} निभागाँव, निओली, निचनौल वनकटी, निमाज पाली), निमियाँ, निम्माकुरु, निरसाचट्टी, निल्पामारी, भिवादा (इटावा), नीमीयान, नेक, नेजगढ़ (आठगढ़), नेपानगर, नेम्मिकुरु, नैकापार, नैनी, नैनीताल, नोखा, नीनार, नोहझील, नोहटा, नोहरं, नौगावाँ, नौरजा, नौराखेरा, भू अलीपुर, पंजनारा, पचमढ़ी, पछौहा, पटना, पटियाला, प्रोता, पट्टी सोयतकलाँ, पठखौली, पठानकोट, पड्थाना,

पतुरजाः, पथ्नोटः, पदुमतराः, पद्मनाभपुरः, पनहाँसः, पन्त्यूड़ीः, पन्ना, पपरेंदा, परगी, परतेवा, परली, परली बैजनाथ, परसदा, पलटाः, पलसूदः, पलायमकोङ्ईः, परसरामपुरः, परसावादः, पसवाड़ा, पहाड़पुर, पहासू, पहीवाजार, पांडरखलि, पाँवशी, पाटणवाच, पाडली, पाण्डेगाँच, पाण्डेटोला (लालगढ़), पाण्डेपुर, पाथड़ी, पानसेमल, पानागढ़, पार्डी बुजरुग, पालगंज, पाली, पालीखुर्द, पिंडरा वाजार, पिठौरागढ़, पिथौराबाद, पिपरा, पिपरिया (म॰ प्र॰), पिपळा, पिपळोन, . पियरोंकलाँ, पियरों (सरैया), पियरौंटा, पिल्लुवा, पिलानी, पिसनावल, पिसौई, पिलबानखेडा, पीपरतराई, पीपरी गहरवार, पीपलरावा, (वहनोली), पीपल्य, पीपल्या जोघा, पीरपैंती, पीलीभीत, पुंजापुरा, पुआरखेड़ा फार्म, पुखराया, पुरहिया, पुराना मेसाड़ (काठमांडू), पुरी, पुरुलिया, पुतायाँ, पूना, पूरे खरकपाणि उपाध्यायः पूरे मिक्षुकरामः, पूरे मंसा शुक्छः, पूरे रामबक्स शुक्छ, पूरे छोकई तिवारी, पूर्व पहाड्वन (नेपाल), पुलियूर, पूसद, पृथ्वीपुर, पेटवाइ, पेढ़ाम्बे, पेरम्बावूर, पेरवाड़, पेंची, पैकेरापुर (आठगढ), पैरा, पोलावरम्, प्रतापगढ् (अलवर), फक़ीर कोंडापुर, फत्तेपुर (जसोदा), फतेपुर (फर्रखाबाद), फतेपुर (फैजाबाद), फतेपुर (संथाल परगना), फरसगाँव, फरसाहा गाठे, फरह, फरहदा, फरीदावाद, फरेंदा शुक्ल, फलोदी, फागी, फिल्लौर, फुलबरिया, फुलौत, फैजपुर, फैजाबाद, ंगीनोबाडी, वंडोल, बंधावल, वकानी, वकेवर, वकोरिया, वक्सर, बखरी, बखेडू, बगडिया, बजरंगगढ़, बजरंगपुरा (देवास), वजौराह, वटपार, वटराली, वड़गाँव, वड़हिया, वड़ैत, वड़ौत, वड़ौदा, वदायूँ, वधराजी, वनद्वार, वनमनखी, वमकोई, वमनईकलाँ, वमस्यूँ, (अल्मोड़ा), वमूलिया, वम्बई, वम्बईफोर्ट; वम्हनी वंजर, वम्हनोदा, वर्राजपुर, वर, बरवाहा, बरसोवा, वरहलगंज, वरिगमा (जगनेर), वरूँधन, बर्व्ह (जगनेर), बरेली, बरौड़ा, वलसार, बलुवा कालियागंज, वसंतपद्दी (मुजप्फरपुर), वसौली, वस्ती, वहराइच, वहादुरगंज, वहेर कुँआ कोट, ब्रजनाथपुर, बाँदीकुई, बाँसाकलाँ, बाँसी, वागपिपरिया, बागलकोट, बादीपुरा (रामपुरा), बानमौर, बाबूडीह (राजधनवार), बामीरकलाँ, बारगढ, बारनेस, बाराबंकी, बाराचिकया, बारावाजार, बारू, बालका, बालाघाट, बाली (आठगढ़), बाल्याट (चुनार), बालोतरा, बालोन,

सरई (

सरियाः

गाठे,

(HO

साहेवर

सिरजग

पारु

ऐ

स्कार्

आदेश

बातको

जमानेर

राम औ

पत्त १

जीवनव

इतिहास

वेचता

हदयपर

तथा उ

और म

रेशवास

विघवाँ, विछौरा, विजवार, विजोलिया, विझरौली, विराल, बिर्रा, बिलग्राम, विलासपुर, बिसलपुर, बीकानेर, बीकोर, बीवापुर, बीबी, बीजाभाट, बुधारा, बुधौली, बुद्धूचक, बुरुडगाँव, बुलन्दशहर, वेंगलूर, वेंता, वेगना, वेगुसराय, वेमेतरा, बेटमा, बेनकनहल्ली, बेलखरा, बेलमंडई, वेलापुर, वेलाप्रसादी (झलारी), बेवाइका, वेहटा, वेहटाबुजुर्ग (पड़री लालपुर), वेहर कुँआ कोट, बैतूल, बैराजी, बोइदा, बोर्टाबाजार, बोथ, बोधन, बोरधरन, बोलमंडई, बोलिया, बौली, ब्यारा, ब्यावर, मंडारज, भंडावद, भगरतोला, भगवतपुर गाठे, भदेवा, भद्रावती, भटगाँव, भटगाई, भित्सला, भमकी, भमरहा, भमरा, भमरा गाठे, भरथा, भरथौली, भरपूरा, भरफोड़ी, भराम, भरावदा, भरोली, भलूलूपुरे, भलूहीपुर, भवानी, भवानीपुर वाजार, भागलपुर, भाटपचलाना, भानपुर (बजाग), भारकच्छ, भारथू (मोसिमपुर), भावनगर, भावलालेड़ा, भिटोनी, भिन्ड, भिलाई वाजार, भिलावट, भीमड़ास, भीर, भीलवाड़ा, भुरका, भुवनेश्वर (न्यू कैपिटल), भुसावल, भूज (कच्छ), भेंड्, भेंमलोटन, भेंसा (सुनारी), भेदा, भेलसी, भीरिया, भोईपुर, भोजड़े, भोट, भोपाल, मंगलगाँव, मंडला, मंडी डववाली, मकथल, मगरमुँहा, मदुकपुर, मटियारी, मटूँगा (वम्वई), मदुकपुर (शाहावाद), मठिला, मडिक्कमाला, मढ़न, मण्डी (हिमाचल प्रदेश), मथुरा, मदुरा, मद्रास, मधुवन, मनमोहनगाँव, मनावर, मनासा, मनीमाजरा, मनेर, मर्गाओं (गोआ), मलणगाँव पैनो, मलिक नगर, मसकनवाँ, मसूली-पट्टम्, मसोधा, मोतीनगर, मस्की, मस्तीचक, महथी, महथी धरमचन्द (नाड़ी खुर्द), महमदपुर वदल, महादेव समरिया, महाराजपुर (मंडला), महीप विगहा, महुजा, महू वाजार, महेशपुर, महेशपुर कलाँ, महेशाकोल, महोली, माँगरोल, मॉदलखेड़ी, माकलूर, माटे, माण्डल (अंहमदावाद) माण्डल (राजस्थान), माधोपाली, माधोपुर, माधोपुर मानपुर, मानपुर नगरिया, माना, ओंकारजी, माय्यिल, मारवाड़ा, मराठवाड़ (मुरुम), मारिकुप्पम् मिड्की, मिनावदा, मियाऊ, मिरचैया, मिरजागंज, मिरौना, मिश्र गंगटी, मीकड़गाँव, मीरजापुर, मीरपुर कुटी, मीरपुर कैण्ट, मुंगरा वादशाहपुर, मुंगावली, मुंगेर, मुंजी, मुंडगाँव, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुरादपुर, मुरेना, मुसहरी बाजार, मूँदी, मूंसी, मेंहदावल, मेखलीगंज, मेड़तारोड, मेरठ छावनी, मेरठ शहर, मेल्रमपुडि, मेहरा, मेहसाणा, मैनपुरी, मैसूर,

मोंड़ा, मोइनावाद, मोकलवाड़ा (विवरिया), मोल (युवतमार) मोखा, मोड़क, मोतीपुर, मोतीहारी, मोहन्द्रा, मोहन्प्रा, मछनाई, मौदह चतुर, मौधिया, यमुनानगर, येवला, स्क्रीट रतनपुर (आठगढ़), रतमाल, रनेवेन्तूर, रवक्ती, रिक् बेहड़, रसूलापुर, रहमतपुर, रहली, रहावली उनारी, गरी, राजकोट, राजगढ़ (अलवर), राजनाँदगाँव, राजपुर (चमाएक) राजमः, राजमनीः, राजहराः, राजापुर मानपुरा, राजावले, राडरकेला, रानीखेत (मवड़ा), रानीपुर, रानीपुर, रानीपुर (सिक्किम), रानीवाग, रानीला, रामनगर (नैनीताल) रामनगर (पीपरगाँव), रामनगर (मुजफ्फ्स्एर) रामनगर (मेरठ), रामनगर (वाराणसी), रामपुर (उ० प्र०), रामपुर अहरौली, रामपुर (कीलपुर), रामपुर वेहड़ा, रामपुर (महासू), रामपुर (सिकन्दरपुर), रामपुर हवीव, रामपुर हाट, रामलखनपुर, राय, रायचूर, रायु रावीन्थला, रावेरखेड़ी, रासरसिकपुर, रिखाड़, रीवा, हड्की, रुद्रनगर, रुस्तमपुर, रूनीजा, रूपसागर, रूपालेड़ा, लाल रूपाहेड़ा, रेंका, रेवार, रेवाहण, रोहट, रोहाना,रोहिणी,रीजा लंडेपिंड, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मी, लक्ष्मीपुरम्, लखनऊ, ल्लन्सु (इटावा), लखनपुरा (मुरगुजा), लखीमपुर, लिहार लत्ता, लत्तीपुर, ललोई, लश्कर, लहरी तिवारी बीह लहान बाजार (सप्तरी), लाखागुढ़ा, लाडपुर, लाहाए लासलगाँव, लाहेसरी, लालावदर, लावनी, लिपनी, लीलवासा, खुआवद, खुगासी, खुधौसी, खुरारी लोहियाई, वडनगर, वड़हलांत लोकेपुर, लोनावला, (आजमगढ़), वडोदरावाड़ी, वधी सलइया, ^{कार्गांक} वनपर्ती, वनिहाड़ी, वड़क्कन्चेरि, वरकाना, वरदाहा, वरहोमा वरहट, वरियारपुर, वल्लपलम्, वासदेवपुर, वाराणकी वाल्टेयर, वासो, विजयनगर, विजयवाड़ा, विथैया, विहिशा विशाखापटनम्, विश्वनायपुर विलायतकलाँ, विलारीः (डेढ्गॉॅंव), विश्वम्भरपुर, विष्णुपुर, विष्णुपुरवृत्त, विष्तुपुर वीछी, वीजापुर, वीरसिंहपुर, वीवापुर, वेंकटापुरम, वेंपि वेरावल, वेलेर, वेलतूर, वैजापुर (मराठवाड़ा), कैंड बाजार, वैरिहवा, वैसाडीह, व्यारा, शंकरविद्या, शंवलपुर शक्रवस्ती, शर्फुदीनपुर, शर्मिष्ठापुर, शर्मी शंभुगद्, शहरना, शहीदगंज, शाजापुर, शामली, शहनगर, शहर मगरौन, शाहपुरा भिटोनी, शिरपुर (आकोला), शिल्की शिवगंज (एरिनपुरा), शिवपुरी (म॰ प्र॰), विवरी

भाग ३६

वतमाल),

हम्मद्गुर.

स्मिष्ट

रिमेश्र

री, राँटी,

म्यारण),

जिवाली,

रानीपुर

ताल),

क्रपुर),

रामपुर

, रामपुर

रामपुर

रायपुर

रहकी,

ल्याल

ी, रौजा,

अ्वनपुरा

लतिहार वे डीह्य

त्रातेहार, गहेसरी,

ल्हारी।

हलगंग

ानगाँव।

रसोगाः

राणसी।

दिशा

नाथपुर

नपुर

रंपहिंग

लपुर

शमी

EU

那

वलीं।

श्रीतल्यांन ग्रेण्ट, शीराठोन, शेकोली, शेगाँव, शेरकोट, र्गास्का, शोलापुर, शोहरतगढ़, श्योपुर वड़ोदा, श्रीक्षेत्र-माहरी, श्रीगंगानगर, श्रीनगर, श्रीनहर (पुरी), श्रीरामपुर (क्रीर), संगम, संगमनेर, संगरिया, संगीला (श्यामनगर), हिल्ला, सला, सिंठियाँच, सड़रा (मदनेश्वर स्थान), ह्वारा, सणसोली, सणाथा, सतारा रोड, सतोहा, स्यारायण बुझाड़ा, सन्कुई, सनावल, सपताचक, सफेरा ाबार, समस्तीपुर, समाना, समी, सम्बलपुर (देवरिया), हुई (सीधी), सरखेज, सरडीहा, सरवा, सराय भावसिंह, हिया, सरोनी बाजार, सलका, सवलपुर कलाँ, सवाई गर्भापुर, ससहौल, सहजौरा, सहसन, सहसराम कि, सहसराम टोला, सहसराय, सहार, सहारनपुर, क्रिमलपुर, साँगली, सांडिया, साइन, साकरिया, सागर (म प्र), सागर (शिमोगा), साङ्गरेडी, सानी उद्यार, सानोयनाती, सामोथी, सायर, सावँरा (मचनपुर), सवेतवाड़ी, साहनपुर, साहाज बहाल, साहिवाबाद, गहेवगंज, सिंघोलाग्राम, सिंहेश्वर, सिकन्दरपुर, सिकन्दरावाद, सिजगाँव बंड, सिरसिल्ला, सिलपटी, सिलिगुड़ी, सिवनी,

सिवनी पेन्डरा, सिसरेगा, सिहौरा (सिवनी), सीकर, सीढ़ल, सीतापुर, सीतामढ़ी, सीधपकला, सीधम्ख, सीमलखेड़ी, सीरहा, सीसामऊ, सुगिरा (हमीरपुर), मुजानवन, मुन्दरगढ़ (उड़ीसा), मुन्दरपुर, मुम्बुक (सिक्किम), सुरत, सुल्ह, सुल्तानपुर (उ० प्र०), सुहरमाव, सुही सरैया, सूरजपुर, सेनापतमण्डी (रोहतक), सेमराडीह, सेवकरनपुर, सैद्पुर (गाजीपुर), सैद्पुर (भागलपुर), सैमरा, सैल्वारा, सोंढ़, सोडपुर, <mark>सोंदा</mark>, सोन, सोनगाँव (अहमदावाद), सोना साँगवी, सोनूपुर (दरभंगा), सोयतकलाँ, सोहांस, सोंदला, सौण्डा, स्वामीनारायण छिपया, हंसपुरा (जगनेर), हटनी, हथियर, हरकिसुनपुर, हरजीपुर, हरदा, हरदी, हरदी टीकर, हरदोई, हरपालपुर, हरसिंहपुर, हरसौली, हरिद्वार, हरिपुर, हरिहरपुर, हलिया, ह्वीवपुर, ह्वेरी, हसनगंज, हसुवा, हस्सन, हाँसी, हाजीपुर, हातनूर, हाथिया, हिण्डौन, हिनौतिया, हिमगिर रोड, हिवरी, हीथया, हीमा, हीरपर, हैदरगढ़, हैदरनगर, हैदरावाद, होरमा, होशियारपुर।

नाम-जप-विभाग—'कल्याण' कार्यालय, गोरखपुर

पव्यक्रमसे राम-कृष्णका बहिष्कार !!

ऐसा समाचार छपा है कि उत्तरप्रदेशके शिक्षा-विभागने स्कारी पाठ्यक्रमकी पुस्तकों मेंसे उस अंशको निकाल देनेका अदेश दिया है जिनमें 'राम' और 'कृष्ण' का उल्लेख है। इस गतको माननेको जी नहीं चाहता; ऐसा तो मुसल्मानी ज्यानेमें भी (एक औरंगजेवको छोड़कर) नहीं हुआ। एम और कृष्णको सनातनी हिन्दू भगवान् मानते हैं। एत भगवान् न माननेवाले भी उन्हें महापुरुष तथा उनके जीवनको परम आदर्श तो मानते ही हैं। भारतके प्राचीन हितहाससे राम और कृष्णको निकाल दिया जाय तो फिर क्वता ही क्या है ! इस प्रकारकी चीजें करोड़ों देशवासियों के हरवार तो भीषण आधात पहुँचाती ही हैं, देशकी प्रगति तथा उत्थानमें भी सर्वथा घोर वाधक हैं। इस मनोवृत्ति और प्रवृत्तिका शीध-से-शीध रुक हो जाना परमावश्यक है। रैग्रासी मात्रको इसका घोर विरोध करना चाहिये।

'रामरक्षाकवच'की सिद्धिकी विधि

'कल्याण'के गताङ्कमें 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें रामरक्षास्तोत्रके सम्बन्धमें एक घटना छपी है। उस स्तोत्रकी सिद्धिकी विधि जाननेके लिये बहुत-से पत्र आये हैं। अतएव यहाँ उसकी विधि लिखी जाती है।

नवरात्रमें प्रतिदिन नौ दिनोंतक ब्राह्म मुहूर्तमें नित्यकर्म तथा स्नानादिसे मुक्त हो गुद्ध वस्त्र धारणकर कुशाके आसनपर सुखासन लगाकर वैठ जाइये। भगवान् श्रीरामके कल्याणकारी सक्ष्ममें ध्यान एकाग्र करके इस महान् फलदायी स्तोत्रका कम-से-कम ग्यारह वार और यदि यह न हो सके तो सात वार नियमित रूपसे प्रतिदिन पाठ कीजिये। आपकी श्रीरामकी शक्तियोंके प्रति जितनी अखण्ड श्रद्धा होगी, उतना ही फल प्राप्त होगा। यद्यपि 'रामरक्षाकवच' कुछ लम्बा है, पर इस संक्षिप्त रूपसे भी काम चल सकता है। पूर्ण शान्ति और विश्वाससे इसका जाप होना चाहिये, यहाँतक कि यह कण्ठस्थ हो जाय।

चाहिय, यहातक कि यह केण्डस्थ हा जाय। (डा॰) रामचरण महेन्द्र (एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰) नयापुरा, पो॰ कोटा, राजस्थान।

पढ़ो, समझो और करो

(?)

भागवतसे प्राणरक्षा

 सन् १९६१ के जुलाई मासमें हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश) में वहाँ भक्तोंके विशेष आग्रहसे काशीस्थ हथियाराम मठके अध्यक्ष महामण्डलेश्वर श्रीस्वामी बालकृष्ण यतिजी महाराजकी भागवत-कथा और गीता-प्रवचनसे प्रभावित होकर उन्हींके तत्त्वावधानमें हैदरावादके घांसीवाजारके वस्त्र-व्यापारियोंने हैदराबादमें गतवर्ष सितम्बरमें विश्वकल्याणार्थ 'श्रीविष्णुमहायज्ञ' का आयोजन किया था। उसके आचार्यत्वके लिये मैं काशीसे १० सितम्बर १९६१ को 'काशी-वम्बई एक्सप्रेस' से फर्ट्झासमें रवाना हुआ। में कहीं भी वाहर जाता हूँ तो मेरे साथ बहुत-सी पुस्तकें होती हैं, जिनके लिये एक स्वतन्त्र वक्स होता है। पुस्तकोंका उपयोग में रेलमें भी किया करता हूँ। मेरे डिब्बेमें फर्स्ट क्लासकी एक ही सीट थी। मैं डिब्बेमें एकाकी ही था। बड़ी शान्तिसे ट्रेनमें पुस्तक पढ़ रहा था।

मुझे भलीभाँति स्मरण है कि रात्रिको लगभग बारह बजे जब गाड़ी कटनी स्टेशनसे रवाना हुई, तो उस समय मन्द-मन्द रिमिझिम वर्षा हो रही थी, जो ट्रेनकी द्भुत गतिके कारण वायुसे टकराती हुई ट्रेनके झरोखोंमें प्रवेशकर मेरे मस्तिष्क-प्रदेशको विशेषरूपसे स्पर्श करने लगी, जिससे मुझे झपकी आ गयी। डेढ़ बजे जवलपुर स्टेशनपर आवश्यकतासे अधिक मेरे डिब्बेका दरवाजा खटखटाया गया, जिससे मेरी नींद उचट गयी। मेरे डिब्बेके सामने दों कथित सभ्य नवयुवक खड़े थे, जो चाहते थे । भैंने वार-वार घुसना मना किया कि 'इसमें सिर्फ एक ही सीट है, आपलोग दूसरे डिब्वेमें जायँ। व वोले-- हमारे पास फर्स्टक्लासकी टिकट है। फर्स्ट्रक्लासके दूसरे डिब्बोंमें ज़मीनमें खड़े होनेतककी भी जगह नहीं है। बहुत जरूरी कार्यसे सिर्फ दो ही स्टेशन जाना है। आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं देंगे। वर्थके नीचे जमीनपर बैठ जायँगे।' मैंने दोनोंकी नम्रतापूर्ण वातें सुन डिब्बेका दरवाजा खोल दिया और वे दोनों नवयुवक डिब्येमें घुस गये। उनमेंसे एकने एक तौलिया जमीनपर विछा दिया और उसपर दोनों

बैठ गये। उनके पास विस्तर, वक्स आदि कोई सामान नहीं था। सिर्फ एकके पास चमड़ेका एक छोटाना

नोर

亦

報

देखन

वातें

वक्स

सीधे

मैं बम

नवयुव

उसे

सजिल

और

विभाग

सजिल

की पु

क्षररं

दिखल

पण्डित

माँगक,

अपनी

कहा-

मैन व

10

सकीन

गाड़ी जबलपुरसे चल पड़ी। मैं लाइट वंद करनाक निश्चिन्त हो अपनी सीटपर लेट गया। सम्भवतः एक घंटा वीता होगा कि उन दोनों नवयुवकोंकी धीमी-शीमी वातोंकी सुरसुराहटसे और विजलीकी वत्ती जलानेते मेरी नींद उचट गयी। मैं ज्ञानपूर्वक अचेतन-सा पड़ा गर्वे सुनने लगा। एक बोला—'लालाजीके वक्समें वहुत वज है। मालूम होता है, सोने-चाँदीके व्यापारी हैं। क्स्ने सोने-चाँदीके सिक्के होंगे, जिन्हें लेकर लालाजी व्यापाएं बंबई जा रहे हैं। ' दूसरेने कहा-'देखते क्या हो, जल्ली वेगमेंसे 'छूरा' निकालकर इनका काम तमाम करो और बक्स लेकर अगले स्टेशनपर उतर भागो। १ पहला बोल-'जल्दी मत करो, समझ-बूझकर मारा जाय। एक गर हमलोगोंसे नासमझीके कारण एक आदमीकी हला हों गी थी, किंतु उसके पास कुछ नहीं निकला । इस बार फिर वैसी ही भूल न हो जाय।'

में पड़ा-पड़ा यह भयंकर विचार-परामर्श स किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया और तरह-तरहकी वातें सोचने लग 'यं हि रक्षितुमिच्छति भगवान् तं सद्बुद्ध्या संयोजयि।

—इस न्यायके अनुसार भगवत्कृपासे मेरी बुद्धि भावनाम स्मरणकी ओर प्रवृत्त हो गयी और मैं अशरणशरण भावान वासुदेव (श्रीकृष्ण) का श्रद्धा-मृक्तिसे मन-ही-मन सरण करने लगा और गीताके 'यो मां पश्यति सर्वत्र॰' (६।३०) तथा 'तेषामहं समुद्धर्ता॰' (१२।७) ^{और} भागवतके 'संजीवयत्यखिलशक्तिधरः खधाम्ना॰'(४।९। ६), 'स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्॰' (५।१८।९) एवं 'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्' (८। १०।५५) आदि श्लोक गुनगुनाने लगा।

भगवन्नामसूचक गीतां और भागवतके कोकोंको बार बार दोहरानेसे चित्तकी व्याकुलता कुछ कम हुई और मुझमें आत्मबल, ढाढ्स बँधने लगा। मैं बड़ी तिष्ठारे मन-ही-मन भवभयहारी भगवान्की गुहार करते ह्या

इसी बीच एक नवयुवकने मेरा अङ्ग स्पर्ध करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सामान

छोटा-सा

करवाकर

तः एक

मी-धीमी

में भी

ा वार्ते

त वजन

वक्समं

यापारार्थ

जल्दीसे

रो और

वोल-

एक बार

हों गयी

ार फिर

सुन

लगा

यति'

वनाम

मगवान्

सरण

र्वत्रः'

और

191

19)1

44)

वारं

और

नेष्ठासे

ग्रा

बोसे आयाज दी—'लालाजी उठिये।' मैं उठ वैठा बोसे आयाज दी—'कहिये, क्या वात है ?' वे वोले— और मैंने उनसे कहा—'कहिये, क्या वात है ?' वे वोले— आपका वक्स बहुत वजनी है, क्या सोने-चाँदीके सिक्के वंई ले जा रहे हैं ? बक्सकी ताली दीजिये, हम खोलकर देखना चाहते हैं।' मैंने कहा—'ताली लेनसे पूर्व मेरी बात खालकर दिखला दूँगा।' एकने कहा—'अजी, ये बीधे ताली नहीं देंगे, वेगसे छूरा निकालकर इनका काम माम कर दो, रास्ता साफ हो जायगा।' दूसरेने कहा— पहले लालाजीकी वात सुन लो, यह हमारे पंजेमें जकड़े हुए हैं। कहाँ भागे जा रहे हैं ?' फिर दोनों वोले— खलजी! आप जो कहना चाहते हैं, कहिये।'

मैंने कहा—'मैं लाला (सेठ) नहीं, ब्राह्मण हूँ। और मेरे वक्समें सोने-चाँदीके सिक्के नहीं, विक उनसे भी अधिक मूल्यवान् सिक्के हैं, जो आपके कामके नहीं हैं। मैं वम्बई नहीं, हैदराबाद दक्षिण यज्ञ कराने जा रहा हूँ। अपलोग भ्रमवश मेरी हत्या करके केवल पश्चात्तापके भागी कोंगे, हाथ कुछ न लगेगा ।' मैंने वक्सकी ताली एक नगुनकके हवाले कर दी। उसने बक्स खोलकर देखा तो से सबसे ऊपर गीतापेस, गोरखपुरकी मुद्रित सचित्र र्गिन्द मोटे अक्षरवाली मूलमात्र छः रुपयेवाली श्रीमद्भागवत और काशीस्थ गोयनका संस्कृत महाविद्यालयके पुराण-विभागाध्यक्ष पं० श्रीराममूर्ति शास्त्रीद्वारा रचित सचित्र और गिल्द दस रुपयेवाली 'श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक) ^{ही} पुस्तक दिखायी दी । पश्चात् उस नवयुवकने वक्सको अपसे नीचेतक टटोलकर देखा, तो उसमें पुस्तकें भरी ^{दिखलायी} दीं। लिजित और संकुचित हो वह अपने साथीसे येल-'इसमें तो सभी धार्मिक पुस्तकें हैं। निश्चय ही ये पिंडत हैं। इन्हें व्यर्थ परेशान होना पड़ा, अतः क्षमा भँगकर हमें अगले स्टेशनपर उतर जाना चाहिये।' दोनोंने ^{अपनी} गळतीके लिये बारंवार क्षमा माँगी । मैंने हँसते हुए क्हा—क्यों भाई ! मेरी वातपर ध्यान दिया या नहीं ? मेन कहा था कि बक्समें सोने-चाँदीसे भी मूल्यवान् सिक्के है। यदि मेरे पास सांसारिक सिक्के होते तो आज मेरी जान खतरेमें थी; किंतु मेरे भागवतरूपी सिक्के देखते ही ^{आपलोगोंके} कुत्सित विचार सात्त्विक बन गये।'

दोनों नवयुवक मेरी बातें सुनते रहे । निरुत्तर हो क्षिपेक साथ बोले—'पण्डितजी! हमें कुछ उपदेश

दीजिये।' मैंने पूछा—'आपलोग किस जातिके हैं ?' उन्होंने कहा—'यवन।' मैंने पूछा—'लोभवश किसीकी जान ही लेना जानते हैं या जिलाना भी ?' उत्तरमें उन्होंने कहा—'जिलानेकी ताकत तो खुदामें ही है, हमलोगोंमें नहीं।' मैंने कहा—'यदि जिला नहीं सकते तो किसीको मारनेका भी अधिकार नहीं है। अतः खुद खुदा वनकर पाप न वटोरिये। किसीका उपकार नहीं कर सकते तो किसीकी हानि भी न किया करें। प्राणिमात्रपर दया और प्रेमभाव रखते हुए सबको अपने-जैसा समझें। लूट-पाट एवं जीवहत्या-जैसे जधन्य पापोंसे दूर रहकर सर्वदा मानवताका आदर करें। यही मेरा उपदेश है।'

दोनों नवयुवक नीची गर्दन किये विनम्र भावसे बोले— 'पण्डितजी! खुदाकी कसम, हमलोग आजसे आपके बतलाये रास्तेपर चलेंगे और जीवनभर खूट-पाट और कतल नहीं करेंगे।' इतनेमें ही 'पिपरिया' स्टेशन आ गया। वे दोनों नवयुवक मुझको हाथ जोड़कर स्टेशनपर उतरकर चले गये।

. उनके जानेके बाद देरतक मेरे मनमें तरह-तरहके विचार उठते रहे। अन्तमें इसी निष्कर्षपर पहुँचा—'जो मनुष्य 'वासुदेवः सर्वमिति' (गीता ७ । १९) का सिद्धान्त मान भगवान्पर पूर्ण भरोसा रखते और सदा उनका स्मरण-चिन्तन करते हैं, उनकी वे सर्वत्र रक्षा करते हैं। मेरे पास भगवतस्वरूप 'भागवत'की जो पुस्तक थी, वही मेरे लिये हितकर सिद्ध हुई, जिसको देख उन कलि-कलुषित आततायी नवयुवकोंके विचारमें अद्भुत परिवर्तन हो गया, जिससे मेरे प्राणोंकी रक्षा हुई।

क्या अब भी 'कलौ भागवती वार्ता', 'कलौ भागवतं स्मृतम्' की सत्यताके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता है ? —याज्ञिक-सम्राट् श्रीवेणीराम शर्मा गौड़, वेदाचार्य

(2)

मर जाता, तब तो सदाके लिये अमर ही हो जाता

कई वर्षों पहलेकी वात है। भगवती कामाख्यादेवीके दर्शनार्थ में गौहाटी (आसाम) में अपने गाँवके एक परिचित सजनके यहाँ ठहरा हुआ था। एक दिन एक आदमीने आकर मेरे उन परिचित सजनसे कहा—'आपको पता तो होगा ही, मेरी दूकान तो उस दुष्टने कुर्क करवा दी।' इसपर मेरे परिचित भाईने उनसे कहा—'रुपये तो आप दे चुके थेन?'

H

इन्हों

सरक

बहर

नकार

समय

साड़ी

आया

मुनीम

थी।

नाराज तो तुर

अपनी

क्षमा

रेशमी

अपृत्सः

और म

ऐसे ई

हो गय

क्रीव

नरा :

आराङ्क

新春

क्रम्

उसने कहा-'जी हाँ, रुपये तो मैंने दे दिये थे, पर उस समय हैंडनोट वापस नहीं लिये थे। विश्वास था ही; सोचा, पीछे ले लेंगे। मेरे सीधेपनका यह नतीजा है कि दस हजार रुपयेकी नालिश करके मेरी दूकानतकको कुर्क करवा दिया गया। मैं कुछ रुपयोंकी आवश्यकता होनेसे आपके पास आया हूँ । अनकी यह बात सुनकर मेरे परिचित सज्जन मुझसे कहने लगे—''देखिये, पण्डितजी! हमलोग पूरी तरह जानते हैं कि रुपये दे दिये गये हैं। खुद महाजनका एक नौकर ही उस दिन मुझसे कह रहा था कि 'हमारे मालिक वड़े वेईमान हैं, हमलोग क्या करें। ये बनारसके रहनेवाले बड़े ही सज्जन हैं। इनका नाम श्रीगुप्त है। '' इस प्रकार मुझसे कहकर उनसे कहा- 'गुप्तजी ! अभी आंप जाइये, हम यथाराक्ति अवश्य आपकी मदद करेंगे । इस समय इन पण्डितजीके साथ वाबा उमानाथजीके दर्शन करने जा रहे हैं। आप शामको अवश्य मिलियेगा ।' इसपर गुप्तजीने कहा 'चिलिये, हम भी चलते हैं।' तद्नन्तर हम तीनों श्रीमहादेव-जीका नाम लेकर चल पड़े। ब्रह्मपुत्रमें नावपर वड़ी भीड़ थी, मछाह डर रहा था। पर महादेवजीके दर्शनार्थ जानेवाले यात्री निडर-से थे।

कुछ देर नावके चलनेपर गुप्तजीने चुपकेसे मेरे कानमें कहा—'पण्डितजी ! हाथमें चाँदीका जलपात्र लिये जो दीख रहे हैं, यही मेरे वे महाजन वावू हैं और पीली साड़ी पहने गोदमें वालक लिये जो देवी बैठी हैं, वे इनकी पत्नी हैं। महाजन बाबूका शीलस्वभाव जाननेके लिये मैंने उनसे पूछा-'आप क्या नित्य महादेवजीका पूजन करने जाया करते हैं ?' उन्होंने गुप्तजीकी ओर देखकर अभिमानसे कहा-'नहीं, यह तो एक मुकदमेमें हमें दस हजारकी डिक्री मिली है, उसीके उपलक्ष्यमें हम सपरिवार बाबाका पूजन करने जा रहे हैं। मैं चुप रह गया।

ब्रह्मपुत्रकी धारामें यह सुन्दर पहाड़ कितना आनन्द दे रहा है, मैं यह सोच रहा था कि नाव पहाड़के समीप पहुँच गयी। लोग उतरनेके लिये जल्दी करने लगे। संयोगवश महाजन वाबूकी पत्नीका पैर फिसल गया और वे नीचे गिर गर्यों । इसी बीच बचा उनके हाथसे छूटकर जलमें गिर पड़ा और बीच धारमें वह चला। माता-पिता रोने-चिल्लाने लगे, परंतु किसीसे कुछ करते न बन पड़ा। पर लड़का जिस समय गिरा था, उसी समय उसके साथ ही एक युवक ब्रह्मपुत्रमें

कूद गया था। कुछ ही क्षणों में कुछ दूर जलमें देखा गा कि एक तरुण अपने एक हाथसे पानी मार रहा है और दूसरे हाथसे ऊपर लड़केको थामे हुए है। वह अय-तय हुकेकी स्थितिमें है, परंतु किनारेकी ओर जानेके लिये जीतोड़ कोशिय

संयोगवश एक मल्लाहकी नजर उसपर पड़ी, वह तुरंत नाव लेकर वहाँ पहुँच गया और लड़केसहित उस युक्को नावपर चढ़ा लिया। इतनेमें कई नाविक और भी पहुँच गरे। नाव किनारेपर आ लगी। सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गये। उन दोनोंको बचानेके लिये डाक्टरोंने उपचार ग्रुह कर दिये। दोनोंके पेटमें जल बहुत कम गया था, अतः उपचार क्रिये जानेपर दोनों ही बहुत शीघ खस्य हो गये।

महाजन बाबू और उनकी पत्नी दोनों उस साहसी बीर युवकको बार-बार धन्यवाद दे रहे थे। वह युवक वे गुप्तजी ही थे, जिनपर इन महाजनने सूठा मुकदमा चलकर क्रि करवायी थी । महाजनकी पत्नीने अपने पतिसे कहा-'देखिये। ऐसे परोपकारी आद्मीका आपने सर्वस्व हरण कर ल्या। अब आप डिक्रीके रुपये तो छोड़ ही दीजिये, साथ ही गाँउ हजार रुपये पुरस्कारके और दीजिये। इन्होंने अपने प्राप खतरेमें डालकर वच्चेकी जान वचायी है। हमलेग झ परोपकारी युवकसे इतना देकर भी उऋण नहीं हो सकते।'

उनकी यह बात सुनते ही हमारे गुप्तजी उनसे बोले-'देवीजी! मैंने पुरस्कार पानेके लिये यह काम नहीं किया है।' इसके पश्चात् महाजन बाबू तथा उनकी पत्नी दोनों ही रूपये लेनेके लिये गुप्तजीसे बड़ा आग्रह करने लगे, परंतु उन्होंने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया । इसके बाद महाजन बाद् डिक्रीके रुपये छोड़ देनेका विचार लोगोंको मुनाकर अपने घर लौट गये । हम तीनों भी लौटकर अपने स्थानकी ओर ^{चहे ।} रास्तेमें मैंने गुप्तजीसे पूछा—'ऐसे वेईमानके लिये आपने वह काम क्यों किया ?' वे बोले—'वेईमान तो वह है, उसकी लड़का तो वेईमान नहीं है। १ इसपर मैंने कहा—'आर आ मर जाते ?' उन्होंने कहा—'मर जाता तब तो जगत्में जन लेकर सदाके लिये अमर हो जाता। मानव-जन्म सफ्ल ही जाता । मनुष्यका प्रधान धर्म ही है परोपकार करना। ——पं० रामविलास मिश्र कथावा^{बक}

व्यापारीकी ईमानदारी

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है। कच्छ मॉडवीमें एक i Collection Harist

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ग ३६

ना गया

र दूसरे

ड्वनेदी

कोशिश

ह तुरंत

विका

। गये।

गये।

दिये।

桶 7

ती वीर

ाजी ही

डिक्री

खिये!

लेया।

ो पाँच

प्राण

इन

1

हे—

制

रुपये

न्होंने

वाबू

घर

ले।

यह

सका

आप

जन्म

鄆

14

ब्रापारी रहते थे। 'ईमानदारी हमारा मुद्रालेख है' ये शब्द उहाँने केवल तख्तीपर नहीं खुदवा रक्खे ये वरं उनके हृदयमें अङ्कित थे । मॉडवीभरमें उनकी सचाईकी प्रसिद्धि थी। उनके कपड़ेकी दूकान थी। एक बार उन्होंने जहाजी मार्ग-द्वारा जामनगरसे रेशमी साड़ियाँ मँगवायीं । जहाज पहुँच ाया, पर रसीद (बिलटी) अभी नहीं पहुँची। साड़ियोंके प्राहक आ जानेके कारण इन्हें साड़ियोंकी जरूरत हो गयी। इहोंने अपने मुनीमके हाथ कस्टम अफसरपर पत्र लिख दिया। सरकारी अधिकारियोंपर भी इनके सत्य आचरणकी छाप थी, अतः विना ही रसीदके माल छोड़ दिया गया। उस समय ग्रारसे आनेवाले मालपर जकात लगती थी । रेशमी कपडेपर कात ज्यादा थी, सूतीपर कम । इसलिये जकातके पैसे भरते समय स्तीमने पैंसे वचानेकी नीयतसे रेशमीके बदले सती हाड़ी लिखवा दी और पैसे भरकर वह साड़ियाँ दूकानपर ले आया। मालिकने जकातके पैसे कम लगे देखकर बात पूछी। मीमने कहा—'मैंने पैसे वचानेके लिये सूती साड़ी लिखवा दी र्थ। इसको मुनकर मालिक खुश तो हुए ही नहीं, उलटे गराज होकर वोले कि 'अव आगेसे ऐसी वेईमानी करोगे ते दुमको दूकानसे निकाल दिया जायगा। पैसोंकी अपेक्षा अग्नी सचाई तथा इजतका मूल्य वहुत अधिक है। ' मुनीमने क्षा माँगी। माल्टिक जकातकी रसीद लेकर तुरंत जकात-अप्तरके पास गये और सारी वातें समझायीं। सूती कपड़ेसे रियमिकी जकात चौगुनी थी। उन्होंने पूरी जकात भर दी। अप्तर इनकी ऐसी ईमानदारी देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और मन-ही-मन कहने लगे—'काश! भारतके सभी व्यापारी प्ते ही ईमानदार होते तो ?' (अखंड आनंद) — जैनधर्मी

पेट-दर्दकी चमत्कारी दवा

करीय आठ साल पहलेकी वात है। मैं माल खरीदनेके खिय महासकी ओर गया हुआ था। सेलममें मेरे पेटमें दर्द हो गया और वह स्थायी-सा वन गया। मैंने जोधपुर लौटकर करीय नौ महीनेतक वैद्यों-डाक्टरोंके इलाज करवाये। पर करा भी लाभ नहीं हुआ। डाक्टरोंने जलोदरकी बीमारीकी आराङ्का कहकर रोगको खतरनाक बतलाया। पैसेकी तंगी भी, मैंने इलाज छोड़ दिया। तदनन्तर दर्द बहुत बढ़ खा। मैंने सोच लिया अब भगवान्के सिवा इस दर्दको किर लोग और कोई नहीं है। मैंने एक दिन घरमें आर जाकर एक घंटे नाम-जप किया। अन्तमें भगवान्से

कातर प्रार्थना की । फिर नीचे आनेपर भगवत्प्रेरणासे मेरी इच्छा वाजार जानेकी हुई और मैं वाजारकी ओर चल दिया। मैं दर्दके मारे पेटपर हाथ फेरता जा रहा था । राह चलते एक अनजान व्यक्तिने पूछा—'सेठजी ! पेटपर हाथ क्यों फेर रहे हैं ?' मैंने नीचे बैठकर उसे सारी घटना सुनायी। वह बोळा—'मैं दवाई वता रहा हूँ । सात दिनोंतक सेवन करोगे तो अच्छे हो जाओगे ।' मैंने कहा—'मैं पैसेवाली बहुत दवाइयाँ करके हैरान हो गया हूँ ।' उसने कहा-·मैं विना पैसेकी दवा वता रहा हूँ। भेरे फिर पूछनेपर उसने कहा—'मोठको पीसकर आटा वना लीजिये । फिर उस आटेकी एक मोटी रोटी वनाकर एक तरफसे सेंक लीजिये। रोटीकी कची ओर तिलका तेल चुपड़कर पेटपर बाँधकर सो जाइये। फिर चार वजे उठकर करीव आध पाव गो-मूत्रका सेवन कीजिये । तदनन्तर गेहूँ आधा सेर चक्कीमें पीस लीजिये। यों सात दिनोंतक करनेपर भगवत्कृपासे आप ठीक हो जायँगे । इतना कहकर वह चल दिया।

मैंने घर आकर पत्नीसे यह बात कही । उनको भरोसा नहीं हुआ, इससे एक दिन और निकल गया । दूसरे दिन मोठ पिसवाकर उसके आटेकी मोटी रोटी बनवायी और एक ओर तिलका तेल चुपड़कर उसे बाँधकर सो गया । चार बजे उठा और घनश्यामजीके मन्दिरके समीप जाकर ताजा गो-मूत्र गिलासमें लेकर पी गया । फिर घर आकर चक्कीमें गेहूँ पीसना चाहा पर कमजोरीके कारण अकेलेसे चक्की चल नहीं पायी । तब पत्नीको साथ बैठाकर पीसा । शामको शौचके बाद चार आने लाभ मालूम हुआ । चार दिनोंमें मेरी सारी बीमारी जाती रही और भगवानकी कुपासे फिर अवतक उसका कहीं कोई नाम-निशान भी नहीं है ।

--गोपोकिशन विड़ला, डागा बाजार, सारडाकी गली, जोथपुर

(4)

आदर्श परोपकार और कर्तव्य-पालन

गत मई मासमें गिरीडिहके मकनपुर मुहल्लेमें एक धोबीके मकानमें एकाएक उस समय आग लग गयी, जब वह पेट्रोल्से गरम कपड़े धो रहा था। अग्निने तुरंत प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। गिरीडिह पुलिसके इवल्दार श्रीशीशनारायण सिंह अग्निकी च्वालामें बड़ी दिलेरीके साथ

्रा. ग्

९. अ

13.

६ अ १७ श्री

१ मान

३ पातः

१ माक

पु जिक्कोंका

क्षेत्री व

(४) खर्गी

his

कृद पड़े और घरके अंदरसे एक बालकको आगकी लपटोंमेंसे बाहर निकाल लाये । पुलिस हवलदार और वालक दोनों जलकर घायल हो गये, लेकिन हवलदारकी हिम्मतका उपस्थित जनतापर यह प्रभाव पड़ा कि घोवीकी रोष चीजोंको जलनेसे लोगोंने बचा लिया। घायलोंको चिकित्साके अस्पतालमें भेज दिया गया । ---श्रीवछभदास विन्नानी

(年)

संतकी दयालता

चित्रकृटमें श्रीरामनारायणजी ब्रह्मचारी नामक एक प्रसिद्ध संत हो गये हैं। उनके जीवनकी दो छोटी-छोटी घटनाएँ हैं, जिनसे संत-हृद्यका परिचय मिलता है। जिस समयकी घटनाका वर्णन है, संतजी चित्रकूटमें राम-शय्या (बिहाराग्राम) के पास कुटी बनाकर रहते थे। बादमें संतजी सिरसावन चले गये थे।

क़रीमें संतजी और उनका एक ब्रह्मचारी शिष्य, दो व्यक्ति निवास करते थे। चैत्र-वैशाखके दिन थे। संतजीने पानी पीनेके लिये एक छोटी-सी कुइयाँ (मिट्टीका कचा कुआँ) खोद रक्खा था। फसल कटना आरम्भ हो गया था। विटाराके कुछ ब्राह्मणोंका खिलयान कुटीसे थोड़ी ही दूरपर रहता था। कुछ ब्राह्मण आये और खिलयान रखनेकी जगह साफ करने लगे। तत्पश्चात् खलियानकी लिपाई प्रारम्भ हुई।

खिलयान गोवरसे लीपा गया। सारा पानी आया संतर्जेको कुइयाँसे । और पानी छेते समय ब्राह्मणोंने वही असावधानी कुइवात । जापवाता कुइयाँका सारा पानी गोवरमिश्रित है गया। पीने योग्य विल्कुल न रह गया। शिष्य ब्रह्मचारीन संतजीसे ब्राह्मणोंके कारनामे सुनाये । सुनकर् संतजीने कहा-भ्वाह्मणोंसे कुछ न कहना, दूसरी कुइयाँ तैयार कर हो। और उसी गरमीमें संतजी और उनके ब्रह्मचारी शिष्यने दूसी कुइयाँ खोदकर तैयार कर ली। कुछ दिनों पश्चात् उस हुसी कुइयाँमें भी वरोंने अपना छत्ता बना लिया। और पानी भारो समय उड़कर काटने लगीं। ब्रह्मचारी शिष्यने फिर संतजीते कहा, सुनकर संतजीने कहा--(उनको मत छेड़ना, िस दूसरी कुइयाँ तैयार कर छेंगे। और संतजी तथा उनके ब्रह्मचारी शिष्यने उसी गरमीमें तीसरी कुइयाँ खोदकर तैया कर डाली।

संतजी किसीसे कुछ लेते नहीं थे, सबसे अलन नम्रत पूर्वक व्यवहार करते थे। एक बार एक धनी सेठ अवे और संतजीसे कुछ प्रहण करनेका आप्रह करने लो। संतजी अत्यन्त नम्रतापूर्वक यही कहते रहे- 'किसी निर्धनेत्रे दे दो, भाई ! मेरी तो सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती हैं। अन्तमें सेठने भूमिपर लेटकर प्रार्थना की, संतजी भी उसी प्रकार नम्रतापूर्वक भूमिपर लेटकर इन्कार करते रहे। हत्र दर्शनीय था %। ——शिवगणेश पाण्डेयं वी**० ए**०

भूल-सुधार

(१) 'कल्याण' के गत सातवें अङ्कमें पृष्ठ १०४५ पर 'सची सहायता भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है' शीर्षक लेक रूसरे कालमकी १६ वीं, १७ वीं पङ्क्तिमें छपा है—'पहले दुर्योधन आये थे, इसलिये पहले माँगनेका अधिकार दुर्योधनको है।' इसके स्थानपर यों पढ़ना चाहिये—'शास्त्रकी आज्ञा है कि पहले वालकोंको ही उनकी अभीष्ट वस्तु देनी चाहिये, अतः अवस्मि छोटे होनेके कारण पहले अर्जुन ही अभीष्ट वस्तु पानेके अधिकारी हैं। इसीके अनुसार लेखमें आगे भी यही समझना चाहिये कि—'पहले अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णको माँगा है, पीछे दुर्योधनने नारायणी सेना ली है।'

प्रमादवरा भूलसे उल्टा छप गया, इसके लिये क्षमा-प्रार्थना है और कई विद्वान् पाठकोंने भूल मुझायी—इसके लि उन्हें कृतज्ञतापूर्ण साधुवाद !

(२) 'कल्याण' के गत अगस्तके आठवें अङ्कके पृष्ठ १११८ पर 'विनय' शीर्षक एक कविता छपी है, उसबी ग्यारहवीं पङ्क्तिमें भ्रमवश पहला शब्द 'विनय' छपा है, उसकी जगह 'निज' शब्द पढ़ना चाहिये। इस भूलके लिये लेकि महोदयसे क्षमा-प्रार्थना है।

सम्पादक—'कल्याण'

* श्रद्धेय ब्रह्मजारीजी सचमुच आदर्श संत थे। किसीसे कुछ छेते नहीं थे। आवश्यक अन्न खेती करके उपजा होती। उसीसे खाने-पीने, अतिथि-सत्कार करने तथा कपड़े-लत्तेका काम चलाते। बड़े ही त्यागी, संयमी और ज्ञानी महात्मा थे। --सम्मार्क

गि ३६

1

तंतजीक<u>ी</u>

तवधानी श्रित हो

सचारीने

क्ह्य-

र होंगे। ने दूसरी

स दूसरी

नी भरते

संतजीते

ना, फ़िर

उनके

र तैयार

नम्रता-

ठ आये

ल्मे।

नेर्धनको

ती हैं।'

भी उसी

ो० ६०

लेखके

11月

वधार्म

मझना

向

उसकी

लेखक

यणि

वा

有

सन्१६६२में अवतक प्रकाशित सत्रह नयी पुस्तकें १. भ्रमर-गीत-ले॰ व्रजसाहित्यके प्रसिद्ध विद्वान् पं॰ श्रीजवाहरलालजी चतुर्वेदी, पृ॰ १२०, मू० 2.40 १. अमार की नयी किरणें—छे० डा० रामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पृष्ट-संख्या ३१२, मूल्य 2.24 ३. मनुष्यका परम कर्तव्य-छे० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृ० ४१२, म्० 2.00 र गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका परिचय और उपदेश-छे० आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, एम्० ए०, पृ० २८०, मू० 2.00 , अमृतके घूँट—ले० डा० रामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य 2.00 ह एक लोटा पानी—ले० श्रीपारसनायजी सरस्वती, पृ० १८४, मू० ٢٠٥٠ » थानेदारीसे इस्तीफा—ले० श्रीपारसनाथजी सरस्वती, पृ० १६४, मू० . ६ 4 🐰 गीता-पश्चाङ्ग-(वि० संवत् २०१९) पृष्ठसंख्या ७२, ग्ल्य .40 ु आद्री चरितावली भाग १ – ले० श्रीसुद्र्शनसिंहजी, ऋषि-मुनि-संत-भक्तोंके १६ चरित्र, म्ल्य .74 भाग २- ,, आचार्य, मतप्रवर्तक तथा युगनायकोंके १६ चरित्र .24 भाग ३-, संत-महात्मा-योगी-साधकोंके १६ चरित्र, मू० .74 " भाग ४-,, पैगम्बर, संस्कारक संतोंके १६ चरित्र,मूल्य .74 " भाग ५- ,, सम्राट्, राजा, शासक, रानी आदिके १६ चरित्र .24 11 भाग ६-,, त्यागी, राजनीतिविशारद, देशभक्त नेताओं के १६ चरित्र, मूल्य .74 🎠 <mark>श्रीनारायणकवच</mark>—(श्रीमद्भागवत स्कन्व ६, अ० ८ से) पृ० १६, .06 🎋 अमोघ शिवकवच-(श्रीस्कन्दपुराणसे) पृष्ठ संख्या १६, मू० .08 🎙 श्रीशिवचालीसा—(श्रीशिवाष्टक और आरतीसहित) ५० २४ .08 क संस्करण समाप्त हो गया है। बहुत दिनोंसे अप्राप्य पुस्तकोंके पुनर्मुद्रण िमानसपीयूष खण्ड २—स० श्रीअंजनीनन्दनशरणजी, पृ० ८६८, 9.40 20.40 खण्ड ३— पातञ्जलयोगप्रदीप—ले० श्रीस्वामी ओमानन्दजी तीर्थ, ए० ६५२, 8.00 मार्मावाद और रामराज्य-लेखक श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज, पृष्ठ ८६०, मू० 8.00 सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग । पुलक-विकेताओंको सभी पुस्तकोंपर नियमानुसार कमीशन दी जाती है। ग्राहकोंसे निवेदन है कि कि आर्डर देनेसे पहले अपने पुस्तक-विकेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। इससे उनको भारी डाक-केंकी वचत होगी। गीताप्रेसकी निजी दूकानें (१) कलकत्ता- २ ३०, वाँसतल्ला गली, (२) वाराणसी-नीचीवाग, (३) पटना-अशोक राजपथ,

(१) कळकत्ता—त ३०, वासतछा गला, (२) वाराजाता । भाषाध्यम—गीताभवन, (५) हरिद्धार—सन्जीमंडी, मोतीबाजार, (६) कानपुर—विरहाना रोड, (७) दिछी—नई सङ्क। स्त्रीपत्र सामी दूकानोंपर मासिक 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतर'के प्राहक भी बनाये जाते हैं। स्वीपत्र सुम्नत मेंगवाइये

श्रीहरि:

जनवरी सन् १९६२ के विशेषाङ्क

'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क'का दूसरा संस्करण

प्रथम संस्करणकी १,३१,००० प्रतियाँ अत्यन्त शीव्रतापूर्वक विक गर्यी और सब पुराने गहाँ प्रथम संस्करणका (१९६) प्रतास निक्का कामकी भारी भीड़ होते हुए भी २०,००० प्रतियांका है। वहन जीन कि वीं पा या तक न मजा जा जाना । स्थान के विक्र तीं वहत शीं वहत शीं वहत शीं विक जानेकी अब की जाती है। अतः जिन्हें लेना हो, वे कृपया शीघ्र ७.५० मनीआईरहारा भेज दें अथवा बी० पी० हा भेजनेकी आज्ञा प्रदान करें। सजिल्दका मूल्य ८.७५। डाकखर्च हमारा।

'कल्याण'का यह 'संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क' प्रसिद्ध 'शिवपुराण'का संक्षिप्त सार-रूप है । 'शिवपुराण रौव महानुभावोंकी तो परम प्रिय एवं परम आदरणीय वस्तु है ही, यह सभीके लिये उपादेय है। हम भगवान्के शिवस्वरूप परात्पर परब्रह्म परतम प्रभुके तत्त्वका वड़ा ही महत्त्वपूर्ण वर्णन है । भगवान् शिक्ष वड़ी ही विचित्र मधुर लीलाओंका, भक्तवत्सलताका, उनके अवतारोंका, समस्त जगत्की एकात्मताका, म्हा विष्णु-महेराकी नित्य अभिन्नताका, साधनोंका, योग-भक्तिके तत्त्वोंका वड़ा ही विराद तथा सर्वापयोगी क्षे है। इसकी सभी कथाएँ वड़ो ही रोचक तथा प्रभावोत्पादक हैं। इसमें पुराने 'शिवाङ्क'में प्रकाशित 🐯 महत्त्वपूर्ण छेख तथा कुछ गम्भीर एं सुन्दर सरल नये छेख भी प्रकाशित हुए हैं।

इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस पाठ्य-सामग्री है। वहुरंगे १७, दोरंगा-रेखाचित्र १, सादे १२ और 段 रेखाचित्र हैं। वार्षिक मूल्य केवल ७-५० (सात रुपये पचास नये पैसे) डाकखर्च समेत है। हिंही शिवपुराणका साररूप इतना सस्ता केवल यही ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। अतः इसका अपने लिये तो संग्र करना ही चाहिये, अपने इष्ट-मित्रों और वन्धु-बान्धवोंको भी ग्राहक वनानेका प्रयास करना चाहिये।

कल्याणके प्राप्य विशेषाङ्क

१—हिंदू-संस्कृति-अङ्क

पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, डाकन्ययसहित मूल्य ६ हि ५० नये पैसे । साथ ही इसी वर्षका अङ्क दूसरा तथा तीसरा विना मूल्य ।

२—संतवाणी-अङ्क

पृष्ठ सं० ८००, तिरंगे चित्र २२, इकरंगे चित्र ४२, संतोंके सादे चित्र १४०, मूल्य डाकव्यमिन ७ रु० ५० नये पैसे।

३-मानवता-अङ्क पृष्ठसं ० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर ३९ बहुरंगे, एक दुरंगा, १०१ एकरंगे और १ रेखाचित्र । डाकन्ययसहित मूल्य ७ ह० ५० नये पैसे ।

४—संक्षिप्त देवीभागवताङ्क

जनवरी १९६० का विशेषाङ्क, डाकखर्चसहित मूल्य रु० ७.५०।

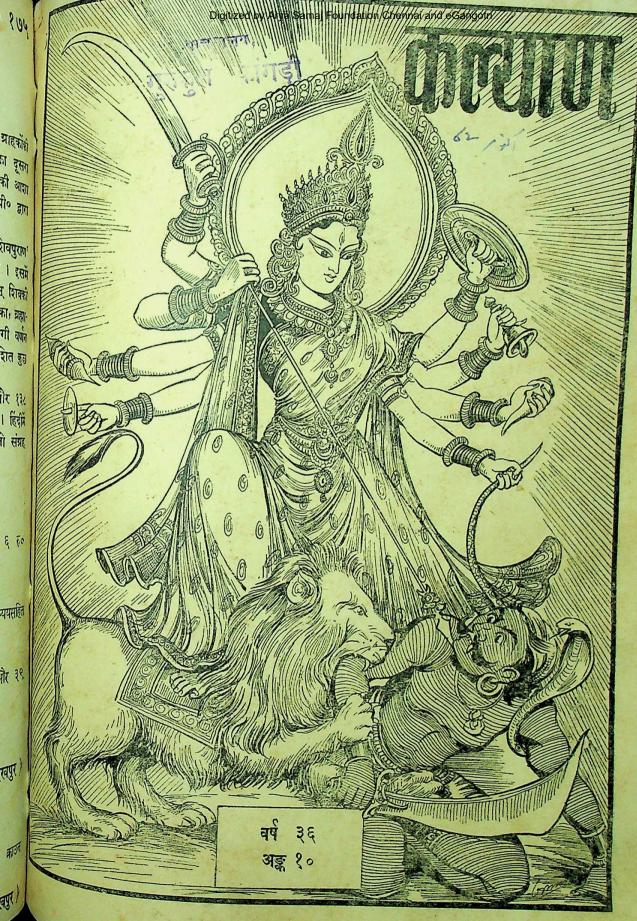
व्यवस्थापक-कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरल्युर)

डा ० रामचरणजी महेन्द्र, एम. ए., पी-एच. डी. महोदयकी एक नयी पुस्तक

आशाकी नयी किरणें (शक्ति, सामर्थ्य और सफलता)

शिथिल और निर्बल जीवनमें शक्ति, साहस और नव प्रेरणा देनेवाले जीवनपूर्ण निबन्ध, आकार हवल क्रिकी एक मंद्र 383 पर के उ

सोलहपेजी, पृष्ठ सं० ३१२, मू० १.२५ डाकलर्च ८५ नये पैसे । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harffred प्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरवण्



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

खपुर

वपुर)

हरे राम हरे राम व्यवस्थित प्रमान sam हरें प्राप्त sam हरें हों हैं कि ज्य जय दुर्गा, जय मा तारा। जय अणेश, जय शुभ-आगारा॥ जयति शिवा-शिव जानिक-राम। गौरीशंकर सीताराम॥ जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपीप्रिय राधेश्याम॥ संस्करण—१,४८,००० (एक लाख अइताकीस हजार)

विषय-सूची	and the real
1777 दिना	कल्याण, स्रौर कार्तिक २०१९, अष्टूबर १९६२
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय
१—मङ्गलमय ध्यान [कविता] १२१७ २—कस्याण ('शिव') १२१८	१२-श्रीरामचरितमानसमें आगम-तत्व
२-कल्याण ('शिव') १२१८	(डाक्टर श्रीहरिहरनाथजी हक्क
३-भववन्धन कैसे कटे ? (स्वामीजी	एम्॰ ए॰, डी॰ लिट्॰) १३॥६
श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) १२१९	१२-आत्मा परमात्मास- कविता
४-सचिदानन्द्घन ब्रह्मके तत्त्वका विवेचन	(श्रीबालकृष्णजी वलदुवा, वी॰ ए॰,
(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) १२२२	एल्-एल्॰ -बी॰) १२६२
५-परब्रह्मका मधुर नृत्य [कविता] *** १२२७	१४-कहते हैं सारी अवनतिका मूल धर्म है!
६—गोपाल श्रीकृष्ण (प्रो॰ श्रीजगन्नाथ-	(आचार्य श्रीनरदेवशास्त्री, वेदतीर्थ) १२६३
प्रसादजी मिश्र) १२२८	१५-भोषु पाप्मा न विद्यते [कहानी]
७-हमारे वितरण (पं० श्रीरूपनारायणनी	(श्री 'चक्र') १२६७
चतुर्वेदी) १२३१	१६-लोक-जीवनमें देवालयोंका महत्त्व
८-ईश्वर एक और अनन्त है ('अज्ञात') १२३४	(श्रीओंकारमलजी सराफ) १२७०
९-असली धनसम्पत्ति [कविता] १२३५	१७-स्वप्न-समीक्षा [एक तरुण साधककी
१०-श्रीराधा-नाम-रूप-महिमा और राधा-	डायरीसे] १२७२
प्रेमका स्वरूप [श्रीराधाष्ट्रमी-महोत्सव	१८-श्रीमगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना
(सं० २०१९) पर गीतावाटिकाः	(चिम्मनलाल गोस्वामी) १२७३
गोरखपुरमें हनुमानप्रसाद पोद्दारके	१९-वेदना (श्रीदानविहारीलालजी शर्मा) १२७५
भाषण] १२३६	२०-श्रीराघा-महिमा किविता (पाण्डेय
११-पराभक्तिके आदर्श श्रीभरतजी (पं॰	पंo श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम') १९७९
श्रीश्रीकान्तरारणजी महाराज) · · · १२५०	२१-पढ़ो, समझो और करो १२७६
-10001-	
चित्र-भूची	
	-द्ध पा ••• (रेखाचित्र) ••• गुल्यु
१-अष्टमुजा सिंहवाहिनी	••• (तिरंगा)
२-मङ्गलमय ध्यान	(KKsii)
CONTRACTOR	

वार्षिक मूल्य भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु०१०.०० (१५ शिलिंग) जय पावक रिव चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय।। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय।। जय विराट जय जगत्पते। गौरीपित जय रमापते।। साधारण प्रण भारतमें ,ध्र विदेशमें ,ध्र (१० पॅस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोखामी एम्० ए०, शास्त्री मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर हरे ॥

५६

६२

६३

६७

90

७२

9 9 4

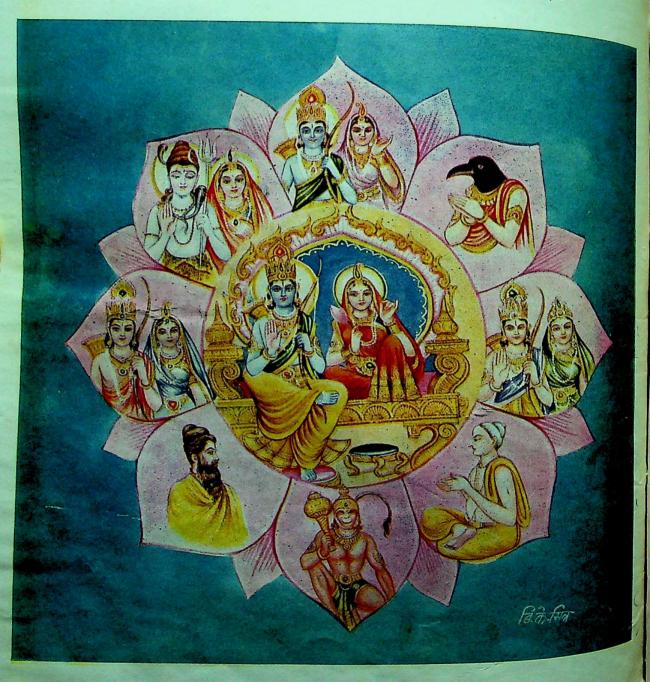
94 94

ES O

184. 14. 14. 14. 14. 14. 14. 14. 14.

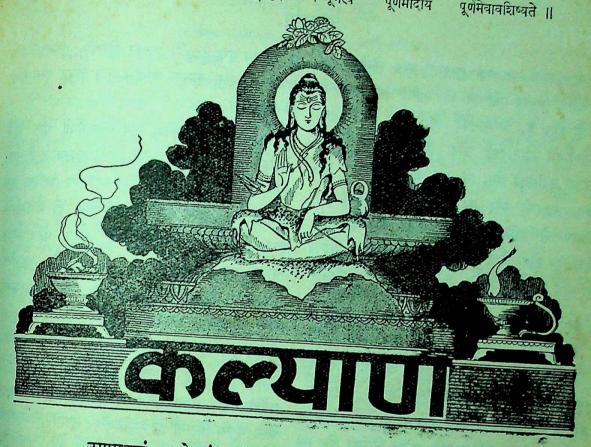
कल्याण

सपत्नीक चारों भाई, हर-गौरी, हनुमान्, भुसुंडि, वाल्मीकि और तुलसीदास



मङ्गलमय ध्यान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुद्च्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भृतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।

वर्ष ३६ {

गोरखपुर, सौर कार्तिक २०१९, अक्टूबर १९६२

संख्या १० पूर्ण संख्या ४३१

मङ्गलमय ध्यान

सीता-राम, उर्मिला-लक्ष्मणः, माण्डवि-भरत मंगलाधार। शुचि श्रुतिकीर्ति-रात्रुहन्, गौरी-हर, भुसुंडि, हनुमान उदार ॥ आदि महाकवि बाल्मीकि मुनि तुलसीदास भक्त सुखधाम। अष्ट अष्ट्वल मध्य सुरोभित, केन्द्र राम-सीता अभिराम॥ मंगलमय इनका जो करता श्रद्धायुत नित पूजन-ध्यान। पाकर सीताराम-प्रेम वह बनता परम भक्त मतिमान॥

中ででででででんなった

क्ल्याण

याद रक्खों—जबतक तुम्हारा मुख मोगोंकी ओर है, तबतक तुम्हारा एक पग भी आगे चलना मोगोंकी ओर ही होता है, भगवान्की ओर नहीं । किसीको उत्तराखण्डमें बद्रीनाथको जाना है, पर उसका मुख है दक्षिणके मद्रासकी ओर, तो वह जबतक अपना मुख मोड़कर उत्तरकी ओर नहीं कर लेगा, तबतक वह बद्रीनाथजीसे विपरीत दिशामें ही चलेगा और अधिक से-अधिक हर होता चला जायगा । इसी प्रकार मोगोंकी ओर मुख किये चलनेवाले मनुष्यका जीवन भगवान्से दूर-दूर हटता चला जाता है।

याद रक्खो—मोगोंमें मुख है, ऐसी भ्रान्त धारणा और इसके कारण उदय हुई भोगोंमें आसिक भगवान्की और तुमको नहीं मुड़ने देती । तुम मुड़ना चाहते हो, जरा-सा मुँह फिरानेकी चेष्टा करते हो पर वह भोगासिक तुम्हारे फिरते मुखको पकड़कर तुरंत भोगोंकी ओर कर देती है, तुम्हारा मुख भगवान्की ओर नहीं मुड़ पाता ।

याद रक्खो—एकान्तवास, तीर्थानवास आदि तुम्हारे सहायक अवश्य हैं, परंतु असठी चीज तो है—भोगोंमें आत्यन्तिक अनासक्ति, जो भगवान्की ओर मुड़नेकी प्रधान साधना है। जब तुम्हारा मुख भगवान्की ओर अच्छी तरहसे मुड़ जायगा, तब तुम्हारा प्रत्येक पदसंचार भगवान्की ओर होगा और ज्यों-ज्यों तुम भगवान्की ओर होगा और ज्यों-ज्यों तुम भगवान्की ओर वढ़ोगे, त्यों-ही-त्यों तुम्हारा उत्साह, तुम्हारी उत्कण्ठा, तुम्हारी आगे बढ़नेकी शक्ति बढ़ती जायगी। भगवान्के पथमें सहज ही रहनेवाठी दैवी सम्पत्ति, शान्ति, समता, वैराग्य, प्रेम तथा संतजनोंकी सत्संगति तुम्हें मिळती रहेगी। तुम्हारी विळक्षण प्रगति होगी भगवान्की

ओर । तुम द्वन्द्व-दुःखोंसे छूटकर निराशा, चिन्ता, भय, विषाद, कामना, वासना आदिसे मुक्त होकर परम सुखी हो जाओगे ।

नह

उन्हें

है, उ

क्षण-व

समार

सम्बन

मिथ्य

होता

करनेपः भी सा

ऋते :

वह उन ऐसे हि

पुणकर्म

मलिन इ

ही एक

सोरटोंमं

सव

जाते

क्त

जैर

याद रक्खो--जनतक तुम भगनान्को पीठ दिवे भोगोंकी ओर मुख किये चलते रहोगे, तबतक तुम्हें सुख-स्मन्ति कभी नहीं मिळेंगे । जितना-जितना अधिक तम भोगोंकी और अग्रसर होओंगे, स्वाभाविक ही भोगमामें स्थित, भोग-क्षेत्रसे उदित, भोगोंकी सहज परिणामस्पा निराज्ञा, भय, विषाद, चिन्ता, राग, द्वेष, वैर, अज्ञानि, द्रोह, दम्भ, परिग्रह, हिंसा, कामना, वासना, ममता आदि दुर्गुण-दुर्विचारोंसे घिरे रहकर सदा-सर्वदा दु:स सागरमें डूबे रहोंगे । जहाँ-जहाँ तुम सुखकी आशासे जाओगे, वहीं तुम्हें भयानक दु:खराशिके दर्शन होंगे; क्योंकि वहाँ—भोग-राज्यमें यही वस्तुएँ हैं। भोगराज्यों फँसा मनुष्य कितनी ही शान्तिकी, सुखकी, बैरायकी, निष्काम भावकी चर्चा करे, वह कभी भी शान्तिसुख को प्राप्त नहीं हो सकता । अशान्ति-दुःख उसके तिय संगी बने रहें गे। अतएव जैसे भी हो, भगवान्की और मुड़ जाओ । जबरदस्ती ही मुड़ जाओ ।

याद रक्खो—मन-बुद्धि भगवान्के समापत हो जाँ और वे सदा केवल भगवान्में ही लगे रहें—तभी पूर्णतः सुदृदृरूपसे भगवान्की ओर मुख हो जाना समझा जाता है। पर ऐसा न हो, तबतक बार-बार मन-बुद्धिकों भगवान्के साथ जोड़ते रहो। भगवान्के नाम, गुण, ह्या, तत्त्वका चिन्तन-मनन-विचार करते रहो। भोगीते आत्यन्तिक और आन्तरिक अनासिक्त और भगवान्में पूर्ण तथा दृढ़ आत्यन्तिक आन्तरिक आसिक्त ही प्रधान साधन है।

'शिव'

भवनन्थन कैसे कटे ?

(लेखक-स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

थद्यपि लोके सरणं शरणस्। तद्रिप न सुञ्जति पापाचरणस्॥

ये श्रीशंकराचार्यके वचन हैं। उनको भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि प्रत्येक मनुष्य जानता है कि आखिर तो जली या देरसे, मरणके शरण जाना होगा ही, फिर भी वह गणनरणको छोड़कर पुण्याचरणके द्वारा प्रभुकी प्राप्ति क्यों नहीं कर छेता ?

इसके उत्तरमें शास्त्र कहता है-

देये

ख़-

गमें

न्ति,

मता

:ख-

शासे

होंगे;

ज्यमें

ाकी,

सुख-

नित्य

ओर

जाय

र्णतः

जाता

द्रमो

ह्य

邺

गर्भे

म्यान

बीभत्सा विषया जुगुप्सिततमः कायो वयो गत्वरं प्रायो बन्धुरिहाध्वनीव पथिको योगो वियोगावहः। हातन्योऽयमसार एष विरसः संसार इत्यादिकं सर्वस्येव हि वाचि चेतसि पुनः कस्यापि पुण्यात्मनः॥

अर्थात् विषय स्वभावसे ही वीभत्स— भयंकर हैं, इससे उन्हें छोड़ ही देना चाहिये। यह शरीर मिलनताका धाम है अतः इसमेंसे भी आसक्तिको हरा लेना चाहिये। आयु क्षणश्रण क्षीण होती चली जा रही है, अतएव वह अब समाप्त हो जायगी, पता ही नहीं लगता। वन्धु-वान्धवोंका सम्बन्ध धर्मशालामें इकहें हुए यानियोंके सहश क्षणिक और मिथाहै। जिसका संयोग होता है, उसका वियोग भी अवस्य होता ही है। इस प्रकार सारे संसारके स्वरूपण विचार अरोपर यही लगता है इसे छोड़ ही देना चाहिये, इसमें कुछ भी सार नहीं है।

इस प्रकारकी वातोंको सब लोग खूब जानते हैं, वे ऐसा कहते भी देखे जाते हैं, परंतु उनका यह ज्ञान होता है केवल बेलनेमरके लिये या दूसरोंको उपदेश देनेभरके लिये। व इसरोंको उपदेश देनेभरके लिये। व इसरोंको उपदेश देनेभरके लिये। वे किसी भाग्यशाली विस्ते ही पुरुषके हृदयमें ऐसा ज्ञान स्थिर होता है जो पुणकार्मके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध कर चुका है। मिलन अन्तःकरणमें ज्ञान स्थिर नहीं हो सकता।

जैसे श्रीशंकराचार्यको इस सम्बन्धमें आश्चर्य हुआ वैसे है एक कविको भी हुआ था और उसने भी यही बात दो भोरोमें बहुत ही साफ कही है—

सव ही तजते प्रानः, जनमे जोः पा भोग सव।
तो भी होय न ज्ञानः दो पगवाले बैलको॥
जाते यमके द्वारः देखे जाते तरुण शिशु।
किंतु विवेक-विचारः, कोई भी करता नहीं॥
हेन सीरटोंका अर्थ तो सभीकी समझमें आने लायक है।

इनपर किसी भाष्यकी आवश्यकता नहीं है। तथापि पहले सोरठेका चौथा चरण 'दो पगवाले बैल' कुछ विचारणीय है।

शास्त्रोंने जैसे मनुष्यके लिये चार वर्ण और चार आश्रम निश्चित किये हैं, वैसे ही मनुष्यके चार विभाग भी उसके स्वभावके अनुसार बतलाये हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१) पामर, (२) विषयी, (३) मुनुश्च और (४) मुक्त । यहाँ पामर' मनुष्यको ही दो प्यावाला देल' कहा गया है। भर्तृहरिने भी ऐसे मनुष्योंके लिये कहा है— 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।'

केवल आकृतिमर मनुष्यकी है, वैसे पशुमें और उसके स्वभावमें कुछ भी अन्तर नहीं है। पशुओंका इतना सद्भाय है कि ऐसे मानव-पशु वास नहीं खाते, नहीं तो उन वेचारोंको भूखों मरना पड़ता।

यहाँ इन चारों प्रकारके सनुष्योंके स्वभावको समझ लेना अप्रासंगिक नहीं होगा। पामर'का अर्थ हमने देखा कि वह तो मनुष्यके चोलेमें पशु ही है। परंतु यह मानव-पशु है दूसरे पशुओंसे कहीं अधिक भयंकर । मानय-पशुमें बुद्धि है, जो दूसरे पशुओंमें नहीं है, और इसलिये मानव-पशु बुद्धिका दुरुपयोग करके 'दानव' वन सकता है । दूसरे पछ तो अपने सहज स्वभावको ही घारण किये रहते हैं, पर ये मानव-पशु जव कामनाओं अर्थात् भोगवासनाओंके गुलाम हो जाते हैं, तव वे उल्टे मार्गपर चलकर राक्षसः पिशाच या अमुर क्या-क्या नहीं बन जाते, यह वाणीसे नहीं वतलाया जा सकता। यहाँ तो केवल भर्तृहरिके सहश-'ते के न जानीमहै'-(उसको क्या संज्ञा दी जाय, यही समझमें नहीं आता), यों कहकर ही चुप हो जाना पड़ता है। 'विषयी' वर्गके मनुष्य एकदम पशु-जैसे तो नहीं हैं, पर उनकी विषयभोगोंमें इतनी बड़ी आसक्ति होती है कि उससे वे छूट नहीं सकते और परिणाममें येन केन प्रकारेण विषयभोगोंकी प्राप्ति ही उनके जीवनका ध्येय बन जाता है । विषयी मनुष्योंकी मनोव्वत्तिका वर्णन करते हुए श्रीव्यासजी कहते हैं-

पुण्यस्य फलसिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति सानवाः।
न पापफलिसच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥
विषयी मनुष्य यह तो समझते हैं कि पुण्यकर्म यानी
ग्रुभ आचरणसे सुप्त होता है और पापकर्म यानी निषिद्ध
आचरणसे दुःत्व होता है। परंतु उनमें इतनी धीरज और
हदता नहीं होती कि वे एक ग्रुभ मार्गमें ही लगे रहें।

भग

मानत

ही कार

ही रहा

नेर है,

क्रिना इस्ती है

क्षमना

इन्द्रियोंत

उसपर ?

मूह है

महिला है।

उनको तो किसी भी प्रकारसे भोग-सुख चाहिये और वे यदि सदाचरणके द्वारा नहीं मिलते या. उनके मिलनेमें विलम्य होता दीखता है तो तुरंत वे लोग पापमयी प्रवृत्तिमें पड़ जाते हैं। उनको भोग-प्राप्तिके अतिरिक्त कुछ भी नहीं सूझता । अतः धर्माधर्मका विचार उनमें नहीं रहता । अव तीसरा वर्ग (३) है जिज्ञामुका । इस वर्गके मनुष्य दृद्-निश्चयी होते हैं। इससे चाहे जितना दुःख आ पड़े, वे अपने निश्चित ध्येयसे कभी विचलित नहीं होते । ऐसे मनुष्य अपनी विवेक्दुद्धिके द्वारा संसारकी दुःखरूपताको देख चुके होते हैं। अतः वे सांसारिक सुखोंके लिये हाय-तोवा नहीं करते। उनका ध्येय होता है-ईश्वरका दर्शन करके भववन्धनसे छूट जाना । इसल्थि वे अपने मार्गसे नहीं हटते और दृढ़ताके साथ सिद्धि प्राप्त न होनेतक अपने मार्गपर चलते ही रहते है। शास्त्रों और दूसरे उपदेशोंकी सार्थकता इस वर्गके मनुष्योंके लिये ही है। चौथा वर्ग (४) है 'मुक्तपुरुषों' का । मुक्त तो मुक्त ही हैं । उनको न कोई इच्छा है और न उनके सामने कोई कर्त्तव्य ही शेष है। ऐसे लोग, जबतक जीते हैं, प्रभुमय जीवन विताते हैं और वे कुछ भी न करते हों तो भी स्वभावसे ही उनकी स्थितिमात्रसे ही 'लोक-कल्याण' हुआ करता है।

अब फिर मूल विषयपर आते हैं कि मनुष्य खुली आँखें और हाथमें दीपक लिये रहनेपर भी, पापरूपी अन्धकूपमें क्यों पड़ता होगा ? कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें अर्जुनके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था। इसलिये उसने भगवान्से पूछा कि 'महाराज! आप तो कहते हैं कि मनुष्य मेरी प्रतिकृति ही है और कर्म करनेमें उसको मेरी-जितनी ही स्वतन्त्रता मैंने दे रक्खी है; इसके विपरीत प्रत्यक्षमें तो यह दिखायी देता है कि उसकी अपनी इच्छा न होनेपर भी मानो दूसरा कोई उसे पापाचरणमें ढकेल देता हो, इस प्रकार मनुष्य दुराचारमें ढकल जाता है। जैसे बैलको उसका मालिक जबरदस्ती जुएमें जोत देता है, वैसे ही मनुष्य भी, दुराचार न करनेकी इच्छा होनेपर भी, मानो कैसे किसी दूसरेकी शक्तिसे, अपनी परवशतासे पापमें प्रवृत्त होता दीख पड़ता है। तो महाराज ! कृपा करके समझाइये कि ऐसी वह कौन-सी शक्ति है जो मनुष्यको वलात्कारसे पापमें लगा देती है।

इस उत्तम और लोककल्याणकारी प्रश्नको सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे अर्जुनको विस्तारपूर्वक समझाने लगे कि ऐसा क्यों होता है तथा साथ ही उसका उपाय भी बतलाने लगे।"

भगवान्ने कहा-

रजोगुणसमुद्भवः। क्रोध महाशनो महापापमा विद्ययेनमिह वैरिणम्॥ (गीता ३।३७)

अर्थात् मनुष्यको बलात्कारसे पापमें लगानेवाला अन्य कोई भी नहीं है, वह उसकी अपनी कामना ही है और प्रवल हुई कामना जब पराभवको प्राप्त होती है यानी कामना-के फलीभूत होनेमें जब कोई बाधा आती है तब वह कामना क्रोधका स्वरूप धारण कर लेती है। क्रोध भड़कते ही मनुष कर्तव्याकर्तव्यका भान खो बैठता है। अर्थात् जव मन्ध्यमं क्रोध व्याप जाता है, तत्र उसकी विवेक बुद्धिका काम एक जाता है। इस वातको हमारे गुरुजी एक दृष्टान्तके द्वारा बहुत सरलतासे समझाया करते थे। वे कहते-पुराने जमानेमं स्याहीकी द्वातें आतीं । तीन रंगोंकी स्याहीकेतीन-तीन अला-अलग दवातें एक काठकी चौखटमें बैठायी हुई रहतीं। पर उन तीनों दवातोंपर ढकन दो ही होते। इससे एक समय एक ही द्वातका मुँह खुला रह सकता। वे दक्कत इधर-उधर सरकनेवाले होते । इससे यह सुविधा होती कि यदि लाल स्याहीसे लिखना हो तो उसपरसे ढक्कन सरका दिवा जाय । रोष दोनों द्वातोंका मुख अपने-आप ढक जाया। केवल लाल स्याहीका ही खुला रहेगा। इससे दूसरे राही स्याहीकी द्वातमें कलमके चले जानेका भय नहीं रहेगा। अपनी इच्छा हो तो भी दो दवातोंका मुख एक साथ खुळा नहीं रख सकेंगे । इसी प्रकार कामना और विवेकके बीचमें एक ही दक्कन है। एकका दक्कन अच्छी तरह खुल जाया और दूसरेका विल्कुल बंद हो जायगा। जब कामना अपने साधारण रूपमें होती है, तब तो विवेकका ढक्कन थोड़ा-स खुला रहता है और इस कारण वैसे किसी प्रसंगपर मनुष्य विवेकका उपयोग करके वच जाता भी दीखता है। पर जव कामना प्रवल हो उठती है, तब तो विवेकका दकन प्रायः बंद हो जाता है। एवं जब कामना अवरोध पाकर क्रोधके रूपमें भड़क उठती है, तब तो विवेकके बंद ढकनेपर मानी सील लग जाती है। परिणाम हमारे सामने है।

अताएव भगवान् कहते हैं—मनुष्यको उसकी इन्छान होनेपर भी पापमें लगानेवाली अपनी कामनाके अतिरिक अन्य कोई भी नहीं है। अब कामनाका खल्प समझाते हैं। कामना रजोगुणसे ('रजो रागात्मकं विद्धि'—अर्थात् रागली रजोगुणसे आसिक्तसे) उत्पन्न होती है, इसिंख्ये वह स्वभाव से ही बलवान् होती है और इसीसे उसको द्वानेके लिये वहुत बड़े बलकी आवश्यकता है। फिर, वह कामना बड़ी ही कहूं है CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangh Collection, Haridwar

(0)

न्य

भीर

ना-

ना

नुष्य

थमं

ाता

हुत

नेमं

लग-

| पर

समय

धर-

यदि

दिया

गा।

गकी

गा।

खला

चिम

यगा

अपने

गु-सा

नुध्य

जय

प्रायः

धिक

मानो

ज्ञा न

रिक्त

ल्पि

माब-

である

बाइये—त्यों-ही-त्यों उसकी भ्रख बढ़ती ही जायगी। यह बात इस एक श्लोकमें बहुत अच्छी तरह समझायी गयी है— बत्पृथिन्यां ब्रॉहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। एकस्यापि न दुद्यन्ति मनः कामहतस्य ते॥

कहते हैं कि इस सारी सृष्टिमें जितने भी धन-धान्य, समृद्धि, पशु आदि और स्त्री-पुत्रादि हैं, वे सभी एक ही हाथ एक मनुष्यको मिल जायँ, तो भी यदि किसीका मन क्रामनाओंसे चोट खाया हुआ यानी भोग-वासनाके वश हुआ होता है तो उसको संतुष्ट नहीं कर सकते। यह हुआ 'महारान' का अर्थ । अव कामनाका दूसरा विशेषण है— 'महापाप्मा' अर्थात् महान् पापी । अतः वह उसके वशमें रहनेवालेको भी अपने ही-जैसा महापापी बना देती है। इतना ही नहीं, इच्छा न होनेपर भी उसको पापके पङ्कमें घुसा देती है। इसके बाद भगवान् कहते हैं कि इस कामनाको तू संसारमें अपना सचा <mark>रातु समझ । कामनाको मनुष्य यदि अपना रात्रु मान छे तो</mark> भिर वह जैसे दूसरे शत्रुको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करता है वैसे ही इस रात्रुको भी वशमें करनेका विचार कर सकता है। परंतु दुःखकी वात तो यही है कि मनुष्य कामनाको शत्रु मनता ही नहीं, वह तो उसे हितैषी—मित्र मानता है और इसीलिये उससे अधिक-से-अधिक दवता जाता है। इसके ल्ये मगवान्ने कहा है कि इस संसारमें हे अर्जुन ! तेरी यह भमना ही, तेरा वड़े-से-वड़ा वैरी है। जो तुझे संसारमें क्लन्त्रताके साथ सुखपूर्वक जीना हो तो इस शत्रुको पराजित क्रके अपने वशमें कर लेना चाहिये।

इसके पश्चात् कामनाके दूसरे विशेषणोंको समझाते हुए वे बहते हैं जैसे धुएँसे अग्नि ढक जाती है, मैळसे द्र्पण ढक जाता है और माताके उदरमें गर्भ जेरसे ढका रहता है, वैसे ही कामनासे यह सम्पूर्ण विश्व ढका हुआ है—उससे मोहित ही रहा है। फिर, इस कामनाका ज्ञानी पुरुषके साथ तो सहज के है, अतएव यह उसके ज्ञानको द्वा देती है।

फिर भगवान् कहते हैं कि तुझे यदि कामनासे युद्ध केता हो तो वह कहाँ रहती है और किस प्रकारसे युद्ध किती है, यह जान लेना आवश्यक है। मुख्य रूपसे तो अमनाएँ इन्द्रियोंके द्वारा ही प्रवेश करती हैं और किस मनका सहयोग प्राप्त होनेपर बुद्धिपर आक्रमण करके अपर भी अपना अधिकार जमा लेती हैं। इस प्रकार उनका एके तो यदि तुझे कामनापर चढ़ाई करनी है तो अता हो कि इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त कर ले। तुझे यदि यह कि कि इन्द्रियों तो पाँच हैं और सभी बड़ी बलवती

हैं, अतः उन्हें कैसे जीता जा सकता है तो सुन ! इन्द्रियोंसे मन अधिक बळवान है, मनसे भी बुद्धि अधिक बळवती है और बुद्धिसे भी पर यानी परम श्रेष्ठ वह आत्मा है, जो बड़ा ही बळवान है। जैसे सूर्यके सामने दूसरे दीपक आदि कोई प्रकाश नहीं दे सकते, वैसे ही इन्द्रियाँ, मन या बुद्धि आत्माके प्रकाशसे अभिभृत होकर दूर खिसक जाते हैं। अतएव—

एवं बुद्देः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना। जिह शत्रुं महावाहो कामरूपं दुरासदम्॥

अर्थात् बुद्धिसे पर—श्रेष्ठ जो तेरा आत्मा है, उसके बलके द्वारा मन-बुद्धिको संयमित करके हे अर्जुन ! त् कामरूपी अजेय शत्रुका संहार कर डाल । अर्थात् त् अपने आत्मस्वरूपमें स्थिर हो जा । इससे तुझे अनुभव होगा कि मैं तो मन, बुद्धि और इन्द्रियों के व्यवहारसे असङ्ग हूँ । उनका व्यवहार उन्हें सुख-दु:ख दे सकता है, मुझको नहीं । ऐसा निश्चय होनेपर कामना अपने-आप शान्त हो जायगी ।

अव इस प्रसंगकी तर्कसे जाँच करें । कामना जायत् क्यों होती है ! शरीरको सुख पहुँचानेके लिये । शरीरको सुख किप्तलिये पहुँचाना है ! जीव भ्रमसे अपनेको शरीररूप मानता है और इसीसे वह शरीरको सुख पहुँचानेके लिये इधर-उधर दौड़ता रहता है, किंतु सुख कहीं भी नहीं मिलता। अतः कामनाका भी कहीं अन्त नहीं आता। इस भ्रमकी निवृत्तिका क्या उपाय है ! तत्त्वज्ञान—अपने स्वरूपका ज्ञान। जीव भ्रमसे अपनेको शरीररूप मानता है, इस भ्रमको छोड़कर वह अपनेको आत्मारूप मानने लगे—इतना ही करना है । 'मैं शरीर हूँ' इसकी जगह यह हद हो जाय कि 'मैं आत्मा हूँ, अतः स्वभावसे ही सुखरूप हूँ।' ऐसा होते ही जीवका शरीरको सुख पहुँचानेके लिये भटकना वंद हो जायगा।

इस निवन्धके प्रारम्भमें यह प्रश्न था कि 'मनुष्य यह समझता है कि इस संसारमें आकर ईश्वरका भजन करनेसे अवश्य मुक्ति मिल जाती है। तो भी वह ऐसा न करके विषयोंकी प्राप्तिके लिये ही दौड़ता रहता है और उसमें धर्माधर्मका भी ध्यान नहीं रखता। ऐसा क्यों होता है ?' इसके उत्तरमें हमने देखा कि जवतक मनुष्य इच्छाके मोह-पाश्चमें जकड़ा है और वासनाके भँवरमें डुविकयाँ खा रहा है, तबतक उसकी इच्छा होनेपर भी उससे भजन नहीं हो सकेगा। अत्रष्य कल्याणकामो पुरुषको इच्छा मात्रका त्याग करना चाहिये। इच्छाका त्याग होनेपर शुद्ध अन्तःकरणमें ईश्वरका साक्षात्कार होगा और ऐसा होनेपर भववन्धन कट जायगा।

सिचदानन्दघन ब्रह्मके तत्त्वका विवेचन

(त्रेखक--श्रद्धेय श्रीजयद्यालजी गोयन्द्का)

भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग—तीनों ही मुक्तिप्रद हैं। भक्तियोगमें तो भगत्रान्के प्रति अनन्य विशुद्ध दृद प्रेम होना प्रधान है और कर्मयोगमें निष्काम भावकी प्रधानता है; किंतु ज्ञानयोगमें प्रमात्माके ख्राक्पका ज्ञान ही प्रधान है । अतर्व ज्ञानयोगके साधकको महापुरुषोंसे तथा शास्त्रोंसे सिच्चदानन्द्धन प्रमात्माके खरूपका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यहाँ परमात्माके खरूपके सम्बन्धमें कुछ विचार किया जाता है।

परम्हा परमात्मा सत् है, चिन्मय है, आनन्दघन है, सम है, अनन्त है और व्यापक है। अब इन छहोंके सम्बन्धमें अलग-अलग विवेचन किया जाता है।

सत्ता

'सत्' राब्द भावका वाचक है । जो नित्य शास्वत है, जिसका कभी क्षय नहीं होता है और जिसका कभी किसी प्रकार भी बाध नहीं किया जा सकता, वही सत है। श्रीभगवान् कहते हैं-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वद्शिभिः॥ (गीता २।१६)

'असत् वस्तुको तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषोंद्वारा देखा गया है।

सत् खरूपका वर्णन भगवान्ने गीताके बारहवें अथ्यायके तीसरे इलोकमें यों किया है-

त्वक्षरमनिर्देश्यमन्यक्तं पर्यपासते। सर्वत्रगमचित्रयं च कृटस्थमचलं ध्रुवम्॥

'जो पुरुष मन-बुद्धिसे परे, सर्वव्यापी, अक्थमीय-निराकार, अविनाशी सिचदानन्द्यन ब्रह्मको निरन्तर एकी स्वाहित्र कार्याहित के प्रमातमा ज्यापि के निरन्तर एकी स्वाहित स्वाहित के प्रमातमा ज्यापि के कि प्रमातमा ज्यापि के निरन्तर एकी स्वाहित स्वाहित प्रकाशिक और अज्ञानसे अत्यन्त परे हैं। खरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल,

भावसे ध्यान करते हुए भजते हैं (वे मुझको ही प्राप्त होते हैं)।

इससे समझना चाहिये कि प्रमात्मा अक्षर, अनिर्देश, अन्यक्त, अचिन्त्य, सर्वन्यापी, कूटस्थ, अचल और ख़ सत्य है। इन शब्दोंसे जो सत्ता मनुष्यकी समझमें आती है, उसकी अपेक्षा भी उस परब्रस परमात्माकी सत्ता अत्यन्त विलक्षण है । वास्तवमें तो ब्रह्मका खरूप सत्-असत दोनोंसे विलक्षण है-

न सत्तकासदुच्यते । (गीता १३।१२) 'वह परब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही।

क्योंकि वह मन, बुद्धि और वाणीका विषय नहीं है। जो मन, बुद्धि और वाणीका विषय होता है वह ज़ेय होनेके कारण जड है, किंतु परमात्माका बहा केवल चेतन है, वह स्वयं ही अपने-आपको जानता है। दूसरा उसे कोई नहीं जान सकता ।

चतनता

जो सबको जाननेवाला और सबका प्रकाशक है, वह 'चेतन' कहा जाता है । श्रीमगवान् कहते हैं— ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुज्यते। ज्ञानं हेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥ (गीता १३।१७) 'वह परम्रह्म परमारमा ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है । वह प्रमात्मा बीय-स्वरूप जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेके योग

है और सबके हृद्यमें विशेषरूपसे स्थित है।' अतः समझना चाहिये कि प्रमात्मा उयोतियोंका भी तथा मुझक

जा

कह

सर्वया

सव ब चेतनत

चेतनत य

में स नो स्वर

और जर असको

श्रुवि

'जि नहीं सम

शि हो

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय—इन तीनोंमें जो ज्ञाता है वही चेतन है। ज्ञान और ज्ञेय दोनों जड हैं। बुद्धि और बुद्धिकी वृति ज्ञान है, उसके द्वारा जाननेमें आनेवाले सभी पदार्थ ब्रेय हैं और परमात्मा ज्ञाता है; उसीको द्रष्टा, साक्षी, वेतन (चिन्मय) कहा गया है । वह प्रमात्मा सबको जानता है, उसे कोई नहीं जानता । भगवान्ने गीतामें कहा है---

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन। भविष्याणि च भृतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ (७।२६)

·हे अर्जुन ! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित त्या आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ; प्रंतु मुको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता।'

वास्तवमें तो वह प्रमात्मा ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयकी त्रिपुटीसे संवया परे है ।

इन सारे शब्दोंसे जो चेतनता समझमें आती है वह स बुद्धिका विषय है और बुद्धिद्वारा समझमें आनेवाळी वेतनता जडिमिश्रित है । अतः वह परमात्माकी स्वरूपभूत चेतनता इससे अत्यन्त विलक्षण है ।

यदि कोई कहे कि उस चिन्मय प्रमात्माके स्वरूपको मि समझ लिया है तो उसे विचार करना चाहिये कि ने स्वरूप मन-बुद्धिकी समझमें आया है वह तो अल्प भे जड है। एवं जिसको समझनेका अभिमान होता है असो वास्तवमें उसका अनुभव ही नहीं है।

श्रुतिमें बतलाया गया है—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥

(केन०१।५) 'जिसको कोई भी मनसे (अन्त:करणके द्वारा)

हीं समज्ञ सकता, विल्क जिससे मन मनुष्यका जाना हो जाता है—ऐसा कहते हैं, उसको ही तू ब्रह्म

जान । मन और बुद्धिके द्वारा जाननेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी छोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।'

. यस्यायतं तस्य मतं यतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविज्ञानताम् ॥ (केन०२।३)

'जिसका यह मानना है कि ब्रह्म जाननेमें नहीं आता, उसका तो वह जाना हुआ है और जिसका यह मानना है कि ब्रह्म मेरा जाना हुआ है वह नहीं जानता; क्योंकि जाननेका अभिमान रखनेवालोंके लिये वह ब्रह्मतस्व जाना हुआ नहीं है और जिनमें ज्ञातापनका अभिमान नहीं है, उनका वह ब्रह्मतत्त्व जाना हुआ है अर्थात् उनके लिये वह अपरोक्ष है।'

जो प्रमातमा सत्—भावरूप है, वही चेतन है। जो चेतन है, वही वास्तवमें है । चेतन और भाव कोई दो पदार्थ नहीं हैं। चेतनताकी सत्ता कायम करनेके छिये ही 'सत्' कहा जाता है। अतः वहीं चेतन भी है और सत् भी है। तथा सत् और चेतन विशेष्य-विशेषण भी नहीं हैं। वह परमात्मा अनिर्देश्य है, उसका किसी प्रकार भी निर्देश नहीं किया जा सकता । जिसका निर्देश किया जाय, उस ज्ञेय—जाननेमें आनेवाले खरूपसे ब्रह्मका वास्तविक खरूप अत्यन्त विलक्षण है। वह न वाणीके द्वारा कहा जा सकता है और न मनके द्वारा मनन किया जा सकता है।

श्रुति कहती है-

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विमेति कदाचन ॥ (तैत्ति० २।४)

'जहाँसे मनके सहित वाणी आदि इन्द्रियाँ उसे न पाकर लौट जाती हैं, उस ब्रह्मके आनन्दमय स्वरूपको जाननेवाला पुरुष कभी भय नहीं करता ।

आनन्द

जो निरतिशय परम सुखस्कप है, जहाँ दु:खोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्राप्त

र्य, श्च आती

सत्ता सत्-

१२) , न

हि। न्नेय

ब्रह्म ता है।

म है।

20) एवं

ब्रोध-ग्राय

भी भी 會

उस

देश

कार

जान

आन

बात

इसलि

प्रकार

उसक

उसके

कारण

होता,

विन्ता

सकता

अतः

न वर्ण

जा सर

जानने-

आनन्द

आनन्द

आनन्द

ने(ता

वनुभव

बहुत ह

य

अत्यन्त अभाव है, उसे 'आनन्द' कहते हैं । प्रमात्मा आनन्दमय—आनन्दसे परिपूर्ण है ।

आनन्द्मयोऽभ्यासात्। (ब्रह्मसूत्र १।१।१२)

'श्रुतिमें 'आनन्द' शब्दका ब्रह्मके छिये बारंबार प्रयोग होनेके कारण यहाँ 'आनन्दमय' शब्द परब्रह्म परमात्माका ही वाचक है ।'

'आनन्दमय' शब्दमें 'मयट्' प्रत्यय विकार अर्थका बोधक नहीं है, प्रचुरताका बोधक है। यह आनन्द छौकिक आनन्दका वाचक नहीं है, ब्रह्मका वाचक है। इसिक्रिये परब्रह्म परमात्मा आनन्दमय आनन्दघन है; क्योंकि—

रसो वै सः । रसः होवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति । को होवान्यात्कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । एष होवानन्दयाति ।

(तैत्ति० उ० २।७)

अर्थात् 'वह आनन्दमय ही रसखरूप है, यह जीवात्मा इस रसखरूप परमात्माको पाकर आनन्दयुक्त हो जाता है । यदि वह आकाशकी भाँति परिपूर्ण आनन्द-खरूप परमात्मा नहीं होता तो कौन जीवित रह सकता, कौन प्राणोंकी क्रिया कर सकता ? सचमुच यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता है ।' तथा—

सैया आनन्दस्य मीमाश्सा भवति।

(तै० उ० २।८)

'वह यह आनन्दसम्बन्धी विचार आरम्भ होता है।'

एतमानन्दमयमात्मानमुपसंकामति ।

(तै० उ० २।८)

'इस आनन्दमय आत्माको प्राप्त होता है।'

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन। (तै॰ उ॰ २।९)

'उस ब्रह्मके आनन्दमय खरूपको जाननेवाला महापुरुष किसीसे भी भय नहीं करता ।' आनन्दो ब्रह्मेति न्यजानात् । आनन्दाद्वयेव खित्वमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।

(तै० उ० ३ । ६)

श्रीमृगुऋषिने 'आनन्द ही ब्रह्म है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक जान लिया; क्योंकि सचमुच आनन्दसे ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होना आनन्दसे ही जीते हैं तथा प्रयाण करते हुए अन्तमं आनन्दमें ही विलीन हो जाते हैं।'

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। (वृ० उ० ३।९।२८)

'ब्रह्म ज्ञानस्वरूप और आनन्दमय है।'—इत्यादि श्रुतियोंमें 'आनन्द' शब्दके लिये बारंबार प्रयोग किया गया है—इस न्यायसे यह 'आनन्दमय' शब्द ब्रह्म ही बाचक है।

जैसे वर्फ जलवन है—वर्फमें जल ही जल है; किंतु वर्फ और जल दोनों ही जड हैं। इस प्रकारकी जड़की घनताकी ज्यों चेतनकी घनता नहीं है। एवं जैसे शिलमें पत्थर ही—ऐसी शिलाकी घनताकी भाँति भी वह नहीं है; क्योंकि शिला जड़ है और उसमें आकाश तो प्रविष्ट है ही। वायु, अग्नि और जलका भी प्रवेश होता देखा जाता है। किंतु जो आनन्द घन ब्रह्म है, उसमें किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है। वह आनन्द मय परमात्मा अपने-आपसे ही परिष्ट्रण है। इसी तत्त्वका यह शान्तिमन्त्र संकेत करता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुद्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ (बृह०५।१।१)

'वह सचिदानन्दघन परमात्मा अपने आपे परिपूर्ण है, यह संसार भी उस परमात्मासे परिपूर्ण है; क्योंकि उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मासे ही यह कूर्ण (संसार) प्रकट हुआ है। पूर्ण (संसार) को स्वीकार करके उसी का पूर्ण (पूरक परमात्मा) को स्वीकार करके उसी का प्राणित परमात्मा का स्वीकार करके उसी का प्राणित परमात्मा का स्वीकार करके उसी का प्राणित करके उसी कर परमात्मा का प्राणित करके उसी का प्राणित कर प्राणित करके उसी का प्राणित करके उसी का प्राणित कर प्राणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

येव तानि

1 ३६

=

每) प्रकार से ही

होका अन्तमं

26) त्यादि किया

ब्रह्मका

किंत जडकी

शेलामें र्गी वह विष्टहै

ताहै। व नहीं

रिक्रो

18)

आपसे रिक्रो

TT) उसम

_{थित होनेसे} उस साधकके लिये एक पूर्ण ब्रह्म प्रमात्मा ही अवशेष रह जाता है।

वह आनन्द अपार है, उसकी कहीं इति नहीं, मीमा नहीं; और शान्ति ही उसका खरूप है इसलिये असो शान्त आनन्द कहते हैं । वह अचल होनेके कारण देश-कालसे चलायमान नहीं होता; क्योंकि वह कामालसे रहित है। वह आनन्द भावरूप होनेके काण नित्य ध्रव सत्य है । वह स्वयं ही अपने-आपको जानता है, इसलिये उसे बोधस्वरूप या ज्ञानस्वरूप अनन्द कहते हैं । वह आनन्द राजस-तामसकी तो गत ही क्या, सात्त्विक सुखसे भी अत्यन्त परे है। अलिये उसको परम आनन्द कहते हैं। जितने भी क्रारके सुख हैं, वे सब उसके आभासमात्र होनेके कारण उसमा मुकावला नहीं कर सकते । उनमेंसे कोई भी उसके समान नहीं। अतः वे सभी सुख अल्प हैं। और वह आनन्द सबसे श्रेष्ठ, महान् और पर होनेके कारण महान् आनन्द है । उसका कभी अन्त नहीं होता, इसलिये वह अनन्त आनन्द है। उसका न _{षितान} किया जा सकता है, न मनन किया जा क्तता है, न बुद्धिके द्वारा समझा जा सकता है; ^{अतः} उसे अचिन्त्य आनन्द कहते हैं । उस आनन्दका न वर्णन किया जा सकता है और न संकेत किया मिकता है; इसिलिये वह अनिर्देश्य है। जो बात गनने समझनेमें आती है, वह जड होती है; किंतु वह ^{अतन्द} स्वयं चिन्मय है । जो जानने-समझनेमें आनेवाला ^{श्रानन्द} है, वह ज्ञेय होनेसे अल्प और जड है । अत: वह ^{आनन्द} उससे अत्यन्त विलक्षण है।

यदि कोई कहे कि उस आनन्दका मैं अनुभव भता हूँ तो उसे विचार करना चाहिये कि जिसका अनुभव किया जाता है, वह तो अल्प और जड है। अतः उस अनुभवमें आनेवाले आनन्दसे वह आनन्द वहुत विलक्षण है।

समता

परमात्माके खरूपकी समता चिन्मय होनेके कारण बहुत ही विलक्षण है । समता तीन प्रकारकी होती है— (१) साधक पुरुषकी समता, (२) सिद्ध पुरुषकी समता और (३) परमात्माके खरूपकी समता।

साधकके लिये समताका वर्णन गीतामें इस प्रकार है-सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्य नैवं पापमवाष्ट्यसि॥ (2136)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और स्ख-दःख समान , समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा । इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा ।'

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय। सिद्ध्यसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ (गीता २ । ४८)

'हे धनंजय ! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्यकमींको कर, समत्व ही योग कहलाता है।'

किंतु सिद्धपुरुषकी समता इससे बहुत विलक्षण है। (देखिये गीता ५ । १९; ६ । ९; १२ । १८-१९; १४। २४-२५) साधकके लिये तो 'समे कृत्वा'-'समान समझकर', 'समो भूत्वा'-'सम बुद्धिवाला होकर'-ऐसे आदेशात्मक प्रयोग आये हैं, क्योंकि साधकके अन्त:-करणमें स्थायी समता नहीं होती । किंत् सिद्ध महात्मा पुरुषके अन्तः करणमें समता खाभाविक ही रहती है । पर यह दोनों प्रकारकी ही समता सात्त्रिक है, इसलिये जड है और परमात्मा गुणातीत तथा चेतन है; इसलिये प्रमात्माके खरूपकी समता साधक और सिद्धकी समतासे भी अत्यन्त विलक्षण है।

यदि कोई कहे कि परमात्माकी समताकी विलक्षणता-को मैं समझ गया तो उसे यह विचार करना चाहिये कि वह समता समझका विषय नहीं है । बुद्धिके द्वारा

संख्य

और

अतः

भी अ

उन उ

हैं;

समान

प्रमात

अभाव

आधार

समान

चिन्मय

गीतामें

4

और स

मितु व

य

निराक

भी हूं-

होती है

नगत्में

शित

है, आ

विलीन

समझमें आनेवाली समता तो अल्प है और ज्ञेय होनेसे जड है । परमात्माके समभावको वस्तुतः परमात्मा ही समझता है । जो सिच्चदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होता है—जो ब्रह्म ही बन जाता है, वह अपने-आपको समझता ही है; किंतु परमात्मप्राप्त पुरुषकी हृदयस्थ समता भी उत्तम गुण और सात्त्विक भाव ही है । वह भी परमात्माकी समताका ही आभास है । जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमाका प्रतिविक्व होता है । चन्द्रमाका प्रतिविक्व चन्द्रमा नहीं है । उसी प्रकार महापुरुषोंके हृदयमें प्रतीत होनेवाली समता समस्वरूप परमात्माकी समताका आभास है । जिसके हृदयमें समता प्रतीत होती है, वह पुरुष परमात्माको प्राप्त हो चुका है, यह उसकी कसौटी है ।

अनन्तता

संसारमें प्रतीत होनेवाले समस्त पदार्थीमें आकाशको अनन्त वताया जाता है। इसी कारण परमात्माके निराकार तत्त्वको समझानेके लिये आकाशका उदाहरण दिया जाता है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् । तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥

(१।६) 'जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा आकाशमें ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प-द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं—ऐसा जान।'

यहाँ आकाशस्थानीय परमात्मा है और वायुस्थानीय सम्पूर्ण भूत हैं । वायुकी उत्पत्ति, स्थिति और लय आकाशसे ही होनेके कारण वह सदा ही आकाशमें ही स्थित है । इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लय परमात्माके संकल्पके आधार होनेके कारण सम्पूर्ण भूतसमुदाय सदा परमात्मामें ही स्थित है; क्योंकि जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशके सहित उस स्वप्नद्रष्ट पुरुषके

मनके अन्तर्गत है, उसी प्रकार सम्पूर्ण पश्चभूतीके सहित्र आकाश परमात्माके मनके संकल्पके अन्तर्गत है। इस मन महत्तत्त्व यानी परमात्माकी समष्टि बुद्धिके अन्तर्गत है। वह समष्टिबुद्धि मूल प्रकृतिके अन्तर्गत है और ए प्रकृति परमात्माके अन्तर्गत है। इसिलिये आकाशसे सूक्ष पर श्रेष्ठ और अनन्त है महत्तत्त्व (सम्प्रिबुद्धि)। समष्टिबुद्धिसे सृक्ष्म पर श्रेष्ठ और अनन्त है मृत्य्प्रकृति त्य मूलप्रकृतिसे भी सृक्ष्म पर श्रेष्ठ और अनन्त है परमात्मा किंतु परमात्मासे सृक्ष्म, पर, श्रेष्ठ और अनन्त हु विस्तान वृत्य नहीं है।

उपरिनिर्दिष्ट सभी पदार्थोंकी अनन्ततासे परमामानी अनन्तता अत्यन्त विरुक्षण है; क्योंकि परमामा चेतन है और प्रकृति तथा उसका कार्य सब अल्प और जड़ है।

श्रुति कहती है— सत्यं **ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**। (तैति॰ २।१) 'ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है।'

व्यापकता

परमात्माकी व्यापकता भी बहुत विरुक्षण है। तिलीं तेल और दूधमें धीकी भाँति वह व्यापकता नहीं है। तेल और खली अथवा घी और लाल — ये अलाअला पदार्थ हैं। दोनोंकी समान सत्ता है और दोनों ही जह हैं। किंतु परमात्मा चेतन है और उसकी स्वाक्त अन्य किसीकी सत्ता नहीं है। यदि जह पर्गांकी सालपनिक सत्ता मानी जाय तो परमात्माकी सत्ताही उनकी सत्ता है। जैसे वायु, तेज, जल और पृष्वी उनकी सत्ता है। जैसे वायु, तेज, जल और पृष्वी उनकी सत्ता है। जैसे वायु, तेज, जल और पृष्वी उनकी सत्ताही । जैसे वायु, तेज, जल और पृष्वी उनकी सत्ताही है। उससे भी परमात्माकी व्यापकता बहुत किल्ला कारण है, उससे भी परमात्माकी व्यापकता बहुत किल्ला है; क्योंकि एक तो आकाश जड है; दूसरे अकार है; क्योंकि एक तो आकाश जड है; दूसरे अकार है, किंतु बहुत तो अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। इसिंक है, किंतु बहुत तो अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। इसिंक अद्देतसिद्धान्तक अनुसार एक बहुक सिंवा दूसी बंध है ही नहीं। यदि कहें कि संसारकी प्रतीति होती है

35

=

सहित

1 3

न्तर्गत

र्म्

दें)।

ते तथ

मात्मा ।

न वृत्व

मात्माकी

चेतन है

ड है।

तिली

हीं है।

माअला

दोनों ही

सत्ताके

परायोंकी

त्तासे ही

पृथ्वीमें

उपादान विलक्षण

आकारी

रण नहीं

इसिंहिंग

सरी वर्ष

होती

और हस्य जड संसारको ब्रह्मका संकल्प माना गया है अतः वह ब्रह्मका स्वरूप है सो ठीक है। पर इस न्यायसे भी आकाशके विकाररूप जो वायु, तेज, जल, पृथ्वी हैं उन आकाशके कार्योमें आकाश व्यापक है सो तो ठीक है; किंतु वायु, तेज, जल, पृथ्वीकी और आकाशकी तो समान सत्ता है और ये सभी पदार्थ जड हैं। पर प्रमात्मा चेतन है, भावरूप है और ये सब पदार्थ अभावरूप हैं। ये सब पदार्थ परमात्माके संकल्पके आधार होनेके कारण परमात्माकी सत्ता इनकी सत्ताके समान नहीं है। इसलिये जड आकाशकी अपेक्षा उस विनय परमात्माकी व्यापकता बहुत ही विलक्षण है। गीतामें वतलाया गया है—

मया ततमिदं सर्वे जगद्व्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ (९।४)

'मुझ निराकार परमात्मासे यह सब जगत् परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधार स्थित हैं; किंतु बास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूँ ।'

यहाँ भगत्रान्ने जो यह कहा है कि में सारे जगत्में निराकाररूपसे व्यापक हूँ और मैं जगत्में व्यापक नहीं में हूँ—इसका भाव यह है कि जहाँ जगत्की प्रतीति होती है वहाँ तो परमात्मा उसमें व्यापक है और वस्तुत: गत्में परमात्मा व्यापक नहीं है, वह अपने आपमें ही कित है। जैसे आकाशसे ही बादलोंकी उत्पत्ति होती है, आकाशमें ही बादल स्थित हैं और आकाशमें ही विश्वन हो जाते हैं, इसी प्रकार यह जगत् परमात्मासे

उत्पन्न होकर परमात्मामें ही स्थित रहता है और परमात्मामें ही विलीन हो जाता है। किंतु विचार करना चाहिये कि बादलोंकी उत्पत्तिके पहले भी आकाश अपने-आपमें ही था और बादलोंके विनष्ट हो जानेपर भी आकाश अपने-आपमें ही है। अतः बादलोंकी प्रतीति होनेके समय भी आकाश अपने-आपमें ही स्थित है—यही सिद्ध होता है। इस सिद्धान्तके अनुसार आकाश बादलोंमें स्थित है भी और नहीं भी है। बास्तवमें तो आकाश अपने-आपमें ही स्थित है। इसी प्रकार परमात्मा बस्तुतः स्वयं अपने-आपमें ही नित्य स्थित है।

यदि कहें कि प्रमात्माकी व्यापकता मी हमारी समझमें आ गयी तो यह समझना वास्तविक नहीं है; क्योंकि जो बात समझमें आती है वह अल्प होती है और जड होती है; किंतु प्रमात्मा अनन्त, चिन्मय और अद्वितीय है । इसलिये उसकी भी व्यापकता समझमें आनेवाली व्यापकतासे बहुत ही विलक्षण है ।

इसी प्रकार प्रमात्माकी अव्यक्तता, अचिन्त्यता, अनिदेशियता, घनता (प्रचुरता), कृटस्थता, पूर्णता आदिके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। उपर्युक्त प्रकारसे प्रमात्माके तत्त्रको यथार्थ जान लेनेपर मनुष्य प्रमात्माको ही प्राप्त हो जाता है। अतएव ज्ञानयोगके साधकोंको उचित है कि वे सिचदानन्द्घन प्रमहस प्रमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ऊपर वतलाये हुए प्रकारसे उसे समझकर नित्य निरन्तर उसीमें अभिन्नभावसे स्थित रहें।

परब्रह्मका मधुर नृत्य

जिसकी कहीं न कोई तुलना, जिसका कहीं न कुछ उपमेय। सर्वरिहत जो सदा सर्वमय सर्वातीत सर्वपर श्रेय॥ जिसकी सत्ता चेतनता आनन्दरूपता अमित अनन्त। जिसकी सक्ता चेतनता आनन्दरूपता अमित अनन्त॥ जिज स्कूप-महिमामें स्थित जो, जिसमें सबका उद्भव-अन्त॥ वही अचिन्त्यानन्त अनिर्वचनीय दिव्य माधुर्याधार। नाच रहा वज-धूलि-धूसरित प्रेम-सुधा-रस-पारावार॥



のぞくぐくぐく

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गोपाल श्रीकृष्ण

(लेखक-प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र)

बाल्यकालमें गोपाल श्रीकृष्ण वड़े चञ्चल एवं चतुर थे। इतना ही नहीं, बल्कि उनके खभावमें नटखटपन भी था । देवताके निमित्त रक्षित दही-माखन चुराकर स्वयं खा लेना, गोपियोंके घरमें ग्वालवालोंके साथ चुपकेसे प्रवेश करके माखन-चोरी करना, पकड़े जानेपर अपनी निर्दोषता-की सफाई देना, अपने सखाओंपर इल्जाम लगाना, गोपियोंसे छेड़-छाड़ करना—यह सत्र उनकी नित्यकी लीलाएँ थीं। ब्रजवासीगण उनके छीलासहचर थे । ब्रजवासी उनके शैशवकी अलैकिक एवं असामान्य घटनाओंको देखकर यह विश्वास करने लगे थे कि श्रीकृष्ण भगवान्के अवतार हैं। यही कारण है कि व्रजवालाएँ गोपालके नटखटपनसे चिढ़-कर जब माता यशोदाके पास उठाहना देने पहुँचती थीं और यशोदा गोपालको डाँटने लगती थी, उस समय गोप-बालाएँ ही मातासे उन्हें क्षमा कर देनेका अनुरोध करती थीं । उस सहज सुन्दर बालककी रूप-माधुरीमें एक ऐसा दुर्निवार आकर्षण या कि कोई उसे प्यार किये विना रह नहीं सकता था।

वालगोपालके बड़े भाई वलराम उनके नित्यके संगी थे। वल्राम देखनेमें सुन्दर एवं बलिष्ठ थे। कृष्ण बल्राम-जैसे विष्ठष्ठ देह न होनेपर भी बुद्धि एवं चातुर्यमें उनसे वदे हुए थे। उनकी प्रकृति वड़ी कोमल थी। दोनों भाइयोंमें स्नेह् भी अपूर्व था। उस समय वृन्दावन अतिशय शोभा-मय एवं मनोरम स्थान था। प्रकृतिने अपने सौन्दर्यभंडारके अजस्र दानोंसे उसे सुषमामण्डित किया था । पासमें ही. गोवर्वन गिरि था, जो प्रकृतिके विचित्र शोभा-सम्भारसे सिज्जित था। विह्मकुळका कळ-कृजन, कळकळनादिनी यमुना, मृदु मन्द् समीर, नाना प्रकारके फल-फुलोंका नैवेद्य लिये हुए तस्त्रृन्द—ये सव उस वालककी पूजा करनेके लिये मानो आपसमें होड़ करने लगे थे। ऐसा था वह वृन्दावन-

धाम, जहाँ कांसके उत्पातोंसे ऊन्नकर नन्दसहित अन्यान गोकुलवासी आकर वस गये थे। वालगोपाल सम्मा गोकुळवासियोंके स्नेहभाजन, उनके प्रेमसर्वस थे। श्रीकृष्ण जब कुछ बड़े हुए, अन्य ग्वालबालोंको साथ लेका वृन्दावनके जंगलोंमें गाय चरानेके लिये जाने लगे। वहाँ ये भाँति-भाँतिके क्रीडा-क्रोतुक करते । दोनोंमें दूध दुहका खयं पीते और अपने साथियोंको पिलाते। नाम लेका एक-एक गायको पुकारते। गायें अघाकर घास चर्ता और इधर गोपाल सखासहित खेल-कूद, दौड़धूप, हास परिहास करते और कभी मौजमें आकर मुरलीकी मुर तान छेड़ते । गोचारणमें श्रीकृष्ण और ग्वालवालोंको नान प्रकारकी विपदाओंका सामना करना पड़ता। संधासमा क्षुचापीड़ित बालक्सगण गाय-बछड़ोंको लेकर जब घर हौसी, उनकी स्नेहमयी माताएँ आकुळ हृद्यसे उनकी प्रतीक्ष करती रहतीं । घर पहुँचकर वे अपनी माताओंसे उन स भयंकर घटनाओंका वर्णन करते, जो वनमें घटित हुई थीं और किस प्रकार श्रीकृष्ण-बलरामकी सहायतासे उनका परित्राण हुआ था । जननी अपने पुत्रको छातीसे लगका मन-ही-मन भगवान्के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती। जननी यशोदा भी अपने गोपालको गायोंको लेका वन जानेते मना करती । किंतु प्रात:काल होते ही जब आनन्दोखु सखागण नन्दके घर पहुँचते, श्रीकृष्ण उनके साथ वन जानेके लिये व्याकुल हो उठते । माँसे अनुनय-विनय कार्त और माँ राजी हो जातीं।

3

年

हीं

यम्

दाव

धा र्

आन

्रुजा

किये

गोवध

प्रचुर

और

होनी

हुए उ

मार्

ल्दिके

उनसे

मान्त्व

ही उट

छिये त

ही गो

को वा

हिनेको

श्रीकृष्णके प्रति गोपबालकोंका अनन्य प्रेम था। वे कोई मधुर फल या मिष्टान श्रीकृष्णको साथ हिये बिन कभी नहीं खाते। श्रीकृष्णको वे अपना अभिनहरूप सखा समझकार उनसे विशुद्ध ग्रेम करते। उन्हें अपने इस CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

त्ता। श्रीमद्भागवतकारने लिखा है—'यथार्भक: खप्रतिविविविश्वमः'। यही कारण था कि श्रीकृष्णके प्रति उनका
अनुगा इतना प्रगाद था। सखाके रूपमें त्रजवालकोंने
भावान् श्रीकृष्णको प्राप्त करके उनसे सख्यभावसे प्रेम
किया था और श्रीकृष्णने उनके साथ उसी भावसे विविध्व
बीलाएँ की थीं। महाविष्वर नाग कालियका दमन और
पमुनासे संतान-संततिके साथ उसका अन्यत्र निर्वासन,
रावानलसे साथियोंकी रक्षा तथा इसी प्रकारके अन्य
अवैकिक कृत्योंद्वारा श्रीकृष्णने यह प्रमाणित कर दिया
पा कि वे नररूपमें साक्षात् भगवान् हैं और भक्तोंको
अनन्द देनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं।

ब्रजवासी प्रतिवर्ष वड़े समारोहके साथ देवराज इन्द्रकी 🗿 करते । इन्द्र वृष्टिके देवता थे । उनकी आराधना क्षिये विना पृथिवी शस्यश्यामला किस प्रकार हो सकती र्ण । श्रीकृष्णने व्रजवासियोंको इन्द्रकी पूजा न करके गेर्वनिगिरिकी पूजाका उपदेश दिया—'गोवर्घनिगिरिकी मुत्र तृणराशिको चरकर त्रजकी गायें परिपुष्ट होती हैं और व्रजभूमिको समृद्ध बनाती हैं। इसलिये उसकी पूजा होनी चाहिये, न कि इन्द्रकी ।' इससे इन्द्र अत्यन्त कुपित 🧗 और ब्रजवासियोंको समुचित दण्ड देनेके छिये छगा-गि सात दिनोंतक प्रवल वारिवर्षण करते रहे। ब्रजवासी दिने कोपसे संत्रस्त होकर श्रीकृष्णके समीप पहुँचे और जसे अपना दुः ख निवेदन किया । उन्होंने सव लोगोंको ^{बिल्लना} देते हुए कहा कि उनके परित्राणके लिये शीघ्र हैं उपाय हूँ ह निकाला जायगा। साधुजनोंके परित्राणके त्रिये तो उनका अनतार ही हुआ था। उन्होंने सहज हीं गोवर्धनको अपनी उँगलीपर उठा लिया और सब लोगों-भो वर्षा और झंझावातसे वचनेके छिये उसके नीचे शरण केनो कहा। इस प्रकार उन्होंने सन प्राणियोंकी रक्षा की भी अपने बुद्धिकौशलसे इन्द्रको परास्त किया। भगवान्-भी भी छीलाको देखकर इन्द्र बहुत लजित हुए और

उन्हें अनन्त शक्तिशाळी तथा जगदीश्वर समझकर उनसे क्षमा-याचना की ।

श्रीकृष्णकी वयस् उस समय आठ वर्षकी थी। सौन्दर्य एवं छात्रण्यका एक साथ समावेश उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें हुआ था । सौन्दर्य देवताने अपने ऐश्वर्यभाण्डागारको रिक्त करके उन्हें सुषमामण्डित किया था। कीन ऐसा सहृद्य मनुष्य था, जो उस बालकके मनमोहन रूपपर मन-प्राणसे रीझ न जाय ? त्रजत्रासी तो उनके प्रेममें पागठ वनकर सब कुछ उनपर न्योछावर कर चुके थे । उन्होंने अपनी रूपमाधुरीसे, अपने अपार्थिव प्रेमसे गोप-गोपिकाओं-के हृद्यकों जीत लिया था। गोपवालक उन्हें अपना अन्तरङ्ग समझते थे और गोपिकाएँ उन्हें अपना जीवनधन प्रियतम । त्रतके दिनोंमं उपवास रखकर वे देवी-देवतासे वरदान माँगतीं कि श्रीकृष्ण उन्हें पतिरूपमें प्राप्त हों। उनकी मनोकामना पूर्ण हुई और श्रीकृष्ण उन्हें प्रियतम-रूपमें ही प्राप्त हुए । सरल-प्रकृति एवं विद्युद्धहृदया गोपबालाओंके अन्तरकी प्रार्थनाको भगवान्ने सना और उन्हें अपनी लीलासहचरी बनाकर कृतार्थ किया।

रारत्काल्की ज्योरमा-पुलकित यामिनी। यमुनाका तट । त्रज्ञब्लम श्रीकृष्ण वहाँ सवन वृक्ष-लताकुक्षमें एकाकी वेटे हैं । हाथमें वंशी है । आनन्दमें भरकर उन्होंने वंशीकी मधुर तान लेड़ दी। मधुर वंशीव्यनि चतुर्दिक् मन्द समीरद्वारा मेल गयी । उस संगीतलहरीमें एक अपूर्व उन्होंने सब लोगोंको परित्राणके लिये शीघ यमुना विपरीत दिशामें बहने लगी । आकाशमार्गमें देवताओंके विमान स्थिगत हो गये । आकाशमार्गमें देवताओंके विमान स्थिगत हो गये । और त्रज्ञबालाएँ ? वे तो उस विमोहनकारी स्वर-लहरीको सुनते ही अपनी सुध-लिया और सब लोगों- खुध खो बैठों । जो जिस अवस्थामें थी, उसी अवस्थामें अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये दौड़ पड़ी । कोई अपनी गोदके शिकुको दूध पिल रही थी, कोई अपने घरके एस्त किया । भगवान्- पुरुज्ञनको भोजन परोस रही थी, कोई एतिसेवामें लगी हुई СС-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अन्यान्य उसमत्त समता

ाथ लेका । वहाँ ये दहका म लेका

स चरती प, हास

र्ती मधुर को नाना ध्यासमय

जीरते, प्रतीक्षा

उन सत्र हुई थीं

उनका लगाका जननी

जानेसे होसुछ

थ वन करते

ा वि विमा महत्य

तार में इस जापी

खायी

AF

प्रकृ

ले

मा

明

लेग

ही इस

शाया

पर ही

साधारप

सेवा वि

अधिका

मता

सहारे

तिमय

ल जा

PAT

शनता ३

का

बेह्मण,

समझे उ

बिणर्व

जीवनभर

म और त

वेल्लानी ह

थेवस्था

थी; किंतु उस प्राणोन्मादक संगीतके माधुर्यसे वे आत्म-विस्मृत वन गयीं । उसके आकर्षणको वे रोक न सकीं और माता-पिता, भाई, पित तथा अन्य गुरुजनोंके निषेध एवं तिरस्कारकी उपेक्षा करके अपने आराध्यके दर्शनोंके लिये चल पड़ीं । श्रीकृष्णके समीप जब वे उपस्थित हुई, उन्होंने सहज ही यह जान लिया कि ये व्रज-सुन्दरियाँ उनके प्रति अनन्य प्रेम तथा मधुर वंशीध्वनिसे आकृष्ट होकर वहाँ उनसे मिलने आयी हैं। फिर भी उन्होंने उनके प्रेमकी परीक्षा लेनी चाही । उन्होंने व्रजाङ्गनाओंसे अपने-अपने घर ठौट जानेके लिये कहा-इस प्रकार रात्रिमें वहाँ अकेली आनेके लिये उनकी मृदुभर्त्सना की और शास्त्रवचन सुनाकर उन्हें गृहस्थधर्म-पालनका उपदेश दिया । श्रीकृष्णके उपदेशको सुनकर विमुख वालाओंका हृद्य विदीर्ण हो गया । वे भावावेगमें आकर रो पड़ीं और श्रीकृष्णसे कहने लगीं—'श्रीकृष्ण! तुम हमारे इष्टदेव हो, आराध्यदेवता एवं अन्तरात्मा हो । तुम्हें अपना जीवन-सर्वस्व जानकर हमने मन:प्राण तुममें ही समर्पित कर दिये हैं। हमारे मनमें अन्य कोई कामना या वासना नहीं है। अपने अपार्थिव प्रेमद्वारा तुमने हमारा च्चित्त हरण कर लिया है । अवतक हमने तुम्हारा दिन्य साहचर्य लाम किया है, तुम्हारे प्रति ही हम अहर्निश ध्यानस्थ रही हैं। निष्टुर वनकर हमें ठुकराओं नहीं । हमपर कृपा करो ।'

'मैवं विभोऽईति भवान् गदितुं नृशंसम्'

गोपियोंके इस एकनिष्ठ प्रेमको देखकर श्रीकृष्ण उनके प्रति प्रसन्न हुए और उनके साथ रासलीला की। प्रेमास्पदा गोपाङ्गनाओंको मानवशरीरचारी भगवान्का साक्षात् सांनिष्य प्राप्त हुआ।

श्रीमद्भागवतकी 'रासपञ्चाध्यायी' में लिखा है—

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः। योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्धयोः॥ 'गोपियोंके मण्डलसे मण्डित होकर—जित्र गोपसुन्दरियाँ वहाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके श्रीकृष्ण उनके साथ रासळीळामें प्रवृत्त हुए।

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावती गोपयोषितः। रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि ठीलया॥

'रासमण्डलमें जितनी गोपियाँ नृत्य करती थीं, भगवानने उतनी ही संख्यामें रूप धारण करके उन ठळनाओंमीरे प्रत्येकके साथ विहार किया ।'

जो अच्युत, आत्माराम, अकाम, निष्काम एवं आस्काम थे, उन्होंने 'योगमाया' का आश्रय ग्रहण करके रमणकी इच्छा की—

भगवानिप ता रात्रीः शरदोत्फुह्नमहिकाः। वीक्ष्य रन्तुं मनश्चके योगमायामुपाश्चितः॥

मिल्लिकाकी सुरिभिसे आमोदित शारदीया पूर्णिमाकी रामि भगवान्ने अपनी योगमाया मुरलीपर मधुर गान किया—

'जगौ कलं वामहदाां मनोहरम्।'

और उस संगीतको सुनकर श्रीकृष्णापहतिविचा गोपियाँ उस ओर चल पड़ीं । इस रासलीलिके सम्बक्षमें शुकदेवजीकी उक्ति है—

उक्तं पुरस्तादेतत् ते चैद्यः सिद्धं यथा गतः। द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः॥ कामं कोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च। नित्यं हरौ विद्धतो यान्ति तन्मयतां हिते॥

'शिशुपालने भगवान् श्रीकृष्णसे द्रेष करके जिस प्रकारि सिद्धि प्राप्त की, यह मैं पहले ही कह आया हूँ। उन हिपीकेशको गोपियोंने कामभावसे भज करके यदि उनकी सायुज्य प्राप्त किया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ! काम कोध, मद, स्नेह, ऐक्य, सौहार्द—इनमें एकको भी जी काध, मद, स्नेह, ऐक्य, सौहार्द—इनमें एकको भी जी भगवान् हरिको सम्पूर्ण रूपसे अर्पित कर देते हैं, वे अवश्य ही उनमें तल्लीन हो जाते हैं।'

श्रीकृष्णकी यह रासलीला भागवती लीला है। यह एक आध्यात्मिक रूपक है। साधारण जनोंके लिये स्वी तात्पर्यकी यथार्थ उपलब्धि करना असाध्य है। जी प्रमाण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संस्या १०]

के सहिसिक पथिक (Adventurous souls) हैं, जो क्रिस एसिक' हैं, जिनका 'श्रीहरिस्मएणे सरसं मनः' है— ऐसे जन ही रासिविहारीकी इस रासिछीछाका रसास्त्रादन क्रिक अपनी मन-बुद्धिको विशुद्ध बना सकते हैं। यह क्रामान्यहीन प्रेम' है। इसमें कामका अणुमात्र भी है। नहीं है। आठ वर्षकी अवस्थामें बाछक श्रीकृष्णकी हु लीला सर्वथा अछौकिक एवं प्रेमोत्सव Carnival of

Love है। यह आत्मा-प्रमात्माके मिलनकी रहस्यानुभूतिका आत्यन्तिक सुख—Ecstasy of mystical sensation है। गोपाङ्गनाएँ श्रद्धा-भक्तिकी प्रतिमूर्ति थी। श्रीकृष्ण उनके आराध्य देवता थे। श्रीकृष्णने उन बालाओं में सर्वानुस्यृत आत्माका दर्शन किया था। गोपियोंका प्रेम भी उनके प्रति विशुद्ध था। इसलिये इस भागवती लीलाको देहबुद्धिद्दार। हृद्यंगम नहीं किया जा सकता।

+ 0000-4

हमारे वितरण

(टेखक-पं० श्रीरूपनारायणजी चतुर्वेदी)

भारतकी अनोखी परम्पराओं की संक्षिप्त झाँकी करा देना है इस लेखका लक्ष्य है । भारतीय मानव-जीवन कितना शायमय, साधनासम्पन्न और व्यवस्था-परिपूर्ण था—इस-परिष्टिणत करना आवश्यक है । क्या राजा और क्या क्षाएणजन, सबका लक्ष्य आत्मिवरित था । दूसरों की क्षेत्र विना वे अपनेको वह अन्न-प्रहण करनेका अधिकारी नहीं मानते थे । निर्लेपभाव यह था कि क्षा सबेरे बालकको दूध पिलाकर कहीं भी खेतके ह्यारे पड़ा छोड़ देती थी—प्रकृतिकी गोदमें, और खयं क्ष्य होकर खेत-खलिहान या झोंपड़ेमें काम करने आ जाती थी । धूल-धूप, आतप-वर्षा और खुली हवामें क्षिर बालक बड़ा होता था और भला-भोला नागरिक क्षा था।

कहनेकी बात तो यह थी कि वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार मिल, क्षित्रिय और वैश्य ऊँचे वर्णके और शूद्ध नीचे वर्णके मिले जाते थे; पर लोकसेवक तो प्रत्येक वर्ग ही था। क्षिणकी तो अपनी आवश्यकताएँ ही सबसे कम थीं। जीवनार विद्या और ज्ञानका अर्जन तथा दान ही उसका धर्म और लोकाचरणको यह वर्ग दिशा देता था, मानव-मनकी अल्लोको सुलझाता था और सबके आनन्द एवं मङ्गलकी करता था। इस बातपर आगे और प्रकाश डाला

जायगा । क्षत्रिय था—राजपुत्रवर्गमेंसे । जहाँ उसका काम हुकूमत करना था, वहाँ जनताके वन और जनकी सुरक्षा करना भी उसका वर्म था । वल-विक्रम, शक्ति, शौर्य, उदारता और मानवोचित व्यवहार तथा शक्ष-संचालन-नैपुण्य उसके सहज गुण थे । वैश्य खेती करता, पशुपालन करता और व्यापार-व्यवस्था करता था । उसका धर्म था चारों वणींकी उदर-पूर्ति और धर्माचरण-संयुत लेन-देन । शुद्रवर्ग तो था ही सबका सेवक, पर सेवा भी एक धर्माचरण था और सेवा करनेकी भी अपनी गतिविधि थी ।

हममें किसीके विनाशकी भावना नहीं थी, उत्पादन और निर्माणके भाव थे। छोकरक्षण हमारा सहज गुण था। जंगल तैयार होते थे, बाग लगाये जाते थे, सड़कोंके किनारे बृक्षारोपण होता था और खेतमें लंग बृक्ष भी काटे नहीं जाते थे। मुख्य-मुख्य बृक्ष, जिनमें तैलांश अधिक था, छाया-प्रदानकी सामर्थ्य थी और जो दीर्घजीवी थे, उनको देवताओंकी श्रेणीमें रखकर जल दिया जाता था—जैसे वट, पीपल, नीम, आम, बेल, आँवला इत्यादि। तुलसीमें ओषधिके गुण हैं, उसमें जल दिया जाता था। सिरताओंपर घाट और पुल बनाये जाते थे, उनको गहरे करनेकी व्यवस्था चलती

श्रीकृण

भाग ३६

-

ा ॥ भगवान्ने

1

नाओंमंसे

आप्तकाम रमणकी

ः । ः ॥ ती रात्रिमें

केया— (।'

हतचित्ता सम्बन्धमें

तः। (:॥ च।

ते॥
स प्रकार
हुँ । उन

. उत्तका ! काम, भी जो

ने हैं, वे

1年

वंसमाग-

38

हुए

पित

ग्रील

तथा

गलर

परिपः

नव व

मुखप्र

होकर

ह्मि

和

भीजमें

ना उ

मता-वि

\$ 3

हिये धन

ही गृहस

हि तीया

वैसे

शेव है

हित होते

रहती थी और तटपर शुद्धिके विचारसे आश्रम, क्षेत्र और उद्यान प्रस्तुत किये जाते थे। पर्वतोंपर मन्दिर बनते थे, जलाशय ढूँढ़े जाते थे और सड़कें बनायी जाती थीं गिरि-आश्रमोंतक पहुँचनेके लिये। यहीं तक नहीं, वातावरणके परिष्कारकी क्रियाएँ भी चलती रहती थीं। कहीं सुमधुर गायन होते थे, कहीं वेदमन्त्रोचारण होतें थे और कहीं भजन-कीर्तन होते थे। अनेकानेक हवनोंद्वारा निर्मित सास्विक घन सुभायारा बरसाते थे। मधुर भाषण और प्रेमाचरणका बोलबाला था। सत्य और सद्व्यवहार जीवनका महत्त्व-क्रम था।

हम मानव एक प्रकारसे जड-चेतनके संरक्षक और परिपालक थे । आखेट, मृगया होते थे—वास्तवमें हिंसक जन्तुओंपर मानवकी विजय घोषित करनेके लिये। वैसे राजाके यहाँ बड़े-बड़े ठखपेंड़े बाग तैयार होते थे। उद्यान, वाटिकाएँ और अमराइयाँ तैयार होती थीं । ठाखों-करोड़ों गौएँ दानके लिये सुरक्षित रहती थीं। गाय-बैठ, हाथी-घोड़े, ऊँट-खच्चर, कुत्ते, भैंसे, मेढ़े इत्यादि पाले जाते थे; और तोता-मैना, बाज-बुलबुल, मुर्गे-मछळी इत्यादि भी रहते थे। बटेर, तीतर, मोर, चकोर, सारस, कब्रूतर आदि भी पलते थे। कुछका प्रयोग सेवामें, सामग्री ढोनेमें होता था। कुत्ते और बाज शिकारमें काम देते थे। इस रूपमें बहुसंख्यक पशु-पक्षियोंका पाठन राजा करता था। प्रजाद्वारा भी कुत्ते, बिल्ली, चूहे, खरगोरा, मछली, कछुआ, गधा, खचर, घोड़ा, गाय, बैठ, भैंस, बकरी, ठाठमुनियाँ, तीतर, बटेर इत्यादि पाले जाते थे। फिर बड़े-बड़े अजायबघरोंमें अजगर, मगर, हिरन, नीलगाय, गैंडा, सुअर, शेर, चीता, भाख, बनमानुस और भाँति-भाँतिके पक्षी रक्खे जाते थे। कहीं चिड़ियोंको जल पिलानेकी न्यवस्था थी, कहीं कबूतरोंको जुवार डालनेका नित्यनियम चींटियोंको आटा और शकर डाठी जाती थी, कहीं मछिटियोंको राम-नामकी गोलियाँ खिळायी जाती थीं, कहीं

गायको छोई और गोग्रास खिलाया जाता था और कही कुत्ते और कौओंको बचा कौर और ज्ठन डाली जाती थी। और कहीं चीछोंको बड़े डाले जाते थे। इस प्रकार अनेकानेक पशु-पिश्चियोंका पालन होता रहता था।

राजाके यहाँ सदाव्रत बँटता था, यज्ञ और भीज होते थे, अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवा होती थी, गरीबोंको धन, अन्न और वस्त्र दिये जाते थे और विशेष अवसरोंप विशेषदान (तुलादान इत्यादि) होते थे। राजकोष्से नित्य ही कुछ धन संस्थाओंपर, स्नातकोंपर, पुजारियोंपर,देखे विविधः निर्माणकायोंपर और कन्याविवाहपर व्यय होता ॥। जाड़ोंमें कपड़े बाँटे जाते थे, अकालके समय अन गाँउ जाता था और गुजारैके लिये जमीनें दी जाती थाँ। राजा अकेले कभी भोजन नहीं करता था। जनताबी उद्योगधंधे दिलानेके लिये नहरों, सड़कों, कुओं, तालां, इमारतों, पुलों, घाटों, क्षेत्रों इत्यादिका निरन्तर निर्मण होता रहता था । वाणिज्य-व्यवसाय होता था, यातायात चलता रहता था और नये उपनिवेश बसाये जाते थे और यह सोचा जाता था कि कहाँ किसको कितनी संख्यामें बसान है। भूमिके किसी भागपर अत्यधिक भार नहीं डाला जाता था । वैसे राजधानियों और व्यावसायिक केन्द्रोंकी हरा निराली थी। जनताको काममें लगाये रखनेका एक ^{और} साधन था । मेले, पर्व, उत्सव तो होते ही थे, तीर्थ-यात्राएँ और देशाटन भी बहुत होते थे। उन स्थान-सड़कोंकी मरम्मत, विशेषोंकी व्यवस्थाका काम, धर्मशालाओंका प्रवन्य, सुरक्षा-साधन-सामग्री और मिंद्री आदिका जीर्णोद्धार—ये काम पर्याप्त थे। राजाके चाका फौज, सिपाही, दंबीरी तो थे ही, पहलवानों, पाँखती, गायकों, कवियों और कलाकारोंका पालन भी होता रहता था।

देखना यह है कि एक ठौरपर अधिक भार नहीं जाय, इसके लिये जनताके सहयोगका क्या प्रका^{र था।} माग ३६

----र वही मान्यता यह थी कि संतानकी आवश्यकता है केवल ती थी। क़ा चलानेके लिये, पितरोंको पिण्ड-जल देनेके लिये और लोक-रक्षणके लिये । इसलिये सद्गृहस्थ अधिक प्रकार Palat किये ठाळायित न था । आश्रम-व्यवस्थाके अनुसार बार वर्षतक तो बालक माता-पिताके संरक्षणमें रहता रि भोज ॥। तदनन्तर गुरुकुछ मैज दिया जाता था, जहाँ गरीवोंको उसकी शिक्षा-दीक्षाका भार आचार्योपर रहता था। घर रहते नवसरोंपर हूर बालक कम भोजन करता था, छोटे वस्त्र पहनता जकोषसे ण और उसकी आवश्यकताएँ स्वल्प थीं । इसके माता-ार, देशके शिता प्रायः छोकसेवामें ही निरत रहते थे और स्वेच्छासे ता था। गलक प्रकृतिकी गोदमें पलता-खेलता था और शारीरिक नि बाँटा गा मानसिक स्वारच्य टाभ करता था। आश्रममें भी ती थीं। गढककी आवश्यकताएँ सीमित तथा सूक्स थीं । वह ननताको ज़ीरी औ**र कौपीन** धारण करता, एक समय मिक्षाटम तालावों, बता और खाध्याय तथा गुरु-सेवामें लगा रहता था। निर्माण र्गिष्म और पूर्ण युवा होकर पचीस वर्षकी अवस्थामें गतायात म वह गुरुकुलसे आता था, तब महात्माओंका तेज उसके थे और ख़ुबर विराजता था और शास्त्रमें पारंगत एवं छोक-रक्षक होता था। तब उसका विवाह होता था। इस ष्में बाल-विवाह नहीं होते थे । हर कुटुम्बसे कम-से-भ एक आदमीको राज-काज करना पड़ता था या क्षिमें जाना पड़ता था । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' समझ-भ उसे इहलोक और परलोकका ध्यान रखना होता, ^{श्वा-पिता} और कुटुम्बियोंकी सेवा करनी पड़ती, दान श्री अतिथि-सत्कार करना होता और धर्म-यात्राओंके के धन-संचय करना पड़ता था। यह सब करते-करते गृहस्याश्रम समाप्त हो जाता था और खीको साथ ले ह तीर्याटनको निकल एड्ता धा ।

वैसे उस युगमें धनका प्रयोग इतना न था, जितना कि है। आदान-प्रदानकी व्यवस्था दूसरी थी। यात्राएँ ही होती थीं, पर बहुधा पैदल या घोड़ोंपर ही होती में मोड़ों, करों, विसरों या बैंकोंपर भी सामान

ठदकर चलता था या बैलगाड़ियोंपर । पर बैलगाड़ियाँ थोड़ी थीं और मार्ग भी कम थे। एक वस्तुके बदले दूसरी प्राप्त होती थी और अनाजके बदलेमें तो प्राय: सारी ही वस्तुएँ उपलब्ध थीं । गङ्गा-स्नानके पर्व होते थे, जहाँ एक-दो महीने मेळे पड़े रहते थे, ज्ञानचर्चा और प्रवचन होते थे । संयमित जीवन चळता था और वृत्ति सालिकी हो जाती थी। फिर देशके एक भागसे दूसरे भागकी यात्राएँ होती थीं और व्यापार-व्यवसाय होते थे। दूरी इन यात्राओं में कभी वायक नहीं होती थी । मनुष्य पुरुषार्थी और शुमनकड़ था । इस रूपसे **उसे** देश और समाजका ज्ञान होता था और सर्वत्र संस्कृतिकी एकता स्थापित रहती थी। एक ओर जहाँ सह-संसर्ग होता था, वहाँ दूसरी ओर संगृहीत वस्तुओं-का वितरण । धर्म, प्रथाओं, ज्ञान और लोकाचारका आदान-प्रदान और ऐक्य, उत्साह तथा आनन्दका वर्धन होता था । मनुष्यमें साहस और आत्मनिर्भरताके भाव उदित होते थे । वह अपना ज्ञान देता था और दूसरोंका लेता था । ऐसी यात्राएँ प्राय: दलोंमें होती थीं, जिसमें स्त्री-पुरुष सम्मिटित रहते थे और टोकनृत्यों तथा टोक-गीतोंकी परम्परा चलती रहती थी।

पुरुषमें सहज वैराग्यकी भावना समाहित थी । लोक-रक्षणार्थ उसके छिये बुळ भी अदेय नहीं था । यदि वह समर्थ था और धनपति था तो बहुधा क्षेत्रविशेषमें धर्मशाला, अनाथाश्रम, मठ, घाट, देवालय, पुस्तकालय, पाठशाला, गोशाला इत्यादि स्वाभाविक ही बनवा देता था। राजा कभी-कभी महात्माओंकी सिद्ध वाणी सफल करनेके ियं राजकोष छुटा देता था । पर उसके खजानेमें कमी नहीं आती थी । रोगीकी परिचर्या और जड़ी-बृटियोंका प्रयोग तो घरकी स्त्रियाँ और एक सामान्य पथिक भी जानता था । व्यापार्मे सर्वत्र धर्मखाते और धर्मगोले बुले हुए थे और न्यापारका क्रम था 'भूट-चूक लेना-देना । वही-वार्तोमें झुठ लिखना—सफेटण काला लिखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

था।

वसाना

जाता

ते छ्या

म और

तीर्थ

स्थान-

(मत,

मिद्रो

गका,

ोडतो।

होता

न हो

वि

पारि

कि

गो-हत्याके समान माना जाता था। इस प्रकारसे सहज ही जन, मन, धनका आदान चलता रहता था। वर्षमें एक बार तो सभी अपना घर छोड़ देते थे और गङ्गावास या तीर्थाटन करते थे और अपना अनुभव, ज्ञान और अर्जन वितरित कर डालते थे। 'यहाँ कुछ भी सार्थ नहीं है। कुछ भी साथ नहीं जायगा। भगवान् ही सब कुछ है। आत्मा अमर है।' यह सहज सब्बी मान्यता थी।

ईश्वर एक और अनन्त है

एक जलती उदबत्तीको ध्यानपूर्वक देखनेसे भाव होता है कि हमारे जीवनको भी सत्कर्मोमें रत रह सुरभि सलाकाके समान सांनिध्य सुवासितकर शान्त हो जाना है। एक बात निश्चित है—

पल-पल उड़तो जीवनकी धूछ।

प्रारम्भमें एक नदी अपने संकीर्ण तटोंमें कितने नेगसे बहती है, प्रवाहमें चट्टानें भी नहीं ठहरतीं। और फिर बही नदी अपनेको उन प्रिय तटोंसे कितनी दूर पाती है, धार शिषिल हो जाती है और फिर अन्तमें सहसा बह महासिन्धुमें लीन हो जाती है। 'सहसा खो जाती सहासिन्धुको पाकर।' पर इसकी चिन्ता क्यों और कैसे! जब यह अन्त निर्विवाद है—

धराको प्रमाण यही तुल्रसी, जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।

फिर भी अनुभवजनित प्रज्ञाके इस निर्देशनको मुलाकर हम नित्यके व्यवहार-जगत्में सब प्रकारके क्षुद्र अहंकी परिधिमें ही भटकते रहते हैं। विराट चेतनके महान् संकेतोंको नहीं लख पाते। अतीतकी आत्मकथामें ही खोये रहते हैं। भविष्यके आह्वानको सुन नहीं पाते। शिलालेख तो खयमेब बन जाते हैं, पर हमारी दृष्टि तो निर्माण-शिखरके कलशपर ही अर्जुनकी तरह रहनी चाहिये। कलश क्या अभीतक नहीं थे या निर्माण किसी युगमें नहीं हुआ १ पर फिर भी हमारी अपनी एक इकाई है।

दूर क्षितिजके पार जाते अंग्रुमालीको टिमिटिमाते एक क्षुद्र मिट्टीके दीपकने आश्वासन दिया, 'महातेज ! तुम भारमुक्त होकर नियतिकी निर्धारित बेलातक विलयकी परिधिके पार जाओ, मैं भरसक तुम्हारे उत्तरदायित्वका निर्वाह करूँगा और उसी क्षण पृथीं एक कोनेसे तम निष्कासित हो गया। प्रकाश फैलके इस महत्-कार्यमें दीपकको वह क्षण विस्मृत हो गया। पर रात्रिकी गहन नीरवतामें किसी निर्दय क्रांरेने उस दीपकका महातेजके उत्तराधिकारी होनेका मान हीन लिया ! भावका ही नहीं, मानवद्वारा रचित प्रयासींका भी तो यही अन्त होता है और फिर अपनी विवरतारे ज्झता मानव पहाड़ोंके शिखरतक पहुँचता है। कर्त्ती मृग-सा, अपनेको ही भ्रमित करनेवाली नयन-मरीविंकाके पीछे निरन्तर दौड़ता रहता है, अपनी ही शंकाका समाधान चाहता है । क्या वह समाधान पा हेता है! क्या वह अपने लक्ष्योंको प्राप्त कर लेता है ? एक वि सहसा महानिर्वाणका वह पल आ धमकता है, ज उसे लगता है, कुछ समय मुझे और मिलता तो अचाप पर किससे माँगता है वह अधिक समय ! किसी सामने वह अपनी पराजय मान समर्पित हो जाता है एक ब्यथा लिये। कारा! मैं इस शक्तिके सम्मुख समय हो ही समर्पण करता ।

कहीं ऐसा होता तो मैं भी त्रेताके श्राणदापकी यह वाणी धन लेता— 39

स्थायी

(ही

सबकी

टेमाते

तेज!

लातक

तुम्हारे

पृथ्वीमें

लानेके

गया।

कोरेने

छीन

का भी

शतासे स्तूरी-वंकाके

ां वि!

ं दिन

, जा

ज्या,

補

何何

कियी

'भवल करहुँ तनु राखहु प्राना ।'

क्या उसने जीवन और मृत्युकी संधिबेलामें स्थितके होनों तटों (मरणके पूर्व और मरणोत्तर) से नहीं पुकारा 'यह सत्य मानो भक्त मेरा होता है नहीं'। क्या उसने युग-युगमें अर्जुनके माध्यमसे यह आश्वासन नहीं दिया ?—

कौन्तेय प्रतिजानीहि न में भक्तः प्रणश्यति ॥

यदि मैं तुमतक भौतिक चेतनताको छिये न पहुँच पाऊँगा तो मेरी इस आराधनाको निरखनेवाछे निराश हो जायँगे। केवछ एक इसी भावसे मैं यदा-कदा बिहुल हो उठता हूँ। तुम्हें निष्ठुर निर्मोही ठहराने छगता हूँ। पर रावरे अपनी प्रतीति तो तुम्हें ही रखना है। मैं कवतक तुम्हारे विद्यमान होनेके प्रमाण एकत्रित करता रहूँगा।

अन्धकारके उस क्षणमें जब खयं महाकालने सतीकी पर्धिव संज्ञाको काँघेपर लिये चारों दिशाओंको भयभीत किया था, तब तुम ही नभ-वाणी बन अकस्मात् उतर आये थे और महारुद्रने तब इसी भूमण्डलके किसी रील शिखरपर जाकर समाधि छी थी।

उसी समाधिसे महाप्रभु जागो, देखो, हमने तुम्हारी पूजाके छिये कितने कमलपुष्प संगृहीत किये हैं, बहुजन-हिताय बहुजनसुखायकी भावनासे प्रेरित होकर तुम्हारे इरिपर भावनाओंका तोरण सजाया है। यदि तुम न भाओंगे तो अपने साथियोंको यह कहकर छौटा देंगे—

'दीप शिखा यदि अस्त न सके तो तुम अधीर न होना।'

पर ज्योतिके सनातन स्रोत ! क्या तुम इमपर अपनी सत्कृपाकी वर्षा न करोगे ! मैं अपने विकल मनको कैसे समझाऊँगा, जब वह पूछेगा—'वे पुष्प कहाँ गये ! क्या इमारे ऑसुओंसे तुम्हारा अभिषेक नहीं हुआ ! चित्रकृट तो आज भी भरतके विश्वाससे प्रतिष्वनित है,

आपन जानि म त्यागिई मोहि रचुवीर-भरोस।

-अज्ञात

असली धनसम्पत्ति

प्रेम-भजन ही असली धन है, दैवी सम्पद् ही सम्पत्ति । विषयवासना ही दरिद्रता, प्रभु-पद्-विस्मृति घोर विपत्ति ॥ कँचा पद अधिकार उच्च अति, प्रभु-पद्-सेवाका अधिकार । जगका पद-अधिकार बनाता दुर्मद जो, अपवित्र विकार ॥ ग्रुचिता-सुन्द्रता-विनम्रता-सत्य-अहिंसा-दैन्य-अमान । अग्रुचि-असुन्द्रता अति—अविनय-मिथ्या-हिंसा-मद्-अभिमान॥ वही सफल जीवन, जो पाता पावन प्रभु-पद्-पंकज-प्रेम । असफल वह जो भोग जगत्के पाता मिथ्या योगक्षेम ॥

のなんなんなんなんなんなんなんなく

いろくなくなくなくなくなくなくなくなくなくなくなく

श्रीराधा-नाम-रूप-महिमा और राधा-प्रेमका स्वरूप

ं आराषाष्ट्रमी-महोत्सव संबद २०१९) पर गीताबाटिका, गीरखपुरमें हनुमानप्रसाट पोद्दारके गावण । (दिनका प्रवचन)

र्णानुरागरसम्तितिहरूताश्रं ज्योतिः परं भगवतं रतिसद्रहस्यस् वृषभानुगेहे यत्प्रादुरस्ति क्रपया ममाभिलाषः ॥ तिककरीभवितुमेव प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृद्यं शृङ्गारलीलाक्ला-पुज्यैव वैचित्रीपरमावधिर्भगवतः कापीशता । ईशानी च शची महासुखतनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा श्रीवृन्दावननाथपट्टमहिषी राधेव सेन्या बंदों राधा-पद-कमल अमल सकल सुखधाम । जिन के परसन हित रहत काकाइत नित स्याम ॥ जयित स्थाम-स्वामिनि परम निरमक रस की खान । जिन पद बिंह बिंह जात नित माधव प्रेम-निधान ॥ आज श्रीराधाजन्माष्टमी है। आजके ही मङ्गलमय दिवस सचिदानन्दरसविग्रहाः, आनन्दांशयनीभूताः, आनन्दचिन्मय-रसप्रतिभाविता, मन्मथ-मन्मथ-मन्मथा, परमा-नन्द-परमानन्ददायिनी, रसिकेन्द्र-शिरोमणि-रसप्रदायिनी, रसि केन्द्रेश्वरी, साक्षात् हादिनी श्रीराधिकाजीका वृषमानुपुरमें मङ्गल-मय प्राकट्य हुआ था । परम और चरम त्यागका, सर्वसमर्गण मय उन्न्वलतम प्रेमका, स्व-मुखवाञ्छा-विरहित प्रियतम-सुलेच्छामय स्वभावका और अहंकी चिन्ता, मङ्गलकामना ही नहीं, अहंकी स्मृतिसे भी शून्य प्रियतम-स्मृतिमय जीवनका कैसा स्वरूप होता है---श्रीराधाने अपने प्रत्यक्ष जीवनिसे इसका एकं नित्यचेतन क्रियाशील मूर्तिमान् उदाहरण उपिथत करके जगत्के इतिहासमें एक असृतपूर्व दान किया है। इस महान् दानका मङ्गलमूल आजका ही मङ्गलमय दिन है । इसलिये यह दिनं धन्य है। यह भारतवर्ष धन्य है और इसके निवासी इमलोग भी धन्य हैं, जो आज श्रीराधाके प्राकट्य-महोत्सवके उपलक्ष्यमें उनका मङ्गलमय सारण कर रहे हैं। वे श्रीराधाजी क्या हैं, इसका वास्तविक उत्तर तो वे खयं या उनके अभिन्नस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण ही दे सकते हैं। इसलोग तो शास्त्रों, महात्माओं, संतों, साधकों और इस रससागरमें अवगाइन करनेवाले अनुभवी प्रेमीजनोंके वन्ननेंके आधारपर

ही श्रीराधारानीका किंचित्-सा स्मरण करके धन्य हो जाते हैं।

श्रीराधारानीके प्रसिद्ध सोलह नाम पुराणोंमें आते हैं। यहाँ इस उन नामोंका जयघोष करें तथा उनका अर्थ समझके का किंचित् प्रयास करें। उनक

रेनेवा

हैं अ

जीलासे

बुन्द्)

धताका

वामिन

शता है

सीलिये

ही च

ब्रुख पूर

।उन

दा-सर्व

भी जार्त

भेती च्य

शतच

भग

न्यस म्

अकि म

में बोई ए

मासात् अ

िक्रमत्ता

明是_

ाषा वि

ाग-सङ्ग

ाषा वि

ाषा सङ्ग

िवा मे

ने गाधा

के सदा

गधाने

जय जय राघा', रासेश्वरि , जय रासवासिनी', जय जय जय। रिसकेश्वरी', जयति जय क्लाप्राणाधिका' नित्य जय जय। क्लाप्स्यस्पिणि', क्लाप्पप्रिया' जय परमानन्दरूपिणी' जय। क्लाप्त्यस्पिणीं जय जय जय। क्लाप्त्रान्स्यम्मूता' जय क्लापां, 'वृन्दा'जय जय जय। वृन्दावनीं जयति जय वृन्दावनिनोदिनी' जय जय जय। व्लन्दावनीं 'शतचन्द्रनिभ-मुखी' व्लन्द्रकान्ता' जय जय जय।

श्रीराधाजीके राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णा, परमानन्द्र रूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दाकनिनोदिनी, चन्द्रावती, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रप्रमानना—ये सोल्इ नाम प्रसिद्ध हैं। इन्हें साररूप मानते हैं।

वे सम्पूर्णेरूपसे सहज ही कृतकृत्य हैं, सिद्ध हैं; इससे उनका नाम 'राधा' है । अथवा 'रा' का अर्थ है देना और 'धा' का अर्थ है—निर्वाण । अतः वे मोक्ष—निर्वाण देते वाली हैं, इससे राधा कहलाती हैं। वे रासेश्वर श्यामसुन्दर्भ अर्धाङ्गिनी हैं अथवा रासकी सारी लीला उन्हींके मधुरतम पेश्वर्यका प्रकाश है; इसलिये वे 'रासेश्वरी' कहलाती हैं। नित्य रासमें उनका नित्य-निवास है) अतएव उनको 'रासवासिनी' कहते हैं । वे समस्त रसिक देवियोंकी सर्वश्रेष्ठ खामिनी हैं। अथवा रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण उनको अपनी खामिनी मानते हैं) इसलिये वे 'रसिकेश्वरी' कहलाती हैं। सर्वलोकमहेश्वर सर्वमय और सर्वातीत परमात्मा श्रीकृष्णको वे प्राणींसे भी अधिक प्रिय हैं, इसिल्ये उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' कहा जाता है। वे श्रीकृष्णकी परम वल्लमा हैं या श्रीकृष्ण उन्हें सद परम प्रिय हैं, अताएव उन्हें 'कुष्णप्रिया' कहते हैं। वे स्वरूपतः—तत्त्वतः श्रीकृष्णसे सर्वथा अभिन्न हैं, समग्रहपते श्रीकृष्णके समान हैं एवं लीलासे ही वे श्रीकृष्णका वर्षार्थ स्वरूप धारण करनेमें भी समर्थ हैं; इसिटिये वे 'कृष्णस्वरूपिणी' कहलाती हैं । वे परम सती एक समय श्रीकृषणके वाम अर्थाङ्गसे प्रकट हुई थीं, इसलिये उनको 'कृष्णवामाङ्गसम्भू तां कहते हैं। भगवत्स्वरूपा परमानन्दकी राशि ही उन परम

तने.

4 1

11

1 1

11

11

न

-ये

प्रसे

H

विश्विरोमणिके रूपमें मृतिंमती हुई हैं। अथवा जो भगवान्की अभिन्न परम-आनन्दस्वरूपा आह्नादिनी शक्ति हैं; इसीसे अका एक नाम 'परमानन्दरूपिणी' प्रसिद्ध है । 'कृष्' भार मोक्षवाचक है। 'न' उत्कृष्टका द्योतक है और 'आ' क्षेत्रालीका बोधक है; इस प्रकार ने श्रेष्ठ मोश्च प्रदान करती अथवा वे श्रीकृष्णकी ही तत्त्वतः नित्य अभिन्न परंत भीति भिन्नखरूपा हैं। अतः उनको 'कृष्णा' कहते हैं। कर शब्द सिलयोंके समुदायका वाचक है और 'अ' लाका बोधक है । सखीवृन्द उनका है-वे सखीवृन्दकी बामिनी हैं, इसिलये 'वृन्दा' कहलाती हैं। वृन्दावन उनकी ल्राहीलाखली है, विहारभूमि है; इससे उन्हें 'वृन्दावनी' कहा जा है। वृन्दावनमें उनका विनोद (मनोरञ्जन) होता है, श्रवा उनके कारण समस्त वृन्दावनको आमोद प्राप्त होता है, लीखें वे 'वृन्दावनविनोदिनी' कहलाती हैं। उनकी नखा-ही चन्द्रमाओंकी पंक्तिके समान सुशोभित है अथवा उनका 🕫 पूर्णवन्द्रके सहरा है, इससे उनको 'चन्द्रावती' कहते । उनके दिव्य शरीरपर अनन्त चन्द्रमाओंकी-सी कान्ति असर्वदा जगमगाती रहती है, इसीलिये वे 'चन्द्रकान्ता' ष्मी जाती हैं और उनके मुखपर नित्य-निरन्तर सैकड़ों चन्द्रमा-🙀 व्योत्स्ना झलमल करती रहती है, इसीसे उनका नाम शतचन्द्रनिभानना ।

भगवान् श्रीकृष्णकी प्राणाधिका, उनके परमानन्दकी क्ष मूर्ति राधाके इन नामोंकी इस संक्षित व्याख्यासे इमें भिक्ते महत्त्वका कुछ परिचय प्राप्त होता है। राधा वास्तव- के के एक मानवी नारीविशेष नहीं हैं। ये भगवान्की कि अभिना शक्ति हैं। इनके सङ्गसे ही भगवान्में सर्व- किम्ताका प्रकाश होता है। भगवान् श्रीकृष्णने एक जगह

मित विना अशोभन नित में रहता केवल कोरा कृष्ण ।

मित सुरोभित होकर बन जाता हूँ मैं 'श्रीकृष्ण' ॥

मित विना बना रहता में क्रियाहीन निश्रल निःशक ।

मित बनाता मुझको सिक्रिय सचल अपिरिमित शक ॥

मित परम आत्मा जीवन-प्राण नित्य आधार ।

मित्री में प्रेम प्राप्त कर करता जन-जनमें विस्तार ॥

मित्री हैं, राधा-माधव नित्य अभिज्ञ ।

मित्री ही बने सरस दो करते लीला लिलत विभिन्न ॥

मित्रोक्ते विना मैं नित्य ही भीशोभाहीन केवल निरा

कृष्ण रहता हूँ पर राधाका सङ्ग मिळते ही सुशोभित होकर भी'-सहित कृष्ण—श्रीकृष्ण वन जाता हूँ। राधाके विना मैं कियाहीन, निश्चल और शक्तिशून्य रहता हूँ; पर राधाका सङ्ग मिळते ही वह मुझे कियाशील (लीलापरायण लीला-विग्रह), परम चञ्चल और अपरिमित शक्तिशाली बना देता है। राधा मेरी परम आत्मा है, मेरा जीवन है, मेरी प्राण-भ्ता हैं। राधासे ही प्रेम प्राप्त करके मैं उस प्रेमका अपने भेमी जनोंमें प्रसार-विस्तार करता हूँ। वास्तवमें मैं ही राधा हूँ और राधा ही में है। हम राधा-माधव दोनों सदा अभिन्न हूँ और राधा ही में है। हम राधा-माधव दोनों सदा अभिन्न प्रकारकी लिलत लीला किया करते हैं।

इतना ही नहीं, राधा मुझे इतनी अधिक प्रिय है कि—
राधासे भी कगता मुझको अधिक मधुर प्रिय राधा नाम।
राधा शब्द कान पढ़ते ही खिळ उठती हिय-कली तमाम।
मूल्य नित्य निश्चित है मेरा प्रेम-प्रपूरित राधा नाम।
चाहे जो खरीद के, ऐसा, मुझे सुनाकर राधा नाम।
नारायण, शिव, ब्रह्मा, कक्ष्मी, दुर्गा, वाणी मेरे रूप।
प्राण समान सभी प्रिय मेरे, सबका मुझमें भाव अनूप।।
पर राधा प्राणाधिक मेरी अतिशय प्रिय प्रियजन-सिरमीर।
राधा सा कोई न कहीं है मेरा प्राणाधिक प्रिय और।।
अन्य सभी ये देव-देवियाँ बसते हैं नित मेरे पास।
प्रिया राधिकाका है मेरे वक्षःस्यकपर नित्य निवास।।

— उन राधासे भी उनका 'राधा' नाम मुझे अधिक मधुर और प्यारा लगता है। 'राधा' शब्द कानमें पड़ते ही मेरे हृदयकी सम्पूर्ण कलियाँ खिल उठती हैं। प्रेमसे परिपूरित 'राधा' नाम मेरा नित्य निश्चित— सदा बँधा-बधाया मूल्य है। कोई भी ऐसा प्रेमपरिपूर्ण राधा मुनाकर मुझे खरीद ले सकता है। नारायण, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती— सब मेरे ही रूप हैं। ये सभी मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं और इन सबका भी मुझमें बड़ा अनुपम भाव हैं; परंतु राधा तो मेरी प्राणोंसे भी अतिशय अधिक प्यारी है। वह समस्त प्रिय प्रेमीजनोंकी मुकुटमणि है। राधाके सहश प्राणाधिक प्रिय दूसरा कहीं कोई भी नहीं है। ये अन्यान्य सभी देव-देवियाँ नित्य मेरे समीप रहते हैं, पर मेरी प्रियतमा राधिका तो सदा-सर्वदा मेरे वक्ष:स्थलपर ही निवास करती है।

इस 'राधा' नामका अर्थ और महत्त्व बतलाते हुए शास्त्र कहने हैं—

相

नह

हो

हैं वि

नेसे ह

भक्तति

ने ही

स्माह

ममीव

रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्। आकाराद् गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सुजेत्॥ धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्। अवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यन्ति न संज्ञयः॥

राधा नामके पहले अक्षर 'र' का उच्चारण करते ही करोड़ों जन्मोंके संचित पाप और शुभ-अशुभ कर्मों के भोग नष्ट हो जाते हैं। आकार (ा) के उच्चारणसे गर्भवास (जन्म), मृत्यु और रोग आदि छूट नाते हैं। 'ध' के उच्चारणसे आयुकी वृद्धि होती है और आकारके उच्चारणसे जीव भववन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार 'राधा' नामके श्रवण, स्मरण और उच्चारणसे कर्मभोग, गर्भवास और भव-बन्धनादि एक ही साथ नष्ट हो जाते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं।

रेफो हि निश्चकां भक्ति दास्यं कृष्णपदाम्बुजे।
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धयोघमीश्वरम्।
धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च॥
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः समम्।
आकारस्तेजसां राशि दानशक्तिं हरे यथा॥
योगशक्तिं योगमितं सर्वकालं हरिस्मृतिम्।
अत्युक्तिसारणाद्योगानमोहजालं च किल्बिषम्॥
रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संश्वयः।

'राधा' नामके राकारके उच्चारणसे मनुष्य श्रीकृष्ण-चरणकमलमें निश्चला भक्ति और भगवान्के दासत्वको प्राप्त करके समस्त इिन्छित पदार्थ, सदानन्द और समस्त सिद्धियोंकी खान ईश्वरकी प्राप्ति करता है। तथा धकारका उच्चारण उसे सार्ष्टि, सारूप्य, भगवान्के स्वरूपका तत्त्वज्ञान और समानकाल उनके साथ रहनेकी स्थिति प्रदान करता है। आकार उच्चारित होनेपर शिवके समान औढर-दानीपन, तेजोराशि, योगशक्ति, योगमें मित और सर्वकालमें श्रीहरिकी स्मृति प्राप्त होती है। इस प्रकार राधा नामके श्रवण, उच्चारण, स्मरण और संयोगसे मोहजाल तथा पापराशिका नाश हो जाता है और रोग-शोक-मृत्यु यथा यमराज उसके भयसे काँपने लगते हैं।

'रा' शब्दोचारणादेव स्फीतो भवति माधवः। 'धा' शब्दोचारणात् पश्चाद्धावत्येव ससम्श्रमः॥

'रा' शब्दका उचारण करनेपर उसे सुनते ही माधव हर्षसे फूल जाते हैं और 'धा' शब्दका उचारण करनेपर बड़े सत्कारके साथ उसके पीळे-पीछे दौड़ने सगते हैं। 'रा' शब्दोच्चारणान्नको राति मुक्ति सुदुर्लभाम्। 'धा' शब्दोच्चारणादुर्गे धावत्येव हरेः पदम्॥ 'रा' इत्यदानवचनो 'धा' च निर्वाणवाचकः। यतोऽवाभ्रोति मुक्ति च सा च राधा प्रकीरिता॥

'रा' शब्दके उच्चारणसे भक्त परम दुर्लभ मुक्तिपत्ते प्राप्त करता है और 'धा' शब्दके उच्चारणसे निश्चय ही वर दौड़कर श्रीहरिके धाममें पहुँच जाता है।

'रा' का अर्थ है 'पाना' और 'भा' का अर्थ है निर्वाण मोक्ष । भक्तजन उनसे निर्वाण मुक्ति प्राप्त करता है, इसिंद्र्य उन्हें 'राधा' कहा गया है ।

आज इन महामहिमामयी राधाजीका प्राकट्य-महोत्तव है। अतः हम राधिकाजीके महत्त्वपर कुछ विचार करके से जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करेंगे या करनेका वत हैंगे, तमी इमारा यह महोत्सव यथार्थतः सफल होगा। तभी इस्त्र असली लाभ प्राप्त करके इम धन्य हो सकेंगे। इस गोपीक्र या राधा-प्रेममें त्यागकी पराकाष्ठा है । इसीलिये यह भे शिव-नारदादिके द्वारा वाञ्छित, महातपस्वी मुनि महानुभागेरे द्वारा अभीप्सत-यहाँतक कि महान् तपस्याके द्वारा हव विद्यातकके लिये भी प्राप्तव्य है। विषयासक्त पामरोंकी-जे निषिद्ध भोगोंके उपार्जन-सेवनमें लगे रहते हैं—तो बात है नहीं है, सकाम वैधकर्मी इइ-परके भोगोंकी वाञ्छा करते हैं । योगी चित्तवृत्तिके निरोधके द्वारा परमात्म-स्योतिक दर्शन करना चाहते हैं, ज्ञानी अहंको बन्धनसे पुक्त करके मोक्ष-सुख पाना चाहते हैं और निष्कामकर्मी अनाक्षणी शुद्धिके द्वारा ज्ञान प्राप्त करना या नैष्कर्म्य-सिद्धिके द्वार आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं। इन सभीमें एक खार्थहै अहंके मङ्गलकी एक वासना है—चाहे वह कितनी ही जूँवी हो, कितनी ही दुर्लभ और महान् हो परंतु इस परम प्रेम^{हे} साधकोंको तो आरम्भसे ही स्व-मुखवासनाके त्यागका गर पदना पड़ता है। अहंकी विस्मृतिकी शिक्षा ग्रहण करनी पूर्व है। इसका प्रारम्भ होता है 'तत्सुखसुखित्व'की पवित्र भावनाहै। भगवान्को परम प्रियतम मानकर उनको मुख पहुँचातेवारी त्यागमयी रसमयी कल्पनासे । श्रीराधारानी और संगिनी गोपाङ्गनाएँ इस रसमय, त्यागमय प्रेमकी प्र आदर्श हैं । इस आदर्शको सामने रखकर हम जिला है स्वार्थ-त्याग करेंगे, जितना ही 'पर'को 'ख' मानकर प्रमान द्दयसे उसके लिये त्याग करेंगे, उतना ही इम प्रार्थी

वह सकेंगे । होते-होते जब भगवान् श्रीकृष्ण ही हमारे कमात्र 'स्व' रह जायँगे, तव उनका सुख ही हमारा 'परम बार्ध बन जायगाः तव हमारा प्रत्येक विचार और प्रत्येक क्री भगवत्सुखार्थं ही होगा । यही गोपीभाव है ।

इस गोपीभावकी जहाँ पराकाष्टा है और वह पराकाष्टा भी बहाँ ससीम बनी हुईं नित्य असीम अनन्तकी ओर प्रवाहित हो रही है, वह है-शीराधाभाव । इस महाभावकी मूर्तिमान प्रतिमा ही हैं श्रीराधाजी।

ये श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं। इनके मध रमण करनेके कारण ही रहस्यके जाननेवाळे मर्मज्ञ ब्रात् श्रीकृष्णको 'आत्माराम' कहते हैं-

भातमा तु राधिका तस्य तयेव रमणादसौ। आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गृढवेदिभिः॥

स्वरूपतः श्रीराधा-माधव सदा एक होनेपर भी वे परस्पर एक दूसरेकी आराधना करते हैं।

राधा भजति श्रीकृष्णं स च तां च परस्परम्। उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च॥ राधा श्रीकृष्णकी आराघना करती है और श्रीकृष्ण गंभाकी। वे दोनों परस्पर आराध्य-आराधक हैं। संत कहते हैं कि उनमें सभी हिष्टयोंसे पूर्ण समता है।

'नारदपाञ्चरात्र'में राधाके सम्बन्धमें कहा गया है-ब्रह्मस्बरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः। तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥ प्राणाधिष्ठातृदेवी या राधारूपा च सा सुने।

जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं, भी ही श्रीराधा भी ब्रह्मस्वरूपा, मायाके लेपसे रहित तथा म्हतिसे परे हैं। श्रीकृष्णके प्राणोंकी जो अधिष्ठातृदेवी हैं, वे ही श्रीराघा हैं।

यही बात देवीभागवतमें कही गयी है--कृष्णप्राणाधिदेवी सा तद्धीनो विसुर्यंतः। रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनी न तिष्ठति॥

श्रीराघा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अघिष्ठातृदेवी हैं। इसलिये प्रमातमा श्रीकृष्ण उनके अधीन हैं। वे रासेश्वरी सदा उनके भीप रहती हैं। वे न रहें तो श्रीकृष्ण टिकें ही नहीं। तिनेपर राभा कभी न तो अपनेको उनके प्राणीकी

अधिष्ठातृदेवी मानती हैं और न वे उनके द्वारा आराध्या ही मानती हैं। वे सदा ही विनम्र हृद्यसे प्रार्थना करती रहती हैं-

त्वत्पादाब्जे मनमनोऽलिः सततं भ्रमतु प्रभो। भक्तिरसं पद्मे मधुपश्च यथा मधु॥ मदीयप्राणनाथस्तवं भव जनमनि जन्मनि । त्वदीयचरणाम्भोजे देहि भक्ति सुदुर्लभाम्॥ तव स्मृतौ गुणे चित्तं स्वप्ने ज्ञाने दिवानिशम्। भवेशिमग्नं सततमेतन्मम मनीवितम् ॥

(व क र प । २३०-२३२)

'प्रभो ! तुम्हारे चरण-सरोजमें मेरा मनरूपी भ्रमर निरन्तर भ्रमण करता रहे और जैसे वह मधुप कमलका मधुपान करता है वैसे ही यह प्रेमरस पान करता रहे। जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरे प्राणनाथ होओ और मुझे अपने पदपङ्कजर्मे सुदुर्लभ प्रेम-भक्ति प्रदान करो । प्रभो ! मेरे मनकी यही एकमात्र चाह है कि मेरा चित्त खप्न और जागरण-सभी अवस्थाओंमें दिन-रात केवल तुम्हारी ही स्मृति और गुणोंमें इबा रहे।

श्रीराघाजीकी इस प्रार्थनाका अनुसरण करते हुए इम भी श्रीराधिकाजीसे ऐसी ही प्रार्थना करें।

स्यामस्वामिनी राधिके करी कृपा कौ दान। सुनत रहे मुरली मधुर मधुमय बानी कान॥ पद-पंकज-मकरन्द नित पियत रहें हग-मुंग। करत रहें सेवा परम सतत सकल सुचि अंग।। पाती रहै दुर्लम भुक्त प्रसाद। नित लेती रहै नाम-गुननि-रस-स्वाद ॥ लगौ रहै मन अनवरत तुम में आठौँ जाम। अन्य स्मृति सब कोप हों सुमिरत छिब अभिराम ॥ बढत रहै नित पलहि-पल दिव्य तुम्हारी प्रेम। सम होवें सब द्वंद पुनिः बिसरें जोग-च्छेम।। चित्त नित्य चिंतन करै तव कीला रस-सार। चालें नित नव बिमल रस पल पल, सबहिं बिसार ॥ बुद्धि सदा निलसत रहे मुख-सरदिंदु-निलास। नव नव छिब की छिब निरित्त बाढ़े अमित हुलास ॥ मुक्ति-मुक्तिकी सुधि मिटै उछले प्रेम-तरंग। राधा-माधव सरस सुधि करें तुरत भव-भंग॥ बोलो वृषभानुकुमारी श्रीराधारानीकी जय जय जय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

म्। 4 11 €: I

ता ॥

माग ३६

-

मुक्ति-पदको वय ही वह

है निर्वाण है। इसलिये

करके उसे लॅंगे, तभी भी इसका गोपी-प्रेम

य-महोत्सव

ये यह प्रेम हानुभावीं वे द्वारा ब्रह्म

रोंकी—जो ने बात ही उछा करते ा-च्योतिका

मुक्त करके तःकरणकी देवे द्वा

स्वार्थहे 自翻 (म प्रेमके

गका पर ती पहली मावनासे।

चानेवाली उनकी की पर

जेतना ही प्रमभी

मि भो

स्य

सर

गोपी

जी वि

सहज

स्तेह:

है, उ

वरूप

इतना

श्रीकृष

आत्म

अनन्त

यों उन

इस्ती

रहती

परिणत

(रात्रिका प्रवचन)

कामं तूलिकया करेण हरिणा यालक्तकैरङ्किता नानाकेलिविदम्धगोपरमणीवृन्दे तथा वन्दिता । या संगुत्रतया तयोपनिषदां हृधेव विद्योतते सा राधाचरणहूयी मसगतिर्छोस्यैककीलासयी ॥ कालिन्दीतरकुक्षमन्दिरगती योगीन्द्रवद्यत्पद-ज्योतिध्यांनपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपुणों हरिः। केनाप्यञ्जतमुलसङ्गतिरसानन्देन सम्मोहिता सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु से विद्या परा द्वयक्षरा। रसिक स्थान की जो सदा रसमय जीवनमृरि। तिन पदपंकज की सतत बंदौँ पावन धूरि॥ निवुक्जिबहारिनी हरनि स्याम-संताप। जिनकी तन छाया तुरत हरत मदन-मन-दाप ॥ परम भक्त-चूड़ामणि और भक्तिके प्रसिद्ध आचार्य देवर्षि नारदर्जीने श्रीव्रजाङ्गनाओंकी परम प्रेसरूपा भक्तिका स्वरूप बतलाया है—'तद्पिताबिलाचारता तद्विस्मरणे परमञ्याङ्कलता' अर्थात् उसमें अलिल आचारता सहज ही समर्पित हो जाती है, अपने पास कुछ भी नहीं रह जाता। सभी दृष्टियोंसे और सभी प्रकारसे परम अकिंचनताका उदय हो जाता है। तब परम प्रियतम श्रीकृष्णकी मधुर मनोहर दिव्य सुधामयी सुल-स्मृति-रूपी मुनि-जन-दुर्लभ एकमात्र परम धनकी प्राप्ति होती है और इस भुक्ति-मुक्तिकी सहज विस्मृतिसे समन्वित प्रियतम-स्मृतिमें कभी कहीं यदि क्षणमात्रके लिये भी रुकावट-सी आती है तो परम व्याकुलता' उत्पन्न हो जाती है। जिसकी ऐसी स्वाभाविक स्थिति है, वह है--- त्रजगोपी (यथा त्रजगोपिकानाम्) । इस गोपीभावकी परम मधुर, परम विशद समुन्न्वल सुधाधारा जिस मूल स्रोतसे प्रवाहित होती है और प्रत्येक धाराका प्रत्येक सुधाकण जिस नित्यप्रवाही सुधा-रसार्णव-का एक सीकर होता है तथा प्रत्येक सुधाकणका अन्तमें जिस प्रेम-सुधा-ससुद्रमें पर्यवसान होता है, वह इस परम वेमका मूल उत्स और इस प्रेमका अनन्त अगाध नित्यप्रवाही समुद्र है—श्रीराधाजी। यही राधाका स्वरूप है। इस त्यागमथ प्रमप्रेमके सांकेतिक स्वरूपको कण्ठस्य करनेयोग्य इन

देह-प्राण-मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ, इनके स्वामाविक सन कर्म । अभिलावाः श्रासक्तिः कामनाः आशा-तृष्णाके सब नार्वे ॥ मायाः भोड्ः अहंताः ममता एव उनके सव आचार ! इह-परके परमार्थ-स्वार्थके ऊँचे नीचे सब व्यापार ॥

पंक्तियोंमें पढ़िये-सुनिये-

ं वनःजनःजीवनः स्वजनः सुयशः सत्कीतिं परम आदर सम्मानः सुगति, सिद्धि, सम्पत्ति, सफलता, प्रज्ञा अमल, विवेक महान ॥ देहभर्म, परिवार-धर्म संब कोकधर्म वैदिक सब वर्म। सर्वधर्मः धर्मीः धर्मीत्माः धर्मश्रारीरः धर्मका वर्म॥ देइ कुटुम्ब स्वर्ग-सुख अनुपम अतुरु मुक्ति-सुख ब्रह्मानद्। समी समर्पण हुए सहज ही रहा न कुछ भी उत्तम-मन्द् जाअत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीयाः द्रष्टा-दर्शन-हर्य विचार। भूत-मिवष्यत्-वर्तमान सब हुए समर्पित निरहंकार॥ रही न रंचक स्मृति अर्पणकी, रहा कहीं न तनिक अमिमान। करता पतन उच्चस्तरसे जीः हरते जिसे स्वयं मगवान। सर्वत्याग शुचितम होतायों---जहाँ एक प्रियतम-सुब हेतु। होता उदय प्रेम-रवि उज्ज्वकः मस्ता काम-राहु तम-केतु। होता देन्य प्रकट पावन तवः बढ़ता प्रियतम-सुस्तका चाव। स्मरण (अनन्य') (सुखीं तत्सुख'से--यही मधुरतम गोषीमात्र। परम रत्न इस शुचि अमृत्य रतिकी जो विमल विलक्षण क्षा। नित्य अगाध सहज ही प्रतिपस वर्धमान जो अमित अमान। स्नेह-मान-प्रणयादि अष्टविध रतिका जो सर्वोच सुरू। गहामान-रूपा वे राधा सहज कृष्ण-कर्षिणी अनुप। शरीर, प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और उनके सर्म

स्वाभाविक कर्म; अभिलाषा, आसक्ति, कामना, आशा और तृष्णाका सम्पूर्ण रहस्य; माया, मोह, अहंता, ममता और उनकी भेरणासे होनेवाले सब आचरणः इस लेकवे और परलोकके, परमार्थ और स्वार्थके ऊँच-नीचे सारे व्यवहार व्यापार; धन, जन, जीवन, स्वजन, सुन्दर यश, साविक कीर्ति और श्रेष्ठ आदर-सम्मान; शुभ गति, सिद्धि, लैकि और दैविक सम्पत्ति, सफलता, निर्मल बुद्धि और महाव विवेक; देहके धर्म, परिवारके धर्म, सारे लोक-धर्म, सारे वेद-घर्म, अन्य धर्ममात्र, उनके धर्मी, धर्मके आला धर्मजीवन और धर्मका कवच; शरीरके, कुडुम्बके और स्वर्गके अनुपम सुख, अतुलित मुक्ति-सुख, और ब्रह्मानव ये सब कुछ सहज ही समर्पित हो गये । कुछ भी उत्तर मन्द नहीं बच रहा है। यहाँतक कि जामत्-खम-सुपृति औ वरीय-ये नारी अवस्थाएँ तथा भूत-भविष्य-वर्तमात-तीनों काल भी बिना किसी अहंकारके समर्पित हो गरे। फिर इस सर्व-समर्पणकी स्मृति भी समर्पित हो गणी वर भी जरा सी भी नहीं बची और न कहीं अर्पण या स्थापक तिनक-साः वह अभिमान ही बन्धा, जो उश्वस्तरसे विश हैं।

सम्मान्। महान ॥ वमे। वर्म॥

गि देव

नन्द । मन्द् । वार ! कार॥

मान । वान हेत्। केत्।

चाव। रीमाव।।

खान। मान । हम्।

स्त्प॥ र सभी शा और

ममता लोकने यवहार

प्रात्विक लैकिव

महात सारे

प्रात्मा ; और 14-

उत्तम

-à ाये। , वह

ILIAN. देव

अर खयं भगवान् जिसका हरण-नाश करते हैं---श्विमानद्वेषित्वात्'। यों जब एकमात्र प्रियतमके सुखके _{श्रिय पवित्रतम} सर्वत्याग हो जाता है, तब समुज्ज्वल प्रेम-सर्वका उदय होता है और काम-तमरूप राहु-केतु मर जाते है। तदनन्तर सबको पवित्र कर देनेवाला एक विलक्षण देख प्रकट होता है और उसीके साथ प्रियतमको सुख देने-हा चाव आत्यन्तिक रूपसे वढ़ जाता है । यह अनन्य-माण और प्रियतमके सुखसे सुखी होना ही सधरतम मेंभाव है। इस मधुरतम परम पवित्र श्रेष्ठ अमूल्य प्रेस-रत्नकी ने निर्मल और विलक्षण खान है; जो नित्य अगाध प्रेम महज ही पल-पलमें अपरिमित रूपसे बढ़ता रहता है; प्रीति, क्षेद्र, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव— हा आठ प्रकारके प्रेमका जो सर्वोच्च सुन्दर रूप-महाभाव

वेपरम प्रेममयी श्रीराधा सर्वत्यागमयी और नित्य श्रीकृष्ण-हरूपा, श्रीकृष्णात्मस्वरूपा और श्रीकृष्ण-चित्ताकर्षिणी हैं। ज़ना होते हुए भी इनकी सहज-स्वभाव चेष्टा नित्य-निरन्तर र्शकृण-सुखके लिये हुआ करती है। ये दिन-रात लमुद्रको ^{आत्मदान देती} रहनेवाली सुरसरिके सदृश अनादिकालसे अनतकाल प्रियतम श्रीकृष्णको सुख देती ही रहती हैं। ^{र्गे} उनकी नित्य सर्वेसुखदायिनी होनेपर भी ये यही अनुभव क्ष्ती हैं कि मैं सदा-सर्वदा प्रियतम श्रीकृष्णसे छेती ही

है उसीका प्रत्यक्ष मूर्तिमान् रूप-सहज ही श्रीकृष्णको आकर्षित

क्रतेवाली महाभावरूपा अनुपमेय श्रीराधा हैं।

इस दिव्य त्यागमय परम प्रेममें तीन वातें अनिवार्य ही हैं और ये तीनों ही परम प्रेमके परमोच्च स्तरमें भीणत महाभावमें सहज समुदित दैन्यके दर्शन कराती हैं---

- (१) निरन्तर देते रहनेपर भी अपने ळिये निरन्तर लेते रहनेका अनुभव करना।
- (२) देने योग्य वस्तुमात्रका अपनेमें सदा ही अभाव देखना।
- (३) सेवा करनेकी किंचित् भी योग्यताका अपनेमें न दीखना और सदा ही संकुचित मनसे प्रत्येक सेवामें सेव्य प्रियतम श्रीकृष्णके ही असाधारण सौरील्य, औदार्थ एवं स्नेह-परवशताके दर्शन करते हुए सर्वसमर्पण हो जानेपर भी सदा समर्पण करते ही रहना।

परम महिमामय इस दैन्यके ये तीनों स्वरूप श्रीराधार्मे पूर्णरूपमें प्रकट होनेपर भी इनकी अधिकता, उज्व्वलता,पवित्रता, मुगन्ध और सरसता सदा-सर्वदा उत्तरोत्तर असीमकी ओर बढ़ती ही जा रही है । जैसे श्रीकृष्णका सौन्दर्य-माधुर्य नित्य-नवीन वर्द्धनशील हैं; जैसे पवित्र प्रेमका स्वरूप नित्य-निरन्तर प्रतिपल बढ़नेवाला होनेसे नित्य-नवीन है, वैसे ही श्रीराधा और उनकी कायव्यूहरूपा श्रीगोपाङ्गनाओंके परम पवित्र रसमय महाभावका यह दैन्य भी तित्य नव सरसता, नित्य नव छावण्य, नित्य नव मधुरता, नित्य नव समर्वणरूपता और नित्य नव प्रियतम-सुखेच्छाके रूपमें बढ़ा चला जा रहा है। वस्तुतः इस परम प्रेममें ध्रियतम श्रीरयामसुन्दरके सुलकी सहज स्पृहा और स्वमुख-वासना मात्रके त्यागकी स्थिति स्वाभाविक हो जाती है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। अतएव किसी भी विचारमें, चेष्टामें, क्रियामें भोग-मोक्षकी इच्छाके उद्यका सर्वथा अभाव रहता है।

उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णके भेजे हुए ब्रजमें जाते हैं। वे सबसे मिलते हैं, सबको समझाते हैं। अन्तमें भाग्यवती प्रेमस्वरूपा श्रीगोपाङ्गनाओंसे और स्यामसुन्दरकी अभिन्नरूपा और उनकी प्राणाधिका श्रीराधिकासे एकान्तमें मिलते हैं। पहले समझानेकी चेष्टा करते हैं, फिर उनकी प्रेमकी महान उच्च श्थितिको देखकर हतप्रभ हो जाते हैं। उद्भवजीके अपने शानका अभिमान दूर हो जाता है, वे उनसे प्रेमशिक्षा प्रहण करते हैं और अन्तमें उन गोविन्द-प्रेमरूपिणी गोपरमणियोंके निवास-स्थान वृन्दावनमें कोई लता-गुल्म-ओषधि बनकर भी उनकी चरणधूलि प्राप्त करनेकी महती अभिलाषा करते हैं--

चरणरेणुजुषासहं आसामहो बृन्दावने किमपि गुल्मलतौपवीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्भुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ (शीमद्भागवत १०।४७।६१)

'अहो ! मैं इस वृन्दावनमें कोई झाड़ी, बेल अथवा ओषधि-जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ । ऐसा बन जाऊँगा तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणरज निरन्तर मिलती रहेगी। उस चरणरजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा । इन गोपियों-की बड़ी महिमा है; इन्होंने उन प्रेममय भगवान्, जिनकी

स्मृति

गया है

भेमका

रात-वि

नवीन

विराजि

द्वारा

म्बर

मधुर

अरुण

और उ

केमलद् ऐती है

हैतो

मुहि

श्रुतियाँ—वेद, उपनिषद् सदा खोजते ही रहते हैं परंतु पाते नहीं, उन भगवान्की पदवीको, तन्मयताको, उनके परम प्रेम-को पा लिया है और इसके लिये इन्होंने दुस्त्यज स्वजन-सम्बन्धी और लोक-वेदकी मर्यादा—आर्यमार्गका भी परित्याग कर दिया।

फिर उद्धवजी जब वहाँसे चलने लगते हैं, तब श्रीराधाजी विकल हो जाती हैं। वे कहने लगती हैं—

उद्धव ! राधा-सी अभागिनी दु:खमागिनी पापिनि कौन ? जिसको छोड़, मधुपुरी जाकर माधव मधुर हो गये मौन ! ऐसी प्रियिवयोगिनी तरुणी मेरे सिवा न कोई और । प्रिय-विछोहमें शून्य दीखते जिसको सभी काल, सब ठौर ॥ पल-पलमें बढ़ता जाता है दारुण-से-दारुण उर-दाह । सूखे कण्ठ-तालु सब जिसके, निकल न पाती मुखसे आह ॥ प्रियतमके वियोगकी ज्वालामें कैसा भीषण उत्ताप । कर न सकेगा उसका कोई, कभी कल्पनासे भी माप ॥ मेरे मनकी विषम वेदना रहती मनमें ही अव्यक्त । भाषा नहीं पहुँच पाती है, शब्द नहीं कर पाते व्यक्त ॥ कैसे किसे सुनाऊँ उद्धव ! में अपने मनकी यह बात । कौन बोध देकर कर सकता, शीतल मेरे जलते गात ॥ दुखी न होओ देख मुझे तुम जाओ उद्धव ! हिरके पास । झुलसा दें न कहीं थे मेरे तुम्हें घोर संतापी श्वास ॥

'उद्धव! इस राधाके सहश अभागिनी, दुःखभागिनी तथा पापिनी भला और कौन होगी! जिसको छोड़कर उसके वड़ें मीठे माधव मधुपुरी चले गये और वहाँ जाकर कहना- सुनना ही बंद कर दिया! प्रियतमका ऐसा वियोग सहनेवाली तरुणी मेरे सिवा और कोई नहीं है! मुझे उन प्रियतमके विछोहमें आज सभी देश और सभी काल सूने दिखायी दे रहे हैं। पल-पलमें मेरे हृदयका दाह भीषण-से-भीषण रूपमें बढ़ा चला जा रहा है। इस तापसे मेरे कण्ठ-तालू भी 'ऐसे सूख गये कि मुँहसे आह भी नहीं निकल पा रही है। प्रियतमके वियोगकी व्वालामें कैसा भयानक ताप होता है, इसका परिमाण कोई कभी कल्पनासे भी नहीं कर सकेगा। मेरे मनकी भीषण वेदना मेरे मनमें ही अप्रकट रह जाती है, न वहाँतक कोई भाषा पहुँचती है और न कोई शब्द ही उसे व्यक्त कर पाते हैं। मैं अपने मनकी वात उद्धव! किसे सुनाऊँ और कैसे सुनाऊँ ! (और जब कोई मेरे हृदयकी वातको

जानता ही नहीं,) तब मुझे प्रवोध देकर कौन मेरे जले. भुनते अङ्गोंको शीतल कर सकता है ? उद्धव ! तुम मेरा दुःख देखकर दुखी न होओ, (मेरा अपहरण करके के जानेवाले) उन हरिके पास चले जाओ; यहाँ ठहरे तो, क्हां मेरे ये घोर आग उगलनेवाले श्वास तुम्हें झलस न हैं !)

यों कहते-कहते राधाजी अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं और मूर्छित होकर जमीनपर दुलक पड़ती हैं। उद्धवर्जिक द्वारा समयोचित उपचार किये जानेपर कुल समयके वर श्रीराधाजीकी चेतना लौटती है। तदनन्तर श्रीराधाके दुःलो अत्यन्त दुःखी, उनके तापसे संतप्त सहज-सहृद् उद्धव क्षीभ प्रकट करते हुए कहने लगते हैं—'मिहमामयी राधा! में अवतक जानता था, हमारे स्यामसुन्दर सदय-सहृद्य हैं और प्रियजन-सुखद हैं। पर आज इन सब गोपाङ्गनाओंकी और तुम्हारी उनके वियोगमें ऐसी दारुण दीन दशा देखकर में वह निश्चितरूपसे अनुभव करने लगा हूँ कि वे सचमुच वहे ही निश्चितरूपसे अनुभव करने लगा हूँ कि वे सचमुच वहे ही निष्ठुर-निर्दय हैं। राधे! तुम उन कपटी, निर्मोही वसुका स्मरण करके क्यों इतनी दुखी हो रही हो।

श्रीराधाको उद्धवके इन सहानुभ्तिपूर्ण बन्नोमं भी प्रियतमकी निन्दा सुनना सहन नहीं हुआ और वे उत्हें रोककर बीचमें ही बोल उटीं—'उद्धव! ऐसा मत कहो। वे मेरे प्राणनाथ कदापि निष्ठुर-निर्दय नहीं हैं। वे बहे ही सदय-सहदय हैं। मैं जानती हूँ, उनका हृदय अवक कोमल है। अब भी वे मेरी स्मृतिसे, पता नहीं, कितने कैसे व्याकुल हो रहे होंगे। वे बिना ही रूप-गुण देले स्वा मुझपर मुग्ध रहते हैं। यह तो मैं ही अभागिनी हूँ। उदब! मैं उन प्राणनाथ प्रियतमको कैसे भूल जाऊँ ! उनकी मधुर स्मृति ही तो मेरा जीवन है—मेरा अस्तिल है। इस राधाके रूपमें केवल उनकी स्मृति ही तो बची है। क्षणभर की भी उनकी विस्मृतिका अर्थ है—राधाका मरण, राधाके अस्तिल्वका अभाव!

विसाहँ कैसे स्याम सुजान ?

एकमात्र स्मृति ही है आत्मा, स्मृति ही जीवन-प्रान॥

एक मधुर अनन्य स्मृति प्रिय की नित्य अखंड बनीमन।

प्रानि, पदार्थ, परिस्थिति, सब की सहजहि भयो बिसर्जन॥

नित नव सुंदरता, नव माधुरि, नित नव रूप विकास।

नित नव प्रीति, नित्य नव गौरब, नित नव रासवितास॥

नित नव नेह, भाव नित नूतन, रातिद्वस मन राजत।

नित नव संगम की मधुर स्मृति हिय महँ नित्य विराजत॥

ग ३६

र जलते.

म मेरा

के चरे

तो, वहीं

जाती है

द्धवजी के

पके बाद

दु:खसे

व क्षोभ

धा ! में

हैं और

की और

र मैं यह

वड़े ही

वन्धुका

नोंमें भी

वे उन्हें

कहो ।

वड़े ही

अत्यन

, कितने

खं सदा

उद्धव!

मधुर-

है। इस

क्षणभर-राधाके

न॥

न।

न॥

HI

١١,

गुन-गरिमाः महिमाः सुहाग-सुखः रस-वर्षा मुसुकान। अतर मान-मनावनिः बोलानि सुधा-मधुर रसखान॥ बरनकमळः मुखमंडळः मधुमय रूप केस सिंगार। किकट अकुटि, हम निक्तन विसद, पग नूपुर की झनकार ॥ ह्मवनमात्र मन होत प्रहरिपतः परस प्रफुल्कित देह। स्मृतिमं होत सुस्निग्ध आतमाः उपजत नित नव नेह ॥ क्रोटि-कोटि सत मन्मथ जिनके पटतर आत रुजानत । ब्रह्मा, सिवः सनकादि गुननि कौ जिनके पार न पावत ॥ एक बार सपनेहुँ जिन्ह कीन्हे रूपरासि के दरसन। अग-जग विसरिः कियो तिन अपनो सरवस विवस समरपन ॥ जिनके मधुर मनोहर मंजुल गुन स्वर-लहरी अतुलित। पहन काठ करत द्रवमय जला मृत तरु करत सुमुकुलित॥ बायु-सूर्य की गति स्तंभित करः अचल करत सब चेतन। तिन कौं प्रियतम रूप पाइ पुनि कैसे सुधि विसरे मन।। मेरे प्राननाथ वे प्रियतम मधुर मधुर जीवनधन। रातदिनाँ वे रहत हृदय में विलगत नहिं एक हु छिन॥ ज्यौ ! तिन में मैं, वे मो में, नहीं मेद की लेस। प्रियतम के ढिंग जाउ सिदौसी मेटी मन कौ क्लेस ॥

भैं उन मुजान स्याममुन्द्रको कैसे भूल जाऊँ ! एकमात्र उनकी वह स्मृति ही मेरी आत्मा है, वह स्मृति हैं मेरा जीवन-प्राण है । प्रियतसकी एक अनन्य अखण्ड सृति नित्य-निरन्तर मनमें बनी रहती है, उनके अतिरिक्त अय सभी प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिका मनसे विसर्जन हो षा है। उनका वह नित्य नृतन सौन्दर्य, नित्य नव माधुर्य, निल नया-नया रूपका विकास, नित्य नया प्रेम, नित्य न्त्न भेमका गौरव, नित्य न्त्तन स्नेह और नित्य नवीन भाव— णिदिन मेरे मनमें स्मृतिरूपसे सुशोभित हैं। उनके नित्य वीन संगमकी मधुर स्मृति मेरे हृद्यमें नित्य-निरन्तर विराजित रहती है। उनकी वह गुण-गरिमा, महिमा, उनके भए मिला हुआ सौभाग्य-मुख, उनकी वह रस-बरसाती म्बुर मुसुकान, मेरे मान करनेपर आतुर होकर मनानेकी भुर चेष्टा, उनकी सुधामधुर रसकी खान वाणी, उनके वे भरण चरणकमल, उनका मनोहर मुखमण्डल, मधुमय रूप भी उनका वह केशोंका रूप-शृङ्गार, वे बाँकी भौंहें, विशाल भिल्दल लोचन एवं पैरोंके नूपुरोंकी झनकार सदा ही सारण हिं है। कहीं उनकी ये वातें जरा-सी सुननेको मिल जाती कि मन हर्षसे पूर्ण हो जाता है। शरीर स्पर्शमात्रसे कुहित हो जाता है। स्मृतिसे आत्मा ही सुस्निग्ध हो जाता

है एवं नित्य-नृतन स्नेहका उदय होता है। सैकड़ों करोड़-करोड़ कामदेव जिनकी तुलनामें आते लजाते हैं; ब्रह्मा, शिव और सनकादि जिनके गुणांका पार नहीं पाते—एक वार स्वप्नमें भी जिनको उस रूपराशिकी झाँकी दीख गयी, वही सारे अग-जगको भूलकर विवश होकर अपना सर्वस्व समर्पण करनेको वाष्य हो गया। जिनके मधुर मनोहर सुन्दर गुण तथा जिनकी स्वरलहरी ऐसी अतुलित है कि जो कठोर पापाण और काष्ठको भी द्रवमय जल बनाकर वहा देती है, मरे हुए वृक्षोंको हरे-भरे करके भलीभाँति मुकुलित कर देती है, वायु तथा सूर्यकी चाल रोक देती है और समस्त चल चेतनोंको अचल कर देती है, ऐसे उनको मैंने प्रियतमके रूपमें प्राप्त किया। अब भला, मेरा मन उन्हें कैसे भूल जाय ? वे मेरे प्राणनाथ हैं, मेरे प्रियतम हैं, मेरे मधुरसे भी मधुर जीवन-धन हैं, वे रात-दिन मेरे हृदयमें निवास करते हैं, कभी एक क्षणके लिये भी अलग नहीं होते (सदा साथ ही रहते हैं)। उद्धव ! मैं उनमें हूँ और वे मुझमें हैं। हम दोनोंमें लेशमात्र भी भेद नहीं है। तुम तुरंत उन प्रियतमके पास पहुँचकर उनके मनके क्लेशको दूर करो।

इतना कहते ही भाव बदला। वियोगकी विषम वेदना पुनः जाम्रत् हो गयी और वे मूर्छित होकर पुनः गिर पड़ीं। प्रयास करनेपर जब उन्हें चेत हुआ, तब वे रोती हुई बोर्ली—

गच्छ वत्स मधुपुरीं सर्वं बोधय माधवम्। यथा पद्म्यामि गोविन्दं प्रयत्नेन तथा कुरु॥ निष्फलं मे गतं जन्म गच्छ मिथ्यादुराशया। आशा हि परमं दुःखं नैराइयं परमं सुखम्॥

'वत्स उद्धव! तुम मथुरा जाओ और माधवको सव वातें समझाकर जिसमें हमलोग उनके दर्शन कर सकें ऐसा प्रयत्न करो। तुम तुरंत चले जाओ! हमारा जीवन तो 'मिथ्या दुराशामें निष्फल ही चला गया। आशा ही परम दुःख है और निराशा ही परम सुख है।' राधिकाजी यों कहकर फिर रोने लगीं। उद्धवजीने उनके चरण-कमलोंमें प्रणाम करके प्रस्थान किया।

तनकार सदा ही स्मरण उद्धवजीके जाते ही राधिकाजी पुन: मूर्छितं हो जाती हैं। ती सुननेको मिल जाती तव गोपियाँ उन्हें उठाकर सजल कमलपत्रोंकी शय्यापर सुला । शरीर स्पर्शमात्रसे देती हैं। पर राधाके स्पर्शमात्रसे ही वह शय्या जलकर भस्म । ही सुस्निग्ध हो जाता हो जाती है। (तत्स्पर्शमात्राच्छयनं भस्मीभूतं बभृव ह) CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

म॥ त।

T ||

য়া

37

H

ऑ

प्रक

अव

'स्री

उसर

पहले

अस्त

उनव

मूर्ति

मुन्दर

वहाँहे

भी व

तदनन्तर उन विरहन्वर-कातरा श्रीराधाजीको वे पुनः दूसरे स्निग्ध स्थानमें स्निग्ध चन्दन लगे वस्त्रोंपर मुलाती हैं, पर वह मुगन्धि-चन्दनोदक भी तत्काल सूख जाता है। (सहसा गुष्कतां प्राप्तं मुगन्धिचन्दनोदकम्।) फिर, वे अपने प्राण-प्रियतमकी मधुर चर्चा करनेवाले उद्भवके चले जानेसे अत्यन्त दुःखित होकर सहसा बोल उठती हैं—

हाहोद्धवोद्धव हरिं शीघ्रं गत्वा वदेति च। समानय हरिं शीघ्रं यत्प्राणेश्वरमित्यपि॥

'हा उद्भव ! हा उद्भव ! तुम तुरंत जाकर मेरी यह यातना मेरे प्राणेश्वर हरिको सुनाओ और उन्हें शीघ यहाँ लेकर आओ ।'

कितनी मार्मिक पीड़ा है—राधाके प्राणोंमें !

उद्भवनी श्रीगोपियोंकी दशा देखकर यहे ही दुखी हुए। वे अत्यन्त क्षुब्ध मनसे मथुरा छैटे। श्रीकृष्णके प्रति उन्हें बड़ा रोप आ रहा था। मक्त कवि श्रीनन्ददासनी लिखते हैं—

X × × X X X X × X X किंबि निरदयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन। पुनि अजनिता-प्रेम की बोलत रस भरे बैन ॥ सुनौ नँद लाडिले॥ करनामई रसिकता है तुम्हरी सब झँठी। तव ही लौं कही लाख, जबहि लों वॅघ रही मूँठी ॥ में जान्यों ब्रज जाइ के निरदय तुम्हरों रूप, जो तुमको अवलंबही, तिन्ह कों मेलो कूप, कोन सौ धरम यह ?

श्यामसुन्द्रकी निर्दयता देखकर उद्धवके दोनों नेत्रों में क्रोध छा गया । फिर बजाङ्गनाओं के प्रेमको स्मरण करके वे रस-भरे वचन बोले—'नन्दलल ! सुनो, तुम्हारी सारी करुणामयी रितकता—प्रेमकी वातें स्ट्री हैं । तमीतक लाख कह लो, जबतक मुटी बँधी है । अब तो ब्रजमें जाकर मैंने तुम्हारे निर्दय रूपको जान लिया है । जो तुम्हारा अवलम्य लेते हैं, उनको तुम कुएँ में टकेल देते हो ! यह तुम्हारा कौन-सा धर्म है ?'

फिर राधाकी दीन-दशाका करुण चित्र सामने आते ही उद्धवजी अपनेको मर्यादामें नहीं रख सके और प्रणयकीपसे भरकर वे श्रीकृष्णसे कहने छगे—

तुम सम निटुर दूजो कीन ? राधिका-सी प्रम-पुतरी रुदित छाँडी बिँधि गयो नहिं हियो तेहि छिन कुटिल बज्र कहोर। बीच-धारा नाव तिज दी, है गये नहिं छोर॥ देखि आयो। मिलन धूमिल स्वरन-तन कृस छीन। विकल तड़पत दीन दिन-निसि जलरहित जिमि मीन॥ सुवसन अंगराग सिंगार। भूषन सकल सिथिल वेनी सुमन विखरे केस रूखे झार॥ बोध नहिं कछु रात-दिन को, नहीं जल-थल-ग्यान। मानव-अमानव की न कछु पहचान॥ हा दियत ! हा हदैवळम ! हाय प्रानाधार। अश्रधारा बहत अविरतः करत करन पुकार॥ विरह-ज्वाला जरत मनः तन दहत दारुन पीर। परसत क्सम-सज्या सॉस-अनल-समीर॥ रसरिहत उर भयोः सूख्यो तप्त ऑसू-स्रोत। रुकत पुनि पुनि प्रान पुनि छिन पुनर्जावन होता। सकल सुख कारन कहावी, जगत-जीवन नाम। प्रान अवरुनि के हरतः यह कहा तुम्हरौ काम १॥ भाइ पहुँचौ बेगि माधव ! करो जीवन दान। मिसि अवाधितः विरह-पीड़ा हरी सपदि महान॥ भई कोउ न राविका-सी, है न आगें होय। लोक-बेदहिं कों प्रमम्रति भजे तुम

'श्रीकृष्ण ! तुम-जैसा निष्ठुर दूसरा कौन होगा, बो राधा-सरीखी प्रेमपुतलीको घरमें रोती हुई छोड़ आये! तुम्हारा वज्रके समान कुटिल कठोर हृदय उसी क्षा वि^{र्} क्यों न गया ? जो तुम मँझधारमें ही नौका छोड़ आये। किनारेतक नहीं ले गये! मैं खयं देखकर आ रहा हूँ राषाकी दीन-दशा ! उसका स्वर्ण-सा शरीर मैला, धुवाँसा, अलन कृश और क्षीण हो गया है। वह रात-दिन जलसे निकाली मछलीकी तरह अत्यन्त दीन और व्याकुल होकर तह्यती रहती है (पर मछलीकी तरह उसके प्राण नहीं निकलते)। उसने सम्पूर्ण सुन्दर वस्त्र, आम्प्रण, अङ्गराग और शङ्गाला त्याग कर दिया है, उसके सिरकी वेणी ढीली हो रही है, पूर्व इधर-उधर विखर रहे हैं और सिरके बाल सब हते हो रहे हैं। उसे न रात-दिनका पता है, न जल्खलका ज्ञान है। न वह अपना-पराया जानती है और न उसे मनुष्य अमनुष्य (पशु-पक्षी) की ही पहचान रह गयी है। वह अविराम आँसुओंकी धारा बहाती हुई 'हा प्यारे !' 'हा हृद्यवहाँभ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मंखां १०]

भाग ३६

-

मीन ॥

होर ।

छोर॥

छीन।

नीन॥

गार।

॥ मह

यान ।

ान ॥

गार ।

नर ॥

पीर ।

नीर ॥

त्रोत ।

ोत ॥

नाम ।

111

ान।

ान ॥

ोय ।

य ॥

गा, जो

आये!

ण विँध

; आये।

राधाकी

अत्यन्त

निकाली

तइपती

लते)।

原体

意顿

हो रहे

न हैं। न

न्ध-

HATTH

हुत्म।

ह्य भेरे प्राणाधार' कहती हुई करुण पुकार करती रहती है ! तम्हारे विरहकी न्वालासे उसका मन जल रहा है, गरीर भयानक पीड़ासे दहकता रहता है। पुष्पींकी शय्या उसका स्पर्श होते ही जल गयी । श्वाससे पावकमय पवन _{विकलता} रहता है। अब तो अंदरकी इस अभिसे उसका हृदय मलकर इतना रसरहित हो गया है कि उसके उन तप्त आँसओंका स्रोत भी सूख गया है। क्षण-क्षणमें वार-वार उसके गण रक जाते हैं, वह निष्पाण हो जाती है, फिर दूसरे क्षण वह पुनः जी उठती है। तुमको तो सव लोग सबको सब क्रारके सुख देनेवाला कहते हैं और तुम जगत्के जीवन कहलते हो; फिर यह तुम्हारा कैसा काम है कि तुम अवलाओं के प्राण हरण कर रहे हो ? (इस प्रकार—स्त्री-ह्या तो ज्ञानशून्य चोर-डाकू भी नहीं करना चाहते-'ब्रीहत्यां नैव वाञ्छन्ति ज्ञानहीनाश्च दस्यवः') अरे माधव! तुम तुरंत दौड़कर वहाँ जाओ और राधाको जीवन-दान करो। उससे निर्वाध मिलकर तुरंत उसकी महान् विरह-यन्त्रणाको रूर करो। देखो ! राधिका-सरीखी प्रेमकी प्रतिमा न तो कोई वहले हुई है, न अब है और न भविष्यमें होगी ही, जो सारे होक वेदको खोकर केवल तुम्हारा सेवन करती है।

इसपर श्रीकृष्ण उद्भवको समझाकर यह बता देते हैं कि जमें तथा राधा और गोपाङ्गनाओं में कोई भेद नहीं है।

इन वातोंसे पता लगता है कि राधाके हृदयमें कितनी भयानक वियोग-वेदना है और प्रियतम भगवान्के मिलनेपर ^{अनको} कितना सुख हो सकता है; पर निर्मल दिव्य प्रेमकी मृति श्रीराधा श्रीश्यामसुन्दरके सुखको ही अपना स्वभाव भाये हुए हैं। इससे वे मथुरा तो जातीं ही नहीं, पर स्याम-हुन्दरके समीप रहनेसे भी, उन्हें कोई कष्ट न हो जाय, इस क्लनासे कॉप उठती हैं और उनसे दूर—बहुत दूर भाग जाना चाहती हैं। एक संतने श्रीराधाके इस भावपर कहा है-वह देश दूर है। आज जहाँ मेरे प्राणाधिक हैं प्रियतम । उससे विपरीत दिशामें ही मैं भाग चहूँ अब तो प्रियतम ॥ है तापमान इन श्वासोंका प्रतिपल बढ़ता जाता प्रियतम। किकी गरमी न लगे जिससे, उस नील कलेवरको प्रियतम ॥

भेरे पाणाधिक स्यामसुन्दर आज जहाँ हैं, वह देश पहाँसे दूर हैं; परंतु अब तों मैं उसकी विपरीत दिशामें और भी दूर भाग जाना चाहती हूँ; क्योंकि मेरे इन श्वासोंका ताप-

मान प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा है, कहीं इनकी गरमी वहाँतक पहुँचकर उस नीलवदनको न लग जाय।'

अिंकुल गुन गुन करता था क्यों मेरे पीछे वे थे प्रियतम । वे चले गये, अतएव देह यह सड़ी-गळी अब है प्रियतम ॥ यह गन्धवाह, इसिलेये यहाँ निश्चय कपूय होगा प्रियतम । में चर्षूँ और भी दूर, न उनके पास गन्ध पहुँचे प्रियतम ॥

'मैं चलती थी, तब गुनगुनाता हुआ (स्वामसुन्दरके गुण गाता हुआ) भ्रमरसमुदाय मेरे पीछे-पीछे चलता था, क्योंकि वे साथ थे; यह उनकी अङ्ग-सगन्धका प्रभाव था। अव वे चले गये, इससे अव यह सड़ी-गली (दुर्गन्धमरी) देह रह गयी है । अतएव यहाँकी हवा अव निश्चय ही दुर्गन्ध और अपवित्रतासे भर जायगी, मैं और भी दूर निकल चलूँ, जिससे यह अपवित्र दुर्गन्ध उनके पासतक न पहुँचे ।'

में नहीं महाँगी कभी, सत्य यह है त्रिकाल, फिर भी प्रियतम । यह तन तो सदा जलेगा ही, काली उन लपटांसे प्रियतम ॥ फैलेगी धूमराशि नममें, में इतनी दूर चहुँ प्रियतम। धूआँ कुगकर पंकिक न बनें वे हम सरोज-दल-से प्रियतम ॥

'यह त्रिकाल सत्य है कि मैं कभी नहीं मरूँगी; पर यह मेरा शरीर तो उन काली लपटोंसे सदा जलता ही रहेगा। इससे आकाशमें धूएँके गोट-के गोट फैल जायँगे । अतः मैं इतनी दूर चली जाऊँ कि जिससे धुआँ लगकर मेरे प्रियतमके वे कमलदलसदृश नेत्र कहीं पंकिल न बन जायँ।

इस प्रकार प्रियतमके मुखकी स्मृति और ख-मुखका सहज विसर्जन राधाका स्वमाव है । इसीका सहज-स्वमाव अनुकरण श्रीव्रजवालाएँ करती हैं और खमुख-त्याग तथा विशुद्ध अनुरागके द्वारा वे प्रियतम श्रीकृष्णके परम प्रेमकी पात्री बनकर धन्य होती हैं।

इस परम भगवत्प्रेमकी साधनाका आरम्भ होता है-भगवान्के प्रति अनन्य रागकी पवित्र भावनासे । भगवान्में राग आरम्भ होते ही सहज स्वामाविक भोग-वैराग्य, प्रपञ्चकी विस्मृति, मन-इन्द्रियोंकी भोगोंसे उपरति, स्वमुख-वासनाका त्याग और 'अहं'की विस्मृति होने लगती है। प्रापञ्चिक भोगा-सक्ति तो सहज वैसे ही नष्ट हो जाती है, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकारमयी रात्रि । सूर्यको प्रयास करके रात्रिका नाश नहीं करना पड़ता, सूर्योदयके प्रकाशका आभास होते ही रात्रिका अन्धकार मरने लगता है। इसी प्रकार हृदयमें इस पवित्र प्रेमका वीज वपन होते ही भोगवासना नष्ट होने लगती

304

देक

अन

है। याद रखना चाहिये-भगवत्प्रेम और भोगासक्ति कभी एक साथ नहीं रह सकते।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम। तुलसी कबहुँ कि रहि सकें रिव रजनी इक ठाम ॥

अतएव इस प्रेमसाधनामें भोगासक्तिका त्याग अनिवार्य है। इसीसे इस भक्तिके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर--इन पाँच रसोंमें शान्त प्रथम है। शान्त रसका अभिप्राय है—इन्द्रिय-मनका भोग-जगत्से विमुख होकर केवल भगवान्की सेवामें लग्ं जाना । वेदान्तके 'साधन-चतुष्टय'में विवेक-वैराग्यके पश्चात् मनका संयम, इन्द्रियोंका दमन, इन्द्र-सहिष्णुता, भोगोंसे उपरति, अटल श्रद्धा और समाधान-संदेहरिहत स्थिति-यह षट् सम्पत्ति प्राप्त होती है। लगभग ऐसी ही स्थिति भक्तिके शान्तरसमें होती है। उस पट् सम्पत्ति-की प्राप्तिसे वहाँ मोक्षकी प्रवल इच्छाका उदय होता है और यहाँ भगवत्सेवा-भगवान्के दासत्वकी प्रबल आकाङ्का उत्पन्न हो जाती है। इसीसे इसके वाद ही 'दास्य रति'का उद्भव होता है। दास्य रितका भक्त इन्द्रिय-मनका गुलाम नहीं रहता। वह सबकी दासतासे अपनेको मुक्त करके एकमात्र अपने स्वामी भगवान्का दासत्व स्वीकार करता है। वह न किसीका दास रहता है, न किसीको दास बनाता है। यही रस क्रमशः प्रगाढ़ तथा उत्कृष्टतर होता हुआ मधुर-रतिमें परिणत हो जाता है। इस मधुर भावमें भी यह श्रीलक्ष्मीजी, रुक्मिणीजी आदिके लीला-चरित्रसे आगे बढ़कर गोपीभावमें परिणत हो जाता है, जहाँ भोग-मोक्षकी स्युहाका सहज त्याग, अहंकी पूर्ण विस्मृति, स-मुखकी कल्पनाका सर्वथा और सर्वदा अभाव और नित्य-निरन्तर प्रियतम श्रीश्यामसुन्द्रकी मधुर सुख-स्मृति ही जाप्रत् रहती है। यह अमर्याद और अवाध समर्पण नित्यसिद्धा गोपाङ्गनाओंमं स्वरूपसे ही रहता है और साधनसिद्धा गोपाङ्गनाएँ पूर्ण त्यागमयी और रसमयी साधनाके द्वारा इस स्तरतक पहुँचकर सिद्धावस्थाको प्राप्त करती हैं।

उपर्युक्त दास्प्ररितमें इसीलिये जगत्के वन्धनसे मुक्ति और भगवत्सेवामें नित्य-नियुक्ति हो जाती है। वह भक्त इस सेवाको छोड़कर, दिये जानेपर भी मुक्ति नहीं छेता। भगवान् कपिल कहते हैं-

*सालोक्यसार्धिसामीप्यसारूप्यैक*त्वमप्युत दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥ 'सर्वैश्वर्यमय भगवान्के समान लोकमें निवास, भगवान्-

के ऐश्वर्यके समान ऐश्वर्यकी प्राप्ति, भगवानके समीप रहेने अधिकार, भगवान्के समान रूपाकृतिकी प्राप्ति और भगवान् एकत्व-ये पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ दी जानेपर भी मेरे फ्री जन मेरी सेवाको छोड़कर इन्हें स्वीकार नहीं करते।

ऐसे ये भगवान्के सेवक केवल भगवचरणारिवन्त्में भीत ही चाहते हैं । श्रीतुलसीदासजी कहते हैं— चहों न सुगतिः सुगतिः संपति कछुः तिथि-सिथिः विपुत वहाई॥ हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ो अनुदिन अधिकाई॥ अरथ न घरम न काम रुचि गति न चहाँ निखान। जनम जनम रित रामपद यह बरदान न आन॥

भगवरप्रेमको छोड़कर मैं न सद्गति चाहता हूँ,न सन्मति, न लौकिकी या दैवी सम्पत्ति, न ऋदि-सिद्धि और न बहुत बड़ी बड़ाई चाहता हूँ । यही चाहता हूँ कि भागत श्रीरामके चरणारविन्दमें मेरा अहैतुक अनुराग दिनप्रतिक्ष अधिक-से-अधिक बढ़ता रहे ।' प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता है उसक्र अन्त नहीं आता । इसीसे श्रीगोसाईंजी प्रेमकी प्राप्ति नहीं वरं उत्तरोत्तर प्रेमकी वृद्धि चाहते हैं। वे कहते हैं-भी अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष पुरुषार्थचतुष्टयको भी नहीं चाहता। चहने की बात तो अलग रही, मेरी न अर्थमें रुचि है न धर्ममं, न काममें और न मोक्षमें ही रुचि है। मैं दूसरा कुछ नहीं, केव यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म-जन्ममें मेरी रित भागार श्रीरामके चरण-कमलमें ही वनी रहे।

भक्तवर प्रह्लादजी भी जनमवन्धनसे छूटनेकी इच्छा न रखकर कहते हैं-

नाथ ! योनिसहस्रेपु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेष्वचलाभक्तिरच्युतास्तु सदा त्विय ॥ 'नाथ ! हजारों-हजारों योनियोंमें मैं जिस जिसमें जाऊँ उस-उसमें हे अच्युत ! तुम्हारी अचला भक्ति सदावनी रहे।

प्रेमावतार श्रीगौराङ्ग महाप्रभु कहते हैं-न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामगे। मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहेतुकी विषि॥ चहाँ न में जगदीस। संदरी धन-जन-कविता

बनी रहे प्रति जन्ममें भक्ति अहैतुिक ईस॥

इस परम प्रेमारूपा भक्तिमें, जिसके साधनको प्रागुजा नाम दिया जाता है, भगवान अपने 'निज प्रियतम' होते हैं। वे प्रेमीका हृदय होते हैं और प्रेमी उनका । भक्त अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

[भाग ३६ -नीप रहनेश र भगवान्ये 前前 1)

वेन्द्मं प्रीति

अधिकाई॥ वान। मान ॥

सिद्धि और कि भगवान् न-प्रति-दिन है। उसका ाप्ति नहीं

ते हैं—मै

ने भगवान्

इच्छा न

II नं जाऊँ।

मये।

11

गानुगां' तेहैं।

पुक वहाई॥

हता हूँ, न

ता। चाहने धर्ममं, न हीं, केवल

नी रहे।

|祖|

उनम

हिते हैं और वे भक्तोंमें । 'सिय ते तेषु चाप्यहस् ।' वह प्रेमकी साधना अनन्य टेकसे ही आरम्भ होती है। गोस्वामी वलतीदासज़ीने इस विषयमें अनन्य-टेकी तथा प्रेम-विवेकी अतकका वड़ा ही सुन्दर उदाहरण देते हुए कहा है--जों घन बरषे समय सिर, जों भरि जनम उदास।

तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥ (चातक केवल एक मेध्से ही स्वातीकी बूँद चाहता है,

व इसोकी ओर ताकता है न दूसरा जल ही स्पर्श करता है। इस चातकके टेकका वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं--) बहे तुम ठीक समयपर बरसो, चाहे जीवनभर कभी न गरतो, परंतु इस चित्त-चातकको तो केवल तुम्हारी ही आझा है।

रस्त रंस्त रसना करीः तृषा सूखिगे अंग। तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग।।

अपने प्यारे मेचका नाम रटते-रटते चातककी जीभ लट ाषी और प्यासके मारे सारे अङ्ग सूख गये, तो भी चातकके प्रेमका रंग तो नित्य नवीन और सुन्दर ही होता जाता है।

बरिस परुष पाहन पयद पंख करो टुक टूक। तुरुसी परी न चाहिए चतुर चातकहि चूक ॥ समयपर मेत्र वरसा तो है ही नहीं, उल्टे कठोर ^{पथर}—ओले वरसाकर उसने चातककी पाँखों<mark>के टुकड़े-टुकड़े</mark> कर दिये, इतनेपर भी उस प्रेम-टेकी चतुर चातकके प्रेमपणमें क्मी चूक नहीं पड़ती ।

पिन पाहन दामिनि गरज झिर सकोर खिर खीझि। रोष न प्रीतम दोष कखि तुकसी रागहि रीझि॥

मेंच विजली गिराकर, ओले वरसाकर, विजली चमकाकर, क्क-इड़ककर, वर्षाकी झड़ी लगाकर और तूफानके झकोरे किर चातकपर चाहे जितना वड़ा भारी रोप प्रकट करे; ^{१र चातकको प्रियतमका दोष देखकर कोध नहीं आता । उसे} रेष दीखता ही नहीं; वरं इसमें भी वह अपने प्रति मेनका भनुराग देखकर उसपर रीझ जाता है।

उप्न काल अह देह खिन मग पंथी तन ऊख। चातक बतियाँ ना रुची अन-जरु सींचे रूख ॥

गरमियोंके दिन थे, चातक शरीरसे थका था, रास्तेमें जा हा था, शरीर जल रहा था। (इतनेमें कुछ द्रक्ष दिखायी विश्वास कर लो) भत्तु अनन्य-मेमी चातकको यह बात अच्छी नहीं लगी; क्योंकि वे बृक्ष दूसरे जलसे सींचे हुए थे। बध्यो वधिक परयो पुन्य जरु उरुटि उठाई चाँच । तुलसी चातक प्रेम पट मस्तहुँ लगी न सींच॥

एक चातक उड़ा जा रहा था, किसी बहेलियेने उसे (वाण) मार दिया; वह नीचे पुण्यसिळळा गङ्गाजीमें गिर पड़ा, परंतु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी चातकने चोंचको उलटकर ऊपरकी ओर कर लिया। चातकके प्रेमरूपी वस्त्रपर मरते दमतक भी खोंच नहीं छगी। (यह जरा भी कहींसे नहीं फटा।)

चढ़त न चातक चित कबरूँ प्रिय पयोद के दोष। तुलसी प्रेम पयोचि की ताते नाप न जोख।। चातक प्रेमी है। अतएव उसके चित्तमें प्रियतम मेघका दोप कभी आता ही नहीं; क्योंकि वह प्रेमका अगाध समुद्र है, वहाँ माप-तौल नहीं है।

प्रेम देना जानता है, लेना नहीं । प्रेमका वदला चाहना तो वास्तवमें प्रेम है ही नहीं, वह तो छेन-देनका व्यापार है। इसीसे कहा गया है---

भोग-मोक्ष-इच्छा-पिशाचिनी जबतक करती मनमें वास । तवतक पावन दिव्य प्रेमका कभी न होता तिनक विकास ॥

अतएव इस पथपर आना चाहनेवाले व्यक्तिको पहले ही यह निश्चय कर लेना चाहिये कि विषय-भोगके साथ भगवत्येमका कदापि मेल नहीं है। भोग-सुल भी रहे और भगवान्का प्रेम भी मिल जाय' यह जो वैसी ही मूर्खतापूर्ण बात है कि 'रात्रि भी रहे और सूर्यका उदय भी हो जाय अथवा किसीका मरना भी बंद न हो और वह अमर भी हो जाय।' इसिटिये इस प्रेममार्गके पथिकको अहंके सुखकी-मोक्षतककी इच्छाका तथा अहंकी स्भृतिका भी त्याग करनेकी तैयारी करके ही इस मार्गपर पैर रखना चाहिये। जो अपने सर्वस्वको स्वाहा करके उसके भस्मावरोषपर आनन्दमत्त होकर नाच सकता है, वही सर्वत्यागी इस पावन प्रेमपथका पवित्र पथिक वन सकता है। कवीरजीने कहा है-

> कविरा खड़ा बजारमें किये कुकाटी हाथ। जो घर फूँकै आपना चलै हमारे साथ।।

सुतरां गोपी-प्रेमके आधारपर भगवत्-रस-प्रवाहमें बहनेके लिये सर्वत्यागका आदर्श सामने रखकर साधनामें प्रवृत्त होना चाहिये । किसी सर्वत्यागी ऐसे गोपीरूप रसमय प्रेमीजनको ही अपना पथप्रदर्शक बनाकर आगे बढ़ना चाहिये और सदा यह

नहीं '

करना

श्रीकृष

ही भाँ।

है, र

वाजन

परमारा

इहते हैं

all

राहिका

गीतलता बोई अन

राहिका द

बेल औ

है। इसरे

मि ही

अभक्ट हूँ

सर्वा

खेच

तस्य

महार्ग

देखते रहना चाहिये कि भगवत्प्रीति तथा भोगोंसे उपरिति, भगवान्की आत्यन्तिक अखण्ड स्मृति तथा जगत्-प्रपञ्चकी विस्मृति और उत्तरोत्तर भगवत्सेवामें प्रवृत्ति तथा स्व-सुख-वासनाकी निवृत्ति होती जा रही है या नहीं । यही कसौटी है इस परम पवित्र परम प्रेमके साधनकी । अस्तु !

श्रीराधा-माधव दोनों नित्य अभिन्न होते हुए नित्य लीलापरायण हैं। उनमें एक दूसरेको सुली बनानेकी यह प्रेमलीला सदा चलती रहती है और प्रेममूर्ति श्रीगोपाङ्गनाएँ अपनेको सूलकर श्रीराधा-माधवकी सुख-सामग्रीके संग्रहमें ही लगी रहती हैं। गोपीका स्वभाव या खरूप है श्रीराधा-माधवको सुखी करना और राधाका स्वभाव-स्वरूप है श्रीकृष्णको सुखी करना। सर्वत्र त्याग-ही-त्याग है। इसीसे यह लीला सर्वश्रेष्ठ तथा परमोच सिद्धिके क्षेत्रकी है। इसमें लौकिकता देखना या लौकिक समझकर इसका अनुकरण करना सर्वथा अनुचित और हानिप्रद है। न तो इनकी लीलामें कभी कोई संदेह करना चाहिये और न लीलाका अनुकरण ही। समर्पणकी साधना चलनी चाहिये, किसी त्यागमयी गोपीको आदर्श मानकर संयम और त्यागके प्रशस्त पवित्र पथसे।

श्रीराधा और श्रीकृष्णकी पवित्रतम दिव्य लीलामें जो कलुषित कामकी कल्पना होती है, उसका प्रधान कारण हमारी कामकलुष दृष्टि है और श्रीराधा-कृष्णमें अस्थि-मांसमय जड शरीरधारी मानव-बुद्धि है। पर यदि हम उन्हें साधारण मनुष्य मानते हैं, तब तो श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीकृष्ण केवल ग्यारह वर्षकी अवस्थातक ही नन्दालयमें थे और कई वर्ष पूर्वसे ही वजाङ्गनाओंकी मधुर लीला चल रही थी। अतः इस लीलाका समय श्रीकृष्णकी सात-आठ वर्षकी अवस्थासे आरम्भ हो जाता है। पर इतनी छोटी अवस्थामें कामका प्रादुर्भाव और कामचेष्टा सर्वथा असम्भव है। अतएव यह कामकीड़ा कदापि नहीं थी। परंतु वास्तवमें श्रीराधा-माधव तो प्राकृतिक शरीरधारी थे ही नहीं। अतएव उनमें कलुषित कामकी कल्पना एक महान् अपराध है और वह हमारा धेर पतन करनेवाला है।

इसी प्रकार लोग वार-वार राधा-कृष्णके विवाहकी बात पूछते हैं। इसमें भी उनके खरूपका अज्ञान ही कारण है। जो नित्य एक हैं, जिनमें कभी भेदकी कल्पना नहीं है और जो सिचदानन्दस्वरूप हैं, उनमें परस्पर विवाह होने-न-होनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तथापि कुछ महानुभाव उनका विवाह भी देखते हैं और ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार स्वं श्रीब्रह्माजीके द्वारा एकान्त काननमें उनके विवाह कार्य जानेका वर्णन मिलता है। श्रीराधाजीके रायाण गोपके स्वय विवाहकी बात भी आती है। उसमें श्रीदामाका शाप कार्ण था; परंतु वह विवाह स्वयं राधाजीके साथ नहीं, किंतु छाशके साथ हुआ था—ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वहाँ लिखा है—

'राधाजी अयोनिजा थीं । माताके पेटसे नहीं पैदा हुईं थीं । माताने योगमायाकी प्रेरणासे वायुको ही जन्म दिन परंतु वहाँ स्वेच्छासे राधा प्रकट हो गयीं । वारह वर्ष वीतनेत उन्हें योवनमें प्रवेश करती देख माता-पिताने रायाण गोषके साथ उनका सम्बन्ध निश्चित किया । उस समय श्रीराण घरमें छायाको स्थापित करके स्वयं अन्तर्धान हो गर्थी। उस छायाके साथ उक्त रायाणका विवाह हुआ । वास्तर्थ श्रीराधाका विवाह तो हुआ था पुण्यमय वृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ । जगत्स्रष्टा विधाताने विधिपूर्वक उसे समक्ष करवाया था ।'

अयोनिसम्भवा देवी वायुगर्भा कळावती। सुषाव मायया वायुं सा तन्नाविर्वभूव ह॥ अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्। सार्धं रायाणवैद्येन तत्सम्बन्धं चकार सः॥ छायां संस्थाप्य तद्देहे सान्तर्धानं चकार ह। वभूव तस्य वैद्यस्य विवाहद्दछायया सह॥ छुठ्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने। विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः॥

यह राधाकी छाया कौन थी—इसका भी स्पष्टीकरण उसी पुराणमें है। केदार राजाकी कन्या वृन्दाके तप करनेपर भगवान्ने उसकों यह वर दिया था कि 'इस तपस्याके फल स्वरूप तुम मुझे प्राप्त करोगी। फिर ब्रजमें असली राधानी जब वृषभानुकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होंगी, तब तुम उनकी छायाके रूपमें उत्पन्न होओगी। विवाहके समय राषाण छायारूपिणी तुम्हींसे विवाह करेगा और वह वास्तविक राधा तुमको रायाणके हाथोंमें अर्पण करके स्वयं अन्तर्धात हो जायगी। गोकुलवासी मूद लोग रायाणपत्नी तुम्हींको राधा माने रहेंगे। उस समय असली राधा तो मेरे पास विवाह करेगी और छायारूपिणी तुम रायाणकी स्त्री होकर करेगी और छायारूपिणी तुम रायाणकी स्त्री होकर जीवनयापन करोगी।

ाग ३६

-तार ख्यं

क्रम्बे

के साव

कारण

छायाके

18-

दा हुई

दिया

वीतनेपर

गोपके

श्रीराघा

1 38

वास्तवी

क्रिणके

सम्पन्न

राण)

उसी

रनेपर

धाजी

उनकी

ायाण

राधा

। हो

राधा

豚

'वृषभानुसुता मा एव वास्तवी राधा त्वं च च्छायास्वरूपिणी ॥ विवाहकाले रायाणस्त्वां च च्छायां प्रहीव्यति । त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा सान्तर्धाना भविष्यति ॥ गधां क्रत्वा च तां मूढा विज्ञास्यन्ति च गोकुले । स्वयं राधा सम कोडे छाया रायाणकामिनी ॥ अतः यह सिद्ध है कि यह छाया भी वास्तवमें राधाकी महीं है। यह भी केदारकन्या वृन्दाका अवतार है।

इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि वास्तवी राधाका क्किसी अन्य गोपसे विवाह हुआ था। पर इस विषयमें विवाद क्रता व्यर्थ है। यहाँ तो उन राधाका प्रसङ्ग है जो भगवान् भ्रीकृष्णकी न परकीया है, न स्वकीया है, परंतु श्रीकृष्णकी है भाँति अचिन्त्य-अनिर्वचनीय रूप उनकी नित्य अभिन्नरूपा हैं सर्वेश्वरी मूल प्रकृति हैं, समस्त देवीस्वरूपिणी हैं, अजननी हैं, श्रीकृष्णकी परम आराधिका हैं, श्रीकृष्णकी शमराध्या हैं और उनकी साक्षात् आत्मा ही हैं । श्रीकृष्ण इहते हैं--

यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताराने । भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्विय मम स्थितिः ॥ धावल्यद् रधयो रेक्यं दाहिकानलयोर्यथा । भूगन्यजलशैत्यानां नास्ति भेद्स्तथाऽऽवयोः॥ मया विना त्वं निर्जीवा चादर्योऽहं त्वया विना ।

^{(जैसे} दूध और उसकी धवलतामें, अमि और उसकी कि शक्तिमें, भूमि और गन्धमें तथा जल और उसकी केलिलामें कोई भेद नहीं है, वैसे ही तुममें और मुझमें कें अन्तर नहीं है। जैसे धवलता और दूध अभिन्न हैं, विका शक्ति और अमि अभिन्न हैं, भूमि और गन्ध तथा अ और शीतलता अभिन्न हैं, वैसे ही हम दोनों भी एक हिममें कोई मेद नहीं है। मेरे विना तुम निर्जीव हो में ही तुम्हारा जीवन हूँ) और तुम्हारे बिना मैं अपकट हूँ ।

परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम् । सर्वोद्यं सर्वपूज्यं च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥ खेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । प्राणाधिका राधा बहुसीभाग्यसंयुता । महाविक्णोः प्रस्ः सा च मूलप्रकृतिरीइवरी ॥

(मं प्र०४८ । ४९-५१)

श्रीकृष्ण सबसे प्रधान, परमेश्वर, सबके आदिकारण, सर्वपूच्यः निरीह और प्रकृतिसे परे विराजमान हैं। उनका रूप स्वेच्छामय और नित्य है। वे भक्तानुग्रह-मूर्ति हैं। श्रीराघा उनको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, वे परम सौभाग्यशालिनी हैं। वे ही महाविष्णुकी जननी ईश्वरी मृल-प्रकृति हैं।

श्रीराधिकाजी स्वयं यशोदाजीसे कहती हैं-'रा'शब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु । विर्वप्राणिषु विर्वेषु धा धात्रीमातृवाचकः॥ माताहमेतेषां म्लप्रकृतिरोइवरी । तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः॥ (त्र क्व १११ । ७५-५८)

'रा' शब्दका अर्थ है-जिनके एक-एक लोमकूपमें सम्पूर्ण विश्व भरे हैं, वे महाविष्णु तथा (उनके अंदर निवास करनेवाले) विश्वके प्राणी और सम्पूर्ण विश्व । एवं 'घा' शब्द धात्री तथा माताका वाचक है। अतएव मैं ही महाविष्णु, विश्वके सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त विश्वकी धात्री माता ईश्वरी मूलप्रकृति हूँ।

त्वं च लक्ष्मीः शिवा धात्री सावित्री च पृथक्पृथक् । गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

तुम अलग-अलग लक्ष्मी, दुर्गा, धात्री और सावित्री हो; गोलोकमें स्वयं राधा हो और रासमें सदा रासेश्वरी हो।

जगकत्रीं जगत्पालनतत्परा। राधा देवी जगल्लयविधात्री च सर्वेशी सर्वस्तिका ॥ (बृहन्नारदीय-पुराण)

श्रीराधादेवी जगत्की रचना करनेवाली, उसके पालनमें तत्पर रहनेवाली और (प्रलयके समय) संहार करनेवाली है तथा सम्पूर्ण जगत्की प्रसिवनी—जननी है। कृष्णेन आराध्यत इति राधा, कृष्णं समाराध्यति सदेति राधिका ।

(राधोपनिषद्)

श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं, इसलिये ये राधा हैं और ये सदा श्रीकृष्णकी समाराधना करती हैं, इसल्प्रि 'राधिका' कहलाती हैं।

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रवसात्मास्ति राधिका। (स्कन्दपुराण)

स्

भर

गहि

कह

भरत

भरक

श्रीभर

सकत

श्रीभर

मात्त्व

है श्री

ध्रम ३

मर्यादा

धि भ

इसका

वहाँ प

होती;

भांजी

भीर प

बीने श्री

गीरी,

गहित्य-इ

आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा निश्चय ही श्रीराधिका हैं।

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिदेंहरुचैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्। देहो यथा छायया शोभमानः × × × × । (राधिकातापनीयोपनिषद्)

ये—श्रीराधिकाजी और रसिसन्धु श्रीकृष्णका देह एक है। केवल लीलाके लिये ही ये दो स्वरूपोंमें प्रकट हैं, जैसे शरीर अपनी छायासे सुशोभित हो।

हमारा यह महान् पुण्य है और हम सब श्रीराधाजीके बड़े ही कृपा-भाजन हैं, जो उनका इस प्रकार स्मरण कर रहे हैं।

अन्तमें आज इस श्रीराधाके प्राकट्य-महोत्सवके दिन इम उनसे प्रार्थना करें—

किसोरी ! तेरे चरनिन की रज पाऊँ । बैठि रहौँ कुंजनि के कोनें स्याम-राधिका गाऊँ॥ या रज सिव-सनकादिक होचन, सो रज सीस चढ़ाउँ। ब्यास'स्वामिनी की छिब निरस्त विमल विमल जसगाउँ॥ प्रार्थना

जिन श्रीराधाके करें नित श्रीहिर गुन गान।
जिनके रस-लोमी रहें नित रसमय रसखान॥
प्रेम भरे हिय सों करें स्रवन मनन नित ध्यान।
सुनत नाम 'राधा' तुरत मूल तन को भान॥
करें नित्य दग-अिल मधुर मुख्यंकज-मधु पान।
प्रमुदित पुरुकित रहें लिख अधर मधुर मुसुकान॥
जो आतमा हिर की परमा जो नित जीवन-प्रान।
बिसार अपुनपो रहें नित जिनके बस मगवान॥
सहज दयामिय राधिका सो किर कृपा महान।
करत रहें मों अधम कों सदा चरन-रज दान॥
'बोलो परम प्रेमकी मूर्तिमान् सिच्चन्मयी प्रतिमा श्रीराधाई

जय जय !!'

परामक्तिके आदर्श श्रीमरतजी

(लेखक-पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

[गताङ्क पृष्ठ ११७० से आगे]

(८) फिर श्रीभरद्वाजजीने 'विधि बिसमयदायक विभव' से समाजसमेत श्रीभरतजीका आतिथ्य किया । उसमें श्रीभरतजीके त्यागकी महिमा सबके दृष्टिपथमें प्रकट हुई । वे विना पदत्राणके ग्रीष्मऋतुमें वनमार्गमें चलते थे ।

भइ मृद्ध महि मगु मंगल मूला ॥ किएँ जाहिं छाया जलद … …

आदिसे इनकी आदर्श पराभक्तिसे आधिदैविक तापोंकी शान्ति कही गयी है। मार्गमें नाना प्रकारसे श्रीभरतजीकी प्रेम-दशाएँ प्रकट होती जाती हैं; यथा—

जबिं रामु किं केंहें उसासा । उमगत पेमु मनहुँ चहु पासा ॥ द्रविं वचन सुनि कुिंकस पषाना । पुरजन पेमु न जाइ बखाना ॥ (रा० च० मानस अयो० २२०)

'उमगत पेम '''''''' नदीकी उमंगसे तटस्य स्थल दूबते हैं, वैसे श्रीभरतजीके 'राम' पद्मेमसे उच्चरित होनेसे पासके लोग भी प्रेम-मझ होकर 'राम, राम' कहने लगते हैं। 'द्रवर्हि बचन सुनि ''''' — बज्र और पत्थरके समान

हृदयत्राले वनवासी भी पिघल जाते हैं, तब अवधके पुरक्ती का प्रेम कैसे कहा जा सकता है !

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु। किवाहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम् मितन जनेषु॥ (रा० च० मानस अयो० २२५)

उस समय श्रीभरतजीका जैसा प्रेम हुआ, हो रोपजी भी वैसा नहीं कह सकते और कविको तो वह कपत ऐसा अगम है, जैसे 'भैं, मोर' इस अविद्यात्मक भावके मिलन हृदयवाले मनुष्योंमें ब्रह्मसुखकी प्राप्ति अगम है।

(९) वहाँ श्रीजानकीजीने स्वप्न देखा, तत्पश्चात् हैं श्रीभरतजीके ससैन्य आनेकी सूचना मिली । श्रीरामकी श्रीभरत-महिमाका वर्णन करनेके लिये प्रेरणा करके मार्थ श्रीलक्ष्मणजीके क्रोधावेदाके कथनद्वारा पूर्व-पक्ष कर्रा श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीके नित्य-परिकर हैं। अतः हैं। अतः लीलाके अनुरोधसे श्रीसीताजीके प्रतिबिम्ब खिनेका मर्म वर्षे लीलाके अनुरोधसे श्रीसीताजीके प्रतिबिम्ब खिनेका मर्म वर्षे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भाग ३६ ---

ढ़ाउँ। गाउँ॥

न। न ॥ न ।

न॥ न। ान ॥

ान॥ न।

न ॥

ा सेषु । जनेषु ॥

मा, उते रह कथन

धात् ही

कराया । जैते

में उन्हें

ान।

श्रीराधाकी

पूरजर्नी

, 224)

न भावक

है। रामजीवे के सानो

वहीं जनाया, वैसे यहाँ प्रथम श्रीभरत-प्रेमका रहस्य नहीं बनाया ।] और फिर उस आधारपर कहने लगे—

_{सनह} रूखन भरू भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

भरतिह होइ न राजमदु विधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरिन छीरसिंधु विनसाइ॥ २३९॥ विमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेवहिं मिलई॥ गापद जल बूड़िहं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़े छोनी॥ मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतिह भाई॥ ह्मन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥ सगुनु खीरु अवगुन जुकु ताता। मिलइ रचइ परपंचु विधाता॥ भतु हंस रविवंस तङ़ागा। जनिम कीन्ह गुन दोष विभागा॥ हि गुन पय तजि अवगुन वारी । निज जस जगत कीन्हि उजिआरी ॥ ब्ह्र भरत गुन सीकु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ॥ (रा० च० मानस अयो०)

महँ ः कबहुँ कि काँजी ः ः प्रपंच

श्रीलक्ष्मणजीने कहा था-

मतिह दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ॥ उसका निराकरण करते हुए कहते हैं कि चाहे जगत्-भक्ती उत्पत्ति, पालन और संहारके कुल अधिकार अकेले ^{श्रीभरतजी}को ही मिल जायँ, तव भी इनमें राज्यमद नहीं हो कता, जैसे काँजीकी छोटी बूँदसे क्षीरसमुद्र नहीं फट सकता। ^{श्रीभरतजीका} हृदय क्षीरसमुद्रके समान अगाध और शुद्ध णिक (दूधके समान) कहा गया है । क्षीरसागरमें श्रीलक्ष्मीनारायण रहते हैं, वैसे भरत हृदय सियराम निवासू। है धीरसमुद्रके मथनेसे अमृत प्रकट हुआ है, वैसे यहाँ प्रम अमिअ मंदर बिरह। यह कहा गया है। सागर म्यादामें रहता है, वैसे इनका धर्म मर्यादामें ही रहता है— ^{हा} भावसे श्रीलक्ष्मणजीके वचन—'चले घरम मरजाद मिटाई' सिका निराकरण हुआ 'कबहुँ कि काँजी' 'मसक फूँक' ' १– वाँ भीरसिंधु', 'तरुन तरनि', 'गगन', 'घटजोनी', धीनीं और भेरं —ये छहों क्रमशः श्रीभरतजीकी उपमाएँ हैं। कांबी सीकरनि', 'तिमिर', 'मेघ', 'गोपद जल', 'उद्देग' भीर भासक फूँक' ये छहों राज्यमदकी हैं; क्योंकि श्रीलक्ष्मण-भी श्रीभरतजीमें राज्यमदके लिये छः ही उपमाएँ दी थीं— कि, नहुष, वेन, सहसबाहु, इन्द्र और त्रिशंकु । मद-पहिल्य-कथनका उपक्रम— भरतिह होइ न राजमदुं से हुआ

है और यहाँ व्होइ न नुषमद भरतिह भाई 1' इसपर उपसंहार किया गया है।

यहाँ 'तरुन तरनि' में अग्नि-तत्त्व, 'छोनी' में पृथिवी, रोष भागनः, भोपद जलः और भूँकः (श्वास-पवन) में तीन तत्त्व स्पष्ट हैं। ये पाँचों तत्त्व सृष्टिके मूल हैं। ये यदि मर्यादा छोड़ दें तो सृष्टि ही न रह जाय। ये पाँचों चाहे अपनी-अपनी मर्यादा छोड़ दें, पर श्रीभरतजी धर्म-मर्यादा नहीं छोड़ सकते।

श्रीलक्ष्मणजीने कहा था—'जग बौराइ राज पद पाएँ।' उस वचनको रखते हुए भी श्रीरामजीने भरतजीको ·बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।' कहकर इन्हें विधि-प्रपञ्चसे भिन्न अप्राकृत सिद्ध किया ।

तुम्हार सपथ'''सुचि सुबंधु'''''—यहाँ लक्ष्मणजीके वचन—'कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी।…' इसका खण्डन रापथपूर्वक किया है।

आगे श्रीभरतजीके लोकोत्तर विवेककी प्रशंसा करते हैं— ·सगुनु सीरु अवगुन जल ··· '—यहाँ 'सगुन' यह पद 'सुगुन'के अर्थमें है। और 'मिलइ' पदका अर्थ 'मिला हुआ ही' यह है; यथा---

कहर्हि बेद इतिहास पुराना । बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना ॥

जड़ चेतन गुन दोष मय " संत हंस गुन गहिहं पय । ॥ (रा० च० मानस वाल० ६)

विधाताकी सृष्टिमें गुण (सत्) और अवगुण (असत्) मिले ही रहते हैं, पर सूर्यवंशरूपी तालावमें जन्म लेकर श्रीभरतरूपी इंसने उन गुणों और दोषोंका पृथक्करण कर दिया । सद्गुणोंका ग्रहण कर असद्गुणोंका त्याग करके जगत्के समक्ष विवेकका खरूप प्रकट कर दिया । अपने इस विवेकपरक यशसे जगत्में प्रकाश फैला दिया। दूध और जल मिले हुएमेंसे इंस दूधमात्र पी लेता है, जल त्याग देता है; वैसे ही श्रीभरतजी-के आचरणमें आये हुए सभी चरित सदुण हैं और त्यागे हुए असद्गण हैं।

सदुणरूपमें श्रीभरतजीने श्रीरामचरणस्नेह ही प्रहण कर रक्खा है---

(क) मातु सचिव गुर पुर नर नारी। ॥ भरतिह कहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरित तनु आही॥ (रा० च० मानस अयो० १८४)

3

संत

गोपि

प्रिय

भित्त

और

हो र

है अ

लभ

रही है

खामी

गये ।

नये ता

क्षा

ही डर

हैं कि

भी नह

वही,

क्वा।

वेव पह

वीरसे

समझ :

भीरसे

यह जिल

वुलिसदा-

अ

(ख) सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु ॥ सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना तुम्ह तौ भरत मोर मत पहू । धरें देह जनु राम सनेहू ॥ (राम० च० मानस० अयो० २०७-२०८)

—श्रीभरद्वाजजी—
(ग) परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि कखि परत भरत मत एहू ॥
(रा० च० मानस अयो० २८९)

श्रीजनकजी—
यही श्रीभरतजीके लोकोत्तर परम विवेकका ताल्पर्य है
और यही सद्गुण है।

'प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ।'

श्रीरामजी श्रीभरतजीके गुण-शील और स्वभावका वर्णन करते हुए प्रेमसमुद्रमें निमन्न हो गये; क्योंकि श्रीभरतजी भी तो राम-प्रेमके समुद्र हैं—

भरत सुप्रेम पर्योधि (रामचरितमानस अयो० २१०)

गीता ४ । ११ के अनुसार श्रीरामजीका बर्ताव भक्त-भावानुसार होता ही है । श्रीरामजीके इस भरत-महिमा-कथनका वहींपर देवोंने अनुमोदन भी किया है—

जों न होत जग जनम भरत को। सकल घरम धुर घरनि घरत को।।
कवि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥
(१०) श्रीभरतजीने ग्लानि प्रकट करते हुए कहा था—

भोर अभाग उद्धि अवगाहू। भीनु समुझें निज अघ परिपाकू। (रामचरितमानस अयो० २६१)

इसपर श्रीरामजी कहते हैं-

तीनि काल तिमुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥ उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥ दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुरसाधुसभा नहिंसेई॥

मिटिहर्हि पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार । लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥ तीनों लोकों और तीनों कालोंमें सभी पुण्यश्लोक तुमसे नीचे हैं। नल आदि पुण्यश्लोक हैं; यथा—

'पुण्यक्लोकस्य धीमतः।' (महा० वन० ७६।१) श्रीकैकेयीजीपर् दोषारोपण तो लोकदृष्टिसे बहुतोंने किया है, किसी-किसीने श्रीभरतजीका सम्मत भी कह डाला है। उन सबके प्रायश्चित्तके लिये श्रीभरतजीके नामके महलका आशीर्वादात्मक वचन कहा है—

भिटिहिहें पाप प्रपंच सव ।

(११) रामचरितमानस अयो० २५३-२५७ की श्रीभरत और श्रीविद्याष्ठजीकी गोष्ठीमें जब गुरु विश्वष्ठजीकी कहा कि (प्रतिज्ञापूर्तिके लिये) तुम दोनों भाई वन जाओ, त्य श्रीसीतारामजी करे जा सकते हैं। उसपर श्रीभरतजी कृतकृत्व हो गये और इसकी सिद्धिके लिये बहुत भाँतिसे सहेतुक वचनोंसे निहोरा करने लगे। तय मुनि विद्यष्ठजी सभाके साथ विदेह हो गये। उन्हें उस समय श्रीभरतजीके श्रीराम-सोहकी महामहिमा अगाध जलराद्या समुद्रके समान देख पड़ी—भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मित ठाढ़ि तीर अवलासी। गा चह पार जतन हियँ हेरा। पावित नाव न बोहितु बेरा। और किरिह को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥

श्रीविशिष्ठजीकी बुद्धि श्रीभरत-महामहिमा-समुद्रके पार जानेमें अवला-सी रह गयी । उसे जहाज, नाव एवं वेड़के समान उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कोई साधन नहीं मिल रहे हैं । पुरुष हो तो कुछ तैरनेका भी पुरुषार्थ करे, पर यह तो अवला-सी खड़ी ही रह गयी है । तैरकर थोड़ी दूर वेड़ासे कुछ और दूर, नावसे उससे भी और दूर जा सकते हैं । हाँ, जहाज हो तो पार जानेकी आशा की जा सकती। पर यहाँ तो कुछ नहीं मिल रहे हैं; तात्पर्थ यह कि श्रीविशिष्ट जीकी मित श्रीभरत-महामहिमा-समुद्रमें तनिक भी प्रवेश नहीं कर सकती।

श्रीब्रह्माजीके मानस पुत्र ब्रह्मार्षे वशिष्ठजीकी यह दशाहै।

(१२) अब रुद्रावतार और श्रीरामजीके तित्य-पिका श्रीहनुमान्जीकी ओर भी देखिये। गीतावली लंका ०,पद ८-१४ में यह चिरत है। मेधनादकी अमोध शक्तिसे श्रीलक्ष्मणजीके मूर्च्छित होनेपर श्रीहनुमान्जी श्रीरामजीकी आज्ञासे ओषि लाने गये। ओषिका पहाड़ ही लेकर आते समय वे श्री-अवधके पास आनेपर श्रीभरतजीके बिना फरके बाणसे मूर्छित छुए। तब श्रीभरतजीकी ही भिक्त-परक प्रतिज्ञापर बैतय हो गये।

्हाँपर वे श्रीभरतजीकी महामहिमा देखकर आश्चर्य चिकत हुए; यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ग ३६

ला है।

हरवका

७ की

ने कहा

रो, तब

तक्त्य

सहेत्क

ते साथ

स्नेहकी

त सी॥

वेरा॥

माई॥

के पार

वेड़ाके

ों मिल

रे, पर

ो दूर

सकते

कतीः

शिष्ठ-

ा नहीं

1

रिकर

-88

ाजीके

विधि

श्री-

हिंत

तत्य

ध्रर्य-

देखि बंधु सनेह, अंब सुमाउ, रुखन कुठाय।
तपत तुरुसी तरीन द्रासक, येहि नये तिहुँ ताय ॥१४॥१
श्रीतुल्लसीदासजी कहते हैं कि श्रीहनुमान्जीने भाई
श्रीमरतजी एवं श्रीशत्रुझजीके श्रीराम-स्नेह देखे, श्रीकौसल्या
और श्रीसुमित्रा माताके स्वभाव देखे और फिर श्रीलक्ष्मणजीके कुठाँव (मर्माहत) पर भी चित्त ले गये। तव सूर्यको
भी भय देनेवाले श्रीहनुमान्जी इन नवीन तीनों तापोंसे
संतम होने लगे।

जैसे श्रीकृष्ण भगवान्ने श्रीउद्भवजीको व्रज भेजकर गोषियोंसे प्रेम-भक्तिकी शिक्षा दिलवायी है, वैसे ही श्रीरामजीने ष्रियमक्त श्रीहनुमान्जीको प्रेरणा कर श्रीभरत आदिसे प्रेम-भित्तकी शिक्षा दिलवायी है। श्रीहनुमान्जी इन सबके ब्रेम और खभावके समक्ष अपनेको अत्यन्त अल्प मानकर संतप्त हो रहे हैं कि 'हाय ! मुझमें तो अभीतक कुछ भी प्रेम नहीं है और न ऐसा सरस स्वभाव ही प्राप्त है। अतः यह अलभ्य बाभ छोड़ा नहीं जाता, पर करूँ क्या ? परिस्थिति विवश कर ही है कि वहाँ श्रीलक्ष्मणजीकी मर्माहत दशा है और उससे बामी रो रहे हैं। दैहिक आदि तीनों ताप तो पुराने हो ग्ये। अतः लोगोंको उनका सहना अभ्यस्त है, पर ये तीनों ^{त्येताप} हैं—बंधु मनेह,अंव सुभाउ, लखन कुठाय। अतः अस**ह्य** है। सूर्यका ग्रहण करनेमें ये संतप्त नहीं हुए, प्रत्युत सूर्य हैं डर गये थे, पर इन नये तीनों तापोंपर ये संतप्त हो रहे है कि इन श्रीभरत आदिकी अपेक्षा मुझमें प्रेम अल्पांशमें भी नहीं है।

फिर श्रीहनुमान्जीने परिस्थिति कह देरी होनेकी शंका की, इसपर श्रीभरतजीने अपने तीरपर ही इन्हें भेजनेको का । तब श्रीहनुमान्के हृदयमें गूढ़ गर्व उत्पन्न हुआ, पर का पहाइसमेत इन्हें श्रीभरतजीने तीरपर चढ़ा लिया, तब कीसे उत्तरकर इन्होंने उनका यश कहना चाहा, पर अपार कम्म मौन रह गये—

पीरिसे उतिरे जस कह्यों चहें गुन गनिन जयों हैं। भरत ! घन्य भरत ! करत भयों मगनः मौन रह्योः मन अनुराग रयों हैं॥

कि जलिनिधि खन्योः मध्योः लँध्योः बाँध्योः अचयो है । किसिदास रघुनीर बंधु महिमा को सिंधु तिर को किव पार गयो है ॥'

श्रीभरतजीके बाणपरसे उतरकर श्रीहनुमान्जीने

श्रीभरतजी (की भिक्तमिहिमा) का यहा कहना चाहा, पर श्रीभरतजीके गुणोंने इनको जीत लिया (ये यहा नहीं कह पाये)। श्रीहनुमान्जी 'धन्य भरत! धन्य भरत!' ऐसा बखान करते हुए प्रेममें निमग्न हो गये, मौन रह गये, इनका मन अनुरागमें रॅग गया। श्रीतुल्सीदासजी कहते हैं कि इस प्राकृत समुद्रको तो (राजा प्रियन्नतने एवं सगरके पुत्रोंने) खोदा है, (दैत्यों और देवोंने) मथा है, (श्री-हनुमान्जीने) लाँचा है, (श्रीरामकृपासे नल-नील आदिने) बाँघा है और (श्रीअगस्त्यजीने) पी लिया है; परंतु रघुकुलके बीर श्रीरामजीके भाई श्रीभरतजीकी महिमाके समुद्रको तरकर कौन किव पार पाया है ? (अर्थात् कोई नहीं)।

'यह जलिनिधि खन्यो''''' श्रीमद्भा॰ ५।१।३१ में लिखा है कि राजा प्रियन्नतने अपने न्योतिर्मय रथपर चढ़कर सूर्यके साथ पृथिवीकी सात परिक्रमाएँ की हैं। रथके पहियोंसे खोदकर जो सात लीकें वन गर्यी, वे ही सात समुद्र हुए और उनके वीच-वीचकी भूमिके सातों द्वीप हुए। उनमेंसे एक सागरको सगरके पुत्रोंने खोदकर बढ़ाया भी है।

खोदे जानेपर, मथे जानेपर, लाँचे जानेपर, बाँचे जानेपर और पिये जानेपर प्राकृत सागरकी मर्यादा सीमित ही सिद्ध है, परिमित ही है, उसमें अपरिमित भाव कहाँ ? इन पाँच प्रकारोंसे जिस सीमित सागरकी इतनी दुर्दशाएँ हो चुकी हैं; उसे श्रीरघुवीरके बन्धु श्रीमरतजीकी अपरिमित महिमा समुद्रके समान कैसे कहा जा सकता है ? जिसका आजतक किसी कविने पार नहीं पाया । यथा—

'अगम सनेह भरत रघुवरको। जहँ न जाइ मन विधि हिर हर को ॥'
(रामचिरतमानस अयो० २४१)

भाहिमा तासु कहइ किमि तुरुसी । 'से— भारत सुभाउ न सुगम निगमहू । ' तक

(रामचरितमानस अयो० ३०३)

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं वस्नानी।।'
(रामचरितमानस अयो० २८९)

ऊपर (११), (१२) में समिष्ट महासागरको श्रीभरत-महामिहमासे उपिमत कर इसे अत्यन्त श्रेष्ठ और अपिरिमित कहा गया । ऊपर उस सागरके सात व्यष्टिभेद भी कहे गये । उन सातोंकी अपार मिहमासे श्रीभरत भिक्तकी महामिहमाके व्यष्टि सात-सात गुणोंसे भी उपिमत कर इनकी अपिरिमित मिहमा आगेके तीन प्रसङ्गोंसे दिखायी जाती है—

कवि

मस्त

वरनत

निर्मल

कवि

गम्य

编

समान

श्रीजन

समुद्रव

मधान

(१३)

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥ कहत सारदहु कर मित हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥ (रा० च० मानस अयो० २८३)

यहाँ श्रीकौसल्याजीने श्रीराम-शपथ करके कहा है कि श्रीभरतजीका शीलः गुण, विनम्न स्वभावः वड़ाई (की महिमा) भाईपना, भक्ति, भरोसा और भलापन, (इन सातोंको) कहते हुए श्रीसरस्वतीजीकी भी बुद्धि हिचकिचाती है (अशक्त हो जाती है), क्या (कभी) सीपसे सागर उलीचे जा सकते हैं ? अर्थात् सीपीसे सागर उलीचे जानेकी भाँति शारदासे कहा जाना असम्भव है।

सागर प्रधान सात हैं और वे अगाध हैं, वैसे ही यहाँ-पर कहे हुए श्रीभरतजीके सातों गुण भी परम गम्भीर समुद्रवत् हैं और अनन्त भावके हैं। जब शारदासे इनका कहा जाना असम्भव है, तब कोई और कवि क्या कहेगा ? अतः मैं (कौसल्या) भी छोड़े देती हूँ । शारदा सबकी वाणीपर रहती हैं। अतः यहाँपर इसके साथ सभी वक्ता असमर्थतामें आ गये।

(१४) श्रीजनकजीने रानी सुनयनाजीसे कहा है-

सावधान सुनु सुमुखि सुकोचिन। भरत कथा भवबंध विमोचिन।। धरम राजनय ब्रह्मविचारू। इहाँ जथामित मोर प्रचारू॥ सो मित मोरि भरत महिमाही। कहै काह छिक छुअति न छाँही।। बिधि गनपति अहिपति सिव सारद । किव कोविद बुध बुद्धि विसारद ॥ भरत चरित कीरित करतूती। धरम सील गुन बिमल बिमूती॥ समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसिर रुचि निदर सुधाहू॥

निरविध गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि । कहिअ सुमेरु कि सेर सम किब्कुल मित सकुचानि ॥२८८॥ अगम सबिह बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गुमु धरनी॥ भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥ (रा० च० मानस अयो०)

हे सुमुखी ! हे सुलोचनी ! सावधान होकर सुनो, श्रीभरतजीकी कथा भववन्धनरूपी आवागमन छुड़ानेवाली है। धर्मनीति, राजनीति और वेदान्तशास्त्रमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरी प्रवृत्ति हैं; अर्थात् इन तीनोंमें मैं बहुत कुछ कह-सुन सकता हूँ। वहीं मेरी बुद्धि श्रीभरतजीकी महिमा कहेगी तोक्या ? वह तो छल-बल करके भी उस महिमाकी छाया-तकको नहीं छूपाती। ब्रह्मा, गणेश, शेष, शिव, शारदा,

कवि, कोविद, पण्डित (एवं और भी) जो बुद्धिमं प्रवीण हैं। (इन नवोंको) श्रीभरतजीके चरित, कीर्ति, करणी, धर्म-शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य (ये सातों) सब किजीको समझने और सुननेमें सुख देनेवाले हैं। उनके गुणोंकी सीमा नहीं है, वे उपमारहित पुरुष हैं। श्रीभरतजीको श्रीभरतजीके ही समान जानो, क्या सुमेरु पहाड़को सेरं (पत्थरका छोदा बटखरा)के समान कहा जा सकता है ? (अतः) कियाणीं श्री बुद्धि सकुचा गयी । हे परमसुन्दरी ! सभीके लिये (श्रीभतः जीके चरित आदि सातोंका) वर्णन करना वैसे ही आग है। जैसे जलरहित स्मिपर मछलीका चलना। हे रानी! हुनो श्रीभरतजीकी अपरिमित महिमाको श्रीरामजी जानते हैं, पर वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

·घरम राजनय ··· · · - इन तीनों शास्त्रोंके आनार्व श्रीजनकजीकी मित भी श्रीभरत-महिमाकी छायातकका सर्व नहीं कर पाती । श्रीजनकजी श्रीभरत-महिमाको अपनी बुद्धि-तक ही सीमित नहीं रखते; और-और बड़े-बड़े वक्ताओं को भी आगे गिनाते हैं-

·बिधि गनपति · · · '—इनमें ब्रह्माजी वेदवक्ताः सन की बुद्धिके देवता और सभीकी ग्रुभाग्रुभ गतिके जाता है। रिावजी सर्वज्ञ, ईश्वर तथा व्याकरणप्रवर्त्तक हैं, ऐसे ही रोष गणेश और शारदा, कवि (शुक्राचार्य आदि), कोविर (बृहस्पति आदि) एवं और-और पण्डित तथा बुद्धिमात् जो-जो परम श्रेष्ठ वक्ता हैं, इनमें नौ वक्ताओंका वर्णन किया गया है । नौ अङ्कोंकी सीमा है । इससे इसमें संसारके सभी वक्ताओंको भी ले लिया गया है।

भरत चरित कीरति

—यहाँ भी सात गुण कहे गये । अतः इन्हें ^{क्पर} कौसल्याजीके प्रसंगकी भाँति सातों समुद्रोंके समान जनाया गया है कि श्रीभरतजी इन चरित आदि प्रत्येकके आप समुद्र हैं।

'समुझत सुनत सुखद

—समझनेपर प्रतीति होती है, तब प्रीतिपूर्वक सुनी जाता है और फिर उससे मुख प्राप्त होता है। फिर गङ्गाजीक समान पवित्र इस चरितसे हृदय गुद्ध होता है। हृदय गुद्ध होनेपरं अधिक श्रद्धापूर्वक सुनते हुए यह अमृतवत् वाहिए लगता है; यथा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(सियराम प्रेम पियृष पूरन होत जनमु न भरत को ।'

(रा० च० मानस अयो० ३२६)

(राम भगत अन अमिअँ अवाह्ँ।'

(रा० च० मानस अयो० २०९)

·निरवधि गुन निरुपम पुरुषु· · · · · ·

उपर्युक्त सातों गुणोंकी अगाय सागररूपताको यहाँ सह किया गया है कि भरतजीके प्रत्येक गुण निस्सीम हैं। पुनः कियम पुरुष'को भी साथ ही भरत भरत सम' कहकर सह किया है।

अगम सबिह बरनत'—श्रीभरत-मिहमा सभीके लिये यों अवर्ण्य है, जैसे मछली सूखी भूमिपर नहीं चल सकती; क्योंकि कविलोग विषय (वारि) सम्बन्धी गुणोंको ही वैषियक उपमाओंके द्वारा कह पाते हैं। श्रीभरतजीके दिच्य गुण विषय-से नीरस हैं; इससे कवियोंके द्वारा अवर्ण्य हैं।

तथा—
किविकुत अगम भरत गुन गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
(उपर्युक्त) पर सर्वज्ञ श्रीरामजी श्रीभरतजीकी अमित
महिमाको अमित जानते हुए परिमित शब्दोंमें कहकर उसे
सीमित करनेकी व्यर्थ चेष्टा क्यों करें ?

(१५) श्रीगोस्वामीजीने स्वयं भी कहा है—

मत रहिन समुझिन करतृती । भगति बिरित गुन विमरु विभूती ॥

बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥

(रामचरितमानस अयो० ३२५)

श्रीभरतजीकी रहिन, समझिन, करतूत, भिक्त, वैराग्य, निर्मल गुण और निर्मल विभूतिका वर्णन करनेमें समस्त उत्तम कि सकुचाते हैं। होपजी, गणेशजी और सरस्वतीजीको भी गम्य नहीं है (तब दूसरे कैसे कहें ?)। ऊपर (१३ में) श्रीकोसत्याजीने शीलसे प्रारम्भकर सात गुणोंको सप्त समुद्रोंके समन अगाध एवं अवर्ण्य कहा, वैसे ही (१४ में) श्रीजनकजीने भी चरितकी प्रधानतामें सात ही गुणोंको सप्त समुद्रावत कहा। उसी प्रकार यहाँ श्रीगोस्वामीजी 'रहिन' की श्रीनतामें सात ही गुण कहते हैं, रहिनका वर्णन इससे ऊपर

'राम मातु गुरु पद सिर नाई ।' से प्रारम्भ कर काण्डके अन्त-तक तीन दोहोंमें हैं; क्योंकि श्रीगोस्वामीजी श्रीभरतजीकी रहनि-पर ही मुग्ध हैं—

भोहिं भावति कहि आवत नहिं भरत जूकी रहनि। '' (गीतावली, अयो० ८१)

—यह पूरा पद देखने योग्य है।

इन्होंने भी सात ही गुण कहकर इन्हें सप्त समुद्रवत् ही माना है और उपर्युक्त जनक-प्रसंगमें कहे हुए नवों कवियोंको ही यहाँ 'सकल सुकवि' से कहकर इन सातोंको सभी कवियोंसे अवर्ण्य कहा है।

(१६) श्रीभरतचरित-वर्णनके अन्तमें श्रीगोस्वामीजी श्रीभरतजीकी आदर्श भक्तिसे सभीको लाभ उठानेका संकेत करते हैं—

परम पुनीत भरत आचरन । मधुर मंजु मुद मगल करन ॥ हरन कठिन किल कलुष कलेसू । महा मोह निसि दलन दिनेसू ॥ पाप पुंज कुंजर मृगराज । समन सकल संताप समाजू ॥ जन रंजन मंजन भव भारू । राम सनेह सुधाकर सारू ॥

छं०-सियराम प्रेम पियृष पूरन होत जनमु न मरत को । मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को ॥ दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को । किकाल तुलसी से सठिन्ह हिठ राम सनमुख करत को ॥

सोगराम पद पेमु अविस होइ मव रस विरित ॥३२६॥ श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामकैङ्कर्य-निष्ठासे नवधा मिक्तिका आदर्श स्थापित किया है । श्रीशत्रुष्टनजीने परम विवेकी प्रत्यगात्मस्वरूप श्रीभरतजीकी सेवामें रह उनसे श्रीरामगुण श्रवण-मनन करते हुए प्रेम-लक्षण भिक्तपुरस्तर भागवत-निष्ठा दिखायी है और भरतजीने सबसे ऊँची पराभिक्तका आदर्श रक्खा है। उसीके लक्षण कुछ ऊपर (५) त्रिवेणी तटपर प्रकट हुए हैं । यहाँ उनके आचरणोंका वर्णन कर उनका आचार्यत्व कहते हैं—

'परम पुनीत भरत आचरन् ।''''' स्वार्थरूपी अपावनतासे रहित परमार्थमय और परम पवित्र आचरण हैं, वे सुननेमें मधुर, उन्न्वल और मुद्र-मङ्गलकारक हैं । आगे क्रमशः लाभदायक गुणोंसे 'दुख दाह दारिद''' आदितकमें कहे हुए दूषणोंका इससे हरण होना कहा गया है।

11 3E

नं प्रवीण करणी, किसीको

ने सीमा नरतजीके

ग छोटा वेगणांकी श्रीभरतः

नगम है, ! सुनो, हैं, पर

आचार्व का स्पर्ध

ो बुद्धि-ताओंको

ा, सब-ता है।

ते शेषः कोविद द्विमान्

किया सभी

ऊपर जनाया

अगार्ध

मुना जीके

गुर

स्द

औ

शा

शिर

लोग

स्पष्ट

विस्ता

नगत्

बह्मणं

नगत्

ज्ञाहम्

अविशा

申节

है। य

南部

'कलिकाल तुलसीसे सठिन्ह हिटेः'—श्रीभरतजीने जहाँ-तहाँ श्रीरामस्वभाव-सौष्ठवका वर्णन किया है—

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥ कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥ तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए॥ देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी । मुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ॥ (रामचरितमानस अयो० २९९)

यह सुन-समझकर भारी-भारी शठ भी श्रीरामशरण हो कृतार्थ होते हैं। कल्यियुगमें शरणागति ही उपाय रह गयी है। वह महाविश्वासपूर्वक ही होती है। श्रीभरतजीके इन आचरणोंसे विश्वास होनेपर वह हिर-शरणागित होती है। इसीसे श्रीतुलसीदासजी शरण होकर श्रीराम-सम्मुख हो कृतार्थ हुए। यह वर्तमानकालका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अतः सभीको इससे लाभ उठाना चाहिये। इसकी प्रक्रिया अन्तके वाक्यसे कहते हैं—

भरत चरित करि नेम '''' — साधन एकमात्र यही है कि नियमसे और आदरपूर्वक श्रीभरत-चरित सुने । मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनना, आदरपूर्वक सुनना है। त्य श्रीसीतारामजीके चरणोंमें भेम अवश्य होगा और संसारके विषयरसोंसे वैराग्य भी अवश्य ही होगा । 'अवसि होइ' यह 'दीपदेहली' है । अतः दोनों वाक्योंके साथ है ।

सभी युगोंमें एवं विशेषकर इस कलिकालमें, यही सर्वश्रेष्ठ कल्याणका उपाय है। अतः इससे सभीको लाभ उठाना चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें आगम-तत्त्व

(लेखक—डॉक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी०लिट्०)

(8

कविवर तुलसीदासजीने वालकाण्डके मङ्गलाचरणमें लिखा है कि जिस राम-कथाको वे अपने अन्तःकरणकी सुख-प्राप्तिके लिये भाषात्रद्ध कर रहे थे वह—

'नानापुराणनिगमागमसम्मतम्'

—थी। पुराणोंकी कथाएँ मानसके अन्तर्गत पायी जाती हैं। निगमके वाक्य मानसमें भरे पड़े हैं और निगमके आधारस्वरूप—

एक अनीह अरूप अनामा । अज सिचदानंद पर धामा ॥ ब्यापक विस्वरूप मगवाना—

—की कीर्ति-कथा ही मानसकी कथा है। जिस राम-नामसे गुंजायमान होकर श्रीरामचिरतमानस सुमधुर वन गया और जन-मन-प्रिय हुआ, जो राम-नाम भक्तोंके लिये श्रवणामृत है, उस राम-नामको कविवर तुलसीदासजीने—

·बिधि हरि हर मय वेद प्रान सो?

कहकर सम्वोधित किया । और आगे वे कहते हैं-

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥

इस प्रकार निगम अर्थात् वेदमें जो विषय प्रतिपादित है वही विषय श्रीरामचरितमानसका है। जो वेदका प्राण है वही श्रीरामचरितमानसका प्राण है।

यहाँतक तो स्पष्ट है। अब प्रश्न यह उठता है कि 'नानापुराणिनगमागमसम्मतं' में 'आगमसम्मत' वे कीत-सी बातें हैं जिनको कविवर तुलसीदासजीने मानसमें स्थान दिया।

यह जाननेके लिये संक्षेपमें आगमतत्त्वका निरूपण आवश्यक है।

आगमको मन्त्र-शास्त्र, तन्त्र-शास्त्र और शिक्तमार्कि नामोंसे लोग जानते हैं। आगममें मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र तथा न्यासकी विशेषताएँ हैं। मन्त्रोमें मन्त्र-वीजकी विशेषता है। प्रत्येक देवी तथा देवताके मन्त्रका एक मन्त्र-वीज होता है। विना बीजके मन्त्र निर्जीय समझा जाता है, निष्प्राण होता है। यन्त्रमें रेखाओं और विन्दुओंद्वारा अव्यक्तको व्यक्त कर्तका प्रयास होता है। यन्त्रमें निर्गुणके निर्गुणत्व तथा निराक्ति निराकारत्वकी रक्षा करते हुए, सृष्टिकी उत्पत्ति, श्विति

* श्रीभरत-भक्ति-निष्ठाके उद्भूत प्रसंगोंके भावोंके दिग्दर्शनमात्र इस लेखमें कराये गये हैं। विस्तारभयसे भावोंके प्रमाण आदि तही लिखे गये। पाठक, इन प्रसंगोंकी टीकाओंमें देखें। ाग ३६

100

व हो

। अतः

अन्तके

ही है

मन,

। तव

सारके

, यह

सर्वश्रेष्ठ

हेये।*

गावा॥

पादित

गण है

के कि

ान-सी

या।

रूपण

गार्कि

तथा

雪

है।

हि।

(नेका

नारके

ध्रति

तही

रेड्क

और प्रलयका क्रम समझने तथा परात्पर सत्यकी कल्पना क्रानमं सुखद, वैज्ञानिक और संतोषप्रद सहायता मिल्रती है। तन्त्रसे लोग भूतः पिशाचः, श्मशानः मारणः, मोहनः, उद्याटनादिका केवलमात्र सम्बन्ध समझते हैं। यह भूल है। तन्त्रका तत्त्वज्ञान आजकलके कारणवादी और विज्ञान-प्रधान बुद्धिमानों (Rational and scientific intellectuals) के लिये जैसे सुगम और सूक्ष्माति-मध्म ढंगसे परम सत्यके दर्शन करा सकता है, सम्भवतः और कोई तत्त्वज्ञान नहीं करा सकता। इसीलिये आगम-गास्त्रको कलियुगके लिये विशेष प्रकारसे उपयुक्त कहा गया है। तन्त्र पञ्च-देवताओंके अलग-अलग हैं। शिव-तन्त्र, इक्ति-तन्त्र, गणेश-तन्त्र इत्यादि यद्यपि तन्त्रको अधिकतर होग शक्ति-तन्त्रके अर्थमें लेते हैं।

शक्ति-तन्त्रका मूल सिद्धान्त श्रीदुर्गासप्तशतीके इस मन्त्रसे सष्ट हो जायगा-

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

(2014)

भें अकेली हूँ, इस संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन है ?' श्रीदेव्यथर्वशीर्षके निम्नलिखित मन्त्र इसको कुछ विसारसे इस प्रकार समझाते हैं---

साबवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जात्। श्रून्यं चाश्रून्यं च॥

अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्मा-^{ग्ह्मणी} वेदितन्ये । अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि । अहमखिलं

वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् । अजाहमन-^{अहम् । अधश्चोध्वै च तिर्यक् चाहम् ॥}

(२, ३, ४)

वह वोलीं—मैं ब्रह्मस्वरूपा हूँ । मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक ^{बहूव} और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है ।

मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ । मैं विज्ञान और ^{अविज्ञानरूपा} हूँ। अवस्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी में ही हूँ । पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत महाभूत भी मैं ही है। यह सारा दृश्य जगत् मैं ही हूँ। वेद और अवेद मैं ही हैं। विद्या और अविद्या भी मैं हूँ। अजा और अनजा भी में हूँ । नीचे-ऊपर, तिरछे, इधर-उधर भी मैं ही हूँ ।

इस भावको श्रीदुर्गासप्तरातीके ये मन्त्र और भी स्पष्ट करते हैं-

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्वितसुन्दरी। परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ किंचित्कचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्त्यसे तदा ॥

तुम सौम्य और सौम्यतर हो । इतना ही नहीं जितने भी सौम्य तथा मुन्दर पदार्थ हैं उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो । पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम ही हो। कहीं भी सत्-असत्रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं उन सबकी शक्ति तुम ही हो, अतएव तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है!

यही एका, अद्वितीया, आद्या इस प्रकारसे स्तुत्य है। त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा। त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सुज्यते जगत्॥ त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।

हे देवि ! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो । देवि ! तुम्हीं इस विश्वको घारण करती हो, तुम्हीं इस जगत्की सृष्टि करती हो, तुम्हीं इसका पालन करती हो और सदा तुम्हीं इसका अन्त करती हो।

'जननी परा' होनेके नाते देवताओंने इनकी स्तुति करते हुए कहा-

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद् मातर्जगतोऽखिलस्य । विइवेइवरि प्रसीद पाहि विइवं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥

हे शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवी ! हमारे ऊपर प्रसन्न हो । हे सम्पूर्ण जगत्की माता ! तुम हमपर प्रसन्न हो । हे विश्वेश्वरी ! तुम विश्वकी रक्षा करो । हे देवी ! तुम्हीं चराचर जगत्की ईश्वरी हो।

(?)

क्रिववर तुलसीदासजीने इस मुख्य आगम-तत्त्वको श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसंगोंमें स्थान-दिया है। जब स्वायम्भुव मनु और शतरूपाने तप किया और आकाशवाणी हुई कि वे वर माँगें तो उनकी प्रार्थनापर-

भगत बळ्ल प्रभु कृपानिधाना । बिस्वबास प्रगटे मगवाना ॥

HE.

औ

शार

शिर

होग

सप्ट

विस्ता

जगत्

बह्मर्ण

नगत्

नाहम्

अविशा

州許

मेर्ड | यह

节节

'कलिकाल तुलसीसे सठिन्ह हिटः श्रीभरतजीने जहाँ-तहाँ श्रीरामस्वभाव-सौष्ठवका वर्णन किया है—

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई।। कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥ तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनाम किहें अपनाए॥ देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ॥ (रामचिरतमानस अयो० २९९)

यह सुन-समझकर भारी-भारी शठ भी श्रीरामशरण हो कृतार्थ होते हैं। कल्यियुगमें शरणागित ही उपाय रह गयी है। वह महाविश्वासपूर्वक ही होती है। श्रीभरतजीके इन आचरणोंसे विश्वास होनेपर वह हिर-शरणागित होती है। इसीसे श्रीतुलसीदासजी शरण होकर श्रीराम-सम्मुख हो कृतार्थ हुए । यह वर्तमानकालका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अतः सभीको इससे लाभ उठाना चाहिये। इसकी प्रक्रिया अन्तके वाक्यसे कहते हैं—

भरत चिरत करि नेम '''' — साधन एकमात्र यही है कि नियमसे और आदरपूर्वक श्रीभरत-चिरत सुने । मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनना, आदरपूर्वक सुनना है। त्य श्रीसीतारामजीके चरणों में भेम अवस्य होगा और संसारके विषयरसोंसे वैराग्य भी अवस्य ही होगा । 'अवसि होइ' यह 'दीपदेहली' है । अतः दोनों वाक्योंके साथ है।

सभी युगोंमें एवं विशेषकर इस कलिकालमें, यही सर्वश्रेष्ठ कल्याणका उपाय है। अतः इससे सभीको लाभ उठाना चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें आगम-तत्त्व

(लेखक — डॉक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी०लिट०)

(8

कविवर तुलसीदासजीने वालकाण्डके मङ्गलाचरणमें लिखा है कि जिस राम-कथाको वे अपने अन्तःकरणकी सुख-प्राप्तिके लिये भाषावद्ध कर रहे थे वह—

'नानापुराणनिगमागमसम्मतम्'

—थी । पुराणोंकी कथाएँ मानसके अन्तर्गत पायी जाती हैं । निगमके वाक्य मानसमें भरे पड़े हैं और निगमके आधारस्ररूप—

एक अनीह अरूप अनामा । अज सिचदानंद पर धामा ॥ ब्यापक विस्वरूप भगवाना—

—की कीर्ति-कथा ही मानसकी कथा है। जिस राम-नामसे गुंजायमान होकर श्रीरामचरितमानस सुमधुर वन गया और जन-मन-प्रिय हुआ, जो राम-नाम भक्तोंके लिये श्रवणामृत है, उस राम-नामको कविवर तुलसीदासजीने—

·बिधि हरि हर मय वेद प्रान सो?

कहकर सम्बोधित किया । और आगे वे कहते हैं—

राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद गावा ॥ इस प्रकार निगम अर्थात् वेदमें जो विषय प्रतिपादित

है वही विषय श्रीरामचिरतमानसका है। जो वेदका प्राण है वही श्रीरामचिरतमानसका प्राण है।

यहाँतक तो स्पष्ट है। अब प्रश्न यह उठता है कि 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं' में 'आगमसम्मत' वे कीन-सी वातें हैं जिनको कविवर तुलसीदासजीने मानसमें स्थान दिया।

यह जाननेके लिये संक्षेपमें आगमतत्त्वका निरूपण आवश्यक है।

आगमको मन्त्र-शास्त्र, तन्त्र-शास्त्र और शिक्तमार्कि नामोंसे लोग जानते हैं। आगममें मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र तथा न्यासकी विशेषताएँ हैं। मन्त्रोंमें मन्त्र-वीजकी विशेषता है। प्रत्येक देवी तथा देवताके मन्त्रका एक मन्त्र-वीज होता है। विना बीजके मन्त्र निर्जीव समझा जाता है, निष्प्राण होता है। यन्त्रमें रेखाओं और विन्दुओं द्वारा अव्यक्तको व्यक्त करके प्रयास होता है। यन्त्रमें निर्जुणके निर्जुणक तथा निर्धार्कि निराकारत्वकी रक्षा करते हुए, सृष्टिकी उत्यित, स्विति

* श्रीभरत-मक्ति-निष्ठाके उद्धृत प्रसंगोंके भावोंके दिग्दर्शनमात्र इस लेखमें कराये गये हैं। विस्तारभयक्षे भावोंके प्रमाण आहि तहीं किखे गये। पाठक, इन प्रसंगोंकी टीकाओं में देखें।

ग ३६

1001

व हो

। अतः

अन्तक

ही है

मन,

ी तव

सारके

' यह

सर्वश्रेष्ठ

हेये।

गावा॥

पादित

गण है

के कि

ान-सी

या।

रूपण

गार्कि

तथा

1

割

हि।

तिका

नारके

ध्रति

नहीं

रेएक

और प्रलयका क्रम समझने तथा परात्पर सत्यकी कल्पना करतेमें मुखद, वैज्ञानिक और संतोषप्रद सहायता मिलती है। तन्त्रसे लोग भूतः, पिशाचः, श्मशानः, मारणः, मोहनः, उच्चाटनादिका केवलमात्र सम्बन्ध समझते हैं। यह भूल है। तन्त्रका तत्त्वज्ञान आजकलके कारणवादी और विज्ञान-प्रधान बुद्धिमानों (Rational and scientific intellectuals) के लिये जैसे सुगम और सूक्ष्माति-मध्म ढंगसे परम सत्यके दर्शन करा सकता है, सम्भवतः और कोई तत्त्वज्ञान नहीं करा सकता। इसीलिये आगम-गास्त्रको कलियुगके लिये विशेष प्रकारसे उपयुक्त कहा गया । तन्त्र पञ्च-देवताओंके अलग-अलग हैं । शिव-तन्त्र, शक्तितन्त्र, गणेश-तन्त्र इत्यादि यद्यपि तन्त्रको अधिकतर होग शक्ति-तन्त्रके अर्थमें लेते हैं।

शक्ति-तन्त्रका मूल सिद्धान्त श्रीदुर्गासप्तशतीके इस मन्त्रसे सष्ट हो जायगा-

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

(2014)

भें अकेली हूँ, इस संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन है ?? श्रीदेव्यथर्वशीर्षके निम्नलिखित मन्त्र इसको कुछ विसारसे इस प्रकार समझाते हैं-

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जात्। शून्यं चाशून्यं च॥

अहमानन्दानानन्दौ । अहं विज्ञानाविज्ञाने । अहं ब्रह्मा-^{म्ह्मणी} वेदितन्ये । अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि । अहमखिलं

वेदोऽहमवेदोऽहम् । विद्याहमविद्याहम् । अजाहमन-गहम्। अधश्रोध्वं च तिर्यक् चाहम्॥

(२, ३, ४)

वह बोर्ली—में ब्रह्मस्वरूपा हूँ । मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक ^{पहूप} और असद्र्प जगत् उत्पन्न हुआ है ।

मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ । अवस्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी में ही हूँ । पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत महाभूत भी मैं ही है। यह सारा हश्य जगत् मैं ही हूँ । वेद और अवेद मैं ही हैं। विद्या और अविद्या भी मैं हूँ। अजा और अनजा भी भैं हूँ । नीचे-ऊपर, तिरछे, इधर-उधर भी मैं ही हूँ ।

इस भावको श्रीदुर्गासप्तरातीके ये मन्त्र और भी स्पष्ट करते हैं-

सौम्या सीम्यतराशेषसीम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी । परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ किंचित्कचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्त्यसे तदा ॥

तुम सौम्य और सौम्यतर हो । इतना ही नहीं जितने भी सौम्य तथा सुन्दर पदार्थ हैं उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो । पर और अपर-सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम ही हो। कहीं भी सत्-असत्रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं उन सत्रकी शक्ति तुम ही हो, अतएव तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है!

यही एका, अद्भितीया, आद्या इस प्रकारसे स्तुत्य है। त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा । त्वयैतद्वार्यते विश्वं त्वयैतत्सुज्यते जगत्॥ त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।

हे देवि ! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो । देवि ! तुम्हीं इस विश्वको घारण करती हो, तुम्हीं इस जगत्की सृष्टि करती हो, तुम्हीं इसका पालन करती हो और सदा तुम्हीं इसका अन्त करती हो।

'जननी परा' होनेके नाते देवताओंने इनकी स्तुति करते हुए कहा---

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद् मातर्जगतोऽखिलस्य । प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विइवं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥

हे शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवी ! हमारे ऊपर प्रसन्न हो । हे सम्पूर्ण जगत्की माता ! तुम हमपर प्रसन्न हो। हे विश्वेश्वरी ! तुम विश्वकी रक्षा करो। हे देवी ! तुम्हीं चराचर जगत्की ईश्वरी हो।

(2)

कविवर तुलसीदासजीने इस मुख्य आगम-तत्त्वको श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसंगोंमें स्थान-दिया है। जब स्वायम्भुव मनु और शतरूपाने तप किया और आकाशवाणी हुई कि वे वर माँगें तो उनकी प्रार्थनापर-

भगत बळ्ल प्रमु कृपानिधाना । बिस्ववास प्रगटे मगवाना ॥

HE

मफा

इनके

देवी

धान

अनन

जीवन सिद्धाः

उदाहर

सुनहु

तुम्ह प

जवहिं

निज प्र

स्थानप

जीमें

लेकरः

जानी

हदयँ स्

पुर नर

सीय स

का शी

वाली म

है। तो

चली र

महारान

आया व

थीं, जो

ये! का

किया है

नीलमणि भक्तवत्सल प्रभुने अकेले दर्शन नहीं दिये। उनके साथ—

बाम भाग सोभित अनुकूका। आदिसिक्त छिबिनिधि जगमूका।। जासु अंस उपजिहें गुनखानी। अगनित किन्छ उमा ब्रह्मानी।। भृकुटि बिकास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।

कृपानिधान प्रभुने श्रीमुखसे तपस्वी दम्पतिको यह विश्वास दिलाया—

इच्छामय नर बेष सँवारे । होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥

आदिसकि जेहिं जग उपजाया । सोइ अवतरिहि मोरि यह माया ॥ इसके बाद जब पृथ्वीकी दयनीय दशा देखकर देवताओंने उसके कष्ट-हरणके लिये स्तुति की तब करुणानिधानने गगन-गिराद्वारा विश्वास दिया—

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परमसिक समेत अवतरिहउँ॥ इस प्रकार श्रीरामचरितमानसमें महारानी श्रीसीताजीका आदिशक्ति-रूप स्पष्ट है। इसी आशयसे बालकाण्डके

आदिशक्ति-रूप स्पष्ट है। इसी आशयसे बालकाण्ड मङ्गलाचरणमें कविवर तुलसीदासजी कहते हैं—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् । सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

अनन्त स्तेहमयी माँ दुर्गांके 'दुर्गितिनाशिनी' वाले गुणको किविवरने 'क्लेशहारिणीम्' कहकर महारानी श्रीसीताजीके अन्य गुणोंके साथ समावेश कर दिया । कारणरहित कृपाछ प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी पराशक्ति 'सर्वश्रेयस्करीं'के सिवा और हो ही क्या सकती हैं ! करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके परात्पर कारण होनेकी स्मृति मानसमें स्थान-स्थानपर किविवर दुलसीदासजी कराते हैं । जैसे—

पहिनिधि खोजत बिरुपत स्वामी । मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥ पूरन काम राम सुख रासी । मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥ अथवा—

तात राम कहुँ नर जिन मानहु । निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥ अथवा—

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला ॥ ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अजित अनादि अनंता ॥

इसी प्रकार महारानी श्रीसीताजीका जगदम्बाका रूप कविवरने हमारे सामने स्थान-स्थानपर उपस्थित किया है। जैसे— सिख हमारि सुनु परम पुनीता। जगदंबा जानहु जियँ सीता॥ अथवा—

सोह नव्क तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुक्ति छिब मारी॥ अथवा—

सुनु रघुवीर प्रिया बैदेही। तव प्रमाव जग विदित न केही। कोकप होहिं विकोकत तोरें। तोहि सेविहें सब सिधि कर जोरें। अथवा—

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा। अथवा—

सुनि दसकंघर बचन तब कुंमकरन बिरुखान। जगदंबा हिर आनि अब सठ चाहत कल्यान॥*

आगम-मतका एक सिद्धान्त यह है कि शक्ति सर्वोपरि है। विना शक्तिके शक्तिमान् नहींके बराबर है। प्रमा-विहीन भास्कर सूर्य नहीं हो सकता । विना चाँदनीके चन्द्रमा राकेश कैसा ? शक्ति-शून्य शिव शव हो जाते हैं। परंतु शक्तिमान्में शक्ति इस प्रकार निहित है, ऐसी अभिन्न अवस्थामें है कि शक्तिमानको देखकर भी शक्तिका ध्यान नहीं आता। भाषान् सूर्यको जब हम प्रणाम करते हैं तब उनके तेज, उनके जीवनपद प्रकाश, उनके सुखद तापको हम सधन्यवाद नमस्कार करते हैं। अमृतमय पूर्णेन्दुके सौन्दर्यपर हम मुग्ध हो उठते हैं । जब मन्द-मन्द शीतल पवन बहता है हम उसके सर्श आनन्दमें मग्न हो जाते हैं । श्रीतकालमें च्वलन्त अगिके कष्टहरण-तापसे हम सुखी हो जाते हैं। परंतु सूर्य या चन्द्रमा या पवन या अभिके गुणोंका साक्षात्कार करते हुए भी हमारा ध्यान उस गुप्त शक्तिकी ओर नहीं जाता जो इनके तेज प्रकारा, गति और तापकी आदिस्रोत हैं और उनके अस्तित्वकी परात्पर कारण हैं। सामान्य जीवनमें भी हम यही देखते हैं कि राक्ति सन कुछका कारण होते हुए भी अप्रकट रहती है। हम कहते हैं कि अमुक मित्रके घरमें विचित्र शानि हमें मिलती है, अमुकके घरमें कमालकी सफाई है, अमुकके वहीं हमने अद्भुत आतिथ्य-सत्कार पाया । परंतु विचार कर्के देखें तो पता चलेगा कि इन महानुभावोंके घरोंकी शानि

* अथवा-

उमा रमा ब्रह्मादि वंदिता । जगदंबा संततमर्निदिता ॥ जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सो^{इ ।} राम पदारविंद रति करति सुभावहि खो^{इ ॥} 1

11

11

ऍ

ान्

₹,

समाई और अतिथि-सेवाका परम कारण वे देवियाँ हैं जो इनके घरोंकी गृहस्वामिनियाँ हैं । लजास्वरूपा शक्ति (या देवी सर्वभूतेषु लजारूपेण संस्थिता) प्राथमिक होनेपर भी गौण ही रहती हैं और उस शक्तिमान्के प्राथमिकताका श्वान प्राप्त करवाती हैं जिस शक्तिमान्का अस्तित्व ही अनन्त-स्नेहस्वरूपा शक्तिके विना असम्भव है।

शक्तिका यह गोपनीय अज्ञात अस्तित्व व्यष्टि एवं समष्टि जीवनका अद्भुत सत्य है। कविवर तुलसीदासजीने इस सिद्धान्तको श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रकारसे स्थान दिया। उदाहरणार्थ जब करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी—

जनक सुता सन बोले विहिस कृपा सुख बृंद ॥

मुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करिव लिलत नर लीला ॥

नुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौं लिग करों निसाचर नासा ॥

नविं राम सब कहा बखानी । प्रमु पद धिर हियँ अनल समानी॥

निज प्रतिर्विंव राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुविनीता ॥

तव जिस मायासीताको महारानी श्रीजानकीजी अपने सानपर रख गयी थीं उनमें वह गुण नहीं था जो महारानी-जीमें था, उदाहरणस्वरूप जब राजा दशरथ अयोध्यासे बरात केंकर जनकपुर आये, तब—

जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥ इदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईँ। भूप पहुनई करन पठाईँ॥

अथवा जब भरतलाल करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी-ग्रो लानेकी इच्छासे चित्रकूटमें संपरिवार जाकर रहे—

पुर नर नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं परुक सम बीती ॥ तव—

^{सीय} सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥

इस प्रकार यद्यपि मायासीतामें महारानी श्रीजानकीजीका शील, रूप और विनीत व्यवहार था, परंतु महारानीजीबाली महिमा उनमें नहीं थी जो केवल पराशक्तिमें ही होती
है। तो जब महारानी श्रीजानकीजी पावकमें निवास करने
बली गयीं तब उन ज्ञानी भक्तोंकों कैसे संतोष हुआ जो केवल
महारानी श्रीजानकीजीकी दर्शन-लालसासे नित्य पञ्चवटीमें
आया करते थे, जिनकी आराध्य एकमात्र केवल मातु जानकी
भी केवल माता जानकीके नाते ही सब जगके नाते मानते
है। काविवर जुलसीदासजीने बड़े अनुपम ढंगसे इसका समाधान
किया है। रामतापिन्युपनिषद्में स्पष्ट कहा है कि महारानी

श्रीसीताजी करणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आह्रादिनी शक्ति हैं। आह्रादिनी शक्ति आनन्द्रस्वरूपा होती है। विना महारानी श्रीजानकीजीके करणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आनन्दमय नहीं हो सकते । आनन्द मुखकी कान्तिसे प्रकट होता है; क्योंकि आनन्द और मुख-छिबसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब आनन्द नहीं रहता तब कान्तिरहित होकर मुख अपनी मुन्दरता खो बैठता है। जैसे—

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा । अमिअ रहित जनु चंदु विराजा ॥ या—

भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिसि सिस सोहई॥ कान्ति सौन्दर्यका एक अङ्ग है। चन्द्रमामें कान्ति होती है, मुक्तामें कान्ति होती है, मुँगेमें, हीरे आदि मणियोंमें कान्ति होती है, खर्णमें कान्ति होती है, यौवनमें कान्ति होती है, रूपमें, तपमें, सिद्धचारमें, मुखमें, आनन्दमें कान्तिका साम्राच्य है। सबके सौन्दर्यकी आत्मा कान्ति है। यह कान्ति शिक्तिस्वरूपा है। श्रीदुर्गासप्तशतीका एक मन्त्र है—

यां देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

कविवर तुलसीदासजीने मानसके अयोध्याकाण्डके मङ्गलाचरणमें जिस 'मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य'की स्तुति की है वास्तवमें वह श्रीरघुनन्दनकी आह्नादिनी शक्ति श्रीसीताजी-की सूक्ष्मरूपसे स्तुति है जो कान्तिस्वरूप होकर करणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके मुख-कमलकी शोभाको निर्विकार वनाये रहीं । और मुलाम्बुजश्रीके स्क्ष्मरूपमें वे प्रभुसे अभिन्न बनी रहीं । कविवरने इस 'मुखाम्बुजश्री'को 'न मम्ले वनवासदुःखतः' कहकर इस सत्यकी ओर संकेत किया कि 'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा' के पश्चात् जो माता श्रीमहारानी जानकीजीके भक्त चाहते वे भक्तवत्सला श्रीमहारानीजीके दर्शन करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी अचल, अनन्त, निर्विकार 'मुखाम्बुजश्री'को देखकर कर सकते थे । महारानी श्रीजानकीजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी 'मुखाम्बुजश्री' ही नहीं हैं, वे उनकी अनिर्वचनीय शक्ति हैं, वे उनकी अनन्त कोमलता हैं, वे उनकी अकथ उदारता हैं, वे उनकी कारणरहित दया हैं, वे उनकी कृपा हैं—

जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती।

वे उनकी सुन्दरता हैं— सुंदरता कहुँ सुंदर करई।

मंह्या

अनक्षु

दीप दी

भृतिवर

जिसको ।

त्व मुनि

कवि

श्रीरामच

धीचत क

विर

महा

वे और

ल दोनों

आनन्दकन

अयोध्या व

स्रोंकि 'दें

वे तो मुनि

थे। लघन

नहीं था वि

ब्हु काहि

हिंउ चढ़ा

है विद्यमान

चित

और

इसिल

कर

वह सुन्दरता जिसे देखकर वैर-भरे राक्षस अपना क्रोध भूल गये-

प्रमु निलोकि सर सकर्हि न डारी। थिकत मई रजनीचर झारी॥ सचिव बोिं बोले खर दूषन । यह कोउ नृप बालक नर भूषन ॥ नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥ हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥

ऐसी अनुपम मुन्दरता जो करुणानिधान प्रभु श्रीराम-चन्द्रजीकी विरह-लीलामें भी अचल बनी रही और जिसे देखकर राक्षसराजका भाई-

रहेउ ठट्कि एकटक पल रोकी। जिस सन्दरताको देखनेके लिये-

प्रगट भए सब जलचर बूंदा ॥ मकर नक नाना झष ब्याला । सत जोजन तन परम बिसाला ॥ अइसेउ एक तिन्हिं जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥ प्रमुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरिषत सब भए सुखारे॥

और जिस छविको देखकर चतुरानन-प्रेम पुलक अति गात । सोमासिषु बिलोकत लोचन नहीं अघात ॥ अतएव अयोध्याकाण्डके इस मङ्गलाचरणमें—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्छे वनवासदुःखतः। मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जूलमङ्गलप्रदा ॥

-कविवर तुल्सीदासजीने करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी-की 'सर्वश्रेयस्करीं रामवछभाम्' श्रीसीता महारानीजीकी ओर संकेत किया है जो करुणानिधान प्रभुकी आह्वादिनी शक्तिके नाते सचिदानन्दके आनन्दमय होनेकी कारणरूपा हैं, जो कान्तिरूपेण संस्थित होकर प्रभु रघुनन्दनकी अनन्त मुखाम्बुजश्रीद्वारा करुणानिधान छविसमुद्रकी अकथ, अगोचर बुद्धिपर रूपमाधुरी वन गर्यो । जानकीहरणकी लीलाके समयमें यह गुह्यातिगुह्य तत्त्व वे ही समझ सके जिनपर महारानी श्रीजानकी माताकी विशेष कृपा थी, जो माताके अनन्य भक्त थे, जिनके लिये महारानी श्रीमाता जानकीजीको छोडकर-

'आन भरोस न देवक'

क्योंकि यह परम रहस्य है और यह वही समझ सके हैं जिनपर अनन्त स्नेहमयी माता श्रीजानकीजीकी कृपा हुई-सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।

जिस स्क्ष्म विधिसे कविवर तुलसीदासजीने मानसपात्रो के चित्रणमें राक्तिके विश्वेश्वरी तथा अनन्तवीर्या होनेका प्रमाण दिया है, वैसे ही सूक्ष्म ढंगसे मानसकी कथावस्तुकी गतिका संचालन करनेमें शक्तिका अनुपम रीतिसे उन्होंने वैचिन्य दिखलाया है। यदि हम राम-कथाके प्रवाहपर विचार करें तो ऐसा लगेगा जैसे यह कहानी थोड़ी-थोड़ी देर वार रुक-सी जाती है और तब कोई ऐसी घटना हो जाती है जिससे कथाका प्रवाह गतिको पुनः प्राप्त होता है। उदाहरण-स्वरूप दशरथ-पुत्र-जन्मके उपरान्त यदि विश्वामित्र मुनि अनुजसहित करुणानिधानको जनकपुर न ले जाते या राम-सीता-विवाह न होता तो राम-कहानी अधूरी रह जाती। विवाहके वाद यदि राजरसभंग न होता या इतना होनेपर भी सीता-हरण न होता तब भी कथा अपूर्ण रहती। जैसे वनवार-के १३ वर्ष कटे वैसे ही चौदहवाँ वर्ष भी कट सकता था। सीताहरणके पश्चात् यदि वानर सीता-खोजमें सफल न होते तब भी राम-रावण-युद्ध न होता और रामायण न बनती। इस प्रकार राम-कथामें कुछ ऐसे विराम आते हैं जहाँ विशिष्ट घटना ही कथाको आगे प्रवाहित करती है। ये विराम-स्थल इस प्रकार है-

- (क) श्रीसीता-स्वयंवर
- (ख) राजरस-भङ्ग
- (ग) सूपनखा जिमि कीन्ह कुरूपा
- (घ) माया सीता कर हरना
- (ङ) सुग्रीव मिताई

और (च) कपिन्ह बहोरि मिला संपाती

(क) सीता-स्वयंवर अथवा श्रीरघुवीर-विवाह-प्रसंग-

जब---

समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ माई॥

—तव यदि दोनों भाई पुष्पवाटिकासे पुष्प लाकर गुरू विश्वामित्रके पास लौट आते तो राम-सीता-विवाह होता संदिग्ध था । राम-सीता-विवाह धनुष-भङ्गपर निर्भर था। कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना । रहा बिबाहु चाप आधीना॥ ट्रस्त ही घनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

श्रीखनन्दन यते तो र वनुषभङ्गके सम्बन्धमें यह बात स्मरणीय है कि 'दोउभाई'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

त्रे.

I

क़ी

所

गर

गद

100

U-

नि

H-

1

भी

11

ष्ठा

बनकपुर उन राजाओंकी तरह नहीं गये ये जिनके लिये राजा जनकने कहा—

राजा जनकन वर्ण होग दीप के भूपित नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ।। करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी—

कुँऔर मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।

्पानेकी इच्छासे जनकपुर नहीं आये थे । वे तो जित्तरके साथा' उस 'चिरत एक'को देखने चले आये। क्षिको देखनेकी मुनि विश्वामित्रने इच्छा प्रकट की थी। क्षिको से सादर कहा बुझाई। चिरत एक प्रमु देखिअ जाई॥ कविवर तुलसीदासजी कहीं भी करुणानिधान प्रमु क्षिप्रचन्द्रजीका जनकपुरमें आगमन स्वतन्त्र रीतिसे नहीं

राम रूपन दोउ माई आए। विक लिखा है—

र्श्वत करते हैं। मानसमें यह नहीं लिखा है कि--

विस्वामित्र महामुनि आए।

महामुनि विश्वामित्र 'मुनिबृंद समेता' जनकपुर आये हे और महामुनिकी इस मण्डलीके अङ्ग 'दोउ भाई' थे। ह होनों भाइयोंका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। इसल्यें यदि आनदकन्द श्रीरघुनन्दन धनुष बिना तोड़े ही जनकपुरसे आधा लैट आते तो कोई उनकी ओर उँगली न उठाता; सोंकि 'दोउ भाई' स्वयंवरमें वरणकी इच्छासे नहीं गये थे। केते मुनि विश्वामित्रके अनुगामी, उनके सेवक बनकर गये है। ल्यानलालने भी रोष प्रकट किया था। वह इस बातपर हिंथा कि राजा जनकने कहा—

हिंद काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
हिं चढ़ाउव तोरव भाई। तिलु भिर भूमि न सके छड़ाई॥
चिक्ति इस वातपर उनको क्रोध आया कि रघुकुलमणि-

हैविद्यमान रहते राजा जनकने कह दिया—

बीर बिहीन मही मैं जानी। और एक बार फिर ऐसी ही वात कही—

जों जनतेउँ बिनु भट मुबि माई।

इसिलिये विना श्रीकिशोरीजीसे विवाह किये आनन्दकन्द शिक्षानन्दन स्वयंवरका 'चरित एक' देखकर यदि लौट शिते तो राम-कथाका प्रवाह आगे न बढ़ता। राम-कहानी यहीं समाप्त हो जाती । राम-कथाकी गतिको संचालन श्रीराम-सीता-विवाहसे मिला और राम-सीता-विवाह केवल धनुषभङ्गपर निर्भर करता था । इसके लिये—

विस्तामित्र समय सुम जानी। वोले अति सनेह मय वानी॥ उठहु राम भंजहु भव चापा।

परंतु महामुनि विश्वामित्र ऐसी आज्ञा न देते यदि पुष्पवाटिकासे फूल लेकर लौटनेपर—

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ माई॥

और जो श्रीकिशोरीजीसे मधुर मिलन पुष्पवाटिकामें हुआ था, उसका पूरा विवरण आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दन मुनिवरसे एकदम स्पष्ट न कह देते। कविवर तुलसीदासजी कहते हैं—

राम कहा सबु कौसिक पार्हो । सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥
यह 'सबु' बड़ा मार्मिक शब्द है । 'सबु' का अर्थ
यह है कि आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दनने गुरु विश्वामित्रसे
यह सब कहा कि कैसे—

संग सखी सब सुमग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥ श्रीकिशोरीजीके 'कंकन किंकिनि न्पूर'की ध्वनि उन्होंने सुनी, कैसे उनको ऐसा लगा— मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहूँ कीन्ही॥

सिय मुख सिस भए नयन चकोरा। और कैसे उन्होंने—

देखि सीय सोमा सुखु पावा । कैसे श्रीकिशोरीजीकी 'विलोकि अलौकिक सोभा' सहज पुनीत मोर मन छोमा।

और कैसे उसी समय श्रीरघुनन्दनके 'सुभग अंग' फड़कने लगे। यह 'सबु' सरल स्वभावसे करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने गुरु कौशिकसे कहा। तव—

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं।

और पूजामें ध्यानावस्थित होकर उनको यह सब पता चल गया कि श्रीकिशोरीजीकी यह दशा हुई थी कि— देखि रूप कोचन कलचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥

कैसे---

30

70

30

समाजक

ते हैं।

70

30

हीं है

ज्ञान नहीं

गहीं कह

70-

नारण ही

धर्म के व

धर्माके व

₹0-

वहते हो

70-

-0.5 旅旅

ये और नि

30-

लोग ह

70-

उ०-खुवको इ

ग्रम् कर

अनेमं सम

少のからかんでんかんでんかん

थके नयन रघुपति छिब देखे । पलकन्हि हूँ परिहरीं निमेषे ॥ अधिक सनेहँ देह भे भोरी । सरद सिरिह जनु चितव चकोरी ॥ और तब श्रीकिशोरीजी—

गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी।। और उसके बाद-

......। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही ॥ सुफ्ल मनोरथ होहुँ तुम्हारे । रामु लखनु सुनि भए सुखारे ॥

आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दनके मुखसे उनके पक्षका 'सबु' मुनकर और ध्यानद्वारा श्रीकिशोरीजीके पक्षकी सब बात जानकर महामुनि कौशिकने विचारा कि जो 'महेस मुखचंद चकोरी'ने आशीर्वाद श्रीकिशोरीजीको दिया था वही ठीक था, इसीलिये मुनिवरने भी वैसा ही आशीर्वाद दिया—

सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे।

क्योंकि विश्वामित्र मुनि समझ गये कि इसीमें 'इन्ह कहूँ अति कल्यान' है ।

श्रीराम-सीता-विवाह धनुषभङ्गपर निर्मर था, धनुषभङ्ग गुरु विश्वामित्रकी इस आज्ञापर—'उठहु राम भंजहु भव चापा' यह आज्ञा श्रीरघुनन्दन और श्रीकिशोरीजीके पुष्पवाटिकामें मधुर मिलनपर । परंतु यह मधुर मिलन किसके द्वारा हुआ, इसका कारण कौन था ? क्योंकि यह भी सम्भव या है अनुजसहित आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दन उस 'परम रम्य आरम्' में जाकर गुरुकी आयसुके अनुसार दल-फूल लेकर लीट अने और श्रीकिशोरीजी जिनको 'गिरिजा पूजन जननि पठाईंग वे भी गौरी-पूजन करके राजमहल लीट जातीं और इन दोनोंक्षे मेंट न होती। न श्रीरघुनन्दनको पता था कि उस सम्ब श्रीकिशोरीजी पुष्पवाटिकामें हैं और न श्रीकिशोरीजीको है इसका ज्ञान था कि 'प्रेम विवस सेवक सुखदाता' कहाँ फूल तोड़ रहे हैं। इन दोनोंके मिलनेका कारण एक स्त्री थी—एक स्त्री थी—

एक सखी सिय संगु विहाई। गई रही देखन फुलाई॥ तेहिं दों बंघु विलोके जाई। प्रेम विवस सीता पहें आई॥ और उसकी बात जब श्रीकिशोरीजीने सुनी तब—

तासु बचन अति सियहि सोहाने । दरस कागि कोचन अकुकाने॥ चकी अग्र करि प्रिय सिख सोई ।

इस प्रकार एक सखी—एक स्त्री उस पुष्पवादिकाः मिलनका आदिकारण हुई, जिस मिलनके फलस्वरूप श्रीराम् सीताका परस्पर प्रेम हुआ और अन्तमें उनका विवाह हुआ। श्रीराम-सीता-विवाह एक सामान्य राजकुमार और राजकुमार का विवाह नहीं था। श्रीकिशोरीजी राक्षसराज राजके आकर्षणकी कारणरूपा थीं और जबतक इन श्रीकिशोरीजीका श्रीरघुनन्दनसे प्रेम-सूत्र-बन्धन न होता तबतक राम-रावण-संघर्ष असम्भव था और राम-कथा-रामायण न वन पाती। (शेष आणे)

いるかんかんなんなん

आत्मा परमात्मासे—

क्यों नहीं वापस बुलाते हो? है काम लेना अभी मुझसे • जो नहीं वापस बुलाते हो ? खल रहा है अब मुझे निष्पाण अभिनय, देव! खल रहा है अब मुझे निष्क्रिय अनिश्चयः देव! दो मुझे कियमाण पथ, गतिशील दढ़ पग और, नहीं वापस बुलाते हो। जो नहीं वापस बुलाते हो॥ बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०, एल-एल्० बी०)

कहते हैं सारी अवनतिका मूल धर्म है!!

(लेखक-आचार्य श्रीनरदेवशास्त्री, वेदतीर्थ)

प्रo-कहंते हैं सारी अवनतिका मूल धर्म है। उo-यों कहनेत्राले पागल हैं।

प्र०-क्यों ?

38

या हि आरामु

अहे

हिं वे

दोनोंदी

समय

को ही

स्वी

वाई॥

आई॥

राने ॥

टिका-

ीराम-

आ।

मारी-

वणके

जीका

ावण-

ागे)

उ०—धर्मके कारण ही मनुष्यका, राष्ट्रका, देशका, साजका पतन होता है। ऐसा कहनेवाले लोग पागलही बेहैं।

प्र०-क्यों ?

उ०-इसिलिये कि उनको धर्मके सच्चे खरूपका ज्ञान हाँ है। उनको भारतवर्षके धार्मिक इतिहासका पूरा-पूरा इन नहीं है। यदि उनको ज्ञान होता तो वे कदापि ऐसा हाँ कहते।

प्र०-अजी, आप यह क्या कह रहे हैं ? क्या 'धर्म'के जाए ही भारत अधोगितको प्राप्त नहीं हुआ था ? क्या भारे को कारण ही भारत दुर्बल नहीं हुआ था ? और क्या भारे कारण ही भारत निकम्मा नहीं बन बैठा था ? उ०-मेरे भाई ! तुम सर्वथा अज्ञानमें हो जो ऐसा हते हो ।

प्रo-फिर क्या कहें ?

उ०—यह कहो कि भारतवासी 'धर्म'को 'खधर्म'को है बैठे थे इसीलिये वे गिर गये थे, कमजोर हो गये है और निकम्मे वन बैठे थे।

^{१०}—आपका 'धर्म' किस कामका ?

उ०-क्यों ?

लेग धर्मके मर्मको नहीं समझते !

४० च्या मर्म है धर्मका !

उ०-धर्म तो मनुष्यको देवता बना देता है। मनुष्यके अनको नष्ट कर डालता है और उसके भीतरी देवलको अन्ति करता है। 'धर्म' मानवी जीवनका पूर्ण विकास अनेम समर्थ है। ऐसा 'धर्म' देशको कैसे गिरायेग ? जरा सोचो, समझो तो धर्मको । धर्म बाह्य रूढियोंका नाम नहीं । सच्चा 'धर्म' तो आत्म-विकासमें, आत्मोन्नतिमें है ।

पूर्णत्वकी प्राप्ति ही 'धर्म'का अन्तिम छक्ष्य है। इस प्रकार धर्मनिष्ठ जीवन राष्ट्र, देश या समाजके विकासके छिये कभी प्रतिकृत्व नहीं हो सकता। समाजके व्यक्ति जितना अधिक धर्मका पाळन करेंगे, उतना ही अधिक राष्ट्रका विकास निश्चितरूपमें होगा। तुमने कई जीवन बना रक्खे हैं—राष्ट्रिय जीवन, धार्मिक जीवन इत्यादि। धार्मिक जीवन कभी राष्ट्र-विरोधी हो ही नहीं सकता। धार्मिक जीवन तो राष्ट्रिय जीवनका सदा प्रक ही रहता है और रहेगा।

धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्य चिरन्तन खरूपका होता है। जो देश, राष्ट्र इस चिरन्तन मूल्यको समझते हैं और आचरण करते हैं वे चिरजीवी बनते हैं।

प्र० न जाने आप क्या कह रहे हैं ?

उ०—अरे प्राचीन इजिप्त, रोम, ग्रीस, खाल्डिया, असेरिया आदि राष्ट्र कालकी अनन्त उदरदरीमें विलीन हो गये क्यों ?

प्र०-आप ही बतलाइये।

उ०—इसीलिये कि उन्होंने चिरन्तन मूल्यके तत्त्वोंको छोड़ दिया था और इसीलिये चारित्र्यरूप पीठकी हड्डी और रीढ़की हड्डी टूट गयी थी। फिर वह सीघे कवतक खड़े हो सकते थे !

देखों, व्यापारमें, राज-काजमें, अर्थ-प्राप्तिमें यदि उच्च मुल्यका चरित्र न हो तो वह व्यापार, वह राजकाज, वह अर्थ सब नष्ट ही समझिये । अधर्मके कारण कुळ काळतक उन्नति भले ही प्रतीत हो, पतन तो अवश्यम्भावी है । इतिहास इस वातका साक्षी है ।

भाग ३६

धर्मशास्त्र प्र०-इतिहास जो कुछ कहे, कहता है ?

उ०-

अधर्मेणैधते तावत ततो भद्राणि पश्यति। ततः सपनान् जयित समूलं च निकृन्तिति॥

मनुष्य, समाज, देश, राष्ट्र अधर्मके आश्रयसे पहिले-पहिले सिर उठाते दिखायी देते हैं और उस दशामें उनको सर्वत्र हरा-हरा ही दिखलायी पड़ता है और उसी अधर्मके जोरपर वे अपने शत्रुओंको परास्त कर देते हैं। पर अन्तमें क्या परिणाम होता है सो जानते हो ?

प्र०-नहीं!

उ०-अन्तमें वे जड़सहित उंखड़ जाते हैं-इसिछिये तात्कालिक मूल्यवाले तत्त्वोंको छोड़कर चिरन्तन मूल्यवाले 'धर्म' को समझो । यह कल्पना कि धर्मके कारण या अध्यात्ममें लगे रहनेके कारण भारत गिरा, भारत मरा— सर्वथा थोथी कल्पना है।

प्रo-यदि भारतका ऐसा ऊँचा धर्म था तो भारत क्यों गिरा अथवा क्यों मरा ?

उ०-(१) पाश्चात्त्य सम्यताके प्रभावके कारण, (२) भारतने अपनी आध्यात्मिक सम्पदा खो दी, इस कारण। यह हमारा बड़ा भारी अज्ञान है कि हम भारतके पतनका कारण 'धर्म' समझते हैं। पतन और धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं । पतनके कारण कुछ और हैं एवं आप उनको जोड़ रहे हैं धर्मके साथ ।

भारतके इतिहासमें

भारतके उत्कर्षके जो कालखण्ड हैं उनमें भी देशमें धर्मप्रेम था ही । हम यह कह सकते हैं कि जिस समय छोगोंने धर्मका यथार्थ स्वरूप समझा और उसपर प्रेम किया, उस कालखण्डमें भारतने उन्नति की । चरम सीमापर था और रहा। और जन-जन 'अधर्म' का आश्रय लिया तब-तब वह अधः पतनकी ओर बढ़ा ।

उपनिषद्-काल

क्या उपनिषद्-कालमें भारतमें समृद्ध राज्य नहीं थे! प्रo-थे, नहीं कौन कहता है ?

उ०-विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य इत्यादि सम्राठी समयमें साहित्य, कला, वस्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र आरिकी क्या कम उन्नति थी ?

प्र०-कौन कहता है उन्नति नहीं थी !

उ०—प्रसिद्ध इतिहासकारने निम्नलिखित प्रज्ञोंका मुँहतोड़ उत्तर दिया है।

प्र०-कौन-कौनसे प्रश्नोंका ?

(१) साधारणतया भारतीयोंको 'परलोकवदी' और 'ऐहिक उन्नति' की उपेक्षा करनेवाले कहा जाता है।

भारतीय केवल 'परलोकवादी' रहकर 'ऐहिक उन्नति की उपेक्षा करते रहे हैं क्या ? वे लौकिक 'अभुद्रग को तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते रहे हैं क्या ?

इतिहासकार सरकार

इसका उत्तर यों देते हैं--- 'हिंदुओंने, सर्वातीत निरपेक्ष आंत्मतत्त्वको सदा ऊँचा स्थान दिया है यह सत्य है। प्रंतु जिस जगत्में वे रहते थे उस जगत्को वे कभी नहीं भूले, कभी नहीं भूले। यह कहना भी नितान्त भ्रान्तियुक्त है। वे सदा 'जग' को उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते रहे । इसके विपरीत हिंदुओं के सांस्कृतिक इतिहास को देखनेसे स्पष्टरूपमें पता चलता है कि भारतीयीन जिसको जड कहते हैं उसी वस्तुमेंसे, जिसको भौतिक कहते हैं उसी भौतिकमेंसे, जिसको ऐहिक कहते हैं उसी ऐहिकमेंसे 'आत्मतत्त्व को विकसित करनेका प्रयल किया है।

जिन भारतीयोंने

उपनिषद्, वेदान्त, गीता-जैसे प्रन्थोंकी रचना की वे ऋषि, मुनि महात्मा दुर्बल थे, निकम्मे थे ऐसा ती आप कह ही नहीं सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

म्बा

र्रा का भर

3-प्रमात्मा होता है

> उत्त प्रश्न

मोचते वि उत्त

त्वोंको. प्रश्न-

उत्तर गनेवाला

74-उत्तर

727-उत्तर

धर्मके दिति प्र

मिङ्गिपर ोक्षा प्राप्त

ऐसे 3 गरिक, आ

गाति ही-प्रा

यापारिक,

事等

-

वें थे!

गरोंके

दिकी

लोंका

वादीः

हि।

न्नति

द्य

तीत

यह

ते वे

भी

ष्ट्रिसे

TH-

गोने

तेक

उसी

तो

भारतीयोंने

अध्यात्मके साथ अभ्युदयकी ओर सदैव ध्यान क्वा था---

किंतु

रेहिक तत्त्वोंमेंसे भी वे आत्मविकास करनेका, साधने-म्म भारतक प्रयत्न करते रहे।

इसीलिये

उनके साहित्य, संगीत, शिल्पकला, चित्रकला आदिमें श्मात्माकी महिमाका वर्णन मिलता है। परमात्मदर्शन होता है।

उत्तर-और सुनो ।

प्रश्न-अपने ही गीत गाओं और क्या । यह नहीं विचते कि भारतवर्ष इतना ऊँचा था तो इतना गिरा क्यों ?

उत्तर-कह तो दिया कि जबसे उन्होंने ऊँचे ब्बोंको, मुल्यवान् तत्त्वोंको छोड़ा, तभीसे वे गिरने छगे। प्रश्न-इन ऊँचे तत्त्रोंका धर्मसे क्या सम्बन्ध है ? उत्तर-धर्म ही तो इन ऊँचे तत्त्वोंकी ओर ले

^{जनेवाला} है । और भी सुनो— प्रभ-क्या सुनें ?

उत्तर-जरा धैर्यपूर्वक सुनो तो सही।

१४-अच्छा सुनाइये ।

उत्तर— जब धर्मके आधारपर गुरुकुल-पद्धतिकी शिक्षा-दीक्षा-र्षति प्रचिति थी, तब उस पद्धतिका भारतीयोंके मिन्पर विकास पड़ता था जिन्होंने उस पद्धतिकी

उन्होंने

ऐसे आदर्श राज्य स्थापित किये जिनमें उत्तरोत्तर भिक, आव्यात्मिक, आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक ^{भिति}री-प्रगति होती गर्या भारिक, औद्योगिक योजनाओंद्वारा भारतकी आर्थिक । जिनमें बड़ी-बड़ी दशाका सर्वतोमुखी विकास हुआ और वे सफल हुए। जिन लोगोंने

भारतीय पद्धतिकी शिक्षा-दीक्षा छी, वे केवछ भारतमें ही नहीं रहे, अपितु देश-देशान्तरोंमें गये, वहाँ अपनी बस्तियाँ अथवा उपनिवेश स्थापित किये तथा भारतीय धर्म और संस्कृतिका प्रचार-प्रसार किया—

उसके

चिह्न अबतक यत्र-तत्र सर्वत्र मिलते हैं और संसारको मुख कर रहे हैं।

धर्मशिक्षाके

कारण ही हमारे पूर्वजोंने इतना वड़ा संसारव्यापी कार्य किया । इसलिये उस धर्मको हम निरुपयोगी समझकर उसकी अवहेलना करने लगें तो फिर हम-जैसा मूर्ख और कौन होगा ?

इतिहासकार श्रीसरकार कहते हैं-

इसी धार्मिक (गुरुकुल-पद्धतिकी) शिक्षा-दीक्षाके कारण ही वसिष्ट-विश्वामित्रसे लेकर रामकृष्ण पर्यन्तके बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उत्पन्न हुए इसीसे पाणिनि-पतञ्जलि आदि मुनि बने ••••••••• इसी शिक्षणका फल मैत्रेयी-गार्गी आदि हैं। इसी धार्मिक शिक्षाके कारण चन्द्रगुप्त मौर्यसे लेकर छत्रपति शिवाजी, रणजीतसिंह-जैसे बड़े-बड़े सम्राट्, छत्रपति राजे-महाराजे उत्पन्न हुए।

जिस धर्मकी

शिक्षाने विभिन्न काळखण्डोंमें नाना प्रकारके प्रश्नोंकी गुत्थियोंको सुल्झाया और भारतीय धर्म, सम्यता और संस्कृतिका प्रवाह अक्षुण्ण बनाये रक्खा, वह धर्म अथवा उस समयकी शिक्षा-दीक्षा संकुचित है, वह शिक्षा-दीक्षा निष्क्रिय बनानेवाली है, वह धर्म और वह संस्कृति रखने योग्य नहीं है।

ऐसे कोई कहे, माने तो उसको हम क्या कहें !

वेक्षा प्राप्त की ।

भारतकी प्रगति

देखनी हो तो मोहेन-जोद ड़ो और हड़प्पाके शिठालेख देखो, मोहेन-जोद ड़ो और हड़प्पाके उत्खननसे निकठी हुई सभ्यता-संस्कृतिके अवशेष—

सजीव होकर

बोल रहे हैं।

उन अवशेषोंको

देखकर हमारे पुरातन पूर्वजोंकी उन्नतिका प्राणवाक्य गाद आ जाता है— 'चरैंवेति, चरैंवेति' आगे बढ़ो, आगे बढ़ो।

इस वैदिक घोषणा

से आर्योमें प्राणसंचार होता रहता था । तभी हमारे पूर्वज इतना काम कर गये ।

वे घरमें ही

नहीं बैठे रहे, अपितु कहाँ-कहाँ गये— देखो,

चम्पा गये, स्याम गये, इंडोनेशिया गये, तिब्बत गये, चीन गये, बाली गये, सुमात्रा गये। पुराण कहते हैं मिश्रमें भी गये। महाभारत कहता है पाताल देशमें भी गये और तब जब आर्योंकी सम्यता, संस्कृति और धर्मका बोल्वाला रहा—

पहिले

भारतमें इतनी बड़ी ऐहिक उन्नति रही और इसीलिये उसी उन्नति या अभ्युदयका नाम ले-लेकर आज भी हम अपना सिर ऊँचा किये हुए हैं।

इसलिये

यह कथन कि हमारे पूर्वज केवल परलोककी ही सोचते थे, ऐहिक उन्नतिकी ओर उनका कोई ध्यान नहीं था—यह कथन पराकाष्ट्राके अज्ञानका द्योतक है

जिस धर्मसे

ऐहिक और पारलौकिक क्रियात्मक कार्योमें महैं। शक्ति और स्फूर्ति मिलती रही हो, वह धर्म निक्रमा, उसके माननेवाले निकम्मे—ऐसा यदि कोई कहता है तो वह कहनेवाला पुरुष ही विवेकशून्य है, यो कहे बिना इम नहीं रहेंगे।

हम इतना अवस्य मानेंगे कि

कुछ मोली-भाली कल्पनाएँ, कुछ मिथ्याचार हमारं पतनके कारण हुए। पर इन धर्मविरुद्ध मिथ्याचार और कल्पनाओंको मूलभूत धर्मतत्त्व समझकर असली धर्मकी अवहेलना करना क्या उचित होगा ?

धर्म तो

हमारी मातृभूमिका प्राण रहा है और रहेगा। हमारे राजकारण अर्थात् राजधर्म, समाजकारण अर्थार समाजधर्म, शिक्षा-दीक्षा सब धर्मके आधारपर चली हैं।

इसलिये

धर्म शब्दका मर्म समझो । धर्म तो शाश्वत वस्तु है। जो सदा बना रहा है और बना रहेगा ।

धर्म नाम है

आध्यात्मिकताके आधारपर बना हुआ जीवनशाह । धर्म नाम है

सच्चे मनुष्य बनानेवाला शास्त्र।

धर्म

रूढ़ियोंका नाम नहीं, थोथी कल्पनाओंका नाम नहीं, मिथ्याचार अथवा मिथ्यापरम्पराओंकी कल्पनाओंका नाम नहीं—

धर्म है यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (वेशेकिः)

* ये उद्धरण 'जीवनविकास नागपुर'के हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

साथ पहले पुस अ

गेंके

हायी वर्ण है

करके

वह दू छलाँग

मलेरिय विवश कह दि

उसे खं तबसे

च(वाह मेरे वार

किर दें

मुझे बा चरने त

च पंड्रपंडे

गायें थीं

गाते व

श्रीण च

'गोबु पापा न विद्यते'

[कहानी]

(लेखक-भी 'चक्र')

कृष्णा चरने ही नहीं जा रही है ! उसे पशुओं के साथ दूर हे जानेको कहिये !' मैं वात पूरी करूँ, इससे पहुंठे दौड़ती-कूदती कृष्णा भड़भड़ाकर मेरी कोठरीमें अस अयी। उसने जल्दी-जल्दी मुझे सिर, भुजा, पेट, पैंके समीप कई बार सूँघा और फिर शान्त खड़ी हो गयी।

सदेव

कम्मा, ता है

कहे

हमारे

र और

धर्मकी

हेगा ।

अर्थात्

हैं।

त्त् है।

ास्र ।

कृष्णा आश्रमकी गाय है । बड़े प्रयत्नसे ढूँढ़कर लयी गयी है । उसके खुर, थन, जिह्वादि सब कृष्ण-र्क्ग हैं । पूरे लक्षण हैं उसमें कृष्णा गौके । मैं भोजन करके उठता हूँ तो हाथ घोकर उसे दो रोटी देता हूँ । इह दूर भी चरती हो तो मेरे पुकारनेपर हिरनकी भाँति इलाँग लगाती आती है ।

मुझे इधर कलसे ज्वर आने लगा हैं। साधारण मलेरिया है; किंतु चारपाई पकड़नेको तो उसने मुझे विका कर ही दिया है। परंतु इस गायसे किसने कह दिया कि मैं रोगशय्यापर हूँ किल प्रात: चरवाहेने उसे खोला तो सीघे दोड़ती मेरी कोठरीमें घुस आयी। किसे आज अवतक उसे जैसे चारा-पानी रुचता नहीं है। बलाहा वार-वार हाँक ले जाता है। बड़ी किठनाईसे मेरे वार-वार पुचकारनेपर जाती है और पाँच-दस मिनटमें कि दोड़ती हुंकार करती कोठरीमें आ खड़ी होती है। इसे बरेने तो जाना ही चाहिये।

चरवाहा कृष्णाको फिर हाँक ले गया है और मुझे पहंपड़े स्मरण आ रहा है कि वचपनमें घरपर आठ-दस गयें थीं—हष्ट-पुष्ट सुन्दर गायें। छोटे चाचा ही उन्हें जाते और उनकी सेवा करते थे। गायोंमें ही जैसे उनके भण बसते थे। एक बार किसी वातपर क्रोधमें आकर

पिताजीने छोटे चाचाको एक थप्पड़ मार दिया । थप्पड़ लगा और तीन-चार गायोंने झटके देकर अपने रस्से तोड़ डाले । छोटे चाचा बड़े दृढ़ शरीरके और फुर्तिले थे । उन्होंने पिताजीको विजलीकी तेजीसे मुजाओंमें उठा लिया और भूसा रखनेवाली कोठरीमें डालकर बाहरसे द्वार बंद कर दिया । गायोंको वड़ी किटनाईसे वे फिर बाँघ पाये । कोठरी खोलकर उन्होंने पिताजीसे कहा था— भैया ! इनके सामने मुझे मत मारना ! ये पशु तो कुछ समझते नहीं । आज अनर्थ होते-होते बच गया ।

'इतनी कृतज्ञता गायमें होती है!' मैं अधिक सोच सकता तब, जब कृष्णा फिर न आ खड़ी होती। वह फिर आ गयी है। मुझे सूँघने लगी है। मैं उसके मुखपर हाथ फेरकर उसे समझानेकी चेष्टामें हूँ—'मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं ठीक हूँ। तुम चरने जाओ। तुम्हारा पेट गड्ढा बन गया है। तुम कलसे भूखी हो।' कारा, वह मेरी बात समझती होती।

'किंतु गाय कुछ पानेकी भी कहाँ प्रतीक्षा करती है ? वह तो केवल स्नेह देखती है !' कृष्णाको फिर चरवाहा ले गया है और मैं फिर सोचने लगा हूँ । रोगी मनुष्य खाटपर पड़े-पड़े दूसरा क्या करेगा । मैं सोच रहा हूँ उन दिनोंकी वात जब एक बड़े नगरके समीप रहता था, नगरसे बाहर एक मन्दिरके घेरेमें । प्रतिदिन नौ बजेके लगभग वहाँसे चलकर नगरमें आता कार्याल्यमें, और सायंकाल लौट जाता । एक मुसल्मान घोसी अपनी गायें प्रातः चराने लाया करता था उधर । एक दिन मैं समीप चरती एक बड़ी बछड़ीको पुचकार लिया । दो क्षण उसपर हाथ फेर दिये । दो गायें और पास आ सड़ी

Ä

व्रत

प्रेम

他

गायः

कर

तो ग

गयी,

जाता

सानुकृ

समय

स्सी

कष्ट ह

ग

हैं। व

ही स

होनेपर

एक :

दिया है

ने कहाँ

उनके

माणिर

रोतीन

अत्यन्त

हाय, है

हुई । उनकी गर्दन भी सहलाई । बस, उनसे जान-पहचान हो गयी । वे दूर भी चरती होती थीं और मैं नगर जानेके लिये निकलता था तो देखते ही दौड़ी आती थीं । मुसल्मान घोसी युवक कहता था—'ये मेरे पास भी इस तरह दौड़कर नहीं आतीं।'

वहाँ बन्दर बहुत थे। प्रायः सब ठाठ मुँहके ही थे। एक दिन एक मोटा ठाठ मुखका बन्दर मुझे डरानेको झपटा; किंतु उसे एक बछड़ीने दौड़ा ही तो ठिया। दूरतक दौड़कर जब वह पेड़पर चढ़ गया, तब भी वह उस पेड़के नीचे खड़ी रही कोधमें भरी। उसके सामने यह बन्दर मुझे काटने दौड़ता है, यह बात बछड़ीसे सहन नहीं हुई थी। मैं भठा क्या देता हूँ इन सबको। मेरे पास देनेको वहाँ धरा भी क्या था। मोजन तो मैं नगरमें करके जाया करता था। किंतु गायको पदार्थकी उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी स्नेहकी है। यह सर्वदेवमयी—देवता और भगवान केवठ भावके भूखे होते हैं। गायके सम्बन्धमें भी यही बात कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है।

× × × ×

'आप तिनक दूर ही रहिये! बहुत दुष्ट है यह बैछ!'

मुझे चेतावनी दी गयी। जिनकी गायका यह बछड़ा

है, वे तंग आ चुके थे। नाथमें दो लम्बी रिस्तयाँ
वाँधी थीं। दो व्यक्ति उन रिस्तियोंको दोनों ओरसे पकड़कर तब उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर करते थे।
वाँसमें लटकाकर दूरसे उसे घास डाली जाती थी। अब
वह बैल गाँव मेज देनेको मेरे पास आया था। ऊँचा,
असाधारण बलिष्ठ और कोधी बैल।

'गोजाति निर्दोष होती है। लगता है कि इसे बहुत तंग किया गया है!' मेरे मनने कहा। बच्चे प्राय: छोटे बछड़ोंको छेड़-छेड़कर उन्हें मारना सिखा देते हैं। इस बैलके साथ भी यही हुआ था। मैंने थोड़ी हरी वास हाथमें ली और बैलकी ओर वह मुडी बढ़ा है। बैलने फुंकार की; किंतु घास वह खाने लगा। हुने मुडी मैंने कुछ निकट जाकर दी। फुंकार ढीली प्र गयी। उसी शाम में उसके पास खड़ा उसपर हुन फेरने लगा था और वह मुझे सूँघ रहा था। एक सप्ताहमें उसकी नाथमें रस्सी बाँधना अनावस्थक है। गया। कोई बच्चा उसे एक स्थानसे दूसरे खूँकेय नि: शंक बाँध सकता था।

'कृष्णा!' उस दिन यह अपनी कृष्णा ही किमत गर्या । गर्मियों में इस ओर पशु बाँचे नहीं जाते। कृष्णा भी कई महीने बँची नहीं थी। रात्रिमें दूसरे पशुओं के सार गोशालामें बंद कर दी जाती थी। वर्षाके प्रारम्भे खेतमें पशु बाँघनेकी बात हुई। दूसरे पशु बँघ में किसी प्रकार; किंतु कृष्णाको जब बहुत दौड़ाया—तंग किंता गया तो वह बिमर उठी। अन्तमें मुझे पुकारा गया मैंने जाकर तिनक रूखे खरमें डाँटा—'कृष्णा! तुम यह क्या करने लगी हो शतुम माता होका मारने दौड़ती हो! छि: !' गायने जैसे मेरी बत समझ ली। वह मेरे पास आकर चुपचाप खड़ी हो गयी। उस रात वह बाँघी नहीं गयी; किंतु पूरी रात मेरे तख्तेके समीप बैठी रही।

गाय हो या बैल गोजाति मानधनी है। देवता सम्मानप्रिय होते हैं ही। कोई-कोई पशु अत्यिक भावुक होता है। आप उसको छेड़ेंगे, उसके प्रति असम्मान दिखायेंगे तो उसमें क्रोध आयेगा। इस प्रकार वह सबसे सशंक, सबको मारनेवाला वन जायगा। किंतु उसमें हिंसाकी वृत्ति नहीं है। वह खमावसे निष्पाप है। अपराध उसे स्पर्श नहीं करते।

यह गाय दूध भरपूर देती है; किंतु इससे सा^{वधान} भी बहुत रहना पड़ता है ! एक अच्छे गोसेवक^{के यह} जब मैं गया तो उन्होंने अपनी एक गाय दिख्^{लाते हुए} विह गा

-

द्वा दी।

一碗

डीली पु

सप्र हाय

। एक

त्यक हो

खुटेपा

न्तर गयी

भी कई

के साथ

प्रारममे

बँध गये

ग किया

गया |

कृष्णा !

होका

वात

ड़ी हो

री रात

देवता

यधिक

प्रति

1 報

प्गा ।

भावस

वधान

यही

家

मतलाया—'इतना कोधी पशु मुझे कभी नहीं मिला है।'

माँ! बात क्या है ! तुम मारोगी मुझे !' वे गायोंसे

प्रेम करते हैं । उनपर भी कोई गाय मारने झन्टती

है, यह बात मुझे अटपटी लगी। मैं उस गायके पास
ही चला गया। मारना ही हो तो वह मुझे पूरी चोट

पहुँचावे, जिससे उसमें पश्चात्ताप तो जागे। किंतु

गायने सिर हिलानेके स्थानपर मेरा हाथ चाटना प्रारम्भ

कर दिया।

'आपपर यह प्रसन्न है !' वे समीप आने लगे तो गाय सचमुच उन्हें मारने झपटी । बात प्रकट हो गयी, दुहते समय पैर बाँधकर उसे बहुत तंग किया जाता था । अपना अपराध जब वे समझ गये, गोमाताको मानुकूल होनेमें कितने दिन लगने थे । केवल एक समय दूध नहीं मिला । दूसरे समय गायने स्वयं पैरमें रासी लगा लेने दी । दूध थनमें रहनेसे उसे भी तो कर हो रहा था ।

× × ×

गायके सबसे बड़े प्रभावका पता तो मुझे नहीं हैं क्योंकि उसके अपार प्रभावका अनुमान कर पाना ही सम्भव नहीं । वह कामघेनु है — श्रद्धा-सेवित होनेपर प्रत्येक गाय कामघेनु है । किंतु मुझे गायने कि अद्भुत महिमा जाननेका अवसर अवश्य एक बार रिया है ।

एक वृद्ध महात्माके दर्शन करने गया था। अव के कहाँ हैं—है भी उनका शरीर या नहीं, पता नहीं। जनके पास और भी कुछ छोग बैठे थे। मैं भी प्रणाम करके बैठ गया। इतनेमें एक रोगीको छेकर होतीन न्यक्ति आये। रोगी स्त्री थी, युवती थी और अपन पीड़ामें थी। उसके पूरे शरीरमें भयंकर ऐंठन थी। क्षेप, पैर, सिर सब अकड़े जाते थे। चीखती थी,

छटपटाती थी। उसका कन्दन किसीका भी हृद्य हिला देता।

'सब कर्मका भोग है !' महात्माने शान्त खरमें कहा—'अपने पापकर्मका फल अपने ही सिर तो आयेगा। किंतु इसकी पीड़ा बहुत घट जायगी, यदि किसी निष्पापकी चरणरज इसके शरीरमें लगा दी जाय!'

उस व्यक्तिने, जो स्त्रीके साथ आया था, महात्माजीकी ही चरणरज उठायी तो वे बोले—'नारायण! इस धूलिमें क्या धरा है। यह तो पापोंका पुतला है। वेश देखकर भ्रममें पड़नेसे कोई लाभ तुम्हें नहीं होगा।'

स्वार्थ अन्या होता है। उस व्यक्तिने वह चरणरज उस स्त्रीको लगायी; किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। अब वहाँ बैठे सभी लोगोंने महात्माजीसे ही पूछा— 'निष्पाप पुरुष कहाँ मिलेगा ?'

'निष्पाप मनुष्य या निष्पाप प्राणी ?' मैंने पूछ लिया; क्योंकि महात्माजी भी निष्पाप मनुष्यका पता जानते होंगे, ऐसा कोई संकेत उन्होंने नहीं दिया।

'निष्पाप प्राणी हो तो भी ठीक है; किंतु महात्मा-जीने कहा—'नारायण, मनुष्य' ही निष्पाप नहीं होगा तो पशु-पक्षी कहाँसे निष्पाप होंगे, वे तो कर्मयोनिमें हैं ही पापभोगके छिये।

'अपने पाप वे भोगते हैं । किंतु उनमें एक प्राणीका शरीर शास्त्र निष्पाप तथा परम पत्रित्र कहता है!'मैं उठ खड़ा हुआ था—'यह गाय सर्वथा निष्पाप है।'

पासमें एक बूढ़ी गाय चर रही थी। उसके खुरोंके चिह्नकी धूछि मैं उठा लाया और गायकी महिमा उसी समय मुझे देखनेको मिली। उस खीका चिल्लाना-रोना धूलि लगाते ही बंद हो गया। महात्माजी उठकर उस बूढ़ी गायको भूमिमें पड़कर दण्डवत्-प्रणिपात कर रहे थे।

लोक-जीवनमें देवालयोंका महत्त्व

(लेखक-श्रीओंकारमलजी सराफ)

देवालय पारस्परिक सङ्गावनाके केन्द्र हैं। सङ्गावनाका लोक-जीवनमें कितना महत्त्व है, यह किसीसे भी छिपा नहीं है। आजके लोक-जीवनपर दृष्टिपात करनेसे साधारणतः विक्षिप्तता, व्यामोह, अनाचरण, दुर्भावना, परस्पर वैमनस्य तथा आध्यात्मिक भ्रमकी ही प्रधानता ज्ञात होती है। इन्हीं दुर्वृत्तियोंसे समाजमें विकृति, प्रवृत्ति और तामसी अर्थात् आसुरी प्रभावोंकी पराकाष्टा है और चारों ओर सांस्कृतिक अवनतिके ध्वंसावशेष दिखायी पड़ते हैं । इस प्रकार आजका लोक-जीवन प्राय: अस्त-व्यस्त-सा दीख पड़ता है। इस अस्त-व्यस्तताका मुल कारण है भौतिकवादी मुद्रता । मूद्रता या अज्ञान विवेकशून्य होता है। विवेक (Intelligentia) किसी प्रमाणपत्र या भौतिक समृद्धिमें नहीं होता । त्रिना विवेकके सङ्गावना उत्पन्न हो नहीं सकती; क्योंकि मूढ़ता व्यामोहका कारण है और व्यामोह विक्षिप्तता ही मानसिक और आध्यात्मिक विकृति है।

फिर प्रश्न उठता है, इस मृद्धताकी आसुरी प्रकृतिको कैसे हटाया जाय और उसके स्थानपर विवेककी स्थापना कैसे की जाय, जिससे समाजमें सौमनस्य, सदाचार और सांस्कृतिक उन्नयन उत्पन्न हो। इसके पहले कि इसके कारण और उपाय वतलाये जाय, यह आवश्यक है कि प्रवृत्ति और निवृत्तिका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। प्रवृत्ति और निवृत्तिका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। प्रवृत्ति आसक्तिका ही दूसरा नाम है। आसक्ति ही आसुरी-वृत्ति है; क्योंकि इसमें व्यामोहके कारण विवेकश्यत्यता होती है। निवृत्तिका साफ शब्दोंमें यही अर्थ है कि प्रवृत्ति अर्थात् आसक्तिका परित्याग। निवृत्तिको ही भगवान्ने गीतामें निष्काम कर्मयोग अर्थात् फलसंग-शून्य कर्मकी संज्ञा दी है। कर्मसे फलसिक्तिका चिपकना ही प्रवृत्ति है और अनासक्ति निवृत्ति। ज्ञानमें उत्तरोत्तर

हाससे निवृत्ति जो कि जन-साधारणकी भावना थी क् साधुओं, योगियों और यतियोंका कार्य मानी जाने को और सारा समाज तेजीसे प्रवृत्तिकी ओर मुड़ा । प्रवृत्ति महत्त्वाकाङ्क्षी होती है और सारे संसारपर एकाधिपका स्वप्न देखती है । फलस्वरूप एक-दूसरे आपसमें प्रतिद्वी बनकर स्पर्झा करते हैं और दुर्वृत्तियाँ अर्थात् असुलक्षे सृष्टि होती हे । निवृत्ति विवेकजन्य है, जिसमें उत्सा, आत्मबल, संयम, त्याग और सङ्गावनाके भाव हैं । इसीका दूसरा नाम देवत्व भी है । संख्या

भावनाव

श्रद्धा है

आत्मान

級斯

जडमें भ

यह हुई

ह्यसे व

नाता थ

लिये वि

और 3

देवालयों

देते थे

दया, क्ष

रोगियोंव

साधारण

और व

शिक्षालय

पयोगी उ

आचार्य

होता

वेवालयों

मनुष्यक

देवालयों

देशके

भौतिकव

यदि उप

उनका

वेड़े विश्

विज्ञानने

सांस्कृति

तो लोक-जीवनमें निवृत्तिकी जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता विवेककी है जो उसका आगा है। निवृत्ति, देवत्व, मनुष्यता, आत्म-ज्ञान और सद्वृति एक ही भावके शब्द हैं, केवल भावनाके अनुसार उनका खरूप बदलता है।

देवालयोंका लोक-जीवनमें महत्त्व बतलानेने पहले उसकी एक रूप-रेखा प्रस्तुत कर देना आवश्यक है। देवालय केवल इसिलिये पूज्य या संरक्षण योग्य नहीं है कि उनमें मुर्ति है और पूजा होती है। देवालयका अर्थ ही है वह स्थान 'जहाँ देवता वास करता है।' अश्रद्राए लोग यह पूछ बैठते हैं कि पाषाणमें परमेश्वर कैसे हैं! इसके उत्तरमें हम महात्मा गांधीके शब्दोंमें यह कह सकते हैं कि 'मनुष्यकी श्रद्धाने उनका निर्माण किया है और उसने उन्हें जो माना है, वही वे हैं। वे मनुष्यकी किसी उसने उन्हें जो माना है, वही वे हैं। वे मनुष्यकी किसी तरह महाशक्तितक पहुँचनेकी आकाङ्काके परिणाम हैं।' (हरिजन १८।३।१९३३)। गङ्गा-स्नान भले ही (हरिजन १८।३।१९३३)। गङ्गा-स्नान भले ही श्रीष्टिरीक्त जल-सेवनका उपचार हो, किंतु प्राथ औषधिसिक्त जल-सेवनका उपचार हो, किंतु प्राथ श्रावनिक या आयुर्विक रात-प्रतिशत लोग गङ्गा-स्नान वैज्ञानिक या आयुर्विक लो लाभके लिये नहीं करते; बल्कि वे भावनाकी युद्धिकर्ते लाभके लिये नहीं करते; बल्कि वे भावनाकी युद्धिकर्ते लाभके लिये नहीं करते; बल्कि वे भावनाकी युद्धिकर्ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

哥

वृत्ति

यका

દુ-દી

लकी

सगं,

तीका

है,

ाधार

वृत्ति

हिले

है।

मि

ही

द्राष्ट्र

कते

और

सी

ही

हुँ क्योंकि उन्हें गङ्गामें विश्वास है। विश्वासके विना भावनाका अस्तित्व नहीं है । भावनाका गहन रूप ही भ्रद्धा है, जिसका आधार विश्वास है और परिणाम _{आत्मानन्द} । उसी प्रकार पाषाण-पूजन मनुष्यकी उस अद्भाका प्रतीक है, जो उसे संस्कारसे मिली है। वह जडमें भी परमात्मा अर्थात् आत्मानन्दका दर्शन करता है। यह हुई देवालयोंकी भावनात्मक विशेषता, किंतु प्रत्यक्ष-ह्यसे लोक-कल्याणका पथ देवाल्योंद्वारा प्रशस्त किया बाता था । सबसे पहले वहाँ गाईस्थ्य-जीवनकी सबलताके क्षेये विवेकपूर्ण उपदेश दिये जाते थे। भावनाकी शुद्धता और अखिल मानव-समाजमें परमात्म-भावका विश्वास वालयोंसे मिलता था । शिक्षा और सद्भावना देवालय क्षे थे। जीवन-दिशाका देवालय संकेत करते थे। न्याय, र्या, क्षमा, चरित्र और मैत्रीका पाठ देवालय पढ़ाते थे। गेंगियोंकी चिकित्साके लिये देवालयोंमें व्यवस्था थी। साधारण अर्थमें देवालय मनुष्यकी मानसिक, कायिक और वाचिक समृद्धिके संवाहक और प्रवर्तक थे। शिक्षालय, चिकित्सालय, न्यायालय तथा अन्य लोको-षोगी आल्योंका एकत्रीकरण ही देवालय था, जिसका अचार्य बहुमुखी प्रतिभाका अत्यन्त ही विशाल व्यक्तित्व होता था। लोक-जीवनके सुख-दु:खका उत्तरदायित्व देगलयोंपर था । देवालय संस्कृतिके प्राण-केन्द्र थे, जहाँ मनुष्यको संस्कार मिलता था ।

इन सभी कार्योंको देखते हुए मानना पड़ता है कि देवाल्योंका लोक-जीवनमें इतना महत्त्व है, जितना महत्त्व देशके औद्योगीकरण और आधुनिकीकरणका है। कुछ भौतिकवादी तार्किक यहाँ प्रश्न उपस्थित कर सकते हैं, यदि उपर्युक्त मिसाल ही देवाल्योंके महत्त्व हैं तब आज उनका कोई महत्त्व नहीं रह गया; क्योंकि आज बड़े-वेड़ विश्वविद्यालय, अस्पताल और न्यायालय बन गये हैं। विज्ञानने मनुष्यको इतना विस्तृत कर दिया है कि वह सांस्कृतिक झमेलेमें पड़कर अब संकीर्ण नहीं वन सकेगा।

उनका तर्क सही हो सकता है; किंतु एकाङ्गीरूपसे। माना कि बड़े-बड़े विद्यालय हैं; किंतु किंतने प्रतिशत स्नातकोंमें वह विवेक है जो समाजके लिये आवश्यक है ! माना कि बड़े-बड़े अस्पताल हैं; किंतु देशके किंतने प्रतिशत लोग नीरोग हैं ! माना कि बड़े-बड़े न्यायालय हैं किंतु किंतने प्रतिशत लोग उनमें न्याय पाते हैं ! उत्तरमें शून्य हाथ आयेगा।

किंतु देवाल्योंके विद्यालय खातक नहीं पैदा करते थे। थे, सफल और सबल समाजकी इकाई पैदा करते थे। देवाल्योंके खातक प्रशासक बनकर जनताकी सेवा करते थे। भ्रष्टाचार और अनैतिकताको व्यक्तिगत खार्थके लिये प्रोत्साहित नहीं करते थे। देवाल्योंके औषधालय रोगीको रोगमुक्त ही नहीं करते थे, बिक्त रोगकी उत्पत्तिके ही वे समूल विनाशका उपाय सोचते थे। आज प्रति पाँच हजार व्यक्तिसे अधिक संख्यापर एक डाक्टर होता होगा, वह भी प्रमाण-पत्रवाला। किंतु देवाल्य सबको चिकित्सक बनाते हैं, जो अपने शरीरकी रोज ही चिकित्स करता है। देवाल्योंके न्यायालयमें न्यायके लिये बड़ी-बड़ी कानूनी पोथियाँ नहीं थीं, बल्कि विचारपित अपराधका मूल खोजता था और ऐसे दण्डकी व्यवस्था करता था जिससे अपराधक मूलका ही उन्मूलन हो।

इस प्रकार देवालयोंका लोकजीवनमें महत्त्व विशेष मालूम पड़ता है। आजके जीवनके लिये तो यह अत्यन्त ही आवश्यक हो गया है। जब हर तरफ फूट-ही-फूट है। चाहे वह समाज हो या व्यक्ति हो, राज्य हो या सरकार हो; क्योंकि अब आँखें राजनीतिकी हो गयी हैं और दृष्टियाँ भौतिकवादकी। प्रत्येक मनुष्य कञ्चनके मापदण्डसे मापा जाता है। जीवनके हर क्षणपर राज-नीतिका बोलबाला है। पार्लियामेंटसे लेकर पति-पत्नीके छोटे परिवारतकमें राजनीति और कूटनीति है, जिससे फूट बढ़ती है और समाज रसातलकी ओर जा रहा है। हमें फूट मिटाकर कञ्चनके बदले मनुष्यका मापदण्ड

विवेक और सेवा रखना होगा तथा सह-अस्तित्व और एकताके लिये राजनीतिक प्रभावका परित्यागकर मानवता-की दृष्टि भरनी होगी जो देवालयोंके माध्यमसे ही हो सकेगा । इसमें अन्यथा या अन्य विकल्पके लिये स्थान रिक्त नहीं है। आजके इस विचार-वैषम्यके युगमें लोकजीवनमें जितना महत्त्व देवालयोंका है, उतना किसीका नहीं।

आज भारतीय समाजमें अभियान प्रारम्भ हैं । सभी सुखके लिये दौड़ पड़े हैं; किंतु उन्हें वह नहीं मिलता। आज ऐसा ही एक दल क्रान्तिकी आवाज देता आ रहा है और लगता है कि निकट भविष्यमें ही एक महान् रक्तहीन क्रान्ति होनेवाली है जो चुपचाप समाजका स्रक्प बदल देगी। यह क्रान्ति प्रकाश अर्थात् सत्यकी होगी । जिसका संघर्ष असत् और अन्धकारसे होगा । सौजन्य स्थापित होगा और दुर्जनता पराजित होगी। इसकी बुनियाद भारतकी सांस्कृतिक परम्परामें पड़ी है।

भगवान् बुद्ध, महावीर, कबीर, तुलसी, नानक, दगान्द आदिने जिसे अंकुरित किया है और आधुनिक गुण गांधीने उसका प्रयोग किया । आज भी भारतके 🐯 संत इसका प्रयोग कर रहे हैं। विनोबाके पदाचारसे ए ध्ल उड़ रही है जिसकी परिणति देवालयके अरिका द्वारसे हो रही है।

देवालय धर्मप्राण-संस्कृतिके केन्द्र हैं और लेकजीक धर्म-सापेक्ष हैं। धर्म स्वयं ही एक क्रान्ति है जिसकी गति सर्वदा प्रकाशकी ओर है, आनन्द जिसका ल्या है और सर्वतोमुखी उन्नयन तथा मुक्ति जिसकी गतिविधियाँ। क्रान्ति वही है जो सर्वदा वेगवती संचालन क्रिया है, जिसका लक्ष्य हो प्रतिपल नवीनताका प्रवर्तन । अत इसी महत्त्वको ध्यानमें रखकर देवालय-संरक्षणकी आवश्यकता ज्ञात हुई है जिससे समाजकी बहुमुखी उन्नी और समृद्धि हो।

स्वप्र-समीक्षा

आज भी, मेरे आराध्य ! मैंने एक सपना देखा है । उस सपनेमें बहुत-सी और बातोंके अतिरिक्त तुम्हारे द्रवार-जैसा समाज भी था, तुम्हारे आकार-जैसा रूप भी था।

उसमें 'तुम्हारी भावना भी थी, तुम्हारी याद भी थी---उसमें तुम्हारा ही अनुमान था।

ऐसे सपनोंकी मैंने अबतक बहुत कदर की है और उन्हें तुम्हारा दर्शन ही समझा है । मैंने उन्हें अपने सुन्दर, अदेखे संसारकी झाँकी समझा है।

लेकिन वह बहुत कुछ क्या मेरे हृद्यकी भावुकता-की ही रचना न थी ? उसी भावुकताकी भूमिपर मैंने तुम्हारी पूजाके लिये बहुत-से भवन बनाये थे । उनमें कभी-कभी तुमने, लेकिन अधिकांश मेरीं भावुकतानें ही दीपक जलाये थे।

उन सपनोंको मैं आज सम्मानकी दृष्टिसे देखता हूँ। उनकी दुनियामें पहुँचकर तुम्हारी याद, तुम्हारा अनुमान अब भी मेरे कल्याणके साधन बनते हैं।

लेकिन यह बहुत कुछ मेरे हृदयकी भावुकताकी ही (चना है।

मुझे तो, मेरे पूज्य ! अव वही सपनोंकी दुनिया शरण दे सकेगी, जिसकी रचना तुम खयं करोंगे और जिसमें मेरी भावनाओं और रूप-कल्पनाओंका हाय न होगा।

वैसे तो, आज भी मेरे आराध्य ! मैंने एक सपन देखा है।

[एक तरुण साधककी डायरीसे] 2-6-80

चार व दर्भाग्य भगवा नर-ना नहीं

अहंक

महामा

कारण इन स इसीलि

अशानि

है।

खयं द्रे

जाती

किया-

गुक्का किया पाँच

कर स

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।।

राम नाम मनिदीप घर जीह देहरीं द्वार । तुलसी भीतर बाहेरहुँ जीं चाहसि उजियार ॥

साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥

जपिं नाम जन आरत भारी । मिटिहं कुसंकट होहिं सुखारी ॥

राम नाम नर केसरी कनककिसपु किलकाल । जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दिल सुरसाल ॥

आजके इस आधि-व्याधि, रोग-शोक, द्रोह-द्रेष, स्पर्धा-कल्ह, वैर-हिंसा, वैषम्य-दारिद्रच, तमसाच्छन्न बुद्धिश्रहंकार, दुर्विचार-दुर्गुण तथा दुष्किया आदि उपद्रवोंसे पीड़ित; अकाल, अवर्षा, अतिवर्षा, अग्निदाह, भूकम्प,
ग्रहामारी आदि देवी प्रकोपोंसे पूर्ण; अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, दुराचार, असदाचार, व्यभिचार और स्वेच्छाबार तथा भगवद्विमुखतारूप दुर्भाग्यसे संयुक्त अशान्तिपूर्ण युगमें विश्व-प्राणीको इन सभी उपद्रवों, प्रकोपों तथा
दुर्भाग्यसे मुक्तकर सर्वाङ्गीण सुखी बनानेके लिये तथा मानव-जीवनके चरम तथा परम लक्ष्य मोक्ष या परम प्रेमास्पद
गग्वान्के प्रेमकी प्राप्ति करानेके लिये एकमात्र 'भगवन्नाम' ही परम साधन है । सभी श्रेणियोंके, सभी जातियोंके सभी
गरनारी मङ्गलमय भगवन्नामका जप कर सकते हैं । कुल समय पहले अष्टप्रही योग था, उस समय विशेष कुल
गहीं हुआ, इससे लोगोंने माँति-माँतिसे उपहास किया । परंतु अब उसका फल सामने आने लगा है, चारों ओर
श्रान्तिके बादल लाये हैं, युद्धको घटाएँ युमड़ी आ रही हैं, आये दिन भयानक बाद, भूकम्प और दुर्वटनाओंके
कारण धन-जनका भयंकर विनाश होनेके समाचार मिल रहे हैं । मनुष्य भगवान्को भूलकर राक्षस हुआ जा रहा है ।

इन सारी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विपत्तियोंके निवारणके लिये भगवन्नाम ही परम साधन है ।

इसीलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे प्रतिवर्षकी माँति प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक
स्थं प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक नाम-जप करें तथा प्रेमपूर्वक प्रेरणा करके दूसरोंसे करायें । यही परम हित
है । गत वर्षकी माँति इस वर्ष भी—

हरें राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

— इस उपर्युक्त १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रके २० (बीस) करोड़ जपके लिये ही प्रार्थना की

गती है। नियमादि इस प्रकार हैं-

१-यह श्रीभगवन्नाम-जप जपकर्ताके, धर्मके, विश्वके सबके परम कल्याणकी भावनासे ही किया-कराया जाता है।

२-इस वर्ष इस जपका समय कार्तिक गुक्का १५ (११ नवम्बर १९६२) से आरम्भ होकर चैत्र गुक्का १५ (८ अप्रेंट १९६३) तक रहेगा। जप इस समयके बीच किसी भी तिथिसे करना आरम्भ किया जा सकता है, पर इस प्रार्थनाके अनुसार उसकी पूर्ति चैत्र गुक्का १५ सं० २०२० को समझनी चाहिये। पाँच महीनेका समय है। उसके आगे भी जप किया जाय, तव तो बहुत ही उत्तम है। करना चाहिये ही।

रे-सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध-युवा इस मन्त्रका जप

पानन

130

रिक्षित

जीवन

नेसकी

स्य है वेयाँ।

हो,

आज

गणकी

उन्नित

Poure I

मान

ाकी

नेया और

M

क्या उ

पुरानी

सांसारि

तुम्हारी

इतनी जकड़ ने

४-एक व्यक्तिको प्रतिदिन 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण ४-एक व्यक्तिका आतापुर एक माला) जप तो अवश्य करना चाहिये। अधिक कितनाभी किया जा सकता है।

ता सकता ह । ५-संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे, अंगुलियोंपर अथवा किसी अन्य प्रकारसे क्ल जा सकती है।

ता ह। ६-यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर वैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उजेके ६-यह आवर्षका गुला बता है। उन्हें समयसे हेकर रातको सोनेतक चलते-िकरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय इस मन्क जप किया जा सकता है।

था जा सकता है। ७-बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और कम टूटने छगे तो किसी दूसरे सज्जन से जप करवा छेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो स्वस्थ होनेपर या उस कार्यकी समाप्तिए प्रतिदिनके नियमसे अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर छेना चाहिये।

८-घरमें सौरी-सृतकके समय भी जप किया जा सकता है।

९-स्त्रियाँ रजोदर्शनके चार दिनोंमें भी जप कर सकती हैं, किंतु इन दिनोंमें उन्हें तुलसीकी माल हाथमें छेकर जप नहीं करना चाहिये। संख्याकी गिनती किसी काठकी मालापर या किसी और प्रकारते रख लेनी चाहिये।

१०-इस जप-यज्ञमें भाग लेनेवाले भाई-वहिन ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके मन्त्रके अतिरिक्त अपे किसी इष्ट-मन्त्र, गुरु-मन्त्र आदिका भी जप कर सकते हैं। पर उस जपकी सूचना हमें देनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें सूचना केवल ऊपर दिये हुए मन्त्र-जपकी ही दें।

११-सूचना भेजनेवाले लोग जपकी संख्याकी सूचना भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि भेजकी भी आवश्यकता नहीं है। सुचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

१२-संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणके रूपमें यदि कोई 'हरे राम हरे राम पा राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ (१०८) होती है, जिनमेंसे भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बार देनेपर १०० (एक सी) मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिनसे जो वहिन-भाई मन्त्र-जप आरम्भ करें उस दिनसे चैत्र गुक्का पूर्णिमा तकके मन्त्रोंका हिसाव इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

१३-सूचना प्रथम तो मन्त्र-जप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र-पूर्णिमातक जितना जप करने का संकल्प किया गया हो, उसका उल्लेख रहे तथा दूसरी बार चैत्र-पूर्णिमाके बाद, जिसमें जप प्रारम्भ करने की तिथिसे छेकर चैत्र-पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या हो।

१४-जप करनेवाले सज्जनोंको सुचना भेजने-भिजवानेमें इस वातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव कम हो जायगा। स्मरण रहे—ऐसे सामृहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक वनते हैं।

१५-सूचना संस्कृत, हिंदी, मारवाड़ी,मराठी,गुजराती, बँगला, अंग्रेजी अथवा उर्दूमें भेजी जा सकतीहै। १६-स्चना भेजनेका पता—'नाम-जप-विभाग,' 'कल्याण'-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) प्रार्थी—चिम्मनलाल गोखामी सम्पादकं-'कल्याण' गोरखपुर

वेदना

(लेखक--श्रीदानविहारीलालजी शर्मा 'शरण')

अन्तरतलकी लुप्त एवं मूक वेदनाको हम तुमतक कैसे प्रकट करें, मोहन ! तुम सर्वान्तर्यामी होते हुए भी बा उसे अनुभव नहीं कर रहे हो, प्यारे ! सृष्टिके आदिसे अन्ततक व्यापक इस उत्पीवनको क्या तुम अब भी उसी शानी अपनी सहज मुस्कानसे देखकर चैनकी सादक वंशी बजाते रहोगे, वंशीधर ! ×

तुम्हें क्या ज्ञात नहीं कि अब हम अपना अपनत्व तक भी तो लुटा बैठे हैं, निष्ठुर ! अपने सभी स्वजनोंसे तिरस्कृत, मांमारिक असहनीय यातनाओंसे दिनोंदिन प्रपीड़ित और अपनी इस स्वाभाविक वेदनासे दृग्ध हम कवतक संतोष कर तुहारी मधुरिमामय, शीतलतामय एवं चिर-शान्तिमय सान्त्वनाकी बाट जोहते रहेंगे, व्रजगोपकुमार !

और अधिक विलम्ब होनेसे, तुम जानते ही हो कि अपनी कैंसी दशा होगी ? व्रज-गोपिकाओंकी विरह-वेदनाको क्या 📶 शीघ्र भूछ गये, व्रजनाथ ! अपनी इस नितान्त असहनीय एवं दयनीय वेदनाकी जटिल परिस्थितिमें कृरतासे क्कइनेवाले गोपकुमार ! हम अब किन शब्दोंमें अपनी इस हार्दिक 'वेदना' को ब्यक्त करें ? तुम्हीं बताओ न जीवन्-धन !

श्रीराधा-महिमा

याऽऽविष्करोति करणाकुलकातरत्व-मक्ष्णोः कटाक्षकलया प्रणतेषु नित्यम् । प्रीति प्रियतमस्य परां दधात्यवाधां राधामुदारहद्यां सदयां नुमस्ताम् ॥ (8)

होती जिनकी करणाके ही वरुणालयसे प्राप्त रत्नराशि हरिभक्तिकी अबाधा साधा है असाध्यको जिन्होंने समाराधनासे प्रीति-रज्जुओं से नित्य मुक्तको भी बाँधा है ॥ इयामरसितन्धुको समोद भरनेके हेतु-

नेहकी नई जो सुरसरित् अगाधा हैं। हरि रसते हैं, अविराम जहाँ आत्साराम

वही ये परमातमाकी राधा हैं॥ आतमा

(?)

मोदानन्द चाहे तो यशोदानन्द चाहे क्यों न-अघ हरनेको अघ-हरन-चरन कीर्ति, तनयादि तज कीर्तितनयाके भजे-पदकंज क्यों रे पामर ! न आमरन तू। नन्दके अलिन्द या कलिन्दनन्दिनीके तट-नीके नटनागरकी चट ले सरन आधि-ब्याधि कारण उपाधिके निवारणको मन ! त्॥

राधिकारमन रट साधिकार

राधाष्ट्रमीपर]

-पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री 'राम'

まるからからなかなからなからなからなかなからなからなからないない。

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ना भी

विवी

ण हो

उनेक न्त्रका

जन-प्तिपर

नरसे

अपने कता

नेकी

राम सके बाद

(ने-ति- 19

पढ़ो, समझो और करो

(१) पिउनसे मैनेजर

अबसे प्रायः ३२ वर्ष पूर्वकी बात है । मैं कलकत्तेके प्रसिद्ध काली-मन्दिरमें बैठा हुआ था । कुछ देरके बाद दो आदमी आये । एकके हाथमें एक पुस्तक और एकके हाथमें पूजाकी सामग्री थी । पुस्तकवाला आदमी भीतर मन्दिरमें जाकर पाठमें संलग्न हो गया और सामानवाला मेरे समीप आकर बैठ गया । मैंने पूछा 'आपके साथ आनेवाले कौन हैं ?' उस आदमीने कहा—'इस समय इसी शहरमें एक धानकी मिलमें मैनेजर हैं ।' मैंने पूछा—'इस समयका क्या अर्थ है, इससे पहले क्या थे ?' इसपर उसने कहा कि 'इससे पहले ये इसी धान-मिलमें पिउन थे ।' पुनः विशेषरूपसे इस विषयको जाननेकी मेरी इच्छा देखकर उस आदमीने मुझसे जो कुछ कहा, मैं वही लिख रहा हूँ ।

'मैं नेजर साहब मुजफ्फरपुर जिलेके रहनेवाले हैं। इनका नाम है—'×× मिश्र ।' मिश्रजी इसी मिलमें उन्नीस रुपये मासिक वेतनपर पिउनका काम करते थे। आजसे आठ वर्ष पहलेकी बात है। मिश्रजी छुट्टी लेकर अपने घर जा रहे थे। रेलके जिस डिब्बेमें मिश्रजी बैठे थे, उसी डिब्बेमें इनके समीप ही एक 'सेठजी' भी बैठे थे। देवघर स्टेशनपर सेठजी गाड़ीसे उतर गये और एक लाल रंगका गनिया छोड़ गये। मिश्रजीने सेठजीको पुकारा किंतु विशेष भीड़ होनेके कारण सेठजी सुन न सके। कोई अन्य व्यक्ति दखल न देने लगे, इसलिये मिश्रजीने उस गजियेको लेकर तुरंत छिपा दिया। कुछ देरके बाद घबराये हुए सेठजी उस डिब्बेमें आकर पूछने लगे—'भाइयो ! आपलोगोंने एक गजिया देखा है क्या ?' यह मुनकर मिश्रजीने सेठजीसे कहा कि भाजिया किस रंगका है और उसमें क्या चीज है १' सेठजीने बताया कि भाजिया लाल रंगका है और उसमें दस हजारके नोट हैं, नौ हजारके सौ-सौ रुपयेके और एक हजार दस-दस रुपयेके हैं। विश्वास हो जानेपर मिश्रजीने सेठजीके हाथमें गजिया देकर कहा कि 'अपने नोट गिन लीजिये। हमने तो आपको पुकारा था किंतु आपने सुना नहीं, हम इसी उधेड़-बुनमें थे कि क्या करें, तबतक आप आ ही गये। फिर सेठजीने नोट गिने। नोट न्यों-के-त्यों पूरे थे। तदनन्तर सेठजीने पाँच सौ रुपये मिश्रजीको पुरस्कार देना चाहा किंतु मिश्रजीने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि 'सेठजी ! ये रुपये आपके थे, इसने आपको दे दिये, इसमें पुरस्कारकी कौन-सी वात है। इस न

देते तो बेईमान थे, किसीकी चीज उसे दे देना तो मानका मात्र है। इसमें वड़ाई क्या है ११ अन्तमें सेठजीने मिश्रजीन पूरा पता जानना चाहा किंतु मिश्रजीने केवल इतना ही काल कि भी मुजफरपुर जिलेका रहनेवाला एक गरीव बाह्मण हैं। एक धानकी मिलमें पिउनका काम करता हूँ। इससे विशेष परिचय देनेसे लाचार हूँ। तदुपरान्त मिश्रजीक धन्यवाद देकर सेठजी चले गये। और मिश्रजी भी अभे घर चले गये।

He.

मिल

म्या

हजार

रुपये

भेरे व

सकता

संसार

शक्ति

करनेव

मिश्रर्ज

विशेषर

कि 'अ

नहीं है

होने ल

शोरगुर

वताया

गये हैं

विशेषस

कर्मचार

एक स

चोरी हं

पाये गां

नो अप

मिलनेवे

वड़ी ना

सचमुच

अपने स

आप मे

'आप इ

से

अब हम इसके दो वर्षकी बात कह रहे हैं—

मिश्रजी सचाईके साथ मिलमें काम कर रहे थे। ये ईमानगर सच्चे, सहृदय, बड़े बुद्धिमान, पढ़े-लिखे तथा कार्य-निपुण थे,

माग्यवरा ही पिउनकी छोटी नौकरी कर रहे थे। किंतु छोटें लेकर बड़े तक सभी कर्मचारी इनसे कुछ नाराज रहा करते थे।

इसका प्रधान कारण यह था कि इनके रहते उन लोगोंके मनमें सदैव खटका बना रहता था। वे मनमानी नहीं कर पाते थे। एक दिन एक प्रधान कर्मचारीने दोनार कर्मचारियोंके साथ मिलकर मिलकी केस-बक्सका ताल तोई दिया। उसमेंसे पाँच हजार रुपयेके नोट निकाल लिये और मिश्रजीका नाम लगा दिया। प्रधान कर्मचारीने अमें मेलके कुछ लोगोंसे यह कहला भी दिया कि 'इन्हें इस परी केंगल में कुछ दवाये निकलते, चवराते जाते हुए इमलोगोंने देखा है।' अब मिश्रजीको बचनेके लिये कोई भी उपाय न रहा।

मिलमालिकने मिश्रजीसे कहा कि 'मिश्रजी! आप तुरंत रुपये दे दीजिये अन्यथा आपपर पुलिससम्बन्धी कार्रवाई की जायगी। मंयोगवश इसके दूसरे दिन उपर्युक्त उन्हीं सेठका (जिनकी देवघर स्टेशनपर मिश्रजीसे मेंट हुई थी) एक कर्मचारी कार्यवश उसी मिलमें गया था, उसने सारी बातें हुनी और लौटकर पाँच हजार रुपयेके गायब होने तथा मिश्र पिउनपर चोरीका अभियोग लगनेकी बात सेठजीको सुनायी समाचार सुनते ही सेठजी अवाक् रह गये और सोचने ही कि 'कहीं वह अपूर्व त्यागी ब्राह्मण ही तो नहीं है। वह मिल्में पिउनका काम ही तो करता था। आजकल ऐसे सबी व्यक्तियोंको लोग अपना काम निकालनेके लिये द्वेषवर्श लार्म कर फँसाया करते हैं। खैर, जो हो देख ही क्यों न हैं। बै सोचकर सेठजी दस हजार रुपयेके नोट अपने पास लेकर तुरंत उस धानकी मिलमें पहुँच गये और पता लाकि मिश्रजीसे भेंटकर सारा हाल जान लिया। सेठजी कर्मवारिकें के प्रवासकी के षडयन्त्रकी बात सुनकर बड़े दुखी हुए और व्रंत

निवताः

श्रिजीश

वतावा

मण है।

इससे

श्रिजीको

अपने

\$-

निदार

पुण घे,

छोटेसे

ते थे।

लोगोंके

हीं कर

रो-चार

ग तोड़

और

अपने

घरसे

गेगॉने

रहा।

तुरंत

है की

ठका

सुनी

मिश्र

यी।

स्रो

लमं

सर्वे

TH-

र्यो

郁

取

मिलमालिकसे भेंट करने चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने _{मिलमालिकसे} पूछा कि 'आपकी समझमें '''मिश्र चोर हैं मा १' इसपर मिलमालिकने कहा कि 'इसमें क्या संदेह है, वह अवश्य चोर है। उसे रुपये ले जाते लोगोंने देखा है। इते समझाया जा रहा है । रूपये न देनेपर हम उसे अवश्य क्षेत्र भिजवा देंगे।' इस प्रकार रूखा उत्तर सुनकर सेठंजीने गुँच हजारके नोट देते हुए कहा कि 'लीजिये आपके पाँच **जार रुपये ।** अब तो वह छूट सकता है न ?' मिलमालिकने हुए हे लेकर पूछा 'किंतु आप ये रुपये क्यों दे रहे हैं ?' भी यहाँ उसके रुपये जमा थे और मैं यह निस्संकोच कह कता हूँ कि वह चोर कदापि नहीं है। वरं ऐसा सचा आदमी हंसारमें मिलना दुर्लभ है। आपमें अच्छे-बुरेकी पहचान करनेकी राकि नहीं है।' सेठजीने कहा। मिलमालिक और कुछ वातें करनेकी बाट देखते ही रह गये और सेठजी तरंत वहाँसे उठकर मिश्रजीके पास चले आये। मिश्रजी इस विषयमें कहीं विशेषरूपसे पूछ-ताछ न करें, इस अभिप्रायसे आते ही कहा कि आप तुरंत मेरे साथ चलिये, अव किसी प्रकारका झंझट नहीं है।

सेठजी मिश्रजीसे यह कह ही रहे थे कि वाजारमें शोरगुल होने लगा 'चोर पकड़ा गया ! चोर पकड़ा गया !' इस प्रकारका ग्रोएड सुनकर सेठजीने बाहर जाकर लोगोंसे पूछा, तव उन्होंने काया कि 'नाम लगाया गया बेचारे मिश्रजीका और पकड़े गये हैं अमुक प्रधान कर्मचारीजी ।' सेठजीके द्वारा पुनः निगेषरूपसे पूछे जानेपर उन लोगोंने कहा कि 'प्रधान कर्मचारीजी अपनी स्त्रीकी वीमारीका तार घरसे मँगाकर कि सप्ताहकी छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। स्टेशनपर लोगोंकी जिर बचाकर वे बार-बार रुपयोंको देख रहे थे। मिलमें चोरी होनेका हाल पुलिसको मालूम था। अतः एक सिपाहीके मनमें शक हुआ। प्रधान कर्मचारीजी गिरफ्तार किये गये और उनके पास मिलकी मुहर लगे हुए नोट भी गये गये हैं।'

इन सव वातोंको सुनकर सेठजी मिश्रजीको साथ लिये बो अपने घर जा रहे थे सो घर न जाकर मिलमालिकसे मिलनेके लिये चले गये। सेठजीको देखते ही मिलमालिकने बड़ी नम्रतासे कहा कि 'सेठजी! आपका कहना सत्य है, बचमुच मुझमें आदमी पहचाननेकी शक्ति नहीं है। आप अपने रूपये ले लीजिये।' साथ ही मिश्रजीसे कहा, 'मिश्रजी! आप मेरा अपराध क्षमा करें।' इसपर मिश्रजीने कहा कि आप इस बातके लिये निश्चिन्त रहें। मेरे मनमें किसी प्रकारका दुःख नहीं है। इसके बाद सेठजीने कहा कि भ्ये रुपये आप मिश्रजीको ही दे दीजिये। मेरे जिम्मे तो अभी इस देवरूप मानवके पाँच हजार रुपये और हैं। मिल-मालिकने रुपये मिश्रजीको देना चाहा, सेठजीने भी बार-बार अनुरोध किया। परंतु मिश्रजीने सर्वथा अस्वीकार कर दिया। तब सेठजीको ही रुपये वापस लेने पड़े।

मिल-मालिकने सेठजीकी इतनी सहानुभूति, द्यालुता और प्रीति मिश्रजीके प्रति देखकर इसका कारण जानना चाहा। तव सेठजीने देववर स्टेशनकी (दस हजार रुपयेको भूल जाने और मिश्रजीके द्वारा उन्हें छौटानेकी) बीती बातोंको सुनाकर मिल-मालिकके साथ ही वहाँ उपस्थित जन-समुदाय-को आश्चर्यचिकत कर दिया । इन सब बातोंको सुनकर मिल-मालिकके मनमें मिश्रजीके प्रति अट्ट श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। उन्होंने सेठजीके सामने ही मिश्रजीसे कहा-'मिश्रजी! हम अपने घोर अपराधोंके लिये बार-बार आपसे क्षमा चाहते हैं। आपके प्रति इमने बड़ा अन्याय किया है, आप क्षमा कीजिये । साथ ही आपसे एक वात और कहना चाहते हैं। आप उस बातको अवश्य स्वीकार करें । कहना यह है कि दूसरे कारोबार विशेषरूपसे वढ़ जानेके कारण इम आजकल बहुत व्यप्र रहा करते हैं। अतः हम आपको इस मिलका मैनेजर बनाना चाहते हैं। हमारे विचारसे आपके साथ किये गये अन्यायका यह एक प्रायश्चित्त भी है। यहाँ सब काम प्रायः हिंदीमें ही होते हैं, किंतु हमने सुना है कि आप काम चलाने लायक अंग्रेजी भी जानते हैं ।' इसपर अपनी असमर्थता दिखाते हुए मिश्रजीने कहा कि 'यह बात तो ठीक है कि मैं कुछ-कुछ अंग्रेजी अवस्य जानता हूँ किंतु इतने बड़े कामके मैनेजर वननेकी योग्यता तो मुझमें नहीं है।

यह सुनकर मिल-मालिकने सेठजीसे कहा कि 'सेठजी! मैं जान गया हूँ इनमें सारी योग्यता है। आप इन्हें समझा दें। यदि मिश्रजी मेरे यहाँ यह काम नहीं करेंगे तो मेरे मनमें असह्य दुःख होगा। 'तदनन्तर सेठजीके बहुत कुछ समझाने-बुझानेपर मिश्रजी मैनेजरीका काम करनेके लिये राजी हो गये। फिर बोले कि 'खैर, आपसे मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ। आपका आदेश पालन करनेके बाद मैं आपसे यह पहली याचना कर रहा हूँ, आशा है आप अवश्य स्वीकार करेंगे।' मिश्रजीकी वात सुनते ही मिल-मालिकने कहा—'बोलिये।' स्वीकृति मिल जानेपर मिश्रजीन कहा कि—'प्रधान कर्मचारीको आप जेल मत मेजिये और उनका काम भी मत छुड़ाइये। मैं उनकी जिम्मेवारी लेता

संस्था

राजारा

ग्र कर

हरदयाल

साथ पत

मेरी वेंहि

की फि

र्त स्

बला गय

प मुझे

ग्या। इ

बैटकर

व्य मुझे

तुम्हें क्य

गजाराम

राजाराम

और बोर

सँभाली

भामके र

सहित ह

आधा हि सहनसे उ

नेपुण धे

लि-देख

वैक वडे

क्लकी

वेवा की

की जर्ल्द

फिर

हूँ।' मिश्रजीकी बात सुनते ही सभी उपिथत लोग धन्य-धन्य कहने लगे और गढ्गद होकर मिल-मालिकने कहा कि "मिश्रजी ! तुम सचमुच देवता हो । खानमें पड़े बहुमूल्य हीरेको खानका 'मालिक' नहीं किंतु जौहरी ही पहचानता है। उसी प्रकार मिलमें पड़े हुए तुम्हारे-जैसे रलको हमने आजतक नहीं पहचाना । संयोगवश इन श्रीमान् सेठजीने रतकी पहचान वताकर आज हमको कृतकृत्य कर दिया।"

पुनः उस पूजाकी सामग्री लानेवालोंने मुझसे कहा कि 'देखिये, पण्डितजी सचाईका कैसा फल है कि हमारे मिश्रजी साधारण पिउनसे मिल-मैनेजर हो गये। महल्लेके लोग इनपर इतना विश्वास रखते हैं कि देखकर आपको आश्चर्य होगा। इन सव बातोंको सुनकर मैंने कहा कि भाई ! ऐसे सच्चे आदमीकी सत्कार-सेवा करनेके लिये संसारके सभी लोगोंको तैयार रहना ही चाहिये। इसमें आश्चर्य क्या है।

> --पं॰ रामविलास मिश्र, कथावाचक 'ऋण चुका रहा हूँ'

वर्षोंसे हम उन्हें एक ही तरहका जीवन यापन करते देख रहे हैं। प्रोफेसर होनेपर भी उनमें किसी प्रकारका आडम्बर नहीं दिखायी देता। उच कक्षाकी अनेकों उपाधियोंके साथ असाधारण विद्वान् होनेपर भी उनके जीवनमें अद्भुत सादगी थी। धीमी चालसे चलते इन प्रौढ़ पुरुषको कोई नया आदमी देखे तो इन्हें बहुत थोड़ी आयवाला, बड़े कुटुम्बका पोषण करनेवालाः रात-दिन अदालतमें लिखने-पढ़नेका काम करनेवाला क्लर्क ही समझे । इनके बाहरी रूपको देखनेवाला इनकी आन्तरिक शक्तिसे विल्कुल अपरिचित ही रहता। इनके स्वभावकी विरोषताओंको गहराईसे देखनेवाला सहज ही आकर्षित होकर इनका अपना वन जाता।

ये स्वेच्छासे ही अविवाहित थे। इनका सारा समय अपने प्रिय विषयके अभ्यासमें ही बीतता । इनके एकाकी जीवनका रहस्य पाना सम्भव नहीं था, इनके सम्पर्कमें आनेवाले सभी लोग इतना अवस्य देख सकते कि इनके जीवनमें मिथ्या भौतिक वैभवविलासका जरा भी स्पर्श नहीं था।

इनके निकटवर्तियोंके मनमें यह प्रश्न तो उठा करता कि इनकी आमदनी अच्छी होनेपर भी ये इस प्रकारका जीवन क्यों विता रहे हैं। परंतु इनके आन्तरिक जीवनकी झाँकी करनेकी किसको फ़रसत थी।

बार-बार पृष्ठे जानेपर किसी धन्य घड़ीमें इनके मुखसे

इनके भूतपूर्व जीवन-सम्बन्धी कुछ उद्गार निकल एहते। इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवनकी दो-एक वातें वतायी थी। इन्होंने कहा था कि इनके विद्यार्थी जीवनमें इनके कुरुक्त स्थिति बहुत ही तंग थी। यहाँतक कि इनकी पहाईमें के अङ्चन पड़नेकी परिस्थिति आ गयी थी। इन्हें जब मैद्रिकी परीक्षामें बैठना था, उस समय इनकी जैव विल्कुल लाई थी। ऐसी विपत्तिके समय इनके बड़े भाईने इनको क्हीं पाँच रुपये उधार लाकर दिये थे और कठिन मजदूरी करके व्याजसमेत उस ऋणको चुकाया था। भाईके इस प्रेमको रे जीवनभर नहीं भूल सके । भाईकी संतानोंकी उन्नतिके लिये ही इन्होंने यह वेष धारण किया था। अपनी आमर्तीक अधिकांद्रा ये उनको देते रहे । अपनी अधिकांद्रा आवश्यकताओं को घटाकर ये अपने कर्तव्यपालनमें अटल रहे। इनके सम्पर्कमें आनेवाले एकाध पुरुषको ही इस बातका पता ला था । इन्होंने कहा था-- भावस्निन्ध हृदयसे दी हुई इस मूल-वान् सहायताका ऋण अभी पूरा चुकाया नहीं गया है-चुका रहा हूँ। भातृप्रेमका यह उदाहरण सचमुच ही वहा प्रेरणादायक है। ---मनुभाई देसाई

> (3) विद्यालयकी मित्रता

हरदयालकी पत्नीका देहान्त हो गया । घरमें दो छोटे बच्चे । दो-तीन सालतक पत्नीकी टी॰ बी॰ की बीमारीमें हरदयालके पास जो कुछ था, सब खर्च हो गया, कुछ ऋण भी हो गया। सेवा करनेवाला दूसरा कोई न होनेके कारण हरदयालको घर रहना पड़ता, इससे उसकी नौकरी भी छूट गयी। गरीबी ही उसकी स्त्रीकी टी० बी० का भी प्रधान कारण था । किसी तरह पिताने बी॰ ए॰ तक पढ़ाया था। माता पहले मर गयी थी। पाँच साल हुए, पिता भी वल बसे थे। पत्नीके चले जानेपर तो वह अय सर्वथा निरायना हो गया था। इधर चिन्ता-कष्टके मारे उसका अपना खारण भी बिगड़ रहा था। नौकरी कहीं लग नहीं रही थी। वर्ष कुछ भी रहा नहीं। कैसे बचोंको पाले, क्या करे।

एक दिन वह घरसे निकलकर कहीं नौकरीकी तलाम जा रहा था। एक लोहेके व्यापारीके यहाँ कुछ आदिमियोंकी आवस्यकताका विज्ञापन निकला था, किसीने उसे बताया वी वह वहाँ पहुँचा। अंदर जाकर वह वहाँके क्रकी मिली दरखास्त लिखी और उस फर्मके मालिकके पास भेव दी। हरदयाल बाहर बैठा रहा। इसी बीच मालिकने उसे अपने

वेसे ही र

नहते।

थें।

हुम्क्षे ईमं भी

दिन्न

वाली

वहींसे

करके

को वे

िंदे

स्नीका

ताओं-

इनके

ला

मूल-

- B

वड़ा

देसाई

छोटे

मारीमें

规则

कारण

द्ध्य

प्रधान

था।

चल

श-सा

REA

घरमं

शिम

觨

वी

ग।

विक् भीतर बुलाया। वह गया, फर्मके मालिकका नाम था— गुजारम। हरदयाल उनके कमरेमें जाकर खड़ा हो गया। गुनाराम उसकी ओर वड़े ध्यानसे देखने लगे। फिर सहसा उठकर हरदयालके गले लगकर मिलने लगे । हरदयाल तो क्कानका-सा रह गया। राजारामने हरदयालका हाथ पकड़-त्र कुर्सीयर अपने पास वैठा लिया और कहा—'भैया हत्याल ! तुम मुझे भूल गये क्या ? हमलोग हाई स्कूलमें स्य पढ़ते थे। तुम मुझसे बहुत प्यार करते थे। एक दिन भी वंसिल खो गयी थी, मुझे जरूरी सवाल लिखने थे। हा उदास चेहरा देखकर तुमने अपनी पेंसिल मुझे दे दी वी फिर तो तुम सदा ही मुझपर वड़ा प्रेम करते थे। र्ह स्तल छोड़नेके बाद में अपने पिताजीके पास कलकत्ते ब्ल गया था। वहीं मैंने बी० ए० किया। फिर यहाँ छौटने-त मुझे भयानक चेचक निकली, उसीसे मेरा चेहरा बदल ला। इसीसे तुम मुझे नहीं पहचान सके । मैंने कलकत्तेसे कैंकर यह नया व्यापार किया और भगवान्की द्यासे आज म मुझे मिल गये । मुझे इतना आनन्द हो रहा है कि मैं वह स्नेहसे वतलाऊँ। यों कहकर हरदयालकी ओर वड़े स्नेहसे ाजराम देखने लगे । उनकी आँखोंमें आँसू, छलक आये ।

फिर पूछनेपर हरदयालने अपनी सारी हालत बतायी । जाराम उनकी दुःखद स्थितिकी बात सुनकर रोने लगे और बेले—भाई हरदयाल ! तुम यहाँ रहो और इस कामको कँमालो । मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ । आजसे तुम्हीं इस भ्रमके मालिक हो ।' बहुत आग्रह करके राजारामने बचों गहित हरदयालको अपने घर बुला लिया । फार्ममें उनका अभा हिस्सा कर दिया और ठीक अपने ही समान रहन- किसे उनको रखने लगे । हरदयाल ईमानदार तथा कार्य- निपुण थे ही । दिनके चक्करसे कष्ट उठा रहे थे । उनकी कि वहे भाईकी तरह बड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह बड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह बड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह बड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहे भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहें भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहें भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहें भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहें भाईकी तरह वड़े मान-सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहें भाईकी प्रमान सम्मानसे रक्खा और अपनी कि वहें भाईकी स्वास स्व

(४) ईमानदार और निर्लोभी

अभी कुछ ही दिनों पहलेकी वात है। मैं स्थानीय स्टेट किमें एक सरकारी बिलके रुपयेका सुगतान लेने गया। काम-के जल्दीमें या अन्यमनस्कताके कारण मैं भूलसे कम रुपये किर चला आया। दूकानपर भी मैंने रुपये नहीं गिने, भी ही रख दिये। परंतु शामके समय मेरी दूकानपर बैंक- का पोहार आया और वोला कि 'वेंकका हिसाव देते समय मेरे पास रुग्ये अधिक हुए और जाँच करनेपर पता लगा कि आपको रुप्ये कम दिये गये। अतः वे बाकीके रुप्ये देने आया हूँ—ये रुप्ये लीजिये।' में उसकी बात सुनकर दंग रह गया उसकी ईमानदारी और कर्तव्यिनिष्ठाको देखकर। इस विगड़े जमानेमें, जबिक अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित पदाधिकारी दूसरेका धन हड़प करनेमें संकोच नहीं करते, न्यायसे हो या अन्यायसे—धन बटोरनेमें ही सब लग रहे हैं—एक मामूली हैसियतके कर्मचारीकी यह ईमानदारी बास्तवमें प्रशंसनीय है। विशेषकर ऐसी अवस्थामें जबिक वह इन रुप्योंको अपने आप रख सकता था। भगवान् करे हमारे देशके सब माई इसी तरह ईमानदार और निलीमी हों। सुगतानके रुपये— ४५५६,१ न० पै०थे।

(५) हृद्य-परिवर्तन

शास्त्री शंकरलाल माहेश्वरके जीवनका यह प्रसंगहै।

शास्त्रीजी अपनी जवान उम्रमें एक दिन घरमें पूजा-पाठ कर रहे थे। उस समय कोई आटा माँगनेवाला ब्राह्मण आया। 'नारायण प्रसन्न' शब्द सुनकर शास्त्रीजीने सोचा कि घरमें कोई होगा नहीं, वेचारे ब्राह्मणको बाट देखनी पड़ेगी, वे पूजा छोड़कर उठे और वरामदेकी ओर गये तो उन्हें दिखायी दिया एक बूढ़ा ब्राह्मण नीचे माँजकर उलटी रक्ती हुई थाली-कटोरी लेकर, उन्हें आटेकी झोलीमें डालकर जल्दी-जल्दी वाहर निकल रहा है। शास्त्रीजीने प्रकारा। वह ब्राह्मण और भी जोरसे चलने लगा। तब शास्त्रीजीने बाहर निकलकर उसे वापस बुलाया । वह लौट आया । शास्त्रीजीने कहा-'मैं पूजामें था, इससे आपको वाट देखनी पड़ी, क्षमा करें और कुछ ठहरें तो मैं सीधा दे दूँ।' यों कहकर वे ब्राह्मणको बरामदेके झुलेमें बैठाकर खयं सीधा लाने जाने लगे। पर उनको रोककर ब्राह्मणने कहा- 'शास्त्रीजी! मैं तो तम्हारा अपराधी हूँ, मुझे सीधा नहीं चाहिये । मैं तो नीचे रक्खी हुई तम्हारी थाली-कटोरी लेकर चल दिया था। १ इतना कहकर उसने थाली-कटोरी निकालकर रख दी। शास्त्रीजीने कहा- थह मैं जानता हूँ, पर आप मेरे अपराधी हैं यह दुःख न करें। कोई भी मनुष्य पहले अपने प्रति अपराध करता है, इसके बाद ही वह दूसरेके प्रति कर सकता है। अपरिग्रह ब्राह्मणका जीवन-व्रत है। इतनेपर भी इस उम्रमें आपने इस प्रकार बर्तन लिये, इससे आपकी स्थितिको मैंने समझ लिया और अब आपको सीघा देना ही मेरा धर्म है। आप मेरे लिये खेद न कीजिये। अपने धर्मको सँभालिये। यो कहकर शास्त्रीजीने उन्हीं थाली-कटोरीमें सीधा भर दिया । इतना ही नहीं धीसे भरा हुआ एक लोटा रखकर कहा-'थाली, कटोरी और लोटा-ये तीनों वर्तन साथ ही होने चाहिये। अतएत अब आप इन तीनों बर्तनोंके साथ सीघा स्वीकार कीजिये।

वृद्ध ब्राह्मण ढीले पड़ गये और शास्त्रीजीने इस प्रकार सीधा स्वीकार कराया, तभीसे वे वृद्ध इन तरुण शास्त्रीके शिष्य बन गये । उनका जीवन ही बदल गया । इसके बाद वे दिनभरमें एक बार भोजन करते । सातसे अधिक घरोंमें आटा माँगने नहीं जाते और किसीके भी दरवाजेपर ग्यारह बार गायत्री जपमें जितना समय लगता, उससे अधिक नहीं ठहरते। कोई अपंग या अन्धा मिल जाता तो उसे पहुँचा आते। किसीपर च्यादा बोझा देखते तो उसका कुछ बोझ खयं उठाकर उसके घर पहुँचा आते । शास्त्रीजी अपने यहाँ नित्य वेदान्तकी कथा सुनाते तो वे नियमितरूपसे एकाप्रताके साथ उसे सुनते। बीमार होते तो भी आते । उनकी अन्तिम बीमारीके समय जब वे तीन-चार दिन नहीं आ सके थे, तब शास्त्रीजी रोज उनके यहाँ जाकर उस दिनका कथा-प्रसंग सुना आते। (अखण्ड आनन्द) — मुकुन्दराय, वि० पाराशर्य

विश्वासके साथ मन्त्र-जापका फल

कबीर सब जग निरधना घनवंता नहिं कोय। धनवंता सो जानिये जाके राम नाम धन होय।। में किसी बड़े संकटमें फँस गया। मनमें बहुत क्लेश रहने लगा। जब कोई उपाय नहीं दिखायी दिया तब अपने इष्टदेवके नामका जाप करते हुए मैंने-

वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥ दीन दयाल बिरिदु संमारी। हरहु नाथ मम संकट मारी।। इस मन्त्र और चौपाईका जाप ग्रुरू कर दिया । कुछ ही दिनोंमें मेरा संकट दूर हो गया और मनको बहुत ही शान्ति मिली । यह मन्त्र श्रीमद्भागवतका है । जब जरासंधने दस हजार राजाओंको कैदमें डाल दिया, तब उन राजाओंको दुखी देखकर श्रीनारदजीको बड़ी दया आयी। श्रीनारदजीने जेलमें जाकर उन राजाओंको यह मन्त्र बताया। उन्होंने श्रद्धा और प्रेमसे इसका जाप किया। फलतः भगवान् श्रीकृष्णने

जाकर जरासंधको मरवाया और उन राजाओंके क्लेक जाकर जराजना में भी इस मन्त्रका जाप कें दूर करों । साथ-ही-साथ ह सुन्दरकाण्डकी चौपाई भी याद आ गयी। जन राजा श्रीसीताजीको अशोकवाटिकामें कैद करके दुख दिया, यहाँ

मास दिवस महुँ कहा न माना । तौ मैं मारिव काढ़ि कृपाना। तत्र श्रीसीताजीने श्रीहनुमान्जीसे इतना ही कहा था-दीन दयाल बिरिदु संमारी । हरहु नाय मम संकर मारी॥ भगवान्ने रावणको मारकर श्रीसीताजीका संकट दूर कर दिया । मुझे इस मन्त्र और चौपाईमें पूरा विश्वास हो गया। विश्वासके सहित जपनेसे मेरा संकट तो दूर हो ही गया पर मनको जो शान्ति मिली, बस मैं ही जानता हूँ।

एक दिन मैं सोचने लगा चौरासी लाख योनियों भटकनेसे च्यादा और क्या संकट होगा । गर्भवास औ मृत्युके समय महान् कष्ट होता है।

को दीर्घरोगो भव एव साधो किमीषधं तस्य विचार एव।

स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने बड़ा रोग वार-वार जन्म लेना ही बताया है। साथ-ही-साथ उसकी दवा भी बता है। (परमात्माके स्वरूपका मनन)। मेरा मन तो यह कहता है कि यह मन्त्र और वह चौपाई मुझे चौरासीके चक्करों भी बचा देगी। मैं तो अब नियमसे अपने प्रभुके नामका जा करते हुए इस मन्त्र और चौपाईका भी जाप करता हूं।

मुझे 'कल्याण'से बहुत ही सहायता मिली है। इसलिये कल्याणके पाठकोंसे मैं यह निवेदन करता हूँ कि अपने इष्टदेवके नामका जाप तथा ध्यान करते हुए जितना उर्वित समझें-

परमात्मने। कृष्णाय वासुदेवाय हरये नमः॥ प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो दीन दयाल बिरिदु संमारी। हरहु नाथ मम संकट मारी॥ इस मन्त्र और चौपाईका भी विश्वासपूर्वक जाय प्रि दिन कर लिया करें। कुछ ही दिनोंके बाद देखिये ^{इस्क्र} चमत्कार ।

आसाराम व्यात

क्टेशको 14 केंद्र साथ द

गेग ३६

रावणने याः, यहाँ

कृपाना॥ ॥ था— मारी॥

दूर कर गया। गया पर

योनियोंमें ास और

ार एव। म लेना ा दी।

त्रा । इ. कहता इ.स. भी का जाप

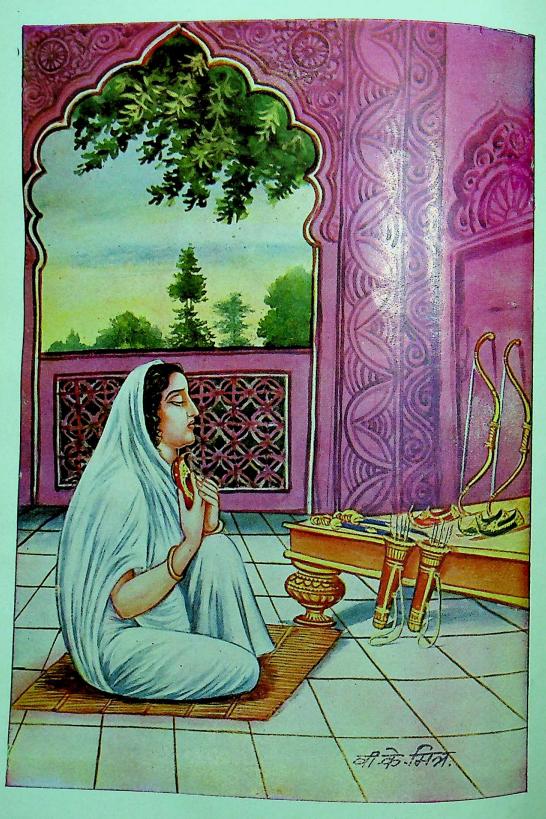
हा जाप हुँ। इसल्प्रि अपने

उचित

। गारी ॥ प्रतिः

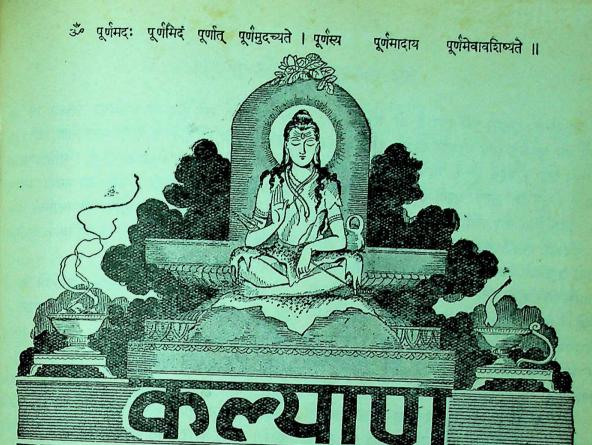
व्यास

रामके वियोगमें कौसल्या



बार बार उर-नैननि लाबति प्रभुजूकी ललित पनहियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



उमासहायं परमेश्वरं प्रभं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा म्रुनिर्गच्छति भृतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०१९, नवम्बर १९६२

संख्या ११ पूर्ण संख्या ४३२

रामके वियोगमें कौशल्या

जननी निरखित बान-धनुहियाँ।
बार-बार उर-नैनिन लावित प्रभुजू की लिलत पनिहयाँ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावित किह प्रिय बचन सबारे।
उठहु तात ! बिल मातु बदन पर, अनुज-सखा सब द्वारे॥
कबहुँ कहित यों, बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ भैया।
बंधु बोलि जेंइय जो भावे गई निछाविर मैया॥
कबहुँ समुझि बन गवन रामको रहि चिक चित्र लिखी-सी।
तुलिसिदास वह समय कहे तें लागित प्रीति सिखी-सी॥

-गीतावली

कल्याण

याद रक्खो-तुम्हारी वही दशा है जो हरी-हरी घास खानेमें और वकरीके साथ सहवास करनेमें लगे हुए कुछ ही समय वाद कसाईके छूरेके नीचे आनेवाले वकरेकी होती है। तुम इस समय अपनी रुचिके अनुसार खान-पान, मौज-शौक, बाल-बच्चे, कुटुम्ब-परिवार, धन-ऐश्वर्य, पद-अधिकार, उन्नति-उत्थान और विकास-प्रकाश आदि अनेकों प्रवृत्तियोंमें लगे हुए एक क्षणके लिये भी आत्म-विचारके लिये समय नहीं पा रहे हो; पर यह निश्चय समझो—तुमको बिना ही जताये, तुम्हारी आवश्यक से-आवश्यक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तिका कुछ भी ख्याल न करते हुए मृत्युदेवता सहसा आ जायँगे और तुम्हारी सारी प्रवृत्तियोंका सम्लोन्मूलन कर डालेंगे।

याद रक्खो—कसाईका वकरा पशु है, वह यह नहीं समझता कि कुछ ही क्षणों पूर्व उसके सामने ही उसीके सहश मोटा-ताजा एक वकरा तेज छूरीके घाट उतारा गया है, वही दशा तुम्हारी भी होनेवाळी है। वह अज्ञान है, पशु है पर तुम तो मनुष्य हो। तुम्हें तो यह ज्ञान होना चाहिये कि जैसे मेरा एक सम्बन्धी वन्धु अभी मौत-के विकराळ गाळमें चळा गया है, वैसे ही मुझको भी जाना पड़ेगा और उस समय यहाँके 'मैं' तथा 'मेरे' कहळाने या माने जानेवाळे तमाम पदार्थोंसे सारा सम्बन्ध टूट जायगा।

याद रक्खो—बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो यह जानता है कि जन्मके साथ ही मेरी मृत्युका भी जन्म हो चुका है और वह प्रतिक्षण मरा जा रहा है । मृत्युका अन्तिम स्पर्श उसे निश्चय ही समाप्त कर देगा । अतः उसे अगले जन्मके लिये या जन्म-मृत्युके चक्रसे सदाकों छूट जानेके लिये तैयार रहना और सफल उपाय करना है ।

याद रक्खो—तुम्हारा यह जन्म तुम्हारे अनादि विशाल जन्म-प्रन्थका एक अध्यायमात्र है । तुम्हारा शरीर मृत्यु-मालाका ही एक मनका है । यह तुम्हारा खरूप नहीं है । तुम्हारा असली खरूप इससे नित्य विलक्षण है । जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिका शिकार तो यह प्राकृतिक शरीर ही होता है, नित्य चेतन आत्मा नहीं। तुम नश्चर शरीर नहीं, नित्य चेतन आत्मा हो । सिच्दानन्द्रक्ष परमात्माके सनातन अंश हो । अपने इस भगवदंश-स्रह्म या आत्मस्वरूपकी विस्मृतिके कारण ही अपनेको जन्म मरणशील शरीर मानकर जन्म-मरणके अनिवार्य, पर मिया चक्रमें फँस रहे हो ।

व्या

इति

अत्य

सिन्न

वस्त

एक

होने

इसी

अर्जुन

पुरुष

ऐसा

भी वि

समुद्रो

सागर

शब्दः

शान त

साथ

'अहं

शब्दी

श्रान है

शरीर

और भ

याद रक्खो---तुम्हें मानव-शरीर इसीलिये मिल है कि तुम अपने उस असली परमार्थस्वरूपको पहचानो— अपने सनातन सत्य जीवनको उपलब्ध करो जो तुम्हात खरूप है। पर तुम तो इतने आत्मविस्मृत हो रहे हो-इतने बाह्य प्रकृतिगत होकर-प्रकृतिको ही अपन खरूप मानकर उसीमें स्थित हो रहे हो कि जिसके कारण तुम्हारे अंदर अपने यथार्थ खरूपको जाननेसमझने का कभी प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। 'तुम कौन हो, कहाँसे आये हो, शरीर तथा नामके साथ तुम्हारा स्वा सम्बन्ध है, यहाँके ममता-आसक्तिके प्राणी-पदार्थोंसे तुम्हारा क्या सम्पर्क है और वह क्यों है । शरीर छूटनेके बाद तुम्हें कहाँ जाना है—इत्यादि जिज्ञासा तुम्हारे हृदयमें कभी उत्पन्न ही नहीं होती । यह कितना वड़ा महामोह है। इसी मोहके वश हुए तुम अपने सारेबुद्धि-विवेकको जो मनुष्यको पशुसे पृथक् करता है—पशुल्की प्राप्तिमें ही नहीं-पिशाच और राक्षस बननेकी प्रवृत्तिं लगाये हुए हो और इसीमें जीवनकी सार्थकता मान रहे ही।

याद रक्खो—तुम्हारी यह स्थिति तुम्हारे लिये ऐसे भविष्यका निर्माण कर रही है जो घोर अन्यकारम्य, अनन्त नरकमय, दु:खमय, मृत्युमय और अशान्तिमय है। अनन्त नरकमय, दु:खमय, मृत्युमय और अशान्तिमय है। अतएव जल्दी चेत करों। विवेकको अपने विनाशमें न अगाकर सच्चे विकासमें लगाओ। अपने परमात्मांश-खल्प लगाकर सच्चे विकासमें लगाओ। अपने परमात्मांश-खल्प को—आत्मखल्पको समझो और मानव-जीवनको सफल करों।

'शिव'

विद्वता और तत्त्वज्ञानका भेद

(ठेखक—स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

एक सजनको बहुत-से शास्त्र कण्ठस्थ हो सकते हैं, वे उनकी बड़ी सुन्दर सुयुक्तिपूर्ण और अत्यन्त रोचक व्याख्या कर सकते हैं, पद-पदपर श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहासोंके अवतरण दे सकते हैं और अपने विषयका अत्यन्त सुन्दर विवेचन कर सकते हैं; परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वे तत्त्वज्ञानको प्राप्त महापुरुष ही हैं। वस्तुतः 'तत्त्वज्ञान' और 'विद्वत्ता'में बड़ा अन्तर है। एक महानुभाव बड़े विद्वान् हो सकते हैं, पर विद्वान् होनेके कारण वे ज्ञानी भी हों ही, यह नियम नहीं है। इसी प्रकार एक पुरुष ज्ञानी हों पर वे विद्वान् भी हों ही—यह भी आवश्यक नहीं है। इसिलिये भगवान्ने अर्जनसे कहा है—

1 तम

न्द्धन

-खिख्प

जन्म-

मिय्या

मेळा है

नो—

तुम्हारा

हो—

अपना

जिसके

नुमझने-

न हो,

ा स्या

दार्थोंसे

_{ट्र}टनेके

तुम्हारे

वड़ा

बुद्धि-

गुत्वकी

वृत्तिमें

हे हो।

的

(मय,

計

में न

TEN!

नकी

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।

'विद्वान् ज्ञानी और तत्त्वदर्शी ज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् पुरुष तुम्हें उपदेश करेंगे।' विद्वत्ता और ज्ञान दोनोंका ऐसा मेळ विरले ही पुरुषमें होता है।

विद्वत्ताका कोई पार ही नहीं है । आजतक किसीने भी विद्याका पार नहीं पाया है । इस पृथ्वीके सारे समुद्रोंको इकट्ठा किया जाय तो उनकी भी विद्याओं के सारके साथ तुलना नहीं होगी । 'अनन्तपार किल शब्दशास्त्रम् ।'

इस प्रकार जहाँ विद्वत्ताका पार ही नहीं है, वहाँ हान तो वहुत थोड़ा-सा है। विद्वत्ताके सात सागरोंके साथ उपमा दें तो वह एक आचमनीके समान ही है। अहं ब्रह्मास्मि'—'मैं ब्रह्म हूँ'—यही तो ज्ञान है। सीधे शब्दीमें कहें तो—'मैं आत्मा हूँ' यह जान लेना ही ज्ञान है। विशेष स्पष्ट करके कहा जाय तो 'मैं यह शिर नहीं हूँ, इसका नियमन करनेवाला आत्मा हूँ' और भी विस्तारसे कहें तो—'मैं देह नहीं हूँ, मन नहीं

हूँ, बुद्धि नहीं हूँ, इन्द्रियाँ नहीं हूँ और इन सबका समूह भी नहीं हूँ; मैं तो आत्मा हूँ और देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदिका नियमन करनेवाला हूँ।' ज्ञानका यह रूप बतलाया जा सकता है।

यही बात पञ्चदशीमें यों समझायी गयी है— मुक्तिस्तु ब्रह्मतत्त्वस्य ज्ञानादेव न चान्यथा। स्वप्नवोधं विना नैव स्वस्वप्नो हीयते यथा॥

मैं ब्रह्मतत्त्व हूँ ऐसा यथार्थ ज्ञान हो जाना ही मुक्ति है । जैसे खयं नींदसे जागनेपर ही खप्तका नाश होता है, वैसे ही 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा ज्ञान होनेपर ही भवबन्धन टूटता है ।

ज्ञान 'मुक्ति' प्रदान करता है और विद्वत्तासे 'मुक्ति' मिलती है । अर्थात् विद्वत्तासे दुनियामें प्रतिष्ठा बढ़ती है; वह यरा, धन, मकान, ऐरवर्य, मान-सम्मान आदि भौतिक सुखके साधन प्राप्त कराती है--मायिक पदार्थीकी प्राप्ति कराती है। मोक्ष-सुखकी प्राप्ति नहीं कराती। बहुत-से प्रन्थोंके पढ़नेसे और उन्हें कण्ठस्थ करनेसे शास्त्रवासना बढ़ती है और 'मैं कुछ हूँ'--ऐसा अनर्थकारी अहंकार उत्पन्न होता है। फिर साधारण मनुष्यकी अपेक्षा विद्वान्को ताप भी अधिक होता है । साधारण मनुष्यको (१) आधिमौतिक, (२) आधिदैविक और (३) आध्यात्मिक—ये तीन प्रकारके ताप (क्रेश) होते हैं, परंतु विद्वान्के क्षेश सात प्रकारके होते हैं। उपर्युक्त तीन ताप तो सभीके हैं, इनके अतिरिक्त, (४) अभ्यास—(शास्त्रोंके अभ्यासका अन्त ही नहीं आता, अतः उसकी तृप्ति भी नहीं होती), (५) भंग-(अपमानका भय--शास्त्रार्थमें हार जानेका भय), (६) विस्माय—(भूल न जाऊँ—यह चिन्ता) और (७) गर्व—मैं कितना बड़ा मान्य विद्वान् हूँ —ऐसा अभिमान ।

इस विषयमें श्रीशंकराचार्यका एक श्लोक समझने योग्य है—

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्। वैदुष्यं विदुषां तद्वद् भुक्तये न तु मुक्तये॥

वाणीका अस्खिलत प्रवाह चलता हो ऐसा भाषण, शास्त्रोंके पढ़ाने समझानेका कौशल और विद्वान् पुरुषकी विद्वत्ता मुक्तिकी प्राप्ति नहीं कराती । वह केवल संसारके मायिक भोगोंकी प्राप्ति करवाती है ।

इसके अतिरिक्त विद्वत्ता और ज्ञानमें एक महान् अन्तर और है, उसे भी समझना चाहिये। विद्वत्ता श्रम-साध्य है, प्रयत्नके द्वारा पुरुष उसे प्राप्त कर सकता है। सतत अभ्यास और परिश्रमके फल्खरूप उसे प्राप्त किया जा सकता है। परंतु ज्ञान कृपासाध्य है। यहाँ पुरुषका प्रयत पङ्गु बन जाता है। जब ईश्वर और सद्गुरुकी कृपा होती है, तभी विशुद्ध अन्तः करणमें ज्ञानका "अपने-आप ही स्फुरण होता है। रूपकके द्वारा समज्ञाया जाय तो कह सकते हैं कि जहाँ ज्ञान ख्यम्भू है, वहाँ विद्वत्ताकी प्रतिष्ठा परिश्रमके द्वारा की जाती है।

इसी बातको समझाती हुई भगवती श्रुति कहती है— नायमात्मा प्रवचनेन छभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन छभ्य-स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तन् स्वाम्॥

मन्त्रके पहले दो चरणोंमें कहते हैं कि 'आत्मज्ञान या तत्त्वज्ञान पुरुषार्धसाध्य नहीं है' और अगले दो चरणोंमें कहा गया है कि 'वह कृपासाध्य है।' मन्त्रका भाव यह है कि आत्माकी प्राप्ति—अपने खरूपका ज्ञान बहुत-से शास्त्राभ्याससे नहीं होता, सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा भी नहीं होता, बहुत श्रवणसे भी नहीं होता—भाव यह कि पुरुषके किसी प्रयत्नसे नहीं होता। तब वह ज्ञान कैसे होता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं—जो साधक सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करता है और इससे उसण जब ईश्वरकी कृपा होती है, तब उसके अंदरसे अफ़े आप ही ऐसा ज्ञान प्रकट होता है और उसे परमामा अपने समग्र खरूपको यथार्थरूपसे दिख्छाते या समज्ञाते हैं।

तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये किसी प्रवल पुरुषार्थकी या बहुत-से प्रन्थोंके वाचनकी आवश्यकता नहीं है, अन्तः करणको निर्मल केवल आत्म-दृष्टिसे युक्त करनेकी है।

श्रीशंकराचार्य इस बातको समझाते हुए कहते हैं— देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम्। आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्निप मुच्यते॥

भाई चतुरलाल ! इस बातको अच्छी तरह समझे और अपने नामको सार्थक करो । कितनी सरल बात है पर कितनी अमोध उपाय है ! इसका अनुभव को और बस, इसे करनेमें लग जाओ । तो फिर ईश्वरकृपासे साक्षात्कार हो जायगा । साधन तो करनेकी वस्तु है। पढ़ने-सुनने या बात करनेकी नहीं है । भोजनकी माल फेरनेसे पेट नहीं भरता, अथवा मीठे जलके सरोवरका नक्शा देखनेसे प्यास नहीं बुझती एवं चलना शुरू किये बिना मुकामपर पहुँचा नहीं जाता । इसी प्रकार अभ्यासके बिना यह वस्तु नहीं मिलती । अतः अभ्यासके लगा जाओ ।

अब देखों—'मैं चतुरलाल हूँ, वैश्य हूँ, व्यापारी हूँ।'
यह ज्ञान कितना दृढ़ हो रहा है ? भरी नींदमें पड़े ही
और कोई जोरसे पुकारे—'चतुरलाल' तो तुरंत
नींदसे जगकर 'हाँ' कह उठते हो । स्वप्नमें या तिह्रामें
भी 'मैं चतुरलाल हूँ' इस विषयमें तुमको कभी कोई
राङ्का नहीं होती । न कभी यह संदेह ही होता है कि
'भला, मैं वास्तवमें वैश्य हूँ या ब्राह्मण ?' और न कभी
पहीं संशय होता है कि 'मैं सचमुच व्यापारी हूँ या
विस्तीका नौकर ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

में ये खरू

यदि

अधु

'र निश्चय 'मैं आ स्थिर हो

अ नेच्छर्ना ऐसा ज्ञ

पह है

द्रस्कर

नाम ही पदार्थ न अलग प्र देहके स

विपरीत भैं देह सरूप स

विस्थनकी

भाई होंगे वि म्या और ३६

उसपर

अपने.

मात्मा

1

र्थिकी

ों है,

है।

_

नमझो

बात

करो

पासे

है।

गला

स्भा

केये

भार

समें

"

तंत

मि

भी

पा

यह (मिथ्या) ज्ञान जैसा दृढ़ और संशयरिहत है, क्षेत्रा ही यह (सत्य) ज्ञान हो जाय कि 'मैं आत्मा हूँ, में ये शरीर आदि नहीं हूँ, किंतु इनका नियन्ता चेतन- स्वरूप आत्मा हूँ'—तो तुम उसी क्षण मुक्त हो जाते हो—जन्म-मरणरूप बन्धनसे छूट जाते हो।

इस बातको अधावक्र मुनि यों कहते हैं—

यदि देहं पृथक् कृत्वा चिति विश्राम्य तिष्टसि । अधुनैव सुखी शान्तो वन्धमुक्तो भविष्यसि ॥

शजा जनक ! यदि तुम 'मैं देह नहीं हूँ' ऐसा किश्रय करके तीनों देहोंसे 'पृथक्' हो जाते हो और भैं आत्मा हूँ' ऐसी दृढ़ भावना करके अपने आत्मखरूपमें शिर हो जाते हो तो इसी क्षण तुम जन्म-मरणके बन्धनसे इस्कर सुखी और शान्त हो जाते हो।'

अब प्रस्तुत श्लोकका अन्तिम चरण है—'स नेछत्रिप मुच्यते' अर्थात् 'पुरुषकी इच्छा न होनेपर भी ऐसा ज्ञान होते ही वह मुक्त हो जाता है'। इसका भाव ग्रह है कि 'मैं आत्मा हूँ'। ऐसे यथार्थ ज्ञानके उदयका नाम ही मुक्ति है। तत्त्वज्ञान और मुक्ति—अलग-अलग ग्रार्थ नहीं हैं कि जिससे ज्ञान होनेके बाद मुक्तिके लिये अला प्रयत्न करना पड़े। 'मैं देह हूँ और इसलिये हैके सम्बन्धमें आनेवाले प्राणी-पदार्थ मेरे हैं'—ऐसे विपीत ज्ञान (विपर्धय बुद्धि) का नाम बन्धन है और मैं देह नहीं हूँ, पर उसका नियमन करनेवाला चेतन-सक्प आत्मा हूँ'— यह यथार्थ ज्ञान (तत्त्वज्ञान) ही विभाकी निवृत्ति यानी मुक्ति है।

भाई चतुरलाल ! इस विवेचनसे तुम समझ गये होंगे कि ज्ञान और विद्वत्तामें तथा ज्ञानी और विद्वान्में भा और कितना अन्तर है। साथ ही यह बात भी समझमें आ गयी होगी कि विद्वत्ता प्रयत्न-साध्य है और ज्ञान कृपासाध्य है । अभिप्राय यह कि ज्ञानकी प्राप्ति ईश्वरकी और गुरुकी कृपाके बिना नहीं हो सकती । फिर ज्ञानी-अज्ञानीको विलक्षण वतलानेके लिये न तो ज्ञानीके सींग उगता है, न अज्ञानीके कोई पूँछ ही होती है । बाहरी आकृतिसे ज्ञानी-अज्ञानीकी कोई पहचान नहीं हो सकती । दोनोंमें केवल दिलका भेद है । ज्ञानीकी दृष्टि विशुद्ध होनेके कारण वह प्रत्येक वस्तुको और उसके खरूपको यथार्थ देखता है और अज्ञानीकी दृष्टि मिलन होनेके कारण उसको वस्तुका यथार्थ स्वरूप नहीं दिखायी देता । अतएव यह कहा जा सकता है कि 'यथार्थ दर्शन' ही ज्ञान है और उसके विरुद्ध 'अन्यया दर्शन' ही अज्ञानका स्वरूप है । एक संतके शब्दोंमें—

देहदप्टि है दुंखका कारण, आत्मद्रष्टि निज सुख-विस्तारण।

'मैं देह हूँ' यह मान्यता ही जन्म-मरण देनेवाले दुःखकी कारण है और 'मैं आत्मा हूँ' यह निश्चय दृष्टि अर्थात् 'मैं देह नहीं पर उसका संचालन करनेवाला चेतन आत्मा'—यह निश्चित मान्यता सुखका साधन है। इससे मुक्तिलाभ या अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।

. इसी बातको विशेष विस्तारसे श्रीनिष्कुलानन्दजीके शब्दोंके भाषान्तर-रूपमें यों कह सकते हैं—

दुःख भोगता नित्य 'देह-दर्शी' करता सुखका साधन। सुखमय रहता सदा 'आत्म-दर्शी' वह सत्-चित्-आर्नेंद्घन॥

यों नित्य सुख-स्वरूप रहता हुआ वह शरीर छूटनेके बाद 'कैत्रल्य'को प्राप्त हो जाता है ।

निष्काम कर्मसे परमात्माकी प्राप्ति

(लेखक--श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग—ये सभी साधन अपने-अपने स्थानमें श्रेष्ठ, सुगम और शीघ्र कल्याण करनेवाले माने गये हैं। यहाँ कर्मयोगके विषयमें कुछ लिखा जाता है। कर्मयोगका साधन सुगम है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

ह्रोयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति । निर्द्रन्द्वो हि महाबाहो सुखं वन्धात् प्रमुच्यते ॥ (५।३)

'हे अर्जुन ! जो पुरुष न किसीसे द्वेष करता है और न किसीकी आकाङ्का करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वों-से रहित पुरुष सुखपूर्वक संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है।'

इतना ही नहीं, ज्ञानयोगकी प्राप्ति तो कर्मयोगके बिना कठिन है, किंतु कर्मयोग शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है। गीतामें बतलाया गया है—

संन्यासस्तु महावाहो दुःखमाप्तुमयोगतः । योगयुक्तो मुनिर्व्वहा नचिरेणाधिगच्छति ॥

(५।६)

'परंतु हे अर्जुन! कर्मयोगके विना संन्यास अर्थात्

मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंमें

कर्तापनका त्याग होना कठिन है और भगवत्स्वरूपको

मनन करनेवाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्माको शीघ्र ही

प्राप्त हो जाता है।

गीतामें भगवान्ने भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्म-योग—इन तीनों ही मार्गोंको खतन्त्र बताया है—

ध्यानेनात्मिन पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना । अत्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ (१३। २४)

'उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सृक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं, अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही को योगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।' यत्सांख्येः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरिप गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ (गीता ५।५)

H

व्य

का

की

मिल

कही

अग्नि

क्रिया

कर्मों

निष्क

किया

देना ह

गये है

याज

द्विजाति

नीविक

भनुष्य

वर्णाश्रम

'ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसिल्ये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको फल्रूपमें एक देखता है वही यथार्थ देखता है।'

भक्तियोग और ज्ञानयोगके साधनसे भी कर्मयोगक्षे श्रेष्ठ बताया है—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते। ध्यानात् कर्मफळत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥ (गीता १२।१२)

'मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके खरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है।'

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकराबुभौ। तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥ (गीता ५ । २)

'कर्मसंन्यास और कर्मयोग—ये दोनों ही प्रम कल्याणके करनेवाले हैं परंतु उन दोनोंमें भी कर्म संन्याससे कर्मयोग साधनमें सुगम होनेसे श्रेष्ठ है।'

इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्माके ध्यानसे भी निष्काम कर्म श्रेष्ठ है। जिस ध्यानमें फलका त्याग नहीं है और जिस कर्मफलत्यागरूप निष्काम कर्ममें ध्यान होता है। नहीं है—उन दोनोंका ही मुकाबला होता है। निष्काम कर्ममें फलका त्याग होता है, इसी कारण उससे परमात्माकी प्राप्तिरूप परम शान्ति मिलती है। जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कर्म.

म्यते।

गति॥

14)

ना है,

सिलिये

एक

योगको

व्यते।

रम् ॥

83)

श्रेष्ठ

और

प्योंकि

7)

प्रम

कर्म

भी

नहीं

यान

है।

ससे

洲

धानमें फलका त्याग नहीं है, उस ध्यानसे तो जिस कामनाके उद्देश्यसे वह ध्यान किया जाता है, उस कामना-की ही सिद्धि हो सकती है; उससे परम शान्ति नहीं मिल सकती। कर्मयोगकी प्रशंसा करते हुए भगवान्ने कहा है—

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरिम्नर्न चाकियः॥ (गीता ६।१)

जो पुरुष कर्मफलका आश्रय न लेकर करनेयोग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्निका त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओंका त्याग करनेवाला योगी नहीं है।

अतएव वर्ण और आश्रमके अनुसार शास्त्रविहित कर्मोंमें * फल और आसक्तिका जो त्याग है, उसीको निष्काम कर्म कहते हैं।

ब्रह्मणके लिये मनुजीने षट्कर्मीका विधान किया है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ (मनु०१।८८)

'पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना—ये छ: कर्म ब्राह्मणके लिये रचे गये हैं।

पण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका। याजनाध्यापने चैव विद्युद्धाच प्रतिग्रहः॥ (मन्०१०।७६)

'इन षट्कर्मोंमें पढ़ाना, यज्ञ कराना और विशुद्ध दिजातियोंसे दान प्रहण करना—ये तीनों ब्राह्मणकी वीविकाके कर्म हैं। तथा यज्ञ करना, दान देना और

* वर्णाश्रमधर्मका विस्तृत विवेचन गीताप्रेससे प्रकाशित भनुष्यका परम कर्तव्यं नामक पुस्तकके भानवता और भाशिक्षमधर्मं शीर्षक लेखमें देख सकते हैं। वेदादिका खाध्याय करना—ये तीनों कर्म धर्मपालनके लिये हैं।

क्षत्रियके लिये प्रजाकी रक्षा करना, दो विरोधी पक्षोंका उचित न्याय करना और कर वस्लू करना— ये तीन जीविकाके कर्म हैं और दान देना, यज्ञ करना तथा वेदादिका स्वाध्याय करना—ये तीनों कर्म धर्मपालनके लिये हैं।

इसी प्रकार वैश्यके छिये कृषि, गोरक्षा और व्यवसाय—ये तीन कर्म जीविकाके छिये हैं—

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैदयकर्म स्वभावजम्। (गीता १८। ४४ का पूर्वार्घ)

'खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य और सम व्यवहार—ये वैश्यके खाभाविक कर्म हैं।'

एवं दान देना, यज्ञ करना और वेदादिका स्वाध्याय करना—ये तीन कर्म धर्मपालनके लिये हैं।

श्द्रके लिये केवल एक ही कर्म बतलाया गया है— परिचर्यात्मकं कर्म श्द्रस्थापि स्वभावजम्॥ (गीता १८। ४४का उत्तरार्घ)

'सव वर्णोंकी सेवा करना—शूद्रका भी खाभाविक कर्म है।'

उपर्युक्त अपने अपने वर्णके कर्तव्यक्तमों तथा इसी प्रकार जो कुछ भी शाखों में आश्रमधर्म, सामान्यधर्म और आपत्कालके धर्म मनुष्यमात्रके लिये बताये गये हैं, उन कर्तव्य-कर्मों में पल और आसक्तिका त्याग करके उनका अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे 'निष्काम कर्म' सम्पन्न होता है। इस निष्काम कर्मका सार भगवान्ने गीतामें अ० २ रुलेक ४७ में बताया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

'हे अर्जुन ! तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं । इसिलिये तू कर्मीके फलका हेतु

नह

और

त

लोक

कर्मव

ही क

बल्या

शनके

महिमा

उच ।

निष्कार

आप ह

तत्

निस्संदेह

कालमे

अपने-आ

मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो ।'
यहाँ 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' से कर्म करनेमें मनुष्यके
ि अधिकार और स्वतन्त्रता बतलाकर कर्म करनेपर
जोर दिया गया है कि कर्म करना ही कर्तव्य है।
'मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि' से भी कर्मत्यागका निषेध
करके कर्म करनेपर ही जोर दिया गया है। 'मा फलेषु
कदाचन' से यह बतलाया गया है कि कर्मफलमें अधिकार
नहीं है,बल्कि उसमें परतन्त्रता है और 'मा कर्मफल हेतुर्भूः'
से कर्मके फलका हेतु न होनेके लिये कहकर वासना,
आसक्ति, ममता और अभिमानके त्यागका आदेश दिया
गया है। इसीका स्पष्टीकरण निम्नाङ्कित रलोकमें है—

विहाय कामान् यः सवान् पुमांश्चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गीता २। ७१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममता-रहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है।'

यहाँ कामना, स्पृहा, ममता और अहंकारके त्यागका वर्णन है। स्पृहाके अन्तर्गत ही आसक्ति और वासनाको तथा अहंकारके अन्तर्गत अभिमानको समझना चाहिये।

भगवान्ने गीतामें आसक्तिके त्यागके साथ ही सिद्धि और असिद्धिमें समताका भी उल्लेख किया है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्धवसिद्धवोः समो भृत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(२।४८) 'हे धनञ्जय! त् आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्यकमोंको कर। समत्व ही योग कहलाता है।'

सिद्धि और असिद्धिमें समता होनेसे राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदिका अभाव स्वतः ही हो जाता है। राग-द्वेष ही सारे अवगुणोंकी जड़ है। इसिटिये राग-द्वेषके त्यागमें ही सबके त्यागका अन्तर्भाव है। जैसे कि अहंता-

ममताके त्यागके अन्तर्गत सारे दुर्गुणोंका त्याग है, ह्मी प्रकार समताकी प्राप्ति होनेपर भी सब दोषोंका अमार हो जाता है। गीतामें कहीं तो कमोंमें और विश्योंमें आसक्तिका त्याग वताया गया है (गीता ६१४), वहाँ विषयोंकी आसक्तिके त्यागके अन्तर्गत ही कर्मफल्का त्याग है । कहीं केवल आसक्तिका त्याग कहा ग्या है (गीता २।४८), वहाँ फलकामनाका त्याग उसके अन्तर्गत समझ लेना चाहिये; क्योंकि 'सङ्गत् संजयते कामः' (गीता २।६२)—'आसक्तिसे ही त्रियोंकी कामना उत्पन्न होती है। अतः कारणके त्यागसे कार्यका त्याग स्वाभाविक ही उसके अन्तर्गत है। जैसे जड़ कार देनेपर वृक्षको काटना उसके अन्तर्गत है, उसी प्रकार आसक्तिके त्यागमें कामना, स्पृहा, वासना आदिका लाग स्वाभाविक है; क्योंकि इन सवका मूल आसक्ति ही है। अतः कर्मोंमें आसक्तिका त्याग करके कर्तव्यक्रमें का आचरण करनेसे प्रमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है-

तस्माद्सक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असको ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ (गीता ३।१९)

'इसिलिये त् निरन्तर आसिक्तिसे रहित होका सदा कर्तव्यकर्मको भलीभाँति करता रह; क्योंकि आसिक्ति रहित होकर कर्भ करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।'

इसी प्रकार कर्मफलके त्यागसे भी आसिक्त, स्पृही, वासना, ममताका त्याग समझ लेना चाहिये। प्रायः लोगोंकी कर्ममें प्रवृत्ति फलके लिये ही होती है। इसलिये कर्तव्यकर्मोंमें फलत्यागकी महिमा गीतामें विशेष रूपसे बतलायी गयी है (गीता ६।१)।

वास्तवमें तो कर्मोंमें फल और आसक्तिका स्वाग होनेपर वे कर्म कर्म ही नहीं हैं—

त्यत्तवा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराध्रयः। कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः॥ (गीता ४। १०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

736

-

, इसी

अभाव

वेषयोंमं

), वहाँ

मिलका

रा गया

उसके

ांजायते

षयोंकी

कार्यका

इ कार

प्रकार

त्याग

ते है।

तमोंका

है।

TI

: 11 88)

सदा

क्तिसे

प्राप्त

पृह्य,

ायः

意日

शेष

पाग

जो पुरुष समस्त कर्मों और उनके फलमें आसक्तिका सर्वया त्याग करके संसारके आश्रयसे रहित हो गया है और परमात्मामें नित्य तृप्त है, वह कर्मोंमें मलीभाँति वर्तता हुआ भी वास्तवमें कुछ भी नहीं करता।

क्योंकि वे देखनेमात्रमें ही कर्म हैं, वास्तवमें कर्म नहीं हैं। यही कर्ममें अकर्मका देखना है। गीता अ० ४ श्लो० १८ में जो कर्ममें अकर्म देखनेकी महिमा वतायी गयी है वह इसीकी महिमा है। यही कर्मोंका रहस्य है और कर्मोंमें कुश्लता भी यही है—

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तसाद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥ (गीता २।५०)

'समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनोंको इसी लेकमें त्याग देता है। इससे त्र समत्वरूप योगमें लग जा, यह समत्वरूप योग ही कर्मोंमें कुशलता है अर्थाव् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है।'

भाव यह कि समताका नाम योग है और यह समता ही कमोंमें बुद्धिमत्ता है। इस समतासे ही मनुष्यका कत्याण हो जाता है।

यदि कहें कि शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि विना शनके मुक्ति नहीं होती, सो ठीक है; किंतु जिस ज्ञानकी महिमा गीतादि शास्त्रोंमें बतलायी गयी है, वह उच्चसे उच्च परमात्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान कर्मयोगीको निष्कामकर्मके साधनसे अन्तःकरण शुद्ध होकर अपने-श्री हो जाता है।

ति हानेन सहरां पवित्रमिह विद्यते। तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ (गीता४।३८)

'र्स संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला निसंदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही काल्से कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मामें पा लेता है।' यहाँ 'स्वयं' शब्दसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उसे किसी दूसरे साधन या मनुष्यके आश्रयकी आवश्यकता नहीं है, उस ज्ञानकी प्राप्तिमें साधककी स्वतन्त्रता है।

तथा निष्काम कर्मसे सारे पापोंका नाश होकर अन्तः करणकी शुद्धि भी अपने-आप हो जाती है।

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ (गीता ४। २३ का उत्तरार्ध)

'निष्काम कर्मरूप यज्ञसम्पादनके छिये कर्म करनेवाले मनुष्यके सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म भलीमाँति विलीन हो जाते हैं।'

इसीलिये-

कायेन मनसा बुद्धवा केवलैरिन्द्रियैरिप। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्तवाऽऽत्मशुद्धये॥ (गीता ५।११)

'कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीरद्वारा भी आसंक्तिको त्यागकर अन्तः-करणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं।'

इस प्रकार अन्तः करण शुद्ध होनेपर निष्काम कर्मके प्रभावसे उसे परमात्मामें निष्ठावाळी वह परम शान्ति मिळ जाती है, जो परमात्माकी प्राप्ति होनेके वाद मिळती है।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्तोति नैष्टिकीम्॥ (गीता ५।१२ का पूर्वार्द्ध)

'कर्मयोगी कर्मोंके फलका त्याग करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है।'

इस प्रकार कर्मयोगसे शीघ्र ब्रह्मकी प्राप्ति (गीता ५। ६), परमात्माकी प्राप्ति (गीता ३। १९), ज्ञानकी प्राप्ति (गीता ४। ३८), पुण्य-पापका विलय (गीता ४। २३), अन्तः करणकी शुद्धि (गीता ५। ११), शान्तिकी प्राप्ति (गीता २। ७१; ५। १२), कर्मयोगकी सुगमता (गीता ५।३) और श्रेष्ठता (गीता ५।२; ६।१; १२।१२ में)

श्रीराध

विश्व

उसीर्क

वे बोलं

न तुम

तुम ु

नायिक

बरूपत

पुरुष

विवाहित

तुम मेरे

भी, ये

सनातन

छटनेकी

किंत्

जह

ऊपर बतलायी गयी । इसके सिवा भगवान्ने यज्ञ-तपादि शास्त्रविहित उत्तम कर्मीके आचरणको विवेकपूर्णको पवित्र करनेवाला बताया है---

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेच तत्। यज्ञो दानं तपद्येव पावनानि मनीपिणाम्॥ (गीता १८ । ५)

यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करनेके योग्य नहीं है, बल्कि वह तो अवस्य कर्तव्य है; क्योंकि यज्ञ, दान और तप-ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान् पुरुषोंको पवित्र करनेवाले हैं।

तथा यज्ञ, दान, तप और अन्यान्य शास्त्रविहित कर्मोंको भी फल और आसक्तिका त्याग करके अवश्य ही करना चाहिये यह भगत्रान्ने अपना सिद्धान्त बताया है। एतान्यपि त कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥

(गीता १८।६)

'इसलिये हे पार्थ ! इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंको तथा और भी सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मोंको आसक्ति और फलोंका त्याग करके अवस्य करना चाहिये-यह मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है।

जब मनुष्य कर्म करता है तब यही सोचता है कि इससे मुझे क्या मिलेगा । इस प्रकार खार्थको लेकर ही मनुष्य कर्मोंमें प्रवृत्त होता है । यह सकाम भाव है । किंतु इस स्वार्थका त्याग करके मनुष्यको यह भाव रखना चाहिये कि मेरी इस क्रियासे प्राणीमात्रका क्या हित होगा; क्योंकि जो दूसरोंका हित है वही परम धर्म है और जो दूसरोंका अहित है वही पाप है।

श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

परहित सिरस धर्म निह भाई। परपीड़ा सम निह अधमाई॥ (रा॰ उत्तर॰ ४० ।१)

अत: जिसके हृदयमें दूसरेका हित निवास करता है, उसके लिये संसारमें कोई भी चीज दुर्लभ नहीं है— परहित वस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछुनाहीं। (राम० अरण्य० ३०।५)

उत्तम श्रेणीके महापुरुषोंके लक्षण वताते हा भगवान्ने गीतामें भी यही कहा है—

ब्रह्मनिर्वाणमृषयः लभन्ते क्षीणकलमपाः। छिन्नद्वैधा सर्वभूतिहते यतात्मानः रताः॥

(4124) ·जिनके सत्र पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सत्र संस्थ ज्ञानके द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चल भावसे प्रमात्मामें स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्मको प्रा होते हैं।

इसिंठिये अपने मन, वाणी और शरीरकी चेषके द्वारा हमें वही कार्य करना चाहिये जिससे दूसरेका हित हो । जिसमें दूसरेका हित न हो, वह नहीं कला चाहिये। एवं जिसमें दूसरेका अहित हो, वह तो क्षी करना ही नहीं चाहिये। बल्कि जिससे दूसरोंका पा हित (परम सेवा) हो, उसीमें अपना जीवन लगा देना चाहिये। किसीको लौकिक विषयसम्बन्धी सुर पहुँचाना सेवा है और आध्यात्मिक लाभ पहुँचाना पर सेवा है। किंतु सेवा करनेवाला निष्कामभावसे किसी भी प्रकारकी सेवा करता है तो उसके लिये वह परम सेव ही है। सबके परम हितमें रत होकर सबकी निष्काम भावसे परम सेवा करना ही कल्याणकामी मनुष्यका पम कर्तव्य और परम उद्देश्य होना चाहिये।

इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह संसारके सम्प्री पदार्थींमं, भोगोंमं, शरीरमें और सम्पूर्ण कर्मोमं मन्ता, आसक्ति, अभिमान और स्वार्थका त्याग करके निष्काम भावसे आत्माके कल्याणके लिये यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास, यम-नियम-पालन, माता-पिताकी से^{जा}, सबके साथ उत्तम व्यवहार, दुखीं, अनाथ एवं स्पूर्ण प्राणीमात्रका हित आदि शास्त्रविहित कर्तन्यकमें आचरण मन, तन, धन, जनसे तत्परताके साथ करनेकी

प्राणपर्यन्त चेष्टा करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मधुर

एक दिन परम प्रियतम भगवान् स्यामसुन्दरने भीराधाजीके प्रति अपने और उनके खरूप-तत्त्वका तथा बिग्रुद्ध प्रेमका विशद विवेचन किया, तव श्रीराधाजीने भीकी व्याख्या करते हुए अपनी स्थिति वतलायी। बेग्रीली—

ग ३६ — नाहीं॥

ते हा

गः।

11:11

74)

संश्य

णियोंके

भावसे

तो प्राप्त

चेष्टाके

ता हित

काता

विभी

प्रम

जीवन

ी सुख

प्रम

सी भी

सेवा

नेष्माम

ा परम

सम्यूग

ममताः

哪

तीर्थ,

सेत्रा

सम्यूग

मेंका

तिकी

श्यामसुन्दर ! न तो मैं शरीर हूँ, न तुम जीव हो; ततुम दाता हो, न मैं दीन हूँ; न मैं प्रकृति हूँ, न तम पुरुष हो; न मैं माया हूँ, न तुम ब्रह्म हो; न मैं विषया हूँ, न तो तुम वास्तवमें नायक हो; न मैं विषया एरकीया हूँ, न तुम सुख देनेवाले जार पुरुष हो; न मैं स्वकीया पितव्रता हूँ, न तुम मेरे विवाहित स्वामी हो; और न मैं तुम्हारी साध्य हूँ एवं न तम मेरे मार्गका अनुगमन करनेवाले हो । ऐसा होनेपर भी, ये सभी सम्बन्धरहित सम्बन्ध वास्तवमें सत्य हैं, जातन हैं, पिवित्र हैं और बड़े मधुर हैं । इनसे न कहीं हुरनेकी कामना है, न इनमें कहीं कोई बन्धन ही है ।

'काया' मैं न 'जीव' तुम हो नहिं; 'दाता' तुम न, नहीं मैं 'दीन'। 'प्रकृति' नहीं मैं 'पुरुष' नहीं तुम; 'माया' मैं न, 'ब्रह्म' तुम भी न॥ 'नायिका' हूँ मैं, तुम भी नहिं यथार्थतः हो 'नायक'। स्वरूपतः 'परकीया' में; नहीं 'जार' तुम सुखदायक ॥ नहीं 'स्वकीया' में, पतिव्रता नहीं 'विवाहित' तुम स्वामी। तुम्हारी 'साध्य', नहीं मेरे 'पथके अनुगामी' ॥ किंतु सभी ये सत्य, चिरंतन, शुचि, मधु असम्बन्ध-सम्बन्ध । न मुक्ति की कहीं कामना,

जहाँ

न

कोई

किंचित्

बन्ध ॥

तुम्हारी और मेरी सत्ता अनुपम है, अतुलनीय है, अचिन्त्य है और अनिर्वचनीय है। हम दोनों उसका अनुभव करते हैं; पर उस रहस्यमय तत्त्वको वतला नहीं सकते । हम सभी भेदोंसे सदा रहित हैं और नित्य-निरन्तर अपने स्वरूप-रस-समुद्रमें निमग्न हैं। हमारा वह रस-समुद्र नित्य संयोग-वियोग-रूपमय हैं। हम सदा पृथक् हैं और सदा ही जुड़े हुए हैं। यह वृन्दावन, यह लिलत लीलास्थली, यह कालिन्दी-सलिलकी कलित तरङ्गें, ये वृक्ष-लता, वनके विहंगम, विविध विचित्र रंग-बिरंगी वनकी धातुएँ, यह मलय-समीर, यह शारदीय पूर्णिमाकी शुभ्र रजनी, ये सुधामयी सुन्दर किरणावली, यह मधुर सुधा-रसकी सरिता मुरली, ये परिकर, सुन्दरी सिखयाँ और मंजिरियाँ, यह नित्य नवीन कमनीय केलि और यह परम मधुर नित्य नव रसमय नित्य विहार—सभी हमारी दिव्यतम स्वरूपगत लीला-रसकी ही अपार अभिव्यक्ति है । हम स्वयं लीलामय ही इन सब लीलाओंके रूपमें प्रकट हैं।

अचिन्त्य अनि-अनुपम अतुल वंचनीय तुम्हारा-मेरा सस्व। करते हैं हम, पर अनुभव न बता सकते रहस्यमय तस्व॥ अखिल भेद-विरहित हम हैं नित, निज-स्वरूप-रस-रसधि निमग्न । वियोग-संयोग-रूपमय, नित वियुक्त, नित्य नित्य संलग्न ॥ वृन्दारण्य, ललित लीलास्थल, कालिंदी-जल कलित तरंग। विहंगम, वनज वृक्ष-वल्लरी विचित्र विविध रुचि-रंग॥ धातु उद्दीपन-साधन, मलय-पवन, रिम-सुधा अभिराम । राका मुरली सुधा-रस-सरिता, मधुर परिकर-मंजरि सखी छलाम ॥

AG

ज्यो

ज्यो

सत

पुका

ज्योति

इसीर्

प्रकृति

प्रमार

अन्य

म्रोतव ही रह

उँचें

जो उ

करता

तक उ

बढ़ जा

उठेगा;

भंदर अ

पतु उ

जीवका

आगेबढ

नहीं है

संस्कृतम

प्रारम

5

नित्य नवल कमनीय केलि रस,

मधुर परम नव नित्य विहार।

निज स्वरूपगत सभी दिञ्यतम

लीला-रस-अभिज्यक्ति अपार॥

इतनेपर भी—हे मेरे श्यामसुन्दर ! तुम मेरे परम प्रियतम हो, प्राणोंके आराध्य हो। मुझसे तुम नित्य मिले रहते हो, तथापि तुम ही नित्य मेरे लक्ष्य हो, नित्य ही मेरे साध्य हो। तुम्हींको पाना है, तुम्हींसे पाना है और तुमको अनन्तकालके लिये मैं नित्य पा रही हूँ। नित्य प्राप्तको नित्य प्राप्त करनेकी मेरी इस पम साधनाका कभी अन्त आयेगा ही नहीं। इतनेपर भी हो तुम मेरे ि्रयतम परम प्राण-आराध्य। मिले रहनेपर भी, तुम नित्य लक्ष्य, नित मेरे साध्य॥ पाना तुम्हें, तुम्हींसे पाना, नित्य पा रही तुम्हें अनन्त । पानेकी, इस परम साधना-का न कभी आयेगा

'ज्योति'

(लेखक—डॉ० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, एम्॰ ए०, पी-एच्॰ डी०, डी० लिट्०)

ब्रह्माण्डमें ज्योतिके दर्शन प्रतिदिन होते हैं, परंतु यह बाहरकी ज्योति है । अंदर भी ज्योति है परंतु वह निरन्तर अभ्यास करनेके उपरान्त सत्त्वकी अवस्थामें पिरलक्षित होती है । ब्रह्माण्डीय ज्योति भी सत्के परमाणुओंसे निर्मित हुई है और सत्त्वकी अवस्थामें हमें जिस ज्योतिके दर्शन होते हैं वह भी सत्की ही है, परंतु सत्की इस ज्योतिके मूलमें एक अन्य ज्योति है जिसे हम ज्योतियोंकी ज्योति कहते हैं । उपनिषद्के ऋषिने कहा था—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वे तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

अर्थात् उस परम ज्योतिके द्वारा ही ये ब्रह्माण्डीय ज्योतियाँ ज्योतित होती हैं। उसके प्रकाशसे ही इनको प्रकाश प्राप्त होता है। उसके आलोकके सामने इनका आलोक वैसे ही क्षीण हो जाता है जैसे सूर्यके सामने अग्निका प्रकाश।

वेदने उत्, उत्तर और उत्तम—तीन कोटियोंमें ज्योतिको विभाजित किया है। ब्रह्माण्डमें ज्योतिके ये तीनों स्तर विद्यमान हैं। पृथ्वीस्थानीय अग्नि उत् है, अन्तरिक्षीय विद्युत् उत्तर है और द्यौस्थानीय सूर्य उत्तम है । सूर्यमें बाहरकी ओर तैजस् परमाणुओंका समुदाय है । बाहुल्य इन्हीं परमाणुओंका है; परंतु उसके अन्तस्तलमें पृथ्वी, जल, वायु आदिके परमाणु भी हैं। नक्षत्रोंमें जितनी अग्नि बाहर है उतनी ही अंदर भी; परंतु बाहर और अंदर पृथ्वी, जल आदिके परमाणु भी रहते हैं। पृथ्वीके ऊपरी भागमें अग्नि दृष्टिगोचर नहीं होती, परंतु उसके अन्तस्तलमें वह विद्यमान है, जो कभी ज्वालामुखियोंके रूपमें फूट पड़ती है और कभी बनकी दावा अथवा सागरकी बड़वाग्निका रूप धारण कर लेती है। ज्योतिके इसी न्यूनाधिक्यके आधारपर हमारे यहाँ भू:, मुव: तथा स्व: अथवा पृथ्वी, अन्तिरक्ष और ही-लोककी क्रमशः उत्, उत्तर और उत्तम लोकोंमें

तमसे रज तथा रजसे सत्की जो उत्कृष्टता मानी गयी है, उसके मूलमें भी ज्योतिका ही भाव है। अन- मय कोशसे विज्ञानमय कोशकी जो महत्ता वर्णित हैं है उसका आधार भी यही है, परंतु प्रकृतिके इस प्रपन्नको यदि हम छोड़ दें और विशुद्धरूपसे तार्विक चिन्तन करें तो प्रकृति, जीव और ब्रह्ममें हमें ज्योतिके यही तीन स्तर अनुभूत होंगे। प्रकृतिके सत्में जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

परम

त्तम

द्य

सके

1

भी;

भी

ती,

भी

की

प्रती

हाँ

1-

ब्रोति हैं; वह निम्नतम कोटिकी है, उससे उच्चतर ब्रोति जीवमें है परंतु परमोत्तम ज्योति तो वह परात्पर सता ही है जिसे ब्रह्म, भगवान्, परमात्मा आदि नामोंसे पुकारा जाता है। पारमार्थिकरूपमें निम्नस्तरकी दोनों ब्रोतियाँ उसी परम ज्योतिके अङ्ग हैं। आचार्य रामानुजने सीलिये सत् और चित्को आनन्दका अङ्ग माना है। प्रकृतिमें सत् मात्र है, जीव सत्-चित्-विशिष्ट है; परंतु प्रमाता सत्, चित् एवं आनन्दरूप है। उस एकमें अय सव समाविष्ट हैं। इसीलिये हम सव अपने उसी मोतकी ओर चलना चाहते हैं। कुल आकांक्षा करके है रह जाते हैं। कुल साधना, तपस्या एवं श्रद्धाके बलपर कैंचें उठ जाते हैं, पर कुल विरल साधक ऐसे भी हैं जो उसके साथ एक हो जाते हैं।

तपश्चर्या श्रद्धाके अभावमें उखड़ जाती है। मन हठ करता है, पर जबतक निष्ठासम्पन्न नहीं बनता, तब-तक उसमें ऊँचे उठनेका बल नहीं आता। वह आगे इस जायगा, चारों ओर फैल जायगा, परंतु ऊँचा तभी उठेगा; जब उस परम उयोतिको प्राप्त करनेके लिये उसके अंदर अनन्य निष्ठा होगी। हममेंसे आगे बढ़नेवाले अनेक हैं, परंतु ऊँचे उठनेवाले कहीं एक-आध ही दृष्टिगोचर होंगे। जीवका लक्ष्य आगे बढ़ना तो है; परंतु ऊँचे उठना भी है। अगेबढ़नेमें उसके कृतित्वकी पारमार्थिक दृष्टिसे कोईसार्थकता नहीं है। जीवन तभी सार्थक है जब वह ऊँचा उठे। संकृतमें उत् ऊँचेका ही नाम है। उत्तिष्ठमें उसका श्रास्क है, अन्त तो वहीं है जहाँ परम-तत्त्व है। वही

सर्वोत्कृष्ट है, उत्तम ज्योति है और कूटस्थ है।

वेदने आत्माको 'शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि ज्योतिरसि' कहकर अनेक बार उसके ज्योतिस्वरूपका वर्णन किया है। जो ज्योति है वह कर्म-विपाकमें पड़कर तमसाच्छन हो जाती है। यह उसका अवतरण है। अवतरणमें सर्वप्रथम नन्दनवनकी दिव्य प्रभा उसे आकर्षित करती है, परंतु शीव्र ही दैवी भोग उसे नीचे गिरा देते हैं। सम्भवतः भोग ही उसके निकृष्ट योनियोंमें जानेका कारण है । इसके कारण वह गिरती-गिरती मृद्धसे म्इतम योनियोंमें चक्कर काटती है। अच्छा यही है कि वह जहाँ जाती है, वहीं अपने स्रोतको स्मरण करती रहती है। आनन्द ही वह स्रोत है जिसकी ठाउसा लिये हुए जीव फिर ऊपरको उठता है। अवतरणसे उत्क्रमण होता है और एक दिन जीव पुन: नन्दनवनमें पहुँच जाता है। नन्दनवन आनन्दकी झलक दिखाने-वाला है, ख्रयं आनन्द नहीं है। वहाँ ज्योति है, परंतु ज्योतिका स्रोत नहीं है। यह स्रोत उसके भी ऊपर है। विहति नामके द्वारको चीरकर जब जीव नन्दन-वनको भी छोड़ देता है तब उसे अपने द्रष्टा स्वरूपका बोध होता है। उसका यह स्वरूप ज्योतिर्मय है। स्वरूपकी यही अवस्थिति उसे परम ज्योतिसे भी मिळा देती है। उत्क्रमणका अन्तिम लक्ष्य यही है। यही भूमा है । इसीमें आनन्द है । इसीमें विशालता है, महत्ता है। इससे बढ़कर अन्य कोई नहीं है-'तसात् ह अन्यत् न परः किंचनास'।

क्षमा

दोनों ओर क्षमा सरती है।
दोनो छोरोंको यह धारा आप्यायित करती है॥
क्षमा माँगना भी वास्तवमें हृद्य दान करना है।
और क्षमा करना तो अपनेको अपण करना है॥
दाता और गृहीता दोनोंका मंगल करती है।
आसपासके लोगोंमें भी सुखद भाव भरती है॥
कभी-कभी यह क्षमा विना माँगे प्रसार करती है।
यह भी दोनोंके जीवनमें शान्ति-सुधा भरती है॥
——मधसूदन माजभेयी





श्रीराम-नामामृत और उसकी प्रयोग-विधि

(लेखक-पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

श्रीरामनाम अमृतरूप है, इसकी अमृतरूपता यों कही गयी है—

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं किलमलप्रध्वंसनं चान्ययं श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्द्रवरे संशोभितं सर्वदा । संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥ (रामचरितमानस किष्किन्धा० मं० श्रोक २)

ब्रह्म (वेद) समुद्रसे उत्पन्न, पापोंका प्रकर्षनाशक, अविनाशी, श्रीमान् शिवभगवान्के सुन्दर श्रेष्ठ मुखरूपी चन्द्रमामें सदा शोभायमान, भवरोगकी ओषधि, (सेवनमें) सुखरूर और श्रीजानकीजीके जीवनस्वरूप श्रीरामनामरूपी अमृत को जो निरन्तर पीते हैं, वे पुण्यात्मा धन्य हैं।

श्रीरामनामका अमृतरूप

'ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवम्' — प्राष्ट्रत अमृत श्वीरसागरमन्थनसे प्रकट हुआ है, वैसे ही यह रामनामामृत वेदोंका मन्थन करनेसे साररूपमें निकाला गया है, इसमें विचार मन्दराचल, मुनि और संत देवता तथा श्रीशिवजी मथनेवाले हैं; क्योंकि वेदोंका उपबृंहण रामायण है; यथा—

'वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मनः।' (वा॰ रामा॰ माहात्म्य)

उसका मन्थन कर शिवजीने साररूप श्रीरामनामका ग्रहण किया है—

सतकोटि चरित अपार दिधिनिधि मिथ िकयो काढ़ि वामदेव नाम घृतु है। (विनय-पत्रिका २५४)

वेदके कर्म, ज्ञान और उपासना आदि अन्य रत्न हैं, रामनाम उसका अमृतरूप है, वह अमृत देवोंको अमर करने और दैत्योंका नाद्य करनेके लिये निकाला गया है, वैसे ही यह रामनामरूपी अमृत पापोंका नाद्य करने और जापकोंको अमर करनेके लिये है।

'प्रध्वंसनम्'-इसका भाव यह है कि उस अमृतसे अमर होनेपर भी संसारका जन्म-मरण वना रहता है; क्योंकि अमृत पीनेवाले देवगण भी भव-प्रवाहमें ही हैं, पर इस अमृतके पीनेवालोंका आवागमन सदाके लिये छूट जाता है। 'अन्ययम्'—वह पीनेसे घटता है, पर यह सब देश-कालमें अन्यय है, इसकी महिमा कभी भी घटनेवाली नहीं है। 'श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुः''वह अमृत चन्द्रमामें रहता है और यह श्रीमान् शिवजीके सुन्दर मुख्क्पी श्रेष्ठ चन्द्रमामें सदा श्रीभायमान रहता है, उनके मुखचन्द्रपर यह निरन्तर जपल्पमें विराजमान रहता है; यथा—

ना

4

अप

सीर

है,

प्रति

श्रीर

खरू

निवृ

रावा

दिख

श्रीसं

मिल

ेतुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥। (रामचिरतमानस बाल० १०८)

शिवजी इसका जप करते रहते हैं, इसीसे वे 'श्रीमत्' (शोभायुक्त) और 'शम्भु' (कल्याणरूप) रहते हैं तथा ईश्वर शिवजी जपते हैं, इससे यह शिष्टपरिग्रहीत भी कहा जाता है; यथा—

प्नाम प्रसाद संभु अविनासी। साज अमंगरु मंगरुरासी॥ (रा० च० मानस बाल० २६)

'संसारामयभेषजम्'—वह अमृत संसारी जीवन ही देता है, भवरोगसे नहीं बचा सकता, पर यह भवरोगसे भी बचाता है। 'सुखकरम्'—यह माहात्म्यज्ञानपूर्वक जपमें सुखकर है।

ध्आखर मधुर मनोहर दोऊ। १ (रा० च० मानस बाल० १७)

'धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततम्'—जो इस नाम-अमृतका निरन्तर जपरूपमें पान करते हैं, वे पुष्पात्मा धन्य हैं । स्वर्गके लिये सुकृत करनेवाले धन्य नहीं हैं। क्योंकि पुष्प क्षीण होनेपर उनका स्वर्गसे पतन होता है। पर ये धन्य हैं, जो इससे सदाके लिये भवरोगसे छूट जाते हैं।— देवहूतिजी कहती हैं—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यजिह्नाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्। तेषुस्तपस्ते जुहुबुः सस्नुरार्या ब्रह्मान्,चुर्नाम गृणन्ति ये ते॥ (श्रीमङ्गा०३।३३।७)

अहो, जिसकी जिह्नापर आपका पवित्र नाम रहता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; क्योंकि जी आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इस

रेश-

और

तदा

पमें

()

था

महा

11'

()

भी

में

H-

तामका कीर्त्तन करते हैं, उन श्रेष्ठ पुरुपोंने तप, यज्ञ, तीर्थकान, वेदाध्ययन आदि सब कुछ कर लिये।' एवं—
तन तप्तं तेन दत्तमेत्राखिलं
तेन सर्वं कृतं कर्मजालम्।
वेन श्रीरामनामामृतं पानकृतमिनशमनवद्यमवलोक्य कालम्॥
(विनय-पत्रिका ४६)

जिसने इस कराल किलकालको देखकर श्रीराम-ताम निर्दोष अमृतका नित्य-निरन्तर पान किया, उसने सारे तप कर लिये, निःशेष दान दे दिये और समस्त कर्मसमूहको कर लिया ।' मूल क्लोकमें निरन्तर नाम-जापक श्रीशिवजी और श्रीजानकीजी कही गयी हैं, वैसे ही सबको इसका निरन्तर जप करना चाहिये; यह भी 'पिवन्ति सततम्' का भाव है।

प्रयोग-विधि

'श्रीजानकीजीवनम्'—इस रामनामामृतसे श्रीजानकीजीने अपना जीवन बनाया है, अतः सबको उनसे इसकी रीति सीखनी चाहिये, वही श्रेष्ठ ज्ञान है—

जानकि जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान्यो कहा है।' (कवितावली उत्तर० ३९)

जिसने श्रीजानकीजीके जीवनपरक ज्ञानको नहीं जाना, उसका वह ज्ञान कहावत (कहानी) मात्र है उसने क्या जाना ? (अर्थात् कुछ नहीं)।

श्रीजानकीजीके जीवनपरक ज्ञानकी व्यवस्थाएँ इस प्रकार हैं—

(१) श्रीजानकीजीने श्रीरामजीकी अनुमितसे अपने पितिबिम्बरूप (मायासीता) को लंका मेजकर उसके द्वारा श्रीरामनामाराधनकी रीति और उससे संसारके भयंकर सरूपका ज्ञान तथा उस ज्ञानसे संसारके जन्म-मरणकी निवृत्ति दिखायी है—

श्रीजानकीजीने अपने (अंशमृत) प्रतिविम्बरूपसे रावणद्वारा हरी जाकर लंकामें बंदी रहकर लंकाको शोकमय दिलाया है । वैसे ही श्रीसीतारामोपासक मुमुक्षुओंको श्रीसीताजीकी कृपासे निर्मल मित (सदसिंद्वविकिनी बुद्धि) मिलती है; यथा—

'जनकसुता · · · · जासु कृपा निर्मेक मित पावउँ ।' (रा० च० मानस बाल० १८) 'मिचित्ता मद्गतप्राणा। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥' (गीता १०। ९-१०)

उस बुद्धिसे इसे दारीरासिक्तरूपिणी अशोकवाटिका— जो मोहरूपी रावणकी क्रीड़ास्थली है—वह इसे शोकमय दीखती है और प्रवृत्ति (अविद्याकल्पित नानात्वरूप जगत्) रूपिणी लंका—यद्यपि मोहासक्तोंकी दृष्टिमें स्वर्णमयी (बहुमूल्या एवं अतिप्रिय) है; तथापि वह—इसे दुःखरूपिणी एवं अप्रिय लगती है; प्रमाण—

''बपुष ब्रह्मांड सुप्रवृत्ति लंका-दुर्गः रचित मन दनुज मयरूप-धारी। ''कुनप-अभिमान सागर भयंकर घोर ''मोह दसमौिल तदश्रात अहँकार ''जीव भवदंधि-सेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता। ''प्रबल बैराग्य दारुन प्रभंजन-तन्य विषय-बन दहनमिव धृमकेतू। ''' (विनय-पत्रिका ५८)

(२) इस दुःखकी निवृत्तिके उपायरूपमें वहाँ श्रीजानकीजीने श्रीराम-नामकी आराधना स्वयं करके बतलायी है; यथा—
जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सोइ छिब सीता राखि उर रटित रहित हिर नाम॥
(रामचरितमानस अरण्य० ३२)

अर्थात् श्रीसीताजीने स्वामी श्रीरामजीको मारीचके चर्मके लिये कॉंटोंमें दौड़ाया है, इस घटनाको वे दृश्यकी भॉंति सदा एकरस देखती हुई (पछताती हुई) राम-नाम रटती रहती थीं। वैसे श्रीसीताराम-कृपासे प्राप्त मुमुक्षु जापककी निर्मल मित भी पछताती हुई राम-नाम जपती है कि मैंने मनरूपी मारीचके चर्म-रूपी अभिलिषत मुखके लिये अन्तर्यामीरूपमें श्रीरामजीको संसाररूपी वनकी दुःखमय नाना योनियोंमें दौड़ाया है; यथा-तैं निज कर्मजारू जह घरो। श्रीहरि संग तज्यौ निहं तेरो॥ (विनय-पत्रिका १३६। ४)

वहाँ श्रीसीताजी पछताती थीं कि मृगके पीछे दौड़ते हुए वनके कँटीले मार्गोमें स्वामी श्रीरामजीके चरणोंमें बहुत काँटे गड़े होंगे। उन्होंने मेरे निमित्त ही कितने कष्ट झेले हैं। वैसे ही यहाँ मुमुक्षु जापकको पछताते हुए सोचना चाहिये कि मेरे साथ अन्तर्यामीरूपसे स्वामीने नाना योनियोंके दुःख मेरे स्नेह-वश सहे हैं; क्योंकि जीवातमा उनका शरीर है, शरीर-पर होनेवाले दुःख शरीरीको भी होते ही हैं, इस हश्यपर चित्त रखते हुए श्रीराम-नामका रटन करना चाहिये।

आरि

राज

अधी

श्रीरा

लिख

कोसौ

हुई ।

कार्य

करता

सदस

आदि

प्राप्ति

श्रीअये

आदिवे

ब्रह्मान

द्वयह

श्रीराम

समान

अवस्थ

'हरिनाम'—क्योंकि इस रटनसे क्लेश-हरण होता है, जैसे श्रीसीताजीका क्लेश-हरण हुआ । जैसे वहाँ श्रीसीताजीकी उस आराधनापर स्वामी श्रीरामजी उनको परम-विरही हो खोजते फिरते थे, वैसे ही इस जापकके प्रति भी स्वामी श्रीरामजी आतुर हो मिलनेके इच्छुक रहते हैं; यथा— अंतरजामिहु तें बड़े बाहेरजामी हैं राम जे नाम किये ते । धावत धेनु पेन्हाइ कवाइ ज्यों बाकक बोकिन कान किये तें॥' (कवितावली उत्तर० १२९)

(३) तब जैसे वहाँ रावण-प्रेरित राक्षिसियाँ नाना प्रकार-के भयंकर रूप धर-धरकर श्रीजानकीजीको डराती थीं, वैसे इस जापकका हृदय क्यों-क्यों शुद्ध होता जाता है, त्यों-त्यों प्रारक्धानुसार मोह-प्रेरित नाना प्रकारके रजोगुणी संकल्प जो होते रहते हैं, उनसे इसकी निर्मेल (सदसिंद्विकिनी) बुद्धि-को भय लगता है कि इन संकल्पोंके साथ कहीं प्राण गये तो तदनुसार नाना योनियोंके भोग प्राप्त होंगे—(गीता ८। ६ देखिये।)

वहाँ श्रीहनुमान्जीके पहुँचनेपर त्रिजटाके स्वप्न मुन वे राक्षिसियाँ डरकर हट गर्यों। वैसे ही उक्त रीतिसे नाम-रटनपर प्रबल वैराग्य आनेपर हृदय ग्रुद्ध होनेसे वे भयंकर संकल्प शान्त हो जाते हैं। फिर कुछ कालमें उपासनाके अनुकूल संकल्प होने लगते हैं। जैसे कि वहींपर श्रीसीताजीने कहा है—'रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्यवाचा ब्रुवतीतमेव। तस्यानुरूपं च कथां तद्र्थांमेवं प्रपश्यामि तथा श्रणोमि॥ अहं हि तस्याद्य मनोभवेन सम्पीडिता तद्गतसर्वभावा। विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा श्रणोमि॥ मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि ""(वाल्मी० पा३२।११-१२)

(श्रीसीताजीने अशोकवाटिकामें श्रीहनुमान्जीके सूक्ष्मरूपसे श्रीराम-कथा सुनकर, वहाँ किसी वक्ताको न देखकर अनुमान किया कि—) मैं जो सदा अपने मनमें श्रीरामजीको ही सोचा करती हूँ और वचनसे भी 'राम-राम' ऐसा कहा करती हूँ, इसीसे मैं अपने विचारोंके अनुसार उस राम-नामकी अर्थरूपा यह कथा सुन रही हूँ तथा देख रही हूँ। मैं सर्वात्मना श्रीरामजीकी हूँ। अतएव मानसिक अभिलापाओंसे पीड़ित हो रही हूँ। सदा श्रीरामजीकी ही वातें सोचनेसे मैं ऐसा देख और सुन रही हूँ। अतः यह मेरा मनोरथ (संकल्प) ही हो सकता है, ऐसा मैं सोचती हूँ।

यहाँ 'तज्जपसादर्थभावनम्' इस योगसुत्रके अनुसार

यह विधिवत् नाम-जप है; क्योंकि नाम जपते हुए उसके अर्थभूत रूप एवं कथापर वृत्ति रहना स्पष्ट है, इससे श्रीराम चिरतमय संकल्पोंका हो जाना है, यही 'आनुकूल्यस्य संकल्पों इस द्यारणागतिके प्रथम (अतएव प्रधान) अङ्गको पूर्ति एवं सिद्धि है।

(४) उसी समय वहाँ श्रीहनुमान्जी प्रकट हो गये और उन्होंने सब प्रकारसे श्रीसीताजीको सान्त्वना दी और फिर उन्होंने अशोकवाटिका उजाड़ दी तथा लंकाको जलाकर राखरूपमें कुरूपा कर दिया। उसी प्रकार इस जापकको नाम-जपसे ही प्रवल वैराग्य प्रकटमें हो जाता है और उससे उसकी बुद्धिमें सान्त्वना आती है; यथा— प्रमक्ति-वैराग्य-विज्ञान-सम—दान-दम नाम,आधीन साधन अनेका। राम-नाम सों बिराग जोग जागि है। '' (विनय-पत्रिका ४६, ७०)

फिर शरीरासक्ति उजाड़ हो जाती है और प्रवृत्तिहिंगी स्वर्णमयी लंका राखके समान कुरूपा एवं हेय हो जाती है। तब इसकी जपवृत्ति पराभक्तिरूपमें परिणत हो जाती है। श्रीहनुमान्जीके कर्तव्योंसे जीवरूपी विभीपणजीने श्रीरामजीके तेज और प्रतापको जाना कि जिनका दूत ऐसा है, वे स्वामी रावणके कोपपर अवस्य मेरी रक्षा कर सकते हैं। तब वे रावणको अनुकूल न होनेपर उसे त्यागकर महाविश्वासपूर्वक श्रीराम-शरण हुए, वैसे ही यह जापक (जीव) भी अनन्योपायता बुद्धिके साथ (अन्य उपायोंका भरोसा छोड़ एक प्रभुको ही उपाय मानकर) ग्रुद्ध शरणागित प्राप्त करता है।

श्रीविभीषणजी नित्य पराभक्तियुक्त रहते हैं-'पराभक्ति युतं नित्यं विभीषणमथोक्तरे ।'(शिवसंहिता रामार्चा॰ ३।५५); वैसे इस जापककी व्यवस्था भी ऊपर कही गयी है।

फिर वहाँपर श्रीविभीषणजी केवल भोष्टृत्ववरण (रक्षार्थप्रार्थना)' इस द्रारणागतिकी रीतिसे स्वामी श्रीरामजीते कहते थे—यह सागर भयंकर है, इसे उतरनेका उपाय हो, यह मेघनाद वड़ा कठिन है, यह कुम्भकर्ण ' ' ' आदि। श्रीरामजीने ही वानरोंके साथ सेतु वाँधा और समस्त रावण आदि राक्षस-परिवारका नादा किया है।

वैसे ही जापक अब पराभक्तिसे जपनिष्ठ रहते हुए प्रारब्ध वशात् देहाभिमानरूपी सागरकी भीषणतापर खामीसे इसका बन्धन चाहता है और रावण-कुम्भकर्ण आदिके समाव मोइ-अहंकार आदि मानस रोगोंके आक्रमणीते रक्षार्थ उत्के

श्रीराम-

कल्पः

ही पूर्ति

गिये

ना दी

उंकाको

इस

ता है

नेकं॥१

(00)

रूपिणी

ति है।

है।

ग्जीके

है, वे

हैं।

गिकर

नीव)

रोसा

ागति

क्ति

4);

वरण

जीसे

हो,

दे।

वण

ध-

नि

ह्मामीसे कहकर उनपर निर्भर रहता है। स्वामी श्रीरामजी इसके देहाभिमानको वाँधकर दैवी सम्पत्तिरूपी वानर-कटकके साथ इसके मोह-अहंकार आदि समस्त मानस रोगोंका जड़-महके साथ विनाश करते हैं।

किर वहाँ श्रीरामजीने श्रीविभीषणजीको गुद्ध लंकाका राजा बनाया । वैसे ही श्रीरामजी इस जापकको भी इसके उस गुद्ध स्वरूपका राजा बनाते हैं, जिस रूपसे यह पहले च्युत हो गया था---

निष्काज राज बिहाइ नृप ज्यों स्वप्न कारागृह परबो ॥ (विनयपत्रिका १३६ । २)

मुक्त होनेपर गुद्धका राजा होना कहा भी गया है— 'स स्वराड् भवति' (छान्दोग्य ७ । २५ । २)

जैसे श्रीविभीषणजी राजा होकर भी श्रीरामजीके आश्रित उनके परिकररूपमें रहे, वैसे ही जापक जीव भी ग्राजियाज श्रीरामजीका अंदा है। अतः चक्रवत्तीं राजाके अधीनवर्त्ती अनेक राजाओंके समान यह राजा होता है और श्रीराम-परिकररूपमें ही रहता है। श्रीमद्भागवत १०। ७३ में लिया है कि श्रीकृष्ण भगवान्ने जरासंधके द्वारा कैद किये हुए २०८०० राजाओंको छुड़ाया है और फिर श्रीकृष्णाश्रित हिकर उन राजाओंने राज्य किये हैं।

जैसे वहाँ श्रीविभीषणजीने श्रीजानकीजीको लाकर श्रीरामजी-को सौंपा है और वे अग्निपरीक्षाद्वारा श्रीरामजीकी नित्य श्रीमें लीन हुईं। वैसे ही यह शुद्ध जीव भी ज्ञानाग्निद्वारा पूर्वके हुए सभी कार्य श्रीरामजीकी ही आदिशक्तिके द्वारा होना निश्चित करता है कि उन्हींकी आदिशक्तिकी प्रतिविम्बल्पिणी स्रसिद्विकिनी बुद्धिके द्वारा अभीतक होनेवाले जप, अनुसंधान आदि हुए हैं (प्रारम्भमें ऊपर श्रीसीताजीसे निर्मल मितिकी प्राप्ति एवं उसमें उनकी प्रतिविम्बल्पता कही भी गयी है)।

(५) जैसे वहाँ श्रीविभीषणजी श्रीरामजीके साथ श्रीअयोध्या आये और यहाँ आकर दिव्य रूपसे उन्होंने श्रीभरत आदिके साथ श्रीरामजीके परिकररूपमें छः महीनोंतक ब्रह्मानन्द अनुभव किया, वैसे ही जापक भी निवृत्त इरपरूपिणी श्रीअयोध्यामें दिव्य धामके साथ भगवान् श्रीरामजीके दिव्य शेषत्व (सेवा) का श्रीभरत आदिके समान रूपसे मानसिक भावनामें अनुभव करता है। यह अवस्था मुक्तप्राय कही जाती है—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मत्योऽमृतो अवत्यत्र ब्रह्म समञ्जुते॥

(कठ० २।३। १४)

'इस साधकके हृदयमें स्थित जो कामनाएँ हैं, वे सब जब जड़समेत नष्ट हो जाती हैं तब यह मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और वह यहींपर (मनुष्य-शरीरमें ही) ब्रह्मका मलीभाँति अनुभव करता है।' तथा—

त्रह्मानंद मगन किप सब के प्रमु पद प्रीति । जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास पट कीति ॥ (रामचिरतमानस उत्तर० १५)

अर्थात् श्रीभरत आदिके साथ सभी परिकर विभीषण आदि ब्रह्मानन्दमें निमग्न रहे, उन्हें छः महीने एक दिनके समान बीत गये। यहाँका ब्रह्मानन्द भक्ति-सम्बन्धका ही है; क्योंकि 'सबके प्रभु-पद-प्रीति' यह कहा गया है। ऐसा ही सुख जापकका भी रहता है। फिर वहाँ श्रीलक्ष्मणजीके द्वारा भूषण-वस्त्र पहनवाकर (अर्थात् श्रीलक्ष्मणका सारूप्य बनाकर) श्रीविभीषणजी शुद्ध लङ्का भेजे गये, वहाँ श्रीलक्ष्मणजीकी-सी वृत्तिसे कत्यपर्यन्त (ब्रह्मासे वरदानमें प्राप्त आयुतक) रहें तो अन्तमें शरीर त्याग कर संतोंके समान नित्य धाममें जायँगे; यथा—

करेहु करुप भिर राज तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं। पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सा जाहिं॥ (रामचिरितमानस छंका ११५)

इस प्रमाणसे श्रीविभीषणजी शुद्ध लंकामें अब भी श्रीलक्ष्मणजीकी-सी वृत्तिसे हैं। इसका तात्पर्य यह कि जैसे रामचिरतमानस उत्तर० ११६-११८ में कहे हुए ज्ञान-दीपक-प्रसङ्गमें 'जड़ चेतनिह ग्रंथि परि गई।' कहा गया था। उसका स्थूलांश तो वहाँकी छठी भूमिकातकमें छूट गया था। पर प्रारव्ध-भोगके साथ-प्राथ उसके सूक्ष्माशका शोधन शेष था। सातवीं भूमिका पहुँचनेपर उसका शोधन करना कहा गया है कि यदि उस प्रन्थिको छुड़ा ले, तब यह जीव कृतार्थ हो। वहाँ उसी कर्ममें दीपक बुझना कहा गया है।

उसी सूक्ष्मांश शोधन-कार्यके लिये शेष आयु भोग-पर्यन्तके लिये वहाँ श्रीविभीषणजी शुद्ध लंका भेजे गये। इस लक्ष्यसे जापकके लिये भी यही शिक्षा है कि यह उक्त श्रीलक्ष्मणजीकी भाँति सेवानिष्ठाके साथ ही शेष आयु (जो कर्मानुसार विधि-विहित है) व्यतीत करे। नाम-जपके

[भाग ३६

तूप रही

麻井

आत

मूल

जो उ

ज्ञानव

अनाध

नन्हीं-

ओर

कते सु

यह इन

भी ऐरं

ऐसा है

सरल

जीवन

रमणीय

करते हु

ही अच्ह

अपनी पाँवोंकी

अभिव्य

मूम-पा

साथ-साथ भगवान्के अर्चारूपकी एवं मानसिक सेवा किया करे । तब यह भी दारीरान्त होनेपर ही भगवान्के नित्यधाममें प्राप्त होगा । यथा---

तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये। (छान्दोग्य ६०। १४। २)

'उसके लिये (मोक्ष प्राप्त होनेमें) उतना ही विलम्ब है, जबतक कि वह (देह-बन्धनसे) मुक्त नहीं होता।' छान्दोग्य० ८। १२। १ में भी यही दृढ़ किया गया है।

शङ्का-ऐसा सूक्ष्म विवेकमय जप आजकलके लोगोंसे होना कठिन है।

समाधान—ऊपर लिखा गया कि श्रीसीताजीकी कृपासे निर्मल बुद्धि मिलती है। वह लीला-प्रसंगमें स्पष्ट हुआ कि श्रीरामजीकी सम्मतिसे श्रीसीताजीने अपना प्रतिविभ्न रक्खा था। उसीने लंका जाकर सब साधन सम्पन्न किये हैं। प्रतिविभ्नद्धारा होनेवाले कार्य विभ्नके ही हैं। श्रीसीताजी जगन्माता हैं—वि० पु०१।९।१२६ देखिये। वे अपने मातृत्वस्वभावसे सभीका हित करती हैं।

उनसे वह निर्मलमित एवं उसमें सामर्थ्य उनके 'सीता' इस नामद्वारा प्राप्त करना चाहिये। नामद्वारा भी रूपके गुणरूपका-सा कार्य करते हैं। जैसे कोई ज्योतिषी जो चोरी खोलनेमें प्रवीण हो और इसमें उसकी ख्याति हो गयी हो। तय कहीं उससे दूरपर चोरी होनेके समय कोई उस ज्योतिषीका नाम लेता है तो तुरंत चोर माल छोड़कर भग जाते हैं कि उसके वतला देनेपर हमलोग पकड़े जाकर दण्ड पायेंगे।

यहाँ च्योतिषीकी विद्याशक्तिने उसके नामके साथ जाकर चोरोंको भगाया है। यदि वह ज्योतिषी मर गया हो तो उसके नामपर चोर नहीं भागते। तात्पर्य यह कि रूपके गुण ही उसके नामद्वारा जाकर रूपका-सा कार्य करते हैं।

श्रीरामचिरतमानस वाल० २४-२५ में श्रीगोस्वामीजीने अहल्याके लक्ष्यसे उस प्रसंगसे प्रकटे हुए श्रीरामजीके 'कारन रहित दयाल' इस गुणसे उनके नामद्वारा कुमितका सुधरना कहा है। ऐसे ही वहाँपर नव गुणोंके लक्ष्योंसे नामद्वारा सम्यक् कल्याण होना कहा गया है।

अतः नाम-जापकको प्रथम सीताः नाम कहकर त्र साथ ही स्रामः नाम भी ठेना चाहिये। सीता रामः ग्रु युगलनाम जपना चाहिये। सीताः नामके साथ श्रीसीताजीके द्वारा उपर्युक्त (उनके प्रतिविम्बद्धारा प्रकट होनेवाले) सामर्थ्यकी प्राप्ति होनेपर जापक पूर्ण अधिकारी होगा। त्र स्रामः नामसे उनके द्वारा होनेवाले सभी कार्य होंगे। इस प्रकार युगल नामाराधनसे जापकका शीव्र और निश्चय ही कल्याण होगा।

(६) युगल नामाराधनका एक और सरल प्रयोग भी यों है कि सीताजीमें मातृत्वस्वभावसे कृपा बहुत है। कृपा प्राचुर्यसे ही ये ब्रह्मसे अभिन्न होती हुई भी भाया कही जाती हैं। भाया दम्भे कृपायां च' इस कोष-प्रमाणसे माया पर कृपाका पर्यायी है। जैसे ब्रह्म सत्-चित्-आनन्दरूप है। पर आनन्द-प्राचुर्यसे वह 'आनन्दं ब्रह्म' ऐसा भी श्रुतियोंने कहा गया है। अतः, प्रथम 'सीता' उच्चरित होनेपर श्रीसीतारामजीमें कृपा गुण उद्दीत होता है, इससे जीवोंके दोष उनकी हिंगें नहीं रह जाते और इनका पाप-शोधन भी वे अपना कर्तन्य मान लेते हैं। यथा—

रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यसंघानं कृपा सा पारमेश्वरी॥ स्वसामर्थ्यानुसंघानाधीनः कालुध्यनाशनः। हार्दो भावविशेषो यः कृपा सा जागदीश्वरी॥ (श्रीभगवद्गणदर्भण)

अतः प्रथमके 'सीता' नामसे यह पूर्ण अधिकारी सिंह हो जाता है। तय 'राम' दाब्द अपने अर्थभूत गुणोंसे तुरंत सुखी कर देता है, रामनामार्थ—

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रयकोक सुपासी॥ सो सुखधाम राम अस नामा। अखिक कोक दायक विश्रामा॥ (रामचरितमानस वाठ० १९४)

रामनामका यह एक प्रधान अर्थ है, यों तो रामायणके सभी गुण रामनामार्थ हैं।

^{*} यह (६) के विषयकी आधारभृत भृमिका भैने कल्याण २७।५-६ में प्रकाशित (युगल उपासना-रहस्य) शीर्षक हेखमें बिरुत रूपमें लिखी है। यहाँ विस्तारभयसे वह संक्षेपमें ही लिखा है।

आत्मराक्तिका अक्षय भण्डार आपमें छिपा हुआ है

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न)

प्रत्येक छोटी-सी दीखनेवाली वस्तुके पीछे एक बृहत् भण्डार होता है। बूँदके पीछे समुद्र लहरें मार रहा है। बीजके पीछे पेड़ लहलहा रहे हैं, वायुके एक झोंकेके पीछे सृष्टिमें तृषान उठ रहे हैं; छोटे-से पैसेके पीछे टकसाल खनखना रही है।

र तव

मं' यह

ताजीवे

गले।

। तव

1 इस

श्रय ही

ोग भी

| कुपा-

' कही

या पद

1 97

तयोंमं

सीता-

उनकी

अपना

र्पण)

सिद्ध

र्त

A II

111

8)

渖

यदि बूँदके पीछे एक वृहत् जलका महासागर लहरा रहा है, छोटेसे बीजमें वृक्ष लहलहा रहे हैं, वायुके पीछे तूफानोंका क्षम है, पैसेके पीछे खनखनाती हुई टकसाल है, तो क्या हमारे आत्मज्ञानके पीछे कुछ भी नहीं है? हमारे मनमें दिव्य ज्योति-बी जो एक किरण यकायक चमक उठती है, क्या उसका मूल केन्द्र महान् भण्डार कोई नहीं है? हमारे अन्त:करणमें बी अमृतका स्रोत प्रवाहित हो रहा है, क्या उसका अक्षय सगर कोई नहीं है? पर, वास्तवमें वात ऐसी नहीं है।

हमारे आत्मज्ञानके पीछे, ज्ञानकी एक छोटी-सी किरणके पीछे भी एक विशाल कल्पतरु, शक्तिका एक असीम भण्डार, ज्ञानका अक्षय समुद्र है। हमारा आत्मज्ञान लावारिस या अनाथ नहीं है। हमारे शरीरमें बैठी हुई प्रत्येक आत्मा एक नहीं सी किरण है जो निरन्तर उस ईश्वररूपी ज्ञान-सूर्यकी और संकेत किया करती है।

आत्मकेन्द्रकी ओर आपकी रुचि

जय आप किसी मुन्दर मधुसिक्त डालीपर विहँसते-किलको सुवासित पुष्पको देखते हैं, तो मन-ही-मन आपके हृदयमें
पह इच्छा जाग्रत् होती है कि क्या ही अच्छा होता, यदि हम
भी ऐसे ही मुन्दर, मुवासित और आकर्षक होते! हममें भी
ऐसा ही चटकीला प्यारा-प्यारा रंग होता। हम भी ऐसे ही
सरल और आडम्बरश्चन्य होते। हम भी ऐसा ही निश्चिन्त
जीवन व्यतीत करते।

जब हम मोरके पंखोंकी परम-मुग्धकारी, हृदयविमोहिनी राणीय चित्रकारीको देखते हैं, या भावमत्त हो उसे नृत्य करते हुए देखते हैं, तो हमारी भी इच्छा होती है कि क्या ही अच्छा होता यदि हम भी ऐसा ही विमोहक नृत्य कर पाते । अपनी मत्ततासे दूसरोंको आकर्षित कर पाते । हमारे क्षिप्र भीनेश्वज्ञना कर पाती । हमारे नृत्यमें हमारे हर्व-विपाद-करुणा-भूम-निराह्मा इत्यादि प्रकट हो पाते ।

जय हम किसी भक्त कवि या कविषयीकी रसिस्तम्थ किवता सुनते हैं या भजन गाते हैं, तो अनायास ही हमारी इच्छा होती है कि 'हम भी हृदय-स्पर्शी भजन लिखते और भावभीने मधुर गीत गाते । हम भी अपने भीतर उठनेवाले द्वन्द्वोंको भक्तिपूर्ण वाणीमें प्रकट करते । भक्ति तथा काव्यके सम्मिश्रणसे हमें विद्युद्ध आनन्द प्राप्त होता और आत्मश्रद्धाके योगसे हमारा जीवन मङ्गलमय और शान्तिमय होता । हमारी वाणीमें जनताको सांस्कृतिक चेतनाका स्फुरण मिलता ।'

जव हम प्रह्लाद-भ्रुव आदिकी धर्मवृत्ति, सितयोंके सत्-धर्म, दधीचिका देवत्व-रक्षाके लिये विल्दान, देशको गुलामीसे मुक्त करनेवाले शहीदोंकी ओजस्वी कहानियाँ, बीर हकीकत-रायकी हदता और साहस, सिक्ख गुरुओंके धर्मपर विल्दान होनेकी प्रेरक कहानियाँ सुनते हैं, तो मन-ही-मन हमारे अंदर यह इच्छा जामत् होती है कि काश, ये सब सत्य, प्रेम, न्याय, नीति, धर्म, विवेक, बुद्धि, साहस, शौर्य, विद्वत्ता, योग्यता, शान, उत्साह, शील, स्फूर्ति, हदता, स्नेह, अभय, त्याग और तपस्या आदि चारित्रिक विशेषताएँ हमारे चरित्रमें प्रकट हो पाते। स्वतन्त्रताकी विल्वेदीपर हम भी अपने प्राण न्यौछावर कर पाते।

जहाँ कहीं —प्रकृतिमें, पशु-पक्षी, नल-निर्झर, पर्वत-सरिता या किसी व्यक्तिमें हम उत्तम गुण, उच्च चरित्र, स्वास्थ्य, सौन्दर्य या कोई प्रशस्त कला देखते हैं, तो हमारे अंदर कहींसे चुप-चाप एक उच्च भाव पैदा होता है कि काश, हम भी यही उच्च दैवी भाव या शक्तियाँ प्रकट कर पाते।

इस विश्वमें व्यात प्रत्येक अच्छाई हममें जागृति पैदा करती है। हमारी सोयी हुई आत्मशक्तिको जगाती है। वह हमें श्रेष्ठता और देवत्वकी ओर वढ़नेका गुप्त संकेत करती है।

श्रेष्ठता और देवत्वकी ओर हमारा उत्साह और रुचि पैदा करनेवाळी हमारी गुप्त आत्मशक्ति ही है। दूसरोंके अच्छे और सद्गुणोंके प्रति हमारे हृद्यमें छ्ळक और अनु-करणकी इच्छा इस गुप्त आत्मशक्तिके मण्डारके कारण होती है। यह एक विचारधारा है।

दूसरी ओर एक और विचारधारा है।

आप जब किसी शराबी या पागलको प्रलाप करते हुए या चिथड़े लपेटे भद्दे रूपमें अटपटे वाक्य बोलते हुए सुनते

सुनु नृ

मय उ

रामाभि

तिभवन

होनी ह

होनेसे

सव लो

अतिसय

और

रवि सि

केन्नर वि

क्योंकि-

4

अ

प्रम हे

जब ते र

मुबन च

मी भी

रामराज

श्रीकिशो

समान

अपनी

रावणसे ^{क्रहणा}नि उठाना

इर

₹

ऐ

हैं, तो आपकी यह इच्छा कभी नहीं होती कि हम भी इस व्यक्तिकी तरह मूट, उन्मत्त या असंतुलित बन जायँ।

जब आप किसी चोर, डाकू या हत्यारेको सजा पाते या समाजमें बहिष्कृत, लाञ्छित या अपमानित होते देखते हैं, तो आपकी यह इच्छा कदापि नहीं होती कि आप भी चोर, डाकू या हत्यारे वन जायें।

जब हम किसी कोढ़ी, अपाहिज, रोगी, दुर्वल, दीन, दिरद्र, लाञ्छित, कुरूप, दुष्ट, राक्षती वृत्तिके व्यक्ति या सज़ा-वार दोषी अपराधीको देखते हैं, तो हमारा मन अंदरसे यह कभी नहीं चाहता कि हम भी दुष्ट राक्षतीवृत्तिके आदमी बन जायँ। कुरूपको देखकर हम स्वयं बदसूरत होनेकी कामना नहीं करते। रोगीको देखकर हम स्वयं कभी रोगी होनेकी इच्छा नहीं करते।

जय हम अपना प्राचीन साहित्य पढ़ते हैं, तो हम प्रजा-पीड़क कंस-जैसे नहीं वनना चाहते । अनीति और अत्याचार-की ओर लगे हुए राक्षसराज रावणके प्रति हमारी कोई सहानु-भूति नहीं होती । भाइयोंको सताने और असंख्य व्यक्तियोंका संहार करानेवाले दुष्ट दुर्योधनके प्रति हमारा ममत्व नहीं जागता ।

न जाने क्यों हम दुष्टों, दुश्चरित्रों, प्रजापीड़कों, अत्या-चारियों, नरसंहारकों, शोपकों, शरावियों, जुआरियों या व्यभिचारियोंसे घृणा करते हैं। हम इनमेंसे कुछ भी नहीं वनना चाहते। अनीति, अत्याचार, अपराध, अन्याय, दोष, त्रुटि, हानि, दरिद्रता, चोरी, डकैती, ठगी—इत्यादिकी ओर हमारी रुचि नहीं होती। इसका मुख्य कारण यह है कि ये तमाम दुष्प्रवृत्तियाँ हमारे अंदर बैठे देवत्व—आत्माके विरुद्ध पड़ती हैं। इन पापवृत्तियोंकी ओर हमारी नैसर्गिक प्रवृत्ति कभी नहीं होती।

हम पवित्रताकी ओर जाना चाहते हैं, अपवित्रताकी ओर जाते हुए डरते हैं। हम अंधकारसे प्रकाशकी ओर जाना चाहते हैं, मृत्युसे अमरताकी ओर प्रवृत्त होते हैं। वासना, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मद, मत्सर, द्वेष, वैर, हिंसाका परित्याग कर विषयोंसे वैराग्य, प्राणियोंमें भगवद्भावना, सम्ता, प्रेम, न्याय, सेवा, आहेंसा, मैत्री, दृद्ध भगवद्भिश्वसमें जाना चाहते हैं, जहाँ शीतलता और पवित्रताका महासागर ल्ह्रा रहा है।

हम केवल सन्मार्ग और दिन्य आत्मप्रवृत्तियां, ऊँची पवित्र कलाओं और देवत्वके दिन्य गुणोंकी ओर ही अप्रसर होते हैं। प्रत्येक दिन्यगुणका अमृतकुण्ड हमारी आत्मा है— परमात्मा है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्र॥
(इनेताश्वतर ६ । ११)

अर्थात् 'वह एक देव ही सब प्राणियोंमें छिपा हुआ है। सर्वव्यापक है और समस्त प्राणियोंका अन्तर्यामी परमात्मा है। वहीं सबके कर्मोंका अधिष्ठाता है, सम्पूर्ण भूतोंका निवासस्वात, सबका साक्षी, चेतन-स्वरूप एवं सबको चेतना प्रदान करते-वाला, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत भी है।'

हम केवल सन्मार्ग और पवित्र प्रवृत्तियों, कँची क्लाओं और देवत्वके गुणोंकी ही ओर अग्रसर होते हैं। प्रत्येक दिव्य गुणका-अमृतकुण्ड हमारी आत्मा है। यह ऐसा दिव्य केंद्र है जिसमेंसे हमारी उच्च प्रवृत्तियाँ अग्निसे चिनगारियोंकी माँति फैला करती हैं।

जहाँ पृथ्वीपर जल छिपा हुआ होता है, वहाँ हरे-मरे क्ष्म लहलहाते दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार जहाँ मनुष्यका आत्मतत्त्व जागरूक होता है, वहाँ हमारी प्रवृत्ति आत्माके दिव्य गुणोंकी ओर होती है। यह देवत्वकी ओर अग्रसर होती है।

संसार और समाजकी सव श्रेष्ठताओंके रूपमें हमारी आत्मतत्त्व ही वह रहा है। हमारी श्रेष्ठता और सौन्दर्यका मूल केन्द्र हमारी सत्-चित्-आनन्दस्वरूप वह आत्मा ही है।

श्रीरामचरितमानसमें आगम-तत्व

[गताङ्कसे आगे]

(लेखक-डॉक्टर शीहरिहरनाथजी हुक्रू, एम्० ए०, डी० लिट्०)

(ख) राजरस-भंग--प्रसङ्ग

तुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं। जासु भजन विनु जरिन न जाहीं।।

स्व तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥

ऐसे 'सकल सुकृत मूरित नरनाहू' राजा दशरथकी

समाभिषेककी परम अभिलापामें कौन वाधा डाल सकता था।

क्रियन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दसरथ सम नाहीं॥

ऐसे अद्वितीय भाग्यवान् राजाकी ग्रुभकामना तो पूर्ण होती ही चाहिये थी। परंतु ऐसा नहीं हुआ; क्योंकि ऐसा होतेसे लोक-कल्याण न होता और 'रावणं लोकरावणम्'— स्व लोकोंको रुलानेवाले रावणके आतङ्कका अन्त न हो पाता।

रावणके राज्यमें-

ताः ।ना

हरा

ज़ें जेंची

सर

?)

है।

है।

ान,

रने-

ાઓ

देव्य

न्द्र

ĭĭſत

깱

啊

गि

सर

RI

अतिसय देखि धर्मकै ग्लानी। परम समीत धरा अकुलानी॥ और

रिव सिस पवन बरुन धन धारी । अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥ कितर सिद्धः मनुज सुर नागा ।

-की स्वतन्त्रता छिन गयी और ये परम दुखी हो गये; सोंकि—

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।

अतएव रावणके राज्यका अन्त करना प्रभुके अवतारका ^{१रम} हेतु था।

उधर साकेतमें-

जब ते रामु ब्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बघाए ॥ मुबन चारिदस भूघर भारी । सुकृत मेघ बरषिं सुख बारी ॥ भिष्ठ संपति नदीं सुहाई । उमिंग अवध अंबुधि कहुँ आई ॥

इससे अधिक मुख हो ही क्या सकता था ? यदि रामराजरस-भंग न होता तो आनन्दकन्द श्रीरघुनन्दन और श्रीकिशोरीजी कहानियोंके राजकुमार और राजकुमारियोंके समान आनन्दसे राज्य करते और मुखसे जीवन व्यतीत करके अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करते । न सीता-हरण होता, न रावणसे वैर होता और न राम-रावण-युद्ध होता । परंतु केरणानिधान प्रभुने जो नर-अवतार धारण करनेका कष्ट उटाना स्वीकार किया था, उसका उद्देश्य सफल न हो पाता । इसिल्ये राज-रस-मंग आवश्यक था । राज-रस-मंगके द्वारा श्रीकिशोरीजी अयोध्याके राजप्रासादसे मुदूर दक्षिणमें पञ्चवटी पहुँचा दी गर्यों और राम-कथाका प्रवाह उत्तरभारतमें सर्यूतटसे दक्षिण भारतमें गोदावरीके किनारे पहुँच गया । राम-कहानीमें राज-रस-मंगका बड़ा महत्त्व है और इस महान् कार्यके सम्पादनका श्रेय तीन व्यक्तियोंको—तीन स्त्रियोंको है । पहली सरस्वती देवी—

सारद बोिं बिनय सुर करहीं। बारिं बार पाय ले परहीं॥

दूसरी मंथरा-

नामु मंथरा मंदमित चेरी कैंकइ केरि । और तीसरी महारानी कैंकेयी— बिपित बीजु बरषा रितु चेरी । मुइँ भइ कुमित कैंकई केरी ॥

(ग) स्रपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा—प्रसङ्ग

राज-रस-भंगके फलस्वरूप राम-कथा अयोध्याके सुन्दर नगरसे सधन वनोंकी ओर प्रेरित हो गयी। वनमें जाकर-रघुपित चित्रकूट बिस नाना। चिरित किए श्रुति सुधा समाना॥ बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि मीर सबिह मोहि जाना॥ सक्त मुनिन्ह सन विदा कराई। सीता सहित चले द्वो माई॥

तब--

चित राम मुनि आयसु पाई । तुरतिहं पंचवटी निअराई ॥ और—

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा । सुखी भए मुनि बीती त्रासा ॥ गिरि बन नदीं ताल छिब छाए । दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥ खग मृग बुंद अनंदित रहहीं । मधुप मधुर गुंजत छिब लहहीं ॥ सो बन बरिन न सक अहिराजा । जहाँ प्रगट रघुवीर विराजा ॥

इस प्रकार तेरह वर्ष बीत गये और अगर जैसे तेरह वर्ष बीते, वैसे ही चौदहवाँ वर्ष भी बीत जाता तो 'सीय सहित दोउ भाइ' अयोध्या छोट आते और करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनारूढ़ होकर मुखपूर्वक राज्य करते, चारों भाई प्रभुकी और महारानी श्रीसीताजीकी सप्रेम सेवा करते और सब प्रकारका आनन्द रहता । परंतु राम-रावण-युद्ध न होता, रामायण न बनती, जिस राम-कथाके छिये यह आवश्यक

Ħ6

मार्घ

कहीं.

जिन ।

थी;

प्रम

दिया

ति वि

अन्तिम

नारीके

यही हो

नारिहि

चिन्तन

कविवर

विरहीं

इसका

ये और

नारद ३

विरहवंत

हेकिन

भी महा

क्रणानि

नाथ दस

है दक्छि

श्रीजानवं

दो विल

वोजमं

नेकसुता

6

था कि उसका प्रवाह अयोध्यासे दक्षिण भारत और उसके लिये यह भी बाध्य था कि महारानी श्रीसीताजी लंकामें पहुँचायी जायँ। इस महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन भी एक स्त्रीद्वारा—शूर्णणलाद्वारा हुआ।

सूपनखा रावन के बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ॥ पंचबटी सो गइ एक बारा । देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥ भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥ होइ बिकल सक मनहि न रोकी ।

'परम कौतुकी कृपाला' प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उसे लपनलालके पास भेजा, उन्होंने उसे प्रभुके पास लौटा दिया, प्रभुने फिर उसे लपनलालके पास भेजा और जब इन्होंने उसे कटु वचन कहे—

तव खिसियानि राम पहिंगई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥ सीतिहं सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥

रुछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि। ताके कर रावन कहँ मनी चुनौती दीन्हि॥

इस प्रकार शूर्पणलाको कुरूप करनेसे राम-रावणके भविष्यमें युद्धकी सम्भावना दृढ़ हो चली और रावणवंशसे प्रभु श्रीजानकीनाथजीका वैर सम्पर्क अभिव्यक्त हो गया। अव राक्षसेन्द्र रावणके लिये प्रति अपकारमें रघुकुलकी किसी नारीका अपमान करना केवल समय और उपयुक्त अवसरकी वात रह गयी।

(घ) माया सीता कर हरना-प्रसङ्ग

जासु अंस उपजिहें गुनखानी । अगनित रुच्छि उमा ब्रह्मानी ॥ भृकुटि विरास जासु जग होई । … … … … ॥

उन जगदम्बा महारानी श्रीसीताजीको उनकी इच्छाके विरुद्ध कौन उठाकर ले जा सकता था १ परंतु राम-रावण-कथाकी पूर्तिके लिये यह आवश्यक था कि रावण सीता-हरण करनेमें सफल हो । अतएव परम कौतुकी कृपाला प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने महारानीजीसे 'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा' कहकर माया-सीताको अपनी वामाङ्गना करके अपने पास रख लिया। इस कारण जब 'मारीच कपट मृग भयऊ' तब मायासीता मोहित हो गयीं। कविवर तुलसीदासजीने यह नहीं कहा कि उस रज्जिटित हेम-मृगने अपनी छिबके चमत्कारसे श्रीराघवेन्द्रके मनको छुभा लिया; क्योंकि प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके मोहित होकर मृगछाला लानेके लिये जानेमें और माया-सीताके मोहित होकर मृगछाला लानेके लिये

करणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको वाच्य करनेमं बहुत अन्तर है। इस प्रसङ्गमें यह प्रश्न बहुं महत्त्वका है कि किसके हृदयमें मृगछाला अपनानेकी इच्छा हुई। यह कपटमृगके मोहजालमें कोई न फँसता तो कपट-मृगके पीछे करणानिधान प्रभु न जाते, न मायासीता अकेली रह जातीं, न रावण सीता-हरणमें सफल होता और न राम-रावण-युद्ध होता, न रामायण वनती। सीता-हरणका प्रसङ्ग राम-कथामें विशेष महत्त्वका है; क्योंकि इस प्रसङ्गके कारण वैदेही राम और रावणके प्रेम-विरोधकी भूमि बन जाती हैं। इस प्रसङ्गके ही फलस्त्रस्थ वैदेहीके व्यक्तित्वमें राम-रावण-वैमनस्य केन्द्रीभृत हो जाता है और राम-रावण-युद्धकी सम्भावना हदताको प्राप्त हो जाती है। कविवर तुलसीदासजी कहते हैं—

तोहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयज॥
अति बिचित्र कछु बरिन न जाई। कनक देह मिनरिचत बनाई॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर वेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥

मानस-कथामें हम देखते हैं कि परम रुचिर मृगंश्रे पहले माया-सीताने देखा और वे मोहित हो गर्यो । उन्होंने करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीसे प्रार्थना की— सत्यसंघ प्रमु बिंघ करि एही । आनहु चर्म कहित बैदेही॥

'आनहु चर्म कहित वैदेही'—मायासीताकी ऐसी आर्त

प्रार्थनापर सत्यसंध देव रघुवीर कृपाला—

उठे हरिष सुर काजु सँवारन।

—इस प्रकार मानसकी रामकथामें 'माया'सीता कर हरना-जैसे महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गमें भी एक स्त्रीने ही 'देव रघुवीर कृपाला'को मायामृगके पीछे जानेकी प्रेरणा दी और इस स्त्रीकी प्रेरणाके ही कारण इस कथाका प्रवाह लंकाकी ओर बढ़ा।

(ङ) सुग्रीव-मिताई—प्रसङ्ग

माया-सीताके इच्छानुसार— खरू बिघ तुरत किरे रघुबीरा।

परंतु—
आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना।
किवार तुलसीदासजीने करुणानिधान प्रभु श्रीरामवन्द्रजीकी विरह-वेदनाका विस्तृत वर्णन नहीं किया; क्योंकि जैसी
महारानी श्रीजानकीजीकी विरह-कथा थी वैसी ही करुणा

वहुत

निहा है

यह

मृगक्ते

गसीता

सुपूल

नती।

क्योंकि

ोधकी

देहीके

और

The

यऊ॥

नाई॥

वा॥

ला॥

ग'को

न्होंने

ही ॥

भार्त्त

कर

इस

ाकी

तिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी थी । जब रघुपति-प्रिय-भक्त मार्गत लंका दहन करके प्रभुके दरवारमें लौटे तब उन्होंने कहा—

हिं कहें भिल्न विपति विसाला । विनिहं कहें भिल्न दीन दयाला ॥ इसी प्रकार प्रभुकी विरह-वेदना भी विनिहं कहें भिल्ने थी । सत्य तो यह है कि जैसा भक्त हनुमान्ने कहा—

बिन जननी मानहु जिय जना । तुम्ह ते प्रेम राम कें दूना ॥ तो दूने प्रेममें प्रभुकी विरह-व्यथा भी दुगुनी अकथनीय थी; इसीलिये कविवर तुलसीदासजी भी चुप रहे । उन्होंने परम कौतुकी कृपालाकी दशाका संकेत इस प्रकार कर हिया।

्षहि बिधि खोजत विरुपत स्वामी । मनहु महा विरही अति कामी ॥
'कामी' की व्याख्या तो सूक्ष्मरूपसे कविवरने उत्तरकाण्डके
अन्तिम दोहेमें की है अर्थात् वह नर जो जागते-सोते
नारीके ध्यानमें मग्न रहे, जिसका दृढ़ एकमात्र सिद्धान्त
वही हो ।

नारिहि सुमिरिअ गाइअ नारिहि। संतत सुनिअ नारि गुन ग्रामिह।। जिसके लिये नारीके सिवा और किसीका अस्तित्व विन्तन करने योग्य हो ही नहीं। परम कौतुकी कृपालाको किवरने 'अति कामी' की उपमा देकर विरही नहीं 'अति विरही' बना दिया। अति कामीका महाविरह अकथ है। इसका नाटक तो परम कौतुकी परम नट प्रभु ही कर सकते ये और उन्होंने इसका ऐसा नाटक किया कि देवऋषि नारद भी मोहमें पड़ गये।

बिह्बंत भगवंतिह देखी। नारद मन भा सोच विसेषी॥

'एहि विधि खोजत विलपत स्वामी' वरसों खोजते रहते

रिकेन वैदेहीका वे पता न पाते। गीधपतिसे भेंटके वाद
भी महारानीजीका पता न चलता; क्योंकि यद्यपि गीधराजने

क्रिणानिधान प्रमुको यह बतला दिया कि—

नाथ दसानन यह गति कीन्ही । तेहिं खल जनकसुता हरिलीन्ही ॥ है दिच्छन दिसि गयंड गोसाईँ ।॥

फिर भी दिन्छन दिसिमें किस स्थानपर महारानी श्रीजानकीजीको रावणने रक्खा था इसका पता लगाना हो विलाप करते राजकुमारोंके लिये असम्भव था। सीता-श्रीजमें ठीक दशा प्रदान करनेका श्रेय भी है।

क्रिनिक्सुता कइ सुधि भामिनी। जानहु कहु करिवर गामिनी॥

ऐसा प्रश्न करनेपर शवरीने कहा— पंपासरिह जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥ सो सब कहिहि देव रघुबीरा।॥

रघुपति-प्रिय-भक्त मस्त्-नन्द्नने भी सुग्रीय-मिताईके सम्बन्धमें करुणानिधान प्रभुसे कहा— नाथ सेठ पर कपिपति सर्वत । मो समीत सम्बन्ध कर्

नाथ सैंक पर कपिपति रहई । सो सुग्रीव दास तव अहई ॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे । दीन जानि तेहि अमय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि । जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥

इस प्रकार सीता-खोज सुग्रीव-मिताईपर निर्भर है और सुग्रीव-मिताईके लिये पंपासरकी ओर राम-कथाको प्रसार करनेका श्रेय शवरीको है-—एक सची स्त्रीको है।

(च) कपिन्ह वहोरि मिला संपाती-प्रसङ्ग

सुग्रीव-मिताईके पश्चात् मानसमें हम देखते हैं कि— कह सुग्रीव नयन भिर वारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी॥ और फिर—

कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥ सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि विधि मिर्तिहि जानकी आई॥

परंतु इस प्रकार वार-वार विश्वास दिलानेपर भी— बरषा गत निर्मरू रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥ क्योंकि—

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥

सुग्रीवका आचरण विस्मयजनक है। जिसकी दशा महु हो कि 'सकल भुवन मैं फिरउँ बिहाला'

वह राज-कोष-पुर-नारी पाकर उस करणानिश्चातको स्क्रीन्ताय जाय जिसकी कृपा-कटाध्यसे यह सब प्राप्त हुआ हिम्ब अध्यक्षी कारक है। परंतु कथाके कलात्मक निर्वाहको क्रिकेन्द्रह आवस्तिक है कि उसकी गतिमें वाधाएँ और उल्ह्वाने अहिं कि असकी गतिमें वाधाएँ और उल्ह्वाने अहिं कि असकी गतिमें वाधाएँ और उल्ह्वाने अहिं कि अहि कि अहिं कि अहिं

क्योंकि--

बिषय बस्य मुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु किप अति कामी।। इस प्रकार वह 'नारि नयन सर' का लक्ष्य बन गया और सीता-खोजके वचन-पालनमें जो विलम्ब हुआ वह भी एक स्त्रीके कारण।

जब वानरराज सुग्रीवने वानरोंको समझाकर कहा— राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥ तब असंख्य वानर चारों दिशाओंमें गये।

बानर करक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा।। ये सब अगणित वानर घूमते फिरे। नील, अंगद, हनुमान, जाम्बवंत दक्षिणकी ओर गये, एक मासकी निर्धारित अविध भी समाप्त होनेको आयी परंतु सीताकी खोज न मिली। बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलहि ताहि सब घेरहिं॥

यहाँतक कि--

कागि तृषा अतिसय अकुकाने । मिरुइ न जरु घन गहन भुकाने ॥ मन हनुमान कीन्ह अनुमाना । मरन चहत सब बिनु जरु पाना ॥

ऐसे विपत्तिके समयमें उन्हें 'एक नारि तप पुंज' के दर्शन हुए, उसकी कृपासे वानरोंको जल पीनेको मिला और उनके प्राण बचे। इस 'एक नारि तप पुंज' का मानस-कथा-में बड़ा महत्त्व है। यदि इसके दर्शन हनुमानादि 'सकल सुभट' न पाते तो कभी भी ये सीताकी खोज न कर पाते और इनका मरण कपिपति सुग्रीवके हाथ होता और राम-कथाका इसी स्थानपर अन्त हो जाता। 'एक नारि तप पुंज' के मिलनसे राम-कथा और आगे बढ़कर समुद्र-तटतक पहुँच गयी और नील, अंगद, जाम्बवान् आदि सम्पातीकी गुफाके पास पहुँचा दिये गये। सीता-खोज सम्पातीसे भेंटके बिना असम्भव थी; क्योंकि सम्पातीने ही ठीक उस स्थानका पता दिया, जहाँ महारानी श्रीजानकीजी स्क्खी गयी थीं। सिवा सम्पातीके और किसीकी दृष्टि उन्हें देख ही नहीं सकती थी।

गिरि त्रिकूट उपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥ तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥

में देखउँ तुम्ह नाहीं गीधिह दृष्टि अपार। बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥

विना 'एक नारि तप पुंज' से भेंट हुए सम्पाती-मिलन असम्भव था और सम्पाती-मिलनके विना सीता-खोजको एक निश्चित स्थानमें केन्द्रीभूत करना असम्भव था। अतएव एक बार फिर मानस-कथाके प्रवाहको अप्रसर करनेमें एक स्त्री—'एक नारि तप पुंज'—को ही श्रेय मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब-जब राम-कथाकी गति कुण्ठित होने लगती, तब कथाके प्रवाहको अग्रसर करने की शक्ति मानसमें एक-न-एक स्त्रीके द्वारा ही मिलती है। राम-बछभा जनकसुता, देवबन्दिता सरस्वती, महारानी कैकेगी, मन्दमित मन्थरा, 'स्प्रनस्वा रावन के बहिनी' माता शक्ती, और 'एक नारि तप पुंज'—इन सातों स्त्रियोंद्वारा मानस-कथाको गति मिलती है, उसका प्रवाह पुनर्जीवित होता है, और इस गति और प्रवाहको निश्चित दिशा प्रदान की जाती है। आगम मतकी लोकप्रिय और सर्वमान्य पाठ्य पुत्तक श्रीदुर्गासप्तशतीमें आदिशक्तिके विविध रूपोंकी चर्चा करते हुए एक मन्त्रमें कहा है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकळा जगत्सु। त्वयैकया प्रितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तन्यपरा परोक्तिः॥

(११ 1 ६)

मङ्ग

पह

देवं

मान

शि

'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु'—जगत्में जितनी हियाँ हैं व सब आद्याशिक्त ही मूर्तियाँ हैं। मानसकथामें हम यही देखते हैं कि जो कुछ होता है, वह आदिशक्तिखरूण एक स्त्रीके द्वारा ही होता है। आद्याशिक्त ही किसीन किसी रूपमें—सौम्य रूपमें या असौम्य रूपमें—कथाके प्रवाहकों अप्रसर करती हैं और उसको अभीष्ट उद्देश्यकी और ले जाती हैं। कविवर तुलसीदासजीने मानसकथाको ऐसा हम दिया है कि इस लोकहितकारी कथाका कारण भी एक स्त्री—मातु भवानी ही हैं।

भागु भयाना हा हा । पारवती भक्त अवसर जानी। गईं संमु पहिं मातु भवानी। जानि प्रिया आदर अति कीन्हा। वाम भाग आसनु हर दीन्हा। बैठी सिव समीप हरषाई। पूरुव जन्म कथा चित आई। पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहिस उमा बोर्ली प्रिय बानी। कथा जो सकर होक हितकारी। सोइ पूछन चह सैंह कुमारी।

इसलिये उन्होंने कहा— जों मो पर प्रसन्न सुख रासी । जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥ तौ प्रमु हरहु मोर अग्याना । कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥

और उन्होंने सविनय प्रार्थना की— कहहु पुनीत राम गुन गाथा । भुजगराज भूषन सुराणा॥ ३६

नं एक

की गति

करनेकी

। राम-

कैनेगी,

शबरी,

मानस-

होता है,

ही जाती

पुस्तक

रते हुए

1

11

१ 1 ६)

स्त्रियाँ हैं

म यही

पा एक

-न-किसी

प्रवाहको

ओर हे

सा ह्य

म्बी-

मवानी ॥

दीन्हा ॥

आई॥ बानी॥

कुमारी ॥

दासी॥

नाना ॥

रनाधा ॥

बंद उँ पद घरि घरिन सिरु विनय कर उँ कर जोरि। बरनहु रघुवर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥ और जिस प्रकार श्रीरामचरितमानसकी कथाका कारण मातु भवानी हैं उसी प्रकार उमा-संभु-चरितका भी कारण एक स्त्री—सती ही हैं।

सती सो दसा संमु के देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥ अतएव कविवर तुलसीदासजीने इस आगम सिद्धान्तको स्वीकार किया कि चाहे राम-चरित हो या संमु-चरित हो सब स्थानों में प्रधानता शक्तिकी ही है, जो अनन्तरूपा हैं, अनन्तवीर्या हैं, आद्या हैं, एका हैं, अद्वितीया हैं। इसी विद्धान्तको सूक्ष्म रूपसे व्यक्त करनेके लिये उन्होंने वालकाण्डके मङ्गलाचरणमें देवी सरस्वतीकी प्रथम वन्दना की है—

'वन्दे वाणीविनायकौं'

जो आद्या हैं। निश्चय ही वही अनन्त स्नेहमयी जगदम्वा प्रथम वन्दनीय हैं। यद्यपि महाकवि केशवदासने रामचन्द्रिकामें पहले गणेशजीकी वन्दना की है।

सम्भवतः इस स्थानपर यह शंका उठे कि माता जनकी, रानी कैकेयी, चेरी मन्थरा, सूपनखा राक्षसी तो सव राम-कथाओंमें पायी जाती हैं तो अगर ये पात्र मानस-क्थामें भी पाये जाते हैं तो इसमें विशेष वात क्या हुई ? इस सम्बन्धमें यह स्मर्णीय है कि कभी-कभी किसी स्त्री या देवी या जैसे प्रसन्नराध्वके दूसरे अङ्कमें पाया जाता है चण्डीकी ओर या जैसे अध्यातमरामायणके अयोध्याकाण्डमें पया जाता है (२।४३) दुर्गाकी ओर यदि स्पष्ट संकेत मी पाया जाय तो इसका अर्थ यह नहीं है कि लेखकने राक्तिके सर्वव्यापिनी और सर्वोपरि होनेका आगम सिद्धान्त ^{प्रहण्} कर लिया है। इस विषयमें जो बात आवश्यक है, वह वह है कि आदिसे अन्ततक जब कथाका प्रवाह अवरुद्ध हो जाय तब कथाकी गति किसी स्त्रीके द्वारा ही मिले, जैसा हम मानसमें पाते हैं आर जिसका सविस्तर उल्लेख ऊपर किया गया है। वार्ल्मीकीय रामायणमें रघुवीर और जनक-षुताका धनुप-भंगके पूर्व मिलन पाया ही नहीं जाता ।

आदिरामायणके अरण्यकाण्डमें वाल्मीकिने सुग्रीव-मिताई करनेका परामर्श कवंधद्वारा श्रीरघुनन्दनको दिलवाया है। जिससे स्पष्ट है कि जिस उद्देश्यसे कविवर तुलसीदासजीने मानस-कथाका निर्माण किया, वह महर्षि वाल्मीकिके उद्देश्यसे भिन्न था । प्रसन्नराघवमें यद्यपि स्वयंवरका उल्लेख है, परंतु नेपथ्यमें जनकमुताको बुळानेके कारण इस नाटकमें वह भाव नहीं आया; वह वात नहीं आयी जो मानसमें है। बालरामायणके छठे अङ्कमें राघव जनकनन्दिनीका ध्यान मृगकी ओर आकर्षित करते हैं। ऐसा ही आश्चर्य चूड़ामणिके तीसरे अङ्कमें और साकेतमें भी है। जानकी-हरण नाटकमें मृगके पीछे जानेकी प्रेरणा राघवको रावणसे मिलती है, जानकीसे नहीं। अध्यात्मरामायणमें स्वयंप्रभासे भेंटके पश्चात् उसके आदेशानुसार जव वानर आँख खोलते हैं तब वे अपनेको उसी वनमें पाते हैं जहाँ वे पहले थे और इस प्रकार मानसमें एक नारि तप-पुंजकी मेंटसे जो कथामें गति आती है वह अध्यात्मरामायणमें नहीं आती । अध्वात्मरामायणमें राम और सीताके मिलनेमें किसी स्त्रीरूप शक्तिका हाथ नहीं पाया जाता । इसी प्रकार रामचरितचिन्तामणिमें सम्पाती-मिलनमें भी किसी स्त्रीका हाथ नहीं पाया जाता । जब हम मानस-कथाकी और राम-कथाओंसे तुलना करते हैं तो हमको अन्य किसी काव्य या नाटकके प्रसंग-निर्माणके विश्लेपणसे यह नहीं सिद्ध होता कि रचयिताका उद्देश्य इस परात्पर सत्यकी ओर लक्ष्य करना है कि शक्ति सब गतिका कारण है। जो कुछ होता है उन्होंके द्वारा होता है और वे अपना कार्य ऐसे सूक्ष्म ढंगसे करती हैं कि एका, अद्वितीया, अनन्तवीर्या, विश्वव्यापिनी होते हुए भी वे अदृश्यः अप्रकट और अज्ञात बनी रहती हैं। कविवर तुल्सीदासजीने परात्पर कारण पराशक्तिके विश्वव्यापी सूक्ष्म अस्तित्वके रहस्यको मानसमें रघुनाथ-गाथामें स्पष्ट ही नहीं किया, विस्क सर्वसाद्या शक्तिके अस्तित्वकी सूक्ष्मताको भी अपनी अनुपम काव्यकलाके द्वारा सूक्ष्म बनाये रक्ला।

और श्रीरघुनाथजीके सम्बन्धमें कहा है-

तब मञ्जन करि रघुकुळनाथा । पूजि पारियव नायउ माथा ॥

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करिंह कलप भिर घोर नरक महुँ बास।।

^{यही} बात सम्मोहन तन्त्रमें पायी जाती है। उसमें लिखा है कि राम और शिवमें जो मेद देखता है, वह मूर्ख है। अतयव राम और

^{शिवकी} एकरूपता, जिसके लिये मानस सुप्रसिद्ध है वह भी तान्त्रिक परम्पराके अन्तर्गत आती है और आगमकी देन है।

8-

^{*} श्रीरामचिरतमानसमें राम और शिवका सुन्दर रीतिसे अभेद निरूपण किया है। उमापितके सम्बन्धमें लिखा है— सेवक स्वामि सखा सिय-पी के।

क्यानक-निर्माणमें तुलसीका दृष्टिकोण

(लेखक—डा० श्रीगोपीनाथजी तिवारी एम्० ए०)

महाकवि तुलसीने कथानिर्माणमें भक्तिपरक दृष्टिकोण अपनाया है, फलतः उन्होंने प्रसंगोंको संस्कृत-ग्रन्थोंसे उठाते समय इस बातका ध्यान रक्ला है कि उनका भक्तिपरक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाय । यह तो सभी जानते हैं कि राम-कथाको देनेवाला सबसे आदिमन्थ वाल्मीकिरामायण है। अन्य राम-कथाकारोंने भी इसी मूल-ग्रन्थसे स्थूल कथाको उठाया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी स्थूल कथा वाल्मीकि-रामायणसे ही अपनायी है, किंतु घटनाओं एवं प्रसंगोंके व्यौरोंमें पर्याप्त हेर-फेर किया है । इस हेर-फेरके पीछे कथा-निर्माण-कौराल तो है ही, साथ ही भक्ति-भावना भी प्रस्फुटित है । यह ध्यानमें रखनेकी वात है कि तलसीके राम केवल विष्णुके अवतार ही नहीं; वरं सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर एवं विधि-हरि-हरको नचानेवाले परब्रह्म भी हैं। अतः वे सब कुछ कर सकनेमें समर्थ हैं। वे तिलको ताङ्, पाषाणको मानव, मिट्टीको पहाङ और तडागको महासागर बनानेमें समर्थ हैं । अहत्या और केवट-प्रसंग इसकी पुष्टिके दो उदाहरण हैं; वाल्मीकीय रामायणमें अहल्या शिला नहीं बनती है; गौतम उसे शाप देते हैं कि 'यह स्थान सर्वथा निर्जन हो जायगा । हे पापिष्टे ! तुझे कोई देख न सकेगा। तू सव जीवोंसे अहक्य होकर यहाँ तपस्या करती रहेगी । तुझे खानेके लिये केवल वायु प्राप्त होगी। राम जब इस घोर वनमें आयेंगे तब तू तथा यह वन पवित्र हो जायगा।' हुआ भी ऐसा ही, राम जब उस वनमें गये तो अहल्या पवित्र हो गयी । राम और लक्ष्मणने उसके चरणोंकी वन्दना की । अहल्याने राम और लक्ष्मणकी बड़ी आवभगत की। 'अध्यात्मरामायण'में गौतमका शाप कुछ भिन्न हो गया है। गौतम शाप देते हैं कि 'हे दुष्टे! मेरे आश्रममें यह जो शिला पड़ी हुई है; तू इसीके ऊपर स्थित रहेगी। रात-दिन निराहार रहकर घाम, वर्षा, शीत, पवनको सहती हुई तपस्या करती रहेगी। जब रामचन्द्र यहाँ आयेंगे और शिलाके ऊपर चरण रक्खेंगे तब त् पवित्र हो जायगी। अध्यात्मकार कहते हैं कि श्रीराम आश्रममें आये, उन्होंने कहा कि 'मैं राम हूँ' और ऐसा कहकर उन्होंने अहल्याको प्रणाम किया । पुनः शिलाका स्पर्श करके अहल्याका उद्धार किया।

वाल्मीकिरामायणमें शिलाकी चर्चा न थी; किंतु अध्यात्ममें शिला उपस्थित है। यह बात अवश्य है कि अहल्या शिला नहीं वनती है, वरं शिलाके ऊपर स्थित रहती है। अध्यात्ममें भी रामायणके अनुरूप राम अहल्याको प्रणाम करते हैं। तुलसीदासने यह प्रसंग पद्मपुराण और रघुवंशते उठाया है; किंतु अहल्या-स्तुति अध्यात्मसे ही है। पद्मपुराणमें वर्णित है कि अहल्याको गौतमने विल बननेका शाप दिया और वह शिला बन गयी। आश्रममें जाकर रामने अपने पैरसे महाशिलाका स्पर्श किया और अहल्याने अपना पहला रूप प्राप्त किया। आश्रममें प्रवेश करते ही वहाँ पड़ी हुई महाशिलाकी ओर संकेत करते हुए विय्वामित्रने रामसे कहा— १ हे राम ! यह स्त्री है। पूर्वकालमें इसके पतिने शक्र-अपराधसे इसे शिला होनेका शाप दिया था। अतः तुम पादस्पर्श करोः क्योंकि गौतमने कहा था कि तुम्हारे चरणोंसे ही इसके शापका अन्त होगा।' रघुवंशमें भी लगभग ऐसा ही वर्णन है। राम उस आश्रमके मुन्दर वृक्षोंतक गये, जहाँ महातपस्वी गौतमकी स्त्री अहसा शिला बनी पड़ी थी। रामके चरणोंकी धूल सब पापेंको हरनेवाली है । इसलिये छुते ही पतिके शापसे शिला बनी हुई अहल्याको पहलेवाला सुन्दर दारीर मिल गया ।

(रघुवंश ११।३३-३४)

रा

च

गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने 'रामचरितमानस' में पद्मपुराण एवं रघुवंदाके अनुरूप अहत्याको शिलाल्पमें दिखाया है, जो श्रीरामचन्द्रजीके पावन-पदकी रजका स्पर्श पाते ही तपस्विनी बनकर सामने आ गयी और स्तुति करने लगी। वह यह भी कहती है—

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भरु कीन्हा परम अनुग्रहमें माना। देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना। बिनती प्रभु मोरी मैं मित भोरी नाथ न माँगउँ बर आना। पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।।

तुलसीदासजी अहल्या-उद्धारके इस प्रसंगपर अपनी भाव प्रकट करते हुए कहते हैं—

अस प्रमु दीनवंधु हिर कारन रहित दयाल । तुरुसिदास सठ तेहि भजु छाड़ि कपट जंजाल ॥ संख्या ११]

कि

ती

TH रासे

ल पमें

शि

11

था

शमें

दर

को

()

П

तलसीदासका भक्तिपरक दृष्टिकोण 'कवितावली' के एक इन्दर्से और स्पष्ट हो जाता है । जब राम, सीता और हक्ष्मण विन्थ्याचलके निकट पहुँचे, तब वहाँके तपस्वी बड़े प्रसन्न हए । क्यों ? क्या इसीलिये कि रामके दर्शन होंगे ? यह बात तो थी ही; किंतु तुलसीदास एक व्यङ्गचात्मक उक्तिसे अहत्या-उद्धारकी कथा सबके सामने रखते हैं। ये मनि-लोग इसलिये प्रसन्न थे कि इन्होंने सन लिया था कि रामके चरण-कमलके स्पर्शसे शिलाएँ स्त्री यन जाती हैं और विना सेविकाओं के ये उदासी मुनि वड़े कष्टमें थे। तलसीका कथन है-

बिंध्यके वासी उदासी तपोत्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे । गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि बुंद सुखारे॥ हैं हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे। कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को प्रा धारे॥

क्या इन सब उदासी मुनियोंको नारियाँ प्राप्त हुई ? रामके चरणोंने तो सहस्रों शिलाओंका स्पर्श किया ही। तुलसीदास इस व्यङ्गच-प्रधान उक्तिद्वारा यह स्पष्ट करते हैं कि रामके चरण-स्पर्शसे प्रत्येक शिला स्त्री नहीं बन जाती; वरं वही शिला स्त्री-रूप पा सकती है, जिसके पीछे चिर-प्रतीक्षामें तरसता हुआ हृदय छिपा हो।

केवट-प्रसङ्ग

वाल्मीकिरामायणमें रामने तीन स्थानोंपर गङ्गा पार की है। जब विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मण चले तो ताङ्का-वनमें पहुँचनेके पूर्व उन्होंने गङ्गाको पार किया । यह वह स्थान था जहाँ सरयू नदी गङ्गामें मिल रही थी। एँक नावद्वारा तीनों ऋषियों सहित गङ्गाजीके पार गये। ऋषियोंने उस नावका प्रबन्ध किया था। कौन नाव खे रहा था, इसकी चर्चा वाल्मीकिरामायणमें नहीं है। दूसरी बार राम-लक्ष्मण और विश्वामित्रके साथ आश्रमवासी मुनियोंने जनकपुरकी ओर जाते हुए गङ्गाको पार किया। विशालापुरी नगरीके निकट ही ऋषियोंकी एक सजी नौकामें बैठकर ये सब गङ्गापार पहुँचे । यहाँ भी किसी खेवक या मछाहकी चर्चा नहीं है। तीसरा स्थल जहाँ राम-लक्ष्मणने गङ्गाको पार किया

वन-प्रसङ्गके अन्तर्गत है। रामने निपादराज गुहको समझाया कि तुम अपने राज्यमें छौट जाओं और सावधानीसे शासन करो । इस समय वे गङ्गातटपर खड़े थे। वहाँ एक नाव थी । उन्होंने टक्ष्मणसे कहा---हे पुरुषसिंह ! उस नावको पकड़कर धीरेसे उसमें सीताको वैटा दो और तुम भी सवार हो जाओ।' छक्ष्मणने ऐसा ही किया। तत्पश्चात् राम भी नावपर जा चढ़े । जैव रामचन्द्र नावमें जा बैठे तो निपादराज गुहने अपनी जातिवाले नाविकोंको सावधान किया कि भलीभाँति पार उतारना । रामने नाविकोंसे कहा कि नाव चलाओं और वे नाव चलाने लगे । जब नाव गङ्गाके मध्यमें पहुँची तो सीताजीने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे निवेदन किया-- हे गङ्गे ! तेरे द्वारा रक्षित होकर दशरथपुत्र मेरे पति, लक्ष्मण और मेरे सहित सकुशल जब चौदह वर्ष बाद लौटकर आयेंगे; उन्हें राज्यतिलक मिल जायगा तव मैं वड़ी धूमधामसे तेरी पूजा करूँगी। मैं तेरे तटपर ब्राह्मणोंको एक लाख गौ, सुन्दर वस्त्र और अन्न दान करूँगी। तुझे विल दूँगी। इस प्रकार वे नावद्वारा गङ्गाके दक्षिण तटपर पहुँचे । यहाँ भी किसी विशिष्ट केवटका वर्णन नहीं है।

अध्यात्मरामायणमें वह केवट-प्रसंग उपस्थित है जो भक्तप्रवर तुलसीदासको अभीष्ट था । अह्ल्या-उद्धारके वाद विश्वामित्र राम-लक्ष्मणको लेकर मिथिलापुरीकी ओर चले । मार्गमें गङ्गाजीने वाधा दी। वहाँ एक नाव खड़ी थी। जब राम नावपर चढ़ने छगे तो नाविकने कहा-हि नाथ ! आप गङ्गाके पार नहीं जा सकते । मैं आपको अपनी नावमें नहीं बैठने दूँगा ।' विश्वामित्रके साथ राम और लक्ष्मण नाविककी यह बात सुनकर आश्चर्य-विमृद् होकर स्क गये । तव नाविक बोला-'आप जानते हैं, मैं आपको नावमें चढ़नेसे क्यों रोक रहा हूँ ? सुना गया है, आपके पैरोंमें मानुषीकरण चूर्ण लगा हुआ है। वह पत्थरोंतकको स्त्री बना देता है। पत्थर और लकड़ीमें अन्तर ही क्या है ? जैसे ही आप नावपर चढ़ेंगे मेरी नाव स्त्री वन जायगी। यदि नाव न रहेगी तो मेरे कुटुम्बका पालन-पोषण कैसे

१. वारुमीकिरामायण—वालकाण्ड ४।१०

२. ,,--- बा० का० ४। २-३

३. "—वा० का० ४५ । ७-८

४. वाल्मीकिरामायण-अयोध्याकाण्ड ५२। ७२

५. ,,—अयोध्याकाण्ड ५२। ७३ से ७७ तक।

६.,,-अयोध्याकाण्ड ५२। ७७-७८

७. ,,-अयोध्याकाण्ड ५२। ७३ से ८९ तक।

HI

बाद

धान

हो स

समय

कर वि

बाद य

है, तो

थी जि

क्षरने

तुलसी व

ह चु

उनकी

रावणरा

वंद रहत

था। द

वनकी व

भी पहरे

आवले

उद्घोपव

रामको व

थी। राम

रेखी जात

३था सुन

तुल: वैहै कि

श्री वनव

और कुछ

इलसीने इ

मगवान्के

अन्हें उ

नाव नहीं

नेपादराज

स्सिहस

होगा ? अतः पहले में आपके पैरोंसे उस मानुपीकरण रजको धो डालूँगा और तव आपको नावपर बैठने दूँगा। ऐसा कहकर उस केवटने रामके चरणोंको धोया और तव वह राम-लक्ष्मण एवं विश्वामित्रको गङ्गाजीके पार ले गया। बस, इतना ही प्रसङ्ग अध्यात्मरामायणमें है। वन-प्रसङ्गमें अध्यात्मकारने वाल्मीकिका अनुगमन किया है । वहाँ निषादराज गुह एक मुन्दर और मुदृढ़ नौका ले आये। सीता, राम और लक्ष्मणजी नौकारूढ़ हुए। तब गुहने अपने जाति-भाइयोंके साथ स्वयं नौका चलायी। जिस समय नौका गङ्गाजीके मध्य पहुँची, सीताजीने हाथ जोड़कर गङ्गाजीसे प्रार्थना की- 'हे देवि गङ्गे ! मैं प्रणाम करती हूँ । वनवाससे हौट आनेपर मैं राम और लक्ष्मणके साथ तुम्हारी पूजा कहँगी । इस प्रकार ये तीनों गङ्गाजीके पार उतरे। अध्यात्मरामायणमें दोनों ही स्थानोंपर रामने केवट या गुहको कुछ नहीं दिया है। ये कह सकते हैं कि गुहको देनेका प्रश्न ही नहीं उठता और केवटने चरणामृत या लिया ।

पं • कृत्तिवासने भी अपनी बंगला रामायणमें बिल्कुल अध्यात्मका अनुगमन किया है और अहल्या-उद्धारके बाद केवट वहीं कहता है जो अध्यात्मकारने कहलाया है (आदि-का॰ड)। गोस्वामी तुलसीदासने अध्यात्मरामायणको सामने रखकर अपना केवट-प्रसंग लिखा है किंतु उसमें एक वड़ा मोहक परिवर्तन किया है। उन्होंने इस प्रसंगको वनवासके समय उपस्थित किया है। इसके पीछे उनका भक्तिपरक दृष्टिकोण ही कार्य कर रहा है। तुलसीदास वनवासी रामकी सुन्दर मूर्तिके उपासक हैं।

(8)

ध्वज कुितस अंकुस कंज युत वन फिरत कंटक किन रहे। पद कंज दृद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥ (रा० च० मा०)

(2)

देखु राम सेवक सुनि कीरित रटिह नाम किर गान गाथ। हृदय आनु धनुष बान पानि प्रमु कसे मुनि पटु कटि कसे भाथ ॥ (वि० प० ४।३)

८. अध्यातमराम।यण (गीताप्रेस-प्रकाशन)

वालकाण्ड ६। २, ३, ४, ५।

९.,,-अयोध्याकाण्ड ६।१७ से २३ तक।

(3)

प्रम सां पीछे तिरीछे प्रियाहि चित चित दे चले है चित चीरे। स्याम सरीर पसेंड रुसे हुरुसे तुरुसी छिंव सो मन मोरे॥ (कवितावली २६)

(8)

प्रमु पाछें रुछिमन बीरासन । कटि निषंग कर वान सरासन ॥ एहि विधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन। धन्य ते नर एहि ध्यान जे रहत सदा लय लीन॥ (रा० च० मा०)

फलतः तुलसी केवटको भी वनवासी रामका उपासक बना देते हैं। प्रसंग-परिवर्तनका दूसरा सौन्दर्य है उतराई देनेमें, वनवासी राम क्या उतराई दें, यह वड़ा असमंजस रामको होता है कि वे क्या दें। तव सीता अपनी मणि-मुद्रिका देती हैं।

केवट उतरि दंडवत कीन्हा । प्रमुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥ पिय हिय की सिय जाननिहारी। मिन मुदरी मन मुदित उतारी॥ कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट वरन गहे अकुलाई॥ नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥ बहुत कारू मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्हि बिधि बनि मिर्ह मूरी॥ अब कलु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेगा।

बहुत कीन्ह प्रभु कखन सियँ नहिं कछु केवटु केइ। बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

राजसी वेशवाले राजकुमार राम यदि विश्वामित्रके साथ नावपर जाते, तो उन्हें यह संकोच ही न होता, कि मैं क्या दूँ और केवट भी प्रसन्नतापूर्वक ले लेता, जो भी राजकुमार राम देते। साथ ही विश्वामित्रके भयसे भी केवट न माँगता न विश्वामित्र कुछ देते । मुनियोंको तो ये निःशुल्क उतारते ही होंगे।

यदि मिथिला-गमनके समय तुलसी केवट-प्रसंग उठाते तो वहाँ सीताका वर्णन न हो सकता था और सीताके विना तुलसीकी भक्ति अधूरी है—

राम । है नीको मेरो देवताः कोसलपति स्याम ॥ सुभग सरोरुह होचन सुठि संदर छिब अमित अनंग। सिय समेत सोहत सदा निषंग ॥ मुजबिसाल सर धनु धरे, किंट चारु (वि० प० १०७।३) =

()

11

र्ड

FI

अहत्याके अतिरिक्त भक्तिके सभी याचक वनवासके वाद ही भगवान्के सामने आये हैं। अहत्या-प्रसंग अपने शानसे हट नहीं सकता था, केवट-प्रसंगका स्थान-परिवर्तन हो सकता था; क्योंकि गङ्गाके पार भगवान् राम बनवासके समय भी गये हैं। अतः तुलसीदासजीने स्थानका परिवर्तन कर दिया और कार्यको भी व्यापक और भावुक बना दिया।

एक बात अवस्य उठायी जाती है। अहस्या-प्रसंगके बाद यदि केवट यह कहता है कि आपकी पगधूरि मानुषीकर है तो अधिक स्वाभाविक है; क्योंकि यह एक ऐसी घटना भी जिसकी चर्चा आसपास फैल गयी होगी। अतः अध्यात्म-इसने इसका प्रयोग अधिक स्वाभाविक रूपमें किया है। रुसीके केवटको यह बात कैसे ज्ञात हुई ? हम पहले ही हर चुके हैं कि तुलसीके राम विष्णु और परब्रहा दोनों हैं। अभी ख्याति सर्वत्र फैल जाती है। वालिकी पत्नी तारा और ग्रगराजकी पत्नी मन्दोदरी भी जान छेती हैं, जो शत्रु-गढ़में रं रहती थीं। तब भक्तोंके लिये यह जान लेना क्या कठिन ॥। दूसरे तुलसी यह कहते चलते हैं कि रामकी कथा क्की वीथियोंमें फैल रही थी। वनमें स्थित गाँवोंके नर-नारी मी पहलेसे ही राम-कथा सुन लेते थे। तभी तो वे दर्शनके लिये जावले होकर ललक पड़ते थे। नहीं तो, रामके साथ कोई ब्र्गोपक तो था नहीं, जो इनको एकत्र करता चलता। एमको कैसे वनमें आना पड़ा, इसकी चर्चा सर्वत्र हो रही थै। रामके शील-गुणकी कथा सुनी जाती थी और प्रत्यक्ष क्षि जाती थी। केवटने भी रामके द्वारा अहल्या-उद्धारकी ^{ह्या} मुन ली थी। वह तो अत्यन्त ख्याति पा चुकी थी।

वुल्सीका केवट अध्यात्मके अनुसार यह तो कहता है कि आपके पैरोंकी रज मानुषकर है । मेरी नाव यदि श्री वनकर उड़ गयी तो मेरे परिवारका क्या होगा । वह श्री कुछ भी कहता है । रामचरितमानस और कवितावलीमें लिसीने इस प्रसंगको उठाया और अपनी पूरी भक्तिभावना गानिके चरणोंको चढ़ा दी है । दोनों ही प्रन्थोंके प्रसंग कि और सरस हैं । रामचरितमानसका केवट माँगनेपर वि नहीं लाता है । यह ध्यान देने योग्य बात है कि भादराज भी वहीं उपिथ्रत है । तव भी केवटका यह साहस ! पर इस दुस्साहसमें ही उसकी भक्ति लिपी है—

मागी नाव न केवटु आना । कहड़ तुम्हार मरमु में जाना ॥ चरन कमल रज कहुँ सबु कहुई । मानुव करनि मूरि कछु अहुई ॥

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि अहल्या-उद्घारकी बात सबको ज्ञात हो चुकी थी। हाँ, इसके रहस्यको तुल्सी और तुल्सीके केवट-जैसे भक्त ही जान सकते हैं। वह आगे कहता है—

लुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥ तरिनिउ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥ एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥ जों प्रमु पार अविसे गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

कवितावलीमें वह एक और मार्ग भी मुझाता है— एहि घाट तें थोरिक दूर अहे कटिलों जरु थाह देखाइहों जू। परसे पगध्रि तरे तरनी घरनी घर क्यों समुझाइहों जू। तुरुसी अवलंब न और कळू लिशका केहि माति जिआइहों जू। बरु मारिए मोहि विना पग भोए हों नाथ न नाव चढ़ाइहों जू॥

'घाटसे थोड़ी दूरपर गङ्गाजीमें थोड़ा जल है—कमरतक।
मैं वहाँतक चलकर आपको मार्ग दिखा दूँगा । यहाँ जाना
चाहते हो तो पैर धुलाना पड़ेगा। आप दोनों भाइयोंके
हाथमें धनुष-वाण है मार डालिये, पर अपने हठसे न
हटूँगा । 'रामचरितमानस' में वह लक्ष्मणकी ओर संकेत
करके कहता है कि लक्ष्मण चाहे तीर मार दें, पर विना पग
धोये पार न उताहँगा—

पद कमल घोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहाँ। मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहाँ॥ बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहाँ। तब लगि न तुलसीदास नाथ ऋपाल पारु उतारिहाँ॥

कवितावलीके सुन्दर छन्द भी ऐसे ही भावोंसे भरे हैं। फलतः रामको राजी होना पड़ा। बेचारे क्या करते— अति आनंद उमि अनुरागा। चरन सरोज पखारन कागा॥ बरिष सुमन सुर सक्क सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कों उनाहीं॥

पद पखारि जलु पान किर आपु सहित परिवार।
पितर पारु किर प्रमुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥
तुलसीका यही भक्तिपरक दृष्टिकोण अन्य प्रसंग-निर्वाचनमें भी लक्षित होता है।

दुःख भाग्य-विधाताका दण्ड-विधान नहीं, वित्क उसकी अनुपम देन है

(लेखक-श्रीसत्यदेवजी आढ़ा, आर॰ ए॰ एस॰, असिस्टेंट कमिश्नर)

इस दृष्टिकोणको समझनेके लिये दुःख और उसके प्रभावके खरूपपर विचार कर लें—कामना-अपूर्ति दुःख है। उससे विकल होना दुःखका मोग है और उससे सजग होना दुःखका प्रभाव है। इसीमें सारा रहस्य लिया है। दुःख खयं अपनेमें न प्रशंसनीय है और न निन्दनीय है। प्रश्न सिर्फ इतना है कि आप दुःखको मोगते हैं या कि उसके प्रभावसे प्रभावित होकर सचेत होते हैं। यदि आप दुःखके मोगी हैं तो दुःख अभिशाप है। वह कभी आपका पीछा नहीं छोड़ेगा। यदि आप दुःखसे प्रभावित हैं तो दुःख वरदान है। वह आपको दुःख-रहित जीवनसे अभिन्न करा देगा।

दुःखके भोग और दुःखके प्रभावका अन्तर देखिये— कामना-पूर्तिमें सुख और कामना-अपूर्तिमें दुःखका भास होता है।

- (क) दुःखकी प्रतीतिमें सुखकी आशा जगे तो यह दुःखका भोग है। आया हुआ दुःख सुखमें भी दुःखका दर्शन करा दे तो यह दुःखका प्रभाव है। किसीकी प्रिय संतानकी मृत्यु हो जाती है। संतितिविहीन होनेके दुःखसे बचनेके छिये अन्य संतानकी आशा करता है। यह दुःखका भोग है। राजकुमार सिद्धार्थने एक शब देखा और दुःख अनुभव किया। उन्होंने सोचा हम भी मरेंगे। उन्हें जीवनमें ही मृत्युका दर्शन हो गया। यह दुःखका प्रभाव है। इस प्रभावने उन्हें अमरत्व प्रदान किया।
- (ख) दुःखका भोग सुखकी आशामें आबद्ध रखता है, जिससे दुखीके दुःखका अन्त नहीं होता। दुःखका प्रभाव सुखकी आशासे रहित करता है। दुःख-भोगसे जडता आती है और दुःखके प्रभावसे चेतना जगती है।

(ग) दुःखको सहन करते रहना दुःखका भोग है। दुःखके कारणकी खोज करना दुःखका प्रभाव है। HI

0

नाः

उसव

सुख

नहीं

इनमें

आपव

यह त

जीवना

होते

भोगते

है, आ

प्रयास

हैं।खं

- (घ) सुख-भोगमें आदिसे अन्ततक दुःख मिश्रित है। सुखके भोगीको दुःख भोगना ही पड़ता है। अन्तर केवल इतना है कि सुख हम चाहते हैं और दुःख बरबस आता है।
- (ङ) प्राकृतिक नियमानुसार आंशिक सुख-दुःख सवके जीवनमें है । यदि व्यक्ति आंशिक सुखसे प्रभानित हो तो दु:खका भय एवं भोग होता है। सुखका अर्थ है कामना-पूर्ति । कामना वह है जो उत्पत्ति-विनास युक्त वस्त व्यक्ति आदिसे आपका सम्बन्ध जोड़ दे। कुछ कामनाएँ सबकी पूरी होती हैं। अर्थात् आंक्षि सुखका भास सबको होता है। कामना-पूर्ति-जितत आंशिक सुखके भासको यदि जीवन मान हैं तो उपन हुई वस्तु, व्यक्ति आदिका नारा होगा खमावसे, पांतु उनके आश्रित सुख चाहनेवालेको घोर संताप होग उनके अभावमें । यह दुःखका भोग है। यदि व्यक्ति आंशिक दु:खसे प्रभावित हो तो दु:ख सदाके लिये मिट जायगा । दुःखका भोगी दूसरोंको दुःख देता है। जिसपर दु:खका प्रभाव हो जाता है वह किसीकी दुःख नहीं देता, वह तो पर-पीड़ासे करुणित ही होता है।
- (च) दुःख आते ही हम सुखके पीछे दौड़ी हैं। यह दुःखके भोगकी पहचान है। क्षणिक सुखके द्वारा दुःखको दवाना चाहते हैं। दुःखसे वनराका हम करणीय एवं अकरणीय कर्म कर बैठते हैं। पिणामं अनन्त गुना दुःख पाते हैं। यह दुःखका भोग है। यह विनाशकी राह है। दुःखका प्रभाव सुख-छोड़पताका प्राव दिलाला प्रभाव सुख-छोड़पताका प्रभाव सुख-छोड़पताका प्रभाव सुख-छोड़पताका प्रभाव सुख-छोड़पताका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

का भोग

वि है।

मिश्रित

। अन्तर

दु:ख

ख-दु:ख

प्रभावित

का अर्थ

-विनाश-

ोड़ दे।

आंशिक

र्ते-जनित

ते उत्पन

से, पांतु

प होगा

व्यक्ति

ने लिये

ता है।

किसीको

गत ही

दौइते

रिणाममें

可意一

उपताका

गरा करता है और दु:खको निर्मूल करता है यह विकासका पथ है।

(छ) दुखी दु:खकालमें भी सुखकी सम्भावना-गत्रसे दुःख सहता रहता है। दुःखको सहते रहना, असी निवृत्तिका मार्ग न ढूँढ़ना दु:खका भोग है। मखके वाद दुः खके दर्शनसे आपमें यह चेतना क्यों क्षाँ जगती कि सुख-दुःख दोनों ही आने-जानेवाले हैं। क्रमें स्थिरता नहीं है । अतः हमें दुःख नहीं चाहिये ते सुख भी नहीं चाहिये। ऐसी सजगता आते ही अएका प्रवेश सुख-दुः खसे अतीतके जीवनमें हो जायगा। गह दु:खका प्रभाव है।

(ज) दुःखके एक और नये पक्षका विवेचन रेंबिये—सुखके जाने और दु:खके आनेके भयसे प्राणी मत रहता है । दु:खके भयसे भयभीत रहनेका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति—

१-प्राप्तका सदुपयोग नहीं कर पाता है।

र-उसकी शक्ति क्षीण होती है।

३-उसका आवश्यक विकास नहीं होता।

१-असावधानी और प्रमाद पोषित होते हैं।

हम और आप अबतक करते क्या रहे ? दुःख जीवनमें समय-समयपर आता रहा, हम उससे भयभीत होते रहे और भयका जो कुपरिणाम है, वह भी भोगते रहे ।

(क) दु:खसे भयभीत होनेसे दु:ख मिटता नहीं हैं, अपितु दूना हो जाता है।

(ख) क्षणिक सुखके द्वारा दुः खको दवानेका भ्यास करनेपर भी दुःख मिटता नहीं है। दवा हुआ का ^{हम दिख} कईगुना बड़ा होकर पुनः सामने आता है। हिंखके भयसे भयभीत होना दुःखका भोग है। दुःखका भाव पुरक्के खरूपका स्पष्ट दर्शन कराता है। सुखके ^{बिह्नप्र}का बोध होते ही सुखकी छोछपता मिट जाती है।

दुःखका प्रभाव सुखका नारा नहीं करता, सुखकी छोलुपताको मिटाता है। तब दुःखका भय मिट जाता है। असमर्थता, अकर्तव्य और आसिकका अन्त हो जाता है, जो विकासका मूल है।

(ग) दुःखके महत्त्वको न जाननेसे दुःखका भय होता है । दु:खका महत्त्व जान लेनेपर दु:खका प्रभाव होता है। अतः दुः खका भय व्यर्थ ही नहीं, महान् अनर्थकारी है । इसिटिये आये हुए दु:खसे भयभीत न होकर उसके प्रभावसे प्रभावित होना आवश्यक है।

कामना-पूर्तिका सुख हमारी माँग नहीं है। वह तो हमारा प्रमाद है। हमारी माँग है-ु:ख-निवृत्ति, चिर विश्राम, पूर्ण खाधीनता एवं परम प्रेम जो कि वास्तविक जीवन है। उसकी उपलब्धि किसी अभ्याससे नहीं होती, परंतु दु:खके प्रभावसे होती है। हम और आप मानव हैं । वास्तविक जीवनसे अभिन्न होना चाहते हैं । अपने जाने हुए असत्के संगके त्यागके विना असाधन नहीं मिटेंगे, यह भी हम सब लोग जानते हैं। फिर भी साधक-समाजमें यह सर्व-सामान्य प्रक्न उपस्थित रहता है कि देहका अभिमान कैसे छोड़ें ? सुखकी छोळपता कैसे तोड़ें ? काम, क्रोध, लोभ, मोहसे रहित कैसे हों ? वस्त व्यक्ति आदिका आश्रय कैसे छोड़ें ? प्रभुमें अविचल आस्या कैसे करें ? आदि । यह कैसी विडम्बना है ? हम यह सब कर सकते हैं, फिर भी न मालूम क्यों कठिन बताते हैं ? बहुत समय लग जाता है । समस्या हल नहीं होती । ऐसे कठिन समयमें दुःखका प्रभाव आपकी सहायता करता है। विचारके द्वारा जिस सुखका राग नहीं मिटता, वह दु:खके प्रभावसे सहज ही मिट जाता है । दु:खका प्रभाव जिसपर हो जाता है उसकी जन्म-जन्मान्तरकी जडता पलभरमें टूट जाती है। प्रमाद मिट जाता है । चेतना जग जाती है । सही अर्थमें सत्संग हो जाता है। एक और बड़ी विशेषता यह होती है कि

दुखीको अपने गुणोंका अभिमान नहीं होता अर्थात् उसे यह भास नहीं होता कि मैंने त्याग किया है, मैं त्यागी हूँ, जो कि साधना-पथकी एक बहुत बड़ी बाधा है। दुः खका प्रभाव इस बाधाको सहज ही मिटा देता है। दु:ख अनेक प्रकारसे हमारे जीवनमें आता है। एक प्रकारका दु:ख अपनी की हुई भूलसे उत्पन्न होता है। इस दु:खसे दुखी अधीर हो जाता है । उसके खाभिमान-को गहरी ठेस लगती है । समाजकी ओरसे भी तिरस्कार पाता है । अपनी दृष्टिमें भी आद्रके योग्य न रहनेकी असह्य व्यथा पाता है । ऐसा दुखी भी यदि आये हुए दु: खके अर्थको अपनाकर, की हुई भूलको न दुहरानेका दृढ संकल्प कर लेता है तो उसकी वर्तमान निर्दोपता सुरक्षित हो जाती है। की हुई भूलके गहरे पश्चात्तापकी जलन दुखीके भीतरसे सुखकी रुचिको भस्म कर देती है। सब ओरसे तिरस्कृत दुखी सहज ही कामरहित होकर चिर-विश्राम पाता है जो सब प्रकारके विकासकी भूमि है।

दूसरे प्रकारका दुःख परिस्थितिजन्य होता है। इसमें दुखीकी भूल हेतु नहीं होती। इस तरहके प्राकृतिक दुःखसे दुखी व्यक्तियोंके प्रति विश्वकी ओरसे करुणाकी धारा बहती है। उनको आवश्यक आदर, प्यार तथा सहयोग भी मिलता है। उनका खाभिमान भी सुरक्षित रहता है।

ऐसे दुखी व्यक्ति यदि मिले हुए आदर, प्यार एवं सहयोगको अपनी खुराक बना लेते हैं तो उनका दुःख निर्जीव हो जाता है। इसके विपरीत यदि वे प्राकृतिक घटना-चक्रको देखकर उसके खरूपपर विचार करते हैं तो दुःख सजीव रहता है और वे सहज ही दुःखके प्रभावको अपनाकर दिव्य चिन्मयसे अभिन्न हो जाते हैं जो मानवमात्रका परम लक्ष्य है। तीसरे प्रकारका दुःख विचारजन्य होता है। विचारशील व्यक्ति संयोगमें वियोग, जीवनमें मृख एवं सुखमें दुःखका दर्शन कर वास्तविक जीवनसे अस्ति होनेके लिये व्याकुल हो उठता है। यह व्याकुला कामना-निवृत्ति, जिज्ञासा-पूर्ति एवं प्रेम-प्राप्तिमें हेतु होती है।

अत: दु:ख चाहे जैसा हो, उसका प्रभाव व्यक्तिके लिये परम कल्याणकारी है। दु:ख स्वरूपसे न्यूनािक नहीं है। दु:ख वास्तवमें दु:ख ही है। अधिक दु:ख होनेसे प्रभाव होगा, कम दु:ख होनेसे प्रभाव नहीं होगा, ऐसा नियम नहीं है। दु:खका प्रभाव साववान व्यक्तियोंपर होता ही है और एक बार दु:खका प्रभाव हो जाता है।

मङ्गलमय विधानसे दु:ख बार-बार इसलिये आता है कि सुखका प्रलोभन मिटे और रसकी अभिन्यिक्त हो, जी मानवमात्रकी मौलिक माँग है। जब हम मौलिक माँगो भूळकर सुखमें ळिप्त हो जाते हैं तो हमें सजग करने लिये खयं दु:खहारी प्रभु ही दु:खके वेषमें दर्शन देते हैं और हमें सचेत बनाकर सदैवके लिये दु:खालि कर देते हैं । इस दृष्टिसे दुःख और दुःखहारी प्रभु एक हैं। इतना गहरा अर्थ है हमारे जीवनमें आये हुए दुः खका । सुखकी वास्तविकताका बोध होनेपर मौरिक माँगकी पूर्तिकी लालसा तीव्र होती है। तब हमें ^{जीवन} मिठता है । अतः आया हुआ दुःख प्रकृतिका ^{दण्ड} नहीं, अपितु ऐसा अनुपम उपहार है कि जिसको पका ही व्यक्ति कृतार्थ होता है। जो अनन्त समीका प्रम सुहृद् है, उसीके विधानसे दुःख आता है। अनलका विधान मङ्गलमय है । उसमें क्रोध अथवा प्रतिशोध वहीं है। तब भला उसका बनाया हुआ दण्ड-विधान दुःख कैसे हो सकता है ?

इर

या

मह

व्रजकी माधुर्य-भावना और श्रीगदाधर भट्ट

(लेखक—क श्रीगोदुः हानन्दजी तैलंग, साहित्यरत)

जिस भक्ति-काव्य-साधनाकी भूमिकामें भट्टजीने पदार्पण किया, उसके पीछे कुछ पूर्ववर्ती और कुछ समकालीन परम्पराएँ थीं, जिनसे वे स्वभावतः प्रभावित हुए। मध्ययुग विशेषकर सोलहवीं शदीका द्वन्दावन विविध भक्तिधाराओंका एक ऐसा पावन संगम-स्थल था, जहाँ सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि सरस भावनाओंको लेकर विविध मधुर उपासनाएँ जन-जीवनको अभिभृत कर रही थीं। इन समग्र आराधनाओं, उपासनाओंका चरम और परमलस्य उस प्रेम-लक्षण-माधुर्य-भावकी उपलब्धि था, जिसे भोपीभाव' और उसका सर्वोपरि उत्कर्ष 'राधाभाव' कहा गया है।

त्यु एवं

अभिन्न

ाकुलता

तीहै।

अस्तिके

नाधिक

ह दु:ख

त्र नहीं

सावधान

प्रभाव

आता है

हो, जो

माँगको

करनेके

र्शन देते

खरहित

ाम एक

ाये हुए

मोलिक

i जीवन

दण्ड

पाका

नन्तका

ध नहीं

13:0

निम्बार्क-सम्प्रदाय इनमें प्रमुख था, जिसे प्राचीनतम कहा जाता है, इसमें श्रीराधाका सर्वोपरि महत्त्व है। रूप-सौन्दर्यमें एक अमोघ आकर्षण होता है, भावाभिभूत करनेकी विलक्षण क्षमता होती है। रूप तादातम्य देता है— एकरसताः एकरूपता प्रदान करता है। हृदयकी रागानुगा वृत्तिको अलौकिक आनन्द रूपके माध्यमसे ही समधिगत होता है। किंतु इस रूप-रसको परिपाक देनेके लिये कोई रम्य, मधुर आधार चाहिये और वह है, प्रकृति-रूपा नारी-रमणीय कलेवर । पुरुष-रूप साधककी तल्लीनता उसमें सहज-रूपसे हो सकती है। इसीलिये रस-सम्प्रदायोंने नायक-नायिकाको रसका आलम्बन माना है और वह भी नायिकाको विशेषरूपसे । माधुर्य-प्राप्तिका यही आधार है। भक्ति-सम्प्रदायोंमें तो रागानुरागा, प्रेमा भक्तिका चरमोत्कर्ष इसी स्त्री-भाव, गोपी-भावमें परिनिष्ठित माना है। राधा इसी रूपका प्रतीक है। वह प्रकृति-स्थानीय है और उसके मेष्ठ नायक पुरुष-रूप। राधा-कृष्णका रूपक एक प्रकारसे जीव और ब्रह्मका रूपक है। भक्त और भगवान्का लीला-मिनय है। यहाँ रूपपर खरूपका आरोप किया गया है। पार्थिवपर अपार्थिवका अधिष्ठान है । राधा-कृष्णके दम्पति ^{या} प्रणय-भाव या युगल-स्वरूपमें अन्योन्याश्रय-भाव निहित है।

गौडेश्वराचार्योंने भी अपने भक्ति-काव्यमें राधाको यही ^{महत्त्व} दिया। उन्होंने राधाकृष्णकी प्रस्तुत माधुर्य-भावनाको अविकलप्रहणकर लिया। अन्तर इतना रहा कि वहाँ लोग राधाको स्वकीया मानकर चले हैं। चैतन्य-मत इस सम्बन्धमें अस्पष्ट है। यों जीव गोस्वामिपाद रस-पोषणके लिये परकीयात्वको ही प्राथमिकता देते हैं। रूपगोस्वामिपाद-रचित उब्ब्वलनीलमणि-के टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती भी इसका समर्थन करते हैं। जो भी हो, युगल-मधुर-उपासनामें तो दोनों एकमत हैं।

श्रीहरिदास स्वामीद्वारा इसी राधा-भावको सखी-सम्प्रदाय-रूपमें प्रवर्तित किया गया । यह नित्य-सहचरीभाव है, नामान्तरसे गोपी-भावका ही प्रतिरूप । भट्टजीने इस भाव-धारासे भी प्रेरणा ग्रहण की । उनकी निकुंज-रस-केलि-व्यंजना इसीका प्रतिफलन है ।

माधुर्य-भावनाका दूसरा प्रमुख और उस समयका व्यापक सम्प्रदाय श्रोराधावल्लभीय सम्प्रदाय है, जिसके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीहितहरिवंश हैं । वंशीके अवताररूपमें इनकी मान्यता है। यहाँ भी राधावल्लभलाल-रूपमें युगल-उपासना है। राधाकी यहाँ भी प्रधानता है। प्रिया-प्रियतम दो व्यक्त रूप होते हुए भी उसकी चरम कोटिमें एक हैं। राधामय हैं। इसीलिये राधाके प्रति अनन्य कैंकर्य यहाँकी सरल भावना है। यहाँ शृंगार-प्रणयके संयोग-पक्षका ही एकछत्र प्रभुत्व है । विरह-विष्रयोगकी तो यहाँ कोई सत्ता ही नहीं; क्योंकि यहाँ तो नित्य-विहार, नित्य-रसलीला विद्यमान है। इसी परम्परामें श्रीव्यासजीने तो इस रस-लीलाका वड़ा विशद उच्चकोटिका वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त ध्रुवदासजीने हित-सिद्धान्तकी और भी गृह विवेचना की है। रहस्य-साधना इनकी परम संगोप्य और हृदय-संवेद्य है। इन महानुभावोंने स्वयं उस युगल-रसको अपने अन्तरतममें उतारा है, केवल कवि-कल्पना वा शास्त्रीय विवेचन ही नहीं।

हित-सम्प्रदाय तो हितस्त्ररूप ही है। प्रेम और रस-मिलनका प्रतीक ही यहाँ नित्य-मिलन है। स्यामा-स्याम, प्रिया-प्रियतममें विरहका तो स्थान ही नहीं; क्योंकि वे दोनों एक-रसरूप हैं, तथापि उनमें परस्पर विरहकी-सी उत्कण्ठा है। विद्युद्ध अर्थोंमें रस-सम्प्रदाय यही है। इस भक्ति-सिद्धान्तमें युगल-स्वरूप एक हित-तत्त्वके प्रतीक हैं। राधा प्रकृति-रूपा है, प्रियतमकी स्वकीय प्रेयसी सखी गोपी जीव-रूपा है, प्रेमरूपिणी ये सब स्वकीया-परकीया भेदसे परे नित्य-

रसमें निमम हैं । इनके प्रेष्ठ श्रीकृष्ण निर्गुण-सगुणसे परे ईश्वरेश्वर हैं। वे आदिपुरुष नारायणके भी कारण हैं। वे दम्पति, रस-रूप हैं, लीलासे ही उनमें भेद दृष्टिगत होता है। भगवत्तन्व भी वस्तुतः उनके श्रीराधावल्लभलाल ही हैं। राधा, कृष्ण, सखी, वृन्दावन—ये सब एक ही विहारके परिकर हैं—अङ्ग हैं । वृन्दावन नित्य-विहार, नित्य-केलि-स्थल है, लीला-रूप है, राधाकृष्ण भी मूलतः एक ही हैं। प्रेमके ही दो रूप हैं।

इसी प्रकार व्रज-भक्तोंकी भावनाके अनुसार भट्टजी भी व्रजाधिप श्रीकृष्ण, वृषभानुनन्दनी राधा, गोपाङ्गनावृन्द, नन्दबाबा, यशोदा, यमुना, गोवर्द्धन, गो-गण, वृन्दावन निकुंज, विहंग, लता-पता आदिको चिन्मय रसस्वरूपमें देखते हैं। वे व्रज-रज और व्रजलीलाओं के माधुर्य के पूरे रसिक हैं। वे तो श्याम-रंग-रंगी किसी व्रज-ललनाके प्रतिरूप होकर रसनिधिताके महाभावमें इव-से जाते हैं।

उनके स्यामसुन्दर श्रीकृष्ण रसेदा, निकुंज-लीला-नायक और परम कारुणिक भाव-विग्रह हैं । उनके स्वरूपका चिन्तन इन शब्दोंमें कीजिये।

नमो नमो जय श्रीगोर्विद । आनंदमय ब्रजसरस सरोवर प्रगटित विमल नील अरविंद ॥ जसुमित नेह नीरनिधि पोषित नव-नव कसित काड सुखकंद । व्रजपित तरिन प्रताप प्रफुल्लित प्रसरित सुजस सुवास अमंद ॥ सहचरि जाल मराल संग रॅंग रसभिर खेलत अति आनंद । अिं गोपीजन नैन भदाधर सादर पिवत रूप मकरंद॥ समग्र व्रजको सरोवरका रूपक देकर उसकी सम्पूर्ण साङ्ग-सामग्रीका माधुर्य कितने सरस रूपमें व्यक्त किया है। व्रज-माधुरीके आत्मरूप गोपी-भावका यह सुन्दर विश्लेषण है। गोपियाँ प्रेमकी उच्चतम स्थितिकी प्रतीक हैं। वे लोक-वेदसे परे स्त्री-गृढ़-भावात्मक प्रतिमा हैं । राधा उन्हींकी चरमोत्कर्ष आत्मा है। वह श्रीकृष्णकी प्रिया, ह्वादिनी, आद्य-शक्ति लक्ष्मी और रस-मानरूप सुरतिका स्वरूप है।

इसी प्रकार यमुनाको भी श्रीकृष्णकी तुर्यप्रिया माना गया है। यह उनका आधिदैविक स्वरूप है। केवल जल-प्रवाह रूपमें देखनेवाले यमुनाको आधिभौतिक खरूप देते हैं, किंतु भट्टजी तो उन्हें भगविद्वग्रह ही मानते हैं । अतएव उनका दर्शन सकल कलि-कल्मषोंका निवारक है। उनमें वे जननीका दर्शन करके उनसे क्यामसुन्दरकी अनन्य प्रीतिकी कामना करते हैं, उन्हींके शब्दोंमें उनकी भावना देखिये—

मेरे किल-कल्मषकुक नासे देखि प्रभात प्रभाकरकन्या। देखत दोष जात जित-तित भए ज्यों मृगराज देखि मृगसेन्या॥ दे पयपान पुत्र ज्यों पोषति जननि कृतारथ धनि वहु धन्या। चाहत दैन 'गदाधर' हू निज रमन चरन निज प्रीति अनन्या॥ यही खरूप उन्होंने वंशीका माना है, वह भी प्रिया-स्पहीहै। वह रस-रूपा, दिव्य शक्ति और चराचरको रसोन्माद्में उन्मत्त वना देनेवाली है। व्रजके रस-सम्प्रदायोंके भावनानुसार तो वह आधिदैविक माया-मोहनी-शक्ति ही है। भट्टजीने उसे परकीयाका रूप देकर पटरानीकी भाँति भी चित्रित किया है।

बंसी पटरानी भई।

उपजी सरस सुबंस जान करि हरि गहि पानि रुई॥ सोवत स्याम लगाइ हृदै सों छिन छिन प्रीति नई। या ही सों नित मतौ करत प्रिय दृष्टि न अनत गई॥ पीवति अधर करित रित कूजित गित विपरीत ठई। बार बार लावठ मुख इहि सब मरजादा वितई॥ करे हैं अधीन त्रिलोक लोक याकी कीरति जगत छई। रस बस भए भादाधर' प्रमु यह करी जगत बिजई॥

(प० सं० ३७)

नंद उदि

चिर

निर्व

आ

स्था

गोव

मुझ

जय

दिय

पुर्ला

लिल

श्रीग

भाव

वस्तुस्थिति तो यह है कि सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दीका समय एक समन्वयवादी युग था। विभिन्न भक्तिधाराएँ, बाह्यतः विभिन्न रूप-रंग, परिधानोंमें सज्जित होते हुए भी, वस्तुतः एक ही लक्ष्य, रससिन्धुमें विलय होनेको आतुर थीं। एक ही आत्मानन्दकी साधनामें जिसको जहाँसे सुन्दरतम मिला, उसने बिना मत-सम्प्रदाय-वैभिन्न्यके ग्रहण कर लिया। साम्प्रदायिकताकी कठोर जड मर्यादाएँ तो पीछेकी सि है। मूल आचार्योंके समयका युग-धर्म नहीं, विशेषकर व्रजमण्डलमें तो विविध भक्ति-रस-सम्प्रदाय एक ही पड़ोसमें उठ और पनप रहे थे। अतः एक विशाल कुटुम्बके सदस्योंकी भाँति उनमें वही बन्धुत्व, वही आत्मीय-भाव था, जो परस्पर पोपक तत्त्वोंके रूपमें एक-दूसरेको अपेक्षित होना चाहिये। वहाँ तो आदान-प्रदानकी नीति उदारतासे वरती जा रही थी। इसी-लिये अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखनेपर भी प्रत्येक सम्प्रदाय एक-दूसरेके संस्कारोंको ग्रहण करनेको उत्सुक था।

कीर्तन-भक्तिने इस दिशामें अधिक उदार-वृत्ति अपनायी। पुष्टि-मार्ग इसका सुन्दर और उन्न्वल उदाहरण है। अपनी भाव-भूमिके अनुरूप विविध काल, ऋतु, उत्सव, लीला आदिके माधुर्यका गीति-काल्यके माध्यमसे आस्वाद पार्वके लिये विविध रसिक-भावुक महानुभावोंकी रस-वाणीका उद्धार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दमें

नार

उसे

है |

9)

ř,

ff,

म

Ĥ

币

उपयोग किया गया । यहाँ सभी सम्प्रदायोंके कवियों, भक्तोंके पहोंका भावानुरूप कीर्तन होता है । भट्टजीके सरस लीला-काव्यको भी इस कीर्तन-प्रणालीमें स्थान मिला है ।

पद वा कीर्तनोंके आदान-प्रदानमें ही यह समन्वय-भावना नहीं थी, अपित महजीके काव्य-तत्त्वोंमें भी—उनकी वर्णनग्रैली, वर्ण्य-विषय, भिक्त-साधना, रस-भावना आदिमें भी अपने
आसपाससे बहुत कुछ लेने, अपना कुछ देनेकी उदार भावना
थी। व्रज-वृन्दावनके प्रति उनकी कितनी गहन निष्ठा है—
श्रीवृन्दावन विपिनमोित बैभव कछु गाऊँ (प० सं० ६)
व्रजनरेस देस बसत कालानलहू न त्रसत (प० सं० १३)
हाँ व्रज माँगनो जू व्रज तीज अनत न जाऊँ (प० सं० ३३)

बड़े बड़े भूपित भूतल में दाता सूर सुजान जू।
कर न पसारों सिर न नवाऊँ या व्रजके अभिमान जू॥
सुरपित नरपित नागलोकपित राजा रंक समान जू।
माँति माँति मेरी आसा पुजवत ए व्रजजन जजमान जू॥

नंद कुरुचंद वृषभानु कुरु कौमुदी, उदित बृंदावन विपिन विमरु अकासे। (प० सं ३२) चिरजीवहु सुंदर जुवराज, जुग-जुग नंदराइ कौराज (प० सं० ६६)

वज और वजकी विभूतियोंके प्रति उस युगकी ये प्रति-निधि भावनाएँ हैं, जो वजके समग्र संत, साधु, भक्त, रित्तकजनोंके समाज वा सम्प्रदायोंमें व्याप्त थी। यही तो वह आकर्षण था, जिसने माया-जगत्से वीतराग करके भट्टजीको स्थायी वजवासकी प्रेरणा दी और इतनी काव्य-माधुरी पानेका रित्कोंको अवसर प्राप्त हुआ।

पुष्टिमार्गमें, जो वालकृष्णकी जन्मस्थली होनेके नाते, गोकुल और गोकुलाधीशकी माहात्म्य-साधना है, भट्टजी उससे भी अभिभूत हैं—

मुश्च रे मुश्च मायासुखं यत्नम्, मृगय गोकुरुगोकुरुविशरत्नम् (प० सं० २)

जय श्रीगोकुलदेवि जसोदे, जीवातुक हरिबालिबनोदे (प० सं० ११) दियौ है विधाता सब सुखदाता गोकुलपितके पूत जू (प० सं० ३३) पुलिकित गोकुलकुलपितकुमार मिलि भयो भादाधर' सुख अपार (प० सं० ६२)

सकत कुँवर गोकुरु के निकसे खेरुनि फाग लित गर्ली गोकुरु की होत विविध रँग खेरु (प० सं० ६४) श्रीगोकुरुराजकुमार ठारु रँग भीने हो (प० सं० ६८) गोकुरुखोरनि खेरु मचायों है

श्रीकृष्णके बाल-रूप और मातृ-हृदयके मधुर वात्सल्यकी ^{भावना} पुष्टिमार्गीय साधनाका सर्वस्व आधार **है।** महजी अपने युगकी इस व्यापक आराधनाको काव्यमें उतारनेका लोभ संवरण नहीं कर सके। वहाँ उन्होंने यशोदानन्दन और नन्दनन्दन—दोनों रूपोंमें श्रीकृष्णको चित्रित किया है—

दिध मथित नँद-निरंद-रानी करित सुत-गुनगान । पय पयोधर स्रवत चातक कृष्ण तृपित निदान ॥ जगतबंद्य गोर्बिदमाता भादाधर किर ध्यान । (प० स० ३६)

ताहि जो हो गोद बैटित अंग घूसरि घूरि॥ सोइ डोरुत मजे जाके बाँधिवे के त्रास। कृष्ण चातक हेत जाकी पयोधर पयवृष्टि॥ (प०सं०१५)

स्तन्यामृतिसंतर्पितकृष्णे कृष्णाननमधुरिमणि सतृष्णे। उत्सङ्गारोपितजगदयने अञ्जननिचित निरञ्जन-नयने॥ दिव्यदुक्लावृतमृदुदेहे स्चिरिक्षतगोकुलपितगेहे। (प० सं० १४)

तहों जाकें नाम तें तिहिं नँदनंदन नाम॥
सु प्रमु जाकी पीठिपादुक हो हो आगे घरत।
तासु के किटदाम को निहं और छोरनहार॥
(प० सं० १६)

जीवातुकनिभनन्दतन्ज्ञम्, आगमतन्त्रप्रकाशितपुञ्जम्। (प० सं०१७)

ब्रजनरेसवंसदीप वृंदावनवर महीप॥ (प० सं० १९)

जसुमितिनीरनेह नित पोषित नव नव कसित काड सुखकंद । व्रजपित तरिन प्रताप प्रफुद्धित प्रसरित सुजस सुवास अमंद ॥ (प० सं०)

इसी प्रकार भट्टजीके समयमें व्रजके भक्ति-सम्प्रदायों में युगल-उपासनाको लेकर राधाकी महत्ता सर्वोपरि मानी जा रही थी। वे स्वयं भी किशोर-लीलामें, द्यामा-स्यामकी रस-केलियों में अलैकिक आनन्दमें डूबे हुए थे, तथापि राधाकृष्णके दम्पति-स्वरूपको जिस शैलीमें उपस्थित किया है, वह उस समयकी राधावछभीय या निम्वाकीय भाव-पद्धतिकी ही अधिकांश प्रेरणा लिये थी। राधारमणका स्वरूप-सौन्दर्य, श्रीराधाजूकी निकुंज-क्रीडाएँ, उनके ब्यावले-विवाहके विधान, होरी और हिंडोरी लीलाएँ, रास-मान आदि प्रसंग इन्हीं समकालिक रस-सम्प्रदायोंकी छाप है।

बामभाग सौभगसीम श्रीराधा रमननि मनि। ताके नव नव प्रीतिराग रहे पियतनमनसिन।।

(प० सं० ६)

)

ĦG

चमत्व भगवन

क्रिके

गोपनृ पगेहिनीगर्भआकरस्तन राघिकाकण	ठभूषन विलासी।
	(प० स० ११
जयित श्रीराधिके सकलसुखसाधिके	
	(प० सं० १०
राघे रूप अद्भुत रासि	·····। (प० सं० २६
राधेजू के बदन की सीमा	
that is at a section in	(प० सं० २५
राधेजू के चरन की रज 'गदाधर'	सिर धूरि।
हाडिही गिरिघरन पियापिय नैनिन आन	र्द देति री॥
	(प० सं० २७
आपुनै प्राननाथ मिकि स्वामिनि मो मन व	न्रहु निवास री।
आजु माई रिझई सारँगनैनी	
: 0 - 0 - 1 - 1 - 1 - 1	(प० सं० ५८)
प्रेम पानि उर लागि रही जदाघर 'प्रमुके पिय अं	
दूलह सुंदर स्याम मनोहर दुलहिनि	नवलाकसारा जु ॥ (प० सं० ४४)
संगीतरसकुसक नृत्त-आवेसवस कसति राघा रा	समंडलविहारिनी ।
	(प० स० ५६)
कर जोरौं बिनती करों के छुबहि ि	पेयाजूके पाँइ॥
	(प० सं० ४६)
रंग हो हो होरी खेलें लाडिली वृष	
राधे जू फूरुति रमिक रमिक	(प० सं० ६७)
या व विद्यात स्थान स्थान	(40 40 12)
-2 2 2 2	(प० सं० ८३)

यही बात व्रजकी विशिष्ट विभृतियों—यमुना, गोवर्द्धन आदिके सम्बन्धमें आती है। यों तो सभी व्रजके भिक्त-सम्प्रदायों एवं भावना-मार्गोंमें इन्हें आराध्य, आध्यात्मिक स्वरूपमें मान्यता दी गयी है, किंतु भट्टजीके समयमें व्रह्मभ-सम्प्रदाय यमुनाको तुर्यप्रिया एवं गिरिराजको हरिदासवर्य अथच साक्षात् भगवत्स्वरूप मानकर काव्यमें एवं भक्तिके व्यावहारिक पक्षमें महान स्थान देते हैं। इस दृष्टिसे इस युग-भावनाको उन्होंने पूर्ण आदर दिया है।

हरिरिप दृष्ट्वा विषमासारं ह्यकृत यदर्थं शैलोद्धारम्। (प० सं० ३५)

गिरिराजउद्धरन सुरराजमदहरन बदनपर दुजराज कोटि वारि डारें।

(प० सं० ११) मेरे किकल्मषकुल नासे देखि प्रभात प्रभाकरकन्या।। (प० सं० ८) जयित यमुनामिधा जयित जगदम्बा (प० सं० ७)
अशरणशरणं भवभयहरणं नौमि 'गदाधर' गिरिवरधरणम्।
(प० सं० १८)
प्रक विशेष भावना और तदनस्य पर्ण

एक विशेष भावना और तदनुरूप पद्धतिपर भी वहाँ ध्यान जाता है। भगवत्प्रसाद, भगवदुच्छिष्टकी प्राप्ति और उसकी भी भगवद्भपतामें सभी सम्प्रदायोंकी निष्ठा है। किंतु 'जूठन' वा 'अधरामृत' के रूपमें उल्लेख पृष्टिमार्गकी अपनी विशेषता है। भक्तजन जूँठन, महाप्रसाद, कणिका ठेतेमें अहोभाग्य मानते हैं। भइजीके ध्यानमें यह बात रही है और उन्होंने उसी ओर संकेत किया है।

जूठन जाइ उठाइ भादाधर' भाग्य आपुनी मान्यो जू। हरिभक्तों या व्रजवासियोंके प्रति व्रजवासी संत, भावुक महानुभावोंका दृद्य कितना श्रद्धापूर्ण विनीत और दीन होता है, यह भट्टजीके काव्यमें अवतरित उनकी अन्तस्तरीय भावनाओंसे विदित होता है—

हरिविमुखसंगमे किं भजिस रागम्, वरय हरिदासपद्पंकजपरागम् (प० सं० २)

यत्पद्रजसामभिषेकार्थम्, लिप्सा समजन्यधिकाकेयम्॥ (प०सं०१७)

भीजे नित नयन रहत प्रभुके गुनग्राम कहतः मानत निहं त्रिविध ताप जानत निहं आन। तिनिके मुखकमरु दरिस पावनपद रेनु परिसः अधम जन भादाधर'से पावें सनमान॥ (प॰ सं॰ १३)

इसी प्रकार भगवन्नामकी सर्वोपिर महिमा, उसके द्वारा अनन्त अधमजनोंका उद्धार और 'हरि बोल, हिर बोल'की भावावेशपूर्ण गूँजसे समग्र आर्यावर्त, विशेषकर बंग-उत्कलसे म्लेच्छ देशोंको अनुप्राणित, मन्त्रमुग्ध कर देना श्रीचैतन्य महाप्रमुकी सबसे बड़ी देन, सबसे बड़ी प्रचार-योजना थी। भट्टजीने उसे अपने जीवन-अमर-जीवन काव्यमें पूरा स्थान दिया है—

हिर हिर हिर हिर रिट रसना मम (प० सं० २३) है हिर ते हिरिनाम बढ़ेगे

है हिर ते हिरिनाम बढेरो (प० सं० २२) करिहे कृष्णनाम सहाइ (प० सं० २१)

भट्टजीके पूर्ववर्तीं, अर्थात् भक्तिकालके पहिले देशमें तन्त्रवादका बड़ा प्रभाव था । विविध मन्त्रोंकी साधना-सिद्धिते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'भग् थयन प्र सेत्रामें रा गीतराग, अपने चि

कानमें ए मिप्रदायां जीवका अते उस

'वत्र

गुग नहीं

हैं। उन गयुक्त अभिवर्धन

महाि अपने अन्त

महज ही मितु उन्हें

मिपन वर

वेचप्र

9)

11

:)

1)

हाँ

ोर

न

म्

बमलारपूर्ण परिणाम निकाले जाते थे। किंतु भक्तियुगमें भगवनाम ही मन्त्र-रूपमें प्रतिष्ठित हो गया। इस मन्त्रद्वारा किंक कराल विषको उतारना सहज शक्य माना गया। बन इहि मंत्र भादाधर क्यों मिटिहै मोह महातम।

(प० सं० २३)
कनक बरन कर्निका कील बज्जन की सोहै॥
मंत्र दसाच्छर रूप कहिंव महिमा को को है।
ध्यानानंद मकरंदसार जिनिके मदमाते॥

ध्यानानंद मकरंदसार जिनिके मदमाते॥ भवदवदहनसमूह तिनहिं लागत नहिं ताते। श्रीवृंदावन जोगपीठ गोविंद निवासा॥ तहाँ भादाधर चरन सरन सेवाकी आसा॥ (प० सं० ६)

इस प्रकार योग, मन्त्र, तन्त्र आदिकी ध्यान, समाधि-प्रधान प्रक्रियाओंकी भावनाका रूपक देना उनका भक्तीकरण करना है और युग-साधनाके अनुरूप अपनी भावनाओंसे उनका कलात्मक सामञ्जस्य बैठाना है, यह भक्टजी-सरीखे समर्थ भक्त-कवियोंको ही शक्य है।

आराय यह कि कविकी भक्ति काव्य-साधना अपने युगकी समग्र व्रजव्यापिनी रस-भूमिकासे सर्वोदातः अनुप्राणित हुई।

देखे सकल देव

[कहानी]

(लेखक--श्री 'चक्र')

'भगवन् ! मैं किसकी आराधना करूँ ?' वेदा-प्यन पूर्ण किया था उस तपस्ती कुमारने महर्षि भृगुकी क्षामें रहकर । महाआथर्वणका वह शिष्य स्वभावसे किराग, अत्यन्त तितिक्षु था । उसे गार्हस्थ्यके प्रति भने चित्तमें कोई आकर्षण प्रतीत नहीं हुआ।

'बत्स ! तुम स्वयं देखकर निर्णय करो !' आजका ग नहीं था । शिष्य गुरुदेवके समीप गया और उसके बनमें एक मन्त्र पढ़ दिया गया । वह अपने गुरुदेवके म्प्रदायमें दीक्षित हो गया । यह कौन सोचे कि 'उस श्रीवक्ता भी कुछ अधिकार है । जन्म-जन्मान्तरसे चले श्रोते उसमें भी किसी साधनाके कुछ संस्कार हो सकते हैं। उन संस्कारोंके अनुरूप दीक्षा ही उसके लिये ग्रिक्त है ।' यहाँ तो स्व-सम्प्रदाय—स्व-शिष्पश्रेणी भित्रर्थन ही एकमात्र अभिप्राय बन गया है आज !

महर्षि भृगु—ने ब्रह्मपुत्र समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं और बन्तेवासी कुमार आर्चेयपर स्नेह है उनका । वे हिज ही उसे इष्ट एवं मन्त्रका निर्देश कर सकते हैं; बित उन्हें प्रिय लगा कि उनका ब्रह्मचारी स्वानुभव-प्यन बने ।

वचपनमें मेरे कानमें अनेक बालकोंने 'हू' या 'ढू'

किया है। अनेकोंके कानमें मैं चिछाया हूँ। वे सव न मेरे गुरु हैं और न शिष्य। कानमें कोई शब्दो-चारण-मन्त्रोचारण कह लीजिये, दीक्षा है और इतनेसे ही कोई गुरु हो जाता है—मेरा चित्त इसे स्वीकार नहीं करता।

शास्त्रोंमें दीक्षा एवं गुरुका महत्त्व है, संतगुरु-महिमाका वर्णन करते शास्त्र थकते नहीं । वह सब मुझे अखीकार कहाँ है । मैं 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विण्युः '''' से पीछे हटूँ तो आप मेरे कान पकड़ें; किंतु दीक्षा भी तो हो । कोई गुरु भी तो दृष्टिमें आवे । आप रेतमें धान और सरोबरमें वाजरेके बीज डाळते चळेंगे और कहेंगे—'मैं कृषक !' कौन खीकार करेगा ?

अपनी परम्परागत प्राप्त साधना जब अपने स्वयंके साधनसे सप्राण होती हैं, मन्त्रमें चेतना आती है। मन्त्र चेतन्य न हुआ तो मन्त्र ही नहीं। वह चेतन मन्त्र जब उपयुक्त क्षेत्र पहिचान कर दिया गया—यह देखकर दिया गया कि यह अपने जन्म-जन्मान्तरसे इसी पयका पथिक रहा है, तब दीक्षा हुई। दीक्षा हुई इसकी पहचान यह कि क्षेत्र उपयुक्त था, मन्त्रचेतन था। अतः स्वतः अप्रयास ही साधनाकी रुचि जाग

^{*} भप्रकाशित श्रीगदाधर भट्ट सटीक काव्य-वाणीसे ।

मंह्या

आ

ब्रावृत्ति

मान कार्र

अनिर्वचन

आप जान

बते हैं

उहोंने व

आर्चेयको

गुके ये

ग्र करते

ने, उसन

सव

आनन्द उ

तएव आ

गदम्बासे

'लोक

ग आर्चे

अपने गुरु

शृतिमें व

ग्रालोक

'यतः

मय त्रिदे

णडलीमें

भावान् न

इशोभित है

में शिष्यमें

ने तो है

भी वहीं प

भेश्वर्य कर

भेरा भेषम् प्रणा

श्राग

भग

गयी दीक्षामात्रसे । बीजमें अंकुर आ गया । अब आगे वह बढ़े, फूले, फले,—यह उस साधकका प्रयास; किंतु यदि अंकुर ही नहीं आया तो दीक्षा हुई कहाँ ? या तो बीज निष्प्राण था, अथवा क्षेत्र ही ठीक पहचाना नहीं गया ।

महर्षि भृगु सिद्धगुरु—ब्रह्मपुत्रोंके लिये तो असुक एक ही सम्प्रदाय नहीं है । जैसा अधिकारी वैसी दीक्षा—सभी मन्त्र, सभी आराध्य उनके अपने हैं। उनके चित्तमें उद्भूत मन्त्र सदा सप्राण रहता है। वे किसीको यदि दीक्षा न देतें हों, कारण तो होगा ही। आर्चेय उनका प्रिय शिष्य; किंतु वह महाआधर्वणका शिष्य है। उसकी प्रदीप्त प्रज्ञा—गुरु उसकी प्रज्ञाको ही प्राञ्जल करना चाहते हैं।

'भगवन् !' आर्चेयने अञ्चित्र वाँधकर आज्ञा स्वीकार की । वह अप्रतिहत गित और महाआथर्वणका शिष्य जहाँ भी जायगा, उसका सत्कार करके जो लोकपाल अपनेको कृतार्थ न माने—कितने क्षण लोकपाल बना रह सकता है वह ।

× × × × (संयमिनी आज धन्य हुई ! धर्मराजने आगे आकर आर्चेयको प्रणिपात किया ।

'जीवका भय आपके आश्रयसे निवृत्त हो सकता है!' अर्घ्य-पाद्यादि स्वीकार करके आर्चेयने यमराजकी पुरी देखी। उस ऋषिपुत्रके शुद्ध चित्तमें दोषदर्शनकी प्रवृत्ति कभी अंकुरित नहीं हुई । उसने प्रसन्नचित्तसे स्वीकार किया—'मृत्युकी विस्मृति ही जीवको प्रमत्त बनाती है और वह पापमें प्रवृत्त होता है। यदि वह यमका स्मरण करता रहे, उनके दारुण दण्डकी स्मृति उसे शुद्ध रक्खेगी। उसे नरकाग्निमें परिशुद्ध करना अनावश्यक होगा।'

किंतु आर्चेयके छिये तो इतना पर्याप्त नहीं है। जिसके चित्तमें तमस्का प्रवेश ही नहीं, वह यमकी भला क्यों आराधना करेगा ? वहाँसे प्रस्थान क्या उसने कुबेरजीकी अलकापुरीकी ओर।

'आपका आशीर्वाद जीवको प्रथम पुरुपार्यकी ओर से निश्चिन्त कर देगा !' धनाधीशका सत्कार सीकार करके ब्रह्मचारी आर्चेय प्रस्थान करनेको उद्यत होका बोले—'धर्म तथा काम अर्थके वशवर्ती हैं। अतः त्रिवर्गमें आपकी अनुकम्पाका आकांक्षी रहेगा ही।'

'आपकी अनुकम्पाका आकांक्षी यह जन ! जिसे त्रिवर्गकी वासना स्पर्श नहीं करती, राजिषाज वैश्रवण उसके श्रीचरणोंकी रज मस्तकपर धारण करके कृतार्थ ही होते हैं । 'मेरे ही समान जठाधीश एवं देवराज भी त्रिवर्गके ही स्वामी हैं । श्रीचरणोंकी अर्च करके वे भी अपना सौभाग्य मानेंगे ।'

कुबेरजीने संकेतसे सृचित कर दिया कि वरणकी पुरी विभावरी तथा खर्ग जानेका श्रम आर्चेयको नहीं करना चाहिये । वरुण तथा इन्द्र उनके अर्चक क सकते हैं, आराध्य नहीं हो सकते । वैसे भी अलका पहुँचकर आर्चेयको कैलास जाना ही था । अब लेक पालोंके यहाँ जानेका संकल्प त्याग दिया उन्होंने ।

'वत्स !' कैलास पहुँचकर आर्चेयने प्रणिपात किया उमा-महेश्वरको । तो जगदम्बाने आगे आकर उठा लिया उन्हें । महर्षि भृगु रुद्राप्रज हैं और उनकी शंकरजीसे दक्षको लेकर कभी पर्याप्त खटपट हो चुकी है, यह सब समरण था आर्चेयको; किंतु उसे लगा कि वह अपने पिताके ही आश्रममें आ गया है । भगवान् चन्द्रमौलिका सुप्रसन्त अभिनन्दन और जगज्जननीका वात्सत्य-नि:शब्द आर्चेयके नेत्रविन्दुओंने ही स्तवनका ध्यान पूर्ण किया ।

'यह निर्वाणका धाम !' आर्चेयको प्रत्यक्ष विद्धा सदाशिवके श्रीचरणोंमें चतुर्थ पुरुषार्थ अपवर्ग आश्र्यण करता दृष्टि पड़ा । 'अभय यहाँ पूर्णता प्राप्त करता है। जीवके जीवनकी परम सफलता इन गङ्गाधरके निर्पण गुणमय पादपद्मोंकी उपलब्धि है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

क्या

रीकार्

होका

अतः

जिसे

धेराज

क(के

वराज

करके

णकी

नहीं

वन

लका

केया

लिया

जीसे

यह

अपने

補

यान

आर्चेय कई मुहूर्त आनन्दमग्न रहे । चित्त जैसे ब्रह्मित्योंसे शून्य हो गया हो । वह सम्मुख विराज-बन कर्पूरगौर मूर्ति—— वह मूर्ति कहाँ है । वही तो विभु अर्तिवनीय परमार्थ-तत्त्व है ।

भगवान् शिवके गण आ गये। जैसे हैं वे गण, आप जानते हैं। अपनी सहज चञ्चछन्नत्ति वे भूछ जते हैं अपने आराध्यके सम्मुख। आर्चेयकी भी ज्होंने वन्दना ही की।

शागका ध्वंस हुए विना वैराग्य पुष्ट नहीं होता ।' अवंगको कोई दोष नहीं दीखा रुद्रगणोंमें—प्रलयं-ग्रके ये सेवक नश्वरके प्रति रागका आधार ही तो ह करते हैं । आसक्ति यदि निष्करुण उत्पीड़क न हो, उसके नागपाशसे प्राणी कैसे त्राण पायेगा ?

सत्र सानुकूल; किंतु आर्चेयको उल्लसित—— अन्द अभीष्ट है और कैलास शान्तिका परमधाम है। अप्य आज्ञा ली उन्होंने चरण-वन्दना करके प्रभु एवं अरुमासे।

'लोकपितामहके यहाँ नित्य व्यस्तता है।' अनेक ग आर्चेय ब्रह्मलोकमें उन स्नष्टाकी चरणवन्दना करने गने गुरुदेवके साथ गये हैं। उनका चित्त वहाँकी कृतिमें कभी प्रसन्न नहीं हुआ। अतः इस यात्रामें ग्रिलोकेककी वात वे नहीं सोचते।

× × ×

'यतः शान्तिः, यतोऽभयम्' महर्षि भृगुने किसी स्य त्रिदेवोंकी परीक्षा करके अपना यह निर्णय ऋषिप्रित्वेंकी परीक्षा करके अपना यह निर्णय ऋषिप्रित्वेंकी परीक्षा करके अपना यह निर्णय ऋषिप्रित्वेंकी घोषित किया था । उसी परीक्षाका प्रसाद
प्रान्न नारायणके वक्षपर भृगुळताके रूपमें नित्य
शोभित है । गुरुकी प्रतिभा ही नहीं, उसकी भावना
शिष्यमें मूर्त होती है । शिष्य गुरुकी नाद-संतित
तो है । अतः यदि आर्चेंय अपने स्वयंके निर्णयसे
शिव्हें पहुँचे थे, जो उनके गुरुदेवका निर्णय है तो
शिर्ये करने-जैसी कोई बात नहीं है ।

'न्ह्यन् ! आपका खागत !' खयं शेषशायीने उठकर

पाम प्रणाम किया था आर्चेयके पदोंमें । भगवती रमाने

उनके चरण धोये थे । आसन स्वीकार कर लिया था उन्होंने यन्त्रचालितके समान; किंतु उनका अन्तर— उनकी वाह्य संज्ञा डूब गयी थी, यह बात भी कहते बनती नहीं है । अनन्त आनन्दिसन्धु और वही धनी-भूत होकर यह सम्मुख सान्द्रनील ज्योतिर्भय बना अर्ची-तत्पर हो गया है । बाह्य और अन्तरका भेद मिट जाय—उस अवस्थाका वर्णन भी कोई कैसे कर सकता है ।

'कोई आज्ञा देकर आप मुझे कृतार्थ करें।' वे पुरुषोत्तम पूछ रहे थे, जिनकी आज्ञाका अनुवर्तन करके ही जीवन कृतार्थ होता है। 'सेवाका सौभाग्य इस जनको अवस्य मिलना चाहिये।'

'ब्राह्मणकुमार हूँ, ब्रह्मचारी हूँ, अतः मिक्षा माँगनेका अधिकारी तो हूँ ही ।' उन छीछामयकी ही प्रेरणा होगी कि वाणीने शब्दोन्चारणकी शक्ति प्राप्त कर छी—'आपकी ये नित्य अभिन शक्तिदेवी महामाया, प्रथम इनके श्रीचरणोंमें ही प्रार्थना । ये इस शिशुपर सानुकूछ रहें । इस अबछका मानस कभी व्यामोहमेंन पड़े, ऐसा अनुग्रह बनाये रक्तें।'

'एवमस्तु ।' खरमें वात्सल्यकी माधुरी उमड़ उठी—'ऋषिपुत्र और कुछ आज्ञा करेंगे ?'

'इन श्रीचरणोंमें अविचल अनुराग ।' स्वर गद्गद हो गया । 'आपके गुणगणोंका चिन्तन ही इस जनके चित्तका व्यसन बना रहे ।'

'आपकी जैसी इच्छा !' पुराण-पुरुष कह रहे थे—'इसका ताल्पर्य है कि हम दोनोंको आपकी सेवा-का सुअवसर कुछ दिन भी नहीं मिलेगा ।'

x x x

'भगवन् !' शिष्यने यात्रा समाप्त करके गुरुदेवके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात किया ।

'वत्स ! आराध्यकी उपलब्धि हो गयी ?' महर्षि भृगुके प्रश्नमें पृच्छा कम, प्रसन्तता अधिक थी ।

'श्रीचरणोंका अनुग्रह!' शिष्य कह रहा था— 'सब प्रमुख देवता देख लिये मैंने; किंतु अन्तरको परमाश्रय देनेवाले तो एक ही हैं—वे आनन्दवन!'

धर्मबुद्धिकी आवश्यकता

(लेखक-श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

अभिनवपाद गुप्तके तन्त्रालोकमें लिखा है— किरणायां तथोक्तं च गुरुतः शास्त्रतः स्वतः।

गुरुके द्वारा, शास्त्रके द्वारा तथा अपनेद्वारा मनुष्य अपना कत्याण कर सकता है। पर, आजके युगमें हम अपने शास्त्रोंमें श्रद्धा खो बेठे हैं; गुरु किसीको बनाना या मानना हमारी शानके खिलाफ होता है और 'खतः' की व्याख्या हमने ऐसी बना ली है कि अपने ऊपरी ज्ञानको, ऊपरी छिछली बुद्धिको ही सब कुछ समझकर हम अपनेको विद्वान् तथा संसारभरको मूर्ख समझते हैं।

जिसे हम अपनी बुद्धिमत्ता कहते हैं, जिसे हम अपने मनका असली संकल्प कहते हैं—वह झूठा है, मिथ्या है, ऐसा हमने कभी नहीं सोचा । इसीलिये हम बार-बार भूल करते हैं । हम यह क्यों भूल जाते हैं कि मन और बुद्धिके बीचमें एक तीसरी चीज बैठी हुई है । हमारे जीवनके इस 'त्रिशूल' में बीचकी चीजकी अवज्ञा करनेसे ही हमारा जीवन नष्ट हो रहा है । वह चीज है 'विवेक' । मन और बुद्धिके बीचमें बैठा हुआ 'विवेक' इन दोनोंको मिलाकर हमारे जीवनकी उथल-पुथल और क्रान्ति समाप्त कर देता है ।

मनोबुद्धी न भिन्ने तु कस्मिश्चित्कारणान्तरे। विवेके कारणे ह्येते प्रभुशक्त्युपबृंहिते॥ (अभि०तन्त्रा०८।१३।१९०)

किंतु, ऐसी शक्ति आसमानसे नहीं टपक पड़ती । विना गुरुकी दीक्षा—कृपाके प्राप्त नहीं हो सकती। जिसने दीक्षा—कृपा प्राप्त की, उसीको कैवल्य प्राप्त होता है । विना गुरुका सहारा छिये तीनों तत्त्वोंपर विजय नहीं प्राप्त हो सकती। इसीछिये छिखा है—

केवलस्य ध्रुवं मुक्तिः परतत्त्वेन सा ननु। नृशक्तिशिवमुक्तं हि तत्त्वत्रयमिदं त्वया॥ (तन्त्रालोक ८। १३। १७०)

आजकलके फैरानके अनुसार गुरुका विना सहारा हूँदे हम अपने मन तथा बुद्धिको वरामें करनेकी कल्पना करते हैं। मन इतनी साधारण चीज नहीं है। शास्त्रा उपदेश है--- मिल

डाल

काम

न

F

ਬਾਰੰ

हमार

का

है,

इसव

शक्ति

मारा भूमि

देवत

घण्ट

नाद्

जिस

हस्त

मत्र

तीन

शानं महेश्वरादिच्छेत्।

ज्ञानके दाता महेश्वर हैं। महेश्वरका खरूपया प्रतीक 'लिङ्ग' है। लिङ्गका अर्थ है मन—

लयं गच्छिति इति लिङ्गं मनः।
मनका आश्रय 'योनि' है। 'योनि' का अर्थ है
बुद्धि। अर्थात् योनि (बुद्धि) में लिङ्ग (मन) को लेन
कर देना ही वास्तविक कल्याणकारी है—शिवलको
प्राप्त करना है। मनसे बुद्धिमें आओ—मोक्षका की
मार्ग है। उपनिषद्वाक्य है—'शुङ्गेन मूलमिन्छ'
जटाके नीचे आओ। लिङ्ग-पूजनका गलत अर्थ लानिको
यह नहीं समझते कि समूची सृष्टि इसी मन और बुद्धिका
खेल है। इसीलिये शंकरने पार्वतीसे कहा है—

आत्रह्मस्तम्बपर्यन्तं लिङ्गरूपोऽस्म्यहं प्रिये।

हमछोग अपने देवताओंको ठीकसे पहचानते नहीं। उनकी उपासनाका रहस्य भी नहीं समझते। इसीं खिन उनके विरुद्धमें, मूर्त्तिपूजाके विरुद्धमें बकवास करनेवालेंक प्रश्नोंका उत्तर देनेमें भी हमको कठिनाई होती है। पितामह ब्रह्माके हाथमें शरीरके भीतरका कमल प्रतीक खरूप है। काल-चक्रके खामी भगवान् विण्णुके हाथमें चक्र है। योगिनीगणोंके हाथोंमें अंकुश, सोमदेवके हाथमें गदा, श्रीगणेशके हाथमें त्रिश्रूल तथा वरुकनावके हाथमें खड़ है।

विष्णु भगवान्का सृक्ष्म रूप मन है। इसीलिये लिख है—विष्णु ज्यों तिः करण्यतु। विष्णुका वास कहाँ है—अर्घ्यमें। कुछ लोग मजाक उड़ाते हैं कि पितृपक्षमें पितृणाकी यदि जल देना है तो आचमनी या कटोरेसे क्यों नहीं देते ? अर्घ्यासे क्यों देते हो ? अर्घ्याका अर्थ है बुद्धि। हम बुद्धिमें पूजा करते हैं, बुद्धिद्वारा आवाहन करते हैं। हम बुद्धिमें पूजा करते हैं, बुद्धिद्वारा आवाहन करते हैं। विष्णु रूपी मनका अर्घारूपी बुद्धिमें वास है। अर्घ्या तथा बुद्धिके संयोगका प्रतीक है। मन और बुद्धिकी तथा बुद्धिके संयोगका प्रतीक है। मन और बुद्धिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शिक्ष

प्रतीक

नः।

अर्थ है

ते छीन

वत्वको

[यही

चच्छ'

ानेवाले

पुद्धिका

ाये।

नहीं ।

मीलिये

गलेंके

है।

ातीक-

हाथमें

विवने

नायके

लिखा

णको

नहीं

展1

智

HA

द्वेकी

मिलकर चलनेसे ही वासना बढ़ने नहीं पाती । घीके इलिनेसे आग बढ़ती हैं; शान्त नहीं होती । भोगसे क्षाम-बासना बढ़ती है, शान्त नहीं होती ।

त जातु कामः कामानामुपभोगेन शास्यति। हिविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥ (मनु०२।९४)

देवालयोंमें घण्टा बजाते समय या घरपर पूजाके समय बण्टी बजाते समय हम भूल जाते हैं कि इसका अर्थ हमारी बुद्धिसे कितना सम्बन्ध रखता है! मन तथा बुद्धि-का संयोग करानेवाला शिवलिङ्ग जहाँ भी स्थापित होता है, वहाँ गलेमें घण्टी पहने वृषभदेवजी विराजमान हैं। इसका क्या अर्थ है ?

पूजाके समय 'अपक्रामन्तु' मन्त्रसे पूजा-विरोधी शिक्तयोंको भगानेके लिये बायें पैरसे पृथ्वीको तीन बार मारा जाता है, कुछ ध्वनि भी करते हैं। 'वामपादेन भूमि त्रिस्ताडयेत्।' यही काम घड़ी-घण्टामें होता है। देवताके सामने अपनी उपस्थितिकी सूचना होती है। धण्टा-पूजनका विधान भी है—

आगमार्थं च देवानां गमनाय च रक्षसाम्।

किंतु, घण्टाका अर्थ यहींतक नहीं है। यह उस नादका प्रतीक है, उस ओंकारके टंकारका प्रतीक है जिससे सृष्टिका प्रारम्भ हुआ था। ऋग्वेदका मन्त्र है—

चत्वारि श्टङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां श्याविवेश ।

यानी चार सींग, तीन पैर, दो सिर, सात हाथ, तीन जगह बँचा है, ऐसा जो वृषभ शब्द कर रहा है (वह) महादेव यान, नाद, मनुष्योंमें प्रवेश कर गया।

हुपभको हमारे शास्त्रोंमें धर्मका खरूप माना गया है। धर्मके गलेमें घण्टा बँधा है—यानी ॐकार नाद है। जब संसारमें मनुष्य अपने मन तथा बुद्धिको एकमें मिलाकर आत्मामें लीन कर देता है तब उसे धर्मकी पराकाष्टा प्राप्त होती है और परब्रह्मसे तन्मयताका प्रतीक उसे 'अन्तर्नाद' सुनायी पड़ता है । इस प्रकार नन्दी तथा उनके गलेमें बँधी वण्टी मोक्षका प्रतीक है । धर्मका यही अभिप्राय है ।

इसिलिये मनका बड़ा महत्त्व है। मनपर नियन्त्रण रखनेका बड़ा महत्त्व है। मनुष्य ख्वयं कुळ नहीं है। मनुष्य मन है। 'मनोमयोऽयं पुरुषः' पुरुषका मन शरीरमें—मन हृदयमें चावलके एक दानेकी तरह पड़ा हुआ समुची विपत्तिकी जड़ बना हुआ है। वही मनुष्य-के बन्धन तथा मोक्षका कारण है।

मन एव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः।

आजकी सम्यतामें हम धर्मके नामसे धवराते हैं। 'धर्म-निरपेक्ष' कहनेका एक फैशन हो गया है। पर, हम यह भूळ जाते हैं कि जन्म-मरणके रहस्यको समझने-के लिये धर्म-बुद्धिका होना आवश्यक है। जो समूचे संसारको अपने नियमोंसे धारण किये हुए है, वही धर्म है।

लोकान् धरति यः सर्वानात्मानं चापि शाश्वतम् । यः साक्षादात्मरूपोऽसौ श्रियते च वुधैः सदा । धारणाद्धर्ममित्याद्वर्धर्मों धारयति प्रजाः ॥

गुरुकी कृपासे चित्तका विकल्प दूर हो जाता है।
मन तथा बुद्धिका संयोग होता है। विना धर्म-बुद्धि
उत्पन्न किये मन स्थिर नहीं हो सकता। इसीसे बुद्धिके
लिये वेदोंमें 'मेधा' शब्द आया है। विना मेधावी बने
जीवन निर्श्वक है। इसीलिये उपासक भगवान्से प्रार्थना
करता है कि 'आप अपनी कृपासे जो अत्यन्त उत्तम
सत्य विद्यादि शुभ गुणोंको धारण करनेके योग्य बुद्धि है,
उससे हमलोगोंको युक्त कीजिये।'

ध्यान रखिये-

यां मेधा देवगणाः पितरक्वोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ (यज्ञ० अ० ३२, मं० ३४)

E---

सम्मान प्राप्त करनेका महत्वपूर्ण उपाय

(लेखक--श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

प्रत्येक मानव चाहता है कि उसे यश और सम्मान ं पिरोकर गलेमें डालते हैं और मन्दिरोंमें देवताओं को मिले। पर जिन कार्योंसे सम्मान मिलता है उन्हें करनेके लिये वह तैयार नहीं होता । यह तो निश्चित है कि कोई भी बात केवल चाहनेसे ही नहीं मिल पाती, चाहनेवालेको उसके लिये योग्यता भी प्राप्त करनी पड़ती है। अन्यथा इच्छित वस्तु प्राप्त भी हो गयी तो भी वह अधिक समयतक टिक नहीं पायेगी । जिस प्रकार एक व्यक्ति चाहता है कि मैं राजा या मन्त्री वन जाऊँ; पर यदि राज्य-संचाळनकी योग्यता उसने प्राप्त नहीं की है और संयोगवश यदि वह राजा या मन्त्री बन भी गया तो उसके लिये उल्टी आफत हो जायगी। राज्य-संचालन ठीकसे न कर पानेपर लोग उसकी निन्दा तो करेंगे ही, स्वयं भी उसके नाकोंदम आ जायगा। इसिलिये हम जो भी चीज चाहें, उसके योग्य अपनेको बनायें, यही इच्छित वस्तु प्राप्त करनेका धुगम उपाय है।

जो न्यक्ति सम्मान प्राप्त करना चाहता है, लोग उसकी प्रशंसा करें और उसे आदर दें; वह ऐसी कामना करता है । उसे सबसे पहले यह देखना चाहिये कि जिन व्यक्तियोंको सम्मान प्राप्त हुआ है, उनमें कौन-सी ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनसे उन्हें सम्मान मिळा । उन विशेषताओंमेंसे कोई भी विशेषता जहाँतक अपनेमें नहीं आयेगी, हमें सम्मान प्राप्त कैसे होगा ? बाहरी टीप-टाप या दिखावा थोड़े समयके लिये लोगोंको चाहे भ्रममें डाल दे, पर आखिर उसकी पोल खुल जैं। नेवाली है। 'सुगंधी आ नहीं सकती, कभी कागजके फुलोंसें । पूजा गुणोंकी होती है । सुगन्त्रयुक्त पृष्पोंका सभी आदर करते हैं। यद्यपि कागजके फूल भी देखने-में बहुत सुन्दर लगते हैं; पर उनमें सुगन्य न होनेसे कोई उनका वैसा आद्र नहीं करता। राजस्थानी कहावत है—'रूप रूड़ी गुण वायरो, रोइड़रो फ्रल' रोहिड़ेका फ्रल देखनेमें बड़ा सुन्दर लगता है, पर उसमें कोई गुण नहीं होता। इसिंछिये उसकी उपेक्षा करके लोग गुलाव आदिके धुगन्धित पुष्पोंको ही चावसे लेते हैं । उन्हींकी माला

कि

जा

जह

नह

नज

गेरो

गया

भी

निन्

वातें

जाय

व्यक्ति

दोष

कार

अि

साथ

सम

याः

अप

जिस्

सम्म

पाँच

अल

उन तो

और

हाँ तो, तत्त्वकी बात यह है कि व्यक्तिको योग्यता या गुणोंका विकास करनेमें ही प्रयत्नशील होना चाहिये | सम्मानकी इच्छा न रखिये, वह तो मिलेगा ही। अण साँग्या मोती मिले, माँगी मिले न भीख।

यदि आपमें कोई गुण उचित मात्रामें विकसित हो गया तो लोग अपने-आप आपके प्रति आकर्षित होंगे। आप कोई अच्छा काम करेंगे तो जनताके प्रशंसा-भाजन बनेंगे ही। एक बात और सोच लेनेकी है कि वैसे तो सभी व्यक्तियोंमें कुछ-न-कुछ गुण और कुछ-न-कुछ दोष होते ही हैं; इसलिये साधारण मात्रामें गुण होंगे तो उससे सम्मान प्राप्त होने योग्य विशेषता प्राप्त नहीं हो सकेगी। सम्मान-प्राप्तिके लिये किसी भी एक गुणका तो अछे रूपमें विकास होना आवश्यक है । दूसरोंकी अपेक्षा जहाँतक गुणोंका स्तर ऊँचा नहीं होगा, वहाँतक तो सर्व-साधारणके समान ही आपकी स्थिति रहेगी । उस स्थितिमें आप विशेष सम्मान प्राप्त करना चाहें तो वह सम्भव नहीं होगा । इसलिये विशेषताएँ चाहे थोड़ी भी हों, पर होनी ऐसी चाहिये जो दूसरोंकी अपेक्षा काफी उच्च स्तरकी हों । जैसे लाखों विद्यार्थी विद्यालयोंमें पढ़ते हैं, उनमेंसे जो सबसे अधिक नम्बर प्राप्त करते हैं, उन्हींकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित होता है। एक ही कक्षाके विद्यार्थियों में भी जो तीसरी और दूसरी श्रेणीके होते हैं, उनको वह महत्त्व प्राप्त नहीं होता, जो कि प्रथम श्रेणीमें आनेवालेको होता है। साधारण नाचना-गाना तो बहुत-से व्यक्ति जानते हैं; पर उनमें जिसने विशेष योग्यता प्राप्त की है, जिसका कण्ठ धुरील है, ताल और लयके अनुसार जो गाता था नाचता है, उसीकी सब लोग पूछ करेंगे। जब कभी गाने और नाचनेकी महिफ्ल होगी तो उसी व्यक्तिको लोग प्रथम स्थान देंगे, उसे अधिक सम्मान मिलेगा और धन भी । उपर्युक्त सारी बातोंका निचोड़ यह है कि यदि

भोको

यता

ोना

ही।

हो

सा-

कि

ोष

ासे

ले

भा

नो

H

किसी एक भी गुणको विशेष मात्रामें विकसित किया जायगा, तभी उसके द्वारा सम्मान प्राप्त हो सकेगा.।
गुणाः पूजास्थानं गुणियु न च लिङ्गं न च चयः।
अर्थात् पूजा गुणोंकी होती है। एक ही व्यक्ति जहाँतक किसी विशेषतासे रहित होता है, उसे कोई नहीं यूळता, पर थोड़े अभ्यास और परिश्रमसे यदि उसने कोई विशेषता प्राप्त कर ली तो अपने-आप वह लोगोंकी नजरोंमें चढ़ जायगा और लोग उसको आदर करने लगेंगे।

जैसे गुणोंकी विशेषतासे व्यक्ति आदर पाता है, वैसे ही यदि उसमें कोई दोष अधिक मात्रामें घर कर गया तो उसके कई अच्छे गुण भी उस उत्कट दोषके नीचे दव जायँगे। दूसरोंकी नजरमें उसका वह एक भी दोष अखरनेवाला हो जायगा और लोग उसकी निन्दा करने लग जायँगे। यद्यपि उसमें कई अच्छी बातें भी हैं; पर दूसरोंका ध्यान उनकी ओर नहीं जायगा। इसी तरह यदि कोई एक विशेष गुण किसी व्यक्तिमें है और उसमें कुछ दोष भी हैं तो उन साधारण दोषोंको लोग उतना महत्त्व नहीं देंगे और उस विशेष गुणके कारण उसकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी। इसलिये गुणोंका अधिकाविक विकास हो यह तो आवश्यक है ही; पर साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि कोई ऐसा दोष विकसित न हो जाय जो गुणोंको ढक डाले।

तीसरी बात सोचनेकी यह है कि जिन लोगोंको सम्मान प्राप्त है, उन लोगोंमें कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं । और फिर अपनी प्रकृति, स्थिति और शक्तिको व्यानमें रखते हुए अनेक विशेषताओंमें कौन-सी विशेषता अपनेमें सहज या साधारण प्रयत्नसे प्रकट की जा सकती है। जिस प्रकार एक व्यक्तिको, उसके पास धन बहुत है इसल्ये सम्मान प्राप्त है, दूसरेमें विद्या, तीसरेमें कला, चौथेमें बुद्धि, पाँचवेंमें सेवा-माव, भक्ति, चिरित्रकी निर्मलता—इस तरह अलग-अलग व्यक्तियोंमें अलग-अलग विशेषताएँ हैं और उन एक-एक विशेषताओंके कारण उन्हें सम्मान प्राप्त है। तो हमें सोचना होगा कि हमारी प्रकृति, योग्यता और परिस्थितिके अनुकूल कौन-सी विशेषता हमें जल्दी एवं अच्छे रूपमें प्राप्त हो सकेगी। जिस व्यक्तिकी

कलाकी ओर रुचि अधिक है वह चित्रकला, मुर्तिकला, संगीतकला आदिके क्षेत्रमें समय एवं शक्ति लगायेगा, तब उच्चकोटिका कलाकार बन सकेगा और उसी कलाके कारण उसे इच्छित सम्मान प्राप्त हो सकेगा। मैंने यहाँ तक देखा है कि किसी साधारण बातमें भी यदि कोई व्यक्ति कमाल हासिल कर सका है तो उसे उस मामूली बातसे भी बहुत बड़ा सम्मान और धन प्राप्त हो जाता है।

सम्मान प्राप्त करनेका एक और भी सुगम उपाय है कि हम भी दूसरोंका सम्मान करें। साधारणतया सभी लोग अपना सम्मान चाहते हैं पर दूसरोंका सम्मान स्वयं नहीं करते। बतलाइये, आप अपनी ऐंठमें रहेंगे तो दूसरे ऐंठमें रहेंगे और आपको घमंडी समझेंगे और उस दोषको महत्त्व दे देंगे, फिर वे आपका सम्मान क्यों करेंगे ? लोक-व्यवहारमें तो यह प्रसिद्ध बात है कि 'इस हाथ ले, उस हाथ दे', हम किसीको देंगे नहीं, तो दूसरे हमें क्यों देने ट्योंगे । हाँति-पातिका भी बराबरका बराबर नाता होता है। 'राख पत रखाय पत'— मैं आपके साथ अच्छा व्यवहार रक्कुँगा तो आप भी मेरे साथ अच्छा वर्ताव करेंगे और बुरा वर्ताव करनेपर दूसरे भी वैसा ही करेंगे। कम-से-कम वे आपसे दूर रहनेका प्रयत्न तो करेंगे ही। एक बच्चे और पशुको भी आप आदरसे बुलाइये, उसके प्रति प्रेम प्रकट करिये तो वह आपका सारा मनचाहा काम कर देगा और उसे दुत्कारेंगे, फटकारेंगे तो वह आपके पास भी नहीं फटकेगा। इसलिये यदि हम दूसरोंसे संम्मान प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें भी दूसरोंका सम्मान करनेमें हिचिकिचाहर नहीं होनी चाहिये। किसी भी गूणी व्यक्तिका सम्मान करना तो आवस्यक कर्तव्य है ही; पर जहाँतक सम्भव हो अवगुणीका भी अपमान नहीं करना चाहिये। सम्भव है वह प्रतिहिंसासे आपका विरोधी बनकर आपके सम्मानमें बायक हो जाय आपकी प्रतिष्ठामें ठेस पहुँचा दे। आध्यात्मिक दृष्टिसे तो यश या सम्मान-प्राप्तिकी इच्छा करनी ही नहीं चाहिये । 'प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा' सभी व्यक्ति ऐसा उच्च मनोभाव रख नहीं पाते, अत: उनके लिये अनुभवसिद्ध सम्मान-प्राप्तिका उपाय यहाँ बतलाया गया है।

स्वाध्याय-संग्रह *

(सं० स्व० श्रीविश्वामित्रजी वर्मा)

मनुष्यको धनसे तृप्त नहीं किया जा सकता। यह सारा जीवन भी बहुत थोड़ा है।

-'नचिकेता'

कोई भी मनुष्य न तो प्राणसे जीवित रहता है, न अपानसे ही, बल्कि जिसमें ये दोनोंके आश्रित हैं, ऐसे किसी अन्यसे जीवित रहते हैं।

जिस समय सम्पूर्ण कामनाएँ, जो इस हृदयमें आश्रय करके रहती हैं, छूट जाती हैं, उस समय वह मर्त्य (मरणधर्मा) अमर हो जाता है और इस शरीरसे ही ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है । जिस समय इस जीवनमें ही हृदयकी सम्पूर्ण प्रन्थियोंका छेदन हो जाता है, उस समय वह अमर हो जाता है। सम्पूर्ण वेदान्तोंका इतना ही आदेश है।

-'यमराज'

मुझे तो किसी भी तरह ब्रह्मका बोध करा दीजिये। जो कोई भी उसको जाननेवाला है, वह स्वयं वही है; क्योंकि ब्रह्म सर्वात्मक है। तुम्हारा नाम नारायण है । नारायणनामी पुरुषको तुम जितना पूर्णतया जानते हो अन्य कोई नहीं । नारायणको जाननेवाले तुम नारायण हो।

-- 'ऋषि'

जगत्में जो स्थावर-जंगम संसार है। वह सब ईश्वरके

द्वारा व्याप्त है । उसके त्यागभावसे त् अपना पाळन कर, किसीके धनकी इच्छा न कर।

—-'ईशावास्योपनिषद्'

तदनन्त श्रीखाम

इस लोकमें कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे । इस प्रकार मनुष्यत्वका अभिमान (खनेवाले तेरे लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है जिससे तुझे अशुभ कर्मका लेप न हो।

असुरलोक अज्ञान और अन्धकारपूर्ण है । आता-हत्या करनेवाले लोग मरकर उसी लोकको जाते हैं।

जो सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें और समस्त भूतोंमें आत्माको देखता है, वह किसीसे घृणा नहीं करता। उसे मोह-शोक भी नहीं होता; क्योंकि वह सबके साथ आत्मरूप है।

--- 'ईशावास्योपनिषद्'

यह अमृत ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं-बायीं ओर है तथा ब्रह्म ही नीचे-ऊपर फैला हुआ है। यह सारा जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।

—-'मुण्डकोपनिषद्'

द्वारा हि पूर्ण वात

योगिरा

शास्त्री

शास्त्री व

यह सुन उत्पन है

या और

व्यवहार

पंक्षिप

जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियाँ अपने नाम-रूपको त्यागकर समुद्रमें अस्त हो जाती हैं, वैसे ही विद्वान् नामरूप-अहं कारसे मुक्त होकर परात्पर दिव्यल-को प्राप्त होता है। —'मुण्डकोपनिषद्'

*'कल्याण'के पाठकोंको यह जानकर बड़ा खेद होगा कि हमारे चिर-परिचित मित्र, 'कल्याण'के लब्धप्रितिष्ट लेखक श्रीविश्वामित्रजी वर्माका हालमें ही लंबी वीमारीके परिणामस्वरूप विषहर जंगल, डभौरामें ही देहावसा^{त ही} गया। वर्माजी अपने सिद्धान्तके बड़े पक्के थे और बड़े अनुभवी थे। उन्होंने अपनी रुग्णावस्थामें सिद्धान्तवर्श पलोपैथिक द्वाका प्रयोग नहीं किया। उनके चले जानेसे भारतका एक वहुत वड़ा विचारशील तथा प्रकृति का सचा संवक पुरुष उठ गया। उनके रिक्त स्थानकी पूर्ति सहजमें नहीं हो सकती। अन्तिम समयमें उनके भार श्रीलक्ष्मणप्रसादजीने उनकी अपार सेवाका सौभाग्य प्राप्त किया। सम्पादक

साकेतवासी योगिराज स्वामीजी श्रीज्योतिः प्रकाशाश्रमजीके जीवनकी कुछ बातें, हिमालयमें सिद्ध महात्माओं के दर्शन

(लेखक---भक्त श्रीरामशरणदासजी)

कुछ समय पूर्व भारतके प्रमिद्ध महान् तीर्थ श्रीगढ्मुक्तेश्वरमें, तत्तन्तर पिलखुवामें कृपापूर्वक पधारनेपर मुझे पूच्यपाद अनन्त श्रीत्वामीजी श्रीकपिलदेवाचार्यजी महाराजके दर्शन-सत्मंगका एम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनसे साकेतवासी योगिराज सिद्ध संत श्रीस्वामीजी श्रीच्योतिः प्रकाशाश्रमजी महाराजके

षद्

नि

गले

ससे

त्म-

₹'



त्रिंग हिमालयमें सिद्ध महात्माओं के दर्शन-मिलनकी चमत्कारपूर्ण वातें सुननेको मिलीं। उन्होंने वतलाया कि साकेतवासी
योगिराज श्रीस्वामीजीने स्वर्गीय श्रोत्रिय पं० श्रीभगदानदत्त्रजी
शिक्षी और धनौरा मण्डीके परम श्रद्धेय पं० श्रीदिवाकरजी
शिक्षी आदि विद्वानों के सामने ये सब वातें वतलायी थीं।
यह सुनकर मेरे मनमें पूरी वातें जाननेके लिये बड़ी उत्सुकता
उत्पन्न हो गयी।पूज्य श्रीदिवाकरजी शास्त्रीजीसे मेरा पूर्वपरिचय
या और उनकी मुझपर सदा कृपादृष्टि रही है। मैंने उनसे पत्रविवास किया। उन्होंने कृपापूर्वक श्रीस्वामीजी महाराजका
संक्षिप्त जीवनपरिचय, चित्र, पुस्तक तथा हिमालयमें

महात्माओं के मिलनसम्बन्धी विवरण लिख मेजा। इसके लिये में उनका अत्यधिक आभारी हूँ। पृष्य श्रीदिवाकरजी शास्त्री आदि विद्वानों के द्वारा विदित किया हुआ साकेतवासी स्वामीजीका संक्षित चरित और स्वामीजीके द्वारा सुनायी सत्य घटनाएँ उन्हों की भाषामें ब्यों की-त्यों इस प्रकार है—

परम पूच्यपाद प्रातःस्मरणीय योगिराज स्वामीजी श्रीव्योति:-प्रकाशाश्रमजी महाराज जातिके ब्राह्मण थे। आपका छुट-पनका शुभ नाम श्रीरामसेवक था। ये पंजावमें अमृतसर जिलेके एक वड़े रईसके सुपुत्र ये। आपके पिताका देहावसान बचपन-में ही हो गया था। आपके बड़े भ्राताका ग्रुभ नाम मथुरा-प्रसाद और पूजनीया माताजीका ग्रुम नाम श्रीलक्ष्मीदेवी था । वे बड़ी ही श्रीरामभक्ता और सती-साध्वी पतिव्रता थीं । माताके श्रीरामकथामृतने पुत्रकी हृदयभूमिको भक्ति-भावनाओं-के लिये उर्वरा बना दिया था। शैशवकालसे ही श्रीराम-जीमें आपका अटल अनुराग हो गया और आपका अधिक समय श्रीरामजीके पूजन, ध्यान और जपमें ही व्यतीत होने लगा। आपकी संत-महात्माओं में बड़ी श्रद्धा-भक्ति थी। धीरे धीरे वैराग्यका अंकर हृदयमें उदित होकर बढने लगा। आपका चित्त उत्तराखण्डमें जाकर भजन-ध्यान करनेको लालायित हो उठा । परंतु माताके अनुरोध करनेपर आपको घरपर ही रुकना पड़ा । कालकमसे कुछ समयके पश्चात् माताका भी स्वर्गवास हो गया । आपकी इच्छा भ्रमणके लिये उत्कट हो उठी और लगभग पंद्रह वर्षकी अवस्थामें आप वड़ी सम्पत्ति और सुखको लात मारकर घरसे निकल पड़े और श्रीहरद्वार-ऋषिकेश होते हुए श्रीवद्रीनाथजी जा पहुँचे ।

तदनन्तर श्रीभगवानदत्त श्रोत्रियजी महाराज स्वामीजीकी पर्वत-यात्राका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

स्वामीजीकी पर्वतयात्रा घड़ी ही रोचक है और उन्होंने मुझे इस यात्राका वर्णन ऋषिकेशमें लाला श्रीचरणदासजीकी धर्मशालामें अपने श्रीमुखसे मुनाया था। आपके श्रीमुखसे निकले हुए शब्द अब भी मुझे ब्यों-के-त्यों स्मृति-पटपर अङ्कित- से दीखते हैं। संक्षेपमें उन्होंके शब्दोंको आपके सामने रखता हूँ। स्वामीजी महाराज कहने लगे—

FI.

हन

में क

महार

(बप

मभी

इनका

होते हैं

मिल

निकल

रीखत

ओषि

इस्ते ह

क्रेंचे व

मुझसे र

और क

कारण चारीजी

क्रिन र

था, परं

ने सुना

र्शनोंक

नो ऋ

जनको व

पुरश्चरण

भेध्यातम

तुम्हें मि

कर अप

कुनकर :

नहीं सक

ने प्रभुव

इर

बड़े-बड़े सिद्धयोगियोंसे भेंट कैसे हुई ?

मैं श्रीबद्रीनारायणजीके दर्शन कर छौटकर मार्गमें पीपल-च्हीपर ठहरा । बड़े-बड़े महात्माओंके मुखसे मैंने अनेक बार सुना था कि उत्तराखण्ड (हिमालय) में बड़े-बड़े सिद्ध-महात्मा रहते हैं । मेरी प्रवल इच्छा हुई कि मैं प्रथम किसी सिद्धके दर्शन करूँ और फिर भगवान श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनोंके लिये खगकर भजन करूँगा ।

मैं मार्ग छोड़कर पीपलचट्टीसे पूर्वकी ओर पहाड़ोंपर चढ़ने छगा। बीस दिनतक तो कहीं-कहीं पहाड़ोंपर पर्वतवासियों के प्राम मिलते रहें। उससे आगे वढ़नेपर बस्ती नहीं थी। बड़ा बीहड़ पहाड़ी जंगल था, जिसमें कोई मार्ग नहीं था। कहीं कभी हिंसक जीवोंके चलनेसे बनी हुई पगडंडियाँ मिल जाती थीं। कहीं-कहीं केवल वृक्षोंकी जड़ और झाड़ियोंको पकड़कर आगे बढ़ना पड़ता था। कोगोंतक ऊँचे पर्वत मार्गमें पड़ते थे। उनकी ऊँचाई देखकर यह अनुमान होता था कि आगे इससे ऊँचा पर्वत न होगा। परंतु उसको लाँघनेके बाद सामने उससे भी अधिक ऊँचा पर्वत दीख पड़ता था। नीचे हिं डालनेसे भूमिके दर्शन नहीं होते थे। केवल अन्धकार ही दीख पड़ता था।

मैं दिनभर चलता रहता था। रात कहीं ऊँची चट्टानपर बैठकर व्यतीत करता था। हिंस जीवोंसे वचनेके लिये अग्नि बला लिया करता था। रात्रिमें सिंह आदिके गर्जन सुन पड़ते थे। परंतु श्रीरामजीकी कृपासे मुझे इससे भय नहीं लगता था।

विधिवश एक दिन मैं एक तंग पगडंडीसे आगे बढ़ रहा था। एक ओर गगनस्पशीं पर्वत था और दूसरी ओर पातालमेदी खड़ु था। सामने दृष्टि की तो एक वबर सिंह धीमी मन्थर गतिसे धीरे-धीरे मेरी ओर आता दिखायी दिया। बचकर निकल जानेका मार्ग नहीं था। पीछे लौटना व्यर्थ था; क्योंकि सामने सिंहने देख लिया था। पैरके तिक-सा विचलित होनेसे अतल खड़ुमें गिरकर मरना था। तब मैं इस प्रकार सोचते-मोचते कि बस, हो चुके सिद्धोंके दर्शन और देख चुका मैं सिद्धाश्रम; यहाँतक ही देखना था। अब सिंह बिना खाये नहीं छोड़ेगा। अन्त समय आ गया। अच्छा! प्रभुकी इच्छा! अस्तु अन्तिम मित सो गति?—यह विचारकर नेत्र बंदकर मैं हृदयमें क्या देखता हूँ कि सामने धनुषबाण लिये श्रीरामजी विराजमान हैं, सिरएर जटा है और मुख अति मनोहर हैं, पीत वसन हैं, गलेमें वनमाल है। सरकारके अलैकिक स्वरूपमें मन इतना लीन हुआ कि उस समयतक बाहरकी सुध-बुध न रही।

अचानक ध्यान दूटा । सिंह समीप आ रहा था। विचार हुआ-आने दो, सिंहके खानेसे कुछ क्षणमें श्रीरामजी मिर अ . जायँगे । न जाने कितने समयतक जीवनका भार होकर दुःख उठाना पड़ता । फिर प्रभुके खरूपका ध्यान करने लगा, परंतु ध्यान न जमा । इसी बीच सिंहने सामने आकर भूमिए पंजेसे थपकी दी और बु, बु, बु, बु शब्द किया। सिंहने इसी प्रकार तीन-चार बार किया, परंतु मैंने नेत्र नहीं लोले। मैंने सोचा कि यह अपने खाद्यको पाकर प्रसन्न हो रहा है। अब यह मुझे खाना प्रारम्भ करनेवाला है। ओह, नव सिंह शरीरको फाड़ेगा तो कुछ समयतक मुझे बड़ी पीड़ा होगी। में यह विचार ही रहा था कि पीठके पीछे धमाका हुआ। मैंने नेत्र खोलकर पीछे गर्दन मोड़कर देखा तो वह महा भयंकर विशालकाय सिंह मेरे ऊपरसे कूदकर जा रहा है। तव अपने प्रभु श्रीरामकी अपने ऊपर इस प्रत्यक्ष कृपाने देखकर मेरा हृदय गद्गद हो गया। हृदयसे बार-बार गर पद्य निकलने लगा-

'जानकीनाथ सहाय करें तब कौन बिगार करें नर तेरों'

कुछ समयके पश्चात् विचार हुआ कि अच्छा होता कि सिंह मुझे अपना आहार बना लेता। सरकारके दर्शन होते और विषय-वियोगकी न्वाला शान्त हो जाती। किहीं पुण्योंसे यह मिलन-सुअवसर प्राप्त हुआ था, परंतु मेरे किसी प्रवल पापने आकर बीचमें विष्न डाल दिया। सरकारने मुझे अत्यन्त पतित जानकर ही अपने चरणोंमें नहीं बुलाया। इस विचारने मुझे विह्वल कर दिया। मैं फूट-फूटकर रोने लगा। मार्गमें चलते हुए तीन दिनतक मेरे नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहते रहे। आगे चलकर इसी प्रकार एक बड़े भालूसे मुठभेड़ हुई। उससे भी मेरी श्रीरामजीने रक्षा की।

इसी प्रकार उस निर्जन पहाड़ी वनमें चलते-चलते मुझे दो मास व्यतीत हो गये, परंतु किसी सिद्ध-महात्माके दर्शन नहीं हुए। हृदयमें कुछ-कुछ निराशा-सी होने लगी। फिर भी मैं चैर्यसे आगे बढ़ता ही रहा। लगभग ढाई मासकी यात्राके उपरान्त मुझे पर्वतपर एक समतल भूमि मिली। मैं वहाँ कुछ

ग ३६ -

है और

लहै।

के उस

विचार

मिल

दोक्त

ल्गा,

पूमिपर

सिहने

गोले।

ा है।

सिंह

ोगी।

आ।

महा-

ा है।

पाको

यह

होता

र्शन

न्हीं

5सी

मुझे

इस

11

इते

ड

į

हिनके लिये ठहर गया । मेरे पास एक वैसाखी थी जिससे 🕯 कंद खोदकर उदरपूर्ति कर लेता था । कंदोंकी पहिचान महात्माओं के द्वारा मुझे पहले ही हो गयी थी। हिमाच्छादित क्सी ढके) स्थानोंको छोड़कर ऐसे कंद प्रायः पहाड़ोंपर म्मी जगह मिल जाते हैं। ये कई प्रकारके होते हैं और अका स्वाद बड़ा मधुर होता है तथा पचनेमें ये बड़े हल्के क्षे हैं। अन्य प्रकारके वन्यफल भी ऋतुके अनुसार सर्वत्र क्र जाते हैं। वहाँ रात्रिमें ओपियोंसे दीपकके समान प्रकाश क्षित्रहता था। लगभग चार गजके अन्तरसे यह प्रकाश भीवता था और पास जानेपर छप्त हो जाता था । अतः उस ओषधिकी पहिचान न होती थी।

सिद्धब्रह्मचारीसे भेंट

इस प्रकार उस प्रभुकी प्राकृतिक दिव्य महिमाका अनुभव सते हुए कुछ दिन और व्यतीत हुए । एक दिन एक बड़े कॅंचे कदके जटाधारी ब्रह्मचारी मेरे पास आये। उन्होंने पुत्रसे संस्कृतमें पूछा 'कस्त्वम्, कुतश्च समायातः' (तू कौन है और कहाँसे आया है) संस्कृतका अधिक अभ्यास न होनेके कारण मैंने इसका उत्तर हिंदी-भाषामें दिया। इसपर ब्रह्म-चरीजीने पूछा 'त् यहाँ कैसे आया ? यहाँ आना तो बड़ा र्किन है ?' मैंने कहा 'महाराज ! आना तो निःसंदेह कठिन गा, परंतु श्रीरामजीकी कृपासे चला आया हूँ । मैंने महात्माओं-है सुना था कि हिमालयपर सिद्ध लोग रहते हैं। उन्हीं के र्रानोंकी उत्कट इच्छा मुझे यहाँतक ले आयी है।'

इसकों सुनकर वे मुसकराये और बोले- भाई ! सिद्धजन गे ऋषिकेशसे लेकर पर्वतोंपर सर्वत्र रहते हैं, परंतु साधारण ^{बनको} दीखते नहीं । तुम्हीं बताओ, तुमने गायत्रीके कितने प्रिश्वरण किये हैं ? कौन-सा तप किया है ! अथवा कौनसे भयात्मशास्त्रका मनन करके आत्मज्ञानी बने हो ! जिससे ^{पुर्हे} मिद्ध-महात्माओंके दर्शन उपलब्ध हो सकें, जाओ लौट-^{भर अपने} देश चले जाओ। श्रह्मचारीजीके इन वचनोंको क्षिकर मैंने कहा—'महाराज ! क्षमा कीजिये, मैं अब छोट ^{नहीं} सकता । यहीं रहकर मैं श्रीराम-मन्त्रका जाप करूँगाः भे प्रभुक्ती इच्छा होगी वही होगा ।'

एक मीलकी परिधिवाला अद्भुत वट वृक्ष

मेरे इस आग्रहको देखकर ब्रह्मचारीजीने कहा कि

'अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा ही करो।' इसके अनन्तर उन्होंने मुझे एक बृटी दिखलाकर कहा कि 'इसका एक तोला अर्क निकालकर पीनेसे सात दिनतक भूख नहीं लगती और वल भी क्षीण नहीं होता। तुम चाहो तो इसका सेवन कर सकते हो। 'फिर उन्होंने मुझे एक वड़के वृक्षके नीचे ले जाकर कहा कि 'यह स्थान भजन करनेके लिये बहुत उपयुक्त है, तुम यहीं रहो। १ इसके अनन्तर ब्रह्मचारीजी चले गये।

उस बड़को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । उसकी परिधि एक मीलसे कम न होगी। ऊँचाई भी असाधारण थी। वर्षा और धूप उसके सघन पत्तोंसे छनकर नहीं आ सकती थी । उसकी अधोभूमि शीतकालमें उष्ण और उष्ण-कालमें ठंडी रहती थी। पास ही निर्मल और मधुर जलका झरना वह रहा था। इधर-उधर गुफाएँ बनी थीं। इसके नीचे कहीं-कहीं धूनी भी लगी हुई दीखती थीं। परंतु कोई महात्मा दृष्टिगोचर नहीं हुआ। देशमें किसी-किसी महात्मासे इस वटवृक्षके सम्बन्धमें सुना करता था। आज उसे पाकर वड़ी प्रसन्नता हुई। मैं यहाँ रहकर भजन करने लगा।

सौ वर्षसे समाधि लगाये योगी सिद्ध गुरुका दर्शन

दस-ग्यारह महीनेके पश्चात वे ही जटाधारी ब्रह्मचारी एक दिन मेरे पास आये । कुछ समय विश्राम करनेके पश्चात् वे मुझे समझाने लगे कि 'देखो, अभी तुम्हारी अवस्था कम है। तुम देशमें जाकर शास्त्र अध्ययन करो । शास्त्रके द्वारा दुआ वैराग्य हढ होता है और वही ज्ञान दिव्य प्रभाववाला होता है जो शास्त्रोंके मनन करनेसे उपलब्ध होता है। अपरिपक्क वैराप्य और ज्ञान अस्थिर होते हैं । अध्यात्मशास्त्रोंका अध्ययन करके फिर यहाँ आना ।' इसपर मैंने कहा-- भहाराज ! मैं तो यह प्रतिज्ञा करके आया हूँ कि बिना सिद्धोंका दर्शन किये नहीं लौटूँगा । फिर वताइये अपनी प्रतिज्ञाको तोइकर कैसे चला जाऊँ !' मेरे इस उत्तरको सुनकर ब्रह्मचारीजी कुछ क्षण विचारकर उठकर एक ओर चल दिये और मुझे अपने पीड़े आनेका संकेत किया। कुछ समय चलनेके पश्चात् इम एक स्थानपर पहुँचे। वहाँ एक बड़ी शिलाके ऊपर एक योगी समाधि लगाये पद्मासनसे बैठे थे। वे बैठे हुए भी नुससे खड़े हुएके कदसे ऊँचे थे और उनकी जटाएँ पृथ्वीपर

विह

दिव

कृप

संन्य

फिर

समय

बहुध

पताः

क्री

फैल रही थीं । भुकुटीके रोम दाढ़ी-जैसे लगे थे । बदे हुए नख सिंहके-से माल्म होते थे । उनकी ओर संकेत करके ब्रह्मचारीजीने कहा कि ध्ये मेरे गुरु हैं । इनकी समाधि सौ वर्षसे लगी है । तबसे खुली नहीं । अब चलो सिद्धके दर्शन हो गये । तुम्हें उसी वटवृक्षके नीचे पहुँचा दूँ । तुम वहाँ स्वयं नहीं पहुँच सकते ।' तत्पश्चात् वे ब्रह्मचारीजी मुझे बड़के नीचे पहुँचाकर कहीं चले गये ।

पाण्डवोंके समयका अद्भुत किला

मैं उसी वृक्षके नीचे रहकर श्रीराममन्त्रका जप करने लगा । कुछ समयके बाद वे ब्रह्मचारीजी फिर एक दिन मेरे पास आये और कहने लगे—'अब तुमने काफी जप करके अपनेको पवित्र बना लिया है। चली कुछ और दृश्य दिखाऊँ।' मैं भी प्रसन्न होकर उनके साथ हो लिया । इसके आंगे दिनके आठ बजेके लगभग हम दोनों एक गुफाके द्वारपर पहुँचे जो एक बड़े भारी पत्थरसे ढका हुआ था। ब्रह्मचारीजीने उस पत्थरको सहज ही एक ओर हटा दिया। हम दोनों गुफामें प्रविष्ट हुए । फिर पत्थर द्वारपर लगा दिया गया। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रह्मचारीजीने अकेले ही सैकड़ों मनके पत्थरको कैसे हटा दिया ! परंतु मैं यह सोचकर चुप रहा कि महात्माओंको टोकना नहीं चाहिये, कोई सिद्धि ही होगी। हम दोनों आगे बदे। वह गुफा या सुरंग संगमरमरकी बनी हुई मालूम होती थी। स्पर्श करनेमें चिकनी थी। उसकी ऊँचाई और चौड़ाई काफी थी। कहीं-कहीं रोशनदान भी खुले थे, जिनसे अंदर प्रकाश, वायु आती थी। आठ घंटे चलकर लगभग चार बजे हम दूसरे द्वारपर पहुँचे । वहाँ भी पहले-जैसा पत्थर लगा था। ब्रह्मचारीजीने उसे भी सहज ही खोला और बंद कर दिया।

मुरंगसे निकलकर हम दोनों एक मुन्दर मैदानमें आये। यहाँके हरयको देखकर मैं अवाक रह गया। चारों ओर मीलों ऊँची पहाड़ोंकी प्राचीरवाला और कोसों लम्बा-चौड़ा एक विशाल किला है। दीवारोंमें गुफाके समान मुन्दर स्थान बने हैं। जिनमें बड़े-बड़ डील-डौलके महात्मालोग समाधि लगाये बैठे हैं। चारों ओर फल और पुष्पोंसे लदी हुई लताएँ और वृक्ष मुशोभित हैं। कहीं-कहीं झरनोंसे मोतियोंके समान खच्छ जल गिर रहा है। बहुत समयतक इन हस्योंको देखकर मैंने बहुचारीजीसे-प्रश्न किया— 'भगवन।

यह कौन-सा स्थान है ?' ब्रह्मचारीजीने उत्तर दिया कि प्र अर्जुनका बनवाया हुआ किला है। व्यासजीके आज्ञानुसार अर्जुन यहीं तप करनेके लिये आये थे।'

महाभारतके समयके सिद्धोंका दर्शन

फिर ब्रह्मचारीजीने कहा—'येजो गुफाओंमें महासाओं तुम देखते हो, ये महाभारतके समयके हैं। तबसे अबतक इनकी समाधि नहीं खुली।' मैंने ब्रह्मचारीजीसे उस सिद्धा-श्रममें रहनेकी अनुमति माँगी। इसपर ब्रह्मचारीजीने कहा कि 'यह स्थान केवल सिद्धजनोंके रहनेका है। यहाँ कल्यिएक का उत्पन्न हुआ मनुष्य नहीं रह सकता। यह स्थान मल-पृत्रत्यागनेका नहीं है। यदि दिनमें यहाँ कोई साधारण बन हठात् रह भी जाय तो रात्रिमें वह उठाकर उसी स्थानप पहुँचा दिया जाता है जहाँका वह होता है। इसल्ये इस मिथ्या मनोरथको छोड़कर मेरे साथ चले। वहां वटके नीचे तुझे पहुँचा आऊँ' ऐसे कहकर मुझे फिर उसी सुरंग-मार्गसे निकालकर वे बड़के नीचे पहुँचा गये। मैं पूर्ववत् वहीं श्रीरामन्त्रका जाप करने लगा। इस प्रकार कुछ समय और व्यतीत हुआ।

अद्भुत दिन्य प्रकाशका दर्शन

एक दिन रात्रिके समय बैठा हुआ मैं श्रीराम-मन्त्रका जप कर रहा था, मेरे नेत्र खुले थे। अचानक एक वड़ दिन्य प्रकाश सामने आया । अनेक गैसोंका प्रकाश उसकी तुलना नहीं कर सकता था। उस प्रकाशके मध्यमें आकृति भी अवस्य थी; परंतु प्रकाशकी चकाचौंधके कारण मेरी दृष्टिमें बँध न सकी । कुछ क्षणोंके पश्चात् वह दिव्य प्रकार अन्तर्घान हो गया। मैं वड़ा व्यग्र हुआ। बार-बार गद्गदकण्ठसे रामको पुकारकर कहने लगा—'सरकार ! इस प्रकारके दर्शनोंसे मेरे हृद्यको शान्ति नहीं हुई। मैं स प्रकार नहीं मान्ँगा । यदि कुपाकर दर्शन देने हैं तो सप्रस्पन सम्मुख आइये। 'परंतु मेरा प्रारब्ध ऐसा कहाँ था! फिर कभी वैसे प्रकाशके भी दर्शन न हुए। इसके पश्चात् एक दिन ब्रह्मचारीजीने आकर मुझे आग्रह करके देश हों आनेके लिये विवश किया | मुझे आना पड़ा; परंतु मेरा हुइर मन लगता नहीं, कुछ समय अध्यात्मशास्त्रींका अध्यक्त कर फिर वहीं चला जाऊँगा। यह कहकर उस समय आप चप हो गये।

कि ध्यह

शानुसार

त्माओंको

अवतक

त सिद्धाः

नि कहा

कलियुग-

मल-मूत्र

रण जन

स्थानपर

लिये इस

। वहीं

फेर उसी

गये । मैं

नार कुछ

1-मन्त्रका

क वड़ा

उसकी

आकृति

रण मेरी

प्रकाश

बार-बार

र ! इस

में इस

स्पष्टरूपमें

19 麻

त् एक

रा लौट

रा इधर

羽取

य आप

पुज्य श्रीरामसेवकजी (श्रीस्वामी च्योतिःप्रकाशाश्रमजी) से इस सिद्धाश्रमके वर्णनको सुनकर मेरे हृदयमें वड़ी शान्ति हुई। इसके पूर्व एक-दो महात्माओं के मुखसे मैंने रामसेवकजी-के विषयमें कुछ अद्भुत वातें सुनी थीं। उस दिन स्वयं उनके श्रीमखसे उनकी पर्वत-यात्राका रोचक और पावन वर्णन सनकर मैंने अपनेको धन्य समझा।

इसके बाद स्वर्गीय श्रोत्रिय श्रीभगवानदत्त शास्त्रीजी लिखते हैं---

रामसेवकजीका मेरा बहुत दिनोंतक सहवास रहा है। समय-समयपर उनकी देशयात्राओंके विचित्र वर्णन भी उनसे मुननेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे मेरे स्थान विजनौरमें भगवान् भवनमें भी बहुत रहे हैं। इसके पश्चात् जब मैं विहारी संस्क्वतिविद्यालय चाँदपुर (विजनौर) में मुख्याध्यापक होकर रहने लगा था, तव वे चाँदपुर भी महीनोंतक मेरे सानपर रहे हैं। मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि 'स्वामीजी! जब आप फिर सिद्धाश्रम जायँ तो किसी सिद्धयोगीसे सूर्यादि दिव्यलोकोंका यथावत् वर्णन ज्ञात करके मुझे सुनानेकी अवस्य हुपा करना । १ इसके अनन्तर कुछ समय पश्चात् रामसेवकजी एंयास लेकर नैपालसे वाराहक्षेत्र होते हुए उक्त सिद्धाश्रमको फिर दुवारा गये थे।

स्वामीजीकी अवधूतावस्या

पूच्य श्रोत्रिय पं० श्रीभगवानदत्त शास्त्रीजी महाराजने ^{फूर्यपाद} प्रातःस्मरणीय श्रीस्वामी श्रीश्रीन्योतिःप्रकाशाश्रमजी ^{महाराजके} सम्बन्धकी अन्तिम अवधृतावस्थाका वर्णन इस मकार किया है-

बहुत दिनोंतक पूच्यपाद श्रीस्वामी च्योतिः प्रकाशाश्रमजी महाराजके दर्शन नहीं हुए और न यह पता लगा कि वे इस ^{प्रमय} कहाँ हैं। मैं संवत् १९९० के फाल्गुन मासमें श्रीकाशीजी गया । जब स्वामीजी ब्रह्मचर्याश्रममें थे, तबसे ही क्हुधा वे वहाँ चौसट्टी घाटपर ठहरा करते थे। अतः उनका ता जाननेक़े लिये मैं उस घाटपर गया। वहाँ श्रीखामी ^{श्रीओं}काराश्रमजी रहते थे, जो स्वामीजीकी पर्वतयात्रासे पितित ये । मैंने उनसे श्रीस्वामी च्योतिः प्रकाशाश्रमजी ^{म्हाराज}की स्थितिके सम्बन्धमें पूछा । इसके उत्तरमें उन्होंने षो वताया वह च्यों-का-त्यों इस प्रकार है---

श्रीखामी ओंकाराश्रमजी महाराज कहने लगे कि लगभग दो-तीन वर्ष हुए एक दिन इसी चौसट्टी वाटपर पैड़ियोंपर मैंने एक कौपीनधारी महात्माको खड़े देखा। उनके सिरपर जटाएँ थीं । मैंने उन्हें पहिचाना, वे न्योतिः प्रकाशाश्रमजी महाराज ही थे। मैंने उनसे कहा 'चलो ऊपर कुटीमें विश्राम करना ।' यह सुनकर उन्होंने मस्तक झुकाकर मुझे नमोनारायण किया, परंतु वोले कुछ नहीं। पुनः उसी प्रकार आनन्दमें मम हो गये । उनकी इस अवधृतावस्थाको देखकर मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई। उनसे कुछ खानेको कहा, परंतु वे कुछ न बोले। मैंने अपने शिष्यद्वारा दूध मँगवाकर उनके मुखसे लगवाया, वे केवल एक घूँट भरकर अस्सीवाटकी ओर चले गये।

एक दिन वे फिर पैड़ियोंपर खड़े देखे गये। उनके सारे शरीरपर गारा लगा हुआ था। मैंने दो विद्यार्थियोंके हाथों उन्हें मलकर स्नान करवाया। उन्हें शरीरकी कुछ सुध न थी और हर समय ब्रह्मानन्दमें अखण्ड समाधि-सी छगी दीखती थी । खाना-पीना आदि व्यवहार छूटा-सा प्रतीत होता था। उनसे विश्राम करने तथा भोजन करनेको कहा गया; परंतु उन्हें कुछ सुध नथी। विना कुछ कहे-सुने वे एक ओरको चले गये। इसके पश्चात् उन्हें हमने फिर कभी नहीं देखा।

श्रीखामी ओंकाराश्रमजी महाराजसे पूच्य श्रीखामीजीके सम्बन्धमें यह अलौकिक समाचार सुनकर मैं शास्त्री दिवाकर-जीको लेकर चित्रकूट आदि स्थानोंमें गया; परंतु उनकी खोज न मिली। निराश में अपने घर विजनौर लौट आया। खामीजीके जीवनकी घटनाएँ वड़ी अलैकिक और मनोरञ्जक हैं।

पूज्य स्वामीजी महाराज स्वयं भी वड़े योगी थे; परंतु समाधि लगानेके लिये उत्तराखण्ड ही उपयुक्त स्थान है इसलिये इधर वे कम समाधिस्थ होते थे। एक दिन वे मेरे स्थानपर ठहरे थे। मैं चाँदपुर था। मेरा भतीजा प्रिय श्रोत्रिय मुरारीलाल घरपर था। एक दिन रात्रिमें स्वामीजी समाधिस्थ हो गये। उनकी दशा देखकर वह तो भयभीत हो गया । तीन दिन और चार रात्रि बीतनेपर उन्होंने अपनी समाधि खोली थी। पूज्य स्वामीजी महाराज बड़े ही प्रसन्न-चित्त, सत्य और मितभाषी थे। उनके दर्शनमात्रसे दृदयमें शान्ति हो जाती थी।

भारतके तीन अमृल्य रत !

[राजिष पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० नरदेव शास्त्री और लाला हरदेवसहायजी]

(लेखक—अद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

अद्यैव हसितं गीतं कथितं वै सुभाषितम् । अद्येव ते न दर्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम् ॥%

इस अनित्य विनाशयुक्त परिवर्तनशील संसारमें न जाने नित्य कितने जीव उत्पन्न होते हैं, कितने मरते हैं, इसकी कोई गणना नहीं । संसारमें सौ-दो सौ वर्ष पूर्वके शायद ही कोई पुरुष होंगे, किंतु फिर भी ग्राम, नगर नर-नारियोंसे भरे पड़े हैं। इतने जीव कहाँसे आ जाते हैं, कहाँ चले जाते हैं। गङ्गाजीमें दस-वीस वर्षकी कौन कहे, दस क्षण पहिले जो जल था वह न जाने कहाँ चला गया, फिर भी गङ्गाजी जलसे रहित नहीं, वह निरन्तर जलको बहाती रहती हैं। बरसात-में गङ्गा-जमुनाके जलको देखकर आँखें फट जाती हैं, समुद्र-का-सा दृश्य दीखता है, अब जाने वह जल कहाँ चला गया ? इतना जल कहाँसे आता है, कहाँ चला जाता है कुछ पता नहीं।

जिसने शरीर धारण किया है, उसे मरना ही होगा। जिस पके अन्नको प्रातः बनाकर रख दो, शामको ही जो सड़ जाता है, गन्धाने लगता है। उसी अन्नादिसे बना शरीर कै दिन रह सकता है। जिस शरीरमें नौ छिद्र हैं और जो केवल प्राणवायुसे ही जीवित प्रतीत होता है, न जाने कव किस छिद्रसे प्राणवायु निकल जाय। मरनेमें कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो इसीमें है कि इतने छिद्रोंवाले शरीररूप घटमें पानीरूपी प्राणवायु ठहरी हुई है। शरीर तो जन्मते ही मरते रहते हैं। किंतु उनमें स्थित सद्गुण ही एकमात्र शेष रह जाते हैं, सत्कर्म ही शेष रह जाते हैं, स्वधर्म ही कहनेको रह जाता है और कीर्ति ही मरनेपर भी प्राणीको जीवित बनाये रखती है। 'कीर्तिर्यस्य स जीवित'। ऐसे कीर्तिमान पुरुषोंके ही गुण गान किये जाते हैं, उनके ही यशोगानसे अन्तःकरण विद्युद्ध होता है। अभी-अभी ऐसे ही भारत-माताके तीन सपूत अपने इहलैकिक शरीरको त्यागकर परलोक-

* आज ही जो हँस रहे थे, गीत गा रहे थे, सुन्दर-सुन्दर मनोहर वातें कर रहे थे, आज ही वे दिखायी नहीं देते । न जाने कहाँ विलीन हो गये। हा, बड़े कप्टकी बात है, कालकी यह कैसी क्रतम कीड़ा है !

वासी वन गये। मेरे साथ इन तीनोंका ही घनिष्ठ सम्बन्ध था । वे मेरे अपने सगे सम्बन्धी सुहृद् तथा आत्मीयजन वे। वे थे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ और लाला हरदेवसहायजी। इन तीनोंकी 'कल्याण' परिवारसे घनिष्ठता थी। टंडनजी तो बहुत ही कम लिखते थे, शास्त्रीजी तथा लालाजीके लेख बरावर 'कल्याण' में छपते रहते थे, अतः इन तीनोंको ही 'कल्याण'के माध्यमसे मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करना चाहता हैं।

अ

आ

माल

क्यों

लात

भेंक

वे व

साथ

उन

धर्म

ये र्त

इस

राष्ट्र

खरा

अहिं

देशव

मलय

उसे

गुजर

प्रत्येक राष्ट्रकी राष्ट्रीयता चार वातोंपर अवलिमत है-देश, जाति, भाषा और प्रतीक । समस्त राष्ट्र अपने राष्ट्रको जीवित और समुन्नत बनानेके लिये इन चारोंकी ही अभिवृद्धि के लिये सतत प्रयत करते रहते हैं। जो क्षुद्र हैं, वे अपनी राष्ट्रीयताकी अभिवृद्धिके लिये दूसरे राष्ट्रोंका विनाश करते हैं, किंतु जो महान् हैं, वे अपनी राष्ट्रीयतासे अन्य राष्ट्रीका पालन-पोषण करते हैं। जैसे अंग्रेजोंका देश इंगलिस्तान है उनकी जाति अंगरेज है, भाषा अंगरेजी है और उनका जातीय प्रतीक : : है । इसी प्रकार हमारा देश आर्यावर्त या भारत है, हम सब भारतवासी भारतीय या हिंदू हैं। हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है और गौ हमारे देशका प्रतीक है। हमारे यहाँ कोई ऐसा विषय नहीं, जिसको हमने धर्मके अन्तर्गत न माना हो । दूसरे शब्दोंमें, हम धर्मके अतिरिक्त किसीको मानते नहीं। जो धार्मिक न होगा वह देशमकः राष्ट्रसेवक हो ही नहीं सकता। इसीलिये हमारे यहाँ राजाकी अपेक्षा धार्मिक महापुरुषोंकी, संत-महात्माओंकी तथा भूषि मुनियोंकी मान्यता अधिक है। राजा भी हमारे यहाँ वही मान्य होता है जो राजाके साथ ऋषि भी हो — जैसे राजारि जनक । गांधीजी महात्मा होकर ही जनताके आदर-भाजन बन सके। धार्मिक होनेसे ही तिलक लोकमान्य तथा मालवीयजी महामना हुए। इसी प्रकार ये तीनों महानुभाव देशभूत होनेके साथ ही धार्मिकतासे ओतप्रोत थे। ये विग्रह भारतीयताके पोषक तथा अपने-अपने विषयके कर्मह तथा सची लगनवाले थे। अत्यन्त संक्षेपमें ही इन तीनोंके सम्बन्ध

के कुछ संस्मरण इम यहाँ लिखते हैं। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

1

रसे

ष्ट्रको

द्धि

पनी

इरते

शेंका

है

नका

र्गवर्त

F E,

ह है।

वर्मके

रिक्त

मक्त

जाकी

程ष-

वहीं

্যসি

माजन

वियर्जी

THM

गुड

तथा

ब्राच-

(१) राजिं पुरुषोत्तमदासजी टंडन

टंडनजी-जैसा व्यक्ति राजनीतिक नेताओं में मिलना कठिन ही नहीं, असम्भव है । वे तो संत-परम्पराके महापुरुष थे । ऐसे पुरुष सर्वत्र नहीं होते, सदा नहीं होते । शताब्दियों में कहीं-कहीं ऐसे पुरुषरत्न होते हैं । 'भारतरत्न'की उपाधि उन्हीं के लिये चिरतार्थ होती है । वे सत्य, अहिंसा, चिरत्र, नैतिकता तथा भारतीय संस्कृतिके मूर्धन्य प्रतीक थे । आजसे लगभग ८० वर्ष पूर्व उनका जन्म प्रयागके एक टंडन खत्री परिवारमें हुआ । वे प्रायः कहा करते थे टंडन शब्द मार्तण्ड-का अपभ्रंश है, हमलोग सूर्यवंशी हैं ।

वे एक लब्धप्रतिष्ठ वकील थे। महामना मालवीयजीके अनुयायी, उनके अनन्य भक्त तथा शिष्य थे। अनेक वार्तोमें मतभेद होनेपर भी वे हृदयसे उनका बहुत ही अधिक आदर करते थे। मुझसे उनका अत्यन्त ही स्नेह था।

वे मुझे अपनी सब बातें हृदय खोलकर बताते थे। कहते ये ''एक बार चित्रकूटके कुछ लोग मालवीयजीके पास आये और कहने लगे—'महाराज! हमारे यहाँ गोवध होता है।' मालवीयजीने मुझे वहाँ भेजा । मैं गया । मैंने पूछा-- भौको क्यों मारते हो ! उन दिनों गोमांसको मुसल्मान भी नहीं लाते थे। चमड़ेके लिये गोवध करते थे। मांसको तो वे फेंक भी देते थे। उसी दिन मैंने चमड़ेके जूते न पहिननेकी प्रतिज्ञा की ।' उस प्रतिज्ञाको उन्होंने जीवनभर निभाया । वे कांग्रेसके तो कर्मठ नेता, सबसे पुराने कार्यकर्ता थे ही। साथ ही हिंदु-सभा तथा हिंदीके भी उत्साही कार्यकर्ता थे। उन दिनों कांग्रेसके कार्यकर्ता होनेके लिये सत्य-अहिंसाको धर्म मानना, हिंदीको राष्ट्रभाषा मानकर उसका व्यवहार करना और गो-रक्षाको धर्म मानना परमावश्यक था। स्वराज्यके ये तीनों मुख्य अङ्ग थे। गांधीजीने अनुभव किया, जवतक इस देशके कार्यकर्ता धार्मिक न होंगे, हिंदीको सम्पूर्ण देशवासी राष्ट्रभाषा मानकर व्यवहार न करेंगे और गो-रक्षाको लराज्यसे भी अधिक महत्त्व न देंगे, तबतक देशकी उन्नति न होगी। इसीलिये उन्होंने अपने आन्दोलनको सत्य-अहिंसापर आधारित घोषित किया। वे जानते थे सम्पूर्ण देशकी भाषा एक ही हिंदी है। दक्षिणकी तेलगु, तामिळ, ^{मळ्}यालम और कन्नड़ ये ही भाषा भि**न्न हैं**। भि**न्न** भाषा उसे कहते हैं जो दुभाषियेके माध्यमसे समझी जाय । पंजाबी गुजराती, मराठी, बंगला, उद्गिया, सिंधी, पहादकी भिन्न

बोलियाँ—ये सब हिंदीके ही अन्तर्गत हैं। उत्तरप्रदेश और पंजाबके दो व्यक्ति मिलते हैं तो उन्हें दुभाषियेकी आवश्यकता नहीं होती। एक दूसरेकी बोली हिंदीके माध्यमसे समझ लेते हैं। हिंदी कहीं भी जनभाषा नहीं है। वह तो सबके माध्यमकी भाषा है। मथुरा, आगरा, एटा, मैनपुरी, अलीगढ़—इनकी जनभाषा ब्रजभाषा है, कहीं अवधी, कहीं बुन्देलखंडी, कहीं भोजपुरी बोलियाँ बोली जाती हैं। हमारे यहाँ कहावत है—

कोस कोस पै पानी बदले दस दस कोस पै बानी ॥

कलकत्तेमें बंगाली बंगला वोलते हैं; किंतु वहाँ सबसे अधिक बोलने और समझनेवाले हिंदीके हैं। प्रत्येक बंगाली उड़िया, गुजराती, मदरासी यहाँतक विदेशी भी हिंदीके माध्यमसे वातें करते हैं । सात समुद्र पारका अंग्रेज फ्रांसीसी चाहे वह कलकत्ता वन्दरगाहपर उतरे या मदासः विजगापट्टम अथवा बंवई कहीं भी उतरे। हम आटा है, इस जाटा है, हम सामान मॉॅंगटा है। ऐसी हिंदीमें ही कुलियोंसे तथा अंग्रेजी न जाननेवालोंसे 'वातें करैगा। इसलिये उत्तर-भारतमें तो हिंदी राष्ट्रभाषाकी भाँति सैकड़ों वर्षोंसे व्यवद्धत होती है। अतः गांधीजीने उत्तरमें हिंदीका प्रचार न करके दक्षिणसे ही आरम्भ किया। अपने पुत्र देवीदास गांधीको, स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजकको दक्षिणमें ही हिंदी-प्रचारके लिये भेजा । उनमें एक गुजराती बोली बोलनेवाले, दूसरे पंजाबी बोलनेवाले थे। और दक्षिणके लोगोंने किसी लोभ-लालचसे नहीं, पद-प्रतिष्ठाके लिये नहीं—धर्म समझकर ही भावात्मक एकताके वशीभूत होकर ही हिंदी सीखी। इसीका यह परिणाम है कि १५० वर्षके अंग्रेजी शासनमें जहाँ दक्षिणमें कठिनतासे दो प्रतिशत अंग्रेजी समझनेवाले होंगे, वहाँ हिंदी समझनेवाले ३०-४० प्रतिशत हैं। मैं तो अनेकों बार दक्षिण जाता हूँ, हिंदी सीखनेका जितना उत्साह दक्षिणमें है उतना कहीं भी नहीं। मेरे 'भागवतचरित'की छपयोंको तेलगु-तामिळवाली माताएँ जितने ताल-खरसे गाती हैं, उतना स्वारस्य दूसरे देशोंमें दुर्लभ है।

टंडनजीः सत्य-अहिंसामूलक भारतीय संस्कृतिः, राष्ट्रभाषा-प्रचार और गो-रक्षा—इन तीनोंके प्रवल समर्थकः, महान् प्रचारक और अपने जीवनमें उसे पालनेवाले थे। वे स्वतन्त्रता-संप्राममें सात बार जेल गये। हिंदीके प्रचारमें तो उन्होंने अपना समस्त जीवन ही लगा दिया। मुझे आपके सर्वप्रथम दर्शन सन् १९ या २० में आगरेके प्रान्तीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Ħ

कह

किंद

अनु

नहीं

तो

चाइ

उन्हें

मुर्गी,

तनिव

दीलद

सामा

सुअरे

अत्यन

पड़े घे

बोले-

नेसे वि

रोता

हो ।

अहिंस

को खा

बात है

हो, सा

^सहनमं

इए च

स्ती

भाश्रम

उवाद्य

मतिष्ठित

राजनीतिक सम्मेलनमें हुए। फिर तो हम लखनऊ जेलमें साथ-ही-साथ रहे। वे आज-कलके राजनीतिक नेताओं की माँति न तो हिंदू शब्दसे घृणा ही करते थे और न धर्मके नामसे मुँह ही विगाइते थे। वे हिंदू-हितों के प्रवल समर्थक तथा भारतीय संस्कृति अथवा हिंदू-धर्मके समर्थक, उपासक तथा प्रशंसक थे। इनकी उन्नतिके लिये सतत प्रयत्नशील रहते थे। हिंदीको राष्ट्रभाषाके रूपमें विधानमें स्वीकार करानेमें उन्होंका सबसे अधिक हाथ था। उसके लिये वे अथक परिश्रम करते रहे और अन्त समयमें भी हिंदी-हितोंका चिन्तन करते-करते ही उन्होंने अपने पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग किया।

नैतिकतामें तो वे अपने समान स्वयं ही ये । जब अजादि समस्त वस्तुओंपर नियन्त्रण (कंट्रोल) था और खाद्यपदार्थ नियमित परिणाम (कंट्रोल) से मिलते थे। तब एक वे ही थे जो सचाईसे उसका पालन करते थे। कई बार ऐसा प्रसङ्ग आया कि घरमें अज्ञका दाना नहीं। चोरबाजारी (ब्लैक) से न मँगानेकी उनकी कठोरतम आज्ञा थी। वे भूखे ही रह जाते, या दाल पीकर उबले आल्र् खाकर ही रह जाते। उन्होंने मुझे स्वयं बताया कि एक दिन मेरा नौकर चार पैसेका गुड़ या चना नियन्त्रणके नियमोंके विरुद्ध ले आया। पीछे मुझे पता चला। उन दिनों यह विभाग श्रीमुंशीजीके अधीन था। मैं स्वयं मुंशीके पास गया और कहा—'भाई! मेरा आदमी भूलसे नियन्त्रणके विरुद्ध ले आया, मुझे दण्ड दीजिये।'

तब मुंशीजीने हँसकर कहा—'अरे टंडनजी ! आपकी तो खफ्त सवार रहता है। अजी, ऐसा तो होता ही है। हम सभी छोग नियमके विरुद्ध अन्नादि मँगाते ही हैं।

सो वे कहते थे कि ऐसे तो हमारे यहाँके खाद्य-मन्त्रियोंके विचार हैं।

सचमुचमें वे नियमपालनकी हद कर डालते थे । कभी ऐसे किसी कागजपर हस्ताक्षर नहीं करते थे, जिसे वे पूरा पढ़ न लें । उसमें कोई उनके नियमके विरुद्ध बात न हो । कभी-कभी तो हमलोग भी उनकी ऐसी सजग नैतिकतापर छुँझला उठते थे । कहते थे—बाबूजी ! आप तो शकी हैं । वे कहते—भाई ! मेरे अपने निजी कुछ नियम उसूल हैं, उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता ।

प्रतिवर्ष वे कुछ नियमित द्रव्य रैलवेको भेजते थे,

इसिलिये कि यात्रामें कहीं भूलसे नियमसे अधिक सामान भी न चला गया हो। प्रयाग और आगरा नगरपालिकाओं को वार्षिक नियमित कुछ द्रव्य भेजते थे, ऐसा न हो कि भूलसे कुछ वस्तुएँ मेरे साथ चली गयी हों, जिनपर नगरपालिका-का कर लगता हो और मैं उसे विना दिये ले गया हूँ। विना माँगे इन्कमटैक्सके रूपये भेजा करते थे और न लेनेपर डाँटते थे। उन्हें पता चल जाय कोई कार्य नियमविरुद्ध हो गया है तो कितनी भी हानि क्यों न उठानी पड़े, उसका संशोधन कराके ही वे संतोषकी साँस लेते थे।

उन्होंने जीवन भर दूध, दूध से बनी जितनी वस्तुएँ, दही, मक्खन, मठा आदि नहीं खायी । शहद नहीं खाते थे, चमड़ेका व्यवहार नहीं करते। जिसमें भी उन्हें हिंसाकी गन्ध आ जाय उसे ही वे त्याग देते थे। जब वे अखस रहने लगे तो मेरे अत्यन्त आग्रहपर यहाँ झूँ सी आश्रममें वे आकर डेढ़ महीनेके लगभग रहे। बहुत आग्रह करनेपर गो-दूध, धी तथा शहद आदि ओषिक रूपमें लेने लगे थे।

वे त्यागकी तो मूर्ति थे। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रही। निजी व्ययके मामलेमें वे सदा चिन्तित ही रहते थे, किंतु पद-प्रतिष्ठा या धनके लोभसे वे अपने सिद्धान्ति तिनक भी हटनेके लिये तैयार नहीं थे। कांग्रेसके अध्यक्षके सर्वोत्तम सम्मानको उन्होंने, सिद्धान्तके ऊपर ही त्या दिया। वे जानते थे, समझते थे कि मेरे साथ अन्याय हो रहा है। नेहरूजीकी माँगें अनुचित, असंवैधानिक तथा मनमानी हैं— फिर भी उन्होंने तुरंत त्यागपत्र दे दिया। नेहरूजीसे इतना भारी मतमेद होनेपर भी वे हृदयसे उनका अन्त समयतक सम्मान करते रहे। उन्होंने अपने त्यागपत्रमें स्पष्ट कह दिया 'श्रीनेहरूका रुख असंवैधानिक है, फिर भी वे राष्ट्रके प्रतीक हैं। वे यदि समितिमें न रहेंगे तो रह ही क्या जायगा। इसि लिये मैं अपने पदसे त्यागपत्र देता हूँ।' वे अध्यक्षपरसे लिये मैं अपने पदसे त्यागपत्र देता हूँ।' वे अध्यक्षपरसे प्रथक् हो गये और नेहरूजी कांग्रेसके अध्यक्ष बन गये।

मेरे चुनावमें कुछ लोगोंने हला उड़ा दिया-'ब्रह्मचारीजी-को टंडनजीने ही खड़ा किया है।' किंतु में इस बातकी सत्यतापूर्वक कहता हूँ कि टंडनजीने मुझे खड़ा होनेकों कमी नहीं कहा। यही नहीं, वे हँसकर यह भी कह देते वे ध्यह दाई। नहीं कहा। यही नहीं, वे हँसकर यह भी कह देते वे ध्यह दाई। चुनावमें खड़े होनेपर शोभा नहीं देती।' किंतु किर भी वे यह हृदयसे चाहते थे मैं एक बार जीत जाऊँ। जब मैं खड़ी हो गया तो वे मेरे पास आश्रमपर आये और बीठे-Kangri Collection Hardware

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

8

को

उसे

1

पर

का

įψ,

गते

ाकी

वस्थ

नेपर

थे।

च्छी

हिते

न्तसे

क्षके

याग

रहा

ग्रानी

तना

तक

देया

तीक

इस-

दसे

जी-

तको

हमी

ाढ़ी

यह

ड़ा

भाहाराज ! मैं क्या सुन रहा हूँ आप चुनाव लड़ेंगे !' मैंने कहा- हाँ बाबूजी, खड़ा तो हो ही गया हूँ । अब आप कहें तो बैठ जाऊँ।

तव आप बोले- 'बैठनेको तो अब आपसे कैसे कहूँ किंत यह काम आपकी दाड़ीके, आपकी पद-प्रतिष्ठाके अनुकूल नहीं । फिर भी मुझे आपके जीतनेमें कोई संदेह नहीं है। जब आप करताल लेकर गाँवोंमें निकल पड़ेंगे तो आपको हराना कठिन है।' वे हृदयसे अवश्य यह चाहते ये मैं एक बार जीत जाऊँ।

वे इस शासनसे हृदयसे अत्यन्त ही असंतुष्ट थे। उन्हें इस शासनकी गोहत्याकी नीति, मांसको बढ़ावा देना, मुर्गी, अंडा, सूअरोंका पालन, मछली खानेका प्रचार आदि तिनक भी पसंद नहीं था । राष्ट्रभाषाके प्रति शासनकी ढीलढालसे वे बड़े दुखी रहते थे। एक दिन जब उन्होंने पढ़ा—करोड़ों रुपयोंके मुर्गी पालने, मछली मारने, वध करनेके सामान-मशीन विदेशसे आ रहे हैं। हमारी सरकार स्अरों, मछिलयों, मुर्गोपर करोड़ों रुपये खर्च कर रही है तो वे अत्यन्त उद्विम-से हो उठे । शरीर अस्वस्थ था, चारपाईपर पहें थे। मेरे साथ पं० रामकृष्ण शास्त्री भी बैठे थे। आप बोले—'आपलोग इतने पुराण पढ़ते हैं। आजके शासन-जैसे किसी शासनका आपके पुराणोंमें उल्लेख है ?'

शास्त्रीजीने कहा- 'हाँ, पुराणों में बेनके राज्यमें यही सब रोता था।

आप चारपाईसे उछल पड़े और वोले-तुम ठीक कहते है। आजकळका शासन वेनका-सा ही शासन है। इस ^{अहिं}साप्रिय देशमें मांस, मुर्गा, अंडा, स्अर और मछळियों-भी लानेका प्रचार सरकारकी ओरसे हो ? कितने दुःखकी

आप इतने सरल थे कि दूसरा कोई जो इन्हें जानता न हीं साधारण आदमी समझता। भोजनमें, वस्त्रमें, रहन-हिनमें वे इतने सादे ये कि आश्चर्य होता है। पानीमें फुलाये हुए चने, उवाले हुए आद्, पके केले और विना धीकी रती रोटी तथा उवाला साग यही उनका आहार था। भाश्रममें जब आते तो कहते—'अपने आश्रमका ही साग खालकर मुझे दो।'

क्यड़ोंके लिये ऐसी मितव्ययता मैंने शायद ही किसी

जाँघिया पहिने नंगे ही रहते । ऋहीं जाते तो कुर्ता पहिन जाते । एक कुर्ता उनका दसों वर्ष चलता । पहिले एक खादीका कोट था, में समझता हूँ वह वीसों वर्षसे अधिक चला होगा । एक धोतीको पाँच-सात वर्ष अवस्य चलाते । बीचमें फट जाती तो फाइकर दो ओरसे सी छेते। जब एकदम जीर्ण-शीर्ण हो जाती तो उसके रूमाल बना छेते। रूमाल भी फट जाते तो उन्हें और कार्मोमें छेते। लहरका एक चिथड़ा भी वे व्यर्थ नहीं जाने देते।

निर्लोभ इतने कि अन्यायसे एक पैसा भी वे टेना नहीं चाहते । देनेमें उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती । मुक्तहस्तसे वे देते ही रहते । लाखों—करोड़ों रुपये उन्होंने विभिन्न संस्याओं, विभिन्न व्यक्तियोंको बाँटे होंगे।

एक दिन शामको चुपकेसे वे मेरे पास अकेले ही आये और मेरी कुटिया-कुटिया इलते-इलते बोले-आपते एक बात पूछने आया हूँ । यह कहकर जेवसे भारत सरकारका एक पत्र निकाला और बोले-सरकार मुझे उड़ीसाका राज्यगल वनाना चाहती है। मुझसे तुरंत उत्तर माँगा है। आपकी क्या सम्मति है ! मैंने इँसते हुए कहा— 'हाँ, हाँ, वाबूजी ! अवस्य वन जाइये। अच्छा है कुछ तो मुख भोगिये । हमलोग भी कभी जगन्नाथजी आयेंगे तो राज्यपाल-के भवनमें आनन्द करेंगे।

वे वोले—नहीं, ऐसी वात तो नहीं है। मैं सोचता हूँ इसके द्वारा मैं गोरक्षा या हिंदीका कुछ काम कर सकूँ तो अच्छा ही है।

मैंने कहा-ठीक है। अवतक हम समझते ये कि कांग्रेसियोंमें भी इमारा कोई हितेंथी है, हमारे कार्मोंमें सहयोग देनेवाला है। अब आप भी राज्यगल बनकर हमारे हाथसे निकल जाओगे।

तव वे चौंककर बोले-तव तुम क्यों कहते हो बन जाओ राज्यपाल ।

मैंने कहा-मैंने तो आपका रुख देखकर कह दिया। नहीं वाबूजी ! राज्यपाल वनकर न आप हिंदीकी सेवा कर सर्केंगे न गोरक्षा । आप तो उस शासन-यन्त्रके एक कल-पुर्जे वन जायगे।

वे चुपचाप चले गये। सरकारको उन्होंने मना लिख विष्ठित व्यक्तिके यहाँ देखी होगी। जहाँ रहते एक दिया। कितना भारी त्याग है। उन दिनों वे बड़े ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मंद

क्हा

दो

夏

प्रशं

लोग

उदर

नाम

कल्पि

अम

है, व

प्रत्यव

आतम

आर्थिक संकटमें थे। मोटर तो थी ही नहीं, रिक्सेके पैसोंका भी संकोच था। इसपर भी पाँच हजार रुपये मासिककी आय और इतनी भारी प्रतिष्ठापर लात मार देना कोई सामान्य बात नहीं है।

वे हिंदूजातिकी दुर्दशापर सदा दुखी रहते । वे देशके बँटवारेके सर्वथा विरुद्ध थे। गांधीजीसे उन्होंने खुलकर विरोध किया, किंतु भगवान्को और ही कुछ करना था । देशका विभाजन हो गया । देशका विभाजन होनेपर उनकी इच्छा थी जब विभाजन ही हुआ है तो सभी मुसल्मान पाकिस्तान चले जायँ और जो प्रसन्नतासे हिंदू होना चाहें वे हिंदू वन जायँ। वे पं० मूलचन्द्र मालवीयजीके साथ मेरे पास आये और बोले—'मुसल्मानोंको हिंदू बनाओगे ?' मैंने कहा- 'हम तो अवश्य बनायेंगे किंतु वे बनें तब न !' उन्होंने कहा-'वनेंगे क्यों नहीं। पहिले लगभग पाँच लाख मुसल्मान हिंदू बननेको तैयार थे । मैंने और स्वामी अद्धानन्दजीने प्रयत्न किया । किंतु तुम्हारे काशीके पण्डितोंने मना कर दिया।

मैंने कहा-कीजिये प्रयत मैं तो तैयार हूँ। तभी मैंने 'भारतीय संस्कृति और शुद्धि' नामक पुस्तक लिखी । एक 'भारतीय संस्कृति-समिति' की स्थापना की। उसका कुंभपर अधिवेशन भी किया । पीछे प्रतीत होता है कांग्रेसियोंने, नेहरूजीने इसका विरोध किया होगा। वे कुछ ढीलेढाले भी थे। पीछे उन्होंने इस प्रश्नको उठाया ही नहीं। समिति नाममात्रको बनी रही । कभी-कभी उसका वार्षिक अधिवेशन कर लेते थे। नामको तो वह अब भी है किंत उसमें कुछ सार नहीं । सार्वजनिक रूपसे शुद्धिवाला प्रश्न उन्होंने फिर उठाया ही नहीं।

वे नेहरू-सरकारसे यद्यपि मन-ही-मन बहुत असंतुष्ट ये, किंत इतने संकोची और ढीलेढाले थे कि वे खुलकर अपने साथियोंका विरोध करनेको तैयार न थे। एक वार मैंने बहुत प्रयत किये। श्रीगोलवलकर गुरुजीको भी लाया, उन्हें भी झँसी बुलाया। कुछ और भी लोग बुलाये और मुझाव रक्खा। हिंदु-सभा, जनसंघ, रामराजपरिषद् ये सब मिलकर कोई हिंद-हितोंवाली एक ही प्रवल संस्था बनायी जाय । उनका आग्रह था, इन तीनोंको तोड़ दो, कोई नयी बनाओ । फिर बात कुछ बनी नहीं । वे कांग्रेसका खुलकर विरोध करनेको तैयार काम किया, उनका ऐसे खुलक्तु कुँसे किरोजिट कुर्दें को अपने साथ थे। भाईजीने साफ इनकार कर दिया। भ जा किया, उनका ऐसे खुलक्तु कुँसे किरोजिट कुर्दें के साथ अपने साथ अपने साथ किया, उनका ऐसे खुलक्तु कुँसे किरोजिट कुर्दें के साथ अपने साथ अप

यद्यपि नेहरूजीके कार्योंसे उन्हें हार्दिक विरोध और दुःख था। फिर भी उनके प्रति उनमें आदर और स्नेह ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। दूसरे महाचुनावमें एक दिन मैं उनके पास गया और मैंने कहा—'वाबूजी ! यदि आप नेहरूजीके विरुद्ध खड़े हो जायँ तो हम सब प्रकारसे कार्य करनेको तैयार हैं। यह सुनकर वे क्रोधमें भर गये। इतना क्रोधित होते मैंने उन्हें कभी नहीं देखा। बोले—'आपने मुझे समझा नहीं । मैं अपने जीवनमें नेहरूका विरोध कभी नहीं कर सकता ।' वीमार थे इसलिये मैंने एक भी शब्द नहीं कहा, चुपचाप उठकर चला आया।

वे विरोध करनेमें किसीकी भी परवा नहीं करते थे, गोरक्षाके प्रस्तावपर उन्होंने कांग्रेसी आदेशका खुलमखुला विरोध किया। दलके अनुशासनको नहीं माना और अन्तर्मे कांग्रेससे त्याग-पत्र देनेको तैयार हो गये। नेहरूजीने जैसे-तैसे उन्हें मनाया । तिब्बतके मामलेपर भरी लोकसभारे उन्होंने नेहरूजीसे कहा-'तुम इन चीनी गुंडोंके हाथमें तिन्त जैसे स्वतन्त्र देशको क्यों दे रहे हो !' तब हिंदी-चीनी भाई-भाईका नारा लगता था। सबको यह बात बुरी लगी। सबने कहा--'गुंडे शब्दको वापिस लीजिये।' उन्होंने कहा—'जो निकल गया सो निकल गया अब उसे वापिस क्या लें।' पीछे लोगोंने अनुभव किया टंडनजी ठीक ही कहते थे।

वे इतने भावुक और नम्न ये कि सदा अपने इष्ट-मित्री, परिचितों और आश्रितोंका आदर करते वे। लाल लाजपतरायके लोकसेवक-समाजके वे अध्यक्ष थे । विद्यापी^{ठके} निकले जितने लड़के थे—श्रीलालबहादुर शास्त्री, श्रीअलगूराय शास्त्री आदि, इन सबको उन्होंने आश्रय दिया, और बढ़ाया। वे सबको अपने बराबरका मानते। उन्हें सभापति बनाते, उनके सभापतित्वमें स्वयं खड़े होकर व्याख्यान देते। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे बड़ा स्नेह रखते, अपने भाई औ तरह मानते । मुझसे सदा पूछते रहते—पोद्दारजी तो नहीं आये। कब आयेंगे, वे आयें तो मुझे अवश्य बताना।

जय भाईजी तीर्थयात्रा रेलगाड़ीके प्रसंगमें प्रयाग आये तो संकीर्तनभवन झूँसीकी ओरसे उन्हें एक अभिनत्वनपत्र देनेका आयोजन था। टंडनजी ही उस समारोहके समापित थे । भाईजीने साफ इनकार कर दिया। मैं तो कभी उठक हुई व फिर व ऊपर भाई

> हुए भाईज करते ही नह करते

वड़े-ब नहीं ः करके करता करता देशमें

बताते पथ-प्र

पथको

ला

तमें

तेस

गर्मे

त-

1 1

होंने

पेस

त्रों,

गला

ठके

राय

ाया।

नातेः

ईजी

餔

नहीं

आये

नपत्र

गपति

कभी

कहा—'अच्छा नहीं छेते हैं तो वैसे ही पढ़कर सुना हो।' अभिनन्दनपत्र पढ़कर सुनाया गया। भाईजी खड़े हुए उन्होंने महाभारतका प्रसंग सुनाकर वताया कि अपनी प्रशंसा करना, सुनना आत्महत्याके तुल्य है। उन्होंने कहा—'छोग कहते हैं इतिहासमें हमारा नाम अमर रहेगा। माताके उदरमें शरीर बनता है। जन्मके बाद 'नाम' रक्खा जाता है। नाम कई बार बदले जाते हैं। अतः ये 'नाम'-'रूप' दोनों ही कित्यत हैं। आत्माका कोई नाम नहीं होता, किर किसका नाम अमर रहेगा। इस प्रकार जो 'नाम'को अमर बनाना चाहता है, वह शरीर एवं नामको ही अपना स्वरूप मानता है। यह प्रत्यक्ष अज्ञान है। सची अमरता है—भगवत्-शरणमें अथवा आत्मज्ञानमें।' आदि-आदि बहुत-सी वातें कहीं।

टंडनजी उनके भाषणको सुनकर भावविभोर हो गये। उठकर खड़े हुए और गद्गदकण्ठसे साश्रु नयनोंसे भरीयी हुई वाणीमें बोले—'भाईजी यद्यि अवस्थामें मुझसे छोटे हैं किर भी मैं उन्हें वड़ा ही मानता हूँ। उनके व्याख्यानका मेरे ऊपर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। मैं बहुत दिनोंसे जानता हूँ—'भाईजी संसारसे अलिप्त जीवन्मुक्त पुरुष हैं! जीवन्मुक्त हुए बिना ऐसे भाव तथा ऐसा जीवन नहीं हो सकता।' भाईजी बार-वार उनके चरणोंको नीचेसे दबाते हुए संकेत करते रहे—यह आप क्या कह रहे हैं, किंतु वे माने ही नहीं और बड़ी देरतक उनके व्याख्यानकी विशद व्याख्या करते हुए उनके प्रति अपना आभार प्रदर्शित करते रहे।

टंडनजीके अनेक गुण हैं। सभी संसारण लिखे जायँ तो वहे-वहें कई पोथे बन जायँ। इस अल्प स्थलमें वे सब लिखें नहीं जा सकते। अतः मैं इन कुछ ही शब्दोंमें उनका स्मरण करके उनके प्रति अपनी तथा भाईजीकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ और जगन्नियन्ता श्रीनन्दनन्दनके पादपद्मोंमें प्रार्थना करता हूँ कि टंडनजी-जैसे उचचित्र आदर्श व्यक्ति हमारे देशमें समय-समयपर प्रकटित होकर हमें जीवनका आदर्श काते रहें तथा सदाचार सिखाकर एवं स्वयं करके हमारा प्रमुदर्शन करते रहें।

पण्डित नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ

आजसे छः दशक पूर्व दक्षिणदेशसे चार किशोर उत्तरा-प्यको आये । वे चारों ही उत्तरप्रदेशके सुप्रसिद्ध देशभक्त,

हिंदीके सुळेखक और भारतीय जनताके परम श्रद्धा-भाजन वने । उनमें एक थे पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे, दूसरे श्री-वाबूराव विष्णु पराङ्कर । इन दोनोंने ही हिंदी सम्पादकोंमें शीर्धस्थान प्राप्त किया । तीसरे थे वरहजके परमहंस बावा राघवदासजी, जो पूर्वी उत्तरप्रदेशमें पूर्वी गान्धीके नामसे विख्यात थे। जिन्होंने कितनी ही दिक्षिण-संस्थाएँ वनायीं। गोरक्षा, स्वराच्य-प्राप्ति और हिंदी राष्ट्रभाषाके लिये कितना अत्यधिक कार्य किया । इसे कोई इतिहास-लेखक ही वता सकेगा और चौथे थे हमारे पं० नरदेव शास्त्रीजी। लगभग १४-१५ वर्षकी अवस्थामें वे इधर पढ़नेके लिये आये थे। ये पं० गंगादत्तजी शास्त्री (जो पीछे स्वामी गुद्धवोध-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुए) के साथ लाहौरसे गुरुकल काँगड़ीमें आये । स्वामीजीका महात्मा मंक्तीरामजी (जो पीछे स्वामी अद्धानन्दजीके नामसे विख्यात हुए) से कुछ मतभेद होनेपर आप दोनों च्वालापुर महाविद्यालयमें चले आये और लगभग ५० वर्षसे भी अधिक समयतक महा-विद्यालयकी सेवा करते रहे । उनके पढाये हुए सहस्रों विद्यार्थी आज शास्त्री, आचार्य, एम्. ए. तथा विभिन्न क्षेत्रीमें कार्य करते हुए विद्यमान हैं । शास्त्रीजी अत्यन्त सीधे-सादे तथा निरभिमानी ये । अपने विद्यार्थियोसे उन्होंने कभी गुरु-शिष्यका-सा व्यवहार नहीं किया। वे उनसे परस्परमें हँ सते-बोछते और मैत्रीपूर्ण ढंगसे वार्ते करते। पं० पद्मसिंहजी शर्मा, पं० नाथूरामजी शंकर शर्मा, पं० श्रीशंकरदत्तजी आदि आपके घनिष्ठ मित्रोंमें थे। वे अच्छे अध्यापक, शिष्यप्रिय आचार्य, हिंदीके स्लेखक, लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक, धाराप्रवाह बोलनेवाले वक्ता, शास्त्रार्थकर्ता, राजनीतिक नेता, उत्साही कर्मठ जनसेवक तथा सफल प्रशासक ये । त्यागकी तो वे मूर्ति ही थे। स्वामी गुद्धबोधतीर्थजीने आपके ही नामसे एक छात्रा-वासका नाम 'देवाश्रम' रख दिया था। उसमें ७-८ कोठरियाँ थीं। सबसे अन्तकी कोठरीमें वे रहते थे। उस कोठरीमें लोटा-बालटी, एक-दो चटाई, एक तख्त और २-४ खद्दरके कपड़े इतनी ही उनकी सम्पत्ति थी। रोटी वे भंडारसे जैसी भी रूखी-सूखी बनती थी, मँगा लेते थे। उन्होंने परम विरक्त साधुकी भाँति पूरा जीवन विता दिया । मैंने उनके जीवनमें कभी कोई परिवर्तन नहीं देखा । सभी परिस्थितियों में एकरस एक भाव । सदा इँसते रहना, सदा कहकहे लगाते

die

मा

थी

नह

संस

कई

दो

बन

प्रय

हुउ

कर

हारि

कर

तो

उन्

'सर

होने

वई

मिल

नहीं

धूम

कुह

अव

राज

गय

मुझे

सम

अड

₹, :

रहना उनका स्वभाव था। जहाँ शास्त्रीजी रहें वहाँ कोई सुस्त और मुर्दनी मुख लिये रह नहीं सकता । उनकी आदत थी हमेशा हँसीकी बातें कहकर हँसते रहना। कूसरोंको हँसाते रहना। मैंने उन्हें कभी दुखी, चिन्तित और सुस्त नहीं देखा। ८० वर्षकी अवस्थामें भी वे युवकोंसे बदकर उत्साही थे।

सर्वप्रथम मैंने उनके दर्शन खुरजा (जिला खुलंद-शहरमें) किये । उन दिनों में आचार्यचरणगुरुवर्य पं० चंडीप्रसादजी गुक्रके समीप पढ़ता था । शास्त्रीजी च्वालापुरसे लाला रामजीलालद्वारा अपने भतीजोंका यज्ञी-पवीतसंस्कार करानेको / बुलाये गये थे। महाराष्ट्रीय ढंगका चदरा ओदे हुए वे बड़े ही सुंदर लगते थे। प्रथम भेंटमें ही उन्होंने इतना अपनत्व प्रकट किया कि मानो हम जन्म-जन्मान्तरके परिचित हैं । फिर सन् २१ के सत्याग्रह आन्दोलनमें मैं खुरजेसे पकड़ा गया और वे देहरा-दूनसे । संयोगकी बात इम दोनों ही लखनऊ केन्द्रिय-कारावासमें विशेष श्रेणीमें रक्खे गये । एक ही जेलमें, एक ही वार्डमें, एक ही कमरेंमें हम साथ थे। हमारे कमरेमें शास्त्रीजी पं० वंशीधर पाठक, वाबू सम्पूर्णानन्द, पं० शिव-विनायक मिश्र आदि बहुत-से लोग थे। शास्त्रीजी सबसे अलग चुपचाप पेड़के नीचे बैठे रहते और वहाँ भी गीता, उपनिषद् तथा शाकरभाष्य आदि पढ़ाया करते। जेलमें सभी बच्चे बन गये थे। दिनभर इतना उपद्रव करते कि बच्चे भी क्या करेंगे। आज जो बड़े-बड़े नेता, मन्त्री, राजदूत, राज्यपाल बने हैं, वे दिनभर हुरदंग मचाते रहते । उन सबके अग्रणी थे आचार्य कृपलानी । यंदरोंकी तरह पेड़ोंपर चढ़ जाते, जिसकी भी मिठाई आदि रक्खी पाते, चुराकर खा जाते। भड़्डू कबड्डी और विविध खेल चलते रहते। शास्त्रीजी इन सबमें निर्विकार बने रहते । कोई कहता भी कि महाराज ! लोग बड़ा उपद्रव करते हैं तो आप इँसकर कह देते—'अरे भाई ! कैसे भी समय तो काटना ही है ।'

कुछ समय पश्चात् सरकारने एक कमीशन बैठाया कि बहुतसे अयोग्य व्यक्ति विशेष श्रेणीमें आ गये हैं, उन्हें निकालकर साधारण श्रेणीमें भेजा जाय। कुछ योग्य व्यक्ति साधारण श्रेणीमें पहुँच गये हैं, उन्हें विशेष श्रेणीमें लाया जाय। तब उन दिनों आजकी भाँति ए० बी० सी० क्लासें नहीं थीं। एक तो विशेष श्रेणी (स्पेशलक्कास) थी जिसमें टंडनजी, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि ऐसे प्रसिद्ध

व्यक्ति थे जो लखनऊ जेलमें रक्खे गये थे। दूसरी राजनीतिक वहीं श्रेणी (पोलिटिकल प्रिजिनर्स) थी, जो फैजाग्रहमें रक्खे गये। तीसरी साधारण वन्दी श्रेणी (नोनपोलिटिकल) थी, जो साधारण कैदियोंकी भाँति सब जेलोंमें रक्खे जाते थे। उन दिनों बहुतसे स्पेशल क्षाससे निकालकर साधारण कैदियोंमें भेजे जा रहे थे। शास्त्रीजीको भी देहरादूनके जिलाधीशके आदेशसे साधारण कैदी बनाकर वहाँसे हटाया जा रहा था। जब उनके पैरोमें लोहेकी बेड़ियाँ डालकर वाहर भेजा जा रहा था, तो मेरी आँखों में आँसू आ गये। वे इसते हुए बोले— 'देखो, मेरी पढ़ाये हुए विद्यार्थी तो स्पेशल क्ष्रासमें हैं और मुझे राजनीतिक भी नहीं तीसरी श्रेणीमें भेजा जा रहा है।' वे इस अपमानसे तिनक भी विचलित नहीं हुए। इसके पश्चात् तो वे क्रमशः पाँच बार जेल गये। कोई भी आन्दोलन ऐसा नहीं था जिसमें वे जेल न गये हों।

जब हरिद्वारमें हरिकी पौड़ीपर नगरपालिकाकी ओसे प्रतिवन्ध लगा था, तब स्वयं मालवीयजी सत्याग्रह करने गये और उन्होंने प्रतिवन्धके लगे रहनेपर भी व्यासासनपर बैठकर कथा वाँची । शास्त्रीजीने मालवीयजीसे कहा— 'महाराज! में तो आप जहाँ कहो वहाँ बैठकर कथा बाँच सकता हूँ, किंतु मैं आर्यसमाजी हूँ।'

वे बड़े ही सहिष्णु थे। यद्यपि उनका सम्बन्ध आर्यसमाजते रहा, किंतु वे कभी संकीर्ण विचारके नहीं हुए। मर्दिनी वे दर्शन करने जाते, प्रणाम करते, पूजा-पाठ, जप-अनुष्ठान (angri Collection Haridway)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

=

3)

स्वे

कर

भी

हेकी

वोंमें

नहीं

बार

जेल

ोरसे

करने

नपर

1-

बाँच

कौन

मुच

र्णता

उनके

लकी

तनी

लेयाँ

ादश

जिने

酥

वहाँ

करने

जसे

र्रामे

सभीमें विश्वास रखते। वे मुझसे बार-बार कहते—इमलोग माध्वसम्प्रदायके अनुयायी वैष्णव हैं। हमारी माँ वैष्णव ही थी। केवल पिताजी आर्यसमाजी वन गये। पुराणोंके सम्बन्धमें वे कहते थे-'स्वामी दयानन्दजीने, प्रतीत होता है पुराणोंको पढा नहीं। यदि पढ़ते तो वे कभी खण्डन न करते। इमारी तो पूरी संस्कृति, पूरा ज्ञान पुराणोंमें ही भरा पड़ा है। प्रतीत होता है उन्होंने ऊपरसे ही सुन-सुनाकर खण्डन कर दिया। ' उन्होंने कई बार श्रीसद्भागवतके अद्धासहित पारायण किये हैं । मेरी भागवती कथा? की पढकर वे इतने प्रसन्न हुए कि मेरे पास दो बार अपनी सम्मतियाँ भेजीं, जो भागवती कथाके कवर-प्रष्पर प्रकाशित हैं।

वे जिससे मिलते थे, हृदय खोलकर मिलते थे। उनमें बनावट या बड्डप्पनकी गन्ध भी नहीं थी। जब भी कभी प्रयाग आते, मुझसे मिलने अवश्य आते । कई बार ऐसा हुआ कि वे आये मैं अपने अनुष्ठान-नियममें था । प्रतीक्षा करके लौट गये। फिर जाकर पत्र लिखे। देखी, तुम्हारी हाजिरी मैं दे आया था। तबसे जब भी आते पहिले फोन कर लेते। लोग कुछ कहते कि वे अभी नहीं मिलेंगे, तो उन्हें डॉॅंट देते । तुम उनतक मेरा संदेश पहुँचा तो दो । उन्हें मेरा नाम तो वता दो ।

अन्तिम बार आश्रममें वे अभी गत वर्ष ही आये थे। 'सरस्वती' ने अपनी रजत-जयन्तीपर अपने पुराने लेखकोंको सम्मानित किया था। आपका भी पुराने सरस्वतीके लेखक होनेके नाते सम्मान किया गया। उसीमें सम्मिलित होने भयाग आये थे। फोन करके स्वयं ही रिक्सा लेकर आ गये। वड़ी देरतक हँसते रहे। उलाहने देते रहे—'तुम्हारे चेले मिलने ही नहीं देते। वे समझते हैं कोई रिक्सेवाला है। जानते नहीं, शास्त्रीका ब्रह्मचारीजीसे कैसा सम्बन्ध है। १ पूरे आश्रममें धूमते रहे, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। मैंने कहा-ध्यास्त्रीजी! कुछ दिन रहिये, वृन्दावनमें भी ऐसा ही एक आश्रम है वहाँ अवस्य आइये।' बोले---'हाँ-हाँ आऊँगा, रहूँगा। अब तो मैं राजपुर शाहंशाह आश्रममें जाकर ठहरूँगा।'

अभी-अभी जब मैं आषाढमें श्रीबद्रीनाथसे लौटकर मसूरी गया, तो मुझे राजपुर एक महात्मा अपने यहाँ ले गये। मुझे पता नहीं था शास्त्रीजी यहीं हैं। किसीने मेरे आनेका प्रमाचार दे- दिया । तुरंत दौड़े-दौड़े आये । बोले---'भाई अब तो ८० वर्षके हो गये। नदीके किनारेके वृक्षकी भाँति मसूरी रहनेको मना कर दिया है, इसलिये न बहुत ऊपर रहते हैं न नीचे । वीचमें रहते हैं ।

मैंने कहा—शास्त्रीजी! अब तो आप संन्यास छे छीजिये। आप बोले-- 'हाँ, भाई ! सोच तो मैं भी रहा हूँ । किंतु हमें कोई गुरु नहीं मिल रहा है।

मैंने कहा-अपने आप ही हे हो, शास्त्रोंमें तो ऐसा विधान है। फिर आप तो संन्यासी ही हैं।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न तिरिधन चाकियः॥ सचे संन्यासी तो आप ही हैं।

बोले--हाँ भाई, बहुत बीत गयी। अब तो थोड़ी ही रही है। साथी सब चले गये। इस ही हैं सो प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आप ८० वर्षकी अवस्थामें भी स्वस्थ ये । युवकोंकी भाँति चलते थे। उनके किसी भी कार्यमें व्यवधान नहीं पड़ा था। हमें खप्नमें भी यह ध्यान नहीं था कि आप इतने शीप पर-लोकवासी वन जायँगे।

जब मैंने समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि इसी २४ सितम्बरको आपने अपने नश्वर शारीरको त्याग दिया, तो मैंने समझा त्याग-तपस्याका जान्वत्यमान प्रतीक, संस्कृतिका प्रकाण्ड पण्डित, हिंदीका महान् लेखक, राजनीतिका सच्चा-कर्मठ नेता और विद्यार्थियोंका सच्चा मित्र, महान् आचार्य, भारतमाताका सच्चा सपूत देशका एक अमूल्य रत्न खो गया। न जाने अब ऐसा दसरा रत्न मिलेगा भी या नहीं । 'कल्याण' परिवारसे उनका इमारी ही भाँति घनिष्ठ सम्बन्ध था । गत मासके कल्याणमें भी उनका एक लेख छपा था। अतः मैं 'कल्याण'-परिवारकी ओरसे तथा अपनी ओरसे शास्त्रीजीके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ और परमपिता परमात्माके पाद-पद्मोंमें प्रार्थना करता हूँ कि हमारे देशमें शास्त्रीजी-जैसे निष्काम कर्म करनेवाले सच्चे कर्मठ, त्यागी तथा बालब्रह्म-चारी पुनः-पुनः प्रकटित हों।

(३) लाला हरदेवसहायजी

जिन्होंने गोरखाको देशरक्षा माना है ऐसे कोई भी व्यक्ति न होंगे जो लाला हरदेवसहायजीके नामसे परिचित न हों । मेरे तो वे हाथ-पाँव सभी थे । वे ही एक ऐसे व्यक्ति है न जाने कब प्रवाह आ नाय, कब शार पहुँ। चिकित्सकोंने थे जिनका सम्पूर्ण समय एकमात्र होमाताकी कैसे रक्षा

HE!

गहर

आद

अत्य

बना

मही

सर

वे व

पैरव

किरे

हो इसीके चिन्तनमें बीतता था। आजसे लगभग ७० वर्ष पूर्व आपका जन्म पंजाबके हिसार जिलेमें सातरोड नामक प्राममें हुआ। उन दिनों पंजाबमें उर्दूका ही बोलवाला था। सरकारी कामोंमें तथा सभी व्यावहारिक कायोंमें उर्दूका ही प्रचलन था। लालाजीने ही वहाँ हिंदीका प्रचार किया। सैकड़ों हिंदीकी पाठशालाएँ स्थापित कीं। फिर आप सिक्तय राजनीतिमें भाग लेने लगे। कई बार जेल गये। वहाँके एक गण्य-मान्यसुप्रसिद्ध राजनीतिकनेता थे। एकबार हरियानेमें अकाल पड़ा। लालों गौएँ चारेके अभावमें मरने लगी। तभी लालाजीन गौओंको बचानेके लिये बंबईके सुप्रसिद्ध गोभक्त श्रीमानकरजी-के साथ गोरक्षाका कार्य किया। तबसे आपने अपना सम्पूर्ण जीवन गोसेवाके लिये ही अर्पित कर दिया। आप जब भी प्रसङ्ग आता, तभी कहते श्रीमानकरजी मेरे इस क्षेत्रके गुरु हैं। इन्होंने ही मुझे इस कार्यमें प्रवृत्त किया।

मेरा विरोष सम्पर्क आपसे गोरक्षा-व्रतके समयसे ही बढ़ा । आजसे लगभग आठ-नौ वर्ष पूर्व हमने सैकड़ों गौएँ रखकर एक गोसेवावत आरम्भ किया था। उसमें गोसेवक गौसे ही प्राप्त गोदूध, गोमठा, गौको अन्न खिलाकर उसके गोवरमें जो दाने निकले, उन्हें ही खाकर गौओंके ही बीचमें रहते थे तथा स्वयं गोचारणको जाते थे। ६ महीने यह व्रत चला। हमलोग १०-१५ गोसेवक थे। लालाजी इस गो-व्रतसे वड़े प्रभावित हुए । ३०-४० गौएँ कलकत्ता कटने जा रही थीं। वे प्रयागमें उतार ली गयीं। वे गौएँ भी हमारे गौओंमें ही रहती थीं । लालाजी प्रायः आश्रममें आते रहते थे। उन दिनों वे सरकारद्वारा संरक्षित भोसेवक समाज' में कार्य करते थे । जव उन्होंने देखा 'भारत सेवक समाज' सरकारके विरुद्ध कोई सिक्रय कार्य नहीं कर सकती, वह सत्याग्रह आदिमें सम्मिलित नहीं हो सकती, तो वे मेरे पास आये । मैंने कहा 'उस समाजको छोड़ो । जो सत्याग्रह कर सकें ऐसे लोगोंको साथ लेकर चलो' । तभी कुम्भके अवसरपर यहीं प्रयागमें भोहत्या-निरोध-समिति'की स्थापना हुई । सभी लोगोंने उसमें सहयोग देनेका वचन दिया। देशके दुर्भाग्यसे पीछेसे कुछ लोग मुकर गये। 'गोहत्या-निरोध-समिति' की ओरसे ही सर्व-प्रथम मथुराके कसाईखानेपर सत्याप्रह करनेका कार्यक्रम बनाया गया। उसमें उन्होंने कितना घनघोर परिश्रम किया, इसे मैं. ही जानता हूँ ! मैं छायाकी भाँति सदा उनके साथ ही

रहा । पंतजीकी दूरदर्शितासे वह संवर्ष टल गया। कसाई-

फिर हमलोगोंने लखनऊ विधानसभाके सामने सलाग्र किया । लालाजीको जब भी कहते, तुरंत कुर्ता पहनकर सत्याग्रह करनेको तैयार हो जाते । किंतु तत्कालीन प्रधान मन्त्री बाब् संपूर्णानन्दजीने आदेश दे रक्खाथा कि ब्रह्मचारीजी को तथा लालाहर देवसहायको न पकड़ा जाय । अतः पुलिस हमलोगोंको जेलतक तो ले जाती, किंतु वहाँ ले जाकर लोड़ देती । लालाजीने दिन-रात एक कर दिये। जब उत्तरप्रदेश सरकारने भोहत्या-निरोध' कानून बना दिया तभी उन्हें चैन पड़ा ।

फिर हमलोगोंने विहारमें सत्याग्रह किया। विहार सरकारे हम दोनोंपर विहारमें प्रवेशपर ही रोक लगा दी। तब हमलेग हठपूर्वक गये और पकड़े गये। लालाजी और मैं साथ ही जेलें रक्खें गये। लोगोंकी ओरसे हमें छुड़ानेके बड़े-बड़े प्रयल हुए। तत्कालीन उपाध्यक्ष बा० जगतनारायणलालजीने फोनफ लालाजीसे कहा—'आप ऐसा विश्वास दिला दें कि छूटनेपर हम विहार छोड़कर चले जायँगे।' इसपर लालाजीने जगत बाबूको ऐसी डाँट वतायी कि मैं तो हँ मते-हँसते लोट पोट हो गया। वे बोले—'जगत बाबू! आपने क्या समझ रक्लाहै। हम जीवन भर जेलमें मर जायँगे, किंतु ऐसी बात कभी न कहेंगे।' विहारमें जब कानून वन गया, तभी हमलोग जेलसे छूटकर आये।

हमलोगोंका कार्य-कम था सभी प्रान्तोंमें इमी प्रकार जाकर सत्याग्रह करें, किंतु इसी वीच सरकारकी कूटनीतिने इस मामलेको अदालती प्रश्न बना दिया। कमाइयोंसे अभीलें करा दों। सभी कान्न पङ्ग बना दिये गृये। सरकारकी दृष्ट् नीति है गोहत्या सदा होती रहे। संविधानमें गोहत्याको प्रत्यक्षतः बंद करनेकी नीतिको मानते हुए भी संविधानके प्रतिज्ञा की थी जबतक सम्पूर्ण देशमें गोहत्या बंद न होगी तवतक में पगड़ी न पहन्ँगा, चारपाईपर न सोकँगा। वे अपनी प्रतिज्ञाको पूरी हुए बिना ही नंगे सिर ही इस लोक से अपनी प्रतिज्ञाको पूरी हुए बिना ही नंगे सिर ही इस लोक से अपनी प्रतिज्ञाको पूरी हुए बिना ही नंगे सिर ही इस लोक से अपनी प्रतिज्ञाको पूरी हुए बिना ही नंगे सिर ही इस लोक से अपनी प्रतिज्ञाको पूरी कर बसे। अब कौन माईका लाल उनकी प्रतिज्ञाको पूरी कर बसे। अब कौन माईका लाल उनकी प्रतिज्ञाको पूरी कर बसे। अब कौन माईका लाल उनकी प्रतिज्ञाको पूरी कर बसे। अब कौन माईका लाल उनकी प्रतिज्ञाको पूरी कर बसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

-

साई.

पामह

नक्र

धान

रीजी-

लिस

छोइ

पदेश

चैन

नारने

खोग

नेलमं

यल

नपर

हम

गत

ाहै। ो न

लसे

कार

तिने शिलें

हद

को

नके

ति

गी

त्से

लालाजीके द्वारा लिखित 'गाय ही क्यों ?' नामक पुस्तककी भूमिकामें भूतपूर्व राष्ट्रपति डा॰ राजेन्द्रप्रसादजीने लिखा है—

लाला हरदेवसहायने गायके प्रश्नका बहुत विस्तृत और गहरा अध्ययन किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने जो अपने अध्ययनमें पाया है, उसका साक्षात् अनुभव भी बहुत अंशमें किया है। इमलिये वह जो कुछ इस सम्बन्धमें कहें, वह आदरपूर्वक सुनने योग्य है।

राष्ट्रपतिजीके इन शब्दोंमें लालाजीके गो-सम्बन्धी गम्भीर अनुशीलन और अनुभवका अनुमान किया जा सकता है।

वे अत्यधिक परिश्रम करनेसे इधर तीन-चार वर्षसे अत्यन्त क्षीण हो गये थे। रोगोंने उनके शरीरको जर्जरित बना दिया था। मैंने बार-बार आग्रह किया—आप दो-चार महीने झूँमी रहकर विश्राम करें, चिकित्सा करायें, किंतु उनके लिये दो-चार घंटे ठहरना भी कठिन था। अन्तमें सरकारने उनके विरुद्ध मुकद्दमा चला दिया। इससे भी वे बड़े चिन्तित रहते थे। निरन्तरका परिश्रम, मुकद्दमेकी पैरवी, आवश्यक अर्थ-संग्रह—इन सब कार्योसे वे बहुत ही थक गये थे। अन्तमें तो बेहोश होकर अस्पतालमें भर्ती किये गये। सुनते ही मैं 'तुरंत दिल्ली अस्पतालमें

उनसे मिला। तब वे कुछ-कुछ अच्छे हो चले थे। फिर मैं दुवारा उनसे मिलने गया। वोले—'अव मैं अच्छा हो रहा हूँ। मुकद्दमेकी भी मुझे एक महीनेकी मुहलत मिल गयी है! अव मैं अपने गाँवमें जाकर एक महीने रहूँगा। नियमसे रामायण, महाभारत और आपकी भागवती कथा मुना करूँगा। कुछ दिन भजन-पूजनमें ही विताऊँगा।'

उन्हें घर ले जाया गया | दूसरे-तीसरे ही दिन वे चल बसे | लालाजी-जैसा कर्मठ गोभक्त अब कहाँ मिलेगा । भाईजी हनुमानप्रसादजीसे उनका वड़ा ही स्नेह था । वे हमारी समितिके कोषाध्यक्ष थे । इस नाते वे वार-वार गोरखपुर उनसे मिलने जाते । उनसे प्रचारके विषयमें सलाह-सम्मिति करते । 'कल्याण'में उनके गोरक्षासम्बन्धी लेख बरावर निकलते रहते । मैं 'कल्याण' परिवारकी ओरसे तथा अपनी ओरसे लालाजीके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अपित करता हुआ भारतके इन तीन खोये हुए रत्नों-जैसे ही अमृल्य रत्नोंकी पुनः भारतमें प्रकट होनेकी आशा करता हूँ । भगवान् भारतको ऐसे रत्न सदा ही देते रहें । जिससे यह स्वार्थसे सना संसार नरकके स्थानमें स्वर्ग वन जाय । ग्रुभमस्तु । कल्याणमस्तु । *

* इन तीनों ही श्रद्धेय महानुभावों के प्रति में हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ। तीनोंसे ही मेरा व्यक्तिगत प्रेम था। श्रीटंडनजीकी मुझमें बहुत बड़ी आदर्श प्रीति थी। में उनमें सभी वातों में न्यून होनेपर भी वे बार-बार मुझसे सजाह लेते। उड़ीसाके गवर्नरके प्रस्तावपर उन्होंने मुझसे भी पूछा था। गोरखपुरमें पटेल-स्मारक-निथिकी सहायताका कार्य वे मेरे द्वारा ही करवाया करते थे। उन्होंने मुझे रूणावस्थामें प्रयाग बुलाया था और उनके देहावसानके कुछ ही समय पूर्व में उनके दर्शनार्थ प्रयाग गया था। उन्होंने बड़े ही रनेहसे मुझे हृदयसे लगाया। मेरे सिरपर तथा पीठपर हाथ फिराया। पं० नरदेवजी शास्त्री बड़े ही उदार तथा शास्त्रज्ञ पुरुष थे। मुझपर बड़ा स्तेह रखते थे तथा 'कल्याण'में प्रायः लिखा करते थे। लाला हरदेवसहायजी तो मेरे परम आदरणीय वन्धु थे और मुझपर बड़ा स्तेह रखते थे। उनके देहावसानसे देशका कल्याण चाहनेवाले प्रत्येक उनके परिचित नर-नारीको बड़ा दुःख हुआ है। उनके सरीखे नैष्ठिक कर्मठ पुरुष वे ही थे। इधर वर्षोसे उन्होंने गोरक्षा, गोसेवा और गोसंवर्षनके कार्यका महान् व्रत ले रक्खा था और उसीके पीछे वे अपने जीवनका प्रत्येक क्षण लगाये हुए थे। दिन-रात एक ही लगन, एक ही चिन्ता, एक ही कार्य! उन्होंने गो-सेवाके बड़-बड़ काम किये, तपस्या की, जेलयातना सही। ऐसे अनन्यव्यती गो सेवकका निधन देशके लिये बड़ा ही दुर्माग्य है। लालाजी सच्चे देशमक्त, भर्मशील, अत्यन्त निर्मांक, स्पष्ट वक्ता और ईश्वरमें श्रद्धा रखनेवाले आदर्श पुरुष थे। परंतु कालके सामने किसीका वश्च नहीं चलता। इतना भरीष है कि जनका जीवन अन्ततक गोसेवा और धर्मसेवामें ही बीका—जो अस्यन्त दुर्णम तथा सब्धा खाद्य है। — इनुमानप्रसाद पोइतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पढ़ो, समझो और करो *

8)

भगवान्के सामने सचा, सो सच्चा

रामानन्द और रामप्रसाद दोनों भाइयोंमें सब चीजोंका प्रसन्नतापूर्वक बँटवारा हो गया। दोनों अलग-अलग रहने लगे। अलग काम करने लगे। बरसों बीत गये। एक दिन दीवालीके अवसर रामानन्द घरके पुराने कागजींका बुगचा (पुलिंदा) खोलकर देख रहे थे-इसलिये कि व्यर्थके कागजोंको देखकर फेंक दिया जाय । देखते-देखते उन काराजोंके बीचमें उनके पिताजीका रक्खा हुआ एक पीतलका डिब्बा मिला। खोलकर देखा तो उसमें उनकी माताजीके चार सोनेके गहने थे । उन्होंने अपनी पत्नीको बुलाकर दिखाया । तौलकर देखा तो लगभग १४० तोले सोना था। उस समय खरे ठोस सोनेके ही गहने बनते थे। पत्नीने कहा- भहना सासजीका है, अतएव इसमें आप दोनों भाइयोंका हक है। आप इसका आधा हिस्सा अपने भाई रामप्रसादजीको दे दीजिये—आजकल उनकी हालत भी तंग है। इसपर रामानन्दने कहा- 'तुम्हारी बात तो ठीक है पर तुम जानती हो—अपने भी पैसेकी जरूरत है, लड़की-का ब्याह अगली साल करना है, यह गहना न्याहमें काम आ जायगा । फिर रामप्रसादकी स्त्री तो तुमको मिलनेपर सदा जली-कटी सुनाती और हर जगह तुम्हारी बदनामी करती रहती है, उसे यह गहना देकर साँपको दूध पिलाना होगा। वह कहेगी कि न मालूम इन्होंने वेईमानी करके कितना धन और रख लिया होगा ।' रामानन्दकी भली पत्नी बोली- 'भगवान् तो सव देख रहे हैं; वही फिर भी देखेंगे। मेरी दौरानी भोली है और इस समय कप्टमें है, इसलिये वह विना समझे-बूझे यदि कुछ कह देती है तो उससे हमारा क्या विगड़ जाता है। भगवान्के सामने तो हम सच्चे हैं। और जो भगवान्के सामने सचा है, वही सचा है। परंतु आज यदि हम इस गहनेपर नीयत विगाड़ लेंगे तो भगवान् क्या समझेंगे। मैं तो समझती हूँ भगवान् मेरी दौरानीको सुबुद्धि देंगे—में भगवान्से प्रार्थना करूँगी और उसकी भावना भी बद्ल जायगी। वह प्रेम करने लगेगी।

पत्नीकी बात रामानन्दकी समझमें आ गयी। वे गहनेका

डिब्बा लेकर छोटे भाईं रामप्रसादके घर पहुँचे।—डिब्बा कैसे कहाँ मिला, सब बतलाया और फिर उनकी पित-पत्नीमें क्या बातें हुई थीं, वे भी सब कह दीं तथा बोले कि भीया! मेरे मन तो वेईमानीका अंकुर पैदा होने लगा था, पर तुम्हारी नेक भाभीने उसे तुरंत बीजसमेत उखाइकर फेंक दिया।

इस वर्तावका रामप्रसादपर वड़ा ही अच्छा असर पड़ा और भगवत्कृपासे रामप्रसादकी स्त्रीकी सारी भावना तुरंत ही बदल गयी। उन्हें उस दिन रुपयोंकी सख्त जरूरत थी, एक नालिशकी कुर्की आनेवाली थी। उसने समझा कि रामानन्दजी तथा उनकी पत्नीके रूपमें भगवान्ने ही यह सहायता भेजी है। वह जेठानीके पास दोड़ी गयी, रोकर क्षमा माँगने लगी। जेठानीने उठाकर हृदयसे लगा लिया और ऑस बहाती हुई उसे अपार स्नेहसुधाका दान किया। दोनों परिवारोंमें एकाल्मता जाग उठी और आनन्द ला गया।

(?)

विदेशी व्यापारी—सची व्यापारी नीति

सन् १९३५-३६ की बात है। देशभरमें व्यापारमें मन्दी आ रही थी। उसी समय हमारे एक व्यापारी मित्रने कोयलेकी खानके मालिक एक यूरोपियनसे चार रूपये टनके भावसे ४००० टन कोयला नं० १ का सौदा किया था। कुछ ही दिनोंबाद इथोपियनकी लड़ाई ग्रुरू हो गयी और वैगनोंकी कमीके कारण उसी कोयलेका भाव बढ़कर सोलह रुपये टन हो गया। कोयलेके व्यापारी समझने लगे कि अव इन मित्रको इनके सौदेका माल नहीं मिलेगा। इतना ही नहीं, कई ईर्ष्यालु व्यापारियोंने तो साहबसे खयं मिलकर कहा कि आपको उनसे डिपाजिटके रुपये अभी नहीं मिले हैं। अतएव उनका सौदा कैन्सल (रद) करके बाजार-भाव माल हमें दे हैं। पर साहबने यह कहकर कि—'ऐसा करनेसे हमारी व्यापारी नीतिपर लाञ्छन आता है'—उन्हीं व्यापारी मित्रको डिपाजिटके रुपये तुरंत भरकर माल डेलियर लेनेके लिये लिखा और अपनी आफिसमें यह आदेश दे दिया कि जबतक उनका ४००० टन माल

* इस स्तम्भके लिये 'न्यमत्कार' बतानेवाली घटनाएँ ही अधिक आती हैं। सत्य, त्याग, सदाचार, सेवा, सद्भावना आदिकी आदर्श सबी पटनाएँ किखहर मेजनी चाहिये। दिंदीमें जो सज्जन व किख सकी, दे गुजरानी महाती, लंगे की मिन्स में वह निवेदन है। —सम्मादक CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Handwar मेज वह निवेदन है। संस्था

पूरा न माल नह

डि

गुरू हो किया ज रोज के शेडिंग-रि

भित्रने इस निः गराज

त्व कर

गुरू कर मित्रने भरा जा

संव निरीक्षण लोडिंग-१ मित्रका

भाक्तिस थापारी

व्यापारा हर्कको नं०१ :

रैसे भ ही माल

स करें या

अनुसार उम ३:

व्यापारी यह पूह

करता—

उकसान

स

वुम्हारे मिलता

हेकके इन्स्य

घरनी :

ब्रा न दे दिया जायः तवतक अन्य किसी भी पार्टीको माल नहीं बेचा जाय।

डिपाजिटके रुपये भरे गये और मालकी डेलिवरी हुह हो गयी। गाड़ीमें नं० १ का अच्छा माल ही भर्ती क्या जाता है या नहीं, यह देखनेके लिये हमारे मित्र ोज कोलियरीपर 'लोडिंग' देखने जाते । कम्पनीके होडिंग-क्रुकीने एक दिन कहा-अाप वड़े भाग्यवान् हैं, ख़ुब कमायेंगे।' यों कहकर—'कुछ' देनेकी इच्छा दिखलायी। क्षित्रने 'कम्पनीको किसी प्रकार भी धोखा न दिया जाय' अ निश्चयके कारण उसे कुछ भी दिया नहीं । इसपर उसने गराज होकर नं० १ के यदले नं० २ का माल भराना क्र कर दिया। परंतु इसमें भी काफी नफा था, अतः उन भित्रने कोई आपत्ति नहीं की और रोज नं० २ माल भरा जाने लगा ।

संयोगवरा एक दिन कम्पनीके साहव खुद कामका मिरीक्षण करते हुए रेलवे साइडिंगपर आ पहुँचे। उन्होंने बोडिंग-क्रुकेसे पूछकर पता लगा लिया कि यह माल उन्हीं मित्रका भरां जा रहा है। वहाँ कुछ भी न कहकर उन्होंने आफिस जाकर तुरंत चपरासीके द्वारा उस ऋर्ककी तथा यापारी मित्रको बुलाया। घटिया माल भरानेके सम्बन्धमें किंको कड़ा उलाहना देकर उन्होंने कहा—'कम्पनीने इनको ं॰१ माल बेचा है, यह तुम जानते हो, फिर नं॰ २ माल सी भरवा रहे हो ?' क्रुर्कने कहा—'मैं तो इनके सामने ीमाल भरवा रहा था। इन्होंने कोई भी आपत्ति नहीं की।'

साहव और भी गुस्सा होकर बोले—'ये आपत्ति भें या न करें। अपनेको तो अपनी व्यापारी नीतिके भनुसार निश्चित किया हुआ माल ही भराना चाहिये। अपने कर्तव्यसे क्यों गिरे ११ फिर उन्होंने उन बापारी मित्रसे 'आपने घटिया माल क्यों भरने दिया ?' ^{यह पूछा}। मित्रने कहा—'यह क्लर्क कहीं अधिक हैरान कता—डिलेवरीमें देर कर देता । और फिर इस मालमें भी किसान तो था ही नहीं, इसीसे मैंने कुछ नहीं कहा ।'

साहबने गम्भीरताके साथ उपदेश दिया—'यही तो उम्होरे भारतीयोंकी कमजोरी है। ठाठचके वश होकरः ^{मिल्}ता मुनाफा चला न जायः इसलिये तुमलोग अपने किके लिये भी लड़ते बरते हो। तुम्हें मेरे पास शिकायत मनी चाहिये थी।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दूसरे ही दिन क्रुकेंको नोटिसका वेतन देकर नौकरीसे अलग कर दिया गया और व्यापारी मित्रके उस दिन तक गये हुए नं० २ मालका विल तीन रुपया टनके हिसाबसे बनाया गया। शेष माल पूरा बढिया दिया गया।

विदेशी व्यापारियोंकी यह व्यापारकी सचाई अनुकरणीय है। 'अखण्ड-आनन्द'

---शान्तिलाल बोले

(3)

तीन लाखकी तीन वातें

परानी बात है-यमना तटीय राज्योंमेंसे एक राज्यमें मधुसूदन नामका एक राजा राज्य करता था। मधुसूदन प्रजावत्सल, धार्मिक एवं दानवीर राजा था। उसके राज्यमें हरप्रकारसे सख-सम्पदा विद्यमान थी।

एक दिन प्रातः ही नगरके वाजारोंमें, मुहल्लोंमें एक महात्मा घूमने लगा । जिसने देखा-उसे भोजनके लिये, वस्त्रके लिये पूछा, परंतु महात्मा कुछ भी स्वीकार न करता और एक ऊँचे स्वरसे अलाप करता जा रहा था 'एक-एक लाखकी तीन बातें। तीन लाखकी तीन बातें।

धीरे-धीरे इस महात्माका समाचार महाराज मधुसूदन-तक जा पहुँचा । मधुसूद्रन अपने अधिकारीवर्गसहित स्वयं महात्माकी सेवामें उपस्थित हुआ।

'क्या चाहिये महात्मन् !'

'तम दे सकोगे ?'

'आज्ञा कीजिये । यथाशक्ति प्रयत करूँगा ।'

'दूम कुछ महात्मा उत्तरी आर्यावर्तका भ्रमण करते हुए तुम्हारी नगरीसे कुछ दूर विश्रामके लिये ठहरे हैं। उनके लिये भोजनका प्रवन्ध करना है।'

भारा अहोभाग्य ।

परंतु भिक्षा नहीं चाहिये राजन् ! परिवर्तन चाहिये । में आपको तीन उपयोगी वार्ते वताऊँगा, आप तीन समयके भोजनका प्रबन्ध करें।

X

महाराज मधुसंद्रनकी आज्ञाकी देर थी। सब भोजन-सामग्री उपस्थित हो गयी । धार्मिक राजाकी धार्मिक प्रजा महात्माओंके दर्शनार्थं उमङ्चली । सब महात्माओंके दर्शन कर अपनेको भाग्यशाली समझने लगे । विदांका समय हुआ । उस प्रमुख महात्साने राजाको उपदेश दियाः—'सुनो राजन ! इस बहुत प्रसन्न हैं । इमारी बातोंको सदा सारण रखना-CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

- १. प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें उठा करो ।
- २. आयेका आंदर करो ।
- ३. क्रोधके समय शान्ति रक्लो ।

सभी महात्मालोग विदा हुए । राजा भी अपने मन्त्री आदिके साथ वापस लौट गया।

उसी दिनसे राजा मधुसदनने तीनों बातोंपर आचरण आरम्भ कर दिया। इन वार्तीपर आचरण करते कई दिन बीत गये। एक दिन प्रातः महाराज उठकर यमुना-तटपर भ्रमण कर रहे थे। आकाशमें अभी तारे चमक रहे थे। अन्धकार अभी दूर नहीं हुआ था कि राजाको एक जोरका शब्द सुनायी पड़ा । राजाने ऊनरकी ओर देखा । एक विशालकाय स्त्री दिखायी दी । उसकी आँखोंमें आँसू भरे थे । राजाने उसकी ओर देखकर पूछा, 'कौन हो तुम और क्यों रो रही हो ?

'मैं होनी हूँ।' 'परंतु रो क्यों रही हो !'

'इसिलये कि कल इस राज्यका राजा मारा जायगा। उस सामनेवाले पर्वतसे एक साँप निकलेगा और वह राजाको कल सायं सूर्य डूबनेसे पूर्व ही डॅस लेगा। इससे प्रजा बहुत व्याकुल हो दुखी होगी। ऐसा राजा फिर नहीं मिल सकता। इसलिये मैं दुखी हो रो रही हूँ।

इतनेमें आकाशमें प्रकाश हो गया । सूर्य पूर्वसे अपनी किरणें फेंकने लगा था। राजाने देखा तो आकाशकी ओर कुछ भी रोप न था।

दिनको दरवार लगा। महाराजने अपनी सारी देखी-सुनी बातें मन्त्री एवं अन्य सबको कह सुनायीं। किसीने केवल भ्रम कहा तो किसीने स्वप्न । परंतु राजाके मनमें यह बैठ गया कि यह वात सत्य है। प्रातः उठनेका लाभ वह प्रत्यक्ष देख चुका था कि उसे अपनी मृत्युका दो दिन पूर्व पता चल गया।

दरबारके कुछ विज्ञ व्यक्तियोंने इस वातको ठीक समझा और वे चिन्तित हो गये। महाराज मधुसूद्रनके कोई लड़का न था । केवल एक युवती लड़की थी । मन्त्रिमण्डलमें निर्णय हुआ कि महाराजके पश्चात् उनकी इस लड़कीको पुरुषवेशमें सिंहासनपर विराजमान किया जाय । जब उसका विवाह हो जाय तब यदि वर योग्य हो तो उसे राज्य सौंप दिया जाय अथवा फिर जिसे भी प्रजा उचित समझे, सौंपे।

महाराजने यह आदेश महलोंमें जाकर रानीको सुना

पीछे उसी वक्त लड़कीको पुरुष-वेशमें तैयार कर देना।

दूसरे दिन प्रातः महाराज उठे, अपने निलक्सी निवृत्त हो व बाहर निकल गये। अचानक उनके मन्में एक विचार आया कि आयेका आदर कर देखना चाहिये। आज्ञा कर दी गयी । तैयारी होने लगी। जिस ओरसे साँग निकलकर आनेवाला था—सारा मार्ग सजा दिया गया। घास लगा दी गयी। अगरवत्ती एवं सुगन्धियुक्त पदार्थ मार्गर्मे जला दिये गये। स्यान-स्थानपर मीठे दूधके कटोरे रख दिये गये । पर्वतसे लेकर महलके उद्यानतक यही सजावट थी । उद्यानमें स्वयं राजा एक कुसीं लगाकर बैठ गये।

होनी होकर रहती है। ठीक समयपर सॉप उसी पर्वते निकला । मार्गकी सुगन्धि और सजावटसे प्रसन्न होता हुआ वह कभी लेटता, कभी उलटता, कभी दूध पीता रंगने लगा। परिणामस्वरूप सूर्य डूवनेके समयतक वह वहाँ न पहुँचा । बहुत देरके बाद वहाँ पहुँचा तो राजाने कहा 'नागदेवता ! अपना कार्य करो ।' यह कह महाराजने पाँव आगे बढा दिया ।

साँप मनुष्यकी वाणीमें बोल उठा—'राजन ! मैं तेरे स्वागतसे बहुत प्रसन्न हूँ । मुझसे कुछ भी माँग लो।'

'मेरे पास सव कुछ है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। आप अपना कार्य करो नागदेवता !' राजाने मुखपर मुस्कान लाते हुए कहा।

'अच्छा राजन् ! यदि तुम कुछ नहीं माँगते तो हो मैं ही तुम्हारी मौत मरता हूँ। साथ ही साँप पृथ्वीपर उलट गया और निर्जीव हो गया ।

'आयेका आदर करने'का प्रत्यक्ष फल था I

राजा प्रसन्नतासे उठा और महलोंकी ओर बढ़ा। रानी रो-रोकर व्याकुल हो रही थी। इसपर भी ढाँढस बाँधकर वह पतिकी आज्ञाका पालन करती हुई वेटीको पुरुष-वेशमें तैयार कर, फिर उसे गले लगाकर अपने हृदयको शान करनेका प्रयास कर रही थी।

राजा महलोंमें प्रविष्ट हुआ और रानीके कमरेमें गया ती वहाँका दृश्य देलकर द्वारपर अवाक् खड़ा रह गया। है, यह क्या, रानी मेरे मरनेका विचार कर किससे आर्लिंगन किये हुए है ! मुझे अब पता चला यह तो नीच है। अभी तो मैं जीवित हूँ तो इसका यह हाल है, मेरी मृत्युके बाद ती

राजाने

बढ़ा।

HEAL

रखनी उसने

महात्मा लगा ।

उठा । भी हैर मगन दूसरी बुलाया

-

काम न दूर क जाय। मेजनेक

और क

ये नहीं छोड़क

भीमाभ समझने अवतक चरती

षोड़ीक

अफसर मानवत हाक्टर

बानमं उत्तरते

भीर दे

-

11

किममे

मनमं

हिये।

साप

या ।

पदार्थ

कटोरं

यही

गाकर

र्वतसे

होता

रेंगने

वहाँ न

कहा,

। पाँव

तें तेरे

आप

स्कान

तो लो

व्यीपर

रानी

धकर

ोशमं

शान्त

ा तो

यह

EU

राजाने तलवार निकाल ली और वह तेजीसे रानीकी ओर बढा। रानी आँखें मूँ दें वेसुध-सी हो रही थी।

एकाएक राजाको ध्यान आया । 'क्रोधके समय शान्ति खनी चाहिये ।' तलवार छोड़कर राजा आगे वढा। उसने जाकर देखा—उसकी पुत्री ही पुरुषवेशमें अपनी माँके साथ लेटी थी।

राजाने हृदयमें ही भगवान्का धन्यवाद किया और महात्माके चरणोंका ध्यान कर मन-ही-मन नमस्कार करने --- प्रेमप्रकाश बोहरा लगा ।

मुखियाकी सहदता

सोनपरी गाँवमें मगनकी लड़कीके पेटमें प्रसवका दर्द उठा । अवतक अनेक सफल प्रसृतिमें यश पायी हुई कंकु मा भी हैरान थी। उन्होंने मगनको घरमें रोक लिया। पर मान बेचारा प्रसवमें क्या करता। कंकु मा और गाँवकी रसरी सयानी स्त्रियोंने मगनसे कहा कि 'शहरसे डाक्टरको बुलाया जाय और उम्र हो तो रतन भले ही बच जाय। और कोई उपाय तो नहीं है। भगनको जीवनमें कभी डाक्टरसे क्षम नहीं पड़ा था। चौमासेके दिन थे। शहर सोलह मील रूर कादा-कीचडमें बैलगाड़ी चलनी कठिन। क्या किया गय। मगन पाठशालाके मास्टर या तलाटी साहबको शहर मेजनेकी नीयतसे घरसे निकला । भाग्यकी बात, तलाटी साहब वे नहीं और मास्टरने कहा कि 'छुट्टीके विना मैं पाठशाला छोड़कर जा नहीं सकता।'

आखिर हिम्मत करके मगनने खेतमें बोवनी करते हुए भीमाभाईके पास जाकर सारी वातें सुनायीं। मानवताको समझनेवाले गाँवके इस मुखियाने तुरंत ही अपना काम छोड़कर अवतक खबर न देनेके लिये उसे उलाहना दिया और घास चरती घोड़ीपर दरी डालकर खेतसे सीधे ही शहरकी ओर षोड़ीको दौड़ा दिया।

भीमाभाईने सीधे विकास-विभागमें जाकर ब्लाक अप्तारको सब बातें समझायीं। उनकी बात सुनते ही ^{भानवता}वादी अफसर स्वयं चलनेको तयार हो गये और लेडी ^{हाकटर}को साथ लेकर वे सोनपरीकी ओर चल पड़े। 🐯 ही देरमें सोनपरीमें माटरका हार्न बजा तो सबकी ^{बानमें} जान आ गयी। मोटरसे डाक्टर और लेडी डाक्टरको जारते देखकर मगनके मनमें आशा वेंध गयी। डाक्टर भीर केही डाक्टरने तुरंत ही बढ़ी छगनसे उपचार आरम्भ कर दिया और दोनोंके परिश्रम और पुरुषार्थके फल्स्वरूप रात्रिके ७॥ वजे रतनने पुत्र प्रसव किया। इसी समय भीमाभाई बोड़ी दौड़ाते पहुँचे । वे बोड़ीसे उतर ही रहे थे कि जातवान घोड़ी शक्तिसे अधिक परिश्रम करनेके कारण तुरंत गिर पड़ी और उसकी आँखें ऊपरको चढ़ गयीं। यह सनते ही भले अधिकारी डाक्टर तथा मगन आदि सव दौड़े आये। उस मनुष्यके डाक्टरने समयानुसार घोडीपर अपनी डाक्टरी विद्याका प्रयोग किया। घोड़ीके सिरपर ठंढा जल छिड़का गया और इन तात्कालिक उपायोंके फलस्वरूप एक हजार मूल्यकी धोडीके प्राण वच गये।

इसपर जब सब लोगोंने भीमाभाईको इस प्रकार घोडीको दौड़ानेके लिये उलाहना दिया, तव उन भले मुखियाने कहा कि 'मनुष्यसे बढकर क्या है ! मगनकी लड़की मेरी ही तो लड़की है। उसके प्राण वचानेमें यदि मुझे घोड़ीसे हाथ भी धोने पड़ते तो भी मुझे कोई अफ़सोत नहीं होता ।'

इस प्रकार इस भले मुखियाकी बात मगन तथा गाँवके लोग सनते रहे और मन-ही-मन सब उसकी वन्दना करते रहे। --- मनुभाई रजपूत

गत १९६१ वैशाखकी सत्य घटना है। बैल बेचनेवाले व्यापारी (जिन्हें लोग भोजपरीमें पैकीरहा कहते हैं) नुआँव मेलासे गर्रा लाइन नहरसे आकर विक्रमगंज-भभुआ रोडके द्वारा भलुनी मेलाको जा रहे थे। रास्तेमें नितनी गौँवके समीप एक कुएँपर ठहरकर उन्होंने स्नान-भोजनादि किये। मवेशियोंको पानी पिछाया और अपने बैछोंको लेकर चल दिये । वहाँसे तीन मीलपर जब वे कोचसवाजार पहुँचे तब रुपयोंकी जरूरत पड़नेपर मालिक व्यापारीने अपनी टेंट टटोली । नोटोंका पुलिंदा गायव था । काटो तो खून नहीं !

वह नोटोंका कागजका पुलिंदा चित्तेनी ग्रामनिवासी श्रीरमनसिंह यादव (किसान) को मिळ गया था। पर किसका है यह उन्हें पता नहीं था।

बेचारा व्यापारी एक साथी हो लेकर भगवान्का सारण करता हुआ उसी कुऐँपर लौटकर आया और अच्छी तरह दूँढ़ा पर कहीं कुछ भी पता न लगनेपर निराश

हो गया। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar संयोगवद्य यह बात श्रीरमनसिंह के कानोंपर जा पहुँची और वे उस कुएँपर पहुँच गये। उन्होंने व्यापारीको सान्त्वना देते हुए कहा—'जो हुआ सो हो गया। राम-राम किहये। बहुत परेशान हैरान हो गये हैं। गरमीके दिन हैं। प्यास लगी होगी, गाँवमें चलकर पानी पी लीजिये।' व्यापारी बेचारेने कहा—'मुझे तो एक ही प्यास है।' श्रीरमनसिंहने उनको किसी तरह गाँवमें लाकर शरबत पिलाया और फिर नोटोंका पुलिंदा लाकर उनके हाथपर रख दिया। गिननेपर पूरे एक हजारके नोट निकले। व्यापारी वाग-वाग हो गया। उसने २५०) रुपये श्रीयादवको देने चाहे परंतु उन्होंने एक पैसा भी नहीं लिया। व्यापारी और यादव दोनो ही परम प्रसन्न थे। व्यापारी लोये रुपयेपाकर और यादव अपने कर्तव्यका पालन कर!

(&)

भृखों मरतेका पाप अपराध नहीं

१९७५ का भयानक दुर्भिक्ष था। भूरा छहारके घरमें सात आदमी थे—दो लड़के, तीन लड़कियाँ और दो स्त्री-पुरुष स्वयं। वह बारह-बारह महीनोंके वादोंपर किसानोंका काम करता, परंतु इस सालकिसानोंके, खेतोंमें, खिलहानमें कुछ था ही नहीं, तव उसे क्या मिलता। घरकी हथौड़ी-बसौली सब बेच दी, तो भी गरीबीके वे लम्बे दिन कट नहीं पाये। दो-दो तीन-तीन दिनोंके लंधनके बाद बच्चोंके करुण कन्दनसे घबराकर भूरा छहारने चावियोंका गुच्छा लिया और हथौड़ी-छीनी लेकर बह घरसे निकला। यों रोज जाने लगा और कभी कुछ अनाज, कभी रुपया-दो रुपया, कभी छोटा-मोटा कोई चाँदीका गहना लेकर घर आने लगा। कोई पूछता तो कहता पर खड़ियाकी चक्की टाँकने गया था।

एक दिन जुवानसिंह ठाकुरके कोठारसे अनाज निकला, तब भूरा छहारपर बहम हुआ । माली बुढ़ियाने—'भूरा छहारके घर रोज एकादशी होती, अब पारणा कहाँसे होने लगा'—विचार कर संदेह किया । उसने यह बात बतायी । फीजदारने भूराको पकड़ लिया, बाँधा, मारा और उसके घरकी तलाशी ली । चावियोंका गुच्छा प्राप्त किया । उससे स्वीकार करानेके लिये फीजदारने उसे मार-मारकर अधमरा कर दिया । पर भूराका एक ही उत्तर था—'मैं कचहरीमें ही बयान दूँगा ।'

छुहारकी सचाई-ईमानदारीपर गाँवका विश्वास था। भूखके मारे भले ही कुछ कर लिया हो। भूराके हाथोंमें हथकड़ी डालकर फीजदारने दो विपाहियोंके साथ उसे कचहरीमें भेज दिया। मुकदमा चला। हाकिस्ने केस पढ़ा। सेंध लगाना, अनधिकार प्रवेश करना, नेरी करना आदि बहुतसे अभियोग थे। कारीगरवर्गके आदमीको पूरा दण्ड नहीं मिलेगा तो बड़ी और भयानक चेरियों होने लगेंगी। ऐसा पुलिसने लिखा था।

भूराका वयान गुरू हुआ-

भीने किसी व्यसन या बदनीयतीसे चोरी नहीं की। अपराधीके रूपमें में पहली ही बार कचहरीमें आया हूँ। मैंने चाबियाँ लगाकर अनाज गहने आदिकी जो चोरी की है, वह मालदार बननेके लिये नहीं। मेरे घरमें तीन दिनोंसे अनाजक दाना नहीं था। कहीं उधार मिला नहीं; पेटका खड़ा मरकें लिये बच्चे प्याजके छिलके हूँ दृते थे। माँके सामने रोटीकें लिये बच्चे प्याजके छिलके हूँ दृते थे। माँके सामने रोटीकें लिये बुरी तरह रोते थे। मैं अनाजके लिये गाँवके व्यापारी, किसान-जमीदार, सभीके पास भिलारीकी तरह हो आया, पर किसीने भी गाँवके कारीगरको उधारके रूपमें भी एक वक्तका अनाज नहीं दिया। तब मुझे यह रास्ता अपनाना पड़ा। पुलिस मुझे पूरा मार डालती तो अच्छा होता। अधमरा किया, इससे तो भूखकी च्वाला बढ़ेगी ही। अब सरकार जो कुछ सजा करें, सो कबूल।'

यों कहते-कहते ही चकर आ जानेके कारण वह कठघरेमें ही गिर पड़ा।

भूराके मुँहपर जल मँगाकर छिड़का गया। चपरावीने हवा की। मूर्छा टूटी। अपराधी उड बैठा।

लगभग आधे घंटेमें हाकिमने दो पृष्ठोंका फैसल मुनाया। उन्होंने कहा—'बच्चोंकी भूखके दुःखसे हताज्ञ होनेके कारण माता-पिताका दिमागपर काबू न रहे और वे पेटके लिये अपराध करें तो क्षमाके पात्र हैं। परंतु दानके छोटे-बई चन्दोंमें ऐसे गरीव परिवारोंपर दया करके इनकी सार-सँभालके लिये समाज सहायतामें हाथ लंबा नहीं करता—यह देशका दुर्भाग्य है। मेरे व्यक्तिगत वेतनमेंसे पचीस रुपये इस अपराधी को इसके बच्चोंकी परवरिशके लिये दिये जाते हैं।'

कोर्टमें उपस्थित सभी लोग आश्चर्यमें डूब गये। 'अखण्ड आनन्द'

—नारायण गो० कलसारकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भी थी ति नहीं स्कारक त्र मिल चित्तन

त सम्ब

छिनता

हिं सो

बे प्राहक बा लिये बबतक व्यमित बनेपर दही उ

> संख्यामें स

मनीआ डे संख्या पृ गला ही

आजीवः

सभा-स्र आये हु अतएव या न प करें औ और उ

विकार रामः

रामः हिकाउ पाठ्यक्रममें कोई परिवर्तन नहीं होगा

कल्याणके गत ९वें अङ्कमें पृष्ठ १२११ पर ।पाठ्यक्रमसे रामकृष्णका वहिष्कार' शीर्षक एक सूचना वी थी, उसके सम्बन्धमें हमारे पास बहुत से पत्र आये हैं। हर्वका विषय है कि अब वैसी कोई हियोंके वा पार्टी है। एसेंवलीके बहुतसे सदस्योंको श्रीमदनगोपालजी सिंहलने छपे पत्रक भेजे थे। कारको भी लिखा गया था। हमने भी उत्तरप्रदेश सरकारके शिक्षाविभागसे पूछा था। उत्तरमें मिला है। सरकारने यह विज्ञिति निकाल दी है कि 'वेसिक स्कूलोंकी पाठ्ययुस्तकोंमें किसी प्रकारका दमीको वर्तन नहीं किया जायगा।' सरकारको इसके लिये हमारा धन्यवाद है और जनतासे निवंदन है कि त सम्बन्धमें कोई आन्दोलन अब कृपया न करें।

'कल्याण' के आजीवन ग्राहक वनिये

प्रतिवर्ष 'कल्याण' का भूल्य भेजनेकी वात समयपर सरण न रहनेसे वहुतसे प्रेमी ब्राहक-ब्राहिकाओंको हिनता होती है और समयपर रुपये न पहुँचनेके कारण बी॰ पी॰ द्वारा 'कल्याण' बहुत देरसे मिलनेपर हैं क्षोभ होता है। ब्राहकोंको इस असुविधासे वचानेके लिये हमारे ट्रस्टीगणने यह निश्चय किया है कि ाजका ब्रेप्राहक रु० १००) (एक सौ रुपये) एक ही साथ भेज देंगे वे 'कल्याण'के 'आजीवन ग्राहक' त लिये जायँगे। अर्थात् एक साथ एक सी रुपये देकर आजीवन ग्राहक वननेवाले सज्जन या देवी विके वितक स्वयं जीवित रहेंगे और जवतक 'कल्याण'का प्रकाशन होता रहेगा, तवतक उनको प्रतिमास विमित रूपसे ठीक समयपर 'कल्याण' भेजा जाता रहेगा। (श्राहक वननेवाले व्यक्तिका देहावसान हो तिगर उनके उत्तराधिकारीको 'कल्याण' नहीं मिलेगा अथवा किसी कारणविशेषसे 'कल्याण' का प्रका<mark>रान</mark> ह हो जायगा तो संस्थापर उन आजीवन ब्राहकका कोई हक दोष नहीं रहेगा।)

ऐसे आजीवन ब्राहक 'कल्याण' की विशाल ब्राहक-संख्याकी दृष्टिसे वहुत ही कम, एक परिमित

शंखामें ही बनाये जायँगे।

38

किसने

चोरी

गेरियाँ

की।

। मैने

, वह

रनेके

पारी,

ा, पर

क्तका

ड़ा।

ग्रमरा

र जो

सीने

या।

नारण_

लिये

-बड़े

लके

शका

ाधी-

1 6

कर

अतएव 'आजीवन ग्राहक' वनना चाहनेवाले सज्जनों और देवियोंको तुरंत रु० १००) (एक सौ रुपये) मीआर्डर या डाक-बीमाद्वारा या बैंक-ड्राफ्टसे भेजकर अपना नाम शीघ्र दर्ज करा लेना चाहिये। निर्धारित संख्या पूरी हो जानेपर और ग्राहक नहीं वनाये जा सकेंगे।

आजीवन ब्राहक बनने गुरू हो गये हैं, पर अब जल्दी करनी चाहिये; क्योंकि विद्योषाङ्क निकलने-गला ही है। हमारा निवेदन है कि कल्याणके प्रेमी महानुभाव स्वयं आजीवन प्राहक वनें और चेष्टा करके शजीवन आहक बननेके लिये अपने इष्ट-मित्रोंको प्रेरणा करें एवं रुपये भिजवानेमें शीवता करें।

व्यवस्थापक--'कल्याण', पो० गीताप्रेस, (गोरखपुर)

आवश्यक सूचना

भाईजी हनुमानप्रसाद पोद्दार आजकल न तो नियमितरूपसे पत्रोंका उत्तर ही दे पाते हैं, न सभा-समितियोंमें सम्मिलित हो सकते या आनेवालोंसे सबसे मिल ही सकते हैं। हजारों पत्र उनके नाम गये हुए विना उत्तरके पड़े हैं। पहले भी यह सूचना दी गयी थी। पर पत्र ज्यॉं-के-त्यों आते ही रहे। अतपव पुनः प्रार्थना है कि विशेष आवश्यक होनेपर ही उनको व्यक्तिगत पत्र छिर्खे। पत्रका उत्तर देरसे पहुँचे ण न पहुँचे तो कृपया क्षमा करें; सार्वजनिक सभाओं-उत्सव-समारोहोंमें उन्हें बुलानेका कृपया आग्रह न भी और यहाँ मिलनेके लिये भी पहलेसे स्वीकृति प्राप्त किये बिना कृपया न प्रधारें। कोई सज्जन आ जायँगे बीर उनसे मिलना नहीं होगा तो उन्हें व्यर्थ कष्ट होगा, इसीसे यह विनीत प्रार्थना की गयी है। विक्रम-सं० २०२०का गीता-पञ्चाङ्ग छप रहा है। बहुत शीघ्र तैयार हो जायगा

रामचरितमानस (सटीक-मोटा टाइप हमारे रु० ७.५० वाले संस्करणकी तरह) क्षिाऊ मोटे कागजपर १००० प्रतियोंका बढ़िया संस्करण, मुल्य ११.०० (ग्यारह रुपये), डाकखर्च ३.९४। CC-0. In Public Domain व्यवस्थामहत्त्रान्योतात्रस्य भाषात्रस्य (गोरखपुर)

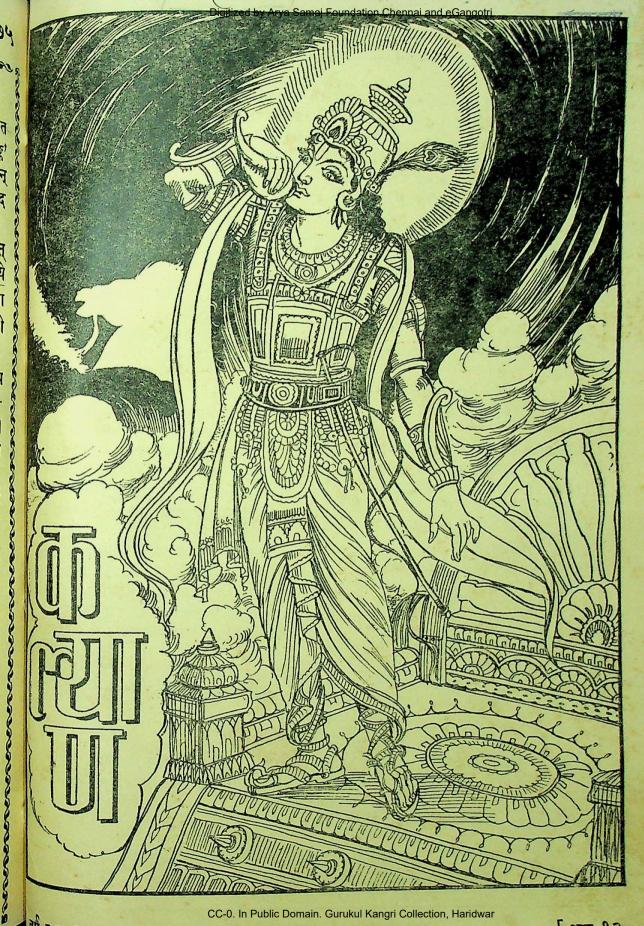
'क ाण'के प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंकी सेवामें प्रार्थना

- (१) यह 'कल्याण'के ३६वें वर्षका ११ वाँ अङ्क है। दिसम्बरका १२वाँ अङ्क प्रकाशित हो जानेपर यह वर्ष पुरा हो जायगा। ३७वें वर्षका पहला विशेषाङ्क 'संक्षिप्त-ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क' होगा । इसकी छपाई आरम्भ हो गयी है । इसमें भगवान् श्रीराधाकृष्णके दिच्य चरित्र, भगवान् हाना । इसका छमार जार गरित हुर्लभ स्तोत्र, कवच, मन्त्र आदि तथा ज्ञान-विज्ञान-सदाचारका विश्वद वर्णन रहेगा । बहुत सुन्दर रंगीन तथा सादे चित्र होंगे ।
- (२) इस बहुमूल्य विशेषाङ्क्का मूल्य ७.५० ही रहेगा । पृष्ठ-संख्या भी पूर्वम लगभग ७०० होगी। अतएव पुराने ग्राहकोंको तुरंत मनीआर्डरहारा ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये । मनीआर्डर फार्म इस अङ्कमें भेजा जा रहा है। नये ग्राहकोंको भी शीघ्र रुपये भेजकर अपना नाम लिखना लेना चाहिये। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणको लोग बहुत चाहते हैं, अतएव यह अङ्क शीघ्र ही समाप्त हो जायगा, ऐसा लगता है।
- (३) रुपये भेजते समय मनीआर्डरके कूपनमें पुराने ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या अवस्य लिखनेकी कृपा करें और नाम, पता, मुहल्लेका नाम, ग्राम, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि बहे-बड़े साफ अक्षरोंमें लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा अवस्य करें। रुपये मनीआर्डरद्वारा भेजने-भिजवानेमें जल्दी करनी चाहिये। केवल विशेषाङ्कका मृल्य भी ७. ५० है। इसलिये वर्षभरका ग्राहक बननेमें ही लाभ है।
- (४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर सचना अवक्य दे दें, जिससे व्यर्थ वी० पी० भेजनेमें समय और डाकरवर्चका अपव्ययन हो।
- (५) गीतांप्रसका पुस्तक-विभागतथा 'कल्याण-कल्पतरु' विभाग कल्याण-विभागसे पृथक हैं। अतः पुस्तकोंके तथा 'कल्पतरु'के लिये उन-उनके व्यवस्थापकके नाम ही अलग-अलग आदेश
- (६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत देरसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मृल्य ८.७५ (आठ रुपये पचहत्तर नये पैसे) हैं।
- (७) सभी कृपाल ग्राहक-अनुग्राहक तथा प्रेमी पाठक-पाठिकागण कम-से-कम् दो-दो नये ग्राहक बनाकर देशमें सद्भावोंका प्रसार करनेमें सहायक बनें । यह विनीत निवेदन है।
- (८) इस अङ्कमें लेख प्रायः नहीं जायँगे। इस अङ्किती सामग्री भी कहीं बढ़ गयी ती अगले अङ्कोंमें देनी पड़ेगी। अतएव कोई महानुभाव लेख, कविता आदि कृपया न मेजें। जिन्होंने मेजे हों, वे सज्जन न छपनेपर कृपया अप्रसन्न न हों।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

गीता-दैनन्दिनी सन् १६६३का दूसरा संम्करण

गीता-दैनिन्दनीका प्रथम संस्करण साठ हजार प्रतियोंका छापा गया था, परंतु ग्राहकोंकी माँग अधिक देखकर चालीस हजार प्रतियोंका द्सरा संस्करण छाप लिया गया है



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

紫

紫

紫

[अङ्क १२

वाषिक मृल्य भारतमें रु० ७.५० विदेशमें रु०१०.०० (१५ शिहिंग) जय पावक रिव चन्द्र जयित जय। सत चित आनँद भूमा जय जय।। जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जयजय।। जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते।। साधारण प्रवि भारतमें .४५ विदेशमें .५६ (१० वेंस)

E7.287

वुस्तकालय

गुमकल करेंगड

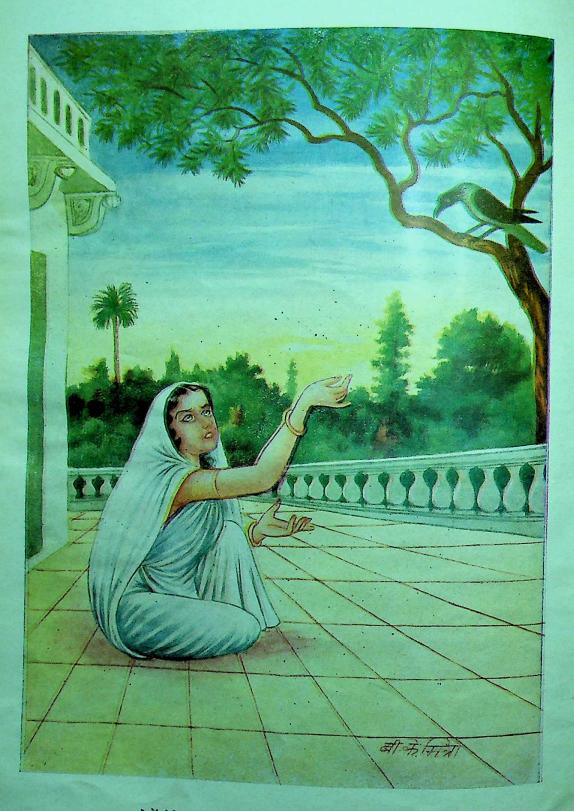
,

मित ४५

11

कल्याण ा

रामकी प्रतीक्षामें कौसल्या



कब ऐहें मेरे वाल कुसल घर, कहहु, काग ! फ़ुरि बाता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ पूर्णमदः पूर्णिमदं पूर्णात् पूर्णमुद्दच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् । ध्यात्वा म्रुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात्।।

वर्ष ३६

गोरखपुर, सौर पौष २०१९, दिसम्बर १९६२

संख्या १२ पूर्ण संख्या ४३३

कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग! फुरि बाता

बैठी सगुन मनावित माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर, कहहु, काग ! फुरि बाता ॥
दूध-भातकी दोनी देहीं, सोने चोंच मढ़ैहीं।
जब सिय-सहित बिलोकि नयन भिर राम-लघन उर लैहों॥
अविध समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ, पाय पिर पूछिति प्रेम-मगन मृदु बानी॥
तेहि अवसर कोड भरत निकट तें समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो॥

—गीतावली



कल्याण

याद रक्खो—संसारके बड़े-से-बड़े भोग-सुखोंकी अपेक्षा परमात्मसुख अत्यन्त विलक्षण और अनुपम है। संसारके किसी भी सुखके लिये परमात्मसुखकी साधनामें जरा भी बाधा कभी मत आने दो। किसी भी हालतमें परमात्मसाधनामें शिथिलता मत आने दो। यह भी मत देखों कि लोग क्या कह रहे हैं और क्या कर रहे हैं। तुम्हारी अपनी साधनाका कार्य सच्चा निर्दोष होना चाहिये।

याद रक्खो—अपने निर्दोष साधनको या सत्कार्यको भय, संकोच, ठोकविरोध आदि कारणोंसे जो छोड़ देता है, वह पतित हो जाता है । भगवान्के सामने—अपने आत्माके सामने तुम्हारा कार्य निर्दोष और सत् होना चाहिये, फिर चाहे कोई कुछ भी कहे, उसकी परवा नहीं करनी चाहिये और अटल अचल भावसे अद्भा-विश्वासके साथ उस सत्कार्यमें लगे रहना चाहिये।

याद रक्खो—तुम्हारे साधनमें विघ्न आ सकते हैं, प्रबल प्रतिकृत्वता आ सकती है, विकट विपत्ति आ सकती है, पर उससे घबराओ मत । शुद्ध मनसे भगवान्पर विश्वास करके अपनी साधनामें जुटे रहो और भगवान्से प्रार्थना करो कि वे अपनी कृपासे सब विघ्नोंको दूर कर दें । भगवान् जरूर दूर कर देंगे । उनकी घोषणा है, मुझमें चित्त लगानेवाले पुरुषको मेरी कृपा सारे विघ्नबाधाओंसे पार लँघाकर आगे ले जाती है ।

याद रक्खों—कभी-कभी जगत्की अनुकूलता, लोगोंके द्वारा मिलनेवाला मान, प्रतिष्ठा-प्रशंसा आदि भी साधनामें बहुत बड़े विष्ठका काम करती हैं । वे वास्तविक परमार्थसाधनासे हटाकर अपने नाम-रूपकी पूजा-प्रतिष्ठाकी साधनामें लगा देती हैं । वह फिर, भगवान्की प्रसन्नताकी जगह लोकरञ्जनमें लगाकर अपनेको लोकानुकूल निषिद्ध आचरणोंमें लगा देता है और पतित हो जाता है । इसी प्रकार श्रद्धालु लोगोंके द्वारा शरीर-सुख—इन्द्रिय-मोगोंकी प्राप्ति भी साधनाका बड़ा बिन्न है। इन्द्रियसुखकी प्रवृत्ति बहुत ही शीव परमार्थ-साधनाका विनाश करती है। इसिलिये न तो दु:ख, विपत्ति, प्रतिक्ला, निन्दासे हरों और न मान-प्रतिष्ठा, पूजा, भोग-सुख आदिमें फँसो। इन दोनें प्रकारके विन्नोंसे दूर रहकर नित्य-निरन्तर परम निष्ठाके साथ निर्दोत्र परमार्थ-साधनमें लगे रहो।

मिः

का

औ

हा

बड़

यह

हो

फल

तरह

शि

भी

भी

मन

कुरो

अङ्ग

प्रक

भले

उस

अत्य

की

धनर

आत्र

परास

है।

आज

मतव

महा

हमान् पूरा

याद रक्खो—साधनामं कहीं बाहरका दिखावा न आ जाय । साधनाका बाहरी दिखावा सर्वथा नकली चीज है । अंदरसे साधनामें लगे रहो । हृदयको सदा काम, क्रोध, लोम, हिंसा, वैर, दम्म, दर्प आदि सारे दोषोंसे शून्य करके परम उज्ज्वल और पवित्र रक्खो। बाहरसे लोग तुम्हें साधक न वतावें तो उसमें तुम्हारा परम लाम है, तुम्हारा साधन-धन उत्तरोत्तर बढ़ता रहेगा। और बाहरसे यदि लोग तुम्हारी निन्दा करें तब तो तुम अपनेको विशेष भाग्यवान् और भगवान्का कृपापात्र समझो; क्योंकि ऐसा होनेपर तुम्हारी निदीषता बढ़ेगी, उज्ज्वलता बढ़ेगी और संसारमेंसे आसिक्त दूर होगी। मन कहीं फँसेगा नहीं।

याद रक्खो—साधनामें सदा श्रद्धा-विश्वास, सावधानी, संलग्नता तथा क्रियाशीलता बनी रहनी चाहिये। अश्रद्धा, प्रमाद, आलस्य और अक्षमीण्यता कर्तव्यविमुख बना देती है। निरन्तर उत्साह, उछास, विश्वासके साथ साधनामें लगे रहो।

याद रक्खो—साधनामें कभी उकताओं मत, ऊजो मत, धैर्यके साथ लगे रहो। वस, लगे रहो। विश्वास करो, तुम अवश्य-अवश्य सफल होओगे। यदि कुछ देर हो रही है तो वह इसीलिये हो रही है कि तुम अपने प्रियतम प्रभुसे अबाध मिलनेके लिये समस्त दोषोंसे रहित होकर उनके योग्य बनाये जा रहे हो, सजाये जा रहे हो परम प्रियतमसे मिलनके लिये।

'शिव'

चीनपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेके लिये आध्यात्मिक साधन भी किये जायँ

सबका हित चाहनेवाले, सबसे प्रेम करनेवाले, सबके मित्र तथा अहिंसाके पोषक भारतवर्षपर पड़ोसी चीन-का विश्वासघातपूर्ण वर्बर आक्रमण वड़ी ही अशोभनीय और शोचनीय दुर्घटना है । भगवान्के विधानानुसार हानि-लाभ तो हुआ करता है, पर इस प्रकारका दुर्व्यवहार बड़ा ही दु: खद है और इसका पूरा प्रतीकार न होनेपर यह भविष्यमें ऐसी भीषण वर्बरताको और भी बढ़ानेवाला हो सकता है। अतएव चीनके इस अधम आचरणका फल उसे ऐसा मिलना चाहिये, जिससे भविष्यमें इस तरहकी कुचेष्टा करनेके लिये उसमें साहस, वृत्ति और शक्ति ही न रह जाय । अवस्य ही आत्माकी दृष्टिसे चीन भी विराटपुरुषका ही एक अङ्ग है और आत्माके नाते वह भी अपना ही खरूप है। उसकी भी मङ्गलाकाङ्का ही हमारे मनमें होनी चाहिये, और है भी; परंतु जैसे अपने ही शरीरमें कुरोग हो जानेपर बहुत कड़वी दवा दी जाती है और किसी अङ्गके अंदर मवाद हो जानेपर उसे कटवाना पड़ता है, उसी प्रकार दूषित विषभरे अङ्ग इस चीन-दानवको भी उसके भलेके लिये ही कड़वी दवा देना और आवश्यक होनेपर उसका सफल आपरेशन करना नितान्त उचित और अत्यावश्यक है। यह बड़े हर्षकी बात है कि भारतवर्ष-की सरकार तथा जनता सब एकमत होकर तन-मन-धनसे वड़ी वीरता तथा उदारताके साथ घरमें घुसकर आक्रमण करनेवाले इस विश्वासघाती आततायीको पूर्णतया परास्त करने और उचित दण्ड देनेके प्रयत्नमें लग रही है। यह अमङ्गलमें महामङ्गलका उदय हो रहा है कि आज देशभरमें सभी क्षेत्रोंके, सभी सम्प्रदायोंके, सभी मतवादोंके नर-नारी सारी भेदभावनाको भूलकर इस महान् कार्यमें एक साथ जुट गये हैं। समस्त देशवासियोंसे हमारा यह निवेदन है कि जबतक हम आततायीको पूरा हटा न दें और उसके कुकर्मुकाо किल्वामिक जाना है सनातन

वि

तो

न-

नों

त्री

Ţ

त्र

दें, तवतक साववानी और उदारताके साथ, जिसके पास जो कुछ हो, ईश्वर-सेवाके भावसे समर्पण करके अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये। हमारा प्रत्येक कर्म भगवदर्पित-बुद्धिसे हो । आशा, ममता और काम-ज्वर-का परित्याग करके आज हम रणाङ्गणमें रणरूप पूजाके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करें।

याद रखना चाहिये, भारत छड़ने नहीं गया था, न जाना चाहता था। उसपर तो अन्यायपूर्ण आक्रमण करके इस चीन आततायीने वीरताके साथ छड्ना उसका कर्तव्य बना दिया है। इस समय अमेरिका, ब्रिटेन आदि जो-जो देश हमारी सहायता दे रहे हैं और सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, उन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं।

युद्ध-सम्बन्वी जहाँ जितनी जैसी आवश्यकता है, व्यक्तिगत खार्थीको तथा परस्पर दोष देखना-कहना एवं आलोचना करना छोड़कर उसकी पूर्तिके लिये ययासाच्य तन-मन-धनसे सत्रको प्रयत करना ही चाहिये; परंतु साथ ही भारत-जैसे धर्मप्रधान देशको आध्यात्मिक साधनोंके द्वारा भी पूर्ण सफलताके लिये प्रयत करना चाहिये, जिससे पवित्र भारतकी पुण्यभूमि और हमारे पवित्र हिमालयकी ओर कुदृष्टिसे देखनेवाले चीनके सारे मनोर्य ध्वंस हो जायँ और हमारे कैलास तथा मानसरोवरसे सम्बन्धित तिब्बत भी ईश्वर-विरोधी धर्मनाशक चीनके चंगुलसे मुक्त हो सके।

नेपाल और भारत तो सर्वथा एकात्मक हैं। भारत नेपाल है और नेपाल भारत है। नेपाल वस्तुतः भारतवर्ष और हिंदूजाति तथा हिंदूधर्मके लिये एक बड़े ही गौरवकी वस्तु है; क्योंकि विश्वभरमें वही एकमात्र सनातनधर्मी हिंदू-राज्य है । भारत-सरकार यद्यपि अपनेको धर्मनिरपेक्ष

हिंदू-धर्मप्रधान देश ही । भारत और नेपालका एक धर्म है, एक ईश्वर है और एक शास्त्र है। भगवान् श्रीपशुपति-नाथ और श्रीमुक्तिनाथके दर्शनार्थ लाखों भारतीय हिंदू नेपाल जाते हैं और नेपाल-राज्य उदारतापूर्वक उन्हें सब प्रकारकी सुविधा देता है तथा लाखों नेपाली हिंदू अपने पवित्र तीर्थों और धामोंके दर्शनार्थ अपने घरकी तरह ही भारतमें आते हैं । वस्तुतः नेपालसे भारत धर्मतः सर्वथा अविभाज्य है । अतएव हमें पूर्ण आशा करनी चाहिये कि इस संकटकालमें, जब कि सनातनधर्म-प्रधान भारतपर धर्म तथा ईश्वरका विरोधी चीन आक्रमण कर रहा है तब, धर्मरक्षक नेपाल अवस्य ही भारतकी यथोचित यथाशक्ति सहायता करेगा । धर्मरक्षण तो नेपालका खभाव रहा है ।

मैं अपने धर्मरक्षक नेपाल-नरेश माननीय श्रीमहेन्द्र महाराजसे सादर निवेदन करता हूँ कि इस संकटके समय वे भारतकी पीठ ठोंककर सनातनधर्मके चिर वीररक्षक और सफल प्रहरीका महान् कार्य सम्पादन कर भगवत्सेवा करें।

गत अष्टग्रही योगके समय देशभरमें एकबार आध्यात्मिक साधनोंकी जो सार्वत्रिक लहर आयी थी, वह मङ्गळमयी थी। कोई चाहे न मानें, पर उसके फल-खरूप उस समय जगत्का बहुत बड़ा संकट एक बार टल गया था । यह बात उस समय भी कही गयी थी और यह प्रार्थना की गयी थी कि 'विश्व-शान्तिके छिये होनेवाले अनुष्ठानोंका फल होगा ही (और वह हुआ भी)। पर यह आराधन-अनुष्ठान तथा सदाचारका सेवन तो सदा ही चाछ रखना चाहिये। अभी तो अष्टप्रहीका परिणाम भी अगले दो-तीन वर्षोतक प्रकट होता रहेगा। अगले वर्ष क्षयमास आदि भी अनिष्टकारक बताये गये हैं। अतः हमारी जन-साधारणसे प्रार्थना है कि भगवदाराधनमें सब लोग लगे ही रहें।' (देखिये 'कल्याण' वर्ष ३६ संख्या २ पृष्ठ ७४९)

पर उस तिथिपर विशेष कुछ उत्पात नहीं हुए (हमारी

संकट टला) । इससे बड़े-बड़े लोगोंने भी आयात्मिक अनुष्ठानोंकी हँसी उड़ायी, उनपर आक्षेप किये और पित्र भगवन्नाम-कीर्तनतककी निन्दा की। हमारा तो यह विश्वास है कि उस समय आध्यात्मिक दैवीसाधनोंसे जैसा सत्ययुगका-सा वातावरण वन गया था, वह चलता रहता तो उसके कुछ ही दिनोंके बाद विश्वभरमें आरम्भ होनेवाले देश-देशमें भयानक बाढ़, भूकम्प, पर्वतपात, वायुयान-रेल-दुर्घटना आदि भीषण उत्पात न होते या बहुत ही कम होते और चीनासुरका भारतपर आक्रमण, विश्व-युद्धकी सम्भावना आदि भी सम्भवतः टल जाते। अब भी मेरी विनीत प्रार्थना है कि इस भयानक संकटकालमें हम सर्वशक्तिमान् भगवान्का आश्रय लेका आध्यात्मिक साधनोंमें जुट जायँ । अष्टप्रहीके तथा क्षय-मासादिके एवं कुप्रहोंके बहुत ही भीषण नर-संहारक और समृद्धिनाशक परिणाम दो-ढाई वर्षोतक और हो सकते हैं। अतएव वैदिक यज्ञ; भगवान् रुद्र, दुर्गा, गणेश और नारायण आदिकी उपासनामें सबको लग जाना चाहिये। चण्डीयाठ, महामृत्युञ्जयके जाप, 'कल्याण'में प्रकाशित शिव-कवच और नारायण-कवच आदिके पाठ और गायत्री-जप-पुरश्वरण आदि करने-कराने चाहिये। और कुछ न हो तो जन-जनको 'हरि: शरणम्', 'नम: शिवाय', 'गं गणपतये नमः', 'दुर्गायै नमः', 'नमो नारायणाय' आदि मन्त्रोंका अपने-अपने विश्वासके अनुसार जप तथा श्रीरामचरितमानस और वाल्मीकीय रामायणके पाठ करने-कराने चाहिये। कम-से-कम सभी लोग सर्वविध्नविनाशक और सर्वकल्याण-प्रदः भगवनामका जप-कीर्तन तो अवस्य ही करें। करोड़ों कण्ठोंसे निकलनेवाली 'हरिनाम'की पवित्र और तुमुल ध्वनिसे आकाश और दिशाएँ गूँजती रहें । सारा वातावरण नाम-ध्वनिसे भर जाय।

जैन, बौद्ध, सिख आदि महानुभाव भी अपने अपने सिद्धान्तानुसार भगवान्की प्रार्थना करें।

संख्या

अनुसा करें, रि नाश

जिससे शान्ति

इर कि वह करवा दे प्राप्त ह

सा आसुरभ अध्यातम

आचरण करें, भ

प्रा नेम्नलि

उससे स

पुखमें ह सर्वोत्तम

अपने व आप प्र

भरता व हि एक

रेशवास

क

वेत्र

पह

सा

ता

ाले

न-

ही

₹-

क

T

7-

Π

अनुसार ईसाई, मुसल्मान, पारसी सभी भगवान्से प्रार्थना करें, जिससे धर्मप्राण भारतकी पूर्ण विजय हो। अधर्मका नाहा हो, जगत्के राष्ट्रनायकोंको सद्बुद्धि प्राप्त हो, जिससे विश्वका भीषण संकट टले और समस्त विश्वमें शान्ति तथा प्रेमका विस्तार हो।

इसीके साथ भारत-सरकारसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि वह सम्पूर्ण भारतमें कानूनके द्वारा तुरंत गोवध बंद करवा दे। इससे करोड़ों हिंदुओंका तथा गोमाताका आशीर्वाद ग्राप्त होगा और परिणाममें बहुत अधिक लाभ होगा।

साथ ही, यह भी ध्यान रहे कि हम अधर्म या असुरभावका आश्रय कभी न छें। आजके जगत्का अयात्मिवरोधी जड तथा अधर्ममुळक आसुरी विचार तथा अचरण ही विनाशका कारण है। अतएव हम जो कुछ करें, भगवान्की सेवाकी भावनासे धर्मावळम्बनपूर्वक करें। प्रार्थना और नामके सम्बन्धमें महात्मा गाँधीके नेम्निलिखित शब्दोंको पढ़िये।

'·····निराधारका आधार भगवान् है। अगर आप उससे सहायताकी प्रार्थना करना चाहते हैं तो आप अपने सच्चे रूपमें उसके पास जायें, किसी तरहका संकोच या दुराव-छिपाव न रखकर उसकी शरण ठें और इस बातकी आशक्का न रखें कि आप-जैसे अधम और पतितको वह कैसे सहायता दे सकता है—कैसे उबार सकता है | जिसने अपनी शरणमें आये छाखों-करोंड़ोंकी सहायता की, वह क्या आपको असहाय छोड़ देगा ? वह किसी तरहका पश्चपात और भेद-भाव नहीं रखता । आप देखेंगे कि वह आपको हर एक प्रार्थना सुनता है । अधमसे अधमकी भी प्रार्थना भगवान् सुनेगा । यह बात अवस्य मैं अपने अनुभवसे कहता हूँ ।'

भैं विना किसी हिचिकिचाहटके यह कह सकता हूँ कि लाखों आदमियोंद्वारा सच्चे दिलसे एक ताल और लयके साथ गायी जानेवाली 'राम-धुन'की ताकत भौजी ताकतके दिखावेसे विल्कुल अलग और कई गुना बढ़ी-चढ़ी है। दिलसे भगवान्का नाम लेनेसे आजकी बरबादीकी जगह टिकाऊ शान्ति और आनन्द पैदा होगा।'*

—हनुमानप्रसाद पो**दार**

सदा प्रसन्न रहिये

(लेखक—खामीजी श्रीकृष्णानन्दजी)

यदि आपके पास अपनी प्रसन्नताके लिये कोई साधन नहीं है तो आप चिन्ता मत कीजिये । दूसरोंके उखमें ही आप अपना सुख मान लीजिये और उसी सुखमें प्रसन्न रहा कीजिये । यह सदा प्रसन्न रहनेके लिये सर्वोत्तम साधन है, पर है अभ्यास-साध्य ।

मान लीजिये कि आपके पास धन नहीं है जिससे आप न तो सुखी होते हैं और न आप प्रसन्न ही हैं। ऐसी दशामें अपने आसपास चारों ओर देखिये। कोई-न-कोई धनवान् दृष्टिगोचर हो ही जायगा। वस, उस धनवान्को देखकर आप प्रसन्नतासे फूल जाइये और ईश्वरको धन्यवाद दीजिये कि आपके पड़ोसीको उसने धन देकर सुखी किया है।

जो दूसरोंके दु:खको देखकर दुखी एवं करुणाई हो जाता है, उसको अपना दु:ख कभी दुखी नहीं भरता और जो दूसरोंके सुखको देखकर सुखी होता है वह सदा प्रसन्न रहता है—इसमें कोई संदेह नहीं । ^{मह} एक संतका अनुभव है जो मुझे प्राप्त हुआ है और सबके अपनानेकी वस्तु है ।

^{*} वड़े हर्षकी वात है कि देशमें स्थान-स्थानपर यज्ञ, जप, पाठ, प्रार्थना, नाम-कीर्तन आदि आरम्भ हो गये हैं। समस्त रेशवासी खास करके, धर्म तथा ईश्वरमें विश्वास क्रिकेक किल्याण के आहत हुन्ए अहित क्रिके व्यापन है।

WAS CONTRACTOR CONTRAC

चीन-दमनकी साधना और सिद्धि

एक ब्रह्म है च्यापक सबमें सभी ब्रह्मका है विस्तार। विश्व-चराचरका है केवल सचिन्मय वह ही आधार।। शत्र-मित्र, पर-बन्धु न कोई, नहीं कहीं भी कुछ भी अन्य। एक सर्वगत लीलामयकी लीला ही चल रही अनन्य।। लीलामें विभिन्न रस होते, अभिनय होते विविध विचित्र । रङ्गमश्चपर समुद खेलते बनकर अभिनेता अरि-मित्र ।। इसी तरह है आज खेलना चीन-शत्रुसे हमको खेल। उसे भगाना है भारतकी भन्य भृमिसे बाहर ठेल ।। कर विश्वासघात वह आया द्र्य भयानकका धर वेश। उसके इस दुःसाहस दुष्टवृत्तिका है कर देना शेष ।। दाँत न खट्टे करने हैं, करना है विषद्न्तोंको भंग। जिससे हो जायें विक्वर्जित निर्मल उसके सारे अंग ।। हो उत्पन्न सुबुद्धि, जगे फिर उसके उरमें पश्चात्ताप। धर्म-ईशको माने, छोड़े नास्तिकताका सारा पाप।। अतः लगाकर तन-मन-धन सब, लेकर प्रभुका ही आश्रय। रखकर साथ धर्म-ईश्वरको जूझें हम रणमें निर्भय।। सब कर्मोंका करें निरन्तर हम केवल प्रभुमें संन्यास। करें युद्ध, तज आशा-ममता, करके कामज्वरका नाश ।। ईश-प्रार्थना देवाराधन हो रखकर श्रद्धा-विश्वास । पूर्ण विजय हो भारतकी, हो पापबुद्धिका सहज विनाश ।। बल-विज्ञानयुक्त देशोंके प्रमुखोंमें उपजे सद्घद्धि। सबमें हो सद्भाव, सभीमें हो हितयुक्त प्रेमकी वृद्धि ।। सभी सभीको सुख पहुँचावें, सबका सभी करें सम्मान। सबके ही शुचितम कर्मोंसे सदा सुपूजित हों भगवान ।। हरिसेवामय ग्रुद्ध कर्म यह जीवन सफल करे निष्काम। मिले परम फल निर्मल सिचनमय परधाम ॥ मानवताका

ईश्वर-वाणी

कलम हाथमें लेकर बैठा लिखनेको युगवाणी, जनकविके कानोंमें गूँजी तब यह ईश्वर-वाणी—

सुनो सुनो हे देशवन्धुओ ! मैं सबका आत्मा हूँ: तुम भुझमें हो, मैं तुममें हूँ, मैं खुद परमात्मा हूँ। मैं ही सबका आदि-मध्य हूँ तथा अन्त मैं सबका ; मैं हूँ अक्ष्य काल व धारणकर्ता मैं हूँ सबका। में हूँ सब जीवोंका जीवन, ग्रुझसे सब कुछ होता ; मेरे विना जगतमें कुछ भी चर या अचर न होता। मेरे रूप हजारों लाखों हैं व करोड़ तरहके; उनकी आकृति तरह-तरहकी, रँग भी तरह-तरहके। रूप नित्य नव घटनाओंका करता हूँ मैं धारण ; भारतकी सीमापर मैं ही आज बन गया हूँ रण। भारतकी जनतामें मैं ही ऐक्य-रूपमें जागा: वीरभाव यह मैं ही हूँ जो जन-जनमें है जागा। बढ़े हुए चीनी दुष्टींका क्षय करने हूँ आया ; युद्ध रूपमें आज हिंदको जय देने हूँ आया। भारतीय सेनामें रहकर मैं रिपुको खाऊँगा ; वीरोंको मैं दिलवाऊँगा। श्रेय हिंदके असुर मरेंगे निश्चय ही ये, इन्हें मरा ही जानो ; ओ अजेय भारतके वीरो ! अपनी जय पहचानो । तुम निमित्त हो, करनेवाला मैं हूँ सबका आत्मा ; विजय तुम्हारी होगी, कहता हूँ मैं खुद परमात्मा।

कविद्वार। यह ईश्वर-वांणी पहुँचेगी जन-जनमें ; विजय सत्यकी होगी यह विश्वास भरेगी मनमें।

—मधुसूदन वाजपेयी

दृष्टि-शिक्षा

(लेखक-स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज)

विचारशील मनुष्यके मनमें बहुत वार ऐसा विचार आता है कि यह कार्यकारणरूप सुख-दुःखमय संसार अनादिकालसे चला आता है, इसका मला क्या कारण होगा १ ऐसा विचार तो बहुतोंको आता है; परंतु इसका पता लगानेमें प्रवृत्त तो कोई विरला ही होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें संसार-वृक्षका वर्णन किया है और उसका मूल भी वतलाया है। इतना ही नहीं, उस मूलको काट डालनेवाले शस्त्रका भी वर्णन किया है। परंतु वहाँ विशेष अर्थ-गाम्भीर्य होनेके कारंण साधारण मनुष्यके लिये उसे समझना कठिन हो जाता है।

पातञ्जल-योगदर्शनमें इस चीजको इस तरहसे रक्खा गया है, जिसमें सर्वसाधारण मनुष्य भी समझ सके। अतः उसीको देखना है। इस प्रसङ्गमें भगवान् पतञ्जिल कहते हैं—

द्रष्टुदश्ययोः संयोगो हेयहेतुः। (२।१७)
द्रष्टा—आत्माका दृश्य-इस शरीरके साथ जो संयोग
हो गया है अर्थात् जो तादात्म्य-सम्बन्ध हो गया है, वही
संसाररूपी दुःखका कारण है और उसीके कारण—यह
जन्म-मरणका प्रवाह चालू रहता है।

'संयोग हो गया है'—इसका अर्थ इतना ही है कि परस्पर-विरोधी स्वभाववाले पदार्थों के स्वभावका एक दूसरेमें आरोपण, आत्माके धर्मकी अनात्मा शरीरमें कल्पना । आत्मा परम पवित्र है, उसके बदले शरीरको—जो अपवित्रताका धाम है—पवित्र मानना । आत्मा अविनाशी है, उसके बदले क्षणभङ्गर शरीरको अविनाशी मानना । आत्मा स्वभावसे ही मुखरूप है, उसके बदले दुःखरूप शरीरको मुखी करने— उसे मुखरूप बनानेका जीवनभर प्रयत्न करना । और आत्मा चेतन-स्वरूप है, उसके बदले जड शरीरको चेतनरूप जानना । इत्यादि-इत्यादि ।

इसी प्रकार शरीरके धर्मका आत्मामें आरोप किया जाता है। जैसे, शरीरके दुबले होनेपर आत्माका अपनेको दुबला कहना, शरीरके वृद्ध होनेपर आत्माका अपनेको वृद्ध कहना, शरीरके जन्मको आत्माका अपना जन्म मानना और शरीरकी मृत्युसे आत्माका अपनेको मरनेवाल मानना। 'मानकर मृत्यु आत्माकी मृत्यु पाता है अज्ञानी।'

इस प्रकार आत्मा और शरीर दोनों विल्कुल विलक्षण है और विरुद्धधर्मवाले हैं, परंतु ईश्वरकी मायासे दोनों एकस्प हो जाते हैं और इसी कारण संसारचक्र चालू रहता है।

इस संयोगको दूर करनेके लिये मनुष्यको अपनी हृष्टि ठीक करनी चाहिये । आत्माके धर्मोंको देखने-जाननेके लिये दिन्यहृष्टि या ज्ञानहृष्टि रखनी चाहिये । और शरीर तथा उसके धर्मोंको समझनेके लिये व्यावहारिक हृष्टि रखनी चाहिये; क्योंकि—शरीर तथा संसार व्यावहारिक सत्तावाले, हैं और आत्माकी सत्ता पारमार्थिक है ।

पारमार्थिक और व्यावहारिक दृष्टिको अलग-अलग रखनेकी आवश्यकता है। जब एक दृष्टिसे विचार करते हों, तब दूसरी दृष्टिसे उसपर विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि दोनों दृष्टियोंकी भूमिकाएँ अलग-अलग हैं। इन दोनों दृष्टियोंकी भूमिकाएँ अलग-अलग हैं। इन दोनों दृष्टियोंकी जब संकरता हो जाती है—दोनों एक साथ मिलकर देखने लगती हैं, तब यथार्थ बोध नहीं होता। इतना ही नहीं, उलटी समझ (विपर्यय-बुद्धि) हो जाती है। इन दोनों दृष्टियोंको अलग-अलग रखनेकी जरूरत है, इसी बातको बतानेके लिये मानो मनुष्यको सृष्टिकर्त्ताने दो आँखें दी हैं। भाव यह कि जब पारमार्थिक दृष्टिसे विचार करते हों, तब व्यावहारिक आँख बंद कर लेनी चाहिये। इसी प्रकार जब व्यावहारिक दृष्टिसे देखते हों तब पारमार्थिक आँख बंद रखनी चाहिये। इसी तत्त्वके प्रतीकरूपमें स्थूल शरीरमें दो आँखें हैं।

इसे समझनेके लिये उदाहरण लें । चार-पाँच आदमी बैठकर परस्पर बातचीत कर रहे हैं । इनमेंसे एक आदमीको ज्वर आता था । इसपर एक दूसरे भाई, जो वैद्यक विद्याके जानकार हैं, कहते हैं—'भाई ! कुटकी-चिरायता रातको मिगोकर सबरे पीना ग्रुरू कर दो तो तुम्हारा ज्वर चला जायगा ।' इसी बीच एक दूसरे भाई बोल उठते हैं कि 'इतनी माथापचीकी क्या आवश्यकता है, आखिर तो सब ब्रह्मरूप ही है न ! अतएव कुटकी-चिरायता भी ब्रह्मरूप ही है और यह धूलकी चिमटी भी ब्रह्मरूप ही है, इसलिये ज्वर तो धूलकी चिमटीसे ही उतर जायगा ।'

ना।

र ल्प

हिं

निके

शरीर

खनी

वाले.

नलग

हों,

योंकि

योंमं

खने

रहीं,

रोनों

तको

青1

तव

जब

बंद

रमें

मी

南

ाके

को

ला

तो

रूप

अब यहाँ दृष्टिकी संकरता हो जानेसे यथार्थ ज्ञान तो होता ही नहीं; बिलक ज्ञानका उल्टा अर्थ हो जाता है। कटकी-चिरायते आदिसे न्वर उतरनेकी वात व्यावहारिक दृष्टिकी है और 'सब ब्रह्मरूप है'—यह बात पारमार्थिक दृष्टिकी है; अतएव इम जिस भूमिकापर बात कर रहे हों, उसी दृष्टिसे बात होनी चाहिये । वहाँ दृष्टिभेद होनेपर परिणाम बहुत हानिकारक होता है।

इसी विषयको समझाते हुए उद्धवजीसे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

शुद्धचशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ।

धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमपि चानव । (श्रीमद्भागवत ११।२१।३-४)

वस्तुओंके समान होनेपर भी ग्रुद्धि-अग्रुद्धिका विधान किया जाता है, जिसके द्वारा धर्म सम्पादन कर सके, समाजका व्यवहार ठीक कर सके और जीवनयात्राका निर्वाह हो सके। तत्त्वदृष्टिसे समस्त पदार्थ ब्रह्मरूप या भगवत्-रूप ही हैं, परंतु व्यवहारकालमें उनको पृथक्-पृथक् समझना चाहिये। सोनेके सब गहने सोना ही है; परंतु उनके नाम-रूपके

अनुसार कंठी गलेमें पहनी जाती है और कड़े हाथोंमें ।

इसका यह कारण है कि प्रत्येक पदार्थके धर्म अलग-अलग हैं । धर्मसे अभिप्राय है-स्वभाव या गुण । अतएव व्यवहारकालमें तो जहाँ जो पदार्थ चाहिये, वहाँ दूसरे पदार्थसे काम नहीं चलता। फिर गुण अलग-अलग होनेके कारण उनका उपयोग भी पृथक-पृथक रीतिसे होना चाहिये। कारण, जीवनयात्रा या जीवननिर्वाहके लिये ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्धमें ध्यान न रखनेसे शरीरका नाश हो जाता है।

इससे उलटा दृष्टान्त लीजिये। एक भाई वेदान्त समझाते हुए कहते हैं-ब्रह्मसे ही उत्पन्न होनेके कारण यह जो कुछ भी जाप्रदादि प्रपञ्च दिखायी देता है, सब ब्रह्मरूप ही है। 'यह जो कुछ दिखायी देता है, सब ब्रह्मरूप ही हो तो फिर नीम कड़वा क्यों लगता है और चीनी मीठी क्यों लगती है ! एक ही ब्रह्म एक जगह कड़वा और दूसरी जगह मीठा हो तो ब्रह्ममें विषमता आ जाती है, अतएव आपकी यह बात ठीक नहीं है ।' ऐसी शंका की गयी।

अब देखिये। यहाँ भी दृष्टिकी संकरतासे ही यथार्थ बोध नहीं होता। बल्कि विपरीत बोध होता है। अर्थात् CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अन्यथा ज्ञान होता है। सब ब्रह्मरूप ही है, यह निरूपण आध्यात्मिक भूमिकाका विषय है और नीमके कड़वे लगने तथा चीनीके मीठे लगनेकी वात व्यावहारिक भूमिकाकी है। अतएव जहाँ आध्यात्मिक या पारमार्थिक दृष्टिसे वात होती हो, वहाँ व्यावहारिक उदाहरण कामके नहीं होते । उनसे तो दृष्टिमें संकरता आ जाती है, जिससे विपरीत ज्ञान होता है । यथार्थ ज्ञान नहीं होता ।

ये तो लौकिक साधारण दृष्टान्त हुए, अव एक स्मृतिका दृष्टान्त लीजिये। गीतामें भगवान कहते हैं-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, चाण्डाल, गौ, हाथी और कुत्ता-इन सबमें ज्ञानी पुरुष समानदृष्टिसे देखते हैं।

'समदर्शिनः' शब्द वतलाता है कि यह प्रसङ्ग पारमार्थिक दृष्टिका है। अभिप्राय यह कि जिस पुरुषने तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसकी दृष्टिमें शारीरिक भिन्नता प्रकृतिका कार्य होनेके कारण मिथ्या है। इसिलये वह सभी प्राणियों में एक ही आत्माको देखता है। इन पाँचों प्राणियोंके शरीर स्वभावः उपयोग सभी अलग-अलग हैं। कभी एक हो ही नहीं सकते । परंतु इन सभीमें चेतन सत्ता तो एक आत्माकी ही है । यों समझकर ज्ञानी पुरुष पारमार्थिक दृष्टिसे इन सबको आत्मारूप देखता है। परंतु व्यावहारिक दृष्टिसे तो शरीरके व्यवहारकालमें उस ज्ञानीको दूधकी आवश्यकता होगी तो वह गौका ही लेगा, कुतियाका नहीं । सवारी करनी होगी तो हाथीपर की जायगी, कत्ते या गायपर नहीं। खेतकी रखवालीका काम होगा तो कुत्ता ही करेगा, हाथी या गाय नहीं । इसीलिये प्रस्तुत श्लोकमें 'समदर्शिनः' शब्दका व्यवहार किया गया है, 'समवर्तिनः' का नहीं है। समान देखना है, समान व्यवहार नहीं करना है। अतएव गीता कहती है कि ज्ञानीको भी, तत्त्वज्ञान होनेके बाद भी, दोनों दृष्टियोंको भिन्न-भिन्न रखना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि ज्ञानीके भी शरीर है, शरीर है तवतक शरीरका व्यवहार भी है और शरीरका व्यवहार है तवतक संसार भी है। इसलिये उसको भी व्यवहारकालमें व्यावहारिक दृष्टिसे ही अपने सारे व्यवहार यथायोग्य शास्त्र-मर्यादाके अनुसार ही करने चाहिये। दृष्टिमें संकरता न आने देनी चाहिये। दृष्टि संकर हो जायगी तो महान अनर्थ उपस्थित हो जायगा और मन-बुद्धि ज्ञानीको भी एक वार पापकी ओर ढकेल ही देगी।

एक वात यहाँ समझ लेनी है। व्यावहारिक जगत् प्रकृतिका कार्य है। इसल्ये वहाँ तो विषमता रहेगी ही; क्योंकि प्रकृतिकी विषमतासे ही संसारकी रचना है। प्रकृतिकी साम्यावस्था होनेपर सृष्टि कायम नहीं रह सकती। प्रकृतिके तीनों गुण—सत्त्व, रज और तम जब साम्यावस्थामें थे, तब कुछ भी नहीं था। सब कुछ अव्यक्त था। परंतु परमात्माकी हृष्टि पड़ते ही गुणोंमें क्षोभ हो गया और इस विषमताके आते ही सृष्टिकी रचना हो गयी। अतएव सृष्टिमें तो विषमताका होना अनिवार्य ही है; क्योंकि विषमता ही इसका स्वभाव है। इसल्ये ज्ञान-दृष्टिसे सब कुछको अपना आत्मारूप ही देखनेवाले ज्ञानीको भी शास्त्र-प्रमाणके अनुसार व्यवहार यथायोग्य ही करना चाहिये।

श्रीरामकृष्ण परमहंस इस बातपर बहुत ही जोर देते और दोनों दृष्टियोंको अलग-अलग रखनेके लिये खास तौरपर समझाते । वे कहते कि ज्ञानदृष्टि या पारमार्थिक दृष्टिसे तो चोर, अग्नि, सर्प और सिंह परमेश्वररूप ही हैं; क्योंकि भिन्न-भिन्न शरीरोंमें एक ही परमेश्वर विराजित हैं और सबका नियमन करते हैं। परंतु व्यवहारकालमें यदि उनकी परमेश्वर मानकर मिलेंगे तो शरीरका नाश हो जायगा। विशेष समझाते हुए कहते कि चोर नारायणरूप ही है, पर वह ज्ञान-दृष्टिसे । व्यवहारकालमें उससे मित्राचारी न करके दूरसे ही नमस्कार किया जाता है, नहीं तो वह हमारा नाश कर देगा। इसी प्रकार अग्नि भी नारायणका ही स्वरूप है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है; परंतु उसके साथ व्यवहार तो गरमी प्राप्त हो, इतना ही करना है। परमेश्वरका रूप समझकर भेंटने जायँगे तो जलना पड़ेगा । ऐसे ही सर्प-सिंहादि प्राणी भी ज्ञान-दृष्टिसे नारायणरूप ही हैं, पर व्यवहारकालमें तो उनसे अपनेको बचाकर ही रखना पड़ता है।

एक और भी शास्त्रका विनोदपूर्ण परंतु जोरदार दृष्टान्त है, उसे भी समझ लें। एक थे गुरुजी। वे पाठशालामें अमुक विद्यार्थियोंको वेदान्त समझा रहे थे। उसमें एक प्रसङ्ग आया कि जो-जो भी दृष्टिसे दिखायी दे, उस-उसको मिथ्या समझना। यह वात है ज्ञान-दृष्टिकी, इसे व्यवहारमें लागू करनेपर तो अनर्थ हो जायगा। दो-चार दिनोंके बाद एक दिन ऐसा हुआ कि एक हाथी पागल होकर बाजारमें

दौड़ता जा रहा था। गुरुजी उस समय बाजारमें थे, उनकी इसका पता लगते ही वे बचावके लिये स्थान खोजते दौड़ने लगे । उनके एक शिष्यने गुरुजीको दौड़ते देखकर ख्यं अपने सुरक्षित स्थानसे ही कहा-'गुरो ! गजो मिथ्या'-भ्युम्जी ! व्यर्थ किस लिये दौड़ रहे हैं, हाथी तो मिथ्या है। यह आपने ही तो पढ़ाया था।' गुरुजीने भागते हुए ही उत्तर दिया-'भाई! पलायनमपि मिथ्या।' मैं जो दौड़ रहा हूँ, यह भी मिथ्या ही है।' यहाँ भी दृष्टिकी संकरता है, इसीसे शिष्यका ज्ञान यथार्थ न होकर विपरीत है। 'हाथी मिथ्या है'--यह पारमार्थिक दृष्टिकी बात है; परंतु व्यवहार-कालमें तो हाथी सत्य है, हाथी पागल हो गया है-यह भी सत्य है तथा उससे अपनेको वचाना भी उतना ही सत्य है और इसलिये आवश्यक भी है। गुरुजीने उत्तर दिया कि जिस दृष्टिसे हाथी मिथ्या है, उस दृष्टिसे मेरा दौड़ना भी मिथ्या ही है । अभिप्राय यह कि जैसे ज्ञानदृष्टिमें हाथी मिथ्या है, वैसे ही दौड़नेकी किया भी मिथ्या है और व्यवहार-कालमें हाथी सत्य है, अतः दौड़ना भी सत्य है। गुरुका ज्ञान संदाय-विपर्ययरिहत था; अतः उनकी दृष्टिमें भेद नहीं था और शिष्यका ज्ञान केवल बात करने भरका ही था। इसीलिये उसने दोनों दृष्टियोंको सेल भेल कर दिया था।

अव इस निबन्धके प्रारम्भमें आपने जो कहा था कि द्रष्टा और दृश्यके धर्मोंका तादात्म्य-संयोग हो गया है, इसीसे सर्ग-विसर्गका चक्कर चलता रहता है। जन्म-मरणका चक्र अनादिकालसे चलता आ रहा है। यह संयोग दूर होगा, तभी इस चक्रका अन्त होगा। इस संयोगको दूर करना हो तो ज्ञानदृष्टिसे दृष्टा आत्माके धर्मोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और फिर उन धर्मोंका दृश्य संसारमें कभी आरोप नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टिसे शरीर जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि आदि धर्मोंको समझकर विधर्म आत्माके नहीं हैं।—यह निश्चय कर लेना चाहिये और उनको आत्मामें आरोपित नहीं करना चाहिये।

श्रीरांकराचार्यने एक छोटेसे वाक्यमें यह बात बहुत ही अच्छी तरह कही है—

'देहेऽहंमतिरुज्ध्यताम्।'

अर्थात् तुमने जो देहमें आत्मवुद्धि कर ली है, इसे छोड़ दो और फिर आत्माके धर्मोंको जानकर भी आत्मा हूँ। ऐसा निश्चय करके अपने आत्मस्वरूपमें स्थिर हो जाओ।

युक्त आहार-विहारसे परमात्माकी माति

(लेखक-अद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

श्रीभगवान्ने कहा है— युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वमाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (गीता ६ । १७)

को

इने

1

रोड़

रता

ाथी

ार-

भी

र है

कि

भी

थ्या

ार-

का

नहीं

था,

रीसे

चक

गा,

हो

तेना

रोप

रके

और

ही

ब्रोइ

'दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करने-बालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।'

भाव यह कि आहार-विहार, कर्म, सोना और जागना शास्त्रसे प्रतिकृत्न न हो और उतनी मात्रामें हो जितना जिसकी प्रकृति, रुचि और खास्थ्यकी दृष्टिसे उपयुक्त और आवश्यक हो । ऐसा करनेवालेका परमात्म-प्राप्तिका साधनकृप योग सिद्ध (सफ्ल) हो जाता है ।

इस रलोकमें 'युक्त' शब्द तीन जगह ही आया है; किंतु एक साथ कहे हुए खप्न और अवबोधको पृथक्-पृथक् करके रलोकमें कही हुई चार बातोंके अनुसार अपने समयका चार भाग कर लेना चाहिये। चौबीस घंटेका दिन-रातका समय है, उसके चार भाग करनेसे प्रत्येक भाग छः घंटेका होता है। अतएव मनुष्यको उचित है कि छः घंटे तो आहार-विहारमें बितावे, छः घंटे जीविकोपार्जनके कार्योंमें, छः घंटे रायन करनेमें और छः घंटे जागने (सचेत होने) में—परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें लगावे। यों तो छः घंटे सोनेके सिवा, अठारह घंटे मनुष्य जागता ही रहता है; किंतु यहाँ 'अवबोध' शब्दसे यह व्यक्त किया गया है कि कम-से-कम छः घंटे तो साधनमें विशेषरूपसे लगावे और हर समय चौबीसों घंटे साधनके लिये सचेत रहे—यानी अपनी रुच्चि और विश्वासके

खरूपका चिन्तन तो भेद या अभेद-बुद्धिसे निरन्तर चौबीसों घंटे करते ही रहना चाहिये । शयनकालमें भी उसको याद रखते हुए ही शयन करना चाहिये ।

यदि वर्तमान समयमें गृहस्थाश्रमी मनुष्यका छः घंटे जीविकोपार्जनका न्याययुक्त कार्य करनेसे जीवन-निर्वाह न हो तो आहार-विहारके समयमेंसे दो घंटे निकालकर जीविकोपार्जनके कार्यमें आठ घंटे लगाने चाहिये। तथा अपनी धुविधाके अनुसार आहार-विहार और जीविकाके समयमें घंटा-दो-घंटा न्यूनाधिक भी की जा सकती है; किंतु शयनमें छः घंटे और परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें छः घंटे अवस्य ही लगाने चाहिये। यदि पाँच घंटे सोनेसे काम चल सके तो उसमेंसे एक घंटा निकालकर साधन सात घंटे करना चाहिये। नीचे अनुमानतः एक प्रकारका समय-विभाग करके बतलाया जाता है। इसमें अपनी सुविधाके अनुसार आगे-पीछे भी कर सकते हैं।

रात्रिमें दस बजे शयन करके चार बजे उठना। इसमें शीत और प्रीष्मकालके अनुसार एक बंटा आगे-पीछे भी किया जा सकता है। रात्रिमें शयनके समय उन सांसारिक संकल्पोंके प्रवाहको जो हर समय चलता रहता है—खप्नवत्, नाशवान्, क्षणभङ्गुर या दुःखरूप और व्यर्थ समझकर हटा दे अर्थात् संकल्परहित हो जाय और भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यके संकल्पोंका प्रवाह श्रद्धा-प्रेमपूर्वक बहाते हुए शयन करे। अथवा सिचदानन्दघन परम्रह्म परमात्माके निर्मुण-निराकार खरूपके तत्त्व-रहस्यको समझकर वैराग्यपूर्वक भेद या अभेदरूपसे निरन्तर चिन्तन करते हुए शयन करे।

प्रातः चारसे पाँच बजेतक शौच-स्नान आदि क्रियाओंसे

अनुसार साकार या निराकार अपने इष्टदेव परमात्माके निवृत्त होना । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar पाँचसे आठ बजेतक योगासन करके अपने विश्वास, रुचि, स्वभाव और अधिकारके अनुसार संघ्या, गायत्री-जप, नामजप, तप, ध्यान, भक्ति-ज्ञान-योगविषयक शास्त्रोंका स्वाध्याय, स्तुति-प्रार्थना श्रद्धा-प्रेम और निष्काम-भावसे करना।

आठसे बारहतक निरन्तर भगवान्को याद रखते हुए अपने अधिकारके अनुसार अध्ययन, याजन, प्रजापालन, कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, सेवा आदि जीविकोपार्जनके न्याययुक्त कार्य निष्कामभावसे करना।

बारहसे एक बजेतक शरीरनिर्वाह और स्वास्थ्य-रक्षा-के लिये भोजन-विश्राम आदि करना ।

एकसे पाँच बजेतक निरन्तर भगवान्को याद रखते हुए निष्काम-भावसे अपने अधिकारानुसार जीविकोपार्जनके कार्य करना।

सायं पाँचसे छः बजेतक शौच-स्नान आदि करना। छः से नौ बजेतक अपने विश्वास, रुचि, खभाव और अधिकारके अनुसार वैराग्यपूर्वक श्रद्धा, प्रेम और निष्काम भावसे भक्ति, ज्ञान या योगका साधन करना।

रात्रिमें नौसे दस बजेतक भोजन, वार्तालाप, परामर्श आदि करना।

उपर्युक्त कार्यक्रममें मनुष्य आगे-पीछे या कम-ज्यादा अपनी सुविधाके अनुसार उल्ट-फेर कर सकता है।

ब्रह्मचारीको जीविकोपार्जनका कार्य न होनेके खप्न ही आते हैं, इसिलिये कारण उन आठ घंटोंमें भिक्षाटन, व्यायाम, श्रद्धा-भक्तिसे है किंतु सुपृप्ति (गाइनिव्र गुरु-सेवापूर्वक विद्याभ्यास करना चाहिये। तथा समझना चाहिये। विल्कु वानप्रस्थीको उन आठ घंटोंमें श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, मन सांसारिक संकल्प-विकल्प और इन्द्रियोंके संयम तथा वैराग्यपूर्वक यज्ञ, खाच्याय, चिन्ता, विक्षेप, आल्क्ष्य तपश्चर्या आदि करने चाहिये। किंतु संन्यासीको तो भक्ति, ज्ञान, योग आदि र शौच, रनान, भिक्षा और शयन आदिमें अधिक-से- अधिक जाते हैं। इस कारण उस दस घंटे लगाकर शेष चौदह घंटे निष्कामभावसे जप, नहीं होती, फिर परमात तप, संयम, खाध्याय, स्तुति-प्रार्थना, भक्ति, ज्ञान, सकती है collection, Haridwar तप, संयम, खाध्याय, स्तुति-प्रार्थना, भिक्ति, ज्ञान, स्वस्ती है collection, Haridwar

वैराग्य, योग, सदाचार, श्रवण, मनन, निदिष्यासन आदि साधनोंमें ही लगाने चाहिये।

इस प्रकार युक्त आहार-विहारादि करनेपर परमाला-की प्राप्तिके साधनरूप योगकी सिद्धि निश्चय ही शीव हो जाती है किंतु इस प्रकार न किये जानेपर योगकी सिद्धि सम्भव नहीं । भगवान्ने अर्जुनसे कहा है— नात्यश्चतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्चतः। न चाति स्वप्नशीलस्य जात्रतो नैव चार्जुन॥ (गीता ६।१६)

हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खानेवालेका, न बिल्कुल न खानेवालेका, न बहुत शयन करनेके खभाववालेका और न सदा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।

भोजन अधिक करनेपर इजम न होनेके कारण रस कम बनता है। अनेक प्रकारकी बीमारियाँ हो जाती हैं, निद्रा और आलस्य अधिक आता है तथा साधनमें विक्षेप हो जाता है। बहुत दिनोंतक बिल्कुल भोजन न करनेपर क्षुचाके कारण निद्रा कम आती है, संकल्प-विकल्प अधिक होते हैं, जिससे साधनमें विक्षेप हो जाता है और बिल्कुल भोजन किये बिना शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता । इसी प्रकार अधिक सोनेसे निद्रा और आलस्य बढ़ जाते हैं, स्वभाव आलसी हो जाता है तथा साधनमें रुचि नहीं होती । सोनेमें मनुष्यको अधिक खप्न ही आते हैं, इसिलिये यहाँ 'खप्न' शब्द दिया है किंतु सुपुप्ति (गाढ़निद्रा) को उसके अन्तर्गत ही समझना चाहिये। विल्कुल न सोकर जागरण करनेसे सांसारिक संकल्प-विकल्प अधिक होते हैं और चिन्ता, विक्षेप, आलस्य आनेसे परमात्माकी प्राप्तिके भक्ति, ज्ञान, योग आदि साधनोंमें अनेक विष्न आ जाते हैं । इस कारण उसके योगसाधनकी ही सिद्धि नहीं होती, फिर परमात्माकी प्राप्ति हो ही कैसे

्र आते र

मंख्या

प्रतिष्ठा आसति १३१-अ

काम-त्र तंशय-५ आदि

भेपेटर-बेल-तम

र्श चड़ ग्रे स्

वन, वं चोर

ोनाश य आ

हेन स् नुष्यक इंडिन

गुण-दु

नाये गग

ताम-ऋं ही तो तारण

ाहुण-स् तृति-प्र

गनकर शेर इ

नेष्काम विकार के

गश

गोपतञ्ज

न

इसके सिवा योगके साधनमें और भी बहुत-से विष्न आते रहते हैं। जैसे कञ्चन, कामिनी, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, संसार और संसारके भोगोंमें ममता और भासिक, देहमें अहंता, ममता और आसिकिके कारण हा-आराम, स्वाद-शौकीनी और भोगोंकी इच्छा तथा क्राम-क्रोध, छोभ-मोह, मद-मत्सरता, राग-द्वेष, अज्ञान, हाय-भ्रम, दम्भ, कठोरता, नास्तिकता, परदोषदर्शन बादि अनेक दुर्गुण तथा मादक वस्तुओंका सेवन, वेयेटर-सिनेमा आदि देखना, चौपड़-ताश, शतरंज, ळ-तमाशा, सद्दा-फाटका एवं शरीर, मन और इन्द्रियों-🕯 चञ्चलता आदि अनेक दुर्व्यसन (बुरी आदत) ोर झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, मद्य-मांसका वन, बेईमानी, दगावाजी, प्रमाद आदि अनेक दुराचार तं चोर, डाकू, बीमारी और मृत्यु आदिसे तथा अनुकूलके नाश और प्रतिकूलकी प्राप्तिसे दुःख, चिन्ता, शोक, य आदिका होना । इसी तरह और भी अनेक प्रकारके न साधनमें आया करते हैं । इन विन्नोंके आनेपर तुष्यको न तो घत्रराना चाहिये और न इनके निवारणको ठिन मानकर निराश ही होना चाहिये। बहुत-से र्गुण-दुराचार-दुर्व्यसनरूप विध्न तो मनुष्पके अपने नाये हुए हैं, उनका तो विवेकविचारपूर्वक हठसे सर्वथा गग करना चाहिये तथा चिन्ता, भय-शोक और भमक्रोव-छोभ-मोहादि दुर्गुणरूप विघ्नोंमेंसे कितने री तो मुर्खताके कारण हैं और कितने ही स्वभावदोषके नारण हैं । इन सभीको भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और द्धिण-सदाचारके सेवनसे दूर करना चाहिये।

(१) भगवान्के शरण होकर करुणाभावसे भगवान्से जिति-प्रार्थना करना, भगवान्को अपना परम हितेषी जिनकर उनमें अनन्य प्रेम करना तथा भगवान्के गुण और प्रभावको समझकर उनके नाम और खरूपका निष्कामभावसे श्रद्धाप्रेमपूर्वक निरन्तर चिन्तन करना—इस कारके तीव अभ्याससे भगवत्कृपासे सम्पूर्ण विक्रोंका जारा होकर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है । महर्षि भैपतञ्जलिजीने कहा है—

तस्य वाचकः प्रणयः ! (योगदर्शन १ । २७)
'उस ईश्वरका वाचक (नाम) प्रणव (ॐकार) है।'
तज्जपस्तदर्थभावनम् ! (योगदर्शन १ । २८)
'उस ॐकारका जप और उसके अर्थस्वरूप परमेश्वरका चिन्तन करना चाहिये।'

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च । (योगदर्शन १।२९)

'उक्त साधनसे विष्नोंका अभाव और प्रमात्माके खरूपका ज्ञान भी हो जाता है।'

- (२) विवेकपूर्वक विचारके द्वारा संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गर, खप्नवत् अभावक्ष्य समझकर संकल्परहित हो जाना एवं एक सिचदानन्दवन निर्गुण निराकार ब्रह्मको नित्य भावक्ष्य समझकर उसीका नित्य-निरन्तर चिन्तन करना—इस प्रकारके तीव अभ्याससे सारे विन्नोंका नाश होकर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।
- (३) इस संसारको नाशवान् या दुःखरूप समझ-कर तीत्र वैराग्य करना। भगवान्ने भी गीतामें कहा है—

जन्ममृत्युजराज्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु । (१३।८का उत्तरार्धः, ९ का पूर्वार्ध)

'जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करना एवं पुत्र, स्त्री, घर, धन आदिमें आसक्ति और ममताका न होना ।'

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते । आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ (गीता ५ । २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयों संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं वे यद्यपि विषयी पुरुगेंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं । इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता ।'

श्रीपतञ्जलिजी कहते हैं--

परिणामतापसंस्कारदुः खेर्गुणवृत्तिविरोधाच दुः ख-मेव सर्व विवेकिनः । (योगदर्शन २।१५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

'परिणाम-दुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख— ऐसे तीन प्रकारके दुःख सबमें विद्यमान रहनेके कारण और तीनों गुणोंकी वृत्तियोंमें परस्पर विरोध होनेके कारण विवेकीके लिये सव-के-सब कर्मफल दु:खरूप ही हैं।

वशीकारसंज्ञा **दृ**ष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य (योगदर्शन १। १५) वैराग्यम् ।

'देखे और सुने हुए विषयोंमें सर्वथा तृष्णारहित चित्तकी जो वशीकार नामक अवस्था है वह वैराग्य है।'

पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् । (योगदर्शन १। १६)

'पुरुषके ज्ञानसे जो प्रकृतिके गुणोंमें तृष्णाका सर्वथा अभाव हो जाना है-वह 'परवेराग्य' है।

उपर्युक्त रलोकों और मूत्रोंके अर्थ और भावको विवेकपूर्वक समझनेसे संसारसे तीत्र वैराग्य तथा परम उपरित ,हो जाती है। भगवान्ने कहा है-

> सुविरूहमूल-अभ्वत्थमेनं मसङ्गरास्त्रेण दृढेन छित्वा। (गीता १५ । ३)

'इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दढ़ मूळीं-वाले पीपलके वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर---इससे उपरत होकर (उस परमात्माकी खोज करनी चाहिये)।

यह नियम है कि विषयोंका चिन्तन होनेसे ही उनमें आसक्ति होती है और आसक्तिके कारण ही चित्तवृत्तियाँ संसारकी ओर जाती हैं। जब मनुष्य संसारके सम्पूर्ण पदार्थीको नाशवान्, क्षणभङ्गर्, दु:खरूप समझ लेता है तब उसे खतः ही बैराग्य हो जाता है । बैराग्य होनेपर चित्तवृत्तियाँ अपने-आप ही संसारके पदार्थींसे सर्वथा हट जाती हैं और संसारके पदार्थसे चित्तवृत्तियोंका हटना ही परम उपरित है । इस वैराग्यपूर्वक उपरित-से सारे विघ्नोंका नारा अपने आप ही हो जाता है। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वैराग्यके द्वारा संसारका बाध करके परमात्माका ध्यान करे । इस प्रकार विचार करना ही प्रतिपक्षकी भावना है । CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रकारके साधनसे उसमें सम्पूर्ण गुण अपने-आप ही अ जाते हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। भावान कहते हैं---

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः। द्रन्द्वेविंमुक्ताः खुखदुःखसंबै-

र्गच्छन्यमूढाः पद्मञ्ययं तत्॥ (गीता १५ । ५)

'जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोषको जीत लिया है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूपसे नष्ट हो गयी हैं, वे सुखदु: खनामक इन्द्रोंसे विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी प्रमपदको प्राप्त होते हैं।

(४) सहुण-सदाचारके पालनसे भी दुर्गुण-दुराचाररूप विद्रोंका नाश हो जाता है। जैसे सत्य भाषणसे मिथ्या भाषणकी निदृति हो जाती है। इसचर्य-पालनसे व्यभिचार नहीं रह सकता। सेवा-दयाका भाव होनेपर हिंसा नहीं हो सकती और सबमें निष्काम प्रेम होनेपर किसीसे द्वेष नहीं हो सकता । इसी प्रकार अन्य स विषयोंमें समझ लेना चाहिये। महर्षि पतञ्जलिजी कहते हैं-

> वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् । (योगदर्शन २ । ३३)

'जब वितर्क (यम-नियमोंके विरोधी हिंसादि भाव) यम-नियमके पालनमें बाधा पहुँचायें तब उनके प्रतिपक्षी वासनाः विचारेंका बारंबार चिन्तन करना चाहिये।'

वितकीहिंसाद्यः कृतकारितानुमोदिता छोभक्रोध-भगवान मोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफल (योगदर्शन २ । ३४) इति प्रतिपक्षभावनम् ।

'(यम-नियमोंके विरोधी) हिंसादि भाव वितर्क कहलाते हैं। वे तीन प्रकारके होते हैं—खयं किये हुए, दूसरोंसे करवाये हुए और अनुमोदन किये हुए। इनके कारण छोम, क्रोध और मोह हैं। इनमें भी कोई छोटा, कोई मध्यम और कोई बहुत बड़ा होता है। ये दुः ख और अज्ञानरूप अनन्त फल देनेवाले हैं। इस

विषया

(H गण्यात्मा

भावना रोषोंका

> हुत-से मके प्र

चि

अध्य वास

प्ता

र्वथा शक्तियाँ

उपाय है आं

महापुरु

31 असं

अभ्य

अभ्यास

17

दुर्गुण-

ने सत्य

फला

३४)

वेतर्क

हुए।

इस

मैत्रीकरुणासुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसाद्नम्।

(योगदर्शन १ । ३३)

'सुखी मनुष्योंमें मित्रताकी, दुखी मनुष्योंमें दयाकी, ण्यात्मा पुरुवोंमें प्रसन्तताकी और पापियोंमें उपेक्षाकी भावना करनेसे चित्तके मल, विक्षेप, आवरण आदि वेषोंका नाश होकर चित्त शुद्ध हो जाता है।

चित्तकी चञ्चलतारूप विक्षेपके नाराके लिये शास्त्रोंमें जेन्होंने हत-से उपाय बताये गये हैं। श्रीवसिष्ठजी भगवान् ामनाएँ मिक प्रति कहते हैं---विमुक्त

अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च। वासनासम्परित्यागः प्राणस्यन्दनिरोधनम् ॥ पतास्ताः युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल। (योगवा० उप० ९२।३५,३६ का पूर्वार्ध)

ह्मचर्य-'अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति, साधु-संगति, वासनाका ा भाव _{प्रवि}था परित्याग और प्राणस्पन्दनका निरोध—ये ही रुक्तियाँ चित्तपर विजय पानेके लिये निश्चितरूपसे दृढ़

अभिप्राय यह है कि सत्-शास्त्रोंके खाध्याय और ३३) महापुरुषोंके संगसे चित्तके विक्षेपोंका नाश होकर साधक-भाव) मा मन खाधीन और स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार तपक्षी गसनाओं के त्याग और प्राणायामसे भी हो जाता है।

अभ्यास और वैराग्यसे चित्तका वशमें होना क्रोध- भगवान्ने गीतामें भी बतलाया है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता ६।३५)

किये 'हे महाबाहो ! निस्संदेह मन चञ्चल और कठिनता-से वरामें होनेवाला है, परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास और वैराग्यसे वशमें होता है।

वैराग्यके विषयमें ऊपर बताया ही जा चुका है।

अभ्यासके अनेकों प्रकार शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं। कुछ नीचे छिखे जाते हैं।

- (१) जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँसे हटाकर मनको बार-बार परमात्मामें ही लगाना । (गीता ६।३६)
- (२) जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ प्रात्माको देखना।
- (३) वाणी, श्वास, नाड़ी, कण्ठ और मन आदि-मेंसे किसीके भी द्वारा अपने इष्टदेवके नामका श्रद्धा और प्रेमके साथ निष्कामभावसे निरन्तर जप करना ।
- (४) मनकी चञ्चलताका नाश होकर वह भगवान्में ही लग जाय-इसके लिये हृदयके सच्चे करुणाभावसे बार-बार भगवान्से प्रार्थना करना ।

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारके अभ्यासके भेद हैं । अभ्याससे भी चित्त वशमें हो सकता है । चित्त-निरोधके लिये भी अभ्यास और वैराग्य ही प्रधान हैं।

महर्षि श्रीपतञ्जलिजी कहते हैं-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

(योगदर्शन १। १२)

'उन चित्तवृत्तियोंका निरोध अभ्यास और वैराग्यसे होता है।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। (योगदर्शन १। १३) उन दोनोंमेंसे चित्तकी स्थिरताके लिये जो प्रयत करना है वह अभ्यास है।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः। (योगदर्शन १ । १४)

'परंतु वह अभ्यास बहुत कालतक निरन्तर (लगातार) और आदरपूर्वक साङ्गोपाङ्ग सेवन किया जानेपर दढ अवस्थावाला होता है।'

अतएव मनुष्यको उचित है कि अपनी रुचि और विश्वासके अनुसार भक्ति, ज्ञान, योग, वैराग्य, सत्सङ्ग और खाच्याय आदि साधनोंका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्काम-भावसे तत्परताके साथ प्राणपर्यन्त अभ्यास करे।

मधुर

मधुर-प्रेम साम्राज्यमें विप्रलम्भ-रस परम मधुर उन्माद भावसे उच्छ्वसित है। प्रिय वियोगकी अनुभूति तन्मयताका एक बड़ा ही सुन्दर रूप है। श्रीराधाजी इस समय प्रियतम स्यामसुन्दरके वियोग-रसनिधिमें निमग्न हैं; अतः उनके तन-मनकी क्या दशा है—

> काँटा सुखकर हुआ तन था विकल बेहाल मन। बिखरे गुप्क थे मुरझा हुआ था विधु-वदन ॥ आह निकलती थी, मुख थीं आँख ऑसूसे भरी। वसन अस्तव्यस्त थे, थी दुख-लता पूरी हरी॥

'शरीर सूखकर काँटा हो गया था, मन व्याकुल और व्यथित था, सिरके बाठ सूखे और बिखरे हुए थे, चन्द्रमुख मुरझाया हुआ था, मुखसे वेदना-भरी आह निकल रही थी, आँखें आँसुओंसे भरी थीं और शरीरके कपड़े अस्त-व्यस्त थे। इस प्रकार उनके दु:खकी बेठ पूर्णरूपसे ठहलहा रही थी।'

वियोगदुः खिनी श्रीराधाको घेरे उनकी सखियाँ वैठी थीं और वे भाँति-भाँतिसे उन्हें आश्वासन दे रही थीं।

> सखी समझाने लगी, तुम हो रही क्यों हो विकल ? भूल जाओ उसे अव क्यों रट रही प्रत्येक पल ?

एक संखीने समझाते हुए कहा—'राधा ! (जब वह नहीं आना चाहता तव) तुम उसके छिये इतनी व्याकुळ क्यों हो रही हो ? अब उसे भुळा दो । क्यों प्रतिप्र उसे रट रही हो ?

इसके उत्तरमें श्रीराधाजी बोळीं—

भूल जाना चाहती हूँ, भूल पर, सकती नहीं।

ज्यों हटाना चाहती मन, दोड़कर जाता वहीं॥ नहीं लेना चाहती में निदुरका नाम उस भी। जीभ पर, रटती सदा, नहिं सानती मेरी कभी॥ रोकती कानको, पर वे न मेरी सुरली-सुधा ही सिर्फ पीना जानते॥ बंद ज्ञील करती निगोड़ी नासिकाको में सदा। इयास-अंग-सुगंधको, पर, नहीं तजती वह कदा॥

'सखी ! मैं खयं भूल जाना चाहती हूँ, परंतु भूल सकती नहीं । मैं ज्यों-ज्यों मनको हटाना चाहती हूँ, त्यों-ही-त्यों वह दौड़कर वहीं चला जाता है। मैं तो उस निष्ठुरका नाम भी नहीं लेना चाहती, परंतु जीम मेरी बात कभी मानती ही नहीं, वह तो सदा उसका नाम रटती ही रहती है। मैं कानोंको भी रोकती हूँ, पर वे भी मेरी नहीं मानते। (मानें कैसे?) वे तो केवल प्रियतमके वचनामृत और मुरलीकी खर-सुधाका पान करना ही जानते हैं। मैं सदा ही इस निगोड़ी नासिकाको बंद रखना चाहती हूँ, पर इसकी श्यामसुन्दरकी अङ्ग-सुगन्धका ऐसा चसका लग गया है कि यह कभी उसे छोड़ती ही नहीं । यों मेरे मन-इन्द्रिय बरबस स्यामसुन्दरमें लगे रहते हैं, तब मैं निरुपाय क्या करूँ ? (यही वास्तवमें प्रेम-भजनका खरूप है। मन-इन्द्रियोंको भजनमें लगाना नहीं पड़ता, वे हटाये ही नहीं हटते ।) इतना कहते-कहते राधाजी और भी व्याकुल होकर बोर्ली-

ता हूँ, सकती नहीं। CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Handwar चढ़ाक नेत्रोंसे शीतल शरीरप अधीर सखी

जल र

प्रियतग

(मिल

करूँगी नेत्र शीतल कव निर्निमिष मुख देखकर ॥ लगाऊँगी अगर-कव मृगमद्-चुआ-चन्द्न शरीर । चढ़ाऊँगी सुमन कब सुरभित चरण, होकर अधीर ॥ है हृद्य मेरा फट रही ज्वाला अमित। जाऊँ ? क्या कहूँ? पाऊँ कहाँ प्रियतम अजित ?॥

'सखी! मैं प्रियतम स्यामसुन्दरकी चरण-रज सिर चढ़ाकर कब सदाके छिये धन्य होऊँगी शक्त मैं निर्निमेष नेत्रोंसे उनका मुखकमल देखकर जलते हुए नेत्रोंको शीतल करूँगी शक्तर-चन्दन-कस्त्र्री-चोआ प्रियतमके शरीरपर कब लगाऊँगी और कब मैं सुगन्वित पुष्पोंको— अधीर होकर उनके श्रीचरणोंपर चढ़ाऊँगी शहाय! सखी! मेरा हृदय फट रहा है, उसमें अपरिमित ज्वाला जल रही है। मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ शउन अजेय प्रियतमको कहाँ प्राप्त करूँ शइसी समय संयोग-(मिलन) रसका उदय हुआ। और—

> आ गये नटवर अचानक लिये मुरली मधुर कर। वितरते आनन्द, छायी मुसकराहट मृदु अधर॥

मिट संताप तन-मनके सकल । सुख-सुधोद्धि उमङ् हो गया जीवन सफल ॥ तुरंत मधुर हृदयमें खोई निधि छलाम। मिली तनिक-सा सह पायी न अवकाश, भूली निरख स्याम ॥ हुई विस्मृति सकल जगकी, 'मैं' तथा 'मेरा' गये। लीला भय एक मधुर रस-रसिक रसनिधि रह गये॥

अकस्मात् हाथमें मधुर मुरली लिये आनन्दिवतरण करते हुए नटवर (लीलामय नृत्यकुशल) श्यामसुन्दर आ गये। उनके मृदु अधरोंपर मुस्कान छायी हुई थी। उन्हें देखते ही श्रीराधाके तन-मनके सारे संताप मिट गये। सुख-सुधाका समुद्र उमड़ पड़ा और जीवन सफल हो गया। श्रीराधाजीने अपनी खोयी हुई परम सुन्दर अमूल्य निधिको पाकर तुरंत ही उसे अपने मधुर हृदयमें लिया। वे श्यामसुन्दरको निरखते ही इतना भूल गयीं कि तनिक-सा अवकाश भी सहन नहीं कर सर्की। सारे जगत्की विस्मृति हो गयी। 'मैं' और 'मेरा'—दोनों चले गये। रह गये केवल एक लीलामय मधुर रस-रिसक रसिनिधि श्रीश्यामसुन्दर! 'जय जय'!

गोपियोंका ब्रह्मवाद

(उद्भवके प्रति)

सत-चित-आ नँद-अमृत को महानद है,
मंजुल अतुल जोति-पुंज को बिलास है,
तम-तोम-तापी, पर ब्योम बीच ब्यापी और—
जग-अपलापी सब ही के सदा पास है।
सीतल करत नित हीतल उपासिन के,
पीतल करत सुवरन अनायास है,
ऊधो! चाहि चाहि जाहि अनिस अराधा करी—
ब्रह्म वह राधा-नख-चंद को प्रकास है।

—पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री 'राम'



いるからからからからからから

जीभ

का

तो

ाका गेड़ी

की है

द्रय

114

ही

भी

श्रीरामनामाराधन-रहस्य

(लेखक-श्रीश्रीकान्तरारणजी महाराज)

श्रीगोस्वामी तुलसीजीने बचपनसे ही श्रीरामनामाराधन किया है, इसीसे उन्हें सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है; यह उन्होंने बार-बार शपथपूर्वक कहा है—

संकर सािख जो राखि कहउँ कछु तौ जरि जीह गरो। अपनो भको रामनामिह ते तुलसिहि समुिहा परो॥' (विनय-पत्रिका २२६)

रामकी सपथ सरबस मेरे राम नाम।
कामधेनु कामतरु मो से छीन-छाम को ॥
(कवितावली उत्तर० १७८)

इस निष्ठाका आपने आजन्म निर्वाह किया है। यह बात श्रीरामजीके नित्यधामकी भरी सभामें स्वीकृत की गयी है। यथा—

किलकालहुँ नाथ नाम सो प्रतीति-प्रीति एक किंकरकी निबही है। सकल समा सुनि लै उठी जानी रीति रही है ''बिहँसि राम कह्यो सत्य है'''।।

(विनय-पत्रिका २७९)

श्रीराम-नाम-निष्ठासे प्रकाश पाकर ही आपने रामचरित-मानस एवं विनय-पत्रिका आदि द्वादश ग्रन्थोंका प्रणयन किया है; यथा—

> राम-नामको प्रभाउः पाउ महिमा प्रतापः तुरुसी सो जग मनियत महामुनी सो॥ (कवितावली उत्तर ०७२)

जानहिं सिय रघुनाथ भरतको सील-सनेह महा है। के तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम-नेम निवहा है॥ (गीलावली अयो० ६४)

इन प्रमाणोंसे श्रीगोस्वामीजीने नाम-निष्ठासे नाम-रहस्य जानकर एवं खयं अनुभव करके जो लिखा है, वह सभीके लिये परम हितकर है। अतएव अवश्य अनुकरण करने योग्य है। अतः उन्हींके वचनोंके विवरण लिखता हूँ—

राम-राम रमुः राम-राम जपुः राम-राम रटु जीहा। राम नाम नव नेह मेहकोः मन! हिठ होहि पपीहा॥ सब साधन फळ कूप सरित सर सागर सिळ्ळ निरासा। राम-नाम रित स्वाित सुधा सुभ सीकर प्रेम पियासा॥ गरज तरज पाषान परुष पिंच, प्रीति परित जिय जाने।
अधिक-अधिक अनुराग उमँग उर, पर पिरिमिति पिंहचाने॥
राम नाम गित, रामनाम मित, राम-नाम अनुरागी।
हो गये, हैं, जे होहिंगे, तेइ त्रिमुवन गिनयत बड़मागी॥
एक अंग मग अगम गवन करि बिलमु न छन-छन छाहें।
तुकसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपिंच नेम निवाहें॥
(विनय-पत्रिका ६५)

ऐ जीम ! तू सदा 'राम, राम' (इस नाम) में रमण-किया कर, 'राम, राम' (इस नाम) का जप किया कर और इसी 'राम, राम' की रटा कर तथा है मन ! तू भी इस श्रीराम-नामके स्नेहरूपी नित्य नवीन मेवके प्रति हठपूर्वक चातक बन जा। जैसे चातक कुआँ, नदी, तालाव और समुद्र आदिके जलकी आशा न करके केवल खाती नक्षत्रके जलकी एक बूँदके लिये प्रेमपूर्वक प्यासा रहता है, ऐसे ही तू भी अन्य सारे साधनों एवं उनके फलेंकी आशा छोड़कर केवल श्रीरामनामके स्नेहरूपी खातीके जलकी एक बूँदके लिये ही प्रीति कर । चातकपर मेत्र गरजता है। घोर शब्द करके डाँटता है, निष्द्रर होकर पत्थर (ओले) बरसाता है और फिर वज़ (विजली) भी गिराता हैं। मेघके इस प्रकारके कठिन-कठिन वर्त्तावोंपर चातक हृदयमें यही जानता है कि स्वामी मेच मेरे प्रेमकी परीक्षा कर रहे हैं; इससे उसके हृदयमें अधिक-अधिक अनुरागके उमंगकी वृद्धि होती है। इसपर मेघ विचारता है कि मैं ज्यों ज्यों इसकी कड़ी-से-कड़ी परीक्षा लेता हूँ, त्यों-त्यों इसके अनुरागकी उमंग अधिक-अधिक होती जाती है, (इस प्रकार परीक्षा करके) तव वह मेध चातकके प्रेमकी पराकाष्ठाको पहचान लेता है। (तव अन्तमें उसे स्वातीकी बूँद मिलती ही है।) इसी प्रकार (श्रीरामजीकी ओरसे तेरे दुष्कर्मीके अनुसार भाँति-भाँतिके संकट आकर तुझे इस निष्ठामें वाधक हों, पर) तू श्रीराम-नामकी ही दारण ग्रहण कर, श्रीरामनाममें ही बुद्धि लगा और श्रीराम-नाममें ही अनुराग कर । इस प्रकारके श्रीरामनामके अनुरागी जितने भक्त हो गये हैं, जितने हैं और जितने अभी आगे होंगे; तीनों लोकोंमें उन्होंको भाग्यवान् समझना चाहिये । (श्रीरामनामके अमन्य प्रेम करनेके) इस दुर्गम एकाङ्गी मार्गमें गमन करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तू ³ सांस

संख

迟'

श्रीर

भाँ वि निय

लक्ष

सम कर-गयी चकं

पाप

7

उन स

4)

) में

ोया

भी

र्वक

लाव

ाती

ांकी

उकी

配

3)

हैं;

यमें

₹;

की

की

क्षा

ान

ही

क

मं

ऱस

意,

并

तू अब भाँति-भाँतिके वृक्षोंकी छाया-(के समान भाँति-भाँतिके सांसारिक क्षणिक सुखों) में क्षण-क्षण ठहर-ठहरकर विलम्ब न कर । हे तुलसीदास ! तेरा अपना हित तो अपनी ओरसे श्रीरामनाममें निष्कपट प्रेमका निर्वाह करनेमें ही होगा।

विशेष—'राम राम रमु'''''''—यहाँ 'रमु, जपु, रदु' तीन प्रकारकी जापककी अवस्थाओंके अनुसार कहे गये है; यथा—

चातकानां चकोराणां मयूराणां तथा ग्रुभम्। लक्षणं दोषनिर्मुक्तं धार्यं श्रीरामनामतत्परैः॥ (सुदर्शनसंहिता)

अर्थात् मोरकी-सी मधुर वाणीसे कीर्त्तन करे, चकोरकी भाँति प्रेमपूर्वक ध्यान लगावे और पपीहेके समान सदा एकरस नियमका निर्वाह करे—श्रीरामनामके जापकोंको ऐसे शुद्ध लक्षण धारण करने चाहिये।

आराधन-क्रम इस प्रकार है कि प्रथम चातकके समान नवधा भक्ति करते हुए नामका वैखरी वाणीसे रटन करना चाहिये। आगे दो चरणोंमें चातकवृत्ति कुछ कही गयी है। श्रीरामनाम-रटनसे पापोंका नाश होगा। तय चकोरके समान पवित्र प्रेम श्रीरामजीमें होनेसे मध्यमावाणीसे प्रेमलक्षणाभक्तिके साथ जप होने लगेगा। प्रेमका बाधक पाप है और उस पापका नाशक धर्ममय राम नाम है—

एकहि एक सिखावत जपत न आप।
तुरुसी राम प्रेम कर बाधक पाप॥
(वरवै रामा० ६४)

पावन प्रेम राम चरन जनम काम परम ।

राम नाम केत होत सुक्रम सकक घरम ॥

(विनय-पत्रिका १३१)

जथा मूमि सब बीजमयः नखत-निवास अकास। राम नाम सब धरम मयः जानत तुरुसीदास॥ (दोहावली २९)

जैसे भूमिमें बीज पहले देखनेमें नहीं आते, वैसे राम-नामके अर्थोंमें सभी धर्मोंके बीज हैं, सहसा देखनेमें नहीं आते। पर रटनल्पी वृष्टिसे सब लहलहा उठते हैं और फिर उनके फल्ल्प वैराग्य-विवेक आदि गुण दृदयाकाशमें नक्षत्रोंके समान सुशोभित हो उठते हैं—गीता ७। २१-२२ की रीतिसे नाम-कल्पतरुसे सब प्राप्त होते हैं। वैराग्यसे चित्त गुद्ध होनेपर विवेकसे अंशी प्रभुमें प्रेम होता है।

फिर शुद्ध प्रेमपूर्वक जप होनेपर पश्यन्ती वाणीके द्वारा मोरके अनुरागकी भाँति जपमें पराभक्तिकी दशामें जपमें निमम्रतापर रमण होता है।

इस प्रकार यहाँ तीनों भक्तियोंके साथ नामाराधनके लक्ष्यपर 'रदु, जपु, रमु' ये कहे गये हैं। जप या रटनमें वाणी और मनका योग रहता है। कमसे नवधा आदि भक्तियाँ भी करनी चाहिये। मनसे मन्त्रार्थका मनन करते हुए मध्यमा वाणीसे जप होता है; यथा—

मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्याद्योग एतयोः। फल्टदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः॥ (रामपूर्वतापनीय १। २१)

अर्थात् मन्त्र वाचक है। रामजी वाच्य हैं। दोनोंका योग होनेपर जप फलीभूत होता है।

ध्राम नाम नव नेह मेह को

चातकके समान हठपूर्वक प्रेम-नियमका निर्वाह तीनों भक्तियोंमें चाहिये; इसलिये प्रथम तीनोंकी आराधनवृत्ति कहकर तब उनके साथ मनको चातक होना कहा है। चातककी स्नेहवृत्ति—

(जौ घन बरसे समय सिर, जो मिर जनम उदास ।

तुकसी या चित चातकहि, तऊ तिहारी आस ॥

चातक तुकसी के मते, स्वातिहु पिअइ न पानि ।

प्रेम तृषा बाढ़ित मकी, घटे घटेंगी कानि ॥

(दोहावली २७८-२७९)

इसमें प्रथम दोहेमें 'अनैराश्य' गुण कहा गया है कि स्वामीकी उदासीनतापर भी नित्य नया प्रेम बढ़ाते ही रहना चाहिये। यथा—

जनम भरि सुरति बिसारउ। जलद पबि पाइन डारउ॥ जाचत जल जाई। घटि रटिन घरे चातक माँति मलाई ॥ सब प्रेम बढ़े (रामचरितमानस अयो० २०५)

दूसरे दोहेमें दिखाया कि चातक यदि खातीका मी जल पी लेगा तो उसकी प्यास कुछ क्षणोंके लिये कम पह जायगी, पर प्रेमरूपी प्यासका तो बढ़ना ही अच्छा है।

संख्य

उसीप

मान

है। जै

बाहरव

नाममें

पड़ता

खभाव मुझे तं

गयीं।

वैसे ई

इसी

भी अ

रामना

विचार

करणच

कालोंग

जैसे

अतः प्रेम-मार्गमें स्वामीसे कभी कुछ भी पानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। यथा--

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह । बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह ॥ (रामचरितमानस अयो० १३१)

'सब साधन फल कूप'''

साधन—कर्म, ज्ञान, उपासना—ये काण्डत्रय प्रधान-प्रधान हैं, इनमें प्रत्येकके बहुत भेद हैं । उपासनामें नाम-जप जहाँ साथ है, वहाँ तो नामाराधन ही है । इन सब साधनोंके फल तो नामाराधनमें स्वतः जापकको प्राप्त होते रहते हैं, वह इनकी इच्छा क्यों करे ? यथा—

भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम नाम-आधीन साधन अनेकं तेन तप्तं हुतं र्दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं। येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिसमनवद्यमवलोक्य कालं॥

(विनय-पत्रिका ४६)

इससे नामजापक इन साधनों एवं इनके फलोंको उसी भाँति नहीं चाहता जिस भाँति चातक कूप, सरित आदिके जलोंको । चातक खातीके एक बूँद जलपर भी संतोष कर लेता है, पर अन्य जलोंकी राशि भी नहीं चाहता । वैसे अन्य साधनोंसे चाहे कितने भी अधिक फल क्यों न देखे-सुने जायँ, पर नाम-जापकको उनकी ओर नहीं ताकना चाहिये । यहाँ अनन्यता कही गयी ।

ध्गरज तरज पाषान परुष

—अपने प्रिय स्वामीके अपने प्रति प्रतिकृल बर्तावींपर भी जापकके दृदयमें दोष-दृष्टि नहीं होनी चाहिये, प्रत्युत उनमें गुणकी ही भावना रहनी चाहिये; यथा—

चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के दोष ।
तुरुसी प्रेम पयोधि की, ताते नाप न जोष ॥
बरिष परुष पाहन पयद, पंख करहु टुक टूक ।
तुरुसी परी न चाहिये, चतुर चातकि चूक ॥
उपरु बरिष गरजत तरिज, डारत कुिलस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तिज, कबहुँ दूसरी ओर ॥
पिब पाहन दामिनि गरज, झिर झकोर खिर खीझि ।
रोष न प्रीतम दोष लिख, तुरुसी रागहि रीिझ ॥

(दोहावली २८१-२८४)

इस चरणके भाव इन उद्भृत दोहोंसे स्पष्ट हो गये हैं।

प्रेमी भक्तोंको अपने इष्टके द्वारा होनेवाले भारी-भारी क्ष्रींपर भी उनका परीक्षा लेना ही समझना चाहिये कि स्नामी इस भाँति मेरी निष्ठा दृढ़कर मुझे बड़ाई देना चाहते हैं। अतः मुझे इसमें खरा उतरना चाहिये। चातक इन गुणोंमें आदर्श है।

इसपर एक कथा है--श्रीरामानुजाचार्यके एक संत मित्र थे। उन्होंने एक दिन श्रीआचार्यचरणसे पूछा कि 'सच्चे संतके लक्षण कहिये'। श्रीरामानुजाचार्यने सोचा कि यदि मैं कह दूँ कि 'जैसे आप हैं, ऐसे ही सच्चे संत होते हैं'- तो ये प्रशंसामात्र मानेंगे । इससे उन्होंने इन्हें अपने एक मित्रके यहाँ भेजा कि वे आपके इस प्रश्नका अच्छा उत्तर देंगे । वहाँ जानेपर इनका बहुत सम्मान होने लगा। पर ये नित्य अपना प्रश्न ही पूछते थे। फिर धीरे-धीरे अपमान भी बहुत हुआ। पर ये एकरस रहे और वैसे ही प्रेमसे नित्य प्रश्नोत्तर ही चाहते रहे । अन्तमें उन्होंने यही दिया- 'त्वद्वद्वकवल्लवणवत्' अर्थात् आपके समान, बगुलाके समान और लवणके समान ही सच्चे संत होते हैं। जैसे बगुला शरीरसे कहीं चलता है, पर उसका ध्यान अपने आहार मछलीपर ही रहता है। वैसे ही आपने अपने प्रश्नपर ही ध्यान एकरस रक्ला है, शरीरके मानापमानषर नहीं । लवण गल जानेपर भी अपना खार-खभाव नहीं छोड़ता, वैसे ही अपने अत्यन्त अपमानित होनेपर भी आपने वास्तविक लक्ष्यपर ही एकरस प्रेम रक्खा है। मेरे कुकुत्योंको शरीर-सम्बन्धी मानकर ध्यान नहीं दिया, यही संत-लक्षण है। भक्तोंके जो भी सुख-दुःख आते हैं, वे कर्मानुसार हैं और उनका सम्बन्ध शरीरसे ही है। जीवात्मा तो ईश्वरका अंश होनेसे उसका नित्य सेवक है। अतएवईश्वर-प्रेमपर ही इसका लक्ष्य रहना चाहिये। दुःखीं-पर यदि निष्ठा कम हुई तो यही परीक्षामें असफल होना है।

जैसे गोपियाँ भगवान्के प्रेम-विरहमें व्याकुल होती थीं और उधरसे श्रीकृष्णने (भक्त उद्धवको प्रेम-शिक्षा दिलानेके लिये) जो संदेश भेजा था, वह जलेमें नमक छिड़कनेके समान था, पर गोपियोंने उसपर यही निर्णय दिया है— सिख सरोष प्रिय दोष विचारत प्रेम पीन पन छीजे। खग मृग मीन सलभ सरसिज गित सुनि पाहनो पसीजे॥ जधो परम हितू, हित सिखवत, परिमित पहुँचि पतीजे। तुलसिदास अपराध आपनो नंदलाल बिनु जीजे॥ (कृष्णगीतावली ४५)

'राम नाम गति'—श्रीरामनामको ही एकमात्र आश्रय समझ

17

त

ते

उसीपर निर्मर रहना, रामनामको गति मानना है; यथा— राम नाम ही सों जोग-छेम नेम प्रेम पन। सुधा सों मरोसो यह दूसरो जहरु॥ राम! नाम को प्रताप जानियत नीके आप। मो को गति दूसरी न बिधि निरमई॥ (विनय-पत्रिका २५०। २५२)

्राम नाम मित'--बुद्धिसे श्रीरामनाममें सब सम्बन्ध मान छभाया रहना; यथा---

राम नाम मातु-िषतु स्वामि समरथः हितुः आस राम नाम की भरोसो राम नाम को। प्रेम राम नाम ही सोंः नेम राम नाम ही कोः जानों न मरम पद दाहिनो न बाम को॥ स्वारथ सकल परमारथ को राम नामः राम नाम हीन तुलसी न काहू काम को। राम की सपथः सरबस मेरे राम नामः कामधेनु-कामतरु मो से छीन-छाम को॥ (कवितावली उत्तर० १७८)

'रामनाम अनुरागी'—प्रेमकी गाढ़ स्मृति अनुराग कहाती है। जैसे कोई रंगीन परदा आँखके समक्ष रहनेपर उससे बाहरकी वस्तुएँ उसी रंगकी देख पड़ती हैं, वैसे ही राम-नाममें अनुराग रहनेपर सर्वत्र रामनामका ही प्रभाव देख पड़ता है; यथा—

करम उपासन ज्ञान बेद मत सो सब भाँति खरो। मोहिं तो सावन के अंधेहि ज्यों सूझत रंग हरो॥ (विनय-पत्रिका २२६)

इस पूरे पदमें रामनाममें भरोसा कह उसीके कल्पतर स्वभावसे अपनेमें काण्डत्रयकी सिद्धि दिखायी गयी है कि मुझे तो इसीसे कर्म, उपासना और ज्ञानकी सिद्धियाँ हो गयीं। इससे मैंने अन्य उपायोंकी ओरसे आँख मूँद ली है। जैसे श्रावणका अंधा सब दिन हरियाली ही देखता है, वैसे ही मुझे रामनाममें ही सारी हरियाली दीख रही है। इसी पदमें आगेके तीन चरणोंमें तीनोंकी सिद्ध दशाएँ भी अपनेमें कही है।

'ह्वे गये, हैं; जे होहिंगे'…—जो मन और अहंकारसे रामनामको गति मानते, बुद्धिसे रामनामहीमें सम्बन्ध विचारते और चित्तसे रामनाम-अनुरागी हैं, वे ही अन्तः-करणचतुष्ट्यसे रामनाम-नैष्टिक ही तीनों लोकों और तीनों कालोंमें बड़े भाग्यवान हैं; अतएव—

'एक अंग मग अगम...'-- एकाङ्गी प्रीतिका मार्ग

अगम है। चातक, मीन, मृग, सर्प, पतङ्ग और कमल आदि अपनी ओरसे प्रीति निवाहते हैं, प्रीतमके प्रतिकृल वर्तावीपर भी दृष्टि नहीं देते। निष्टुरके साथ प्रीति करना अगम मार्ग है। एकाङ्गी प्रीतिका वर्णन; यथा—

पेसे होँ हुँ जानित भूंग।
नाहिं ने काहू कह्यों मुख प्रीति करि इक अंग॥
कथों! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुखदीन।
निठुरता अरु नेहकी गित कठिन परित कही न।
दास तुलसी सोच नित निज नेह जानि मलीन॥
(क्रण्णगीतावली ५४-५५)

—इन पूरे पदोंको देखिये।

इसी प्रकार जापकको नाममें अपनी ओरसे प्रीतिपूर्वक हट़ नियम रखना चाहिये। चाहे भजनसे कुछ लाभ प्रतीत हो और चाहे नहीं, निष्काम भावसे भजन करते रहना चाहिये।

'विकमु न छन-छन छाँहें'—नाम-जप करते समय बहुत-से सांसारिक मुख ऐसे भी प्रारब्धानुसार आ जाते हैं; उनमें आसक्त होकर उनके प्रलोभनमें जितना समय व्यर्थ जाता है, वह नाम-जपमें विष्न होता है, यही क्षण-क्षण छायामें बैठना है। ऐसे ही कहीं-कहीं ऋद्धि-सिद्धियोंकी बाधाएँ आ जाती हैं। उनमें आसक्त होना भी क्षणिक मुखमें आसक्त होकर नामाराधन-मार्गमें विष्न है। 'तुलसी हित अपनी भी ओरसे निष्कपट (स्वार्थ-वासनारहित) नियम निबाहनेमें है। यथा—

एक अंग जो सनेहता, निसिदिन चातक नेह । तुरुसी जासों हित रुगै, ओहि अहार ओ देह ॥ (दोहावली ३१२)

चातकका रात-दिन (नित्य) का जो स्नेह है, वही एकाङ्गी स्नेहवृत्ति है। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि इस वृत्तिमें जिससे जिसका प्रेम लग जाता है, वही उसका आहार है और वही उसका शरीर है; अर्थात् वह उसीकी स्मृतिसे जीता रहता है और उसीके शरीरमें तन्मय रहता है।

इस एकाङ्गी प्रेममें यह जाननेकी आकाङ्क्षा रहती है कि इसका शरीर-निर्वाह कैसे होता है। उसपर कहा गया है कि इष्टदेव ही आहार रहता है, यह उसीकी स्मृतिमें खाने-पीनेपर भी ध्यान न देकर उसीके नाम-रूपमें आनन्द मानता हुआ सुखी रहता है। उसकी सत्य निष्ठापर सर्वान्तर्यामी परमात्मा उसके इष्ट-रूपसे आहार भी देता ही है—यह 'ओह अहार'

संप

एव

लम

अन

१२

मनु

भा

उस

प्राच

21

उपन भी

किय तीस

एक

मनु

84

(३

इस

भा

नहीं

गौत

सुमा

क्रम्ब

सीरि

प्रचु

रामा

उद्धर

(1

का भाव है और जो जिसमें श्रद्धावान् होता है, वह उसीमें तन्मय हो जानेसे वही रूप हो जाता है; यथा-

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः। (गीता १७।३)

यही 'ओ देह'का भाव है। इसी पूर्ण निष्ठासे जापक कृतार्थ होता है। इसीमें इसका हित है; किंतु इसमें एक परमावश्यक बात साथ ही कहते हैं-- 'निरुपिध नेम निवाहे'--प्रेम-मार्गमें स्वार्थ ही कपट (छल) है; यथा-

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छक फल चारि बिहाई॥ (रामचरितमानस अयो० ३००)

अर्थात् खाभाविक स्नेहसे खामीकी सेवामें चार फल-तकका स्वार्थ नहीं चाहिये। इसका निर्वाह होनेपर स्वामीकी ओरसे अवश्य इसका कल्याण होता है, जैसे चातकके प्रसङ्गमें भी कहा गया है-- 'चातक अद्वितीय अनन्य याचक है और मेघ अद्वितीय दाता है। चातककी माँगपर मेघ

पृथिवीरूपी पात्र (के सर-सरिता आदि) को चार महीने वर्षा करके पूर्ण भर देता है। फिर भी चातक अन्तमें खातीका एक घूँट पानी पीता है, वह भी अपने स्नेही मेवका मन जोगाने (रखने) के लिये—दोहावली २८४,३०७। अन्यथा भक्त कुछ भी भक्तिसे अन्य पदार्थ नहीं चाहते। इस प्रकार निष्काम जापककी शुद्ध निष्ठापर भगवान् गीता ७। २१-२२ के प्रतिज्ञानुसार इसका हित करते हैं। नैष्टिक भक्त भगवान्को ही प्राप्त होते हैं और फिर वे संसारमें नहीं आते--गीता ७ । २३ तथा ८ । १५-१६ देखिये ।

भगवद्धाममें यह भक्त नित्य परिकर (सेवक) ल्पों ब्रह्मके साथ दिव्य मुख पाता रहता है-

सोऽइनुते सर्वान्कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चितेति। (तैत्ति०२।१)

वह (मुक्तात्मा) विज्ञानस्वरूप ब्रहाके साथ समस्त भोगोंका अनुभव करता है।

मनुका आदर्श शासनविधान

(लेखक-पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

शास्त्रोंमें मनुको परमात्मरूप तथा पूर्ण सर्वज्ञ कहा गया है-

एतमेके वदन्त्यर्गिन मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेकेऽपरे **प्राणमपरे** ब्रह्म शाश्वतम्॥ (मनुस्मृति १२। १२३)

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मी मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ (योगियाशवल्क्यस्मृति १२ । २०, मनुस्मृति २ । ७)

वेद भी मनुके उपदेशोंको मानव-जातिके लिये 'परम भेषज' कहते हैं-

मनुवैं यत् किंचिद्वदृत् तद् भेषजं भेषजतायाः (तै० सं०२।२।१०।२, काठक०११।५, ताण्डच०२३। १६।६, मैत्रायणी० २।१।५)

ऋग्वेद १।८०।१६ तथा १।४५।१ आदिमें इन्हें देव-मनुष्यादि समस्त प्रजावर्गका पिता कहा गया है। मनुष्य-वाची मनुज, मानव, मानुष, माणव आदि जितने भी शब्द हैं, उनका मूल यह 'मनु' शब्द ही है । अंग्रेजीके मैन (Man)

१-मनोर्जातवञ्यतौ पुक्च (४।१। १६१)।

ह्ममन (Human), जर्मनभाषाके Mann, फ्रेंचके डचके Man, लैटिन के Mas आदि सभी शब्दोंका आधार भी यही है। अतः मनुष्य-जातिमात्रको ही इनका उपदेश जानकर अपनी मनुष्यता सफल करनी चाहिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुका ज्ञान दिव्य, सर्वथा ठीक तथा सर्वजन-कल्याणकारी है । जिस अनागत, अतीत या अतीन्द्रिय, व्यवहित, विप्रकृष्ट तत्त्वका मनुने वर्णन किया है, वह मनुष्यके सामने आती है, इसमें कोई संदेंह नहीं । इसीलिये भगवान् राम-कृष्ण तथा याज्ञवल्क्यादि प्रायः साठ स्मृतिकार शुकदेव, शंकराचार्य, ऋषिगण, वाल्मीकि, व्यास, रामानुजाचार्य, शवरस्वामी, कुमारिलभट्ट आदि सभी दार्शनिक

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सिर्गिकः स्मृतः। नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिध्यति माणवः॥ २--वाल्मी ० रामायण, किष्किन्धाकाण्डमें भगवान् रामने नामोक्लेखपूर्वक मनुस्मृतिके ८ । ३१६, ३१८ इन दो इलोकीका हवाला दिया है। रलोक इस प्रकार हैं—श्रूयते मनुना गीतौ रलोकी चारित्र्यवत्सली ।' आदि (किष्कि० १८ । ३० 😈 ३२) ।

३-गीता १६। २३-२४; १७। ५; १०। ६।

38

नहीने

तीका

मन

100

इते।

गीता

छिक

नहीं

रूपमें

१) मस्त

चके

यही

कर

दिह

जन-

द्रयः

यके

गन्

कार

ार्य,

नेक

मने

का

की

आचार्य, साधु-संत महात्मा इन्हें परम प्रमाण मानते हुए समाहत करते हैं। महाभारतमें मनुस्मृतिके बहुत-से क्लोक नामोल्लेखपूर्वक आये हैं। अग्निपुराणका १६२ वॉ अथ्याय मनुस्मृतिका सारांश है तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणके तीसरे भागमें एवं भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें प्रायः मनुस्मृतिका बहुत बड़ा लम्बा अंश न्यों-का-त्यों प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण तथा अन्यान्य पुराणोंमें भी इसका उल्लेख है। वामनपुराण १२। ४८ का कथन है कि मनुस्मृति सबमें प्रधान है—
भनुः स्मृतीनां प्रवरों यथैव तिथीषु दशों विबुधेषु वासवः।

बहुत लोगोंको यह भ्रम रहा कि मनुस्मृतिसे पहले कोई 'मानवधर्मसूत्र' भी था। पर यह निराभ्रम ही है, क्योंकि उसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। आपस्तम्य-धर्मसूत्र बहुत प्राचीन प्रनथ है । इसमें 'मानवं चेमं इलोकसुदाहरन्ति' कहकर २।४।१ तथा २।१६।१ में मनुस्मृतिके ही इलोकोंको उपन्यस्त किया गया है। इसी तरह उसके १।६। १५ में भी 'उदाहरन्ति' कहकर मनुस्मृति ८ । ३१ । ७ को उद्धृत किया गया है। इसी तरह 'वसिष्ठधर्मसूत्र'में कई स्थल हैं। केवल तीसरे अध्यायमें ही 'मानवं चात्र इलोकमुदाहरन्ति' कहकर एक साथ ही १३ रलोक दिये गये हैं, जो आज भी मनुस्मृतिमें क्रमशः २ । १६८ (वशि० ३ । ३); १२।१३-१५ (वशिष्ठ ३ । ६—८) आदि संख्याओंपर हैं । निरुक्त (३।४।१), विष्णुधर्मसूत्र, गौतम, वौधायनधर्मसूत्रोंमें भी इस प्रकारका उल्लेख है। महा० अनु० १९। ६ में मनुको 'मानवगृह्य-सूत्रकार' रूपमें स्मरण किया है, धर्मसूत्रकारके रूपमें नहीं। या सूत्र-शब्द उनको मनुके अनुष्ट्रप् रलोक ही दृष्ट हैं।

मनुस्मृतिका प्रचार-प्रसार

किसी समय मनुस्मृतिका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार था।
गौतमबुद्ध तथा ईसापर मनुकी भारी छाप थी। जावा,
सुमात्रा, चीन, जापान, फिलिपाइन, मलाया, स्याम,
कम्बोडिया, चम्पा, इण्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया, ईरान, वेबीलन,
सीरिया, पैलेस्टाइन, रोम आदिमें मनुस्मृतिके प्रचलित रहनेके
पचुर प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। कम्बोडियाके आइनकोसीके

४—तन्त्रवार्तिक (कुमारिल), वेदान्तस्त्र-शांकरमाष्य, रामानुज-श्रीभाष्य आदिमें वार-वार मनुस्मृतिके प्रशंसायुक्त सादर उद्धरण दिये गये हैं।

4. The Unknown Life of Jesus Christ (Lutovies)

शिळाळेखमें मनुस्मृतिका २। १३६ वाँ श्लोक खुदा हुआ है। इण्डोनेशियामें एक 'कुटरमानव' प्रन्थ है। इच विद्वान् जोंकर (Jonker) ने इसका मनुस्मृतिके साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हुए एक पुस्तक लिखकर इसकी मनुस्मृतिन मूलकता सिद्ध की है। फ्रांसीसी विद्वान् रेनेगेनोने अपनी कई पुस्तकोंमें मनुस्मृतिकी व्यापकता दिखलायी है। ये फ्रांसीसी होते हुए भी मनुसे प्रभावित होकर सनातनी हिंदू हो गये थे। इनका अब एक छोटा-मोटा फ्रांसीसी सम्प्रदाय ही चल गया है। तदनुसार बहुत-से फ्रेंच विद्वानोंकी हिंदू यर्भमें निष्ठा हो गयी है। जर्मन विद्वान् नित्हो तथा थियाँसकी सम्प्रदायकी संस्थापिका मेडेम ब्लैवेटस्की भी मनुसे प्रभावित थे। वाली दीपमें मनुस्मृति अब भी एक समाहत ग्रन्थ है।

मनुस्मृतिकी टीकाएँ

सर्वाधिक प्राचीन प्रन्थ होनेके कारण मनुस्मृतिकी टीकाओंकी संख्याकी सीमा नहीं है। इसपर असहाय, उदयन, उदयकर्र, उपाध्याय, धरणीधर, कृष्णनाथ, भागुरि, भारुचि, यन्वा, रामचन्द्र, रुचिदत्त, देवस्वामी, भर्तयज्ञ आदिकी प्राचीन टीकाएँ थीं । १४ में शताब्दीके मनुवृत्तिटीकाकार कुल्दूक्महने मेधातिथि, धरणीधर, गोविन्दराज आदिकी टीकाएँ देखी थीं और अपनी टीकाके अन्तमें इनका उल्लेख किया है। Royal Asiatic Society Bengal से प्रकाशित मनुदीकासंग्रहमें मेधातिथि, राधवानन्द, नारायणसर्वज्ञ, नन्दन तथा एक किसी अज्ञात टीकाका अंश संगृहीत है। मण्डलीकके संस्करणमें कुल्लूकभट्ट-सहित प्रायः पूर्वोक्त ५ टीकाएँ सम्पूर्णतः प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त कुल्ट्रकभट्टने ९ वें अध्यायमें भोजदेवके विवरणका भी उल्लेख किया है। श्रीभद्दोजि दीक्षित १५ वीं शताब्दीमें थे। इन्होंने अपने 'चतुर्विशतिमत' संग्रहमें कुल्दूकका उल्लेख किया है, अतः इनका समय १४ वीं शताब्दी है। इन्होंने गोविन्दराज, धरणीधर आदिका उल्लेख किया है । अतः ये १२-१३ वीं शताब्दीके रहे होंगे। मेधातिथि ९ वीं शतीसे पूर्वके हैं। नारायण सर्वज्ञका समय १६ वीं शती है। इसके अतिरिक्त मणिराम दीक्षितकी एक सुखबोधिनी टीकाका भी पता लगता है। इनमेंसे कुछ तो इस्तलिखितरूपमें केवल संग्रहालयोंमें ही उपलब्ध हैं। इस तरह इन महामहिम विद्वानोंके ज्ञानसे

६. इनका उल्लेख विवादरत्नाकरमें किया गया है।

^{9.} Proceedings and Transactions of All-India Oriental Conference. XII session, p. 352.

हम विश्वत हो रहे हैं। खेद है आज बलात् अपने नाम-ख्यापनके लिये अपनी पुस्तकोंके प्रकाशनके लिये लोग वेतरह जुट पड़े हैं। बहुत-से लोग तो वड़े भयानक पतनोन्मुख साहित्यका निर्माण कर रहे हैं । यह केवल देश एवं जनताका दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है । विचारवान् समर्थ प्रकाशकोंको इधर ध्यान देना चाहिये।

मनुस्मृति किसकी रचना ?

मनु १४ हुए हैं। मनुस्मृतिको कोई वैवखत मनुकी तो कोई किसी मनुकी रचना बतलाते हैं (द्रष्टव्य 'सिद्धान्त' वर्ष १५। १; 'कल्याण' वर्ष २१ अङ्क १२)। पर वास्तवमें मनुस्मृति आद्य मनु स्वायम्भुवकी ही रची हुई है । इसके निम्नलिखित प्रमाण हैं-

> १. स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत्। (मनुस्मृति १। १०२)

> २. स्वायम्भुवस्यास्य मनोः। (मनुस्मृ०१।६१)

३. अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः। मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥

(निरुक्त० ३।१।४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् । (मनुस्मृति ६ । ५४; ८ । १२४; ८ । १५८; महाभारत १ । ७३ । ९; शान्तिपर्व ३६।५; १३९ । १०३)

४. यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधाल् शुभान् ।

एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम्॥ (भागवत ३ । २२ । ३८-३९)

५. मनुस्मृति तथा भागवतके सभी टीकाकार भी इसीका समर्थन करते हैं।

६-याज्ञवल्क्यस्मृतिकी 'वालक्रीडा' व्याख्याके रचियता श्रीविश्वरूप याज्ञ०स्मृ० २ । ७३-७४, ८३, ८५ पर स्वायम्भुव-मनु कहकर मनुस्मृतिके ८। ६८, ७०-७१, १०५-६, ३८० श्लोकोंको उद्भुत करते हैं। महाभारत, आदिपर्व ७३।८-९ में मनुस्मृतिके (३।२१)—

दैवस्तथैवार्षः ब्राह्यो प्राजापत्यस्तथासुरः। गान्धर्वो राक्षसङ्चैव पैशाचश्राष्टमः स्मृतः॥ —इस श्लोकको उद्भुतकर कहा गया है— तेषां धर्मान् यथापूर्वं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्। नारदीय मनुसंहिता भी इन्हीं मनुके प्रवचनपर आधारित है । किसी अन्य मनुद्वारा प्रन्थप्रणयनकी वात नहीं मिलती।

मनुस्मृतिरचयिता या स्मृतिसर्ता?

कुछ लोग स्मृति-शब्द देखकर मनुको 'स्मृतिसार्ता' कहना चाहते हैं; पर यह ठीक नहीं । मीमांसादर्शनके 'स्मृति-अधिकरण' तथा वेदापौरुषेयत्व-अधिकरणपर इसका विचार चला है। वेद अपौरुषेय होनेसे ब्रह्मा आदिद्वारा स्मृत कहे जाते हैं-

न कश्चिद् वेदकर्ता स्याद् वेदसार्ता स्वयस्भुवः। (पराशरस्मृति १ । १६)

ब्रह्मा आदि उनके स्मर्ता हैं, कर्ता या रचियता नहीं— स्वयम्भूरेव भगवान् वेदो गीतः स्वयम्भुवा। शिवाद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मर्तारोऽस्य न कारकाः॥ 'उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्' (मीमांसादर्शन १ । १ । २९) —आदिमें यह स्पष्ट है। भट्ट कुमारिल भी कहते हैं— न पुनः स्वातन्त्र्येण कश्चिद्पि प्रथमोऽध्येता वेदानामित कर्ता स्थात् । तस्मात्कर्तृसारणाभावाद्पौरुषेया वेदा इति भावः॥

(उसीका तन्त्रवार्तिक)

न चेयं विप्रतिपत्तिर्बंहरूपा परम्परया वेदकर्तरि मनवादिवत्सार्यमाणे कथंचिदवकल्पते। न हि मानवे, भारते, शाक्यप्रनथे वा कर्मविशेषं प्रति कश्चिद्विवदते ॥

(मीमांसाभूमिका पृष्ठ १८)

शबरस्वामीने अपने मीमांसाभाष्योंमें तथा भट्ट सोमेश्वरने तन्त्रवार्तिककी न्यायसुधा-व्याख्यामें इसे विस्तारसे स्पष्ट किया है।

शास्त्रमकल्पयत्। स्वायम्भवो मनुधीमानिदं

(मनु०१।१०२)

(मनु०१।५८) 'इदं शास्त्रं तु कृत्वासी' तथा प्रायः सभी स्मृतियों एवं निबन्धग्रन्थोंमें आये 'संमुतिकार' शब्द भी इसीके समर्थक हैं।

अम्बालासे प्रकाशित आङ्गिरसस्मृतिके १२९ पृष्ठपर स्मृतिकी परिभाषा यों दी है--

भृतस्य भाविनो ज्ञानं स्मृतिरित्युच्यते बुधैः। प्रचक्षते ॥ तत्स्मृतिशाखं शब्दसूत्रनिबद्धं कुमारिल भट्टकी परिभाषा है-स्मृतिरुच्यते । पूर्वविज्ञानविष्यं विज्ञानं

सर स्मृ न वि

GE!

ही तुलस और दशर

स्वाय दंपति

देखव

इनके 61 मानर इसीरे

खलों स्मृति पुराण संख्य

शुकदे महाभ स्थलप 61

पाप्त । 'बु

'प्राणा

३६

=

नात

हना

ति-

वार

मृत

E)

()

स्ति

या

रि

ते,

)

रने

1

यि

र

अमर, शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्यादि कोष 'वेदार्थ-स्मरणानिर्मितो प्रन्थः स्मृतिः' कहते हैं । इसल्विये मनु स्मृतिके प्रणेता, निर्माता, कर्ता या रचियता कहे जाते हैं, न कि वेदवत् स्मर्ता ।

मनुकी जीवनी

श्रीमद्भागवतः पश्चपुराणः महाभारतादिमें इनकी बड़ी ही प्रशंसा है । मनुओंमें ये सर्वाधिक भगवद्भक्त थे। तुलसीदासणीने पश्चपुराणके आधारपर इनकी अद्भुत पवित्रता और भक्तिमत्ताका बालकाण्डमें वर्णन किया है। ये ही पुनः दशरथ होते हैं। पाठकोंको —

स्तायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें में नरसृष्टि अनुपा॥ दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँगाव श्रति जिन्ह के लीका॥

—से आरम्भकर इनके भगवद्दर्शनतकका चरित्र वहीं देखकर मनको तृत करना चाहिये। भागवतके अनुसार इनके कारण भगवान्के कपिल, यज्ञपुरुष (११३।१२; ८।१।१८) आदि कई अवतार हुए। पद्मपुराण, मानसादिके अनुसार रामावतार भी इनके ही कारण हुआ। इसीसे इनकी विशेषता परिलक्षित होती है।

मनुस्मृतिकी विशेषता

मनुस्मृतिकी महत्ता तथा विशेषता इसके श्लोकोंके वीसों स्थलोंपर मिलनेसे ज्ञात होती है। अनेक पुराणों तथा स्मृतियोंमें इसका लंवा अंश है। विष्णुधर्म, भविष्यादि पुराणोंमें प्रायः पूरी मनुस्मृति ही गृहीत है। इसका २। ९४ संख्याका श्लोक है—

'न जातु कासः कामानामुपभोगेन शास्यति।'

— इसे पराशरजीने विष्णुपुराणके ४। १० । २३;
गुकदेवजीने भागवतके ९ । १९ । १४ तथा व्यासजीने
महाभारत १ । ७५ । ५०, पद्मपुराण सु० १९ । २६५ के स्थलपर लिखा है । किमधिकं यह एक लिंगपुराणमें ही ८ । २५, ६७ । १७ तथा ८६ । २४ इन तीन स्थलोंपर
पाप्त होता है । तुलसीदासजी भी—

'बुझ न काम अगिनि तुरुसी कहुँ बिषय भोग बहु घी ते ।' (विनयपत्रिका)

—आदि पदोंमें इसका अनुवाद करते हैं। मनुका ६।७२-'पाणायामैद्देहोषान्' आदि क्लोक भी अमृतनादोपनिषत् ८, भागवत ३।२८।११, विष्णुवर्मी॰ पुराण २ । १३१।४०, वायुपुराण १०।९३ आदि अनेक स्थलींपर मिलता है।

इसी प्रकार-

सुकं हावमतः शेते दुकं च प्रतिबुध्यते। सुकं चरति कोवेऽक्षित्रवमन्ता विनश्यति॥ (मतुस्यति २ । १६३)

यह स्त्रोक मिवच्यपुराण १ | ४ | १५०, महाभारत धान्तिपर्व २९९ | २८; २२९ | २१-२३ तथा विष्णुवर्म० ३ | २४३ आदिमें कई जगह प्राप्त होता है | इसी प्रकार मनुका ८ | ३१७—

अलाडे अपूजहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिजी। गुरौ बिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिनम् ॥

—यह स्ठोक आपस्तम्बधर्मसूत्र १ | ६ | १५, वसिष्ठधर्म-सूत्र १९ | २९, गृहरत्नकारिका ३५०, स्कन्दपुराण कुमारिका-लण्ड ३३ | १३, कृत्यकल्पतरु पृ० २७३, वीरमित्रोद्य आह्निकप्रकाश ५०९ आदि अनेक स्थलोपर गृहीत है | इनका ४ | २४०—

'एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।'

यह स्ठोक भागवत १० । ४९ । २१, महाभारत अनुशासनपर्व १११ । ११, ब्रह्मपुराण २१७ । ४, गरुड-पुराण २ । २२ आदि अनेक स्थलींपर गृहीत है । इस प्रकारके प्रायः मनुके सभी स्ठोक हैं ।

सर्वप्रामाण्यभूत मनुजी इतिहास-पुराणोंको परम प्रमाण मानते हैं और उन्हें बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। (३।२३२)। ये विशिष्ठ (८।१४९), गौतम, अत्रि आदि ऋषियोंके मतका आदर करते हैं (३।१६)। स्मरण रखना चाहिये कि ये ऋषि ब्रह्माकी मानस सृष्टिमें इनसे पहर्ल प्रकट हो चुके थे (भागवत)। कई स्थलोंपर इन्होंने वेदाङ्ग-च्यौतिष, व्याकरण आदि तथा आरण्यक ग्रन्थोंका उल्लेख किया है। (२।१४१,३। ४८५,४।८७,४।१२३ आदि)। इनके मतसे धर्म ही रक्षक तथा पापीके लिये मक्षक है। अतः धर्मका कभी परित्याग न करना चाहिये (८।१५)। जो आदमी जिस मन, कर्म, वचन आदि साधनसे ग्रुभाग्रुभ कर्म करता है,

८. अपमानित प्राणी सुखरे सोता जागता है, पर अपमान

करनेवालेका नाश हो जाता है।

करि

ये

दी

दीर्व

कर

साध

प्राप्त

दम

दी

उठ

उठ

कर

उस

होर

उसे उसी साधनसे उसके परिणाम भी सुगतने पड़ते हैं। वह इनसे बच नहीं सकता—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्के शुभाशुभस्। वाचा वाचाकृतं कर्मं का हैव च कायिकम्॥ (मनु०१२।८)

शासनविधानकी दिव्यता

मनुजी आदिराजा थे । इसिलये राज्यकी स्थितिसे पूर्ण परिचित थे । उनके मतसे चोर-डाकू तथा वर्णसांकर्यसे प्रजाको बचाना ही राजनीतिका सार है । खेद है आज इघर किसीका ध्यान नहीं है । इस समय ऐसे उपद्रवोंकी मानो सीमा-सी हो गयी है; पर इधरसे लापरवाह शासकके लिये मनुजीका निर्णय इस प्रकार है—

परमं यत्नमातिष्ठेत् स्तेनानां निग्रहे नृपः। योऽरक्षन् बलिमाद्ते करं शुल्कं च पार्थिवः। प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं वजेत्॥ बलिषड्भागहारिणम् । अरक्षितारं राजानं तमाहः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम्॥ अनपेक्षितमर्यादं . नास्तिकं विप्रजुम्पकस् । अरक्षितारमत्तारं विद्याद्धोगतिम् ॥ नृपं (मनु०८।३०१,३०८-३१०)

अशासंस्तस्करान् यस्तु बिंछं गृह्णाति पार्थिवः। तस्य प्रक्ष्युभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच परिहीयते॥ (मनु०९।२५४)

मनु, नारद, गौतम, वशिष्ठ आदि प्राचीन सभी स्मृतिकार एक स्वरसे कहते हैं कि यदि किसी राजाके राज्यमें चोरी होती है तो उस प्रजाको राजाको अपने कोषसे उतना घन तत्काल दे देना चाहिये। चोरका पता लगाकर दण्ड देना आदि कार्य उसके पीछेका है। अन्यथा उसके राज्यत्वका कोई अर्थ नहीं। उसे कर देनेकी कोई आवश्यकता नहीं—

दातब्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैहैतं धनम्। (मनु०८।४०)

स्तेनेष्वलभ्यमानेषु राजा दद्यात् स्वकाद् धनात्। उपेक्षमाणो द्येनस्वी धर्मादर्थाच हीयते॥ (नारद०१४।२६)

९. काल्डिदास तो वर्णाश्रमपालनको ही मनुस्मृतिका सारतत्त्व मानते हैं—

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।

(रच्चवंश १४)

जिस प्रकार सम्भव हो उसे चोर, पारदारिक, साहिक, कटुवादी तथा उच्छुक्कलको अपने राच्यमें नहीं रहने देन चाहिये। (मनु०८। ३८६, विष्णु०५। १९४)

मनुने प्रायः २०० क्षोक चौर्यनिषेषपर लिले हैं।

अनेक राजाओंने मनुके इस आदेशको चमक्कत ढंगसे पालन किया । प्राचीनवर्हिके राज्यमें चोर-डाकुओंका निशान न था ।

चोरा न सन्ति न हि सन्ति द्रस्यवः
प्राचीनबर्हिजीविति होप्रदण्डः।
(भागवत ४।४)

श्रीराम, कृष्ण, युधिष्ठिरादिके रान्यमें भी ऐसी ही बात थी । कार्तवीर्यकल्पके प्रसङ्गमें नारदपुराण आदिमें आता है कि दत्तात्रेयके आशीर्वादसे सहस्रार्जुनके राज्यमें कोई भी यदि किसीकी वस्तु चुराना चाहता था तो कार्तवीर्य (सहस्रार्जुन) हजार हाथोंमें धनुष-बाण खींचे वहीं दिखलायी पड़ता था।

कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् । येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही ॥ यस्तस्य कीर्तयेश्वाम कल्यसुत्थाय मानवः। न तस्य वित्तनाशः स्याश्चष्टं च लभते पुनः॥ (पद्मपुराण स०१२।१३८-९)

यः सुदर्शनचक्रस्यावतारः पृथिवीतले । दत्तात्रेयं समाराध्य लब्धवांस्तेज उत्तसम् ॥ तस्य क्षितीश्वरेन्द्रस्य स्मरणादेव नारद। शत्रृक्षयित संग्रामे नष्टं प्राप्नोति सत्वरम् ॥ (नारदपुराण ७५ । ३-४)

तभी भारतीय निर्द्धन्द्व रहते और रातमें भी दरवाजा खुले सोते थे। मनु भौतिक नहीं, अध्यात्मवादी थे जो परम सत्यवाद है। उन्होंने ईश्वरको जानना आवश्यक बतलाया है—

प्रशासितारं सर्वेषासणीयांसमणोरिप । रुक्मामं स्वमधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ (१२।२२)

मनुने ब्राह्मणोंकी बड़ी प्रशंसा की है। उनके शब्द हैं-शाश्वती । मृर्तिर्धर्मस्य उत्पत्तिरेव विप्रस्य ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ स हि धर्मार्थमुत्पन्नो हि पृथिन्यामधिजायते । ब्राह्मणो जायमानो गुप्तये ॥ धर्मकोशस्य सर्वभूतानां ईश्वरः यस्किचिज्ञगतीगतम् । सर्वे स्वं ब्राह्मणस्येदं

38

सिक,

देना

ढंगसे

शान

*)

ऐसी

निके

र्वीचे

9)

8)

जा

रम

2)

...सर्वं वे ब्राह्मणोऽहंति ।

स्वप्नेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च । आनुशंस्याद् ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥ (मनु० १ । ९८-१०१)

प्रामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणाञ्च प्रकोपयेत् । ते होनं कुपिता हन्युः सद्यः सवलवाहनम् ॥ यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोद्धिः । क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥ १° (९। ११३--१४)

ऐसी ब्राह्मणोंकी प्रशंसा अन्यत्र किसी शास्त्रमें मिलना कठिन है। (महाभारतः अनुशासनपर्व १५१। १६ आदिमें ये ही बचन अलबत्ते दुहरा दिये गये हैं।) यह उनकी ब्राह्मणभक्तिका परिचायक है। मनुने त्यागः दानः क्षमाः शानाजन, स्वधर्मपालनपर बहुत जोर दिया है।

मनुस्मृतिके वादकी सभी स्मृतियोंने मनुका ही अनुसरण किया है। स्मृतितत्त्व, दानसागर, निर्णयसिन्धु, स्मृतिचन्द्रिका, हेसाद्रि, वीरिमित्रोदय आदिके भी ये ही प्राण हैं। इधर कुछ पाश्चात्त्र्यशिक्षा-दीक्षाप्राप्त लोगोंने भी मनुस्मृतिपर अनुसंधान-कार्य किया है, पर उन्होंने न तो ठीकसे मनुको समझा है, न अन्य भारतीय साहित्यको। एक सज्जन लिखते हैं कि 'ईशोपनिषद्' ईसामसीहके नामपर रचित है। जो हो, इस समय मानवसमाजको मनुको ठीकसे समझकर उनके अनुसरणकी आवश्यकता है। अन्यथा वह अणुवम, भ्रष्टाचार, अनाचारादि भयानक विनाशके कगारेपर खड़ा है। भगवान् ही बचायें इस विभीपिकासे।

तपश्चर्या

(लेखक—डॉ॰ मुंशीरामजी शर्मा, एम॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰)

हमारे पूर्वजोंकी साधना दीक्षासे प्रारम्भ हुई है। दीक्षाके लिये तपश्चर्या अनिवार्य है। इसके अभावमें दीक्षित व्यक्ति अपनी साधनाके गन्तव्यको प्राप्त नहीं कर पाता। तप भी बाहरसे अंदरतक जाता है। साधक सर्वप्रथम शरीरको तपश्चर्याकी भट्ठीमें डालता है। वत और उपनास करके वह शरीरपर नियन्त्रण प्राप्त करता है।

यो अग्नि तन्बोद्दमे देवं मर्तः सपर्यति। ऋग्वेदकी इस ऋचाके अनुसार जो साधक शारीरिक दमनद्वारा उस अमरदेवकी पूजा करता है, उसीके पास दीप्तिमान् वसु निवास करते हैं। उसका ऐरवर्य चमक उठता है, उसका धन और वासक शक्तियाँ प्रदीप्त हो उठती हैं।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुगीत्राणिपर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्नतद्गमोऽर्जुतेश्वतास इत वहन्तः तत्समारात्॥

इस ऋचामें प्रभुके पावन खरूपका वर्णन है। प्रभुकी पित्र करनेवाली लहरें चतुर्दिक् पिरव्याप्त हैं, साथ ही वे एक-एक व्यक्तिको भी सब ओरसे आच्छादित करके पित्र कर रही हैं, परंतु जिसने अपने शरीरको नहीं तपाया, जो आम अर्थात् कच्चे बड़ेके समान है, वह प्रभुके इस पावित्र्यकारक प्रवाहसे बिन्नत हो जाता है। पके हए व्यक्ति ही उसे प्राप्त कर पाते हैं।

शरीरके अंदर मनस्तत्त्व मानवताका मूळकेन्द्र है। इस मनको भी तपकी ओर प्रवृत्त करना होता है।

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः। अग्निमीधे विवस्त्रभिः।

मनके द्वारा जब ज्ञानाग्नि प्रज्वलित की जाती है,

१०. धर्ममृति ब्राह्मण जन्मते ही सारी पृथ्वी एवं प्राणियोंका स्वामी हो जाता है; क्योंकि उसे धर्मरूपी खजानेकी रक्षा करनी है। इस विश्वका सब कुछ ब्राह्मणका ही है। वह जो खाता, देता तथा जहाँ रहता है, सब उसका अपना ही है। अन्य प्राणी उसीके जिलाये जीते, खिलाये खा रहे है। जिन ब्राह्मणोंने स्रज्ञिको सर्वेभक्षी, समुद्रको अपेय, चन्द्रमाको खुयरोंगी पुन; होगसुक किया, उन्हें क्यों भी रुष्ट न करें।

का उ

पहुँच

प्रकार

उसक

व्यति

कार र

सुख

का उ

द्वारा एवं

व्यक्ति

है, र

खरू

करने

श्रीभर

सब ध

वह उ

उनर्क

थे।

हुई

निद्रा

सकी

प्रार्थन

होनेर

अतए

अग्नित

बाल्न

गम्भी

उसव

जाने

श्रवण और मननके द्वारा जब ज्ञानका संग्रह और आत्मीयकरण होता है, तभी मानव धीको प्राप्त करता है। धी बुद्धिका वह स्तर है जो ज्ञान और कर्म दोनोंका समन्वय करता है। जब मेरे ज्ञानके अनुकूल मेरे कर्मका प्रवाह चल पड़ता है, तब मैं मानसिक तपकी सिद्धिरूप धीको प्राप्त करता हूँ । इस स्तरमें प्रवेश किये विना बुद्धिके अन्य आन्तरिक स्तर नहीं खुल पाते । मेधा जिसे 'धारणावती बुद्धि' कहा जाता है, इसीके उपरान्तकी अवस्था है । कभी-कभी मेरा धुना हुआ, मनन किया हुआ मेरे अंदर जाकर भी बाहर निकल जाता है, ठहर नहीं पाता । उसे स्थिर रूप तभी प्राप्त होता है जब मेधाका जागरण हो। वेदने मेघाको ब्रह्मण्वती, ब्रह्मजूत तथा ऋषिस्तुत कहा है। ज्ञानमें विचरण करनेवाले तथा ब्रह्मकी ओर प्रयाण करनेवाले इस मेधाको पी जाते हैं । पिया हुआ जल जैसे अंदर पहुँचकर अङ्ग-अङ्गमें वस जाता है, इसी प्रकार मेवा उनके आन्तरिक अङ्गोंका एक अङ्ग बन जाती है।

मेंगाके उपरान्त प्रज्ञा आती है जो स्वयं प्रकाश है। जिस तपस्वीको प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है, वह धन्य है। वह निखिल ऋषि और देवोंका मूर्धन्य है। यह प्रज्ञा उस घोर तपश्चर्यासे प्राप्त होती है, जिसे चैतन्याग्नि कहा गया है।

ईजानश्चितमारुश्चद्धिं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्-पतिष्यन् । तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान् स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ।

प्रज्ञामें प्रतिष्ठित, चैतन्यकी अग्निपर आरूढ़ याजक नाककी पीठपर बैठकर घौ लोककी ओर उड़ता है। उसके सामने स्वःकी ओर जानेवाला मार्ग ज्योतिर्मय- रूपमें प्रकाशित हो उठता है। यही तो देवयान है और यह प्रज्ञाधनी सुकृतियोंको ही उपलब्ध हो पाता है। इस साधनापयमें तपश्चर्या करते हुए साधकको बीचके और भी अनेक पड़ाव अनुभूत होते हैं, पर वह इन पड़ावोंकी मोहकतासे मुग्ध होकर वहीं विश्राम नहीं करने लगता। बीचका विश्राम उस अन्तिम विश्रामके लिये कभी-कभी बड़ा दु:खद सिद्ध होता है, अतः साधकको अनवरत इस पथपर अप्रसर रहना चाहिये; क्योंकि—

इच्छन्ति देवा सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृह्यन्ति। यन्ति प्रमाद्मतन्द्राः।

ऐतरेय ब्राह्मणकारके शब्दोंमें—'चरैचैति चरैचैति' यही मन्त्र साधकको अपनी अन्तिम विश्रामभूमि तक पहुँचाता है।

तपश्चर्याके ये तीन स्तर एक ओर तीन छोकोंसे सम्बन्ध रखते हैं, तो दूसरी ओर तीन धामोंसे । छोक बाह्य निवासकी भूमि है, धाम साधना-विकासके स्तरको स् चित करता है । वेद छोक तथा धाम दोनोंका उल्लेख करता है । विकास और विकासके योग्य वाता-वरण दोनोंका वैसे भी पारस्परिक, अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । तपश्चर्या दोनोंके मूलमें है । साधक इसीके बलपर ऊँचा उठता है । तपश्चर्या उसे निर्मल करती जाती है और एक दिन ऐसा भी आता है, जब वह समस्त मलोंसे, आवरणोंसे पृथक होकर अपने शुम्र, शुक्र, भ्राजमान एवं शुद्ध स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है । स्पिनोजा इसे 'स्वाधीन अवस्था' कहता है । काण्य इसे 'आदर्श अवस्था'का नाम देता है । हमारे ऋषि इसे 'आदर्श अवस्था'का नाम देता है । हमारे ऋषि इसे 'अमर आत्मस्वरूप' कहते हैं ।

भजन-ध्यानका स्वरूप और लक्ष्य

(लेखक-श्रीजयकान्तजी झा)

भजन शब्द 'भज सेवायाम्' धातुसे बना है। सेवा-का अर्थ किसीके दुःखको कम करने या उसे सुख पहुँचानेसे है । सुख शारीरिक अथवा मानसिक दोनों प्रकारका होता है। किसी भूखेको भोजन कराकर हम उसकी शारीरिक सेवा कर सकते हैं अथवा किसी चिन्तातर व्यक्तिको आश्वासन देकर हम उसकी मानसिक सेवा कर सकते हैं। हम जिस व्यक्तिकी सेवा करते हैं, उसे मुख और संतोप होता है तया उसके सुख और संतोष-का प्रभाव हमारी आत्मापर अवश्य पड़ता है। जब हमारे द्वारा किसी व्यक्तिको सुख पहुँचता है अथवा उसे शान्ति एवं संतोषकी प्राप्ति होती है तव हमारे हृदयमें उस व्यक्तिके आनन्दको देखकर प्रसन्नताका स्रोत उमङ् पड्ता है, यह सर्वविदित है। अतएव भजनका प्रारम्भिक खरूप है-सेवा। सेवा-कार्य सुननेमें जितना सहज है, करनेमें उतना ही काठिन भी है। श्रीरामचरितमानसमें श्रीभरतजीने कहा है—'सब तें सेवक धरम कठोरा'— सब धर्मोंमें सेवा कठोर धर्म है। एक सतीकी कथा है-वह अपने पतिके मस्तकको अपनी गोदमें रक्खे हुए उनकी सेवामें तल्लीन थी। पतिदेव निद्रित अवस्थामें थे। इतनेमें उसका नन्हा शिशु जागा और पासमें जलती 襞 अग्निकी ओर जाने लगा । सती अपने पतिकी निद्रा भङ्ग होनेकी आशंकासे उस बचेको नहीं पकड़ सकी और बच्चेकी रक्षाके लिये मन-ही-मन अग्निदेवसे प्रार्थना करने लगी कि 'हे अग्निदेव! पति-सेवापरायण होनेसे मैं अपने नन्हे शिशुको नहीं रोक पा रही हूँ। अतएव आप उसकी रक्षा करें।' श्रीके इतना कहते ही अग्निदेव चन्दनके समान शीतल हो गये और बचा बाल-बाङ्ग बच गया । इस घटनाके भीतर मानस-शास्त्रका एक गम्भीर विज्ञान छिपा है; वह है सतीकी तन्मयता और उसकी एक विशेष शक्तिका विकास |

î

हमारी आत्मा अनन्त शक्तियोंका भण्डार है। न जाने किस भूमण हुमारी किस शक्तिका विकास हो

जायगा। पर किसी भी शक्तिका विकास 'तन्मयता' अर्थात् मनकी वृत्तियोंके एकाम्र या निरोध होनेपर ही होता है। किसी भी कार्यको सुचार रूपसे सम्पन करनेके छिये 'संयम' या 'तप' नितान्त आवश्यक है। मतःसंयम, शरीरसंयम अथवा किसी प्रकारका संयम क्यों न हो, सभीमें मानसिक वृत्तियोंका निरोध मुख्य है। भजनपर बैठते ही हम मनका, वाणीका और शरीर-का संयम या तप करते हैं और इस प्रकार अपनी आत्माकी सेवामें तत्पर हो जाते हैं । उस समय सम्पूर्ण मानसिक उत्पात शिथिल होने लगते हैं और अपने कृत्यों (विशेषकर दृष्हृत्यों) पर विचार होने लगता है और अपने दुष्कर्मीपर हमें पश्चात्ताप होने लगता है। हम एक ऐसी शक्तिके ध्यानद्वारा अपने वातावरणको शुद्ध एवं शान्त बनाना चाहते हैं, जिसे हमने अपना इप्ट मान लिया है और यही इष्ट हमारा ईश्वर है । सप्तर्षि पार्वतीजी-को तपस्यामें ठीन देखकर पूछते हैं---'क्या उस अमङ्गल वेश नग्न शिवका वरण करनेके लिये ही तुम तपत्या कर रही हो ? हम वैकुण्ठाविपति सौन्दर्यशाली विष्णु भगवान्से तुम्हारा विवाह करा देंगे। १ इसपर पार्वती जी कहती हैं---

महादेव अवगुन भवन बिच्नु सक्छ गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा।को गुन दूषन करें विवारा॥
यही है अविचल प्रेम और भिक्ति, और इसीको प्राप्त
करना है भजनका उद्देश्य। चाहे किसी देवतामें, किसी
यक्षमें, किसी मनुष्यमें अथना किसी चेतन या अचेतन
स्थावर-जंगममें, जिसे भी हम अपने श्रद्धा-विश्वासके द्वारा
अपना ध्येय बना लें, हमें भजनकी सिद्धि प्राप्त हो
सकती है। हम अपने उपास्यदेवके साथ तदाकार हो
जायँ, यही भजनकी सिद्धि है। जैसी भावना वैसी प्राप्ति,
इसमें ऊँच-नीचका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। थो
मां प्रथित सर्वत्र' के अनुसार क विश्व-शक्ति सव जगह

है। भगवान् अपने एक अंशसे विश्वकी सारी विभूतियों-में ब्याप्त हैं। अथवा उनके एक अंशमें सारा विख्व स्थित है। जिसका जो ध्येय है, उसके लिये वही उसकी विभूति है और विश्वेश्वर भगवान् तदनुसार उसे सिद्धि देते हैं एवं उसीमें उसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ एक सती साध्वी पतिवर्मपरायणा स्त्रीका पति यदि दुराचारी है तो पतिको भले ही अपने दुष्कर्मीके कारण नरकमें जाना पड़े; किंतु उसकी पतिव्रता स्त्रीको अपने दुराचारी पतिमें अट्टट श्रद्धा एवं प्रेम होनेके कारण निश्चय ही सद्गतिकी प्राप्ति होगी।

ं जब हम भगवान्का ध्यान करते हैं, तब जहाँतक हमारे मनकी गति हो सकती है, जहाँतक हमारी कल्पना जा सकती है, हम एक नित्य सचिदानन्दघन, सत्य, शिव, सुन्दरके ध्यानमें निमान हो जाते हैं। हमारा ध्यान जब खूब जम जाता है, तब सामनेका कोई भी

उपास्य—प्रतीक उस समय गौण हो जाता है और मुख्य हो जाते हैं हम ही हम। हमें शरीरका, मनका, अपनी वस्तुस्थितिका भान तक नहीं होता; एक अपूर्व आनन्द-का अनुभव होता है और हम आत्मतृप्त हो जाते हैं। भगवान् सर्वभूतमय हैं । जीवोंपर उनकी अपार करणा है। हममें उनको जाननेकी शक्ति नहीं है, फिर भी हम अशक्तोंपर उनकी ऐसी दया है कि हम जैसे चाहें वैसे उन्हें ध्यावें, वे मिल ही जाते हैं। भगत्रान् तो भावके वश हैं। जिसे जो मार्ग भाया, उसीके अनुसार उसने अपने इष्टका घ्यान किया और उसीमें उसको अपने भगवान् मिले । आत्मा अपने ध्येयमें एकाकार होकर परमात्मस्वरूप हो जाता है। यह अवस्था कथनातीत है। संसारके सारे क्लेश, चिन्ता और दुःखें-का अवसान हो जाता है।

यही है भजन-ध्यानका खरूप और लक्ष्य।

आशा—उचित-अनुचित

कहानी]

(लेखक-भी 'चक')

'नम्बर सात ताला-जंगला सब ठीक है !' बड़े ऊँचे ·खरमें पुकारा पीले कपड़ेवाले नम्बरदारने । दूसरे बैरकोंसे भी इसी प्रकारकी पुकारें लगभग उसी समय उठीं।

यह कारागारका तृतीय श्रेणीका बैरेक नम्बर सात है। संध्याकालीन भोजन हो चुकनेपर बंदी अपने फट्टे (मूँजकी रस्सीसे बनी चटाइयाँ), कम्बल, कपड़े लपेटे, तसला-कटोरी लिये दो पंक्तियोंमें बैठ गये थे। उनकी गिनती की गयी और फिर भरभराकर वे बैरकमें व्रस गये।

घुटनेसे नीचेतकका जाँघिया और बिना बाँहके कुर्ते। जाँघिया और कुर्ते दोनोंपर किन्हींके ठाल मोटी धारी हैं, किन्हींके नीली भारी। जाल धारी बतलाती है कि बंदी पहली बार कारागार आया है और नीली धारी

कहती है कि वह इससे पहले भी आ चुका है। किन्हीं-किन्हींने सिरपर लाल दुपलिया टोपियाँ भी लगा रक्खी हैं।

बीचमें डेद-दो हाथकी दूरी छोड़कर चब्रूतरे बने हैं सीमेंटके पंक्तिबद्ध । बंदियोंने अपने फर्डे चबूतरोंपर डाल दिये हैं। लोहेके तसलोंमें पानी कुछ ले आये हैं दौड़कर, कुछ ड्रमके पास भीड़ लगाये खड़े हैं। कुछके पास मिट्टीकी हँड़िया भी है पानी रखनेको । जिनकी **फ्ट** चुकी हैं, इस ग्रीष्ममें उन्हें अपने तसलेके पानीसे रात्रिको प्यास बुझानी है, यदि कोई अन्य मित्र अपनी हँड़ियाका पानी देनेकी उदारता न दिख्छावें । कारागार-अधिकारी दुवारा हॅंड़िया देनेसे रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कुछ पार्न

HE

चित

मेड

गिन

चबू पर इस

सब

करव जल्द

> रंगवे जमा

दाई सह नहीं

रहते

साम

बेचै

बैरेट त्याः जो उन

इस दुर्ग

राम

PF

ह्य

नी

同行

तो

T

विल्लाया और उसने हाथका डंडा हिलाया । जैसे भेड़ोंको हाँकता हो, ऐसी ही चेष्टा—'जल्दी करो, गिनती करनी है।'

दो-चार मिनट उपेक्षा चल सकती है इस नम्बरदारकी। फिर वह गालीपर उतर आयेगा और कुछ कहो तो सबेरे 'पेशी' कर देगा जेलरके सामने। पानी गिनतीके बाद भी लिया जा सकता है। एक बार सब बैठ गये चबूतरोंपर—शान्त हो गये। अपने ही चबूतरेपर बैठे हों— आवश्यक नहीं था। एक चबूतरेपर दो व्यक्ति न हों, यह नम्बरदारने कहा; किंतु इसपर बल नहीं दिया उसने। अपनी गिनती पूरी करके उसे 'ताला-जंगला ठीक है' की घोषणा करनेकी जल्दी थी इस समय।

'कल मुझे छुटकारा मिल जायगा !' एक दुबले, गोरे रंगके अँघेड़ व्यक्ति कह रहे थे—'मेरा भाई अवस्य मेरी जमानत कल कर देगा। कलन्यायालयमें मुझे जाना है।'

ये विचाराधीन बंदी हैं। अपनी सफेद कमीजमें रहते हैं और पाजामा भी इनका घरका ही है। दाढ़ी-मूँछके बाल बुरी तरह बढ़ गये हैं। यहाँ नाई हैं सही; किंतु विचाराधीन बंदीको उनकी सुविधा प्राप्त नहीं होती। तृतीय श्रेणीका बंदी दाढ़ी बनानेका अपना सामान साथ रख नहीं सकता।

'यह तो साक्षात् नरक है! मच्छरोंके मारे सब बेचैन हैं। सबके हाथकी चट्पट् गूँज रही है। बैरेकमें ही एक कोनेपर इन साठ बंदियोंके मल-मूत्र-त्यागका स्थान है। उसकी दुर्गन्य भरी है सब कहीं। जो थोड़े गिने-चुने चबूतरे खिड़िक्तयोंके पास हैं— उनपर नम्बरदारके कृपापात्र या सशक्त लोग हैं। शेष इस दमघोटू वातावरणमें घुट रहे हैं। पसीना, मच्छर, दुर्गन्य—ठीक तो कहते हैं वे कि यह नरक है।

'मुझे निरपराधं फँसाया गया है!' सच-झूठकी राम जाने। यहाँ या तो छोग डांक हाँकते हैं या अपनेको निर्दोष बतलाते हैं; किंतु इनके-जैसा सीधा, चार बजे सुबहसे ही भजनमें लगनेवाला—कुछ भी हो, ये कल यहाँसे मुक्त हो जायँ तो उत्तम।

'सब लोग अपने-अपने चबृतरेपर जाओ !' नम्बरदारने डंडा उठाया । अबतक लोग दो-दो चार-चार एकत्र बैठकर बातचीत कर रहे थे । योड़ी देर उपेक्षा चली; किंतु नम्बरदारको कबतक टाला जा सकता है । वह घूम-घूमकर पुकार रहा है—'बातचीत एकदम बंद ! सब सो जाओ !'

बातचीत बंद हो जायगी; किंतु यह गरमी, ये मच्छर, बत्तीके कारण उड़ते ये कीड़े-पतंगे और यह दुर्गन्धि—निद्रा क्या अपने वशमें है !

× × ×

'मेरी जमानत नहीं हुई ।' वही वातावरण, वहीं सायंकालके बादका समय, वहीं बैरेक । दूसरे दिन वें बहुत दुखी थे । न्यायालयसे लौटकर आये तबसे लगता था कि जैसे टूट चुके हैं । 'भाईने सीचे देखातक नहीं । वह मुख चुराकर चला गया !' आँसू गिर रहे थे नेत्रोंसे ।

'संसारमें किसीसे भी आशा करना दुःख ही देता है!' बैरेकमें एक पण्डितजी हैं। सब उन्हें इसी नामसे पुकारते हैं। वे कारागार क्यों आये, पता नहीं; किंतु बड़े सज्जन और अद्भुत शान्त पुरुष। वे आ गये हैं इन्हें दुखी देखकर। समीप बैठ गये हैं और सान्वना देने लगे हैं।

'सब खार्थके साथी हैं। विपत्तिमें कोई साथ देनेवाला नहीं!' दु:ख सान्त्वना पाकर पहले उबलता तो है ही।

'संसारके लोगोंसे आशा करना अनुचित है। यह आशा ही दु:खकी जड़ है।' पण्डितजीने स्नेहभरे खरमें कहा—'किंतु दुखी और निराश होनेकी तो कोई बात नहीं है। एक है, जिसपर पूरा भरोसा किया जा सकता है। जिससे लगी आशाको वह कभी विफल नहीं करता। कोई दुखी उसीकी ओर देखे तो वह सहायता न करे ऐसा कभी नहीं हुआ।' 'कोई नहीं है। मेरा कोई परिचित, कोई सम्बन्धी ऐसा नहीं जो अब मेरी सहायता करे।' उनकी धिग्वी बँध गयी।

'अच्छा है। संसारमें जिसका सहायक कोई नहीं है, श्यामसुन्दर उसका अपना है।' पण्डितजीकी वाणी गम्भीर हुई—'संसारसे आशा अनुचित है और उस दयामयसे आशा—उचित आशा एकमात्र यही है। आपने देख लिया कि लोगोंसे आशा करके क्या होता है। अब उसे पुकारकर देखिये।'

'वह धुनेगा मेरी ?' संदेहके खर उठे—'आप खयं भी तो इसी घिनौने कारागारमें हैं।'

'मुन्ने यह अच्छा लगता है। उसने मेरे लिये कोई मङ्गल देखा होगा इस जीवनमें! पण्डितजी बोले— 'सब खटपटसे छूट गया। एकान्त है यहाँ। अजन- चिन्तन ठीक बनता है। उसे जो अच्छा छो—मैं उसमें कोई कष्ट देखता नहीं अपने लिये; किंतु आप दुखी हैं, आर्त हैं। उसे पुकारिये। आर्तकी सची पुकार उस दयाधामके यहाँसे कभी विफल नहीं छोटी।

पण्डितजी जाकर सो गये अपने आसनपर; किंतु वे सज्जन पूरी रात बैठे रहे। उनकी हिचकी और आँम् रुकनेका नाम नहीं छेते थे।

घटना लगभग यहीं समाप्त हो जाती है केवल इतना और बता देना है कि दूसरे दिन पण्डितजी दोपहरसे पहले ही कारागारसे बाहर हो गये। न्यायालयने उसी दिन उन्हें दोषमुक्त घोषित कर दिया और दौड़-धूपकर पण्डितजीने उन सज्जनको भी खयं जमानत देकर संध्यासे पूर्व ही कारागारसे बाहर कर लिया।

मेरी कामना

(लेखक-श्रीहरिकुष्णदासजी गुप्त 'हरिं')

आज मुझमें भी एक कामना जाग उठी है, मेरे प्रमु! पूर्ण करों न उसे मेरे सहज पूर्णत्व-प्रदाता!

कामनाका नाम सुनते ही मुझपर यह भुकुटि-शर-संधान क्यों मेरे दुष्ट-दलन !

इस जगत्में सर्वथा कामनाशृन्य कौन है ? कोई भी तो नहीं । फिर मेरा ही क्या दोष, मेरे समदर्शी !

क्या कुपित हो रहे हो तुम इस बातसे कि तुम 'कामेश्वर'का चरण-किंकर होकर भी मैं कामनाके चंगुलमें क्यों कैसे फँस गया ! तो नाथ ! यह तो तुम्हारे—एकमात्र तुम्हारे ही सोचने-विचारनेकी चीज है । तुम सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् हो । मैं ठहरा अल्पज्ञ ! अल्पज्ञ ! समझे !

कुछ भी हो, जब कामना जाग उठी है तो उसे शान्त करना ही होगा मेरे शान्तिस्वरूप । कोरे भुकुटि-शर-संधानसे कुछ न होगा । काम तो कामके इंगसे ही चलेगा । धबराओ नहीं मेरे सदा-सर्वदा समाधिस्थ बाबा ! माँ अन्नपूर्णाके भाण्डारमें कोई कमी नहीं आ जायेगी एक टुकड़ा मेरे आगे डालनेसे ।

सोच क्या रहे हो ! तुम तो औढरदानी हो, आद्युतोष हो, समदर्शी हो, सुर-असुर, नर-िकंनर, यक्ष-गन्धर्व, पद्य-पक्षी, कीट-पतंग—और भी एक सिरेसे सबके सिरपर तुम्हारी दया-मयाका हाथ बराबर है। सच, तुम्हारे अनुमहके वरद हस्तसे कोई भी तो सून्य नहीं। फिर मेरे ही सम्बन्धमें यह सोच-विचार, आगा-पीछा और पशोपेश क्यों! व्यर्थके वपलेमें पड़नेसे लाभ ! अपने नामोंकी लाज तो रखनी ही होगी मेरे सर्वस्व।

और फिर सौ वार्तोकी एक वात—में चाहता ही क्या हूँ ? मुझे न तो धन-दौलत, राज्यपाट, यरा-वैभवकी कामना है, न सुत-दारा, इष्ट-मित्र और कुटुम्ब-कवीलेकी ही इच्छा। विविध प्रकारके संख्यातीत भोगोंकी *जार*सा

अभिला

संख्या

लिया है कुछ हो

तो ! ग ज्ञपा-को

इस् इष्टि ज है। स

मञ्जन उ जेतना कर मुझ

गेरोंकी अच्छी त

> रुझे बी इ:ख

> गत क

सदा त उतर ज

जहाँ इंग् वहाँ इंग मै

गप

FIL

न्ति

ाँसू |

ना

रसे

गने

₹-

त

भा

हालसा भी मैं नहीं रखता । और तो और, मुक्तिकी अभिलाषाको भी दूरसे ही नमस्कार करना मैंने सीख लिया है। मेरी आकाङ्का तो नामभरकी आकाङ्का है, कुछ हो भी।

पूछ रहे हो ?—'क्या ? आखिर कुछ कह भी तो ! गर्बोछिसित हूँ मैं अपने सौभाग्यपर । तुम्हारी कृपा-कोर तो हुई मेरी ओर । छो, सुनो—

इस सुखाभासित जगत्में जहाँतक दृष्टि—सम्यक् दृष्टि जाती है, एकमात्र दुःख-ही-दुःख दिखायी देता है। सभी तो एक सिरेसे दुःखसागरमें इत्र रहे हैं। ह देख-देखकर मेरा हृदय भरा आता है मेरे दुःख-खन प्रभो! और मैं चाहता हूँ, मेरे करुणामय! कि जतना भी दुःख इस जगत्में हो, सब सिमटकर, धुआँ बन-कर मुझपर छा जाय; और फिर मुझपर बरसे तीखे-से-तीखे गिरोंकी बौछार होकर। मुझे—और सबको छोड़कर—क्छी तरह बेब-छेदकर अपने मनकी निकाल ले।

और विंवा-छिदा मैं तब ''ग्तना सारा दुनियामरका हुने वीचमें ही रोककर कि 'इतना सारा दुनियामरका हुंख क्या तू सहन कर पायेगा ?' कैसी निराधार गत कर रहे हो मेरे धराधार-जगदाधार ! तुम्हें शोभा हीं देता यह । क्या तुम्हारा नहीं हूँ मैं ? ार तुम्हारे

ियं कौन कठिन काम है यह ! हाँ तो मैं कह रहा था कि विंघा-छिदा मैं इन आँखों सबके सुखसे प्रफुछित मुखड़े देखकर संतोषकी साँस हूँ।

हो सकता है—दु:खाक्रमण मेरे नेत्रोंको ज्योति-विहीन कर दे। तब भी कोई हर्ज नहीं, कानोंसे उनके हर्षीछासमय स्वर सुनकर ही मैं संतुष्ट हो जाऊँगा।

और यदि कान भी जवात्र दे जायँ तो भी कोई बात नहीं । उनकी सुखमय स्वाससे सुरभित समीर ही अपने स्पर्श एवं गन्धद्वारा मुझे मेरी सफलताका संवाद दे देगा।

और मान छो—समी इन्द्रियाँ नाकारा होकर रह जायँ तो भी कोई हानि नहीं । मन कल्पनाद्वारा ही सत्रकी दु:खोंसे मुक्तिके सुखका अनुभव कर रस-मग्न हो जायेगा । तुम्हारा अमोघ अनुप्रह असक्तळ कैसे हो सकता है ?

क्या कह रहे हो मुसकराकर—'और जो मन भी अमन होकर रह जाय ? तब ?' तब क्या ? तब ख्यं ख्यंके अनुभव-सा ख्यं साक्षी होगा सबका छोप करके । दुःख-सुख कामना-अकामना ही कहाँ रहेगी तब ? यही तो मेरी अचाही चाह है—मेरी सात परदोंके भीतरकी चाह मेरे प्रमु । पूरी करो तो मेरे अहैतुक द्या ु ! मेरे शम्मु ! क्यों, न करोगे ?

उद्घोधन !

जहाँ अविराम सीताराम-गुण गाया नहीं जाता।
चपल मन संयमित, सुस्थिर वहाँ पाया नहीं जाता॥
सदा ताजा रहे सियराम पावन नाम रसनापर,
उतर जाता है, जबतक पाठ दुहराया नहीं जाता॥
पड़ेगा भोगना परिणाम हमको अपने पापोंका,
कहीं मजदूरसे यह बोझ उठवाया नहीं जाता॥
जहाँ इंसान हरदम वासनामें लिप्त रहता है,
वहाँ इंसानियतका लेश भी पाया नहीं जाता॥

उसे इंसान कहनेमें मुझे तो शर्म आती है, जहाँ दिलमें दया, ईश्वरका भय पाया नहीं जाता ॥

गरीबीमें मुझे दी आपने संतोपकी दौलत, तुम्हारे सामने भी हाथ फैलाया नहीं जाता॥

> जो औरोंकी मुसीबत देखकर वेकल नहीं होता, वह कुछ भी हो, मगर इंसान कहलाया नहीं जाता॥ —केदारनाथ 'वेकल' एम्० ए०, एल्०-टी०

हिंदुओंके नाम तथा उनके पवित्र अर्थ

(बालक-बालिकाओं के नाम इस प्रकार चुनिये)

(लेखक--डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

हिंदू ऋषि-मुनि तथा विचारकोंको स्वरविज्ञानका गहरा ज्ञान, अनुभव तथा पहुँच थी । उन्होंने एक-एक स्वर, एक-एक शब्द, एक-एक नाममें छिपी हुई गुप्त नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और उच शक्तियोंकी खोज की थी और जन-साधारणमें ऐसे शब्दों तथा नामोंका प्रचार किया था, जिनसे समाजकी परोक्षरूपमें उन्नति होती रहे । नागरिकोंको देशकी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति, धर्म, नीति और इतिहासका ज्ञान रहे और वे अपने नररत्नोंको भूलें नहीं। देशका अतीत सदा उनके मानस-नेत्रोंके सामने रहे और वे धार्मिक महा-पुरुषोंको सदा स्मरण करते रहें। हमारे यहाँके नामोंकी पद्धति स्वर-विज्ञानके नियमोंपर खड़ी हुई है। हमारे अधिकांश नामोंका ग्रप्त अर्थ है और कुछ नाम तो ऐसे महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके उचारणमात्रसे मनमें पवित्र भावों और उच आदशोंका संचार होता है तथा सात्विक वातावरणकी सृष्टि होती है। संम्भव है, कोई ऐसा व्यक्ति हो जो जान-बूझकर परमात्मा या देवी-देवताओंके नामोंका उच्चारण और कीर्तन न करे, लेकिन हिंदू-नामकरणपद्धति इस ढंगसे रक्ली गयी है कि अनजानेमें ही किसी-न-किसी देवता या महापुरुपका नाम घरभरमें फैलता रहे।

हमारे यहाँके कुछ नाम

हिंदुओं के सबसे बड़े देवता भगवान् श्रीरामचन्द्र और योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हुए हैं। 'राम' और 'कृष्ण' उनके संक्षिप्त रूप हैं। 'राम' और 'कृष्ण'का कीर्तन करनेसे इन दोनों महान् देवताओं के अद्भुत कार्य, उत्कृष्टतम चित्र, गुण, रूप, स्वभाव, शक्ति और आदर्श मनुष्यके मन तथा आसपासके वातावरणमें फैलते हैं। उच्च स्वरसे 'राम-राम' या 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करनेसे वातावरण नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियोंसे भर जाता है। मनुष्यकी तो क्या, आसपासके विकार और पाप क्षय हो जाते हैं। जो व्यक्ति इस कीर्तनको सुनता है, उसमें भी देवत्वके सद्गुणोंका संचार हो उठता है। सर्वत्र पवित्रताकी लहरें फैल जाती हैं।

हेकिन कुछ ऐसे सांसारिक व्यक्ति हैं जो भगवान्का भजन-कीर्तन नित्य नियमित रूपसे नहीं करते; व्यापार, घर- ग्रहस्थ, परिवार या सांसारिक कार्यों में फॅसे रहते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके लिये यह जरूरी था कि उनसे भगवान्के किसी नामको वरवस उचारण कराया जाय और वार-वार उचारण कराकर उनकी मुक्तिका द्वार खोला जाय। इसलिये वई संख्यामें ऐसे नाम बनाये गये जिनके प्रारम्भ या अन्तमें 'राम' या 'कृष्ण' शब्दोंका प्रयोग हो। वच्चोंका नाम तो मनुष्य दिनमें दस-बीस वार पुकारता ही है। वस, वच्चोंके नाम पुकारनेसे भगवान्का नाम भी मुँहसे निकलता रहता है और इस प्रकार मनुष्यके वातावरणकी शुद्धि होती रहती है। जिस वालकका नाम किसी देवी-देवतापर है, वह भी धीरे-धीरे उन्हींके गुप्त गुण और आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त कर लेता है। उसे सदा अपनी श्रेष्ठताका ज्ञान रहता है।

भगवान् श्रीरामकी पुण्य स्मृतिको सजग करनेके ल्यि हमारे पूर्वजोंने ऐसे अनेक नाम बनाये हैं जिनके प्रारम्भ या अन्तमें 'राम' शब्दका प्रयोग हुआ है, जैसे—रामचन्द्रः श्रीरामः सियारामः रामकुमारः रामलालः राममोहनः रामद्यालः रामलखनः रामप्रसादः रामनरेशः रामचरनः रामसिंहः रामप्रकाशः रामिकशनः रामप्रतापितंहः जैरामः राजारामः सन्तरामः वलीरामः हरीरामः परशुरामः रामउजागरः रामदासः रामनारायणः रामनयनः रामललाः रामविलासः रामशानः रामकिशोरः रामगोपालः रामकृष्णः रामखेलावनः रामगोविन्दः रामजीदासः रामजीलालः रामकृष्णः रामखेलावनः रामगोविन्दः रामजीदासः रामजीलालः रामहुलारे रामदीनः रामधरः रामधारीतिहः रामनन्दनः रामनाथः रामपदार्थः रामपालः रामपरीक्षाः रामप्रीतिः रामवलीः रामहितः रामपूरिः रामपालः रामपरीक्षाः रामप्रीतिः रामवलीः रामहितः रामपूरिः रामपालः रामवलः रामवालकः रामम्हितः राममूरिः रामसेवकः रामवालकः रामवालकः रामवलिः रामलेवन्तः रामलिनः रामवलिः रामप्रीतः रामलिनः रामलिनः रामवलिः रामप्रीतः रामवलिः रामवलिः रामवलिः रामवलिः रामप्रीतः रामवलिः रामलिनः रामवलिः रामवलिः रामवलिः रामवलिः रामलिनः रामवलिः रामलिनः रामलिनः

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी पुण्यस्मृति तथा गुण बनाये रखनेके लिये अनेक नाम बनाये गये, जिनके ग्रह या अन्तमें 'कृष्ण' शब्दका इस प्रकार उपयोग हुआ—श्रीकृष्ण, किशन, रामकृष्ण, कृष्णगोपाल, कृष्णलाल, कृष्णचन्द्र, कृष्ण-सहाय, कृष्णस्वरूप, कृष्णदास, कृष्णविहारी, कृष्णमूर्ति, कृष्णदयाल, कृष्णमोहन, हरीकृष्ण, कन्हैया, कन्हैयालल, संख्या

राधाकृ श्यामध्य मनोहर श्यामस्

म्रलीध

और ' हरिदास नारायप द्वारीला निवास

इसीका प्रतीक धन-दौर भी भाग नाम प्र (विष्णु नारायण (विष्णु

श्रीधर,

श्रीरामः

मङ्गलक् भी बो जहाँ ज लिये वि है । वि करनेव अनेक

गये थे शिवशं प्रसाद शिवमूर्

प्रताप, शिवदत्त

राधाकृष्ण, जयकिशन, राधेश्याम, श्रीकृष्णराय, श्यामदत्त, ज्यामधारी, श्याम्, श्यामनारायण, श्यामवहादुर सिंह, श्याम-मनोहर, इयाममोहन, स्यामलाल, स्यामवदन, स्यामविहारी, श्यामसुन्दर, श्यामकान्त, मनमोहन, गोपीकृष्ण, गोपाल, मुरलीधर, वंशीधर।

'हरि' और 'नारायण' भी ईश्वरके नाम हैं। 'हरि' और 'नारायण' शब्दको लेकर कुछ नाम बनाये गये,-जैसे हरिदास, हरिदेव, हरदेवसहाय, हरदेवी, हरिनामदास, हरि-नारायण, हरिवंशसहाय, हरिशरण, हरिकृष्ण, हरिदत्त, हरि-द्वारीलाल, हरिशंकर, हरिशरण, हरिश्चन्द्र, हरिसेवक, हरिहर-निवास, हरिहर, हरिराव, हरीश, हरेक्टब्ण, नारायण, नारायणस्वरूपः, जगन्नारायण इत्यादि ।

'श्री' शब्दसे विष्णुकी पत्नी लक्ष्मीका वोध होता है। इसीका अर्थ कमला और सरस्वती भी है। यह कमलका भी प्रतीक है। इससे धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है, धन-दौलत और कीर्ति मिलती है। इसमें कान्ति और चमकका भी भाव है। अतः 'श्री' शब्दका प्रयोग कर हिंदुओंने अनेक नाम प्रचारित किये हैं, जैसे श्रीकंठ (महादेव), श्रीकान्त (विष्णु), श्रीकृष्ण, श्रीदाम (सुदामाका नाम), श्रीघर (विष्णु), श्रीनिवास (विष्णु और वैंकुण्ठ), श्रीपति (विष्णु-नारायण, हरि), श्रीमन्त, श्रीरंग (विष्णु), श्रीरमण (विष्णु), श्रीवत्स (विष्णु), श्रीलाल, श्रीनाथ, श्रीनाथसिंह, श्रीधर, श्रीनारायण, श्रीप्रकाश, श्रीमन्नारायण, श्रीमोहन, श्रीराम, श्रीहरि, श्रुतिप्रकाश इत्यादि ।

'शिव' महादेव शंकरका पवित्र नाम है। वह परम मङ्गलकारी एवं कल्याणकारी है। 'शिव' शब्दसे जलका भी बोध होता है और जल जीवनका मतलब रखता है। जहाँ जल है, वहाँ जीवन है। विना जल जीवन नहीं। इसी-लिये शिवजीकी जटाओंसे गङ्गाजल बहनेका विधान रक्ला गया है। शिवका एक अर्थ भोक्ष' भी है। शिव सृष्टिका संहार करनेवाले और पौराणिक त्रिमूर्तिके अन्तिम देवता हैं। अतः अनेक नाम 'शिव' या 'शंकर' शब्दोंको लेकर बनाये गये थे। जैसे-हावनन्दन, शिवस्वरूप, शिवप्रसाद, शिवाजी, शिवशंकर, शंकरलाल, शंमुलाल, शंकराचार्य, शिवशंकर-पसाद, शंकरस्वामी, शिवबालक, शिवरत्न, शिवसहाय, शिवमूर्ति, शिवसेवक, शिवपूजनसहाय, शिवनारायण, शिव-प्रताप, शिवनाथ, शिवदानसिंह, शिवकुमार, शिवचन्द्र,

'ब्रह्म' ब्रह्मके तीन सगुण रूपोमेंसे सृष्टिकी रचना करने-वाला हितकारीरूप है। यह विधाताका सूचक है। पितामह है। अतः 'ब्रह्म' राब्दको छेकर अनेक हिंदू नाम प्रचिछत हुए-जैसे ब्रह्मानन्दः, ब्रह्मसहायः, ब्रह्मदत्त ।

'विण्णु' हिंदुओंके एक प्रधान देवता हैं जो सृष्टिका भरण-पोपण और पालन करनेवाले हैं तथा ब्रह्मका एक विशेषरूप माने जाते हैं। इस विष्णु' शब्दको लेकर अनेक नाम वने हैं, जो हमें संसारमें समाज-सेवाकी याद दिलाते हैं। कुछ नाम देखिये—विष्णुप्रसाद, विष्णुद्याल, विष्णुहरि, विसुनखरूप, विष्णुखरूप, विष्णुगृप्त, विष्णुचन्द्र, विष्णुशरणः, विष्णुरामः, विष्णुदत्तः, विष्णुप्रभाकर इत्यादि ।

'हनुमान्' वल, पराक्रम, वीरता, ब्रह्मचर्य, आज्ञा-कारिताके लिये प्रसिद्ध हैं। मनुष्य जब भय या संकटमें होता है, तो अतुलबल-स्वामी वीर महावली हनुमान्का स्मरण करता है। इस नामके स्मरणसे मनमें शक्ति और साहस पैदा होता है । खोया हुआ आत्मविश्वास जाग्रत् होता है । मनुष्य अपना मानसिक संतुलन प्राप्तकर नवीन उत्साहसे कर्तव्य-पथपर आगे बढ़ता है। अतः महाबली हनुमान्को लेकर नाम वने हैं, जैसे-हनुमानप्रधाद, हनुमानदास, हनिवन्त, हनुमान, महावीर, महावीरप्रसाद, पवनकुमार ।

'जानकी' जनककी पुत्री, महापतित्रता सीताजीके पावन चरित्रकी यादगारमें अनेक नाम चले हैं। यह वालिकाओंका नाम होता है, पर पुरुषोंके नाममें भी इसका प्रयोग किया गया है, जैसे-जानकीनन्दन, जानकीनाथ, जानकीलाल, जानकीजीवन, जानकीशरण, जानकीवल्लभ, जानकीप्रसाद, सीताराम, सीताशरण, सीतापति आदि ।

'राधा' को लेकर कुछ नाम वने, जैसें—राषेलाल, राधा-रमण, राधाकृष्ण, राधावल्लभ, राधाशंकर, राधामोहन, राधिकादास, राधागोविन्द आदि ।

लक्ष्मीके प्रति जनसाधारणकी वड़ी रुचि और श्रद्धा रही है। वे विष्णुकी पत्नी और धनकी देवी हैं। सांसारिक सुख और समृद्धि देनेवाली हैं। धन-दौलत उन्हींकी कृपासे मिलती है । शोभा और सौन्दर्यपर भी उनका अधिकार है । इसलिये बहुत-से हिंदू अपनी कन्याओंका नाम लक्ष्मी ही रखते हैं। पुरुषोंके नामोंमें भी 'लक्ष्मी' जीके पवित्र शब्दका प्रयोग हुआ है । इससे जनसाधारणका रुपये-पैसेके प्रति मोह प्रकट होता शिवदत्त, शिवचरण, महेश, महेशचन्द्रd-o. In Public Domain. Gurakul (स्वामी) से सम्बन्धित कुछ नाम देखिये, जैसे—'लक्ष्मी-

सी

रण तमं

तो

ती

H

त्रेये

म-

म, म-

म॰ न

नः र्थः

#-

तं, रुस

पुण M,

3,

पत, लक्ष्मीधर, लक्ष्मीलाल, लक्ष्मीनिवास, लक्ष्मीशंकर, लक्ष्मी-नारायण, लक्ष्मीनिधि, लक्ष्मीकान्त, लखमीचन्द्र, लक्ष्मीप्रसाद, लक्ष्मीसागर, लक्ष्मीनाथ, लक्ष्मीदत्त ।

(ईश्वर) शब्दको लेकर ईश्वरीप्रसाद, ईश्वरचन्द्र, जगदीश्वर, इत्यादि नाम चले । यह भी महादेवका एक नाम है।

इन्द्र हमारे एक प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं, जिनका स्थान अन्तरिक्ष है और जल वरसाते हैं। देवताओं के राजा कहे गये हैं। ये ऐस्वर्य और विभूतिके प्रतीक हैं। श्रेष्ठ हैं। बड़े हैं। अतः 'इन्द्र' शब्द और उसी अर्थको लेकर कुछ नाम प्रचलित हुए, जैसे-नरेन्द्र, महेन्द्र, इन्द्रजीत, इन्द्रदत्त, इन्द्रदेव, इन्द्रनाथ, इन्द्रनारायण, इन्द्रकुमार इत्यादि ।

'गणेश' हमारे ऋद्धि-सिद्धि देनेवाले प्रधान देवता हैं। उनकी कुपासे मनुष्यको लक्ष्यकी सिद्धि होती है और मार्गकी सब बाधाएँ क्षणमात्रमें दूर हो जाती हैं। हम जिस कार्यको कठिन समझते हैं, गणेशका नाम लेकर करते हैं और वह सदा पूर्ण होता है। अतः गणेशका स्मरणमात्र ही बाधा द्र करनेवाला है। कन्याओंका नाम प्रायः गणेशी रक्ला जाता है। भाणेश' शब्दसे ये नाम प्रचलित हुए हैं-गणेश, गणपति, गजाधर, गणपतिचन्द्र, गणपतिसिंह, गणेशदत्त, गणेशप्रसाद, गणेशीलाल ।

गङ्गाजीके प्रति हिंदूमात्रके हृदयमें अगाध श्रद्धा है। उनमें स्नान करनेसे तीनों ताप दूर होते हैं। भारतीय मनीषियोंने इसे कल्याणकारिणी, कलिमलहारिणी, पतितपावनी तथा मोक्षदायिनी आदि सद्विशेषणोंसे विस्षित किया है। गङ्गाजीके अवतरणकालसे आजतक समस्त महात्माओंने उनकी महिमाका गान किया है। गङ्गा, गीता, गायत्री, गणेश हमारे यहाँके प्रेरणास्रोत हैं। अतः 'गङ्गा' शब्दको लेकर काफी नाम वने हैं जैसे-गंगाप्रसाद, गंगाधर, गंगा-नन्द, गंगापति, गंगाविष्णु, गंगाशरण इत्यादि ।

इसी प्रकार यमुना भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंसे सम्बद्ध है। 'यमुना' शब्दका भी इसी प्रकार प्रयोग किया गया है, जैसे-यमुनाप्रसाद, जमनाप्रसाद, जमनादास ।

चन्द्रमाको हम पूजते हैं। 'चन्द्र' आनन्ददायक और हर प्रकार मङ्गलकारी है। उपवासके बाद चन्द्रमाके दर्शन कर भोजनग्रहणका विधान है। अतः 'चन्द्र' शब्दको लेकर कुछ नाम बने हैं, जैसे—चन्द्रमौलि (शिव), चन्द्रलेखा, नाम इस प्रकार है । जैसे—द्रौपदीदेवी, सावित्रीदेवी, CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चन्द्रभूषण (महादेच), चन्द्रभाल (शिव), चन्द्रधर (शिव), चन्द्रचूड़ (शिव), चन्द्रगुप्त, चन्द्रमणि, चन्द्रशेखर (शिव), चन्द्रिकशोर, चन्द्रकान्त, चन्द्रदेव, चन्द्रप्रकाश, चन्द्रप्रभा, चन्द्रवली, चन्द्रमणि, चन्द्रभानु, चन्द्रमनोहर, चन्द्रमाराय, चन्द्रराज, चन्द्रसिंह, रामचन्द्र, चन्द्रावती, चिन्द्रकाप्रसाद, जैचन्दलाल, चन्द्रलाल ।

'जगदीश' परमेश्वरका नाम है । इस शब्दसे विण् तथा जगन्नाथका वोध भी होता है। अतः 'जगदीश' नाम कल्याणकारी है। इसीसे हमारे यहाँ अनेक नाम चलाये गये । जैसे--जगदीस्वर, जगन्नाथ, जगदीशचन्द्र, जगदीश-नारायंण, जगदीशप्रसाद, जगदीशसहाय, जगनलाल, जगनसिंह।

·जय' शब्द विष्णुके एक पार्षदका नाम है । इससे 'लाभ' और 'विजय' का बोध होता है । जय लगानेवाल नाम संसारमें सर्वत्र विजयी होता है, शतुओंको हराता है। अतः 'जय' का प्रयोग अनेक हिंदू-नामोंमें किया गया है, जैसे—जयपाल (विष्णु), जयमंगल, जयकान्त, जयकिशोर, जयगोपाल, जयचन्द्र, जयदेव, जयदेवप्रसाद, जयनारायण, जयराम, जयभगवान इत्यादि।

'दिनेश' दिनके अधिपति हैं । इनसे सर्वत्र प्रकाश फैलता है । दिनेश ज्ञानका प्रतीक है । इसलिये हमारे यहाँ 'दिनेश' को लेकर भी कई नाम बने, जैसे--दिनेशचन्द्र दिनेशदत्त, दिनेशनन्दन, दिनेशनारायण, दिनकर इत्यादि।

अर्थ है देवता अर्थात् वह मनुष्य जो देवताओं-जैसे सद्गुण अपने चरित्रमें रखता है। देवता वह है जो समाजको अधिक-से-अधिक देता है और कम-से-कम लेता है। वह उचत्तम देवगुणोंसे विभूषित होता है। उसका जीवन ही समाजके लिये है । अतः हमारे यहाँ 'देव' शब्द ल्गाकर पवित्रताका बोध कराया गया । जैसे—देवदत्तः देवराज, देवनारायण, देवनाथ, देवव्रत, देवकृष्ण, हरदेव, देवर्षि । इसी प्रकार कृष्णदेव, लक्ष्मणदेव, 'देवी' राब्द भी प्रयुक्त हुआ, जैसे—देवीदत्त, देवीदयाल देवीरल, देवीलल, देवीदास, देवीदीन, देवीप्रसाद, देवीशरण, देवीसहाय । स्त्रियोंके नामोंके अन्तमें 'देवी' शब्द पवित्रताका द्योतक है । अधिकांश स्त्रियोंके नामींके साथ हमारे यहाँ देवी जोड़ दिया जाता है। कुछ स्त्रियों के

पा कः धा

अ

सं

इत ए

सम भी नन

गो

गय भा

शर् इस

उठ

13

4,

ती,

H

गये

श-

₹,

ासे

ला

ч,

जो

ता

ы

द

1

हरिदेवी, महादेवी, सुमित्रादेवी, लक्ष्मीदेवी, दुर्गादेवी, कौशल्यादेवी, रमादेवी, गायत्रीदेवी, चित्रादेवी, मृदुलादेवी, सीतादेवी, राधादेवी, जानकीदेवी, लखमीदेवी, सरस्वतीदेवी, अनुसूयादेवी, नारायणीदेवी, विष्णुदेवी, रामदेवी, गिरिजादेवी, पार्वतीदेवी इत्यादि।

'धर्म' शब्दका प्रयोग वच्चेकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ हढ़ करनेके लिये अनेक स्थानोंपर किया गया है, जैसे—धर्मपाल, धर्मिप्रयलाल, धर्मलाल, धर्मवीर, धर्मिसंह, धर्मेन्द्र, धर्मदत्त इत्यादि ।

'नन्द' आनन्द और हर्षका सूचक है। परमेश्वरका एक नाम है। विष्णुका नाम है। साथ ही नन्द गोकुलके गोपोंके मुखिया थे, जिनके यहाँ श्रीकृष्णको उनके जन्मके समय वसुदेवजी जाकर रख आये थे। अतः नन्दका मी काफी प्रयोग हुआ है, जैसे—नन्दिकशोर, नन्दकुमार, नन्ददुलारे, नन्दलाल, नन्दनन्दन (श्रीकृष्ण), हरिनन्दन,

सुमित्रानन्दन, पार्वतीनन्दन, नन्दत, नन्दिनी, नन्दा (दुर्गा, गौरीका नाम), नन्दीश्वर (शिव) इत्यादि ।

इसी प्रकार हमारे समाजमें असंख्य पियत नाम हैं जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षस्पसे हमारे धर्म, संस्कृति, वेद, पुराण, पियत्र तीर्थ, नदी, ऋतुसे संयुक्त हैं। जिस वच्चेमें हम-जैसे गुणोंका विकास करना चाहते हैं, वैसे गुणोंका बोध करानेवाला नाम ही चुनना चाहिये। हमारे यहाँ नारियोंके भी असंख्य पियत्र नाम हें जो देवियों, पितव्रताओं, विदुषियों या वीराङ्गनाओंके नामोंपर हैं। अपने वालक-वालिकाको उच्चतम, श्रेष्ठतम और पिवत्रतम धार्मिक नामसे ही सम्बोधित कींजिये। इससे आप, वह वालक, परिवार, नगर, देश सभीका कल्याण होगा। प्राचीन गौरवमयी संस्कृतिकी यादगार तरोताजा बनाये रखनेके लिये ये नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

नामका चुनाव वहुत सूझ-वूझसे कीजिये।*

प्रत्येक अहिंसाप्रेमीका कर्तव्य (मांसाहारके बढ़ते हुए प्रचारको रोकना)

(लेखक--श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

भारतीय संस्कृतिमें अहिंसाको बहुत ही महत्त्व दिया गया है। क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणीकी रक्षाका प्रयत्न करना प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है। जब-जब पशु-बिल और मांसाहारका प्रचार बढ़ा तो कई महापुरुषोंने उसका जोरोंसे विरोध करके जनतामें अहिंसाका व्यापक प्रचार किया। यह ठीक है कि शरीरको टिकानेके लिये आहारकी आवश्यकता है, पर इसका यह मतलब नहीं कि हम जो भी चोहें, खाते रहें।

प्रकृतिने ऐसी अनेक वनस्पतियोंका सुजन किया है और मानवने भी धान्यादिका उत्पादन करके अपनी खाद्य-समस्याका भलीभाँति समाधान कर लिया है। उन सब खाद्य वस्तुओंसे हमारा जीवन अच्छी तरह चल सकता है। हारीरके टिकानेके लिये जिन पोषक तत्त्वोंकी आवश्यकता है, वे सभी तत्त्व विविध प्रकारके शाकाहारमें मिल जाते हैं और स्वाद तथा जायकेमें भी कमी न आये, इसलिये उन

* हमारे पूर्वजोंकी यह बुद्धिमानी तथा भगविष्ठिष्ठा थी कि वे नामकरणमें प्रायः ऐसे ही नाम रखते तथा घरमें, पत्रव्यवहारमें, परस्पर मिलनेमें भी ऐसे शब्दोंका उच्चारण करते जिनसे भगवान्का सम्बन्ध होता। पत्रोंमें सबसे ऊपर ॐ, श्रीहरि, श्रीरामजी आदि लिखते। पत्रोंमें अमुकसे अमुककी जयरामजीकी, रामराम, जयगोपाल, जयमाताजी बंचना; मिलनेपर जयठाकुरजी, जयरामजी, जयश्रीकृष्ण, जयशंकर, जयमाताजी आदि कहते। भीख माँगनेवाले नारायण, हरि, जयशंकर, जयदुर्गे पुकारते, मरनेपर शवयात्रामें रामनाम सत्य है, हरिहरि आदि उच्चारण करते। नहाते समय भगवान्का नाम, सोते समय भगवान्का नाम, उठते ही भगवान्का नाम, जम्हाई लेते भगवान्का नाम—इस प्रकार प्रथाके रूपमें ही दिनमें कई बार सहज ही भगवान्के मक्तलमय नामोंका उच्चारण हो जाता। अजामिलने बच्चेका नाम 'नारायण' रक्खा था और अन्तसमयमें 'नारायण' नामका उच्चारण करके वह पवित्र हो गया। यह हमारी पवित्र संस्कृतिका ही एक अक्त था। अब कलात्मक नाम रक्खे जाते हैं। पढ़े-लिखे लेगोंके पत्रव्यवहार आदिमें तो कहीं भूलकर भी भगवन्नामका सम्पर्क नहीं आ पाता। यह वास्तवमें बहुत बड़ी हानि है। इस ओर ध्यान दिया जाय तो अच्छा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

य

स

वह

ब

₹ ह

नि

गत

ए

ॲ

पर

ज

अ

पः

व

खाद्य-पदार्थोंको अनेक रूपोंमें तैयार करनेकी विधियाँ प्रचलित हुईं।

आहारका प्रभाव मनुष्यके विचारोंपर भी पड़ता है। इसिल्ये हमारे यहाँ आहारको तीन भागोंमें विभाजित कर दिया गया—तामिसक, राजिसक और सात्त्विक । और मनुष्यकी वृत्तियोंको भी इन्हीं तीन नामोंसे विभाजित करके बतला दिया गया। सात्त्विक वृत्तिके इच्छुक मनुष्योंको तामिसक और राजिसक आहार नहीं करनेकी सलाह दी गयी है। मांसाहार तामिसक है। इसमें पशु-पक्षी आदि निरीह और मूक प्राणियोंकी प्रत्यक्ष हिंसा होती है। इसिल्ये मांसाहारका निषेध किया गया और शाकाहारके अधिकाधिक प्रचारका प्रयत्न किया गया। महाभारत, पुराण आदि प्रन्थोंमें मांसाहारके निषेधसम्बन्धी प्रचुर उल्लेख पाये जाते हैं।

यह सही है कि भारतमें शाकाहारी और मांसाहारी दोनों तरहके लोग निवास करते हैं। जहाँ-जहाँ अहिंसाके प्रचारकोंका प्रभाव बढ़ा, उन-प्रदेशोंमें शाकाहारका ही अधिक प्रचार है। राजस्थान, गुजरात इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। बंगाल, आसाम, पंजाव आदिमें भी जैन एवं वैष्णव-धर्मके अनुयायी तो शाकाहारी ही मिलेंगे। जब पशु-पक्षीकी हिंसाके विना भी हम अच्छी तरह अपनी जीवन-रक्षा कर सकते हैं अर्थात् शाकाहारी खाद्योंकी कोई कंमी नहीं है और यदि कहीं कमी है भी तो उसकी पूर्ति थोड़ेसे प्रयत्नसे हो सकती है; तब मांस, मछली, अंडे आदिके भक्षणका प्रचार भारत-सरकार करे, जो गांधीजीका अनुयायी अपनेको वतलाती है, तो बहुत ही आश्चर्य और दुःख होता है। वर्तमानमें राष्ट्रिय एवं प्रादेशिक सरकार बड़े-बड़े कसाईखाने खोलने जा रही है और मछली तथा अंडेकी उत्पादनवृद्धिके लिये लाखों रुपये खर्च कर रही है। हजारों वंदरों और पशु-पक्षियों आदिको मारनेके लिये विदेशोंमें भेजा जा रहा है। मानव-जीवनके लिये बहुत ही उपयोगी गाय-बैल-जैसे जानवरोंकी हत्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है तो प्रत्येक अहिंसा-प्रेमीके दिलमें एक गहरा आघात लगता है कि अपनी ही सरकार

जनताकी बात नहीं सुनती; उसके लाख विरोध करनेपर भी हिंसा-प्रचार एवं वृद्धिसे विरत नहीं होती तो इसे जनतानिक सरकार कैसे कह सकते हैं ? गो-वध न होनेके लिये कई वर्षोंसे और काफी प्रयत्न हुआ, पर खेद है कोई अच्छा परिणाम नहीं आया । और अभी जो देवनार आदिमें बहुत वड़े यान्त्रिक कसाईखाने करोड़ों रुपयेके खर्चसे सरकार बना रही है, उसका भी काफी विरोध किया जा रहा है; पर सरकार टस-से-मस नहीं हो रही है। इस स्थितिमें समस्त अहिंसाप्रेमियोंको सङ्गठित होकर कोई ठोस प्रयल शीव और अवस्य करना चाहिये। सरकारका कहना है कि भारतमें मांसाहारियोंकी संख्या भी बहुत बड़ी है और उनको ध्यानमें रखते हुए हमें यह सब करना पड़ता है। इसिलये सबसे पहला काम हमारा यही होना चाहिये कि मांसाहारके वढ़ते प्रचारको रोकें और शाकाहारका जोरोंसे प्रचार करें । गायकी नस्लको सुधारकर दूधका उत्पादन बढायें । मांसाहारियोंको समझा-बुझाकर शाकाहारी पदार्थ ही खानेका अनुरोध करें।

शाकाहारके सम्बन्धमें एक विचारकने लिखा है कि 'शाकाहारके मानी क्या है ? 'प्राणिमात्रके जीवनके प्रति मनुष्यकी श्रद्धा और आदर ।' मानव-हृदयके विकासकी यह एक सीढ़ी है। हमारे अंदर कितनी मनुष्यता है अथवा उसकी कमी है, इसकी सीधी पहचान यही है कि दूसरोंके दुः खसे हम कितने प्रभावित और द्रवित होते हैं। हिंसा और हत्याको मनुष्य स्वभावतः बुरा मानता है। किसीको दुःख देना उसे खभावसे अच्छा नहीं लगता। इसलिये मांसाहार करनेवाले व्यक्ति भी, यदि पशु-पक्षियोंको मारते समय जो करण कन्दन वे करते हैं, उस हक्यको आँखोंसे देखें तो अवश्य उनके हृदयमें करुणाका संचार होगा और वे भविष्यमें मांसाहार न करनेकी ओर प्रवृत्त होंगे। कई बार तो कसाई भी पशु-पक्षियोंकी घवराहट और क्रन्दनसे प्रभावित होकर थोड़ी देरके लिये उनपर छुरा चलानेमें हिचक जाते हैं। हमें मानव-हृदयमें रही हुई करुणावृत्तिको प्रकटित करनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये। साधु-महात्मा तो तुरंत अहिंसा-प्रचारमें जुट जायँ !

मानवताकी आधार-पीठ-आस्तिकता

(लेखक--श्रीसुनहरीलालजी शर्मा, बी० ए०, साहित्यरत्न)

मन्ष्यजीवन सार्थक और सफल कव हो सकता है, यह एक चिरन्तन विचार है। जीवनकी सफलताके लिये कुछ निश्चित आचरण करना पड़ता है। उन शास्त्रदर्शित आचरणोंको ही हम धर्माचरण कहते हैं। संसारमें मनुष्य सदा सफलताका ही इच्छुक है। घनघोर परिश्रमके पश्चात वह विजयश्रीको आँखोंसे निरखना चाहता है, परंतु संसार वडा विचित्र है। उद्योगके साथ भाग्यका भी इतना प्रभाव रहता है कि सब उद्योग घुलमें मिल जाता है, सारे प्रयतन निष्फल हो जाते हैं । बड़े-से-बड़ा सहायक भी असफलताके गर्तमें गिरनेसे नहीं बचा सकता । मानव है-परतन्त्रताका एक परिदृश्यमान बंडल । वह शरीरसे रोगोंका शिकार है और मनसे सदा परिवर्तनशील जगत्के चिन्तनमें व्यस्त अर्थात् वह उभयरूपसे परतन्त्र है । शरीर और मनसे परतन्त्र उसके अंदर वही एक चैतन्यकी एक चिनगारी जलती है। वह स्वयं चैतन्यका एक अधिष्ठान है। परंत वह इसकी खबर नहीं रखता।

हम अपने-आपको आस्तिक मानते हैं । भगवान्का अस्तित्व तथा उसकी सत्ता माननेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है और नास्तिक तो दालमें नमककी माँति हैं । परंतु वह आस्तिकता जो धर्मकी जननी, धर्मकी आत्मा है बहुत ही दुर्लभ वस्तु है । वह भगवत्-कृपासे, भगवत्प्रसादसे ही मिलती है । दयामय भगवान् जब स्वयं जीवके हृदयके नेत्र खोल देते हैं और जब श्रद्धा तथा विश्वासकी ऑलोंसे अपने हृदयस्थ एकमात्र सर्वेश्वरको हम देख लेते हैं, तभी हमारे जीवनमें वास्तिवक आस्तिकताका प्रादुर्भाव होता है । भगवान्की सत्ता मनवानेसे कोई नहीं मानता । तर्क, युक्ति आदि साधन भगवान्की सत्ताको प्रमाणित करनेमें निरन्तर असमर्थ रहे हैं और रहेंगे ।

भगवान् हैं—इतना मान ठेनामात्र ही पूर्ण आस्तिकता नहीं है। हाँ, प्रारम्भिक दशामें आस्तिकताका श्रीगणेश यहींसे होता है। भगवान्की सत्ताको स्वीकार करना आस्तिकताका क-ख-ग है। यहाँसे उसका प्रारम्भ है। क्रमशः सामीप्य या सांनिध्यका बोध होने ठगता है। वास्तवमें आस्तिकता वह अनुभृति है जिसमें अदृश्य शक्ति बिल्कुल समीप दीखंती है। आस्तिकता ईश्वरके सांनिध्यकी अनुभृति है। वह इस बातकी अनुभृति है कि ईश्वर हमारे अति निकट और सदा साथ हैं। आस्तिकता जगत्को हिरमें और हिरको जगत्में ओतप्रोत देखती है और यह अनुभव करती है कि हिरके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है, सब प्रभुमय ही है। यथा—

'ईशावास्यमिद्द सर्वं' 'वासुदेवः सर्वमिति'। अथवा—

·सीय-राममय सब जग जानी³

इस 'है' कि अनुभृति तभी हो पाती है, जब मनुष्य जगत्के कोलाहलसे दूर, एकान्तमें, बाह्य जगत्से आँखें बंदकर अन्तरस्थ ईश्वरको एवं अन्तर्जगत्को अपने अन्तरके नेत्रोंसे निरखने लगता है। यह ललक ही सच्ची साधनाको जाप्रत् रखती है और भगवान्के द्वारतक पहुँचा देती है। आस्तिकताके इस अनुपम प्रकाशमें तर्क-युक्तियाँ सब विलीन हो जाती हैं। तर्क श्रद्धामें और युक्ति तथा बुद्धि भक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है।

एक प्रमाण विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है-

भरण, पोषण, उत्पादन तथा गर्भसे वहिर्गमन—इन सब कार्यों में यदि भगवान्का वरद हस्त रक्षकका काम नहीं कर रहा है तो कौन कर रहा है ? क्या आप इसे प्रकृति या निसर्ग कहकर टाल देंगे ? वास्तवमें अन्धी प्रकृति कर ही क्या सकती है, जबतक राह दिलानेके लिये कोई चेतन न हो । मृत पिताके पैरके टेढ़े होनेकी आश्रङ्का भी किसीको न थी, परंतु पुत्रके टेढ़े-मेढ़े विकृत पैरने पिताके दोषका उद्घाटन कर दिया । पिताकी खल्वाटता पुत्रके माथेपर झलकती है । इस अचूक और अलण्ड नियमके भीतर भी नियन्ताकी असीम सत्ताका पता चलता है । जहाँ भी देखिये—नियन्ताकी सूचना मिले बिना नहीं रहती । परम सत्य परमात्माके अस्तित्वकी सूचना धर्वत्र मिलती है ।

इस प्रकार आवरणसे निरावरणकी ओर, स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर, ठोससे तरलकी ओर चलती हुई साधना एक ओर जहाँ मार्गके श्रम और तपका बोध करती है, वहीं उसे इसी श्रम और तपसे आगे वढ़ चलनेकी सुखमयी प्रेरणा प्राप्त होती है। न्यों-न्यों वह आगे बढ़ती है, उधरसे

कि

स्वी

दिर

भा

कार

प्रम

उन

जात

आउ

सहा

का

है ते

जायँ

करत

भारत

होगी

स्वात

वैचा

असि

की इ

होना

खरी

विज्ञा

बहुत

नहीं

विशा

वह न

उसे

पूर्णतर

इस भे

सम्भट

ठंढी बयारकी आर्द्रता और स्निग्ध सुगन्धकी मधुरता उसके अन्तस्तलको भिगोने लगती है।

शिशु चलना सीख रहा है। माँ दूर खड़ी चुटिकियाँ बजा रही है। माँकी ओर देखता हुआ बाँह फैलाये, गिरता-पड़ता बालक माँको छूना चाहता है। माँ जानती है कि यह अभी अबोध और सुकुमार है, वह उसे अमित करना नहीं चाहती। उसे गिरता देखकर उसका हृदय कटने लगता है; परंतु उसे बच्चेको चलना सिखाना है। बच्चा जितना ही आगे बढ़ता है, माँ जरा-सी पीछे खिसक जाती है, पर उसे गिरता देखकर, थकता देखकर उसे दौड़कर झट गोदीमें लिया लेती है। माँकी गोद पाते ही बच्चेका सारा अम दूर हो जाता है। वच्चेके शरीरकी चोट माँके हृदयकी चोट है। परंतु चलना कैसे आयेगा। नन्हे, नन्हे सुकुमार पैरोंमें बल कैसे आयेगा। अत: माँ फिर चलना सिखाती है।

आस्तिक जीवनकी ठीक यही गतिविधि है। आरम्भमें वह एक परोक्ष सत्ताको भयभीत हृद्यसे स्वीकार करता है। परंतु वही सत्ता उसे इस भयसे मुक्त कर पिताके प्रेमका आस्वादन कराने लगती है। परंतु इस प्रेममें भी ऐक्वर्यकी मात्रा रहती है।

माताकी प्रेरणा और संकेतसे उसीकी अक्षय शक्तिके द्वारा यह सब कुछ हो रहा है। यह तो है ही, परंतु साथ ही यह सब कुछ माताके प्यार और करुणासे अनुप्राणित है। एक परमाणुसे छेकर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तक सबमें माताका प्यार झलक रहा है। इसिलिये वहाँ कुछ भी अशिव और अशुभ नहीं हो सकता। प्रलय और संहारके गर्भमें नवीन सृष्टिका सजन संनिहित है। अन्धकारके दृदयमें प्रकाश खेल रहा है। आस्तिक दृष्टि ही परिवर्तित हो जाती है। वह मृत्युमें जीवनकी, दुःखमें सुखकी, अन्धकारमें प्रकाशकी कल्पना नहीं करता। प्रत्युत उसके सामने मृत्यु, दुःख और अन्धकार आते ही नहीं। उसकी दृष्टिमें इनकी सत्ताका बोध हो जाता है। अतएव उसे अंदर-बाहर सर्वत्र ही 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की झाँकी होती है। इस झाँकीका समय क्षण-दो-क्षण, बंटे-दो-घंटे, मास-दो मास सालोंकी सीमा बाँध कर नहीं आता; यह तो जब प्राप्त होती

है तब जन्म-मरणकी संगिनी वन जाती है। सब कुछ छूट जाता है परंतु यह नहीं छूटती। जिसने सच्चे हृदयसे एक वार भी आस्तिकताका दर्शन किया, वह सदाके लिये उसका और वह सदाके लिये उसकी हो जाती है। वह तो पुकारकर कहता है—

जरु थरुमें अरु खड्ग खंममें जह देखों तह राम हि राम। वह सदाके लिये निर्भय, निर्द्धन्द्व तथा निश्चिन्त हो जाता है। उसका यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि जन्म और मृत्यु प्रभुकी दो भुजाएँ हैं, जिनके प्रगाढ़ आलिङ्गनमें हम बधे हुए हैं।

ऑखवालेके लिये मिटीका एक कण, दूवकी नन्ही-सी पत्तीपर टिकी हुई ओसकी बूँदें, फूलकी एक पँखड़ी भगवान्की सत्ताकी अनुभृति, उसकी असीम करणा और प्रीतिके रसास्वादनके लिये आमन्त्रण दे रही है। जो देखना ही नहीं जानते, उनके लिये अनन्त आकाश, अथाह समुद्र, असंख्य नक्षत्र, महामहिम हिमालय, पतितपावनी माँ गङ्गासे भी कोई प्रेरणा, कोई उद्वोधन, कोई स्फूर्ति नहीं मिल सकती।

हमको भगवान इन ऑलांसे चाहे न दिखायी दें, पर यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि वे सदा-सर्वदा हमारे पाप निवास करते हैं । कभी भी हमको छोड़कर अलग नहीं होते । पर हमारा पूरा निश्चय न होनेसे हम भूले हुए हैं । इसीसे अशान्तिका अनुभव करते हैं । हीरींका हार अपने गलेमें ही है । वह कपड़ोंसे ढका है । इसी वातको भूल जानेसे मनुष्य उसे वाहर ढूँढ़ता है और न मिलनेपर दुखी होता है । जब याद आ गया, कपड़ा उठाकर देख लिया कि हार मिल गया । इसी प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं । भगवान्की कृपाका, उनके अस्तित्वका अटल विश्वास बना रहे—ऐसी उत्तम चाह होनी चाहिये ।

यह कभी मत समझो कि भगवान्के घरमें, भगवान्के हृदयमें हमारे लिये स्थान नहीं है। हमको वे अपने हृदयमें ही रखते हैं और सदा वे हमारे हृदयमें ही रहते हैं। पर सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते। इसमें भी उनका मङ्गलमय रहस्य ही है। अतएव सदा सब प्रकारसे उनका मङ्गलमय समरण करते रहिये, इसीमें हमारा कल्याण है।

आधुनिक विज्ञानकी अपूर्णता

(टेखक--श्रीगोपालजी गुप्त)

(भावानुवाद)

अंग्रेजी पढ़ा-लिखा आधुनिक कोई भी व्यक्ति जवतक किसी बातको विज्ञानका समर्थन नहीं पाता, उसकी सत्यताको स्वीकृत नहीं करता और जिस किसी कार्यमें वैज्ञानिक आधार दिखायी नहीं देता, उसे लोक-भ्रमकी संज्ञा देता है। इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें पाये जानेवाले अनेक आचार-विचार, कार्य-व्यापार एवं विविध परम्पराओंको अशास्त्रीय लोक-भ्रम प्रमाणितकर उस-उस समयकी उपज कह देता है और 'आज उनकी आवश्यकता नहीं है' कहकर उनके विच्छेदपर तुल जाता है। धन-मान-प्रचारके साधन एवं शासनसत्ता भी आज ऐसे ही सुशिक्षित वर्गके हाथमें आ गयी है और उनकी सहायतासे भारतीय संस्कृतिके विभिन्न आविष्कार नष्ट करने-का प्रयत्न किया जा रहा है। यदि कोई व्यक्ति उदारमतवादी है तो परिस्थितिके प्रभावसे वे आचार स्वयमेव विछप्त हो जायँगे'-इस दृष्टिसे वह उनके प्रति उपेक्षाका भाव प्रकट करता है। पुराने विधि-निषेध तो अव छप्त-से हो गये हैं। भारतीय संस्कृतिप्रणीत इन विधि-निषेधोंमें कुछ शास्त्रीयता होगी, इसपर उसका विश्वास ही नहीं होता। परंतु अव खातन्त्र्य-प्राप्तिके वाद वदली हुई परिस्थिति और जागतिक वैचारिक अव्यवस्थाके कारण सुशिक्षित-वर्गमें राष्ट्रीय अस्मिता सजग हो रही है और भारतीय संस्कृतिके अध्ययन-की ओर उसकी कुछ दृष्टि जा रही है। यह ग्रुम लक्षण है।

आधुनिक विज्ञानके चमत्कारोंको देख उससे प्रभावित होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। उसकी कसौटीपर खरी उतरी हुई बातोंको भी अपनाना अनुचित नहीं है।परंतु विज्ञानकी कसौटीपर किसी भी बातकी जाँच करनेमें एक बहुत बड़ी भूल हो रही है जो इन पढ़े-लिखोंके ध्यानमें नहीं आती। विज्ञान शब्दसे प्रायः आधुनिक भौतिक विज्ञानका ही बोध होता है। इस भौतिक विज्ञानकी सीमा बह नहीं जानता। बस, यही उसकी सबसे बड़ी भूल है। उसे समझना चाहिये कि आधुनिक भौतिक विज्ञान अभी पूर्णत्या विकसित नहीं हुआ है। जिन बातोंका स्पष्टीकरण इस भौतिक विज्ञानके द्वारा आज नहीं किया जा सकता, सम्भव है कल उसका विकास होनेपर स्पष्टीकरण उपलब्ध

हो सकेगा। यह बात आधुनिक सुशिक्षित वर्गके प्यानमें ही नहीं आती । यह वह अच्छी तरह जानता है कि विज्ञानके नित्य-नये चरण च्यों-ज्यों आगे वढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों ज्ञानका क्षेत्र भी संवर्धित होता जा रहा है। एक उदाहरणसे यह वात मुस्पष्ट हो जायगी । भारतीय तत्त्वज्ञानका एक महान् सिद्धान्त यह है कि दुनिया जैसी दीखती है वैसी नहीं है। वह एक प्रतीयमान वस्तु है, कोरा भ्रम-जाल है। रज्जु-सपैका हिष्टान्त सभीको ज्ञात ही है । अय इस सिद्धान्तका समर्थन आधुनिक मौतिक विज्ञान भी करने लगा है। आधुनिक पदार्थविज्ञानके अनुसार निखिल विश्वका मूल कारण विद्युत्कण माना गया है। सर्वत्र गतिशील विद्युत्कणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसे स्वर्णसे बनी हुई समस्त चीजोंमें स्वर्णके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । उन विद्युत्कर्णों-के कारण ही मनुष्यको विविध नामरूपात्मक जगत्का भान होता है। इस प्रकार आधुनिक पदार्थ-विज्ञान उस पुरातन सिद्धान्तका ही अनुमोदन कर रहा है। तथापि दोनोंकी ही मान्यताओंमें विशेषतः विश्वके मूळ कारणके स्वरूपके विषयमें महदन्तर है। भारतीय मान्यताके अनुसार जो मूळ कारण ब्रह्म कहा गया है, वह विद्युत्कणसे अनन्तगुना सूक्ष्मातिसूक्ष्म ही नहीं, उनसे अनिर्वचनीय भी है। कवीरके शब्दों में 'पुहुप वास ते पातला ऐसा तत्त्व अनूप' है । आधुनिक वैज्ञानिकोंके अय यह ध्यानमें आ रहा है कि जिस अवकारामें ये विद्युत्कण भ्रमण करते हैं, वह अवकाश भी विद्युत्कणकी अपेक्षा कई गुना सूक्ष्म है। एक वस्तुतत्त्व मात्र ही है। परंतु उसका ज्ञान प्राप्त करा देनेमें समर्थ अतिसूक्ष्म प्रयोगसाधन मात्र आज वैज्ञानिकोंके पास उपलब्ध नहीं है। साधनोंकी सूक्ष्मता यदि वे वढ़ानेका प्रयत्न करते हैं तो उस सुक्ष्मतम कारण का ज्ञान हो सकता है । तालर्य यह कि आधुनिक विज्ञानकी प्रगतिके लिये अभी भी बहुत कुछ गुंजाइश है।

आधुनिक सुशिक्षितोंकी यह भी एक बहुत बड़ी भूल है कि वे इस विज्ञानके प्रयोग-क्षेत्रमें आनेवाली वार्तोके अतिरिक्त और सबको भ्रमारमक मानते हैं। परंतु वैज्ञानिकों-

के ध्यानमें यह बात आ चुकी है कि अखिल ब्रह्माण्डका अल्पांश ही आधुनिक विज्ञानके प्रायोगिक कक्षमें आता है अर्थात् जो रोषांश इस कक्षसे परे है, उसमें सत्यांश कम है; कहनेका भी अब कोई औचित्य नहीं रहा है। भारतीय संस्कृतिमें जो अनेक साधन अथवा धार्मिक आचार वतलाये गये हैं, उनका मूल तत्त्व यह है कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्थल-मूक्ष्म-सूक्ष्मतर आदि सप्त स्तर हैं । इन्हींको सप्तलोक भी कहते हैं और इन सप्तछोक्नोंमें रहनेवाले जीवोंका पारस्परिक सम्बन्ध भी होता है। हमारी इन्द्रियोंको प्रतीत होनेवाली सृष्टि स्थूल स्तरके अन्तर्गत आती है। इसी हो भूः कहते हैं। भुवः होक, खः होक अर्थात् खर्गहोक उससे भी सूक्ष्मतर सृष्टिके स्तरके अन्तर्गत आते हैं। जिसर प्रकार विद्युत गण-पुञ्ज इस कागजमें व्याप्त होनेपर भी इससे भिन्न हैं, इसी तरह स्वर्गलोक आदि भी इस भू:लोकमें व्याप्त होकर भी उससे भिन्न हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिसे यह कहना कि स्वर्गलोक आदि अस्तित्वमें ही नहीं है; क्योंकि उनका अस्तित्व आजकी वैज्ञानिक कसौटीपर सिद्ध नहीं, होता सर्वथा भ्रमपूर्ण है; क्योंकि हम यह पहले ही वता चुके हैं कि विज्ञानके कक्षमें न आनेवाली वात भी सत्य हो सकती है । विज्ञानका रहस्य है—प्रायोगिक अनुभव करनेमें । प्रायोगिक अनुभव उस-उस प्रयोग-योग्य साधनोंपर ही निर्भर होते हैं; अतः स्वर्गलोक-जैसी सूक्ष्म सृष्टिका अनुभव करा देनेवाले सूक्ष्म साधन यदि आधुनिक विज्ञानके पास उपलब्ध नहीं हैं तो उसका अनुभव उसे कैसे प्राप्त हो सकता है ? किसी भी घटनाका अनुभव यदि विज्ञानकी सहायतासे प्राप्त न होता हो तो उसके कारण उस घटनाका अभाव कहना कदापि तर्कसंगत नहीं है; क्योंकि विज्ञानका अपूर्ण विकास या योग्य साधनोंका अभाव भी कारण हो सकता है। दूसरी वात यह भी है कि किसी भी सत्यताका अनुभव आधुनिक वैज्ञानिक-पद्धति एवं उसके साधनोंसे ही प्राप्त नहीं होता, अन्यान्य और भी साधनोंसे प्राप्त हो सकता है। तभी पाश्चात्त्य वैज्ञानिक प्रो० जे० ए० थाम्पसन्ने अपनी Introduction to Science नामक पुस्तकके १०७ पृष्ठपर लिखा है कि वैज्ञानिक वर्णन और धार्मिक अनुभवमें विरोध बतलाना गलत है-(It is a false antithesis to contrast Scientific descriptions and religious interpretations.)

आधुनिक वैज्ञानिक-पद्धतिकी उपयोगिता मर्यादित ही है। कुछ विशिष्ट प्रकारकी घटनाओंका ही अनुभव कराने-की पात्रता उसमें है । अन्य प्रकारकी घटनाएँ इस विज्ञानकी प्रयोग-पद्धतिकी सीमाके सर्वथा वाहरकी वातें हैं। उनका अनुभव पानेके लिये उनके अनुरूप विभिन्न प्रयोग-पद्धतिका अवलम्बन करना पड़ेगा । विज्ञानके विकासके इतिहाससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि च्यों-च्यों नयी-नयी पद्धतिका या साधनका आविष्कार हुआ है, त्यों-त्यों सृष्टिकी नवातिनव वातोंका भी ज्ञान होता गया है। स्क्ष्मदर्शक यन्त्रकी सहायतासे स्क्ष्म कीट-सृष्टिका एक विस्व ही नजर आया तो दूरदर्शक यन्त्रकी सहायतासे नक्षत्रों हा विस्व ज्ञात हुआ । निष्कर्ष यह कि आधुनि क वैज्ञानि क-पद्धति मर्यादित स्वरूपकी है और इस वातको न समझना ही आधुनिक सुशिक्षित-वर्गकी विवेक-शून्यता है।

आधुनिक विज्ञानकी यह मर्यादा मानवी बिज्ञानके आधारपर समझमें आ सकती है । आधुनिक विज्ञानका उसकी कक्षाके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाला ज्ञान मानवी इन्द्रियों-द्वारा ही प्राप्त होता है । विभिन्न यान्त्रिक साधनं उस-उस इन्द्रियकी शक्ति बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं। तथापि इन्द्रियोंकी शक्ति सीमित ही होती है । इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण न होनेवाली किंतु मनुष्यके अनुभवमें आनेवाली सुख-दु:ख-प्रेम-सौन्दर्य आदिकी घटनाएँ मिथ्या नहीं कही जा सकतीं । उनका अनुभव मनुष्य मनके द्वारा करता है; क्योंकि मनकी शक्ति इन्द्रियोंकी शक्तिकी अपेक्षा अधिक एवं सूक्ष्म है । परंतु यह मन इन्द्रियोंसे संलग्न रहनेवाला ज्ञात-मन (Conscious mind) है । अन्तर्मन या अज्ञात मन (Unconscious mind) की शक्ति उससे भी अधिक है। दूरश्रवण, दूरदर्शन आदि कार्य भी वह कर सकता है। इसका अनुभव वैज्ञानिकोंको भी आजकल होने लगा है। भारतीय धारणाके अनुसार मनकी शक्ति निस्सीम है; परंतु वह सामान्य मनुष्यमें सुप्तावस्थामें रहती है । यदि इस मनःशक्तिका विकास आधुनिक विज्ञान कर सका तो उसे अज्ञात विश्व भी अनुभूत हो सकेगा और इस विश्वकी शक्ति एवं साधनोंका उपयोग करके मनुष्य अपनी सामर्थ्य भी वढ़ा पायेगा। भारत इसका प्रयोग कर चुका है। योगशास्त्रका प्रणयन इसका प्रमाण है। स्ष्टिका यह अंश आधुनिक विज्ञानको पूर्णतया अज्ञात है। योगशास्त्रके द्वारा ज्ञात होनेवाली सूक्ष्म या अतीन्द्रिय सृष्टिके नेसर्गिक नियमोपर ही वैदिक धर्म एवं संस्कृतिके आवार-CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मर्या डाल

संख

है। लगे

बात

काव नाम छीत पूरी

प्राप्त कार संवि

सीग

देव

-

ाने-

क्री

का

का

यह

र-

की

印

इस

कि

का

यों-

उस

की

ली

र्य

का

गह

15

刀,

व

Ħ

H

11

FI

विचारोंकी निर्मिति हुई है। इसी कारण यह आधुनिक मर्यादित विज्ञान यदि इन आचार-विचारोंपर कुछ भी प्रकाश डालता है तो यह उसकी अनिधिकार चेष्टा समझी जायगी।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान कई बातोंमें आज भी अपूर्ण है । प्रयोग-सामर्थ्यकी मर्यादा होती है। यह बात अब आजके वैज्ञानिक भी सौभाग्यसे समझने छो हैं। इतना ही नहीं, सूक्ष्मतम साधनोंके अभावमें विज्ञान- की अगली प्रगति अब कुण्ठित-सी भी हो गयी है। इसी कारण पाश्चास्य मनीपियों एवं वैज्ञानिकोंका ध्यान भारतीय योगशास्त्रकी ओर आकृष्ट हो रहा है। ऐसी परिश्चितिमें भारतीय संस्कृतिके आचार-विचारोंको आधुनिक विज्ञान एवं तब्जन्य यान्त्रिक सम्यताकी कसौटीपर कसकर उनकी सत्या-सत्यता या इष्टानिष्टता निश्चित करना मर्कट-चेष्टासे क्या कुछ कम घातक है ?

राजा बीरबलकी चेतावनी

(लेखक--श्रीगोवर्धनलालजी पुरोहित, एम्० ए०, बी०एड्०)

राजा बीरवल ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी हिंदी काव्यजगत्के लिये नये-से ही हैं। इन्होंने 'ब्रह्म' कवि के नामसे अपनी रचनाएँ व्रज-भाषामें लिखीं। वल्लभसम्प्रदायी छीत खामी इनके गुरु थे। अकवर भी राजाके वैष्णवधर्मसे पूरी तरह प्रभावित थे।

सम्राट् अकवरके समय राजा बीरवल उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच गये थे। राज्यमें ऊँचे-से-ऊँचा पद उन्होंने प्राप्त किया। परंतु राजा वीरवल सर्वाधिक सांसारिक वैभवमें फँसे नहीं और हरिभजनकी ओर निरन्तर उन्मुख रहे। यही कारण है कि इनके अधिकांश छन्दोंमें भक्ति और वैराग्यका संनिवेश है। उनके द्वारा विरचित निम्नलिखित सबैये मानवको एक चेतावनीके रूपमें हैं—

(सत हिर भजन जगत सब सपना।)

पेटमें पोढ़ि के पोढ़े महीपर, पालन-पोढ़ि के बाल कहाये। आयी जबे तरुनाई तिया सँग, सेज पै पौढ़ि के रंग मचाये॥ छीरसमुद्रके पोढ़नहार को, 'ब्रह्म' कबों चित ते निर्हे ध्याये। पौढ़त पौढ़त पौढ़त ही सों, चिता पर पौढ़नके दिन आये॥

गर्भ चढ़े पुनि सूप चढ़े, पहना पै चढ़े चढ़े गोद धना के। हाथी चढ़े फिर अध चढ़े, रथ माँहि चढ़े चढ़े जोग धना के॥ बैरी ओ मित्रके चित्त चढ़े, किव (ब्रह्म) भने दिन बीते पनाके। ईस कृपाहुको जान्यो नहीं, अब काँधे चहे चढ़ि चार जना के॥

(?)

खायवों सोयवो बारिह बार चमार के चामहु तें जल पीवो। दाम के काम को लीबो दिवान सों काहु को लै किर काहु को दीबो। ्ब्रह्म' भने जगदीसु न जान्यौ सु ऐसिह भाँति विना सुख जीवो । भोर ते साँझ लों, साँझ ते भोर लों, काल्हि कियो सोई आजहुँ कीवो ॥ (४)

जब दाँत न थे तब दूध दियों। अब दाँत मये कहा अन्न न देहैं। जीव बसे जल में औ थल में। तिनकी सुधि लेइ सौं तेरहु लैहै। जान को देत। अजान को देत। जहान को देत सो तोहूँ कूँ देहै। काहे को सोच करें मन मूरखा सोच करें कछु हाथ न ऐहै। (५)

पेट पर्यो परि सूप पर्योः पर्जना परिपाल कवे परिहै। काम जर्यो अरु क्रोध जर्योः मद लोम जर्यो तनहू जरि है॥ मूओ हुतो मरिवे को ही आयो है 'ब्रह्म' मने बहुरो मरिहै। करुनामय सो कर जोरे नहीं, ततो कीनी कहा ते कहा करि है॥

जो हित ज्यान्यों नहीं जगदीसः कह्यों चहे तोरी नहीं जम जेरुहि। जब्रह्म भने मिन दूरके क्रूर तू घूरि क्यारिन वार सकेरुहि॥ दूसरों पेड़ों न हैं है न आहि, रे पेडे को पाइ पहारन पेरुहि। खेरुत खेरुत खेरुत खेरुति सेरुहि॥

पेट ते आयो तु पेट को घावतः हार्यो न हेरत घामर छाँहीं।
पेट दियो जिहिं पेट मरे सोईः 'ब्रह्म' मने तिहि और न जाहों॥
पेट परयो सिख देतिह देतः पापिउ पेटहि पेट समाहों।
पेट के काज फिरै दिव रातिः सु पेटहु से परमेसुर नाहों॥
(८)

काम कबूतर तामस तीतर, ग्यान गुलेलन मार गिराये। पालँडके पर दूर किये, अरु मोह की अस्यि निकासि ढराये॥ संयम काटि मसालो विचार को, साथु समाज ते ताहिहि लाये। ब्रह्म, हुतासन सेकि के बावरे, वैष्णव होत कबाब के खाये॥

देवालयोंका सर्वेक्षण, मंगठन और मंरक्षण

(लेखक-शीओंकारमलजी सराफ)

आज देवालयों, आश्रमों, मठों, गुरुद्वारों, विहारों, चैत्यों, उपासनागृहों उपाश्रयों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रोंकी जो परिस्थिति जमींदारी-उन्मूलन, देशी राज्योंके विलयन एवं नाना प्रकारके कानूनोंके कारण हो गयी है, उनका सिंहावलोक्तन राष्ट्रीय आवस्य हता हो गयी है। यदि हम इसी समय सचेत होकर यह नहीं कर छेते हैं तो 'भविष्यमें क्या होगा' यह कहना कठिन है।

इसके लिये हमारी प्राथमिक आवश्यकता यह है कि सारे देशमें, सारे विश्वमें स्थापित हम अपने धार्मिक प्रतिष्ठानोंका सर्वेक्षण करें । उनकी आवश्यकताओं और व्यवस्थाओं की जानकारी प्राप्त करें। देशके प्रत्येक राज्यमें-राज्यके प्रत्येक जिलेमें इनका विवरण प्रस्तुत करनेका उद्योग करें । इनके वर्तमान संचालकों, पुजारियों एवं व्यवस्थापकोंसे अपना सम्पर्क स्थापित करें। इसके लिये 'देवालय-संरक्षण-समिति कलकत्ता'ने एक कार्यक्रम देशके जनसाधारणके लिये प्रस्तुत किया है, वह इस प्रकार है-

सर्वेक्षणका कार्यक्रम

- (१) देशके प्रत्येक प्रान्तमें, राच्यमें सर्वेक्षण-कार्यके लिये ऐसे कर्मठ व्यक्तियोंकी टोलियाँ बनाना जो सर्वत्र पैदल भ्रमण करके प्रत्येक राज्यान्तर्गत प्रत्येक जिलेमें निम्न कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकें।
 - (क) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रका विवरण प्रस्तुत करना।
 - (ख) प्राचीन और ऐतिहासिक धार्मिक स्थानके चित्र लेना।
 - (ग) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रकी आवश्यकताओं, क्षमताओंकी जानकारी प्राप्त करना।
 - (घ) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रके साधनोंको हृदयङ्गम करना ।
 - (च) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रसे समितिका सम्पर्क स्थापित करना।
 - (छ) प्रत्येक धार्मिक केन्द्रके संचालक या संचालकोंको समितिके साथ अपना सम्पर्क स्थापित करने एवं संगठनकार्यके लिये अग्रसर होनेके लिये उन्मुख करना।
- (ज) प्रत्येक पंचायतके क्षेत्रमें समितिकी शाखाएँ स्थापित करना।

- (२) प्रत्येक राज्यका सर्वेक्षण करके उसके विवरणोंको पुस्तकाकारमें सर्वसाधारगकी जानकारीके लिये प्रकाशित करना।
- (३) प्रत्येक राज्यके प्रत्येक जिलेमें धार्मिक केन्द्रोंक संचालकों का जिला-सम्मेलन आयोजित करना और जिलेके धार्मिक केन्द्रोंकी आवश्यकताओं और साधनोंको समझकर उनको सहयोग देना, परामर्श देना—आवश्यकता पड्नेपर व्यवस्था करना।
- (४) प्रत्येक राज्यके प्रत्येक जिलेमें जिला समितियोंके तत्त्वावधानमें धार्मिक केन्द्रोंके माध्यमसे जनसम्पर्क बढ़ानेके लिये, धर्मप्रचारके लिये, विभिन्न जन-कल्याणकारी कार्योंको प्रारम्भ करना, उनमें सरकारी सहयोग प्राप्त करना तथा जन-साधारणका सर्वतोमुखी सहयोग प्राप्त करना।

धार्मिक संगठनको सुदृद् और व्यापक बनानेके लिये यही प्राथमिक कार्यक्रम है। सारे देशमें पैदल भ्रमण करने-वाली ये टोलियाँ धार्मिक जागरणके लिये देशको तैयार करेंगी।

धार्मिक केन्द्रोंके संगठन और विकासके इच्छुक सजनों, विभिन्न धार्मिक एवं सार्वजनिक संस्थाओं, धार्मिक विचारसे काम करनेकी इच्छा रखनेवाले समस्त बन्धुओंसे यह निवेदन है कि वे देशके प्रत्येक राज्यमें, प्रत्येक जिलेमें, प्रत्येक गाँवमें, प्रत्येक पंचायती हल्केमें समितिके इस प्राथमिक कार्यक्रमको सफल बनाकर आगेके कार्यकी पृष्ठभूमि प्रस्तृत करें।

मेरा यह विश्वास है कि इस कार्यक्रमकी आवश्यकताका सभी बुद्धिमान् व्यक्ति अनुभव करेंगे। देशमें इस प्रकारका सर्वेक्षण अभीतक नहीं हुआ है। आजके इस धर्मविरोधी वातावरणमें - सरकारके धर्मविरोधी कार्योंको दृष्टिमें रखते हुए इस प्रकारके सर्वेक्षणकी आवश्यकता अत्यधिक बढ़ गयी है। इस सर्वेक्षणसे हमारे धार्मिक इतिहासपर, धार्मिक मान्यताओंपर, धार्मिक दृष्टिकोणपरं अत्यधिक प्रकाश पड़ेगा।

इस कार्यक्रमके अनुसार सारे देशमें कार्य प्रारम्भ करना ही धार्मिक जगत्में जायतिका शङ्ख फूँकना है।

मेरी चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुसे यह प्रार्थना है कि वे हिंदू जातिको वह सामर्थ्य प्रदान करें, जिससे कि ^{वह} CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शह. की मन्दि

उपा

संचा

संगट होना सिम प्रत्येव होनी

समिति

लिये

दूर : सम्मि चलक समझ समिति उपाश्र चाहिरे

अपने अञ्चल चाहिं

जो उ 'देवा १३,

प्राचीन करते

करनेव

स्वधर्मकी, खदेशकी, धर्मके इन केन्द्रोंकी रक्षा करनेमें सक्षम हो। धार्मिक संगठनका कार्यक्रम

सारे देशमें, प्रत्येक राज्यमें, प्रत्येक जिलेमें, प्रत्येक शहरमें, प्रत्येक पंचायती क्षेत्रमें, 'देवालय-संरक्षण-समिति' की स्थापना स्वतन्त्र रूपसे करें । इसमें प्रत्येक धार्मिक केन्द्रको, मन्दिर, मठ, आश्रम, चैत्य, उपाश्रय, विहार, गुरुद्वारों, उपासनागृहों एवं अन्यान्य धार्मिक केन्द्रोंको एवं उनके संचालकों, भक्तों और अनुयायियोंको सम्मिलित करें ।

ग्रामसितियोंसे प्रतिनिधि लेकर जिलासितियोंका संगठन करना चाहिये। संगठन-कार्य ग्रामोंसे ही आरम्भ होना चाहिये। जिला-सिमितियोंके प्रतिनिधियोंसे राज्य-सिमितिका निर्माण करना चाहिये। इसी प्रकार देशके प्रत्येक राज्यमें 'देवालय-संरक्षण-सिमिति' की स्थापना होनी चाहिये।

सभी धर्म-प्राण हिंतुओंको अधिक-से-अधिक संख्यामें सिमितिका सदस्य बनाना चाहिये। प्रत्येक हलकेमें सिमितिके लिये काम करनेवालोंको, धार्मिक प्रवृत्तिके लोगोंको, राजनीतिसे पूर रहनेवालोंको इस धार्मिक और सांस्कृतिक संगठनमें सिम्मिलित करनेका प्रयास करना चाहिये। गाँव-गाँवमें पैदल चलकर प्रत्येक वयस्क हिंदू स्त्री-पुरुषको सिमितिके उद्देश्य समझाकर सिमितिमें सिम्मिलित होनेकी प्रेरणा देनी चाहिये। सिमितिकी डोरमें एक-एक देवालय, आश्रम, चैत्य, बिहार, उपाश्रय, गुरुद्वारेको मालाके मिनयोंकी माँति पिरोया जाना चाहिये। प्रत्येक धर्मसेवकको सिमितिके उद्देश्योंके प्रचारार्थ अपने व्यस्त समयसे कुछ समय निकालकर अपने-अपने अञ्चलमें इस संगठनको मजबूत बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

सारे देशमें समितियोंका संगठन करनेके लिये साहित्यकी जो आवश्यकता हो, सर्वेक्षण फार्मोंकी जरूरत हो, उसे 'देवालय-संरक्षणसमिति १२, चौरंगी रोड, कलकत्ता १३' के पतेसे पत्र लिखकर मँगा लेना चाहिये।

संरक्षणका कार्यक्रम

आज हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम अपनी प्राचीन परम्पराको पुनः वर्तमान परिस्थितियोंका विवेचन करते हुए प्रारम्भ करें।

हमारी इस प्राचीन परम्पराको पुनः प्रचलित पालनी चाहिये, जिनका दूध म करनेका सारा उत्तरदायित्व हमारे धर्मके धर्मरक्षकों, आचार्यों, शिशुओंको मन्दिरमें विठलाकर CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महन्तों, मठाधीशों, पुजारियों, उपाध्यायों, साधुओं, संन्यासियों। विरक्तों और धर्मवेत्ता विद्वानोंको प्रहण करना होगा। हमारा यह दृढ़ं विश्वास है कि हमारे धार्मिक प्रतिष्ठान जवतक स्वधर्मकी रक्षाके लिये अग्रसर नहीं होंगे, तवतक कोई भी कार्य नहीं किया जा सकेगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारे धार्मिक प्रतिष्ठान निम्न कार्यक्रमको अपनावें।

१-अपने-अपने अञ्चलकी शिक्षाका भार निरक्षरताके कलंकको अपनी पवित्र धरतीसे दूर करनेका भार ये धार्मिक प्रतिष्ठान सँभालें । इनका अपना पाठ्यक्रम होगा । विश्वविद्यालयोंके साथ इनका कोई सम्पर्क नहीं होना चाहिये । इनके द्वारा निम्नप्रकारसे शिक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिये ।

- (१) संस्कृत, हिंदी एवं आञ्चलिक भाषाका शान कराना।
- . (२) धर्मके मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंको प्रत्येक छात्रको समझाना।
 - (३) छात्रोंको जीविकोपार्जनके लिये कुटीर-शिल्पोंकी शिक्षा देना।

इस कार्यके लिये अपनी आमदनीसे वे खर्च करनेका मार्ग अपनावें । जनसाधारणसे, अपने अञ्चलकी जनतासे सहायता लें । सरकारको इस विषयमें विवश करें कि वह इसके लिये जो धनराशि निकाली गयी हैं, उसमेंसे उनको सहायता दें । हमारा यह दृढ़ संकल्प होना चाहिये कि हम अपने अञ्चलसे निरक्षरताको ह्य देंगे । अञ्चलवासी जनसाधारणको स्वावलम्बी बना देंगे । जब हम अपने अञ्चलकी जनताको समुन्नत बनानेमें लग जायँगे तो हमारी अभिवृद्धि भी जनताका कर्तव्य हो जायगा।

२-शिक्षाके साथ आयुर्वेदकी शिक्षा अनिवार्यरूपसे दी जानी चाहिये, जिससे कि किसी भी अञ्चलमें वैद्यका अभाव न रह सके।

३-अपने-अपने अञ्चलमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि सुबह-शाम प्रामका प्रत्येक निवासी स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका, मन्दिरोंमें आयोजित प्रार्थनामें, आरतीमें सम्मिलित होकर भगवान्का प्रसाद प्रहण करें।

४-प्रत्येक धार्मिक केन्द्रको अपने तत्त्वावधानमें गायें पालनी चाहिये, जिनका दूध भगवान्को भोग लगाकर प्रामके शिशुओंको मन्दिरमें विठलाकर पिला देना चाहिये। ५-ग्रामसे कोई भी पशु वाहर न जाने पायें, इसकी निगरानी रखनी चाहिये।

६-प्रत्येक धार्मिक केन्द्रको अपने यहाँ कम-से- म दो छात्र सदाके लिये ऐसे रखने चाहिये जो संस्कृतके स्नातक बनें, आसपासके अञ्चलोंमें धर्मका प्रचार करें और मन्दिरकी व्यवस्थामें सहयोग दें।

ऐसा अनुमान करना अस्वाभाविक नहीं होगा कि देशमें कम-से-कम दस लाख या उससे ऊपर ही धार्मिक केन्द्र होंगे। यदि हम संरक्षणके इस कार्यक्रमको अपना ठेते हैं तो २० लाख कार्यकर्ताओंको सदाके लिये देशके सर्वतोमुखी विकास कार्योंको धार्मिक केन्द्रोंके माध्यमसे अग्रसर करनेके लिये तैयार कर लेते हैं।

सर्वेक्षण, संगठन और संरक्षणका यही कार्यक्रम है जिसे देशके समस्त धार्मिक केन्द्रोंको अपनाना चाहिये। इससे सारे देशमें धार्मिक संगठनका वातावरण प्रस्तुत होगा, स्वधर्म और स्वदेशकी रक्षाकी प्रेरणा मिलेगी, धार्मिक केन्द्रोंमें फैली हुई अव्यवस्था दूर होगी और सारे देशमें एक नया जागरण आयेगा।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि धार्मिक केन्द्रोंके संचालक, व्यवस्थापक, सेवक, पुजारी, महन्त आदि सभी इस कार्यक्रमको अपना कर 'सर्वे भवन्तु सुिखनः सर्वे सन्तु निरामयाः' के आदर्शको मूर्त रूप देंगे।

गोरक्षण और गोसंवर्धनकी भी उपेक्षा क्यों ?

(केखक--गो० काला हरदेवसहायजी)

गोरक्षण और गोसंवर्षनके लिये दो बार्ते आवश्यक हैं— गोवध-निषेधके अतिरिक्त चारे-दाने तथा आवश्यक साँडोंकी व्यवस्था। उचित था, जो गोचरभूमियाँ पड़ी हुई थीं, उन्हें सुरक्षित रखकर उन्नत किया जाता, पर दिन-दिन गोचर-भूमियोंको तोड़ा जा रहा है। पंजाबमें तो किसानोंको नोटिस देकर गोचरभूमिको फालत् बतलकर सरकारने अधिकार कर लिया है।

दाने-खलीका निर्यात सन् १९५२-५३ में दस लाख रूपयेका था जो बढ़ाकर सन् १९५९-६० में १६ करोड़ रूपयेका कर दिया गया है। साँडोंकी तैयारीपर ध्यान ही नहीं दिया जाता। आवश्यकताका एक चौथाई साँड भी देशमें नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९५१ में दूधका उत्पादन ५२ करोड़ मन था, जो सन् १९५६ में घटकर ४७ करोड़ मन रह गया। वार्षिक दूधका उत्पादन कम होता जा रहा है। खेतीके किये आवश्यक बैल नहीं। आज देशमें डेढ़ करोड़ बैलोंकी कमी है। बैलोंका मूल्य दिन-प्रति-दिन चढ़ता जा रहा है। यदि यही स्थिति रही तो न दूध मिलेगा और न खेतीके लिये आवश्यक बैल ही!

किसानको अधिक परिश्रम करनेके कारण पौष्टिक भोजन चाहिये, इसीलिये गाँवमें दूधका बेचना बुरा समझा जाता था। आज सरकार किसानकी उपेक्षा करके शहरोंमें दूध पहुँचानेपर लाखों रूपये खर्च कर रही है। शहरवालों तथा पैसेवालोंको अधिक माखन, क्रीम तथा दुग्ध-चूर्ण मिल सके, इसके लिये बड़े-बड़े कारखाने तीसरी योजनामें खोलनेकी तजवीज की गयी है।

गुजरात, राजस्थान तथा हरियाना (पंजाव) का किसान प्रायः मछली, अंडा और मांस नहीं खाता। दूध और दूधकी बनी चीजोंपर ही उसकी शारीरिक शक्ति निर्भर है। यदि गाँववालोंके लिये आवश्यक दूध और बैलोंकी व्यवस्था नहीं की गयी तो खेतीका उत्पादन दिन-प्रति-दिन कम होता जायगा। किसानके भारतीय सेनामें अधिक संख्यामें भरती होनेके कारण किसानपर ही देशकी सुरक्षाका भार निर्भर है। यदि सरकारने गोरक्षण और गोसंवर्धनपर पूरा ध्यान नहीं दिया तो राष्ट्रीय-स्वास्थ्यको बड़ा नुकसान पहुँचेगा और आर्थिक ढाँचा दृट जायगा।

जैसा कि स्वामी दयानन्दजी सरस्वतीने कहा था कि भी आदि पशुओं के नाश हो नेसे राजा और प्रजाका विनाश होता है। गौकी उपेक्षा करनेसे न शासक बचेगा और न प्रजा ही सुखी रहेगी। गाय बोलती नहीं, गायका बोट या मत नहीं, इसिलये आजके राजनीतिक वायुमण्डलमें उसका कोई स्थान नहीं!

उचित होगा कि हमारी सरकार, सरकारके उच्चाधिकारी तथा अन्य सब पक्षके माननीय सदस्य गोरक्षण और गोसंवर्धन पर ध्यान देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गायं गुज भेज इस

संख

शक्ति है, ह

गयी भिव 'दी इस

अमे

गमः ध्यान है ।

परिष

गोसं

छीन पकः रहे बोध इन्:

हो : हो : रहा

मित्र

कर

गायोंके खाद्य गुँवार तथा राजस्थान और गुजरातसे गायोंकी निकासीके बाबत हमने पंजाब, राजस्थान और गुजरातके लोकसभा एवं राज्यसभाके सदस्योंको एक पत्र भेजा है, उसकी नकल नीचे दी जा रही है। पाठक भी इसपर विचार करके कुछ उपाय सोचें—
'भान्यवर महोदय!

हरियाना (पंजाय), राजस्थान और गुजरातके गोवंशकी शक्ति, स्वास्थ्य तथा दुग्धोत्पादन बहुत कुछ गुँवारपर निर्मर है, हल तथा गाड़ी चलनेवाले बैलोंको गुँवार देना अनिवार्यहै।

कुछ वर्षोंसे भिवानीमें गुँवारका दौष्टिक भाग निकालकर अमेरिका भेजनेके लिये 'गम एंड गुवार फैक्टरी' जारी की गयी। वम्बई तथा अहमदाबादमें भी दो छोटी फैक्टरियाँ हैं। भिवानीके कारखानेका गुवार-गमका उत्पादन बढ़ानेके लिये 'दी हिन्दुस्तान गम कैमिकल लिमिटेड' कारखानेके नामसे इस उद्योगको चलानेका निश्चय किया गया है।

६ अप्रैल १९६२ को केन्द्रिय सरकारकी भोसंवर्धन-परिषद्' ने श्रीढेवरभाईकी अध्यक्षतामें पशुधनके लिये गुँवार-गमका तैयार करना हानिकारक बतलाते हुए सरकारका ध्यान इसके उत्पादनको निरुत्साहित करनेकी ओर दिलाया है । प्रस्तावकी एक कापी आपकी सेवामें साथ मेजी जा रही है ।

कृपया आप वाणिज्य तथा उद्योगमन्त्री महोदयका ध्यान गोसंवर्धन कौंसिलके इस प्रस्तावको शीघ कार्यरूपमें परिणत करनेकी ओर दिलाकर कृतार्थ करें। एक दूसरी आवश्यक बातकी ओर आपका ध्यान दिलाना बहुत आवश्यक समझता हूँ। आशा है आप इन दोनों बातोंपर पूरा ध्यान देंगे।

- (१) पंजावसे प्रति वर्ष ५० हजार अच्छी दुधार और नौजवान गायें कलकत्ता और अन्य वड़े शहरोंको ले जाकर वर्बाद की जा रही हैं। उनके वछड़े कलकता पहुँचते ही और गायें दूध सूखते ही कसाईकी छुरीके नीचे चली जाती हैं! जिसके कारण आज पंजावमें दूध-घीकी कमी तो होती ही जा रही है, अच्छी गायोंकी कमीके कारण अच्छे बैलोंकी कीमत इतनी वढ़ गयी है कि गरीव किसान खरीद नहीं सकता। इस निकासीपर रोक लगनी बहुत ही आवश्यक है।
- (२) सन् १९५५ तक जिस राजस्थानसे एक भी वछड़ीकी निकासी नहीं होती थी। आज प्रतिवर्ष लाखोंकी संख्यामें गाय, वैल और विशेषतः छोटी-छोटी वछड़ियाँ कतलके लिये उत्तरप्रदेश, वम्बई, पंजाव तथा पाकिस्तानको ले जायी जाती हैं।
- (३) गुजरातसे भी इसी तरह गोवंश वम्वई प्रदेशके बड़े कसाईखानोंको ले जाकर मारा जाता है।

गायोंकी निकासीको स्कवानेकी कोशिश करें। यदि राज्य-सरकारें इसमें कुछ स्कावट समझें तो संविधानकी धारा २०२ और २०४ के अनुसार राष्ट्रपतिजीसे स्वीकृति छे छें।

कृपया इन दोनों बातोंके सम्बन्धमें अपने विचार पत्रोत्तर-से कृतार्थ करें।"

तुम्हीं तत्त्वज्ञ, तुम्हीं पर-तत्त्व

छीनकर सहज सभी संसार, कर दिया मुझे अवस्तु असार।
पकड़ पाता न, हुआ ठाचार, प्रकृतिका रहा न एक विकार ॥
रहे तुम केवल एक अनन्य, दृश्य-दृष्टा न रह गया अन्य।
बोध यह नहीं किसीका जन्य, तुम्हीं अपनेसे अपने धन्य॥
इन्द्रियाँ रहीं न इन्द्रिय-भोग, मिट गया सभी अविद्या-रोग।
समझ पाते न मम वे लोग, देखते प्रकृतिज जो संयोग॥
हो गये भोग भोक्ता एक, मुक्ति-बन्धनका मिटा विवेक।
हो गये एक तमाम अनेक, कीन अब रक्खे किसकी टेक॥
रहा कुछ भी न मान अपमान, हो गया जीवन-मरण समान।
मित्र-अरिका न रहा कुछ ज्ञान, भेदका रहा न नाम-निशान॥
कर रहे मधुमय नित्य विहार, आप अपनेमें ही अविकार।

स्वयं वन निराकार-सकार, रहित-इच्छा इच्छा-अनुसार ॥ शून्यसंकल्प समाधि-विभोर, नहीं संध्या-विभावरी-भोर । कहीं भी कोई ओर न छोर, वने रहते जडवत् सब ओर ॥ कभी करते मधुमय आलाप, हरण कर लेते सब संताप । न कोई तौल न कोई माप, नित्य स्वच्छन्द आपमें आप ॥ तुम्हारे ये समाधि-ज्युत्थान, सृष्टि सुंदर, भयकर अवसान । तुम्हारे सभी रूप निर्मान, निरितशय निरुपम नित्य समान ॥ कभी करते अनुभव बन भिन्न, कभी दिखलाते भाव विभिन्न । पर न पल होने देते खिन्न, कभी होते न स्वयं विच्छिन्न ॥ रहा अब कहीं न अहं ममत्व, तुम्हीर तथ्वज्ञ, तुम्हीं पर-तरव ॥ तुम्हीं बस हो भी तुम्हीं ममत्व, तुम्हीं तथ्वज्ञ, तुम्हीं पर-तरव ॥

सुन्दर सीख

परमारथ पथके पथिक थिकत न हो पल एक। 'शरन' कुसंग कुपंथ तिज चिलयो सिहत विवेक।। नवल कमलके फूल तुल जीवनको इतिहास। अलिकुल संकुल कुल विपुल पानै काल विनास।। अधिक बिन्न थोरो समय प्रियतमको घर दूर। मारग वोधक गुरु नहीं 'शरन' पाव किमि पूर॥ इंसान हैं परेसानकी सान। परेसान बिनु पिस 'शरन' जैसे पिसे पिसान॥ कुष्न 'शरन' बिन होयगो सकर कूकर कूर । बिनु आदर दर दर फिरै कादर पाव न पूर ।। भू के भूखे भूखते भगवत भगती भूल। देख्यो सुन्यो न विस्वमें विना मूल फल फूल॥ इहि भौतिक संसारमें इक रस मिलन न होय। देख्यो सुन्यो न हो सक्नै कोटि जतन कर कोय॥ जुवती बन जौवन सुमन विषय वासना वास । मन मधुकर मँड्रात नित फँस्यो आस दुख-पास ॥ पंकज मधुके मधुप तुम करत कटेरी पान। कंटक जाल विसालमें उरिझ उरिझ मिर जान।। ऐसो जग संयोग नहिं जामें हो न बियोग । सुख ऐसो नहिं हो सक जामें दुःख न रोग ॥ आनेमें हम एक हैं जानेमें हम एक। बिनु जाने जग-जालमें मनमाने जु अनेक॥ मैं जु करी वकरी मरी निकरी सगरी आँत। तव ताड़ित भइ दंड तें करती तू तू ताँत।। निन्दक हिंसक कपट कटु कूट असत्य उचार। किल कृतघ्न कामी कृपन 'शरन' न हो भव पार।। चुगली उगली जा दिनाँ गल तें गरल महान । जुगनु अमित न हो सकें कवहूँ सूर्य समान ॥ तेज पुंजु रिव सिस 'शरन' चुगली कारन आज। पर्व पर्वपर पात्रहीं देखो दुःख नहीं बुराई राइ भर करो सुनो तुम कान। 'शरन' नैन निरखो नहीं होती हानि महान॥ चुगली उगली मंथरा केकिय कीन्ही कान। प्रजा राम सिय दुख भयो दसरथ त्यागे प्रान॥ नेक वनो नेकी करो नेकी नीक कहाय। बिनु नेकी नेंकहु नहीं कोई 'शरन' सहाय॥ थ्रेम परसपर पूत पुनि संघ शक्ति सम्मान। कृष्न 'शरन' समसीलता उभय लोक कल्यान॥ तन नित सेवामें निरत, बचन निरत हरिनाम। मन नित प्रभुके ही 'शरन' लहै सुलभ हरिधाम॥

---श्रीरंगीलीशरण

सुर

प्रत पुर

अब

न स कल

उसे

विद्

कि पेठ

बाह

जर आ

कट

स्ट

जा

अ

रह

वि

से

मायिक मुहूर्त

[श्रीअरविन्दिलिखित अँगरेजी कहानी 'फैण्टम आवर'का हिंदी अनुवाद]

(अनुवादक-वशिष्ठ)

स्टर्ज मेनार्द ॲगीठीके पाससे उठा और अंधेरी देते सुरमई, पीले कोहरेपर नजर डाली जो अपने विस्तारके गहरे परतोंमें लन्दनको लपेटे था। अपने हाथमें वह एक पुरानी पुस्तक लिये हुए था जिसे वह पढ़ रहा था; उसकी अँगुली अब भी पृष्ठपर थी और उसका मन, जो पूर्ण संतोषके साथ न सही, लेखककी कल्पनाओंके भावके प्रति प्रेरित था। यदि इन कल्पनाओंने उसके अनूटे भावको संतुष्ट किया तो उन्होंने उसकी विवेक-बुद्धिको उकताया भी । उक्त पुस्तकमें समय और स्वभावमें मध्यवर्ती एक पुराने रहस्यवादी गृह्यवेत्ता अध्यात्मविद्या-सम्बन्धी कल्पनाओंका विवेचन विद्वानने किया था, जिन्हें आधुनिक जगत्ने बोट देनेके डेरे एवं साहुकार पेठतक दौड़-धूप करनेके लिये बहुत दूर फेंक दिया है, जो बाह्य और प्रत्यक्षमें ज्ञानसे पारंगत है तथा जो आन्तर गुह्य जगत्की सीमाओंपर एक निश्चित अज्ञताके रूपमें अपने आधिपत्यको विस्तार देनेकी चेष्टा करता है। एक ऐसे युगके कठोर एवं नियत साधनोंके प्रतिकृत अनेक सक्ष्मताएँ घटित हुई; ग्रन्थकारका कथन था-केवल भाह्या; क्योंकि हम एक कुंजीको अस्वीकार कर देते हैं जो प्रत्येकके अपने हाथमें है।

'रहस्योंका केखक, भ्रान्त कल्पनाओंका व्यवसायी' स्टर्ज विचारने छगा, 'यहाँ बुने हुए इस भारभूत प्रतिरोधी जालेके पक्षमें कोई केवल न्यूनतम तथ्य पावे तो ! किंतु जिस अनिश्चयतामें ये विचार विचरनेको संतुष्ट थे, उसकी अपेक्षा कोहरा कम स्थूल है ।'

असामान्य किंतु विलक्षण चर्चाके एक वृत्तान्तमें जर्मन रहस्यवादी गुह्मवेत्ताने प्रतिपादन किया था कि दीप्ति, स्फुरणाके मृल कारणने एक अविराम सिकयतासे विचारकी गितयोंपर मनोयोग दिया था जो अपने रूपमें एक विशुद्ध, विपांडु या बुँधले प्रकाशकी आभास हैं। लेखकका कथन था कि मस्तिष्कके क्षिप्र व्यापारके गाढ़ क्षणोंमें अपने मस्तकों, प्रायः अपने चतुर्दिग्वर्ती समस्त परिसरको बैंजनी क्षण-प्रभाओं से जगमगाते एक-एक भासुर वातावरणद्वारा आकान्त द्रष्टाओंके लिये एक साधारण अनुभृति थी। तब ही जब स्टर्ज इन अतिशयोक्तियोंपर आश्चर्य कर रहा था, उसकी स्मृतिमें

स्फरणा हुई कि वह स्वयं अपने यचपनमें ठीक ऐसी ही बैंजनी आभाएँ अपने मस्तकके पास देखा करता था और तबतक अपनी बालेश लहरीको उनसे वहलाता रहा जबतक प्रौद्धतर वर्ष विस्मयः अविश्वास और इस आश्चर्यका द्वृत हास न ले आये।

'क्या तब वहाँ जर्मनकी लहरियोंके लिये अनुमृतिका कुछ औचित्य था ! ऐसी प्रवृत्तिद्वारा व्यर्थ ही उसने प्रतिरोधकी चेष्टा की । खिड़कीके बाहर कोहरेपर स्टर्जने अपनी नजर गड़ा दी और प्रतीक्षा करता रहा। जब वह अपने सस्तकमें एक विचित्र हरकत, नेत्रके प्रति अपनी क्षमताओंकी संकुलतासे जानकार हुआ, उसी क्षण कोहरेमें आये एक हर्य वैजनीं स्करणाओंका तथा एक बढती उत्तेजना उसके स्नायुमण्डलमें, जिसे उसका जिज्ञासु, विलक्षणतः, चान्त मन निरख रहा था। विचित्र आभास, अद्भुत ध्वनि, अतीत एवं आगामी अनुभृतिका एक सम्पूर्ण जगत्, किसी ऐसे अन्तराय-प्रतिकल चढकर जो सम्पर्कका विरोध करता था, निश्चय ही उसपर उमड रहा था। चिकत और अनुरक्तः किंतु अन्यथा क्षुच्ध नहीं, उसकी तर्क-बुद्धिने, जो घटित हो रहा था, उसका कुछ ब्यौरा पानेकी चेष्टा की । प्रयासको सहायता देना बेहतर समझ स्टर्जने जो देखा था उसके पुनरावर्तन या खण्डनके लिये कोहरेपर फिर दृष्टि गड़ा दी । अब और बैंजनी स्फरणाएँ नहीं थीं, किंत् निश्चय ही बाहर धूमरवर्ण कोहरेमें कुछ संकेत कर रहा, निरूपित, अभिन्यक्त हो रहा था। यह उन्न्वल हो गया, यह गोल हो गया, यह स्पष्ट हो गया ! क्या यह मोहरा था या कुण्डल ? अनुभूतिकी एक भग्नाश विरिक्तमें अपने सम्मुख एक घड़ीके अतिरिक्त और कुछ विचित्र नहीं देखा । वह मुस्कराया और उस मुनिर्दिष्ट दृष्टिगत घड़ीसे कारनस-पर रक्खी अभनी बास्तविकः रहस्यरितः, कामचलाऊ सहचरी-की तुलना करनेको मुड़ा। उसका शरीर विस्मयके एक निर्यातसे तन गया । वस्तुतः वहाँ वड़ी थी--कोविदार-मुखी, स्वर्णाक्षरी, वक्तकी कान्नगो, घंटोंकी वाके नवीस जो सध्यमें एक प्रचलित 'ब्रह्माकाल' पर सहज संतुलित और पंखोंबाली दो देवियाँ किनारेपर; उसने छक्ष्य किया कि घड़ीकी सुड्याँ बारह और पाँचपर जुट रही हैं और शीम ही घंटा बजनेवाला है, किंतु इसके पार्श्वमें क्या थी यह छायामयी एवं अपरिचित सहचरी; सुप्रतिष्ठित, सुस्पष्ट, असलकी नकल, कोविदार-सुखी भी किंतु रजत-अक्षरोंवाली, दृदतया आधारित, पर सहज संतुलित नहीं, आठके घंटेकी ओर उसी सामीप्यसे संकेत करती हुई जैसा कि वास्तविक घड़ी पाँचके घंटेकी ओर ! उसने लक्ष्य किया कि इस टाइमपीसका चारका अंक साधारण रोमन संख्यामें अक्षरांकित नहीं था, किंतु चार लम्बाकार समानान्तर रेखाओंमें; तत्पश्चात् आभास छप्त हो गया।

एक चाक्षुष व्यामोह, इन्द्रजाल ! सम्भवतः एक मित्रकी बैठकमें किसी परिचित टाइमपीसका मनो भव प्रतिविग्न गाढ़तथा हग्गोचर हुआ । वस्तुतः, क्या यह परिचितसे कुछ अधिक नहीं था ! निश्चय ही, इसे वह जानता था,—इसे देखा था, स्पष्टतः, हढ़तः—वह कोविदार-मुखी, वह रजताक्षरी, वह हढ़-विभूषित आधार, वह चारके अङ्कतक ! किंतु कहाँ थी यह, कब थी यह ! उसकी स्मृतिमें किसी अद्भुत अन्तरायने भूले, खोये विस्तार, वृत्तान्तोंके लिये व्यर्थ भटकते उसके मनको भौचका कर दिया ।

सहसा घड़ीने, उसकी अपनी घड़ीने पाँच बजाये, उसने यन्त्रवत् परिचित ध्वनियाँ गिनीं; तीव्र, स्पष्ट, एक धातुमयी प्रतिध्वनिसे समन्वित। और तब, कानके अपने विषयसे हटनेके पूर्व, बजने लगी दूसरी घड़ी, तीव्र नहीं; स्पष्ट नहीं, धातुमयी भी नहीं किंतु एक कोमल, सुरीले घंटनादमें और अन्तमें एक संगीतमय झनझनाहट। और टोंकी संख्या थी आठ।

स्टर्ज मेजके सहारे बैठ गया और उसने सहसा अपनी पुस्तक खोली। यदि यह एक मितिविभ्रम था, तो यह सावधानीसे व्यवस्थित और मुअनुष्ठित एक मितिविभ्रम, इन्द्रजाल था। क्या कोई मुपुप्तिजनक छल इसके मिस्तिष्कके साथ खेल रहा है ! क्या वह अपने आपको मुपुप्तिजनक (हिप्नॉटिक) अवस्थामें डाल रहा है ! उसकी हृष्टि पन्नेपर पड़ी पर मध्यवर्ती लैतिन नहीं देखी, किंतु प्राचीन ग्रीक, यद्यपि होमरकालीन छप्पय नहीं। अति मुस्पष्ट था अक्षरन्यास, अति मुबोध आकृत।

'क्योंकि अनश्वर देवतां सदैव पृथ्वीपर घूमते हैं और नश्वरोंके गृहोंके प्रति अनाशांकित आते हैं; किंतु विरल है वह नेत्र जो उन्हें देख पाता और विरलतर है वह मन जो देवताके अभिनय, आकार-गोपनको पहचान सकता है। फिर हिप्नॉटिजम । स्टर्ज जानता था कि पुराने रहस्य-वादी गुद्धवेत्ताके निशाके धुँधुले मौलिक अध्ययन, तत्त्वमें सूक्ष्म, किंतु व्यञ्जनामें विषम, कटोर, अतिकाल, दीर्घसूत्री, आकाररहित, आरम्भसे अन्ततक गृद लैतिनमें प्रति-रुद्ध तथा कहीं भी ग्रीकमें स्फुटित नहीं और न कहीं काव्यमें । फिर भी वहाँ छप्पयसे कुछ अधिक था, वह पढ़ने लगा ।

'और मनुज भी सूर्य-प्रकाशमें छन्न छिप जीते रहते हैं और तू कभी भी उनके जन्मसे उनकी मृत्युतक उस पर्दे, उस छन्नवेशको उठा हुआ नहीं देखेगा। नहीं, तू स्वयं, हे पिलोप! क्या एक बार भी तूने अपने अंदर देवता-को देखा है ?'

तहाँ षट्पदी-चरण (छप्पय) समाप्त हुआ और अगले क्षण अपने नैसर्गिक अक्षरोंसहित भौतिक पन्ना प्रकट हुआ। किंतु मधुर, सुरीले स्पष्ट फिर एक वार उसके श्रवणमें झन- झना उठे छायात्मक मायिक घंटेके टनाद। और फिर घंटोंकी संख्या थी वही आठ।

स्टर्ज मेनार्द उठा और किसी अधिक निश्चित चिह्नकी प्रतीक्षा की। कारण अब उसने अनुमान किया कि कोई असाधारण मनोगत अवस्था, कोई न भूलने योग्य अनुभूति उसपर उतर रही थी । उसकी प्रत्याशाको घोखा नहीं हुआ । फिर एक बार घंटनाद बज उठे, किंतु इस बार उसे प्रतीत हुआ मानो उस पूर्णतः परिचित सुरीले माधुर्यके आवरणके नीचे एक स्त्रीकी वाणी स्टर्जके प्रति सानुराग पुकार रही थी। किंद्र वे दो मायिक ध्वनियाँ इस आंग्ल भूमि और जन्मकी स्मृतियाँ थीं या यह घटना किसी अतीत अस्तित्वमेंसे थी, जिसे उसने घारण किया और फिर त्याग दिया था। ऐसे एक आकार किसी उप्र मुहूर्तकी, घंटेकी याद करनेके लिये एक ऐसे नामको जिसे उसने प्रत्युत्तर दिया था और भूल गया था, स्मरण करनेके लिये, आग्रह और अर्चना करते हुए आमन्त्रित करके उन ध्वनियोंने उसे चुनौती दी। जो कुछ भी यह था, यह उसके समीप था, इसने प्रबलतः उसकी हतः तन्त्रियोंका स्पर्श किया और तत्पश्चात् तत्क्षण आठवें टेका अनुसरण करते वहाँ आया, मानो वहुत दूरसे आवाजका एक अचूक स्फोटन, एक आधुनिक रिवाल्वरकी आवाज।

स्टर्ज मेनार्ड अन्दिका (अँगीटी) के पाससे हट गया और कमरेसे निकल आया। वह सीदियांसे उतरा, अपना टोप और उस^क नाय हो, अपन रक्ख भरे, जेबमें सीढ़ि

HE

अभेक व कहीं वेग न अनुवे था। जबतः हैस्प-मारा खण्डा पैरोंके किया

उसे हे

क् हाक एवं से आक्स प्रिय थें को सूर उसके ये कल्प उसे के सुखद भरपूर अरिष्ट उसकी

दिशामें

और ओवरकोट पहना और घरके द्वारकी ओर चल पड़ा। उसके सामने कोई स्पष्ट विचार नहीं था कि वह कहाँ जायगा या उसे क्या करना चाहिये, किंतु यह जो कुछ भी हो, इसे करना होगा । तव उसे याद आया कि वह अपना रिवाल्वर भूल आया है, जो उसके वस्त्राचानके दराजमें रक्ला था। वह ऊपर गया, शस्त्र-संनद्ध हुआ, उसमें कारतूस भरे, उसे अपनी दाहिनी जेवमें रक्खा, जाँच कर ली कि जेबमें चटकनी खोलनेकी दो अर्गला कुंजी हैं, पुनः सीढ़ियोंसे नीचे उतरा और लन्दनके आर्द्र, गलघोट, अभेद्य, गाड्तम कोहरेमें निकल पड़ा।

वह एक ऐसे जगत्में विचरने लगा, स्मृतिके अतिरिक्त जिसका कहीं कोई अस्तित्व प्रतीत नहीं होता था। वहाँ यातायातका कोई वेग नहीं था। केवल कोई प्रासंगिक गाड़ीवाला भरायी आवाजमें अनुवेला अपने वाहनकी सावधान प्रगतिकी घोषणा करता था । स्टर्ज अपने आगे या चारों ओर कुछ नहीं देख सका,-जबतक वह प्रत्युहके समीप नहीं पहुँच गया और जहाँ एक लैम्प-खम्बेने धुँघलेपनसे उसपर जगमगाने, मुस्करानेको जोर मारा या दूसरे किनारेपर दीवारके एक छायात्मक, प्रेततुल्य खण्डने उसके कोटकी बाँह न झाड़ दी। किंतु वह अपने पैरोंके नीचेकी पगडंडीसे निश्चिन्त था, एवं उसने अनुभव किया कि वह घूमने या मुइनेमें भूल नहीं कर सकता। उसकी इन्द्रियों तथा स्मृतिकी अपेक्षा एक ध्रुवतर पथ-प्रदर्शक उसे ले चला।

स्टर्जने सड़क पार की, हाइड पार्कके फाटकमें घुसा, क्हाबद्धः तिरोहित खुले स्थानके प्रयाणकी एक निश्चित एवं सीधी रेखामें पार किया, मार्बल आर्चसे गुजरा और आक्सफोर्ड स्ट्रीटमें प्रथम बार झिझका। दो महिलाएँ उसे पिय थीं। उनमेंसे किसी एककी भी मृत्यु उसके आधे अस्तित्व-को सूना कर सकतीथी। किसके पास उसे जाना चाहिये? तब उसके मन या मनमें किसीने उसके लिये निर्णय किया। ये कल्पनाएँ निस्सार थीं। अपनी वहन इमोजनके पास जानेका उसे कोई प्रयोजन नहीं । अपने चचाके सुनियुक्त, सुरक्षित, सुखद गृहमें, सरल निरपेक्ष तथा निर्दोषतया सुन्दर वस्तुओंसे भरपूर अपने जीवनकी प्रसन्न पारीमें इमोजनपर कौन सम्भव अरिष्ट घटित हो सकता था ! किंतु रैनी ! रैनी भिन्न थी, उसकी अवस्था भिन्न ! स्टर्जने अपने रास्तेका एक परिचित दिशामें अनुसरण किया । च्यों ही वह चल्तः असकी आर जिसे आहे. Gukku वर्ष समुत को शिल्दों मिन्द्री से अवस्था एक नारी थी । और

स्फरणा हुई कि रैनीने उसे आज आनेको मना किया था। रैनीके अतीत जीवनकी कोई सजीव स्मृति थी जो उसके पास आनेको थी, कोई जिसकी वह स्टर्जसे भेंट कराना नहीं चाहती थी, रैनीने अपनी सामान्य सरल निरपेक्षतासे कहा था, 'तुम मत आना'। स्टर्जने कोई शंका नहीं की थी। जबसे उसकी रैनीसे पहली जान पहचान हुई थी, उसने कभी आशंका नहीं की थी और रैनी व्यूरीगार्डका अतीत एक दैन्य था, उस मनुष्यके लिये भी जिसके प्रति रैनीने सब कुछ समर्पित कर दिया था । अपूर्व वृत्तान्तों, महान् संकटोंके लिये उस दैन्यमें स्थान था। स्टर्जको याद आया कि रैनीका प्रास्थानिक परिरम्भ अपने विभव, उद्रेक और गरिमामें प्रायशः आकर्षक था, उसकी वाणी किसी अनिरूपित, अन्यक्त आवेगसे प्रकम्पशील। अपने अनुरागसे व्याकृत होनेके कारण रैनीके आलिङ्गनपर निरूपण किये विना ही स्टर्ज रैनीकी ॲंकवारकी इस गरिमा एवं उद्रेकसे जानकार था। उसके मनके जिस किसी भागने यह लक्षित किया था। उसने उद्रेकके सम्भव कारणको सामान्यकी सीमाओंमें अटका दिया थाः जैसा कि मनुष्य करनेः असाधारणसे अनजान बने रहनेकी वृत्तिमें रहते हैं जवतक कि वह 'असाघारण' उन्हें लपक नहीं देता और चौंका नहीं देता।

स्टर्ज उस चौकव मकानपर पहुँचा जहाँ रैनी रहती थी, अपनी जेववाली अर्गला-कुंजीसे द्वार खोला, कोट और टोपसे अपनेको हल्का किया और अपने पैरोंको बैठककी ओर आदेश दे दिया। उन्नीस या बीस वर्षीया एक लड्की, शान्त पर विवर्ण, खुळे द्वार-पथको सम्मुखीन किये उठी। कुसींपर उसके हाथका सम्राह, उसके शरीरमें दृढ़, व्यम और उद्यत प्रवृत्ति एक बृहत् भाव और एक गाढ़ प्रत्याशाके स्चक थे। किंतु उसका मुख रक्तवर्ण हो गया, हाथ और अङ्क ढीले पड़ गये, च्यों ही उसने अपने अभ्यागतको देखा। रैनी ब्यूरी-गार्ड दक्षिणकी एक फ्रेंच महिला थी। शरीर-सम्पन्नतामें, शिराल चैतन्य प्राणमें, अपनी वाणी और उत्साहमें समृद्ध । उसके अत्युत्तम पूर्ण अङ्गः, उसकी प्रसन्न चार गति, उसके अरुण अधरोंकी चञ्चलता, उसके सस्मित स्याम सलोने नेत्र जीवनसे, उत्कर्षसे, प्रमोदसे, प्रेमसे विपुल और बहुल माँगें रखते थे। किंतु नेत्रोंकी अजेयतः प्रसन्न ज्योतिमें मँडराती और उनकी सहज व्यञ्जनाको विकृत करती हुई उस क्षण वहाँ एक शोकपद निराशाकी छाया थी। एक अतीता-और इसकी प्रकृति, यदि इसका भाग्य नहीं, एक भविष्यकी माँग करती थी।

'स्टर्ज !' रैनीने द्वारकी ओर एक कदम बढ़ाया । स्टर्ज अँगीठीकी ओर चला और उसने रैनीका हाथ पकड़ लिया ।

थहाँ आनेतक मैं तुम्हारे निषेधको भ्ला रहा । कोहरा छाया हुआ था; तथा लौट जाना निरानन्द था और तुम यहाँ मौजूद थीं!

्तुम्हें . भूलना नहीं चाहिये था !' रैनीने कहा, किंतु वह मुस्करायी, स्टर्जके आगमनसे संतुष्ट, सुप्रसन्न । तत्पश्चात् दुर्बोघ छायाने उन सस्मित नेत्रोंको फिर दबोच लिया । 'और तुम्हें लौट जाना चाहिये । नहीं, अभी नहीं । पाव घंटेमें । तुम चौथाई घंटे टहर सकते हो ।'

रैनीने घड़ीपर नजर डाली थी, स्टर्जके नेत्रोंने रैनीके ऑखोंका अनुसरण किया था। उसने देखी एक कोविदार-मुखी टाइमपीस, रजताक्षरी, दृढ़तः आधारित चारके अङ्कको समानान्तर रेखाओंमें व्यक्त करती हुई; और वह उन विचित्र घोखोंपर मुस्कराया जो उसकी स्मृतिने उसके साथ किये थे। इस समय छः बजकर पाँच मिनट हो गये थे।

भी इमोजनके घर जाऊँगा,' स्टर्जने खूव विचारपूर्वक कहा । रैनीने स्टर्जपर नजर डाली, घड़ीपर नजर डाली, पश्चात् स्टर्जकी ओर झुकती हुई वह भावुकतः पुकार उठी, भीर तुम आठ बजे आओगे और मेरे साथ मोजन करोगे। रहोल दोनोंके लिये दो थालियाँ लगा देगी।' फिर पीछे हट गयी, मानो अपने निमन्त्रणपर पछताती हुई।

आठ बजे ! हाँ, वह रैनीके साथ भोजन करेगा—
अपना काम कर चुकनेके पश्चात् । व्यवस्था ऐसी ही प्रतीत
होती थी,—रैनीकी नहीं, किंतु किसकी ! दैवकी शायद,
अन्तर्वासी या बहिवेतीं देवताकी । कुछ देरतक वे बैठे
बातें करते रहे, पर स्टर्जको यह छगा कि उनका वार्ताछाप
स्परेखामें कभी भी ऐसा सामान्य विषय या भावावेशसे
इतना स्पन्दशीछ नहीं था। छः वजकर बीस मिनटपर वह उठा,
विदाई छी और कोहरेकी ओर चछ पड़ा; किंतु रैनी द्वारतक
उसके साथ आयी, ओवरकोट पहननेमें स्टर्जकी सहायता की
किंतु कोट पहनाते हुए वह स्पष्टतः काँबती रही। स्टर्जके जानेसे
पूर्व रैनीन उसका आछिङ्गन एवं चुम्बन किया, उत्सुकतः
नहीं, किंतु एक दृढ़ स्थिरतासे और मानो किसी नियतिपूर्ण
CC-0. In Public Domain. Gurul

निर्णयसे जो उस क्षण रैनीके हृदयमें निरूपित किया गया था, और जिसे इसने अपने प्यारमें प्रकट किया था।

'आठ बजे मैं लौट आऊँगा'—स्टर्जने शान्ततः कहा। उसने रैनीकी ॲंकवार स्वीकार की थी, किंतु उसके आलिङ्गन-का प्रत्युत्तर नहीं दिया था।

आठ बजे ! हाँ, और पहले ! किंतु उसने वह सब रैनीसे नहीं कहा । वह कोहरेसे होकर अपने चचाके परकी ओर झुमता चला। एक हल्के, खच्छ और निरपेक्ष मनसे, किंतु अपने हृदयमें एक गाढ़ शान्ततासहित । वह यथा-स्थान पहुँचा, एक अतीव कुलीन अधिवासमें और एक गम्भीरवदन द्वारपालद्वारा आमन्त्रित हुआ । सर 'जान' घरसे बाहर गये हुए थे, किंतु कुमारी इमोजन मेनार्द क्रपर थी । अगला घंटा स्टर्जने पर्याप्त सुख-शान्तिसे अनायास बिताया; कारण, अपनी बहनके प्रात्याहिक आकर्षक, आपसी वार्तालापमें, राजनीति एवं शिष्टतः उपन्यस्त आक्षेपके एक भावसे विपर्यस्त जीवनके तलपर, प्रमोदों एवं नाटकवरी, पस्तकों, संगीत, चित्रकलापर निष्कारण चर्चा करते, उसके हृदयने भी क्रमशः अपना तनाव खो दिया और वह साधारण अवस्थामें फिर फिसल गया । अन्तर्वासीको बहिर्वर्तीमें भूलकर अगला एक ंटा और कहीं अधिक। यह इमोजन मेनार्द थी जो उठी और बोली, 'स्टर्ज ! आठ बजनेमें दस मिनट । मुझे भोजन बनाना है, क्या निश्चय ही तुम भोजन नहीं करोगे १

स्टर्ज मेनार्दने घड़ीपर नजर डाली और उसका हृदय बैठ गया। उसने अपनी बहनसे जल्दी विदा ली, सीढ़ियोंसे नीचे उतरा, अपना कोट और टोप लपका और ओवरकोट चलते-चलते पहनता कोहरेमें निकल पड़ा। उसने रिवाल्वर और अर्गला—कुंजियोंको सँभाल लिया, फिर लगायी दौड़। उसे बड़ा भय यह था कि वह जल्दवाजीमें कहीं सुड़ना भूल न जाये और घंटा बजनेके बाद पहुँचे। किंतु चूकना किन था, उस आध मीलके खुले स्थानको! और दैव ! क्या वह केवल भविष्यवाणीका एक आत्मा था! क्या उसने रक्षा करनेके लिये साक्षात् नहीं किया था!

वह रैनीके चौककी ओर मुझ और, न्योंही उसने घरकी ओर डग भरे और सीढ़ियोंपर चढ़ा, उसका उद्देग मिट गया तथा समनाडी-स्पन्द एवं अक्षुब्घ धमनीसे वह बैठकके द्वारकी ओर मुझा। उसने टोप एक ओर डाल दिया किंड कोटसे

संस्था

रिवाल्व इ

जापानं ठिठक किंत दोनों स्टर्जवे उसके पीली, भारस हुई था विं डाली हैं ॲगुल बजने डाली भी है

> है, इ अभि मतः तुम्हें

नाम निषेध शोक

सरो एक चाह

संकर गुप्तः शरी कोटसे छुटकारा नहीं लिया। उसका हाथ जेवमें या और रिवास्वरका कुन्दा हाथमें।

द्वार खुंला हुआ था और असामान्य अवस्था रूप, जापानी जवनिकासे ढका हुआ । वह जवनिकाके सिरेपर ठिठका और कमरेमें दृष्टि डाली जो अतीव निःशब्द था, किंत सूना नहीं - कारण अँगीठीके सामने बिछे नमदेके दोनों किनारोंपर खड़े थे रैनी ब्यूरीगार्ड और एक मनुष्य स्टर्जिक लिये अज्ञात-वह रैनीकी ओर देख रहा था मानो उसके कथनकी प्रतीक्षा करता हो; रैनी शान्त, विवर्ण, पीली, मौनमें हड, निज नेत्रोंमें अपने अतीतके भारी भारसहित । आगन्तुककी पीठ स्टर्जकी ओर आधी घुमी हुई थी और उसकी मुखाकृतिका केवल एक भाग हग्गोचर था किंतु आंग्ल देशवासी स्टर्जने च्यों ही आगन्तुकपर दृष्टि डाली वह घुणासे काँप उठा । क्या यही है जो मुझे करना है ! स्टर्जने रिवाल्वर निकाल लिया और घोड़ेपर अपनी अँगुली रख दी । पश्चात् उसने घड़ीपर दृष्टि डाली,—घंटा बजनेमें चार सिनट शेष थे; और फिर आगन्तकपर दृष्टि डाली, - उसके हाथमें भी रिवाल्वर था और उसकी अँगुली भी घोड़ेपर टिकी थी। स्टर्ज मेनार्द मुस्कराया।

पश्चात् उस मनुष्यकी आवाज सुनायी दी, 'तब यह होना है, इदाली । आगन्तुकने एक क्षीण, विकट, शोकप्रद अभियोगमें कहा । 'तमने निर्णय कर लिया । कोई द्वेषभाव मत रक्खो । तुम जानती हो यह रोका नहीं जा सकता । तुम्हें भरना है।

स्टर्जको स्मरण हो आया कि इदाली रैनीका दूसरा नाम था, किंतु रैनीने इस नामका प्रयोग करनेसे उसे सदैव निषेध किया था। क्षीण वाणी चालू रही, इस बार अपनी शोकप्रदतामें विचित्र उत्तेजनाकी एक व्याख्यासहित ।

'और यह सब तुम मुझपर डालती हो ! इससे क्या सरोकार कि मैंने तुम्हें कैसे पाया, तत्पश्चात् मैंने क्या किया ! एक प्रेमीके लिये सब कुछ अनुमत है । और मैं तुम्हें चाहता था इदाली ! प्रेमके साथ खिलवाड़ करना संकटमय है। इसे अब तुम जान गयीं।

स्टर्जने उस मनुष्यपर दृष्टि डाली । रैनीके लिये कोई संकट नहीं था, किंतु महान् संकट इस कठोर, क्षीण-वाणी, गुप्तवातीके लिये, इस मनुष्यके लिये जिससे स्टर्ज अपने शरीरकी प्रत्येक मांसपेशीसे, अपने मस्तिष्कके प्रत्येक घटकसे हुआ होता ।' CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

घूणा करता था । स्टर्जको लगा कि उसका प्रत्येक अङ्ग नरहत्याके उत्साहसे, वध करनेके जित्वर भावसे प्रवृद्ध एवं स्पन्दित हो गया है। बाहर कोहरा था, कैसा कोहरा ? कि वह सरलतया शवको ठिकाने लगा सकता था। वस्तुतः यह एक अच्छी व्यवस्था थी । कभी-कभी भगवान कार्योंको बड़ी कुशलतासे करता है। तथैव स्टर्ज अवनी कल्पनाकी रौद्रतापर अंदर-ही-अंदर हँसा । तथापि किसी प्रकार उसे इसपर विश्वास था । भगवानका कार्य, उसका अपना नहीं । तथापि उसका भी पूर्व-निर्दिष्ट-कवसे ? किंत्र नियतिबद्ध वाणी जारी थी-- 'इदाली ! फिर भी मैं तुम्हें एक मौका देता हूँ,--हमेशा, सदैव एक अवसर । मेरे साथ चलोगी ! तुम मेरे प्रति बेवफ़ा रहीं, अपने शरीरसे वेवफ़ा, अपने हृदयसे बेवफा ! किंतु मैं क्षमा कर दुँगा । मैंने तुम्हारे भाग आनेको क्षमा कर दिया, मैं यह भी क्षमा कर दूँगा इदाली ! मेरे साथ चलो । और यदि नहीं—रैनी इदाली मावीरेन ! आठ बजनेवाले हैं और जब घंट बज चुकेगा, मैं रिवाल्वर दाग दुँगा । यह भगवान् है जो तुम्हें मेरे हाथसे श्चट करेगा, न्यायका देवता, प्रेमका देवता, इन दोको तुमने व्यथित किया है। चलोगी !'

रैनीने निषेधात्मक अपना सिर हिला दिया । एक प्राणान्तक पीलापन उस मनुष्यपर छा गया । 'तब निर्णय समाप्त,'-वह चिल्लाया, 'तुमने निश्चय कर लिया। तुम्हें मरना होगा ।' आगन्तुकने रैनीपर पिस्तौलका निशाना साधा और उसकी अँगुली घोड़ेपर जुट गयी। स्टर्ज अचल रहा । घंटा वजनेसे पूर्व कुछ विटत नहीं हो सकता था। निर्दिष्ट मुहूर्त वही था और नियतिको कोई भी एक पल नहीं टाल सकता था । आगन्तुक कहने लगा--- 'घंटा वजने-तक ऐसा मत कही ! तबतक समय है । जब मैं तुम्हें शूट करूँगा, रहोल ऊपर दौड़ आयेगी और मैं उसे भी सूट कर द्गा, मैंने द्वार खुला छोड़ दिया है कि वह आवाज सुन ले। इंगलैंडमें क्रीन दूसरा जानता है कि में जिंदा हूँ ? मैं वाहर निकल जाऊँगा-अोह, जब तुम दोनों मर चुकोगी, उससे पहले नहीं। वहाँ कोहरा है, कोई प्राणी बाहर नहीं और में खूब खामोशीसे चला जाऊँगा। कोई देखेगा नहीं, कोई सुनेगा नहीं । भगवान्ने अपने कोहरेसे दुनियाको अंधा और बहरा कर दिया है। तुम देखती हो यह 'वह' ही है अन्यथा यह मेरे लिये इस प्रकार पूर्णतया व्यवस्थित न

नियति-बद्ध मनुष्य घड़ीको देख रहा था, रैनीको नहीं, पीठ पीछेसे होनेवाले किसी सम्भव संकटकी ओर और भी कम। ज्यों ही आठवीं सुरीली झनझनाहट समाप्त हुई, उसने ऊपर देखा और स्टर्जने क्षुद्र, हट, कूर नेत्र एक श्वापदके नेत्रोंके समान चमकते देखे। उस मनुष्यने अपनी अँगुली घोड़े-पर दबायी।

'घंटा बज चुका', । वह मनुष्य चिल्लाया, और ब्यों ही वह बोला स्टर्ज मेनार्दने पिस्तोल दाग दी। कमरा आवाजसे गूँज उठा, धुएँसे भर गया। जब धुआँ साफ हो गया, आगन्तुक नमदेपर प्रणत पड़ा दिखायी दिया, उसका सिर रैनीके चरणोंपर पड़ा था, जिसे उस आगन्तुकने वध्य निर्णीत किया था।

रास्तेकी सीढ़ियोंपर दौड़नेकी आवाज आयी और नौकरानी रशेलने अंदर प्रवेश किया—जैसा कि वहाँ पड़े उस आगन्तुकने अप्रनिरूपण किया था। जब वह आयी, वह काँप रही थी, किंतु उसने उस मनुष्यको नमदेपर देखा, ठिठकी, अपनेको व्यवस्थित किया, और मुस्करायी। 'हमें तुरंत कोहरेमें इसे बाहर हे जाना चाहिये,' फ्रेंचमें मात्र उसने इतना कहा। समकालिक प्रवृत्तिमें दोनों, रशेल और स्टर्ज, शवके समीप पहुँचे। तब रैनी, उत्तेजित आवेगमें आकर, स्टर्जकी ओर दौड़ी और उसके कंघोंपर अपना हाथ रखकर मानो उसे कमरेसे बाहर घकेलनेकी उसने चेष्टा की।

'मैं उसकी देखभाल कर लूँगी!' रैनी गिड़गिड़ायी, 'तुम जाओ'। स्टर्ज रैनीकी ओर मुस्कराता हुआ मुड़ा। 'तुम्हें तुरंत चले जाना चाहिये,' रैनीने दोहराया, 'मेरी खातिर इस घरमें मत रहो। रशेलके अतिरिक्त दूसरोंने भी पिस्तौलकी आवाज मुनी होगी।'

किंतु स्टर्जने उसकी कलाई पकड़ी, अँगीठीके पाससे उसे हटा ले गया और एक कुर्सीपर बैठा दिया।

'इम समय गँवा रहे हैं,' रशेलने फिर कहा।

था । किंतु इसके नेत्रोंमें दिया, 'हम भाग्यको दस मिनट देंगे। तथैव नौकरानीने धिनामें, निज सूचना, सिर हिलाकर अनुमोदन किया और शवके पास पहुँचकर के लिये एक पुकार थी, अपने गमछेसे जख्मको यथाविधि दबाने लगी। स्टर्ज और CC-0. In Public Domain. Guruklik स्तिकिशिट्यास्सालकाते रहे, यदि किसीने पिस्ती कि

घोर रौद्रतया स्टर्ज मेनार्द मुस्कराया। जो एक दूसरेसे घृणा करते थे, वे मनुष्य, ऐसा प्रतीत हुआ अनुगुण अन्तः-करणवाले थे। शायद यही कारण था वे टकराये। अच्छा, यदि यह भगवान् था, तो वह शोकमय कलाकार भी और नाटकीय व्याजोक्तिका काव्यमय निष्पादन जानता था ! सब कुछ इस आदमीने गिन लिया या अपनी करतूतके लिये व्यवस्थित कर लिया था और उसकी क्षमता उसके अपने हत्यारेके लिये सहायक हो गयी थी या होगी ! तब स्टर्जको चेतना हुई कि यह सब पहले घटित हो चुका था। किंतु यहाँ नहीं, इस आंग्लपरिसरस्थ अधिवासमें नहीं! शाद्धलका एक विशाल घन्ना घड़ीको धुँघलाता-छुपाता उसके नेत्रोंके समक्ष आया । तत्पश्चात् यह उसपर छा गया-हरी घास, हरे वृक्ष, हरकाई दकी चट्टानें; एक हरा समुद्र और शाद्वलपर एक मनुष्य अघोमुख, पीठमें छुरेसे घायल, उसके ऊपर उसका घातक, कृपाण आर्द-रक्तरंजित । एक तरी तरंगोंपर डोलती थी; घातकके पलायनके लिये वह विन्यस्त की गयी थी और इसमें बँधी पड़ी थी एक नारी। स्टर्ज उन विचित्र चेहरोंको खूब जानता था और उसे याद आया कि वह कैसे शाद्बलपर मुर्दा पड़ा रहा था। मध्यदेशीय, भूवेष्टित वृक्षोंकी हरकाईसे दिखायी देती नियति-पूर्ण आधुनिक कोविदार-मुखी टाइमपीस सहित इस बैठकखानेमें यह सब फिर देखना आश्चर्य था ! किंतु इस बार विल्कुल भिन्न रूपमें यह समाप्त होने जा रहा था।

तब रैनीकी वाणी गूँज उठी; उदासीन, दृढ़, तीक, लोहेकी झंकार-तुल्य । भौं नहीं जाऊँगी, इतना मात्र उसने कहा । और घंटा बज उठा । एक बार बजा, दूसरी बार बजा, चार बार । और तब रैनीने अपने नेत्र उठाये तथा स्टर्ज मेनार्दको जवनिकाके किनारेसे आगे चलते देखा । स्टर्ज एक अच्छा निशानची था और उसके निशाना चूकने तथा रैनीको मारनेकी कोई सम्भावना नहीं थी । किंतु उसे शंका-सम्भावना दूर करनी थी !

रैनीने अपनी गाढ़तामें एक अद्भुत आत्म संयम बटोर लिया था और यह अब भंग नहीं हुआ। रैनी न हिली और न एक शब्द उच्चारण किया। किंतु इसके नेत्रोंमें एक आभा आयी, तीव्र निज प्रार्थनामें, निज सुचना, सुझावमें कराल! कारण यह जीवनके लिये एक पुकार थी, इनन करनेको एक आदेश।

सं =

अ

हम स्ट जर्म मनु

चौ कम

मान

रैनी पहले भोज

लाश हम और उसवे करने

पास वृत्ताः लाया आवाज मुन ली हो और वह उनपर आ टूटे तो उसको विवरण देनेके लिये स्टर्ज अपने मनमें वयान व्यवस्थित करता रहा । किंतु मौन और कोहरा घरके चारों ओर अड़ा था।

उन्होंने श्वनको उठा लिया। 'यदि कोई देख ले, तो हम कहेंगे कि हम एक पियक्कड़को घर ले जा रहे हैं,' स्टर्जने कहा। 'इसे सावधानीसे ले चलो; लहूकी कोई बूँद जमीनपर न गिरे।' अतएव उस 'आंग्ल' कोहरेमें वे उस मनुष्यको बाहर ले गये जो विदेशसे जीवित आया था और उसे आमरास्तेपर लेटा दिया उस मकान और उस चौकसे बहुत दूर, जहाँ वह समाप्त हुआ था। जब वे कमरेपर वापस आये, रहोलने लहू-सना नमदा और गमछा ले लिया जो इस कृत्यके, जो किया जा चुका था, मात्र साक्षी थे।

'मैं इन्हें नष्ट दर दूँगी,' नौकरानीने कहा, 'और रैनीके कमरेसे दूसरा नमदा ले आऊँगी। और तब,' पहलेकी तरह वह सामान्यतः बोली, 'स्टर्ज और रैनी भोजन करेंगे।'

रैनी थरथराई और स्टर्जकी ओर देख़ा । 'जबतक लाशका पता लगे,' स्टर्ज बोला, मैं यहाँ रहूँगा । आजसे हम दोनों सदाके लिये और मुद्ददतया बँघ गये इदाली ! और जैसे ही स्टर्जने अनभ्यस्त नामपर घीरेसे जोर दिया, उसके नेत्रोंमें एक आभा दिखायी पड़ी, जिसका विरोध करनेका साहस रैनी नहीं कर सकी ।

उस रात्रि, जब रैनी अपने कमरेमें चली गयी, अन्दिकाके पास बैठे स्टर्जने स्मरण किया कि उसने रैनीसे वह विचित्र वृत्तान्त नहीं कहा था जो आज एक शोकप्रद अवस्था लाया था और दूसरीको रोक दिया था। जब वह रैनीके कमरेमें गया, वह उसके पास आयी और आवेशमें उससे चिपट गयी।

'अहो, स्टर्ज स्टर्ज !' रैनी पुकार उठी। 'सोचो यदि अकस्मात् तुम न आ गये होते, तो तुमसे, भगवान्के सुन्दर संसारसे छीनी जाकर, अब मैं सुदा होती।'

अकस्मात् ! अकस्मात् नामकी कोई वस्त इस सृष्टिमं नहीं है—स्टर्जने विचार किया । तब किसने दी थी उसे बह रहस्यमयी चेतावनी ! किसने उसके हाथमें रिवाल्बर थमा दी थी ! या किसने उसे हत्या-कार्यपर मेजा था ! ठीक समयपर किसने इमोजनको वार्तालापसे उठा दिया था ! बैठकखानेमें किसने पिस्तौल दाग दी थी ! अन्तर्वासी भगवान्ने ! वहिर्वर्ती भगवान्ने ! प्राच्योंने मनुष्यमें भगवान्की चर्चा की है, अवस्य यह वही है । और तत्यश्चात् लौट आये उसकी स्मृतिमें वे भीषण भाव, घृणा, जो उसमें उवल उठी थी, आवेग और हत्याका आह्वाद, उल्लासका वह गीत जिसे उसके रक्तने अब भी उसकी धमनियोंमें गुनगुनाया; क्योंकि एक मनुष्य जो जीवित रहा था, मृत था और जीवनके प्रति पुनः नहीं लौट सकता था । रैनीके नेत्रोंका आदेश भी उसने याद किया । मनुष्यमें भगवान् ! तब क्या भगवान मनुष्यमें एक हत्यारा है ! उसमें ! और रैनीमें !

'ऐसा सोचना अति ही वारीकीसे खोज करना है,' उसने परिणाम निकाला, 'किंतु अवश्य ही बड़ी विचित्रतासे उसने अपना जगत् बनाया है।'

तत्पश्चात् स्टर्जने रैनीसे जर्मन-गृह्यवेत्ताके सम्बन्धमें तथा मायिक टेकी झंकारके सम्बन्धमें कहा जो दोनोंकी नियतियोंके उस शोकप्रद क्षणमें उसे रैनीके पास ले आयी थी। और जब उसने अन्तर्वासी देवताकी चर्चा की, पुरुषकी अपेक्षा नारी बेहतर समझी।

साँसोंकी कीमत

(रचियता—प्रा॰ श्रीरामेश्वरदयाङ्जी दुवे एम्॰ ए॰)

साँस किराया दे रहता त्, यह मकान कब तेरा ? जहाँ जमाकर बैठा फिर क्यों, डाल अहंका डेरा ? चुकी साँस तो मधुर बाँसुरी बाँसमात्र रह जाती। गायक बिना, गीतकी लहरी समा शून्यमें जाती॥ आती-जाती साँसोंपर भी कब सत्ता है तेरी? कञ्चन काया धूल चूमती लगती कब है देरी? एक पात्रकी लिये भूमिका विश्व-मञ्चपर आया। अभिनयतक तेरी सीमा है स्त्रधारकी माया॥ हँसे हर्षमें, रो पीड़ामें उसमें कैसी वीहा शबस, इतना मत भूल कि यह है एक कौतुकी कीहा॥ सेल खेल, पर गाफिल मत बन, तुझे दूर है जाना। कर वस्ल कीमत साँसोंकी, पड़े नहीं पछताना॥

हृदय और जीवन

(लेखक--श्रीज्वालाप्रसादजी ग्रुप्त, एस्० ए०, एल्० टी०)

यह अक्षरशः सत्य है कि जिसका मन ा हृदय जैसा होता है, वैसा ही उसका जीवन होता है। वास्तवमें विचार साँचा है और जीवन गीली मिडी। हम जैसे विचारोंमें ड्रवे रहते हैं, हमारा जीवन उसी सोंचेमें ढल जाता है। जिस प्रकार बीजसे वृक्ष, वृक्षसे फूल और फूलसे फल होता है, उसी प्रकार हृदयके विचाररूपी वृक्षमें कार्यरूपी फल लगते हैं। जैसे कोई निर्झर किसी छिपे सोतेसे निकल पड़ता है, वैसे ही मनुष्यका जीवन हृदयके गुप्त स्थानोंसे प्रकट होता है; क्योंकि हृदयजनित विचार अन्तमें शब्द, कार्य और मनोरथोंके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। मनुष्यके गुण, कर्म और स्वभाव-सवकी उत्पत्ति हृदयसे ही है। भविष्यमें वह जैसा कुछ होगा, जो कुछ करेगा—सबका जन्म-स्थान हृदय ही होगा । मुख और दु:ख, हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, प्रेम और घुणा, ज्ञान और अज्ञान-सवका वास-स्थान हृदय ही है। ये सब मानसिक अवस्थाएँ हैं। शरीर, परिस्थितियाँ, संसार इमारे हृदयके विचारोंके आधारपर वनते हैं । उनका रूप इमारे विश्वासके अनुरूप होता है । मनुष्य अपने हृदयका रक्षक, मनका पहरेदार तथा जीवन-कोटका अकेला संतरी है-चाहे वह अपने इस कार्यमें सावधान रहे अथवा असावधान । वह ध्यानपूर्वक यत्नके साथ अपने चित्तकी देख-रेख कर सकता है तथा उसे शुद्ध बना सकता है अथवा खयं अपनेको बुरे विचारोंमें लिप्तकर अपना जीवन कलुपित कर सकता है। पहला ज्ञान और आनन्दका मार्ग होगा और दूसरा अज्ञान तथा कष्टका ।

अतः यह बात यदि ठीक समझमें आ जाय कि जीवनकी उत्पत्ति पूर्णरूपसे हृदयसे होती है तो मनुष्य अपना जीवन आनन्दमय बनाकर सच्चा ज्ञान और शान्ति तथा अन्तमें मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर सकता है; क्योंकि वह उन्हीं विचारों तथा कार्यरूपी पगडंडियोंपर हृदतासे चलना पसंद करेगा जो सब प्रकारसे उत्तम हैं। वह सदैव इस बातके लिये प्रयत्वशील रहेगा कि अपने मनको वशमें रक्खे और इच्छानुसार सुमार्गपर ले जाय।

मनुष्य विचारशील प्राणी है और मनकी समस्त शक्तियाँ (भ्रमात्मक तथा सत्यात्मक) रखता है। उसकी अभिरुचि असीम है। वह अनुभवद्वारा सीखता है और निज अनुभवको घटा-बढ़ा सकता है। वह किसी बातने बाध्य नहीं है; किंतु उसने खयं अपनेको बहुत-सी बातोंसे बाँध रक्खा है। जिस प्रकार वह अपनेको बाँध सकता है, उसी प्रकार वह अपनेको जब चाहे छुड़ा भी सकता है। वह अपने इच्छानुसार कछंकित या निर्दोष, निम्न या उच्च, अज्ञ या विज्ञ वन सकता है। वह बार-बारके अभ्याससे नयी आदतें प्रहण कर सकता है। और फिर उन्हें निज प्रयत्नसे छोड़ भी सकता है। वह अपने-को भ्रममें डाल सकता है, यहाँतक कि सत्यताका लेशमान भी शेष न रहे और वह एक-एक करके उन भ्रमोंको निर्मूल कर सकता है और पुनः सत्यताको पूर्णरूपसे प्राप्त कर सकता है। उसकी सम्भावनाएँ अपरिमित हैं। उसे पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह अपने मनका पूर्ण राजा है।

आन्तरिक विचार चरित्र और जीवनको बनाते हैं, अर्थात विचारोंहीपर चरित्र और जीवन अवलम्बित है और मनुष्य उनमें निज विचारशक्ति और प्रयत्नद्वारा संशोधन और परिवर्तन कर सकता है। आदतकी बेड़ी, क्लीवता एवं पापके बन्धन स्वनिर्मित होते हैं और अपने ही द्वारा ये नष्ट किये जा सकते हैं। वे मनके सिवा और कहीं नहीं होते, मन ही उनका निवास-स्थान है और यद्यपि प्रत्यक्षमें उनका सम्बन्ध बाह्य पदार्थोंसे है, तथापि वस्तुतः ऐसा नहीं है। बहिरङ्ग अन्तरङ्गके सहश होता है और अन्तरङ्गमें ही उसे जीवन-दान मिलता है। उदाहरणार्थ--लालच किसी बाह्य पदार्थसे पैदा नहीं होता; किंतु उस पदार्थके प्राप्त करनेकी मानसिक चाहसे उत्पन्न होता है। ऐसे ही दुःख और शोककी उत्पत्ति बाह्य वस्तुओं और जीवनघटनाओंसे नहीं होती, परंतु उन वस्तुओं और घटनाओंकी ओर मनकी प्रवृत्तिका निग्रह त करनेके कारण होती है। वह मन जो पवित्रताद्वारा शिक्षित और श्चानद्वारा दृढ़ होता है, उन लालसाओं और इच्छाओंको, जिनका दुःखसे अटूट साथ है - अपनेसे दूर रखता है और इसीलिये वह शान और शान्ति प्राप्त कर हेता है।

ध

अ

बर

मुर

ब्र

की

व्यव

नई

वार

सह

दूसरोंको बुरा समझकर उन्हें घृणित दृष्टिसे देखनेसे और वाह्य दशाओंको अनिष्टकर मानकर उन्हें बुरा वतानेसे संसारका क्लेश और व्याकुलता बढ़ती ही है, घटती नहीं। विहरङ्ग अन्तरङ्गकी केवल प्रतिच्छाया और प्रभाव है और जब हृदय पुनीत तथा शुद्ध होता है, तब सभी बाहरी बातें शुद्ध हो जाती हैं। समस्त उन्नति और जागतिका क्रम भीतरें बाहरकी ओर होता है और समस्त क्षय और मृत्युका बाहरें बाहरें साहरकी ओर होता है और समस्त क्षय और मृत्युका बाहरें

भीतरकी ओर—यह सर्वव्यापक नियम है। समस्त वृद्धि और विकास अंदरसे होते हैं। समस्त संयोजन और वियोजनका अंदरसे ही होना उचित है। जतः हम इस निष्कर्षपर पहुँचे कि मनुष्यके जीवनका स्रोत उसका हृदय, उसका मन है। उसने अपना मन अपने ही विचारों और कार्योंसे तैयार किया है। उसे नवीन विचारोंद्वारा पुनः बदलनेका उसे अधिकार है। परंतु यह कैंसे हो सकता है—इसपर अब इम विचार करेंगे।

संस्था १२

य

Ţ

में

I

से

तं

हम देखते हैं कि जब कोई माव चित्तमें उहर जाता है और वह बार-बार दुहराया जाता है, तो एक नयी आदत बन जाती है। उदासीनता तथा आनन्द, कोध तथा शान्ति, लोभ तथा उदारता—वस्तुतः समस्त मानसिक वृत्तियाँ—अपनी रुचिसे प्रहण की हुई आदतें हैं। जो विचार मनमें निरन्तर दुहराया जाता है, अन्तमें वह दृढ़ आदतका रूप धारण कर लेता है, और ये ही आदतें जीवनके खोत हैं—जीवनकी उत्पत्ति इन्हींसे है। आरम्भमें जिस विचारको प्रहण करना और उसपर स्थिर रहना बड़ा कठिन होता है, अन्तमें वही विचार मनमें निरन्तर घूमनेसे प्राकृतिक तथा स्वाभाविक वृत्ति वन जाता है और चरित्रका सहज अङ्ग हो जाता है। परंतु अपनी आदतों और वृत्तियोंको बनाने और बदलनेकी मनमें जो शक्ति है, वही मनुष्यको इन्द्रियोंके वशसे मुक्तकर पूर्णस्वतन्त्रताका पथ दिखलाती है; क्योंकि जैसे मनुष्यमें दुरी लत पकड़नेकी क्षमता है, वैसे ही अच्छे लक्षण सीखनेकी भी है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्यके लिये भलाई करने-की अपेक्षा बुराई करना सहज होता है। यह मत सर्वमान्य है। लोग इसे एक स्वयंसिद्ध बात समझते हैं। परंतु मनमें अच्छे विचार लाने और अच्छे काम करनेके लिये अम्यास और निरन्तर उद्योग करनेपर अन्तमें एक समय वह आता है। जब अच्छे विचार और कार्य करना स्वाभाविक और सरल हो जाता है और बुरे कार्य करना कठिन और सर्वथा दुस्तर।

जैसे कारीगर जिस अभ्याससे कुछ दिनोंगें अपने व्यवसायमें दक्ष हो जाता है, वैसे ही मनुष्य भी निज अभ्याससे खुजनतामें प्रवीण वन सकता है। यह कार्य कुछ किन नहीं है। केयल उसे अपने विचारोंको ग्रुद्ध और उत्तम वनानेकी आवश्यकता है। लोगोंके लिये पाप करना सरल और स्वाभाविक है; क्योंकि उन्होंने किसी बुरे कामको वार-वार करके ज्ञानहीन विचारोंकी आदत डाल ली है। सहसों मनुष्योंके लिये कोध और अधीरता स्वाभाविक और

सरल है; स्वाहित्वे ऐसे विचारोंको और कार्योंक महर्म बार-बार स्थान को है है पूर अल्डेक बार दुइहानेंसे यह आदत और अधिक हु तथा सिन्धि है जाती है। इसी-प्रकार शान्ति और धैर्य-गुण भी स्वाभाविक बनाये जा सकते हैं। प्रथम शान्ति तथा धैर्यमुक्त विचार मनमें छाने और फिर उसे निरन्तर मनमें धुमानेसे और उसीमें प्रवृत्त हो जानेसे वैसा ही स्वभाव हो जाता है। इस प्रकार शान्त रहने और धैर्य धरनेकी आदत पड़ जायगी और क्रोध तथा अधीरता सदाके छिये विदा हो जायँगी। इस तरह सभी खोटे विचार मनसे निकाले जा सकते हैं; अशुभ कमसे छुटकारा मिल सकता है और पापपर विजय प्राप्त हो सकती है।

अतः यह वात भछीभाँति प्रकट हो गयी कि जीवनमें मन ही एव कुछ है और वह उन आदतोंका समूह है, जिन्हें मनुष्य धीरे-धीरे यलपूर्वक अपने इच्छानुसार ग्रहण करता तथा सुधार सकता है और जिनपर वह अपना पूर्ण प्रभाव और अधिकार जमा सकता है। ये वार्ते च्यों ही मनुष्यके चित्तमें बैठ गर्यों कि मानो उसे स्वतन्त्रताके द्वारकी कुंजी मिल गयी।

परंतु जीवनकी विपदाओंसे (जो कि मानिक विकार हैं) छुटकारा पानेके लिये भीतरसे कमदाः उन्नतिकी आवश्यकता है। यह कार्य कुछ ऐसा तो है ही नहीं, जो बाहरसे सहसा कर लिया जाय। प्रतिषंटे और प्रतिदिन मनमें निर्दोष, ग्रुद्ध और श्रेष्ठ विचार लानेकी और उन अवस्थाओंमें, जिनमें मूल और श्लोमकी सम्भावना हो, यथार्थ और शान्तियुक्त भाव धारण करनेकी आदत डालनी चाहिये। जिस प्रकार धीर शिल्मकार पत्थरके एक-एक दुकड़ेको वड़े अध्यवसायके साथ काट-छाँटकर ठीक करता है, उसी प्रकार उस मनुष्यको जो निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करना चाहता है—अपने मनके अनगढ़ विचारोंको ठीक करना चाहिये, जवतक कि वह अपने पवित्र आदर्शको सिद्ध न कर ले।

इस प्रकार श्रेष्ठ मनोरथ रखते हुए मनुष्यको सबसे निम्न और सरल सीहियोंसे आरम्भ करना और क्रमशः उच्च और किन श्रेणियोंपर चढ़ना आवश्यक है। इस प्रकार क्रमशः बृद्धि, विकास और उन्नतिका यह नियम जीवनके प्रत्येक विभाग और प्रत्येक मानत्री घटनापर घटता है और जहाँपर इसका उल्लञ्चन होता है, वहाँ पूरी असफलता होती है। विद्या प्राप्त करनेमें, कोई व्यापार सीखनेमें अथवा कोई व्यवसाय करनेमें सभी लोग इस नियमको अङ्गीकार करते और पूर्णारूपसे इसका पालन करते हैं। उसी प्रकार सत्यकी

जिशासा, जीवनके यथार्थ आचरण और शानपर चलनेमें भी इस नियमका पालन अनिवार्य है। प्रथम इसके कि गृढ़ बार्ते जानी जा सकें, घरेलू तथा साधारण सामाजिक गुणोंकी छोटी बातोंमें पूर्ण प्रवीणता प्राप्त कर लेना और उन्हें समझ लेना चाहिये । परंतु संसारकी साधारण-से-साधारण बातोंमें भी अभ्यास ज्ञानका अगुआ है और आत्मिक वातोंमें तथा उच्चतर जीवन व्यतीत करनेमें तो यह नियम अक्षरशः सत्य ठहरता है। धर्माचरण करनेहीसे धर्मकी पहचान आ सकती है और धर्मके अनुष्ठानोंमें प्रवीणता प्राप्त कर लेनेहीसे सत्यका शान हो सकता है और वही सचा ज्ञान भी है, जिसमें जीवन मनसा-वाचा-कर्मणा उच्चतर वनाया जा सके । अस्तु, प्रतिदिन और प्रतिष्टं भलाईका अभ्यास करनेहीसे आरम्भमें सरल फिर उनसे कठिन वातोंपर सत्यका ज्ञान हो सकता है । जैसे बालक अपने निरन्तरके अभ्यास और उद्योगसे समस्त असफलताओं और कठिनाइयोंको पार करता हुआ अपने पाठोंको धेर्य और साहसपूर्वक याद करता है, वैसे ही सत्यका जिज्ञासु, विष्नोंसे न डरता हुआ और कठिनाइयोंसे दृढ़ बनता हुआ अपने कार्यमें भलीभाँति लगता है और न्यों-च्यों वह पुण्य उपार्जन करता जाता है, त्यों-त्यों उसका मन सत्यके ज्ञानसे उद्भभासित होता जाता है। यह वह ज्ञान है, जिसमें वह सुरक्षित रहकर विश्राम कर सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि वह व्यक्ति जिसे अपने मन-को ठीक करने और अपने हृदयको, उस हृदयको जो कि जीवनमें समस्त आचार, व्यवहारका स्रोत तथा भाण्डार है—पवित्र बनानेकी अभिलाषा है। किस प्रकार जीवनके अज्ञान और विकारोंको नष्ट करके ज्ञानरूपी बल संचित करके अपना जीवन पवित्र और उच्चतर बनाये। इस सम्बन्धमें प्रारम्भमें शारीरिक संयम और वाणी-संयमकी अत्यन्त आवश्यकता है । शारीरिक संयमकी दो श्रेणियाँ हैं । प्रथम है---आलस्पका त्याग और द्वितीय है विषयभोगका परित्याग अथवा जितेन्द्रियता । वाणी-संयमकी भी पाँच श्रेणियाँ हैं--अपवाद, गप्प तथा व्यर्थ बार्तालाप, कठोर-वचन, भ्रामक वाणी तथा दोषप्राही भाषणका परित्याग। इस प्रकार धीरे-धीरे संयमद्वारा जब शरीर और जिह्वा भली-भाँति वरामें हो जाते हैं तो विचार शब्द और कार्यको उच बनाना सरल हो जाता है; क्योंकि ऐसी दशामें स्वार्थपूर्ण वातें और अयोग्य विचार जिह्वापर नहीं आते और न वे कार्यरूप-में परिणत होते हैं; क्योंकि वाणी निर्दोष, पवित्र, नम्र, करुण

और उद्देश्यपूर्ण हो जाती है और जो शब्द कहा जाता है, वह

अतः जिस व्यक्तिको पूर्ण रूपसे उच्चतर जीवनके प्राप्त करनेका अभीष्ट हो उसे चाहिये कि वह हृदयकी समस्त दुरी वृत्तियोंको त्याग दे और अच्छी वृत्तियोंका निरन्तर अभ्यास करता रहे । यदि उसे कष्ट, शङ्का अथवा दुःख हो तो उसे चाहिये कि वह अपने आन्तरिक जीवनमें उसका कारण हुँदे और उसका त्याग करे। उसे चाहिये कि सदा ब्राह्ममृहूर्तमें उठे और मनन करे; क्योंकि इस समयसे वढ़कर और कोई पवित्र समय नहीं है। यही समय है जब कि प्रकृतिका कोना-कोना पवित्रतासे भरा रहता है, पत्ते-पत्तेसे आरोग्यवर्द्धक हवा निकलती रहती है। इस शुद्ध वायुसे मनुष्यके मस्तिष्कका विकास होता है, आलस्य दूर भागता है और हृदयमें सदाचारके उत्तम विचार उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार सद्भावनाओं के साथ प्रत्येक दिन शरीर और जिह्नाको वश्रमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये तथा मनको ऐसा स्थिर करना चाहिये जिसमें भूल-चूक और निर्बलतासे वच सके । उसे विचारशील और दृढ़प्रकृति होकर तत्परता और उद्योगके साथ अपने हृदयकी इस प्रकार रक्षा करनी चाहिये और अपना मन ऐसा पवित्र बनाना चाहिये कि वह प्रतिदिन कम बुराई और अधिक भलाई करे। सदा श्रेष्ठ मनुष्योंके सम्पर्क-में रहना, श्रेष्ठ पुस्तकें पढना, श्रेष्ठ वातें सोचना, श्रेष्ठ घटनाएँ देखना, श्रेष्ठ कार्य करना, दूसरोंमें जो श्रेष्ठताएँ हैं, उनकी कद करना और उन्हें अपनाना तथा श्रेष्ठतामें ही श्रद्धा रखना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त पहलेसे सतर्क रहे विना आजकलकी रंगीन दुनियाके प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त करना कठिन है। अतएव शान्त स्थानमें मनको सज्जित और प्रस्तुत करने तथा यथार्थ ही देखने, जानने और समझनेकी उसमें आदत डालनी चाहिये; क्योंकि सम्यक् ज्ञानके सम्मुख पाप और लोभ नहीं ठहरते।

अतः उच्चतर जीवन प्राप्त करनेका इच्छुक व्यक्ति यदि उपर्युक्त साधनोंको बरते तो निश्चय ही वह दिनोंदिन अधिक बलवान्, शिष्ट और बुद्धिमान् वनता जायगा। उसके मुखकी वृद्धि होगी और सत्यताका प्रकाश उसके अन्तःकरणमें दिनों-दिन दूना होकर सारी कालिमा दूर कर देगा। उसका पथ विस्तृत तथा परिष्कृत हो जायगा और जीवन मुनियमित, उच्च्वल, शुद्ध, शान्तिप्रद, आनन्दमय और मनोहर होगा।

के वि आज

ही व बड़े पड़े; उधर रहा बजते जैसे ! उस । आदि बनचे ल्गा थी, इ दिन व लिये पार न पा रहे तैयारि रातक ही है-आते कहे न आशा यह 3

छूट र नाथ ! मैं नई हो दी दुःखरे

रामहा

पदो, समझो और करो

(8)

रामरक्षास्तोत्र-

'कल्याण' वर्ष ३६के अङ्क ८ एवं ९ में 'रामरक्षास्तोत्र' के विषयमें बहुत कुछ प्रकाशित हो चुका है। इसी विषयमें आजसे ढाई वर्ष पहलेकी एक सत्य घटना नीचे प्रस्तुत है-

मेरे छोटे वच्चेको (जब कि उसकी आयु केवल एक ही वर्षकी थी) एक दिन ठीक बारह बजे रात्रिमें अचानक बड़े जोरसे चीत्कार करते सुनकर हम सब बरवाले जाग पड़े; और देखा तो बच्चा इस ढंगसे काँपता और इधर-उधर देखता हुआ रो रहा था, मानो उसे बहुत भय लग रहा था। उसी दशामें पूरी रात वीत गयी और सुबह नौ बजते-वजते वच्चेको तेज बुखार और फिट (खिंचाव) जैसे पुराने मिरगीके रोगीको आया करती है, आने लगी। उस दिन, दिनभर काफी उपचार (डाक्टर, वैद्य, झाड़ा-टोना आदि-आदि) होते रहे; परंतु कोई भी लाभ नहीं हुआ, बल्कि बच्चेकी दशा इतनी बिगड़ गयी कि उसका रोम-रोम कॉॅंपने ल्मा था और पहले जहाँ उसे एक-एक घंटेसे फिट आती थी, अब बीस-बीस मिनटसे आनी ग्रुरू हो गयी । उसी दिन दो वजे रात्रिकी गाड़ीसे चाचाजीके यहाँ पुत्रीकी शादीके लिये वारात आनेवाली थी। घरवालोंकी चिन्ताका कोई पार नहीं था; और मेरे तो ऑसू रोकनेपर भी नहीं रुक पा रहे थे । विकि शादीकी साज-सजावट और सम्पूर्ण तैयारियाँ देख-देखकर और भी अधिक जी जल रहा था। रातको वारात आ गयी । होनेवाला काम तो समयपर होता ही है - सुखमें हो या दुःखमें । दूसरे दिन सवेरे सभी वाराती आते हैं और बच्चेकी दशा देखकर चुपचाप विना कुछ कहे चले जाते हैं (अर्थात् बच्चेके जीवनकी अब कोई आशा होप नहीं रह गयी थी और विवाहके ग्रुभ अवसरपर यह अशुभ)।

तीसरे दिन भी जब बच्चेका दुःख मरकर भी नहीं छूट सका, तव दुखी हृदयसे मैंने एकान्तमें प्रभुसे कहा-ध नाथ ! अव तो इस छोटे-से जीवका दुःख देखा नहीं जाता। मैं नहीं चाहता कि यह रोगमुक्त होकर जीवित रहे; जैसे भी हो दीनवन्धु ! अब इसका दुःख दूर कर दो । इसे इस घोर दुःखसे छुटकारा दे दो।'

दोपहरके दो बजे माताजीकी इच्छा हुई कि स्थानीय

कामना की जाय और उनसे (जैसा कि वे पहले कई बार भी करते सुने गये हैं) रामरक्षास्तोत्रसं अभिमन्त्रित जल लाकर वच्चेको दिया जाय और होप सभी उपचार बंद कर दिये जायँ। मुझे यह बात विल्कुल पसंद नहीं आयी। परंतु माताजीके अधिक कहनेपर जाना ही पड़ा । वैसे तो संतजी मेरे परिचित ये, परंतु अधिक सम्पर्क तवतक नहीं था । मैं प्रणाम करके चुपचाप बैठ गया। पासमें एक दो सजन और भी बैठे थे । एकाएक वास्तविक मनोकामना कहनेकी इच्छा नहीं हुई । कुछ सत्संगविषयक बातें होनेके पश्चात् संतने स्वतः ही पूछा- 'क्यों ? आज उदास कैसे हो ?' उत्तरमें मैंने सभी वातें सत्य-सत्य निवेदन कर दीं। संत बड़े त्यागमूर्ति थे; कृपा करके कहने लगे-'तीन दिन हुए आकर कुछ कहा भी नहीं।' और उठकर एक छोटा-सा पात्र जलसे भरकर लाये तथा मेरे सामने ही बैठकर उस पात्रके जलमें अँगुली डालकर घुमाते रहे और मुँहसे धीरे-धीरे मीठे और प्रेमभरे खरसे रामरक्षास्तोत्रका पाट करते रहे । करीव आठ-दस मिनटके बाद मुझे वह जल देकर बोले-'जब भी वच्चेको जल पिलानेकी आवश्यकता हो, साधारण जलके स्थानपर यह जल पिलाते रहना और कल आकर फिर मिलना, रामकुपासे सब ठीक होगा।'

मैं चुपचाप वह पात्र लेकर वर आ गया और आज्ञानुसार वह जल वच्चेको पिलाने लगा । महानुभाव ! कहना न होगा चौथे दिन संवेरेतक हालत सुधरते-सुधरते बच्चा माँके स्तनपानकी चाहना करने लगा। सभी वर-वाले बड़े आनन्दित थे। मैं सबेरे ही संतजीके पास गया और सब हाल सुनायातो वे कहने लगे-'भाई! रामकृपासे क्या-क्या नहीं हो जाता ।'

यह विल्कुल सत्य घटना है जो कि मेरे हृदयमें 'राम-रक्षास्तोत्र'का महत्त्व लिये बैठी हुई है और जीवनभर रहेगी। आज वच्चा साढ़े तीन वर्षका है और रामकुपासे अभीतक तो उसे वैसी कोई भी शिकायत फिर नहीं हुई है। -मोइनलाल कट्टाक्टर शेष रामकृपा।

(?)

मानवताके दो छोर

मोती पटेल संस्कारी तथा भक्तिभावमें रँगा रहता । उसने लोगोंको प्रेमसे समझाकर गाँवमें शराव, माँस और रामद्वारामें वयोष्ट्रद्ध संतजीके पास **जाकर-**0. कन्चेकील **कुलालकी** Guruरोगेरिको वंद करवा दिया था। मोती पटेलका लड़का रायसंग जयान हो गया था। मोती पटेलकी केवल यही एक कामना भी कि पुत्रका विवाह खुब धूम-धामसे किया जाय।

परंतु मनुष्यका सोन्चा हुआ क्या होता है। लड़कीके पिताने अपनी सुविधाके अनुसार जेटके पिछले पखवाड़ेका पक्का मुहूर्त निकलवाकर पुरोहितजीको भेज दिया। पुरोहित महाराजको आया देखकर मोतीने उनका आदर-सत्कार किया, भोजनकी व्यवस्था करायी। मोती पटेलको वगलके गाँवके धरमशी सेठपर पूरा विश्वास था और पीढ़ियोंसे दोनों कुटुम्बोंका परस्पर व्यवहार भी चला आता था। इससे मोती पटेलने विवाहका मुहूर्त स्वीकार कर लिया। अवसर देखकर पुरोहित महाराजने मोती पटेलसे कहा—

पटेल ! तुम्हारे सम्बन्धीजीकी यह स्थिति तो नहीं थी कि इस साल विवाह किया जाय, परंतु तुम्हारी वृद्धावस्था देखकर उन्होंने छोचा कि इसी साल विवाह हो जाय तो तुम भी इस्केके दिवाहका लाभ उठा लो । इसीसे तुम्हारे सम्बन्धीन, जितने भी हो सर्कें, इपये भेरे साथ भेड़ देनेके लिये कहलवाया है।

मोती पटेल तो यह बात मुनते ही ठंढा हो गया, परंतु कलेजा कड़ा करके उसने कहा—'वगलके गाँवमें साहूकारके पास जाता हूँ।' सेठपर मोतीका पक्का विश्वास था, इसीसे वह अपने खेत तथा घरकी सारी उपज बिना मोल-तोल किये सेठके यहाँ पहुँचा देता और वहाँसे जरूरी माल-सामान ले आया करता।

मोती पटेल धरमशी सेठके पास गया। सेठने मोती पटेलके आनेका कारण नहीं पूछा और वातों-ही-वातोंमें कहा—

पटेल ! मैंने तुमसे पहले भी कहा था कि अभीतक तो गत वर्षके बाकी निकलते पाँच सौ रुपये बिना ब्याज तुम्हारे नाम खड़े हैं । उसके बाद तुम जो धीका डिब्बा दे गये थे, उसके बदलेमें चाय, चीनी, गुड़, बिनौले आदि ले गये थे, उनके भी रुपये वाकी ही हैं।

पटेलने सेठकी बातकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा— 'सेठ! तुम्हारे पैसे दूध दुहे देने हैं। परंतु सेठ, इस बच्चेके विवाहका मङ्गलकाम तो तुम्हींको सँभालना है। अभी तो मुझे केवल दो सौ हमये ही चाहिये।'

कहकर सैठने वहीमें खाता डालकर पटेलकी सही भी करवा ली और जरूरी सामानके लिये गाड़ी भेजनेके लिये कहकर दो भी रुपये दे दिये। शेष पाँच सौ रुपये वारातके पहले दिन देनेका वादा किया। पटेलने हर्ष भरे मनसे घर लौटकर दो सौ रुपये पुरोहित महाराजको गिना दिये। अन्तमें रायसंगकी वारात चढ़नेका दिन आया। अमुक जगह मिलनेका संकेत करके वारातको रवाना कर दिया और मोती पटेल दो-एक मुस्तैद आदमियोंको साथ लेकर घरमशी सेटके पास रुपये लाने गया। सेटने लाचारी प्रकट करते हुए कहा—'क्या करूँ पटेल! मैंने तो अपने विनोदको रुपये लानेके लिये भेजा था, पर आजकल फार्म कमजोर हो जानेके कारण विनोदको खाली हाथ लौटना पड़ा।'

यह सुनते ही बेचारे पटेलके तो होश-हवाश ही हवा हो गये।

फिर, साथ आये हुए लोगोंको संग छेकर मोती पटेक, बहाँ बारातकी बैलगाड़ियोंके साथ मिलनेका निश्चय किया था, उस ओर चल दिया। परंतु उन लोगोंके वहाँ पहुँचनेके कुल ही देर पहले बारातकी गाड़ियाँ आनन्दके गीत गाती हुई आगे चली गयी थीं। बगलमें पशु चरानेवाले एक गँडरियेने यह बात बतायी और अपने सहज स्वभाववश चिलम पीकर आगे जानेको कहा। इन लोगोंने उसकी बात मान ली।

गँइरियेने पटेलको उदास देखकर मानवमुलभ जिज्ञासासे पूछा—'क्यों वापजी ! दारीर कुछ गड़वड़ है क्या ?' ऐसे सहानुभूतिके शब्द सुनकर मोती पटेल रो पड़ा और भगवान्से मौत माँगने लगा । वार-वार पूछने-ताछनेपर जब गँड़रियेको सब बातोंका पता लगा तब वह कहने लगा—'चिन्ता मत करो, कितने रुपये चाहिये ?'

पहले तो यह बात मानने में ही नहीं आयी। जान न पहचातः न कोई जात-विराद्रीका सम्बन्धः इसपर भी इस मालदारने कितनी ममता और प्रेम दिखलाया। मोती पटेल तो अपनी पगड़ी उस गँड़िरंयेके चरणों में रखने लगा। यह देखकर गँड़िरया एकदम उठ खड़ा हुआ और पटेलसे बोला—'मैंने अपनी लड़की रुड़की के गौने के लिये रुपये इकट्ठे कर रक्षे हैं। मैं तो गौना कुल दिन बाद करूँगा, तब भी चलेगा। परंतु तुम्हारे तो अब हाथकी बात ही जो नहीं रही है। उम्हारा काम तो होगा ही बापजी! मैं तुमको नगद तीन से रुपयेतक दे सक्षा। ज्यादा चाहिये तो यह चाँदीकी करवनी निकाल दूँ। सहज ही इसके पचास रुपये तो मिल

मं

डा

6

म घ दे

क साम

T

I

एक अनजान गेंडेरियेकी यह बात सुनकर मोती पटेल गद्धद हो गया और उसे प्रेमसे गले लगाकर बोला-'आजसे त मेरा भाई है । पर मैं तेरे रुपये तभी लूँगा जब तू मेरे साथ बारातमें चलना खीकार करेगा?।

बड़ी कठिनतासे और बहुत आनाकानी करनेके बाद उसने मोती पटेलके साथ बारातमें जाना मंजूर किया। उसने अपने ढोरोंकी व्यवस्था की और वारातकी गाडियोंसे जा मिलनेके लिये सब हर्षभरे हृदयसे दौड़ते हुए चल दिये। रायसंगका विवाद धूम-धामसे करके सब अपने गाँव लीट आये।

शामला गॅंडरियेने जब मोती पटेलसे जानेकी इजाजत माँगी, तव मोती पटेलने सारे गाँवके लोगोंको इकट्टा करके शामलाकी प्रशंसा की और उसीकी सहायतासे वह अपने कड़केका विवाह भूमधामसे कर सका था, यह बताया। और कहा कि 'यह शामजा तो अब भेरा भाई है और मेरी जमीनमें ठीक आधी जमीन मैं इसे देना चाहता हूँ।

सोनेके द्रकड़े-जैसी जमीन देनेकी पटेलकी उदारताके लिये गाँवके लोग कुछ कहते, इसके पहले ही पटेलका लड़का रायसंग बोल उठा-'देखो, शामला बापू । अब तुम्हें कहीं जाना नहीं है। हम तुम्हें खेती करना सिखा देंगे।

अन्तमें इन लोगोंके प्रेमवश शामलाने इधर-उधर भटकने-का विचार छोड़कर जमीन लेना स्वीकार कर लिया। आज मोती पटेल और शामला गॅंडेरिया जीवित नहीं हैं, पर उनके लड़के मा-जाये भाईकी तरह प्रेमसे रहते हैं। 'अखण्ड — मनुमाई रजपूत आनन्दः

सरदारजीकी पवित्र मानवता

मैं छिंदवाड़ा (म० प्र०) का निवासी हूँ । यहाँ अपने माता-पिता और भाइयंकि साथ रहता हूँ । मुझे केवल इस घटनाका वर्णन करना है, इसलिये च्यादा परिचय नहीं दे रहा हूँ।

में अपने दो छोटे भाइयोंको प्रायः साइकलपर घुमाने ले जाया करता हूँ । सदाकी तरह आज भी उन्हें धुमाने ले गया। दोनोंमेंसे बड़ेका नाम है राघव और छोटेका है लिला। छोटा बहुत ही चञ्चल वृत्तिका है । राधवको मैंने पीछे बैठाया और ललितको **आगे इंडेपर । दो-तीन मील** पास ही **छोड़** दिया आ CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जानेके वाद उन्होंने लीटनेकी इच्छा प्रकट की । मैं वापस हो लिया । दोनोंने अपनी-अपनी जगह बदल ली । छोटा भाई पीछे बैठ गया और बड़ा आ गया इंडेपर । यह जगह क्यों बदली गयी थी ? केवल विधाताके विधानको पूर्ण करनेके लिये ही । साइकल पहाड़ी सड़ककी लंबी ढालपर दौड़ रही थी। शामके सातका समय था। अचानक सामने एक दक्त आ गयी । उसकी बत्तीने मेरी ऑप्ट्रें चौंधिया गयीं । सङ्क्षके वगलमें काफी नीचे जंगल था । इसी समय इंडेपर बैठे हुए राववका पैर अगले पहियेमें फँस गया। साइकल झटकेसे खड़ी हुई और फिसल गयी । मैंने उन दोनोंके हाथ पकड़ लिये थे; अतः इम तीनों तो सड़कपर ही गिरे; किंतु साइकल उस घने कंगलमें गिर गयी । रातके अँघेरेमें कुछ भी नजर नहीं आता था। द्रक बकी नहीं, वह तेजीसे चली गयी। कई और लोग भी निकल गये। परंतु किसीने राषवकी आवाजको नहीं छना।

क्षष्ठ समय पश्चात् वहाँसे एक सरदारजी गुजरे, को शहरकी ओर जा रहे थे। वे हमारे पास रुके। उन्होंने राधवकी रोते देखकर उसका कारण पूछा। मैंने उन्हें सारी घटना सुना दी, परंतु रायवके लगी चोटके विषयमें कुछ भी नहीं कह सका; क्योंकि उसके रोनेका मैंने यही अर्थ उमाया था कि वह डर गया होगा। सैंने कल्पना भी न की थी कि राभवको इतनी गहरी चोट लगी होगी । सरदारजीने उसकी रोनेकी आवाज सुनकर ही यह अंदाज लगा लिया कि इसे गहरी चोट लगी है। उन्होंने जैसे ही उसके पैरपर टार्चकी रोशनी की, वैसे ही वह दृश्य देखकर मेरी आँखोंगर अन्यकार छ। गया और मेरा सिर चकराने छगा । उसके पैरसे एकदम खुन निकलता ही जा रहा था । जैसे तैं में में अपने आपकी सँभाला । सरदारजीने कहा-

'क्यों भाई रूमाल है !' मैंने वहा-- 'नहीं।'

रूमाल उनके पास भी नहीं था । उन्होंने विना कुछ करे ही अधेरेमें ही उसके पैरमें एक लम्बी-सी पट्टी बाँध दी । फिर उन्होंने कहा- 'तुम इमे जल्दी ही अस्पताल ले जाओ ।' मैंने कहा-- 'साइकल तो नीचे खड्डेमें गिर गयी।'

उन्होंने अपनी साइकल मुझे दे दी । और कहा-- 'तुम इसे अकेले ही लेकर अस्पताल जाओ । छोटे (ललित)को मैं टेकर आता हूँ । मैंने जल्दी और घवराइटमें लिलतको उनके पास ही छोड़ दिया और राभवको छेकर मैं अस्पताल पहुँचा । उसे पट्टी बाँधी गयी और मैंने जब वहाँ कुछ लोगोंको यह घटना सुना दी । तब उन्होंने कहा—'तुमने यह बहुत बड़ी गलती की, लड़केको अकेले छोड़कर। वह कोई लड़कोंको गायव करनेवाला है और इस बच्चेको भी अवश्य गायब कर देगा।'

मेरा मन भी सशक्कित हो उठा । मैं सोचने लगा— 'सरदारजीने इसीलिये मुझे साइकल दी है कि मैं जल्दी-से-जल्दी उनके रास्तेसे दूर हट सकूँ।'

परंतु जब मैं घर पहुँचा, तब मुझे अपने ऊपर, अपने बुरे विचारोंपर बहुत ही लजाका अनुभव हुआ; क्योंकि लिलत तो घरमें मुखकी नींद सो रहा था। जब उनकी बाँधी हुई पट्टीको मैंने ध्यानसे देखा, तब मालूम हुआ वह उनकी पगड़ीसे फाड़ी हुई पट्टी थी। दूसरे दिन, सबेरे जब मैंने बाहरका दरवाजा खोला, तब साइकलको भी मुरक्षित रक्खी पाया। इस आदर्श मानवताका ऐसे कलियुगमें दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरी आँखोंसे आनन्दाश्रु बह चले।

जल्दी-जल्दीमें मैं उनका नाम नहीं पूछ सका था और बहुत ढूँढ़नेके पश्चात् भी उन्हें न पा सका। मैंने उनकी साइकल तो उनके दोस्त आये थे, उनको दे दी। वे स्वयं नहीं आये।

इस घटनाको सुनानेका ताल्पर्य यही है कि आज भी मनुष्यमें दूसरेके स्वार्थको अपना स्वार्थ समझनेकी इतनी पवित्र मानवता कुछ लोगोंमें अब भी पूर्णरूपसे जाप्रत् है और ये अनजान सरदारजी ऐसी मानवताके प्रतीक हैं। यदि वे एक बार फिर मिल जायँ! —श्रीअशोक दूबे, छिंदवाड़ा (४)

ईमानदारी और सद्वयवहारका बदला

वृजमोहन तथा मदनलाल हिस्सेदारीमें व्यापार करते ये। दोनोंमें बहुत प्रेम था। वृजमोहन व्यापारी स्वभावके बहुत अच्छे पुरुष थे, पर थे बड़े सावधान। अपना एक पैसा छोड़ते नहीं और दूसरेका एक अधेला भी लेना चाहते नहीं। काम-काज भी अधिक वही देखते। मदनलालके प्रति उनकी बड़ी प्रीति थी। मदनलाल काम-काजमें कम समय लगाकर अधिक समय देशके काममें लगाते। तब भी वृजमोहनजी उन्हें कभी कुछ कहते नहीं, वर उनका विशेष आदर करते। एक बार बाजारमें किसी कारणवश बड़ी गड़बड़ी आ गयी। कई अच्छे-अच्छे फर्म फेल हो गये। वृजमोहन-मदनलालको भी इस व्यापारिक संकटमें काफी तकलीफ सहनी पड़ी। उनके लालों रुपये दूसरे व्यापारियोंमें अटक गये। इनमें एक व्यापारी पेसे थे, जो पड़के तहन

सम्पन्न थे, पर अकस्मात् उनको बहुत बङ्ग नुकसान हो गया था। इनमें बुजमोहन-मदनलालकी बहुत रकम वाकी थी। ये उसे दे नहीं पाये। वृजमोहनजीको यह संदेह था कि इन्होंने रुपये छिपा रक्खे हैं और इनकी नीयत विग्रह गयी है, इसिलये ये नहीं दे रहे हैं। पर बात वास्तवमें ऐसी नहीं थी। उनके पास कुछ भी नहीं वचा था। वे अपने घरकी स्त्रियोंका सारा गहना भी दे चुके थे। इस वातका मदनलालको पूरा पता लग गया था । मदनलालने वृजमोहन-को सब बातें बतायों भी; पर उनको जो सूचना मिली थी, उसपर उन्हें अधिक विश्वास था और उस सूचनाके अनुसार उक्त व्यापारीके यहाँ बहुत-सा जेवर था। अतः वृजमोहनने कोर्टमें नालिश कर दी। उक्त व्यापारी सच्चे थे, अतः वे कोर्टमें हाजिर नहीं हुए । कोई झुठा जवाब नहीं दिया । उनपर एक तरफा डिकी हो गयी । वृजमोहनजीने चुपके-चुपके डिक्री जारी करवाकर उक्त व्यापारीके वरपर क्रकीं भेजनेकी न्यवस्था की।

इसका पता मदनलालको लगा, तत्र मदनलालने फिर पता लगाया। वे उस व्यापारीसे मिले। उसने सची बात बतायी कि उसके घरमें अपना जेवर बिल्कुल नहीं है। करीव एक लाख रूपयेका उनकी एक विवाहिता लड़कीका जेवर है—जो उसके ससुरालवालोंमें परस्पर घरू झगड़ा हो जानेके कारण उनके यहाँ रक्खा हुआ है। पता लगाने-पर यह बात सत्य निकली। तब मदनलालने आकर फिर वृजमोहनजीसे कहा कि 'जेवर उनका नहीं है। आप कुर्की न भेजें। यदि आप कुर्की भेजेंगे तो मैं पहले ही उनकी सूचना दे दूँगा कि वे अपनी लड़कीका गहना घरसे हटा दें। १ वृजमोहनजीको कुछ क्षोभ तो हुआ, पर वे मान गये। कोर्ट आदमी मेजा, पर तवतक कुर्की जा चुकी थी। यह समाचार मिलते ही मदनलालने उक्त व्यापारीको फोन कर दिया कि आपके यहाँ हमारी कुकीं आनेवाली है। जेवर हटा दो । विश्वास हो तो मेरे पास भेज दो ।' कुर्कीवालोंके पहुँचनेसे पहले ही सारा जेवर मदनलालके पास आ गया। कुर्कीवालोंको कुछ भी नहीं मिला। वे खाली हाथ लैट गये । तवतक कोर्टसे कुर्कीका आर्डर भी वापस करा दिया गया। उक्त व्यापारीका गइना उनकी लड़कीको सौंप दिया गया।

वृज्ञमोहन-मदनलालको भी इस न्यापारिक संकटमें काफी श्रीवृज्ञमोहन और मदनलालके इस न्यवहारका उक्त तकलीफ सहनी पड़ी। उनके लाखों रुपये दूसरे न्यापारियोंमें न्यापारीपर बड़ा असर हुआ। वह रातको आया और उसने अटक गये। इनमें एक न्यापारी ऐसे थे, जो पहले बहुत अपनी सारी हालत सन्त-सन्त बतलाकर बड़ी कृतइता प्रकृष्ट CC-0. In Public Domain. Gurukul kangn Collection, Handwar

की व वृजमो बाप-द नहीं दे

संस्या

विश्वार उन्हें सम्पन्न उधार चला उसका मदनव चुकाय उनके दिया उनके

> चढ़ाय पड़ी हु नहीं, जिससे

बदला

छोटी ह सा व मोहित तब यह

तीन वि पर जन् बच्चेको मियादी बच्चेक

रहे थे दवाकी पड़ी— की और देशकी जमीन तथा मकानके पट्टे देनेको कहा। वृजमोहन और मदनलाल दोनोंने कहा कि 'हम आपके वाप-दादेके बनाये हुए और आपके परिवारके रहनेके मकानको नहीं हैना चाहते। जब रुपये हाथमें हों तब दे दीजियेगा।'

उनको उक्त व्यापारीकी सन्बाई तथा ईमानदारीपर विश्वास हो गया और उसकी वर्तमान स्थितिको देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ—कुछ ही महीनों पहले जो वड़ा सम्पन्न था, वह आज कितना विपन्न है ! उन व्रजमोहन-मदनलालने उसे कारोबार करनेके लिये एक वड़ी रकम उधार (मनमें सहायता समझकर ही) दी । उसका कारोवार चला और कहना नहीं होगा कि तीन ही वर्षके अंदर उसका सारा ऋण चुक गया। इतना ही नहीं, वजनोहन-मदनलालको उसने व्याजसमेत उनका नया-पुराना ऋण तो चुकाया ही, साथ ही अपने व्यापारमें रूपये लगानेके नाते उनका अमुक हिस्सा उन्हें उस समय विना बताये एव दिया था, उस हिस्सेके भी लगभग साठ हजार रुपये उनके अनेक मना करनेपर भी उनको दिये। यों भगवान्ने ईमानदारी-सचाई और सद्व्यवहार-उपकारका विलक्षण बदला दिया। ---हजारीमल गुप्त

(4)

तुम्हारा बचा क्या मेरा बचा नहीं ?

इसका नाम था अमराजी। रस्सीके सहारे ऑखपर चढ़ाया हुआ चक्मा, बुढ़ापेकी प्रतीक-जैसी सारे शरीरपर पड़ी हुई झुरियाँ। बड़ी मुक्तिक्रसे चल पाता था; पर पता नहीं, कोई ऐसा उत्साह इसके हृदयमें बहता रहता था, जिससे वह मुसकराता हुआ डाक बाँटा करता।

अमराजीके चार वर्षका वचा था। इसकी माँ तो इसे छोटी ही उम्रमें छोड़कर बड़े घर चली गयी थी। यह नन्हा-सा बचा सारे मुहल्लोंमें हरेकको अपनी तोतली भाषासे मोहित किये लेता था। जब अमराजी डाक लेकर आता, तब यह बच्चा बीच रास्तेमें राह देखता बैटा रहता।

अमराजीका यह प्यारा बच्चा बीमारीमें फँस गया। दो-तीन दिन तो अमराजीने ईश्वरके भरोसे निकाल दिये, पर जब बीमारी बढ़ी, तब उसने गाँबके डाक्टरको बुलाया। बच्चेको देखकर डाक्टरने कहा—'भाई! तुम्हारे बच्चेको मियादी बुखार है और यदि इसको जल्दी न रोका गया तो बच्चेका जीवन जोलिसमें पड़ जाना सम्भव है।'

डाक्टरको फीस देते समय अमराजीके हाथ काँप रहे थे। डाक्टरके जानेके वाद अमराजी घवरा गया। दवाकी फेहरिस्त देखकर तो अमराजीके मुँहसे चीख निकल पड़ी—पैसे कहाँसे लगाऊँगा १ मेरे-जैसे डाकियेको पैसे देगा भी कौन ! पर मुझ बूढ़ेकी छकड़ी-जैसे इस बच्चेकी दवा भी तो करनी है।

अड़ोसी-पड़ोसियोंको बच्चेकी सँमाल देकर अमराजी दो-तीन मील डाक लेने जाता, पर वह जल्दी ही लौट आता । एक दिन इसके हाथमें चालीस रुपयेका एक मनीआर्डर एक विधवा बुढ़ियाके नाम आया । बुढ़िया भी गरीव थी । यह भी इन रुपयोंकी कबसे बाट देख रही थी । इधर अमराजीके मनमें आया कि 'इन रुपयोंसे मैं दवा ले आऊँ तो मेरा बच्चा बच जाय । बुढ़ियाको क्या पता लगेगा ?' पर जीवनमें जिसने कभी पाप नहीं किया, उस अमराजीका मन पीछे पड़ रहा था—हरामके पैसे उसे नहीं पचेंगे । विधवा बुढ़ियाकी हाय उसके आधारको चवा जायगी ।

उस दिन रातको उसे नींद नहीं आयी । आखिर सत्यकी जय हुई । दूसरे दिन सबेरे ही अमराजी बुढ़ियाके पास गया—'लो माँ—तुम्हारा मनीआईर है चालीस रुपयेका।' डाकियेकी आवाज सुनते ही बुढ़िया रसोईमेंसे निकलकर आँखें मसलती बाहर निकली।

'अरे भैया! यह मनीआईर इतनी देरसे कैसे आया! मेरे लड़केकी तो एक सप्ताह पहले ही चिडी आयी थी कि 'भैं चालीस रुपयेका मनीआईर मेज रहा हूँ, मिलनेपर पहुँच लिखना।' बुढ़ियाने देर होनेका कारण पूछा।

और अमराजीकी आँखोंसे दो आँस् निकलकर दुलक पड़े। बुढ़ियाने तुरंत ऊपरकी ओर देखा—'अरे तुम तो जैसे रो रहे हो, ऐसा लगता है। तुम अपने मनकी इस बेचैनीका कुछ कारण वताओ तो पता लगे।'

अमराजीने आपवीती सव सुनायी और दोनों अँगुलियोंसे अपने आँसू पोंछ लिये।—'मुझे पता होता तो तुम्हें यहाँतक आने ही न देती। क्या तुम्हारा बच्चा मेरा बच्चा नहीं है! जाओ, ये रुपये ले जाओ और बच्चेकी अच्छी तरह दवा कराओ। तुमको प्रभु जब दे तो लौटा देना। 'बुढ़ियाने कहा।

अमराजी तो इतना दब गया था कि उसके मुखसे आभारका भी एक अक्षर नहीं निकल पाया । और बुढ़िया। मानो उसने कोई मुकुत्य किया हो, इस भावसे डाकियेकी तरफ देखती रह गयी ।—अखण्ड आनन्द

—वाबूभाई रेवाशंकर पंड्या

(६

दुष्कृत्यका हाथोंहाथ फल

ामराजी घवरा गया। गत ११ जुलाई १९६२ को मैं वस्वई-मद्रास मेलसे के मुँहसे चीख निकल जा रहा था। कुई वाडी स्टेशनसे पंढरपुर जानेके लिये -जैसे डाकियेको पैसे छोटी रेलवे-लाइन है। प्रतिवर्ष आषाढ़ी एकादशीपर CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar पंढरपुरमें भगवान् श्रीकृष्ण—जिन्हें वहाँ श्रीपण्डरीनाय कहते हैं—का मेला लगता है। कुई वाडीके समीप रहनेवाले कुछ मक्त यात्री रेलवे लाइनके बगलसे जानेवाले छोटे-से पैदल मार्गसे जा रहे थे। मेरे डिब्बेमें तीन फौजी अवक ये। इनमेंसे एक डिब्बेका दरवाजा खोले खड़ा था और बगलके पैदल रास्तेसे जानेवाले यात्रियोंको पैर बाहर निकाल-निकालकर मार रहा था और यों बेचारे निरीह यात्रियोंको लात मार-मारकर हँस रहा था। हमलोगोंने उसे बहुद समझाया कि प्ये सब बेचारे पंढरपुरकी यात्राको जा रहे हैं, निर्दोष हैं, इन्हें लात मारना टीक नहीं है। तुम इन निरपराध नर-नारियोंको क्यों ठोकर मार रहे हो ?' पर उसने किसीकी बात नहीं सुनी। एक किसान-स्त्री सिरपर टोकरी और टोकरीमें बच्चेको लिवे उसी रास्तेसे जा रही थी। इसने देखते ही उसको भी लातसे मार दिया।

लात लगते ही वह बेचारी गिर पड़ी और उसीके साथ टोकरी तथा टोकरीका बच्चा भी नीचे गिर पड़े । यह प्रसङ्ग इसने आँखों देखा, हमें वड़ा दु:ख हुआ।

गाड़ी बड़ी तेजीसे जा रही थी । थोड़ी ही देरमें इंजिनमें पानी भरनेवाली सुँड़का खंभा आ गया । युवक पैर बाहर निकाले हुए था । उसके पैरपर खंभेकी अकस्मात् बड़े जोरकी चोट लगी और वह नीचे रेलवे लाइनपर गिर पड़ा । गिरते ही उसकी टाँगके दो दुकड़े हो गये। यह अयानक दृश्य भी हमने देखा । हमें बड़ा दु:ख हुआ !

यह समझानेपर मान गया होता तो यह दुर्घटना क्यों होती ! हमें साथ ही यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पापकर्मका फल कुछ ही क्षणोंमें कैसे मिल गया। मनुष्य यह सब देखकर भी कुछ नहीं सीखता, यही दु:खकी बात है।

गार्थनाके लिये सबसे प्रार्थना

अत्याचारी और विश्वासघातपूर्ण नीच आक्रमण करनेवाले चीनपर शीघ्र-से-शीघ्र पूर्ण विजय प्राप्त करने तथा सम्पूर्ण विश्व-जगत्में नित्य पूर्ण सुख-शान्तिके विस्तारके लिये सभी धर्मोंके प्रत्येक भारतीय नर-नारी प्रतिदिन बोड़ी-सी देर अलग बैठकर परम विश्वासके साथ नीचे लिखे भावकी प्रार्थना करें। मेरी इस विनीत प्रार्थनापर ध्यान देकर प्रार्थना करनेपर निस्संदेह लाभ-ही-लाभ होगा।

सबके प्रभा ! सर्वान्तर्यामी ! सर्वशक्ति ! हे सर्वाधार । सुनो हमारी सत्य प्रार्थना, करो कृपा अनवरत अपार ॥ दो हम भारतके निवासियोंको प्रश्नु ! यह सङ्गल-वरदान । भौतिक, आध्यात्मिक बलके इम हों विद्युद्ध पूरे वलवान ॥ कभी चिरन्तन धर्म न छोड़ें- 'श्रूखीरता, साहस, प्रेम। वैरग्र्न्यता, राग-ग्र्न्यता, सर्वभृतहित, सर्व-क्षेम'।। पूजें अपना रक्तदान कर रणमें, हम रणसे भगवान। तन्-मन-धन सबका ही कर दें सोत्साह पूरा वलिदान ॥ शौर्य-शक्ति-बल-धर्म-त्यागका सुन्दर शुभ रक्तें आद्शी। जाये अन्यायी अत्याचारीका आसुर-उत्कर्षे ।। आसुर-दुर्मति, दुःसाहस, दुष्ट-प्रकृतिका पूरा नाश । पूर्ण विजय पार्ये हम, छाये सभी ओर सात्विक उल्लास ।। चाहें कभी किसीका रश्चक भी न बुरा हम किसी प्रकार। सर्वोदय हो, सभी सुरवी हों, प्रेम-धर्मका हो विस्तारं।। प्राणिमात्र सब सुखी शान्त हों, मिटें सभीके सारे खेद। मेदरूप इस अखिल विश्वमें देखें एक अखण्ड अमेद ॥ विनीत—ह्नुमानप्रसाद पोहार श्रीहरिः

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्वन्धी सचित्र मासिक पत्र]

वर्ष ३६

संवत २०१८-२०१९ वि० सन् १९६२ ई०

की

निबन्ध, कविता

तथा

चित्र-सूची

सम्पादक-हनुमानप्रसाद पोद्दार] * [प्रकाशक-मोतीलाल जालान

कल्याण-कार्यालय, पो॰ गीताप्रेस (गोरखपुर)

वार्षिक मूल्य ७.५० (सात रुपये पचास नये पैसे) विदेशोंके लिये १०.०० [१५ शिलिंग] विदेशोंके लिये १०.०० [१५ शिलिंग]

निबन्ध-सूची

विषय 🔎	ष्ठ-संख्या	विषय
१-अंदर भगवान्को भरो	११६३	२०-कहते हैं सारी अवनतिका मूल धर्म है!
२-अतीत और भारत (श्रीआचार्य सर्वे) ***		(आचार्ये श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ)
३-अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति (हनुमान-		९१-कहा यह कमजारा आपम तो नहीं है।
प्रसाद पोद्दारके एक भाषणसे)	998	(डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम् ए
४-अपना निर्माण कीजिये (स्वामीजी श्रीकृष्णा-		पी-एच्० डी०) ११७५ २२-कामना ७३६
नन्दजी)	८७२	२२-कामना १९३६
५-अपने दोषों और भूलोंका हम सदा ध्यान		२२-(श्रा) कृष्णजन्मष्टिमां-महोत्सव (हनमानप्रमाट
रक्लें (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	१११६	पोद्दारका प्रवचन) ११९६
	७४९	२४-कैवल्य-सम्पादनके पाँच साधन (पूज्यपाद
७-आत्मनिरीक्षण (श्रीवालकृष्णजी वलदुवा		ब्रह्म० श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी
बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰)	८२६	रार्मा) ८३५
८-आत्मवत् सर्वभूतेषु (पं० श्रीकमलापितजी		२५-(श्री) गदाधर भद्दकी भक्ति-भावना (श्री
मिश्र)	११७०	क॰ गोकुलानन्दजी तैलंग साहित्यरत) · · ११०८
९-आत्मशक्तिका अक्षय भण्डार आपमें छिपा		२६-गीताका पुरुष (पं० श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम'
हुआ है (डा॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र,		एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०) ९२०
एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, साहित्यरत्त)	१२९९	२७-गीतावलीमें भक्ति-तत्त्व (श्रीपरमलालजी गुप्त) ११३७
१०-आत्मस्वरूपानुसंधान (व्र० पूच्यपाद श्रोत्रिय		२८-गुरु और शिष्य (श्रीलालचन्दजी शर्मा बी॰
ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी शर्मा) ***	११८१	ए०, बी० एड्०) ११२५
११-आधुनिक विज्ञानकी अपूर्णता (श्रीगोपालजी गुप्त)	93/6	२९-गोचरभूमिक्की गौरव-गाथा (श्रीगौरीशंकरजी गुप्त) ९५१
१२-आर्य-संस्कृतिका गौरव [गद्य-गीत]	1401	
(श्रीशिवकुमारजी सूद वी॰ ए॰, वी॰ टी॰)	668	२०-गोपाल श्रीकृष्ण (प्रो० श्रीजगन्नाथप्रसादजी
१३-इन्द्रियनिग्रहकी समस्या (श्रीगौरीशंकरजी गुप्त)	११२७	मिश्र) १२२८
१४-ईस्वर और महापुरुषोंका प्रभाव (श्रद्धेय		२१-गोरक्षण और गोसंवर्धनकी भी उपेक्षा क्यों ? (गो० लाला हरदेवसहायजी) "१३९७
श्रीजयद्यालजी गोयन्दका)	७१३	३२-गो० श्रीहरिरायजी 'रसिक' (श्रीक०
१५-ईश्वर एक और अनन्त है ('अज्ञात')	१२३४	गोकुलानन्दजी तैलङ्ग, साहित्यर्रंत) " ८७६
१६-उत्तराखण्डकी यात्रा (सेट श्रीगोविन्ददासजी,		३३-गोस्वामी तुलसीदासजीका 'शकुनविचार'
श्रीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दपसाद		(श्रीवलरामजी शास्त्री) एम्॰ ए॰।
श्रीवास्तव) ७३९, ८०६, ८६०, ९२५,		ज्योतिषाचार्यः, साहित्यरतः) ७८७
९९९, १०४९, १११९,	११९१	३४-गोस्वामी तुलसीदासजी प्रतिदिन किस प्रन्थका
१७-कथानक-निर्माणमें तुलसीका दृष्टिकोण (डा०		पाठ करते थे ? (पं० श्रीजानकीनाथजी हार्मा) ९८२
श्रीगोपीनाथजी तिवारी एम्० ए०)	१३०६	३५-चीनपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेके लिये
१८-कल्याण (शिव) ७०६, ७७०, ८३४,८९८, ९	६२,	आध्यात्मिक साधन भी किये जायँ
१०२६, १०९०, ११५४, १२१८, १२८२,	१३४६	(हनुमानप्रसाद पोद्दार) १३४७
९-कल्याणकी परिभाषा (पं० श्रीजानकीनाथजी यर्मा) •••		३६-जीवनकी व्याख्या (श्रीज्ञाज्ञांबरजी नागर
CC-0 In Public D	omain. Guru	kul Kangir Collection, Haridwar

()

३७-रान-निश्चय (स्वामाजा श्राचिदानन्दजी	५६-परम आत्मसाधना (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ८६
सरस्वती महाराज) ११५९	५७-परमहंस अनन्तश्री खामीनारायणदासजीका
३८-'ज्योति' (डॉ० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, एम्०ए०,	एक संस्मरण (पं० श्रीमदनगोपालदत्तजी) ७५५
पी-एच्० डी०, डी० लिट्०) १२९२	५८-परमात्मप्रेम और भगवद्भक्ति (पं० श्री-
३९-तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (पं० श्रीदेवदत्त्रजी	सूरजचन्दजी सत्यप्रेमी (डॉंगीजी) *** १२०४
मिश्र) ९०७	५९-परमात्मा, जीवात्मा और विश्व (मूल अंग्रेजी
४०-तपश्चर्या (डा० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, एम्०ए०,	लेखक—त्र० जगद्गुरु अनन्तश्री
पी-एच्० डी०, डी० लिट्०) १३७१	श्रीशंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी
४१-'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा' (डाँ०	महाराज, गोवर्घनमठ, पुरी; अनु० पं०
श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू एम्०ए०, डी० लिट्०) ९३३	श्रीश्रुतिशीलजी शर्मा, तर्कशिरोमणि) ७१०,
४२- त्वं ब्रह्मासि (पं० श्रीकमलापतिजी मिश्रे) १०३५	७७२, ८९९, ९६३, १०९१, ११५५
४३-दुःख भाग्यविधाताका दण्ड-विधान नहीं,	६०-परमार्थ-पत्रावली (अद्धेय श्रीनयदयालनी
बिंक उसकी अनुपम देन है (श्रीसत्यदेवजी	गोयन्दकाके पत्र) ११८६
आढ़ा, आर॰ ए॰ एस॰, असिस्टेंट कमिश्नर) १३१०	६१-पराभक्तिके आदर्श श्रीभरतजी (पं० श्रीश्रीकान्त-
४४-दुःख-सुख (प्रेषक-श्रीशशिशेखरजी नागर) १०२७	शरणजी महाराज) ११६४, १२५०
४५-दृष्टि-शिक्षा (स्वामीजी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती	६२-पर्यटन (श्रीरोषनारायणजी चंदेले) ९९२
महाराज) ••• १३५२	६३-पाठ्यक्रमसे राम-कृष्णका वहिष्कार " १२११
४६-देवाराधन, भगवदाराधन और भगवन्नामका	६४-पुण्यक्लोक मालवीयजी महाराज (डा०भुवनेश्वर-
चमत्कार ८१७	नाथजी 'माधव' एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ७२३
४७-देवालयोंका सर्वेक्षण, संगठन और संरक्षण	६५-प्रत्येक अहिंसाप्रेमीका कर्तव्य (श्रीअगरचन्दजी
(श्रीओंकारमलजी सराफ) १३८८	नाहटा) " १३८१
४८-देश किथर जा रहा है ! (हनुमानप्रसाद	६६-प्रमुख भारतीय दर्शन (पं० श्रीधर्मराजजी
पोद्दारका एक प्रवचन—कुछ घटा-बढ़ाकर) १०८०	अधिकारी शास्त्री) ७१८
४९-दो वार्ताएँ (श्रीमाताजी, श्रीअरविन्द-आश्रम) ७५०	६७-प्रयासहीन (एक तरुण साधककी डायरीसे) ७२२
५०-द्वीपान्तर और भारतमें सांस्कृतिक सम्बन्ध	६८-प्रार्थनाके लिये सबसे प्रार्थना (हनुमानप्रसाद
[शैवधर्मका प्रतिपादक बृहस्पतितस्व]	पोद्दार) १४०८
(डा॰ सुदर्शना देवी सिंघल, डी॰	६९-बदरिकाश्रम-श्राद्ध और गया-श्राद्धपर
लिट्०) ''' ७२६, ७९३	शास्त्रीय विचार (ख॰ महामहोपाध्याय सर्व-
५१-धर्मबुद्धिकी आवश्यकता (श्रीपरिपूर्णानन्दर्जा	तन्त्रखतन्त्र पं॰ श्रीविद्याधरजी गौड़ अग्निहोत्री) ··· ७४८
वर्मा) १३२०	अग्निहोत्री) " ७४८
५२-निष्काम कर्मसे परमात्माकी प्राप्ति (श्रद्धेय	७०-बार-बार निश्चय करो ९८१
श्रीजयदयालजी गोयन्दका) " १२८६	७१-वीमारी, अभाव और शारीरिक विकारोंसे
५३-पढ़ो, समझो और करो " ७६२, ८२८,	परेशान न रहें (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र
८९३, ९५३, १०१९, १०८४,	एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेशरी) १००५
११४५, १२१२, १२७६, १३४०, १४०३	७२-भक्तगाया (स्वामीजी श्रीजयरामदेवजी) ८८९
५४-पतन या उत्थानमें मनुष्य स्वतन्त्र है	७३-भगवत्-तत्त्व (डा॰ श्रीवासुदेवशरणजी
(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) *** १०३१	अप्रवाल एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰) ः ७७६
५५-पति-पत्नीके परस्पर कर्तव्य (श्रद्धेय श्री-	७४-(श्री) भगवन्नाम-जप (नाम-जप-विभाग
जयदयालजी गोयन्दका) CC-0. In Public Domain & Guru	kul Kang ij व्यापिक्यां पिक्यां के प्राप्त के स्थापिक स्थापिक

११।

७५-(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना		९३-मायिक मुहूर्त [श्रीअरविन्दलिखित अंगरेजी	
(चिम्मनलाल गोखामी) "१२	७३	कहानी 'फैटम आवर'का हिंटी अल्ला	
७६-भगवन्नाम-स्मरणकी महिमा [महामना		(अनु०—श्रीवसिष्ठजी)	
मालवीयजीका उपदेश] ७	909	९४-मुख्य है कर्ताके हृदयकी भावना (पं॰	१३९३
७७-भगवान्में श्रद्धा-विश्वास दृढ़ कीजिये		श्रीविश्वनाथजी मिश्र, साहित्यका	
(पं० श्रीजयकान्तजी झा)	48	साहित्यरज)	10.7
७८-भजन-ध्यानका स्वरूप और लक्ष्य		९५-मृत्युके वाद-एक शास्त्रीय दृष्टि (साहित्य-	७३७
(पं० श्रीजयकान्तजी झा) * १३	६७३	महोपाध्याय पं० जनार्दनजी मिश्र (पंकज)	
(पं० श्रीजयकान्तजी झा) "१३ ७९-भयंकर हिंसा-उद्योग! ११	३२	शास्त्री, एम्० ए०, व्या० सा० न्यायाचार्य,	
८०-भवबन्धन कैसे कटे ! (स्वामीजी		सांख्य-योग-वेदान्ताचार्य) १००९,	Galo 9
श्रीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) १२	११९	१६-मेरी अकृतज्ञता (श्रीराशिक्षरजी नागर,	८०७२
८१-भारतके तीन अमृत्य रत्न (श्रद्धेय		एम्॰ ए॰) · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	100
श्रीप्रभुदत्त्वजी ब्रह्मचारी महाराज) *** १३	30	९७-मेरी कामना (श्रीहरिक्चण्णदासजी गुप्त 'हरिंग) १	
८२-भारतीय साहित्यमें 'आर्य'-सम्बन्धी		१८-मेरे प्यारे भगवान सदा मेरे साथ रहते हैं ।	
मान्यता (प्राध्यापक श्रीवद्रीप्रसादजी		९९-मेहनतसे शान्ति (श्रीकृष्णवस्त्रभदासजी	, , ,
पंचोली एम्॰ ए॰, साहित्यरत) १०	५३	'साहित्याचार्य', 'साहित्यरत्न') ' १	0819
८३-भोगवाद और आत्मवाद (हनुमानप्रसाद	. 9	००-मैं तुम्हारा पारखी भी हूँ (एक तरुण	
पोद्दारके कलकत्तेके एक भाषणका सारांश) ९		साधककी डायरीसे)	184
८४-मंगलभवन अमंगलहारी (पो॰ डा॰ राजेश्वर-		०१-मैं भगवान्के आनन्दसागरमें डूबा रहता हूँ	
प्रसादजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, पी-एच्०			646
डी॰, बी॰ एस्-सी॰, साहित्यरत्न) ८		• ३ —युक्त आहार-विहारसे परमात्माकी प्राप्ति	0 10
८५-मधुर ७२१, ७९८, ८५४, ९०९, ९७८,		(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) '' १	344
१०४०, ११००, ११७९, १२९१, १३	६० १	०४-योगीश्वर गोरक्षनाथका दार्शनिक सिद्धान्त	
८६-मनुका आदर्श शासनविधान (पं॰			
श्रीजानकीनाथजी शर्मा) *** १३	१६६	(आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्यायः	~~
८७-मनुष्यका कर्तव्य (त्र० पूच्यपाद भोत्रिय		एम्॰ ए॰) ··· ···	280
ब्रह्मनिष्ठ महात्मा श्रीनथुरामजी शर्मा; अनु॰	*	०५-राजा बीरबलकी चेतावनी (श्रीगोवर्घनळालजी	3/19
श्रीसुरेश एम्० भट०) ••• १०	०२९	पुरोहित, एम्० ए०, बी० एड्०) "१	400
८८-महामना मालवीयजीके कुछ संस्मरण	8	०६-(श्री) राधा-नाम-रूप-महिमा और राधा-	
	988	प्रेमका स्वरूप [श्रीराधाष्ट्रमी-महोत्सव (सं०	
८९-मानव-अक्षय अविनश्वर (श्रीवालकृष्णजी		२०१९ वि०) पर गीतावाटिका गोरखपुरमें	725
् बलदुवा बी॰ ए॰, एल्॰ एल्॰ बी॰ · · ॰	९०६	हनुमानप्रसाद पोद्दारके भाषण] १	444
९०-मानवताकी आघार-पीठआस्तिकता	8	०७-रामचरितमानसका मङ्गलाचरण (पं० श्री-	
(श्रीमुनहरीलालजी शर्मा, बी॰ ए॰, साहित्यरत) १३		सुनहरालालजा शमा, साहत्यरक /	७५२
९१-मानसकारका प्रयाग-वर्णन (मानसतत्त्वान्वेषी	8	०८-(श्री) रामचरितमानसमें आगम-तत्त्व	
पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी,		(ভা॰ প্রীहरिहरनाथजी हुक्कू एम्॰ ए॰ ।	2.0
वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न) ९	१ ३०	डी॰ लिट्॰) १२५६, १	३०१
१२-मानसमं एक भाव-निवोह (श्रीछविदत्तजी	8	०९-(श्री) रामनाम-निष्ठाके आदर्श श्रीप्रहादजी	
वाजपेयी)	am Guruku	ı Kan(gritonileश्वीभीकातकाग्रणजी महाराज)	९७३

(4)

११०-(श्री) रामनामामृत और उसकी प्रयोग-	१३०-रात्रु कौनः मित्र कौन ! (श्रीलक्ष्मी-
, विधि (पं० श्रीश्रीकान्तरारणजी महाराज) १२९४	नारायणजी 'अलैकिक') ९४६
१११-(श्री) रामनामाराधन-रहस्य (श्रीश्री-	१३१-शारीरिक रोग और मनोविकार (श्रीकन्हैया-
कान्तश्चरणजी महाराज) १३६२ ११२-'रामरक्षा-कवच'की सिद्धिकी विधि १२११	लालजी लोढ़ा) १०६२
११२-'रामरक्षा-कवच'की सिद्धिकी विधि "१२११	१३२-शिक्षा-प्राप्तिके वाधक और साधक कारण
११३-रामायण और राम-कथाकी सार्वभौमिकता	(श्रीअगरचन्दजी नाहटा) ७३३
(श्रीनर्वेदाप्रसादजी वर्मा) ८८४	१३३-संकल्प-शक्तिके चमत्कार (श्रीयुगलसिंहजी
११४-रोग तथा उनका निवारण (डा॰ श्री-	खीची, एम्॰ ए॰, वार-एट्-ला॰) · ९८८
शिवनन्दनप्रसादजी) ७५८	१३४-संसारकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करें (डा॰
११५-रोगी देश अमेरिका ('होमियोंपैथिक	श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०
संदेश' से) ८२२ ११६-लोक-जीवनमें देवालयोंका महत्त्व (श्री-	डी॰) ११०१
११६-लोक-जीवनमं देवालयोका महत्त्व (श्री-	१३५-सिचिदानन्द्यन ब्रह्मके तत्त्वका विवेचन
ओंकारमलजी सराफ) १२७०	(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) *** १२२२
११७-वर्तमान दोषोंके निवारणकी आवश्यकता	१३६-सच्ची सहायता भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है
(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) " ९६९	(डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०,
११८-वर्तमानमें गीताकी उपदेयता (वैद्य श्री-	पी-एच्० डी०) · · · १०४५
ज्ञाननिधिजी अग्रवाल, आयुर्वेदाचार्य) ७८४	१३७-सची सुख-शान्तिके लिये (श्रीमुकुन्दजी
११९-वास्तविक कल्याणके साधन [पर्म पूच्यपाद	मालवीय) ९२२
उदासीन सिद्ध संत बाबा साहेव अनन्तश्री	१३८—सतपंच चौपाई मनोहर (स्वामीजी १००४
बुद्धदासजी महाराज (खिचड़ीवाले बावा)	श्रीप्रेमानन्दजी) १००४
के महत्त्वपूर्ण सदुपदेश] (प्रे॰ भक्त श्री-	१३९-सतीधर्म (महात्मा श्रीसीतारामदास ऑकारनाथ) ९१०
रामशरणदासजी) १०१५	
१२०-वास्तविक साधुता (पं० श्रीजानकीनाथजी हार्मा) ११८३	१४०-सत्प्रेमएक दृष्टिकोण (श्रीशिवप्रसादजी
१२१-विद्वत्ता और तत्त्वज्ञानका भेद (स्वामीजी	शर्मा) " ७८२
भीचिदानन्दजी सरस्वती महाराज) '' १२८३	१४१-सदा प्रसन्न रहिये (स्वामीजी भीकृष्णानन्दजी) १३४९
१२२-विश्वकल्याणका मूलांघार-आत्मीयताका	१४२-सबसे विकट मानसरोग हैं और वे ही
विस्तार (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) *** १०६८	शारीरिक रोगोंके कारण हैं ८२३
१२३-विश्वशान्तिका प्रधान उपाय वाणी-वशीकरण	१४३-सम्मान प्राप्त करनेका महत्त्वपूर्ण उपाय
(पं० श्रीभगवानदेवजी शर्मा गुरुकुलीय	(श्रीअगरचन्दजी नाहटा) १३२२
सिद्धान्तशास्त्री) ७४६	१४४-सर्वेदुःखदोषनाशकतप (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी
१२४-विषका अमृतमें परिवर्तन (कु० पुष्पा	गोयन्दका) ९०३
बहिन पंड्या) ९४८	१४५-सर्वेश्वर-सम्बन्ध [पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्य-
१२५-वेदना (श्रीदानविहारीलालजी रार्मा) *** १२७५	प्रेमी (डॉंगीजी)] ९१३
१२६-वेदोंमें शरणागति-महिमा (स्वामीजी	१४६-सहायताको सीघे भगवान्से आने दो
श्रीओंकारानन्दजी सरस्वती) • • • ७७९	(श्रीअरविन्द) ७३२
१२७-वैज्ञानिक विडम्बना (श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) ८११	१४७-साकेतवासी योगिराज स्वामीजी श्रीच्योतिः-
१२८-व्यवहार (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ८२७	प्रकाशाश्रमजीके जीवनकी कुछ वार्ते।
१२९-व्रजकी माधर्य-भावना और श्रीग्रहाधर भड़	हिमालयमें सिद्ध महात्माओंके दर्शन (भक्त
(क॰ श्रीगोकुलानन्दजी तैलंगूर साहिलाका है १३१३ ।	श्रीरामशरणदासजी) · · · १३२५

१४८-साधनाकी सिद्धि (श्रीविश्वेश्वरनारायणजी) ११३५	१२-'स्वारथ सॉॅंच' (श्री'चक्र')	
१४९-सुरक्षा-रहस्य (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त		१०४२
'इरि'), ९४०	पद्य	603
१५०-सेवा (महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकार-	१-अनुनय (पो० भीनांकिका	
नाथजी महाराज) १०९६		
१५१-स्त्रीके लिये स्वामी (महात्मा श्रीसीताराम		१०८३
ओंकारनाथजी महाराज) " ८९६		280
१५२-खप्न-समीक्षा [एक तरुण साधककी डायरीसे] १२७२	४-आत्मा परमात्मासे (श्रीवालकणाजी वसरा	१२३५
१५२-स्वाध्याय-संग्रह (स्व० श्रीविश्वामित्रजी वर्मा) १३२४	बा॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰ ।	
१५४-स्वास्थ्य-प्राप्तिके सात्त्विक उपाय (प्रो॰	५-ईश्वर-वाणी (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी)	१२६२
श्रीशिवानन्दजी शर्मा, एम्० ए०) *** १११२	५-उद्यायन ! (शक्दिरनाथजी हिन्द	
१५५-हमारा वेदराजा और उसकी सेना (आचार्य	एम्० ए०, एल० टी०)	0.7
श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ) ८७४	एम्॰ ए॰, एल्॰ टी॰) ७-उपदेशके दोहे	१ ३७७
१५६-हमारे देवालय और आश्रम (श्रीओंकार-	८-एक कदम तो मैं बढ़ पाऊँ (श्रीमधुसूदनजी	204
मलजी सराफ) ११४२	वाजपेयी)	1.00
१५७-हमारे वितरण (पं० श्रीरूपनारायणजी	९-एकमात्र दयामय प्रभुका ही बड़ा भरोसा है	७१२
चतुर्वेदी) १२३१		
१५८-हमें अशक्तसे शक्त बनानेवाला हमारा साहित्य	१०-एक ही दो बने लीला कर रहे हैं	
(पं० श्रीरामनिवासजी द्यामी) ••• ११२९	११-क्यों तुम्हारी याद करता ! (एक साधक)	
१५९-हिंदुओंके नाम तथा उनके पवित्र अर्थ	१२-क्षमा (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी)	१२९३
(डा॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ ए॰,	१३—गीत (श्रीमोहनजी वार्ष्णेय)	
पी-एच्० डी०) १३७/		
१६०-हृदय और जीवन (श्रीन्वालाप्रसादजी गुप्त,		१३६१
एम्॰ ए॰, एल्॰ टी॰) १४००		७६९
कहाना		१३५०
१-अमृतका पुत्र (भी 'चक्र') • • ११०५		७५७
२-आशा-उचित-अनुचित (श्री चक्र) · १३७४		968
३-गुरुदक्षिणा (श्रीशंकरदयालजी पाण्डेय,	१९-तुम तो केवल निमित्त बनो	९६८
एम्० ए०) ९३७	२०-तुम्हीं अपने सुख-सदनमें रहते हो	७८३
४-भोषु पाप्मा न विद्यते (श्री चक्र) भ १२६७		१३९१
५- 'जागे हानि न लाभ कछु' (श्री 'चक्र') · · ९३४	२२-दूसरोंके दुःखोंमें अपना हिस्सा बँटवाओं	900
६-तेन त्यक्तेन भन्नीथाः (श्रीध्चकः) •••	र राग गार्यम् आरामामा हामा	८३३
७-'दूसरो न कोई' (श्री'चक्र') · · ९८५ ८-देखे सकल देव (श्री'चक्र') · · १३१७	२४-द्रौपदीकी लजा-रक्षा (श्रीगणेशप्रसादजी	
८-देखे सकल देव (श्रीश्चकः)	.14.141	१०६१
९-मानवताकी परिधि (श्रीरूपनारायणजी	र र राज्यकार्ग मुपुर कृत्य	१२२७
चतुर्वेदी) ••• १०६६	२६-पाप और पुण्य	939
	२७—पाप-ताप	९३२
११-मागा और यह (शिक्ति)	२८-प्रियतम ! किसी भी रूपमें आओ	602
	२९-फारा (श्रीरामन्त्रणनी हमारण (मित्र)	१०२४
CC-0. In Public Domen Suru	ıkul दिकानुम्बद्भाक्त्र्योवक्रान् वridwar	११५३

(0)

३१-मङ्गलमय ध्यान ्ःः		४५-सवमें प्रभुको देखो ''	606
३२-महामानव (श्रीगणेराप्रसादजी 'सदनेरा')	१०९५	४६-साधककी उत्तरोत्तर उन्नत स्थिति	
३३-मालवीय-जयन्ती-रातीके अवसरपर मालवीय-		४७-सार्थकता	68%
वन्दना (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी		४८-साँसोंकी कीमत (प्रा० श्रीरामेदवर	
शास्त्री 'राम') · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	७६१	दुवे एम्० ए०)	5366
३४-मैं तो प्रियतमकी वस्तु हूँ	७४७	४९-सुनहरा भारत (वेदाचार्य पं० श्रीवेण	
३४-मैं तो प्रियतमकी वस्तु हूँ ३५-मैं प्रभुमें, प्रभु मुझमें	१०३९	• शर्मा गौड) · · ·	
३६-में मानव हूँ [पण्डित श्रीसूरजचन्दजी सत्य-		५०-सुन्दर सीख (वेदान्ताचार्य श्रीरंगीत	ीन्द्रवाग सीन्द्रवाग
प्रेमी (डॉंगीजी)] · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	१०२८	देवाचार्यजी महाराज)	5365 Sigilar
३७-राजसिंहासनपर श्रीसीताराम		संक्रित पद्य	1471
३८-(श्री) राधा-महिमा (पाण्डेय पं० श्रीराम-		१-अहल्यापर कृपा (गोस्वामी तुलसीदास	ची
नारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')		गीतावली)	20/2
३९-(श्री) राधे ! वृषभानुनन्दिनी ! मुरलीधर		२-कय ऐहें मेरे वाल कुसल घर, कहहु व	40C7
जय नन्दिकशोर ! (पाण्डेय पं० श्रीराम-		फ़रि बाता (गीतावली)	
नारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')	658	३-दशरथकी गोदमें वालक राम (गो	स्वामी स्वामी
४०-विनय (श्रीवालिकशनजी गर्ग)	2886	श्रीतुलसीदासजी)	१०२५
४१-विरहातुरा राधाके प्रति एक अन्तरङ्ग सखीके		श्रीतुलसीदासजी) · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	७७१
उद्गार	8888	५-बालकरूप राम गुरुकी गोदसे उतर	भागे
४२-विरहिणी (श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम'	,,,,	(गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी)	९६१
एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰)	9999	६-मैं अपनी मन इरिलों जोरची ७-(श्री) राधाकी विरह-व्यथा	८५६
४३-शिव-गौरी	1006	७-(श्री) राधाकी विरह-व्यथा	८३७
४४—सफल जीवन · · · · · · · · · · · · · · · · · · ·		८-रामकी कृपाछता	
30.30	907	९-रामके वियोगमें कौसल्या (गीतावल	भस) १२८१

चित्र-सूची

रंगीन			इकरंगे चित्र
१-अह्स्यापर कृपा	•••	१०८९	१-अष्टमुजा सिंहवाहिती''''दसवें अङ्कका मुखपृष्ठ
२-(श्री) गौरीशंकर	•••	७६९	२–गरुडवाहन भगवान् विष्णु *** आठवें अङ्करां मुखपृष्ठ
३-दशरथकी गोदमें वालक राम	•••	१०२५	३-भगवान् दत्तात्रेय " सातवें अङ्कका मुखपृष्ठ
४-देवर्षि नारदपर श्रीराधाकी कृपा	•••	८३३	४-भगवान् बुद्ध "पाँचवें अङ्कन्ना सुखपृष्ठ
५-बड्भागी कौआ	•••	११५३	५-भगवान् श्रीरामचन्द्र "ग्यारहवें अङ्कका मुखपृष्ठ
६-वालकरूप राम गुरुकी गोदसे उतर	भागे	९६१	६-मुरलीमनोहर ''' नवें अङ्कक्ता मुखपृष्ठ ७-रणाङ्गणमें श्रीकृष्णका राङ्कनादः ''बारहवें अङ्कका मुखपृष्ठ
७-मङ्गलमय ध्यान	•••	१२१७	८-(श्री) रामकी बाल्लीला तथा
८-रामकी प्रतीक्षामें कौसल्या	•••	१३४५	वनगमनलीला "'तीसरे अङ्कका मुखपृष्ठ
९-रामके वियोगमें कौसल्या	•••	१२८१	९-वरदाता मारुतिःः ः चौथे अङ्कका मुखपृष्ठ
१०-शिव-गौरी •••	•••	७०५	१०-शिवका ताण्डव-नृत्य दूसरे अङ्कका मुखपृष्ठ
११-सिंदासनासीन श्रीसीताराम	•••	290	११-इंसवाहिनी सरस्वती " छठे अङ्कता मुखपृष्ठ

चीनपर पूर्ण विजय प्राप्त करने और उसको भारतकी पवित्र भूमिसे शीघ्र निकालनेके लिये

तन-मन-धनसे सरकारकी सहायता कीजिये

- १---घरका खर्च घटाइये । बड़े भोज आदि बंद कीजिये । विवाह-शादीमें आडम्बर मत कीजिये । सादगीसे कम-से-कम खर्चमें विवाह कीजिये और पैसे बचाकर 'सुरक्षा-कोष'में दीजिये । स्त्री-पुरुष सभी विलास-सामग्रियोंका उपयोग न करके वह पैसे सुरक्षा-कोषमें दीजिये ।
- २--भारतीय वीर सैनिकोंके ियं कपड़े, ऊनी कम्बल, स्वेटर, योग्य खाद्य-सामग्री आदि दीजिये। रणमें घायल वीर जवानोंके लिये द्वा, खाद्य-सामग्री, आरामकी चीजें, अच्छी-अच्छी पुस्तकें दीजिये। घायल वीरोंकी सेवा कीजिये। फर्स्ट एड तथा घायल-सेवाकी शिक्षा प्राप्त कीजिये।
- ३—यथासाध्य शारीरिक श्रम दीजिये । लोगोंमें उत्साह भरिये और भारतकी विजयका निश्चय दिलाइये । ४—घर-घरमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी र्राचके अनुसार भगवान्से प्रार्थना कीजिये । भगवन्नामका जुपकीजिये । ५—मानसमें विश्वास हो तो—

"रिपुस्दन पद कमल नमासी। सूर सुसील भरत अनुगासी॥ जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सन्नुहन बेद प्रकासा॥"

—इस सम्पुटके साथ श्रीरामचिरतमानसका पारायण-अनुष्ठान कीजिये। स्थान-स्थानपर यथासाध्य नाम-संकीर्तन, विम्नहारी भगवान् गणेशके तथा भगवती दुर्गाके पाठ-जप-अनुष्ठान। 'सर्वावाधाप्रशमनं त्रैठोक्यस्याखिलेश्वरि । एवमेव व्यया कार्यमसमद्वैरिविनाशनम् ।' इस सम्पुटके साथ चण्डीपाठ, भगवती वगलामुखीके अनुष्ठान तथा महामृत्युक्षयके जप स्वयं कीजिये और करवाइये।

'कल्याण'के आजीवन श्राहक बनिये

एक साथ एक सौ रुपये देकर 'कल्याण' के आजीवन ग्राहक बनानेकी योजना चाल है। लोग ग्राहक बन रहे हैं। शीघ्र रुपये भेजकर आप भी ग्राहक बनिये। सजिल्दका मुल्य १२५,०० है।

'कल्याण'के सभी प्रेमी पाठक-पाठिकाओं तथा ग्राहकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे ध्यान रखकर खयं आजीवन ग्राहक बनें और विशेष चेष्टा करके अन्यान्य अधिक-से-अधिक सज्जनोंको, अपने सम्बन्धियों तथा इष्ट-मित्रोंको आजीवन ग्राहक बनावें। ऐसा करके वे 'कल्याण' की तथा उन सज्जनोंकी बड़ी सेवा करेंगे।

किसी सज्जनने पूछा था कि 'वे क्या अपनी ओरसे रुपये देकर कई अन्य सज्जनोंको या संस्थाओंको आजीवन ग्राहक बना सकते हैं १' इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि 'अवस्य बना सकते हैं'। ऐसे उदार सज्जन शीघ रुपये भेजकर अधिक-से-अधिक ग्राहकोंके नाम-पते लिखनेकी कृपा करें।

CC-0. In Publicव्यवस्थापक्ष Kangas्याण भुवायोक गीताप्रेस (गोरखपुर)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ì

दगीसे लास-

रणमें यायल

गे। जये।

साध्य प्रशमनं

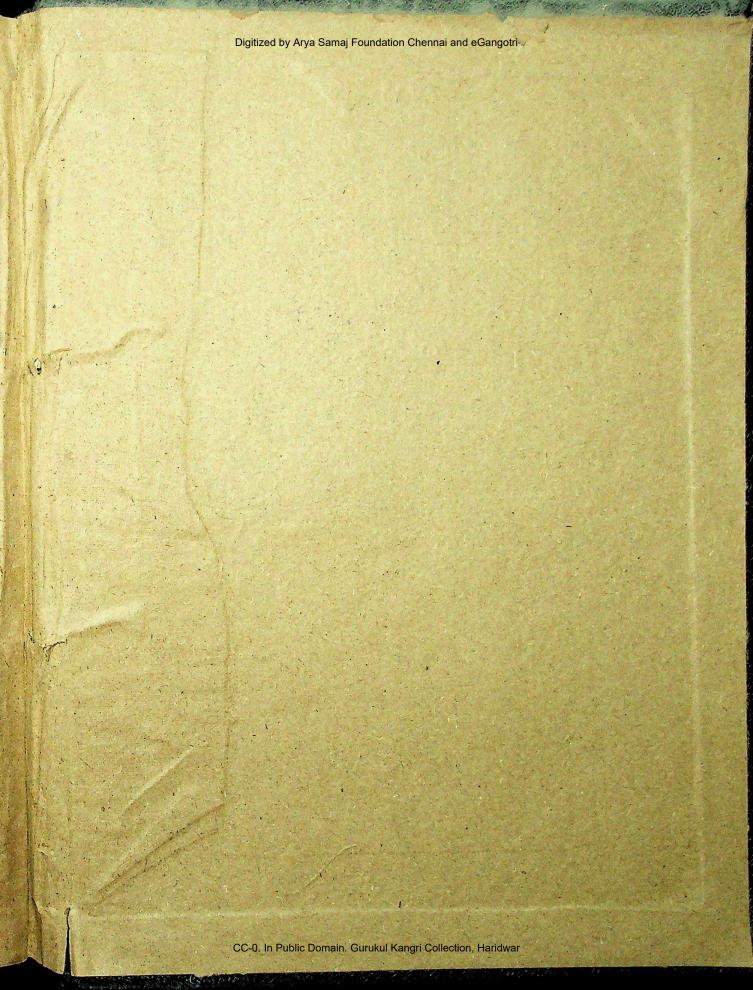
गवती

हु है। ० है। ध्यान अपने

उन

तो या सकते (। Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compled 1999-2000



Digitized by Arya Samaj Foundation Chennal and eGangoth